भगवान् पार्श्वनाथ

कमठे धरणेन्द्रच, स्वोचितंकर्मकुर्वति ।
प्रभुतुल्य मनोवृति., पार्श्वनाथःश्रियेऽस्तुवः ॥ २५ ॥

**Shree Gyan-Gun Pushpa Mala. Pushpa No. 35**

Shreemad Ratnaprabh Soorisiwer Padkamlebhyo Namah

**Shree**

# Bhagwan Parshwanath ki Parampara ka Itihas

# POORVARDH

## [ VOL I ]

**Author**

*Sheeghra-bodhaditatvik, Kakabateesi Adhyatma, Panch pratikramanadi vidhi vidhan, Vyakhya vilasadi updesheek, Samajsudhar vishaya Kagad Hundi Peth Per-peth or Mejharnama stavnadi bhakti vishaya, Pratima chattisee, Dan chattisee, Dayabahutari, Charcha Eitihasik vishaya, Murti Puja ka Pracheen Ithas, Lonkashah, Jain Jati Mahodaya ya Samsinghadi vividh vishaya ke*

*235*

**Granthson ke Lekhak va Sampadak**

Itihas Premi Muni Shree Gyan Sunderji Maharaj

**Prakashak**

Shree Ratnaprabhakar Gyan Pushpa Mala
**PHALODI ( Marwar )**

OSWAL SAMVAT 2400

Veer Samvat 2469 [ V Samvat 2000 ] Iswi Samvat 1943

First Edition 500

卐 卐 卐 卐 卐

Cost of complete set Rs 31

*Publisher*
Lichmi Lal, Misri Lal Vaidya Mehta
*Secretary*
Shree Ratnaprabhakar Gyan Pushpa Mala
*PHALODI ( Marwar )*

The first one hundred and sixty five forms, outer title & subsequent forms
printed by Babu Chimman Lal Jain
at Adarsh Printing Press, Kaisarganj, AJMER

The last 35 forms, from 166 to 200 have been printed by Nathmul Loonia
at the Sasta Sahitya Press, Brahmpuri AJMER
Sanchalak—Jeet Mal Loonia

*Printer —*
Babu Chimman Lal Jain
*At*
ADARSH PRINTING PRESS,
*Kaisarganj AJMER*

ओसवंश के आद्यस्थापक

## जैनाचार्य श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो:
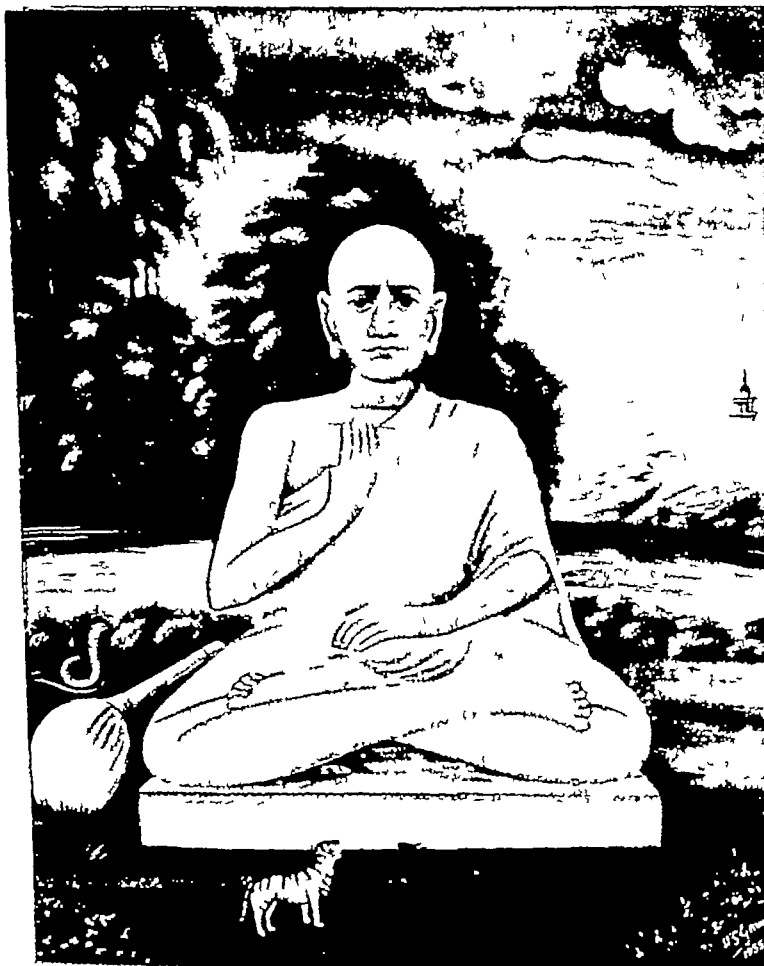
१—जन्म वीर निर्वाण सवत् १ प्रारम्भ ।

२—दीक्षा वीर निर्वाण सवत् ४० ।

३—आचार्यपद वीर निर्वाण सवत् ५२ ।

४—उपकेशपुर के राजा प्रजा को जैनधर्म की दीक्षा वी० नि० स० ७० वर्षे ।

५—आपश्रीजी ने अपनी मौजुदगी में चौदहलक्ष घर वालों को जैन बनाये ।

६—सर्व आयुष्य ८४ वप का अन्त में वी० नि० ८४ वर्ष पुनीत तीर्थश्री शत्रुजय पर समाधि पूर्व स्वर्ग पधारे । श्री सघ ने वहाँ विशाल स्तूम्भ वनाया था 'ज्ञान'

## शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्मसूरीश्वरजी

आपश्री ने काशी में आकर जैनों के लिये विद्या का केन्द्र स्थापन किया आपके लौकिक गुणों से मुग्ध हो काशी नरेश एवं जैनेतर पण्डितों ने आपको शास्त्रविशारद जैनाचार्य पद से विभूषित किये आपने बहुत मांस आहारियों को मांस खाना छोड़ाया तथा अनेक पाश्चात्य विद्वानों एवं जर्मनों को जैनधर्म के अनुरागी बनाये। जो कई चित्र में है।

इस ग्रन्थ के लेखक के गुरुवर्य

## परमयोगीराज मुनिश्री रत्नविजयजी महाराज

आप ओशवंशिय रत्नशी नाम के होनहार थे अपने पिता कर्मचन्दजी के साथ किशोरावस्था मे स्था० समुदाय में दीक्षा ली १८ वर्षों के पश्चात् आपने संशोधन कर शास्त्र विशारद जैनाचार्य विजयधमसूरीश्वरजी महाराज के पास संवेग दीक्षा ली थी। १८ वर्षों तक दीक्षा पा ली अन्त में वि० स० १९७७ वापि ग्राम मे समाधि के साथ स्वर्ग पधारे।

| जन्म | स्थान दीक्षा | संवेगपक्षी दीक्षा | स्वर्गवास |
|---|---|---|---|
| १९३१ | १९४१ | १९५९ | १९७७ |

# आइये सज्जनों! दो शब्द मेरे भी पढ़ लीजिये!

१—जैन समाज हमेशाँ से गुणानुरागी रहा है यदि १०० अवगुणों के अन्दर एक भी गुण है तो अवगुणों की उपेक्षा कर एक गुण को ही ग्रहन करेगा। कारण अवगुण तो पहले से ही आत्मा में भरे पड़े है पर गुणों के लिये स्थान खाली है उसकी पूर्ति के लिये गुण ही ग्रहन करते हैं इस पर भ० श्रीकृष्ण और मृत श्वान का उदाहरण खूब ही विख्यात है।

२—दूसरा अवगुण ग्राही—यदि १०० गुणों के अन्दर एक भी अवगुण मिल जाता हो तो वह गुणों की उपेक्षा कर अवगुण को ही ग्रहन करेगा क्योंकि उसके हृदय में गुणों के लिये स्थान ही नहीं है जिसके लिये एक सेठानी और बन्दरी का दृष्टात प्रसिद्ध है।

इन दोनों की परीक्षा के लिये आज हम मुनिश्री का लिखा हुआ यह ग्रन्थ रख देते हैं कि जिसके अन्दर से दोनों महाशय अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार गुण अवगुण ग्रहन कर सकेगा।

(१) गुणग्राही कहता है कि मुनिजी अच्छे उद्योगी साधु हैं। जैन-मुनियों की दैनिक क्रियाकाण्ड के अलावा विहार, व्याख्यान, जिज्ञासुओं के साथ वार्तालाप, प्रश्नो के उत्तर देना एवं लिखना धर्म चर्चा करना, जैनधर्म पर अन्य लोगों द्वारा किये हुए आक्षेपों का प्रतिकार करना जहाँ धर्म की शिथिलता देखी वहाँ धार्मिक महोत्सवों द्वारा जागृत करना, मन्दिरों की प्रतिष्ठा, यात्रार्थ तीर्थों का सघ निकलाना ज्ञान प्रचाराथ विद्यालयों की स्थापना करवाना, कुरूढ़िया निवारणार्थ उपदेश एव ट्रेक्टों द्वारा प्रचार करना इत्यादि कार्यों से आपको समय बहुत कम मिलना एक स्वभाविक बात है। दूसरा इस समय आपकी आयु भी ६३ वर्ष की हो चुकी है शरीर में वायु का प्रकोप होने से स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता है और नेत्रों की रोशनी भी कम हो गई है तथापि ऐसा वर्ष शायद ही व्यतीत होता हो कि आपके लिखे हुए छोटे बड़े ८-१० ग्रन्थ मुद्रित नहीं होता हो आपने २८ वर्षों में छोटे बड़े २३५ ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित करवा दिये हैं। फिर भी न तो आपके पास कोई सहायक साधु है और न आपके पास हमने ऐसा पण्डित ही देखा है कि आपके कार्य में कुछ मदद पहुचा सके अर्थात् जितना कार्य आप करते हैं वह प्राय सब अपने हाथोंसे ही करते हैं। हाँ एक कारण आपके पास इतना जबर्दस्त है कि जिसके जरिये आप इतना कार्य कर पाये हैं वह कारण है आपके पास आडम्बर का अभाव इतना ही क्यों पर आपको अपने भक्तोंके द्वारा कभी प्रोपोगेंडा करवाते भी हमने नहीं देखा हैं यही कारण है कि न तो आप समाज में लेखक के नाम से प्रसिद्ध हैं और न समाज ने भी आपको इतने अपनाये है और न कभी आप हतोत्साही भी होते हैं इतना ही क्यों पर आपके कार्य में कई सज्जनों ने विघ्न भी उपस्थित किये पर आप किसी की परवाह किये विना अपना कार्य करते ही रहे हैं। आपके ऐसा कोई भक्त श्रावक भी नहीं हैं कि उसकी ओर से ज्ञान प्रचार के लिये द्रव्य की छूट है तब भी आपका कार्य सदैव चलता ही रहता है अतः आपके एकेक कार्यसे गुण ग्रहण करे तो हमारे रिक्त स्थानों की पूर्ति हो सकती है।

(२) दूसरा अवगुणग्राही—वे भी निराश नहीं होते हैं पर अपनी प्रकृति के अनुसार कैसा ही कार्य क्यों न हो पर उनको भी कुछ न कुछ मिल ही जाता है। वे कहते हैं कि इस ग्रन्थ को लिखकर मुनिजी ने क्या अधिकार की है जो बातें आपने अपने ग्रन्थ में लिखी है वह तो सब पहले से ही लिखी हुई थी दूसरा आपने वंशावलियों एवं पट्टावलियों के आधार पर बहुत-सी बातें लिखी हैं जिन पर विद्वानों का विश्वास ही कम है तीसरा आपके लिखे ग्रन्थों में अशुद्धियाँ भी बहुत हैं चतुर्थ बात यह है कि इस ग्रन्थ लिखने में आपने जो अमीबन पहले से किया वह व्यवस्था भी ठीक नहीं कर पाये फिर आपके ग्रन्थ से हम क्या गुण ले सके हमें तो जहाँ देखे वहाँ अवगुण ही दृष्टि गोचर होते हैं। हमने तो भूतकाल में कहीं गुण देखा नहीं और भविष्य में उम्मेद भी नहीं रख सकते हैं एक मुनिजी के ग्रन्थ में ही क्यों पर संसार भर में जहाँ देखें वह मुझे तो अवगुण ही अवगुण दीख पड़ते हैं।

(३) तीसरा मध्यस्थ दृष्टि वाला पुरुष कहता है कि नहीं करने की अपेक्षा तो कुछ करना हजार दर्जे अच्छा है जो मनुष्य कार्य करने में गलती करता है फिर भी वह कार्य करता रहता है वह अपनी भूल को अवश्य सुधार सकता है। पृथक् २ ग्रन्थ में पृथक् बातें लिखी हैं उसको एक स्थान संग्रह करना कोई साधा रण काम नहीं है और पाठकों के लिये भी कम सुविधा नहीं है कि सौ-ग्रन्थों की अपेक्षा एक ग्रन्थ से ही सौ बातें पढ़ने को मिल जाय। दूसरा वंशावलियों और पट्टावलियों पर अविश्वास रखने से ही समाज अपना गौरवशाली इतिहास से हाथ धो बैठा है। स्थानाभावात् हम अधिक नहीं लिख सकते हैं पर यह बात तो प्रसिद्ध है कि जैन समाजके धर्मी मानी वीर उदार पुरुषोंने समाज व धर्म की नहीं पर देशके सर्वसाधारण की बड़ी बड़ी सेवाएं की हैं असंख्य द्रव्य ही नहीं पर अपने प्राणों का भी बलिदान देदिया दिल कर दिये ये वही कारण है कि उन राजा महाराजा एवं बादशाह और नागरिकों की ओर से जगतसेठ नगरसेठ चोवटिया टीकायत चौधरी पंच और शाह जैसी पदवियाँ केवल इसी समाज के वीरों को मिली थी पर आज उनका इतिहास के अभाव उनकी संतान का न कहीं नाम है न कहीं स्थान है वे पग पग पर ठुकराए जाते हैं आज स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में साधारण व्यक्तियों का इतिहास मिलता है पर उन वीरों का कहीं नाम निशान तक भी नहीं है। वंशा पट्टावलियों हमारे पंचमहाव्रतधारी सत्यवक्ता भवभीरू आचार्यों की लिखी हुई है वे एक अक्षर भी जानबूझकर न्यूनाधिक लिखना संसार भ्रमण समझते थे उन वंशा० पट्टावलियों पर अविश्वास करने का नतीजा यह हुआ कि हमारे पूर्वजों का गौरवशाली इतिहास होने पर भी आज हमारी यह दशा हो रही है। मुनिजी ने अपने ग्रन्थ में वंशा पट्टावलियों को स्थान दिया है वह बहुत दीर्घ दृष्टि का ही काम किया है। तीसरा प्रेस के कार्य में अशुद्धियाँ रह जाना एक साधारण बात है और एक मनुष्य पर अनेक कामों की जुम्मावारी होने से अव्यवस्था हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है अतः अवगुणग्राही अवगुण न ले तो वे अवगुण निकल ही नहीं सके इसलिये अवगुणग्राही लोगों का भी उपकार ही मानना चाहिये कि उनके चुने हुए अवगुण फिर दूसरी बार नहीं रह सके। और गुणग्राही सज्जनों का तो गुणग्रहण कर लेखक के उत्साह को बढ़ावे कि वे ऐसे ऐसे अनेक ग्रन्थ लिखकर

म—सज्जन 'चन्द्र'

# भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणों के गच्छ-शाखाएं
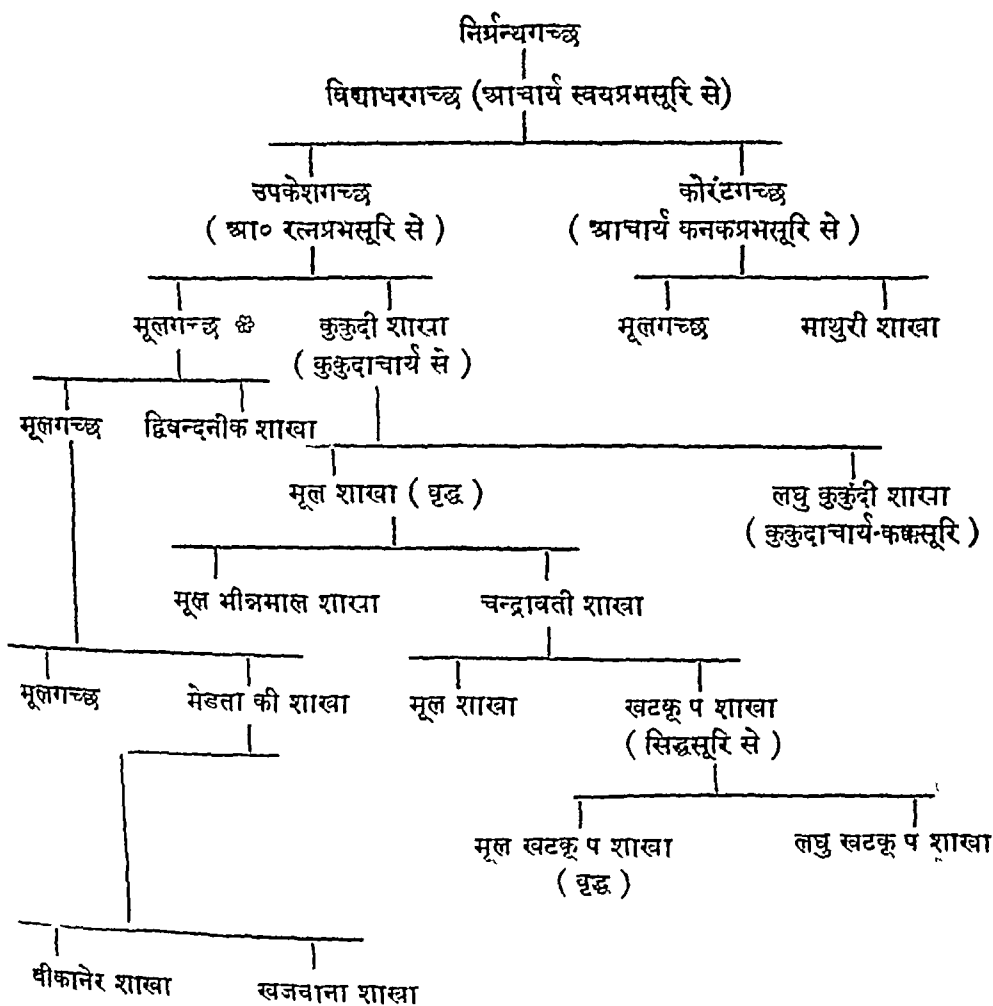
❀ उपर बतलाई उपकेशगच्छ की सब शाखाओं में—आचार्यों की नामावली क्रमश कक्कसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि नाम से ही चली आई हैं अत निर्णय करने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

# सामान्य विषय-सूची

श्रीमान् कानमलजी साहब वैद्य मेहता

पीपलिया ( मारवाड़ )

आप श्रीमान् ने इस ग्रन्थ के लिये २२ १) के कागज मंगवाय दिये जिससे हम इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। अतएव आपको सादर धन्यवाद दिया जाता है।

मंत्री—श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला—फलोदी ( मारवाड़ )
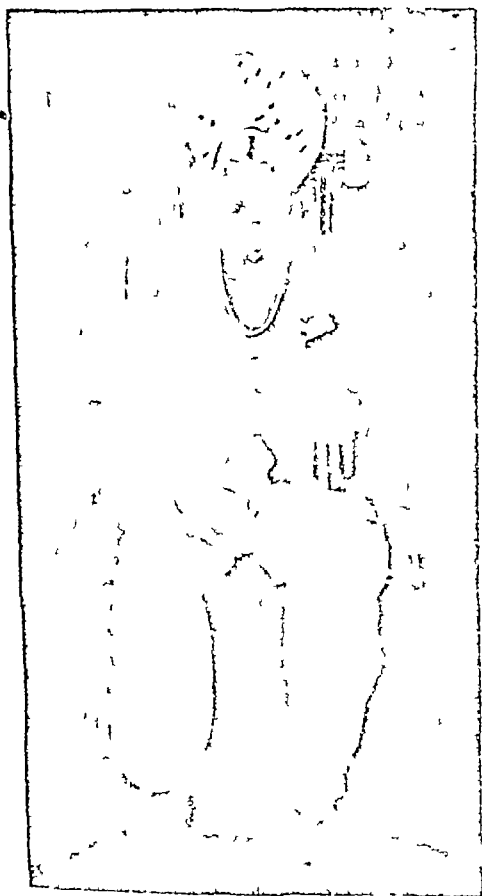
श्रीमान गणेशमलजी मुत्ता पीपलिया—
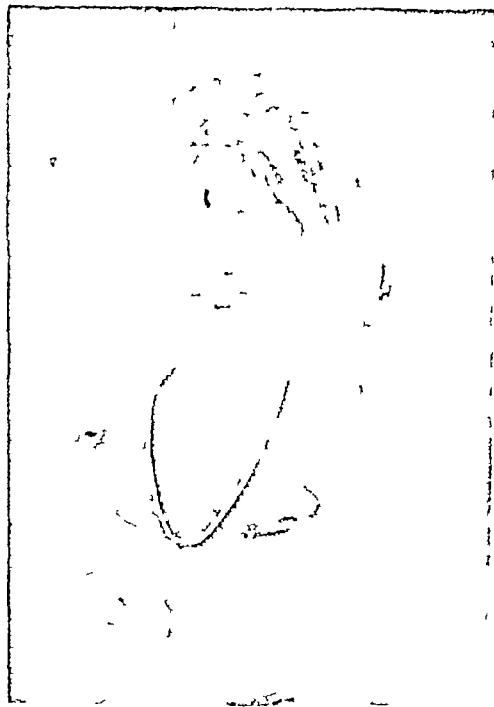
श्रीमान कानमलजी मुत्ता के सुपुत्र माणकचन्दजी मुत्ता पीपलिया

श्रीमान रतनचन्दजी कोचर महता—
जयपुर
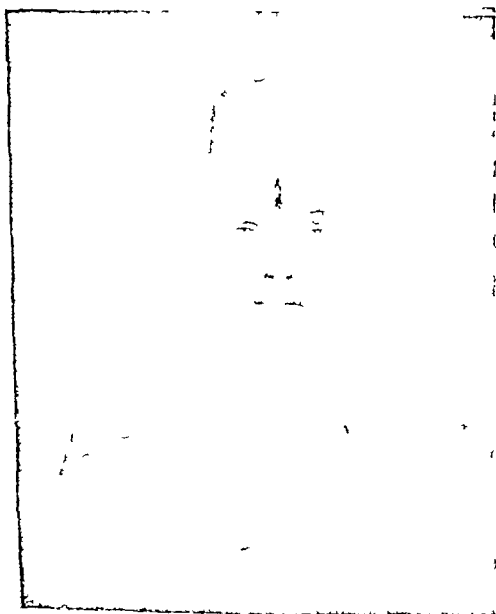
श्रीमान गणेसमलजी मुत्ता के सुपुत्र लालचन्दजी मुत्ता- पीपलिया—

# साहित्य प्रचार
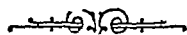
यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जिस धर्म के साहित्य का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही धर्म क्षेत्र विशाल बनता जायगा इसबात को लक्ष्में रखकर हमारे पूर्वाचार्यों ने साहित्य निर्माण कर सर्वत्र प्रचार करवाया था पर वर्तमान जैन साहित्य का प्रचार बहुत मर्यादित क्षेत्र में ही रहगया यही कारण है कि जैन धर्म के विषय सभ्यसमाज भिन्न २ कल्पना कर भ्रमित हो रहा है। अतः जैनाचार्यों एव उपदेशकों का कर्त्तव्य है कि समाज में पठन-पाठन की रूची को बढाकर जैन साहित्य का सर्वत्र प्रचार करें एव करावें। कारण साहित्य प्रचार में जैनसमाज बहुत पिछड़ा हुआ है उदाहरण के तौर देखिये.—

आचार्य विजयनन्दसूरिजी म० ने जैनतत्त्वादर्श नाम का ग्रन्थ बनाया जिसमें जैनतत्त्व षट्दर्शन एवं क्रियात्मिक सब विषय का ज्ञान है वह भी प्रचलित देशी भाषा, कि जिसको सर्व साधारण पढ सके पर ५०-६० वर्ष में उस ग्रन्थ की दो आवृति से अधिक नहीं छपी है जब आर्य्यसमाज का सत्यार्थप्रकाश सब धर्मों का खण्डन होने पर भी उसकी २६ आवृतियों की लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं। खैर इतने दूर क्यों जावे पर हमारे स्थानकवासी समाज की ओर से मुखवस्त्रिका के विषय कई आवृतियाँ निकल चुकी है और उनके उपदेशक जहाँ जाते वहाँ प्रचार की कोशिश करते हैं तब हमारे यहाँ भी इस विषय की पुस्तकें छपी हैं पर वे अधिक जहाँ की वहाँ ही पड़ी हैं इसका कारण हमारे हृदय की संकीर्णता है एक मुनि की छपाई पुस्तक का प्रचार दूसरा मुनि बहुत कम करता है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखिये:—

हाल ही में हमारी सस्था की ओर से 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' नाम का बृहद् ग्रन्थ छप रहा है जिसकी विषयानुक्रमणका कइ २८०० पक्तियाँ एव ४॥ फार्म में समाप्त हुई है हमने ग्रन्थ के अतिरिक्त १०० प्रतियाँ अधिक छपाकर पूज्याचार्यादि कई मुनिवरों के पास इस उद्देश्य से भेजी थी कि कम से कम पांच पांच ग्राहक बना देंगे तो इस ग्रन्थ का शीघ्र प्रचार हो जायगा पर मात्र एक पूज्याचार्य श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी म० के सिवाय किसी ने पहुँचतक लिखने का कष्ट नहीं उठाया। जहाँ ऐसी सकीर्ण भावना होवी हो वहाँ साहित्य का कितना प्रचार हो सकता है ? पाठक ! स्वय विचार कर सकते हैं यही कारण है कि समाज की सख्या दिन व दिन कम होती जा रही है। क्या जैनसमाज के नेताओं की अब भी आखें खुलेंगी ?

हमारी सस्था की साधारण पुस्तकें भी स्टाक में बहुत कम रहती हैं तब ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ का तो कहना ही क्या है ? ग्रन्थ प्रकाशित होने के पूर्व ही बहुत से ग्राहक बन गये हैं जिन्होंकी शुभ नामावली पिछले पृष्टों में छप चूकी है देखने से आपको ज्ञात हो जायगा —

पूज्याचार्यश्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी म० के उपदेश द्वारा पंजाब श्रीसघ ने अपना नाम ग्राहक श्रेणी में लिखवाये है वह निम्न लिखित है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—श्रीसघ—गुजरावाला | पजाब | १—श्रीसघ—हुसियारपुर | पंजाब |
| १—श्रीसघ—लाहौर | पजाब | १—श्रीसघ—जलधर | पजाब |
| १—श्रीसघ—अमृतसर | पंजाब | १—श्रीसघ—अंबाला | पजाब |
| १—श्रीसघ—जडियाला गुरु | पजाब | १—श्रीसघ—सढौरा | पंजाब |
| १—श्रीसंघ—लुधियाणा | पजाब | १—श्रीसंघ—सामाना | पंजाब |

## इस ग्रन्थ के लिये द्रव्य सहायकों की शुभ नामावली

२३०१) श्रीमान् कानमलजी गणेशमलजी वैद्य महता — पीपलिया (मारवाड़)
४००) ,, लीछमीलालजी मिसरीलालजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
२००) ,, दुर्गाचन्दजी विनायकिया फार्म-प्रतापमलजी अमोलखचन्दजी — वेजवाड़ा
१२५) ,, माणकलालजी धनराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
१०७) ,, घीसुलालजी शकरलालजी मुनोयत ५१) ३१) २५) — ब्यावर
१०१) ,, रूपचन्दजी हस्तीमलजी सेठिया — गुदोच
१००) ,, लाभचन्दजी मगलचन्दजी वैद्य महता — फलोदी
१००) ,, लालचन्दजी वाफना चंडावलवाले ५०) ५०) — वेजवाडा
१००) ,, हमीरमलजी धनरूपमलजी शाहा जौहरी — अजमेर
१००) ,, जीतमलजी लढा की धर्म पत्नी श्रीमती प्रभावती बाई — अजमेर
१००) ,, सेठ बन्शीलालजी प्यारालालजी वोहरा — पीपाड़ सीटी
१००) ,, मोतीलालजी मगलचदजी भंडारी अजमेर — सोजत
७१) ,, गमीरभाई ओघड़भाई ब्यावर में — भावनगर
५१) ,, रायबहादुर सेठ वरधमलजी लोढा की धर्म पत्नी — अजमेर
५१) ,, कस्तुरमलजी वोत्थरा — निमाहड़ा (मेवाड़)
५१) ,, लालचन्दजी अमाममलजी वोत्थरा — गोगेलाव (मारवाड़)
५१) ,, छोगमलजी केसरीमलजी सेठिया — बीलाड़ा (मारवाड़)
५१) ,, ताराचदजी वोत्थरा के हस्तु — रतलाम (सी पी)
५१) ,, उदयराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड)
५०) ,, जालमचन्दजी गदइया — चडावल
३१) ,, जगतसेठ उदयचन्दजी की पत्नी—हाल — अजमेर
१५) ,, भूरामलजी गदइया — ब्यावर
१०) ,, एक सुपुत्र की माता गुप्तपने — ब्यावर
५) ,, भँवरलालजी जालौरी — ब्यावर
५) ,, एक मात ने गुप्त नाम से दिये — ब्यावर
२) ,, एक जैनेतर बाईनेउत्कृष्ट भावना से — अजमेर

"उपरोक्त सहायकों का;हम सहर्ष उपकार के साथ धन्यवाद देते हैं" —प्रकाशक"

## इस ग्रन्थ के पहले से ग्राहकों की शुभनामावली

६२५) श्रीसंघ पजाव—पुस्तकें २५ — पजाब
२५) श्रीमान जतनमलजी सुजाणमलजी भडारी — ब्यावर
२५) ,, गणेशमलजो कोठारी — ब्यावर
२५) ,, केसरीमलजी लिखमीचदजी मुत्ता — ब्यावर
२५) ,, तेजमलजी अमरचदजी तातेड़ — ब्यावर
२५) ,, गणेशमलजी चादमलजी मुत्ता जैतारण वाले — ब्यावर
२५) ,, कुनणमलजी अनराजजी कोठारी — ब्यावर
२५) ,, लिखमीचन्दजी नेमीचन्दजी सॉढ — ब्यावर
ब्यावर

२५) ,, थानमलजी सुकनमलजी लुणिया — हैद्राबाद
२५) ,, नेणसुखजी कस्तुरचद पारख — वणी
२५) ,, जवहरीलालजी नाहटा — शेकंद्राबाद
२५) ,, प्रेमचन्दजी गोमाजी वाली वाले — बबई
२५) ,, रंगरूपमलजी लच्मीमलजी चौधरी — नागोर
२५) ,, मीसरीमलजी अगरचन्दजी ओस्तवाल — नागोर
२५) ,, मनोहरमलजी पुनमचन्दजी सुराणा — नागोर
२५) ,, श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान लायब्रेरी मुताजी घीसुलालजी की मारफत— — पीसांगण
२५) ,, भीमराजजी घेवरचन्दजी — उदयपुर
२५) ,, रतिलाल जीवणलाल वडवाण  २५) श्री० रत्नचन्दजी अमरचन्दजी खीवसरा — अजमेर
२५) ,, भगवानजी लुम्बाजी सियाणा  २५) ,, नेमिचन्दजी खालिया — अजमेर
२५) ,, जेठमलजी घालजी — सियाण
२५) ,, रिपभदासजी जुहारमलजी राठौर — फिरोजाबदा
२५) ,, रिखबदासजी जुहारमलजी राठौर — बीजावा
२५) ,, सरदारमलजी केरंगजी धोका — सादेराव
५०) ,, सागरमलजी हस्तीमलजी सोदागरान — फिरोजाबाद
२५) ,, सोधाराज चूडी — फिरोजाबाद
२५) ,, यतिवर्य रत्नविजयजी कनैयालालजी नौरतनमलजी रामपुरा वाले— — अजमेर
२५) ,, लीखमीचन्दजी मानमलजी सोनीगरा — पोस्ट—चाणोद—बालराई
२५) ,, लीखमीचन्दजी मानमलजी सोनीगरा — बालराइ
२५) ,, ए न दीपाजी मेरावाला १७४ गुलालावाड़ी न० ४ — बबाई
२५) ,, पुरुषोतमदास सूरचन्द — बबाई
२५) ,, अनराजजी नार — बेगलूर
२५) ,, रतनचन्दजी कोचर महता — जयपुर सीटी
२५) ,, दीपचन्दजी पाँचूलालजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, राजमलजी केसरीचन्दजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, लाभचन्दजी अमरचन्दजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, चम्पालालजी भँवरलालजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, जैन ओसवाल साधारण खाते — धमत्तरी
२५) ,, मेघराजजी मिखमचन्दजी मुनौयत खेरागढ़ — फलोदी
२५) ,, अगरचन्दजी वैद्य महता — फलोदी
२५) ,, पन्नालालजी गजराजी सराफ — बीलाडा
२५) ,, अमोलखचन्दजी भडारी — बीलाड़ा
२५) ,, बाबारामजी छोटमलजी बब — पुना
२५) ,, रिपभदास हाथीभाई — आमलनेर
२५) ,, चेलाजी वनाजी — कोल्हापुर
५०) ,, रोशनलालजी मोहनलालजी चतुर — उदयपुर

उपरोक्त प्रथम ग्राहकों ने हमारा उत्साह में वृद्धि की है इसलिये हम आप ज्ञान प्रेमियों को सहर्ष धन्यवाद देते हैं।

# समर्पण

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय न्यायाम्भोनिधि पंजाब केसरी, बीसवी शताब्दी के युगप्रवर्तक जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री विजयानन्दसूरीश्वरजी ( आत्मारामजी ) महाराज की आदर्श सेवा में—

पूज्यगुरुदेव ! आप श्री जी ने अपने अमृतमय उपदेश से एव मोक्ष प्रज्ञा द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों से अनेक भ्रमित आत्माओं का उद्धार कर सद् पथ के पथिक बनाये जिसमें मैं भी एक हूँ। अतः मेरे पर आपका असीम उपकार हुआ है उस उपकार से उऋण होने के लिये यह मेरी तुच्छ कृति आपकी आदर्श सेवा में श्रद्धा भक्ति एव सादर समर्पण करता हूँ आप श्रीजी स्वर्गमें विराजमान हुए भी स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करावें।

—ज्ञानसुन्दर

# मूल ग्रन्थ के प्रारम्भ के पूर्व प्रस्तावनादि की विषय सूची

२३१ ग्रन्थों के लेखक

## इतिहासप्रेमी-मुनीश्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज
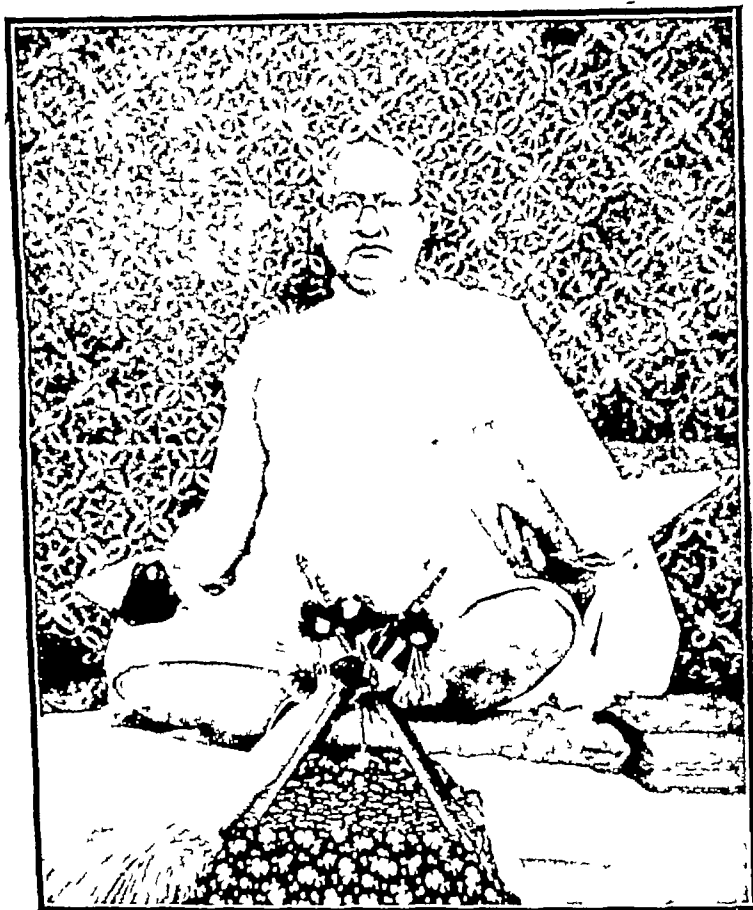
आपश्रीने माता भाई और स्त्री आदि कुटम्ब को त्याग कर २५ वर्ष की युवकावस्था में स्था० सा० दीक्षा ली बाद ९ वर्ष के संवेगपक्षी दीक्षालेकर जैनशासन की बहुत २ सेवा की साहित्य प्रचार का तो आपको बड़ा ही शोक है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपने अपने जीवन में छोटे बड़े २३१ ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित करवाये।

| जन्म | स्था० दीक्षा | संवेगपक्षी |
|---|---|---|
| १९३७ | १९६३ | १९७२ |

# लेखक महोदय का संक्षिप्त परिचय

इस अपार संसार के अन्दर अनेकानेक जीव जन्म लेकर अपनी अवधि के पूर्ण होने से मुसाफिर की भांति चले जाते हैं, पर संसार में अमर नाम उन्हीं महानुभावों का रह जाता है कि जो हजारों कठिनाइयों को सहन करते हुए भी जनता की भलाई करते रहते हैं मारवाड़ में एक ग्रामीण कहावत है कि दो कारणों से दुनियां में नाम रह सकता है "एक गीतड़े, दूसरे भीतड़े" गीतड़ा का अर्थ है मौलिक ग्रन्थ का निर्माण करना, और भीतड़ा का मतलब है मन्दिर मकान आदि बनवा जाना। इसमें ग्रन्थों के निर्माण करने में हम यदि मरुधरकेसरी इतिहासप्रेमी मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज को भी एक समझलें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आप अपने जीवन में छोटी बड़ी सब मिला कर अभी तक २३१ पुस्तकें लिख कर प्रकाशित करवा चुके हैं। जैन मुनियों के क्रियाकांड, व्याख्यान, आए हुए जिज्ञासुओं के साथ वार्तालाप करना, प्रश्नों का उत्तर देना, या पत्र द्वारा आए हुए प्रश्नों का उत्तर लिखना, प्रभु प्रतिष्ठा, शांति स्नात्र, आदि महोत्सव करवाना, तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालना, वादि प्रतिवादियों से शास्त्रार्थ करने में कटिबद्ध रहना, अन्य लोगों द्वारा जैनधर्म पर किये हुये आक्षेपों का लेख एवं ट्रेक्ट द्वारा प्रतिकार करना इत्यादि कार्य करते रहने से आपको कितना कम समय मिलता होगा यह बात पाठक स्वयं सोच सकते हैं? पर आप इतने पुरुषार्थी एवं श्रमजीवी हैं कि अपने प्रायः एक मिनट के समय को भी व्यर्थ नहीं खोते हैं। पहिले तो जवानी थी पर अब तो आपकी साठ वर्ष से भी अधिक आयु है तथा शरीर भी आपका हमेशा नरम रहता है तथापि आपके पास बैठ कर नवजवान भी इतना काम नहीं कर सकता है। दूसरा जहां समय और साधनों की अनुकूलता हो वहां कार्य करना आसानी है पर मरुधर जैसे विद्या में पिछड़े हुए प्रदेश में कि जहां न तो पण्डितादि का साधन है और न द्रव्य की ही छूट है। हम देखते हैं कि अन्य साधुओं के पास में दो दो चार चार पंडित काम करते हैं केवल नाम ही साधुओं का रह जाता है पर यहां तो पुस्तक की सामग्री एकत्र करना सिलसिला जमाना प्रेस कापी करना प्रूफ संशोधन करना आदि आदि सब काम प्रायः हाथों से ही करना पड़ता है। आप श्री ने गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार की पुस्तक लिखी हैं। शुरू से आपने आधे फार्म की पुस्तक से कार्य आरम्भ किया था क्रमशः बढ़ते २ करीब ४०० फार्म का एक ग्रन्थ आपके हाथों से लिखा जा रहा है हम ऊपर लिख आये हैं कि आपश्री की लिखी हुई पुस्तकों के आज तक छोटे बड़े २३१ नं० आगये हैं इसमें यदि बिलकुल छोटी और एक दूसरे के अनुकरण रूप ३१ पुस्तकों को छोड़ भी दी जायं तो भी २०० पुस्तक एक मनुष्य अपने अल्प समय में लिख दे तो यह कोई साधारण बात नहीं कही जा सकती है। यदि यह कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी कि वर्तमान जैन धर्म में पांच हजार साधु साध्वीओं में ऐसा शायद ही कोई होगा जो अपने शरीर से पुरुषार्थ कर इस प्रकार ग्रन्थों का निर्माण किया हो। इसमें भी विशिष्टता यह है कि वर्तमानकालिक आडम्बर का तो आपके पास नाम निशान भी नहीं है। आपकी प्रकृति ही ऐसी है कि बिना किसी आडम्बर किये अपना काम किया करते हैं। यही कारण है कि दूसरे तो क्या पर खास जैनधर्म के कितने ही लोग आपका नाम तक भी नहीं जानते होंगे फिर भी जैनों में ऐसी लायब्रेरी या पुस्तकालय शायद ही होगा कि जिसमें आपकी लिखी पुस्तक न मिलती हो।

आज मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि एक सेवाभावी महापुरुष का जीवनचरित्र मेरे हाथ से

लिखा जा रहा है। यदि मुझे आपश्री का जीवनचरित्र विस्तृत रूप से लिखने की इजाजत मिल गई होती तो मैं बड़े ही उत्साह से आपश्री का जीवन सर्वांग सुन्दर बना कर जन साधारण की सेवा में रखता पर स्थानाभाव आपश्री के जीवन का संक्षिप्त से दिग्दर्शन करवाने के उद्देश से ही मैंने यह प्रयत्न किया है तथापि हजार मन माल के कोठे से मूठी भर का नमूना देख कर विशाल कोठे के माल का अनुमान लगा सकते हैं इसी प्रकार हमारी लिखी संक्षिप्त जीवनी से ही पाठकों को आपश्री का ठीक परिचय हो ही जायगा।

१—"महाजन संघ" वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मरुधर के उपकेशपुर में पदार्पण कर वहां के सूर्यवंशी राव उत्पलदेव मन्त्रीश्वर आदि राजाओं और क्षत्रियों को एवं हजारों भैंसे बकरादिकों की बलि लेने वाली देवी चामुण्डा को प्रतिबोध कर "महाजन संघ" की स्थापना की थी इसके लिये अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती क्योंकि इसी ग्रन्थ में इस विषय को खूब खुलासा लिखा गया है अतः पिष्ट पेषण करना उचित नहीं समझा जाता।

२—"उपकेशवंश" इस नाम की उत्पत्ति उपकेशपुर नगर की अपेक्षा से हुई है जब वीरात् सं० २७१ वर्षे उपकेशपुर में महावीरमूर्ति के ग्रन्थिच्छेद का उपद्रव हुआ तब कितने ही लोग उपकेशपुर को छोड़ कर अन्यत्र जाकर वहां अपना निवास स्थान बना लिया तब से वे लोग उपकेशपुर से आने के कारण उपकेशी कहलाये। और समयान्तर में वे ही लोग उपकेशवंशी एवं उपकेशज्ञाति कहलाने लगे। वंश एवं जाति नामकरण का समय विक्रम की तीसरी चौथी शताब्दी के आस पास का होना अनुमान किया जा सकता है।

३—श्रेष्टिगोत्र—उपकेशपुर का राज्यकर्ता सूर्यवंशी राव उत्पलदेव जब से जैन हुए तब से ही वे जैनधर्म का प्रचार करने में संलग्न हो गये और आपकी सन्तान परम्परा में भी जैनधर्म की उन्नति के लिये ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे काम अर्थात् अनेक श्रेष्ठ कार्य हुये जिससे जनता उनको श्रेष्ठी कहने लग गयी। कालान्तर आपका गौत्र ही श्रेष्टिगोत्र बन गया। राव उत्पलदेव की सन्तान ने कई पुश्तों तक तो राज किया बाद उनके परिवार वाले कई ने राजा के मन्त्री महामन्त्री आदि राज्य का काम भी किया और राज्य का काम करने वाले को मरुधर में मेहताजी कहा करते हैं। अतः आपके सन्तानवाले मेहताजी के नाम से भी सम्बोधित हुए।

४—"वैद्यमेहता" वि० सं० १२ १ में गढ़सिवाना के मेहताजी लालचन्दजी साहब अपने ससुराल चीत्तौड़ चित्तौड़ पधारे थे वहीं के राणाजी की माता के आंखों में अपार वेदना हो रही थी। लालचन्दजी को देवी पद्मावती की पूजा करने का अटल नियम था वैसे ही कुलदेवी अम्बिका का भी इष्ट था अतः राज्य कर्मचारियों ने मेहताजी से आंखों के लिये पूछा तो आपने अपने इष्ट के बल पर दवाई बतलाई जिससे तत्काल ही वेदना चोरी की तरह रफूचक्कर हो गई। इस हालत में वहां के राणाजी ने मेहताजी को बड़े ही सम्मान पूर्वक आठ ग्रामों के साथ वैद्य पदवी इनायत की उसी दिन से वे श्रेष्टिगोत्र वाले वैद्य महता के नाम से मशहूर हुये, जिसके खानदान में हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ।

५—"बीसलपुर" ऊपर लिखा गया है कि गढ़सिवाना में श्रेष्टि गौत्रीय लोग बसते थे। पट्टावलियों में लिखा है कि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में १५ ० घर एक श्रेष्टि गोत्र वैद्यमेहता शाखा के एक ही गढ़ सिवाना में थे पर लोगों के तनाव से कई लोग गढ़सिवाना को त्याग कर के अन्यत्र चले गये जिसमें मेहताजी जोरावरसिंहजी भी शामिल थे उन्होंने बेरले जाकर वास किया बाद कई वर्षों से वहीं के लोगों के आपस में अनबन होने से मेहताजी बेरला को छोड़ कर बनाड़ में जाकर बस गये। उस समय

वनाड़ एक शहरों की गिनती का नगर था कहा है कि "नव नादड़ा बारह जाजीवालों जिस बीच वडा वनाड" इत्यादि पर वि० सं० १५१५ में राव जोधाजी ने जोधपुर आबाद किया तब से वनाड की आबादी टूटती गई फिर भी वि० स० १९४० तक वनाड़ में ५० घर महाजनों के, एक मन्दिर, एक उपाश्रय विद्यमान था। वनाड में वैद्य मेहता स्वनामधन्य श्रीमान् जीवमलजी साहब वहां रहते थे। आपके ३ पुत्र थे १ भूरमलजी, २ जोधराजजी, ३ मुलतानमलजी जिसमें भूरामलजी राज्य का काम करते थे जोधराजजी ठाकुरों की लेन देन या मारवाड़ में व्यापार किया करते थे और मुलतानमलजी दिशावर में नासिक जिले के गिरनार ताल्लुका में कोचर ग्राम में दूकानदारी करते थे इन तीनों भ्राताओं के पृथक् २ काम होने पर भी वे सब शामिल थे और उन सब के आपस में भ्रातृस्नेह प्रेम भी प्रशंसनीय था। आगे भूरमलजी के पुत्र नवलमलजी, जोधराजजी के जीवणचंदजी और मूलतनमलजी के उदयचन्दजी थे। वि० स० १९४० में मेहताजी नवलमलजी व्यापार की सुविधा के लिये वनाड से चल कर वीसलपुर आ गये और वहीं पर अपना निवास स्थान बना लिया उस समय वीसलपुर में दो सौ घर महाजनों के एक अजितनाथ प्रभु का मन्दिर और कई धर्मस्थान थे। एक यतीजी भी उपाश्रय में रहते थे वे बड़े ही चमत्कारी थे। यद्यपि प्राचीन स्तुति में वीसलपुर में चार मन्दिर और ४७ जिन प्रतिमा का होना लिखा है। शायद जोधपुर बसने के पूर्व वीसलपुर बड़ा नगर हो और वह चार जिन मन्दिरों में ४७ मूर्तियों का होना भी असमव जैसी बात नहीं है क्योंकि उस समय वहां ५०० घर महाजनों के और बनजारों की बालदों द्वारा लाखों रुपयों का वाणिज्य होता था।

६—"जन्म" ऊपर लिखा जा चुका है कि मुताजी नवलमलजी वनाड़ का त्याग कर वीसलपुर में में रहने लगे और आपका सब व्यापार वगैरह भी अच्छी तरह से चलता था। मेहताजी का विवाह भी वीसलपुर में श्रीमान् प्रयागदासजी चोरड़िया की सुशील कन्या रूपादेवी के साथ हुआ था अतः आपकी दम्पति जीवन बड़े ही सुख शांति में व्यतीत होता चला जा रहा था। श्रीमती रूपादेवी ने 'गयवर' महान् गज का स्वप्न सूचित वि० स० १९३७ में विजयदशमी की रात्रि में एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। मुताजी के यह प्रथम पुत्र होने से आपके हर्ष का पार नहीं था अतः आपने अच्छा महोत्सव किया और पुत्र का नाम स्वप्नानुसार 'गयवरचंद' रख दिया। ज्योतिषविज्ञ विप्रदेव ने आपकी जन्मपत्रिका भी बनाई। गयवर की

जन्मकुण्डली

च० १०, ११, रा०, ९, ८, मं०, बु० शु०, ७, श० वृ०, सू० ६, १२, १, ३ के०, ५, २, ४
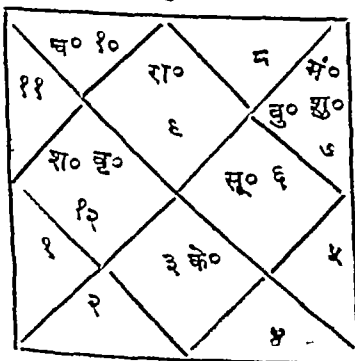
'जन्म'
वि० स० १९३७ आश्विन शुक्ला १० वार बुध १६-५५ नक्षत्र धनिष्ठा ५३-४२ शूल-योग ३२-४० गरकर्ण १६-५५।

चन्द्रकुण्डली

११, ९ रा, श०, वृ०, १२, च०, १०, ८, म० शु०, १, बु० ७, सू०, ४, २, ६, ३ के०, ५
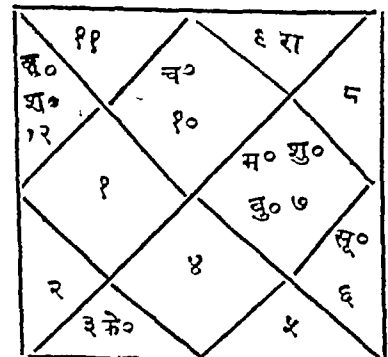
बालक्रीड़ा और तोतली भाषा सबको कर्णप्रिय लगती थी। आपकी अनोखी चेष्टायें भविष्य में होनहार की आगाही दे रही थी। जब आप विद्याध्ययन के लिये पाठशाला में प्रविष्ट हुए तो अपने २ सहपाठियों से हमेशा नम्बर बढ़ता ही रहता था। यद्यपि आपके जमाने में न तो सरकारी बड़े २ स्कूल ही थे और न हिन्दी

की पढ़ाई ही की उस समय के लोग अपने बाल बच्चों को महाजनी की पढ़ाई करवाने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते थे और इस साधारण पढ़ाई से ही वे लोग लाखों के व्यापार किया करते थे अतः मेहताजी ने पूरा एक वर्ष पुत्र की पढ़ाई में व्यय किया जिससे गब्बर वे उस समय की पढ़ाई में धुरंधर होकर व्यापार में मुताजी के कन्धे का भार हलका कर दिया।

७—"विवाह" जब आपकी सत्रह वर्ष की आयु हुई तो श्रीमान् भानुमलजी बागरेचा सेठावस वालों की सुशील कन्या राजकुंवारी के साथ सं. १९५४ मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को गब्बरचंद का बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। मुताजी के फिर सं० १९४० में एक पुत्र का पुनः लाभ हुआ जिसका नाम गणेशमल रखा बाद सं. १९४६ में धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। जिससे मुताजी पर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। दोनों बच्चे छोटे थे अतः मुताजी ने दूसरा विवाह किया। जिससे क्रमशः हस्तीमल बख्तीमल, मिश्रीमल और गजराज तथा एक बरजबाई एवं पांच सन्तान हुई। जिसमें गजराज और बरजबाई का तो अल्पायु में ही देहान्त हो गया शेष गब्बरचंद गणेशमल, हस्तीमल बख्तीमल और मिश्रीमल मुताजी के अन्त समय तक आपकी सेवा में विद्यमान थे।

८—"वैराग्य का कारण"—ऊपर लिख आये हैं कि गब्बरचंद का विवाह १९५४ में हो गया था। आप जैसे द्रव्योपार्जन करने में हिम्मत रखते थे वैसे ही जमाकी के बारे में मेरा अनुमान में खर्च भी किया करते थे पर मुताजी पुराने जमाने के होने से बरदास्त नहीं कर सकते थे अतः गब्बरचन्द को अलग कर दिया फिर भी उसकी आकांक्षा मिटाने जाने के लिये मुताजी ने अपने घर से थोड़ा भी सामान नहीं दिया इतना ही क्यों पर मुताजी ने सोचा कि कहीं जेवर पर हाथ न पड़ जाय अतः उन दम्पति के पास जो जेवर था वह भी उन प्रकार लिया मुताजी का ध्येय तो यह था कि कुछ भी करने से इनकी व्यर्थ खर्च करने की आदत मिट जाय। और इतना करने पर भी गब्बरचंद ने अपने पिताजी से यह सवाल नहीं किया कि आप मुझे घर से कुछ हिस्सा क्यों नहीं देते हो? पुरुषार्थी के लिये दुनिया में क्या कमी है। वह सब कुछ कर सकता है। गब्बरचंद को अलग रहते चार वर्ष हो गया। आपके खर्च वगैरह का वही ठाठ रहा जो पहिले था। संचित रकम से कुछ जेवर भी करवा लिया। आप दम्पति में इतना प्रेम था कि अधिक समय पृथक् रहना नहीं चाहते थे। आपके दो सन्तान भी हुई पर अल्पायु के कारण वे जीवित नहीं रह सकी। एक समय राजकुंवारी को लेने के लिये सेठावस से उनके भाई आने पर गब्बरचंदजी भेजने को राजी नहीं हुवे तथापि अत्याग्रह होने से भेज दिया। बाद आप अकेले ही रहे पर राजकुंवारी को अपने पीहर गये पूरा एक महीना भी नहीं हुआ कि गब्बरचंदजी के शरीर में एकदम बीमारी हो आई। इस हालत में सेठावस से लाने के लिये गाड़ी भेजी पर राजकुमारी ने सोचा कि बीमारी के बहाने से मुझे बुला रहे हैं मैं तो अब ही पितागृह आयी हूँ और अभी पूरा एक महीना भी नहीं हुआ है। अतः वे आने से इन्कार कर गई। इधर बीमारी दिनप्रतिदिन जोर पकड़ती गई। माता पिता भाई और मोहल्ला भी भय में ही था पर न जाने कैसा अशुभ कर्मों का उदय था कि किसी ने आकर थोड़ा भी आश्वासन नहीं दिया। रात बड़ी मुश्किल से व्यतीत होती थी एक दिन जब रात्रि में आप दर्द की भयंकरता को सहन न करते हुवे हाय २ कर रुदन कर रहे थे तो पड़ोस में रहनेवाले प्रतापमलजी मुथा ने आकर धीरज दिया और अनाथी मुनि की स्वाध्याय सुनाई। ×बस यह स्वाध्याय सुनते ही आपको संसार की असारता दिखने लगी और मुनि अनाथी की

---

×श्री अनाथी मुनि की स्वाध्याय।

श्रेणिक रेवाडी चढ्यारे पेखिया मुनि एकान्त। वर रूप कान्ते मोहियारे राय पुच्छे कहो

भाँति आपने भी प्रतिज्ञा करली कि यदि मेरी वेदना चली जावे तो मैं अवश्य दीक्षा ग्रहण करूंगा । कारण संसार में सर्व स्वार्थ के सम्बन्धी हैं मेरे इतना परिवार होने पर भी यह वेदना मुझे अकेले ही को भोगनी पड़ती है जब इस भव में सब उत्तम सामग्री के सद्भाव भी आत्मकल्याण न किया जाय और उल्टा कर्मबंधन किया जाता है तो यह भी भवान्तर में मुझे अकेले ही को भोगने पड़ेंगे अतः निश्चय कर लिया कि वेदना शान्त होते ही दीक्षा अवश्य लूंगा । रात्रि किसी प्रकार व्यतीत की । सुबह होते ही एक ब्राह्मण भिक्षा के लिये आया और गयवरचंद को चौपाई पर पड़ा देख कर पूछा क्यों गयवरचंद क्या तकलीफ है ? आपने जहां दर्द था अपना शरीर बतलाया । विप्र ने कहा कि मेरा कहा हुआ इलाज करो जल्दी चंगे हो जाओगे । पर आपके पास इलाज करने वाला कोई नहीं था इसलिये आपने कहा विप्रदेव । आज आप भिक्षा के लिये ग्राम में नहीं जाय मैं ही आपको सन्तुष्ट कर दूंगा आप ही मेरा इलाज कीजिये बस ब्राह्मण ने एक पट्टी तैयार कर के दर्द पर बांध दी लगभग चार बजे दर्द फूट कर अन्दर से कोई सेर भर बिगड़ा हुआ रक्त निकल गया । दूसरी पट्टी बांधी तो बिलकुल शांत रात्रि में निद्रा भी आ गई । पांच सात दिनों में तो हलने चलने भी लग गये । ब्राह्मणदेव को सर्वथा सन्तुष्ट कर के घर भेज दिया । आपको विश्वास हो गया कि मेरी दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा ने ही मुझे आरोग्य बनाया है बस आप दीक्षा लेने की तैयारी करने लग गये । आप, अपने मकान में जहां भोगविलास की सामग्री से खूब सजा हुआ था उसको हटा कर उसके स्थान योग सामग्री का संग्रह करने में तत्पर हो गये और ग्राम में भी इस बात की थोड़ी बहुत चर्चा भी फैलने लग गई । इतना ही क्यों पर वि० सं० १९५८ चैत्रवदी आठम को घर छोड़ने का मुहूर्त्त भी निश्चय कर लिया और ओघा पात्रा भी मंगवा लिया । जब इस बात की खबर सेलावस में पहुंची तो राजकुंवारी अपने काकाजी के साथ वीसलपुर में आई । वहाँ आकर अपना घर देखा तो साधुओं का स्थान ही दीख पड़ा । मोह के वस बहुत कुछ कहा सुना किया एवं बहुत कुछ समझाया पर आपने एक भी नहीं सुनी उल्टे उपदेश करने लग गये कि आप भी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करो । इधर भुवाजी को भी खबर पड़ी उन्होंने भी बहुत कुछ समझाया पर आप अपने विचार पर अटल ही रहे । राजकुंवारी ने कहा कि आप दीक्षा लेंगे तो मैं घर में किसके पास रहूँगी अतः मैं भी दीक्षा लेने के लिये तैयार हूँ । पर मेरे उदर में गर्भ है इसका क्या इन्तजाम होगा यह सुन कर गयवरचन्द को कुछ विचार तो अवश्य हुआ पर आखिर में सोचा कि

---

के वर्तत १ श्रेणिक राय हू छुरे अनाथी निर्ग्रन्थ । तीणे मैं लीधो लीधो साधुजी नो पन्थ श्रेणिक० टेर । इण कसुबी नगरी में वसेरे मुझ पिता परिगल धन । परिवारे पुरो परिवर्योरे हु छु तेनो पुत्र रत्न । श्रेणिक ॥२॥ एक दिवस मुझे वेदनारे, उपनी मो न खमाय । मात पिता झूरी रहायारे । पण किण भी ते न लेवय । श्रेणिक ॥३॥ गोरडी गुण मणि ओरड़ीरे । मोरडी अबलानार । कोरडी पिडा में सही रे कोणन किधीरे मोरडी सार ॥श्रे० ४॥ बहुराजवैद्य बोलावियारे, किधा कोडी उपाय, बावना चन्दन चरचियारे पण तो ही रे समाधि न थाय ॥श्रे० ५॥ जगमें को कहने नही रे ते भणी हू रे अनाथ, वीतरागना धर्म सरीखो । नहीं कोइ बीजोरे मुक्ति नो साथ ॥श्रे० ६॥ जो मुझे वेदनाउपशमेरे, तो लेउ संजमभार, इस चिन्तवतां वेदनागइरे, व्रत लीधा मैं हर्ष अपार ॥श्रे० ७॥ करजोडी राजागुण स्तवेरे, धन्य धन्य यह अणगार, श्रेणिक समकितपामियोरे, वान्दी पहुतोनीज नगर मझार ॥श्रे० ८॥ मुनि अनाथी गावतांरे, दुटेकर्म नी कोड़ गणि समयसुन्दर तेहनारे, पायवन्दे बेकर जोड़ रे ॥श्रे० ९॥

सब जीव कर्माधीन हैं। यदि मैं मर जाऊँ तो फिर क्या होगा पीछे काम तो सब चलेगा ही अतः आपने अपना निश्चय नहीं बदला।

९—'दीक्षा की भावना की शिथिलता' चैत्र वद ७ की बात है कि स्वा० पूज्य रूपचन्दजी की सम्प्रदाय के साधु रतनचन्दजी सुबह ९ बजे बीसलपुर में आये उनको यह मालूम नहीं था कि चैत्र वद ८ को गवरचन्द दीक्षा लेने का निश्चय कर चुका है इधर उसी दिन सुबह ७ बजे राजकुमारी के गर्भ का पतन हो गया जिसकी करीब १ बजे ग्राम में सर्वत्र बात फैल गई कि ढूंढिया साधु गवरचंद को दीक्षा देने को आये हैं इसके दुःख से राजकुमारी के गर्भ का पतन हो गया है कई बेसमझ औरतों ने तो स्वा० साधुजी के पास जाकर भले बुरे ऐसे शब्द कहे कि साधुजी ने वहां पर भिक्षा भी नहीं की और विहार कर दिया। बस ग्राम में हाहाकार मच गया और दीक्षा तथा साधुओं की सर्वत्र निन्दा होने लगी। इस प्रकार अपवाद को देख कर गवरचंद का दिल बदल गया और यह निश्चय कर लिया कि इस समय दीक्षा लेना अच्छा नहीं है। उसी दिन रात्रि में आपने पिताजी के पास जाकर कह दिया कि अब मेरा विचार दीक्षा लेने का नहीं है पर मैं कल दिसावर चला जाऊंगा। मेरे व्यापार सम्बन्धी लेन देन या माल वगैरह है इसकी व्यवस्था आप ही करावें यदि मैं दीक्षा लेता तो भी आप ही को करनी पड़ती मुताजी ने स्वीकार कर लिया। तथा राजकुमारी को भी मुताजी ने अपने घर पर बुलवाली और गवरचन्दजी चैत्र वद ८ सुबह तड़के ही दिसावर के लिये रवाने हो गये जो आपको चैत्र वद ८ को घर छोड़ना ही था।

गवरचन्दजी छ मास दिसावर में रहे बाद व्यापार सम्बन्धी कहीं जाना था आप पांच सात दिनों के लिये बीसलपुर आये पर उस समय मुताजी बीमार हो गये थे अतः पन्द्रह दिन बीमार रह कर मुताजी का स्वर्गवास हो गया गवरचन्द इतने भाग्यशाली थे कि पिताजी की अन्तिम सेवा कर धर्म का अच्छा सहाय दिया।

माताजी एवं अन्य सम्बन्धी लोगों ने गवरचन्द को कहा कि अब दिसावर जाना बन्द रखो और आपके पिताजी का लेन देन एवं दुकान का काम संभालो ग्येरामल दिसावर में है इत्यादि सब छोटे बच्चे हैं इत्यादि सब के कहने पर आपको स्वीकार करना पड़ा अब तो आप पर सब घर का काम आ पड़ा जो दीक्षा की भावना थी वह कुटम्ब भावना में परिवर्तित हो गई इतना ही क्यों पर वैराग्य की धुन में आपने चार खन्ध अर्थात् १ रात्रि भोजन, २ कच्चा पानी आदि सचित्त ३ वनस्पति और ४ मैथुन के त्याग यावत् जीवन के लिए किये थे वह भी पालन नहीं हो सके किन्तु सब के सब खण्डित हो गये। इस दशा में पांच वर्ष व्यतीत हो गये और आपके दो सन्तान हुई पर अल्पायु में ही शान्त हो गईं तथापि आप गृहस्थावास में ऐसे फंस गए कि दीक्षा का नाम भी भूल गये। हां कभी अब भी भावि पर यह उम्मेद नहीं रही कि मैं कभी दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करूंगा।

१०—'दीक्षा की पुनर्भावना'—आप दम्पति दिसावर जा रहे थे रास्ता में रतलाम शहर में पूज्य श्री लालजी महाराज का चातुर्मास था अन्य लोगों के साथ आप भी दर्शनार्थ रतलाम उतर गये। पूज्य श्री के दर्शन कर व्याख्यान सुना तो पूज्य श्री के व्याख्यान का विषय था कि व्रत कर के भंग करने से अनंत काल संसार में भ्रमण करना पड़ता है। बस इसको सुन कर पुनः दीक्षा की भावना हो गई। कारण आपने ४ बड़े व्रत लेकर खंडित कर दिये थे अब गृहस्थावास में रह कर वे व्रत पालन कर नहीं सके जिससे अनंत संसारी होना पड़े। इत्यादि आप अपनी पत्नी के साथ दो मास रतलाम में ठहर कर ज्ञान ध्यान करने लग गये। यहां आपके छोटे भाई ग्येरामलजी आए और आपको बहुत प्रार्थना की कि कम से कम मेरा विवाह

तो आपके हाथों से होना चाहिये। सं० १९६३ के माघ मास में गणेशमलजी का विवाह करने का निश्चय आप ही ने किया था। आप श्री ने स्वीकार कर लिया। इस पर गणेशमलजी अपनी भौजाई को लेकर वीसलपुर चले आये और गयवरचन्दजी पूज्यश्री के पास रहे।

११—"वर्तमान काल के साधुओं की मनोवृत्ति" जैनसाधु "तीन्नाणंतारियाणं" कहलाते हैं पर शिष्यपिपासु लोग इस सूत्र को भूल जाते हैं। साधुओं ने सोचा कि यदि गयवरचन्दजी अपने भाई के विवाह करने के लिये चले जायेंगे तो उस राग रंग में यह वैराग्य रहेगा या नहीं अत' एक सुयोग्य आया हुआ शिष्य हाथ से चला जायगा अतः उन्होंने ऐसा जाल रचा कि मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी के दिन मेवाड़ प्रान्त के निंबहेड़ा ग्राम में लेजा कर गयवरचन्दजी के गृहस्थ कपड़े उतार कर ओघा मुहपती पात्रा झोली वगैरह देकर नकली साधु बना कर भिक्षाचारी करवानी शुरू करदी। जब इस बात का पता गणेशमलजी आदि आपके कुटुम्ब वालों को मिला तो उन्होंने सोचा कि जब आपने अपनी जबान का भी खयाल नहीं किया तो भविष्य में आप क्या करेंगे उन्होंने गुस्सा में आकर आज्ञा देने का साफ इन्कार कर दिया।

१२—'स्वयमेव दीक्षा' साधुओं के पास मायावी उपाय एक ही नहीं पर अनेक हुआ करते हैं साधुओं ने कहा कि गयवरचन्दजी अब आपकी सहज ही में आज्ञा होना तो मुश्किल है तुम स्वयं दीक्षा लेलो बस नीमच के पास एक जासुणिया नाम का छोटासा ग्राम है वहां मोतीलालजी महाराज चारठाणे से बिराजते थे वहां भेज कर गयवरचन्दजी को स्वयं दीक्षा लेने का आग्रह किया आप श्री ने स्वयं दीक्षा लेली कारण दशवैकालिक उत्तराध्ययनादि कई सूत्र तो आपने पहिले से ही कण्ठस्थ कर लिये थे बस सं० १९६३ चैत्र वद ६ को गयवरचन्दजी स्वयं दीक्षा लेकर वहां से विहार कर आप कोटा पूज्य श्री लालजी म० के पास पहुँच गये और चैत्र वद १३ को बड़ी दीक्षा भी स्वयं ही लेली। यहां तक तो सब राजी खुशी थे स्वयं दीक्षा तीर्थङ्कर व प्रतिबुद्ध ही ले सकते हैं पर अमोघात्मा क्या नहीं कर सकते हैं खैर पश्चात् कई एक दिनों में ही रंग बदल गया जिसके लिये आपको करीब १४ मास तक जो कष्ट और दुःख का अनुभव करना पड़ा है वह आपकी आत्मा या परमात्मा ही जानते हैं। यदि कोई कच्चा वैराग्य वाला होता तो वस्त्र फेंक कर भाग ही जाता पर आप तो ज्यों ज्यों सुवर्ण को ताप देने से उसका मूल्य बढ़ता है इस प्रकार परीक्षा की कसौटी पर पास ही करते गये पर आपको साधुओं की मायावृत्ति और प्रपच का ठीक अनुभव हो गया। फिर भी आपने तो उन मुनियों एवं पूज्य श्री का उपकार ही माना कि कितना ही कष्ट सहन करना पड़ा हो पर दीक्षा मिल गई इस बात का उपकार ही समझा अस्तु आपके भ्रमण का संक्षिप्त से हाल लिख दिया जाता है।

1—सं० १९६४ का चातुर्मास आपने सोजत में मुनिश्रीफूलचन्द महाराज के साथ किया वहां पर वखतावरमलजी सीयाटिया के कारण ज्ञान ध्यान थोकड़ा कण्ठस्थ करने का बड़ा भारी लाभ मिला तथा रिघमदासजी रातड़िया और वखतावरमलजी सुराणा ने आज्ञा की कोशिश की जब राजकुंवरबाई सोजत दर्शनार्थ आई तो उक्त दोनों सरदारों ने अपने हाथों से एक आज्ञा पत्र लिख कर उस पर अपठित राजकुं-वरबाई का अंगुष्ठा चेपा दिया पर पूज्यजी ने उसको स्वीकार नहीं किया अतः पुन' माता की आज्ञा के लिये कोशिश करनी पड़ी जब वह काम हुआ तो गुरु करने के लिये साधुओं ने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया। जिसका मैं यहा पर लिखना उचित नहीं समझता हूँ कारण ऐसा लिखने से लोगों की साधुओं से श्रद्धा ही हट जाती है। फिर भी यह प्रथा इतनी कलेश करने वाली है कि साधु पदको शोभा नहीं दे

2—सं० १९६५ का चातुर्मास बीकानेर में पूज्य महाराज श्री की सेवा में हुआ। पूज्य महाराज के शरीर में बीमारी होने पर चिरकाल के दीक्षित ज्यादा साधुओं के होने पर भी कोई व्याख्यान वाचने

जाता नहीं था। नवदीक्षित होने पर भी बीकानेर की विराजत परिषद् में आपने करीब १५ दिन व्याख्यान देकर सुयश पैदा किया। वहाँ से विहार कर पूज्य श्री के साथ में नागोर आये वहाँ सेठजी अमरचन्दजी आये सिद्धाचल का महात्म्य और मूर्ति के विषय सभ्यतापूर्वक बातें हुई बाद वहाँ से कुचेरे पधारे। मुनि श्री में वैयावच्च का भी अच्छा गुण था अतः पूज्यजी ने आपको 'ज्ञानवती' का पद बक्षीस किया। उस समय आप एकान्तर तपस्या भी करते थे। नेत्रों के बीमारी में भी आपको फूलचन्दजी की सेवा में जोधपुर भेज दिया आपने स्वामी जी की सेवा के साथ १ सूत्रों की वाचना भी ली।

३—सं० १९६६ का चातुर्मास आपने जोधपुर में फूलचन्दजी महाराज की सेवा में किया वहाँ आपने एक साधु के बदले में ओसरा पानी पीकर मासखमण की तपस्या की थी बाद चातुर्मास के विहार कर सब पाली गये। वहाँ से पूज्यजी का हुक्म आने पर मेवाड़ में जाने को साधु भगवानजी के साथ विहार किया पर सोजत में आपके नेत्रों में बीमारी हो गई इस पर भी भगवानजी ने मुनिजी को बीमार अवस्था में छोड़ कर पुनः पाली चले गये यह तो मुनियों की दशा है। और आपने तीन उपवास बिना पानी के किया जिससे आँखों की बीमारी स्वयं चली गई। वहाँ से आप ब्यावर पधारे वहाँ पर स्वामी केवलचन्दजी जो पूज्य धर्मदासजी के समुदाय में थे उनसे मिले और उनके आग्रह से वहाँ ठहर कर उनके साधु साध्वियों को आगमों की वाचनाएं तथा कई थोकड़े भी सिखलाए।

४—वि० सं० १९६७ का चातुर्मास ब्यावर में आपने अकेले ही कर दिया वहाँ देशी साधु केसरी-मलजी तथा [illegible]चन्दजी का भी चातुर्मास था। वहीं के संघ ने यह प्रस्ताव किया कि सुबह का व्याख्यान केसरीमलजी बांचे और दोपहर का व्याख्यान [illegible]चन्दजी बांचे पर केसरीमलजी ने कुछ दिनों के बाद उस प्रस्ताव का भंग कर दोनों बार ( सुबह शाम ) व्याख्यान बांचना शुरू कर दिया तब आपने नवयुवकों के आग्रह से तीन बार व्याख्यान शुरू कर दिया। यहाँ आपके नेत्रों में तकलीफ हो गई तब आप श्री ने अध्ययन बन्द कर दिया और भी तपस्या चलती ही रहती थी। वहाँ दिगम्बर भट्टारक और तेरापन्थियों का भी चातुर्मास था। इसलिये परस्पर कुछ चर्चा भी चली जिसमें आपने विजय प्राप्त किया। उस समय पूज्यजी का चातुर्मास ब्यावर में ही था वहीं के वर्तमान आप सुनते ही थे। चातुर्मास उतरते ही आपको पूज्य महाराज ने अपने पास बुलवा लिया और बीकानेर चातुर्मास करने की अनुमति प्रदान की।

५—सं० १९६८ का चातुर्मास मुनि शोभालालजी के साथ बीकानेर में हुआ वहाँ पर श्री भगवती सूत्र आदि ७ सूत्र की वाचनाएं १२१ थोकड़ा कंठस्थ किया दो मास तक व्याख्यान भी बांचा अनेक श्रावकों को भी बहुत थोकड़ा कंठस्थ करवाये। बाद चातुर्मास के ब्यावर आये वहाँ आने पर एक श्रावक ने प्रश्न किया कि आप सूत्रों का अर्थ किस आधार पर करते हैं? मुनिजी ने उत्तर दिया कि हम सूत्रों का अर्थ गुर्जर भाषा के टब्बा से करते हैं।

श्रावक—टब्बा किस आधार से बना है?

मुनि—टीका के आधार पर बना होगा।

श्रावक—आप टीका मानते हो?

मुनि—नहीं हम ऐसे भोले थोड़े ही हैं कि टीका मानें।

श्रावक—इस बात को आप जरा दीर्घ दृष्टि से विचारना। इतना कह कर वह श्रावक तो चला गया मुनिजी ने अपने दिल से विचार किया कि जैसे समुद्र से एक घड़ा पानी का भर के लाया। तो क्या उसे नहीं कह सकता कि घड़ा का पानी मीठा और समुद्र का पानी खारा। जब टीका के आधार पर ही टब्बा बना है

तब टब्बा सत्य और टीका असत्य कहना तो बिलकुल ही विपरीत है। अतः इस विषय में आप श्री ने बहुत कुछ निर्णय किया तो यह पता मिला कि टीका में स्थान २ मूर्तिपूजा का विस्तृत वर्णन है और अपनी मान्यता पूजा मानने की नहीं है इसलिये टीका नहीं मानी जाती है। फिरभी पार्श्वचन्द्रसूरि ने जो टीका के आधार से टबा बनाया है उसमें तो टीका के अनुसार ही मूर्ति का उल्लेख किया है पर बाद में उस पार्श्वचन्द्रसूरि के टब्बा पर से धर्मशीजी ने टबा बनाया है उसमें मूर्तिके स्थान कहीं साधु कहीं ज्ञान कहीं छद्मस्थ तीर्थङ्कर अर्थ कर दिया है। अतः भद्रिकों के शुरु से ऐसे संस्कार जमा देते हैं कि टीका हम नहीं मानते हैं। जब मुनिजी ने सोचा कि एक अक्षर मात्र न्यूनाधिक करने में अनंत संसार की वृद्धि होना कहा जाता है फिर इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपना करनी यह तो बड़ा से बड़ा अन्याय है बस उस समय से आपके हृदय में मूर्ति पूजा ने स्थान बना लिया पर आपने सोचा कि अभी जल्दबाजी करने की जरूरत नहीं है पर इस विषयका अच्छी तरह से जान पता करना चाहिये कि क्या बात है कि-जैन शास्त्रों में उल्लेख होने पर भी मूर्ति नहीं मानी जाय दूसरा मन्दिर आज कल के नहीं पर बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं इत्यादि विचार करते ही रहे।

6—सं० १९६९ का—चातुर्मास अजमेर में स्वामी लालचन्दजी के साथ हुआ वहीं आपने श्रीभगवती सूत्र बांचा था व्याख्यान में सेठजी चान्दमलजी लोढ़ाजी उमेदमलजी संघवीजी मोखमसिंहजी वगैरह सब आया करते थे। स्थानक में देशीसाधु लक्ष्मीचंदजी का भी चातुर्मास था धर्मवाद में पंचरंगी नौरंगी और पन्द्रहरंगी भी करवाई जाती। जिसमें कई मजूरलोग भी आये करते थे और बिना समझ से लाभ लिया करते थे। उसमें यह नियम रखा गया था कि जो एक सामायिक करे उसको एक पैसा मिले ऐसे ही एक दया का चारआना एक पौषध का एक रुपया। कइ दिगम्बर और आर्यसमाजी भी आया करते थे। कई बार आपके पास चर्चा भी होती आपश्री के अपूर्व प्रज्ञा के सामने सबों को सिर झुकाना ही पड़ता था। एक समय एक मन्दिर मार्गी आये उस समय सेठ चान्दमलजी भी बैठे थे। द्रौपदी की पूजा का प्रसङ्ग पर आपने कहा कि उसने विवाह के समय मूर्ति पूजा की अतः वह मूर्ति तीर्थङ्करों की नहीं और पूजा भी वर एवं भोग के लिये की थी पर सेठ चान्दमलजी ने कहा महाराज क्या आपने कहा वह सूत्रों में लिखा है ? नहीं। इस विषय की चर्चा में टीकाका भी खुलाशा हो गया कि केवल मूर्तिपूजा न मानने के कारण ही टीका मानी नहीं जाती इत्यादि इस चर्चा से मूर्त्तिपूजा की श्रद्धा और भी सुदृढ़ होती गई। बाद चतुर्मास के ब्यावर होकर पाली पधारे वहीं पूज्यजी महाराज दो वर्ष फिर कर गुजरात से आये थे अतः ३७ साधू शामिल हुए। पाली में स्वामी कर्मचन्दजी शोभालालजी कनकमलजी और गयवरचन्द जी इन चारों की श्रद्धा मूर्ति मानने की थी जो चारों ही समुदाय के स्तम्भ थे। श्रावकों के कहने से मूर्ति के विषय में पूज्यजी ने व्याख्यान में बहुत कुछ समझाया पर भवभीरूपना यह था कि पूज्यजी ने मूर्ति का थोड़ा भी खण्डन नहीं किया। बाद वहां से जोधपूर गये रास्ता में रोयट ग्राम में पूज्यजी और गयवरचंदजी के मुहपत्ती में डोरा के विषय में चर्चा हुई तो पूज्यजी ने कहाकि डोरा तो सूत्रों में नहीं लिखा पर बिना उपयोग खुले मुंह बोला न जाय इसलिये ही डोरा डाला है। मूर्ति के विषय में भी कहाकि मूर्ति पूजकों ने धमाधम बहुत बढ़ा दी तब अपने वालों ने बिलकुल उठादी इत्यादि।

7—सं० १९७० का चातुर्मास गंगापुर, (मेवाड़) में स्वामी मगनमलजी के साथ हुआ वहीं पर आपश्री ने व्याख्यान में श्रीभगवतीजी सूत्र बांचने के साथ २ एक पण्डित रख व्याकरण पढ़ना भी शुरू किया पर पूज्यजी को खबर होने से मनाई करदी। वहां पर एक यति के पास प्राचीन ज्ञानभण्डार था।

जाता नहीं था। अस्वस्थित होने पर भी बीकानेर की विशाल परिषद् में आपने करीब १५ दिन व्याख्यान देकर सुयश पैदा किया। वहां से विहार कर पूज्य श्री के साथ में आमेर आये वहां सेठजी भंवर चन्दजी आये जिन्होंने सिद्धाचल का महात्म्य और मूर्ति के विषय मध्यस्थतापूर्वक चर्चायें हुई बाद वहां से कुचेरे पधारे। मुनि श्री में वैयावच्च का भी अच्छा गुण था अतः पूज्यजी ने आपको 'वैयावच्ची' का पद बख्शीश किया। उस समय आप एकान्तर तपस्या भी करते थे। नेत्रों के बीमारी में भी आपको फूलचन्दजी की सेवा में जोधपुर भेज दिया आपने स्वामी जी की सेवा के साथ ९ सूत्रों की वाचना भी ली।

३—सं० १९६६ का चातुर्मास आपने जोधपुर में फूलचन्दजी महाराज की सेवा में किया वहां आपने एक साधु के बदले में धोवण पानी पीकर मासक्षमण की तपस्या की थी बाद चातुर्मास के विहार कर सब पाली गये। वहां से पूज्यजी का हुक्म आने पर मेवाड़ में आने को साधु मगनमलजी के साथ विहार किया पर सोजत में आपके नेत्रों में बीमारी हो गई इस पर भी मगनलालजी ने मुनिजी को बीमार अवस्था में छोड़ कर पुनः पाली चले गये यह तो मुनियों की दया है। और आपने तीन उपवास बिना पानी के किया जिससे आंखों की बीमारी स्वयं चली गई। वहां से आप कापरडे पधारे वहां पर स्वामी केशरचन्दजी जो पूज्य धर्मदासजी के समुदाय में थे उनसे मिले और उनके आग्रह से वहां ठहर कर उनके साधु साध्वियों को आगमों की जानकारी तथा कई एकों को थोकड़े भी सिखलाए।

४—वि० सं० १९६७ का चातुर्मास उमड़ में आपने अकेले ही कर दिया वहां टेरी साधु केशरीमलजी तथा चन्दनचन्दजी का भी चातुर्मास था। वहीं के संघ ने यह ठहराव किया कि सुबह का व्याख्यान केशरीमलजी और दोपहर का व्याख्यान गयवरचन्दजी बांचे पर केशरीमलजी ने कुछ दिनों के बाद उस ठहराव का भंग कर दोनों वार (सुबहशाम) व्याख्यान बांचना शुरू कर दिया तब आपने भक्तजनों के अत्याग्रह से तीन बार व्याख्यान शुरू कर दिया। वहां आपके नेत्रों में तकलीफ हो गई बस आप श्री ने अध्ययन कर दिया और भी तपस्या चलती ही रहती थी। वहां दिगम्बर भट्टारक और तेरहपन्थियों का भी चातुर्मास था। इसलिये परस्पर कुछ चर्चा भी चली जिसमें आपने विजय प्राप्त किया। उस समय पूज्यजी का चातुर्मास ब्यावर में ही था वहीं के वर्तमान आप सुनते ही थे। चातुर्मास उतरते ही आपको पूज्य महाराज ने अपने पास बुलवा लिया और बीकानेर चातुर्मास करने की अनुमति प्रदान की।

५—सं० १९६८ का चातुर्मास मुनि शोभालालजी के साथ बीकानेर में हुआ वहां पर श्री भगवती सूत्र आदि ७ सूत्र की वाचना ली १२५ थोकड़ा कंठस्थ किया दो मास तक व्याख्यान भी बांचा अनेक श्रावकों को भी बहुत थोकड़ा कंठस्थ करवाये। बाद चातुर्मास के ब्यावर आते वहां आने पर एक श्रावक ने प्रश्न किया कि आप सूत्रों का अर्थ किस आधार पर करते हैं? मुनिजी ने उत्तर दिया कि हम सूत्रों का अर्थ गुर्जर भाषा के टब्बा से करते हैं।

श्रावक—टब्बा किस आधार से बना है?

मुनि—टीका के आधार पर बना होगा।

श्रावक—आप टीका मानते हो?

मुनि—नहीं हम स्वेच्छी थोड़े ही हैं कि टीका मानें।

श्रावक—इस बात को आप जरा दीर्घ दृष्टि से विचारना। इतना कह कर वह श्रावक तो चला गया मुनिजी ने अपने दिल में विचार किया कि जैसे समुद्र से एक घड़ा पानी का भर के लाना। तो वह क्या हो सकता कि घड़ा का पानी मीठा और समुद्र का पानी खारा। जब टीका के आधार पर ही टब्बा बना है

तव टब्बा सत्य और टीका असत्य कहना तो बिलकुल ही विपरीत है। अतः इस विषय में आप श्री ने बहुत कुछ निर्णय किया तो यह पता मिला कि टीका में स्थान २ मूर्तिपूजा का विस्तृत वर्णन है और अपनी मान्यता पूजा मानने की नहीं है इसलिये टीका नहीं मानी जाती है। फिरभी पार्श्वचन्द्रसूरि ने जो टीका के आधार से टबा बनाया है उसमें तो टीका के अनुसार ही मूर्ति का उल्लेख किया है पर बाद में उस पार्श्वचन्द्रसूरि के टब्बा पर से धर्मशीजी ने टबा बनाया है उसमें मूर्तिके स्थान कहीं साधु कहीं ज्ञान कहीं छदमस्थ तीर्थङ्कर अर्थ कर दिया है। अतः भद्रिकों के शुरु से ऐसे संस्कार जमा देते हैं कि टीका हम नहीं मानते हैं। जब मुनिजी ने सोचा कि एक अक्षर मात्र न्यूनाधिक करने में अनंत ससार की वृद्धि होना कहा जाता है फिर इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपना करनी यह तो बडा से बडा अन्याय है बस उस समय से आपके हृदय में मूर्ति पूजा ने स्थान बना लिया पर आपने सोचा कि अभी जल्दबाजी करने की जरूरत नहीं है पर इस विषयका अच्छी तरह से जान पना करना चाहिये कि क्या बात है कि-जैन शास्त्रों में उल्लेख होने पर भी मूर्ति नहीं मानी जाय दूसरा मन्दिर आज कल के नहीं पर बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं इत्यादि विचार करते ही रहे।

6—स० १९६९ का—चातुर्मास अजमेर में स्वामी लालचन्दजी के साथ हुआ वहीं आपने श्रीभगवती सूत्र बांचा था व्याख्यान में सेठजी चान्दमलजी लोढ़ाजी उमेदमलजी संघवीजी मोखमसिंहजी वगैरह सब आया करते थे। स्थानक में देशीसाधु लक्ष्मीचंदजी का भी चातुर्मास था धर्मवाद में पंचरंगी-नौरंगी और पन्द्रहरंगी भी करवाई जाती। जिसमें कई मजूरलोग भी आये करते थे और बिना समझ से लाभ लिया करते थे। उसमें यह नियम रखा गया था कि जो एक सामायिक करे उसको एक पैसा मिले ऐसे ही एक दया का चारआना एक पौषध का एक रुपया। कइ दिगम्बर और आर्यसमाजी भी आया करते थे। कई बार आपके पास चर्चा भी होती आपश्री के अपूर्व प्रज्ञा के सामने सबों को सिर झुकाना ही पड़ता था। एक समय एक मन्दिर मार्गी आये उस समय सेठ चान्दमलजी भी बैठे थे। द्रोपदी की पूजा का प्रसङ्ग पर आपने कहा कि उसने विवाह के समय मूर्ति पूजा की अतः वह मूर्ति तीर्थङ्करों की नहीं और पूजा भी वर एवं भोग के लिये की थी पर सेठ चान्दमलजी ने कहा महाराज क्या आपने कहा वह सूत्रों में लिखा है? नहीं। इस विषय की चर्चा में टीकाका भी खुलाशा हो गया कि केवल मूर्तिपूजा न मानने के कारण ही टीका मानी नहीं जाती इत्यादि इस चर्चा से मूर्त्तिपूजा की श्रद्धा और भी सुदृढ़ होती गई। बाद चतुर्मास के ब्यावर होकर पाली पधारे वहीं पूज्यजी महाराज दो वर्ष फिर कर गुजरात से आये थे अतः ३७ साधू शामिल हुए। पाली में स्वामी कर्मचन्दजी शोभालालजी कनकमलजी और गयवरचन्द जी इन चारों की श्रद्धा मूर्ति मानने की थी जो चारों ही समुदाय के स्तम्भ थे। श्रावकों के कहने से मूर्ति के विषय में पूज्यजी ने व्याख्यान में बहुत कुछ समझाया पर भवभीरूपना यह था कि पूज्यजी ने मूर्ति का थोड़ा भी खण्डन नहीं किया। बाद वहां से जोधपूर गये रास्ता में रोयट ग्राम में पूज्यजी और गयवरचदजी के मुहपत्ती में डोरा के विषय में चर्चा हुई तो पूज्यजी ने कहाकि डोरा तो सूत्रों में नहीं लिखा पर बिना उपयोग खुले मुंह बोला न जाय इसलिये ही डोरा डाला है। मूर्ति के विषय में भी कहाकि मूर्ति पूजकों ने धमाधम बहुत बढ़ा दी तब अपने वालों ने बिलकुल उठादी इत्यादि।

7—सं० १९७० का चातुर्मास गंगापुर, (मेवाड़) में स्वामी मगनमलजी के साथ हुआ वहीं पर आपश्री ने व्याख्यान में श्रीभगवतीजी सूत्र बांचने के साथ २ एक पण्डित रख व्याकरण पढ़ना भी शुरू किया पर पूज्यजी को खबर होने से मनाई करदी। वहां पर एक यति के पास प्राचीन

इसके अन्दर कई प्राचीन शास्त्र थे उनको देखा तो आचारांग सूत्र की निर्युक्ति में तीर्थ यात्रा करने से दर्शन शुद्धि तथा और भी उपासकदशांग व उववाई में आनन्द अम्मड के अधिकार में मूर्तिपूजा के पाठ मिल गये। वहाँ पर तेरहपन्थियों से चर्चा हुई जिसमें आपकी विजय प्राप्त हुई। बाद चातुर्मास के उदयपुर पधारे। रास्ता में बहुत से मांसाहारियों को उपदेश देकर मांस को छुड़वाया जब उदयपुर गये तो वहाँ के श्रीसंघ के आग्रह से व्याख्यान में श्री जीवाभिगमसूत्र बाँचना प्रारम्भ किया। आपकी आँखों का इलाज के कारण करीब १॥ महीना तक उदयपुर में रहे वहाँ गुरुवर्य मोड़ीरामजी महाराज भी पधारे थे। पर थोड़े दिन रहकर विहार कर दिया। उदयपुर में आपके व्याख्यान कि इतनी ख्याति हुई कि यहाँ के संघ की इच्छा हुई कि आपको युवराजपद दिलाना आदि इत्यादि आपके व्याख्यान में बड़े २ राजकर्मचारी आया करते थे। जब विजयदेव के उत्पन्न होने के अधिकार में मूर्तिपूजा का फल के विषय में हित सुख कल्याण मोक्ष और अनुगामी पाठ आये तो जैसे सूत्र में लिखा था आपने वैसे ही परिषद् में सुनादिया बस फिरतो था ही क्या एकदम हा हो हुआ और कहने लगे कि महाराजजी भ्रष्टाचारी होगए है पर जब सूत्र के पन्ने नगरसेठ नन्दलालजी व दीवान कोठारीजी साहब के हाथ में दिये तथा आपने एक लिखा पढ़ा विद्वान को बुलाकर व्याख्यान में उस सूत्र के पन्ने को दूसरा बचवाया तो वही शब्द जो आपजी ने फरमाये थे निकले इस से लोगों को शंका होने लगी। अतः १० आदमी मुनिजी से खिलाफ हो भीलाड़े पूज्यजी के पास गये और आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया पूज्यजी सब जानते थे इसका हो क्यों पर वह सूत्र ही मुनिजी को पूज्यजी ने दिया था तथापि चतुर बुद्धि वाले पूज्यजी ने कहा कि जब तक मैं गम्भीरचंद से न मिलूं वहाँ तक इस विषय में कुछ नहीं कह सकता हूँ इत्यादि। पूज्यजी ने आपको कहला दिया कि गम्भीरचंदजी रतलाम चले जाय। उस गम्भीरचंदजी विहार कर गये रास्ता में कोठी पादरी आई वहाँ के श्रावकों ने चातुर्मास की आग्रह प्रार्थना की इस पर मुनिजी वहाँ चन्दनमलजी नागोरी से मिले और पूछा कि यदि मेरा यहाँ ठहरना होजाय तो आप मुझे शास्त्र पढ़ने के लिये देंगे कारण मुझे शास्त्रों द्वारा मूर्ति पूजा का निर्णय करना है। नागोरीजी ने विश्वास दिला दिया।

शेष चातुर्मास के लिये पूज्यजी पर छोड़ कर आप वहाँ से विहार कर रतलाम चले गये वहाँ पहले से शोभालालजी ने सेठजी अमरचंदजी के साथ मूर्ति के विषय में अच्छी चर्चा चलती थी। शोभालालजी वहाँ का सब हाल आपको कहकर विहार कर गये बाद में आपकी भी सेठजी से हमेशा मूर्ति के विषय में बड़ी प्रतिवादी के रूप में चर्चा चलती रही एक दिन आप सेठजी के यहाँ गोचरी के लिये गये तो एक ताक में श्री केशरियानाथजी का बड़ा फोटू काच में जड़ाया और जिसके ऊपर केशर के छांटे पड़े देखे। देख-कर सेठजी को बुलाया और पूछा कि यह क्या है। तब सेठजी ने कहा कि हमतो गृहस्थ हैं मैंने तो तीनबार केशरियाजी दो बार शत्रुञ्जय गिरनार की यात्रा की है इत्यादि। मुनिजी ने कहा सेठजी जब आपकी श्रद्धा तो तीर्थों की यात्रा या मूर्ति की पूजा करने से भी दीक्षित नहीं होती है तब हमको मूर्ति का नाम लेने का भी अधिकार नहीं पर अब इस प्रकार लिखे पढ़े साधुओं को आप कहाँ तक दबाकर २ कर रख सकोगे इत्यादि। बाद जावरा में पूज्यमहाराज से मिलाप हुआ उदयपुर के विषय में पूज्यमहाराज ने उपालम्भ जरूर दिया पर आपने मूर्तिका खण्डन या विरोध नहीं किया केवल यही कहा कि जैसा वस्तु आवे वैसा बोल देना इत्यादि। बाद हमारी जावरा में श्री शोभालालजी से मिले और उनके साथ विचारकर यह निर्णय करलिया कि मान जाय तो परवाह नहीं पर उत्सूत्र भाषण नहीं करेंगे।

8—सं० १९७१ का चातुर्मास कोठी पादरी में हुआ वहाँ पर व्याख्यान में रायपसेनीसूत्र बांचा।

एक फूलचन्द नामका नवयुवक था उसने मूर्ति के विषय ७ प्रश्न लिखं कर रतलाम पूज्यजी के पास भेजे उत्तर में सेठजी अमरचन्दजी ने अपने हाथ से ऐसा उत्तर लिखा कि जिसमें मूर्तिपूजा के विषय में ठीक मध्यस्थ पना से स्वीकार किया अस्तु ।

सादड़ी में पुस्तक पढ़ने की बहुत सुविधा थी श्रीमान् चन्दनमलजी नागोरी हरएक पुस्तक पढ़ने को दे देते थे इस पर यहां के श्रावक ने विरोध किया तथा पूज्यजी के पास जाकर मनाई का हुकुम लिखवाय लाये जिसको मुनिजी ने शिर पर चढ़ा लिया फिर भी आप पुस्तकें तो पढ़ते ही रहे। बादमें आपके शरीर में बादी की तकलीफ होने से ३॥ मास पथारी से उठा तक भी नहीं यद्यपि अशुभ कर्म के उदय होने से ही ऐसा हुआ था पर आपने तो उसको भी पुण्योदय ही समझा कारण इस बिमारी के समय में आपने एक लक्ष श्लोक पढ़लिया आपकी बीमारी के कारण गुरुवर्य श्री मोड़ीरामजी महाराज जावद से चातुर्मास में भी पधारे कुछ दिन ठहर कर वापिस पधार गये खैर इस चातुर्मास के समय बहुत वाद विवाद छिड़ गया था और आपकी इच्छा थी कि अब बेधड़क हो सत्योपदेश करें अतः चतुरमास के बाद आप चलकर स्वामि कर्मचदजी के पास गंगापुर आये जब पूज्यजी को मालुम हुआ तो मोड़ीरामजी तथा शोभालालजी को जल्दी से गंगापुर भेजे कि—गयवरचंद को समझाकर मेरे पास ले आओ। गंगापुर में मिले हुए सब साधुओं की श्रद्धामूर्ति पूजा की थी परलोकापवाद के कारण वेष छोड़ने की हिम्मत नहीं हुई सबका यह निश्चय हुआ कि साधुओं को अपने पक्ष में करो फिर साथ ही निकलेंगे। खैर मोड़ीरामजी महाराज के साथ गयवरचद ब्यावर होते हुए जोधपुर पहुँचे। आप व्याख्यान बांच रहे थे एक श्रावक ने प्रश्न किया कि श्रावक मूर्ति को नमस्कार करे जिससे क्या फल मिलता है उत्तर में मुनिश्री,ने कहा कि मूर्ति को ईश्वर का स्थापना निक्षेप समझकर नमस्कार करने से दर्शन शुद्धि होती हैं और पत्थर समझ कर नमस्कार करने से मिथ्यात्व लगता है बस वहाँ भी हा हो मच गया। पूज्यजी को तार देकर समाचार मगवाया तो उत्तर मिला कि मैं साधुओं को भेज रहा हूँ गयवरचंद को वहीं ठहराओ। बस वहां ठहरने पर चार साधु पूज्यजी के भेजे हुए वहां आये। वे एक लिखित लिखाकर भी लाये जिसमें लिखा हुआ था कि १ मूर्ति की प्ररूपना नहीं करनी। २ टीका के शास्त्र नहीं पढ़ाना। ३ मूर्तिपूजक श्रावक से वार्तालाप नहीं करना। ४ धोवण पीना पर जीवोत्पत्त की शंका नहीं रखना। ५ बासी रोटी खाने में इन्कार नहीं करना। ६ विद्वल नहीं टालना। ७ पेशाब परठ कर हाथ नहीं धोना। इत्यादि १२ कलमें लिखित में थी कि गयवरचदजी सिद्धों की साक्षी से हस्ताक्षर करके पालन करे तो शामिल रखना वरना अलग कर देना। मुनिश्री ने कहा कि दीक्षा आत्मकल्याणार्थ ली है और आत्मा परमात्मा की साक्षी से पाली जाती है हस्ताक्षर करना कराना चोरो का काम है इत्यादि स १९७२ चैत्र शुक्ल १३ जोधपुर से आप अलग होगये। और वहां से चलकर महामन्दिर आये-वहा जोधपुर के दो मूर्तिपूजक श्रावक आकर आपको अपना लिये। तत्पश्चात् आपने सुना कि एक सवेगी साधु ओसियों में है अत' आपश्री ओसिया पधारे और श्री महावीर की यात्रा कर परमयोगिराज श्रीरत्नविजयजी महाराज से मिले दो मास वहीं पर ठहरकर प्रत्येक गच्छों की समाचारियों वगैरह देखी तथा ओसिया में आय, व्यय, का कोई हिसाब नहीं था अतः एक शान्ति स्नात्र भणाकर मगलशी रत्नशी नाम की पेढ़ी की स्थापना करवाई। वहां पर एक बोर्डिङ्ग स्थापना करने की योजना भी तैयार की।

9—सं० १९७२ का चातुर्मास तिवरी ग्राम में किया वहां तक आपके मुख पर मुहपती डोरा सहित बन्धी हुई थी आपका विचार दीर्घकाल मुहपर मुहपती बन्धी रख कुछ ठोस कार्य करने का था परन्तु जब आप ओसिया पधारे थे तब प्रत्येक दिन एक एक नया स्तवन बनाकर वीर प्रभु के दर्शन स्तुति करते

वाले आगये श्रीराणकपुर की यात्राकर कुछ भाई बहनों साध्वीयों के साथ केसरियाजी की यात्रार्थ उदयपुर होते हुए श्री केसरीयाजी की यात्रा की चार पांच दिन ठहरे। पर वहाँ भी प्लेग का उपद्रव था आदमी भी नही मिलता था। भण्डारीजी के साथ ईडर के लिये विहार किया मार्ग में एक दिन तों मरणान्त कष्ट हुआ पर क्रमशः अहम्दावाद पहुँचगये वहाँ भी अच्छा स्वागत संमेलन हुआ।

१ मास ठहरकर पन्यास श्री हर्ष मुनिजी म० के साथ खेड़ामातर वड़ोदरा होकर झगड़िया पहुँच गये। उधर से योगिराज श्री भी विहार कर झगड़िये पधार गये—सबका समागम झगड़िया में हुआ। वही सुरत के सेठलोग यात्रार्थ आये थे उन लोगो का आग्रह पूर्वक विनती होने से पन्यासजी गुरुवर्य आदि सब साधुमण्डल सूरत के लिये विहार कर गये। सूरत के श्रीसघ ने ऐसा सम्मेलन किया कि वह अपूर्व ही था साथमें दुःख इस बात का हुआ कि उसीदिन पन्यासजी का अकस्मात स्वर्गवास हो गया इसके लिये कइ अफवाएं भी उठती रही।

**12**—स० १९७५ का चातुर्मास सुरत गुरुवर्य के सेवा में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में आपश्री ने श्री भगवती सूत्र बाँचा वही कई ईर्षालु साधुओंने यह सवाल उठाया कि ढुंढिया साधु को वड़ी दीक्षा किसने दी आपको योगोद्वहन किसने करवाया इत्यादि परन्तु गुरुवर्य ने ऐसा समाधान कियाकि इसको मैंने वड़ी दीक्षा दी तथा मैंने ही योगोद्वहन करवाया में वड़ा का योगो को नही मानता हूँ इत्यादि। चातुर्मास के वाद आपने श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। गुजरात के साधुओं का आचार व्यवहार देख परमात्मा सीमंधर के नाम पर कागद हुन्डी पैठ पर पैठ और मेजरनामा लिखना शुरु किया वह शत्रुञ्जय में जाकर पूरा किया। गुजरात के विहार में प्रायः सब साधुओं से मिलाप हुआ यात्राकर चलता हुआ फिर सूरत आये वहाँ पर आचार्य विजय धर्मसूरिजी म० तथा आचार्य्य सागरानन्दसूरी जी पधारे उनके दर्शन मिलाप हुआ। श्री सागरानन्द्रसूरि जी से एक अभव्य के विषय में प्रश्न पूछा पर यथार्थ उत्तर नहीं मिला।

**13**—सं० १९७६ का चौमासा झगड़िया तीर्थ में हुआ वह निवृत्ति का स्थान था इसलिये संस्कृत का अभ्यास करने का मौका मिला। पर आसपास के बहुत से लोग पर्युषणपर्व आराधने के लिये आये। गुरुवर्य का चातुर्मास ३ साधुओं के साथ सीनोर में हुआ। झगड़िया में सुरत के तथा बम्बई के श्रावक विनंती करने के लिये आये पर ओसियाँ से पत्र आया कि वोर्डिंग में केवल ४ लड़के रहगये हैं ज्ञानसुन्द्रजी म० को जल्द भेजें, यद्यपि आपकी इच्छा गुरुमहाराज के साथ रहने की थी पर गुरुमहाराज की आज्ञा से मारवाड़ आनापड़ा ओसियाँ आकर वोर्डिंग की स्थिति सुधारी तथा बड़ाहोलका उपदेशदिया कितने ही समय वहाँ ठहर कर अपने पास की सब पुस्तकों का एक ज्ञान भंडार स्थापन कर उसका नाम श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञानभंडार ओसियाँ रख दिया था।

**14/15/16**—सं० १९७७ सं० १९७८ स० १९७९ यह तीन चतुर्मास फलोदी ही में हुए इन तीन चतुर्मास में धर्म का अच्छा उद्योत हुआ समवसरणकी रचना जैसलमेर का सघ और ७५००० पुस्तकों का प्रकाशन और भी अनेक भव्यों को २७ आगम १४ प्रकरणादि सुनने का लाभ हुआ। पर कलिकाल के राज में ऐसा धर्मोद्योत क्यों होगया एक ऐसा विप्लव खड़ा हुआ कि जिससे आपको तीन चतुर्मास लगातार करना पड़ा। इस विषय में कई पुस्तकें भी छप चुकी हैं अत. अधिक नहीं लिखा।

**17**—स० १९८० का चतुर्मास लोहावट में हुआ वहाँ भी धर्म का काफी प्रभाव पड़ा। भगवती सूत्र वाचा। १०००) ज्ञान पूजामें आये जैननवयुवक मित्रमण्डल की स्थापना तथा श्री सुखसागर ज्ञान प्रचार सभा की स्थापना हुई २००००पुस्तकें छपी इत्यादि।

**18**—स० १९८१ का चतुर्मास नागोर में हुआ वहा भी श्रीभगवतीसूत्र वाचा ५००० पुस्तकें थी

श्री वीरमण्डल संस्था और समवसरण की रचना का अपूर्व महोत्सव मनाया गया। बाद चातुर्मास के फलोदी पधारे वहां जैन पाठशाला तथा मित्रमण्डल की स्थापना करवाई वहां से राजबाने पधारे एक जैन पाठशाला और मित्रमण्डल की स्थापना हुई। पर्व महावीरजयंति बड़े समारोह के साथ मनाई गई। वहां से रूण पधारे वहाँ भी ज्ञान प्रकाश मित्रमण्डल की स्थापना हुई। वहीं से फलोधी गये तथा मारवाड़ तीर्थ प्रबन्ध कारिणी सभा की स्थापना करवा कर मारवाड़ के तमाम मन्दिरों की सार संभार की।

19—सं १९८२ में महदारोह फलौदी में चातुर्मास किया वहाँ जैन जाति निर्णय एवं जैन जाति महोदय नाम की पुस्तकें लिखी। वहाँ के मन्दिरों में दिगम्बरों का प्रवेश था वह साफ करवाया इत्यादि। वहाँ अजमेर जाकर वीरात् ८४ वर्ष का शिलालेख देखना था वह देखा वहाँ से विहार कर पीसांगण कोडाये गये। वापिस वे पीपलिया आये वहां कई जाति सुधार हुए बाद कुछ बलुंदा खैरवा में व्याख्यान देते हुए बीसलपुर गये। वहां स्था० साधु शिरेमलजी के साथ शास्त्रार्थ कर श्रीमगमलजी संघी को प्रबोध कर वासक्षेप देकर पुनः जैन बनाया वहां से कापरड़ा तीर्थ की यात्रा कर पीपाड़ पधारे।

20—सं१९८३ का चातुर्मास पीपाड़ में किया वहां भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र बाचा। धर्म की बहुत अच्छी जागृति हुई। जैन मित्रमण्डल जैन लायब्रेरी जैन श्वेताम्बर सभा इत्यादि संस्थाए स्थापित करवाई। वहां से विहार कर कापरड़ा की यात्रा की वहां से बीलाड़ा आये। वहां स्थानकवासी साधु गंभीर मलजी को सं० १९८३ का पौषवद ३ को बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा देकर उनका नाम गुणसुन्दरजी रखा बाद पुनः पीपाड़ आये और नागौरी की प्रतिष्ठा समारोह के साथ करवाकर वहाँ से खेजड़ला आये।

21—सं १९८४ का चातुर्मास बीलाड़ा में हुआ वहां भी धर्म की अच्छी जागृति हुई। व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्र का वाचन हुआ। जैनपाठशाला मित्र मण्डलनाम की संस्था कायम करवाई। बाद विहार कर पाली आये गोड़वाड़ की पंचतीर्थी कर मेवाड़ (उदयपुर) गये। वहां माह शुद्ध पूनम को आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिश्वरजी की जयंति मनाकर केशरियाजी की यात्रा की वहां से गोड़वाड़ वापिस आये। वहाँ से एकान्त शिवगंज पाली होकर फलोदी आगये।

22—सं १९८५ का चातुर्मास फलोदी में ही हुआ। वहाँ भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र का वांचन हुआ वहाँ लूणकरणजी हजारीमलजी के कारण बड़ा भारी झगड़ा पड़ा उसका समाधान करवाया। जैन जाति महोदय के लिये चार हजार रुपया का चन्दा करवाया। चातुर्मास के बाद वहीं से पाली आये वहाँ समवसरण की रचना से गोड़वाड़ में जागृति पैदा की हुई। वहाँ भी संघ में कलेश था जिसका समाधान करवाया बाद वहाँ से बरकाणा आये वहीं बगीचा में रह कर समरसिंह का इतिहास लिखा।

23—सं १९८६ का चातुर्मास लूणावा में हुआ वहां भी धर्म की खूब जाहोजलाली हुई। पुस्तक प्रकाशन के लिये अच्छा चन्दा हुआ। धर्म की अच्छी जागृति हुई एक कन्याशाला की स्थापना करवाई वहीं से पाली आये वहां भी एक कन्याशाला की स्थापना हुई बाद कापरड़ा आये। वहाँ से आमेर पधारे वहाँ के मन्दिरों के शिखरों की प्रतिष्ठा करवाकर बाद में पाली आये।

24—सं १९८० का चातुर्मास पाली में हुआ। वहां भी धर्म की अच्छी जागृति हुई। विशेष आग्रह कर समवसरण की रचना बड़ी ही मनोरम करवाई। हाथी आदि समारोह के साथ प्रभु सवारी निकली आदि बहुत ही अच्छी उन्नति हुई। वहाँ से विहार कर कापरड़ाजी आये वहाँ से जोधपुर पधारे। जोधपुर में कई मन्दिर थे परन्तु ध्वजदण्ड किसी पर नहीं था अतः श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ और शान्तिनाथ के ं की प्रतिष्ठा करवा कर उन मन्दिरों पर ध्वजदण्ड चढ़ाया जिसमें श्रीसंघ के पन्द्रह हजार रुपये

साहित्य रसिक—

## मुनीश्रीगुणसुन्दरजीमहाराज

आपका जन्म भी ओशवश में हुआ आप १६ वर्ष की किशोर व्यय में स्थ० म० में दीक्षित हुए वाद २२ वर्षों से सवेगपक्षीदीक्षाली आप में व्ययवच्च का वढिया गुण है। स्मरण शक्ति अच्छी होने से प्रत्येक ज्ञान शीघ्र कण्ठस्थ कर लेते हैं आपको कविता करने का भी शौक है आप की ही सहायता से गुरुवर्य ने इतने काम कर पाये हैं।

| जन्म | स्था० दीक्षा | सवेगपक्षी दीक्षा |
|---|---|---|
| १९४६ | १९६१ | १९८३ |

खर्च हुए। भैरोबाग की देवभूमि के लिये आन्दोलन किया आखिर ओसवाल उस देव भूमि एवं देव द्रव्य को हजम कर ही गये जिसके फल आज प्रत्यक्ष में मिल ही रहा है। तथा भरूबाग में मन्दिर बनवाने के लिये उपदेश दिया। पहिले बाला के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

25—सं० १९८८ का चतुर्मास जोधपुर में हुआ वहां भी व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्र बांचा। और भी धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरड़ा तीर्थ की यात्रा करने के लिये गये वहाँ भी बोर्डिंग की स्थापना करवाई। वहाँ से पीपाड़ आकर मन्दिर की तिष्ठा बड़े समारोह के साथ करवाई और समवसरण की रचना हुई।

26—सं० १९८९ का चातुर्मास कापरड़ा तीर्थ पर ही हुआ जिससे बोर्डिंग को अच्छी मदद मिली। पर्युषणपर्व में पीपाड़ बीलाड़ा जैतारण बालाफदासला खारिया जोधपुर विशलपुर आदि ग्रामो से बहुत से भावुक जन आये पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि धर्मोद्योत हुआ। अर्थात् जंगल में भी मगल होगया वहा पर श्री पांचूलालजी वगैरह तीनो भाई आये और जैसलमेर संघ के लिये आमन्त्रण किया तथा पांचूलालजी की तरफ से वहां बड़ा होल बनवाया बाद विहार कर फलोदी गये और पांचूलालजी ने जैसलमेर का बड़ा भारी संघ निकाला जिसमें ५००० गृहस्थ १०० साधुसाध्वी ने भाग लिया जिसका एक बड़ा ग्रन्थ बना हुआ है।

27 १९९० का चतुर्मास फलोदी में हुआ। व्याख्यान में भी भगवती सूत्र बांचा। विशेष कार्य-वहाँ यह हुआ कि श्रीसूरजमलजी कोचर की धर्मशाला में बड़ा होल बनवाया जिसमें नन्दीश्वर द्वीप की रचना हुई हजारों जैन तथा जैनेतर भाई ने लाभ लिया और जैनधर्म का गुणगाया इत्यादि। वहाँ से विहारकर जोधपुर तथा पाली होते हुए सादड़ी आये चैत्र मास की शाश्वतीओली बड़ा ही उत्साह के साथ वहाँ ही करवाई। बाद लुनावा होकर शिवगंज तथा वहाँ से जावाल प्रतिष्ठा के लिये गये। वहाँ आचार्य्य विजयनेमिसूरीश्वर का दर्शन हुआ सूरिजी की बड़ी भारी मेहरबानी रही थी।

28 ं० १९९१ चतुर्मास शिवगञ्ज में हुआ व्याख्यान में श्री भगवतीसूत्र बांचा। वहाँ पर नाद-मोहवा कर तीन सौ नरनारियों को विधिविधान के साथ समकित दी इत्यादि। धर्मका खूब ही उद्योत हुआ व्याख्यान का ठाट बहुत ही अच्छा रहता था।

29 सं० १९९२ का चातुर्मास जोधपुर में हुआ। मुनिश्री का शरीर नरम था व्याख्यान श्रीगुणसुन्दरजी बांचते थे। तथापि पर्युषणपर्व का बड़ाही ठाठ रहा था बाद चतुर्मास के वहां से विहारकर कापरड़ा की यात्रा की गयी।

30 सं० १९९३ का चतुर्मास पाली में हुआ वहाँ भी अच्छा ठाट रहा मूर्ति पूजा का प्राचीन इतिहास श्रीमान् लोकाशाह नाम की पुस्तक पाली में लिख कर वहां से सोजत तथा ब्यावर पधारे। वहाँ स्थानकवासी साधु अम्बालालजी तथा अर्जुनलालजी से भेंट हुई। उन दोनों साधुओं को मूर्ति के विषय में अच्छा प्रबोधित किया वहाँ से अजमेर तथा नागौर जाकर समदड़ियों के बनाये हुए स्टेशन पर चंद्रप्रभू के मन्दिर की प्रतिष्ठा एवं नंदीश्वर द्वीप की रचना समदड़ियों के तरफ से करवाई और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी के पादुके की स्थापना भी करवाई। सुराणों की बगेची में आचार्य धर्मघोषसूरि के पादुकों की स्थापना की।

31 १९९४ का चतुर्मास सोजत में हुआ वहां भी व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र का बांचना हुआ और समवसरण की रचना बहुत समारोह के साथ हुई। सवारी में हाथी वगैरह आने से धर्म की बहुत अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरड़ा होकर ब्यावर तथा अजमेर पधारे।

32 सं० १९९५ का चतुर्मास ब्यावर में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र रखा गया। वर्द्धमान की आराधना श्राम फलिक रायजी कंवरान में हुई। जैनधर्म का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

33 सं० १९९६ का चातुर्मास अजमेर में हुआ। वहाँ भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र बाँचा गया। और अनेक पुस्तकें छपवाई। तथा भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास का काम प्रारम्भ हुआ।

34 १९९७ का चतुर्मास ब्यावर में हुआ पहले ब्यावर गाँव की मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई बाद चतुर्मास में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरेड़ा पधारे आपके शरीर गरम व बाद कुछ अस्वस्थ कापरेड़ा में ही बिराजना पड़ा बाद फलोदीका संघ आकर आग्रह किया कि मन्दिर के प्रतिष्ठा के लिये आप फलोदी पधारें।

35 सं १९९८ का चतुर्मास फलोदी में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में श्री भगवतीसूत्र को बाँचा। आपके बिराजने से धर्म का अच्छा उद्योत हुआ।

36 सं० १९९९ का चतुर्मास पीपलिया में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में भगवतीसूत्र बाँचा वहाँ १०० वर्षों के अन्दर आपका ही चातुर्मास हुआ था। जैन तथा जैनेतर भाईयों ने बहुत अच्छा लाभ लिया था। जीर्णोद्धार के लिये करीब ५००० हजार की चन्दा एकत्रित हुई।

37 सं० २००० में आपका चतुर्मास अजमेर में हुआ जो खास भगवान् पार्श्वनाथ के परम्परा के इतिहास छपाने के ही उद्देश्य से हुआ है। आपश्री के आजतक कुल ३७ चतुर्मास हुए जिसमें ९ स्थानकवासी समुदाय में १८ संवेगी समुदाय में जिस में २ चौमासा गुजरात में २ मेवाड़ में शेष ३४ चतुर्मास मारवाड़ में ही हुआ है इसका कारण यह है कि आपके पास योग्य साधुओं का अभाव था जिससे कि दूर प्रान्त के विहार नहीं कर सके, दूसरा आपने जननी-जन्मभूमि की सेवा करने की पहले से ही प्रतिज्ञा करली थी आपने जननी जन्मभूमि की सेवा करने में जैसा बहुत परिश्रम किया वैसा लाभ भी बहुत हासिल किया। यदि आप भी इस प्रकार मरुधर में विहार न करते तो न जाने इस भूमिपर कितने भाई मूर्तिपूजक जैन रह जाते। जैसे पंजाब में पूज्याचार्य श्री आत्मारामजी महाराज ने पंजाब का उद्धार किया इसी प्रकार आपश्री ने भी मारवाड़ का उद्धार करने में सफल मनोरथ हुवे। किन्तु स्वामी आत्मारामजी के साथ जितने साधु थे उसका एक अंश भी यदि आपके साथ होता तो आप कुछ और ही काम करके बतलाते पर साधनों के अभाव में भी जो भागीरथ प्रयत्न कर इतना काम कर दिखलाया है यह आपश्री की एक विशेषता है। ऊपर लेखमें आपके चतुर्मास सिलसिलेवार संक्षेप से लिखे गए हैं। अब थोड़ासा आपका किए हुए कार्य का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

मुनिश्री के उपदेश एवं प्रयत्न से श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमालादि संस्था द्वारा पुस्तकें मुद्रित हुई

| नं० | पुस्तक का नाम | आवृत्ति | संख्या | नं० | पुस्तक का नाम | आवृत्ति | संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | प्रतिमा छत्तीसी | ५ | २५१० | ६ | पैंतीस बोल संग्रह | ३ | ४०० |
| २ | गयवर विलास | २ | २ | ७ | स्तवन संग्रह भाग १ ला | ५ | ५० |
| ३ | दान छत्तीसी | ४ | ८००० | ८ | " " " २ रा | ३ | ३० |
| ४ | अनुकम्पा छत्तीसी | ३ | ३००० | ९ | " " " ३ रा | ३ | ३०० |
| ५ | प्रश्नमाला स्तवन | ३ | ३००० | १० | " " " ४ था | ३ | ८००० |

| नं० | पुस्तक का नाम | आवृत्ति | संख्या |
|---|---|---|---|
| ११ | „ „ „ ५ वाँ | १ | १००० |
| १२ | दादा साहिब की पूजा | १ | २००० |
| १३ | चर्चा का पब्लिक नोटिस | १ | १००० |
| १४ | देव गुरु वन्दन माला | २ | ७००० |
| १५ | लिंग निर्णय बहत्तरी | ३ | ३००० |
| १६ | सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली | १ | १००० |
| १७ | बत्तीस सूत्र दर्पण | १ | ५०० |
| १८ | जैन नियमावली | ३ | ४००० |
| १९ | जैन मन्दिरों की आशातना | २ | २००० |
| २० | डङ्का पर चोट | १ | ५०० |
| २१ | आगम निर्णय | १ | १००० |
| २२ | चैत्यवन्दनादि | २ | २००० |
| २३ | जिन स्तुति | २ | २००० |
| २४ | सुबोध नियमावली | ३ | ८००० |
| २५ | जैन दीक्षा | २ | २००० |
| २६ | प्रभुपूजा विधि | २ | २००० |
| २७ | व्याख्या विलास भाग १ | १ | १००० |
| २८ | „ „ भाग २ | १ | १००० |
| २९ | „ „ भाग ३ | १ | १००० |
| ३० | „ „ भाग ४ | १ | १००० |
| ३१ | शीघ्रबोध भाग १ ला | ३ | ३००० |
| ३१ | „ „ २ जा | २ | २००० |
| ३३ | „ „ ३ जा | २ | २० ० |
| ३४ | „ „ ४ था | २ | २००० |
| ३५ | „ „ ५ वाँ | २ | २००० |
| ३६ | „ „ ६ ठा | २ | २००० |
| ३७ | „ „ ७ वाँ | २ | २००० |
| ३८ | „ „ ८ वाँ | २ | २००० |
| ३९ | „ „ ९ वाँ | २ | २००० |
| ४० | „ „ १० वाँ | २ | २००० |
| ४१ | „ „ ११ वाँ | १ | १००० |
| ४२ | „ „ १२ वाँ | १ | १००० |
| ४३ | „ „ १३ वाँ | १ | १००० |
| ४४ | „ „ १४ वाँ | १ | १००० |
| ४५ | „ „ १५ वाँ | १ | १००० |
| ४६ | „ „ १६ वाँ | १ | १००० |
| ४७ | „ „ १७ वाँ | १ | १००० |
| ४८ | „ „ १८ वाँ | १ | १००० |
| ४९ | „ „ १९ वाँ | १ | १००० |
| ५० | „ „ २० वाँ | १ | १००० |
| ५१ | „ „ २१ वाँ | १ | १००० |
| ५२ | „ „ २२ वाँ | १ | १००० |
| ५३ | „ „ २३ वाँ | १ | १००० |
| ५४ | „ „ २४ वाँ | १ | १००० |
| ५५ | „ „ २५ वाँ | १ | १००० |
| ५६ | सुखविपाक सूत्र मूल पाठ | १ | १००० |
| ५७ | दशवैकालिक सूत्र „ „ | १ | १००० |
| ५८ | नंदीसूत्र „ „ | १ | १००० |
| ५९ | कागद हुंडी पेठ परमेठ } गु० | २ | ५००० |
| ६० | और मेकरनामो हि० | २ | २००० |
| ६१ | तीन निर्नामा लेखों का उत्तर | १ | २००० |
| ६२ | ओसियाँ ज्ञान भंडार की लिस्ट | १ | १००० |
| ६३ | तीर्थमाला स्तवन | २ | २००० |
| ६४ | अमे साधु शा माटे थया ? | १ | १००० |
| ६५ | विनती शतक | १ | १००० |
| ६६ | द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवेशिका | २ | ७००० |
| ६७ | द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका | १ | ५००० |
| ६८ | आनदघन चौवीसी | १ | १००० |
| ६९ | कक्का बत्तीसी सार्थ | १ | १००० |
| ७० | स्वाधाय गहूली सं० | ३ | ५००० |
| ७१ | राईदेवसि प्रतिक्रमण | १ | १००० |
| ७२ | उपकेशगच्छ लघु पट्टा० | १ | १००० |
| ७३ | वर्णमाला | २ | २००० |
| ७४ | तीन चतुर्मास का दिग्दर्शन | १ | १००० |
| ७५ | हितशिक्षा प्रश्नोतर | १ | १००० |
| ७६ | विवाह चूलिका की समालोचना | २ | ३००० |

| नं० | पुस्तक का नाम | आवृत्ति | संख्या |
|---|---|---|---|
| १४३ | ,, ,, ३ जा | १ | १००० |
| १४४ | विधि सहित राई देवासि प्र० | १ | १००० |
| १४५ | जैसलमेर का संघ | १ | ५०० |
| १४६ | आदर्श शिक्षा | १ | १००० |
| १४७ | संघ का सिलोका | २ | १५०० |
| १४८ | स्नात्र पूजा (आत्मा०) | १ | १००० |
| १४९ | जैन मन्दिरों के पुजारी | १ | १५०० |
| १५० | वीर स्तवना | १ | १००० |
| १५१ | आ० रत्न० जयन्ति महोत्सव | १ | १००० |
| १५२ | शंकाओं का समाधान | १ | १००० |
| १५३ | हाँ मूर्त्तिपूजा शास्त्रोक्त है | १ | १००० |
| १५४ | जिनेन्द्र पूजा संग्रह | १ | १२५० |
| १५५ | लेख संग्रह भाग १ ला | १ | १००० |
| १५६ | ,, ,, २ जा | १ | १००० |
| १५७ | ,, ,, ३ जा | १ | १००० |
| १५८ | ,, ,, ४ था | १ | १००० |
| १५९ | ,, ,, ५ वाँ | १ | १००० |
| १६० | मूर्त्तिपूजा का प्रा० इति० | १ | १५०० |
| १६१ | मू० पू० प्रश्नोत्तर | १ | १००० |
| १६२ | क्या तीर्थंकरों भी मुहपती० | १ | १५०० |
| १६३ | श्रीमान् लौंकाशाह | १ | १००० |
| १६४ | ऐतिहासिक नोंध कि० ऐ० | १ | १००० |
| १६५ | कडुआमत की पट्टावली | १ | १००० |
| १६६ | अंगचूलिका सूत्र | २ | २००० |
| १६७ | नाभा नरेश का फैसला | १ | १५०० |
| १६८ | महादेव पार्वती संवाद | १ | ५०० |
| १६९ | सुगुरु वन्दन विधि | २ | २००० |
| १७० | तस्कर वृत्ति का नमूना | १ | १००० |
| १७१ | गुरुगुण माला | १ | १००० |
| १७२ | संस्था की रिपोर्ट १-२ | २ | १००० |
| १७३ | प्रमाणवाद | १ | १००० |
| १७४ | पंचों की बड़ी पूजा | १ | २००० |
| १७५ | महादेव स्तोत्र | १ | ५०० |
| १७६ | प्रा० जै० इ० सं० भाग १ ला | १ | १००० |
| १७७ | ,, ,, भाग २ जा | १ | १००० |
| १७८ | ,, ,, भाग ३ जा | १ | १००० |
| १७९ | ,, ,, भाग ४ था | १ | १००० |
| १८० | ,, ,, भाग ५ वाँ | १ | १००० |
| १८१ | ,, ,, भाग ६ ठा | १ | १००० |
| १८२ | ,, ,, ,, ,, भाग ७ वाँ | १ | ६० ० |
| १८३ | ,, ,, ,, ,, भाग ८ वाँ | १ | १००० |
| १८४ | ,, ,, ,, ,, भाग ९ वाँ | १ | १००० |
| १८५ | ,, ,, ,, ,, भाग १० वाँ | १ | ५०० |
| १८६ | ,, ,, ,, ,, भाग ११ वाँ | १ | ५०० |
| १८७ | ,, ,, ,, ,, भाग १२ वाँ | १ | १००० |
| १८८ | ,, ,, ,, ,, भाग १३ वाँ | १ | १००० |
| १८९ | ,, ,, ,, ,, भाग १४ वाँ | १ | १००० |
| १९० | ,, ,, ,, ,, भाग १५ वाँ | १ | १००० |
| १९१ | ,, ,, ,, ,, भाग १६ वाँ | १ | १००० |
| १९२ | ,, ,, ,, ,, भाग १७ वाँ | १ | ५०० |
| १९३ | ,, ,, ,, ,, भाग १८ वाँ | १ | ५०० |
| १९४ | ,, ,, ,, ,, भाग १९ वाँ | १ | १००० |
| १९५ | ,, ,, ,, ,, भाग २० वाँ | १ | १००० |
| १९६ | ,, ,, ,, ,, भाग २१ वाँ | १ | १००० |
| १९७ | ,, ,, ,, ,, भाग २२ वाँ | १ | १००० |
| १९८ | ,, ,, ,, ,, भाग २३ वाँ | १ | १००० |
| १९९ | ,, ,, ,, ,, भाग २४ वाँ | १ | १००० |
| २०० | ,, ,, ,, ,, भाग २५ वाँ | १ | १००० |
| २०१ | उपकेश गच्छाचार्यों की पूजा | १ | १००० |

उपरोक्त संस्था द्वारा २०१ पुष्प प्रकाशित हो जाने से यह कार्य यहाँ ही समाप्त हो गया—अब जो पुष्प प्रकाशित होते हैं उसपर श्रीज्ञान गुण पुष्पमाला के नंबर एक से लगाये जाते हैं जिसके आज तक ३१ नंबर आगये हैं तथा भविष्य में भी क्रमश पुष्प नंबर लगाया जायगा।

| | | |
|---|---|---|
| ६ | पीपाड़ | श्री ज्ञानोदय जैन लायब्रेरी |
| ७ | कापरड़ा | श्री पार्श्वनाथ जैनज्ञानभंडार |
| ८ | पाली | श्री जैन श्वे० लायब्रेरी |
| ९ | वीसलपुर | श्री जैनलायब्रेरी |
| १० | लुनावा | श्री जैन ज्ञानलायब्रेरी |
| ११ | सायरा | श्री जन श्वे० ज्ञानलायब्रेरी |

## सेवा मंडल

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | १९७३ | फलोदी | जैन मित्र मण्डल |
| २ | १९७९ | लोहावट | जैन नवयुवक मंडल |
| ३ | १९८० | नागोर | वीरमंडळ |
| ४ | १९८१ | कुचेरा | महावीर मित्रमण्डल |
| ५ | १९८१ | खजवाना | जैन मित्र मण्डल |
| ६ | १९८१ | रूण | ज्ञानप्रकाश मण्डल |
| ७ | १९८२ | खारिया | जैन श्वे० मित्रमण्डल |
| ८ | १९८३ | पीलाड़ा | ज्ञान प्रकाश मित्र मण्डल |
| ९ | १९८३ | पीपाड़ | जैनमित्र मण्डल |
| १० | १९८३ | कापरड़े | जैनसेवा मण्डल |
| ११ | १९८४ | पीपाड़ | जैन बालमित्र मण्डल |
| १२ | १९८५ | लुनावा | जैन बाल मण्डल |
| १३ | १९८४ | पीपाड़ | जैन श्वे० संघ सभा |
| १४ | १९८२ | फलोदी | मारवाड़ तीर्थ प्रबंधकारणी |

## जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं मदद

| | | | |
|---|---|---|---|
| नं० | १९७२ | ओसिया | जीर्णोद्धार में मदद के लिये उपदेश |
| १ | १९८२ | फलोदी | तीर्थ का सुधार के लिये चतुर्मास किया |
| २ | १९८१ | नागोर | मन्दिरों पर शिखर के लिये उपदेश |
| ३ | १९८८ | जोधपुर | मन्दिरों पर ध्वज दंड व प्रतिष्ठाएं |
| ४ | १९८८ | जोधपुर | भैरूबाग की देव भूमि मन्दिर के लिये आन्दोलन |
| ५ | १९८३ | कापरडा | जीर्णोद्धार के लिए उपदेश |
| ६ | १९८८ | जोधपुर | गोडीपार्श्व शान्तिनाथ प्रतिष्ठा का उप० |
| ७ | १९८७ | बाला | पार्श्वनाथ के मन्दिर का जीर्णो० प्रति० का उ |
| ८ | १९८८ | चोपड़ा | जीर्णोद्धार मन्दिर की प्रतिष्टा का उप० |
| ९ | १९८८ | पालासणी | मन्दिर का सुधार ध्वजा दंड |
| १० | १९८८ | वीसलपुर | मन्दिर की आशातना मिटाने का उप० |
| ११ | १९८७ | वीससपुर | गोडवाड़ के मन्दिर के लिये उप० |
| १२ | १९८४ | बगड़ी | मन्दिर की प्रति० में वासक्षेप दिया |
| १३ | १९९० | फलोदी | धर्मशाला के नये होल का उपदेश |
| १४ | १९९४ | सोजत | उपाश्रय में प्रभु मूर्त्ति की प्रतिष्ठा |
| १५ | १९८८ | पीपाड | शान्तिनाथ के मन्दिर |
| १६ | १९९७ | | की पुन प्रतिष्ठा |
| १७ | १९९९ | चढावल | रिषभवाडी में पादुकाएं |
| | | ब्यावरग्राम | मन्दिर की प्रतिष्ठा |
| १८ | १९९९ | ब्यावर | शान्तिनाथ की मूर्ति वास० |

## तीर्थयात्रा

इसके अलावा आपका बहुत समय तीर्थयात्रा में भी व्यतीत हुआ था

१ स० १९७३ में श्री जैसलमेर लोद्रावजी की यात्राकी वहां का प्राचीन ज्ञानभंडार का अवलोकन किया

२ स० १९७४ गोडवाड़ के पांचों तीर्थों की यात्रा की।

३ स० १९७४ श्री केसरियानाथजी की यात्रा भी उत्साह से की।

४ स० १९७४ श्री ईडर के किल्ला के जिनालय की यात्रा की।

# जैनधर्म की प्राचीनता

जैनधर्म एक अति प्राचीन स्वतन्त्र विश्वव्यापि आत्मकल्याण करने में मुख्य कारण और अनादि-काल से अविच्छन्न रूप से चला आया उच्चकोटि का पवित्र सर्वश्रेष्ठ धर्म है इसकी आदि का पता लगाना बुद्धि के बाहर की बात है। फिर भी काल एवं क्षेत्र की अपेक्षा जैनधर्म सादि भी है जैनधर्म की नींव स्याद्वाद एवं विज्ञान के आधार पर रखी गई है इसका आत्मवाद अध्यात्मवाद परमाणुवाद सृष्टिवाद और कर्म फिलासोफी के कहने वाले साधारण व्यक्ति नहीं पर सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागदेव थे जैनधर्म जितना विशाल है उतना ही गंभीर भी है। जैनधर्म एक समुद्र है इसके थोड़े थोड़े छांटे उड़े हैं जिससे इतर लोगों ने अपनी अपनी दूकानें लगा रखी हैं अर्थात् अन्य धर्म वालों ने जो कुछ शिक्षा पाई है तो जैनधर्म से ही पाई है।

वर्तमान समय ऐतिहासिक युग कहलाता है आधुनिक धुरंधर विद्वानों में इतिहास का आसन सर्वोपरि माना गया है इतिहास ही अधिक विश्वास का पात्र एवं उच्च आदर्श है जिसमें भी जैनधर्म के विषय तो इतिहास ने और भी विशेष प्रकाश डाला है कारण गत एक शताब्दी पूर्व जैनधर्म के विषय में जनता में अनेक प्रकार भ्रान्तियें फैली हुई थीं जैसे कई कहते थे कि जैनधर्म वैदिकधर्म की एक शाखा है कई ने इसे बोद्धधर्म की शाखा मानली थी कई एकों ने जैनधर्म महावीर ने चलाया तो कई ने पार्श्वनाथ ने ही जैनधर्म प्रचलित किया तब पुराणों की बिना सिर पैर की गाथायें तो और भी अजब ढंग की ही थीं इतना ही क्यों पर कई एक ने तो यहाँ तक कल्पना करली थी कि गोरखनाथ के शिष्यों ने ही जैनधर्म चलाया था इत्यादि जिसके दिल में आया जैनधर्म के विषय घसीट मारा। पर जब सहस्र किरण युक्त सूर्यरूपी इतिहास का सर्वत्र प्रकाश हुआ तब उन भ्रमित मन वालों का अज्ञान अन्धकार दूर हुआ और वे लोग जैनधर्म को अति प्राचीन एवं स्वतन्त्र धर्म मानने लगे फिर भी भारतवर्ष में ऐसे मनुष्यों का सर्वत्र अभाव नहीं हुआ है जो पुराणी लकीर के फकीर बने हुए आज बीसवीं शताब्दी में भी पन्द्रहवीं शताब्दी के स्वप्न देख रहे हैं।

पाठकों को एक बात पर अवश्य लक्ष देना चाहिये और वह यह है कि किसी भी धर्म पर कुछ लिखना चाहे तो पहिलें उस धर्म के साहित्य का अवश्य अध्ययन करना चाहिये। बिना साहित्य के देखे किसी धर्म के विषय कुछ लिख देना केवल हांसी का ही पात्र बनना पड़ता है जैसे स्वामि शंकराचार्य एवं स्वामि दयानन्द सरस्वती ने जैनधर्म के विषय में लिखा है पर आज उन्हीं के अनुयायी कहते हैं कि स्वामीजी जैनधर्म के सिद्धान्तों को ठीक समझ ही नहीं पाये थे। जब उक्त विद्वानों का भी यह हाल है तब साधारण व्यक्तियों के लिये तो कहना ही क्या है वर्तमान में भी हम ऐसे लेखकों को देख रहे हैं कि दूसरे धर्म के साहित्य को स्पर्श करने मात्र से महापाप मानने वाले उन धर्मों के लिये लिखने के लिये उत्साही बन जाते हैं आखिरकार नतीजा वही होता है जो ऐसे कामों में होना चाहिये। अत मेरी यही प्रार्थना है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म के लिये लेखनी हाथ में ले उसके पूर्व उस धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का ठीक अध्ययन करले।

जैनधर्म के शास्त्रों के आधार पर जैनधर्म अति प्राचीन है। इतना ही क्यों पर हिन्दू धर्म के प्रमाणों से भी जैनधर्म इतना ही प्राचीन प्रमाणित होता है कारण हिन्दू धर्म में सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों को माना है यहां तक कि वेद ईश्वर कथित भी माने जाते हैं उन्हीं वेदों के अन्दर जैनधर्म का उल्लेख किया हुआ मिलता है इससे सिद्ध हो जाता है कि वेदों के पूर्व जैनधर्म विद्यमान था उन वेदों और पुराणों के पुष्कल मारण मैंने इसी ग्रन्थ के पृ     पर उद्धृत किया है अतः यह पीष्टपेषण करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है।

इन-प्रमाणों के शास्त्रों से जैनधर्म की प्राचीनता प्रमाणित हो गई पर वर्तमान इतिहास जैनधर्म के विषय क्या कहता है ? पाठकों की जानकारी के लिये ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जैनधर्म की प्राचीनता कहाँ तक सिद्ध होती है इस पर विचार किया जाता है।

वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से विद्वानों ने ई० सं० पूर्व नौवीं से एक हजार वर्ष से भारत का इतिहास प्रारम्भ होना सिद्ध किया है तब जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भ० महावीर और आपके पुरुगामी भ० पार्श्वनाथ को इतिहास पुरुष होना स्वीकार किया है जिनका समय ई० सं० पू० नौवीं वर्ष के आस पास का है। इसके अलावा हाल ही में प्रभासपट्टन में भूमि खुदाई का काम करते एक ताम्रपत्र भूगर्भ से मिला है। जिसमें लिखा है कि—

" रेवा नगर के राज्य का स्वामि सु ०० जाति के देव नेबुशदनेझर' हुए वे यदुराज (श्री कृष्ण) के स्थान द्वारका आया उसने एक मन्दिर सूर्य 'देव नेमि जो स्वर्ग समान रैवत (गिरनार) पर्वत के देव हैं उसके मन्दिर बनाकर सदैव के लिये अर्पण किया।

'जैनधर्म वर्ष १५ अंक १ ता १ १-२ से"

यद्यपि इस ताम्रपत्र का 'नेबुशदनेझर' राजा का समय ई० सं० पू० छठी शताब्दी का बतलाया जाता है इस विषय का एक विस्तृत लेख महावीर विद्यालय का रजतमहोत्सव अंक में प्रकाशित हुआ है जिससे पाया जाता है कि ई० सं० पू० छठी शताब्दी में गिरनार पर्वत पर भ० नेमिनाथ का मन्दिर विद्यमान था और वे नेमिनाथ जैनों के बाईसवें तीर्थंकर थे जो श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन हुए थे। हाँ किसी जमाना में भ० महावीर और पार्श्वनाथ को विद्वान लोगों ने कल्पित व्यक्ति कह कर इतिहास में स्थान नहीं दिया था पर जब शोध खोज से उन दोनों महापुरुषों को ऐतिहासिक पुरुष होना प्रमाणित कर दिया इसी प्रकार आज भ० नेमिनाथ को ऐतिहासिक पुरुष नहीं भी माना जाय पर भविष्य में ठीक खोज होने पर वे ऐतिहासिक पुरुषों में आसन प्राप्त कर ही लेगा। और इसके कई कारण भी हैं जैसे पंजाब और सिन्ध की सरहद भूमि के अन्दर से 'हरप्पा तथा मोहनजाडरो' नामके दो विशाल नगर निकले हैं, उन प्राचीन नगरों से ऐसे २ पदार्थ उपलब्ध हुए हैं कि विद्वान उनको पाँच से दश हजार वर्ष जितने प्राचीन बतलाते हैं। जब जैनग्रन्थों में सिन्ध प्रान्त की राजधानी वीतभय पट्टन का उल्लेख मिलता है जहाँ पर राजा उदाइ राज करता था राजा उदाइ दीक्षित होने के बाद देव का कोप होने से धूल की वृष्टि होकर नगर दट्टन होगई थी शायद वही नगर भूमि से निकला हो और ज्यों ज्यों पुरातत्त्व की शोध खोज होती जायगी त्यों २ इतिहास पर अपूर्व प्रकाश पड़ता जायगा।

जैनधर्म की प्राचीनता के विषय में भिन्न भिन्न पुरातत्त्व विचारकों ने अपनी शोध खोज से जैनधर्म की प्राचीनता के प्रमाण दिये हैं उन्होंने बिना किसी पक्षपात के जनता के सामने रख दिये हैं जिनके अन्दर से कतिपय प्रमाण यहाँ पर उद्धृत कर दिये जाते हैं।

(१) "पार्श्व ए ऐतिहासिक पुरुष हता ए बात तो बधी रीते संभवित लागे छे. केशी के जे महावीरना समयमां पार्श्वना संप्रदायनो एक नेता होय तेम देखाय छे. ( हरमन जेकोबी )

(२) सबसे पहिले इस भारतवर्ष में ऋषभदेव नाम के महर्षि उत्पन्न हुए, वे दयावान् भद्रपरिणामी, पहिले तीर्थंकर हुए, जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र रूपी मोक्षशास्त्र का उपदेश किया, बस यह ही जिनदर्शन इस कल्प में हुआ इसके पश्चात् अजितनाथ से लेकर महावीर तक तेईस तीर्थंकर अपने अपने समय में अज्ञानी जीवों का मोह अंधकार नाश करते रहे, "

( श्रीयुत तुकाराम शर्मा लट्टु बी. ए. पी. एच. डी. एम. आर. ए. एस. एम. ए. एस. बी. एम. जी. ओ. एस. प्रोफेसर क्विन्स कॉलेज बनारस. )

(३) जैसे उन्हें आदिकाल में—खाने, पीने, न्याय, नीति और कानून का ज्ञान मिला, वैसे ही अध्यात्म शास्त्र का ज्ञान भी जीवों ने पाया। और वे अध्यात्म शास्त्र में सब है, जैसे सांख्य योगादि दर्शन और जैनादि दर्शन। तब तो सज्जनो! आप अवश्य जान गये होंगे कि—जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ।" ( सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामि राममिश्र शास्त्री ).

(४) वेदों में संन्यास धर्म का नाम-निशान भी नहीं है, उस वक्त में संसार छोड़ कर वन जा कर तपस्या करने की रीति वैदिक ऋषि नहीं जानते थे, वैदिक धर्म में संन्यास आश्रम की प्रवृत्ति ब्राह्मण काल में हुई है कि जो समय करीब ३००० तीन हजार वर्ष जितना पुराणा है, यही राय श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त अपने 'भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता के इतिहास' में लिखते हैं जो नीचे मुजब है—"तब तक दूसरे प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई जो 'ब्राह्मण' नाम से पुकारे जाते है। इन ग्रंथों में यज्ञों की विधि लिखी है। यह निस्सार और विस्तीर्ण रचना सर्व साधारण के क्षीण शक्ति होने और ब्राह्मणों के स्वमताभिमान का परिचय देती है। ससार छोड कर वनों में जाने की प्रथा जो पहिले नाम को भी नहीं थी, चल पड़ी, और ब्राह्मणों के अंतिम भाग अर्थात् आरण्यक में वन की विधिक्रियाओं का ही वर्णन है।" ( भा० व० प्रा० स० इ. भूमिका ) ( तात्पर्य यह कि यह शिक्षा जैनों से ही पाई थी )

(५) "यज्ञ यागादिको में पशुओं का वध होकर 'यज्ञार्थ पशुहिंसा' आज कल नहीं होती है जैनधर्म ने यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण धर्म पर मारी है, पूर्व काल में यज्ञ के लिये असंख्य पशुओं की हिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं, रतिदेव ( रंतिदेव ) नामक राजाने यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्तवर्ण हो गया था उसी समय से उस नदी का नाम रक्तावती 'चर्मवती' प्रसिद्ध हुआ, पशुवध से स्वर्ग मिलता है इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परंतु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय. जैन के हिस्से में है।" ( ता० ३०-९-१९०४ के दिन जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्स के तीसरे अधिवेशन में बडौदे में दिये हुए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के भाषण में से )

(६) " बुद्धना धर्मे वेदमार्गनो ज इन्कार कार्यो हतो, तेने अहिंसानो आग्रह न हतो, ए महादयारूप, एवं प्रेमरूप धर्म तो जैनोनो ज थयो, आखा हिन्दुस्थानमांथी पशुयज्ञ निकली गयो छे, × + ×" ( सिद्धान्त सार में प्रो० मणिलाल नेमुभाई )

(७) हिन्दु, ईसाई, मुसलमान वगैरह ईश्वर, गौड, खुदा वगैरह नामों से एक असाधारण और सर्वविलक्षण शक्तिशाली तत्त्व की कल्पना करते हैं और उसे सर्व सृष्टि का कर्ता हर्ता और नियन्ता मानते हैं।

(८) हिन्दुस्थान में यह ईश्वरविषयक मान्यता वैदिक युग के अन्त में (वि० पू० १४५६ के लगभग) प्रचलित हुई तब यूरोप में दार्शनिक तत्त्ववेत्ता विद्वान् एनेक्सागोरसने ( वि० पू० ४४४–३५४ ) पहले पहिले ईश्वर को स्थापन किया। इससे यह बात तो निश्चित है कि भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ के समय में भारतवर्ष में ईश्वरविषयक उपर्युक्त मान्यता चिर प्रचलित हो चुकी थी तब भी जैन दर्शन में इसका बिल्कुल स्वीकार नहीं हुआ है, इससे यह बात पाई जाती है कि जैनदर्शन के तत्त्व ईश्वरीय मान्यता के प्रचलित होने के पहिले ही निश्चित हो चुके थे।

(९) " महाराज ! अहिंयां एक निर्ग्रंठ चारे प्रकारना नियमथी सुरक्षित छे (चातुर्यामसंवरसंवुतो) हे महाराज केवी रीते निर्ग्रंठ चारे प्रकारना संवरथी रक्षित छे ? महाराज आ निर्ग्रंठ सघळुं (ठंडु) पाणी वापरता नथी. सर्व दुष्ट कर्म करता नथी. अने सघळा दुष्कर्मोना विरमण वडे ते सर्व पापथी मुक्त छे अने सर्व प्रकारना दुष्कर्मोथी बचतां पापकर्मोथी निवृत्ति अनुभवे छे आ प्रमाणे हे महाराज ! निर्ग्रंठ चारे प्रकारना संवरथी संवृत छे, अने महाराज ! आ प्रमाणे संवृत होवाथी ते निर्ग्रंठ ज्ञातपुत्रनो आत्मा मोक्षी गोपवायसतो छे संयत अने सुस्थित छे" (दीर्घनिकाय—सामञ्ञफलसुत्तनी बुद्धघोषविलासिनी टीकाना अनुसार, हरमन जेकोबीकी जैनसूत्रों की प्रस्तावना)।

(१०) " पार्श्वनाथजी जैनधर्मके आदि प्रचारक नहीं थे परंतु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवजीने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणोंका अभाव नहीं है। बौद्धलोग महावीरजीको निर्ग्रन्थोंका (जैनियोंका) नायक मात्र कहते हैं स्थापक नहीं कहते हैं"।

(श्रीयुत वरदाकान्त मुखोपाध्याय एम्. ए. के बंगला लेखका अनुवादित अंश)।

(११) भारतेंदु बाबु हरिश्चंद्रने इतिहाससमुच्चयांतर्गत काश्मीरकी राजवंशावलीमें लिखा है कि "काश्मीरके राजवंश में ४७वां अशोक राजा हुआ, इसने ६२ वर्ष तक राज्य किया, श्रीनगर इसीने बसाया और जैनमतका प्रचार किया यह राजा शचीनरका भतीजा था मुसलमानोंने इसको सुकराज वा शकुनिका बेटा लिखा है, इसके वक्तमें श्रीनगरमें ९६ लाख मनुष्य थे इसका राज्यारम्भ १३९४ ईस्वी सन् पूर्वका है" (देखो इतिहाससमुच्चय पृ. १८)।

इसकी तहरीरसे यह बात सिद्ध होती है कि आज से ३३१९ वर्ष पहले काश्मीर तक जैनधर्म प्रचार था मुख्य था और बड़े बड़े राजालोग इस धर्म के माननेवाले थे इसी इतिहाससमुच्चयमें राजतरंगिणी का समग्र वर्णन करते (पृष्ठ ६) बाबू हरिश्चंद्र लिखते हैं "अशोकवाले वर्णन में उसकी मसजिदों में जैन फकीरों का जिक्र लिखा है, इससे प्रगट है कि राजतरंगिणीके बननेके पहले जैनियों का मत था।"

(१२) डाक्टर फुहररने एपीग्राफिका इंडिका वॉल्युम १ पृष्ठ २०६-२०७ में लिखते हैं कि—"जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये हैं, भगवद्गीताके परिशिष्ट में श्रीयुत बरवे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई (Cousin) थे, जब कि जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर कृष्णके समकालीन थे तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्णसे कितने वर्ष पहिले होने चाहिये, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।"

(१३) "जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है।"

(मि० कन्नुलालजी)

(१४) "निस्संदेह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है, और यही मनुष्यमात्र का आदि धर्म है। और आदीश्वर को जैनियोंमें बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध पुरुष जैनियों के २४ तीर्थंकरोंमें सबसे पहिले हुए हैं ऐसा कहा है।"

(मि० आबे जे० ए० डुबाई मिशनरी)

(१५) "जिनकी सम्मत्यानुसार है वे जो चाहे सो कहें परंतु मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से भी पूर्वका है। तब ही तो भगवान् वेदव्यास महर्षि ब्रह्मसूत्रोंमें कहते हैं नैकस्मिन्नसंभवात्। सज्जनो ! जब वेदव्यासके ब्रह्मसूत्र-बननेके समय पर जैन मत था तब तो उसके खण्डनार्थ उद्योग किया गया। यदि वह पूर्व में नहीं होता तो यह खंडन कैसा और किसका ?, सज्जनो ! समय अल्प है और कहना बहुत है इससे थोड़ा कहा जाता है नहीं तो बात यह है कि—वेदो में अनेकान्त-

वाद का मूल मिलता है। + + + सृष्टिकी आदिसे जैनमत प्रचलित है।"

( सर्वतन्त्रस्वतंत्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामिराममिश्र शास्त्री. )

(१६) वर्तमान मुस्लीम धर्मकी उत्पत्ति हजरत मुहम्मद साहब पैगंबरसे हुई मानी जाती है. मुसलमानों का अरबी, फारसी, उर्दू वगैरह भाषा का साहित्य मुहम्मद साहेब के वक्तका अथवा इनके पिछले वक्त का है, मुहम्मद साहबको हुए पूरे १४०० वर्ष अभी तक नही हुए हैं, इससे यह बात साफ तौरसे सिद्ध है कि मुसलमानी किताबों में सृष्टिके आदि पुरुष की ( आदमबाबाकी ) जो कथा लिखी गई है वह जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके चरित्रके साथ संबंध रखती है, क्योंकि जैनशास्त्रोंमें उनको प्रथमतीर्थंकर, आदिनाथ आदिप्रभु, आदिमपुरुष युगादिम वगैरह अनेक नामों से उल्लिखित किया है, 'आदम' शब्द 'आदिम' शब्दका हूबहू रूपान्तर है, जैनोंमें 'आदिम' शब्द आदि तीर्थंकरके अर्थ में दो हजार वर्ष पहिले से प्रयुक्त हुआ दृष्टिमें आता है तब मुसलमानों की धार्मिक किताबों में उसका प्रयोग बहुत पीछे हुआ है. (जैनधर्म की महत्ता)

(१७) रायबहादुर पूर्णेन्दु नारायणसिंह एम० ए० बांकीपुर लिखते हैं—जैनधर्म पढ़ने की मेरी हार्दिक इच्छा है क्योंकि मैं ख्याल करता हूँ कि व्यवहारिकयोग्याभ्यास के लिये यह साहित्य सबसे प्राचीन ( Oldest ) है यह वेद की रीति रिवाजों से पृथक् है इसमें हिन्दू धर्म से पूर्व की आत्मिक स्वतन्त्रता विद्यमान है, जिसको परम पुरुषों ने अनुभव व प्रकाश किया है यह समय है कि हम इसके विषय में अधिक जानें।

(१८) महामहोपाध्याय पं० गंगानाथझा एम० ए० डी० एल० एल० इलाहाबाद—'जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त पर खंडन को पढा है, तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है जिसको वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा, और जो कुछ अब तक मैं जैन धर्म को जान सका हूँ उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि वह जैन धर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाता तो उनको जैन धर्म से विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।

(१९) श्रीयुत् नैपालचन्द्र राय अधिष्ठाता ब्रह्मचर्याश्रम शांतिनिकेतन बोलपुर—मुझको जैन तीर्थंकरों की शिक्षा पर अतिशय भक्ति है।

(२०) श्रीयुत् एम० डी० पाण्डे थियोसोफिकल सोसाइटी बनारस मुझे जैन सिद्धान्त का बहुत शौक है, क्योंकि कर्म सिद्धान्त का इसमें सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

(२१) इन्डियन रिव्यू के अक्टोबर सन् १९२० ई० के अंक में मद्रास प्रेसीडेन्सी कालेज के फिलोसोफिना प्रोफेसर मि० ए० चक्रवर्ती एम. ए. एल. टी ए. लिखित "जैन फिलोसिफी" नामके आर्टिकल का गुजराती अनुवाद महावीर पत्र के पौष शुक्ला १ संवत २४४८ वीर संवत्के अंकमें छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उद्धृत।

(२२) रिषभदेवजी 'आदिजिन' 'आदीश्वर' भगवानना नामे पण ओलखाय छे ऋग्वेदनां सूकतोमां तेमनो 'अर्हत तरीके उल्लेख थयलो छे जैनों तेमने प्रथम तीर्थंकर माने छे बीजा तीर्थंकरो बधा क्षत्रियोज हता

(२३) भारत मत दर्पण नाम की पुस्तक राजेन्द्रनाथ पंडित उर्फ रायप्रपन्नाचार्य्यने सामाजी प्रेस बड़ोदा में छपा कर प्रकाशित की है। उसके पृष्ट १० की पंक्ति ९ से १४ में लिखा है कि पूज्यपाद बाबू कृष्णनाथ बेनरजी अपने 'जिन जज्म' ( जेनिजम ) में लिखा है कि भारतमें पहिले ४०००००००० जैन थे उसी मत से निकल कर बहुत लोग दूसरे धर्ममें जानेसे इनकी संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है इस मत के नियम बहुत उत्तम है इस मत से देशको भारी लाभ

(२४) श्रीयुत् वी. वी. राजवाडे एम. ए. बी. एस. सी प्रोफेसर ऑफ पाली बरोडा कालेजका एक लेख "जैन धर्मनुं अध्ययन" जैन साहित्य संशोधक पुना भाग १ अंक १में छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उद्धृत।

प्रोफेसर वेबर बुल्हर जेकोबी हॉर्नल भांडारकर ल्युमन राइस गेरीनोट वगेरा विद्वानोए जैन धर्मना संशोधनमां अंगे करेल पूर्वक अथाग परिश्रम सेवे अनेक महत्वनी शोधो प्राप्त करेली छे। जैन धर्मे पूर्वना धर्मोमां पोताना स्वतंत्र स्थान प्राप्त करेलो आप छे जैन धर्म ते मात्र जैनोनेज नहीं परंतु तेमना सिवाय पाश्चात्य संशोधनमां प्रत्येक विद्यार्थी अने खास करीने जो पौर्वात्य देशोना तुलनात्मक अभ्यासमां रस लेता होय तेमने पहीव करी नाखे एवो रसिक विषय छे

(२५) डाक्टर F OTTO SCHRADER, P H. D का एक लेख बुद्धिष्ठ रिव्युना पुस्तक अंक १ मां प्रकट थयेला अहिंसा अने वनस्पति आहार शीर्षक लेख का गुजराती अनुवाद जैन साहित्य संशोधक अंक ४ में छपा है उसमें से कुछ वाक्य उद्धृत।

अत्यारे अस्तीत्व धरावता धर्मोमां जैन धर्म एक एवो धर्म छे के जेणे अहिंसाने क्रम संपूर्ण छे ब्राह्मण धर्मेमां पण पशुओ तथा समस्त जन्तु सम्प्रदायोओ माटे आ दुस्तर अहिंसा विहित थई अने आचारे वनस्पति आहारमा रूपमां ब्राह्मण जातिमां पण ते दाखल थई हती कारण ए छे के जैनोना धर्मे तत्त्वोए बे लोक मत जीत्यो हतो तेनी असर प्रबल रीते पडती थवी हती

(२६) राजा शिवप्रसाद सतारेहिन्द ने अपने निर्मित किये हुवे "भूगोल हस्तामलक" में लिखा है कि दो-ढाई हजार वर्ष पहिले दुनियाका अधिक भाग जैन धर्मका उपासक था।

(२७) पाश्चात्य विद्वान् रेवरेंड जे स्टीवेन्स साहेब लिखते हैं कि:—

साफ प्रगट है कि भारतवर्षका अधःपतन जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास सुवर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। और भारतवर्ष के ह्रास का मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामयी धर्मैक्यताहे। जिसकी नींव शंकराचार्य के जमाने से जमा दी गई थी। जैनमित्र वर्ष २४ अङ्क ४० से

(२८) पाश्चात्य विद्वान् मि॰ 'सर विलियम' और हैमिल्टन ने अनस्य विचारों के मंदिर का आधार जैनों के इस अनेकान्तवाद को ही माना है। जैनमत में अनेकान्तवाद का ही दूसरा नाम स्याद्वाद है।

(२९) डाक्टर हामरले ने एक लेखसम्ह "एनसाइक्लोपिडिया हरी ऑफ हिन्दु लॉ" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह कहना काफी होगा कि जब कभी जैन धर्मका इतिहास अलग तय्यार होगा तो हिन्दू कानूनके विद्यार्थी के लिये उसकी रचना बडी महत्व की होगी, क्योंकि यह निःसंशय यह सिद्ध कर देगा कि जैनी हिन्दू नहीं हैं।

(३०) इम्पीरियल गेजीटियर ऑफ इंडिया भाग्यसूत्र दो पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि कोई १ इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गौतम बुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गौतम बुद्धने महावीर स्वामी के बाद शरीर त्याग किया, यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर और होचुके थे।

(३१) मिस्टर डी राईस डेविड साहिब इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भा. २९ नाम की पुस्तक में लिखा है, यह बात अब निश्चित है कि जैनमत बौद्धमत से निःसंदेह बहुत पुराना है और बुद्ध के समकालीन महावीर द्वारा पुनः संजीवित हुआ है और यह बात भी भले प्रकार निश्चय है कि जैनमत के

मंतव्य बहुत ही जरूरी और बौद्धमत के मंतव्यों से बिलकुल विरुद्ध हैं, यह दोनों मत न केवल धर्म ही से स्वाधीन हैं बल्कि एक दूसरे से बिलकुल निराले हैं।

३२ श्रीयुत महामहोपाध्याय, सत्यसम्प्रदायाचार्य्य सर्वतंत्र स्वतंत्र पं० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री भूतप्रोफेसर संस्कृत कालेज बनारस

यह शास्त्रीजी महोदय अपने मि० पौष शु० १ सं० १९६२ को काशी नगर में दिये हुये व्याख्यान में कहते हैं:—

(१) वैदिकमत और जैनमत सृष्टि की आदि से बराबर अविच्छिन्न चले आये हैं और इन दोनों मतों के सिद्धान्त विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं जैसा कि मैं पूर्व में कह चुका हूँ अर्थात सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद, परलोकास्तित्व आत्मा का निर्विकारत्व, मोक्ष का होना और उसका नित्यत्व, जन्मान्तर के पुण्य पाप से जन्मान्तर में फलभोग, व्रतोपवासादि व्यवस्था, प्रायश्चित व्यवस्था, महाजनपूजन, शब्दप्रामाण्य इत्यादि समान हैं।

(२) जिन जैनों ने सब कुछ माना उनसे नफरत करने वाले कुछ जानते ही नहीं और मिथ्या द्वेषमात्र करते हैं।

(३) सज्जनो ! जैनमत में और बौद्धमत में जमीन आसमान का अन्तर है उसे एक जान कर द्वेष करना अज्ञ जनों का कार्य है।

(४) सब से अधिक वह अज्ञ है जो जैन सम्प्रदाय सिद्ध मेलों में विघ्न डालकर पाप के भागी होते हैं।

(५) सज्जनो ! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षांति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्यादि गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि जहां वह पाया जाय वहां पर बुद्धिमान् पूजा करने लगते हैं। तब तो जहां ये ( अर्थात जैनों में ) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान हैं उनकी पूजा न करना अथवा ऐसे गुणपूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है ?

(६) पूरा विश्वास है कि अब आप जान गए होंगे कि वैदिक सिद्धान्तियों के साथ जैनों के विरोध का मूल केवल अज्ञों की अज्ञता है............ ....।

(७) मैं आपको कहां तक कहूँ, बड़े बड़े नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैनमतखण्डन किया है वह ऐसा किया है जिसे सुन कर हसी आती है।

(८) मैं आपके सन्मुख आगे चलकर स्याद्वाद का रहस्य कहूँगा तब आप अवश्य जान जायगे कि वह अभेद्य किला है उसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते परन्तु साथ ही खेद के साथ कहा जाता है कि अब जैनमत का बुढ़ापा आगया है। अब इसमें इने गिने साधु गृहस्थ विद्वान् रह गए हैं. .. .. .... ..

(९) सज्जनो ! एक दिन वह था कि जैनसम्प्रदाय के आचार्यों की हुँकार से दशों दिशायें गूँज उठती थीं।

(१०) सज्जनो ! जैसे कालचक्र ने जैनमत के महत्त्व को ढाँक दिया है वैसे ही उसके महत्त्व को जाननेवाले लोग भी अब नहीं रहे।

(११) "रज्जब सांचे सूर को वैरी करे बखान" यह ने बहुत ही ठीक कहा है।

सज्जनो ! आप जानते हैं मैं एक वैष्णव सम्प्रदाय का आचार्य हूं यही नहीं मैं उस सम्प्रदाय का सर्वतोभाव से रक्षक हूं और साथ ही उसको परम ऊंची प्रकार से देखने वालों का दीक्षक भी हूं तो भी मेरी मनोवृत्ति में मुझे यह कहना सत्य के कारण आवश्यक हुआ है कि जैनों का ग्रन्थसमुदाय सारस्वत महासागर है उसकी ग्रन्थसंख्या इतनी अधिक है कि उन ग्रन्थों का सूचीपत्र भी एक निबन्ध हो जायगा " " उस पुस्तक समुदाय का लेख और लेखन कैसा गंभीर, युक्तिपूर्ण भावपरित, विशद और अगाध है। इसके विषय में इतना ही कह देना उचित है कि जिन्होंने इस सारस्वत समुद्र में अपने मतिमन्थान को डालकर चिर आन्दोलन किया है वे ही जानते हैं ..

(१२) अब तो सज्जनो ! आप अवश्य जान गए होंगे कि जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार सृष्टि का आरम्भ हुआ।

(१३) मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादिदर्शनों से भी पूर्व का है इत्यादि।

## २२ भारतगौरव के तिलक, पुरुषशिरोमणि, इतिहासज्ञ, माननीय पं० बालगंगाधर तिलक, भूतसम्पादक, "केसरी"

इनके ३ नवम्बर सन् १९०४ को बड़ौदानगर में दिये हुए व्याख्यान से—

(१) जैनधर्म विशेषकर ब्राह्मणधर्म के साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन हैं।

(२) ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है। यह विषय अब निर्विवाद तथा मतभेदरहित है और इस विषय में इतिहास के दृढ़ प्रमाण हैं।

(३) इसी प्रकार जैनधर्म में "महावीर स्वामी' का शक ( सम्वत् ) चला है जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं। शक चलाने की कल्पना जैनी भाइयोंने ही उठाई थी।

(४) गौतमबुद्ध महावीर स्वामी ( जैन तीर्थंकर ) का शिष्य था जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्मकी स्थापना के प्रथम जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे। इससे भी जैनधर्मकी प्राचीनता जानी जाती है। बौद्धधर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्धधर्मके तत्त्व जैनधर्मके तत्त्वोंके अनुकरण हैं।

(५) श्रीमान महाराज गायकवाड़ ( बड़ोदा नरेश ) ने पहिले दिन कान्फ्रेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार 'अहिंसा परमोधर्मः' इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छापमारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशुहिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूतकाव्य आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं .. परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मणधर्मसे बिदाई ले जानेका श्रेय ( पुण्य ) जैनधर्म ही के हिस्से में है।

(६) ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म दोनोंके झगड़े की जड़ हिंसा थी वो अब नष्ट होगई है। और इस रीति से ब्राह्मण धर्म को जैनधर्म ही ने अहिंसाधर्म सिखाया।

(७) ब्राह्मणधर्म पर जो जैनधर्मने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैनधर्म के ही योग्य है। अहिंसा का सिद्धान्त जैनधर्म में प्रारम्भ से है और इस तत्त्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्धधर्म अपने अनुयायी चीनीयों के रूप में सर्वभक्षी होगया है।

(८) ब्राह्मण और हिन्दुधर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया, यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है।

(९) महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्मतत्त्व सर्वमान्य होगया।

(१०) पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण जैनपण्डित जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् होगए है।

(११) ब्राह्मण धर्म जैनधर्म से मिलता हुआ है इस कारण टीक रहा है। बौद्धधर्म का जैनधर्मसे विशेष अमिल होने के कारण हिन्दुस्थान से नाम शेष होगया है।

(१२) जैनधर्म तथा ब्राह्मणधर्म का पीछेसे कितना निकट सम्बन्ध हुआ है सो ज्योतिपशास्त्री भास्कराचार्य्य के ग्रन्थ से विशेष उपलब्ध होता है। उक्त आचार्य्यने ज्ञान दर्शन और चारित्र ( जैनशास्त्र विहित रत्नत्रय धर्म ) को धर्म तत्त्व बतलाए हैं।

## २४ श्रीयुत वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० के बंगला लेख के श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी द्वारा अनुवादित हिन्दी लेख से उद्धृत कुछ वाक्य

(१) हमारे देश में जैनधर्म की आदि उत्पत्ति, शिक्षा नीति और उद्देश्य सम्बन्धी कितने ही भ्रान्तमत प्रचलित हैं इसलिये हम लोग जैनियों से घृणा करते रहते हैं ··········। इसलिए मैं इस लेख में भ्रम समूह दूर करने की चेष्टा करूंगा।

(२) जैन निरामिषभोजी ( मांसत्यागी ) क्षत्रियों का धर्म है। "अहिंसा परमोधर्मः" इसकी सार शिक्षा और जड़ है। इस मत में "जीव हिंसा नहीं करना, किसी जीव को कष्ट नहीं देना" यही श्रेष्ठ धर्म है।

(३) शंकराचार्य महाराज स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैनधर्म अति प्राचीनकाल से है। वे बाद-रायण व्यास के वेदान्त सूत्र के भाष्य में कहते हैं कि दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद के सूत्र ३२–३६ जैनधर्म ही के सम्बन्ध में हैं। शारीरिक मीमांसा के भाष्यकार रामानुजजी का भी यही मत है।

(४) योगवासिष्ट रामायण वैराग्य प्रकरण, अध्याय १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्रजी जिनेन्द्र के सदृश शान्त प्रकृति होने की इच्छा प्रकाश करते हैं, यथाः—

नाहं रामो नमे वांछा भावेषु च न मे मनः। शान्तिमासितु मिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा॥

(५) रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १४, श्लोक २२ में राजा दशरथ ने श्रमणगणों (अर्थात् जैन मुनियों) का अतिथिसत्कार किया, ऐसा लिखा है:—

तापसाभुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।

भूषण टीका में श्रमण शब्द का अर्थ दिगम्बर ( अर्थात् सर्व वस्त्रादि रहित जैनमुनि ) किया है। यथाः—

श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसना इति निघण्टुः।

(६) शाकटायन के उणादि सूत्र में 'जिन' शब्द व्यवहृत हुआ है.—

इणजस जिनीङुष्यविभ्योनक सूत्र २५९ पाद ३, सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता ने इस सूत्र की व्याख्या में 'जिनोऽर्हन्,' कहा है।

मेदनीकोष में भी 'जिन' शब्द का अर्थ 'अर्हत्' 'जैनधर्म के आदि प्रचारक' है।

वृत्तिकारगण भी 'जिन' के अर्थ में 'अर्हत्' कहते हैं यथा उणादि सूत्र सिद्धान्तकौमुदी।

शाकटायन ने किस समय उणादि सूत्र की रचना की थी? यास्क की निरुक्त में शाकटायन के नाम का उल्लेख है। और पाणिनि के बहुत समय पहिले निरुक्त बना है इसे सभी स्वीकार करते हैं। और

महाभाष्य प्रणेता पतंजलि के कई सौ वर्ष पहिले पाणिनि ने जन्म ग्रहण किया था। अतएव अब निश्चय है कि शाकटायन का उणादि सूत्र अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है।

(७) बौद्धग्रन्थ में जैनधर्म निर्ग्रंथों का धर्म बतलाया है और यही निर्ग्रन्थ धर्म बौद्धधर्म के बहुत पहिले प्रचलित था।

(८) डा० राजेन्द्रलाल मित्र योगसूत्र की प्रस्तावना में कहते हैं कि सामवेद में एक बलिदानविरोधी यति (जैन मुनि) का उल्लेख है। उनका समस्त ऐश्वर्य भृगु को दान कर दिया गया था, क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण के मत में बलिदान विरोधी यति को शृगाल के सन्मुख निक्षिप्त करना चाहिये। मगध या कीकट में यज्ञयागादि का विरोधी एक सम्प्रदाय था, (देखो ऋग्वेद मण्डल ३ अध्याय ३, वर्ग २१ ऋचा १४, तथा ऋग्वेद मं ८, अ० १०, सूक्त ८९, ऋचा ३, ४ तथा ऋग्वेद मं २ अ २ सू० १२, ऋचा ५, ऋग्वेद मण्डल ६ अध्याय ४, वर्ग ११, ऋचा १०, इत्यादि)।

(९) सांख्य दर्शन सूत्र ६—"अविशेषश्चोभयो:" अर्थात् दुःख और वेदना दूर करने वाले दृष्टमात्र और वैदिक उपायों में कोई भेद नहीं है। क्योंकि वैदिक बलिदान एक निष्ठुर प्रथामात्र है। यज्ञ में पशु हनन करने से कर्मबन्ध होता है, पुरुष को वास्तव लाभ कुछ नहीं होता।

"मा हिंस्यात्सर्वभूतानि।" "अग्निषोमीयं पशुमालभेत्"

"दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः" सांख्यकारिका ॥

गौडपाद—सांख्यकारिका के भाष्य में निम्न लिखित श्लोक उद्धृत कर के कपिल ऋषि के मत का समर्थन करते हैं—

तातो यद्यप्युक्तोऽम्यस्तं जन्मजन्मान्तरेष्वपि। त्रयी धर्ममधर्माढ्यं न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥

अर्थात्—हे पिता! वर्तमान और गत जन्म में मैंने वैदिकधर्म का अभ्यास किया है, परन्तु मैं इस धर्म का पक्षपाती नहीं हूं क्योंकि यह अधर्मपूर्ण है।

(१०) कपिलसूत्र का भाष्यकार विज्ञान भिक्षु "मार्कण्डेय पुराण से" निम्न लिखित श्लोक उद्धृत करके कपिलमत का समर्थन करता है—

तस्मादयास्याम्यहं तात दृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिम्। त्रयी धर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसन्निभम् ॥

अर्थात्—हे तात! वैदिकधर्म को इस प्रकार अधर्म और निष्ठुरतापूर्ण देख कर मैं किस प्रकार इसका अनुसरण करूं? वैदिकधर्म किंपाकफल के समान बाहर से सौन्दर्य किन्तु भीतर हलाहल (विष) पूर्ण है।

(११) "महाभारत" का मत इस विषय में जानने के लिये अश्वमेध पर्व, अनुगीता ४९ अध्याय ९, श्लोक ११ की नीलकंठ कृत टीका पढ़िये।

(१२) प्राचीनकाल में महात्मा ऋषभदेव "अहिंसा परमोधर्मः" का शिक्षा देते थे। उनकी शिक्षा से देव मनुष्य और इतर प्राणियों के अनेक उपकार साधन किये हैं। उस समय ३६३ पुरुष पाखंड धर्म प्रचारक भी थे। चार्वाक व नेता "बृहस्पति" उन्हीं में से एक थे। मेक्समूलर आदि यूरोपीय पण्डितों की भी यही धारणा है जो उनके सन् १८९९ के छपाये ग्रन्थ है जिसे ७६ वर्ष की उमर में उन्होंने लिखा है।

(१३) अतएव प्राचीन भारत में नाना धर्म और नाना दर्शन प्रचलित थे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(१४) जैनधर्म हिन्दूधर्म से सर्वथा स्वतंत्र है। उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं है। विशेषतः प्राचीन भारत में किसी धर्मान्तर से कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करनेकी प्रथा ही नहीं थी। मेक्समूलर का भी यही मत है।

(१५) लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ* जैनधर्म के स्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणों का अभाव नहीं है। यथा —

(१) बौद्ध लोग महावीर को निर्ग्रन्थ अर्थात् जैनियों का नायक मात्र कहते हैं स्थापक नहीं कहते।

(२) जर्मन डाक्टर जैकोबी भी इसी मतके समर्थक हैं।

(३) हिन्दूशास्त्रों और जैनशास्त्रों का भी इस विषय में एक मत है। भागवत के पांचवें स्कन्ध के अध्याय २-६ में ऋषभदेव का कथन है जिसका भावार्थ यह है:—

चौदह मनुओं में से पहले मनु स्वयंभू के प्रपोत्र नाभिका पुत्र ऋषभदेव हुआ जो इस काल की अपेक्षा जैन सम्प्रदाय का आदि प्रचारक था। इनके जन्मकाल में जगत की बाल्यावस्था थी, इत्यादि।

भागवतके अध्याय ६ श्लोक ९-११ में लिखा है कि "कोंकवेंक और कुटक का राजा अर्हत् ऋषभ के चरित्र श्रवण करके कलियुग में ब्राह्मण विरोधी एक नवीन धर्म के प्रचार का मानस करेगा किन्तु हमने अन्य किसी भी ग्रन्थ में ऐसे किसी राजा का नाम नहीं पाया। अर्हत् को अन्य कोई भी ग्रन्थकार कोंकवेंक और कुटक का राजा नहीं कहता।

अर्हत् का अर्थ (अर्ह धातु से) प्रशंसार्ह तथा पूज्य है। शिव पुराण में अर्हत् शब्दका व्यवहार हुआ है किन्तु अर्हत नाम से कोई राजा का नाम नहीं है, ऋषभ ही को अर्हत् कहते हैं। अर्हत राजा कलियुग में जैनधर्म का प्रचारक होता तो वाचस्पत्य (कोषकार) ने ऋषभ को जिनदेव वा शब्दार्थ चिंतामणिने उन्हें आदि जिनदेव कभी नहीं कहा होता। किसी किसी उपनिषद में भी ऋषभ को अर्हत् कहा है।

भागवत् के रचयिताने क्यों यह बात कही सो कहा नहीं जा सकता।

(४) महाभारत के सुविख्यात टीकाकार शांतिपर्व, मोक्षधर्म अध्याय २६३, श्लोक २० की टीका में कहते हैं:—

अर्हत् अर्थात् जैन ऋषभ के चरित्र में मुग्ध हो गये थे। यथा:—

"ऋषभादीनां महायोगिनामाचारे दृष्टाव अर्हतादयो मोहिता:"

इस प्रकार जाना जाता है कि हिन्दू शास्त्रों के मत से भी भगवान् ऋषभ ही जैनधर्म के प्रथम प्रचारक थे।

(५) डॉ० फुहरर ने जो मथुरा के शिलालेखों से समस्त इतिवृत्तिका खोज किया है उसके पढ़ने से जाना जाता है कि पूर्व काल में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियां बनाते थे। इस विषय का एपिग्रेफिया इंडिका नामका ग्रन्थ अनुवाद सहित मुद्रित हुआ है। यह शिलालेख दो हजार वर्ष पूर्व कनिष्क, हुवष्क वासुदेवादि राजाओं के राजत्व काल में खोदे गये हैं।

(देखो उपरोक्त ग्रन्थ का भाग १, पृष्ट ३८९, न० ८ व १४ और भाग २, पृष्ट २०६, २०७, न० १८ इत्यादि)।

अतएव देखा जाता है कि दो हजार वर्ष पूर्व ऋषभदेव प्रथम जैन तीर्थंकर कह कर स्वीकार किये गये हैं। महावीर का मोक्षकाल ईसवी सन् से ५२६ वर्ष पहिले और पार्श्वनाथ का ७७६ वर्ष पहिले निश्चित है। यदि ये जैनधर्म के प्रथम प्रचारक होते तो दो हजार वर्ष पहिले के लोग ऋषभदेव की मूर्ति की पूजा नहीं करते।

---

* इनके निर्वाण को आजसे २७०५ वर्ष होचुके। यह जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर थे जो चोवीसवें अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी से २५० वर्ष पूर्व हुए।

(१६) जैन धर्म की सार शिक्षा यह है—

१—इस जगत का सुख, शान्ति और ऐश्वर्य मनुष्य के चरम उद्देश्य नहीं हैं। संसार से जितना बन सके निर्लिप्त रहना चाहिये।

२—आत्मा की मंगल कामना करो।

३—तुम जब कभी किसी सत्कार्य के करने में तत्पर हो तब तुम कौन हो और क्या हो यह बात स्मरण रक्खो।

४—यह धर्म परलोक, (मोक्ष) विश्वासकारी योगियों का है।

५—सांसारिक भोग विलास की इच्छायें जैनधर्म की विरोधनी हैं।

६—अभिमान त्याग, स्वार्थ त्याग और विषय सुख त्याग इस धर्म की भित्तियां हैं।

(१७) जैनधर्म मलिन आचरण की समष्टी है, यह बात सत्य नहीं है दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों श्रेणियों के जैन शुद्धाचरणी हैं।

(१८) जैनधर्म ज्ञान और भाव का मिश्र हुए है और मोक्ष भी इसी पर निर्भर है।

(१९) जैन मुनियों की व्यवस्था और जिन मूर्तिपूजा उसका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करता है।

३५ रा० रा० वासुदेव गोविन्द आपटे बी. ए., इन्दौर ने बम्बई हिन्दूयूनियन क्लब में दिसम्बर १९०३ में दिये व्याख्यान के कुछ वाक्य

(१) हिन्दुस्थान के सम्पूर्ण व्यापार का एक तिहाई भाग जैनियों के हाथ में है।

(२) बड़े बड़े जैन कार्यालय, भव्य जैन मन्दिर अनेक लोकोपयोगी संस्थाएं हिन्दुस्तान के बहुत से बड़े २ भागों में हैं।

(३) प्राचीन काल से जैनियों का नाम इतिहास प्रसिद्ध है और जैनधर्म के अनेक राजा होगए हैं।

(४) स्वयं अशोक ही बौद्धधर्म स्वीकार करने से पहले जैन धर्मानुयायी था।

(५) कर्नल टॉड साहेब के राजस्थानीय इतिहास में उदयपुर के घराने के विषय में ऐसा लिखा है कि कोई भी जैन यति उस स्थानमें जब शुभागमन करता है तो राणाजी साहिब उसे आदर पूर्वक लाकर योग्य सत्कार का प्रबन्ध करते हैं। इस विनय प्रबन्ध की प्रथा वहां अब तक जारी है

(६) प्राचीन कालमें जैनियों ने उत्कट पराक्रम या राज्य कार्य भार का + परिचालन किया है। आज कल के समय में इनकी राजकीय अवनति मात्र दृष्टिगोचर होती है।

(७) दक्षिणमें तामिल व कनड़ी इन—दोनों भाषाओं के जो व्याकरण प्रथम प्रस्तुत हुए हैं वे जैनियों ही के किये थे।

(८) प्राचीन काल के भारतवर्षीय इतिहासमें जैनियों ने अपना नाम अजर अमर रखा है।

(९) वर्तमान शान्ति के समय व्यापारवृद्धि के कार्यों में अग्रेसर होकर इन्होंने (जैनियों ने) अपना महान पूर्ण रीति से स्थापित किया है।

(१०) हमारे जैन बान्धवों के पूर्वज प्राचीन कालमें ऐसे २ स्मरणीय कृत्य कर चुके हैं तो भी, जैनी कौन हैं, उनके धर्म के मुख्य तत्त्व कौन कौनसे हैं, इसका परिचय बहुत ही कम लोगों को होना बड़े आश्चर्य की बात है।

(११) "न गच्छेज्जैन मंदिरम्" अर्थात् जैनमंदिर में प्रवेश करने मात्र में भी महा पाप है, ऐसा निषेध उस समय कठोरता के साथ पाले जाते थे जैन मन्दिर की भीत की आड़ में क्या है, इसकी खोज

+ प्राचीन काल में चक्रवर्ती, अर्द्ध चक्री, बल संडलीक मंडलीक आदि बड़े २ राज्याधिकारी जैनधर्मी हुए।

करे कौन ? ऐसी स्थिति होने से ही जैन धर्म के विषय में झूंठे गपोड़े उड़ने लगे। कोई कहता है जैनधर्म नास्तिक है, कोई कहता है बौद्धधर्म का अनुकरण है, कोई कहता है जब शंकराचार्य ने बौद्धों का पराभव किया तब बहुत से बौद्ध पुनः ब्राह्मण धर्म में आगये। परन्तु उस समय जो थोड़े बहुत बौद्ध धर्म को ही पकड़े रहे उन्हीं के वंशज यह जैन हैं, कोई कहता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म का शेष भाग तो नहीं किन्तु हिन्दू धर्म का ही एक पंथ है। और कोई कहते हैं कि नग्न देव को पूजने वाले जैनी लोग ये मूल में आर्य ही नहीं हैं किन्तु अनार्यों में से कोई हैं। अपने हिन्दुस्तान में ही आज चौवीस सौ वर्ष पूर्व से पड़ौस में रहने वाले धर्म के विषय में जब इतनी अज्ञानता है तब हजारों कोस से परिचय पानेवाले व उससे मनोऽनुकूल अनुमान गढ़नेवाले पाश्चिमात्यों की अज्ञानता पर तो हँसना ही क्या है।

(१२) ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है। पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे ऐसी कथा जो प्रसिद्ध है वह सर्वथा भूल है। ऐसे ही वर्द्धमान अर्थात् महावीर भी जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं। वे २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।

(१३) जैनधर्म में अहिंसा तत्व अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। बौद्ध धर्म व अपने ब्राह्मण धर्म में भी यह तत्व है तथापि जैनियों ने इसे जिस सीमा तक पहुँचा दिया है वहा तक अद्यापि कोई नहीं गया है।

(१४) जैन शास्त्रों में जो यति धर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है इस में कुछ भी शंका नहीं।

(१५) जैनियों में स्त्रियों को भी यति दीक्षा लेकर परोपकारी कृत्यों में जन्म व्यतीत करने की आज्ञा है। यह सर्वोत्कृष्ट है। हिन्दु समाज को इस विषय में जैनियों का अनुकरण अवश्य करना चाहिये।

(१६) ईश्वर सर्वज्ञ, नित्य और मंगल स्वरूप है, यह जैनियों को मान्य है परन्तु वह हमारी पूजन व स्तुति से प्रसन्न होकर हम पर विशेष कृपा करेगा—इत्यादि, ऐसा नहीं है। ईश्वर सृष्टि का निर्माता, शास्ता या संहार कर्ता न होकर अत्यन्त पूर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ आत्मा ही है ऐसा जैनी मानते हैं। अतएव वह ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानते ऐसा नहीं है। किन्तु ईश्वर की कृति सम्बन्धि विषय में उनकी और हमारी समझ में कुछ भेद है। इस कारण जैनी नास्तिक हैं ऐसा निर्बल व्यर्थ अपवाद उन विचारों पर लगाया गया है।

अतः यदि उन्हें नास्तिक कहोगे तो,

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु.। न कर्म फल संयोग स्वाभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापन कस्य सुकृतय विभुः। अज्ञानो नावृत ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव ॥

ऐसा कहनेवाले श्री कृष्णजी की भी नास्तिकों में गणना करनी पड़ेगी।

आस्तिक व नास्तिक यह शब्द ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्ध में व कर्तृत्व सम्बन्ध में न जोड़ कर पाणीनीय ऋषि के सूत्रानुसार:—

परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिक'। परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिक ॥

श्रद्धा करें तो जैनियों पर नास्तिकत्व का आरोप नहीं आ सकता। कारण जैनी परलोक का अस्तित्व माननेवाले हैं।

(१७) मूर्ति का पूजन श्रावक अर्थात् गृहस्थाश्रमी करते हैं, मुनि नहीं करते। श्रावकों की पूजन विधि प्रायः हम ही लोगों सरीखी है।

(१८) हमारे हाथ से जीव हिंसा न होने पावे इसके लिये जैनी जितने डरते हैं उतने बौद्ध नहीं डरते। बौद्धधर्मी विदेशों में मांसाहार अधिकता के साथ जारी है। "आप स्वत. हिंसा न करके दूसरे के

स्वतंत्र, सादा, बहुत मूल्यवान तथा ब्राह्मणों के मतों से भिन्न है तथा यह बौद्ध के समान नास्तिक नहीं है।

(३७) जर्मनी के डाक्टर जोन्सहर्टल ता. १७-६-१९०८ के पत्र में कहते हैं कि मैं अपने देश वासियों को दिखाउंगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊंचे विचार जैनधर्म और जैन आचार्यों में हैं। जैनों का साहित्य बौद्धों से बहुत बढ़कर है और ज्यों २ मैं जैनधर्म और उसके साहित्य को समझता हूँ त्यों २ मैं उनको अधिक पसद करता हूँ।

(३८) मुहम्मद हाफिज सैयद बी. ए. एल टी. थियोसोफिकल हाई स्कूल कानपुर लिखते हैं:—"मैं जैन सिद्धांत के सूक्ष्मतत्वों से गहरा प्रेम करता हूँ।"

(३९) श्रीयुत् तुकाराम कृष्ण शर्मा लट्टू बी. ए पी. एच. डी. एम. आर. ए एस. एम. ए. एस बी. एम. जी ओ एस प्रोफेसर संस्कृत शिलालेखादि के विषयके अध्यापक क्वीन्स कॉलेज बनारस।

स्याद्वाद् महाविद्यालय काशी के दशम वार्षिकोत्सव पर दिये हुए व्याख्यान में से कुछ वाक्य उधृत।

"सबसे पहले इस भारतवर्ष में "रिषभदेवजी" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए। वे दयावान् भद्र परिणामी, सबसे पहिले तीर्थंकर, हुए जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षशास्त्र का उपदेश दिया। बस यह ही जिनदर्शन इस कल्पमें हुआ। इसके पश्चात् अजित नाथसे लेकर महावीर तक तेइस तीर्थंकर अपने अपने समयमें अज्ञानी जीवोंका मोह अंधकार नाश करते थे।

(४०) साहित्यरत्न डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं कि महावीरने डींडीम नादसे हिन्दमें ऐसा सदेश फैलाया कि:—धर्म यह मात्र सामाजिक रूढि नहि हैं परन्तु वास्तविक सत्य है, मोक्ष यह बाहरी क्रियाकाडसे नहिं मिलता, परन्तु सत्य-धर्म स्वरूपमें आश्रय लेने से ही मिलता है। और धर्म और मनुष्यों में कोई स्थायी भेद नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षाने समाज के हृदयमें जड़ करके बैठी हुई भावनारूपी विघ्नोंको त्वरासे भेद दिये और देशको वशीभूत करलिया, इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकोंके प्रभाव बलसे ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत हो गई थी।

(४१) हिन्दी भाषाके सर्वश्रेष्ठ लेखक धुरधर विद्वान् पडीत् श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदीने प्राचीन जैन लेख—संग्रहकी समालोचना "सरस्वती" में की है।।उसमेंसे कुछ वाक्य ये हैं:—

( १ ) प्राचीन ढर्हेके हिन्दू धर्म्मावलम्बी बड़े बड़े शास्त्री तक अब भी नहीं जानते कि जैनियों का स्याद्वाद किस चिड़ियाका नाम है। धन्यवाद है जर्मनी, फ्रान्स और इंग्लेंड के कुछ विद्यानुरागी विशपज्ञोंको जिनकी कृपासे इस धर्मके अनुयायिओंको कीर्तिकलापकी खोज और भारत वर्ष के साक्षर जैनों का ध्यान आकृष्ट हुआ यदि ये विदेशी विद्वान् जैनों के धर्म ग्रन्थों आदि की आलोचना न करते। यदि ये उनके कुछ ग्रंथों का प्रकाश न करते और यदि ये जैनों के प्राचीन लेखों की महत्ता प्रकट न करते तो हम लोंग शायद पूर्ववत् ही अज्ञान के अधकारमें ही डूबे रहते।

( २ ) भारतवर्षमें जैन धर्म्म ही एक ऐसा धर्म्म है जिसके अनुयायी साधुओं ( मुनिओं ) और आचार्यों में से अनेक जनोंने धर्मोपदेशके साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थरचना और ग्रन्थ सग्रहमें खर्च कर दिया है

( ३ ) बीकानेर, जैसलमेर और पाटण आदि स्थानों में हस्तलिखित पुस्तकोंके गाडीयों बस्ते अब भी सुरक्षीत पाये जाते है।

( ४ ) अकबर इत्यादि मुगल बादशाहों से जैन धर्म्मकी कितनी सहायता पहुँची, इसका भी उल्लेख कई ग्रन्थों में है।

जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव का संक्षिप्त इतिहास लिख देता हूँ जिससे पाठक जैन धर्म का प्राचीन इतिहास से अवगत होजायंगे।

## भगवान् ऋषभदेव का समय

जैसे काल का आदि अन्त नहीं है वैसे सृष्टि का भी आदि अन्त नहीं है अर्थात् सृष्टि का कर्ता-हर्ता कोई नहीं है। अनादि काल से प्रवाह रूप चली आती है और भविष्य में अनन्तकाल तक ऐसे ही संसार चलता रहेगा। इसका अन्त न तो कभी हुआ और न कभी होगा।

सृष्टि में चैतन्य और जड़ एवं मुख्य दो पदार्थ हैं आज जो चराचर संसार दिखाई देता है वह सब चैतन्य और जड़ वस्तु का स्वरूप है। काल का परिवर्तन से कभी उन्नति कभी अवनति हुआ करती है उस कालका मुख्य दो भेद हैं (१) उत्सर्पिणी (२) अवसर्पिणी। इन दोनों को मिलाने से कालचक्र होता है ऐसा अनन्त कालचक्र भूतकाल में हो गये और अनंते ही भविष्यकाल में होगा वास्ते काल का आदि अन्त नहीं है। जब काल का आदि अन्त नहीं है तब काल की गणना करने वाला संसार सृष्टि का भी आदि अन्त नहीं होना स्वयं सिद्ध है।

(१) उत्सर्पिणी काल के अन्दर वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान जीवों का आयुष्य और शरीर (देहमान) आदि सब पदार्थों की क्रमशः उन्नति होती है।

(२) अवसर्पिणी काल में पूर्वोक्त सब बातों की क्रमशः अवनति होती है पर उन्नति और अवनति है वह समूहापेक्षा है न कि व्यक्ति अपेक्षा।

जब समय की अपेक्षा काल अनंता हो चुका है तब इतिहास भी इतना ही कालका होना एक स्वभाविक बात है परंतु वह केवली गम्य है न कि एक साधारण मनुष्य उसे कह सके व लिख सके।

जैसे हिन्दू धर्ममें कृतयुग, त्रेतायुग द्वापरयुग और कलयुग ये कालका परिवर्तन माना है, वैसे ही जैनधर्म में प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के छे छे हिस्से (आरा) द्वारा कालका परिवर्तन माना गया है।

(१) उत्सर्पिणी के छे हिस्से (१) दुःखमादुःखम (२) दुःखम (३) दुःखमासुखम (४) सुखमा-दुःखम (५) सुखम (६) सुखमासुखम इस का स्वभाव है कि वह दुःखकी चरमसीमा से प्रवेश हो क्रमशः उन्नति करता हुआ सुख की चरमसीमा तक पहुँच के खतम होजाता है। बाद अवसर्पिणी का प्रारंभ होता है।

(२) अवसर्पिणी के छे हिस्से (१) सुखमासुखम (२) सुखम (३) सुखमादुःखम (४) दुःखमासुखम (५) दुःखम (६) दुःखमादुःखम. इस काल का स्वभाव है कि वह सुख की चरमसीमा से प्रवेश हो क्रमशः अवनति करता हुआ दुःख की चरम सीमा तक पहुँच के खतम होजाता है। बाद फिर उत्सर्पिणी कालका प्रारंभ होता है। एवं एक के अन्त में दूसरी कालमाला की माफीक काल घूमता रहता है। वर्तमान समय जो वरत रहा है वह अवसर्पिणी काल है। *आज मैं जो कुछ लिख रहा हूँ वह इसी अवसर्पिणी काल के छ हिस्सों के लिये है।

अवसर्पिणी काल के छे हिस्से में पहले हिस्से का नाम सुखमासुखमारा है, वह चार कोड़ाकोड़ सागरोपम का है उस समय भूमिकी सुन्दरता सरसाइ व कल्पवृक्ष बड़े ही मनोहर—अलौकिक थे उस समय के मनुष्य बड़े रूपवान्, विनयवान्, सरलस्वभावी, भद्रिक परिणामी शान्तचित्त, कषायरहित ममत्वरहित ब्रह्मचारी, तीन गाउका शरीर, तीन पल्योपमका आयुष्य, दोसो छप्पन पांस पांसलिया असी मसी कसी, कर्म-रहित दश प्रकार के कल्पवृक्ष मनइच्छित भोगोपभोग पदार्थ से जिनको संतुष्ट करते थे उन युगलमनुष्यों (दम्पति) से एक युगल पैदा होता था। वह ४९ दिन उसका प्रतिपालन कर एक को छींक दूसरे को

स्वासी आते ही स्वर्ग पहुँच जाते थे पीछे रहा हुआ युगल अपनी शेष अवस्था में दम्पति सा बरताव स्वयं ही कर लेते थे उस जमाने के सिंह व्याघ्रादि पशु भी भद्रिक, वैरभावरहित, शान्तचित्तवाले ही थे जैसे जैसे काल निर्गमन होता रहा वैसे वैसे वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान देहमान आयुष्यादि सब में न्यूनता होती गई। यह सब अवसर्पिणी काल का ही प्रभाव था।

( २) दूसरे हिस्से का नाम सुखमआरा वह तीन क्रोडाक्रोड सागरोपमका था इस समय भी युगलमनुष्य पूर्ववत् ही थे पर इनका देहमान दो गाउ और आयुष्य दो पल्योपमका था प्रतिपालन ६४ दिन पास अस्थि १२८ और भी काल के प्रभाव से सब बातों में क्रमशः हानि होती आइ थी।

( ३ ) तीसरे हिस्से का नाम सुखमदुःखमारा यह दो कोडाकोड सागरोपम का था एक पल्योपम का आयुः एक गाउ का शरीर ७९ दिन प्रतिपालन ६४ पासास्थि आदि क्रमशः हानि होती रही इसके तीन हिस्से से दो हिस्सा तक तो युगलधर्म बराबर चलता रहा पर पिछले हिस्से में कालके प्रभाव से कल्पवृक्ष फल देने में संकोच करने लगे इस कारण से युगल मनुष्यों में ममत्वभावका संचार हुआ जहां ममत्वभाव होता है वहां क्लेश होना स्वभाविक ही है जहां क्लेश होता है वहां इन्साफ की भी परमावश्यकता हुआ करती है। युगल मनुष्य एक ऐसे न्यायाधीश की तलासी में थे ठीक उससमय एक युगल मनुष्य उज्जवल वर्ण के हस्तीपर सवारी कर इधर-उधर घूमता था युगलमनुष्यों ने सोचा कि यह सब में बड़ा मनुष्य है "कारण कि इस के पहले किसी युगलमनुष्य ने सवारी नहीं करी थी" सब युगलमनुष्यों ने एकत्र हो उस सवारी वाले युगल को अपना न्यायाधीश बनाके उसका नाम "विमलवाहन" रखदिया कारण उसका वाहन सुफेद ( विमल) था जब कोई भी युगलमनुष्य अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे तब वही 'विमलवाहन' उसको दंड देने को 'हकार दंड नीति मुकर्रर करी तदानुसार कह देता कि हैं! तुमने यह कार्य किया ? इतने पर वह युगल लज्जित विलज्जित हो जाता और तमाम उमर तक फिर से ऐसा अनुचित कार्य्य नहीं करता था। कितने काल तो इसमें निर्गमन हो गया। बाद विमलवाहन कुलकर की चंद्रयशा भार्या से चक्षुष्मान नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के माफिक न्यायाधीश ( कुलकर) हुआ, उसने भी 'हकार' नीति का ही दंड रखा चक्षुष्मान की चंद्राकान्ता भार्या से यशस्वी नाम का पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हुआ पर इसके समय कल्पवृक्ष बहुत कम हो गये जिसमें भी फल देने में बहुत संकीर्णता होने से युगलमनुष्यों में और भी क्लेश बढ़ गया 'हकार' नीतिका उल्लंघन होने लगा तब यशस्वी ने हकार को बढ़ा के 'मकार' नीति बनाई अगर कोई युगलमनुष्य अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे उसे 'मकार दंड अर्थात् 'मकरो' इससे युगलमनुष्य बड़े ही लज्जितविलज्जित होकर वह काम फिर कदापि नहीं करते थे। यशस्वी की रूपाखि से अभिचंद्र नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता की माफिक कुलकर हुआ उसके समय हकार मकार नीति दंड रहा अभिचंद्र के प्रतिरूपा नाम की भार्या से प्रसेनजीत नामका पुत्र पैदा हुआ वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हुआ इसके समय काल का और भी प्रभाव बढ़ गया। कि इसको 'हकार' 'मकार से बढ़ के 'धिकार' नीति बनानी पड़ी अर्थात् मर्यादा उल्लंघने वाले युगलों को, 'धिकार' कहने से वह लज्जितविलज्जित हो फिर दूसरीवार ऐसा कार्य्य नहीं करते थे प्रसेनजीत की चक्षुष्कान्ताकिसे मरुदेव नामका पुत्र हुआ, वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हो तीनों दंड नीति से युगलमनुष्यों को इन्साफ देता रहा मरुदेव की भार्या श्रीकान्ता की कुक्षी से नाभी नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के पद पर कुलकर हुआ, इसके समय भी तीनों प्रकार की दंड नीति प्रचलित थी पर कालका भयंकर प्रभाव युगलमनुष्यों पर इस कदर का हुआ कि वह हकार मकार धिकार ऐसी तीनों प्रकार की दंड नीति को उल्लंघन करने में अमर्यादित हो गये थे उस समय कल्पवृक्ष भी

जल लानेका आदेश दिया तब युगल पाणिलानेका गया बाद इन्द्रने राजसभा राजसिंहासन राजाके योग्य वस्त्राभूषणों से भगवान् को अलंकृत कर राजसिंहासनपर विराजमान कर दिये। युगलमनुष्य जलपात्र लाये भगवान् को सालंकृत देख पैरोंपर जलाभिषेक कर दिये तब इन्द्रने युगलोंको विनीत कह कर स्वर्गपुरी सदृश १२ योजन लंबी ९ योजन चौडी विनीता नामकी नगरी वसाई उसके देखादेख अन्य नगर ग्राम वसना प्रारंभ हुआ. भगवान् का इक्ष्वाकुवंश था। जिसको कोटवाल पदपर नियुक्त किया उनका उग्रकुल जिनको बडा माना उनका भोगकुल जिनको मन्त्रिपदपर मुकर्रर किया उनका राजन्कुल शेष जनताका क्षत्रियकुल स्थापन किया जबसे कुळ व वंशोंकी स्थापना हुई शेष कुल वश इनोके अन्दरसे कारण पा पाके प्रगट हुवे हैं।

भगवान् ने युगल मनुष्यों का प्रतिपालन करने में व नीतिधर्म्म का प्रचार करने में कितना ही काल निर्गमन किया उसके दरम्यान भगवान् के भरत बाहुबलादि १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियाँ हुई थी भरत बाहुबलादि को पुरुषों के ७२ *कला और ब्राह्मी सुन्दरी को स्त्रियों की ६४ †कला व अठारह प्रकार की लिपि बतलाई जिनसे ससार व्यवहार का सब कार्य प्रचलित हुआ अर्थात् आज संसार भरमें जो कलायें व लिपियाँ चल रही हैं वह सब भगवान ऋषभदेव की चलाई हुई कलाओं के अन्तर्गत हैं न कि कोई नवीन कला हैं। हाँ कभी किसी कला लिपिका लोप होना और फिर कभी सामग्री पाके प्रगट होना तो काल के प्रभाव से होता ही आया है।

भगवान का चलाया हुआ नीति धर्म्म-संसारका आचार व्यवहार कला कौशल्यादि संपूर्ण आर्यव्रत में फैल गया मनुष्य असी मसी कसी आदि कर्म से सुखपूर्वक जीवन चलाने लगे पर आत्मकल्याण के लिये लौकिकधर्म्म के साथ लोकोत्तर धर्म्म की भी परमावश्यक्ता होने लगी।

भगवान् के आयुष्य के ८३ लक्षपूर्व इसी ससार सुधारने में निकल चुके तब लौकान्तिकदेवने आके अर्ज करी कि हे दीनोद्धारक! आपने जैसे नीतिधर्म्म प्रचलित कर क्लेश पाते हुये युगल मनुष्यों का उद्धार

---

*पुरुषों की ७२ कला—लिखनेकीकला, पढनेकीकला, गणितकला, गीतकला, नृत्यकला, तालबजाना, पटहबजाना, मृदगबजाना, वीणाबजाना, वशपरीक्षा, भेरीपरीक्षा, गजशिक्षा, तुरंगशिक्षा, धातुर्वाद, दृष्टिवाद, मन्त्रवाद, बलिपलितविनाश, रत्नपरीक्षा, नारीपरिक्षा, नरपरीक्षा, छदबंधन, तर्कजल्पन, नीतिविचार, तत्त्वविचार, कवितशक्ति, जोतिषशास्त्रज्ञान, वैद्यक, षड्भाषा, योगाभ्यास, रसायणविधि, अजनविधि, अठारहप्रकारकीलिपि, स्वप्नलक्षण, इन्द्रजालदर्शन, खेतीकरनी, वाणिज्य-करना, राजाकीसेवा, शकुनविचार वायुस्तभन, अग्निस्तभन, मेघवृष्टि, विलेपनविधि, मर्दनविधि, ऊर्ध्वगमन, घटबंधन, घटभ्रमन, पत्रच्छेदन, मर्मभेदन, फलाकर्षण, जलाकर्षण, लोकाचार, लोकरजन, अफल वृक्षों को सफल करना, खड्गबंधन, छुरीबधन, मुद्राविधि, लोहज्ञान, दांतसमारण, कालक्षण, चित्रकरण, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दडयुद्ध, दृष्टियुद्ध खड्गयुद्ध, वागयुद्ध, गारुडविद्या; सर्पदमन, भूतमर्दन, योग—द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, वर्षज्ञान।

†अब स्त्रियोंकी चौसठ कला—नृत्यकला, औचित्यकला, चित्रकला, वादित्रकला, मन्त्र, तन्त्र, ज्ञान, विज्ञान, दभ, जलस्तंभ, गीतज्ञान, तालज्ञान, मेघवृष्टि, फलवृष्टि, आरामारोपण, आकारगोपन, धर्मविचार, शकुनविचार, क्रियाकल्पन, सस्कृतजल्पन, प्रसादनीति, धर्मनीति, वर्णिकावृधि, स्वर्णसिद्धि, तैलसुरभीकरण, लीलासचरण, गजतुरगपरीक्षा, स्त्रीपुरुषके लक्षण, कामक्रिया, अष्टादश लिपिपरिच्छेद, तत्कालबुद्धि, वस्तुशुद्धि, वैद्यकक्रिया, सुवर्णरत्नभेद, घटभ्रम, सारपरिश्रम, अंजनयोग, चूर्णयोग, हस्तलाघव, वचनपाटव, भोज्यविधि, वाणिज्यविधि, काव्यशक्ति, व्याकरण, शालिखंडन, मुखमंडन, कथाकथन, कुसुमगुथन, वरवेष, सकलभाषा, विशेषज्ञ, अभिधानपरिज्ञान, आभरण पहनने, भृत्योपचार, गृहाचार, शाठ्यकरण, परनिराकरण, धान्यरधन, केशबधन वीणावादीनाद, वितडावाद, अकविचार, लोकव्यवहार, अत्याक्षरिका, इसके सिवाय सौनारू नोकारू जो कुँभकार सुतार भाइ दरजी छीपा आदि की कलाओं अर्थात् यों कहें तो दुनियों का सब व्यवहार ही भगवान् आदिनाथ ने ही चलाया था।

किया है वैसे अब धार्मिक धर्म प्रकाश कर संसार समुद्र में परिभ्रमन करते हुवे जीवों का उद्धार कीजिये आपकी दीक्षा का समय आ पहुँचा है अर्थात् कुछ न्यून अठारा कोड़ाकोड़ सागरोपम से मोक्षमार्ग बन्द हो रहा है उसको आप फिरसे चालू करावें।

भगवान् दीक्षाका अवसर जान एक वर्ष तक ( वर्षीदान ) अति उदार भाववासे दान दिया, भरत को विनीता का राज बाहुबलीको तक्षशीला का राज और अंग बंग कुरु पुंड्र चेदि सुव्रत मागध अंध कलिंगभद्र पंचाल दशार्ण वीतभयादि पुत्रों को प्रत्येक देशका राज देदिया. पुत्रोंका नाम था वह ही नाम देश का पड़ गया भगवान् की दीक्षा के समय चौसठ इन्द्रोंने सपरिवार आकर के बड़ा भारी दीक्षा महोत्सव किया भगवान्ने ४००० पुरुषोंके साथ चैत्र वद ८ के दिन सिद्धोंको नमस्कार पूर्वक स्वयं दीक्षा धारण कर ली।

पूर्वजन्ममें भगवान्ने अन्तराय *कर्मोपार्जन किया था वास्ते भगवान् को भिक्षा के लिये पर्यटन करने पर भी एक वर्ष तक भिक्षा न मिली कारण भगवान् के पहला कोई इस रीती से भिक्षा देनेवाला था ही नहीं और उस समय के मनुष्य इस बात को जानते भी नहीं थे कि भिक्षा क्या चीज है ? हाँ हस्ति अश्व रत्न माणक मोती और आलंकार सुन्दर बालाओं की भेटें वह मनुष्य करते थे पर भगवान् को इससे कोइ भी प्रयोजन नहीं था। उस एक वर्षके अंदर जो ४००० शिष्य थे वह क्षुधा पिपासा से पीड़ित हो जंगल में जाके कन्दमूल फल फूलादिका भोजन कर वहांही रहने लगे कारण उत्तम कुलीन मनुष्य संसार त्यागन कर फिर उसको स्वीकार नहीं करते हैं वह सब जंगलों में रह कर भगवान् ऋषभदेवका ध्यान करते थे।

एक वर्ष के बाद भगवान् हस्तिनापुर नगरमें पधारे वहां बाहुबली का पौत्र श्रेयांस कुमारके हाथ से वैशाख सुद ३ को इक्षुरसका पारणा किया देवताओंने रत्नादि पंच पदार्थ की वर्षा करी उससे वह मनुष्य मुनियोंको दान देने की रीति जानने लगे वह हाल सुनके ४००० जंगलवासि मुनि कच्छ महाकच्छ वर्जके बाकी सब भगवान् के पास आके अपने संयम तप से आत्मकल्याण करने लग गये।

भगवान् छद्मस्थपने बाहुबली कि तक्षशीला के बाहर पधारे बाहुबली को खबर होने पर विचार किया कि प्रभात को मैं बड़े आडम्बर से भगवान् को वन्दन करने को जाऊंगा पर भगवान् सुबह अन्यत्र विहार कर गये उस स्थान बाहुबली ने भगवान् के चरण पादुकाओं की स्थापना करी वह तीर्थ राजाविक्रम के समय तक मौजूद था बाद किसी समय म्लेच्छोंने नष्ट कर दिया

क्रमशः भगवान् १००० वर्ष छद्मस्थ रहे अनेक प्रकारके तपश्चर्यादि करते हुवे पूर्वोपार्जित कर्मोंका क्षय कर फाल्गुन वद ११ को पुरिमताल के उद्यानमें दिव्य केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर लिया आप सर्वज्ञ हो सकल लोकालोक के भावों को हस्तामलकवत् माफिक देखने लग गये. भगवान् को केवलज्ञान हुआ उस समय सर्व इन्द्र सब देवीदेवताओं के कैवल्य महोत्सव करने को आये महोत्सव कर समवसरण की रचना करी यानि एक योजन भूमिमें रत्न, सुवर्ण, चांदी के तीन गढ़ बनाये उपर के मध्यभागमें स्फटिक रत्नमय सिंहासन बनाया. पूर्व दिशामें भगवान् विराजमान हुवे शेष तीन दिशाओं में इन्द्र के आदेशसे व्यन्तरदेवोंने भगवान् के सदृश तीन प्रतिबिंब ( मूर्त्तियां ) विराजमान कर दी चौतरफ के दरवाजे से आनेवाले सबको भगवान् का दर्शन होता था और सब लोक जानते थे कि भगवान् हमारे ही सन्मुख हैं योजन प्रमाण समवसरण में स्वच्छ जल सुगन्ध पुष्प और दशांगी धूप वगैरह सब देवों ने तीर्थंकरों की भक्ति के लिये किया था।

भगवान् के चार अतिशय जन्म से, एकादश ज्ञानोत्पन्नसे और १९ देवकृत एवं चौंतीस अतिशय व अनंत ज्ञान अनंत दर्शन अनंत चारित्र अनंत शक्ति अशोकवृक्ष भामंडल शिरछत्र सिंहासन आकाशमें देवादि

---

*किसी भवमें ५०० बलदोंके मुखपर छींकियाँ बन्धा के अन्तराय कर्म बान्धा था।

( स्थापणा ) पांच वर्णके घुटने प्रमाणे पुष्प तीनछत्र चौसठ इन्द्र दोनों तर्फ चमर कर रहे इत्यादि असंख्य देव देवी नर विद्याधरोंसे पूजित जिनके गुण ही अगम्य है ?

इधर माता मरूदेवा चिरकालसे ऋषभदेवकी राह देख रहीथी कभी कभी भरतको कहा करती थी कि भरत ! तुँ तो राज में मग्न हो रहा है कभी मेरे पुत्र ऋषभ की भी खबर मंगवाइ है? उसका क्या हाल होता होगा ? इत्यादि ।

भरत महाराज के पास एक तरफ से पिताजीको कैवलयज्ञानोत्पन्न की वधाई आइ, दूसरी तरफ आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न होने की खुशखबरी मिली, तीसरी तरफ पुत्र प्राप्ति की वधाई मिली. अब पहला महोत्सव किसका करना चाहिये ? विचार करने पर यह निश्चय हुआ कि पुत्र और चक्ररत्न तो पुन्याधीन है इस भवमें पौद्गलिक सुख देने वाला है पर भगवान् सच्चे आत्मिक सुख अर्थात् मोक्ष मार्ग के दातार हैं वास्ते पहिले कैवलयज्ञानका महोत्सव करना जरूरी है इधर माता मरूदेवा को भी खबर दे दी कि आपका प्यारा पुत्र बड़ा ही ऐश्वर्य संयुक्त पुरिमतालोद्यानमें पधार गये हैं यह सुन माता स्नान मज्जन कर भरत को साथ लेकर हस्ती के उपर होदेमें बैठ के पुत्र दर्शन करनेको समवसरण में आई भरतने ऊचा हाथ कर दादीजीको बतलाया कि वह रत्नसिंहासन पर आपके पुत्र ऋषभदेव विराजमान हैं माताने प्रथम तो स्नेह युक्त बहुत उपालभ दिया बाद वीतराग की मुद्रा देख आत्मभावना व क्षपकश्रेणि और शुक्ल ध्यान ध्याती हुई माता को कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शोत्पन्न हुआ, असङ्ख्यात काल से भरतक्षेत्र के लिये जो मुक्ति के दर्वाजे बन्ध थे उसको खोलने को अर्थात् नाशमान शरीर को हस्ती पर छोड सबसे प्रथम आप ही मोक्ष में जा विराजमान हुइ मानो ऋषभदेव भगवान् अपनी माता को मोक्ष भेजने के लिये ही यहा पधारे थे तत्पश्चात् चौसठ इन्द्रों और सुरासुर नर विद्यधरोंसे पूजित-भगवान् ऋषभदेवने चार प्रकार के देव व चार प्रकार की देवियों व मनुष्य मनुष्यणि और तीर्यंच तीर्यंचनि आदि विशाल परिषदा में अपना दिव्य ज्ञानद्वारा उच्चस्वर से भवतारणि अतीव गांभीर्य मधुर और सर्व भाव प्रकाश करने वाली जो नर अमर पशु पक्षी आदि सबकी समझ में आजावे वैसी धर्मदेशना दी जिसमें स्याद्वाद, नय निक्षेप द्रव्य-गुणपर्याय कारणकार्य निश्चय व्यवहार जीवादि नौतत्त्व षट् द्रव्य लोकालोक स्वर्ग मृत्यु पाताल का स्वरूप, व सुकृताकर्मका सुकृत फल दु'कृतकर्मका दु'-कृतफल दान शील तप भाव गृहस्थधर्म षट्कर्म बारहव्रत यतिधर्म पंचमहाव्रतादि विस्तार से फरमाया उस देशनाका असर श्रोताजनपर इस कदर हुवा कि वृषभसेन (पुडरिक) आदि अनेक पुरुष और ब्राह्मीआदि अनेक स्त्रियों ने भगवान् के पास मुनि धर्मको स्वीकार किया और जो मुनिधर्म पालनमें असमर्थ थे उन्होने श्रावक (गृहस्थ) धर्म अंगीकार किया उस समय इन्द्रमहाराज वज्ररत्नों के स्थाल में वासक्षेप लाकर हाजर किया तब भगवान् ने मुनि आर्यिक श्रावक और श्राविका पर वासक्षेप डाल चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना करी जिसमें वृषभसेन को गणधरपद पर नियुक्त किया जिस गणधर ने भगवान् की देशना का सार रूप द्वादशाङ्ग सिद्धान्तों की रचना करी यथा-आचारांगसूत्र सूत्रकृतांगसूत्र स्थानायांगसूत्र समवायागसूत्र विवाहपन्नतिसूत्र ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र उपासकदशांगसूत्र अन्तगडदशांगसूत्र अनुत्तरोववाइदशांगसूत्र प्रश्नव्याकरणदशांगसूत्र विपाकदशांगसूत्र और दृष्टिवादपूर्वांगसूत्र एव तत्पश्चात् इन्द्रमहाराज ने भगवान् की स्तुति वन्दन नमस्कार कर स्वर्ग को प्रस्थान किया भरतादि भी प्रभु की गुणगान स्तुति आदि कर विसर्ज्जन हुवे-अन्यदा एक समय सम्राट् भरतने सवाल किया कि हे विभो ! जैसे आप सर्वज्ञ तीर्थंकर हैं वैसा भविष्य में कोई तीर्थंकर होगा उत्तर में भगवान् ने भविष्य में होने वाले तेवीस तीर्थंकरों के नाम वर्ण आयुष्य शरीरमानादि सब हाल अपने दिव्य कैवलयज्ञान द्वारा फरमाया ( वह आगे बताया गया है ) इसकी स्तुति के लिये भरत ने अष्टापद पर्वत पर २४ तीर्थंकरों

के एक सुवर्णमय २४ मन्दिर बनाके उसमें तीर्थंकरों के नाम वर्ण और देहमान प्रमाणे मूर्त्तियाँ बनवा के स्थापन करवा दीं यह मन्दिर भगवान् महावीर के समय तक मौजूद थे जिसकी यात्रा भगवान् गौतम स्वामी ने की थी। इसका ही बर्णो पर विक्रम की दशवीं शताब्दी में वीराचार्य ने भी यात्रा की थी।

भगवान्‌के साथ ४ ०० राजकुमारों ने दीक्षा ली थी जिनमें भरतका पुत्र मरीचीकुमार भी शामिल था पर मुनिमार्ग पालनमें असमर्थ हो उसने अपने मनसे एक त्रिदंडी वेषकी कल्पना कर ली जैसे परिव्राजक सन्यासियोंका वेष है। पर वह तत्वज्ञान व धर्म्म सब भगवान् का ही मानता था अगर कोई उसके पास दीक्षा लेनेको आता था तब उपदेश दे उसे भगवान् के पास भेज देता था एक समय भरतने प्रश्न किया कि हे प्रभु! इस समवसरणके अन्दर आप जैसा कोन है कि वह भविष्यमें तीर्थंकर हो? भगवान्‌ने उत्तर दिया कि समवसरणके बाहर जो मरिची बैठा है वह इसी अवसर्पिणीके अन्दर त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव व विदेहक्षेत्र की मूका राजधानीमें प्रियमित्र नामका चक्रवर्ति और भरत में कर चौवीसवां महावीर नामका तीर्थंकर होगा यह सुन भरत, भगवान् को वन्दन कर मरिचीके पास आकर वन्दना करता हुवा कहने लगा कि हे मरिची! मैं तेरे इस वेषको वन्दना नहीं करता हूं परंतु वासुदेव चक्रवर्ति और चरम तीर्थंकर होने वाले भावि तीर्थंकर को मैं वन्दना करता हूं यह सुन मरिचीने मद (अहंकार) किया कि अहो मेरा कुल कैसा उत्तम है! मेरा दादा तीर्थंकर मेरा बाप चक्रवर्ति और मैं प्रथम वासुदेव हूंगा इस मदके मारे मरिचीने नीच गोत्रोपार्जन किया। एक समय मरिची भगवान् के साथ विहार करता था कि उसके शरीरमें बीमारी हो गई पर उसे असंयति समझ किसी साधुने उसकी वैयावृत्य नहीं करी तब मरिचीने सोचा कि एक शिष्य तो अपनेको भी बनाना चाहिये कि वह ऐसी हालतमें मेरी चाकरी कर सके! बाद एक कपिल नामका राजपुत्र मरिचीके पास दीक्षा लेनेको आया मरिचीने उसे भगवान के पास जानेको कहा पर वह बहुलकर्मि कपिल बोला की तुमारे मत में भी धर्म है या नहीं इस पर मरिची ने सोचा कि यह शिष्य मेरे लायक है तब कहा कि मेरे मत में भी धर्म है और भगवान् के मतमें भी धर्म है इस पर कपिलने—मरिचीके पास योग ले सन्यासी का वेष धारण कर लिया मरिचीने इस उत्सूत्र भाषण करने से एक कोड़ाकोड़ सागरोपम संसार की वृद्धि करी। मरिची का देहान्त होने के बाद कपिल मरिची की बताई हुई मान्यतानुसार क्रिया करने लगा इस कपिल के एक आसुरी नामका शिष्य हुवा उसने भी मान्यतानुसार मार्गका पोषण किया क्रमशः इस मतमें एक सांख्य नामका आचार्य हुआ था उसी के नाम पर सांख्य मत प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् ने दीक्षा समय पर सब पुत्रों को अलग २ देशों का राज दिया था उस समय नमि विनमि वहां हाजर नहीं थे बाद में वह आये और खबर हुई कि भगवान् ने सब को राज दे दिया अपुन भाग्यहीन कोरे रह गये ऐसा विचार कर वह भगवान् के साथ आये कितने ही दिन प्रभुके पास रहे परन्तु भगवान् ने तो मौन ही साधन किया उस समय धरणेन्द्र भगवान्‌को वन्दन करने को आया था उसने नमि विनमी को समझा के ४८० विद्याओं के साथ वैताड्यगिरिका राज्य दिया फिर नमीने उत्तर श्रेणिमें ६० नगर और विनमिने दक्षिण श्रेणिपर ५० नगर बसाके राज करने लगे और वे विद्याधर कहलाते हैं क्रमशः उनके वंश में रावण कुंभकरण सुग्रीव पवन हनुमानादि हुवे हैं यह सब इन दोनोंकी संतान है।

सम्राट भरतने जब छ खंड में दिग्विजय करके आया तब भी चक्ररत्नने आयुधशालामें प्रवेश नहीं किया इसका विचार करने से ज्ञात हुवा कि बाहुबलने अभी तक हमारी (भरतकी) आज्ञा स्वीकार नहीं करी तब दूत को तक्षशिला भेजके बाहुबली को कहलाया कि तुम हमारी आज्ञा मानो, इस पर बाहुबलिने अस्वीकार कीया तब दानों भाइयोंमें युद्ध की तय्यारी हुई अन्य लोगोंका नाश न करते हुवे दोनों भाइयों में

कई प्रकार का युद्ध हुए पर बाहुबली पराजय नहीं हुआ अन्तमें मुष्टियुद्ध हुआ बाहुबली ने भरत पर मुष्टि प्रहार करने को हाथ ऊंचा कर तो लिया पर फिर विचार हुआ कि अहो संसार असार है एक राज के लिये मैं वृद्ध बन्धु को मारने को तैयार हुवा हूँ बस ऊंचा किया हुआ हाथ से अपने बालों का लोच कर आप दीक्षा धारण कर ली पर भगवान् के पास जानेमें यह रूकावट हुई कि—

भरतने बाहुबलीके पहिले ९८ भाईयोंके पास दूत भेजा था तब ९८ भाइयोंने भगवान् के पासमें जाकर अर्ज करी कि हे दयाल! आपका दिया हुवा राज हमसे भरतराजा छीन रहा है वास्ते आप भरत को बुला के समझा दो इस पर भगवान ने उपदेश किया कि हे भद्र! यह तो कृत्रिमराज है पर आओ मेरे पास में तुम को अक्षयराज देता हूँ कि जिसका कभी नाश ही नहीं हो सकेगा इस पर ९८ भाईयोंने भगवान्के पास दीक्षा ले ली—बस बहुबलीने सोचा कि मैं उन छोटे भाईयोंको वन्दना कैसे करू अर्थात् उन लघु बन्धुओं को नमस्कार करना नहीं चाहता हुआ जंगलमें जा कर ध्यान लगा दिया जिसको एक वर्ष हो गया। उनके शरीर पर लताओं वेल्हियो और घास इतना तो छा गया कि पशुपक्षीयोंने वहां अपना घोसले बना लिया। इधर भगवान् ने बाहुबल ऋषिको समझाने के लिये ब्राह्मी तथा सुन्दरी साध्वियों को भेजी वह आकर भाईयों को कहने लगी "वीरा म्हारा गजथ की उतरो, गज चढियो केवल नहीं होसीरे" यह सुनके बाहुबली ने सोचा कि क्या साध्वियां भी असत्य बोलती है। कारण की मैं तो गज तुरंग सब छोड़के योग लिया है परजब ज्ञान दृष्टि से विचारने लगा तब साध्वियों का कहना सत्य प्रतीत हुआ सच ही मैं मानरूपी गजपर चढा हुँ ऐसा विचार ९८ भाईयोंको वन्दन करने की उज्वल भावना से ज्यों कदम उठाया कि उसी समय बाहुबलीजीको कैवल्यज्ञान उत्पन्न हो गया वहां से चलके भगवान्के पास जाके भगवान्को प्रदक्षिना कर केवली परिषदामे सामिल हो गये।

इधर भरत सम्राट् ने सुना कि मेरे राज लोभ के कारण ९८ भाईयों ने भी भगवान् के पास दीक्षा ले ली है अहो मेरी कैसी लोभदशा कि भगवान् के दीये हुवे राज भी मैंने ले लीया भगवान् क्या जानेगा इत्यादि पश्चात्ताप करता हुआ विचार किया कि मैं ९८ भाईयोंके लिये भोजन करवा कर वहाँ जा मेरे भाइयों को भोजन जीमा के क्षमा की याचना करू वैसे ही बहुत से गाडा भोजन से भरकर भगवान् के समवसरण में आया भगवान् को वदन कर अर्ज करी कि प्रभो! हमारे भाईयों को आज्ञा दो कि मैं भोजन लाया हूँ वह भोजन करके मुझे कृतार्थ करें भगवान् ने फरमाया कि हे राजन्! मुनियों के लिये बनवाया हुआ भोजन मुनियों को करना नहीं कल्पता है इस पर भरत बडा उदास हो गया कि अब इस भोजन का क्या करना चाहिये? उस समय इन्द्र ने फरमाया कि हे भरतेश! यह भोजन आपसे गुणी हो उसको करवा दीजिये तब भरत ने सोचा कि मैं तो अव्रति सम्यक्दृष्टि हूँ मेरे से अधिक गुणवाले देशव्रती हैं तब भरत ने देशव्रती उत्तम श्रावकों को बुलवा कर वह भोजन उनको करवा दिया और कह दिया की आप सब लोंग यहां ही भोजन किया करो बस फिर क्या था? सिधा भोजन जीमने में कौन पीछा हटता है फिर तो दिन ब दिन जीमनेवालों कि सख्या इतनी बढने लगी कि रसोया घबरा उठा जिससे भरत महाराज को सबहाल अर्ज किया तब भरत ने उन उत्तम श्रावकों के हृदय पर कांगनी रत्नसे तीन तीन लीक खांचके चिन्ह कर दीया मानों वह "यज्ञोपवित" ही पहना दी थी भोजन करने के बाद उन श्रावकों को भरत ने कह दिया की तुम हमारे महेल के दरवाजा पर खडे रह कर, हरसमय "जितोभवान् वर्द्धते भय तस्मान्माहन माहने" एसा शब्दोच्चारन किया करो श्रावकों ने इसको स्वीकार कर लिया इसका मतलब यह था कि भरतमहाराज सदव राज का प्रपच व सांसारिक भोगविलास में मग्न रहता था जब कभी उक्त शब्द सुनता तब सोचता था कि मुझे क्रोध मान माया लोभने जीता है और इनसे ही मुझे भय है इससे भरत को बड़ा भारी वैराग्य हुआ करता था जब वृद्ध श्रावक बारबार माहन माहन शब्दोच्चारन करते थे इससे

मुद्रिका गिरजाने से दर्पण में अंगुली अनिष्ट दीखने लगी तब स्वयं दूसरे भूषण उतारते गये वैसे ही शरीर का स्वरूप भयंकर दिखाई देने लगा बस ! वहां ही अनित्य भावना और शुक्लध्यान क्षपकश्रेणि आरूढ़ हो कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लिया बाद देवतों ने मुनिवेष दे दिया दश हजार राजपुत्रों को दीक्षा दे आपने कई वर्ष तक जनता का उद्धार कर आखिर मोक्ष में अक्षयसुख में आ विराजे ।

भरत महाराज चक्रवर्ती राजा था इनों के बहुत सी ऋद्धि थी पर इनका अन्तरआत्मा सदैव पवित्र रहता था एक समय भरत ने आदेश्वर भगवान् से पूछा कि हे प्रभो ! मेरा भी कभी मोक्ष होगा ? भगवान् ने कहा कि भरत ! तुम इसी भव में मोक्ष जावोगे । इतने में किसी ने कहा कि वहा बाप तो मोक्ष देने वाला और पुत्र मोक्ष जाने वाला जिस भरत के इतना बड़ा भारी आरंभ परिग्रह लग रहा है फिर भी इसी भव में मोक्ष हो जावेगा क्या आश्चर्य है इस पर भरतने चौरासी बजारों के अन्दर सुन्दर सुन्दर नाटक मंडा दिये और आश्चर्य करने वाले के हाथ में एक तेल से पूर्ण भरा हुआ कटोरा दिया और चार मनुष्य नगी तलवार वालों को साथ कर दिया कि इस कटोरा से एक बूंद भी तेलगिर जावे तो इसका शिर काट लेना, ( यह धमकी थी ) बस ! जीवका भय से उस मनुष्य ने अपना चित्त उसी कटोरे में रखा न तो उसको मालुम हुआ कि यह नाटक हो रहा है ? न कोई दूसरी बात पर ध्यान दिया, सब जगह फिर के वापिस आने पर भरत ने पूछा कि बजारों में क्या नाटक हो रहा है ? उसने कहा भगवान् मेरा जीव तो इस तेल के कटोरे में था मैंने तो दूसरा कुछ भी ध्यान नहीं रखा भरत ने कहा कि इसी माफिक मेरे आरंभ परिग्रह बहुत है पर दर असल उसमें मेरा ध्यान नहीं है मेरा ध्यान है भगवान् के फरमाया हुआ तत्त्वज्ञान में यह दृष्टान्त हरेक मनुष्य के लिये बड़ा फायदामंद है इति । पहले का उदाहरण ।

भरत के मोक्ष होने के बाद भरत के पाट आदित्ययश राजा हुआ और बाहुबल के पाट चंद्रयश राजा हुआ इन दोनों राजाओं की संतान से सूर्यवंश और चन्द्र वंश चला है और कुरु राजा की संतान से कुरुवंश चला है जिसमें कौरव पांडव हुए थे ।

भरत के पास कांगणी रत्न था जिससे ब्राह्मणों के तीन रेखा लगा के चिन्ह कर देता था पर आदित्य-यशः के पास कागणी न होने से वह सुवर्ण कि जनेउ दे दिया करता था बाद सोना से रूपा हुआ रूपा से शुद्ध पंचवर्ण का रेशम रहा बाद कपास के सूत की दी जाति थी वह आज पर्यन्त चली आती है ।

भरत राजा के आठ पाट तक तो सर्व राजा बराबर आरीसाके भुवन में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये और भी भरत के पाट असंख्य राजा मोक्ष गये अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का चलाया हुवा धर्म-शासन पचास लक्ष क्रोड़ सागरोपम तक चलता रहा जिस में असंख्यात जीवों ने अपना आत्मकल्याण कि याथा इति प्रथम तीर्थङ्कर,

( २ ) श्री अजितनाथ तीर्थंकर-विजय वैमान से तीन ज्ञान संयुक्त वैशाख शुद १३ को अयोध्या नगरी के जयशत्रु राजा की विजयाराणी की रत्नकुक्षी में अवतीर्ण हुवे । माता ने चौदह स्वप्ने देखे जिसका शुभ फल राजा व स्वप्नपाठकों ने कहा माता को अच्छे अच्छे दोहले उत्पन्न हुवे उन सबको राजा ने सहर्ष पूर्ण किये बाद माघ शुद ८ को भगवान् का जन्म हुवा छप्पन्न दिग्कुमारि देवियों ने सूतिका कर्म्म किया और चोसठइन्द्रमय देवी देवताओं के भगवान् को सुमेरु गिरिपर लेजा कर जन्माभिषेक स्नात्रमहोत्सव किया तद-नन्तर राजा ने भी बड़ा भारी आनंद मनाया युवकवय में बहु कुलीन राजकन्याओं के साथ भगवान् का पाणिग्रहण करवाया भगवान् का शरीर सुवर्ण कान्तिवाला ४५० धनुष्य प्रमाण गजलंच्छन कर सुशोभित था जब सांसारिक यानि पौद्गलिक सुखों से विरक्त हुवे उस समय लोकान्तिक देवों ने भगवान् से अर्ज करी

कि हे प्रभो ! समय आ पहुँचा है आप दीक्षा धारण कर भगवान ऋषभदेव के चलाये हुये धर्म का प्रचार करो तब माघ वदी ९ को एक हजार पुरुष के साथ भगवान् ने दीक्षा धारण करी तप तपश्चर्या करते हुये पौष वद ११ को भगवान् ने कैवल्यज्ञान प्राप्त किया भगवान् ऋषभदेव के प्रचलित किए हुए धर्म्म को पुष्टि करते हुये सिंहसेनादि पञ्चानवे मुनि फाल्गुनी आदि तीन लक्ष तीसहजार आर्यिकाए दो लक्ष अठानवे हजार श्रावक, पंचलक्ष पैंतालीस हजार श्राविकाओं का सम्प्रदाय हुआ क्रमशः बहत्तरलक्ष पूर्व का सर्व आयुष्य पूर्ण कर सम्मेतशिखर पर्वतपर चैत्रसुद ५ को भगवान् मोक्ष पधारे आपका शासन तीसलक्ष कोड सागरोपम तक प्रवृत्तमान रहा । उस समय प्रायः राजा प्रजा का एक धर्म जैन ही था ।

आपके शासन में सागर नाम का दूसरा चक्रवर्ती हुआ वह अयोध्या नगरी के सुमित्रराजा के यशोमति राणीकी कुक्षीसे चौदह स्वप्न सूचीत पुत्र हुआ जिसका नाम "सागर" था वह ४५० धनुष्य का शरीर ७२ लक्ष पूर्वका आयुष्य रोप के जयशत्रुका एक छत्रराज करीब भरत चक्रवर्ती की माफिक जानना विशेष सागर के साठहजार पुत्रों से जन्हुकुमार ने अपने भाईयों के साथ एक समय अष्टापद तीर्थपर भरतके बनाये हुये जिनालयों की यात्रा करी विशेष में उनका संरक्षण करने के लिये चौतरफ खाई खोद गंगानदी की एक नहर लाके उस खाई में पाणी भर दिया और जन्हुकुमार का पुत्र भागीरथ ने उस अधिक पाणी को फिर से समुद्र में पहुँचा दिया तब से गंगा का नाम जान्हवी व भागीरथी पड़ा पर उस पाणी से नागकुमार के देवों को तकलीफ होने से उन सब कुमारों को वहां ही भस्म कर दिया अस्तु । सागर चक्रवर्ती अन्त में दीक्षा ग्रहन कर कैवल्यज्ञान प्राप्तकर नाशमान शरीर छोड़के आप अक्षय सुखरूपी मोक्षमन्दिर में पधार गये ।

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् दूसरे तीर्थंकर भ० अजितनाथ इनके बाद तीसरे संभवनाथ चतुर्थ अभिनन्दन पाँचवे सुमतिनाथ छठे पद्मप्रभ सातवें सुपार्श्वनाथ आठवें चन्द्रप्रभ नोवें सुविधिनाथ वहां तक तो समाज एवं धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती आई पर भ सुविधिनाथ से पन्द्रहवें धर्मनाथ का शासन तक अन्तर काल चल कर बीच बीच में शासन विच्छेद होता गया जिससे माहनों (ब्राह्मणों) की जुल्मी सत्ता बढ़ती गई उन्होंने मूल आर वेदों में भी काफी परिवर्तन करके अपने स्वार्थ के ऐसे विधि विधान रच डाले कि जिससे संसार अधः पतन होकर रसातल में पहुँचने लगा । जब सोलहवें भ शान्तिनाथ का शासन प्रवृत्तमान हुआ तब से संसार में शान्ति का प्रचार हुआ आगे सत्रहवें कुन्थुनाथ अठारहवें अरेनाथ उन्नीसवें मल्लिनाथ और बीसवें मुनिसुव्रत के शासन में पर्वतने महाकाल देव की सहायता से मांस मदिरा का एवं व्यभिचार कार्यों से प्रचार किया बाद एक बीसवें नमिनाथ और बाईसवें नेमिनाथ के शासन में मांस का प्रचार आम तौर से राजा महाराजाओं के यहां लग्नप्रसंगों में भी प्रयोग होने लगा पर भ नेमिनाथ ने अपने शासन में मांस का प्रचार पर अंकुश लगा कर अहिंसा के प्रचार को बढ़ाया इसी प्रकार भ पार्श्वनाथ और भ० महावीर ने तो अहिंसा का सर्वत्र प्रचार बढ़ा दिया इन चौबीस तीर्थंकरों का विस्तृत हाल आगे चलकर हम कोई ग्रन्थ लिखेंगे । हाँ चौबीस तीर्थंकरो में विशेष वर्णन तो भ ऋषभदेव का ही था वह हम लिख आये हैं । शेष तीर्थंकरों के शासन में जो विशेष घटना बनी है जिसको ही हम यहां संक्षिप्त से लिख देते हैं जब कि हमारा खास उद्देश तो भ पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास लिखने का ही था पर कई सज्जनों का यह भी आग्रह रहा कि इतना बड़ा ग्रन्थ में कम से कम चौबीस तीर्थंकरो का संक्षिप्त से भी वर्णन आजाना चाहिये कि पाठकों को उनके लिये अन्योन्य पुस्तकों को ढूंढना नहीं पड़े । अतः उन सज्जनों के आग्रह को मान देकर शेष तीर्थंकरो के शासन की विशेष घटना यहां लिखदी जाती है ।

१—भ० ऋषभदेव तथा चक्रवर्ति भरत का अधिकार तो विस्तार से कर दिया है ।

२—भ० अजितनाथ के शासन में दूसरा सागर नामका चक्रवर्ति हुआ उनके ६०००० पुत्र थे जिसमें जन्हूकुमार ने अष्टापदतीर्थ रक्षार्थ पर्वत के चारों ओर खाई खोदी जिसमें नीचे रहने वाले नागकुमार जाति के देवों को तकलीफ होने लगी उन्होंने रोका भी पर कुँवरों ने गंगा नदी से एक नहर लाकर उन खाई में डालदी इस हालत में देवताओं ने उन ६०००० पुत्रों को एक ही साथ में चालकर भस्म कर दिये जिसके वैराग्य से चक्रवर्ति सागर ने दीक्षा स्वीकार करली।

३—भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर।

जैनधर्म के जम्बुद्वीपपन्नति सूत्र में भ० ऋषभदेव का चरित्र विस्तार से लिखा है और प्राचीन काल से ही जैन ऋषभदेव को प्रथम तीर्थङ्कर मानते आये हैं इतना ही क्यों पर हजारों वर्षों से जैनों में भ० ऋषभदेव की मूर्तियों पूजी जाती हैं

ब्राह्मणों के प्राचीन शास्त्र वेद हैं उन वेदों में अवतार होने का कहीं पर उल्लेख नहीं है पर अर्वाचीन लोगों ने दश अवतारों कीकल्पना की तथा कहीं कहीं दश अवतारों के मन्दिर भी बनाये गये तथा पुराणों में कहीं कहीं दश अवतारों का उल्लेख भी किया है जैसेः—

"मत्स्य१ कूर्मो२ वराहश्च३ नरसिंहोऽथ४ वामनः५।
रामो६ रामश्च७ कृष्णश्च८ बुद्ध९ कल्की१० चेत दश: ॥ १ ॥

अर्थात् मच्छावतार, कच्छा०, सूअर०, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इस प्रकार दशावतारों की कल्पना की इसमें भी विशेषता यह है कि महात्मा बुद्ध ब्राह्मण धर्म का कट्टर विरोधी होने पर भी उनको अवतारों में स्थान दिया। अस्तु।

जब पुराणकारों को दशावतार से सतोष नहीं हुआ और जैनों में प्राचीन काल से २४ तीर्थङ्करों की मान्यता को देख उन्होंने भी चौवीस अवतारों की कल्पना कर डाली जिसमें भ० ऋषभदेव को आठवाँ अवतार मान लिया और जैनशास्त्रों में भ० ऋषभदेव का चरित्र वर्णित था ज्यों का त्यों भागवत पुराण में लिख दिया। भागवत के लिये कई विद्वानों का मत है कि विक्रम की पन्द्रहवी सोलहवीं शताब्दी में किसी वामदेव बंगाली ने भागवत की रचना की है* अतः भ० ऋषभदेव के लिये ब्राह्मणों के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है। दूसरा जब हिन्दू भाई ऋषभदेव को सृष्टि का आदि करता भी मानते हैं फिर वे आठवां अवतार बन ही कैसे सकते ? कारण ऋषभ को आठवां अवतार माना जाय तो उनके पूर्व सात अवतार और भी हुए होंगे और सात अवतारों के समय सृष्टि का अस्तित्व अवश्य ही था फिर ऋषभ को सृष्टि का आदि मानना परस्पर विरुद्ध ही है इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि भ० ऋषभदेव के विषय में पुराणकारों ने जैन मान्यता का ही अनुकरण किया है अर्थात् जैनशास्त्रों के अन्दर से ऋषभदेव की कथा को लेकर भागवत पुराण में ऋषभावतार की कथा गढ़ डाली है।

जैसे पुराणकारों ने भ० ऋषभदेव के लिये कल्पित कथा लिख कर उनको अवतार माना है वैसे ही भ० रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के लिये उनको भी अपने अवतारों में स्थान दे दिया है। वास्तव में भ० रामचन्द्र और श्रीकृष्ण जैन नरेश थे परन्तु पुराणकारों ने ऋषभदेव को आठवां अवतार की कल्पना की है इससे राम-

---

*भागवत एक उत्कर्ष रसपूर्ण ग्रथ छे ए सहुकई ने मान्य छे परन्तु आपणे धारिये छेए एटलो ते प्राचीन नथी लगभग ५०० वर्ष पहिले बगालमा मुसलमानोंना राज्य ना बखत में थई थयेला बोपदेव नामना विद्वान ए ग्रथ बनाव्यो छे कृष्णभक्ति नो प्रचार आ ग्रथ थी थयो छे आ खरू। परन्तु ए इतिहास नथी आ वात ध्यान में राखवी जोइये"

"... आर्योना तेहवार नो इतिहास पृ० १५०"

तीर्थङ्करों के लिये है श्रीकृष्ण भविष्य में तीर्थङ्कर होने से जैनसंघ वर्तमान में भी प्रतिदिन सातवार नमस्कार करते हैं।

इस बात को जैनधर्म अच्छी तरह से मानता है कि चाहे समान जीव हो चाहे विशेष जीव हो अपने किये हुये कर्म अवश्य भुगतने पड़ते हैं जैसे भ० महावीर तीर्थङ्कर होने पर भी महावीर के भव में भी उनको अपने सचित कर्म भुगतने ही पड़े थे इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी कर्मोपार्जन किये थे कि कौसंबी के वन में आपको अकेले जराकुँवर के बाण से शरीर छोड़ तीसरी पृथ्वी बालुकप्रभा में उत्पन्न होना पड़ा। इसी प्रकार हमारे कृष्णभक्त भी कृष्ण को बल राजा के द्वार तप करना मानते हैं यह भी एक प्रकार के कर्मों का ही फल है।

६—श्रीकृष्ण को ईश्वर अवतार परमेश्वर या कर्ताहर्ता की मान्यता कब से ? त्रिषष्ठीसिलाग पुरुष चरित्र में उल्लेख मिलता है कि जब श्रीकृष्ण कौसबी वन में जराकुँवर के बाण से शरीर छोड़ बालुका प्रभा में गये बाद बलभद्र ने दीक्षा ली और वे भी शरीर छोड़ पाचवें स्वर्ग में देव पने उत्पन्न हुए इन्होंने अपने ज्ञान से कृष्ण को बालुकाप्रभा में देखकर पूर्व भव के भ्रातृस्नेह के कारण आप भी कृष्ण के पास गये और कृष्ण को पीछला भव सुनाने से कृष्ण को भी भान हुआ और पूर्व सचित कर्मों का पश्चाताप हुआ बलभद्र का जीव देव ने कहा कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकूं ? इस पर कृष्णने कहा मेरा कर्म तो मुझे भोगना ही पड़ेगा पर मैंने पूर्व भव में यदुवंश को बदनाम किया है अतः आप भरतखण्ड में जाकर देवशक्ति से मेरी और आपकी पूजा हो ऐसा प्रयत्न करो अतः बलभद्र का जीव देवता वैक्रय लब्धि से विमान बना कर एक में चक्र गदा शख सहित पीत वस्त्र वाला कृष्ण का रूप दूसरा में हल मूसल एव नील वस्त्र वाला बलभद्र का रूप बनाकर भरतक्षेत्रमें आये और लोगों को कहने लगे कि हम कृष्णबलभद्र ईश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म हैं वैकुंठ में हमारा वास है हम स्वतत्र घूमते हैं हमारी मान्यता करने वाले भक्तों को हम मनोवाञ्छित सुख देते हैं हे लोगों यदि तुम तुम्हारा कल्याण चाहते हो या सुख शांति की अभिलाषा रखते हो तो श्रीकृष्ण बलभद्र की सुन्दर मूर्तियां बना कर खूब सेवा पूजा भक्ति करो जिससे वे दोनों ईश्वर तुम्हारे पर खूब प्रसन्न होंगे इत्यादि। कहा भी है कि "दुनियां झुकती है झुकाने वाला होना चाहिये" सुख शान्ति के इच्छुक लोग श्रीकृष्ण और बलदेव की स्थान २ पर मूर्तिया स्थापन कर उनको ईश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म कह कर सेवा भक्ति पूजा करने लगे उधर बलभद्रदेव उन भक्तों का मनोकामना पूर्ण करने लगे बस फिर तो कहना ही क्या थोड़े ही समय में श्रीकृष्ण और बलभद्र की मूर्तिया सवत्र फैल गई इस घटना को शायद पांच हजार वर्ष हुए हों। यही कारण है कि कृष्ण भक्त कृष्ण को होने मे पांच हजार वर्ष बताते हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण जीवित थे उस समय उनके लिये ईश्वर एवं अवतार की कल्पना किसी ने भी नहीं की थी पर उनके मरने के बाद हजारों वर्षों के पीछे बलदेव के जीव देवता ने ऊपर लिखानुसार कृष्णबलभद्र की मूर्तियों की स्थापना करवा के उनको ईश्वर परमात्मा के नाम से पुजाये थे तब से ही यह कथा चल पड़ी तत्पश्चात् तो कृष्णभक्तों ने उनके नाम पर ऐसे २ ग्रन्थ भी रच डाले कि वे गोपियों के साथ नाच कूद एव जलमज्जन करते थे महियरों का मक्खन चुरा कर खाते थे इत्यादि यदि श्रीकृष्ण के मौजूदगी में उनके लिये ऐसी अश्लील बातें उठाई होती तो वे उनकी अवश्य ही खबर लेते खैर यहां तो केवल उन श्रीकृष्ण के सम्बन्ध की लोक प्रचलित बात का निर्णय करने के लिये सक्षिप्त से उल्लेख कर दिया है।

श्रीकृष्ण एक नीति निपुण आधे भारत का राजा था उन्होंने पहली अवस्था में भारत विजय करने में कई स्थानों पर युद्ध भी किये थे पर जब श्रीकृष्ण के काका समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ तीर्थङ्कर हुए उनके

उपदेश से आप ने जैनधर्म स्वीकार कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया यहां तक कि उन्होंने यह उद्घोषणा करवाई कि कोई भी व्यक्ति भ० नेमिनाथ के पास दीक्षा ले उसके लिए मैं जो चाहे सहायता करने को तैयार हूं। इतना ही क्यों पर खास मेरे पुत्र एवं राणियां वगैरह कोई भी दीक्षा ले तो मैं बड़ी खुशी से आज्ञा देता हूं। इस आज्ञा से श्रीकृष्ण की राणियों पुत्र और नागरिकों ने प्रभु नेमिनाथ के पास दीक्षा ली थी इस धर्मदलाली से ही श्रीकृष्ण आगामी चौवीसी में अममनाम के बारहवें तीर्थंकर होंगे। इस कारण जैन संघ श्रीकृष्ण को दिन प्रतिदिन ७ बारबार नमस्कार करते हैं।

७ शंका का समाधान—कई लोग यह शंका किया करते हैं कि जैनों ने मनुष्यों के कोसों तक शरीर और असंख्यात वर्षों का आयुष्य माना है यह कैसे संभव हो सकता है? इस शंका के साथ हमारे भाई जैनों के माने हुए काल का भी ज्ञान कर लेवे तो शंका को स्थान ही नहीं मिलता।

मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि जिस किसी धर्म के शास्त्र के विषय में शंका करे तो पहले उस धर्म के सिद्धान्त का ज्ञान हासिल करले यैर। देखिये जैन सिद्धान्तों में तीन प्रकार का अंगुल माना है १-प्रमाणांगुल २ आत्मांगुल ३ उत्सेधांगुल। जिसमें प्रमाणांगुल तो भ० ऋषभदेव के हाथ की आंगुल। आत्मांगुल जिस समय जैसा मनुष्य हो उसके हाथ की अंगुल और उत्सेधांगुल आगे पांचवा आरे के लघु मनुष्यों की अंगुल। जिन मनुष्यों को जैनशास्त्र ने बड़े शरीर वाला माना है वे मनुष्य आत्म गुल से तो चार हाथ के ही होते हैं उनको बड़ा शरीर वाले कहते हैं वह उत्सेधांगुल की अपेक्षा से कहा जाता है जैसे एक दो वर्ष का बच्चा है वह अपने हाथ से चार हाथ का ही है पर उस दो वर्ष के बच्चा के हाथ से जवान मनुष्यों का माप किया जाय तो करीब १५ १६ हाथ का हो सकता है यदि अपेक्षा के अज्ञात मनुष्य को कह दिया जाय कि आज के जवान मनुष्य १५-१६ हाथ के होते हैं तो वह नहीं मानेगा पर जब उसको यह समझाया जाय कि हम जिस जवान मनुष्य को १६ हाथ के कहते हैं वह हाथ दो वर्ष के बच्चा का है तब उसकी समझमें आ जायगा इसी प्रकार असंख्याता काल पूर्व जो मनुष्य थे वे दीर्घ काय वाले तो थे ही फिर उनके शरीर का माप जब आगा पांचवा आरा के मनुष्यों की अंगुल से किया जाय तो उनके बड़े शरीर में शंका रही नहीं सकती है। जै ो ने जिन मनुष्यों के शरीर को बड़ा माना है वह काल की अपेक्षा से माना है।

देखिये भ० महावीर का शरीर इस आगा पांचवा आरे के मनुष्यों के हाथ क माप से सात हाथ का माना है भ महा ीर के २५० वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ हुए उनका शरीर ९ हाथ का था उनके ८३७५० वर्ष पूर्व बावीसवां नेमिनाथ हुए उनका शरीर १० धनुष्य का माना है उनके पूर्व पांच लक्ष वर्ष नमिनाथ हुए उनका शरीर १५ धनुष्य का था उनके पू छ लक्ष वर्ष मुनिसुव्रत हुए उनका शरीर २० धनुष्य का था इस प्रकार ज्यों ज्यों काल बढ़ता जाता है त्यों त्यों शरीरमान भी बढ़ता जाता है और जैसे काल की अधिकता से शरीर का मान बढ़ता गया वैसे ही मनुष्यों का आयुष्य भी बढ़ता गया जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को इतना काल हो गया कि गिनती के भी परे है अर्थात् मनुष्य उस काल की गिनती नहीं लगा सकता है उनका शरीर ५०० धनुष्य को और आयुष्य ८४ लक्ष पूर्व की थी यदि मनुष्य के योग्य बुद्धि और अनुभव है वह तो इस बात को कदापि इन्कार नहीं कर सकता है।

वर्तमान में पुरातत्त्व की शोध खोज से कई प्राचीन ऐसी भी पदार्थ मिले हैं कि जिनको बिना देखे और सुन के बारे तो मानने में शंका ही रहती है जैसे एक मनुष्य की खोपड़ीमें एक सौ रोमरस भी अधिक गाड़ सके ऐसा हो सकता है एक मनुष्य के दोनों आंखों के बीच कमपत्तरम का अन्तर, एक मनुष्यके पीछे दो कोस का एक तब यानि है अफ्रीका में एक मच्छी चौपाई चौरसी लम्बी जिसके उदरसे दो गाड़ें भर भी निकली हैं इत्यादि

सैकड़ों उदाहरण हमारी आखों के सामने उपालब्ध हैं जिसके कालकी हम गिनती लगासकते हैं जब गिनती के परे है जिनका काल उसकाल के पदार्थ कितने लम्बे चौड़े होंगे जिसका अनुमान लगाना बुद्धि के बहार की ही बात है अतः जैनों के भूत भविष्य वर्तमान काल के ज्ञाताओं ने अपने तीक्ष्ण ज्ञानमे जिस बातको अपने ज्ञान द्वारा देखकर लिखी है उसमें शंका हो ही नही सकती है इत्यादि ।

८—नौवाँ सुबुद्धिनाथ का शासन विच्छेद और ब्राह्मणभासों की उत्पतिः— इस समय हुन्डावसर्पिणी काल का महाभयकर असर भ० सुबुद्धिनाथ के शासन पर इस कदर का हुआ कि स्वल्पकाल से ही आपके शासन का उच्छेद हो गया अर्थात सुविधिनाथ भगवान् मोक्ष पधारने के बाद थोडे ही काल में मुनि, आर्याए व श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ व सत्यागम और उनकी उद्घोषना करनेवाले लोप हो गये ।

भ० ऋषभदेव के अधिकार में लिख आये हैं कि राजा भरत ने चार आर्य वेद बनाकर जैन ब्राह्मणों को दिये थे और वे उन वेदों द्वारा संसार का उपकार करते थे जिससे उन जैन ब्राह्मणों की मान्यता जैसे राजा महाराजा करते थे वैसे ही प्रजा भी करती थी, उस समय उनमें पूजा सत्कार के योग्य गुण थे । इस समय शासन उच्छेद होने से उन ब्राह्मणों में स्वार्थ वृत्ति से जो भगवान् आदीश्वर के उपदेश से भरतचक्रवर्ती ने चार आर्यवेद जनता के कल्याण के लिये बनाये थे उनमें इतना तो परिवर्तन कर दिया कि जहाँ निःस्वार्थपने जनता का कल्यान का रास्ता था वह स्वार्थवृति से दुनिया को लुटने का एवं अपनी आजीविका का साधन बना लिया और नये नये ग्रन्थादि की रचना भी कर डाली । कारण उस जमाने की जनता ब्राह्मणों के ही आधीन हो चुकी थी, सब धर्म का ठेका ब्राह्मणभासों ने ही ले रखा था , तब तो उन्होंने गौदान, कन्या दान भूमिदान आदि का विधि—विधान बना के स्वर्ग की सड़क को साफ कर दी; इतना ही नहीं किन्तु ऐसे भी ग्रन्थ बना दिये कि जो कुच्छ ब्राह्मणों को दिया जाता है वह स्वर्ग में उनके पूर्वजों को मिलजाता हैं तथा ब्राह्मण है सो ही ब्रह्मा है इत्यादि ।

क्रमश' धर्मनाथ भगवान् के शासन तक जैनधर्म्म स्वल्पकाल उदय और विशेपकाल अस्त होता रहा इस सात जिनान्तर में उन ब्राह्मणभासों का इतना तो जोर बढ़ गया कि इनके आगे किसी की चल ही नहीं सकती थी ब्राह्मणों को इतने से ही सतोप नहीं हुआ था पर उन आर्यवेदों का नाम तक बदल के उनके स्थान पर ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नाम रख दिया. इन वेदों में भी समय समय परिवर्तन होता गया था, जिस किसी की मान्यता हुई वह भी इनमे श्रुतियाँ मिलाते गये. अन्त में यह छाप ठोक दी कि वेद ईश्वरकृत है और इन वेदों को न माने वह नास्तिक हैं । वेदों में विशेप श्रुतियाँ हिंसामय यज्ञों के लिये ही रचि दी गई थी । जिसमें भी याज्ञवल्क्य सुलसा और पिप्पलादने तो नरमेघ, मातृमेघ, पितृमेघ, गजमेघ, अश्वमेघ तक का भी विधिविधान ठोक मारा और ऐसा यज्ञ किया भी था । वेदों में "याज्ञवल्केतिहोवाच" यानि याज्ञवल्क्य ऐसा कहता है और उपनिषदों में कहीं कहीं पिप्पलाद का भी नाम आता है । इत्यादि

## ९–भ० शीतलनाथ के शासन में हरिवंश की उत्पति

कौसम्बी नगरी में एक वीर नाम का सालवी रहता था उसकी स्त्री वनमाल बहुत रूपवती थी जिसको राजा ने बलात्कार' अपनी रानी बना ली जिससे वीर पागल होकर नगर में वनमाला २ करता फिरता था एक दिन राजा और वनमाला ने झरोखा में बैठे हुए वीर को पागलसा फिरता हुआ देखा तब उन दोनों के दिल में आया कि अपुनलोगों ने अन्याय किया इत्यादि भद्रिक परिणाम आते ही उन दोनों पर विद्युत्पात होने

* इस विषय में मुनिवर्य्य श्रीदर्शनविजयजीम की लिखी विश्वरचना० नाम की पुस्तक का अवलोकन करना चाहिये ।

से वे दोनों मर कर हरिवास युगल क्षेत्र में युगल योनि में उत्पन्न हुए। इधर राजा और वनमाला का अकस्मात् मृत्यु हुआ देख वीर का चित्त स्थिर हो गया कि इन्होंने किया वैसा ही पाया। वीर ने संसार का स्वरूप देख तापसी दीक्षा ले ली और तप करता हुआ वह मर कर देव योनि में उत्पन्न हुआ फिर उसने ज्ञान लगाकर देखा तो राजा और वनमाला युगल मनुष्य बने पैदा हुए और वहाँ से मर कर देव होंगे। इस हालत में देव ने अपना बदला लेने को अर्थात् इनको भविष्य में कष्ट पहुँचाने को उन दोनों के आयु दद का संक्रमण कर चम्पानगरी में लाया वहाँ का राजा चन्द्रकीर्ति अपुत्रिया मर गया था वहाँ के लोग इस बात का विचार कर रहे थे कि अपने नगरका राजा कौन होगा ? उस समय देवता ने उन लोगों को कहा कि यह हरि राजा और हरिकी रानी युगलयोनिये आते हैं यही तुम्हारा राजा होगा पर एक बात याद रखना कि तुम लोग इन राजा-रानी को कल्पवृक्ष के साथ मांस मदिरा भी खिलाना और भोग विलास में खूब सहायता करते रहना तब ही तुम लोग सुखी रहोगे। इत्यादि जैसे देवताने कहा वैसे ही नगर के लोगों ने किया जिससे वह राजा एवं रानी मर कर नरक में जाकर घोर दुःखों का अनुभव करने लगे इधि उस हरि राजा की सन्तान हरिवंश के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस हरि वंश में बीसवें मुनिसुव्रत तीर्थंकर हुए और आगे चलकर राजा यादुसे हरिवंश का नाम यादुवंश प्रचलित हुआ जिसका थोड़ा सा परिचय राजा वसु के अधिकार में करवाया जायगा।

## १०—पर्वत और महाकाल देव के द्वारा पशुवध रूपी यज्ञ का प्रचार

जिस समय सम्राट रावण दिग्विजय कर वापिस आ रहा था मार्ग में भयभीत हुए नारदजी आये रावण ने पूछा कि आप ऐसे क्यों ? नारद ने कहा कि राजपुर का राजा मरुत मांस लोलुप ब्राह्मणों की बहकावट में आकर पशुवध रूप यज्ञ करवाता था उस समय मैं वहाँ जाना गया राजा को उपदेश दिया इतने में ब्राह्मण लोग लाठी पत्थर ले मारने के लिये मेरे पिच्छे हो गये मैं वहाँ से भागकर आपके पास आया हूँ आप उन पशुओं को अभयदान दिला कर अहिंसा का प्रचार करें इत्यादि। इस पर रावण नारदजी को साथ लेकर राजपुर गये और मरुत राजा को मधुर वचनों से समझा कर एवं यज्ञ बंद करवा कर राजा को अहिंसा का उपासक बनाया। कारण रावण की आज्ञा सर्वत्र मान्य थी यही कारण है कि जैन राजाओं को ब्राह्मणोंने राक्षस के नाम से लिख मारा है कि हमारे यज्ञों का राक्षस विध्वंस कर डालते थे वे राक्षस थे अहिंसा धर्म के उपासक जैन राजा। एक समय सम्राट रावण ने नारद से पूछा कि इस प्रकार हिंसात्मक यज्ञ किसने चलाये ? उत्तर में नारद ने कहा कि शुक्तिमती नगरी में अभिचन्द्र नामक राजा राज्य करता था जिसके एक वसु नाम का पुत्र था वह न्यायी सत्यवक्ता बड़ा ही धर्मात्मा था उस नगरी में क्षीरकदम्ब उपाध्याय भी रहता था जिसके पर्वत नाम का पुत्र था मैं वसु पर और पर्वत ये तीनों उपाध्यायजी के पास पढ़ते थे एक दिन हम तीनों छत पर सो रहे थे निद्रा भी आ गई पर उपाध्यायजी जागृत थे उस समय आकाश से दो चारण मुनि जा रहे थे जो ज्ञानी थे उन्होंने कहा कि इन तीनों विद्यार्थियों में दो नरक गामी हैं और एक स्वर्ग गामी है उपाध्यायजी ने उनकी परीक्षार्थ लोट ( आटा ) के तीन कुर्कट बना कर तीनों को दिया कि कोई न देखे वहां मार लाना। बस ! पर्वत और वसु तो जंगल में जाकर कोई नहीं देखा वहां पीठ के कुर्कट मार लाये पर मैंने सोचा कि दूसरा नहीं तो मैं एवं कुर्कट तो देखते हैं शायद मैं आंखें बन्द कर लूं तो भी ईश्वर ज्ञानी तो सर्वत्र देखते हैं अतः कुर्कट को लेकर वापिस आया उपाध्यायजी ने उन तीनों की परीक्षा करली कि ठीक दो नरक और एक नारद स्वर्ग जाने वाले हैं।

नारद कहता है कि मैं एक समय शुक्तिमती नगरी में गया तो पर्वत अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था उस ऋग्वेद में एक श्रुति आई कि "अजैर्यष्टव्यमिति" इसका पर्वत ने अर्थ किया कि अज यानि छाग-बकरा

का बलिदान करना तब मैंने कहा पर्वत तू ऐसा अनर्थ क्यों करता है गुरूजी ने तो अजा शब्द का अर्थ तीन वर्ष की शाल अर्थात बोया हुआ न ऊगे वैसा धान किया था पर्वत ने हट पकड़ लिया नारद ने कहा कि बसुराज अपने साथ पढ़े हैं उनसे निर्णय करलें पर इस शर्त पर कि जो झूठा हो वह अपनी जुबान निकाल कर के दे दे। पर्वत ने इसको स्वीकार कर लिया बाद पर्वत अपनी माता के पास आया और सब हाल माता को कहा इस पर माता ने कहा बेटा तेरा बाप अजा शब्द का अर्थ पुराणा धान ही करता था पर्वत ने कहा मैंने तो शर्त करली है इस पर माता रात्रि में चल कर राजा बसुके पास आई। राजाने गुरुजी की पत्नी समझ सत्कार कर रात्रिमें आने का कारण पुच्छा इस पर माताने सब हाल कहकर पुत्र रूपी भिक्षा की याचना की

लोगों में यह बात प्रचलित थी कि राजा वसु सत्यवादी है और सत्य से ही इसका सिंहासन पृथ्वी से अधर रहता है इस हालत में राजा असत्य कैसे बोल सकता। राजा ने कहा माता मैं ही क्यों पर आप भी जानती हो कि गुरुजी ने अजा शब्द का अर्थ पुरांणी शाल ही किया था अतः में मिथ्या अर्थ करना नहीं चाहता हूँ। माता ने कहा राजन्। मैं जानती हूँ और मैंने पर्वत से कहा भी था कि तेरा पिता अजा शब्द का अर्थ पुरांणा धान जो बोने पर न ऊगे किया करते थे। पर पर्वत मेरे एक ही पुत्र है अतः कुछ भी हो पर मेरे पुत्र को जीवन दाना देने की मेरी प्रार्थना स्वीकार करावें। मेरी जिन्दगी में यह पहली ही प्रार्थना है यदि आप अपने गुरुजी का थोड़ा भी उपकार समझते हैं, तब तो मेरा यह कार्य आपको करना ही होगा ? राजा वसुने गुराणी की लिहाज में आकर कह दिया कि आप निश्चित हो घर पर पधारें मैं किसी प्रकार से आपके पुत्र को बचादूगा।

दूसरे दिन राज सभा के समय में ( नारद ) और पर्वत राजसभा में आये और सब हाल कहा उस समय एक व्यक्ति राजासे कहने लगा कि राजन्। आप सत्य, सत्य ही कहना क्योंकि सत्यसे पृथ्वी स्थिर है आकाश स्थिर है इत्यादि। पर राजा ने इस पर कुछ भी विचार नहीं किया और आम सभा में कह दिया कि हाँ गुरुजी अजा शब्द का अर्थ कभी पुराणी शाल और कभी छगा—बकरा भी किया करते थे ( कहीं पर केवल बकरा ही कहा लिखा है ) बस। इस मिश्र एव झूट बोलने के कारण देवता वसुराजा को पृथ्वी पर पिछाट करके सिंहासन के साथ भूमिमें घुसा दिया जिससे वसु राजा मरकर सातवीं नरकमें जाकर घोर दु खों का अनुभव करने लगा इससे पर्वत की बहुत निंदाहुई इतना ही क्यों पर नगरीके लोगोंने पर्वत को मारपीट कर नगरी से निकाल दिया पर भवितव्यता बलवान होती है पर्वतने जगलमें जाकर एक महाकाल देव की आराधना की। देवने अधर्मे पर्वत को सहायता देकर पशुवध यज्ञ का प्रचार करवाया। देवता विक्रय से यज्ञ में बलिदान होने वाले बकरों को स्वर्गमें जाते हुए दिखाये तथा पुन जीवित करके दिखाये इससे मांस लोलुपी लोगोंने यज्ञ का काफी प्रचार कर दिया पर्वत ने भी लोगों को कहा कि यज्ञ से देव सतुष्ट होते हैं लोगो में सुख शान्ति रहती है और बलिदान में पशु होमे जाते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं इत्यादि नारदजी ने रावण को पर्वत की कथा सुनाई। इस पर सम्राट् रावणने हिंसामय यज्ञ करने का निषेध किया जहाँ यज्ञ होता देखा तो अपनी सत्ता से ध्वंस भी किया पर कलिकाल की कुटलगति से यज्ञ कर्म सर्वथा बन्ध न हो सका।

बसुराजके क्रमश. आठ पुश्त राजा होते गये और मरते गये तब नवमें सुवसु वहाँ से भाग कर नागपुर चला गया और दशवां बृहद्ध्वज नाम का पुत्र भाग कर मथुरा चलागया उसकी संतान से एक यादुनाम का राजा हुआ वह महान् प्रतापी हुआ जिससे हरिवश के स्थान यादुवश नाम प्रसिद्ध हो गया—जिस यादु-राज का वंश वृक्ष—

देवता यमदग्नितापस जो ध्यान लगा के तपस्या करता था उसकी दाढी में चीड़ा चीडीका रूप बना कर बैठ के चीड़ा कहने लगा कि मैं हेमाचल पर जाऊंगा—चीडी बोली तुम वहा जाके किसी दूसरी चीडी से यारि कर लोगे ? चीडा ने कहा नहीं करूगा अगर में ऐसा करु तो मुझे गौ हत्या का पाप लगे। चीड़ी ने कहा ऐसे मैं नहीं मानूं ऐसे कहो कि मैं किसी दूसरी चीडी से यारि करूं तो इस यमदग्नि का पाप मुझे लगे यह सुनते ही तापस को खूब गुस्सा आया और पुच्छा कि क्या मेरा पाप गोहत्या से भी ज्यादा है चीड़ी ने कहा कि तुमको मालूम नहीं है कि शास्त्र कहता है "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" यह सुनके तापस को पुत्र की पिपासा लगी तब एक नजिक नगरी में गया वहां का जयशत्रु राजा ने आदर दिया बाबाजी ने राजा के १०० पुत्रियों में एक पुत्री की याचना करी। राजा ने कहा जो आपको चाहे उसको आप ले लीजिये। तापस ने सबसे आमन्त्रण किया पर ऐसी भाग्यहीन कौन कि उस तापस को वर करे। एक छोटी लड़की रेतमें खेलती थी उसे ललचा के तापस अपने आश्रम में ले आया बाद युवा होने पर उसके साथ लग्न किया। रेणुका ऋतु धर्म हुई तब तापस चरु (पुत्रविद्या) साधन करने लगा रेणुका ने कहा कि मेरी बहिन हस्तनापुरका राजा अनतवीर्य को परणाई है उसके लिये भी एक चरू साधन करना। तापस ने एक ब्राह्मण दूसरा क्षत्रिय होने की विद्या साधन करी रेणुकाने क्षत्रिवाला और उसकी बहिन को ब्राह्मणवाला चरू खिलाने से दोनों के दो पुत्र हुये रेणुका के पुत्र का नाम राम, बहिन के पुत्र का नाम कृतवीर्य—राम ने एक वैमार विद्याधर की सेवा करी जिससे सतुष्ट हो उसने परशुविद्या प्रदान करी। तब से राम का नाम परशुराम हुआ। एकदा अनंतवीर्य राजा अपनी साली रेणुका को अपने वहां लाया परिचय विशेष होने से रेणुका से भोगविलास करते हुए को एक पुत्र भी हो गया बाद यमदग्नि स्त्री मोह में अन्ध हो सपुत्र रेणुका को अपने आश्रम में लाये परन्तु परशुराम ने उसका व्यभि-चार जान माता और भाई का सिर काट दिया बाद अनतवीर्य ने यह बात सुनी तत्काल फौज ले आया तापस का आश्रम भस्म कर दिया यह परशुराम को ज्ञात हुआ तब परशू लेके हस्तनापुर जाकर राजा को मारडाला कृतवीर्य क्रोधित हो यमदग्नि को मारा तब परशुराम कृतवीर्य को मारडाला तब कृतवीर्य की तारा राणी सगर्भा वहां से भाग के किन्हीं तापसों के सरणे गई परशुराम हस्तनापुरका राजा बन गया—ताराराणी भूमिग्रह में छिपके रही थी वहा चौदह स्वप्नसूचक पुत्र जन्मा जिसका नाम सुभूम रखा गया। परशूराम ने सातवार नि.क्षत्रियपृथ्वी कर दी उन क्षत्रियों की दाढ़ों से एक स्थल भरा। परशूराम किसी निमितिये को पुच्छा कि मेरा मरण किसके हाथ से होगा तब उसने कहा कि जिसके देखते ही दाढ़ों का थाल खीर बन जावेगा उस खीरको खाने वाला निश्चय तुमको मारेगा। परशुरामने एक दानशाला खोली और दाढ़ोंवाला थाल वहां सिंहासन पर रख दिया इधर एक मेघ नामका विद्याधर निमित्तिया के कहने से अपनी पद्मश्री नामकी पुत्री सुभूम को परणा दी थी बाद माता के कहने से सुभूम पिछली बात और परशुराम का अत्याचार जान कर वहां से हस्तनापुर में गया दाढ़ी को देखते ही खीर बन गई उसको सुभूम खा गया उसी थाल का चक्र बना परशूराम का सिर काट आप एक नगर का ही नहीं पर सार्वभौम्य राज करने वाला, चक्रवर्ती हुआ।

पुराण वालों ने लिखा है कि परशुराम परशु ले क्षत्रियों को काटता हुआ रामचंद्रजी के पास आया तब रामचन्द्रजी ने परशुराम की पग चंपी कर उसका तेज हर लिया तब परशू नीचा पड़ गया फिर उठा नहीं सके। कैसी असभव बात है कि एक अवतार दूसरा अवतार को मारने को आवे फिर भी तुर्रा यह कि एक अवतार दूसरा का तेज को भी हरण कर लिया क्या बात हैं ? सत्य तो यह है कि वह रामचन्द्रजी नहीं पर सुभूम चक्रवर्ती ही था, इति अष्टमा चक्री—

आपके शासन में महापद्म नाम का नौवा चक्रवर्ती हुआ जिसका संबन्ध-हस्तनापुर नगर में पद्मोत्तर

## ११—पीपलाद द्वारा यज्ञादि की उत्पत्ति—

काशीपुरी में दो संन्यासिनियां रहती थीं जिसमें एक का नाम सुलसा दूसरी का नाम सुभद्रा था वे दोनों अच्छी लिखी पढ़ी धर्म शास्त्रों की भी जानकार थीं बहुतसे पंडितों को वादमें परास्त भी किये उस समय याज्ञवल्क्य नामक परिव्राजक यह हाल सुन कर उन दोनों सन्यासिनियों के साथ वाद करने को आया और ऐसी शर्त रखी कि हारनेवाला जीतनेवाले की जन्म भर सेवा करे। जब वाद हुआ तो याज्ञवल्क्य ने सुलसा को पराजय कर अपनी सेवा करने वाली बनाली। पर दोनों के युवक वय में वे काम-देव के गुलाम बन आपस में भोग-विलास करने लग गये। जिससे सुलसा के गर्भ रह गया जब पुत्र का जन्म हुआ तो लोकापवाद के कारण अनजात पुत्र को एक पीपल के वृक्ष का कोटर में छोड़कर वे दोनों वहाँ से रफूचक्कर होगये। सुभद्रा को मालूम हुआ तो उसने पीपल के वृक्ष के पास जाकर देखा तो अनजात बच्चा के मुंह में स्वयं पीपल का फल पड़ा जिसको चाट रहा था सुभद्रा अपनी बहिन सुलसा का बच्चा जानकर अपने आश्रम में लेगई उसका लालन पोषण किया और बड़ा होने पर उसको वेद वेदांग पढ़ा कर धुरंधर बना दिया और वाद विवाद में कई पंडितों को परास्त कर बहुत विख्यात होगया। एक समय याज्ञवल्क्य और सुलसा पुनः काशी में आये और पीपलाद से वाद किया जिसमें वे दोनों हार गये एवं पीपलाद की विजय हुई जब सुभद्रा द्वारा पीपलाद को ज्ञान हुआ कि सुलसा याज्ञवल्क्य मेरे माता पिता हैं और जन्म के साथ ही निर्दयता से मुझे पीपल के वृक्ष की कोटर में डालकर पलायन होगये थे अतः पीपलाद ने कुपित हो अपना बदला लेने के लिए मातृमेध पितृमेध नामके यज्ञ करने की व्यवस्था की और मातृमेधमें सुलसा तथा पितृमेधमें याज्ञवल्क्य को होम दिया अर्थात् पीपलादने अपने माता पिता का बलिदान कर अपना बदला लिया और उपनिषदादि ग्रन्थोंमें इसका विधिविधान भी रचडाला कि भविष्य में यह प्रथा अमर बन जाय इत्यादि इन पांच प्रचारकों की लीला कहां तक लिखी जाय।

१२—दर्भपुर नगर में एक मायावान अग्नक था वह किसी सथवाहा के साथ देशान्तर जाता हुआ रास्ते में एक तापस के आश्रम में ठेर गया। वह बड़ा भारी तप करता वास्ते लोकोंने जमदग्नि नाम रखा दीन उस समय एक विश्वानर नामक जैनदेव दूसरा धन्वंतरी तापसभक्त देव इन दोनों के आपस में धर्म संबंधि विवाद हुआ अपना २ धर्म को अच्छा बताते हुए परीक्षा करने को मृत्यु लोक में आये उस समय मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा भाव यति बन चम्पा नगरी में विराजमान जैन मुनि के पास दीक्षा लेने को जा रहा था दोनों देवो ने उसे प्रतिकूल अनुकूल बहुत उपसर्ग किया पर वह दृढ़ रहा भी नहीं चला तब दोनों

देवता यमदग्नितापस जो ध्यान लगा के तपस्या करता था उसकी दाढी में चीड़ा चीड़ीका रूप बना कर बेठ
के चीड़ा कहने लगा कि मैं हेमाचल पर जाऊंगा—चीडी बोली तुम वहां जाके किसी दूसरी चीडी से यारि
कर लोगे ? चीडा ने कहा नहीं करूंगा अगर मैं ऐसा करुं तो मुझे गौ हत्या का पाप लगे । चीडी ने कहा
ऐसे मैं नहीं मानू ऐसे कहो कि मैं किसी दूसरी चीडी से यारि करूं तो इस यमदग्नि का पाप मुझे लगे यह
सुनते ही तापस को खूब गुस्सा आया और पुछ्या कि क्या मेरा पाप गौहत्या से भी ज्यादा है चीड़ी ने
कहा कि तुमको मालूम नहीं है कि शास्त्र कहता है "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" यह सुनके तापस को पुत्र की पिपासा
लगी तब एक नजिक नगरी में गया वहां का जयशत्रु राजा ने आदर दिया बाबाजी ने राजा के १०० पुत्रियों
में एक पुत्री की याचना करी । राजा ने कहा जो आपको चाहे उसको आप ले लीजिये । तापस ने सबसे
आमन्त्रण किया पर ऐसी भाग्यहीन कौन कि उस तापस को वर करे । एक छोटी लड़की रेतमें रमती थी उसे
ललचा के तापस अपने आश्रम में ले आया बाद युवा होने पर उसके साथ लग्न किया । रेणुका ऋतु धर्म हुई
तब तापस चरु (पुत्रविद्या) साधन करने लगा रेणुका ने कहा कि मेरी बहिन हस्तनापुरका राजा अनतवीर्य को
परणाई है उसके लिये भी एक चरू साधन करना । तापस ने एक ब्राह्मण दूसरा क्षत्रिय होने की विद्या साधन
करी रेणुकाने क्षत्रिवाला और उसकी बहिन को ब्राह्मणवाला चरू खिलाने से दोनों के दो पुत्र हुये रेणुका के पुत्र
का नाम राम, बहिन के पुत्र का नाम कृतवीर्य—राम ने एक बैमार विद्याधर की सेवा करी जिससे प्रतुष्ट हो
उसने परशुविद्या प्रदान करी । तब से राम का नाम परशुराम हुआ । एकदा अनतवीर्य राजा अपनी साली
रेणुका को अपने वहां लाया परिचय विशेष होने से रेणुका से भोगविलास करते हुए को एक पुत्र भी हो गया
बाद यमदग्नि स्त्री मोह में अन्ध हो सपुत्र रेणुका को अपने आश्रम में लाये परन्तु परशुराम ने उसका व्यभि-
चार जान माता और भाई का सिर काट दिया बाद अनतवीर्य ने यह बात सुनी तत्काल फौज ले आया तापस
का आश्रम भस्म कर दिया यह परशुराम को ज्ञात हुआ तब परशू लेके हस्तनापुर जाकर राजा को मारडाला
कृतवीर्य क्रोधित हो यमदग्नि को मारा तब परशुराम कृतवीर्य को मारडाला तब कृतवीर्य की तारा राणी
सगर्भा वहां से भाग के किन्हीं तापसों के सरणे गई परशुराम हस्तनापुरका राजा बन गया—ताराराणी भूमिगृह
में छिपके रही थी वहां चौदह स्वप्नसूचक पुत्र जन्मा जिसका नाम सुभूम रखा गया । परशूराम ने सातवार
निःक्षत्रियपृथ्वी कर दी उन क्षत्रियों की दाढों से एक स्थल भरा । परशूराम किसी निमितिये को पुच्छा कि
मेरा मरण किसके हाथ से होगा तब उसने कहा कि जिसके देखते ही दाढों का थाल खीर बन जावेगा उस
खीरको खाने वाला निश्चय तुमको मारेगा । परशुरामने एक दानशाला खोली और दाढोंवाला थाल वहां
सिंहासन पर रख दिया इधर एक मेघ नामका विद्याधर निमित्तिया के कहने से अपनी पद्मश्री नामकी पुत्री
सुभूम को परणा दी थी बाद माता के कहने से सुभूम पिछली बात और परशुराम का अत्याचार जान कर
वहां से हस्तनापुर में गया दाढ़ी को देखते ही खीर बन गई उसको सुभूम खा गया उसी थाल का चक्र बना
परशूराम का सिर काट आप एक नगर का ही नहीं पर सार्वभौम्य राज करने वाला, चक्रवर्ती हुआ ।

पुराण वालों ने लिखा है कि परशूराम परशू ले क्षत्रियों को काटता हुआ रामचंद्रजी के पास आया
जब रामचन्द्रजी ने परशुराम की पग चंपी कर उसका तेज हर लिया तब परशू नीचा पड़ गया फिर उठा
नहीं सके । कैसी असभव बात है कि एक अवतार दूसरा अवतार को मारने को आवे फिर भी तुर्रा यह कि
एक अवतार दूसरा का तेज को भी हरण कर लिया क्या बात हैं ? सत्य तो यह है कि वह रामचन्द्रजी नहीं
पर सुभूम चक्रवर्ती ही था, इति अष्टमा चक्री—

आपके शासन में महापद्म नाम का नौवा चक्रवर्ती हुआ जिसका संबन्ध-हस्तनापुर आ[illegible]

राजा की ज्वाला देवी रानि के विष्णुकुमार और महापद्म नाम के दो पुत्र हुए इस समय अवंती नगरी का श्रीवर्म नामक, राजा के राज्य में नमूची जिसका दूसरा नाम बलमंत्री था आदि का यह मंत्री था उस समय मुनिसुव्रत भगवान् के शिष्य श्रुतसागराचार्य वहां पधारे नमुचिबल उनके साथ शास्त्रार्थ कर पराजय हुआ तब रात्रि में तलवार से आचार्य को मारने को चला आचार्य के अतिशय से वह रास्ता में स्तंभित हो गया सुबह उसकी बहुत निंदा हुई तब वहां से मुक्त हो हस्तनापुर में आकर युवराजा महापद्म की सेवा करने लगा एक समय महापद्म किसी कार्य से संतुष्ट हो "यथेच्छा" वर दे दिया था कालान्तर पद्मोत्तर राजा और विष्णुकुमार ने तो श्रुतसागराचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और महापद्म राजा हो क्रमशः छे खण्डाधिपति चक्रवर्ती राजा हो गया बाद श्रुतसागराचार्य फिर से हस्तनापुर आये नमुचि—बलमंत्री सोचा कि इस समय इस आचार्य से वैर लेना चाहिये तब महापद्म से अर्ज करी कि वेदों में कहा माफिक मेरे एक महायज्ञ करना है वास्ते मुझे पूर्व दिया हुआ वर—वचन मिलना चाहिये राजा ने कहा मांगो तब नमुचिने कहा हो वहां तक सर्व राज मांगा वचन के बंधा राजा ने नमुचि को राज दे आप अन्तेवर घर में चला गया बाद नमुचि ने नगर का बाहर एक मंडप तैयार करवाय के आप राजा बन गया एक जैन साधुओं के सिवा सब लोक भेट ले के नमुचि के पास आये नमस्कारादि किया नमुचि ने पुछा कि सब लोगों की भेट आगई न कोई रहा भी है मंत्रियों ने कहा एक जैनाचार्य नहीं आये है ।

इस पर नमुचिने गुस्से हो कहला भेजा कि जैनाचार्य तुमको यहां आना चाहिये आचार्य ने कहलाया कि संसार से विरक्त को ऐसे कार्यों से प्रयोजन नहीं है इस पर नमूचि कोपित हो हुक्म दिया हमारे राज से सात दिनों में शीघ्र चले जाओ नहीं तो कत्ल करवा दिया जावेगा यह सुन आचार्य को बड़ी चिंता हुई कि चक्रवर्ती का राज छ खण्ड में है तो इसके बाहर कैसे जा सके आचार्य श्री सब साधुओं को पूछा कि तुम्हारे अन्दर कोई शक्तिशाली है कि इस धर्म निंदक को योग्य सजा दे इसपर मुनियों ने अर्ज करी ऐसा मुनि विष्णुकुमार है पर वह सुमेरुगिरि पर तप कर रहा है आचार्यजी ने कहा कि जाओ कोई मुनि उसको यह समाचार कहो । एक मुनिने कहा वहां जाने कि शक्ति तो मेरे में है पर पीछे आने की नहीं सूरिजी ने कहा तुम जाओ विष्णुकुमार को सब हाल कहके वहां से आवो वह तुमको भी ले आवेगा इस माफिक विष्णु मुनि गुरु के पास आया बाद विष्णुमुनि राजसभा में गया नमूचि के सिवाय सबने उनके वन्दन करी बाद धर्मदेशना दी और नमूचि से कहा हे भिन्न । क्षणिक राज के लिये तू अनिति क्यों करता है चक्रवर्ती का राज छे खण्ड में है तो यह साधु सात दिन में कहां जा सके इत्यादि नमूचिने कहा कि तुम राजा के बड़े भाई हो वास्ते तुमको तीन कदम जगह देता हूं बाकी कोई मुनि मेरे राज्य में दीख पड़ेगे मैं तत्काल ही मरवाउंगा इस पर विष्णु मुनिने सोचा कि यह मधुर वचनों से मानने वाला नहीं है तब वैक्रियलब्धि से लक्ष योजन का शरीर बनाके एक पग पूर्व समुद्र दूसरा पश्चिम समुद्र और तीसरा था नमूचि—उसके सिर पर रखा कि उसको पाताल में घुसा दिया वह मरके नरक में गया और विष्णुमुनि अपने गुरु के पास जा आलोचना कर क्रमशः कर्म क्षयकर मोक्ष गया ।

भ. ऋषभदेव से भगवान् महावीर तक २४ तीर्थंकरों का विस्तृत हाल कोष्टक में दिया गया है पर बीच बीच में जो विशेष घटना घटित हुई वे कोष्टक में दी जा नहीं सके और जाननी भी जरूर थी अत- एव उन विशेष घटनाऐं को संक्षिप्त रूप से यहाँ लिखदी है ।

विशेष भ. महावीर का सविस्तार जीवन तो कल्पसूत्रादि कई स्थान पर मिलता है और हम भवि यहां लिखते भी है पर तीर्थंकर जीवन जिस सिलसिलेवार कहीं पर दृष्टि गोचर नहीं हुआ था अतः यह विस्तृत लिखना लाजिमी है पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ दे दिया जाता है—

# भगवान् महावीर का विहार क्षेत्र

भगवान् महावीर के श्रमण जीवन में छद्मस्थावस्था के १२ वर्ष का हाल तो कल्पसूत्रादि अनेक स्थानों पर दृष्टि गोचर होता है। पर केवलावस्था में भगवान् ने ३० वर्षों में कहाँ कहाँ विहार किया और उन विहार के अन्दर किस किस स्थान पर क्या क्या धर्म कार्य हुआ इत्यादि सिलसिलेवार वर्णन आज पर्यन्त कहीं पर भी देखने में नहीं आया था परन्तु हाल ही में पूज्य पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने कई वर्षों तक बड़ा भारी परिश्रम कर "श्रमण भगवान् महावीर" नाम का ग्रन्थ लिखा तथा वह मुद्रित भी हो चुका है इस ग्रन्थ को लिखकर पन्यासजी महाराज ने जैन समाज पर महान उपकार किया है उसी ग्रन्थ के आधार पर मैं भगवान् महावीर के तीर्थङ्कर जीवन के विषय में यहाँ पर संक्षिप्त से हाल लिख देता हूँ।

भगवान् महावीर ३० वर्ष गृहस्थावास में रहे बाद श्रमण दीक्षा स्वीकार कर बारह चतुर्मास छद्मस्थावस्था में बिताये। जैसे १—आस्थिग्राम २—राजगृहनगर ३—चम्पापुरी ४—पृष्ठचम्पा ५—भद्दिला नगरी ६—भद्दिलानगरी ७—आलभियानगरी ८—राजगृहनगर ९—अनार्यदेश में १०—श्रावस्तिनगरी ११—विशालानगरी ११—चम्पानगरी उपरोक्त स्थानों में भगवान् ने बारह चतुर्मास किये।

तीर्थङ्कर अवस्था में भगवान के ३० चतुर्मासों का वर्णन:—

जब भगवान को केवल ज्ञानोत्पन्न हुआ पहली देशना में किसी ने व्रत नहीं लिया तब रात्रि में ४८ कोस चलकर मध्यमा नगरी के महासनोद्यान में पधारे देवो ने समवसरण की रचना की। वहाँ पर सोमल ब्राह्मण के वहाँ एक बृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा था और बहुत दूर दूर से पण्डित भी आये थे उनमें इन्द्रभूति आदि ११ पण्डित तथा ४४०० उनके शिष्य भी थे जब उन्होंने भगवान का समवसरणादि की महिमा सुनी तो ईर्षा के मारे एक एक भगवान के पास गये भगवान उनके दिल की शंका का समाधान कर क्रमशः ११ आचार्य और उनके ४४०० शिष्यों को श्रमण दीक्षा दे उन ११ को गणधर पद दिया जिसके लिये जैन शास्त्रों में गणधर वाद के नाम से बहुत विस्तार से वर्णन है भगवान ने वहीं पर चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की बाद वहाँ से विहार कर क्रमश: राजगृह नगर में पधारे वहाँ भी आपका धर्मोपदेश हुआ। जिसके फल स्वरूप—

१—राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार तथा नन्दीषेण ने श्रमण दीक्षा ली।
२—राजकुमार अभय तथा सुलसाने श्रावक धर्म स्वीकार किया।
३—राजा श्रेणिक ने प्रवचन पर श्रद्धा यानि सम्यक्त्व धारण की इनके अलावा भी बहुत से भावुक भगवान के भक्त बन गये।

१—पहला चतुर्मास राजगृहनगर में हुआ वहाँ प्रवचन का प्रचार हुआ बाद वहाँ से विहार कर क्षत्रीकुण्ड महाणकुण्ड नगर की ओर पधारे वहाँ भी आपका प्रवचन हुआ जिससे—

१—जमाली क्षत्रियकुमार ५०० के साथ तथा उनकी पत्नी १००० के साथ प्रभु पास दीक्षाली।
२—ब्राह्मण ऋषभदत्त तथा देवानन्द ने भी दीक्षा ली इनके अलावा भी बहुत लोग भगवान के उपासक बन गये।

२—दूसरा चतुर्मास वैशालानगर में व्यतीत किया बाद वहाँ से विहार कर कौशाम्बीनगर में पधारे पर राजा उदाई की माता मृगावती तथा भुआ जयवि भगवान को वन्दन किया भगवान ने देशनादी ज वि

प्रभु से प्रश्न किये और अन्त में श्रमण दीक्षा स्वीकार की वहाँ से वाणिज्य में पधारे वहाँ सुमनोभद्र सुप्रतिष्ठित ने दीक्षा ली वहाँ से वाणिज्यग्राम में पधारे और गाथापति आनन्द तथा उसकी स्त्री शिवानन्दा को गृहस्थ धर्म की दीक्षा दी इनके अलावा आपके विहार के अन्दर बहुत से लोग आपके उपासक बन गये।

३—तीसरा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में बिताया पश्चात् कार्य बड़ा कर वहाँ से विहार कर आप पुनः राजगृह में पधारे वहाँ गौतम ने काल विषय के प्रश्न किये-तथा-धन्य शालिभद्र ने दीक्षा ली और भी बहुत लोगों ने भगवान् के व्रत को स्वीकार किया।

४—चतुर्थ चतुर्मास भगवान् ने राजगृह नगर में किया बाद विहार कर चम्पानगर में पधारे वहाँ के राजदत्त का पुत्र महचन्द्र कुमार को दीक्षा दी बाद सिन्धु सौवीर के वीतभय पट्टन जाकर राजा उदाई को दीक्षा दी।

५—पाँचवा चतुर्मास भगवान् ने वाणिज्यग्राम नगर में बिताया वहाँ से विहार कर बनारसी नगरी में आये वहाँ के राजा ने प्रभु का सत्कार किया आपका धर्मोपदेश से वहाँ के गाथापति चुलनीपिता तथा उसकी स्त्री श्यामा और सुरादेव तथा उसकी भार्या धन्ना ने गृहस्थ धर्म ( श्रावक ) स्वीकार किया तत्पश्चात् आलम्भिका नगर में आये वहाँ पोग्गल सन्यासी को समझा कर श्रमण दीक्षा दी वहाँ चुल्लशतक गाथापति तथा उसकी पत्नि बहुला ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया बाद भगवान् राजगृह पधारे वहाँ भी मंकाती किंकम अर्जुन और काश्यपादि ने श्रमण दीक्षा ली।

६—छठा चतुर्मास राजगृह में किया आपका प्रवचन होता रहा बाद प्रभु राजगृह में ही ठहरे वहाँ राजा श्रेणिक ने दीक्षा के लिये उद्घोषणा करदी कोई भी दीक्षा ले मेरी आज्ञा है तथा मैं सब तरह की सहायता करूंगा जिससे श्रेणिक के पुत्र जाली मयाली उवयाली आदि २३ पुत्र और नंदा सुनंदादि तेरह राणियों ने दीक्षा ली और भी नागरिकों ने भी दीक्षा ली।

आर्द्रकुमार और गोशालों आजिविकों के साथ संवाद बाद आर्द्र कुमार की दीक्षा।

७—सातवाँ चतुर्मास राजगृह नगर में व्यतीत किया बाद आलम्भिका नगर में पधारे वहाँ ऋषिभद्र पुत्र श्रावक तथा अन्य श्रावकों का संवाद का समाधान भगवान ने किया रानी मृगावती तथा उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योत की रानी ने प्रभु पासे दीक्षाली बाद पुनः विदेह में पधारे।

८—आठवाँ चतुर्मास वैशाली में ही किया वहाँ से विहार कर काकन्दी में पधारे वहाँ धन्ना कुमार को दीक्षा दी बाद काम्पिल्यपुर पधारे वहाँ कुण्डकोलिक को श्रावक के व्रत दिये फिर पोलासपुर पधारे वहाँ गोशाल का भक्त सद्दालपुत्र कुम्हार रहता था उसको श्रावक बनाया उसकी स्त्री अग्निमित्रा ने भी श्रावक के व्रत लिये।

९—नौवा चतुर्मास वाणिज्य ग्रामनगर में बिताया वहाँ से विहारकर राजगृह नगर में पधारे वहाँ पर महाशतक को श्रावक व्रत दिये वहीं पार्श्वनाथ के संतानियों ने प्रश्न किया प्रभु ने समाधान कर उनको चार के पांच महाव्रत दिए रोहा मुनि के प्रश्न भगवान् के उत्तर।

१०—दशवा चतुर्मास भगवान् ने राजगृह नगर में किया वहाँ से कृतंगला नगर में पधारे स्कंद सन्यासी की दीक्षा आगे विहार कर श्रावस्ति नगरी में धर्मोपदेश दिया वहाँ नन्दनीपिता सालिहीपिता तथा इन दोनों की स्त्रियों ने श्रावक के व्रत धारण किया।

११—ग्यारवा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में किया अनन्तर ५ साधुओं को लेकर भगवान विहार किया कोशांबी में सूर्य चन्द्र मूल रूप से आये प्रभु राजगृह में वैभार पर्वत का अनशन व्रत लगे।

१२—बारहवा चतुर्मास राजगृह में व्यतीत किया बाद विहार कर चम्पानगर में पधारे उस समय कणिक की राजधानी चम्पा में थी भगवान् का प्रवचन श्रेणिक के पौत्रे पद्म महापद्मादि १० ने दीक्षा ली और जिनपालितादिने भी दीक्षा ली शेष ने श्रावक व्रत लिया वहा से काकन्दी में क्षमक घृतहरादिने दीक्षाली।

१३—तेरहवा चतुर्मास प्रभुने मिथिला नगरी में किया बाद विहार—इस समय वैशाला रणभूमि बनी हुई थी कुणिक चेटक का संग्राम हुआ पुत्र की मृत्यु सुनकर काली आदि श्रेणिक की दश राणियों ने दीक्षा ली।

१४—चौदहवा चतुर्मास भगवान् का मिथिला में हुआ बाद विहार—वैशालो के निकट होकर श्रावस्ति की तरफ विहार मार्ग में हल विहल्ल की दीक्षा तथा भगवान और गोसाला का मिलाप जमाली का मतभेद भी उसी वर्ष हुआ।

१५—पन्द्रहवा चतुर्मास पुनः मिथिला में किया बाद विहार किया। केशी—गौतमका श्रावस्ति में शास्त्रार्थ शिवराजाष सातद्वीप सातसमुद्र कहने वालाकों दीक्षा दी अग्निभूति वायुभूति के वैकुघणा क प्रश्न।

१६—सोलवा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में किया बाद विहार आजीविका के प्रश्न तथा श्रावक के ४९ भगों के प्रत्याख्यान और गोसाल के १२ श्रावक मुख्य।

१७—सत्तरहवां चतुर्मास राजगृह नगर में किया। विहार कर चम्पा पृष्टचम्पा में पधारे वहाँ शाल महाशाला की दीक्षा पुन चम्पा कामदेव का उपसर्ग और उनकी प्रशसा की वाणिज्य ग्राम का सोमल ब्राह्मण ने प्रभु से यात्रादि के प्रश्न किये।

१८—अठारहवां चतुर्मास वाणिज्य ग्राम में किया बाद विहार कर काम्पिलपुर गये अंबड सन्यासी को प्रतिबोध एव श्रावक के व्रत दिये।

१९—उन्निसवां चतुर्मास वैशाली नगरी में किया बाद विहार कर वाणिज्य नगर में पधारे वहां पार्श्वसतानिय गंगइयाजी आपको प्रश्न पुच्छे समाधान होने पर चार के पांच महाव्रत धारण किये।

२०—बीसवां चतुर्मास वैसाली में किया श्रुत—शिल की चौभगी अन्यतिर्थियों के प्रश्न केवली के भाषा के विषय का प्रश्न रुद्रक श्रावक और अन्यतिर्थियों के प्रश्न मंडूक की प्रशसा।

२१—इकीसवा चतुर्मास राजगृह में वहाँ कालोदाइ के प्रश्न तथा उदकपेढाल के प्रश्न जाली मायली आदि निग्रन्थों ने विपुल पर अनसन किया।

२२—बाईसवां चतुर्मास राजगृह में ही किया। विहार वाणिज्य नगर में सुदर्शन सेठ ने काल के विषय के प्रश्न ( महाबल का भव ) दीक्षा तथा आनद का अनसन और गौतम का आनन्द के पास जाना अवधि ज्ञान के विषय प्रश्न।

२३—तेईसवा चतुर्मास प्रभु ने वैशाला नगरी में व्यतीत किया बाद ग्राम नगरों में प्रवचन का प्रचार करते हुए साकेत नगर में पधारे—वहाँ जिनदेव के द्वारा राजा किरात भगवान् के पास आया उसको दीक्षा दी। वहां से विहार कर मथुरा शौरीपुरादि प्रदेश में धर्म प्रचार करते हुए।

२४—चौवीसवा चतुर्मास प्रभु मिथिला में व्यतीत किया बाद विहारकर राजगृह पधारे अन्यतिर्थियों के प्रश्नों का समाधान। तथा कालोदाई के शुभाशुभ कर्मों के विषय के प्रश्नों के उत्तर। अचित पुद्गलों के प्रश्नों के उत्तर इत्यादि।

२५—पच्चीसवां चतुर्मास प्रभु ने राजगृह में किया—बाद वहा से जिनपद में विहार किया गौतम

"कल्याण—माता ठीक कहती है मेरी इच्छा दीक्षा लेने की है।

"पिता—इसका कारण क्या है कि तू आज दीक्षा का नाम लेता है ?

"कल्याण—क्या आपने गुरु महाराज के व्याख्यान में नहीं सुना है गुरु महाराज ने फरमाया था कि विषय सुख तो क्षण भर के हैं पर उसके दुःख चिरकाल तक भुगतने पड़ते हैं।

खण मित्त सुक्खा वहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिकाम सोक्खा ।
संसार मोक्खस्स विपक्ख भूया, खाणीअणत्थाणउकाम भोगा ॥१॥

पिताजी मैं क्षणभर के सुखों के लिये चिरकाल के दुःख भुगतना अच्छा नहीं समझता हूँ। अतः आप कृपा कर मुझे आज्ञा दीरावें कि मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण करू ।

पिता ने कहा ठीक है मैं इस पर विचार करूंगा जाओ अभी तो काम करो। सेठानी पन्ना को कहा कि तुम क्यों दुःख करती हो मैं कल्याण को समझा दूगा। यदि कल्याण के भाग में दीक्षा की रेखा होगा वो उसे मिटा भी कौन सकता है।

शाह डावर समय पाकर शाम को सूरिजी महाराज के पास गया। डावर सूरिजी का परम भक्त था। गच्छ में भी एक अग्रेश्वर श्रावक था। डावर जैसा धनाढ्य था वैसा धर्मज्ञ भी था। उसने सूरिजी से नम्रता पूर्वक अर्ज की कि पूज्यवर ! आज कल्याण ने घर पर आकर दीक्षा की बात की जिससे उसकी मा ने बहुत दुःख किया और भोजन तक भी नहीं किया। अतः कल्याण को समझा दिया जाय कि अभी दीक्षा का नाम न ले, और २–४ मास में उसका विवाह भी करना है। अब निर्विघ्नता से विवाह हो जाय तो मेरे चित्त को शान्ति रहे दूसरा कल्याण अभी बच्चा है दीक्षा मे क्या समझता है।

सूरिजी ने कहा डावर ! तू भाग्यशाली है और गच्छ में अग्रेश्वर भी है तू जानता है कि साधुओं को तो इस बात का कुछ भी स्वार्थ नहीं है। दूसरे मेरे शिष्यों की भी कमी नहीं है। हजारों साधु साध्विया गच्छ में विद्यमान हैं। एक कल्याण विना हमारा कोई काम रुका हुआ भी नहीं है कि कल्याण को दीक्षा देने की कोशिश की जाय परन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि इस सामग्री में स्वयं तुझको दीक्षा लेनी चाहिये इस हालत में कल्याण की दीक्षा रोकने की कोशिश करता है। कल्याण दीक्षा लेगा या नहीं इसके लिये तो निश्चय कौन कह सकता है। श्रावक शासन का एक अंग होता है। यदि तेरे आठ पुत्रों में से एक पुत्र मागा जाय तो क्या तू इन्कार कर सकेगा ? इसका उत्तर डावर क्या दे सकता था। डावर ! यदि यह कल्याण तेरे घर में रहेगा तो एक तेरे घर का ही काम करेगा परन्तु दीक्षा ले ली तो जैन शासन का उद्धार और हजारों लाखों का कल्याण करने मे समर्थ बन जायगा। इससे तुझ को हानि नहीं पर अधिक से अधिक फायदा है। यदि कल्याण दीक्षा लेना चाहता हो तो तुम अन्तराय कर्म नहीं बन्धना अगर मोहनीया कर्मोदय से कुछ मोह आ भी जाय तो ज्ञान दृष्टि से विचार करना। तथा श्राविका को भी समझा देना।

शाह डावर समझ गया कि सूरिजी की इच्छा कल्याण को दीक्षा देने की है। बस, सूरिजी को वन्दन कर अपने घर पर आया और सेठानी पन्ना को कहा कि कल्याण दीक्षा की बात करता है इसमें केवल कल्याण ही नहीं पर गुरु महाराज भी शामिल हैं। खैर, तू पुण्यवती है तेरी कुक्ष से जन्मा हुआ तेरा बेटा दीक्षा ले इसका सब यश तेरे को ही है। अतः अब कहने सुनने की जरूरत नहीं है। महोत्सव के साथ कल्याण को दीक्षा दीरावें। इसमे ही कल्याण का और उनका कल्याण है।

पुरुषों ने अपनी भूल स्वीकार कर जैन दीक्षा धारण कर अपना कल्याण कर लिया वो क्या उनके धर्म के नाम से भ्रम फैलाना हित का कारण नहीं होसकता है। इस बात को सुनकर दूसरे दिन सन्यासीजी ने सूरिजी के व्याख्यान में जाकर पूछा कि आपके धर्म में सृष्टिक्रम अर्थात् स्वर्ग मृत्यु और पाताल को कैसे माना है मैं इसको सुनना एवं समझना चाहता हूँ ?।

सूरिजी ने सन्यासीजी को समझाया कि नीचे लोक में सात नरक हैं मृत्युलोक में मनुष्य तिर्यंच हैं और ऊर्ध्वलोक में देवता हैं और सम्पूर्ण लोक के अग्रभाग में ईश्वर सिद्ध है।

नीचे लोक में सात नरक हैं उनके नाम घम्मा, वंशा, शीला, अंजना रिष्ठा, मघा, माघवती इन सात नरकों के गौत्र रत्नप्रभा, शार्करप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूम्रप्रभा, तमप्रभा और तमस्तम प्रभा महारंभ महापरिग्रह की इच्छा पांचेन्द्रियजीवों के घाती और मांस के आहारी इन पापों के करने वाले नर्क में जाते हैं जिसमें भी जैसा पाप वैसी सजा (नरक) नरक में आयुष्य भी अलग २ होती हैं वहाँ से पूरा आयुष्य भोग लेता है तब छुटकारा पाकर जीव पुन मृत्युलोक में आता है।

मृत्युलोक में मनुष्य और तिर्यंच रहते हैं। मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं कर्मभूमि अकर्मभूमि और समुर्छिम मनुष्य। कर्मभूमि मनुष्य उसे कहते हैं कि जहाँ असि मसि और कृषी कर्म से आजीविका करते हों जैसे अपने यहाँ मनुष्य हैं दूसरे-अकर्मभूमि जिसको युगलिये भी कहते हैं उनके यहाँ असि मसि कृषी नहीं होती, है पर कल्पवृक्ष उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं वे बड़े ही भद्रिक परिणामी होते हैं उनका आयुष्य और शरीर दीर्घ होता है पर काम भोग की इच्छा बिलकुल स्वल्प होती है। जिन्दगी भर में एक ही दफे भोग करते हैं जिससे एक युगल पैदा होता है और आगे चलकर अपने जीवन के अन्तिम भाग में वहीं उनके वय आते हैं। उनकी गति केवल एक स्वर्ग की ही होती है।

समुर्छिम मनुष्य-जो मनुष्य के टट्टी पेशाबादि अशुची पदार्थों के अन्दर अन्तर महूर्त में ही समुर्छिम मनुष्य पैदा होजाते हैं, उनका आयुष्य अन्तर मुहूर्त का होता है। मृत्युलोक में दूसरे तिर्यंच हैं जिसके पाँच भेद हैं एकेन्द्रिय बीन्द्रिय तेन्द्रिय चौरीन्द्रिय और पांचेन्द्रिय इनके अलावा इस मृत्युलोक में जम्बुद्वीप आदि असंख्याता द्वीप लवण समुद्रादि असंख्याता समुद्र हैं जिसमें जम्बुद्वीप धातकीखंड और पुष्करार्द्ध एवं ढाई द्वीप में मनुष्यतिर्यंच दोनों हैं और शेष द्वीप समुद्रों में तिर्यंच रहते हैं।

३ ऊर्ध्वलोक इसमें देवता रहते हैं। देवता चार प्रकार के होते हैं जैसे भुवनपति व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानीक जिसमें भुवनपति और व्यन्तर तो नीचे लोक में, ज्योतिषी तिर्छा लोक में और वैमानीक ऊर्ध्व लोक में रहते हैं इन नरक तिर्यंच मनुष्य और देवताओं के अलग २ भेद करे जाय तो ५६३ भेद होते हैं और इन तीन लोक के ऊपर मुक्त जीव रहते हैं वे कर्म मुक्त होने से मोक्ष में जाने के बाद फिर वहाँ से नहीं लौटते हैं पर वहाँ अनंत सुखों में सदैव के लिये स्थिर रहते हैं। अधो मध्य और ऊर्ध्व अथवा स्वर्ग मृत्यु पाताल इन तीनों को लोक एवं सृष्टि कही जाती है जिसका आकार नीचे से, चौड़ा बीचमें जैसे मध्य व संकीर्ण-फिर प्रकार के जैसे ऊर्ध्व चौड़ा ऊपर संकीर्ण के सदृश और सम्पूर्ण लोक,का आकार नाचता हुवा कम्मर के हाथ लगाकर खड़ा हुवा पुरुष के सदृश हैं

इस सृष्टि को न किसीने रची है न कभी इसका विनाशही होगा हाँ कभी उन्नति और कभी अवनीति हुवा करती है इसी प्रकार अनादि काल से उन्नति अवनीति का क्रम चक्र चलताही रहता है।

पर साधु भिक्षा लेकर आ गये थे अतः माता वन्दन कर अपने स्थान पर चली गई। पर अपने पुत्र का अतिशय प्रभाव को देखा जिससे उसके हर्ष का पार नहीं था।

शाह डावर ने अपनी स्त्री से कहा देख लिया न बेटा को तेरा बेटा कितने ठाठ मे रहता है। अपने घर में रहता तो घर वाले या नगर वाले ही मानते पर आज वह जहाँ जाते हैं वहाँ बड़े २ राजा महाराजा उनकी पूजा करते हैं। यदि बेटा साथ अपन भी दीक्षा ले लेते तो अपना भी कल्याण हो जाता। सेठानी ने कहा कि अब भी क्या हुआ है दीक्षा लेकर कल्याण करो। सेठजी ने कहा ठीक है, आप तो मेरे साथ हो न ? बस हँसी २ में सेठानी ने कह दिया कि आप दीक्षा लें तो मैं भी तैयार हूँ। जब आचार्य देवगुप्तसूरि को पता लगा कि मेरे माता पिता दीक्षा का विचार कर रहे हैं अत मेरा कर्त्तव्य है कि इनका उद्धार करूँ। समय पाकर सूरिजी ने शाह डावर को उपदेश दिया। डावर ने कहा कि अब हमारी अवस्था तो वृद्ध हो गई है तथापि आपके विश्वास पर हम दोनों आपके पास दीक्षा लेने का विचार कर रहे हैं पर आप यहाँ चर्तुमास करें मैं कुछ द्रव्य शुभ कार्य में लगाकर दीक्षा लूगा तथा चन्द्रावती श्री सघ ने भी सूरिजी से चर्तुमास की खूब आग्रह से विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर चतुर्मास की स्वीकृति दे दी। बस, फिर तो था ही क्या शाह डावर एव जनता का उत्साह कई गुना बढ गया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। तथा चन्द्रावती में एक सन्यासी ने भी चर्तुमास किया था उन्होंने एक दिन कहा कि इस संसार की भूमि पर सात द्वीप और सात समुद्र हैं और स्वर्ग में पाँचवा ब्रह्म लोक है इनके अलावा न तो द्वीप समुद्र हैं और न स्वर्ग ही है इत्यादि। यह बात सूरिजीके कानों तक पहुँची तो आपने अपने व्याख्यान में फरमाया कि सात द्वीप और सात समुद्र ही नहीं पर असख्य द्वीप और असख्य समुद्र हैं तथा स्वर्ग में पाँचवा देवलोक ही क्यों पर उसके ऊपर क्रमश सर्वार्थसिद्ध वैमान तक कुल २६ देवलोक हैं। सात द्वीप सात समुद्र की प्ररूपना करने वाला मूल पुरुष शिवराजर्षि थे जिनका वर्णन श्री भगवती सूत्र के ११ शतक ९ उद्देशा में इस प्रकार किया है।

हस्तनापुर के राजा शिव ने तापसी दीक्षा ली और तप करने से उनको विभंग ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने ज्ञान से सातद्वीप सातसमुद्र देखे और जैसा देखा वैसा ही लोगों को कह दिया पर बहुत से लोगों ने इस बात को नहीं मानी जिससे शिवराजर्षि को शका उत्पन्न हुई अतः शका से जो ज्ञान था वह भी चला गया। उस समय भगवान महावीर देव का पधारना हस्तनापुर में हुआ अत शिवराजर्षि अपनी शका का समाधान करने को भगवान् के पास गया। भगवान् ने उसके मनकी बात कहकर समझाया कि ऋषिजी आपने विभग ज्ञान से केवल सातद्वीप सातसमुद्र ही देखा है परन्तु द्वीप समुद्र असख्याते है इससे ऋषिजी ने कइ तर्क वितर्क की और अन्त में शिवराजर्षि ने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेली और तप सयम की आराधना करने से अतिशय ज्ञान होगया जिससे आप स्वय असख्याते द्वीप समुद्र देखने लग गये।

इसी प्रकार श्री भगवती सूत्र के ११ वाँ शतक के १२ वाँ उद्देशा में वर्णन किया है कि—पोगल सन्यासी ने विभग ज्ञान द्वारा स्वर्ग में पाँचवा ब्रह्म देवलोक देखा अत उन्होंने प्ररूपना करदी कि ब्रह्म देवलोक के सिवाय स्वर्ग में देवलोक नहीं है कई लोगों ने इसको नहीं माना तब उसने भी भगवान् महावीर के पास जाकर निर्णय किया और जैनदीक्षा स्वीकार करली थी और वे कर्मक्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तब जाकर लोगों को समझाया कि स्वर्ग २६ है अन्त में मोक्ष चले गये। जब इन दोनों मान्यताओं के मूल

मत से समर्थन किया क्योंकि बिना सृष्टि के सुख पैदा हो नहीं सकता है इससे भी यही सिद्ध होता है कि सृष्टि अनादि काल से प्रवाह रूप से चली आती है।

यदि ईश्वर ने जीवों को सुखी बनाये थे तो दुखी क्यों बन गये तथा दुःखी बनाये थे तो क्या ईश्वर को उन जीवों प्रति द्वेष था कि बिना ही कारण बिचारे जीवों को दुःखी बना कर दुःख दिया।

सन्यासीजी! संसार में जितने आस्तिक मत हैं उन सबकी मान्यता है कि परमाणु प्रकृति आत्मा और ईश्वर ये चारों शास्वत है और इन पदार्थों से सृष्टि बनी जाती है। जिसमें परमाणुओं का स्वभाव मिलने और बिछुड़ने का है और सृष्टि में जितने दृश्य पदार्थ हैं वह सब परमाणुओं से ही बने हैं। जब परमाणु शास्वत हैं तो उनसे बने हुए पदार्थ को शास्वत क्यों नहीं मान्य जाय? अतः परमाणुओं से बनी हुई सृष्टि भी अनादि है। हाँ, किसी द्रव्य क्षेत्र काल भाव में परमाणुओं की स्वभाव अपेक्षा न्यूनाधिकता होती है उस सृष्टि की उन्नति अवनति भी अवश्य होती है। जैसे मानो कि एक बड़ा नगर किसी ने नष्ट कर डाला और उस नगर का तमाम सामान नष्ट होकर खण्डहर सा बन गया और उस नगर के लोगों ने एक अन्य भूमि पर स्वर्ग सदृश नया नगर बसा दिया। जब हम पुराने नगर के लिये प्रलय कह सकते हैं तब नूतन नगर के लिये नयी सृष्टि पैदा की कह सकते हैं परन्तु वास्तव में न तो प्रलय है और न नूतन रचना ही है वह केवल परमाणुओं का मिलना बिछुड़ना ही है। इसी प्रकार आप सृष्टि को भी समझ लीजिये इत्यादि।

सूरिजी के इस विवेचन का प्रभाव उपस्थित जनता पर खूब ही पड़ा। इतना ही क्यों पर अब भाव्यात्मा वाले सन्यासीजी पर तो इतना असर हुआ कि वे उसी सभा में अपना वेश एक ओर रख कर सूरिजी महाराज के पास जैन दीक्षा लेकर आपश्री के शिष्य ही बन गये। हाँ सत्योपासक का तो यह कर्त्तव्य ही है कि सत्य वस्तु समझ में आजाने के बाद वे क्षण भर की भी देरी नहीं करते हैं अर्थात् सत्य को स्वीकार कर ही लेते हैं। हमारे सन्यासीजी भी उसी श्रेणी के मुमुक्षु थे।

शाह सागर और सेठानी पन्ना अपने पुत्र के विवेचन को सुनकर मन मुग्ध बन गये और यह बात है भी स्वाभाविक कि जिसके कुल में ऐसा प्रतापी पुत्र जन्म लेकर इस प्रकार जनता का कल्याण करे इससे अधिक खुशी की बात ही क्या हो सकती है। शाह सागर और पन्ना का वैराग्य कई गुणा बढ़ गया और उनकी वैराग्य भिलाषा इतनी उत्तेज हो गई कि कब चतुर्मास समाप्त हो और कब हम दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करें इत्यादि।

शाह सागर ने अपने विचारानुसार कई साधर्मीभाइयों को गुप्त सहायता दी तथा जैन धर्म के प्रचार निमित्त और सात क्षेत्रों में पुष्कल द्रव्य व्यय कर लाभ प्राप्त किया शाह सागर के पुत्र भी इतने विनयवान एवं सुपुत्र थे कि इस प्रकार द्रव्य के व्यय करने पर भी वे चूं तक भी नहीं की इतना ही क्यों पर उन्होंने तो अनुमोदन ही किया। मैं पहिले ही कह आया हूँ कि उस जमाने में निश्चय की मान्यता प्रधान थी और जहाँ निश्चय पर विश्वास है वहाँ सदैव संतोष ही रहता है। उस जमाने के लोग दूसरों की आशा पर नहीं पर अपनी भुजाओं पर जीवन व्यतीत करते थे और उनके लिये यह बड़े से बड़ा सुख था।

दुनियां कुछ भी करो समय तो अपना काम करता ही जाता है। इधर तो चतुर्मास समाप्त होता है उधर शाह सागर और उनकी धर्म पत्नी पन्ना दीक्षा की तैयारी कर रहे हैं। पर उन दम्पति की दीक्षा की भावना देख चन्द्रावती के तथा आस पास के आये हुये लोगों ने उत्साह से कई १२ नर नारी दीक्षा लेने

सन्यासीजी ! यह बात किसी साधारण व्यक्ति की कही हुई नहीं है कि जिसमें शंका को स्थान मिले पर इसके कथन करने वाले हैं सर्वज्ञदेव कि जिन्होंने अपने केवल ज्ञान दर्शन द्वारा सम्पूर्ण लोकालोक को हस्तामलक की तरह प्रत्यक्ष देख कर कही है । अत' यह बात विश्वास करने काबिल है और बडे २ ऋषियों मुनियों ने इस विषय के अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है वह अद्यावधि विद्यमान भी हैं ।

सूरिजी की समझाने की शैली उत्तम प्रकार की होने से सन्यासीजी अच्छी तरह से समझ गये और सूरिजी के कहने पर आपको विश्वास भी होगया तथा दिल की शंका मिटाने के लिये सन्यासीजी ने पूछा कि महात्माजी ! इस प्रकार सृष्टि की रचना किसने एव कब की होगी ? यह एक मेरा सवाल है ।

सूरिजी ने कहा सृष्टि का कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं है । सृष्टि द्रव्यापेक्षा शाश्वती है । और पर्यायापेक्षा अशाश्वत है क्योंकि इसकी पर्याय समय २ बदलती है जैसे सुवर्ण द्रव्यापेक्ष नित्य है पर उसकी पर्याय सुरत-भाकृत बदलती रहती है । चूड़ी का बाजू और बाजू का कंठा बना लिया तथापि सुवर्ण नित्य है वैसे ही सृष्टि में जल के स्थान स्थल और स्थल के स्थान जल हो जाता है इस प्रकार सृष्टि की उन्नति अवनीति होती रहती है पर सृष्टि सदैव के लिये शाश्वती है ।

सन्यासीजी—यह भी तो कहा जाता है कि सृष्टि ईश्वर ने रची है और इसका कर्त्ता हर्त्ता भी ईश्वर हैं ।

सूरिजी—सन्यासीजी ! ईश्वर साकार हैं या निराकार

सन्यासी—ईश्वर निराकार है

सूरिजी—आप स्वय सोच लीजिये कि निराकार ईश्वर ने साकार सृष्टि की रचना कैसे की होगी ? कि जिस ईश्वर के हस्त पैरादि आकार ही नहीं है वे आकार वाली सृष्टि की रचना कैसे कर सके ।

सन्यासी—सृष्टि की रचना करने में ईश्वर को हस्त पैरों की क्या आवश्यकता है वे तो इच्छा मात्र से ही सृष्टि की रचना कर डालते हैं ऐसा हमारे शास्त्र में लिखा है ।

सूरिजी—क्या ईश्वर के भी इच्छा है ? यदि है तो वह जड़ है या चेतन । यदि चेतन है तो, एको-ऽहं द्वितीय नास्ति' यह कहना असत्य ठहरेगा । यदि इच्छा जड़ है तो ईश्वर से भिन्न है या अभिन्न ?

सन्यासी तो बड़े ही चक्कर में पड़ गये और इसका उत्तर नहीं दे सके इस पर सूरिजी ने कहा कि महात्माजी ! आप स्वय सोच सकते हो कि इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर को माना जाय तो ईश्वर सृष्टि रचने में उपादान कारण है या निमित्त ? यदि उपादान कारण ईश्वर को माना जाय तो सृष्टि की रचना क्या ईश्वर ही सृष्टि रूप है और सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर ही समझना पड़ेगा । यदि मानो कि ईश्वर सृष्टि रचना में निमित्त कारण है तो ईश्वर उपादान कारण कहाँ से लाये ? यह एक सवाल पैदा होगा । यदि कहो कि उपादान कारण पहिले था तो मानना पड़ेगा कि पहिले सृष्टि थी उसको ही ईश्वर ने नयी सृष्टि रची इससे सृष्ट का कर्त्ता ईश्वर नहीं परसृष्टि अनादि ही सिद्ध होती है ।

भला थोड़ी देर के लिये हम मानलें कि ईश्वर नेही सृष्टि रची है तो सृष्टि के रचना काल में जीव थे वे पहिले किस अवस्था में और कहाँ पर थे कारण आपकी मान्यतानुसार तो पहिले एक ईश्वर ही था फिर सृष्टि के आदि में ईश्वर जीव कहाँ से लाया कि जिन जीवों से सृष्टि की रचना की और पहले वे जीव सुखी थे या दुखी या सुखी दुखी दोनों प्रकार के थे । यदि कहा जाय कि जीव सुखी थे तो ईश्वर को क्या जरूरत थी कि उन जीवों से सृष्टि की रचना कर उनको दुखी बनाये । यदि वे जीव दु खी थे तो वह दु ख किस

हजारों मनुष्य सभा में होने पर भी वातावरण शान्त था सबका चित्त धर्म का लक्ष्य सुनने की ओर लग रहा था और एकाग्र चित्त से जैसे चातक जलबिन्दु की आशा करते हैं वैसे सबका सूरीजी के व्याख्यान के लिये टकटकी लगा कर उत्सुक हो रही थी।

सूरिजी ने कहा 'वत्थुसहावधम्मो' अर्थात् वस्तु के असली स्वभाव को धर्म कहा जाता है और उस स्वभाव में विकृति होजाना अधर्म है। जैसे आत्मा का असली स्वभाव ज्ञान दर्शन चारित्र में रमणता करने का है जिसको धर्म कहा जाता है और वही आत्मा अपने असली स्वभाव को भूल कर विषय कषाय में रमणता करता है उसे अधर्म कहा जाता है। जब आत्मा अज्ञान के वश सांसारिक माया में लिप्त होकर परवस्तु यानि विषय कषाय के चक्र में पड़कर धर्म के नाम पर अधर्म करने में तत्पर होती है तब उसको असली रास्ते पर लाने के लिये किसी न किसी निमित्त कारण की आवश्यकता रहती है उसमें सबसे प्रधान कारण देव गुरु धर्म का है कि उनकी उपासना से आत्मा में चैतन्यता प्रगट हो जाती है और फिर वह जाकर अपने असली स्वरूप में रमणता करने लग जाता है यहाँ पर संक्षिप्त से देव गुरु धर्म के विषय का थोड़ा सा स्वरूप बतला देना अप्रासंगिक न होगा।

१—देव—चाहे इस समय किसी धर्म के देव विद्यमान नहीं हैं पर उनका निर्दोष जीवन पढ़ने से ज्ञात हो जाता है कि जिस देव को केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद किसी प्रकार की लीला कौतूहल रागद्वेष अज्ञानता दूषण नहीं है केवल निरपेक्षोपकार में ही उनकी जीवनयात्रा समाप्त हुई थी ऐसे देव के स्मरण से मन पवित्र होता है गुण कीर्तन से वचन पावन और उनकी शान्त मुद्रा एवं ध्यानावस्थित आकृति वाली मूर्ति की सेवा पूजा करने से काया पवित्र हो जाती है ऐसे देव की उपासना प्रथम कारण है।

२—गुरु—कनक कामिनी के त्यागी नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य के पालक आरंभ परिग्रह एवं संसारी कार्यों से मुक्त और चार कषाय एवं पांच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करली है अहिंसा सत्य अस्तेय जिनका ध्येय हो ऐसे गुरु दूसरा कारण है।

३—धर्म—जिसके अन्दर अहिंसा एवं स्याद्वाद और जिनाज्ञा को प्रथम स्थान और साथ में सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परोपकारादि कार्य किये जायं वह धर्म तीसरा कारण है।

जिस जीव ने संसार में जन्म लेकर पूर्वोक्त देवगुरुधर्म को अच्छी तरह से पहिचाना नहीं की है एवं उपासना भी नहीं की है उसका जन्म पशु की भांति निरर्थक अर्थात् पृथ्वी को भारभूत ही समझा जाता है।

जैसे समझदार मनुष्य इच्छित स्थान पहुँचने के लिये रास्ते खरचापाति का संग्रह करता है वैसे ही मोक्ष नगर में जाने के लिये देवगुरुधर्म की उपासना कर लाभ का संग्रह करना चाहिये।

श्रोताओं स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करना भी महान् पुन्य है। पूर्व जमाने में कई राजा महाराजा एवं सेठ साहूकार हो गये हैं और उन्होंने सर्व साधारण के कल्याण के लिये जैन मन्दिरों से मेदनी मंडित करदी थी जैसे राजा सम्प्रतिदेव रायसाह एवं सम्राट चन्द्रगुप्त अशोक सम्प्रति चक्रवर्ति खारवेलादि नरेशों ने अनेक पुन्य कार्य्य किये जिसमें उन्होंने हजारों लाखों मन्दिर बना दिये थे। भले ही आज उन नरेशों का संसार में अस्तित्व नहीं है पर उनके किये हुये पुन्य कार्य रूपी अमर यश दुनिया में जीवित है और जहाँ तक उनके बनाये पुन्य के स्तम्भ रूप मन्दिर रहेंगे वहां तक उनके यश जरा भी कम होना यह

को तैयार होगये। इसमें मुख्य कारण तो सूरिजी के त्याग वैराग्य मय व्याख्यान का ही था शाह डावर के ज्येष्ठ पुत्र कानड़ ने अपने माता पिता की दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। केवल महोत्सव में ही नहीं पर साधर्मीभाइयों को पहरामणी और याचकों को दान में उस दानेश्वरी ने लाखों द्रव्य खर्च किया।

सूरिजी ने शुभ मुहूर्त्त में उन मोक्ष के उम्मेदवारों को विधि विधान के साथ भगवती जैन दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। बस, पुत्र हो तो ऐसा ही हो कि अपने माता पिता का इस प्रकार उद्धार करें जैसे भगवान् महावीर और आर्य रक्षित सूरि ने अपने माता पिताओं को दीक्षा देकर उद्धार किया था।

आचार्य देवगुप्तसूरि चन्द्रावती नगरी से विहार कर यूथपति की भांति भूमण्डल पर भ्रमण करने लगे एक समय आचार्य देवगुप्तसूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ भूमण्डल को पवित्र एवं भव्य जीवों का उद्धार करते हुये कान्यकुब्ज देश एव आप कन्नोज राजधानी मे पधार रहे थे। वहा की जनता को खबर होते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा भलो गुरु महाराज पधारे इससे बढ़ कर और खुशी क्या हो सकती है। अत वे बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत कर नगर प्रवेश कराया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। एक समय इधर तो सूरिजी का व्याख्यान हो रहा था उधर पास ही से वहाँ का राजा चित्रगेंद घुड़सवार होकर जारहा था राजा ने मनही से सूरिजी को वन्दन किया। सूरिजी ने राजा की अंगचेष्टा से जानकर उच्चस्वर से धर्म लाभ दिया राजा सुनकर चला गया पर मन में समझ गया कि यह महात्मा बड़े ही अतिशय ज्ञानी हैं।

शाम के समय राजा ने अपने प्रधान मंत्री रावल को कहा रावल! तेरे आचार्य यहाँ आये हैं और वे अच्छे ज्ञानी बतलाते हैं। एक दिन राज सभा में उनका व्याख्यान होना चाहिये। रावल ने कहा हाँ हुजूर आचार्य श्री अच्छे ज्ञानी हैं और उनका व्याख्यान अपनी राजसभा में अवश्य होना चाहिये। मेरा ख्याल तो है कि सूरिजी का व्याख्यान कल ही हो तो अच्छा है राजा ने कहा कि अच्छा कल ही सही।

मन्त्री रावल ने सूरिजी के पास जाकर वन्दन के पश्चात् राजा की ओर से निवेदन किया कि आपश्री का व्याख्यान कल राज-सभा में हो तो अच्छा है क्योंकि राजा की इच्छा आपका व्याख्यान सुनने की है। सूरिजी ने कहा बहुत अच्छा है राजा की और आपकी प्रार्थना को हम स्वीकार करते हैं। बस, मन्त्री ने सब प्रकार की तैयारियाँ करलीं। पुरुष वर्ग के साथ ही साथ महिलाओं के लिये भी कनात वगैरह का अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि वे भी सूरिजी का व्याख्यान सुन सकें।

दूसरे दिन ठीक टाइम पर सूरिजी अपने विद्वान शिष्यों को साथ लेकर राजसभा में पधारे। इधर राजा और राजकर्मचारियों ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। सूरिजी के पधारने से पहिले ही सभा श्रोता जनों से खचाखच भर गई थी। उधर महाराणीजी आदि राजअन्तेवर और नागरिक महिलायें उपस्थित हो गई थीं। सूरिजी के एक बाल शिष्य था सबसे पहिले मंगलाचरण उसने किया जिसकी सारगर्भित मधुरवाणी राजा प्रजा को इतनी प्रिय होगई कि वे चाहते थे कि सम्पूर्ण व्याख्यान ही बालमुनि दे परन्तु बालमुनि मंगलाचरण करके चुप रह गया। तत्पश्चात् सूरीश्वरजी ने अपनी ओजस्वी वाणी से अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। आपने धर्म का महत्त्व, धर्म का स्वरूप और धर्म की साधना के विषय खूब ही विवरण के साथ व्याख्यान दिया जिसमें बतलाया कि दुनिया में अनेक धर्म प्रचलित हैं तथा धर्म का नाम ही इतना प्रिय है कि जनता उसको बिना सकोच अपना लेती है। पर मैं आज आपके सामने धर्म का स्वरूप कहूँगा—

दीक्षा दे अपना शिष्य बना लिया था और उसका नाम सौभाग्यकीर्ति रख दिया था। तत्पश्चात् सूरिजी ने मरुधर मेदपाट आवंती प्रदेश में विहार कर जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति की। जब आप श्रीमान् उज्जैन नगरी में विराजते थे तब वहां के श्रीसंघ ने वहां एक जैनों की सभा की और बहुत दूर २ से चतुर्विध श्रीसंघ वहां आया धर्म प्रचार के विषय खूब जोरदार व्याख्यान हुये जिससे चतुर्विध श्रीसंघ और विशेष श्रमणसंघ में धर्म प्रचार करने की बिजली पैदा हुई और वे धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध भी होगये। आप हुये साधुओं के अन्दर कई योग्य साधुओं को सूरिजी ने पदवियां भी प्रदान की जैसे—

१—मुनि सौभाग्यकीर्ति आदि सात साधुओं को उपाध्याय पद प्रदान किया।

२—मुनि रामईसादि ग्यारह साधुओं को वाचनाचार्य पद।

३—मुनि धर्ममूर्ति आदि पांच साधुओं पण्डित पद।

४—मुनि चारित्रसुन्दरादि पांच मुनियों को गणिपद।

५—मुनि महाकल्लशादि तीन मुनियों को महत्तरपद।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे आप यह भी जानते थे कि भिन्न २ प्रांतों मे विहार करने वाले साधुओं मे नायकत्व की जरूरत है तथा योग्य मुनियों की कदर करने से एक तो उनका उत्साह बढ़ता रहेगा और दूसरे भी साधु अपनी योग्यता बढ़ाने की कोशिश करेंगे। राजनीति में भी देखा जाता है कि केवल एक राजा ही राजतंत्र नहीं चला सकता है पर उसके राजतंत्र चलाने मे मन्त्री, महामन्त्री, दीवान, प्रधान, हाकिम, हवलदार आदि कई पदवीधरों की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार धर्मशासन भी केवल एक आचार्य से ही नहीं चलता है पर आचार्य के अलावा उपाध्याय, गणी गणविच्छेदक, पण्डित वाचनाचार्य और महत्तरादि पद प्रतिष्ठितों की आवश्यकता रहती है और उसकी पूर्ति के लिये ही सूरिजी ने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान की थी। तदनन्तर सूरिजी ने उन पदवीधरों की अध्यक्षता मे मुनियों को पृथक् २ प्रान्तों मे विहार करने की आज्ञा देदी और उन महात्माओं ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य कर निर्दिष्ट स्थानों की ओर विहार भी कर दिया।

पहिले जमाने मे दस-दस बीस-बीस एवं इनसे भी अधिक दीक्षायें एक ही साथ मे होजाती थी इसका मुख्य कारण तो उस जमाने में जीवों का लघुकर्मी पना था। दूसरे दीक्षा देने वाले आचार्य निस्पृही और परोपकारी थे। तीसरे उनका व्याख्यान त्याग वैराग्य एवं आत्मकल्याण के लिये ही होता था। चतुर्थ वे केवल अपनी जमात बढ़ाने को ही दीक्षा नहीं देते थे। पर उनकी भावना संसार के कारागृह से छुड़ा कर उनका उद्धार करने की ही रहती थी। पांचवें दीक्षा लेने वालों की पहिले पूरी परीक्षा की जाती थी और जो योग्य होता उसको ही दीक्षा दी जाती थी यही कारण था कि जनता में दीक्षा का बड़ा भारी महत्व समझा जाता था। चाहे कोई दीक्षा न भी लेता हो पर दीक्षा लेने वाले को वे अच्छा समझते थे और उनको पूज्य भाव से देखते थे।

धर्म प्रचार का मुख्य तब आधार साधुओं पर ही रहता है। जितनी अधिक संख्या में साधु होते है उतना ही अधिक धर्म प्रचार होता है। एक समय अनार्य देशों तक साधु विहार करते थे तो उन अनार्य देशों में भी जैन धर्म का काफी प्रचार होगया था। अतः धर्मप्रचार के लिये साधुओं की आवश्यकता है।

उपकेशगच्छ के आचार्यों के पास अधिक दीक्षा होने का कारण यह था कि एक तो इन प्रान्तों में

ही करेगी इत्यादि सूरिजी ने खूब प्रभावशाली उपदेश दिया बाद जैन शासन की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

सूरिजी के व्याख्यान का प्रभाव यों तो सब लोगों पर हुआ ही था पर विशेष वहां के राजा चित्रगेंद पर हुआ कारण उनको सूरिजी पर पहले ही श्रद्धा हो गई थी कि मन से वन्दन करने पर भी आपने धर्मलाभ दे दिया था फिर सुन लिया सूरिजी का व्याख्यान जिसमें सूरिजी का किंचित मात्र भी स्वार्थ नहीं था जो आपने फरमाया वह केवल जीवों के कल्याण के लिये ही कहा था।

राजा चित्रगेन्द सूरिजी का पक्का भक्त बन गया और कई प्रकार से तर्क वितर्क कर धर्म का निर्णय कर जैनधर्म को स्वीकार भी कर लिया और अपनी ओर से एक विशाल जैनमंदिर बनाना भी शुरू कर दिया और उस मंदिर के लिये भगवान् महावीर की सुवर्णमय मूर्ति बनाई जिसके नेत्रों के साथ सवा सवा लक्ष रुपयों की दो मणियें लगाई थी जो रात्रि में सूर्य्य के सदृश्य प्रकाश करती थीं।

जब राजा के बनवाया मन्दिर और मूर्त्ति तैयार हो गया तो राजा ने अपने निज मनुष्य को भेज कर गुरुवर्य्य देवगुप्तसूरि को बुलवाये और आचार्य श्री का पधारना कन्नौज राजधानी में हुआ तो राजा एव सकल श्रीसंघ ने सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह से किया और सूरिजी महाराज के उपदेश से राजा ने जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव करवाया तथा आचार्य श्री देवगुप्तसूरि के कर कमलों से नूतन बनाई मूर्त्तियों की अजनसिलाका तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिसमें राजा ने सवा करोड़ द्रव्य व्यय कर जैन धर्म की उन्नति के साथ अनत पुन्य भी संचय किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि महान प्रभाविक एव जैनधर्म के कट्टर प्रचारक आचार्य हुये हैं केवल एक चित्रगेंद राजा को ही जैनी नहीं बनाया पर अनेक राजाओं को जैनधर्म में दीक्षित कर जैनधर्म को उन्नति के ऊचे शिखर पर पहुँचा दिया था। पट्टावली कारों ने आप श्री के जीवन विषय बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

आचार्य देवगुप्तसूरि को विहार करने का बड़ा ही शौक था। सैकड़ों कोसो का फासला आपको एक खेल ही नजर आता था। कहाँ मरुधर और कहाँ पूर्व, वे इच्छा करते तब ही विहार कर देते। भला उस जमाने के मनुष्यों के सहनन कितने ही मजबूत हों परन्तु विना धर्मोत्साह इस प्रकार का विहार हो नहीं सकता पर धर्मप्राण आचार्य देवगुप्तसूरि के नस नस में जैनधर्म के प्रचार की भावना ठूस ठूस कर भरी हुई थी आप कन्नौज से विहार कर पूर्व की ओर पधारे, अंग बग कलिंग की भूमि में भ्रमण करते हुये सम्मेतशिखर तीर्थ पर जाकर बीस तीर्थंकरों की और आचार्य कक्कसूरि की निर्वाणभूमि की यात्रा की। बाद कई अर्सा तक उस प्रदेश में भ्रमण कर वहां विचरने वाले साधुओं की सार सम्भाल तथा वहा की जनता में धर्मभावना विशेष रूप से पैदा की। तत्पश्चात् आप पाचाल सिन्ध कच्छ सौराष्ट्र लाटप्रदेश में भ्रमण करते हुये मरुधर में पधारे जिसको सुनकर मरुधरवासियों के उत्साह का पार नहीं रहा आप क्रमश विहार करते उपकेशपुर पधारे। श्रीसघ ने आपका उत्साह पूर्वक स्वागत किया। श्रीसघ के आग्रह से सूरिजी ने उपकेशपुर में चतुर्मास कर दिया। सूरिजी के विराजने से यों तो बहुत उपकार हुआ पर एक विशेष बात यह हुई कि आपश्री ने कुमट गौत्रीय शाह जैता के पुत्र सारंग को भविष्य में होनहार समझ के

तदन्वये देवगुप्ताचार्यो यै प्रतिबोधित'। श्री कान्यकुब्ज देशस्य स्वामी चित्रांगदाभिध ॥
स्वराजधानी नगरे, स्वर्ण बिम्ब समन्वितम्। योऽकार मज्जिन गृह देवगुप्त प्रतिष्ठितम्॥ उ० च०

तथा अन्य लोगों के विविध प्रश्नों के समाधान पूर्ण उत्तर ।

२६—छब्बीसवां चतुर्मास भगवान ने नालंदा ( राजगृह ) में व्यतीत किया बाद विहार किया गौतम ने पूर्व के विषय प्रश्न किये प्रभु ने समाधान किया ।

२७—सत्ताईसवां चतुर्मास प्रभु ने मिथिला नगरी में बिताया—बाद वहां से विहार करके अनेक मुमुक्षुओं को प्रवचन के प्रभावस्वरूप अनगार धर्मपक्षों को अनगार दीक्षा धर्मपक्षों को गृहस्थ धर्म की दीक्षा दी ।

२८—अठाईसवां चतुर्मास प्रभु ने पुनः मिथिला नगरी में किया बाद चतुर्मास के मगध की ओर विहार—राजगृह में पधारे वहां महाशतक अन्तिम आराधना में लगा हुआ था उसकी स्त्री रेवती ने उन्माद मचाया महाशतक को अवधि ज्ञान हो आया रेवती का भविष्य वहां पर कह कठोर होने से प्रभु गौतम को महाशतक के पास भेज कर आलोचना करवाई इत्यादि । उष्णजल का होद के प्रश्न आयुष्यकर्म के विषय प्रश्न । अन्य भी बहुत से प्रश्नोत्तर ।

२९—उन्तीसवां चतुर्मास प्रभु ने राजगृह नगरमें व्यतीत किया बादमें प्रभु वहां ठहरे । कई भव्य जीवों को मोक्ष । गौतम ने छठा आरा के लिये पूछा बाद पांचवां आरा के विषय पूछा प्रभु ने उत्तर दिये इत्यादि ।

३०—तीसवां चतुर्मास पावापुरी में हुआ । यह भगवान् के जीवन का अन्तिम चतुर्मास था यहाँ के राजा हस्तिपाल की रज्जुग सभा में आपने चतुर्मास किया था चतुर्मास के तीन मास को व्यतीत होने से कार्तिक मास में भगवान् की सभा में काशी कौशल के अठारह गणराजा राजा उपस्थित थे जब प्रभु का अन्त समय निकट अर्थात् कार्तिक कृष्ण अमावस्या का सूर्योदय हो चुका था भगवान् ने अपुट्ठ ( बिनापूछे ) व्याख्यान-देशना देना प्रारम्भ किया जिसमें ५५ पाप फल विपाक रूप और ५५ पुण्यफल विपाकरूप अध्ययन कह कर ३६ अध्ययन कहे जो आज उत्तराध्ययन सूत्र के नाम से कहलाते हैं तथा सेंतीसवां प्रधान नाम तथा मरुदेवी नाम का अध्ययन प्रारम्भ करते ही आयुष्य कर्म की क्षीणता से भगवान् स्थूल शरीर तथा तैजस और कार्मण शरीर अनादि काल से जीव के साथ थे उनको भी छोड़कर एक समय का गमन मार्ग अर्थात् ऊर्ध्व गमन लोकाग्रभाग में अनन्त सुखों का धाम-मोक्ष नगर में पधार गये उस समय के पूर्व ही भगवान् ने गौतम को एक देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध के लिये भेज दिये थे जब प्रभु के निर्वाण हुए और देवता कह कह करते हुए आते जाते कह रहे थे कि अन्तिम तीर्थंकर का निर्वाण होने से लोक में अन्धकार हो गया है इन बातों को गौतम ने सुनी तो व चल कर प्रभु के स्थान आया और पहले तो बहुत रागवश विलाप किया और स्नेहवश उपालम्भ भी दिया पर बाद में सोचा कि प्रभु निरागी थे इत्यादि शुभ भावना से गौतम को भी कैवल्य ज्ञान उत्पन्न होगया अतः इन्द्रादि देवों ने प्रभु का निर्वाण महोत्सव के अनन्तर गौतम का कैवल्य महोत्सव किया ।

इस प्रकार भगवान् महावीर के तीर्थङ्कर अवस्था के ३० चतुर्मास का सिलसिलेवार संक्षिप्त में हाल लिखा दिया है । विस्तार देखो भगवती म का ग्रन्थ में । इति शुभम् ।।

---

जैन धर्म की नीव ही उपकेशगच्छाचार्यों ने डाली थी। दूसरे उपकेशगच्छाचार्य्यों का इन प्रान्तों में विहार विशेष होता था तीसरे उनका व्याख्यानभी त्याग वैराग्य पर विशेष होता था चौथे इस गच्छके आचार्य इतने कुशल होते थे कि कोई भी प्रान्त साधु विहीन नहीं रखते थे प्रत्येक प्रान्त में आवश्यकतानुसार साधुओं का विहार करवा ही देते थे। पांचवा इस गच्छ मे एक ही आचार्य होते आये है कि सब साधु साध्वियां एक ही आचार्य की आज्ञा में चलते थे कि आपस में मान बड़ाई या मनोमालिन्यता का कारण ही नहीं था। छट्ठा आचार्य स्वय कम से कम एक बार तो उन सब प्रान्तों को सभाल ही लेते थे इत्यादि कारणों से उपकेशगच्छीय आचार्यों ने साधु सख्या खूब बढ़ाई थी और जैनधर्म का प्रचार भी प्रचुरता से किया था यदि उनका अनुकरण आज भी किया जाय तो आज भी आसानी से धर्म प्रचार कर सकते हैं परन्तु वर्तमान आचार्यों में तो स्वार्थता, शिथिलता, कायरता लोलुपता और अहपदादि कई ऐसे गुण (!) घुस गये हैं कि वे सामग्री के सद्भाव कुछ करने काबिल नहीं रहे हैं यही कारण है कि कई प्रान्तों में जहाँ लाखों जैन थे वे क्षेत्र जैनधर्म विहीन बन गये हैं इसके लिये सिवाय भवितव्यता के और क्या कहा जा सकता है।

आचार्य देवगुप्तसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य थे आपके ब्रह्मचर्यादि अनेक अतिशय गुणों से रजित हो राजा महाराजा तो क्या पर कई देवी देवता भी आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे। आपश्री के उपदेश मे तो न जाने क्या जादू का चमत्कार रहा हुआ था कि क्या मनुष्य और क्या देवता जो एक बार आपके उपदेशामृत का पान कर लेता था वह सदैव उसके लिये लालायित ही रहता था।

एक समय अंबा पद्मा अच्छुप्ता और विजय एवं चारों देविया श्री सीमन्धर स्वामी का व्याख्यान सुनने के लिये गई थी तो तीर्थङ्कर भगवान् ने श्रीमुख से फरमाया कि इस समय भरतक्षेत्र मे देवगुप्तसूरि अद्वितीय ब्रह्मचारी है और जैसी वाणी में मधुरता देवगुप्त के है वैसी दूसरे मे नहीं है। व्याख्यान समाप्त होने के बाद चारों देविया चलकर भरतक्षेत्र मे देवगुप्तसूरि के पास आई। उस समय देवगुप्तसूरि आबू की कन्दरा में परमनिर्वृति में ध्यान लगा रहे थे। देवियों ने अपने मायावी रूप से अनेक प्रकार से अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग दिये पर वहां तो थे अकम्पमेरू जिसको कौन चला सके। आखिर देवियों ने अपने अपराध की माफी मांगती हुई कहा कि पूज्यवर! जैसा सीमन्धर प्रभु ने अपने मुख से आपके अद्भुत गुणों का वर्णन किया वैसे ही आप हैं। हम चारों देविया आज से आपके चरणार्विन्द की किंकरी हैं। अत' सेवाकार्य फरमा कर कृतार्थ करें हे प्रभो! आप निर्वृति का एकान्त में सेवन करते हैं इसमें तो केवल आपका ही कल्याण है पर आप अपनी मधुरवाणी से उपदेश दिरावे तो उसमें अनेक जीवों का कल्याण हो सकता है और हम लोगों ने तीर्थङ्कर सीमधर देव के मुखसे आपके वाणीकी मधुरता सुनी है उसी समय से आपके व्याख्यान की इतनी प्यासी हैं जैसे मरुधर के लोग पानी से प्यासे रहते हैं। अत' कृपा कर उपदेश सुनावें।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने उन देवियों को थोड़ा पर सारगर्भित उपदेश सुनाया जिसमें कहा कि पूर्व जन्म में क्या क्या कार्य करने से देवयोनि प्राप्त होती है और देवयोनि में देवताओं को क्या क्या कार्य करना चाहिये कि जिसमे सुलभ बोधित्व प्राप्त हो, संसार के भ्रमण से छूट कर अक्षय सुख हासिल करलें इत्यादि। देवियाँ सूरिजी का मधुर उपदेश सुन कर खुश होगई और उनका दिल चाहने लगा कि ऐसा उपदेश हमेशा सुना करें।

आचार्य देवगुप्तसूरि जैसे माई के सपूत विरले ही होंगे कि जिन्होंने अपने जन्म देने वाले माता पिता को दीक्षा देकर उनकी सेवा भक्ति कर स्वर्ग पहुँचा दिये।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १९ कीराटपुर | के श्री श्रीमाल | शाह | सणा | ने | सूरिके | पास दीक्षाली |
| २० वर्धमान० | के श्रेष्टि गौ० | ,, | हेमा | ने | ,, | ,, |
| २१ सोपार० | के कुमट गौ० | ,, | माना | ने | ,, | ,, |
| २२ उज्जैन | के कनौरिजया | ,, | दोला | ने | ,, | ,, |
| २३ माडव्यपुर | के चिंचट | ,, | जोधा | ने | ,, | ,, |
| २४ आघाट० | के चरड़ गौ० | ,, | कुमार | ने | ,, | ,, |
| २५ मध्यमिका | के अदित्यनाग | ,, | खीवसी | ने | ,, | ,, |
| २६ चदेरी | के सचेती गौ० | ,, | चाचा | ने | ,, | ,, |
| २७ मथुरा | के सुघड़ गौ० | ,, | पहाड़ | ने | ,, | ,, |
| २८ लोहाकोट | के चोरलिया० | ,, | देवा | ने | ,, | ,, |
| २९ वीरपुर | के ब्राह्मण० | ,, | जगदेव | ने | ,, | ,, |
| ३० रानकपुर | के राव० | ,, | हप्पा | ने | ,, | ,, |

इनके अलावा आपश्री के जीवन में कई स्थानों पर मुमुक्षुओं को दीक्षा दी थी और कई बहिनों ने भी दीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण किया था। तथा आपके आज्ञावृत्ति मुनियों ने भी बहुत से भव्यों को दीक्षा देकर श्रमण संघ में आशातिता वृद्धि की थी आपका शासन समय जैनधर्म की उन्नति का समय था—

## आचार्यश्री के शासन समय तीर्थों के संघ—

१—नागपुर नगरसे अदित्यनाग गौत्रीय शाह फुवा ने श्रीशत्रुँजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोना मुहरों की पहरामणि दी सात यज्ञ किये। आपके एक पुत्र और दो पुत्रिया दीक्षा भी ली।

२—चन्द्रावती नगरी से प्राग्वटवंशीय शाह कर्मा ने श्री शत्रुँजय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें ८४ देरासर और एक लक्ष से अधिक यात्रु लोग थे शाह कर्मा ने साधर्मी भाइयों ने सोना मुहरों की पहरामणी दी और तीन बड़े यज्ञ किये। इन शुभ कार्यों में कई पन्द्रह लक्ष द्रव्य व्यय किया।

३—उज्जैन से श्रेष्टि नारा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें श्रेष्टिवर्य्यनारा ने नौ लक्ष रूपयें व्यय कर अनन्त पुन्योपार्जन किया। और साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी—

४—शिव नगर से भद्र गौत्रीय मत्री लाखण ने श्री सम्मेता शिखरजी तीर्थ का संघ निकाला जिसमें ११ हस्ती १२० देरासर तीन हजार साधु साधियों और करीबन एक लक्ष यात्रुओं की संख्या थी मंत्री ने बड़े ही उदार चित से पुष्कल द्रव्य व्यय किया ओर पूर्व की तमाम यात्राएँ की धन्य है ऐसे नर रत्नों को।

५—कोरटपुर से श्रीमाल हाला ने श्री शत्रुजय का संघ निकाला—

६—सोपारपट्टन से वलाह गौत्रीय शाह मघा गोपाल ने श्री शत्रुजय का संघ निकाला—

७—टेलीपुर मे प्राग्वट जालण ने श्री शत्रुँजय का संघ निकाला—

८—शंखपुर से तप्तभट्ट गौत्रीय मत्री नागदेव ने श्री शत्रुजय का संघ निकाला—

९—दान्तीपुरा से बापनाग गौत्रीय शाह लाधा ने श्री शत्रुँजय का संघ निकाला—

१०—स्तम्भनपुर मे प्राग्वट रघुवीर ने श्री शत्रुजय का विराट संघ निकाला—

११—उपकेशपुर से आदित्यनाग गौ० शाह सोमनाग ने श्री शत्रुंजय को संघ निकाला—
१२—चित्रकोट से सुचिंती गौत्रीय मंत्री हरदेव ने श्री उपकेशपुर का संघ निकाला—
१३—मेदिनी से चरड़ गौत्रीय शाह सुखा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१४—माडव्यपुर से कुलभद्र गौत्रीय शाह नाथा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१५—पद्मावती से मोरख गौत्रीय शाह गुणपाल ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१६—शिवपुरी से मल्लवर शाह भैराने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१७—मथुरा से श्रेष्ठि गौत्रीय शाह शाखला ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला—
जिसमें संघपति शाखला ने एक करोड़ द्रव्य व्यय किया स्वधर्मी भाइयों को सोना की मोहरों और वस्त्रों के सोना के चूड़ा की पहरामणि देकर अपनी अक्षय कीर्ति को दुनियों के इतिहास में अमर बना गये थे।

इत्यादि अनेक महानुभावों ने अपनी चल लक्ष्मी को ऐसे पुनीत कार्यों में व्यय कर स्वात्म के साथ परात्मा का कल्याण किया इस संघ निकालने में आचार्य श्री तथा आपके मुनिवरों का ही उपदेश था।

## आचार्यश्री के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाए

१—उपकेशनगर के बाप्पनाग गौ० मोखम ने भ० महावीर के म० प्र०
२—चैत्रागढ़ के कनकुम्भ धारा ने „ „ के „ „
३—मुग्धनगर के मल्ल गौ देदा ने „ „ के „ „
४—रत्नपुरा के सुचंती गौ० रूपणसीने „ पार्श्व के „ „
५—चन्द्रपुरा के आदित्यनाग० करमण ने „ „ के „ „
६—ईसावती के चरड़ गौ पुना ने „ शान्ति के „ „
७—विराटपुर के सुघड़ गौ भैसा ने „ महावीर के „ „
८—नारायणपुर के श्रेष्ठि गौ जोवसी ने „ „ के „ „
९—देवीपुर के श्रेष्ठि गौ गोकल ने „ „ के „ „
१०—हर्षपुर के कुलभद्र गौ माधा ने „ „ के „ „
११—मन्दपुर के बलाह गौ० चौखा ने „ आदिनाथ के „ „
१२—भवानीपुर के भूरि गौ मोका ने „ „ के „ „
१३—शाकम्भरी के चिंचट गौ० रामदेव ने „ महावीर के „ „
१४—पद्मावती के लघुश्रेष्ठि गौ हरिया ने „ „ के „ „
१५—दुर्गपुर के करणाट गौ भूणा ने „ „ के „ „
१६—कनपुर के कुमट गौ रावल ने „ पार्श्व० के „ „
१७—आसोरपुर के आदित्यनागगौ पेथा ने „ „ के „ „
१८—बड़नगर के वीरहट गौ० हरपाल ने „ महावीर के „ „
१९—नागपुर के भाद्रगौ देवा ने „ „ के „ „
२०—मुग्धपुर के श्रीमाल गौ राणा ने „ „ के „ „

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २१—मेदनीपुर | के | प्राग्वट गौ० | भोमा ने | भ० | विमल० | के | म० प्र० |
| २२—मुजपुर | के | प्राग्वट गौ० | दोला ने | ,, | पार्श्व० | के | ,, ,, |
| २३—वीरपुर | के | प्राग्वट गौर | रावल ने | ,, | ,, | के | ,, ,, |
| २४—देवपुर | के | गान्धी गौ० | नींबा ने | ,, | ,, | के | ,, ,, |
| २५—लाढापुर | के | बोहरा गौ० | काना ने | ,, | ,, | के | ,, ,, |
| २६—भीनामाल | के | श्रेष्टि गौ० | सज्जन ने | ,, | ,, | के | ,, ,, |
| २७—मंडाणी | के | बाप्पनाग गौ० | नौदा ने | ,, | पार्श्व० | के | ,, ,, |
| २८—शौर्यपुर | के | भाद्र गौ० | माना ने | ,, | ,, | के | ,, , |
| २९—मथुरा | के | करणाट गौ० | सगार ने | ,, | शान्ति० | के | ,, ,, |
| ३०—वैराटपुर | के | प्राग्वट वंशीय | जोरा ने | ,, | चन्द्रप्रभ | के | ,, ,, |
| ३१—कपिलपुर | के | प्राग्वट वंशीय | थाना ने | ,, | आदीश्वर | के | ,, ,, |

इत्यादि अनेक स्थानों पर जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस जमाना में जनता की मन्दिरों पर कितनी श्रद्धा थी दूसरे जैनाचार्यों ने भी जहाँ नये जैन बनाये वहाँ सबसे पहला मन्दिर का उपदेश दिया करते थे इससे एक तो धर्म पर श्रद्धा मजबूत बनी रहती दूसरे इससे गृहस्थों के पुन्य भी बढते थे कारण इस निमित कारण से गृहस्थों के घर से प्रतिदिन कुछ न कुछ द्रव्य निकल ही जाता। जब उस समय का इतिहास देखा जाता है तो इस प्रकार के मन्दिरों की आवश्यकता भी थी तीसरे उस समय जैनों की संख्या करोड़ों की थी और उसके पास लक्ष्मी भी अखूट थी और वे लोग तीर्थों के संघ निकलने में मन्दिर बनाने में साधर्मी भाइयों को सहायता देने में अपने जीवन की सार्थकता समझते थे इत्यादि कारणों से पाया जाता है कि उस समय प्रत्येक आचार्य के समय इस प्रकार के मन्दिरों की प्रतिष्टा हुआ करती थी मैंने यहा पर केवल थोड़े से नामों का ही उल्लेख किया है।

चार वीस पट्ट सूरि शोभे, देवगुप्त यक्षधारी थे।
कुमट गोत्र उद्योत किया गुरु, जैनधर्म प्रचारी थे॥
शुद्ध संयम अरु तप उत्कृष्टा, ज्ञान गुण भंडारी थे।
सुविहित शिरोमणि जिनकी सेवा, करते पुन्य के भारी थे॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २४ वें पट्ट पर आचार्य देवगुप्तसूरि महान प्रभाविक आचार्य हुये॥

# २५ आचार्य सिद्धसूरि (चतुर्थ)

श्रेष्ठी श्रेष्ठ गुणान्वितो दिनमणिर्गोत्रे स्वकीये महः
आचार्यस्तु स सिद्धसूरिरभवत् सिद्धेः सुवर्णस्य च ॥
स्वामी दीक्षित एव भगवान् विद्यासमुद्रस्तथा ।
यशो येन कृतः स्वतः सविपुलो जैनीयधर्मोन्नतौ ॥

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक सिद्ध पुरुष ही थे । अनेक विद्याएँ और लब्धियें तो आपको स्वयं वरदाई थी । मंत्र यंत्र में आप सिद्धहस्त थे । आप जैसे विद्वान् थे वैसे ही धर्म प्रचारक भी थे । आपश्री ने अनेक सिद्ध कार्य्य करते हुए धर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया था । आपका जन्म उपकेशपुर नगर के महाराज उत्पलदेव की सन्तान परम्परा के श्रेष्ठि गोत्रीय शाह जैता की गृह देवी एवं धर्मपरायण धन्नादेवी की पवित्र कुक्ष से हुआ था। आपका नाम सारंग था। शाह जैता विशाल कुटुम्ब वाला होने पर भी उसके पूर्वभव की ऐसी कोई अन्तराय थी कि द्रव्य के लिये अनेक प्रयत्न करने पर भी उसका गुजारा बड़े ही मुश्किल से चलता था । निर्धन लोगों के घर में जैसे दरिद्र का वास होता है वैसे ही क्लेश भी अपना अड्डा जमा बैठता है । इन दोनों से शाह जैता महान् दुःखी रहता था ।

एक समय आचार्य देवगुप्त सूरिजी का पधारना उपकेशपुर में हुआ । समय पाकर शाह जैता ने सूरिजी की सेवा में आकर अपनी दुःख गाथा कह सुनाई । इस पर सूरिजी ने कहा जैता ! जीवों के सुख और दुःख पूर्वसंचित कर्मानुसार होते हैं पर न तो सदैव दुःख रहता है और न सुख ही रहता अर्थात् सुख और दुःख का चक्र चलता ही रहता है । सामग्री के होते हुए भी जीव पुण्य संचय नहीं करते हैं उसका ही यह फल है फिर भी आत्मा में अनंत शक्ति है । कैसा ही कर्म क्यों न हो उसे हटा सकता है । दूसरे दुःख अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है तब समझ लेना चाहिये कि अब इसका अन्त होने वाला है । तेरे कुछ नियम व्रत भी है या नहीं ? शाह जैता ने कहा प्रभो ! मेरी इच्छा तो बहुत रहती है पर सांसारिक प्रपंच के कारण मैं कुछ कर नहीं सकता हूँ । सूरिजी ने कहा जैता । पूर्वभव में तो कुछ नहीं किया जिसका फल यहाँ भुगत रहा है । यदि इस भव में भी कुछ नहीं करेगा तो भविष्य में क्या पावेगा । अतः तुमको धर्म आराधन अवश्य करना चाहिये । जैता ने कहा दयालु, जैसे मेरे से बन सके वैसा रास्ता बतलाइये । सूरिजी ने कहा कि जैता श्रावक का आचार है कि कम से कम हमेशा परमेश्वर की पूजा और एक सामायिक तो करनी ही चाहिये । जैता ! परमेश्वर की पूजा इस भव और परभव में हित सुख और कल्याण का कारण है और सामायिक से जीव को शान्ति मिलती है । सूरिजी और जैता के बीच बातें हो रही थी इतने में सारंग भी आ गया । जिसको देख सूरिजी ने कहा जैता यह लड़का कौन है ? इसकी भाग्यरेखा इतनी जोरदार है कि यह कोई प्रभाविक पुरुष होगा ! जैता ने कहा पूज्यवर ! यह आपका लघु श्रावक है । सूरिजी जान गये कि यह जैता का पुत्र है । शाह जैता सूरिजी के शुभ वचन सुनकर बड़ा खुश हुआ । उसके दिल का सब फिक्र तो

चोरों की भांति भाग छूटा। मनुष्य का भाग कैसे खुलता है और नीचे गिरा हुआ मनुष्य किस कदर उच्च स्थिति को पहुँचता है और गुरू महाराज का वचन कैसे सिद्ध होता है जिसको आप आगे के पृष्ठों पर पढ़ोगे कि सारग का जीवन एक उदाहरण रूप बन जाता है।

सूरिजी ने कुछ अर्सा ठहर कर विहार कर दिया। पीछे एक समय सारग अपने भाइयों से अनबन के कारण एक दिन बिना किसी के कहे घर से निकल गया। सारग के घर में था भी तो क्या कि कुछ रास्ते के लिये साथ ले जाता फिर भी सारग को अपनी तकदीर पर भरोसा था। वह चलता चलता जा रहा था मार्ग में एक सिद्ध पुरुष का साथ हो गया। बस सारग की तकदीर खुलने का यह एक निमित्त कारण था, सारंग सिद्ध पुरुष के साथ हो गया और चलते हुए एक दिन कांही विश्राम लिया, भाग्यवशात् सिद्ध पुरुष बीमार होगया यहां तक कि उसके जीने की आशा तक भी छूट गई। परन्तु सारंग ने उस सिद्ध पुरुष की इतनी चाकरी की कि वह मरने से बच गया। इसमें उपादान कारण तो उसका आयुष्य ही था पर निमित्त सारंग का भी साथ था। ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि अपने निमित्त से दूसरों का भला हुआ हो तो उसके उपादान कारण को ही समझे और दूसरे के निमित्त से अपना भला हुआ हो तो उस निमित्त कारण को याद करे। तात्पर्य यह हुआ कि अपने निमित्त से दूसरों का भला हुआ हो तो उसे भूल जाना कि इसका उपदान ही अच्छा था मैं तो केवल निमित्त कारण ही था और दूसरे के निमित्त से अपना भला हुआ हो तो उस निमित्त को हमेशा स्मरण में रखना। और बन सके तो प्रत्युपकार करे।

सिद्ध पुरुष भी एक ज्ञानी था उसने सारग का बड़ा भारी उपकार माना जिसके प्रत्युपकार के लिये उसने सोचा कि मैं इसका बदला कैसे दे सकू ? सिद्धपुरुष ने सारग को एक सुवर्णसिद्धविद्या प्रदान की सारग ने कहा कि मैंने अपने कर्त्तव्य से अधिक कुछ भी नहीं किया अत: यह विद्या आप अपने पास ही रहने दीजिये और देना ही है तो किसी योग्य पुरुष को दीजिये कि इसका सदुपयोग हो सके। सारग के निष्कपट और निस्पृहता के वचन सुन सिद्ध पुरुष को उस पर और भी श्रद्धा बढ़ गई। और उसने सुवर्ण सिद्ध विद्या आम्नाय के साथ सारग को देदी। बस, फिर तो था ही क्या। सारग ने उस विद्या द्वारा पुष्कल सुवर्ण बनालिया और उस सुवर्ण द्वारा अनेक निराधार गरीबों का उद्धार कीया। कारण, जिस मनुष्य ने गरीबीदेवी को देखी हो उसको ही अनुभव होता है कि गरीबाई कैसे निकाली जाती है। सारग घूमता घूमता सोपार पट्टन में आया। यद्यपि वहाँ सारंग के जान पहिचान वाला कोई नहीं था पर उसके पास था सुवर्ण का खजाना और परोपकार की बुद्धि कि रग सर्वत्र प्रसिद्ध होगया। कुछ दिन ठहरने से कई लोगों से परिचय भी हो गया। कई लोगों ने अपन कन्या की सारग के साथ सादी करनी चाही। पर सारंग ने इसे स्वीकार नहीं किया। सारग ने वहा रहकर शुभकार्यों में खूब सुवर्ण व्यय किया कि सारग की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। कहा है कि "सर्वेगुणाकाचानमाश्रयन्ति"। सारग महावीर देव की यात्रार्थ एक सघ लेकर तीन वर्षो से वापिस उपकेशपुर आया यहाँ तक उपकेशपुर में सारंग का कुछ भी पता नहीं था। शाह जैता के तेरह पुत्र थे सारग को याद भी कौन करता था। पर जब उपकेशपुर का सघ, सघ आया जान कर उसको बधाने के लिये गया तो सघपति की माला सारग के शुभ कठ में सुशोभित देखी तब जाकर लोगों को मालूम हुआ कि यह तो शाह जैता का पुत्र सारग है। अत लोगों ने जाकर जैता को बधाई दी कि तुम्हारा पुत्र सारग संघ लेकर आया है, इसको जैता अपनी निर्धनता की मसकरी ही

समाधी पर जब जाकर देखा तो वास्तव में संघपति सारंग ही निकला। उस समय बता को सूरिजी के वचन याद आये। श्रीसंघ संघपति सारंग को बधाकर नगर में ले गया और आये हुए संघ ने शासनाधीश भगवान महावीर की यात्रा कर अपने पापों का प्रक्षालन किया।

बाद सारंग अपने घर पर आया और संघ का अच्छा स्वागत कर उनको एक एक सेर सोने की पहरामणी देकर विसर्जन किया। बस आज तो उपकेशपुर के घर २ में सारंग की पुन्यवानी की ही बातें हो रही हैं। इधर कई धनाढ्यों के कन्यायें बड़ी हो रही थीं जिनका सारंग से विवाह के लिये आग्रह किया जवाब में सारंग ने कहा ऐसे प्रस्ताव तो रास्ते में भी बहुत आये थे पर मैंने स्वीकार नहीं किये क्योंकि मेरी इच्छा शादी करने की नहीं है जैनशास्त्रानुसार जिस जीव के वेद मोहनीय कर्म का प्रबल उदय होता है उसको ही काम विकार सताता है पर जिस जीव ने पूर्वभव में वेदमोहनीय कर्म नहीं बाँधा है तथा बाँधे हुए का छय तथा क्षयोपशम करदिया है, उसके सामने कितने ही विषय विकार के साधन क्यों न हो पर उसके दिलमें कभी विकार पैदा ही नहीं होता है। उसके अन्दर सारंग भी एक था। माता पिता वगैरह सम्बन्धियों ने बहुत कोशीश की पर सारंग ने किसी एक की भी नहीं सुनी। अहा-हा इस प्रकार अखूटी और अपार लक्ष्मी जिसमें ब्रह्मचर्य व्रत पालना कितना दुष्कर है ! ऐसे नर बहुत कम होते हैं जैसा कि सारंग है।

सारंग ने अपने माता पिता और भाइयों को कह दिया कि सुवर्ण का खजाना मेरे पास है जिसको जितना लाभ उठाना हो वह खुशी से उठावे। कारण प्रत्येक वस्तु की स्थिति हुआ करती है और वह अपनी स्थिति से अधिक समय तक ठहर नहीं सकती है अतः इसका जितना सदुपयोग किया जाय उतना ही अच्छा है। शाह जैता ने उपकेशपुर में भगवान महावीर देव का एक आलीशान मंदिर बनाना शुरू कर दिया और उस मंदिर के योग्य १०४ अंगुल प्रमाण सुवर्ण की मूर्ती बनाने का निश्चय कर लिया। इतना ही क्यों पर चतुर शिल्पकारों को बुला कर मूर्ति तैयार भी करवा ली।

जब तक मंदिर तैयार हो वहाँ तक श्री शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा निमित्त एक विराट् संघ निकालने का भी निश्चय कर लिया और इस कार्य्य को प्रारंभ भी कर दिया तीर्थयात्रा का संघ के साथ स्वधर्मी भाइयों की सहायता गरीबों का उद्धार और सात क्षेत्र में पुष्कल द्रव्य अर्पण भी शुरू कर दिया अर्थात् सारंग की तरफ से द्रव्य की छुट्टे दिल से छूट थी। सारंग जानता था कि मेरी स्थिति तो वह थी कि पूरी पेट की पूजा भी नहीं होती थी। अब किसी देव गुरु धर्म के प्रभाव से सहज ही में अनायास द्रव्य मिला है तो इसमें जो सदुपयोग बन जाय वही अच्छा है। इस प्रकार सारंग तथा सारंग के सम्बन्धी लोगों ने विशद चाहूदा अपना लाभ उठाया। जिसमें अधिक लक्ष्य स्वधर्मी भाइयों की ओर रखा।

जब शाह जैता के संघ नायकत्व में संघ का आयोजन बड़े ही समारोह से हुआ। इस संघ में साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविकाओं की संख्या विशेष थी। आनन्द भी अच्छा था। कार्य के लिए जिसके साथ सुवर्ण सिद्धि हो फिर कमी किस बात की। संघ यात्रा कर वापिस आनन्द से उपकेशपुर लौट आया।

इधर आचार्य देवगुप्तसूरि का पुनः उपकेशपुर की ओर पधारना हो रहा था। शाह जैता और सारंग ने सूरिजी का आगमन सुनकर बड़ा ही हर्ष मनाया और श्रीसंघ के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश बड़े ही समारोह से करवाया। सूरिजी ने सारंग का सब हाल सुना तथा शाह जैता ने आकर सूरिजी के चरणारविंद में शिर झुका कर कहा गुरुवर ! आपका वचन सिद्ध हो गया है और सारंग बड़ा ही भाग्यशाली

निकला तथा सारंग भी सूरिजी के पदार्विन्द में नमस्कार करके बैठ गया तथा सूरिजी से अर्ज की कि गुरू महाराज क्या आज्ञा है ? सूरिजी ने कहा सारंग प्रवृति से निर्वृति अनंत गुणा फल देती है । अत निर्वृ वि मार्ग को स्वीकार करो यही आज्ञा है । सारंग ने कहा गुरु महाराज मैं आपकी ही इन्तजारी कर रहा था । शाह जैता को मालूम हुआ कि सारंग तो सूरिजी के पास निर्वृ ति (दीक्षा) लेने को तैयार हुआ है । अब जैता ने सूरिजी से कहा प्रभो ! आप जल्दी न करावें, सारंग के साथ हम भी दीक्षा लेने को तैयार हैं । तीर्थों का सघ निकाल कर यात्रा तो हम लोगों ने कर ली है पर अब मदिर की प्रतिष्ठा का काम शेष रहा है पहले इन मूर्तियों की अजनशीलाका और मंदिर की प्रतिष्ठा करवा दें । बाद हम सब दीक्षा लेंगे । सूरिजी ने जैता की बात को ठीक समझ कर स्वीकार करली। इधर शाह जैता मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये खूब जोर से तैयारियें करने लगा । यह प्रतिष्ठा कोई साधारण प्रतिष्ठा नहीं थी पर एक विशेष प्रतिष्ठा थी क्यों कि जिसके घर में सोने का खजाना हो फिर तो कहना ही क्या है ? शाह जैता ने बहुत दूर दूर प्रदेशों में श्रीस घ को आमत्रण भेज दिये, अतः श्राद्धवर्ग और साधु साध्वियां खूब गहरी संख्या में पधारे । शुभ मुहूर्त मे महा महोत्सव के साथ सूरिजी के कर कमलों से जिस दिन मन्दिरजी की प्रतिष्ठा हुई उसी दिन उसी मुहूर्त में सारंग के साथ शाह जैतादि ५६ नर नारियों को सूरिजी ने बड़े ही धामधूम से दीक्षा देदी और सारग का नाम सौभाग्यकीर्ति रख दिया ।

शाह जैता और सारंग ने सघ को पहरामणी आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर रक्खा था और यह कार्य जैता ने अपने शेष पुत्रों के जुम्मे कर दिया था । अतः शाह जैता, सारंग, सारग की माता ने दीक्षा लेने के बाद आये हुए श्री संघ को शाह खेता ने सोने के थाल एवं २५-२५ सोने की मुहरों की पहरामणी दी और याचकों को दान देकर उनके घरों से दरिद्र को भगा दिया अहाहा ! सारंग ने पूर्व जन्म में किसी प्रकार के पुण्य संचय किये होंगे कि इस भव में बिना कुछ परिश्रम किये सुवर्णसिद्धि हाथ लग गई और उसको भी उसने मूंजियों की भांति सचय कर नहीं रक्खी परन्तु उसके जरिये अनेकों को आराम पहुँचा कर जैन धर्म की खूब ही प्रभावना की और अन्त में सारग इतना भाग्याशाली निकला कि आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करता हुआ दीक्षा स्वीकार करली । यह कार्य कितना दुष्कर है 'एक जवानी और पैसा पल्ले, राम करे तो सीधा चल्ले" इस लौकिक कहावत को सारग ने मिथ्या साबित करके बतला दी ।

एक तो सारग की युवक वय और दूसरे सुवर्णसिद्धी विद्या द्वारा सोने का खजाना, इस हालत में विषय वासना पर लात मार देना यह सारग जैसे का ही काम था । सारग ने अपना नाम अमर कर दिया ।

यदि जैता निर्धन अवस्था में दीक्षा ले लेता तो दुर्जन लोग कह उठते कि बिचारे के पास खाने को नहीं था अत दीक्षा लेली पर जैता सब ही विजयीता निकला आज तो जैता की सर्वत्र भूरि २ प्रशसा होती है कि धन्य है जैता को कि सब उम्र तो दु ख में निकाली और जब सुख मिला है तब उस पर लात मार कर दीक्षा लेली है । जैता के तेरह पुत्रों में एक सारग ऐसा भाग्यशाली निकला कि जैता ने तीर्थयात्रा के लिये सघ निकला । जैन मन्दिर में सुवर्ण प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा कर देवलइंडा चढाया । श्री सघ को अपने आंगणे बुलाकर सुवर्ण की पहिरामणी दी । साधर्मी भाइयों की सहायता, गरीबों का उद्धार, याचकों को दान और सात क्षेत्रों का पोषण कर अपनी कीर्ति को अमर बनाकर अन्त में दीक्षा भी लेली । तब ही तो कहा है कि नर के नसीब कौन जानता है कि किस समय क्या होता है । क्या शाह जैता स्वप्न में भी

जानता था कि मेरी जिन्दगी में मैं इस प्रकार के कार्य्य करूँगा। परन्तु यह सब पूर्व भव में संचय किये शुभ कर्मों का ही फल है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि सामग्री होते हुये शुभ कार्य कर पुन्य उपार्जन करना चाहिये क्योंकि मनुष्य को समझना चाहिये कि लक्ष्मी सदैव के लिये स्थिर नहीं रहती है इसे तो जितना लाभ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

बहुत दूर काल के परित्राति ग्रन्थों में तो हम पढ़ते हैं इस प्रकार सुवर्ण सिद्धि तेजमतुरी आदि से सुवर्ण बनाया जाता था पर वे विद्यायें पाँचवें आरे में भी बिलकुल नष्ट नहीं हो गई थी। आचार्य सिद्धसेन दिवाकरजी को चित्तौड़ के किले में पुस्तकें मिली थीं जिसके दो श्लोकों में सुवर्ण सिद्धि और सरसव सुभट नामक दो विद्यायें मिली थी और आपने कुमार नगर का राजा के लिये इन विद्याओं का उपयोग भी किया था। आचार्य पादलिप्तसूरि और नागार्जुन के पास भी सुवर्ण सिद्धि विद्या थी। श्रीशत्रुंजय के उद्धारक जावड़ के यहाँ तेजमतुरी थी जिससे सुवर्ण बनाकर शत्रुंजय का उद्धार करवाया था जगडूशाह ने भी तेजमतुरी से दुष्काल को सुकाल बनाया इत्यादि पाँचवें आरे के भी कई उदाहरण मिलते हैं और इसमें आश्चर्य करने जैसी बात भी नहीं है कारण यह सब पुन्य प्रकृति के फल हैं।

अस्तु। मुनि सौभाग्यकीर्ति पर सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा थी। मुनि सौभाग्यकीर्ति द्रव्य लक्ष्मी को छोड़ कर भाव लक्ष्मी ( ज्ञान ) को प्राप्त करने में जुट गया और थोड़े ही समय में सामयिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। यही कारण था कि उज्जैन नगरी में सूरिजी ने अपने करकमलों से सौभाग्यकीर्ति को उपाध्याय पद से विभूषित किया और अन्त समय पुनित तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर सूरिपद अर्पण कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया था। आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली ब्रह्मचारी उग्र-विहारी धर्मप्रचारी एवं महान प्रतिभाशाली आचार्य थे आपकी धवल कीर्ति पहिले से ही फैली हुई थी।

आचार्य सिद्धसूरि श्रीशत्रुंजय तीर्थ पर विराजमान थे उस समय महात्मा तापस भी शत्रुंजय पर आया था उसको पता लगा कि सारंग साधु बन गया है और अभी यहाँ पर ही ठहरा हुआ है। वह सारंग मिलने के लिये आया तो आचार्य श्री ने तापस को उपकारी समझ कर उसका यथोचित सत्कार किया। दोनों महात्मा आपस में मिले और परस्पर एक दूसरे का उपकार प्रदर्शित किया। तापस ने कहा कि आपने मुझे मरने से बचाया उस उपकार को मैं कब भूल सकता हूँ तब आचार्य श्री ने कहा आपने मुझे सुवर्णसिद्धि विद्या दी थी जिससे मैंने कई शुभ कार्य्य किये इत्यादि आपके उपकार को मैं भी कैसे भूल सकता हूँ।

बाद सूरिजी ने तापस को कहा महात्माजी! नीति शास्त्रों में कहा है कि "बुद्धिफलंतत्वविचारणंच" बुद्धि का फल है तत्व का विचार करना विद्या और लब्धियें केवल इस भव में शुभ फल देने वाली हैं पर मनुष्य को चाहिये कि जन्म मरण से छुटकारा पाकर आत्मा अक्षय सुख कैसे प्राप्त करता है इसके लिये विचार एवं प्रयत्न करे। तापस ने कहा इसमें ऐसी कौनसी बात है। कारण, पाँच तत्वों से आत्मा बना है जब तत्वों में तत्व मिलजायगा तब आत्मा आत्मा में मिल जायगा फिर न जन्म है और न मरण ही है।

सूरिजी ने कहा कि यह तो आपका एक भ्रम है क्योंकि पाँच तत्व से आत्मा नहीं बनता है पर शरीर बनता है। आत्मा शरीर से भिन्न है। इन तत्वों के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होता है पर शरीर नष्ट होता है कारण आत्मा सदैव शाश्वत एवं नित्य द्रव्य है। आत्मा में अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र, और अनन्त वीर्य्य रूप गुण हैं। पर अफसोस है, कि कर्मों के संयोग से उस पर आवरण आजाता है जिससे

## प्राचीन तीर्थ श्री कापरडाजी ( मारवाड़ )

सतमजिल चौमुखजी का मन्दिर

भूमि से पचाणू ६४ फीट ऊँचा

श्री मोतीलालजी भन्डारी-सोजत, हाल—अजमेर

संघपति पाँचूलालजी वैद्यमहता
फलोधी ( धमतरी )

दिया थे। लोगों को ज्ञात हुआ कि आचार्य तो वही हैं जो सुवर्ण सिद्धि वाले सारंग थे पर लोगों को आश्चर्य इस बात का हुआ कि सुवर्ण सिद्धि छोड़ कर सारंग ने दीक्षा क्यों ली होगी ?

सूरिजी ने एक दिन अपने व्याख्यान में यह बतलाया कि संसार में लोभ एक ऐसी बुरी बला है कि जीव को अधोगति में ले जाता है। लोभ के कोई मर्यादा भी नहीं होती है कि वह कभी संतोष पा क्षण भर सुख से रहता है। शास्त्रों में कहा है कि:—

जहाँ लाभो तहाँ लोभो लाभ लोभो प वड्ढई। दो मासा कणयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं॥

श्रोताओ ! ज्यों २ लाभ बढ़ता है त्यों २ लोभ भी बढ़ता जाता है। जैसे एक कपिल नामक ब्राह्मण दो मासा सोने के लिये राजा के पास गया था पर उसके लाभ बढ़ने से इतना लोभ बढ़ गया कि जिसकी कुछ हद ही नहीं रही जिसका शास्त्रों में उल्लेख किया है कि—

कौशंबी नगरी में जयशत्रु राजा राज करता था। चौदह विद्या निधान काश्यप नामक उसके माननीय पुरोहित था। उस पुरोहित के जसा नाम की स्त्री थी और उसके कपिल नाम का एक पुत्र भी था। कपिल बाल्यावस्था में था तब उसका पिता गुजर गया था। अतः राजा ने पुरोहित पद किसी दूसरे ब्राह्मण को दे दिया। उसने पद की खुशी में एक जुलूस निकाला जिसको देख जसा दिलगीर हुई। कपिल ने दिलगीरी का कारण पूछा तो माता ने कहा बेटा तेरा पिता विद्वान् था और राजपुरोहित पद पर रह कर इस प्रकार जुलूस निकालता था। बेटा ने कहा माता मैं विद्या पढ़ कर इस पद का अधिकारी बनूंगा। माता ने कहा कि यहाँ तो नये पुरोहित के मनाई कर देने के कारण कोई तुझे विद्या पढ़ावेगा नहीं। यदि तू विद्या पढ़ना चाहे तो सावत्थी नगरी में इन्द्रदत्त नाम का अध्यापक तेरे पिता का दोस्त है वहाँ चला जा वह तुझको विद्या पढ़ावेगा। कपिल चलकर सावत्थी आया, इन्द्रदत्त से मिला। उसने कहा कि विद्या तो मैं पढ़ा दूंगा पर तेरे भोजन का क्या इन्तजाम है ? कपिल ने कहा मैं ब्राह्मण हूँ भिक्षा मांग कर ले आऊंगा। अध्यापक ने कहा मांगी हुई भिक्षा से पढ़ाई नहीं होगी कारण पढ़ाई के लिये अच्छा पौष्टिक भोजन होना चाहिये। खैर, इन्द्रदत्त कपिल को साथ लेकर एक शालीभद्र नाम के इभ्य सेठ के पास गया और आशीर्वाद देकर प्रार्थना की कि यहाँ एक ब्राह्मण का लड़का कौशंबी से विद्या पढ़ने के लिये आया है। विद्या तो मैं पढ़ा दूंगा पर इसके भोजन का इन्तजाम नहीं है। यदि आप भोजन का इन्तजाम करदें तो आपको बड़ा पुन्य होगा श्रेष्ठिवर्य ने स्वीकार कर लिया और एक दासी इसके लिये नियत करदी कि जिस समय कपिल विद्याध्ययन करके आवे तो गरमागरम भोजन करके जिमावे। ठीक कपिल विद्याध्ययन करने जाय और भोजन के समय सेठजी के यहाँ आकर भोजन कर लेता था परन्तु इधर तो दासी तरुणावस्था में अधर कपिल भी जवान था। हाँसी मस्करी और कामचेष्टा के कारणों से कपिल और दासी के आपस में प्रेम-प्रीती लग गई। जिससे दासी के गर्भ रह गया। सेठजी को खबर होते ही उन दोनों को घर से निकाल दिया। बस, कपिल का विद्याध्ययन छूट गया और वह दोनों की उदर पूर्ति के प्रपंच में फँस गया। इधर ही दिनों पर दासी के गर्भ की वृद्धि हो रही थी उसके प्रसूत समय के लिये भी तो कुछ सामान की आवश्यकता थी जिसकी भी कपिल को फिक्र हो थी। कपिल ऐसा भाग्यहीन था कि कई धनेश्वरों के पास याचना की पर कुछ भी प्राप्ती नहीं हुई। दासी ने कहा रे दुर्भागी ! मेरा स्थान भी छुड़ाया और जीवन भी भ्रष्ट कर दिया। क्यों तेरे से इतना भी काम नहीं बनता है ? और यहाँ का राजा ब्राह्मणों को दो मासा सोना हमेशा देता है। यहाँ जाकर तो

आत्मा अपना भान भूल कर चतुर्गति में जन्म मरण करता है। यदि तप संयमादि से कर्मों को समूल नष्ट कर दिये जाय तो आत्मा परमात्मा बन कर सदैव के लिये परमसुखी बन जाता है। अतः आत्मिक अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये सम्यक् ज्ञान दर्शन चरित्र की आवश्यकता है उसे स्वीकार कर आराधना करावे।

तापस ने कहा कि क्या आत्मा और शरीर पृथक् २ पदार्थ हैं ?

सूरिजी ने कहा हाँ महात्माजी। आत्मा और शरीर पृथक् २ पदार्थ हैं और इस बात को आप आसानी से समझ भी सक्ते हो कि जिस पदार्थ की उत्पत्ति है उसका विनाश भी आवश्य होता है। जैसे पांच तत्वों से शरीर पैदा होता है तब तत्त्व तत्त्वों में मिल जाने से उसका नाश भी हो जाता है। जिसको चरम चक्षुवाले प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। तब आत्मा न तो कभी नया उत्पन्न होता है और न कभी उसका नाश ही होता है। हाँ, कर्मों के आवरणों के कारण उसकी पर्याय अवश्य पलटती है जैसे कभी नर कभी नरक कभी देवता कभी तिर्यंच परन्तु आत्मा अक्षय है उसका कभी विनाश नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर देखिये सोना एक द्रव्य है पर उसकी पर्याय बदलती रहती है जैसे सोने की चूड़ी है उसकी कंठी बन सकती है और कंठी की चूड़ी बन सकती है पर सोना रूपी द्रव्य तो शाश्वता है इसी प्रकार आत्मा को भी समझ लीजिये इत्यादि युक्ति एव प्रमाण द्वारा सूरिजी ने इस प्रकार समझाया कि तापस को सूरिजी का कहना सत्य प्रतीत हुआ। तापस खुद विद्वान था आत्म कल्याण की भावना वाला था उसने स्वयं सोच लिया कि जीव सुख और दुख भोगव रहा है यह पूर्व संचित कर्मों का ही फल है और इन कर्मों को नष्ट करने के लिये ही तप जपादि क्रिया काड एव योग आसन समाधि लगाई जाती है अत सूरिजी का कहना सत्य है कि आत्मा सदैव शाश्वता एवं एक नित्य पदार्थ है और आत्म के साथ रहे हुए कर्मो को नष्ट करने के लिये भिन्न २ मतों में पृथक् २ साधनायें भी हैं तथापि जैन धर्म की साधना में त्याग वैराग्य निस्पृहता और निर्वृत्ति को विशेष स्थान दिया है। अत' मुझे जैन दीक्षा लेकर एव सूरिजी की सेवा में रह कर आत्म कल्याण करना ठीक होगा। अत' तापस ने सूरिजी से कहा प्रभो! मैं आपके चरणों में जैन दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना चाहता हूँ। सूरिजी ने कहा 'जहासुखम्' बस फिर तो देरी ही क्या थी तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की पवित्र एव शीतल छाया में सूरिजी ने तापस को जैन दीक्षा देकर उसका नाम 'तपोमूर्ति' रख दिया।

तपोमूर्त्ति ने ज्यों ज्यों जैनधर्म की क्रिया और ज्ञान का अभ्यास किया त्यों-त्यों उनको बड़ा ही आनन्द आने लगा। मुनि'तपोमूर्त्ति' पहले से ही अनेक विद्याओं से परिपूर्ण थे फिर कर लिया जैनधर्म के स्याद्वाद सिद्धात का अभ्यास फिर तो कहना ही क्या था उनके हृदय में जैनधर्म के प्रचार की बिजली चमक उठी। अत वे जैनधर्म के प्रचार के लिये भरसक प्रयत्न करने मे सलग्न हो गये।

उल्टे रास्ते चलने वाला मनुष्य जब सुलटे रास्ते पर आ जाता है तब वह खूब वेग से चलता है तथा उल्टे मार्ग की कठिनाइयों का अनुभव किये हुए मनुष्य के हृदय में दयाभाव भी पैदा हो जाता है और वह उल्टे मार्ग जाने वालों को सुलटे मार्ग पर लाने की कोशिश भी बहुत करता है। यही हाल हमारे मुनि तपोमूर्ति महात्मा का था।

आचार्य सिद्धसूरि श्रीशत्रुंजय से विहार करते हुये सोपारपट्टन की ओर पधारे। तपोमूर्त्ति मुनि भी आपके साथ में ही थे। श्रीसघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया। वहाँ के लोग सूरिजी से पहले से ही परि-

जीव और शरीर के विषय उपदेश—

स्वागत की प्रतीक्षा कर रहे थे। सूरिजी शाकम्भरी हंसावली, मथुरापुर पद्मावती कुर्चपुर होते हुए नागपुर पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आप श्री का बड़े ही समारोह से सत्कार किया। नागपुर में आदित्यनाग गोत्रीय शाह आनन्द ने भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया था जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से करवाई। शाह आनन्द ने इस प्रतिष्ठा में सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की अच्छी प्रभावना की। वहाँ से सूरिजी मुग्धपुर, खटकुपनगर, स कुपुर, माण्डव्यदुर्ग, हर्षपुर, मेदिनीपुर, माडव्यपुर होते हुए उपकेशपुर की ओर पधारे यहाँ के श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं था। कारण प्रथम तो आप उपकेशपुर के कुंकुम थे दूसरे जैनधर्म की प्रभावना कर आपने दीक्षा ली थी तीसरे आप आचार्य पद प विभूषित हो जैनधर्म की पताका फहराते हुये पधारे। ऐसा कौन हतभाग्य हो कि जिसे अपनी मातृभूमि का गौरव न हो ! श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़े ही उत्साह से नगर प्रवेश महोत्सव किया। चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर जीवन को सफल बनाया।

सूरिजी महाराज दीक्षा लेने के पश्चात् अब ही पधारे थे। जनता की खूब भक्ति थी। सूरिजी का व्याख्यान मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था। जनता खूब उत्साह से सुनती थी। जैन ही क्यों पर जैनेतर लोग भी लाभ उठाते थे। एक दिन सूरिजी महाराज ने फरमाया कि शास्त्रकारों ने मोक्ष मार्ग साधन के लिये मुख्य दो रास्ते बतलाये हैं १-मुनिधर्म २- गृहस्थ धर्म जिसमें मुनि धर्म की विशेषता है परन्तु मुनित्व का अधिकारी वही हो सकता है कि जिसमें मुनिधर्म पालन करने की योग्यता हो। केवल शारीरिक कष्ट जैसे नंगे सिर, नंगे पैर चलना शिर का लोच करना, शीतोष्णादि परिषह सहन करना आदि को ही मुनि पद नहीं कहा जाता है पर मुनि पद मन की वृत्तियों पर निर्भर है अगर मन वश में नहीं हुआ हो तो शारीरिक कष्ट न तो आते हुए कर्मों को रोक सकता है और न पूर्व कर्मों की सम्यक् निर्जरा ही कर सकता है। इतना ही क्यों पर शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक भी कहा है कि:—

चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता, अथिर-व्वए तवनियमेहिं भट्ठे।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराये॥
पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु॥
कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय बूहइत्ता।
असंजए संजय लप्पमाणे, विणिघायमागच्छइसेचिरंपि॥
विस पिबित्ता जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसेव धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो॥
उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओचुए गच्छइ कट्टु पावं॥
न तं अरी कंठछेत्ता करेति, जंसे करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिती मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूण॥

मासा सोना तो ला कि जिससे मेरा गुजारा होगा । कपिल हमेशा दो मासा सोने के लिये जाता पर दूसरे ब्राह्मण पहिले आकर राजा से सोना लेजाते । आखिर एक दिन कपिल अर्द्धरात्रि के समय उठ कर गया तो पुलिस वाले ने पकड़ लिया और सुबह जाकर राजा के सामने खड़ा किया । राजा ने कपिल से रात्रि में आने का कारण पूछा ? उसने अपने नगर से निकला वहाँ से रात्रि समय का सब हाल था वैसा सत्य कह सुनाया । कपिल की सत्यता पर मंत्रमुग्ध बन राजा ने वरदान दे दिया कि ब्राह्मण जो तेरी इच्छा हो माग ले मैं देने को तैयार हूँ । कपिल ने सोचा कि जब राजा ने वरदान ही दे दिया है तो अब दो मासा सोना ही क्यों मांगें, मागलें एक तोला पर पुनः सोचा कि एक तोले से क्या होगा मांगलें सौ, हजार, लाख, करोड़, तोला इस प्रकार कपिल की तृष्णा यहाँ तक बढ़ गई कि राजा का राज ही क्यों नहीं मांग लिया जाय परन्तु कपिल ने सोचा कि अहो तृष्णा ? कि दो मासा सोने के लिये मैं आया था पर तृष्णा यहाँ तक बढ़ गई कि राज से भी सतोष नहीं । इस प्रकार कपिल की सुरत सतोष की ओर बढ़ती २ ससार की असारता तक पहुँची और त्याग भावना आते ही देवता ने ओघा मुहपत्ती लाकर देदिये । कपिल साधु बन गया उसकी भावना यहाँ तक प्रशस्त हो गई कि कैवल्य ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसने अपने ज्ञान से जाना कि राजगृह नगर के पास अट्ठारह योजन की अटवी है और उसमें बलभद्रादि पाँचसौ चोर हैं वे मेरे उपदेश से प्रतिबोध पाने वाले हैं । अत कपिल केवली वहाँ गया और चोरों ने कहा हमें कुछ गायन करके सुनाओ कपिल ने कहा बिना बाजित्र के नाच एव गायन हो नहीं सकता है । पांचसौ चोरों ने कहा हम हस्त ताल बजावेंगे तुम नाचकर गायन करो । तब कपिल केवली ने गायन करते हुये निम्न लिखित गाथा कही ।

"अधुवे असासयम्मी संसारम्मी दुक्ख पउराए । किं नाम हो ज्जतं कम्मयं, जेणाहंदोग्गइंनगच्छे जा ॥"

इस गाथा से ५०० चोरों को प्रतिबोध करके उन सबको दीक्षा देकर उनका उद्धार किया । महानुभावो ! इस उदाहरण से आप स्वयं सोच सकते हो कि तृष्णा कहाँ तक पहुँचती है और जब मनुष्य को सन्तोष की लहर आती है तब आत्मा किस आनन्द का अनुभव करता है । आत्मा का कल्याण न राजपाट में न धन धान्य में न सोना चाँदी रत्न माणिक में पर आत्मा का कल्याण इसका त्याग करने में है । पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्ती छ खड की ऋद्धि पर लात मार कर मुनि पद को स्वीकार किया था तब ही उनको सन्तोष एव कल्याण प्राप्त हुआ । क्या मैं उम्मेद कर सकता हूँ कि मेरे इस सारगाभत उपदेश का कुछ प्रभाव आप लोगों पर भी पड़ेगा ? एक तो उस जमाने के लोग लघु कर्मी थे दूसरे उन लोगों को इस प्रकार का उपदेश कभी २ ही मिलता था तीसरे उपदेश दाताओं के भी यश नाम कर्म का उदय और ऐसा ही प्रभाव था । बस वे महानुभाव थे चुवा के कबूतर कि सूरिजी महाराज की फटकार के साथ उपदेश लगते ही पूरे ५० नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये अह हा ! वह कैसा भद्रिक जमाना था, वे कैसे हलु-कर्मी जीव थे, उन्होंने पूर्व जन्म में कैसे शुभ कर्मोपार्जन किये थे और उनके मोक्ष कितनी नजदीक थी कि बात की बात में घर-ससार त्याग कर दीक्षा लेने को तैयार हो जाते थे । सूरिजी महाराज ने वहाँ कुछ दिन स्थिरता कर उन भावुकों को दीक्षा दी तथा अन्य लोगों ने भी त्याग प्रत्याख्यान कर लाभ उठाया ।

तदनन्तर सूरिजी महाराज ने अन्यत्र विहार कर दिया और आवती मेदपाट में उपदेश करते हुये मरुधर में पदार्पण किया तो मरुधर वासियों के हर्ष का पार नहीं रहा क्योंकि मरुधर वासी पहिले से ही सूरी

की छाया देख मुनि थोड़ी देर के लिये ठहर गये। किसान हल को छोड़ कर मुनि के पास पूछा कि हम तो गृहस्थ हैं कि दोपहर की धूप में भी काम करते हैं पर आपके सिर कौनसा ? इस धूप में भी आप कहाँ पर जाते हैं ? मुनि ने उत्तर दिया कि हे भद्र ! मेरे आज एक मास का पारणा है मैं नगर में भिक्षा के लिये जारहा था। यहाँ वृक्ष की छाया देख विश्राम लिया है की भावना हुई कि यदि मुनि भिक्षा लें तो मेरे पास मौजूद है। किसान ने प्रार्थना की। मुनि ! निर्दोष भिक्षा हो तो मैं ले सकता हूँ पर किसान की रोटियें एक धाप पर लटक रही थी, मुनि नहीं किसान निराश होगया। जब मुनि नगर की ओर जाने लगे तो किसान मुनि को सीधा रास्ता बताने साथ गया कि मुनि को अधिक चक्कर न पड़े। रास्ता बतला कर किसान वापिस लौट र मुनि ने सोचा कि इसने मुझे रास्ता बतलाया है तो मैं भी इसे रास्ता बतलाऊं। मुनि ने कहा मनुष्य है तो इस नियम व्रत ले कि तेरा कल्याण हो। किसान ने सोचा कि मेरे कितनी झंझा है व्रत लूं। आखिर उसने सोच विचार कर मुनि से कहा कि 'मन चाहे वह नहीं करना' मुझे नियम मुनि ने सोचा कि यह कोई पागल तो नहीं है। जब किसान को कहा कि यह व्रत बहुत कठिन महात्माओं से भी पलना मुश्किल है। देख मेरा मन हुआ कि भिक्षा को जाना तो मैं चल कर जा हूँ। अतः तू सोचले क्या तेरे से ऐसा भीषण व्रत पल सकेगा ? किसान ने कहा कि मैंने खूब सोच कर ही भावना की है आप तो व्रत दिला दीजिये। मुनि को विचार तो बहुत हुआ पर उसका आग्रह नियम करवा दिया और मुनि नगर की ओर चले गये। किसान वहां का वहीं खड़ा रहा उसका मन हुआ हल के बैल जुते हुए खड़े हैं जाकर खेत जोतूं पर सोचा कि मैंने तो व्रत लिया है कि मन चाहे वैसा नहीं। जब खड़ा रहने में थकावट मालूम हुई तो विचार किया कि बैठ जाऊँ पर फिर सोचा कि मन चाहे व करना मेरा व्रत है वह नहीं बैठा। इतने में उसके कुटुंब वाले आये और उन्होंने कहा कि अरे पागल किसी ने तुझे मंत्र से कील दिया है कि तू यहाँ से थोड़ा भी नहीं चलता है ? अब हल बल खेती का यहाँ खड़ा रहने से क्या होगा ? किसान ने कहा मैंने तो व्रत लिया है कि मन चाहे वैसा नहीं करना। मुनि भिक्षा लेकर उसी रास्ते से वापिस आये तो किसान वहीं ही खड़ा पाया कि जहाँ वे छोड़ गये थे। किसान अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा कि एक दिन दो दिन तीन दिन व्यतीत हो गये। ज्यों ? समय जाता था त्यों ? उसकी आत्मा से कर्म मल दूर कर विशुद्धता बढ़ती जा रही थी। बस, चतुर्थ दिन सूर्य का उदय होते ही किसान को केवल ज्ञान होगया और थोड़ी देर में तो उसकी मोक्ष ही हो गई। इस दृष्टांत से आप समझ सकते हो कि मन को वश में करना कितना कठिन है और मन को वश में करने के बाद मुक्ति कितनी नजदीक है।

श्रोताओ ! जैनधर्म में कारण से कार्य की सिद्धि मानी है। मुनि धर्म, गृहस्थ धर्म, तप संयम पूजा प्रभावना तीर्थयात्रादि जितने धर्म कृत्य हैं वे सब कारण हैं और इन कारणों द्वारा मन को वश कर मोक्ष प्राप्त करना यह कार्य है।

एक कार्य्य के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे जिसका क्षयोपशम हो वैसी जिसकी रुचि हो उसी कारण से कार्य्य की सिद्धि कर सकता है इत्यादि सूरिजी ने विद्वतापूर्ण खूब विस्तार से व्याख्यान दिया जिसका प्रभाव श्रोताओं पर बहुत ही अच्छा हुआ और प्रत्येक कारण पर जनता की रुचि बढ़ती गई।

इस प्रकार प्रत्येक विषय पर सूरिजी का विद्वतापूर्ण व्याख्यान हमेशा होता था। जिससे जनता में

ऐसे साधुओं से तो उल्टा कर्मबन्ध का ही कारण होता है अत. साधु ऐसे होने चाहिये कि—

राओवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेदवियाऽऽ यरक्खिए।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हि वि ण मुच्छिए स भिक्खू ॥
अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे णिच्चमायगुत्ते।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥
पंतं सयणासणं भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दंसमसगं।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा। इड्ढीसक्कारसम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥
सुक्कं झाणं झियाइज्जा, अणियाणे अकिंचणे। वोसट्ठकाए विहरिज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥

इनके अलावा जैनेतर ग्रन्थों में भी साधुओं के विषय में कहा है कि —

समः शत्रौ च मित्रेच, तथा मानपमानयोः। शीतोष्ण सुखदुःखेषु, समः सङ्ग विवर्जितः ॥
श्रीमद्भगवद् गीता अ० १३ श्लो० १४

येन हृष्यन्ति लाभेषु, नालाभेषु व्यथन्ति च। निर्ममा निरहङ्कारा:, सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ॥
महाभारत, शांतिपर्व, अ० १५६ श्लो० ३२

अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्र करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कारः, समदुखःसुखः क्षमी ॥
श्री० भगवद्गीता अ० १२ श्लोक० ३२

राग द्वेषवियुक्तात्मा, समलोष्टाश्मकांचनः। प्राणिहिंसानिवृतश्च, मौनी स्यात् सर्व निःस्पृहः ॥
पद्मपुराण, अ० ५६ श्लो० १८

सज्जनो! दु ख गर्भित, मोह मित और देखा देखी घर छोड़ने वाले तो सैकड़ों नहीं पर हजारों मनुष्य मौजूद होंगे पर मुनि पद में रमणता करने वाले थोड़े ही मिलेंगे।

आत्म कल्याण करना कोई साधारण बात नहीं है। यहा तो मोहनी रूप पिशाच को पराजय करना है जैसे कर्मबन्धन में मुख्य कारण मन है वैसे कर्म तोड़ने में भी मुख्य मन ही कारण है देखिये—

१—ऐलापुत्र वस और डोर पर नाटक कर रहा था पर उसका मन विशुद्ध हुआ तो केवल ज्ञान हो गया।
२—कुर्मा पुत्र को दुकान पर बैठे को केवल ज्ञान हो आया।
३—माता मरुदेवी को हस्ती पर केवल ज्ञान हुआ।
४—पृथ्वीचन्द राजा को चवरी में नव वधु के हस्त मिलाप के स्थान केवल ज्ञान होगया।
५—गुणसागर को राज अभिषेक के समय केवल ज्ञान हो गया।
६—प्रश्नचन्द्र मुनि ने मन ही से सातवीं नरक के दलिये और मन ही से केवल ज्ञान हो गया।

इत्यादि अनेक उदाहरण हैं इतना ही क्यों पर शास्त्रों में स्वलिंगसिद्धा, अन्यलिंगसिद्धा, और गृहस्थलिंग सिद्धा भी कहा है। अत इसका कारण भी मन ही की विशुद्धता है।

जिस मनुष्य ने मन को अपने वश में कर लिया है वह मिनटों में मोक्ष प्राप्त कर सकता है देखिये—जगल में एक किसान खेत खोड़ रहा था दोपहर के समय एक तपस्वी मुनि वहा आ निकले। वृक्ष

आत्म कल्याण की अच्छी जागृति हुई । कई लोग तो संसार से मुक्त होकर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार हो गये ।

चतुर्मास समाप्त होने के पश्चात् जिन महानुभावों की इच्छा थी उनको दीक्षा और श्रावकव्रत प्रदान किये और भी कई शुभ कार्य्य हुये । बाद सूरिजी महाराज अपने पूर्वजों की पद्धति अनुसार मरुधर के प्रत्येक ग्राम नगर में आप एव आपके साधुओं का विहार हुआ पुन' लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पाचाल शूरसेन और पूर्व में अग वग मगध कलिंग आदि प्रान्तों में भ्रमण कर साधु साध्वियों की सार सँभाल श्रावकवर्ग को धर्मोपदेश तीर्थों की यात्रा और जैनधर्म का प्रचार एवं खूब ही उन्नति की ।

पट्टावली में लिखा है कि एक समय आप विहार करते हुये मथुरा में पधारे । वहाँ के रहने वाले कुलभद्र गोत्रीय कोटाधिपति शाह ढट्टर श्रावक के बनाये श्रीपार्श्वनाथ च मदिर के लिये एक स्फटिक रत्न की और तीन सौ पाषाण एव सर्वधातु की मूर्त्तियों की अजनसिलाका एव प्रतिष्ठा करवाई जिसमें शाह ढट्टर ने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया तथा उसी सुअवसर पर देवी सच्चायिका की सम्मति से आपने अपने अन्ते वासी शिष्य गुणतिलक को सूरि पद अर्पण कर दिया और पट्ट क्रमानुसार आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया । और आपने अपनी शेष जीवन यात्रा मथुरा में ही समाप्त की जब आपने अपना आयुष्य नजदीक जाना तो चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष अनशनव्रत ले लिया और पचपरमेष्टि महामंत्र के स्मरण पूर्वक समाधि से स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिये ।

आपके स्वर्गवास से श्रीसघ का दिल व्याकुल होरहा था शोक के काले बादल सर्वत्र छागये थे फिर भी निरानन्द होते हुये भी आपके निर्वाण का महोत्सव बड़े ही समारोह से किया तथा आपके मृत शरीर के अग्नि-संस्कार के स्थान आपकी पुन्य स्मृति के लिये एक विशाल स्थूंभ बनवाया ।

## आचार्य श्री के शासन में भावुकों की दीक्षाएँ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १—राजपुर | के | भरिगोत्रीय शाहबाला | ने सूरिजी के पास दीक्षा ली | | | |
| २—माण्डलपुर | के | ब्राह्मण दाहिर अपने दो पुत्रों के साथ | | | | ,, |
| ३—खटोली | के | बलाह गौ० | शाह जैवा ने सूरीजी के पास दीक्षा ली | | | |
| ४—पटकुप | के | श्रेष्ठिगोत्रीय | मंत्रीदेवा | ने | ,, | ,, |
| ५—मेथलीपुर | के | बाप्पनागगो- | रुघनाय | ने | ,, | ,, |
| ६—पद्मावती | के | क्षत्रीवीर | सुरजा | ने | ,, | ,, |
| ७—शालीपुर | के | करणाटगौ० | चूड़ा | ने | ,, | ,, |
| ८—सावत्थी | के | भाद्रागौत्री० | नैना | ने | ,, | ,, |
| ९—तक्षिला | के | आदित्यनाग० | हरदेव | ने | ,, | ,, |
| १०—साहापुरा | के | गाथापति | भोजा | ने | ,, | ,, |
| ११—मालपुरा | के | चोरलिया० | चतुरा | ने | ,, | ,, |
| १२—मेदनीपुर | के | सुचतिगौ० | संगार | ने | ,, | ,, |
| १३—नागपुर | के | श्री श्री माल | माला | ने | ,, | ,, |

८—नरसिंहपुर के बोहरा गो० मालुक के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा
९—मथिमापुरी के तप्तभट्ट गो० गुगला के „ शान्ति० „ „
१०—कोठापुर के सुघड़ गो० चूड़ा के „ आदीश्वर „ „
११—महेसरीपुरी के चरड़गोत्र पेथा के „ पार्श्व० „ „
१२—नारदपुरी के श्रेष्टि गो० मोहरण के „ अजित० „ „
१३—आनन्दपुर के चिंचट गो० जैता के „ पार्श्वनाथ „ „
१४—वल्लभी के क्षत्रीराव जगमाल के „ विमल० „ „
१५—दुरानपुर के कुलभद्र चंचगदेव के „ महावीर „ „
१६—स्तम्भनपुर के प्राग्वटवंशी फूवा के „ „ „ „
१७—जोगनीपुर के प्राग्वटवशी गोमा के „ „ „ „
१८—हर्षपुरा के श्री श्रीमाल डावर के „ „ „ „
१९—वीरपुर के सुरिगौत्री नांनग के „ पार्श्व० „ „
२०—किराटकुप के चोरलिया० माला के „ „ „ „
२१—उच्चनगर के लघुश्रेष्ठि० रणदेव के „ „ „ „
२२—चन्द्रावती के कुमट गो० यशोदेव के „ नेमिनाथ „ „
२३—पासोली के ब्राह्मण शंकर के „ चन्द्राप्रभ „ „
२४—नन्दपुर के चोरलिया० मोकल के „ महावीर „ „

ये तो केवल वंशावलियों में प्राय उपकेशवशियों के बनाये मन्दिरों की नामावली जितनी मिली है उसमें भी नमूना मात्र का उल्लेख किया है परन्तु उस समय अन्योन्य मुनियों द्वारा कितने मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई होगी कारण एक तो उस समय के श्रावकों के पास लक्ष्मी अपार थी दूसरे इस कार्य की आवश्यकता भी थी तीसरे समय के जान मुनियों का उपदेश भी इस विषय का अधिक था चतुर्थ गृहस्थ लोग इस पुनीत कार्य में द्रव्य व्यय कर अपना आत्म कल्याण एव मनुष्य जन्म की सार्थकता भी समझते थे साथ में वे अपना आत्मीय गौरव भी समझते थे-नगर देरासर की अपेक्षा उस समय घर देरासर विशेष करवाये जाते थे। और घर देरासर होनेसे एक तो धर्म पर श्रद्धा दृढ़ रहती थी दूसरा पुरुष और स्त्रियों को पूजा का सुविधा रहता था तीसर अन्य देव देवियों को जैनो के घरमें स्थान नहीं मिलता था इत्यादि अनेक लाभ थे—

जैसे जैन श्रावकों को मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ट करवाने का उत्साह था वैसे ही तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकालने का भी उमग रहता था और अपने पास साधन होने पर कमसे कम जिन्दगी में एक वार श्री सघ को अपने आगणे बुलाकर अपने हाथों से उनके तिलक कर सघ पूजा अवश्य करते थे और तीर्थों का सघ निकाल कर सबको यात्रा करवा कर स्वामि वात्सल्य एवं पहरामणी देकर कृतार्थ बनते थे। पट्टावलियों वंशावलियों आदि चरित्र ग्रन्थों में कई सघपतियों का नाम लिखा हुआ मिलता है जिसको हम केवल थोड़े से नामों का यहाँ पर उल्लेख कर देते हैं।

१—वीरपुर से श्रेष्ठि गोत्रीय शाह वीरम ने श्री शत्रुंजयका सघ निकाला
२—भरोंच से प्राग्वट वशी शाह नेता ने „ „

फूसालालजी

मिसरीमलजी

किसनलालजी

चमरीमलजी

## भगवान महावीर की परम्परा—

भगवान महावीर की परम्परा में १—सौधर्माचार्य २ जम्बु ३ प्रभव ४ शय्यभव ५ यशोभद्र ६ समूति विजय–भद्रबाहु ७ स्थुलिभद्र ८ महागिरी–सुहस्ती ९ सुस्थि–सुप्रतिवुद्धि १० इन्द्र दिन्न ११ आर्य दिन्न १२ सिंहगिरी ३ आर्य्यवज्र १४ आर्य वज्रसेन। इन सबका वर्णन पूर्व प्रकरणों में लिखा जा चुका है। आर्य वज्रसेन के साथ कदर्पि यक्ष की घटना बनी उसको यहाँ लिख दी जाती है।

आर्य वज्रसेनसूरि विहार करते हुए मधुमति नगरी में पधारे। उस नगरी में एक कदर्पि नामक वणकर रहता था उसके आडी और कुहाडी नाम की दो स्त्रियाँ थी वे भक्षाभक्ष एव पयापय में विवेक रखती थीं पर कदर्पि अभक्ष एवं अपय में अशक्त होकर माँस मदिरा का सेवन करता था इस हालत में उसकी दोनों स्त्रियों ने उपालम्भ दिया जिससे कदर्पि क्रोधित होकर जंगल में जाकर एव चिन्तातुर होकर बैठ गया। इधर से सूरिजी महाराज थंडिल भूमि को पधार रहे थे। कदर्पि ने आचार्य श्री को देखकर खड़ा हुआ और वन्दन नमस्कार किया आचार्य श्री ने कदर्पि को अल्पायु. वाला जान कर उपदेश दिया कि तूँ कुछ व्रत नियम ले जिससे तुम्हारा कल्याण हो। इस पर कदर्पि ने कहा प्रभो! आप उचित समझे वह प्रत्याख्यान करवादें आचार्यश्री ने कहा कि तू भोजन करे तब उसके पूर्व कदोरा की देरी की गाँठ छोड़ "नमो अरिहन्ताण" शब्द का उच्चा-रण करना जब भोजन करले तो फिर गाँठ लगा देना अर्थात् जब तक गाँठ रहे तेरे पच्चखान हैं कुछ खाना पीना नहीं और जब गाँठ छोड़ दे तब तू खुल्ला है एक नवकार कह कर भोजन कर सकता है इसको गठसी प्रत्याख्यान कहते हैं। कदर्पि ने गुरु वचन को स्वीकार कर लिया परन्तु उसको माँसादिका व्यसन पड़ा था उसको छोड़ नहीं सका। एक समय में किसी ने मैदान में माँस पकाया था। आकाश में कोई गरुड़ एक सर्प को मुँह में लेकर जा रहा था उस सर्प के मुँह से विष गिरा वह पकता हुआ माँस में पड़ गया। उस माँस के खाने में कदर्पि भी शामिल था बस! माँस खाते ही उसका शरीर विष व्याप्त हो गया और थोड़ी देर में कदर्पि कालकर व्रत के प्रभाव से व्यन्तरदेव की योनि में जाकर देवपने उत्पन्न हो गया।

जब कदर्पि की दोनों स्त्रियों को मालुम हुआ कि मेरा पति एक महात्मा की सगत में रहा था और उन्होंने कुछ सिखाया जिससे मेरा पति मरगया अब उन दोनों ने राजा के पास जाकर कहा कि इन महात्मा ने मेरे पति को मार डाला है। राजा ने बिना सोचे समझे आचार्यश्री को बुलाकर पहरा में बैठा दिया। उधर कदर्पि का जीव व्यन्तरदेव हुआ था उसने उपयोग लगाया तो परोपकारी आचार्यश्री निर्दोष होने पर भी राजा ने उनका अपमान किया अत. उसने नगर के प्रमाण वाली एक शिला विकुर्वी जिसको देख राजा प्रजा घबरा उठे और देव से प्रार्थना की कि यदि हमारा अपराध हुआ हो तो क्षमा करावे। देव ने कहा अरे मूर्खो ऐसे विश्वोपकारी महात्माओं का अपमान करते हो यह शिला तुम अपराधियों के लिये बनाई है नगर पर डालते ही तुम्हारा और नगर का विनाश हो जायेगा। इतना कहते ही राजा प्रजा ने सूरीश्वरजी के चरणों में नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा मांगी और खुब गाजे बाजे के साथ सूरिजी को उपाश्रय में पहुँचाया तब जाकर उपद्रव की शान्ति हुई। देव कदर्पि ने कहा पूज्यवर! मैंने जिन्दगी भर पाप कर्म संचय किया पर केवल एक वचन ( नवकार ) के स्मरण मात्र से मैं इस देव ऋद्धि को प्राप्त हुआ हूँ अब कृपाकर कोई कार्य बतलावें कि मैं उसको कर कृतार्थ बनू। सूरिजी ने कहा देव! नवकार मंत्र ऐसी औषधि है कि

३—चंद्रपुर से सूरि मौत्री शाह मारा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला
४—आघाट से भद्रित्य० शाह चोपा ने „ „
५—मथुरा से श्रेष्ठिगोत्रे शाह भालू ने „ „
६—विराट् नगर से बाप्पनाग० शाह देदा ने „ „
७—मेदिनीपुर से भाद्र गौ० शाह माणदेव ने „ „
८—चंदेरी से कनोजिया गौ० शाह देवा ने „ „
९—रामपुरा से बलाह गौ० शाह रावण ने „ „
१०—करकूप से करणाट गौ० शाह गोपाल ने „ „
११—चन्देपुर से श्रेष्ठि गौ० शाह रत्ना ने „ „
१२—रत्नपुर से सुचंति गौ० शाह हीरा ने „ „
१३—क्षत्रीपुरा के मालव शिवदास ने „ „
१४—चावाचवी के चरड़ गौ० कुम्भा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१५—पालिहका के श्रेष्ठिवीर भाखर युद्ध में „ „
१६—जावलीपुर के पल्ली रावो युद्ध में „ „
१७—शिवगढ़ के श्रेष्ठिनारायण युद्ध में „ „
१८—गोसलपुर के राव बाहड़ „ „ „
१९—उमरेल के श्रेष्ठि सांगा „ „ „

आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं आप अपने सोलह वर्ष के शासन में कई प्रान्तों में विहार कर जनधर्म का प्रचार एवं प्रभावना कर खूब कीमति सेवा की ऐसे महापुरुषों का हम जितना उपकार मानें उतना ही थोड़ा है इस विकट अवस्था में जैन धर्म जीवित रह सका वह सब महान् उपकारी पुरुषों के उपकार का ही मधुर फल है यदि ऐसे परमोपकारी पुरुषों का एक क्षण भरी भी हम उपकार भूल जावें तो हमारे जैसा कृतघ्नी इस संसार में कौन हो सकेगा ? अतः हमें समय समय पर महान् उपकारी पुरुषों का उपकार को याद करना चाहिये—

श्रेष्ठिकुल अवतंस पच्चीसवें, सिद्धसूरि गुरु सूरि थे ।
जैनधर्म के आप दिवाकर, शासन के वर पूरि थे ॥
विद्या और सिद्धि वे दोनों, वरदान दिया पद्मावती को ।
शासन का उद्योत किया गुरु, वन्दन हो उपकारी को ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २५ वें पट्टधर आचार्य सिद्धसूरीश्वर महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

## भगवान महावीर की परम्परा—

भगवान महावीर की परम्परा में १—सौधर्माचार्य २ जम्बु ३ प्रभव ४ शय्यंभव ५ यशोभद्र ६ सम्भूति विजय-भद्रबाहु ७ स्थुलिभद्र ८ महागिरी-सुहस्ती ९ सुस्थि-सुप्रतिबुद्धि १० इन्द्र दिन्न ११ आर्य दिन्न १२ सिंहगिरी १३ आर्य्यवज्र १४ आर्य वज्रसेन। इन सबका वर्णन पूर्व प्रकरणों में लिखा जा चुका है। आर्य वज्रसेन के साथ कदर्पि यक्ष की घटना बनी उसको यहाँ लिख दी जाती है।

आर्य वज्रसेनसूरि विहार करते हुए मधुमति नगरी में पधारे। उस नगरी में एक कदर्पि नामक वणकर रहता था उसके आडी और कुहाडी नाम की दो स्त्रियाँ थी वे भक्षाभक्ष एव पयापय में विवेक रखती थीं पर कदर्पि अभक्ष एवं अपय में अशक्त होकर माँस मदिरा का सेवन करता था इस हालत में उसकी दोनों स्त्रियों ने उपालम्ब दिया जिसमे कदर्पि क्रोधित होकर जंगल में जाकर एव चिन्तातुर होकर बैठ गया। इधर से सूरिजी महाराज थण्डिल भूमि को पधार रहे थे। कदर्पि ने आचार्य श्री को देखकर खड़ा हुआ और वन्दन नमस्कार किया आचार्य श्री ने कदर्पि को अल्पायु. वाला जान कर उपदेश दिया कि तूँ कुछ व्रत नियम ले जिससे तुम्हारा कल्याण हो। इस पर कदर्पि ने कहा प्रभो! आप उचित समझे वह प्रत्याख्यान करवादें आचार्यश्री ने कहा कि तू भोजन करे तब उसके पूर्व कदोरा की देरी की गाँठ छोड़ "नमो अरिहन्ताण" शब्द का उच्चारण करना जब भोजन करले तो फिर गाँठ लगा देना अर्थात् जब तक गाँठ रहे तेरे पच्चखान हैं कुछ खाना पीना नहीं और जब गाँठ छोड़ दे तब तू खुल्ला है एक नवकार कह कर भोजन कर सकता है इसको गठसी प्रत्याख्यान कहते हैं। कदर्पि ने गुरु वचन को स्वीकार कर लिया परन्तु उसको माँसादिका व्यसन पड़ा था उसको छोड़ नहीं सका। एक समय में किसी ने मैदान में माँस पकाया था। आकाश में कोई गरुड़ एक सर्प को मुँह में लेकर जा रहा था उस सर्प के मुँह से विष गिरा वह पकता हुआ माँस में पड़ गया। उस माँस के खाने में कदर्पि भी शामिल था बस! माँस खाते ही उसका शरीर विष व्याप्त हो गया और थोड़ी देर में कदर्पि कालकर व्रत के प्रभाव से व्यन्तरदेव की योनि में जाकर देवपने उत्पन्न हो गया।

जब कदर्पि की दोनों स्त्रियों को मालुम हुआ कि मेरा पति एक महात्मा की सगत में रहा था और उन्होंने कुछ सिखाया जिससे मेरा पति मरगया अतः उन दोनों ने राजा के पास जाकर कहा कि इन महात्मा ने मेरे पति को मार डाला है! राजा ने बिना सोचे समझे आचार्यश्री को बुलाकर पहरा में बैठा दिया। उधर कदर्पि का जीव व्यन्तरदेव हुआ था उसने उपयोग लगाया तो परोपकारी आचार्यश्री निर्दोष होने पर भी राजा ने उनका अपमान किया अत उसने नगर के प्रमाण वाली एक शिला विकुर्वी जिसको देख राजा प्रजा घबरा उठे और देव से प्रार्थना की कि यदि हमारा अपराध हुआ हो तो क्षमा करावे। देव ने कहा अरे मूर्खो ऐसे विश्वोपकारी महात्माओं का अपमान करते हो यह शिला तुम अपराधियों के लिये बनाई है नगर पर डालते ही तुम्हारा और नगर का विनाश हो जायेगा! इतना कहते ही राजा प्रजा ने सूरीश्वरजी के चरणों में नमस्कार कर अपने अपराध की चमा मागी और खुब गाजे बाजे के साथ सूरिजी को उपाश्रय में पहुँचाया तब जाकर उपद्रव की शान्ति हुई। देव कदर्पि ने कहा पूज्यवर! मैंने जिन्दगी भर पाप कर्म सचय किया पर केवल एक वचन ( नवकार ) के स्मरण मात्र से मैं इस देव ऋद्धि को प्राप्त हुआ हूँ अतः कृपाकर कोई कार्य बतलावें कि मैं उसको कर कृतार्थ बनू! सूरिजी ने कहा देव! नवकार मत्र ऐसी औषधि है कि

में हुए हैं और उनका निर्ग्रन्थपना के कारण शायद दिगम्बर अपने आचार्य मानते हों खैर कुछ भी हो सामन्तभद्राचार्य महा प्रभाविक वन में विहार करने वाले एक आचार्य हुए और आपके वनवास के कारण ही आपके सन्तान का नाम वनवासी गच्छ हुआ है, इनके पूर्व निर्ग्रन्थ एवं कोटीगण कहलाता था।

१७—आचार्यवृद्धदेवसूरि—आपका नाम तो देवसूरि था पर आप आचार्य पद के समय वृद्धावस्था में होने के कारण आपको वृद्धदेवसूरि कहा जाता था पट्टावलिकारों ने आपके चरित्र विषय में विशेष वर्णन नहीं किया है पर प्रभाविक चरित्र में आचार्य मानदेवसूरि के प्रबन्ध में आप श्री के विषय में भी कुछ उल्लेख किया हुआ मिलता है तथाच—

१ तत्र कोरटक नामपुर मस्त्युन्नताश्रयम् । द्वि जिव्हा विमुखा यत्र विनता नदना जनाः !! ५
तत्रास्ति श्रीमहावीर चैत्य चैत्य दध दृढम ! कैलासशैल वद्भाति सर्वाश्रयतया नया !! ६
उपाध्यायोस्ति तत्र श्री देवचन्द्र इति श्रुत ! विद्वद्वृन्द शिरो रत्न तमस्त तिहरो जने !! ७
आरण्यकतपस्यायां नमस्यांयां जगत्यपि ! सक्त शक्तो तरंगारिविनिये भवतीरभू !! ८
सर्वदेवप्रभु सर्वदेव सद्ध्यान सिद्धिभृत् ! सिद्धक्षेत्रे यियासुः श्री वाराणस्या समागमत् !! ९
बहु श्रुत परिवारो विश्रात स्तत्र वासरान् ! काश्चित्प्रबोध्य त चैत्यव्यवहार ममोचयत् !! १०
स पारमार्थिक तीव्र धत्ते द्वादशधा तप ! उपाध्यायस्तत सूरि पदे पूज्यै प्रतिष्ठित !! ११
श्री देवसूरिरित्याख्या तस्य ख्यातिं ययौ किल ! श्रूयतेऽद्यापि वृद्धेभ्यो वृद्धास्ते देव सूरय !! १२
श्री सर्वदेव सूरिशः श्री मच्छत्रुजयें गिरौ । आत्मार्थं साधयामास श्रीनाभेयैकवासन !! १३ प्र०च०

"सप्तशतिदेश ( सिरोही और मारवाड़ की सरहद ) में कोरटपुर नाम का एक समृद्धशाली नगर है वहाँ के लोग बड़े ही धनाढ्य और धर्म कर्म करने में सदैव तत्पर रहते हैं उस नगर में धर्म की दृढ़ नींव एव धर्म मर्य्यादा को नव, प्लवित करने वाला भगवान महावीर[2] का मन्दिर जो कैलाश पर्वत के सदृश

१—कोरटपुर का नाम प्राचीन पट्टावलियों में कोलापुर पट्टन के नाम से लिखा है आचार्य रत्नप्रभसूरि ५०० मुनियों के साथ जब उपकेशपुर पधारे थे वहा सब साधुओं का निर्वाह होता नहीं देखा तो सूरिजी महाराज ने साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी थी ४६५ साधु विहार कर कोरटपुर नगर में चतुर्मास कर दिया। कोरटपुर में इतने साधुओं का निर्वाह कैसे हो गया ? आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने भीन्नमाल-पद्मावती में हजारों घरों वालों को जैन बनाने के बाद कोरटपुरादि आसपास के प्रदेश मे विहार का वहाँ भी हजारों लाखों लोगों को जैन बनाये वे लोग वहाँ बसते थे और उनकी सख्या इतना प्रमाण में थी कि ४६५ मुनियों का सुख पूर्वक निर्वाह हो सका।

२—कोरटपुर में महावीर का मंदिर है उसकी प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि ने करवाई थी जिसका समय वीर निर्वाण के पश्चात् ७० वर्ष का है पट्टावलि में उल्लेख मिलता है कि—

उपकेश च कोरटे ! तुल्य श्री वीर बिम्बयो । प्रतिष्ठा निर्मित शक्त्या, श्री रत्नप्रभसूरिभि ॥ १ ॥

३—आचार्य रत्नप्रभसूरि के लघु गुरु भाई कनकप्रभ को कोरट संघ की ओर से आचार्य पद प्रदान किया गया और उनका अधिक विहार कोरटपुर के आस पास होने से आपके समुदाय का नाम कोरटगच्छ पड़ गया इस गच्छ के आचार्यों ने लाखों नूतन श्रावक बनाये थे जैसे बोरथरा, धाखीवाल रातडीया, मीनी, खीवसरादि कई जातियां आज भी विद्यमान हैं। अत कोरटपुर नगर महावीर मन्दिर और कोरटगच्छ ये बहुत प्राचीन हैं।

४—पट्टावलियादि ग्रन्थों में चैत्यवास का समय वीरात् ८८२ का लिखा है शायद यह समय चैत्यवासियों की प्रबल सत्ता का होगा परन्तु उपाध्याय देवभद्र के पूर्व ही चैत्यवास प्रारम्भ हो गया था जिसके लिये उपर दिए हुए प्रमाण से साबित होता है और हम आगे चल कर एक चैत्यवास प्रकरण अलग एवं स्वतन्त्र ही लिखेंगे।

मुमुक्षुओं को आनन्द का देने वाला है । इस मन्दिर की सेवा पूजा उपासना करने वाले बहुत से सुखी लोग बसते हैं । इस मन्दिर में एक देवचन्द्र नामक उपाध्याय भी रहते हैं और इस मन्दिर की सब व्यवस्था उपाध्यायजी द्वारा ही होती है ।

इसी समय सुविहित शिरोमणि महान प्रभाविक सर्वदेवसूरि नामक एक आचार्य बनारसी से सिद्ध गिरी की यात्रार्थ विहार करते हुए कोरंटपुर नगर में पधारे । वहां के श्रीसंघ ने आचार्यश्री का सुन्दर स्वागत किया संघ की भक्ति देख सूरिजी ने कई दिन तक वहां स्थिरता की । जब आपश्री ने सुना कि यहां महावीर मन्दिर में एक देवचन्द्र उपाध्याय रहता है वह गीतार्थ एवं विद्वान होता हुआ भी महावीर मन्दिर की सब व्यवस्था करते हैं जो साधु धर्म के लिये अकल्पनिक है ! अतः आचार्य सर्वदेवसूरि ने उपाध्याय देवचन्द्र को हितकारी एवं मधुर उपदेश देकर उनको समझाया और उपाध्यायजी भी समझ गये बस उन्होंने मन्दिर की व्यवस्था एवं चैत्यवास का त्याग कर उग्रविहार करना स्वीकार कर लिया तब आचार्य सर्वदेवसूरि ने उनको योग्य समझकर सूरिपद से विभूषित कर दिये और आप सामन्तभद्रसूरि के पट्टधर* वृद्धदेवसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए ! पट्टावली एवं प्रबन्धकार लिखते हैं कि आचार्य वृद्धदेवसूरि यह ही नगरी में आपने अपनी अन्तिम अवस्था में अपने पट्टधर मुनि प्रद्योतन को आचार्य बनाकर आप अनशन एवं समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये ।

१८ आचार्य प्रद्योतनसूरि महाप्रतिभाशाली उग्रविहारी एवं ब्रह्मचारी एक अद्वितीय आचार्य हुए । आप भू भ्रमण करते हुए एक समय मारवाड़ की ओर विहार किया और क्रमशः नारदपुरी नगरी में पधारे संघ ने आपका अच्छा सत्कार किया । सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था उसी नगर में एक श्रेष्ठि जिनदत्त बड़ा ही धनेश्वरी एवं बड़ा उदार श्रावक रहता था और आपके गृहदेवी का नाम धारणी था आपके एक मानदेव नाम का पुत्र भी था वह भी सूरिजी का व्याख्यान सुना करता था एक दिन आचार्यश्री ने संसार की असारता लक्ष्मी की चंचलता कुटुम्ब की स्वार्थता और आयुष्य की अस्थिरतादि का उपदेश दिया और साथ में दीक्षा का महत्त्व और आत्म कल्याण करने की परमावश्यकता समझाई । यों तो आपके व्याख्यान का प्रभाव सब लोगों पर हुआ ही था पर श्रेष्ठि पुत्र मानदेव की आत्मा पर तो इस कदर असर हुआ कि उसने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो ! मैं मेरे माता पिता की आज्ञा लेकर आपके चरण कमलों में दीक्षा लूंगा ! सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' मानदेव आचार्य श्री को वन्दन कर अपने घर पर आया और माता पिता से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी परन्तु मोहकर्म की पाश में बन्धे हुए माता पिता कब चाहते थे कि मानदेव हमको छोड़ दीक्षा ले ले ! परन्तु जिसको संसार से घृणा आ गई हो वह इस कारागृह में,कब रह सकता है आखिर माता पिता की आज्ञा लेकर मानदेव सूरिजी की सेवा में भगवती जैन दीक्षा ले ही ली । मुनि मानदेव गुरुदेव का विनय भक्ति करते जैनागमों—को अनेक मूल ग्रन्थादि वर्तमान समस्त साहित्य का अध्ययन कर लिया और भी देव अलौकिक गुणों को हासिल

* इन आचार्य सर्वदेवसूरि और उपाध्याय देवचन्द्र के आपस में क्या सम्बन्ध था इस विषय का ग्रन्थकार ने कुछ भी खुलासा नहीं किया है । उपाध्याय देवचन्द्र के समय चैत्यवास की शुरूआत होगी पर सुविहितों का भी सर्वथा अभाव नहीं था और सुविहित उस समय इस प्रकार के चैत्यवास को बुरा समझते थे यही कारण है कि सर्वदेवसूरि ने देवचन्द्र उपाध्याय को चैत्य की व्यवस्था करने से मुक्त कर उग्र विहार करवाया ।

† आचार्य सामन्तभद्रसूरि स्थापित बड़गच्छ के अनुसार पीढ़ी में श्रेणि नम्बर १८ है ।

किया कि जिससे खुश होकर आचार्य श्री ने अपने पट्ट पर मुनि मानदेव को आचार्य बना कर अपना सर्वाधिकार मानदेवसूरि को सौंप दिया ।

१९ आचार्य मानदेवसूरि बालब्रह्मचारी एवं उत्कृष्ट तपस्वी होने के कारण जया और विजय दो देवियां आपके चरण कमलों में हमेशा वन्दन करने को आया करती थी कई पट्टावलियों में लक्ष्मी और सरस्वती इन दो देवियों के नाम लिखा है परन्तु ऐसे महापुरुषों के दो चार नहीं पर इनसे भी अधिक देव-देवियाँ सेवा करते हों तो क्या आश्चर्य की बात है । गुणी जन सर्वत्र पूजनीय होते हैं ।

आचार्य मानदेवसूरि अपने शेष जीवन में ६ विगइ के त्याग कर दिया था प्रायः आप अज्ञातकुल की गौचरी करते थे और पिछली अवस्था में आप नारदपुरी ( नाडोल ) में भगवान नेमिनाथ के चैत्य (मन्दिर) में ही विराजते थे इससे पाया जाता है कि चैत्य में सुविहित आचार्य भी ठहरते थे और साधु चैत्य में ठहरें तो कोई दोष भी नहीं है दोष है । ममता एवं सावद्य कार्य करने का इस विषय में हम आगे एक चैत्यवास प्रकरण स्वतत्र रूप में लिखेंगे ।

पजाब की सरहद्द पर अलकापुर की सदृश तक्षशिलापुरी * नगरी थी वहा जैनों के ५०० मन्दिर थे और लाखों भावुक घनधानपूर्ण और कुटुम्ब परिवार से समृद्ध श्रावक लोग बसते थे समय समय पर जैनाचार्यों का शुभागमन भी हुआ करता था उसमें भी उपकेशगच्छाचार्यों का विशेष पधारना होता था जब वे पजाब में आते थे तब तक्षशिला की स्पर्शना अवश्य किया करते थे । कहा है कि सदैव एक सी स्थिति किसी की भी नहीं रहती है एक समय सुवर्णमय द्वारामति स्वर्ग समान शोभा देती थी पर दिन आने पर वह जल कर भस्मीभूत हो गई थी यही हाल आज तक्षशिला का हो रहा है जहां देखो मरकी का उपद्रव से पशुओं की भाँति मरे हुए मनुष्य की लाशें नजर आ रही थीं पशु पक्षी तथा राक्षसों को खून और मांस से तृप्ती हो रही थी इस उपद्रव ने तो चारों ओर त्राहि त्राहि मचादी थी इतना ही क्यों पर मन्दिरों का भी पता नहीं कि वहाँ पूजा होती है या नहीं एक समय संघ अमेश्वर मन्दिर में एकत्र होकर विचार किया कि सुख शान्ति के दिनों में अधिष्टायिक एवं शासन देव देविया आते जाते और दर्शन भी देते पर इस महान संकट के समय सब देव देवी कहा चले गये कि संघ के अन्दर इस प्रकार संकट, मन्दिरों की पूजा का पता नहीं जिसमें इतनी इतनी प्रार्थना कराने पर प्रसाद चढ़ाने पर भी कोई नहीं आता है इसका कारण क्या होगा ? इस प्रकार सताप करते हुए संघ को देख शासन देवी अदृश्य रहकर बोली कि आप इस प्रकार खेद क्यों करते हो इसमें शासन देव देवियों का कोई भी दोष नहीं है कारण दुष्ट मलेच्छों के देवों ने इस प्रकार क्रूरता की है कि उसके सामने हमारी कुछ चल नहीं सकती है ! जैसे इज्जतहीन नगे लुच्चों के सामने इज्जतदार साहूकारों की नहीं चलती है पर मैं आपको यह भी कह देती हूँ कि इस नगरी का तीन वर्षों के बाद् भग होगा अत इस उपद्रव से बच कर तुम यहां से चले जाना ? इस पर संघ ने कहा कि तीन वर्ष बाद् रहेगा कौन ? यदि इस उपद्रव से बचने का कोई उपाय नहीं मिला तो सब लोग खत्म हो जायेंगे और देव

* भय तक्षशिलापुर्या चैत्य पचशती स्मृति ! धर्म क्षेत्रे तदा जज्ञे गरिष्टमशिव जने !! २७
अकाल मृत्यु संयाति रोगै लोकि उपद्रुत: ! जज्ञे यत्रौपध वैद्यो न भुगुण हेतवे !! २८
प्रति जागरणे ग्लानं देहस्येह प्रयाति य: ! गृहागत: स रोगेण पात्यते तल्प के द्रुतम् !! २९
स्वजन: कोपि कस्यापि नास्तीह समये तथा ! आक्रंद भैरवारावरौद्ररुपाभवत्पुरी !! ३० प्र०च०

मेरा तक्षशिला आना तो इस समय बन नहीं सकता मैं यहाँ बैठा ही तुम्हारे उपद्रव की शान्ति कर दूंगा अत सूरिजी ने लघु शान्ति रूप शान्तिस्तव बना कर वरदत्त को दे दिया। वरदत्त गुरु को वन्दन कर पुनः तक्षशिला आया और गुरु महाराज का दिया हुआ शान्तिस्तव संघ को देकर सब विधि कह सुनाई उसी प्रकार करने से नगर में सर्वत्र शान्ति हो गई जिससे जैन एव जैनेत्तर सब लोगों ने सूरिजी एवं जैनधर्म का महान् उपकार समझा बाद बहुत से लोग तक्षशिला त्याग कर सिन्ध शूरसेन वगैरह जहाँ अपना सुविधा देखी वहां चले गये और तीन वर्षों के बाद तुर्कों ने तक्षशिला का ध्वस कर डाला। बाद कई असी से बादशाह गजनी ने तक्षशिला का पुनरुद्धार कर उसका नाम गजनी* रख दिया था।

इधर आचार्य मानदेवसूरि ने मनुष्यों को ही क्यों पर कई देव देवियों को धर्मोपदेश देकर उनको आत्म कल्याण का उत्तम रास्ता बतलाया और अनेक भव्यों का उद्धार कर अपने आयुष्य के अन्त में किसी योग्य मुनि को अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आप अनसन एव समाधि पूर्व स्वर्ग सिधार गये इस प्रकार आचार्य मानदेवसूरि शासन के महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं आपका समय के लिये हम आगे चल कर विचार करेंगे—

२०—आचार्य मानतुंगसूरि-आप बड़े ही विद्या बली एवं अनेक लब्धियों से विभूषित थे कई राजा महाराजा आपके चरणों की सेवा कर अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझते थे। आपका पवित्र चरित्र बड़ा ही अनुकरणीय है। बनारसी † नगरी में जिस समय ब्रह्मक्षत्री वंशका हर्षदेव राजा राज करता था और उसी

* तक्षशिला नगरी जैनों का एक धर्म चक्र नाम का भगवान् चन्द्रप्रभ का तीर्थ था प्रबन्धकार स्वयम् लिखते हैं कि तक्षशिला के खोद काम से पीतल वगैरह की जैनमूर्तियां आज भी निकलती हैं और यह सत्य भी है प्रबन्धकार के समय ही क्यों पर आज भी वहाँ के खोद काम से जैनमूर्तियों वगैरह स्मारक चिन्ह भूमि से निकलते हैं।

चीनी यात्री हुयेनत्सांग विक्रम् की छट्ठी शताब्दी में भारत की यात्रार्थ आया था उस समय धर्मचक्रतीर्थ बौद्धों के हाथ में था और चन्द्रप्रभ बोधिसत्व तीर्थ कहलाता था इनके अलावा भी बहुत से जैनमन्दिर बौद्धों ने अपने कब्जे में कर लिया था। जो उक्त चीनी यात्री के यात्रा वितरण से स्पष्ट पाया जाता है।

वीर वंशावलीकार लिखते हैं कि आचार्य मानदेवसूरि ने बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेश ( वंश ) में मिलाये। पन्यासश्रीकल्याणविजयजी महाराज ने मानदेवसूरि की पर्यालोचना में लिखते हैं कि ओसवाल जाति पश्चिम दिशा से आई होगी इत्यादि। पन्यासजी महाराज का यह अनुमान कहां तक ठीक है कारण मानदेवसूरि के समय इस जाति का नाम ओसवाल नहीं था पर उपकेशवंश था और इस नाम संस्करण का कारण उपकेशपुर था जो मरुस्थल का एक नगर था दूसरा उपकेशवंश की रहन सहन रीति रिवाज वेशभाषा वगैरह सब मारवाड़ की ही है अत इस जाति की मूलोत्पत्ति मरुधर से ही हुई है हाँ पट्टावल्यादि ग्रथों में उस समय तक्षशिला में उपकेश वसियों की बहुत आबादी थी और देवी के कथन से उन्होंने तीन वर्ष के बाद तक्षशिला का भंग होना समझ कर वे लोग वहाँ से चल कर पंजाब में आ गये हों तो यह बात सभव हो भी सकती है। पर ओसवाल जाति को ही पश्चिम की ओर से आई कहना तो केवल भ्रम ही है।

तक्षशिला के भंगपूर्व उपकेशगच्छाचार्यों का कई बार तक्षशिला में विहार हुआ और कई चतुर्मास भी वहां किये थे यदि उपकेशवंशियों का वहाँ गहरी तादाद में अस्तित्व नहीं होता तो वहाँ उपकेशगच्छाचार्यों के इस प्रकार बार-बार जाना आना शायद ही होता तथा वीर वंशावली के लेखानुसार मानदेवसूरि बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेश बनाना भी इस बात को साबित करता है कि इनके पूर्व उपकेश वासियों का भारत के चारों ओर प्रचार बढ़ गया था।

† सदासुरसरिद्वीचीनिचयार्चांसकदमला। पुरी वाराणसीत्यस्तिसाक्षादिव दिव पुरी ॥ ५
असीत् कोविद कोटीरमर्थिदारिद्यपारभ्। तत्र श्री हर्षदेवाख्यो राजा न तु कलंक भृत् ॥ ६
ब्रह्म क्षत्रिय जातीयो धनदेवाभि सुधी। श्रेष्टीतत्रामवद्विश्वप्रजा भूपार्थ साधक ॥ ७

## भगवान् अजितनाथ के समय महाविदेह में उत्कृष्ट १६० तीर्थङ्कर

| | जम्बु० महाविदेह | धा० पूर्व० विदेह | धा० पश्चिम वि० | पुष्करा० पूर्व विदेह | पु० पश्चि० विदेह |
|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| १ | जयदेव | वीरचन्द्र | धर्मदत्त | मघवाहन | प्रसन्नचन्द्र |
| २ | कर्णभद्र | वत्ससेन | भूमिपति | जीवरक्षक | महासेन |
| ३ | लक्ष्मीपति | नीलकांति | मेरुदत्त | महापुरुष | वृजनाथ |
| ४ | अनन्तहर्ष | मुञ्जकेशी | सुमित्र | पापहर | सुवर्णबाहु |
| ५ | गंगाधर | रुक्मिक | श्रीषेणनाथ | मृगांकनाथ | कुरुचन्द्र |
| ६ | विशालचन्द्र | क्षेमकर | प्रभानन्द | सुरसिंह | वज्रवीर्य |
| ७ | प्रियंकर | मृगांकनाथ | पद्माकर | जगतपुज्य | विमलचन्द्र |
| ८ | अमरादित्य | मुनिमूर्ति | महाघोष | सुमतिनाथ | यशोधर |
| ९ | कृष्णनाथ | विमलनाथ | चन्द्रप्रभ | महामहेन्द्र | महाबल |
| १० | गुणगुप्त | आगमिक | भूमिपाल | अमरभूति | वज्रसेन |
| ११ | पद्मनाभ | निष्पापनाथ | सुमतिषेण | कुमारचन्द्र | विमलबोध |
| १२ | जलधर | वसुधरा धिप | अच्युत | वारिषेण | भीमनाथ |
| १३ | युगादित्य | मल्लिनाथ | तीर्थपति | रमणनाथ | मेरुप्रभ |
| १४ | वरदत्त | वनदेव | ललितांग | स्वयंभू | भद्रगुप्त |
| १५ | चन्द्रकेतु | बलभूत | अमरचन्द्र | अचलनाथ | सुदृढसिंह |
| १६ | महाकाय | अमृत वाहन | समाधिनाथ | मकरकेतु | सुव्रत |
| १७ | अमरकेतु | पूर्णभद्र | मुनिचन्द्र | सिद्धार्थनाथ | हरिचन्द्र |
| १८ | अरण्यवास | रेवांकित | महेन्द्रनाथ | सकलनाथ | प्रतिमाधर |
| १९ | हरिहर | कल्पशाखा | शशांक | विजयदेव | अतिश्रेय |
| २० | रामेन्द्र | नलिनिदत्त | जगदीश्वर | नरसिंह | कनककेतु |
| २१ | शांतिदेव | विद्यापति | देवेन्द्रनाथ | शतानन्द | अजितवीर्य |
| २२ | अनन्तकृत | सुपार्श्व | गुणनाथ | वृंदारक | फाल्गु मित्र |
| २३ | गजेन्द्र | भानुनाथ | उद्योतनाथ | चन्द्रातप | ब्रह्मभूत |
| २४ | सागरचन्द्र | प्रभंजन | नारायण | चित्रगुप्त (चन्द्रगुप्त) | हितकर |
| २५ | लक्ष्मीचन्द्र | विशिष्टनाथ | कपिलनाथ | दृढरथ | वारुणदत्त |
| २६ | महेश्वर | जलप्रभ | प्रभाकर | महायश | यशकीर्ति |
| २७ | ऋषभदेव | मुनिचन्द्र | जिनदीक्षित | उर्मांक | नागेन्द्र |
| २८ | सौम्यकान्त | ऋषिपाल | सकलनाथ | प्रद्युम्ननाथ | महीकीर्ति |
| २९ | नेमिप्रभु | कुडगदत्त | शीलारनाथ | महातेज | कृतब्रह्मा |
| ३० | अजितभद्र | भूतानन्द | वज्रधर | पुष्पकेतु | महेन्द्र |
| ३१ | महीधर | महावीर | सहस्रार | कामदेव | वर्धमान |
| ३२ | राजेश्वर | तीर्थेश्वर | अशोकाख्या | समरकेतु | सुरेन्द्रदत्त |

पांच भरत, पांच एरवत एवं दश को मिलाने से १७० हुए।

जीव उनकी बहिन को दिख पड़े* इसमें एक तो अप्रकाश कारी भाजन दूसरे प्रति लेखन का प्रमाद तीसरा उसमें हमेशा पानी का रहना इन सब कारणों से जीवों की उत्पत्ति हो जाना एक सभाविक बात थीं, बहिन ने कहा मुनि ? सर्व मतों में जीव दया व्रत प्रधान है जिसके लिये तुम्हारा इतना प्रमाद है कि असख्यं त्रस जीवों की विराधना होती है भला ? संयम की मर्यादा के लिये स्वल्प वस्त्र पात्र में तो तुम परिग्रह कहते हो तब यह ताम्र का कमंडल तथा मौर पिछी रखते हो क्या यह परिग्रह नहीं है इत्यादि बहुत कुछ कहा ? इसका पश्चाताप करता हुआ मुनि महाकीर्ति बोला कि बहिन क्या किया जाय यहां कोई श्वेताम्बर आचार्य आता ही नहीं है ? बहिन ने कहा ठीक है अभी थोड़ा समय में शूरसेन, प्रान्त की और से श्वेताम्बराचार्य आने वाले हैं आने पर में आपको सूचना देदुगी ? महाकीर्ति ने कहा बहुत अच्छी बात है मै श्वेताम्बराचार्य से अवश्य मिलुगा। बाद बहिन ने मुनि को भिक्षा दी और मुनि भिक्षा कर अपने स्थान पर चले गये।

थोड़ा ही समय के बाद भगवान पार्श्वनाथ की कल्याणक भूमि की यात्रार्थ* एक जिनसिंहसूरि नामका आचार्य अपने शिष्यों के परिवार से बनारसी नगरी की ओर पधारे और उद्यान में ठहर गये नगरी में खबर होने से सब लोग सूरिजी को वन्दन करने या उपदेश श्रवण करने को गये इस बात की सूचना बहिन ने भाई मानतुंग को दी अत मानतुंग भी आचार्यश्री के पास गया और आचार्य द्वारा जैन धर्म का स्वरूप सुन कर उसने श्वेताम्बर दीक्षा स्वीकार करली[2] आचार्यश्री ने मानतुग को योग्य समझ कर जैनागमों का अध्ययन करवाया और कई विद्याओं की आम्नाय भी प्रदान की जब मानतुंग सर्व गुण सम्पन्न हो गया तब आचार्य श्री ने उसको आचार्य पद[3] से विभूषित कर गच्छ का सर्व भार मानतुगसूरि को सुप्रत कर दिया मानतुंग सूरि पर सरस्वती देवी की पूर्ण कृपा थी कि उसके प्रभाव से आप काव्यादि कवित बनाने में निपुण बनगये।

प्रस्तुत बनारसी नगरी में वेद वेदाँग का जान कार धूरधर विद्वान मयूर[4] नामका एक ब्राह्मण था जिसका राज सभा में अच्छा मान था उसके एक पुत्री थी जिस का वर के लिये मयूर चिन्तातुर रहता था कारण वह चाहता था कि मेरी पुत्री जैसे स्वरूपवान एव लिखी पढ़ी विदुषी है वैसा ही वर मिले तो अच्छा ? उसी नगरी में काव्य तर्क छन्दादि कला में प्रवीण वेद पुराण का पारगत बाण[5] नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी मयूर से भेट हुई और मयूर ने बाण को सर्व प्रकार से योग्य समझ कर अपनी पुत्री की शादी बांण के साथ करदी बाद बाण को राज सभा में ले गया जिसकी विद्वता देख राजा ने बाण का अच्छा सन्मान किया। और हमेशा राज सभा में आने का भी कहाँ अत मयूर और बाण दोनों विद्वान राजा हर्षदेव की सभा का नामी पण्डित कहलाये जाने लगे—

मयूर की पुत्री के साथ बाण आनन्द पूर्वक सुख से रहने लगा। एक दिन बाण ने अपनी पत्नी का

* अन्यदा जिनसिंहाख्या सूरय' पुरमाययु । पुरा श्री पार्श्व तीर्थेश कल्याणक पवित्रितम्' ॥ ३७

२ गुरुभिर्दीक्षितश्चासौ नदीष्णो भ्रेपि'च कचित्। तपस्या विधि पूर्व चागम मध्याप्यतादरात ॥ ३८

३ तत' प्रतीति मृत्स्यकय' श्रुत समर्जनात्। योग्यः सन् गुरुभि सूरिपदे गच्छाद्दत्त कृत ॥ ३९

४ कोविदानां शिरोरत्न मयूर इति विश्रुत । प्रत्यर्थि सार्प्यदर्प्पाणां मयूर इव दर्प्यहृत् ॥ ४३

५—तर्क लक्षण साहित्यरसास्वादवशं कधी । भनू चानो महाविप्रो बाणाख्य् प्रागगुणान्वित ॥ ४७

पराजय का फैसला मिला ! फिर वहाँ से वापिस बनारस आये पूर्व की हुई शर्त के अनुसार मयूर ने अपने बनाये सब ग्रन्थ राज सभा में लाकर अपने हाथों से जला दिये पर भस्म जब तक वहाँ पर था तब तक उनके सूर्य की किरणों से अक्षर दिखाई देते थे ! इससे राजा ने मयूर को सम्मानित किया और दोनों पण्डितों को सम्मान पूर्वक राज सभा में रखा ।

एक समय राजा अपनी राजसभा को कहने लगा कि इस समय जैसा प्रभाव ब्राह्मणों में है वैसा किसी अन्य धर्मियों में देखने में नहीं आता है ! ''इस पर एक मन्त्री ने कहा कि 'बहुरत्नावसुन्धरा' जैसे ब्राह्मणों में चमत्कार है वैसे अन्य धर्मियों में भी बहुत से प्रभाविक पुरुष विद्यमान है दूर क्यों पर आपके ही नगर में एक मानतुंग नाम का जैनाचार्य महान विद्वान और अनेक अतिशय चमत्कारों से सुशोभित है । राजा ने कहा यदि ऐसा है तो जैनाचार्य को सभा में लाओ ! मंत्री ने कहा हजूर वे निर्ग्रन्थ निस्पृही यति है केवल हाजरी भरने को एवं आशीर्वाद देने को ब्राह्मणों की [illegible] नहीं आते है हाँ यदि आप आमन्त्रण भेज कर बुलावे तो धर्मोपदेश देने को वे आ सकते है । राजा ने मंत्री का कहना स्वीकार कर मंत्री के साथ अपने योग्य पुरुषों को मानतुंगसूरि के पास भेजा ! मंत्री ने सूरिजी को वन्दन कर राज सभा में पधारने की प्रार्थना की । इस पर सूरिजी ने कहा मंत्री ! हम निस्पृहीयों को राजा से क्या लेना है जो कि हम राजसभा में चलें ! मंत्री ने कहा ''गुरु महाराज आप निर्ग्रन्थ है आपको राजा से कुछ भी

[illegible] ॥ ११५
[illegible] ॥ ११६
[illegible] ॥ ११७
[illegible] ॥ ११८
[illegible] ॥ ११९
[illegible] ॥ ११
[illegible] ॥ १२१
[illegible] ॥ १२२
[illegible] ॥ १२३
[illegible] ॥ १२४
[illegible] ॥ १२५
[illegible] ॥ १२६
[illegible] ॥ १२
[illegible] ॥ १२८
[illegible] ॥ १२९
[illegible] ॥ १३
[illegible] ॥ १३१
[illegible] ॥ १३२
[illegible] ॥ १३३
[illegible] ॥ १३

नहीं कर सके। इस पर राजा ने कहा कि यदि बाण में शक्ति हो तो ऐसा कोई चमत्कार कर के दीखावे। बाण ने कहा कि आप मेरे हाथ पग छेद के चंडी के मन्दिर में रख दें मयूर ने अपनी पुत्री दुखी न हो जाय इस लिये राजा को मनाई की पर राजा ने एक की भी नहीं सुनी अत राजा ने बाण के हाथ पग काट कर चंडी के मन्दिर के पिच्छे पहुँचा दिया बाण ने एक चंडी शतक की रचना कर चंडी की स्तुति की जिससे चंडी ने बाण के हाथ पैर दे दिये। बाण राज सभा में आगया जिसके नये आये हुए हाथ पैर देख राजादि सभा ने बाण की भी प्रशंसा की। अबतो मयूर-बाण (शस्त्र जमात) का वाद विवाद खुब बढ़ गया जिसका निर्णय करना राजा पर आ पड़ा। राजा ने कहा कि तुम दोनो काश्मीर चले जाओ वहां की सरस्वती देवी तुम्हारा इन्साफ कर देगी राजा अपने योग्य पुरुषों को साथ देकर दोनों पण्डितों को कश्मीर भेज दिये। क्रमश चल कर सरस्वती के मन्दिर में आकर कठोर तपस्या से देवी की आराधना की तब देवी प्रत्यक्ष रूप से आकर दोनों पण्डितों को दूर दूर बैठा कर एक समस्या पुछी कि।

" शतचन्द्रं नभस्तलम् "

इस समस्या की पुर्ति के लिये पण्डितों ने कहा—

"दामोदर कराघात विह्वली कृत चेतसा, दृष्ट चाणूरमल्लेन शतचन्द्र नभस्तलम्।"

परन्तु बाण ने शीघ्र कहा तब मयूर ने कुछ विलम्ब से कहा अत बाण की जय और मयूर का

---

काव्यानां शततः सूर्यं स्तुतिं सुविदधेतत । देवानूसाक्षात्करोतिस्म, येषामेकमपि स्मृतम् ॥ ८५

६ – प्रातः प्रकट देहोऽसावागमी राज पर्षदि । श्रीहर्षराजः पप्रच्छामीतेकि रम्भवा वद ॥८७

आसीदेश परं ख्यात सहस्र किरणो मया । तुष्टो देह ददावद्य भक्तं किं नाम दुष्करम् ॥ ८८

७—इति राज्ञो वच श्रुत्वा बाण प्राह तिसाहसात् । हस्तौ पादौ च संच्छिद्य चंडिका वास पृष्टत ॥ ९६

८—उषत्या चेव कृते राज्ञा चंडि स्तोतु प्रच क्रमे । वागकाव्यैरतिश्लाघ्यै रुद्रामाक्षरवत्वरे ॥ १०४

ततश्च प्रथमे वृत्ते निर्वृते सप्तमेऽक्षरे । समाधौ तन्मुखो भूत्वा देवी प्राह वरं वृणु ॥ १०५

विदेहि पाणि पांद में इत्युक्ति समने तरम् । सपूर्ण वयवे शोभा प्रत्यग्र इव निर्ज्जर ॥ १०६

९—यादेवी मूल मूर्तिस्या यत्रास्ते तत्र गम्यताम् । उभाभ्यामपि कादमीर निर्वृत्ति प्रवरे पुरे ॥ १०९

१२ तत्र गत्वा पुरो मन्त्री गुरु नानम्य चावदत्त ! आह्वाययतिवात्सल्याद्‌भूपपादोऽवधार्यताम् ॥ १२७

११तौ भूपाल स्तुवन्नित्यममरायचान्यदा जगौ । प्रत्यक्षोतिशयो भूमिदेवाना मेव दृश्यते ॥ १२२

कुत्रापि दर्शनेन्यस्मिन् कथमस्ति प्रजल्पत । प्राह मंत्री यदि स्वामी शृणोति प्रोच्यते तत ॥ १२३

जैन श्वेतांबराचार्यो मानतुगा मिध सुधी । महा प्रभाव सपन्नो विद्यते तात्र के पुरे ॥ १२४

चेत्कुतहल मत्रास्ति तदाह्वयत त गुरुम । चिरों यो यादृश कार्यं तादृश पूर्यते तथा ॥ १२५

इत्या कर्ण्य नृप प्राह त सत्पात्र समानय । सन्मान पूर्व मेतेषां निस्पृहाणा नृप क्रियान् ॥ १२६

गुरु राह महामात्य राजान कि प्रयोजनम् ! निरीहाणामिय भूमिर्नहि मेत्य मवार्थि नाम् ॥ १२८

मत्रिणोचे प्रभो श्रेष्ठा भावनात् प्रभावना ! प्रभाव्य शासन पूज्यैस्तद्राज्ञो रंगतो भवेत् ॥ १२९

इतिनिर्यंधतस्तास्य श्रीमानतु ग सूरय ! राज सौधसमाजग्मुरभ्युत्तस्थौचभूपति ॥ १३०

धर्मकामाशिषदत्वौ निविष्टाउचितासने ! नृप प्रहद्विजन्मान कीदृक् सातिशया क्षितौ ॥ १३१

पुकेनसूर्यमाराध्य स्वांगाद्रोगोवियोजित ! अपरश्चडिकासेवानशालेभेकरक्रमौ ॥ १३२

भवतामपि शक्तिश्चेत्काप्यस्तियतिनायका ! तदाकश्चिच्चमत्कारंपूज्यादर्शयताधुना ॥ १३३

इत्याकर्ण्यथि ते प्राहुर्नगृहस्था वयनृप ! धनधान्य गृह क्षेत्र कलत्रा पत्य हेतवे ॥ १३४

लिया वस्त्रपात्र सूरिजी के उपदेश से कई जैनमन्दिर बनवाये और कई जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया और भी धर्म कार्य कर जैनधर्म की शुभ उन्नति एवं प्रभावना की इस प्रकार आचार्य मानतुंगसूरि अनेक भूले भटके प्राणियों पर दया भाव लाकर उनका उद्धार कर जैनधर्म का प्रचार को बढ़ाया।

आचार्य मानतुंगसूरि के शरीर में एक समय असाध्य रोगग्रस्त हो गया था आपने धरणेन्द्र को बुला कर अनशन की सम्मति माँगी इस पर इन्द्र ने कहा पूज्यवर। आपका आयुष्य अभी शेष रहा है अतः आप अनशन का विचार छोड़ दें पूज्यवर! आप जानते हो कि कर्म फल तो तीर्थङ्करादि शिलाका पुरुषों को भी भोगवना पड़ा था तथापि मैं आपको एक अठारह अक्षरों का मंत्र देता हूँ इस से शान्ति हो जावेगी इस मन्त्र देकर पताल लोक में चला गया। मानतुंगसूरि सुबह और शाम को उस मन्त्र का जप किया करते थे अतः शान्ति एवं समाधि रहती थी सूरिजी ने भव्य जीवों के कल्याणार्थ उन अठारह अक्षरों गर्भित भयहर स्तोत्र बना दिया कि जिससे भी प्रकार का रोग की शान्ति हो जावे और चमत्कार लिखते हैं कि वह भयहर स्तोत्र आज भी अनेक प्राणियों के रोग की शान्ति करने को विद्यमान है।

इस प्रकार आचार्य मानतुंगसूरि भूभ्रमन कर जैन धर्म का शुभ उद्योत किया और अन्त में आप अपने योग्य शिष्य मुनि गुणाकर को सूरिपद से विभूषित कर अनशन एवं समाधि पूर्व काल कर स्वर्ग पधार गये इति मानतुंगसूरि का संक्षिप्त जीवन !!

पट्टावली कार तथा प्रबन्ध कार ने यह नहीं बतलाया कि मानदेवसूरि और मानतुंगसूरि के आपस में क्या सम्बन्ध था कारण मानतुंगसूरि के गुरु जिनसिंहसूरि बतलाया है और मानदेवसूरि ने अपने पट्ट पर एक योग्य मुनि को आचार्य बनाने का प्रबन्ध में उल्लेख किया है पर मानतुंग का नाम नहीं लिखा है यह एक विचारणीय विषय है! दूसरा मानतुंगसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में गुणाकरसूरि को आचार्य पद दिया लिखा है तब पट्टावलियों में मानतुंगसूरि के पट्ट पर वीरसूरि लिखा है तो मानतुंगसूरि और वीरसूरि के क्या सम्बन्ध था और गुणाकरसूरि को मानतुंगसूरि ने आचार्य पद दिया था तो वे उनके पट्टधर क्या नहीं हुये यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। आगे चल कर हम सब के समय का निर्णय करेंगे उस समय इन बातों पर भी विचार करेंगे और इस लिये ही हमने पूर्वोक्त आचार्यों का समय नहीं लिखा है! कारण इनके समय में बहुत सी गड़ बड़ सी दिखाई देती है और अभी हम पट्टावलियों के आधार पर इन आचार्यों का संक्षिप्त सा जीवन लिख दिया है। विशेष फिर आगे लिखा जायगा।

## आचार्य मल्लवादीसूरि

भरोंच नगर में एक जिनानन्दसूरि[1] नाम के आचार्य विराजते थे और बुद्धानन्द नामक बौद्धाचार्य भी वहीं रहता था। एक समय दोनों आचार्यों का राज सभा में वाद हुआ जिसमें बौद्धाचार्य बुद्धानन्द ने वितंडावाद करके जिनानन्दाचार्य को जीत लिया। अतः जिनानन्दाचार्य भरोंच से विहार कर वल्लभी नगरी में पधार गये।

वल्लभी नगरी के राजा शिलादित्य की बहिन दुर्लभादेवी थी और उसके तीन पुत्र थे जिनयश, यक्ष और मल्ल। आचार्य जिनानन्द ने दुर्लभादेवी और उसके तीनों पुत्रों को संसार की असारता का उपदेश देकर दीक्षा देदी और तीनों को आगमों का अध्ययन करवाया। बुद्धिशालियों के लिए ऐसा कौनसा आगम दुष्कर

नहीं लेना है पर राजा को धर्मोपदेश देना तो आपका कर्तव्य है अतः आप धर्मोपदेश देने को भी पधारिये दूसरे राजा का दिल में यह भी भ्रम है कि विश्व में सिवाय ब्राह्मणों के और कोई प्रभाविक पुरुष है ही नहीं राजा ने अपने इन पुरुषों को आमन्त्रण के लिये मेरे साथ भेजे हैं इत्यादि । सूरिजी ने मंत्री की प्रार्थना स्वीकार कर उनके साथ राज सभा में आये । राजा ने सिंहासन छोड़ सूरिजी का सत्कार किया और प्रार्थना की कि जैसे ब्राह्मण लोग देवताओं की आराधना कर अपना रोग मिटाते है काटे हुए हाथ पैर पुनः बना देते है वैसे आप भी किसी प्रकार का चमत्कार दीखा सकते हो ? यदि आपके अन्दर कुछ प्रभाव हो तो कृपा कर इस सभा के सामने बतलाइये ? आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा कि हे राजन् ! हम न तो गृहस्थ हैं और न गृहस्थों के करने योग्य कार्य ही करते है न हमें धन माल भूमि वगैरह की गरज है फिर अनेक आरंभ सारंभ करने वाले राजा को धन धान्य पुत्र कलित्र प्राप्ती रूप आशीर्वाद देकर खुश करने में क्या लाभ है इत्यादि सूरिजी ने निरम एव निस्पृहिता से सत्य २ कह सुनाया कारण सूरिजी को राजा की खुशामदी से कोई भी प्रयोजन नहीं था पर कहा जाता है कि 'सच कहने से मां भी माथे में देती है' राजा एक दम नाराज होकर अपने अनुचरों को हुक्म देदिया कि इस जैन सेवड़ो को लोहा की ४४ साकलों से जकड़ के बान्ध लो और अन्धेरी कोठरी में डाल दो और उसके द्वार पर एक जबरदस्त ताला लगादो तथा पक्के पहरे भी लगा दो । अनुचरों ने ऐसा ही करके आचार्य को अन्धेरी कोठड़ी में डाल कर पेहरा लगा दिया । विचारा मत्री का मुंह फीका पड़ गया, और ब्राह्मणों का नुर तो नौ गज चढ गया ।

आचार्यश्री ने बिलकुल फिक्र नहीं किया पर इतना जरूर सोचा कि इस कारण से जैन धर्म की निंदा कर अज्ञानी जीव कर्म बान्ध कर बैठेंगे । उन्होंने भगवान आदीश्वरजी का स्तोत्र भक्तांमर बनना शुरु किया जिसका एक २ श्लोक बनाते गये और एक २ शाकल टूटती गई इस प्रकार ४४ काव्य बनाने से ४४ शाकलें टूट पड़ी और चार श्लोकों से कोटरी के ताले टूट पड़े और स्वय कपाट खुल गये ? बस! सूरिजी सीधे ही राज सभा में आकर राजा को धर्मलाभ दिया जिसको देख राजा आश्चर्य में डूब गया कि मेरी नजरों के सामने जिस को ४४ लोहा की शांकलों से जकड़ कर अन्धेरी कोठरी में डाल दिया जिसके ताले की चाबी मेरे पास पड़ी है फिर बन्धन मुक्त होकर महात्माजी कैसे आगये । सत्य है कि यह कोई अलौकीक महात्मा है जिनके लिये ब्राह्मणों की भाँति किसी देव की आराधना की भी आवश्यकता नहीं पड़ी और ब्राह्मण चमत्कारी होने पर भी बड़े ही अभिमानी हैं और आपस में बड़े बनने की बड़ी भावना रही हुई है पर यहां तो न देखा लोभ न देखा बड़ा ही का अभिमान और न देखा खुशामदी का काम ? अब राजा ने सूरिजी की अच्छे २ शब्दों में खूब प्रशसा की पर सूरिजी के लिये तो तिरस्कार और सत्कार एकसा ही दीखाई दे रहा था ।

राजा ने नम्रता के साथ सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ? मैं आपके अलौकिक अतिशय प्रभाव से प्रसन्न हुआ हूँ । कृपा कर आप कुछ हुक्म फरमाये कि मैं आपके चरणों में भेट कर कृतार्थ बनु ? सूरिजी ने कहा राजन् ! हम योगियों को क्या चाहिये हम न भूमि मकान रखते हैं और किसी काम में लक्ष्मी का उपयोग करते हैं यदि आप की ऐसी ही इच्छा हो तो आप जैन धर्म के स्वरूप को सुन एवं समझ कर आत्म कल्याणार्थ जैनधर्म को स्वीकार करे कि जिससे आपका इस भव और परभव में जल्दी कल्याण हो । राजा ने सूरिजी के मुखार्विन्द से स्याद्वाद सिद्धान्त और अहिंसा परमोधर्म को सुनकर जैनधर्म को स्वीकार कर

होता है कि जिसे वे नहीं कर सकते ? अर्थात् वे तीनों साधु धुरंधर विद्वान होगये जिसमें भी सबमें छोटे मल्ल मुनि की बुद्धि सब में श्रेष्ठ थी अस्तु पाचवाँ ज्ञानप्रवादपूर्व मे पूर्व महर्षियों ने अज्ञान को नाश करने वाला नयचक्र नामक ग्रन्थ का उद्धार किया। जिसके बारह आरारूप बारह विभाग हैं और आद्योपान्त में जिन चैत्य की पूजा का विधान भी आता है। प्रस्तुत ग्रन्थ पुस्तकारूढ कर एकान्त में गुप्त रक्खा गया था। विना गुरु की आज्ञा कोई भी उसको पढ़ नहीं सकता था।

एक समय गुरुमहाराज ने विचार किया कि यह मल्ल मुनि अपनी चपलता के कारण कभी निषेध की हुई पुस्तक पढ लेगा तो इसको बड़ा भारी संताप होगा। अत. साध्वी दुर्लभादेवी के समक्ष गुरु महाराज ने मल्ल मुनि से कहा कि मुने ? तुम इस पूर्वाचार्य निषेध की पुस्तक को नहीं खोलना एव नहीं पढ़ना इत्यादि हितशिक्षा देकर आचार्य जिनानन्द ने यात्रार्थ वहाँ से विहार करदिया।

पीछे से बालभाव के कारण आचार्य की निषेध की हुई पुस्तक माता ( दुर्लभासाध्वी ) की अनुपस्थिति में मल्लमुनि ने खोल कर पहिले पन्ने का पहिला श्लोक पढ़ा—

"निधि नियमभंगवृत्ति व्यतिरिक्तत्वादनर्थ कम वोचत्। जैनादन्यच्छासन-मनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥"

मुनि मल्ल इस श्लोक का अर्थ विचारता ही था कि उसके हाथ से श्रुत देवता ने पुस्तक खींच कर लेली। इस हालत में मुनि मल्ल चिंतातुर होकर रोने लग गया। यह खबर साध्वी दुर्लभा अर्थात् मुनि मल्ल

---

१ चारुचारित्रपाथोधिधाम कल्लोलकेलित। सदानन्दो जिनानन्द सूरिस्तत्राच्युत श्रिया॥ ६॥
अन्यदा धनदानाहिमत्तश्रिये छलं महन्। चतुरङ्गसभायज्ञामज्ञातमदविभ्रम॥ ७॥
चैत्यवाग्रासमायात जिनानन्दमुनीश्वरम्। जिग्ये वितण्डया बुद्ध्या नन्दाख्य' सौगतो मुनि॥ ८॥
परामवात्पुर त्यक्त्वा जगाम वल्लभीं प्रभु। प्राकृतोऽपि जितोऽन्येन कस्तिष्ठेत्पुरांतरा॥ ९॥
तत्र दुर्लभदेवीति गुरोरस्ति सहोदरी। तस्याः पुत्रास्त्रय' सन्ति ज्येष्ठो जिनयशोऽभिध'॥ १०॥
द्वितीयो यक्षनामाभून्मल्लनामा तृतीयक। ससारासारता चैषां मातुरै प्रतिपादिता॥ ११॥
पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादाभिधपंचमात्। नयचक्रमहाग्रन्थपूर्वाच्चक्रे तमोहर'॥ १४॥
विश्रामरूपास्तिष्ठन्ति'तत्रापि द्वादशारका'। तेषामारंभपर्यन्ते क्रियते चैत्यपूजनम्॥ १५॥
किंचित्पूर्वगतत्वाच्च नयचक्रं विनापरम्। पाठिता गुरुभि सर्वं कल्याणीमतयोऽभवत् ( न् )॥ १६॥
एप मल्लो महाप्राज्ञस्तेजसा हीरकोपमः। उन्मोच्य पुस्तक बाल्यादसत्य वाचयिष्यति॥ १७॥
ततस्योपद्रवेऽस्माकमनुतापोऽतिदुस्तर'। प्रत्यक्ष तज्जनन्यास्तत्रागदे गुरुणा च स॥ १८॥
वत्सेद पुस्तक पूर्वं निषिद्ध मा विमोचय। निषिद्धे वि विजहस्ते तीर्थयात्राचिकीर्षय'॥ १९॥
मातुरप्यसमक्ष स पुस्तकं वारितद्विपन्। उन्मार्ज्य प्रथमे पत्रे आर्यामेनामवाचयन्॥ २०॥
निधिनियमभगवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत्। जैनादन्यच्छासनमनृत भवतीति वैधर्म्यम्॥ २१॥
अथ चिन्तयतोऽस्याश्च पुस्तक श्रुतदेवता। पत्र चाच्छेदयामास दुरता गुरुगी क्षति'॥ २२॥
इतिकर्तव्यतामूढो मल्लश्चिल्लत्वमासनत्। अरोदीत् शैशवस्थित्या किं यत्न दैवतै सह॥ २३॥
पृष्ट किमिति मात्राह दृष्ट्वा तत्पुस्तकं ययौ। सद्यो विषादमापेदे ज्ञात्वा तत्तेन निर्मितम्॥ २४॥
आत्मनः स्खलित साधु समाचरयते स्वयम्। विचार्येति सुधीर्मल्ल आराध्नोत् श्रुतदेवताम्॥ २५॥
गिरिपण्डलनामास्ति पर्वतस्तद्गुहान्तरे। रूप्यनिष्पावभोक्ता स षष्ट पारणकेऽभवत्॥ २६॥ प्र० च०

(अनुसंधान इसी पुस्तक के पृष्ठ २५७ (ग) में देखो )

उनका आदर कर आने का हाल पूछा, तब व्यापारियों ने सब हाल कहा। सब बातें सुनकर राजा ने बड़ा ही अफसोस किया कि इससे तो मेरी अपकीर्ति होगा कि इतना बड़ा नगर में कोई विदेशी व्यापारियों का माल खरीदने वाला नहीं है इत्यादि सोचकर राजा ने सब व्यापारियों को बुलाया। उसमें भद्र सेठ भी देवदत्त को साथ लेकर राज सभा में आये। राजा ने अफसोस के साथ व्यापारियों को कहा—क्या इन व्यापारियों का माल खरीदने वाला कोई व्यापारी हमारे नगर में नहीं है? इसपर देवदत्त बोला कि क्यों नहीं? हमारे सेठजी अकेले ही इन व्यापारियों का सब माल खरीद कर सकते हैं और बदले में तेजमतुरी भी दे सकते हैं। परन्तु पास में बैठा हुआ भद्र सेठ बड़ी ही चिंता करने लगा कि यह कैसा मूर्ख है! इतना माल कैसे खरीद कर सकेगा? कारण सेठ तेजमतुरी के मूल्य एवं गुणों को समझता भी नहीं था। खैर! व्यापारियों का माल लेकर बदले में देवदत्त ने तेजमतुरी देकर व्यापारियों को रवाना कर दिया। बाद में सेठ तेजमतुरी के मूल्य एवं चमत्कार को सुन कर बहुत खुशी हुआ। और अपनी पुत्री नन्दा का विवाह मुसाफिर देवदत्त के साथ कर दिया अब तो देवदत्त अर्थात् राजकुँवर श्रेणिक श्वसुर के साथ सुख से भोग-विलास करता हुआ सेठ के यहाँ जमाई होकर सुख से रहने लगा। समयान्तर नन्दा ने गर्भ धारण किया और उसका सुख से पालन करने लगी।

इधर मगध में राजा प्रसेनजित बीमार होकर पुत्र श्रेणिक की प्रतीक्षा करने लगा? बहुत आदमियों अथवा व्यापारियों को श्रेणिक का पता लगाने को भेजा मगर कहीं पर उसका पता नहीं लगा। एक दास भ विनजारा एक समय विदेश में जाकर वापिस मगध में आया और भेंट लेकर राजा के पास गया। राजा ने श्रेणिक के विषय में पूछा। उस ने कहा कुँवर श्रेणिक बेनातट नगर में है। अतः राजा ने अपने मन्त्रियों को बेनातट नगर में भेजा। मंत्रियों ने श्रेणिक से मिल कर मगध चलने की प्रार्थना की। इस पर श्रेणिक मगध चलने को तैयार हुआ पर नन्दा उस समय गर्भवती थी। मन्त्रियों ने नन्दा को साथ ले चलने के लिए आग्रह किया मगर श्रेणिक ने साथ ले चलना उचित नहीं समझा। अतः नन्दा को सांकेतिक गुप्तिरूपी स्मृति चिन्ह देकर राजकुँवर श्रेणिक वहाँ से रवाना होगये।

सेठ भद्र ने श्रेणिक को रवाना होते समय बहुत द्रव्य दिया था। कारण तेजमतुरी से श्रेणिक ने सेठ का खजाना धन से भर दिया था। श्रेणिक ने चलते २ रास्ते में थोड़ी बहुत फौज (सेना) भी कर ली थी। और क्रमशः चलते हुए मगध की राजधानी में पहुँचे। अपने पिता प्रसेनजित से मिले। राजा ने श्रेणिक का मगध की गद्दी पर राज्याभिषेक कर दिया बाद थोड़ा ही समय में प्रसेनजित राजा का देहान्त हो गया और श्रेणिक मगध का सम्राट बन गया।

राजा श्रेणिक एक राजनीति कुशल राजा था। आपने अपने पिता का राज की सीमा बढ़ाई। आपने अपना राज का सम्बन्ध आर्यों के अलावा अनार्यों के साथ भी जोड़ दिया था। राजा श्रेणिक के अन्तःपुर में अलावा धारणी काली महाकाली नन्दा, सुनन्दा भद्रा व सुभद्रादि बहुत सी रानियाँ थी। इनके अलावा एक चेलना नाम की रानी भी थी। और चेलना के साथ श्रेणिक का विवाह मंत्री अभयकुमार की बुद्धि चतुर्य

† उस समय आज जैसे सिक्का का चलन नहीं था माल के बदले माल दिया जाता था। देखो—आगे विस्तार प्रकरण में

आपसे सहन नहीं हो सकी अतः आप विहार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधारे। श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत सत्कार किया और महामहोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करवाया।

बौद्धाचार्य्यो बुद्धानन्द भी उस समय भरोंच में ही था। जिनानन्द को जीत लेने से उसका गर्व अहंकार खूब बढ़ गया था और आचार्य मल्ल के लिए यद्वा तद्वा शब्द कहने लगा। तब आचार्य मल्ल ने कहा कि केवल शब्द मात्र से जय पराजय का निर्णय नहीं होता है पर परीक्षा किसी राजसभा में ही हो सकती है। अतः राजसभा में दोनों आचार्यों का शास्त्रार्थ होना निश्चय हुआ और ठीक समय पर राजा एवं पंडितों की सभा में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। कई दिन शास्त्रार्थ चला, आखिर बौद्धाचार्य्य पराजि। होगया अर्थात् बुद्धानन्द का निरानन्द होगया और आचार्य मल्ल का नाम मल्लवादीसूरि अर्थात् 'यथा माम तथा गुण' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। उस समय से आप मल्लवादीसूरि के नाम से विख्यात होगये।

आचार्य मल्लवादीसूरि ने अपने गुरु जिनानन्दसूरि को भरोंच में बुलाया और श्रीसघ ने बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया। गुरु महाराज मल्लवादीसूरि की विजय एव कुशलता देख कर आनन्दमय बन गये। इस प्रकार मल्लवादीसूरि महा-प्रभाविक आचार्य हुए। और उन्होंने सर्वत्र विहार कर वादियों पर जबर्दस्त धाक जमादी और बहुत अजैनों को जैन बना कर धर्म की प्रभावना की।

उधर बुद्धानन्द जैनों के साथ द्वेष रखता हुआ भी अपने कष्ट क्रिया के बल से मर कर व्यान्तरदेव हुआ। उसने मल्लवादीसूरि के बनाये हुये नयचक्र तथा पद्मचरित्र अर्थात् २४००० श्लोक प्रमाण वाला जैन रामायण नामक ग्रन्थ एव इन दोनों ग्रन्थों का अपहरण कर सदा के लिये नष्ट कर दिये। * मरने पर भी दुष्टों की दुष्टता नहीं जाती है। जिसका यह एक ज्वलत उदाहरण है। आचार्य मल्लवादीसूरि का समय के विषय प्रबधकार खुल्लासा नहीं किया है पर अन्योन्य साधनों से आप का समय विक्रम की पांचवी शताब्दी का अनुमान किया जा सकता है और उसी समय लाट सौराष्ट्रादि प्रान्तों में बोधो का जोर जमा हुआ था जिसको आचार्य मल्लवादीसूरि ने कम कर दिया था।

प्रबन्धकार आचार्य मल्लवादी और बोधों का शास्त्रार्थ भरोंच में हुआ बतलाते हैं तब अन्य स्थानों पर इस शास्त्रार्थ का स्थान वल्लभी नगरी बतलाया है और यह समव भी हो सकता है कारण वल्लभी में बोधों के द्वारा आचार्य जिनानन्दसूरि का पराजय होने के ही कारण तीर्थ भी शत्रुञ्जय बोद्धो के अधिकार में चला गया था और कई अर्सा तक जैनसघ श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा से वंचित रहा था तदान्तर आचार्य मल्लवादी सूरि ने बोधों का पराजय कर पुन तीर्थ शत्रुँजय स्वाधिन किया। आचार्य मल्लवादी जैनशासन में एक मल्ल ही थे आपका ज्ञान किरणों का प्रकाश चारों ओर पड रहा था वादियों पर तो इस कदर कि धाक जमगई थी कि जैसे शेर के सामने गीदड भाग छूटते है जैसे ही मल्लवादीसूरि का नाम सुनते ही वादी कम्प उठते थे मल्लवादी सूरि ने सर्वत्र विहार कर फिर से जैनधर्म का सितार चमका दिया था। ऐसे ऐसे महाप्रतिभाशाली आचार्यों से ही जिनशासन ससार में स्थिर रह सका है इति—

* वल्लभ्या, श्रीजिनानन्दः प्रभुरानायितस्तदा। सघमभ्यर्थ्य पूज्य स्व सूरिणा मल्लवादिना ॥६६॥
नवचक्रमहाग्रथ शिष्याणां पुरवस्सदा। व्याख्यात परवादीभकुम्भदन केसरी ॥६९॥
श्रीपद्मचरित नाम रामायणमुदाहरत्। चतुर्विंशति रेसस्य सहस्र ग्रन्थमानता ॥७०॥ क० च०

से हुआ था बात यह बनी थी कि—विदहदेश एव वैशालनगरी के राजा चेटक के सात पुत्रियाँ थी राजा कट्टर जैनधर्मोनुयायी था और उनकी प्रतिज्ञा भी ऐसी थी कि मैं मेरी किसी पुत्री को अजैन को नहीं व्याहूँगा।

राजा श्रेणिक ने कुँवरी चेलना के रूप लावण्य की प्रशंसा सुनी। अत: आप की इच्छा चेलना के साथ लग्न करने की हुई। पर राजा श्रेणिक उस समय जैन धर्मानुगामी नहीं था। अत. संदेश भेजने पर भी चेटक राजा अपनी प्रतिज्ञा भग कर अपनी पुत्री जैनेतर के साथ कैसे परणा सकता था? इसके लिये राजा श्रेणिक यह भी जानना चाहता था कि कुंवरी चेलना मेरे साथ विवाह करने में खुश है या नहीं? पर इसकी खबर कौन लावे? मंत्री अभयकुवार को राजा ने सब हाल कहा तब अभयकुवार इत्र का व्यापारी बनकर कुंवरी चेलना और सुजेष्ठा के पास गया और दोनों राजकुवरियों को राजा श्रेणिक की ओर आकर्षित कर लग्न की बात पक्की कर आया। इसके बाद उसने एक सुरग तैयार कराई कि जिससे दोनों कुंवरियों का विवाह राजा श्रेणिक के साथ हो सके। सब तजवीज हो गई तो ठीक समय पर चेलना सुजेष्टा रथ पर बैठकर आ तो गई पर सुजेष्ठा इस प्रकार बिना पिता की आज्ञा विवाह करना ठीक नहीं समझ कुछ बहाना कर वापिस लौट गई। आखिर में चेलना का विवाह राजा श्रेणिक के साथ होगया और सुज्येष्ठा आजन्म ब्रह्मचारिणी रही और समय पाकर भगवान महावीर के पास दीक्षा ले'ली। राजा श्रेणिक के साथ चेलना का विवाह तो होगया पर आपस में धर्मभेद होने से धार्मिक विषय में उनके आपस में वाद-विवाद हमेशा चलता ही रहता था।

राजा श्रेणिक का घराना जैनधर्मोपासक ही था पर राजा के एक क्षेमा नाम की रानी बुद्धदेव के धर्म की उपासका थी अत. राज श्रेणिक का दिल भी बुद्ध धर्म की ओर झुक गया था अत वह बुद्ध धर्म को श्रेष्ठ और जैन धर्म को हय समझता था तब रानी चेलन जैन धर्म को सर्वोत्तम और बुद्ध धर्म को हय समझती थी।

राजा श्रेणिक और रानी चेलना के कभी २ आपस में धर्मवाद भी हुआ करता था। इतना ही क्यों पर कभी कभी तो राजा जैन श्रमणों के आचार व्यवहार पर भी हस्तक्षेप किया करता था पर रानी चेलना भी कम नहीं थी। वह भी बौद्ध भिक्षुओं को आडे हाथ लिया करती थी कि उनको पीछा छुडाना मुश्किल हो जाता था। एक समय राजा श्रेणिक ने एक जैन साधु जहाँ ठहरे थे वहां रात्रि के समय उस निर्ग्रन्थ के पास एक वेश्या को भेजदी इस गर्ज मे कि जनता को यह बतलादें कि जैन साधु अपने मकान में रात्रि के समय वेश्याओं को रखते हैं। पर रानी चेलना ने साधारण साधुओं को नगर में आने की पहले ही से मनाई कर रखी थी। जो मुनि नगर में आये थे उनके पास कई लब्धियां थी। जब उनके पास रात्रि में वेश्या आई तो अपनी लब्धी से वस्त्र पात्रादि जला कर राख कर दिये और राजा के गुरु का वेष धारण कर लिया। पुन राजा ने रानी से कहा कि क्या तुम्हारे साधु रात्रि को वेश्या भी रखते हैं? रानी ने कहा कि पतिदेव। हमारे साधु नौवाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वेश्या रखने वाले हमारे नहीं पर आपके ही गुरु होते हैं। इस वाद-विवाद में सूर्योदय हो गया तब राजा रानी और नगर के हजारों लोग साधु के स्थान पर गये और द्वार खोल कर देखा तो एक ओर थरथर कांपती हुई वेश्या खड़ी है और दूसरी ओर बौद्ध भिक्षु एव अवधूत बाबा खड़ा है। जिसको देख कर राजा शर्मिन्दा हो गया। खैर एक समय रानी चेलना ने राजा

के अत्याग्रह से राजा के गुरुओं को भोजन कराने के लिये आमन्त्रण किया। जब वे साधु आये तो एक दासी द्वारा रानी ने उनकी बढ़िया कोमल जूतियाँ मंगवा कर, उनको बारीक से बारीक चीर फाड़ कर उनके मसाले डाल कर रायता (साग) बना कर उन साधुओं को खिला दिया। इसके बाद राजा ने गुरुओं से कहा कि यह मेरी चेलना रानी है। इसने पूर्व भव में क्या सुकृत किये जिससे मेरे राज्य में इसकी उच्चस्थिति पर पहुँची है। बौद्ध साधुओं ने कहा कि रानी पूर्व जन्म में एक कुतिया थी पर हमारे साधुओं के स्पर्श से एक कुल में जन्म लेकर आपकी रानी बनी है। इस पर चेलना ने कहा कि महात्माओ! यदि आपको परभव का ज्ञान है तो आप यह बतलायें कि अभी आपने क्या २ भोजन किया है। साधु उत्तर दे ही रहे थे कि इतने में पुकार आई कि महन्तजी की जूतियां बहुत खोजने पर भी नहीं मिली हैं। आखिर रानी चेलनाने कहा कि आपने मेरा पूर्व भव तो बता दिया कि मैं कुत्ती थी पर आपकी जूतियां कहाँ गई इसका भी आपको ज्ञान है ? इस पर महन्तजी ने सोचा कि रानी चेलना ने ही हमारी जूतियां छिपाई होंगी। बस! उन्होंने कह दिया कि मेरी जूतियां रानी चेलना ने ही ली हैं। इस पर रानी ने कहा कि जूतियां तो आपके उदर में हैं और दोष मेरे पर लगाते हो यही आपका ज्ञान है ? इस पर सब लोग चकित हो गये राजा भी रानी पर कोपित हो गया इस पर रानी ने ऐसी दवाई महन्तजी आदि सब को दी जिससे उनको उल्टियां होने लगी जिसके अन्दर जूतियों की बनी हुई चंगेरियों का साग प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। इससे राजा के साथ साधुओं का अपमान और महन्तजी लज्जित हो गये। इस प्रकार आपस में वाद-विवाद होते रहे। इससे राजा की रुचि बौद्धधर्म से हट कर जैन धर्म की ओर झुकने लगी।

एक समय राजा अश्वारूढ़ होकर बगीचे में गया था। वहाँ पर एक अनाथी नामक मुनि ध्यान लगाये खड़े थे जिनका रूप एवं कान्ति देख राजा ने कहा कि हे मुनि! इस युवक वय में योग लेकर व्यर्थ ही कष्ट क्यों कर रहे हो ? मुनि ने कहा कि मैं संसार में अनाथ था। राजा ने कहा कि हे मुनि! तुम अनाथ हो तो मैं तुम्हारा नाथ बन सकता हूँ। तुम मेरे राज्य में चलो। मुनि ने कहा कि हे राजन्! तुम खुद ही अनाथ हो। तुम मेरे नाथ कैसे बनोगे ? राजा ने सोचा कि शायद मुनि मुझे नहीं पहचानता होगा। अतः राजा ने अपना परिचय कराया। इस पर मुनि ने राजा को उपदेश दिया कि हे राजन्! तेरे पास कितनी ही सम्पत्ति हो पर जब विपत्ति एवं काल आवेगा तब तेरा नाथ कौन होगा कि जिससे तुझे बचा सके ? इससे राजा ठीक नाथ अनाथ के भेद समझ कर सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त हो गया। बाद में महावीर का उपदेश सुन कर आम दुनियां के बीच जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। राजा ज्यों २ जैनधर्म का अध्ययन करने लगा त्यों त्यों अन्य धर्म उसको बच्चे का खेल ही नजर आने लगा। एक समय राजा भगवान को वन्दन कर हस्ती पर सवार हो अपने स्थान पर जारहा था उसी समय शक्रेन्द्र अपनी देव सभामें धर्मकी दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए कहा कि आज भारतक्षेत्र में राजा श्रेणिक धर्म में इतना दृढ़ श्रद्धा वाला है कि किसी देव दानव से भी चलायमान नहीं किया जा सकता है। इस पर सभा में रहा हुआ एक मिथ्या दृष्टि देव जो इन्द्र के वचन को असत्य बनाने के लिये एक साधु का रूप बना कर कंधे पर जाल डाल कर राजा श्रेणिक के सामने कसाई की दुकान पर मांस लेने के लिये आया जिसको देख राजा ने कहा कि हे अधम! तू साधु के वेष में यह क्या कर रहा है ? साधु ने कहा—हे राजन्! आप अभी भरे [illegible] हैं क्या आपको खबर है कि महावीर के पास १४ [illegible] सभी साधु हुए हैं वे बिना मच्छ (मांस) खाये रह सकते हैं ? हाँ! कोई खाते आते हैं और मेरा जैसा

प्रकट खाते हैं इस पर राजाने कहा अरे पापात्मान् ! तेरे जैसा चण्डाल कर्म करने वाला एक तू ही है। हमारे प्रभु महावीर के पास १४००० मुनि अहिंसा धर्म का पालन करने वाले मन करके भी मांस खाना तो क्या पर मांस खाने वाले को भी अच्छा तक नहीं समझते हैं इत्यादि। देवता ने राजा को दृढ़व्रति जान कर दूसरा रूप एक साध्वी का किया और लोगों को दिखाया कि यह साध्वी गर्भवती है राजा के सामने पंसारी की दूकान पर सोंठ-अजवान मागती हुई फिरती थी। जिसको देखकर राजा श्रेणिक ने कहा रे दुष्टा ! तू जैन धर्म को कलंकित क्यों कर रही है ? इस पर साध्वी ने कहा—राजा महावीर के पास ३६००० युवा स्त्रियां दीक्षित हुई हैं क्या वे सब ब्रह्मचर्य पालन कर सकती हैं ? हाँ कई गुप्ताचार करती हैं। मैं ऐसा करना नहीं चाहती इत्यादि। राजा ने कहा अरे पापात्मा ! तेरे जैसे काले कर्म तेरे ही हैं। हमारे भगवान महावीर की ३६००० साध्वियां मुक्ति की मुक्तामाल हैं वे सदैव नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत पालन करती हैं। जब देवता ने राजा के दिल को हर तरह से मजबूत और निशंक धर्म पर देखा तो वह असली रूप बनाकर राजा के चरणों में नमस्कार कर कहा राजन् ! तुझे कोटिश धन्यवाद है इन्द्रराज ने जैसी आपकी प्रशंसा की वैसे ही आप दृढ़ धर्मी हैं। देवता ने रत्नमय कानों के दो कुण्डल और एक मिट्टी का गोला राजा को देकर अपने अपराध की क्षमा मागकर स्वर्ग की ओर चला गया। राजा ने कानों का कुन्डल तो रानी नंदा को दिये और मिट्टी का गोला रानी चेलना को दिया। इस पर चेलना को गुस्सा आया कि मिट्टी के गोले को दूर फेंक दिया। जब वह टूटा तो उसमें से १८ लड (सर) वाला दिव्य हार निकला जिसको देख रानी बहुत खुश हुई।

राजा श्रेणिक के राज में एक सींचाना हस्ती भी था जिसकी कथा इस प्रकार बनी थी कि—एक हस्तियों का यूथ था। उसमें एक हस्ती और १००० हस्तिनियाँ थीं जब कभी हस्तिनी के बच्चा होता है तो हस्ती उसे मार डालता। कारण सब पर आप ही सत्ता रखना चाहता था। इस कारण कोई भी बच्चा जीवित नहीं रहने देता। अब हस्तिनियों ने सोचा कि इस प्रकार करने से अपना सर्वनाश हो जायगा क्योंकि एक दिन यह हस्ती भी मरने का है। इस हालत में एक हस्तिनी गर्भवती हुई, वह कभी कभी यूथ के पीछे २ रहकर तपस्वियों के आश्रम में जाकर बच्चे को जन्म दिया फिर यूथ से मिल गई तब उस हस्तिनी के बच्चे का तापसो ने अच्छा पालन पोषण किया और उसकी सूंड में एक बालटी एवं डालची जैसा बरतन दिया ताकि वह नदी से पानी लाकर बगीचे को सींच दिया करे। इसलिये उसका नाम सींचाना हस्ती पड़ गया। जब हस्ती बड़ा हुआ और मद में आया तो एक समय तपस्वियों के बगीचे को उखाड़ कर साफ कर दिया। इस पर तपस्वियों को बड़ा गुस्सा आया। और उन्होंने राजा श्रेणिक को कहा कि यह हस्ती आपके पट्ट हस्ती करने योग्य है। इस पर राजा ने हस्ती को पकड़वाकर जजीरों से बंधवा दिया। एक समय उसी रास्ते तपस्वी निकले। हस्ती को देख तपस्वी अपनी नाक पर उंगली लगाकर हस्ती को ताना मार कर कहने लगे अरे पापी ! हमारा नुकसान करने का फल मिल गया न ! यह सुन कर हस्ती को गुस्सा आया कि जजीरों को तुड़ाकर जंगल में भाग गया। जिससे राजा को बहुत दुख हुआ। उस समय अभयकुमार, राजा को नमस्कार करने आया था। राजा को चिन्ता में देख दुःख का कारण पूछा। राजा ने हस्ती का हाल कहा। अभयकुमार ने राजा को विश्वास दिलाया और हस्ती को लाने का उपाय सोचा पर ऐसा कोई उपाय उसको नहीं सूझा। आखिर तीन दिन उपवास करके देवता की आराधना की देवता आया और अभयकुमार को साथ लेकर हस्ती के पास गये, हस्ती को कहा—कि तू पूर्व भव में तपस्वी था। अज्ञान तप कर वहां से मर

सींचानक हस्ती की कथा—

के हस्ती हुआ है और तेरे तपस्वी के भव में सहायता करने वाला मर कर राजा श्रेणिक के पुत्र बहलकुमार हुआ है अतः तुमे राजा श्रेणिक के यहाँ रहना अच्छा है आदि २ सब बातें सुन कर हस्ती को जातिस्मरण ज्ञान हो आया। अतः वह स्वयं राजा के राज में आ गया। आगे चलकर इन हार एवं हस्ती के लिये ही राजा चेटक और राजा कूणिक के आपस में बड़ा भारी युद्ध हुआ था वह कूणिक के जीवन में बतलाया जायगा।

राजा श्रेणिक ने जैन धर्म स्वीकार करने के बाद जैन धर्म का खूब प्रचार किया था वह भी केवल भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर पाश्चात्य देशों में भी जैन धर्म का काफी प्रचार किया था। राजा श्रेणिक ने एक समय तीर्थ श्री शत्रुंजय की यात्रार्थ संघ भी निकाला था। कलिंग देश की उदयगिरि खण्डगिरि पहाड़ों पर के मन्दिरों की अनेक बार यात्रा की थी वहाँ पर आपने एक विशाल जैन मन्दिर बनाकर सुवर्णमय श्री ऋषभदेव तीर्थंकर की मूर्ति की स्थापना करवाई थी यह बात जैनशास्त्रों में और भी प्रसिद्ध है कि राजा श्रेणिक हमेशा १०८ सुवर्ण के यव ( जौ के बराबर ) बनाकर जैन प्रतिमा के सामने स्वस्तिक किया करता था राजा श्रेणिक के पहली मृगनी की शिकार के समय नरक का आयुष्य बंध होगया था। अतः आप स्वयं व्रत नियम नहीं कर सकते थे। परन्तु व्रत नियम एवं दीक्षा लेने वाले को मदद करते थे। यदि राजा के कुटुम्ब के अन्दर से कोई भी दीक्षा लेने वाला हो तो इन्कार न करके बड़े ही महोत्सव के साथ दीक्षा दिला देता था। इस प्रकार धर्म-प्रचार, धर्मोन्नति धर्म दलाली करने से यह तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन कर लिया था कि र भविष्य की उत्सर्पिणी में पहला पद्मनाभ नामक तीर्थंकर होगा। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन स्थानायांग सूत्र के नौवा स्थान में उल्लेख किया है राजा श्रेणिक ने अपनी पिछली अवस्था धर्मकार्य में व्यतीत की थी, राजा के कई रानियों एवं पुत्रादि कुटुम्ब राजा की मोजूदगी में भगवान् महावीर के पास दीक्षा लेली थी।

राजा श्रेणिक का मुख्य मंत्री अभयकुमार था जिसका वर्णन जैन शास्त्रों में इस प्रकार से किया है—राजा श्रेणिक बनातट नगर में सेठ धन्ना की पुत्री नंदा के साथ विवाह किया था और नंदा को गर्भवती छोड़ कर श्रेणिक मगध में आकर राजा बन गया था परन्तु श्रेणिक राजा बन जाने के बाद नंदा को याद तक नहीं की।

नंदा के पुत्र हुआ जिसका नाम अभयकुमार रखा। जब अभयकुमार बड़ा हुआ तो किसी लड़के के ताना मारने से अपनी माता से पूछा कि मेरे पिता कहाँ हैं ? और आप अपने पिता के घर क्यों रहती हो ? इस पर नंदा ने सब हाल कहा और राजा के दिये हुए मुद्रादि चिन्ह बतलाये। इस पर अभयकुमार अपनी माता को लेकर मगध की ओर प्रस्थान कर दिया। क्रमशः राजगृह के एक उद्यान में आकर ठहर गये माता को उद्यान में ठहरा कर आप नगर में गया और वहाँ के जौहरियों के बड़े बाजार में बड़ा मेहला देखकर अभयकुमार चकित हो गया। वह एक रथशाला में जाकर बढ़िया राजसवारी रथ किराये पर तैयार करवाया, दो चार व्यक्तियों को साथ लेकर जौहरी बाजार के पास एक गली में आया। व्यापारियों से कहा कि महारानीजी पधारी हैं और इस जेवर खरीदेंगी। आप अपना बढ़िया जेवर दिखावें, जो पसंद होगा उसका मूल्य चुका दिया जायगा। जौहरी लोग अपने अपने बढ़िया कीमती जेवर कुमार को दे दिये। वह लेकर रफूचक्कर हुआ। रथवाला और दासियें बाजार के नाके पर खड़ी थीं। जब घंटा दो घंटा व्यतीत हो गये तब जौहरी लोगों ने रथ के पास जाकर पूछा कि मंत्रीश्वर कहाँ हैं। हमारा जेवर वापिस नहीं आया। रथ वाले ने कहा कि हम तो किराये

पर आये हैं। हमें क्या मालूम हम तो खुद ही किराये की राह देख रहे हैं। जौहरियों ने कहा कि रथ में महारानीजी बतलायी जाती हैं। इतने में दासियों ने कहा कि हमारी मजूरी कोन देगा ? पर्दा दूर करके रथ में देखा तो रथ में कोई नहीं। बस ! अब तो हाहाकार मच गया। जौहरियों के करोड़ों का जेवर चले जाने से वे लोग कोतवाल के पास गये और सब हाल कहा। कोतवाल ने जौहरियों को विश्वास दिलाकर स्वयं पहरा देने और ठग को पकड़ने के लिये भीषण प्रतिज्ञा की और रात्रि के समय की गश्त देने लग गया।

जब अभयकुमार को इस बात का पता लगा कि आज कोतवाल पहरा देगा तो उसने लाखों रुपये के वस्त्र भूषण पहन कर औरत का रूप बना आधी रात्रि में एक रास्ते से जाने लगा। वहाँ कोतवाल पहरा दे रहा था। कोतवाल ने औरत से पूछा कि तू कौन है ? रात्रि में कहा जाती है ? औरत ने उत्तर दिया कि मैं पति से अपमानित हो कुवामें पड़ कर मरने को जारही हूँ। कोतवाल ने औरत के रूप पर मोहित होकर कहा कि तू मरती क्यों है ? तू मेरे घर पर चल मैं तुमको अच्छे मान से रक्खूँगा। औरत ने कहा मैं किसी पुरुष का विश्वास नहीं करती हूँ। मुझे जाने दो, मैं मरूँगी ही। कोतवाल ने खूब विश्वास दिलाकर औरत को अपने घर पर लेगया। जब औरत घर पर पहुँची तो देखा कि द्वार पर बहुत से खोड़े पड़े हैं। ( जो चोरों के पैरों को डाल कर, खीली ठोक कर कैद में बन्द कर दिये जाते हैं ) औरत ने पूंछा कि यह क्या है ? कोतवाल ने कहा यह खोड़े हैं औरत ने पूंछा कि इसका क्या किया जाता है ? कोतवाल ने जवाब दिया कि इसमें चोरों के पैर डालकर बध कर दिये जाते हैं ? देखें, मैं पैर डालती हूँ। कोतवाल ने कहा— आप नहीं, मैं पैर डालकर बतला देता हूँ। कोतवाल ने खोडा में पैर डाला तो औरत ने कहा कि ऐसे तो पैर निकल जाता है। कोतवाल ने कहा कि नहीं ये मेघचा पड़ा है इससे खीली जोर से ठोक दी जाती है। उसने मेघचा लेकर खूब जोर से खीली ठोक दी और कोतवाल के ही जूतों से पाच दस जूता लगा कर पुकार दिया कि हे लोगों मैंने ठग को पकड़ लिया है। एव खोडा में बद कर दिया है। दोड़ो-दौड़ो जल्दी दौड़ो इतना कह औरत तो भाग गई। जब पुकार सुनकर लोग आये तो रात्रि में हा-हो की हुलड़ में कोतवाल को न पहचानने के कारण, जो आये वही कोतवाल को जूते लकड़ी से मारने लगे कोतवाल बहुत चिल्ला २ कर कहा, मगर सुने कौन ? जब सूर्योदय हुआ तब जाकर मालूम हुआ कि, ठग, कोतवाल को भी ठग गया है। इसके लिये राजा श्रेणिक की सभा में सब लोग एकत्र हुए। तब उस सभा में दीवान ने बीड़ा उठाया कि आज मैं ठग को पकड़ूगा। बस ! दीवन सा ब ने रात्रि के समय पेहरा देने लगे। इस बात की खबर पाकर अभयकुमार एक अवधूत योगी का रूप धारण कर बाजार के बीच में लकड़ा जलाकर जाप करने बैठ गया। दीवान साहब फिरते २ योगी के पास आ गये। कुछ सिद्धियों के बारे में पूंछने लगे। योगी ने कहा कि तुम महान पापी हो। तुमको कोई भी सिद्धि नहीं बतलाई जायगी जब दीवान ने बहुत आग्रह किया तो योगी ने कहा कि तुम व्यर्थ मुझे क्यो छेड़ते हो कारण इस कार्य के लिये सब से पहले तो लोक लज्जा जीतनी पड़ती है। तुमसे जीती नहीं जायगी अत सीधे चले जाओ। दीवान ने कहा महात्माजी आप कहोगे मैं सब कुछ करूँगा। आप मुझे सिद्धि बतलाइये. योगी ने कहा देख इसके लिये पहले तो शिर मुडाना पड़ेगा, कोपीन लगा कर, एवं शरीर पर भस्म रमाकर, कल दुपहर तक जप करना होगा। जाप करना साधारण नहीं है किंतु आपका जप राजा भी नहीं छुड़वा सकता है। तब फिर जाकर सिद्धि होगी। दीवान ने सब स्वीकार कर लिया। शिर के बाल कटा डाले, नग्न हो

शरीर के भस्म लगा कर एक आसन पर बैठ, योगी के बतलाये 'ऐं, ह्रुं व स्वाहा' ३ जाप करने लगा। योगी ने कहा कि मैं जाकर शिवजी से प्रार्थना करूं गा कल दोपहर को वापिस आकर ऋद्धि-सिद्ध करवा दूंगा इतना कह कर योगी तो चला गया। दीवान साहब बैठ कर जोर २ से 'ऐं ह्रुं व स्वाहा' का जाप कर रहे हैं। सूर्योदय हो गया तब भी दीवान साहब अपने घर पर नहीं पहुँचे। राज सभा में सब जगह तलाश करवाने पर, कहीं पर पता न चला। तब बाजार के लोगों ने योगी की ओर देखा तो मालूम हुआ कि कल वाला योगी युवक था पर यह तो वृद्ध है। ध्यान लगा कर देखा तो सूरत दीवान जैसी पाई गई। यह खबर राजा के पास पहुँची तो राजा ने खुद आकर बाजार में देखा तो दीवान बैठा जोर २ से जप कर रहा है राजा ने कहा दीवानजी आप ठग को पकड़ने गये पर ठग आपको ठग गया है। जाप को छोड़ कर अब राज्य की नौकरी पर पधारें। दीवान शरम के मारे बोल न सका। पर, मन में समझ गया कि धूर्तराज मुझे ठग गया है दीवान शर्मिन्दा हो कर घर गया और सब नगर में हंसी हुई। इस पर राजा ने कहा कि ठग कोई जबर है। अब दूसरों से पकड़ा नहीं जायगा। फिर खुद राजा ने राज सभा में खड़ा होकर ठग को पकड़ने का बीड़ा उठाया और रात्रि के समय घोड़े पर सवार हो राजा नगर में पहरा देने को निकल पड़ा। इस बात का पता भी अभयकुमार को मिल गया।

अभयकुमार सब बातों की निगाह रखता था। कुमार ने धोबी का रूप बना कर रात्रि में तालाब पर कपड़े धोने को गया। एक मिट्टी की हांडी पर सफेदा-कालस लगा कर साथ ले गया। राजा को घोड़े पर सवार हुआ तालाब की ओर आता देख वह मिट्टी का बरतन पानी में तैरा दिया। राजा ने आकर धोबी से पूछा कि रे धोबी! तूने कोई ठग देखा है। धोबी ने कहा महाराज मैं ठग को क्या जानूं परन्तु घोड़े की आवाज सुन कर एक मनुष्य अभी पानी में पड़ गया देखिये वह तैरता जा रहा है राजा ने सोचा कि ठग यही है और मेरे डर से वह तालाब में चला गया है। बस राजा ने अपनी अच्छी पोशाक एवं घोड़ा धोबी को दे दिया और धोबी के कपड़े पहन तलवार हाथ में लेकर तालाब में उस हांडी की ओर चला गया। ज्यों २ राजा पानी में आगे बढ़ता जाता है त्यों २ पानी के हिलने से मिट्टी का बरतन आगे बढ़ता जाता है। राजा गुस्सा में आकर कहता है कि अरे ठग तूने जौहरी बाजार लूटा, कोतवाल एवं दीवान को ठगा। पर अब कहाँ जायगा ? मैं इस तलवार से तेरे सिर को उड़ा दूंगा। इधर धोबी राजा की पोशाक पहन घोड़े पर सवार होकर तालाब के दरवाजे पर आकर दरबान को कहा कि अरे लोगो आज मैंने ठग को पकड़ लिया है। अभी वह आवेगा और कहेगा कि मैं राजा हूँ परन्तु तुम उसको जाने नहीं देना। दरवाजे वालों ने घोड़ा देख राजा समझ कर उनका कहना स्वीकार कर लिया। कुमार ने माता के पास आकर सब हकीकत कही। माता ने कहा बेटा! तेरा पिता शीतकाल में तकलीफ पावेगा। कुमार ने कहा कि तकलीफ देखे बिना मालूम कैसे होगा कि एक सेठ की पुत्री को विवाह कर छोड़ आया हूँ। और इधर राजा तैरता २ नजदीक पहुँच कर तलवार की जरब मारी तो मिट्टी का बरतन फूट गया। राजा ने सोचा कि अरे वह धोबी यहाँ पर यही ठग था। राजा उदास हुआ। तालाब में से बड़ी मुश्किल से निकला। शीत पड़ रहा था। कपड़े पानी में तर हो गये थे। चलते २ दरवाजे पर आया। मगर दरबानों को तो पहले ही ठग कह गया था। दरवाजे पर राजा को रोक दिया कि तुम ठग हो। राजा ने बहुत कहा पर दरवाजे वालों ने एक भी नहीं सुनी तब क्या करे ? रात्रि तो ज्यों-त्यों बड़ी मुश्किल से

निकाली। सुबह देखा तो वह राजा ही निकला खैर। राजा अपने स्थान पर गये और अब तो ठग को पकड़ने के लिये सब लोग हताश हो गये। राजा ने एक उपाय सोच कर पानी से भरे कुवे में मुद्रिका डाल दी। और ढोंढी पिटवाई कि अगर कुवे में न उतर कर इस मुद्रिका को निकाल देगा तो राजा अपना महा मत्री बनावेगा। लोगों ने बहुत उपाय सोचा मगर कोई न निकाल सका तब अभयकुमार ने एक दूसरा कुवां उस कुवे के पास खुदवाया और मुद्रिका वाले कुवे के अंदर पैंप जैसा कुछ लगा पानी निकाल नये कुवे में भर दिया जब मुद्रीका दीखने लगी तो उस पर गोबर डाल दिया कि मुद्रिका उस गोबर में चिपक गई। इस पर जलता हुआ घास डाला कि गोबर सूक गया फिर वह पानी वापिस उसी कुँवा में ढलवा दिया कि मुद्रिका वाला गोबर पानी के ऊपर आ गया कुमार ने गोबर को खेंच कर एव मुद्रिका निकाल कर राजा के सामने रखदी। यद्यपि अभयकुमार बालावस्था में था पर राजा ने अपने वचन के अनुसार उसको मत्री पद देने को राज सभा में चलने के लिये आग्रह किया तब कुमार ने कहा मैं इकला ही नहीं, परमेरे साथ मेरी माता भी है। जब राजा ने कहा कि अच्छा तुम्हारी माता को भी साथ लेलो। तब अभयकुमार ने अपनी माता के पास जाकर राजा के दिये हुए मुद्रिकादि चिन्ह लाकर राजा को बतलाये। जिसमे राजा को ज्ञान हुआ कि यह ठग नहीं बलिक मेरा ही पुत्र है। बात भी ठीक है। बिना पुत्र मुझे कौन ठग सकता है। राजा ने गज अश्व, रथादि सब सेनाओं के साथ नन्दाराणी को आदर सत्कार के साथ नगर प्रवेश करवाया और अभयकुमार को महामंत्री का पद दिया। बाद जौहरिया का गहनादि सब उनको दे दिया।

अभयकुमार ने अपनी बुद्धि से राज्य के क्या क्या कार्य किये, वे सब जैन शास्त्रों में विद्यमान हैं। इतना ही क्या वर्तमान में महाजनलोग दीपमालिका का पूजन करते हैं तब अपनी २ बहियों में अभयकुमार की बुद्धि का भी उल्लेख करते हैं अत. अभयकुमार महान् बुद्धि शाली जैनमन्त्री हुआ और अन्त में मत्री पद त्याग कर भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर स्वय अपना कल्याण किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी राजा श्रेणिक का जीवन महत्त्व पूर्ण है। राजा श्रेणिक ने अपने राज की सीमा बहुत दूर २ तक फैला दी थी। राज्य का प्रबन्ध भी अच्छा था। आपके शासन काल में व्यापार की भी अच्छी उन्नति हुई थी व्यापार की सुविधाओं के लिये सिक्काओं का चलन भी आप ही के शासन काल में हुआ था इतना सब कुछ होने पर भी राजा श्रेणिक की मृत्यु बडी दुर्घटना के साथ हुई थी। राजा श्रेणिक के अन्तिम समय आपके पुत्र कूणिक ने राज के लोभ के कारण राजा को पिंजरे में बंद कर दिया था और राजा को विष प्रयोग कर मरना पड़ा था।

७—राजा कूणिक—श्रेणिक के बाद मगद का राज मुकुट कूणिक के मस्तक पर चमकने लगा। कूणिक के कई नाम थे जैसे अजातशत्रु, अजितशत्रु, अशोकचन्द, राजा दर्शक इत्यादी। कूणिक का जन्म भी एक विचित्र घटना से हुआ था। जैन शास्त्रों में लिखा है कि जिस समय रानी चेलना गर्भवती थी तब उसको देहलोत्पन्न हुआ कि मैं राजा श्रेणिक के कलेजे का मास खाऊगी पर रानी बड़ी समझदार थी। रानी ने इस बातकों किसी से भी नहीं कही। अत' उसका शरीर छीजने लगा। रानी की यह हालत देख कर राजा ने बहुत आग्रह से पूछा इस पर असली बात रानी ने राजा से कहदी। राजा इससे बड़ी चिन्ता में पड़ गया कि या तो मेरा प्राण जायगा या रानी मर जायगी। इतने में अभयकुमार आया अभयकुमार के

कहने पर उसने एक ऐसी तरकीब की कि कोई भी जान न पाय। रानी चेलना को एक कनात के पीछे बैठा दी और राजा को आहार खिला कर सुला दिया और तत्काल का मांस लाकर राजा के हृदय पर रख दिया। जब छुरी से काट २ कर मांस रानी को दिया जाता था राजा खूब चिल्लाता था जिससे रानी का दोहला सन्तोष के साथ पूर्ण हो गया। पर रानी ने सोचा कि जब यह गर्भ में आते ही अपने ही पिता के कलेजे का मांस मांगता है जन्म लेने पर न जाने क्या २ अनर्थ करेगा। अतः इस गर्भ को गिरा दूं। इसके लिये कई उपाय किये पर गर्भ सकुशल रहा। जब जन्म हुआ तो दासी द्वारा रानी ने नवजात पुत्र को अशोक वाड़ी में रखवा दिया। इस बात की खबर राजा श्रेणिक को हुई तो कुंवर को लाकर रानी को देते हुए उपालम्भ दिया। कुंवर को अशोक वाड़ी में डाल दिया उस समय कुर्कट ने उसकी एक कोमल अंगुली काट खाई अंगभंग होने से उसका नाम कूणिक रखा था जिस अंगुली को कुर्कट ने खाई थी उसमें बहुत बीमारी हो गई मगर रानी चेलना ने इसके लिये कोई भी इलाज नहीं कराया। पर राजा श्रेणिक उस अंगुली को मुंह से चूस २ कर उसका पीप दूर फेंका करता था। राजा श्रेणिक, कूणिक का खूब चिन्तक होकर रहता था। पर जब जवान हुआ तो, रानी चेलना की मान्यता सत्य हो गई। कारण—पिता को मार कर राज लेने के लिये काली आदि दस भाइयों को राज का हिस्सा देना मंजूर कर अपने पक्ष में कर लिया और राजा श्रेणिक को पिंजरा में देकर आप मगध का राजा बन गया।

कूणिक राजा बन, अपनी माता के चरण वंदन को गया पर रानी पहले से ही उदास बैठी थी। राजा कूणिक ने माता को उदास देख कर कहा—माता मेरे पुत्र को राज मिलने पर सब लोग खुश हुए हैं तेरे खुश न होने का क्या कारण है। रानी ने कहा—बेटा! तूने कौनसी बहादुरी करके राज प्राप्त किया है कि जिससे मुझे खुशी हो? मैंने तो तुझे तब ही पहचान लिया कि जब तू गर्भ में आया था। क्योंकि तूने गर्भ में आते ही पिता के कलेजा का मांस खाने को मांगा था मैंने गर्भ गिराने की बहुत कोशिश की परन्तु वह गिरा नहीं। जब तेरा जन्म हुआ तो मैंने तुझे अशोकवाड़ी की उकरड़ी पर डलवा दिया था मगर तेरा पिता जाकर तुझे ले आया तेरी अंगुली को कुर्कट खा गया था जिसके अन्दर रक्त बिगड़ गया था जिस दुःख के कारण तू सारी रात्री रुदन करता रहता था मैंने तेरी जरा भी परवाह नहीं की परन्तु तेरे पिता ने उस बिगड़े हुए रक्त को मुँह से चूस चूस कर थूकते हुए सारी रात्रि व्यतीत कर देते थे। उस उपकार का बदला तूने पिता को पिंजरे में डालने के रूप में दिया। बतला मुझे खुशी किस बात की हो? इतने शब्द माता से सुनते ही कूणिक के दिल में पिता के प्रति भक्ति पैदा हुई और पिता को पिंजरे से मुक्त करने के लिये बजाय इसके कि किसी दूसरे को भेजे, खुद ही हाथ में फरसी (कुल्हाड़ा) लेकर पिता की ओर चला। जब पिता ने इसको आता हुआ देखा तो सोचा कि मुझे इसने पिंजरे में तो पहले ही बंद कर दिया है पर अब तो वध (मारना) करने को आ रहा है, न जाने पुत्र मुझे किसे कुमौत से मारेगा। इससे तो अच्छा है कि मैं स्वयं ही मर जाऊं। राजा ने अपने पास की हीरे की कणी (विषयुक्त) खाकर तत्काल ही प्राण खो दिया। जिसको देख कूणिक ने पश्चात्ताप किया। पर अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत। बाद में क्या हो सकता था? कूणिक के पूर्वभव में पिता के साथ ऐसे ही कर्म बन्धे हुए थे। अतः जीवन में बड़ा से बड़ा कलंक लग गया पर अब उपाय भी क्या हो सकता था।

जब कभी राजा कूणिक राजसभा में जाकर बैठता तो अपने पिता का स्थान देखकर अपने मन में

बड़ी चिंता करता था? और उसका मन भी नहीं लगता था। अत. उसने अपनी राजधानी अंगदेश की चम्पा-नगरी में ले जाना उचित समझा । जब राजा अपनी राजधानी चम्पा नगरी में ले गया तो कूणिक के लघु भ्राता विहल्ल कुमार जो कि अपने माता पिता की मौजूदगी में राज के हिस्से के बदले हार हाथी (जिसकी कथा राजा श्रेणिक के जीवन में लिखी गई है) दे दिये थे । वह भी अपना परिवारादि माल स्टाक और हार हाथी लेकर चम्पानगरी में चला गया । विहल्लकुमार और उसकी रानी हार एव हस्ती से भली प्रकार ऐश-आराम करने लगे, कभी २ नदी पर जाते और हस्ती के जरिये जल मज्जन व जल क्रीड़ा करते थे जिसकी प्रशंसा नगर में चारों ओर फैल गई थी । कूणिक की रानी पद्मावती ने वह हाल सुन हार हाथी मगाने के लिये कूणिक से कहा । पहले तो कूणिक ने इन्कार कर दिया और कहा कि वह भी मेरा छोटा भाई है । माता पिता का दिया हुआ हार हस्ती लेना ठीक नही है । पर जब रानी ने बहुत आग्रह किया तब कूणिक ने विहल्ल कुमार को राजदूत द्वारा कहलाया कि राज में जो रत्न होता है उसका मालिक राजा ही होता है इस लिये हार हस्ती को भेज दो । इसके उत्तर में विहल्ल कुमार ने कहलाया कि अव्वल तो आप वृद्ध भ्राता, दूसरे पिता की दी हुई चीज है अत' आप को हार-हस्ती लेना नहीं चाहिये । यदि आप ऐसा न कर सकें तो हार-हस्ती के बदले में मुझे आधा राज दे दें। पर कूणिक ने इसको मजूर नह किया और बार बार हार हस्ती के लिये तकाजा किया। विहल्ल कुमार ने सोचा कि जिसने पिता को पिंजरे में बद कर दिया तो मैं क्या विश्वास रख सकता हूँ । वह समय पाकर हार हस्ती और माल सामान लेकर नगर से निकल वैशाला नगरी के राजा चेटक के ( जो खुद की माता के पिता अपने नाना लगते थे ) शरण में चला गया ।

जब इस बात की खबर राजा कूणिक को मिली तो कूणिक ने राजा चेटक पर पत्र लिखा कि आप हमारे नानाजी हैं, बुजुर्ग एव राजनीति के अनुभवी हैं । विहल्ल कुमार मेरी बिना आज्ञा हार हस्ती लेकर आपके यहाँ आया है । आप उसको समझा बुझा कर हार हस्ती के साथ वापिस भेजदें। इस तरह का पत्र लिख कर राजा चेटक के पास भेज दिया । राजा चेटक ने पत्र पढ़ा और जवाब में लिखा कि मेरी दृष्टि में तो जैसे चेलना का पुत्र विहल्लकुमार है वैसे तुम परन्तु न्याय की दृष्टि से पहिले तो तुम्हारे मा बाप का दिया हुआ हारहस्ती लेने में शोभा नहीं देता यदि तुम लेना चाहो तो आधा राज देना इन्साफ की बात है।

जब यह पत्र राजा कूणिक ने पढ़ा तो बड़ा गुस्सा आया और फौरन लिख दिया कि या तो विहल्ल-कुमार और हारहस्ती को भिजवादो वरना युद्ध करने के लिये तैयार हो जाओ । राजा चेटक न्यायशील था शरण में आये हुए विहल्लकुमार को वापिस भेजना ठीक न समझा पर कूणिक की अपेक्षा चेटक के पास सेना कम होने की वजह से काशी कौशल वगैरा १८ राजाओं को बुला कर सलाह पूछी तो उन्होंने कहा कि विहल्लकुमार का पक्ष न्याय एव सत्य का है अत यदि युद्ध करना पड़े तो हम आपके साथ हैं । बात ही बात में युद्ध छिड़ गया । कूणिक राजा १० भाइयों व ३३ हजार गज, अश्व, रथ अनगिनती पैदल सेना के साथ तथा राजा चेटक के ५७ हजार गज, अश्व, रथ, और अनगिनती पैदल सेना के साथ युद्ध-स्थल में आ गये । पहिले दिन के युद्ध में राजा चेटक द्वारा कालीकुमार मारा गया (राजा चेटक को देवी का वरदान था कि राजा का बाण खाली न जाय ) दूसरे दिन के युद्ध में सुकाली, इस प्रकार दस दिन में दस भाई मर गये अब तो कूणिक अकेला रह गया । इस हालत में कूणिक ने अष्टम तप कर देवता की आराधना

की यदि किसी ने पूर्व भव में मुझे वचन दिया हो तो इस समय मेरी सहायता करे, इससे वचनबद्ध शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र दो इन्द्र आये और कूणिक को बहुत समझाया कि एक तो तुम्हारा छोटा भाई और दूसरे संबन्धी इत्यादि इस युद्ध में कुछ भी सार नहीं है पर अभिमान के गज पर चढ़े हुए कूणिक ने किसी की भी नहीं सुनी अत वचनबद्ध होकर दोनों इन्द्रों ने कूणिक को मदद दी। पहिले दिन के युद्ध में एक हस्ती पर चमरेन्द्र और कूणिक सवार होकर युद्ध किया जिसमें ८४,००,००० आदमियों के प्राण गये। दूसरे दिन शक्रेन्द्र चमरेन्द्र और कूणिक एक दूसरे हस्ती पर सवार होकर युद्ध किया जिसमें ९६,००,००० आदमियों के प्राण गये। बस ! चेटक की सेना हार न सकी वे सब वैशालानगरी में जाकर नगरी के दरवाजे बन्द कर दिये। वैशाला में एक मुनिसुव्रतदेव का स्तूप था जिसके प्रभाव से कि कूणिक वैशाला को भंग नहीं कर सका और कई दिन सेना सहित नगरी के चारों ओर घेरा डाल कर पड़ा रहा। विहल्लकुमार रात्रि के समय अचानक हस्ती पर सवार होकर, कूणिक की फौज में आता था और बहुत सी फौज को कत्ल कर चला जाता। जब कूणिक को इस बात का पता लगा तो उसने रास्ते में एक भारी खाई खुदा कर उसके अंदर आग लगा कर ऊपर से ढांकदी। दूसरे दिन जब विहल्ल कुमार आया तो उसको पता मालूम नहीं हुआ परन्तु हस्ती को जातिस्मरण ज्ञान होने से वह जान गया और आगे पैर रखने से हस्ती रुक गया इस पर विहल्लकुमार ने अंकुश लगाते हुए कहा कि अरे हस्ती तेरे लिये इतना अनर्थ हुआ और तू इस समय आगे बढ़ने से क्यों रुक गया है ? इस पर हस्ती ने अपनी सूंड से विहल्लकुमार को एक किनारे रख कर आप आगे बढ़ा त्यों ही वह आग में जा पड़ा। जिसको देखते ही विहल्लकुमार समझ गया। वह हस्ती के लिये पश्चाताप करने लगा। इतने में पास वास के देवता विहल्लकुमार को उठा कर भगवान् महावीर के समवसरण में रख दिया। विहल्लकुमार ने भगवान महावीर से दीक्षा ले ली। देव सभी हार देवता ले गये। हस्ती आग में जल कर मर गया। जिस हार-हाथी के लिये करोड़ों के प्राण गये उन दोनों वस्तुओं की समाप्ती भी हो गई। तब भी कूणिक क्यों पै नहीं हुआ।

कूणिक ने एक निमित्तिया को पूछा कि मैं विशाला नगरी को भंग कैसे कर सकूं गा। उसने कहा कि इस नगरी में मुनिसुव्रतदेव का स्तूप है। इसके गिरने पर ही नगरी का भंग हो सकेगा। इस पर एक वेश्या द्वारा कुल बालक साधु को बुला कर वैशाला के स्तूप को गिरवा करके वैशाला का भंग करवाया। राजा चेटक एक कुआ में गिर रहा था उसको देवता उठा कर देव भवन में ले गये। वहाँ १५ दिन का अनशन करके स्वर्ग चला गया। कूणिक ने वैशाला का राज अपने देश में मिला लिया। राजा चेटक के पुत्र शोभनराय था। जो अपनी सुसराल कलिंग की राजधानी कंचनपुर में चला गया कलिंग पति के पुत्र न होने से आपने अपना राज शोभनराय को दे दिया।

इस युद्ध के सम्बन्ध की एक बात भगवती सूत्र ७ उद्देश ९ में आती है वह ऐसी है कि एक वक्त समय गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवान् ! बहुत से लोग कहा करते हैं कि युद्ध में लोग वीरता से मरते हैं वे सब देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं। भ महावीर ने उत्तर दिया कि यह बात मिथ्या है। हाँ किसी जीव के शुभाध्यवसाय रहता है वह मर कर देव हो सकता है।

हे भगवान् ! चेटक कूणिक के युद्ध में लाखों मनुष्य मरे हैं उनकी क्या गति हुई होगी ?

| | धातकी खण्ड का पूर्व भरत क्षेत्र | | | धातकी खण्ड का पश्चिम भरत क्षेत्र | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | भूतकाल १२ | वर्तमान १३ | भविष्य १४ | भूतकाल १५ | वर्तमान १६ | भविष्य १७ |
| १ | रत्नप्रभ | युगादिनाथ | सिद्धनाथ | वृषभनाथ | विस्वेंदुजिन | रत्नकेश |
| २ | अमित | सिद्धांत | सम्यगूनाथ | प्रियमित्र | करणनाथ | चक्रहस्त |
| ३ | असभव | महेश | जिनेंद्र | शान्तनु | वृषभनाथ | साकृत |
| ४ | अकलङ्क | परमार्थ | सम्प्रति | सुन्दद्दु | दिप्ततेज | परमेश्वर |
| ५ | चन्द्रस्वामी | समुन्दर | सर्वस्वामी | अशीतना | विमर्शजिन | सुमुर्ति |
| ६ | शुभकर | भूधर | मुनिनाथ | अव्यक्त | प्रशमजिन | मुहूत्तिर्क |
| ७ | सत्यनाथ | उद्योत | विशिष्टनाथ | कलाशत | चारित्रजिन | निकेश |
| ८ | सुन्दरनाथ | आयर्व | अररनाथ | सर्वजिन | प्रमादित्य | प्रशस्तिक |
| ९ | पुरंदर | अभय | प्रशान्ति | प्रबुद्धजिन | मजुकेशी | निराहार |
| १० | स्वामी | अप्रकप | पर्वतनाथ | प्रवृजिन | पीतवास | अमुर्ति |
| ११ | देवदत्त | पद्मनाथ | कामुकं | सौधर्म | सुररिपू | द्विजनाथ |
| १२ | वासवदत्त | पद्मानद | ध्यानवर | तपोदीप | दयानाथ | श्वेतांगेश |
| १३ | श्रीश्रेयांस | प्रियकर | श्रीकल्प | वज्रसेन | सहस्रभुज | चारुनाथ |
| १४ | विश्वरूप | सुकृतनाथ | स्वरनाथ | बुद्धिनाथ | जिनसिंह | देवनाथ |
| १५ | तपस्तेज | भद्रेश्वर | स्वस्थनाथ | प्रबधजिन | रैपकजिन | न्याधिक |
| १६ | प्रतिबोध | मुनिचन्द्र | आनद | अजित | बाहूजिन | पुष्पनाथ |
| १७ | सिद्धार्थ | पचमुष्टि | रविचन्द्र | प्रमुख | पल्लिनाथ | नरनाथ |
| १८ | मयम | त्रिमुष्टि | प्रभवनाथ | पल्योपम | अयोगीजिन | प्रतिकृत |
| १९ | अमल | गार्गिक | सानिध | अकोपम | योगनाथ | मृगेन्द्रनाथ |
| २० | देवेंद्रनाथ | प्रणव | सुकर्ग | तिष्टित | कामरिपू | तपोनिधिक |
| २१ | प्रवरनाथ | स्वांग | सुकर्मा | मृगनाभ | अरण्यबाहू | अचल |
| २२ | विश्वसेन | महर्मेंद | अमम | देवेंद्रजिन | नेमिकनाथ | अरण्यक |
| २३ | मेघनद | ईंद्रदत्त | पार्श्वनाथ | प्रायश्चित्त | गर्भज्ञान | दशानन |
| २४ | सर्वज्ञजिन | जिनपति | शाश्वतनाथ | शिवनाथ | अजित | शातिक |

२—श्री चन्द्रप्रभ के ७ भव १—धर्मभूप २—सौधर्म देव ३—अजितसेन ४—अच्यूतदेव ५—पद्मराजा ६—विजयन्तदेव ७—चन्द्रप्रभजिन ।

३—शान्तिनाथ के १२ भव—जैसे १—श्रीषेणराजा २—उत्तरकुरुयुगलिक ३—सौधर्मदेव ४—अमितगति विद्याधर ५—प्रणतदेव ६—बलभद्र राजा ७—अच्यूतदेव ८—वज्रयुद्धचक्री ९—ग्रैवेगदेव १०—मेघरथ राजा ११—सर्वार्थसिद्धदेव १२—श्री शान्तिनाथतीर्थंकर ।

कूणिक ने दक्षिण भारत को विजय करने का प्रयत्न भी किया था पर उत्तर भारत से दक्षिण भारत में जाने के लिये सीधा रास्ता नहीं था। क्योंकि बीच में विन्ध्याचल पर्वत था। राजा कूणिक ने उस पर्वत को तोड़ कर मार्ग निकालने की कोशिश की थी मगर आप उसमें सफल नहीं हो सके क्योंकि आपकी आयु ने आपका साथ नहीं दिया।

राजा कूणिक जैसे अपने साम्राज्य बढ़ाने में प्रयत्नशील था वैसे ही जैन धर्म के प्रचार को बढ़ाने में भी था। राजा कूणिक भगवान महावीर का परमभक्त था। इतना ही नहीं बल्कि राजा कूणिक का तो ऐसा नियम था कि जब तक भगवान महावीर कहाँ विराजते हैं, खबर न मिले अन्न जल ग्रहण नहीं करता था। एक समय भगवान महावीर चम्पा नगरी की ओर पधारे। राजा कूणिक ने आपका इस प्रकार स्वागत किया कि जिसका विस्तृत वर्णन ओववाई सूत्र में किया है तथा भारहुत नगर के पास एक विशाल स्तूप भी बनाया था जो आज भी अजातशत्रु के स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है। राजा कूणिक ने नये मन्दिर बनवाये वैसे ही जीर्ण मन्दिरों की भी मरम्मत करवाई और शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रार्थ बड़ा एवं समारोह से एक विराट संघ भी निकाला था। इत्यादि राजा कूणिक का जीवन विस्तृत है।

कई लोग राजा कूणिक को बौद्ध धर्मी भी कहते हैं। और बौद्ध धर्म के ग्रंथों में बुद्धदेव के भक्त राजाओं के नामों में अजातशत्रु का भी नाम आता है इत्यादि। बौद्ध ग्रंथों में उनके भक्त राजाओं की नामावली में कई जैन राजाओं के नाम भी लिख दिये हैं वह केवल अपने धर्म की महिमा बढ़ाने के लिये ही लिखा है और अजातशत्रु के विषय बौद्ध ग्रंथों में ऐसे भी उल्लेख मिलता है कि बुद्धदेव और अजातशत्रु के आपस में कैसा व्यवहार था जैसे कि बुद्ध के एक देवदत्त नाम का शिष्य था वह किसी कारण से बुद्ध से खिलाफ हो गया था और वह एक दिन अजातशत्रु के पास जाकर कहा कि आप अपने मनुष्यों को हुक्म दें कि मैं बुद्ध को मारूं उसमें मदद दें इस पर राजा अजातशत्रु ने अपने आदमियों को ऐसा ही हुक्म दे दिया। यह तो हुए अजातशत्रु के बुद्ध प्रति भाव[1]। अब बुद्ध के भावों को देखिये एक दिन बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहता है कि भिक्षुओ ! वैदेहि राजकन्या का पुत्र मगध का राजा अजातशत्रु ! बाप का खूनी और पापी है[2]।

पाठक ! सोच सकते हैं कि क्या परस्पर ऐसे विचार एवं भाव रखने वाले गुरु शिष्य कहला सकते हैं कदापि नहीं। शायद अजातशत्रु कभी बुद्ध के पास चला गया हो और उन लोगों ने अपने भक्त राजाओं की नामावली में उसका भी नाम लिख दिया है। तो कागज कलम स्याही उनके घर की ही होगा। पर अजातशत्रु जैनधर्मी होने के पुष्ट प्रमाण जैन साहित्य में विस्तृत संख्या में मिलते हैं। इसके अलावा उसने वीरस्तूप के पास अपनी ओर से स्तूप बना कर शिलालेख खुदवाया वह अद्यावधि विद्यमान है।

८—राजा उदाई—कूणिक के बाद राजा उदाई राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। राजा उदाई बड़ा ही वीर था। इसने राज की सीमा अपने बापदादों से भी आगे बढ़ाई थी। राजा श्रेणिक ने गिरिव्रज से अपनी राजधानी हटा कर राजगृह नगर बसा कर वहाँ कायम की। तब कौणिक ने अपनी राजधानी अंग देश की चम्पा नगरी में स्थापना की और राजा उदाई को चम्पा नगरी पसंद नहीं आई इससे अपनी राजधानी के लिये एक नया नगर बसाना चाहा राजा की आज्ञा से मन्त्रियों ने भूमि की तलाश करने को चारों ओर दूत

1. Vinaya texts, pt. iii, p. 248. 2. Rhys davids (Mrs) op. cit., p. 109.

हे गौतम ! दस हजार जीव तो एक मछली की कुक्ष में पैदा हुए एक जीव देवता में और एक जीव मनुष्य योनि में और शेष जीव नरक तिर्यंच गति में उत्पन्न हुए हैं ।

हे भगवान ! युद्ध में मर कर देवता में कौन गया ?

हे गौतम—मैं सुनाता हूँ तू ध्यान लगा कर सुन ।

राजा चेटक के सामंतों में एक वर्णनागनतुआ भी था और वह जैनधर्म का एक व्रत धारी श्रावक भी था । उसकी प्रतिज्ञा थी कि मैं छठ-छठ ( दोदो दिन के अन्तर से भोजन करता तप करता रहूँ । परन्तु जिस दिन छठ का तप था उसी दिन राजा चेटक का संदेश आया कि कल तुमको संग्राम में जाना होगा । इस पर वर्णनागनतुआ ने अपने मन में सोचा कि एक तो मालिक का नमक खा रहा हूँ उसको हराम न करके हलाल करना है । दूसरे युद्ध में जाना है और वहाँ पर जीवन-मरण का सवाल है । अत. आज छठ का पारणा न करअष्टम का निश्चय कर लेना चाहिये क्योंकि पारणा करने पर शरीर भारी पड़ जायगा इतना काम नहीं होगा इत्यादि विचारों से उसने अष्टम का व्रत कर लिया और अपनी सेना लेकर युद्ध स्थल पर आ गया । उस वर्णनागनतुआ के एक बाला मित्र भी था । उसका यह नियम था कि जो यह मित्र कहे एव करे वैसा ही करना जो उसको फल होगा वह मुझे भी होगा । यह सब धार्मिक क्रिया मित्र के साथ किया करता था वह भी अपनी सेना को साथ लेकर युद्ध में चला गया । जब युद्ध आरम्भ हुआ तो वर्णनाग नतुआ के विपक्षी ने कहा वर्ण तू श्रावक है तेरे पर मुझे दया आती है अत' तू तेरा बाण चलाले नहीं तो तेरे मन की मन में रह जायगी ? वर्ण ने जबाब दियाकि मुझे बिना अपराध किसी को मारना नहीं कल्पता है यह कहते ही प्रतिपक्षी को गुस्सा आया और खेंच कर जोर से बाण चलाया कि वर्ण के कलेजे में लगा इस पर वर्ण ने बाण चलाया जिससे प्रति विपक्षी का प्राण छूट गया इस हालत में संग्राम बन्द हो गया । वर्ण अपना रथ लेकर एकान्त स्थल में आया रथ से अश्वों को मुक्त कर आपने एक धूलि की वेदिका बनाई उस पर सूर्य सन्मुख बैठ कर भगवान महावीर को नमस्कार करके कहा कि पहले भी मैंने भगवान महावीर के समीप श्रावक के बारह व्रत लिये थे और इस समय भी भगवान महावीर की साक्षी से यावत् जीव व्रतग्रहन एव चार आहार-अठारह पापों का सर्वथा त्याग करता हूँ । अर्थात् अन्तिम जीवन तक अनशन कर लिया बाद अपने शरीर में से लगा हुआ बाण खेंच कर निकाल दिया जिससे वर्ण के प्राण पखेरू उड़ गये । वे वहां से मर कर देव योनि में उत्पन्न हुए । इसी प्रकार वर्ण के बाल मित्र का हाल हुआ। वह जानता तो कुछ नहीं था पर उसके भी बाण लगा और एकान्त स्थल में आकर वर्ण के माफिक सब क्रिया करके कहा कि जैसा मेरे मित्र को हुआ वैसा मुझे भी होना । वह मर कर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए। नजदीक में रहने वाले देवताओं ने वर्णनागनतुआ के अनशनपूर्वक मृत्यु के कारण उसके शरीर पर सुगन्धी पुष्प जल बरसा कर महोत्सव किया जिससे इतर लोग कहने लगें कि वीरता के साथ मरने वाले देव गति में उत्पन्न होते हैं । वास्तव में देवता होना युद्ध का कारण नहीं पर शुभाध्व साय से ही देव होने का कारण है ।

राजा कूणिक एक वीर राजा था । आपने अपने पिता श्रेणिक के विशाल साम्राज्य की सीमा को कम न की बल्कि बढ़ाई थी । मगद और अंग तो पहले से ही अपने अधिकार में थे पर वैशाला के राज को मगद के राज में मिला लिया था इससे उत्तर भारत में सर्वत्र आपकी आज्ञा चलने लग गई थी । राजा

वर्णनागनतुआ का युद्ध में स्वर्गवास

घूम कर तलाश करते हुये एक जंगल में आये जहाँ पटली के वृक्ष बहुत थे। एक वृक्ष पर एक पक्षी मुँह खोल कर बैठा था तो अन्य जीव उसके मुंह मे आ आ कर पड़ जाते थे। मन्त्रियों ने सोचा कि यह जगल सुन्दर और अच्छा है। जैसे पक्षी के मुह में बिना परिश्रम भक्ष आता है उसी प्रकार अपने राजा के राज में बिना परिश्रम ही अन्य राज आया करेंगे। ये सब हाल जाकर राजा उदई को कहा तो राजा ने वहाँ नगर बनाने का हुक्म दे दिया।

बस ! फिर क्या देरी थी, थोड़े ही वर्षों में वहाँ सुन्दर नगर बन गया जिसका नाम पाटलीपुत्र रख दिया। राजा उदई अपनी राजधानी, पाटलीपुत्र में ले गया। राजा उदई ने पाटलीपुत्र में एक विशाल जैन मन्दिर भी बनवाया जिसमें भगवान नेमिनाथ की मूर्ति स्थापना करवाई तथा वहाँ से शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रार्थ एक विराट संघ निकाल कर नगर निवासियों एव भावुकों को तीर्थों की यात्रा करवाई।

ई० सं० १८८२ में पाटलीपुत्र (पटणा) के पास खुदाई का काम करवाते समय यक्ष की दो मूर्तियां निकाली जिनको कलकत्ता के म्युजियम ( अजायबघर ) में भारहुव गेलरी विभाग में रखी हुई हैं। सर केनिंगहोम का मत यह है कि मूर्तियां सम्राट अशोक के पूर्व की नहीं है पर जयसवालजी ने कहा कि ये दोनों मूर्तियें अशोक के पूर्व की हैं जिसका कारण वे बतलाते हैं कि पुराणों में राजा उदई को अज और नंद को अजय कहा है। जब उनके सिक्कों पर एक ओर अज और दूसरी ओर सम्राट नाम खुदा हुआ है। इससे यह माना जा सकता है कि ये दोनों मूर्तियाँ राजा उदई के समय की बनी हुई होंगी।

राजा कूणिक का जो काम दक्षिण भारत को अपने राज में मिला लेने का था उसको राजा उदई ने पूरा करने की इच्छा की। अत राजा उदई ने नागदशक सेनापति जो बड़ा वीर था द्वारा अपनी सेना सुसज्जित करवाई। राजा उदई ने स्वयं सेना के साथ विजय की आकांक्षा करते हुए प्रस्थान कर दिया और क्रमश विजय करते हुए दक्षिण के अन्त तक पहुँच गया। राजा उदई ने अपने पुत्र अनिरुद्ध और नागदशक की वीरता पर प्रसन्न होकर आगे सिंहलद्वीप जाने की भी आज्ञा दे दी। और उनकी विजयी सेना ने लीला मात्र में सिंहलद्वीप के राजा विजय को विजय कर सिंहलद्वीप को अपने अधिकार में कर लिया। वहां पर राजधानी के लिये नयानगर बना कर, राजकुवर की विजय की स्मृति के लिये नये नगर का नाम अनुरुद्धपुर नगर रख दिया। इसके बाद वहाँ का प्रबन्ध एक सुयोग्य व्यक्ति को सुपुर्द कर सेना सहित सब लौट कर अपने देश आगये। इस विजय यात्रा में कई दश वर्ष जितना समय लग गया।

राजा उदई के शासन में राज सीमा सिंहलद्वीप तक फैल गई थी। उसी प्रकार व्यापार में भी आशातीत उन्नति हुई। राजा ने अपने नाम के सिक्के भी चलाये और देश वासियों को सब तरह से उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था इस भूपति का सम्बन्ध केवल भारत के नरपतियों के साथ ही नहीं था बल्कि पाश्चात्य देशों के राजाओं के साथ भी था। इस देश के विद्वान् पाश्चात्य प्रदेशों में जाते थे और उधर के विद्वान् इस देश में आकर राजा के अतिथि बनते थे। कला कौशल की भी उस समय अच्छी उन्नति हुई थी अर्थात राजा उदई के राज की सीमा उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक फैल गई थी और आपने शान्ति पूर्ण राज किया। अपना जीवन बड़ी ही शान्ति से व्यतीत किया। इतना ही नहीं बल्कि आपने अन्तिम अवस्था में पाप का प्रायश्चित्त करने के निमित्त यात्रार्थ निकल गये थे और आपकी जीवन यात्रा भी उसी यात्रा में समाप्त हो गई थी।

जैसे शिशु नाग वंश के राजा जैनधर्मी थे वैसे ही नंदवंशी राजा भी जैन धर्मोपासक ही थे। इस विषय में अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं रही है क्योंकि इतिहासकारों ने यह स्पष्ट कर दिया कि नंदवंशी राजा ब्राह्मण धर्म के खिलाफ थे। जब ब्राह्मणों के खिलाफ थे तो वे जैनधर्मी ही थे। इसका विशेष प्रमाण यह है कि नंदवंशी राजा ने कलिंग पर चढ़ाई की और वहाँ के धन माल के साथ कलिंग जिन अर्थात् खंड गिरी पहाड़ी (कुमार-कुमारी पर्वत जो शत्रुञ्जय गिरनार अवतार के नाम से उस प्रान्त में मशहूर था) पर के जैन मन्दिर से भगवान ऋषभदेव की मूर्ति उठा कर ले गया था इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वे नंदवंशी राजा जैन थे दूसरा एक यह भी प्रमाण मिलता है कि नंदवंशी राजा सब के सब जैनधर्मोपासक थे। प्रमाण के लिये देखिये—Smith's Early History of India Page 114. में और डाक्टर शेषागिरिराव एम. ए. एमह आदि मगध के नन्द राजाओं को जैन होना लिखते हैं, क्योंकि जैनधर्मी होने से वे आदीश्वर भगवान की मूर्ति को कलिङ्ग से अपनी राजधानी में ले गये थे। देखिये South India Jainism Vol 11 Page 82

महाराजा खारवेल के शिलालेख से स्पष्ट पाया जाता है कि नंदवंशीय नृप जैनी थे। क्योंकि उन्होंने जैन मूर्ति को बलजोरी ले जा कर मगध देश में स्थापित की थी। इससे यही सिद्ध होता है कि यह घराना जैनधर्मोपासक था ये राजा सेवा तथा दर्शन आदि के लिए ही जैन मूर्ति ला कर मन्दिर बनवाते होंगे। जैन इतिहासवेत्ताओं ने विश्वासपूर्वक लिखा है कि नन्दवंशीय राजा जैनी थे।

"बारस मे च वसे · सेहि वितासयति उतरपथराजानो···· · मगधानं च वहुलं भयं जनेतो हथि सुगंगाय पाययति [।] मागधंच राजानां वहसतिमितं पादे वंदापयति [ । ] नंदराज नीतंच कलिंग जिन संनिवेस'। गहरतनान पडिहारेहिं अंगमागध वसुंच नेयाति [ । ]

"कलिंग की हाथी गुफा का शिलालेख"

यह शिलालेख स्पष्ट बतला रहा है कि नंदवंशी राजा जैनी थे। इनके अलावा तित्थोगाली पइन्ना में उल्लेख मिलता है कि पुष्पमित्र ने नंदों के करवाये पाच स्तूप देख कर लोगों से पूछा कि यह स्तूप किसके हैं और किसने बनाये ? इस पर लोगों ने कहा महा बलवान नन्द राजाओं ने यह स्तूप बनाये तथा इनके अन्दर बहुतसा धन है, अत पुष्पमित्र ने उन स्तूपों को खुदवा कर धन निकाल लिया। देखिये निम्न लिखित गाथाए ।

"सो अविणय पज्जतो, अण्णनरिन्दे तणं पिव गणतो, नगर अहिडंतो पेच्छीहि पंच थूमेउ ॥
पुट्ठायवेंतिमणुआ नदोराया चिरं इह आसि, वलितो अत्थसमिद्धा रूवसमिद्धा जससमिद्धा ॥
तेण उइहं हिरण्णं निखितसि बहुबल पमत्तणं, नयणं तरांति अण्णे रायाणो दाणि धित्तुंजे ॥
त वयणं सोउणं खणे होति समंत तो ततो थूभं, नंदस्स संतियं तंपरिवज्जइ सो अह हिरण्णं ॥

नन्दवंशी राजा नन्दवर्धन का मन्त्री कल्पक ब्राह्मण जाति का होता हुआ भी जैन धर्मोपासक था उसकी परम्परा में जैन धर्म का पालन करते हुए अन्तिम नन्द राजा के समय शकडाल नाम का मन्त्री हुआ वह भी कट्टरजैन था। उसके दो पुत्र और सात पुत्रिया थी जिनमें बड़ा पुत्र स्थूलिभद्र और सात पुत्रियों ने जैनधर्म

( स्वभाव के कारण ) मगद में फैली हुई शिथिलता को सब से पहले दूर की। इसका महा मंत्री शकडाल था जो पहले नंद का मंत्री कल्पक की वंश परम्परा पर महा बुद्धिमान मंत्री था राजा ने मंत्री की बुद्धि चातुर्य से पंजाब, कम्बोज प्रान्तों को विजय कर अपने अधिकार में कर लिया। पहले से बहुत अर्से इसनी शहन शाहियत के आधीन थे महानंद ने उत्तर हिन्द में त्रिपुटी यानि पाणिनी—चाणक्य—वररुचि तीन रत्नों को ले आया था।

जब कम्बोज कश्मीर की सत्ता महानन्द की हाथ में आई तो वहां की स्वर्गसदृश तक्षशिला भी इनकी हकूमत मे आ गई। यहां पर एक महा विद्यालय भी चलता था। इधर मगद में भी नालंदा नामका महा विद्यालय भी चलता था। महानन्द इन दोनों विद्यालयों का सहायक एवं प्राणदाता था। हम पहले लिख आये हैं कि राजा महानंद धन लोभी था। उसने सुवर्ण एकत्र कर ५ बड़े स्तूप बनवाये थे। कई लोग कहते हैं कि भूमि में पहाड़ जितना खोद कर उसमें सुवर्ण भर दिया था। उसके ऊपर स्तूप बनवाये थे। जो नन्दों के अन्दर सबसे अधिक समय इस महा वीर का राज चला था और इसने अपनी राज सीमा उत्तर से दक्षिण भारत में फैला दी थी यह भी कहा गया है कि सूर्य उदय होकर अस्त भी हो जाता है। यही हाल भूमि के राजा चक्रवर्तियों का हुआ है। एक दिन नंद वंश का उदय होने का दिन था आज अस्त होने की तैयारिया हो रही हैं इसके लिये निमित्त कारण भी ऐसे ही बन जाते हैं। जिस चाणक्य को पूज्यभाव से मगद में लाये थे वह उसके राज के अस्त का जरिया बन गया। जिसको मौर्यवंश की शुरुआत में लिखा जायगा।

श्रीमान् त्रिभुवनदास लेहरचंद बड़ौदा वाले ने 'प्राचीन भारत वर्ष' नामक ग्रन्थ में राजाओं की वंशावलियों तथा उसका समय लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिये यहां लिखा दिया जाता है।

शिशुनाग वंश के १० राजा
( वि० स० पू० ८०५ से )

| राजा | वर्ष |
|---|---|
| १—शिशुनाग राजा | ६० |
| २—काकवर्ण ,, | ३६ |
| ३—क्षेमवर्द्धन ,, | ५० |
| ४—क्षेमजित ,, | ३६ |
| ५—प्रसेनजित ,, | ४३ |
| ६—श्रेणिक | ५२ |
| ७—कूणिक | ३२ |
| ८—उदाई ,, | १६ |
| ९—अनुरुद्ध } | ८ |
| १०—मुंडा } | |
| | ३३३ |

नंद वंश के ९ राजा
( ई० सं० पूर्व ४७२ से )

| राजा | वर्ष |
|---|---|
| १—नंदवर्धन राजा | १७ |
| २—महापद्म ,, | २८ |
| ३—अश्वघोष ,, | २ |
| ४—ज्येष्ठवर्धन ,, | २ |
| ५—सुदेव ,, | २ |
| ६—धनदेव ,, | २ |
| ७—बृहद्रथ ,, | २ |
| ८—बृहस्पती मित्र ,, | २ |
| ९—महानन्द ,, | ४३ |
| | १०० |

+ इन वंशावलियों में जो वर्ष लिखे गये हैं वह अनुमान से ही लिखा मालुम होता है।

मगदपति राजा बिम्बसार ( श्रेणिक ) के पुत्र एव मन्त्री अभयकुमार के साथ भी चण्डप्रद्योवन राजा का सम्बन्ध था जिसके लिये जैन शास्त्रों में एक कथा लिखी गई है कि एक समय राजा चण्ड मगद की राजधानी राजगृह नगर पर सैना लेकर चढ़ आया था पर राजा श्रेणिक ने सोचा कि बिना ही कारण युद्ध कर लाखों मनुष्यों का सँहार करना इसकी अपेक्षा तो राजा चण्ड बिना युद्ध किया ही चला जाय तो अच्छा है दूसरा राजा श्रेणिक और चण्ड आपस में साढू भी होते थे। खैर उस समय अभयकुमार राजा श्रेणिक कों परिणाम करने कों आया था पित कों चिन्तातुर देख कर कारण पूछा तो राजा ने चण्ड का हाल कहा इस पर अभयकुमार ने विश्वास दिलाया कि आप इस बात की चिन्ता न करे मैं ऐसा ही करूँग कि राजा चण्ड बिना युद्ध किये चला जायगा। राजा श्रेणिक को अभयकुमार के कहने पर सदा विश्वास था कारण अभयकुमार बड़ा ही बुद्धि कुशल था।

अभयकुमार अपनी बुद्धि चातुर्य से कुच्छ सुवर्णादि द्रव्य लेजा कर गुप्त पने नगर के बाहर और राजा चण्ड की सेना के पास भूमि ये दाट दिया जिसकी किसी को खबर न पड़ी बाद कुमार राजा चण्ड के पास गया और युद्ध सम्बन्धी बातें करनी शुरू की और कहा कि आप हमारे मासाजी लगते हो अत में आपके हित की बात कहने को आया हूँ और वह यह है कि आपकी सैना के मुख्य योद्धे राजा श्रेणिक म रिश्वत लेकर उनके हो गये हैं। शायद आपको धोखा देकर आपका अहित न कर डाल मैं आपका शुभ-चिन्तक हूँ अत आपको चेता दिया है पर राजा चण्ड को विश्वास नहीं हुआ तब अभयकुमार राजा को साथ लेजा कर पास ही भूमि के अन्दर दाटा हुआ द्रव्य दिखाया जिससे राजा चण्ड को विश्वास हो गया और रात्रि में हस्ती पर सवार होकर एव भाग कर उज्जैन आ गया और अपने योद्धाओं पर गुस्सा कर उनके लिये दरबार में आने की सख्त मनाई करदी। उधर जब युद्ध का समय हुआ और देखा तो राजा चण्ड का पता नहीं लगा बस बिना नायक की सेना क्या कर सकती है वे योद्धा भी अपनी सेना लेकर उज्जैन की ओर चल धरा। जब उज्जैन आकर राज सभा में जाने लगे तो उन सब को बाहर ही रोक दिये। जब उन लोगों ने राजा से कहलाया कि भाग कर तो आप आये और गुस्सा हमारे पर क्यों ? राजा ने कहलाया कि अरे नीच योद्धाओ तुम हमारा नमक खाते हुए भी राजा श्रेणिक से रिश्वत लेकर उनसे मिल गये। क्या तुम मुँह दिखाने लायक हो। इस पर योद्धाओं ने विचार किया कि इसमें हो या न हो मन्त्री अभयकुमार की कूटनीति है अत: उन्होंने राजा से कहलाया कि एक बार हमारी बात तो सुन लीजिये। इस पर राजा ने योद्धाओं को राजसभा में बुलवा कर उनकी सब बातें सुनी जिससे राजा को ज्ञान हुआ कि यह सब अभयकुमार का ही प्रपच था। मैं उसके धोखा में आकर हाथ में आया सुअवसर गमा दिया इत्यादि। कथा विस्तृत है।

आवती प्रदेश मे जैसे उज्जैन का महत्व है वैसा ही विदिशानगरी का भी महत्व है इतना ही क्यों पर विदिशानगरी जैनों का एक तीर्थधाम था आचार्य महागिरि और सुहस्ती एक समय विदिशा की यात्रार्थ पधारे थे और कई स्थानों पर तो यह भी लिखा मिलता है कि आचार्य सुहस्ती सूरि ने राजा सम्प्रतिको विदिशानगरी में ही धर्म का उपदेश देकर जैन बनाया था इससे पाया जाता है कि राजा सम्प्रति ने अपने राज के समय उज्जैननगरी की राजधानी छोड़ विदिशानगरी में अपनी राजधानी बनाई होगी तब ही तो सुहस्ती सूरि ने विदिशा में राजा को प्रतिबोध दिया था इतना ही क्यों सम्राट् अशोक के समय भी विदिशा धन मान से समृद्ध और बहुत से धनाढय व्यापारी वहाँ व्यापार भी करते थे खुद अशोक एक व्यापारी की कन्या

जिस दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ उसी दिन उज्जैन में राजा चण्ड प्रद्योतन का भी देहान्त हो गया था और उसी दिन उज्जैन के सिंहासन पर चण्ड के पुत्र पालक का राज्याभिषेक हुआ। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने परिशिष्ट पर्व में पालक का राज ६० वर्ष का लिखा है तब शाह ने ऊपर ६० वर्षों में चार राजा होना लिखा है पर दोनों लेखों में समय का कोई अन्तर नहीं पड़ता है। वीरात् ६० वर्ष के बाद उज्जैन की राजसत्ता नन्दवंशी राजाओं के अधिकार में चली गई उन्होंने आवंती का राज मगद में मिला लिया पर जैनाचार्यों ने कालगणना आवंती के राजाओं से ही की है अतः प्रद्योतन वंशी राजा जैन थे वैसे नन्दवंशी राजा भी जैन थे इस विषय में हम नन्दवंशी राजाओं के अधिकार में लिख आये हैं और नन्दवंश की वंशावली भी लिख आये हैं करीबन १०० वर्ष नंदों का राज रहा बाद आवंती का अधिकार मौर्य वंश के हाथों में चला गया। मौर्य वंश के राजाओं में केवल एक अशोक ही बौद्ध धर्म का मानने वाला हुआ वह भी जब तक बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया वहां तक तो जैन ही था कारण उसके पिता और पिता मह जैनधर्मी ही थे अत. अशोक जैन ही था अशोक बौद्ध होने पर भी उसका जैन श्रमणों से अभाव नहीं हुआ था जो उसके शिलालेखों से प्रगट होता है नन्दवंशी राजाओं के बाद मौर्यवंशी राजाओं का उदय हुआ पर मौर्य वंश के राजाओं के समय में सब का एकमत नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि के मता-नुसार मौर्यवंश का राज वीर सं० १५५ से प्रारम्भ होता है तब पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी म० मतानुसार वीर नि० स० २१० वर्षों से मौर्यों का राज शुरू होता है तब मेरुतुगाचार्य की विचार श्रेणी में मौर्य वंश का राज १०८ वर्ष और तित्थोगाली पइन्ना में मौर्यों का राज १६० वर्ष रहा लिखा है तब त्रि० लो० शाह मौर्यों का राज १७८ वर्ष लिखा है मेरे मतानुसार मौर्य वंश का राज वी० नि० स० १५५ में शुरु और १६३ वर्ष राज करना आता है अब इसमें कौनसा मत ठीक है विद्वानों पर ही छोड़ दिया जाता है मौर्य वंश की नामावली भी पहले लिखदी जा चुकी है।

मौर्य वंश के पश्चात् शुंगवंशी राजा पुष्पमित्र का राज हुआ उसने अपने स्वामी मौर्य वंश के राजा बृहद्रथ को मार कर मौर्य वंश का अन्त कर स्वयं राजा बन गया पुष्प मित्र कट्टर ब्राह्मणधर्म का राजा था। इसने जैन एवं बौद्धधर्म पर बड़ा भारी अत्याचार किया था यहां तक कि जैनधर्म एवं बौद्ध धर्म के साधु का शिर काट कर लाने वाले को इनाम में एकसौ दिनारें दी जायगी पर वह भी ३० वर्ष एवं मतान्तर ३५ वर्ष राज कर खत्म हुआ इनके बाद में राजा बलमित्र भानुमित्र के राज की गिनती की जाती है यद्यपि वे भरोंच नगर पर राज करते थे पर उनका राज उज्जैन पर भी रहा था इसलिये इनकी गिनती भी उज्जैन के राजाओं में की गई है इनने ६० वर्ष तक राज किये और ये दोनों बांधव जैनधर्म के परम उपा-शक थे तथा कालकाचार्य के भानेज भी लगते थे इनके बाद नभवाहन ने उज्जैन के सिंहासन पर ४० वर्ष राज किया था तदनन्तर गन्धर्व भील्ल वंश का राजा गन्धर्व भील्ल और शकों ने १७ वर्ष राज किया इनके पश्चात राजा विक्रमादित्य का राज उज्जैन के सिंहासन पर कायम हुआ राजा विक्रम प्रजावात्सल्य न्याय-निपुण राजा था इसने जैनधर्म को स्वीकार कर अपने राज में अहिंसा धर्म का खूब प्रचार किया इस राजा ने तीर्थ श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकला था राजा विक्रम के गुरु महान् प्रभाविक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर थे जिन्होंने कल्याण मन्दिर स्तोत्र बना कर आवंती पार्श्वनाथ को प्रगट किये थे इनकी वंशावली—

( अनुसंधान इसी ग्रन्थ के पृ० ९६१ पर देखो )

था। 'उपकेशे बहुलंद्रव्यं' इस वरदान के अनुसार शाह देदा कोटाधीश था और आपके तीनों पुत्रों ने भी पुष्कल द्रव्य उपार्जन किया था शाह राणा ने सातवार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर शत्रुञ्जय से सम्मेतशिखर तीर्थों तक तमाम तीर्थों की यात्रा की। शाह साहरण ने श्रीशत्रुञ्जय पर भगवानमहावीर का विशालमन्दिर बनाया। शाह लुम्बा ने सोपारपट्टन में भगवान आदीश्वर का चौरासीदेहरीवाला मंदिरबनवाया और साधर्मी भाइयों को सोने का थाल और सुवर्ण मुद्रिका की पहरामणी दी। उस समय में श्रीसंघ को अपने घर बुलाकर इस प्रकार की पहिरामणी देना बड़ा ही गौरव का कार्य्य समझा जाता था उस जमाने के लोग अपने निज के लिये बिल्कुल सादा जीवन स्वल्प खर्चा रखते थे पर धर्म कार्य्यों में खूब खुले दिल से द्रव्य व्यय करते थे और उनके पुन्य ही ऐसे थे कि ज्यों ज्यों शुभ कार्य्यों में लक्ष्मी व्यय करते थे त्यों त्यों लक्ष्मी उनके घरों में बिना बुलाये आकर स्थिर वास कर बैठ जाती थी। क्योंकि उस जमाने के व्यापार में सत्य न्याय और पुरुषार्थ एव तीन बातें मुख्य समझी जाती थीं जो खासकर लक्ष्मी को प्रिय थी। इन त्रिपुटी बन्धुओं की उदारता के लिये तो पट्टावलीकार लिखते हैं कि इनके घर पर कोई भी व्यक्ति आशा करके आता था वह कभी निराश होकर नहीं जाता था। जिसमें भी साधर्मियों के लिये तो और भी विशेषता थी।

शाह लुम्बा के यों तो पांच पुत्र थे पर उसमें एक खेमा नाम का पुत्र बड़ा ही होनहार था। उसका अधिक समय धर्म कार्य में ही जाता था। वह ससार से सदैव विरक्त रहता था। आत्मिक ज्ञान की उसको बड़ी भारी रुचि थी जिसमें भी योगाभ्यास के लिये तो खेमा विशेष प्रयत्न करता था। सोपारपट्टन में साधुओं का सयोग विशेष मिलने से खेमा धर्म करनी में सलग्न रहता था।

एक समय धर्मप्राण लब्ध प्रतिष्ठित धर्म प्रचारक आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज अपने विद्वान शिष्य समुदाय के साथ विहार करते हुये सोपारपट्टन पधार रहे थे। इस बात की खबर मिलते ही श्रीसंघ के हर्ष का पार नहीं रहा अत सुन्दर स्वागत कर सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया। यह वे ही सूरिजी हैं कि एक दिन सारंग के रूप में अनगिनती सुवर्ण शुभकार्य्यों में व्यय किया थां। अत ऐसे त्यागी महात्मा प्रति जनता की अधिक से अधिक भक्ति हो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या हो सकती है।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर हुआ करता था कि जिसका जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ता था। एक दिन के व्याख्यान में सूरिजी ने ससार की असारता, लक्ष्मी की चचलता, आयुष्य की अस्थिरता और कुटुम्ब की स्वार्थता, के विषय में व्याख्यान देते हुये कहा कि ससार की असारता समझ कर छः खण्ड में एक छत्र राज करने वाले चक्रवर्तियों ने आत्म भावना से दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया है। भगवान रामचन्द्र और पाच पाडव कब जानते थे कि लक्ष्मी को छोड़ हमको बन वन में भटकना पड़ेगा। एक अरब और पेंतीस करोड़ सोनाइयों का धणी धन्नाशाह कब जानता था कि मैं आधीरोटी के टुकड़े के लिये घर-घर का दास बन जाऊँगा। भगवान् श्रीकृष्ण कब जानते थे कि सुवर्णमय द्वारामती छोड़कर मैं बन में पानी के लिये बिल बिलाता मर जाऊँगा। आयुष्य की अस्थिरता के लिये पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य क्षय हो जाते हैं। तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों के आयुष्य क्षीण हो जाते हैं भगवान् महावीर देव से इन्द्र ने प्रार्थना की थी कि आप अपने आयुष्य को एक समय न्यूनाधिक करदें पर वैसा करने में वे भी असमर्थ थे। कुटुम्ब की स्वार्थता, क्या राजा श्रेणिक यह जानता था कि मेरा पुत्र ही मुझे कारागृह में डाल देगा? क्या राजा प्रदेशी यह जानता था कि मेरी अर्द्धांगना मुझे जहर देदेगी? क्या ब्रह्मदत्त स्वप्न में भी कभी जानता

आपकी कठोर तपश्चर्या से कई देवी देवता भी आपकी सेवा करते थे। विद्या और लब्धियाँ तो स्वय वरदाई होकर आपकी सेवा में रहना अपना अहोभाग्य ही समझती थीं इत्यादि मुनि गुणतिलक की भाग्य रेखा यहाँ तक चमक उठी कि आचार्य सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में मुनि गुणतिलक को सर्वगुण सम्पन्न जान कर मथुरा श्रीसघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि बड़े ही प्रतापी आचार्य हुये आपकी कठोर तपश्चार्या और योगाभ्यास के कारण आपका प्रभाव अतिशय इतना बढ़ गया था कि बड़े २ राजा महाराजा और देवी देवता आपके चरणार्विन्द की सेवा कर अपना अहोभाग्य समझते थे। कई जैन एव जैनेतर मुमुक्षु योगाभ्यास करने को आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे और आप अपनी उदारतापूर्वक पात्र को अभ्यास करवाया करते थे। एक समय सूरिजी महाराज भूभ्रमण करते हुये भिन्नमाल नगर में पधारे वहाँ के श्रीसघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता अपना अहोभाग्य समझती थी।

मरुधर में एक भिनमाल ही ऐसा नगर था कि जैनों के और ब्राह्मणों के हमेशा से वाद विवाद चलता आया था। यद्यपि कई ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था पर जो लोग शेष रहे थे वे कुछ न कुछ विवाद खड़ा कर ही देते थे और अपनी बाड़ा बन्दी की वे कई प्रकार से कोशिश किया करते थे।

वहाँ का राजा अजीतदेव और आपकी रानी रत्नादे जैनधर्मोपासक थे पर जैन धर्म के नियम सख्त होने से कई जिह्वा लोलुपी लोगों से पलना मुश्किल भी था। राजा अजीतसिंह के कई पुत्र थे। उसमें एक गंगदेव नाम का पुत्र ब्राह्मणों की सगति से मास मदिरा के दुर्व्यसन में पड़ गया जो जैनधर्म के नियमों से खिलाफ था। उसके माता पिता ने बहुत समझाया पर वह जैनधर्म को अच्छा समझता हुआ भी उन दुर्व्यसनों को छोड़ने में असमर्थ था। कुँवर गगदेव ब्राह्मणों की संगति से भोजन भी रात्रि में ही करता था। एक दिन भाग्यवसात् रात्री में भोजन बनाया उसमें रसोइया की असावधानी से कई जहरीला जानवर भोजन के साथ पच गया कि उसका विष भोजन के साथ मिल गया। गगदेव ने रात्रि में भोजन किया तो उसका शरीर विष व्यापक बन गया। सुबह। ब्राह्मणों ने कई यन्त्र मन्त्र दवाई झाड़ा झपटादि अनेक उपचार किये पर वे सब कृतघ्नी पर किया हुआ उपकार कि भाँति निसफल ही हुये।

अत गगदेव के माता पिता आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के पास आये और प्रार्थना की कि हे प्रभो? यह गगदेव ब्राह्मणों की संगति से मांस मदिरा का भक्षण तथा रात्रि भोजन भी करता है जिससे आज वह जीवन से हाथ धो बैठा है पूज्यवर ? आपके पूर्वज आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पहिले भी हमारे पूर्वजों को इस तरह से जीवन दान दिया था अत कृपा कर मुझे पुत्ररूपी भिक्षा प्रदान करावें। सूरिजी ने कहा कि अनत तीर्थंकरों ने रात्रि भोजन का निषेध किया है। क्या साधु और क्या गृहस्थ सबकों रात्रि भोजन का त्याग रखना चाहिये। रात्रि भोजन से इस भव में प्राणघात और परभवमें नरकादि फल मिलता है इत्यादि।

राजा ने कहा पूज्यवर ! आपका फरमाना सत्य है। कल्याण हो आचार्य स्वयंप्रभसूरि और आचार्य कक्कसूरिका कि उनकी कृपा से हम लोग इस महान् पाप से बच गये हैं फिर आप जैसों के उपदेश से हम रात्रि भोजन के लिये दृढ़ प्रतिज्ञावाले हैं पर इस गगदेव ने ब्राह्मणों की सगति से इस पाप को शिर पर लिया है। फिर भी आपका धर्म तो किसी भी जीव पर उपकार करने का है। अत हम लोगों पर दया भाव लाकर इसको जीवन प्रदान दीरावें।

था कि मेरी माता ही मुझे अग्नि में जला देने का प्रयत्न करेगी इत्यादि हजारों उदाहरण विद्यमान हैं फिर समझ में नहीं आता है कि संसारी जीव किस विश्वास पर निश्चित होकर बैठे हैं। प्यारे आत्मबन्धुओं! पूर्व जमाने में कुछ अच्छे कर्म किये थे जिससे तो यहाँ सब सामग्री अनुकूल मिल गई है पर भविष्य के लिये क्या करना है। शास्त्रकारों ने फरमाया है कि —

जहा य तिन्नि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया। एगोऽत्थ लहइ लाहं, एगो मूलेण आगओ॥
एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ। ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह॥

जैसे एक साहूकार ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और उनको एक एक हजार रुपये देकर विदेश भेज दिये। उनमें एक ने तो एक बड़े नगर में जाकर सुन्दर मकान किराये पर लेकर खूब मौज मजा और राग रंग खाना पीना भोग विलास में लग गया और वे हजार रुपये थोड़े दिनों में खर्च कर दिये और सेठजी के नाम पर कर्जा करना शुरू कर दिया। तब दूसरा पुत्र एक नगर में पहुँचा कि जहाँ थोड़ा बहुत धंधा कर अपने खर्च जितनी पैदास कर अपना गुजारा चलाने लगा। और तीसरा पुत्र ऐसे नगर में गया कि जहाँ व्यापार कर लाखों करोड़ों रुपये पैदास कर लिये। तब पिताजी ने तीनों पुत्रों को एक ही साथ में बुलाये तथा पुत्रों के आने के बाद जो एक एक हजार रुपयों की रकम दी थी उसको वापिस मांगी। तो एक ने रकम खर्च करदी और उलटा कर्जा बतलाया दूसरे ने ज्यों के त्यों हजार रुपये देदिये और तीसरे ने जो व्यापार में पैदा करके लाया था वे लाखों रुपये पिता जी के सामने रख दिये। बतलाइये पिता किस पुत्र पर खुश होगा ? यही दृष्टान्त अपनी आत्मा पर घटाइये कि एक एक हजार की रकम तुल्य मनुष्य भव मिला है। एक मनुष्य ने खाना पीना भोग विलास कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोदिया और ऐसे पाप कर्म रूपी कर्जा कर लिया कि भविष्य में नरक एवं तिर्यंच में जाना पड़े। तब दूसरे मनुष्य ने न तो ज्यादा पाप किया और न ज्यादा पुण्य ही किया उसने मनुष्य भव का मनुष्य भव में आवे जैसा कर्म किया। तब तीसरे मनुष्य ने मनुष्य जन्म बड़ी दुर्लभता से मिला जानकर सामग्री के सद्भाव दान पुण्य सेवा पूजा तीर्थयात्रा मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा स्वधर्मी भाइयों से वात्सल्यता और अन्त में भोग विलास एवं संसार को छोड़ दीक्षा लेकर पुण्योपार्जन किया वे मनुष्यभव छोड़ कर स्वर्ग सुखों के अधिकारी बन गये। इसमें भी उत्कृष्ट मार्ग तो दीक्षा लेना ही है कि एक दो या अष्ट भवों में जन्म मरण के दुःखों से छूट कर मोक्ष में जाना आदि इत्यादि वैराग्यमय देशना थी।

यों तो सूरिजी के उपदेश ने सब पर ही असर किया था पर वीर खेमा पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि वह दीक्षा लेने को तैयार होगया और कई [illegible] नर नारी खेमा का अनुकरण करने को कटिबद्ध होगये। खेमा के माता पिता स्त्री और पुत्रों ने बहुत कुछ समझाया पर खेमा का रंग हल्दी जैसा नहीं था कि जल लगने से उतर जाय। खेमा ने सब को समझा कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। शाह छुन्ना ने अपने पुत्र की दीक्षा का बड़ा भारी महोत्सव किया जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। ठीक शुभ मुहूर्त में सूरिजी ने खेमादि ५० नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा देकर उन सबका उद्धार किया। खेमा का नाम मुनि गुणतिलक रक्खा गया। मुनि गुणतिलक बड़ा ही त्यागी वैरागी तपस्वी और ज्ञानी था आपके ज्ञानावर्णिय कर्म, मोहनीयकर्म और अन्तरायकर्म एवं तीनों कर्मों का क्षयोपशम था कि उसने थोड़ा परिश्रम करने पर ही वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया। वह भी केवल जैन साहित्य ही नहीं पर जैनेतर साहित्य का भी एक खासा ज्ञाता बन गया। व्याकरण न्याय तर्क, छन्द, काव्य तथा ज्योतिष और अष्टांग निमित्त का भी पारगामी होगया।

इत्यादि रात्रि भोजन का सख्त निषेध किया है परन्तु शास्त्रों के अनभिज्ञ लोग आप स्वय डूबते हैं और अपने विश्वास पर रहने वाले भद्रिक लोगो को भी डुबाते हैं। कई अज्ञानी लोग एक सूर्य में दो वक्त भोजन नहीं करना कहकर रात्रिभोजन करते हैं और दूसरों को करने का उपदेश करते हैं परन्तु इसका मतलब रात्रि भोजन करने का नहीं है पर यह उल्लेख तो ब्रह्मचारी एव ब्राह्मणों के लिये है कि एक सूर्य्य मे दो बार भोजन नहीं करना अर्थात् सदैव एकासना व्रत करना। जिससे ब्रह्मचार्य्य व्रत सुविधा से पले और एक बार भोजन करने से एक वर्ष में नौ मास की तपश्चर्या भी हो जाय। कारण १२ मास में रात्रि भोजन न करने से छ मास और दिनों में भी एक बार भोजन करने से तीन मास एव नौ मास का तप हो जाता है। इसलिये ब्रह्मचारी एवं ब्राह्मणों को और साधुओं को एक दिन में एक बार ही भोजन करने की आज्ञा है यदि उससे क्षुधा शान्त न होती हो तो सूर्य्य के अस्तित्व में एक बार की बजाय दो बार भी भोजन करले पर रात्रि में तो भूल चूक के थोड़ा भी आहार नहीं करे इत्यादि। सूरिजी महाराज के व्याख्यान का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनता रात्रि भोजन के पाप एव अनर्थ से भयभ्रान्त हो कर प्राय सबने रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। इसका मुख्य कारण एक तो सूरिजी का व्याख्यान दूसरा राजकुंवर गगदेव का रात्रि भोजन के लिये उदाहरण तीसरा जनता का भाग्य ही अच्छा था इत्यादि सूरिजी के विराजने से जनता का बड़ा भारी उपकार हुआ।

इस प्रकार महान उपकार करते हुये सूरिजी भिन्नमाल से विहार कर आसपास के ग्राम नगरों में भ्रमण करते हुए जावलीपुर पधार रहे थे वहा के अदित्यनाग गोत्रिय शाह झाला ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था शाह झाला ने कहा पूज्यवर! मेरी अवस्था वृद्ध है और मेरे दिल में महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनने की अभिलाषा लग रही है। अतः आप चतुर्मास करके मुझे और यहाँ के श्रीसघ को आगम सुनावें तो महान उपकार होगा। सूरिजी ने कहा झाला क्षेत्र स्पर्शन होगा वही काम आवेगी। तत्पश्चात् वहा के श्रीसघ ने साग्रह विनती की और लाभा-लाभ का कारण जान सूरिजी ने चतुर्मास की स्वीकृति देदी। बस झाला का मनोरथ सफल होगया। उसने भगवती सूत्र के महोत्सव के लिये बड़ी भारी तैयारियें करनी शुरू करदी। झाला के मन में कई अर्सों से उत्साह था पर साधारण साधु तो श्री भगवतीजी सूत्र वाच नहीं सकता था और गीतार्थों का योग नहीं मिला था पर कहा है कि जिसके सच्चे दिल की भक्ति होती है वह कार्य बन ही जाता है। शाह झाला ने बड़े ही समारोह के साथ महाप्रभाविक श्री पंचमाङ्ग अपने घर पर लाया। रात्रि में जागरणा पूजाप्रभावना सुबह साधर्मी वात्सल्य करके आलीशान जुलूस के साथ सूत्रजी को सूरिजी के करकमलों में अर्पण करके हीरा पन्ना माणिक मोती एव सुवर्ण के पुष्पों से सबसे पहिले शाह झाला ने ज्ञान पूजा की तत्पश्चात् श्रीसघ ने भी पूजा की जिसमें करीब एक करोड़ रुपयों का द्रव्य ज्ञान में जमा हुआ जिस द्रव्य से आगम लिखवा कर भडारों में अर्पण कर देने का निश्चय हुआ। तत्पश्चात् पूज्य आचार्यदेव ने व्याख्यान में महा प्रभाविक ज्ञान समुद्र शास्त्रजी को वाचना प्रारंभ किया। पहिले जमाने में इस प्रकार श्री भगवतीजी सूत्र की वाचना कभी-कभी हुआ करती थी। जनता की ज्ञानरुचि ज्ञानभक्ति इतनी थी कि कई नगरों के लोगों ने तो आगम सुनने के लिये जाबलीपुर में आकर अपनी छावनियें ही डाल दीं। कारण कि मनुष्य भव और श्रावक के कुल में

सूरिजी ने अपने योग बल से राजकुँवर के विषय को अपहरण कर लिया अतः राजकुंवार सचेत होकर इधर उधर देखने लगा तो उसकी माता ने कहा बेटा ! तू आज नये जन्म में आया है। हम लोगों ने बहुत समझाया था कि तू रात्रि भोजन मत कर अर्थात् रात्रि भोजन का त्याग करदे पर तू नहीं माना इसका ही फल है कि तेरे लिये स्मशान की तैयारी कर दी थी पर अहसान हो पूज्य दयालु आचार्य देव का कि जिन्होंने तुमको जीवन दान दिया है। अब तू जैनधर्म की शरण ले और रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग कर दे। राजकुंवर ने केवल माता के कहने से ही नहीं पर स्वयं अनुभव करके मिथ्यात्वमें और अधर्म मार्ग का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग पर राजकुँवर के पक्ष में जो लोग थे उन्होंने भी जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। अतः नगर भर में जैनधर्म की भूरि २ प्रशंसा होने लगी और सब लोग कहने लगे कि जैनाचार्य कैसे दयालु होते हैं कि एक राजकुँवर को जीवन दान देकर महान् उपकार किया है।

बस, दूसरे दिन व्याख्यान में सूरिजी ने रात्रि भोजन के विषय में खूब जोर से कहा कि रात्रि भोजन करना जैनशास्त्रों में केवल साधुओं के लिये ही नहीं पर गृहस्थों के लिये भी बिल्कुल मना किया है। अतः जैनधर्म पालन करने वाले रात्रि भोजन नहीं करते हैं क्यों कि रात्रि समय तमाम पदार्थ अभक्ष्य कहलाते हैं। रात्रि भोजन से दूसरे जीवों की हिंसा तो होती ही है पर कभी कभी स्वयं रात्रि भोजन करने वाले को भी काल कवलित बनना पड़ता है। और इस प्रकार मरने से भविष्य में भी गति नहीं होती है। तथा जैनधर्म के इस उत्तम नियम को अन्य धर्म शास्त्रों ने भी अपनाया है एवं उन लोगों ने भी अपने धर्म ग्रन्थों में रात्रि भोजन का खूब जोरों से निषेध किया है। नमूने के तौर पर देखिये—

चत्वारो नरकद्वाराः प्रथमं रात्रि भोजनम् । परस्त्रीगमनं चैव सन्धानानन्त कायके ॥
मृते स्वजन मात्रेऽपि सूतकं जायते किल । अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ॥
रक्तीभवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च । रात्रौ भोजन सक्तस्य ग्रासे तन्मांसभक्षणम् ॥
चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत् । आहार मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च विशेषतः ॥
आहाराज्जायते व्याधिः क्रूरगर्भश्च मैथुनात् । निद्रातो धननाशश्च स्वाध्याये मरणं भवेत् ॥
तस्मै नरा न भोक्तव्यं रात्रौ पुंसा सुमेधसा । क्षेम चौर्य दयाधर्मं स्वर्ग मोक्षं च वांछता ॥
नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम् । दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
नाना करैरसस्पृष्टं प्रवर्मचारम् । सूक्ष्मजीवाकुलं चापि निशि भान्यं न भुज्यते ॥
मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम् । कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्टं रोगं च कोलिकः ॥
कण्टको दारुखण्डं च वितनोति गलव्यथाम् । व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥
विलग्नश्च गले बालः स्वरभङ्गाय जायते । इत्यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निशि भोजने ॥
नापश्य सूक्ष्मजन्तूनि निष्प्रकाशात्प्रासुकान्यपि । अप्युपलक्ष्यमानेनाद्यं यन्निशाशनम् ॥
ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः । तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे । नक्तं तद्धि विजानीयात् न नक्तं निशि भोजनम् ॥
मंध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तं कुलोद्वह । सर्ववेलां व्यतिक्रम्य रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥

इत्यादि रात्रि भोजन का सख्त निषेध किया है परन्तु शास्त्रों के अनभिज्ञ लोग आप स्वयं डूबते हैं और अपने विश्वास पर रहने वाले भद्रिक लोगों को भी डुबाते हैं। कई अज्ञानी लोग एक सूर्य में दो वक्त भोजन नहीं करना कहकर रात्रिभोजन करते हैं और दूसरों को करने का उपदेश करते हैं परन्तु इसका मतलब रात्रि भोजन करने का नहीं है पर यह उल्लेख तो ब्रह्मचारी एवं ब्राह्मणों के लिये है कि एक सूर्य्य में दो बार भोजन नहीं करना अर्थात् सदैव एकासना व्रत करना। जिससे ब्रह्मचार्य्य व्रत सुविधा से पले और एक बार भोजन करने से एक वर्ष में नौ मास की तपश्चर्या भी हो जाय। कारण १२ मास में रात्रि भोजन न करने से छ मास और दिनों में भी एक बार भोजन करने से तीन मास एवं नौ मास का तप हो जाता है। इसलिये ब्रह्मचारी एवं ब्राह्मणों को और साधुओं को एक दिन में एक बार ही भोजन करने की आज्ञा है यदि उससे क्षुधा शान्त न होती हो तो सूर्य्य के अस्तित्व में एक बार की बजाय दो बार भी भोजन करले पर रात्रि में तो भूल चूक के थोड़ा भी आहार नहीं करे इत्यादि। सूरिजी महाराज के व्याख्यान का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनता रात्रि भोजन के पाप एवं अनर्थ से भयभ्रान्त हो कर प्रायः सबने रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। इसका मुख्य कारण एक तो सूरिजी का व्याख्यान दूसरा राजकुंवर गगदेव का रात्रि भोजन के लिये उदाहरण तीसरा जनता का भाग्य ही अच्छा था इत्यादि सूरिजी के विराजने से जनता का बड़ा भारी उपकार हुआ।

इस प्रकार महान उपकार करते हुये सूरिजी भिन्नमाल से विहार कर आसपास के ग्राम नगरों में भ्रमण करते हुए जावलीपुर पधार रहे थे वहा के अदित्यनाग गोत्रिय शाह झाला ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था शाह झाला ने कहा पूज्यवर! मेरी अवस्था वृद्ध है और मेरे दिल में महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनने की अभिलाषा लग रही है। अतः आप चतुर्मास करके मुझे और यहाँ के श्रीसंघ को आगम सुनावें तो महान उपकार होगा! सूरिजी ने कहा झाला क्षेत्र स्पर्शन होगा वही काम आवेगी। तत्पश्चात् वहा के श्रीसंघ ने साग्रह विनती की और लाभा-लाभ का कारण जान सूरिजी ने चतुर्मास की स्वीकृति देदी। बस झाला का मनोरथ सफल होगया। उसने भगवती सूत्र के महोत्सव के लिये बड़ी भारी तैयारियें करनी शुरू करदी। झाला के मन में कई अर्सों से उत्साह था पर साधारण साधु तो श्री भगवतीजी सूत्र वाच नहीं सकता था और गीतार्थों का योग नहीं मिला था पर कहा है कि जिसके सच्चे दिल की भक्ति होती है वह कार्य बन ही जाता है। शाह झाला ने बड़े ही समारोह के साथ महाप्रभाविक श्री पंचमाङ्ग अपने घर पर लाया। रात्रि में जागरण पूजाप्रभावना सुबह साधर्मी वात्सल्य करके आलीशान जुलूस के साथ सूत्रजी को सूरिजी के करकमलों में अर्पण करके हीरा पन्ना माणिक मोती एवं सुवर्ण के पुष्पों से सबसे पहिले शाह झाला ने ज्ञान पूजा की तत्पश्चात् श्रीसंघ ने भी पूजा की जिसमें करीब एक करोड़ रुपयों का द्रव्य ज्ञान में जमा हुआ जिस द्रव्य से आगम लिखवा कर भण्डारों में अर्पण कर देने का निश्चय हुआ। तत्पश्चात् पूज्य आचार्यदेव ने व्याख्यान में महा प्रभाविक ज्ञान समुद्र शास्त्रजी को वाचना प्रारंभ किया। पहिले जमाने में इस प्रकार श्री भगवतीजी सूत्र की वाचना कभी-कभी हुआ करती थी। जनता की ज्ञानरुचि ज्ञानभक्ति इतनी थी कि कई नगरों के लोगों ने तो आगम सुनने के लिये जावलीपुर में आकर अपनी छावनियें ही डाल दीं। कारण कि मनुष्य भव और श्रावक के कुल में

सूरिजी ने अपने योग बल से राजकुँवर के विष को अपहरण कर लिया अतः राजकुँवार सचेत होकर इधर उधर देखने लगा तो उसकी माता ने कहा बेटा ! तू आज नये जन्म में आया है। हम लोगों ने बहुत समझाया था कि तू रात्रि भोजन मत कर अर्थात् रात्रि भोजन का त्याग करदे पर तू नहीं माना इसका ही फल है कि तेरे लिये स्मशान की तैयारी कर दी थी पर भाग्यवश हो पूज्य दयालु आचार्य देव का कि जिन्होंने तुमको जीवन दान दिया है। अब तू जैनधर्म की शरण ले और रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग कर दे। राजकुँवर ने केवल माता के कहने से ही नहीं पर स्वयं अनुभव करके मिथ्याधर्म और अधर्म भक्षि का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग पर राजकुँवर के पक्ष में जो लोग थे उन्होंने भी जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। अतः नगर भर में जैनधर्म की भूरि २ प्रशंसा होने लगी और सब लोग कहने लगे कि जैनाचार्य कैसे दयालु होते हैं कि एक राजकुँवर को जीवन दान देकर महान् उपकार किया है।

बस, दूसरे दिन व्याख्यान में सूरिजी ने रात्रि भोजन के विषय में खूब जोर से कहा कि रात्रि भोजन करना *जैनशास्त्रों में केवल साधुओं के लिये ही नहीं पर गृहस्थों के लिये भी बिल्कुल मना किया है।* प्रायः जैनधर्म पालन करने वाले रात्रि भोजन नहीं करते हैं क्यों कि रात्रि समय खाद्य पदार्थ अभक्ष्य कहलाते हैं। रात्रि भोजन से दूसरे जीवों की हिंसा तो होती ही है पर कभी कभी स्वयं रात्रि भोजन करने वाले को भी काल कवलित बनना पड़ता है। और इस प्रकार मरने से भविष्य में भी गति नहीं होती है। तथा जैनधर्म के इस उत्तम नियम को अन्य धर्म वालों ने भी अपनाया है एवं उन लोगों ने भी अपने धर्म ग्रन्थों में रात्रि भोजन का खूब जोरों से निषेध किया है। नमूने के तौर पर देखिये—

चत्वारो नरकद्वाराः प्रथमं रात्रि भोजनम्। परस्त्रीगमनं चैव सन्धानानन्त कायके ॥
मृते स्वजन मात्रेऽपि सूतकं जायते किल। अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ॥
रक्तीभवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च। रात्रौ भोजन सक्तस्य ग्रासे तन्मांसभक्षणम् ॥
चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत्। आहार मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च विशेषतः ॥
आहाराज्जायते व्याधि क्रूरगर्भश्च मैथुनात्। निद्रातो धननाशश्च स्वाध्याये मरणं भवेत् ॥
तत्त्वं मत्वा न भोक्तव्यं रात्रौ पुंसा सुमेधसा। क्षेमं शौर्यं दयाधर्मं स्वर्गं मोक्षं च वांछता ॥
नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्। दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
भानोः करैरसंस्पृष्ट मुच्छिष्टं प्रवर्तचाराम्। सूक्ष्मजीवाकुलं चापि निशि भोज्यं न युज्यते ॥
मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्। कुरुते मक्षिका वान्तिं कुष्ठ रोगं च कोलिकः ॥
कण्टको दारुखण्डं च वितनोति गलव्यथाम्। व्यंजनान्तर्निपतितस्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥
विलग्नश्च गले बालः स्वरभंगाय जायते। इत्यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निशि भोजने ॥
नापेक्ष्य सूक्ष्मजन्तूनि निश्यद्यात्प्रासुकान्यपि। अप्युद्यत्केवलज्ञानैर्नादृतं यन्निशाशनम् ॥
ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः। तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। नक्तं तद्धि विजानीयात् न नक्तं निशि भोजनम् ॥
संध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तं कुलोद्वह। सर्ववेलां व्यतिक्रम्य रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥

| | पुष्करार्द्ध पूर्व भरत क्षेत्र | | | पुष्करार्द्ध पश्चिम भरत क्षेत्र | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | भूतकाल २४ | वर्तमान० २५ | भविष्य० २६ | भूतकाल २७ | वर्तमान० २८ | भविष्य० २९ |
| १ | श्रीमद्गन | जगन्नाथ | वसलध्वज | पद्मचन्द्र | पद्मपद | प्रभातक |
| २ | मूर्तिस्वामी | प्रभास | त्रिमातुल | रक्तांक | प्रभावक | विनयेन्द्र |
| ३ | निरागन्नि | सरस्वामी | अघटित | अयोगिक | योगेश्वर | सुभात्र |
| ४ | प्रलंबित | भरतेश | त्रिसमंभ | सर्वार्थ | यलनाथ | दिनकर |
| ५ | पृथ्वीपति | धर्मानन | अचल | ऋपिनाथ | सुपमाग | अगस्तेय |
| ६ | चारित्रनिधी | विद्यात्र | प्रवादिक | हरिभद्र | वलातीत | धनद |
| ७ | अपराजित | अवसानक | भूमानद | गणाधिय | मृगांक | पौरव |
| ८ | सुबोधक | प्रबोधक | त्रिनयन | पारत्रिक | कलत्रक | जिनदत्त |
| ९ | बुधेश | तपोनाथ | सिद्धांत | ब्रह्मनाथ | ब्रह्मनाथ | पार्श्वनाथ |
| १० | वैतालिक | पाठक | पृथग | मुनिंद्र | निषेधक | मुनिसिंह |
| ११ | त्रिमुष्टिक | त्रिकर | भद्रेग | दीपक | पापहर | आस्तिक |
| १२ | मुनिबोध | योगत | गोस्वामी | राजर्षि | सुस्वामी | भवानद |
| १३ | तीर्थस्वामी | श्रीवक्षा | प्रवासिक | विशाख | मुक्तिचन्द्र | नृपनाथ |
| १४ | धर्माधिक | श्रीस्वामी | मंडलोक | अचिंतित | अप्रासिक | नारायण |
| १५ | वमेश | सुकर्मेश | महावसु | रविस्वामी | नदीतक | प्रायभाक |
| १६ | समाधि | कर्मोतिक | उदियत | सोमदत्त | मकधारी | भूपति |
| १७ | प्रभुनाथ | अमलेंद्र | दर्दुरिक | जयस्वामी | सुसयम | ग्रष्टोसु |
| १८ | अनादि | ध्वजांशिक | प्रबोध | मोक्षनाथ | मलयसिंह | भवभीरुक |
| १९ | सर्वतीर्थ | प्रसाद | अभयाक | अग्निभानू | अक्षोभ | नंदननाथ |
| २० | निरुपम | विपरीत | प्रमोद | धनुष्काग | देवधर | भार्गव |
| २१ | कुमारिक | मृगांक | दफारिक | रोमांचित | प्रयच्छ | प्रनास्यु |
| २२ | विहाराग्र | कफाहिक | व्रतस्वामी | मुक्तिनाथ | आगमीक | किल्बिपाद |
| २३ | धणेसर | गजेन्द्र | निधाम | प्रसिद्ध | विनीत | नवनाशिक |
| २४ | विकास | ध्यानम्न | त्रिकर्मक | जिनेश | रतानद | भरतेश |

६—पार्श्वनाथ के १० भव १—मरूभूति २—हस्ती ३—सहस्रार ४—करणवेग विद्याधर ५—अच्युतदेव ६—वज्रनाय ७—ग्रैवेगदेव ८—सुवर्णत्रेग राजा ९—प्राणतदेव १०—श्री पार्श्वनाथ जिन ।

७—श्रीमहावीर के २७ भव १—नयसार २—सौधर्मदेव ३—मरीची ४—ब्रह्मदेव ५—कौशीकतापस ६—सौधर्मदेव ७—पुष्पमित्र तापस ८—सौधर्मदेव ९—अग्नियोतसापस १०—ईशानदेव ११—अग्निभूति

के प्राण नष्ट करने में अपनी बहादुरी समझते होंगे पर किसी भव में आप निर्बल और ये जीव सबल हो गये तो क्या यह अपना बदला नहीं लेंगे ? उस समय आपका क्या हाल होगा इसको तो थोड़ा सोचो और जिस धर्म को आप मानते हैं उस धर्म के धर्मशास्त्र क्या कहते हैं उनको तो जरा ध्यान लगा कर सुनलीजिये—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत । तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः ! ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोऽत्र मारणम् । वृथा पशु नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥
शोणितं यावत पांशून संगृह्णाति महीतलात् । तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पाद को ऽर्द्यते ॥
ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मति पूर्वकम् । एकविंशतिमाजानी पापयोनिषु जायते ॥
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम् । नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥
एकस्मिन रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षित भवेत् । घातिते घातितं तद्वत्तस्माज्जीवान्न मारयेत् ॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्यु, सर्वे यज्ञाश्च भारत ! । सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिनां दया ॥
आत्मा विष्णुः समस्तानां वासुदेवो जगत्पतिः । तस्मान्न वैष्णवे- कार्या परहिंसा विशेषतः ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अभयं येन भूतेभ्यो दत्तं सर्वसुखावहम् ॥

इत्यादि एक ओर तो क्षत्रियों के तलवार वाले हाथ ज्यों के त्यों खड़े थे और दूसरी ओर धर्म-शास्त्रों का सुनना। बस, वीर क्षत्रियों की आत्मा ने पलटा खाया और उन्होंने कहा महात्माजी ! हम लोगों ने अज्ञान में भ्रमित हो कर बहुत जीवों को सताया, उनके प्राणों को नष्ट किया हैं पर आज आपके उपदेश को सुनकर हम लोगों को इतना तो ज्ञान हो ही गया है कि इतने दिन हम ग़लत रास्ते पर थे। और निरपराध जीवों की शिकार कर उनके प्राणों को नष्ट किया जिसका बदला हमको परलोक में अवश्य देना पड़ेगा। परन्तु आज से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने जीवन में हम किसी निरपराधी जीवों को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं देंगे और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे किये हुये पाप कर्म किसी प्रकार से छूट सकते हों तो आप ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे हमारे पापों का क्षय हो जाय।

मुनियों ने कहा वीरो ! आखिर तो क्षीत्रय, क्षत्रीय ही होते हैं। हमें बड़ी खुशी है कि आप थोड़े से उपदेश से ठीक रास्ते पर आगये हो। आपको अपने कृत कर्मों का क्षय ही करना है तो जिनेन्द्र भगवान् के कथन किये धर्म को स्वीकार कर उसका आराधन करो कि आपके किये कर्मों का नाश हो जायगा। यह कह कर मुनियों ने अपनी विद्या से क्षत्रियों के हाथ खुल्ले कर दिये कि वे अपनी तलवारें म्यान में डालकर मुनियों से पूछने लगे की आपका धर्म तो स्वीकार करने को हम लोग तैयार हैं पर आपके धर्म के क्या नियम हैं ? और उसकी आराधना कैसे हो सकती है ? कृपा कर इस बात को हमें समझाये। मुनियों ने शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप बतलाया तत्पश्चात् गृहस्थधर्म के बारह व्रत और साधु धर्म के पांच महाव्रत इस प्रकार समझाया कि वे समकितमूल जितने व्रत सुविधा से पाल सके उतने व्रत धारण कर मुनियों का उपकार मानते हुए वन्दनकर अपने स्थान चले गये और मुनि भी अपने स्थान पर आये।

जन्म लिया फिर योग मिलने पर भी श्री भगवती सूत्र नहीं सुना उसका जन्म ही व्यर्थ समझा जाता था। अतः ऐसा शुभावसर हाथ में आया कौन जाने देने वाले थे।

शाह ध्यला ने प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की। तदनुसार और भी कई महानुभावों ने इस प्रकार पूजा कर ज्ञानावर्णिय कर्म का क्षयोपशम करते हुये अनेक पुन्योपार्जन किया। सम्पूर्ण भगवतीसूत्र चार छ मास में पूर्ण होने वाला नहीं था। कारण ४१ मूल शतक १३८ अन्तरशतक १९ वर्ग और पहिले तो १० ० उद्देशा और १८८० ० पद थे पर जब चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये थे उस समय १९२५ उद्देशा और १५७७२ श्लोक मूल के रह गए थे तथा इस पर निर्युक्ति चूर्णी वगैरह विवरण विशेष था परन्तु सूरिजी महाराज के श्रीभगवतीसूत्र हस्तामलक की तरह कण्ठस्थ ही था। अतः आप श्री ने मात्र छः मास में श्रीभगवतीसूत्र सम्पूर्ण बांच दिया अतः शाह ध्यला ने पूर्णाहुति का भी बड़े ही समारोह से महोत्सव कर श्रीभगवतीसूत्र की पुनः अष्टभेदी पूजा प्रभावना और स्वामिवात्सल्य कर ज्ञान पद की आराधना की इतना ही क्यों पर शाह ध्यला ने अपने १४ साथियों के साथ असार संसार का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेली कारण 'भगवत्सत्कारश्रुति' ज्ञान का सार व्रत लेना है। भाग्यवश पोमा का बनाये श्री विमलनाथदेव के मंदिर की प्रतिष्ठा भी सूरिजी के कर कमलों से हुई और भी जिनशासन की कई प्रकार से प्रभावना हुई।

सूरिजी महाराज के साधुओं में सत्यदेव और मंगलकलश ये दो साधु बड़े ही विद्याबली और लब्धिपात्र थे। एक दिन वे दोनों मुनि थण्डिले जाकर आ रहे थे। उधर से राजकुँवरादि कई क्षत्रीय लोग जीवित शिकार को लेकर नगर की ओर आ रहे थे। जिसको देख उभय मुनियों के कोमल हृदय में दया के भाव उत्पन्न हो गये अतः वे तत्काल ही बोल उठे कि हे महानुभावो ! इन बिचारे निरपराधी मूक प्राणियों को क्यों पकड़ लाये हो ! देखिये इनका शरीर कांप रहा है। यदि आप क्षत्री हैं तो इन भय पाते हुये प्राणियों की रक्षा करना आपका धर्म है। अतः इनको अभयदान दीजिये।

क्षत्रियों ने मुनियों का कहना हँसी हँसी में उड़ा दिया और कहा महात्माजी आप अपने रास्ते जाइये तथा आपको उपदेश ही देना हो तो बाजार में जाकर महाजन लोगों को दीजिये हम तो क्षत्रीय हैं और शिकार करना हमारा धर्म है। मुनियों ने कहा वीर क्षत्रियो ! आपका धर्म गरीब पशुओं को मारने का नहीं पर इनकी रक्षा करने का है। किन्हीं स्वार्थी लोगों ने आपको उल्टा रास्ता बतला दिया है। मैं आपको ठीक कहता हूँ कि इन जीवों को अभयदान दीजिये इसमें आपका इस भव में और पर भव में कल्याण है। यह जघन्य कार्य्य आप जैसे उत्तम क्षत्रियों को शोभा नहीं देता है इत्यादि ! इसपर उन क्षत्रियों को बड़ा गुस्सा आया और तलवार निकाल कर उन मुनियों के सामने उन पशुओं के कोमल कंठ पर चलाने लगे पर मुनियों के विद्याबल से उन क्षत्रियों का हाथ जैसे ऊँचा रहा था वैसा ही रह गया। उन्होंने बहुत कोशिश की पर हाथ टस से मस नहीं हुआ। इस अतिशय प्रभाव को देख कर वे क्षत्रीय लोग मंत्रमुग्ध बन गये और सब ही मन में सोचने लगे कि यह क्या हुआ ? क्या इन साधुओं की करामात तो नहीं है पर इस संकट से बचने के लिये अब दूसरा उपाय ही तो क्या था। अतः उन्होंने साधुओं से विनय की कि महात्माजी कृपा कर हमारे अपराध की माफी करावें और हमारे हाथ को छोड़ दीजिये। वीरो ! आपको इतना सा कष्ट हुआ जिसमें ही आप घबरा गये तब दूसरे जीवों के प्राण लेने को आप तैयार हुये हैं। क्या आपकी चमकती तलवार देख इन जीवों को भय नहीं होता होगा। वीर आप इस समय समझे हैं कि इन मूक प्राणियों

ाण नष्ट करने में अपनी बहादुरी समझते होंगे पर किसी भव में आप निर्बल और ये जीव सबल हो तो क्या यह अपना बदला नहीं लेंगे ? उस समय आपका क्या हाल होगा इसको तो थोड़ा सोचो और धर्म को आप मानते हैं उस धर्म के धर्मशास्त्र क्या कहते हैं उनको तो जरा ध्यान लगा कर सुनलीजिये—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत । तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः ! ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोऽत्र मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥
शोणितं यावत पांशून संगृह्णाति महीतलात् । तावतोऽद्वानमुत्रान्यैः शोणितोत्पाद को ऽर्थते ॥
ताडयित्वा तृणेनापि सरम्भान्मति पूर्वकम् । एकविंशतिमाजानीः पापयोनिषु जायते ॥
तामिस्रगन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम् । नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥
एकस्मिन रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् । घातिते घातितं तद्वत्तस्माज्जीवान्न मारयेत् ॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ! । सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिनां दया ॥
आत्मा विष्णुः समस्तानां वासुदेवो जगत्पतिः । तस्मान्न वैष्णवै- कार्या परहिंसा विशेषतः ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अभयं येन भूतेभ्यो दत्तं सर्वसुखावहम् ॥

इत्यादि एक ओर तो क्षत्रियों के तलवार वाले हाथ ज्यों के त्यों खड़े थे और दूसरी ओर धर्म-शास्त्रों का सुनना । बस, वीर क्षत्रियों की आत्मा ने पलटा खाया और उन्होंने कहा महात्माजी ! हम लोगों ने अज्ञान में भ्रमित हो कर बहुत जीवों को सताया, उनके प्राणों को नष्ट किया हैं पर आज आपके उप-देश को सुनकर हम लोगों को इतना तो ज्ञान हो ही गया है कि इतने दिन हम गलत रास्ते पर थे। और निर-पराध जीवों की शिकार कर उनके प्राणों को नष्ट किया जिसका बदला हमको परलोक में अवश्य देना पड़ेगा। परन्तु आज से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने जीवन में हम किसी निरपराधी जीवों को मारना तो दूर पर तकलीफ तक भी नहीं देंगे और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे किये हुये पाप कर्म किसी प्रकार छुट सकते हों तो आप ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे हमारे पापों का क्षय हो जाय ।

मुनियों ने कहा वीरो ! आखिर तो क्षत्रिय, क्षत्रीय ही होते हैं । हमें बड़ी खुशी है कि आप थोडे उपदेश से ठीक रास्ते पर आगये हो । आपको अपने कृत कर्मों का क्षय ही करना है तो जिनेन्द्र भगवान् कथन किये धर्म को स्वीकार कर उसका आराधन करो कि आपके किये कर्मों का नाश हो जायगा । यह ह कर मुनियों ने अपनी विद्या से क्षत्रियों के हाथ खुल्ले कर दिये कि वे अपनी तलवारें म्यान में डालकर मुनियों से पूछने लगे की आपका धर्म तो स्वीकार करने को हम लोग तैयार हैं पर आपके धर्म के क्या नियम हैं ? और उसकी आराधना कैसे हो सकती है ? कृपा कर इस बात को हमें समझाये । मुनियों शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप बतलाया तत्पश्चात् गृहस्थधर्म के बारह व्रत और साधु धर्म के पाच महाव्रत जो इस प्रकार समझाया कि वे समकितमूल जितने व्रत सुविधा से पाल सके उतने व्रत धारण कर मुनियों का उपकार मानते हुए वन्दनकर अपने स्थान चले गये और मुनि भी अपने स्थान पर आये ।

जब युगल मुनि सूरिजी के पास आये और सब हाल कह सुनाया तो सूरिजी बहुत प्रसन्न हुये। कारण, अभ्यागत पुत्र किसको प्यारे नहीं लगते हैं। जब वे युगल मुनियों के बनाये हुये नूतन जैन सरदार सूरिजी के पास आये और दोनों मुनियों की खूब तारीफ की कि पूज्यवर ! हम लोग अज्ञान के वश बिचारे निरपराधी प्राणियों के प्राण हरण कर नरक जान की तैयारियें कर रहे थे पर अकस्मात ही आपका और आपके शिष्यों का कि हम लोगों को बचा लिया। उन क्षत्रियों ने कुछ द्रव्यादि सूरिजी के सामने भेट रख कर प्रार्थना की कि दयालु ! यह द्रव्य हम आप या दोनों मुनियों की सेवा में भेंट करना चाहते हैं। गर्ज कि इन दोनों मुनियों ने हम लोगों पर बहुत उपकार किया है अतः इसको आप स्वीकार करावें। आचार्यदेव ने सोचा कि यह लोग कितने भद्रिक हैं और इनके दिल में देव गुरु धर्म प्रति कितनी भक्ति है पर धर्म के स्वरूप को नहीं जानने से पाखण्डि लोग इनके द्रव्य को हरण कर अपनी इन्द्रियों का पोषण करते हैं। अतः सूरिजी महाराज ने फरमाया कि महानुभावों। हम निर्ग्रन्थों को द्रव्य से कोई प्रयोजन नहीं है। यह द्रव्य तो साधुओं के लिये प्रत्यक्ष दूषणरूप है। यदि इस द्रव्य से कुछ लाभ होता तो हम अपने घर की लक्ष्मी पर लात मार कर योग क्यों लेते ? क्षत्रियों ने कहा पूज्य दयालु ! योग लिया तो क्या हुआ हरेक कार्य के लिए खर्च करने में द्रव्य की तो आवश्यकता रहती ही होगी ?

सूरिजी—देवानुप्रिय ! हमारे किसी भी कार्य के लिए द्रव्य की आवश्यकता नहीं रहती। हम केवल मधुकरी भिक्षा पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं हम हजारों कोसों तक देश विदेश में पैदल भ्रमण करते हैं अतः सवारी या किराए की भी हमें जरूरत नहीं। वस्त्र एवं भिक्षा की जिस समय जरूरत हो उस गृहस्थों के यहाँ से हम स्वयं जाकर थोड़ा २ ले आते हैं कि जिससे गृहस्थ को न तो हमारे लिये रसोई बनानी पड़े न उनको किसी प्रकार की तकलीफ ही उठानी पड़े और हमारा गुजारा भी होजाय। अब आप ही बतलाइए कि दूसरे हमारे क्या कार्य हैं कि जिसके लिए खर्च एवं द्रव्य की आवश्यकता रहे ?

क्षत्रियों ने कहा ठीक गुरु महाराज नगर में तो आपका निर्वाह हो जाता होगा पर आप सैकड़ों साधु किसी छोटे ग्राम में आ निकले वहाँ तो रसोई बनानी ही पड़ती है न ? फिर द्रव्य बिना कैसे काम चलता होगा ?

सूरिजी—अव्वल तो हमारे साधु तपस्या करते हैं और तप करने में वे शूरवीर भी होते हैं। कई मास कई १५ दिन तथा छोटी बड़ी तपस्या किया करते हैं और जहाँ भिक्षा का योग नहीं बने वहाँ खुशी से तपादि करते हैं और यह तो हम योग लिया इसके पहिले ही जानते थे कि हम योग आराम के लिये नहीं लेते हैं। पर खूब कष्ट सहन कर मोक्ष प्राप्त करने के लिये ही लेते हैं। दूसरे साधु होकर द्रव्य रखते हैं उनके पीछे सैकड़ों उपाधियों खड़ी होजाती हैं कि वे योग का साधन कर ही नहीं सकते हैं। गृहस्थ लोग इस द्रव्य को किसी शुभ कार्य में लगाते हैं तो उनके लिए भूषण है नहीं तो नरक ले जाने वाला ही समझना चाहिए इत्यादि सूरिजी ने खूब उपदेश दिया।

क्षत्रिय सुनकर आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने सोचा कि ऐसे निर्लोभी महात्मा तो हमने संसार भर में आज ही देखे हैं। उन्होंने पुनः प्रार्थना की कि हे करुणासिन्धो ! हम तो अपने मकान से इस द्रव्य को आपके भेंट करने को ही लाये थे। अब इसको हम अपने घर में तो रख ही नहीं सकते हैं। आप ही फरमावें हम इस द्रव्य को क्या करें और हमारे पर महान् उपकार करने वाले दोनों मुनियों को हम क्या भेंट दें ?

के प्राण नष्ट करने में अपनी बहादुरी समझते होंगे पर किसी भव में आप निर्बल और ये जीव सबल हो गये तो क्या वह अपना बदला नहीं लेंगे ? उस समय आपका क्या हाल होगा इसको तो थोड़ा सोचो और जिस धर्म को आप मानते हैं उस धर्म के धर्मशास्त्र क्या कहते हैं उनको तो जरा ध्यान लगा कर सुनलीजिये—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत । तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोऽत्र मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥
शोणितं यावत पांशून संगृह्णाति महीतलात् । तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पाद को ऽर्द्यते ॥
ताडयित्वा तृणेनापि सरम्भान्मति पूर्वकम् । एकविंशतिमाजानीः पापयोनिषु जायते ॥
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम् । नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥
एकस्मिन रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् । घातिते घातितं तद्वत्तस्माज्जीवान्न मारयेत् ॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत । । सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिना दया ॥
आत्मा विष्णुः समस्तानां वासुदेवो जगत्पतिः । तस्मान्न वैष्णवै- कार्या परहिंसा विशेषतः ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अभयं येन भूतेभ्यो दत्तं सर्वसुखावहम् ॥

इत्यादि एक ओर तो क्षत्रियों के तलवार वाले हाथ ज्यों के त्यों खड़े थे और दूसरी ओर धर्मशास्त्रों का सुनना । बस, वीर क्षत्रियों की आत्मा ने पलटा खाया और उन्होंने कहा महात्माजी ! हम लोगों ने अज्ञान में भ्रमित हो कर बहुत जीवों को सताया, उनके प्राणों को नष्ट किया हैं पर आज आपके उपदेश को सुनकर हम लोगों को इतना तो ज्ञान हो ही गया है कि इतने दिन हम गलत रास्ते पर थे। और निरपराध जीवों की शिकार कर उनके प्राणों को नष्ट किया जिसका बदला हमको परलोक में अवश्य देना पड़ेगा । परन्तु आज से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने जीवन में हम किसी निरपराधी जीवों को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं देंगे और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे किये हुये पाप कर्म किसी प्रकार से छुट सकते हों तो आप ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे हमारे पापों का क्षय हो जाय ।

मुनियों ने कहा वीरो ! आखिर तो क्षत्रिय, क्षत्रीय ही होते हैं । हमें बड़ी खुशी है कि आप थोड़े से उपदेश से ठीक रास्ते पर आगये हो । आपको अपने कृत कर्मों का क्षय ही करना है तो जिनेन्द्र भगवान् के कथन किये धर्म को स्वीकार कर उसका आराधन करो कि आपके किये कर्मों का नाश हो जायगा । यह कह कर मुनियों ने अपनी विद्या से क्षत्रियों के हाथ खुल्ले कर दिये कि वे अपनी तलवारें म्यान में डालकर मुनियों से पूछने लगे की आपका धर्म तो स्वीकार करने को हम लोग तैयार हैं पर आपके धर्म के क्या नियम हैं ? और उसकी आराधना कैसे हो सकती है ? कृपा कर इस बात को हमें समझाये । मुनियों ने शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप बतलाया तत्पश्चात् गृहस्थधर्म के बारह व्रत और साधु धर्म के पांच महाव्रत को इस प्रकार समझाया कि वे समकितमूल जितने व्रत सुविधा से पाल सके उतने व्रत धारण कर मुनियों का उपकार मानते हुए वन्दनकर अपने स्थान चले गये और मुनि भी अपने स्थान पर आये ।

सूरिजी-इस द्रव्य को आप जिनमन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव वगैरह सुकृत कार्यों में लगा सकते हो और आपके कराये इस महोत्सव के साथ हम उन दोनों मुनियों को आपकी यादगीरी में पण्डित पद दे सकते हैं।

क्षत्रियों ने सूरिजी का कहना शिरोधार्य कर लिया और जिनमन्दिरों में अठाई महोत्सव करवाना प्रारम्भ भी कर दिया तत्पश्चात् उन नूतन श्रावकों के भाव बढ़ाने के लिये तथा उन योग्य साधुओं की योग्यता पर उन दोनों मुनियों को पण्डित पद से विभूषित बना दिये। बाद सूरिजी ने अपने कई साधुओं को वहां ठहरा कर आपने वहा से विहार कर दिया। सत्यपुर, चन्द्रावती, पद्मावती आदि नगरों के लागों को धर्मोपदेश देते हुये सिन्धभूमि में धर्मप्रचार करतेहुए वीरपुर नगर में पधारे। यह तो हम पहिले ही कह आये हैं कि पूर्व जमाने में जैनाचार्य्यों का व्याख्यान मुख्य त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण पर विशेष होता था। यही कारण था कि जनता में त्याग भावना विशेष रहती थी। वीरनगर में बाप्पनाग गौत्रिय गोशल नामक सेठ के राहुली नाम की भार्या थी उसके पुत्र धरण को दीक्षा दे उसका नाम जयानद रख दिया। तत्पश्चात् सूरिजी ने कई अर्सा सिन्ध में विहार कर धर्मप्रचार बढ़ाया। पट्टावलीकारों ने आपके विहार के विषय बहुत लिखा है। आपने कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी, कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, कई तीर्थों की यात्रा की। बहुत अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित कर जैन सख्या को बढ़ाई इत्यादि आपने अपने शासन समय जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। अपने विहार भी खूब दूर दूर प्रदेशों तक किया था। पाचाल पूर्व वगैरह में घूमते घूमते पुनः मरुधर में पधारे। आप अपनी अन्तिमावस्था में नागपुर में विराजते थे।

एक रात्रि आप विचार कर रहे थे कि शायद् अब मेरा आयुष्य बहुत नजदीक ही हो, किसको सूरिपद दूं ? इतने में तो देवी सच्चायिका ने कहा पूज्यवर ! मुनि जयानन्द आपके पद को सुशोभित करने वाला सर्वगुण सम्पन्न है। अत आप मुनि जयानन्द को ही सूरिपद अर्पण कर दीरावें। बस सूरिजी देवी के वचन को 'तथाऽस्तु' कह स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन संघ अग्रेश्वरों को सूचित भी कर दिया जिसमें अदित्यनाग गौत्रिय शाह भेरा ने सूरिपद के लिये बड़े ही समारोह से महोत्सव किया जिसमें शाह भेरा ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया और सूरिजी ने मुनि जयानन्द को सूरिपद देकर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया। तत्पश्चात् सूरिजी निवृतिभाव का सेवन करते हुए अन्तिम शलेखना में लग गये और अन्त में अनशनव्रत की आराधना कर २७ दिनों के अनशन के अन्त में समाधि-पूर्वक नाशवान शरीर को छोड़ स्वर्ग पधार गये।

## आचार्यश्री के शासन मे मुमुक्षुओं की दीक्षा

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १—मादोला | के | भाद्रगौत्री | शाह नाथा | ने दीक्षा ली। |
| २—नाहरपुर | के | बलाहगौत्रीय | रघुवीर | ने सूरि० दीक्षा०। |
| ३—उपकेशपुर | के | श्रेष्टिगौत्रीय | रघुवीर | ने ,, ,, |
| ४—क्षत्रीपुरा | के | श्रेष्टिगौत्रीय | हरदेव | ने ,, ,, |
| ५—विजयपट्टन | के | बाप्पनाग | रामा | ने ,, ,, |
| ६—शालपुर | के | अदित्यनाग | लखमण | ने ,, ,, |
| ७—माडव्यपुर | के | भाद्रगो० | नोदा | ने ,, ,, |
| ८—घाटोवि | के | विरहगो० | धीरा | ने ,, ,, |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ८—मदपुर में सुचन्ता गौ० | शाह | वाना ने | शान्ति | महावीर | प्रतिष्ठा |
| ९—दवौका में मल्ल गौ० | " | माना ने | शान्ति | " | " |
| १०—सिंहपुर में बोहारा गौ | " | गोपाल ने | आदीश्वर | " | " |
| ११—भाकोट में दामम्ब गौ० | " | पेथड़ा ने | महावीर | , | " |
| १२—हस्तिशिला में करनाट गौ० | " | डूंगर ने | " | " | " |
| १३—शालीपुर में कलाट गौ० | " | नेणा ने | " | " | " |
| १४—लोहाकोट में भद्र गौ | " | नीम्बा ने | , | " | " |
| १५—मथुरा में कुलभद्र गौ० | " | नागड़ ने | पार्श्व | " | |
| १६—शौर्यपुर में चोरड़ गौ० | " | खेमड़ा ने | " | " | " |
| १७—चंदेरी में श्री श्रीमाल० | " | बोषा ने | , | " | , |
| १८—आमेर में श्रेष्ठि गौ० | " | कचा ने | " | | , |
| १९—कुशपुर में चोरडिया गौ | " | सूपा ने | महावीर | , | , |
| २०—चंदेरी में सुचंति गौ | " | कालड़ा ने | " | " | " |
| २१—चम्पावती में भूराड़ गौ | , | चोरिल ने | " | | " |
| २२—रामपुर में करनाट गौ० | " | भीमा ने | नेमिनाथ | , | " |
| २३—मालिकपुर में करनाट गौ० | " | लाखा ने | पार्श्वनाथ | " | " |
| २४—बीरपुर में विरहट गौ० | " | रावल ने | " | " | " |
| २५—श्रीमाल में चोरडिया० | " | राणा ने | महावीर | " | " |
| २६—मालपुरी में भूराट० | , | कूपा ने | , | " | , |
| २७—खोलाली में महेश्वरी० | , | फागु ने | " | " | , |
| २८—मदावपुर में राव | , | भादू ने | शान्ति | " | " |
| २९—गंगापुर में पाडुवंशी | " | वासु ने | , | " | " |
| ३०—विक्रमपुर में श्रादित्यनाग | " | केसार ने | सीमधर | " | " |
| ३१—नागपुर में सुचंति | " | मोखम ने | महावीर | " | " |
| ३२—चम्पावती में श्री श्रीमाल | , | खाहड़ ने | | " | " |
| ३३—राजपुर में श्रेष्ठि गौ | " | भादू ने | " | , | , |

पट्ट छवीसवें रत्नप्रभसूरि, पंचम रत्न प्रवीन थे।
जैसे पंचानन सिंह की देखे वादी सब भये दीन थे॥
देश विदेश में विहार करके, नये जैन बनाते थे।
उग्र विहारी शुद्ध आचारी, संख्या खूब बढ़ाते थे॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २६ वें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य

६—हँसावली से सुचति गौ० शाह धरणानेश्री शत्रुंजय का संघ निकाला
७—दुर्गापुर से श्री श्रीमाल० „ मोकलने „
८—नन्दपुर से भूरि गौ० „ मौथा ने „
९—उपकेशपुर से माद्र गौ० „ कजल ने „
१०—वैराट नगरसे बलहा गौ० „ कुर्मा ने „
११—चित्रकोट से करणाट गौ० „ खेतशीने „
१२—दशपुर से कुमट गौ० „ खीमड़ ने „
१३—उज्जैननगरीसे ब्राह्मणवशी „ पुरुषोत्तम ने „
१४—मालपुरा से क्षत्रिय वशी राव „ गेहलड़ा ने „
१५—डामरेलनगरसे प्राग्वटवशी „ गोवीन्दने „
१६—तक्षिशाल से प्राग्वटवंशी „ गोपाल ने „
१७—मुग्धपुर से श्रीमाल वशी „ चचग ने „
१८—नागपुर से कनोजिया गौ० „ चसराने „
१९—भवानीपुर से लघु श्रेष्टि गौ० „ शाखलाने „
२०—उपकेशपुर के राव दाहड़ की पुत्री शृँगार ने एक बड़ा तलाव खुदाया
२१—नागपुर में श्रेष्टि नारायण की स्त्री कम्मली ने एक तलाव खुदाया
२२—मेदनीपुर के राव हनुमत की पुत्री पेपा ने एक कुँवा खुदवाया
२३—हिड्डनगर के बाप्पनाग देदाने दुकालमें एक बड़ा तलाव खुदाया
२४—शिवगढ़ के मंत्री मुरार संग्राम में पंचत्व को प्राप्त हुआ उसकी दो स्त्रियें सतियाँ हुई जेठ वद ४ के दिन मेला भरीजे
२५—माडव्यपुर के हिडु मैंकरण युद्ध में मरा गया जिसकी स्त्री सोहाग सती हुई माघ शुद्ध ७ का मेला भरीजे सती की पूजा हुवे
२६—सारणी ग्राम का राव जुजार युद्ध में काम आया जिसकी स्त्री सती हुई जिसका चातरा गाव से पूर्व दिशा में एक कोश दूर वहाँ मेला भरता है।

## आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—श्री शत्रुञ्जय पर शाह नन्द ने भगवान् आदीश्वर के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
२—मधुमति में हिडु गौत्रीय शाह भूता ने महावीर मन्दिर प्रतिष्ठाए।
३—कपीलपुर में कुमट गौ० „ शार्दुल ने „ „ „
४—वर्द्धमानपुर में कनोजिय गौ० „ हेमा ने पार्श्व० „ „
५—रावड़ में आदित्यनाग० „ कुराने „ „ „
६—पुन्दड़ा में बाप्पनाग गौ० „ पुराने महावीर „ „
७—भुजपुर में चरड गौ० „ शूरा ने „ „ „

| नम्बर | तीर्थंकर नाम | भव | च्यवन तिथी | च्यवन स्थान | गर्भ स्थिति मास—दिन | जन्म नगरी | जन्म तिथी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३६ | ३७ | ३८ | ३९ | ४० | ४१ | ४२ | ४३ |
| १ | श्री ऋषभदेव | १३ | असाढ़ वद ४ | सर्वार्थ सिद्ध | ९—४ | वनिता | चैत्र वद ८ |
| २ | श्री अजितनाथ | ३ | वैशाख शुद १३ | विजय वि० | ८—२५ | अयोध्या | महा शुद ८ |
| ३ | श्री सम्भवनाथ | ३ | फागण शुद ८ | सातवा ग्रैवे | ९—६ | सावथ्थी | महा शुद १४ |
| ४ | श्री अभिनंदन | ३ | वैशाख शुद ४ | जयन्त वि० | ८—२८ | अयोध्या | महा शुद २ |
| ५ | श्री सुमतिनाथ | ३ | श्रावन शुद २ | ,, | ९—६ | ,, | वैशाख शुद ८ |
| ६ | श्री पद्मप्रभ | ३ | महा वदी ६ | नौवा ग्रैवे | ९—६ | कौसम्बी | कार्ति० वद १२ |
| ७ | श्री सुपार्श्वनाथ | ३ | भादवा वद ८ | छट्टा ग्रैवे | ९—१९ | वनारसी | जेठ शुद १२ |
| ८ | श्री चन्द्रप्रभ | ३ | चैत्र वद ५ | विजयन्त वि० | ९—७ | चन्द्रपुरी | पोष वद १२ |
| ९ | श्री सुविधिनाथ | ३ | फागण वद ९ | आनत देव | ८—२६ | काकदी | महा वद ५ |
| १० | श्री शीतलनाथ | ३ | वैशाख वद ६ | प्राणत देव० | ९—६ | भद्दिलपुर | महा वद १२ |
| ११ | श्री श्रेयांसनाथ | ३ | जेठ वद ६ | अच्युत देव० | ९—६ | सिंहपुरी | फागण वद १२ |
| १२ | श्री वासुपुज्य | ३ | जेठ शुद ९ | प्राणत देव० | ८—२० | चंपापुरी | कार्ति वद १४ |
| १३ | श्री विमलनाथ | ३ | वैशाख शुद ११ | सहस्र देव० | ८—२१ | कपिलपुर | महा शुद ३ |
| १४ | श्री अनंतनाथ | ३ | श्रावन वद ७ | प्राणत देव० | ९—६ | अयोध्या | वैशाख वद १३ |
| १५ | श्री धर्मनाथ | ३ | वैशाख शुद ७ | विजय वि० | ९—२६ | रत्नपुरी | महा शुद ३ |
| १६ | श्री शांतिनाथ | १२ | भादवा वद ७ | सर्वार्थ सिद्ध | ९—६ | गजपूर | जेठ वद १३ |
| १७ | श्री कुंथुनाथ | ३ | श्रावन वद ९ | ,, | ९—५ | ,, | वैशाख वद १४ |
| १८ | श्री अरिनाथ | ३ | फागन शुद १२ | ,, | ९—८ | ,, | माह शुद १० |
| १९ | श्री मल्लिनाथ | ३ | फागन शुद ४ | जयन्त वि० | ९—७ | मथुरा | ,, ११ |
| २० | श्री मुनिसुव्रत | ९ | श्रावन शुद १५ | अपराजित | ९—८ | राजगृही | जेठ वद ८ |
| २१ | श्री नमिनाथ | ३ | आसोज शुद १५ | प्राणत देव० | ९—८ | मथुरा | श्रावन वद ८ |
| २२ | श्री नेमिनाथ | ९ | कातिक वद १२ | अपराजित वि० | ९—८ | सौरिपूर | श्रावन शुद ५ |
| २३ | श्री पार्श्वनाथ | १० | चैत्र वद ४ | प्राणत देव० | ९—६ | बनारसी | पोष वद १० |
| २४ | श्री महावीर | २७ | आसाढ़ शुद ६ | ,, | ९—७ | क्षत्रिय कुंड | चैत्र शुद १३ |

८—शेष तीर्थंकरों के तीन तीन भव १—मनुष्य २—देव ३—तीर्थङ्कर।

२—तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन करने के बीस कारण हैं यथा—अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन ( पांच समिति, तीन गुप्ती ) गुरु, स्थविर, बहुश्रुत, तपस्वी, ज्ञानी, दर्शन विनय, आवश्यक ( प्रतिक्रमण ), व्रत, तप, ध्यान, दान, व्यावच्च, समाधि, अपूर्वज्ञानपठन, श्रुतकीभक्ति और शासन की प्रभावना इन बीस बोलों की आराधना करने से जीव तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन करता है। ( "श्री ज्ञाता सूत्र अ० ८ वाँ )"

३—श्री तीर्थङ्करदेव के जन्म समय छप्पन दिशा कुमारी देवियां के आसन चलायमान होते हैं तब वे अवधि ज्ञान लगा कर जानती है कि देवाधिदेव के जन्म हुआ अत हमारा कर्तव्य है कि हम जाकर

| गौत्र | शरीर | आयुष्य | वर्ण | पदवी | लग्न | पुत्र | कुमारावस्था | दीक्षापरिवार |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५३ | ५४ | ५५ | ५६ | ५७ | ५८ | ५९ | ६० | ६१ |
| काश्यप गौत्र | ५००ध० | ८४ल० पू० | सुवर्ण | राजा | लग्न हुआ | १००-२ | २० लक्ष पूर्व | ४००० |
| " | ४५० " | ७२ " | " | " | " | ००० | १८ " " | १००० |
| " | ४०० " | ६० " | " | " | " | ३ | १५ " " | " |
| " | ३५० " | ५० " | " | " | " | ३ | १२॥ " " | " |
| " | ३०० " | ४० " | " | " | " | ३ | १० " " | " |
| " | २५० " | ३० " | लालवर्ण | " | " | १३ | ७॥ " " | " |
| " | २०० " | २० " | सुवर्ण | " | " | १७ | ५ " " | " |
| " | १५० " | १० " | श्वेत | " | " | १८ | २॥ " " | " |
| " | १०० " | २ " | " | " | " | १९ | ५० हजार पूर्व | " |
| " | ९० " | १ " | सुव | " | " | १४ | २५ " " | " |
| " | ८० " | ८४ लाख वर्ष | " | " | " | ९९ | २१ लक्ष वर्ष | " |
| " | ७० " | ७२ " | लालवर्ण | कुमार | " | १४ | १८ " " | ६०० |
| " | ६० " | ६० " | सुवर्ण | राजा | " | ० | १५ " " | १००० |
| " | ५० " | ३० " | " | " | " | ८८ | ७॥ " " | " |
| " | ४५ " | १० " | " | " | " | १९ | २॥ " " | " |
| " | ४० " | १ " | " | चक्री | ६४०००स्त्री | १॥ कोड़ | २५००० " | " |
| " | ३५ " | ९५००० | " | " | " | १॥ कोड़ | २३७५० " | " |
| " | ३० " | ८४००० | " | " | " | १॥ कोड़ | २१००० " | " |
| " | २५ " | ५५००० | निल | कुमारी | नहीं हुआ | ० | १०० " | ३०० |
| " | २० " | ३०००० | श्याम | राजा | हुआ | १९ | ७५०० " | १००० |
| गौतमगौत्र | १५ " | १०००० | सुवर्ण | " | " | ० | २१०० " | " |
| काश्यप | १० " | १००० | श्याम | कुमार | नहीं | ० | ३०० " | " |
| गौतमगौत्र | ९ हाथ | १०० | निल | " | हुआ | ० | ३० " | ३०० |
| काश्यप | ७ " | ७२ वर्ष | सुवर्ण | " | " | १ पुत्री | ३० " | ऐकला |

चार चार महत्तर देवियों, चार चार हजार सामानिकदेव, सोलह सोलह हजार आत्मरक्षक देव और सात सात अनिकादि देवी देवता का परिवार होता हैं।

४—इन्द्र भुवन पतियों के २० वाणमित्रों के ३२ ज्योतिषियों के २ और विमानीकों के १० सर्व ६४ इन्द्र हैं प्रभु के जन्म समय शक्रेन्द्र प्रभु के जन्म स्थान और ६३ इन्द्र मेरु पर आते हैं। इन्द्रों का कर्त्तव्य है कि वें प्रभुका प्रतिबिम्ब बनाना २—पाच रूपकर एक रूप प्रभुको हस्तांजलि में लेवे ३—आठहजार चौसट कलसों से प्रभु का अभिषेक करावे ५—प्रभु के शरीर के गौसीस चन्देन चर्चना ५—अंग अग्र पूजा करे ६—वस्त्र भूषण धारण करावे ७—प्रभु को माता के पास रख प्रतिबिंब को अपहरण करना ८—प्रभु

| ज्ञान नगरी ७० | ज्ञान तिथी ७१ | ज्ञान तप ७२ | गणधर ७३ | प्रथम गणधर ७४ | प्रथम आर्या ७५ | वैक्रिय मुनी ७६ | वादी मुनि ७७ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पुरिमताल | फागण वद ११ | अट्ठम तप | ८४ | पुंडरिक | ब्राह्मी | २०६०० | १२६५० |
| अयोध्या | पौष शु ,, ,, | छट्ठम तप | ९५ | सिंह सेन | फाल्गु | २०४०० | १२४०० |
| सावथ्थी | काती वद ,, ,, | ,, | १०२ | चारु | श्यामा | १९८०० | १२००० |
| अयोध्या | पौष शु ,, १४ | ,, | ११६ | वज्रनाभ | अजिता | १९००० | ११००० |
| ,, | चैत्र शुद ११ | ,, | १०० | चरम | कास्यपि | १८४०० | १०४०० |
| कौशांबी | चैत्र शुद १५ | ,, | १०७ | पद्योत्तर | रति | १६१०८ | ९६०० |
| वणारसी | फाग वद ६ | ,, | ९५ | विदर्भ | सोमा | १५३०० | ८४०० |
| चन्द्रपुरी | ,, ,, ७ | ,, | ९३ | दिन्न | सुमना | १४००० | ७६०० |
| काकन्दी | कार्ति शुद ३ | ,, | ८८ | वराहक | वारुणी | १३००० | ६००० |
| भदिलपुर | पौष वद १४ | ,, | ८१ | नंद | सुयसा | १२००० | ५८०० |
| सिंहपुरी | महा वद ३० | ,, | ७६ | कौस्तु | धारणी | ११००० | ५००० |
| चम्पापुरी | ,, शुद २ | चौथ भक्त | ६६ | सुभूम | धरणी | १०००० | ४७०० |
| कंपिलपुर | पौष ,, ६ | छट्टतप | ५७ | मंदर | धरा | ९००० | ३६०० |
| अयोध्या | वैशाख वद १४ | ,, | ५० | यस | पद्मा | ८००० | ३२०० |
| रत्नपुरी | पोष शुद १५ | ,, | ४३ | अरिष्ट | आर्य शिवा | ७००० | २८०० |
| गजपुर | ,, ,, ९ | ,, | ३६ | चक्रयुद्ध | शुचि | ६००० | २४०० |
| ,, | चैत्र ,, ३ | , | ३५ | श म्ब | दामिनी | ५१०० | २००० |
| ,, | कार्ति ,, १२ | ,, | ३३ | कु भ | रक्षिता | ७३०० | १६०० |
| मथुरा | मगसर ,, ११ | अठम | २८ | अभिक्षक | बधुमति | २९०० | १४०० |
| राजगृही | फाग वद १२ | छट्ठतप | १८ | मल्ली | पुष्पमति | २००० | १२०० |
| मथुरा | मगसर शुद ११ | ,, | १७ | शुम्भ | अगिला | ५००० | १००० |
| गिरनार | आ० वद ३० | अट्ठम | +११ | वरदत्त | यक्ष दिन्ना | १५०० | ८०० |
| वणारसी | चैत्र वदी १४ | ,, | ×१० | आर्य शुभदत्त | पुष्पचुला | ११०० | ६०० |
| ऋज वालिकनदी | वैशाख शुद १० | छट्ट तप | ११ | इन्द्रभूति | चन्दनबाला | ७०० | ४०० |

\+ कल्पसूत्र में १८ कहा है × कल्पसूत्र में ८ कहा है, शायद दो अल्प समय में मोक्ष गये हों।

६—तीर्थंकरदेव का रूप—मंडलीक राजा, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, व्यान्तरदेव, भुवनपतिदेव, ज्योतिषीदेव, वैमानिकदेव, नौग्रीवैग के देव, चारानुतरवैमान के देव, सर्वार्थसिद्ध वैमान के देव, आहारीक शरीर और गणधरों के रूप की एक रासी की जाय तो उस रूप से भी तीर्थंकरों का रूप अनन्त गुणा है।

७—तीर्थंकरदेव का बल—ससार में मनुष्य देव और तिर्यच इन सबका बल एक ओर एकत्र करले तो भी तीर्थंकरों का बल अनन्त गुणा है। तीर्थंकरदेव के वीर्य अन्तराय का सर्वनाश होने से वे अनन्त बली कहलावे हैं।

८—तर्थंकरों का वर्षी दान जैसे प्रात समय से भोजन के समय तक तीर्थंकर भगवान् प्रतिदिन

| भक्त राजाओं का नाम ८६ | यक्ष ८७ | यक्षणि ८८ | मोक्ष ८९ | मोक्ष तिथि ९० | मोक्ष तप ९१ | मोक्षासन ९२ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| भरत चक्रवर्ति | गोमुख | चक्रेश्वरी | अष्टापद | माहावद १३ | ६ उपवास | पद्मासन |
| सागर ,, | महायक्ष | अजित बाला | समेतशिखर | चैत्र शुद ५ | एक मास | कायोत्सर्ग |
| मृगसेन राजा | त्रिमुख | दुरितारी | ,, | , | ,, | ,, |
| मित्र वीर्य ,, | यक्षेश | कालिका | ,, | वैशा, शुद ८ | ,, | ,, |
| सत्य वीर्य ,, | तुंबर | महाकाली | ,, | चैत्र ,, ९ | ,, | ,, |
| अजितसेन ,, | कुसुम | अच्युता | ,, | मागसर वद ११ | ,, | ,, |
| दानवीर्य , | मातंग | शांता | ,, | फाग वद ७ | ,, | , |
| मघवा चक्रवर्ति ,, | विजय | ज्वाला | ,, | भाद्र वद ७ | ,, | ,, |
| युद्धवीर्य राजा ,, | अजित | सुतारिका | ,, | , शुद ९ | ,, | |
| सीमन्धर ,, | ब्रह्मा | अशोका | ,, | वैशा, वद २ | ,, | ,, |
| त्रिपृष्ठ वासुदेव | ईश्वर | मानवी | ,, | श्रावण ,, ३ | ,, | ,, |
| त्रिपृष्ठ , | कुमार | प्रचण्डा | चंपा पूरी | असा शुद १४ | . | ,, |
| स्वंभु ,, | षट्मुख | विदिता | समेत सि० | ,, वद ७ | ,, | ,, |
| पुरुषोत्तम ,, | पाताल | अंकुशा | ,, | चैत्र शुद ५ | ,, | ,, |
| पुरुषसिंह ,, | किन्नर | कंदर्पा | ,, | जेठ शु० ५ | , | ,, |
| कोणालक राजा | गरुड़ | निर्वाणी | ,, | ,, वदी १३ | ,, | ,, |
| कुबेर नृपति | गंधर्व | बला | ,, | वैशा वद १ | ,, | ,, |
| सुभूम चक्री | यक्षेन्द्र | धरणी | , | मागसर शुद १० | ,, | ,, |
| अजितराजा | कुबर | धरण प्रिया | , | फाग ,, १२ | ,, | ,, |
| विजयमहनृप | वरुण | नरदत्ता | , | जेठ वदी ९ | ,, | ,, |
| हरिषेण चक्री | भृकुटी | गंधारी | ,, | वैशा ,, १० | ,, | ,, |
| श्रीकृष्ण वासुदेव | गोमेध | अंबिका | गिरनार | असा शुद ८ | , | पद्मासन |
| प्रसेनजित राजा | पार्श्व | पद्मावती | समेत शि० | श्राव शुद ८ | ,, | कायोत्सर्ग |
| श्रेणिक राजा | मातंग | सिद्धायिका | पावापुरी | काती वद १५ | छठ तप | पद्मासन |

१२—तीर्थङ्करदेव १८ दोष रहित होते हैं जैसे दानान्तराय, लाभ०, भोग०, उपभोग० वीर्य०, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, काम, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगप्सा, राग, द्वेष, और निद्रा एव अठाहरा दोष। अथवा हिंसा, झूठ, चोरी, क्रीड़ा, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, मत्सर, अज्ञान, निद्रा, और प्रेम एवं अठारह दोषों से रहित हो वेही सच्चे देव कहलाते है।

१३—तीर्थङ्करदेव के अतिशय—विशेष गुण, जन्म समय ४ घनघाती कर्मों का क्षय होने से ११ देवकृत १९ एव सब ३४ अतिशय होते हैं। जन्म समय १—शरीर अनन्त गुण, रूप, सयुक्त सुगन्धी, रोग, मल परसेवा (पसीना) रहित २—रुद्र, मांस गाय के दूध जैसा उज्वल और दुर्गन्ध रहित है। ३—आहार

| | जिन नाम १०० | नगरी १०१ | माता १०२ | पिता १०३ | स्त्री १०४ | लञ्छन १०५ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | श्री सीमधर | पुडरिगिणी | सत्य की देवी | श्रीयंश राजा | रुकमणी | वृषभ |
| २ | श्री युगमधर | सुसीमा | सुतारा " | सुदृढ़ " | प्रियमगला | गज |
| ३ | श्री बाहु | वितशोका | विजया " | सुग्रीव " | मोहनी | हरिण |
| ४ | श्री सुबाहु | विजया | सुनन्दा " | निसढ़ " | किंपुरिपा | वन्दर |
| ५ | श्री सुजात | पुडरिगिणी | देवसेना " | देवसेन " | जयसेना | सूर्य |
| ६ | श्री स्वयप्रभ | सुसीमा | सुमगला " | मित्रभुवन " | प्रियसेना | चन्द्र |
| ७ | श्री ऋपभानन | वितशोका | वीरसेना " | कीर्तिराजा " | जयावती | सिंह |
| ८ | श्री अनन्तवीर्य | विजया | मंगलावती " | मेघराजा " | विजया | हस्ती |
| ९ | श्री सूरप्रभ | पुंडरिगिणी | विजयावती " | विजयसेन " | नदसेना | चन्द्र |
| १० | श्री विशाल | सुसीमा | भद्रावती " | श्रीनाग " | विमला | सूर्य |
| ११ | श्री वज्रधर | वितशोका | सरस्वती " | पद्मरथ " | विजयावती | वृषभ |
| १२ | श्री चन्द्रानन | विजया | पद्मावती " | वाल्मीक " | लीलावती | " |
| १३ | श्री चन्द्रबाहु | पुडरिगिणी | रक्षिका " | देवानन्द " | सुगन्धा | पद्मकमल |
| १४ | श्री भुंजग | सुसीमा | महिमा " | महाबल " | गधसेना | , |
| १५ | श्री ईश्वर | वितशोका | जशोजला " | गजसेन " | भद्रावती | चन्द्र |
| १६ | श्री नेमिप्रभ | विजया | सेनादेवी " | वीरराज " | मोहनी | सूर्य |
| १७ | श्री वीरसेन | पुडरिगिणी | भानुमती " | भूमिपाल " | राजसेना | हस्ती |
| १८ | श्री महाभद्र | सुसीमा | ऊमादेवी " | देवराज " | सुरिकांता | वृषभ |
| १९ | श्री देवजसा | वितशोका | गगादेवी " | सर्वभूति " | पद्मावती | चन्द्र |
| २० | श्री अजितवीर्य | विजया | कानिकादेवी " | राजपाल " | रत्नावती | स्वास्तिक |

३—पादपीठ सहित स्फटिक रत्न मडित सिंहासन हो ४ चारों दिशा में ऊपर तीन तीन छत्र हो ५—रत्नमय इन्द्रध्वज प्रभु के आगे चले ६—सुवर्णमय नौ कमल जिस पर प्रभु पैर रखकर चले और कमल भी स्वय चलते रहें ७ मणि सुवर्ण रजित मय तीन गढ़ वाला समवसरण हो ८—प्रभु चौमुख देशना दें जिसमें तीन दिशा देवता प्रतिबिंब रखे ९—प्रभु से बारह गुणा अशोक वृक्ष जो छत्र घटा पताक सयुक्त हो १०—मार्ग के काटा अधोमुख हो ११—प्रभु गमन करे तब सर्व वृक्ष नमन भाव से प्रभु को प्रणाम करे १२—आकश में देव दूधवी बाजती रहे १३—पवन—वायु अनुकूल चले १४—पाक्षी जीव प्रभु को प्रदिक्षणा करते जाय १५—सुगन्धी जल वृष्टि हो १६—ढींचण प्रमाणे सुगधी पुष्प की वृष्टि हो १७—दीक्षा लेने के बाद ढाढी मूछ के बाल नहीं बढ़े १८—कम से कम चारों निकाय के एक करोड़ देव प्रभु की सेवा में रहे १९—छओऋतु अनुकूल और अपने २ समय फलवती हो इत्यादि एव उन्निश अतिशय देवकृत होते हैं एव ४-११-१९ सर्व मिला कर ३४ अतिशय सर्व तीर्थंकर देवों के होते हैं।

१३—तीर्थङ्करदेव के पुन चार अतिशय १—अपायापगम अतिशय-विहार क्षेत्र में चारों ओर १२५

| नं० | नाम | पदवी | माता नाम | पिता नाम | नगरी | शरीरमान | आयुष्य | गति | दिग्विजय समय | तीर्थंकरवारा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | भरत | चक्रवर्ति | सुमंगला | ऋषभदेव | अयोध्या | ५०० धनु | ८४ लपू | मोक्ष | ६०००० वर्ष | ऋषभदेव |
| २ | सागर | चक्रवर्ति | यशोमति | सुमित्र | ,, | ४५० धनु | ७२ ,, ,, | ,, | ३२००० ,, | अजितनाथ |
| ३ | अचल | बलदेव | भद्रा | प्रजापति | पोतनपुर | ८० ,, | ८५ल०वर्ष | ,, | | श्रेयांसजिन |
| ४ | त्रिपृष्ट | वासुदेव | मृगावती | ,, | ,, | ,, | ८४ ,, ,, | ७ धीन | १००० वर्ष | ,, |
| ५ | अश्वग्रीव | प्रतिव सु | नीलांजना | मयूरग्रीव | रत्नपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| ६ | विजय | बलदेव | सुभद्रा | ब्रह्म | द्वारका | ७० धनु | ७५ ,, ,, | मोक्ष | | ,, |
| ७ | द्विपृष्ट | वासुदेव | ऊमादेवी | ,, | ,, | ,, | ७२ ,, ,, | ६ ठी न, | १०० वर्ष | वासुपूज्य |
| ८ | तारक | प्रतिवासु० | श्रीमती | श्रीधर | विजयपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| ९ | सुभद्र | बलदेव | सुप्रभा | रुद्र | द्वारका | ६० धनु | ६५ ,, , | मोक्ष | | , |
| १० | स्वयंभू | वासुदेव | पृथ्वी | ,, | ,, | ,, | ६० ,, ,, | ६ ठी न | ९० वर्ष | विमलनाथ |
| ११ | मेरक | प्रतिवासु० | सुन्दरी | समरकेसरी | नन्दनपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| १२ | सुप्रभ | बलदेव | स्निग्धा | सोम | द्वारका | ५० धनु | ५५ ,, ,, | मोक्ष | | ,, |
| १३ | पुरुषोतम | वासुदेव | सुदर्शना | ,, | ,, | ,, | ३० ,, ,, | ६ ठी न. | ८० वर्ष | अनन्तनाथ |
| १४ | मधु | प्रतिवासु. | गुणवती | विलास | पृथ्वीपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| १५ | सुदर्शन | बलदेव | विजया | शिव | अश्वपुर | ४५ धनु | १७ ,, | मोक्ष | | ,, |
| १६ | पुरुषसिंह | वासुदेव | अम्बिका | ,, | ,, | ,, | १० ,, | ६ ठी न. | ७० वर्ष | धर्मनाथ |
| १७ | निक्षुभ | प्रतिवासु | ० | ० | हरिपुर | ,, | १० ,, | ,, | | ,, |
| १८ | मघवा | चक्रवर्ति | भद्रा | समुद्रवि० | श्रावस्ती | ५० धनु | ५ ,, | तीजा दे | १००० वर्ष | ,, |
| १९ | सनत्कुमार | ,, | सहदेवी | अश्वसेन | हस्तनापुर | ४५ ,, | ३ ,, | ,, | ,, | ,, |
| २० | शान्तिनाथ | ,, | अचरा | विश्वसेन | ,, | ४८ ,, | १००००० | मोक्ष | ८०० वर्ष | शान्तिनाथ |
| २१ | कुंथुनाथ | , | श्रीमाता | शूर | ,, | ३५ ,, | ९५००० | , | ६०० ,, | कुन्थुनाथ |
| २२ | अरनाथ | ,, | श्रीदेवी | सुदर्शन | ,, | ३० ,, | ८४००० | ,, | ४०० ,, | अरनाथ |
| २३ | आनन्द | बलदेव | विजयति | महाशिर | चक्रपुर | २९ ,, | ८५००० | ,, | ० | ,, |
| २४ | पु० पुण्डरीक | वसुदेव | लक्ष्मीदवी | ,, | ,, | ,, ,, | ६५००० | ६ ठी न | ५० वर्ष | ,, |
| २५ | बली | प्रतिवासु० | तारादवी | मेघनाद | अरिजय | ,, ,, | ,, | ,, | • | ,, |
| २६ | सुभूम | चक्रवर्ति | तारा | कृतवीर्य | हस्तनापुर | २८ ,, | ६०००० | ७ धीन | ५०० वर्ष | ,, |

| नं० | नाम | पदवी | माता नाम | पिता नाम | नगरी | शरीरमान | आयुष्य | गति | छिग वि समय | तीर्थङ्करवारा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | भरत | चक्रवर्ति | सुमगला | ऋषभदेव | अयोध्या | ५०० धनु | ८४ छ पू | मोक्ष | १०००० वर्ष | ऋषभदेव |
| २ | सागर | चक्रवर्ति | यशोमति | सुमित्र | ,, | ४५० धनु | ७२ ,, ,, | ,, | ३२००० ,, | अजितनाथ |
| ३ | अचल | बलदेव | भद्रा | प्रजापति | पोतनपुर | ८० ,, | ८५ छ० वर्ष | ,, | | श्रीयसजिन |
| ४ | त्रिपृष्ट | वासुदेव | मृगावती | ,, | ,, | ,, | ८४ ,, ,, | ७ वीन | १००० वर्ष | ,, |
| ५ | अर ग्रीव | प्रतिव सु | नीलांजना | मयूरग्रीव | रत्नपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| ६ | विजय | बलदेव | सुभद्रा | ब्रह्म | द्वारका | ७० धनु | ७५ ,, ,, | मोक्ष | | ,, |
| ७ | द्विपृष्ट | वासुदेव | ऊमादेवी | ,, | ,, | ,, | ७२ ,, ,, | ६ ठी न | १०० वर्ष | वासपूज्य |
| ८ | तारक | प्रतिवासु० | श्रीमती | श्रीधर | विजयपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| ९ | सुभद्र | बलदेव | सुप्रभा | रुद्र | द्वारका | ६० धनु | ६५ ,, , | मोक्ष | | ,, |
| १० | स्वयंभू | वासुदेव | पृथ्वी | ,, | ,, | ,, | ६० ,, ,, | ६ ठी न | ९० वर्ष | विमलनाथ |
| ११ | मेरक | प्रतिवासु० | सुन्दरी | समरकेसरी | नन्दनपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| १२ | सुप्रभ | बलदेव | स्निग्धा | सोम | द्वारका | ५० धनु | ५५ ,, ,, | मोक्ष | | ,, |
| १३ | पुरुषोत्तम | वासुदेव | सुदर्शना | ,, | ,, | ,, | ३० ,, ,, | ६ ठी न | ८० वर्ष | अनन्तनाथ |
| १४ | मधु | प्रतिवासु | गुणवती | विलास | पृथ्वीपुर | ,, | ,, | ,, | | ,, |
| १५ | सुदर्शन | बलदेव | विजया | शिव | अश्वपुर | ४५ धनु | १७ ,, | मोक्ष | | ,, |
| १६ | पुरुषसिंह | वासुदेव | अम्बिका | ,, | ,, | ,, | १० ,, | ६ ठी न. | ७० वर्ष | धर्मनाथ |
| १७ | निशुम्भ | प्रतिवासु | ० | ० | हरिपुर | ,, | १० ,, | ,, | | ,, |
| १८ | मघवा | चक्रवर्ति | भद्रा | समुद्रवि० | श्रावस्ती | ५० धनु | ५ ,, | तीजा दे | १००० वर्ष | ,, |
| १९ | सनत्कुमार | ,, | सहदेवी | अश्वसेन | हस्तनापुर | ४५ ,, | ३ ,, | ,, | ,, | ,, |
| २० | शान्तिनाथ | ,, | अचरा | विश्वसेन | ,, | ४० ,, | १००००० | मोक्ष | ८०० वर्ष | शान्तिनाथ |
| २१ | कुंथुनाथ | , | श्रीमाता | सूर | ,, | ३५ ,, | ९५००० | , | ६०० ,, | कुन्थुनाथ |
| २२ | अरनाथ | ,, | श्रीदेवी | सुदर्शन | ,, | ३० ,, | ८४००० | ,, | ४०० ,, | अरनाथ |
| २३ | आनन्द | बलदेव | विजयति | महाशिर | चक्रपुर | २९ ,, | ८५००० | ,, | ० | ,, |
| २४ | पु० पुण्डरीक | वसुदेव | लक्ष्मीवती | ,, | ,, | ,, ,, | ६५००० | ६ ठी न | ५० वर्ष | ,, |
| २५ | बली | प्रतिवासु० | ताराधरी | मेघनाद | अरिजय | ,, ,, | ,, | ,, | • | ,, |
| २६ | सुभूम | चक्रवर्ति | तारा | कृतवीर्य | हस्तनापुर | २८ ,, | १०००० | ७ वीन | ५०० वर्ष | ,, |

# प्रस्तावना

यह बात प्राकृतिक सत्य है कि सूर्य्य उदय होकर अपनी अवधि के पश्चात् अस्त भी हो जाता है, ठीक इसी
कार संसार-चक्र में भी कई जातियों, समाजों, एवं राष्ट्रों का उदय और अस्त ( उत्थान-एवं पतन ) हुआ करता है। यह
त्थान और पतन की घटमाला ( क्रिया ) अनादि काल से चली आई है और भविष्य में भी चलती रहेगी। यही नियम
जैन धर्म के प्रति भी समझना चाहिये। एक समय वह था कि जैन धर्म एवं जैन समाज उन्नति के उच्च शिखर पर विराज
मान था, पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक जैन धर्म का झंडा फहरा रहा था। इतना ही नहीं, कई पाश्चात्य देशों में
भी जैन धर्म का काफ़ी प्रचार था, जिसको वहां कि भूमि-खोद ( अन्वेषण-विभाग ) के काम से उपलब्ध मन्दिर, मूर्तियों
के खण्डहर पूर्णतः प्रमाणित कर रहे हैं इत्यादि। किन्तु उपरोक्त काल चक्र ( परिवर्तन चक्र ) के नियमानुसार जैन धर्म
की यह स्थिति न रह सकी और वह उन्नति के उच्च शिखर से शनैः २ अवनत दशा को प्राप्त करता गया।

वर्तमान जैन समाज की पतन अवस्था को देख कर किस समझदार व्यक्ति के हृदय में गहरा दुःख न होगा।
इस पतनावस्था का भी कोई न कोई कारण तो अवश्य ही ( होगा ) होना चाहिये! यों तो पतन के अनेक कारण हो
सकते हैं किन्तु यदि हम दीर्घ दृष्टि से अन्वेषण करें तो यही मालूम होगा कि मुख्य कारण, जैन समाज का अपने पूर्वजों के
गौरवमय इतिहास को भूल जाना है। यही कारण है कि जैन-समाज की नसों में अपने पूर्वजों के गौरवशाली रक्त के प्रवाह
का शिथिलता, ओज की हीनता और इतिहास की अनभिज्ञता व्यापक है। इन्हीं कारण से आज वह मुर्दा समाज की
उपाधि धारण कर अपना नाम उसीपक्ति में लिखाने को तत्पर हो गया है। जिस प्रकार मृतक को हेमगर्भ व कस्तूरी अथवा
चन्द्रोदय एवं तत्समान ही अमूल्य औषधियें देने पर भी उसमें चैतन्यता नहीं आती, ठीक इसी प्रकार आज जैन समाज
का हाल हो रहा है।

जैन समाज में अभी ऐसे मनुष्यों का भी अभाव नहीं है कि जो इस जाग्रति के युग अर्थात् बीसवी सदी में
जन्म लेकर भी यह नहीं जानते कि इतिहास किस चिड़िया का नाम है? अगर उनको समझाया भी जाय की अपने पूर्वजों
के भूतकालीन सद् चरित्र, उनकी वीरता गम्भीरता, धैर्य्यता एवं उदारता, देश-समाज धर्म एवं राष्ट्र सेवा तथा उस समय
की सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थिति क्या थी? उस समय का हुन्नर, उद्योग, शिल्प कला
एवं रीति रिवाज् क्या क्या था? इन सब बातों को जानना, उनके अन्दर से उपादेय कारणों को स्वी
कार करना इत्यादि। इन सब का ही नाम इतिहास है। इस पर हमारे वे भोले भाई चट से बोल उठते हैं कि 'वाह!
जी वाह!! आपने ठीक इतिहास बतलाया। ऐसी व्यर्थ की गई गुजरी बातों के लिये घर का काम छोड़ कर रात दिन सिर-
पच्ची ( मगज खोरी ) करना तथा बड़े कष्ट एवं परिश्रम से कमाया हुआ द्रव्य पानी की तरह बहा-देना कौन सी समझदारी
है और क्या फायदा है? हमारे तो पूर्वज सदा से कहते आये हैं और वही हम भी हमारे बाल बच्चों को कहते हैं कि
"गई तिथि तो ब्राह्मण भी नहीं बांचे हैं। हमारे पूर्वज धनवान थे अथवा वीर थे तो क्या उनके इतिहास पढ़ने से हम धन
वान थोड़े ही बन जायेंगे? मेरा तो खयाल है कि ऐसी बेहूदा ( मूर्खता पूर्ण ) बातें कहने वाले बेकार पागल ( मूर्ख ) ही
होते हैं कि जो समय, शक्ति और द्रव्य का बलिदान दे रहे हैं किन्तु हम ऐसे पागल नहीं हैं। यदि घर-दुकान का काम
कर दो पैसे पैदा करेंगे तो भविष्य में उससे बाल बच्चे सुखी होंगे और पास में पैसे होंगे तो हर व्यक्ति आकर हमारी ही
खुशामद करेगा आदि २।"

भूमि में क्या क्या उत्पादन थी। किस देश के लोग किस देश से सभ्यता सौम्यता और व्यवहार कुशलता की शिक्षा प्राप्त कर अपने देश में उसका प्रचार किया करते थे। जनता का जीवन-निर्माण तथा आत्म-कल्याण किस प्रकार से होता था। प्राचिन समय के अपने पूर्वजों की वीरता, उदारता, वात्सल्यता, परोपकारिता, व्यापार कुशलता-रण कुशलता एवं सामुद्रिक व्यापार कुशलता देश का मान, खान-पान आदि२ सब बातें हम एक मात्र इतिहास से ही जान सकते हैं। तथा इन बातों पर (ग़ौर) मनन करने के पश्चात् अपने जीवनोंपयोगी बना सक ते हैं।

देश में वर्ण व्यवस्था कब तक अपनी उन्नति करती रही और कब और किस समय व किस कारण से उसमें विकार पैदा हुआ। जातियों का निर्माण कब और किस सयोंग से हुआ कौन २ सी जातिएँ विदेशों में जाकर विदेशी कहलाई एवं इस के विपरीत कौन-कौन सी जातियां विदेशों से आकर यहां बसी। देश के प्राचिन आचार विचार में क्या क्या रद्दों-बदल एव मिश्रण हुआ। हमारे देश की सभ्यता ने किस किस देश पर अपना प्रभाव डाला तथा विदेशियों के आचार-व्यवहार एवं सभ्यता का हमारे देश पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा। धार्मिक विषय में किस किस धर्म का कब कब प्रादुर्भाव हुआ और इन नूतन धर्मों ने क्या क्या न्यूनाधिक किया। धर्म के नाम पर देश में किस प्रकार फूट-कलह के बीज बोकर जनता को किस प्रकार-अधोगति में ला प'का और इन कारणों से देश के सामूहिक संगठन को कैसे छिन्न-भिन्न कर डाला। एक ही धर्म के अन्दर से अनेक धर्मो की सृष्टि क्यों रची गई और इससे देश को क्या फ़ायदा अथवा नुकसान हुआ? यह सब बातें हम पुराने जमाने के इतिहास से ही जान सकते हैं। साथ ही हम उससे यह भी जान सकते हैं कि किन किन उपायों से इस बिगड़ी अवस्था का सुधार हो सकेगा।

यहां पर हम अधिक लिख कर प्रस्तावना का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते। कारण कि विद्वद् समाज इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि साहित्य में इतिहास ही मानव जाति को उन्नति-पथ पर लेजाने वाला एक सच्चा साधन है। अतएव अपनी भावी उन्नति की अभिलाषा रखने वाले प्रत्येक देहधारी मनुष्य का मुख्य और आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह कम से कम अपने पूर्वजों के इतिहास को अवश्य पढ़े।

## २—हमारे पूर्वज और इतिहासः—

वर्त्तमान काल में भूत कालीन इतिहास प्राप्त होने में दुर्लभता का अनुभव करने वाले महाशय यहां तक कह उठते हैं कि प्राचीन समय के लोगों का इतिहास की ओर इतना आकर्षण नहीं था जितना कि अध्यात्म एवं तत्वज्ञान की ओर था? कारण वे लोग इतिहास लिखने में एवं उसका संरक्षण करने में इतनी अधिक रुचि न रखते थे? पर वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है। हाँ, हमारे पूर्वज अध्यात्म एव तात्विक ज्ञान की ओर विशेष रुचि रखते जरूर थे, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह इतिहास की उपेक्षा करते थे? नहीं कदापि नहीं। वे जैसे अध्यात्म एव तात्त्विक ज्ञान की ओर लक्ष्य रखते थे वैसे ही इतिहास की ओर भी उनकी अभिरुचि थी। इतना ही क्यों? वे तो इतिहास को चिरस्थायी बनाने का भी प्रयत्न किया करते थे। इतिहास द्वारा यह स्पष्ट मालूम होता है कि अन्य देशों के विद्वान् इतिहास लिखना एव उन्हें सुरक्षित रखना हमारे पूर्वजों से ही सीखे थे। प्राचीन काल में जब लेखन प्रवृत्ति अधिक न थी, उस अवस्था में भारतीय ऋषि-मुनि समस्त ज्ञानभण्डार कण्ठस्थ रखते थे। जब से लेखन वृत्तिका अधिक प्रचार हुआ तो उन्होंने अपना मस्तिष्क का ज्ञान एव तत्कालीन घटनाऐं ताड़ पत्र ताम्रपत्र, भोजपत्र, और पत्थर की चट्टानों पर लिख दिया करते थे। तत्पश्चात् जब कागजों पर लिखना प्रारम्भ हुआ उस समय से तो प्रत्येक घटनाऐं खूब विस्तार से लिख दिया करते थे। जिसके प्रमाण आज पर्याप्त मिल रहे हैं। अभी ( भूगर्भ अन्वेषण से ) खुदाई के काम से पजाब एव सिन्ध की सर हद भूमि से दो नगर ई० संवत् से ५००० वर्ष पांच हजार वर्ष पूर्व के बतलाये जाते हैं। उन दोनों नगरों से, जिसके नाम क्रमशः "हरप्पा" और "मोहन जादरा" रखा गया है। कई पदार्थ ऐसे निकले हैं जिससे प्राचीन समय में भारत की सभ्यता का निश्चय हो चुका है। इतना ही, क्यों एक देवी की मूर्ति जिसके शरीर पर कपड़ा भी था खोदते हुए पाये गये हैं। तथा एक ध्यान मग्न मूर्ति भी प्राप्त हुई है।" इससे यह भी सिद्ध किया गया है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भी इस देश में कपड़े का उत्पादन होता था तथा देश में धर्म की भावना भी अच्छे ˜ . में थी। वे लोग धार्मिक मूर्तियों की पूजा-पाठ

हास है। आज भारत के बाहर कहीं कहीं विक्रम की चतुर्थ शताब्दि के बाद । कोई ग्रन्थ मिलता, पर भारत में जो कुछ साहित्य मिलता है वह विक्रम की आठवीं, नवीं शताब्दि के पीछे का मिलता है।

## ४—भारतीय साहित्य का सृजनः—

भारत के ऋषि मुनियों ने साहित्य सृजन में कभी कमी नहीं की। उन्होंने अपने भक्त लोगों को उपदेश दे देकर इतना ढेर लगा दिया था कि उतना ढेर घास का भी शायद ही मिलता हो। गृहस्थ लोग भी उन त्याग मूर्ति आचार्य्यों का उपदेश शिरोधार्य्य कर अपने अथक परिश्रम से उपार्जित लक्ष्मी को ऐसे परमार्थ के कार्य निमित्त लगा अपने मानव भव को सुफल बनाने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखते थे। कारण, इस कलि-काल में जिन मन्दिर मूर्त्ति एवं आगम ही शासन के आधार समझे जाते हैं। दूसरा एक कारण यह भी था कि कोई भी आचार्य्य कोई भी आगम व्याख्यान में वाचना प्रारम्भ करते उसका महोत्सव कर गृहस्थ लोग ज्ञान-पूजा किया करते थे। जिसमें भी श्री भगवतीजी जैसा आगम का तो जैन समाज में और भी विशेष प्रभाव है। ऐसे बहुत से उदाहरण जैन साहित्य में मिलते हैं कि अमुक भक्त ने श्री भगवती सूत्र बँचाया, जिसकी हीरा, माणिक्य, पन्ना, मोतियों से पूजा की और ३६००० प्रश्नों की ३६००० स्वर्ण मुद्रिकाओं से पूजा की। इस कार्य्य से आये हुए द्रव्य से पुन आगम लिखाया जाता था। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय जैन समाज को आगमों पर कितनी भक्ति एवं पूज्यभाव था। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि साहित्य लिखवाने में जितना हिस्सा जैनों का था उतना दूसरों का शायद ही था। अत म्लेच्छ विधर्मियों के दुष्टता पूर्ण साहित्य को हानि पहुँचाने पर भी उनका सर्वथा अस्त नहीं हुआ। बचा हुआ साहित्य भी कम न था किन्तु वह अवशेष साहित्य ऐसे लोगों के हाथ में पड़ गया कि उनके पीछे उनकी सन्तान ऐसी सपूत !) निकली कि जिसने अपनी विषय-वासनाओं के पोषणार्थ उस अमूल्य साहित्य निधि को पानी के मूल्य में विदेशियों के हाथ में बेच दिया जो आज भी उन लोगों के पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। नमूने के तौर पर कुछ पुस्तकालयों का ब्यौरा निम्न लिख दिया जाता है —

१—एदन में करीब १५०० बड़े पुस्तकालय हैं, जिसमें एक पुस्तकालय में कोई १५०० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। उनमें अधिक पुस्तकें संस्कृत प्राकृत और भारत से ही गई हुई हैं। यह तो केवल एक पुस्तकालय की ही बात है, विचारिये शेष १४९९ पुस्तकालयों में कितनी पुस्तकें होंगी ?

२—जर्मन में कोई ५००० पुस्तकालय हैं। जिसमें बर्लिन में ही बहुत से पुस्तकालय हैं एवं उसके एक पुस्तकालय में ही १२००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। तब ५००० पुस्तकालयों में कितनी पुस्तकें होंगी और उन पुस्तकों में विशेष भारत से गई हुई हस्तलिखित पुस्तकें कितनी होंगी ?

३—अमेरिका के वाशिंगटन नगर में ही ५०० पुस्तकालय हैं, जिसमें लगभग ४०००००० पुस्तकों का संग्रह है। और उसमें करीब २०००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। विचारिये कि भारत से गई हुई कितनी होंगी ?

४—फ्रान्स में ११११ बड़े पुस्तकालय हैं। जिसमें पेरिस का एक बिबलियोथिक नामक पुस्तकालय में ४०००००० पुस्तकें हैं, उनमें १२००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की हैं जो प्राय सब की सब भारत से ही गई हुई हैं।

५—रूस में १५०० बड़े पुस्तकालय हैं। जिसमें एक राष्ट्रीय पुस्तकालय में ही २०००००० पुस्तकें हैं। उसमें भी २२००० पुस्तकें संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की भारत से गई हुई पुस्तकें हैं।

६—इटली में कोई ४५०० पुस्तकालय हैं। उनमें भी लाखों पुस्तकों का संग्रह है। कोई ६०००० हजार पुस्तकें संस्कृत व प्राकृत भाषा की प्रायः सब भारत से ही गई हुई हैं।

यह तो एक नमूने के तौर पर बतलाया गया है, किन्तु इनके अतिरिक्त भी पाश्चात्य देशों में शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो कि जहाँ के पुस्तकालयों में भारतीय पुस्तकों का संग्रह न हो। यह प्रवृत्ति केवल अंग्रेजों के भारत में आने

३—इस विषय में तीसरा नम्बर है पट्टावलियों का पट्टावलियों में अधिकतर इतिहास जैनाचार्यों या उनके शिष्य प्रशिष्य श्रमणों का ही मिलता है। शायद कहीं २ उन श्रमणों के साथ सम्बन्ध रखने वाले गृहस्थों का इतिहास भी मिलता है किन्तु वह बहुत थोड़े परिमाण में। फिर भी इतिहास के लिए पट्टावलियाँ बहुत उपयोगी साधन है। किन्तु पट्टावलियाँ विक्रम की तेरहवी चौदहवीं शताब्दि में लिखी गई हैं, और इनमें सैकड़ों वर्ष पूर्व की घटनाएँ आचार्यों के कण्ठस्थ ज्ञान परम्परा से चला आया है, इसका वर्णन होने से कई लोगों का उन पर विश्वास कम है। हाँ पट्टावलियों में एक हेमवन्त स्थविरावली विक्रम की तीसरी शताब्दि में आचार्य्य हेमवन्त सूरि की बनाई कही जाती है। किन्तु उसकी प्राचीनता के विषय में सबका एक मत नहीं है। कई लोग इस स्थविरावली के विषय में सन्देह करते हैं और कई विद्वान उसको ऐतिहासिक दृष्टि से परमोपयोगी भी समझते हैं। कुछ भी हो, किन्तु हेमवन्त स्थवरावली में लिखी हुई घटनाएँ उड़ीसा प्रान्त की हस्तीगुफा से मिला हुआ महामेघवाहन चक्रवर्त्ति सम्राट खारवेल के शिलालेख से मिलती हुई है। शेष पट्टावलियाँ विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दि की होने पर भी उन पर अविश्वास नहीं किया जाता है। कारण कि वे पट्टावलियाँ हमारे पञ्च महाव्रत धारी सत्यव्रति एवं संयमी आचार्य्य द्वारा लिखी गई हैं। वे भव भीरु आचार्य्य जान बूझ कर एक अक्षर भी न्यूनाधिक नहीं लिखते ऐसी जैन समाज की निश्चित धारणा है। हां एक नाम के कई आचार्य एवं राजा हो जाने से समयादि के विषय में किसी कारणवश त्रुटि आ भी गई हो तो अन्य साधनों से उसका संशोधन करना हमारा परम कर्त्तव्य है। किन्तु ऐसी साधारण त्रुटियों के लिए उन प्राचीन एवं परमोपयोगी साहित्य का अनादर हम कदापि नहिं कर सकते हैं। इन पट्टावलियों के अतिरिक्त कई आचार्यों के लिखे ग्रन्थ भी इतिहास के उपयोगी साधन हैं। जैसे—आचार्य्य हेमचन्द्रसूरि का त्रिषष्ठि-शिलाका पुरुष चरित्र और परिशिष्ट पर्व, आचार्य्य प्रभाचन्द्र सूरि रचित प्रभाविक चरित्र, आचार्य्य मेरुतुंग सूरि रचित प्रबन्ध चिन्तामणि, आचार्य्य कक्कसूरि रचित नाभिनन्दन जिनोद्धार और उपकेश गच्छ चरित्र इत्यादि कई-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। किन्तु हैं वे तेरहवीं चौदहवीं शताब्दि के लिखे हुए।

४— इतिहास के साधन के विषय में चौथा नम्बर वंशावलियों का है। वंशावलियों जैन धर्म एवं जैन गृहस्थों के इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी साधन है। कारण कि जैन गृहस्थों का विस्तृत इतिहास जितना जैनवंशावलियों में मिलता है उतना दूसरे स्थानों में नहीं मिलता है। वंशावलियों की शुरुआत तो विक्रम की आठवीं शताब्दि से होगई थी, किंतु इतने प्राचीन समय की वंशावलियों आज कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती हैं। जैसा कि अर्वाचीन पट्टावलियों में प्राचीनसमय का इतिहास लिखा मिलता है, ठीक इसी प्रकार अर्वाचीन वंशावलियों में भी प्राचीन समय का इतिहास लिखा गया है। उनको हम सर्वथा कल्पित नहीं कह सकते हैं। कारण कि उन पट्टावलियों को लिखने वालों ने भी किसी न किसी आधार पर ही लिखा होगा। अन्यथा बिना आधार तो वे लिख ही क्या सकते थे? १—प्राचीन पट्टावलियाँ एवं वंशावलियाँ न मिलने के विषय में हम ऊपर लिख आये हैं कि प्राचिन समय तो क्या किन्तु देवर्द्धिगण क्षमाश्रमजी के समय में लिखे गये सैकड़ों हजारों ग्रन्थों से आज एक भी पत्र नहीं मिलता है। हाँ, उस समय की लिखी हुई प्रतियों का उतारा किये हुए अर्वाचीन ग्रन्थ मिल सकते हैं।

इसी प्रकार पट्टावलियों एवं वंशावलियों को भी हम मान ले तो उनके अंदर संदेह को स्थान नहीं या कम रह जाता है। यदि हम उन पट्टावलीयों एवं वंशावलियों पर विश्वास ही न करें तो हमारे पास ऐसा कोई भी साधन नहीं कि जिससे हम हमारे पूर्वजों का इतिहास लिखने में थोड़ी भी सफलता हासिल कर सकें। इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं हो सकता है। कि हम अन्ध विश्वास एवं आँखें बन्द कर के ही लिखे हुए सब साधन को बिना किसी कसौटी पर कसे ही स्वीकार कर लेते हैं। जहाँ कहीं भी हमें संदेह हो उस बात को अन्य साधनों द्वारा संशोधित कर लेना होगा। कई लोग ऐसे भी पक्षपाती हैं कि जिसमें अपनी मान्यता कि सिद्धि होती हो वह तो प्राचिन एवं अर्वाचिन सब प्रमाणिक मानते हैं। जहाँ थोड़ी सी भी बात अपनी मान्यता के विरुद्ध आई कि उसे कल्पित ठहरा देते हैं यह बात इन्साफ की नहीं पर एक अन्याय की बात है, मुख्यतया इतिहास क्षेत्र में पक्षपात रखना सर्वथा अनुचित है।

*१—इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १२७ पर देखें लिखत की नकल।

एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ को मानने लग जाय एवं एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ का कहलाने लग जाय तो इससे न तो जैन सख्या में न्यूनाधिकता होती है और न किसी गच्छ वाले त्यागी आचार्य्यों को ही नुकसान हुआ है। क्योंकि त्यागी पुरुषों को तो सब गच्छ वाले मानते पूजते हैं। परन्तु इस गच्छ परिवर्त्तन से एक तो समाज में फूट, कुसप की भट्टियाँ धधकने लग गई थीं, दूसरे प्राचीन इतिहास को मिटा देने से उनके पूर्वजों ने सैकड़ों वर्षों से देश, समाज एव धार्मिक कार्य्यों में असख्य द्रव्य व्यय कर एव प्राणों की आहुति देकर बडी २ सेवायें करके जो धवल कीर्त्ति और उज्वल यश कमाया था वह सब मिट्टी में मिल गया। उस गौरवशाली इतिहास के अभाव से उनकी सन्तान की नसों में उबती का खून नहीं उबलेगा, फलस्वरूप वह उन्नति करने में अयोग्य ही रहेगी और वह अपना नाम मुर्दा कौम में बड़ी खुशी से लिखवा देगी।

जैन समाज का इतना बड़ा नुकसान होने पर भी गृहस्थों के गच्छ परिवर्तन करने वाले मतधारियों को कुछ भी लाभ नहीं। हाँ, इतना जरूर हुआ कि एक ही जाति के लोग भिन्न भिन्न स्थानों में पृथक् पृथक् गच्छों की क्रिया करने में आपसी फूट कुसम्प बढ़ने लग गये। आज भी हम बहुत से ग्राम ग्रामान्तर में देखते हैं कि एक जाति एक ग्राम में एक गच्छ की क्रिया करती है तब दूसरे ग्राम में वही जाति दूसरे गच्छ की उपासक होना बतलाती है।

वशावलियों का लिखना ऊपर बतलाई हुई मन्दिरों के गोष्टिकों की योजनानुसार हुआ और जब उन २ पौसालों के आचार्य्यादि आचार में शिथिल हो गए तब वशावलियाँ उनकी आजीविका का आधार बन गई। जो जो गोष्टिक थे, वे पौसालों वाले उनकी वशावलियाँ माँडने से वे धर्मगुरु के स्थान से हट कर कुल-गुरु कहलाने लग गए। यह हाल मैंने कई प्राचीन एव प्रमाणिक ग्रन्थों को पढ़ कर लिखा है। इसमें कई जातियों के गच्छों का रद्दोबदल हो गया है। कारण, कि ओसवाल जाति के मूल स्थापक आचार्य्य रत्नप्रभसूरि ही थे। बाद में आप की सतान परम्परा के आचार्यों ने इस वश को खूब बढ़ाया था। अत ओसवालों की अधिक जातियाँ इसी उपकेश गच्छ द्वारा ही स्थापित की गई थीं, किन्तु उस गोष्टिक योजनानुसार कई-कई जातियाँ अनेक गच्छों के नाम से विभाजित हो गईं, जो आज वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर हो रही हैं। जैसे बाफना रांका चोरड़िया सचेती आदि जातियों के पूर्वजों को २४०० वर्ष जितना प्राचीन इतिहास था जिसको नूतन मत धारियों ने ८००-९०० वर्ष जितनी अर्वाचीन ठहरा दिया और इनकी पुष्टि में कई कल्पित कथाएं भी घड़ डालीं। इसी प्रकार सभी भंडारी मुनोयतादि जातियों के विषय भी गड़बड़ कर डाली। इससे और तो कुछ नहीं पर उन जातियों के इतिहास अव्यवस्थित हो जाने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान हुआ है। इन गड़बड़ मचाने वालों में कई गच्छ तो नाम शेष ही रहे हैं पर उनके द्वारा फैलाई गलत फहमी अवश्य अमर बन गई है।

वशावलियों में लिखा हुआ हाल कितना ही अतिशयोक्ति पूर्ण क्यों न हो किन्तु हमारे इतिहास के लिए इतना उपयोगी है कि दूसरे स्थानों में खोजने पर भी ओसवाल जाति का इतिहास नहीं मिलता है। अत हमारा कर्तव्य है कि हम उन वशावलियों का ठीक सशोधन कर इतिहास के काम में लें। देखिये इतिहास के मर्मज्ञ एव प्रसिद्ध लेखक प० गौरीशकरजी ओझा स्वनिर्मित राजपूताने के इतिहास में पृष्ठ १० पर लिखते हैं —

"× × इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × × × × × × तथा जैनों की कई पट्टावलिया आदि मिलती है। वे भी इतिहास के साधन हैं"

पट्टावलियों और वशावलियों के अतिरिक्त कई रासा, ढालें, चौपाई, सिलोकादि, अपभ्रश भाषा का साहित्य उपलब्ध हुआ है और उसमें अर्वाचीन महापुरुषों की जीवन घटनाएँ आदि का वर्णन मिलता है। और वे घटनाएँ प्रायः सम सामयिक होने से ऐतिहासिक कही जा सकती हैं। इनके अलावा कई राजा, बादशाहों के दिए हुए फरमान (आज्ञापत्र) सनदें (प्रमाणपत्र) भी इतिहास के साधन हैं।

## वर्तमान की शोध-खोज से प्राप्त इतिहास की सामग्रीः—

वर्तमान में विद्वानों की इतिहास की ओर अधिक रुचि बढ़ती जा रही है और इसके लिए पौर्वात्य एव पाश्चात्य

एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ को मानने लग जाय एवं एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ का कहलाने लग जाय तो इससे न तो जैन संख्या में न्यूनाधिकता होती है और न किसी गच्छ वाले त्यागी आचार्य्यों को ही नुकसान हुआ है। क्योंकि त्यागी पुरुषों को तो सब गच्छ वाले मानते पूजते हैं। परन्तु इस गच्छ परिवर्त्तन से एक तो समाज में फूट, कुसम्प की भट्टियाँ धधकने लग गई थीं, दूसरे प्राचीन इतिहास को मिटा देने से उनके पूर्वजों ने सैकड़ों वर्षों से देश, समाज एवं धार्मिक कार्यों में असंख्य द्रव्य व्यय कर एवं प्राणों की आहुति देकर बड़ी २ सेवायें करके जो धवल कीर्त्ति और उज्ज्वल यश कमाया था वह सब मिट्टी में मिल गया। उस गौरवशाली इतिहास के अभाव से उनकी सन्तान की नसों में उन्नती का खून नहीं उफनेगा, फलस्वरूप वह उन्नति करने में अयोग्य ही रहेगी और वह अपना नाम मुर्दा कौम में बड़ी खुशी से लिखवा देगी।

जैन समाज का इतना बड़ा नुकसान होने पर भी गृहस्थों के गच्छ परिवर्तन करने वाले मतधारियों को कुछ भी लाभ नहीं। हाँ, इतना जरूर हुआ कि एक ही जाति के लोग भिन्न भिन्न स्थानों में पृथक् पृथक् गच्छों की क्रिया, काम में आपसी फूट कुसम्प बढ़ने लग गये। आज भी हम बहुत से ग्राम ग्रामान्तर में देखते हैं कि एक जाति एक ग्राम में एक गच्छ की क्रिया करती है तब दूसरे ग्राम में वही जाति दूसरे गच्छ की उपासक होना बतलाती है।

वंशावलियों का लिखना ऊपर बतलाई हुई मन्दिरों के गोष्ठिकों की योजनानुसार हुआ और जब उन २ पौसालों के आचार्य्यादि आचार में शिथिल हो गए तब वंशावलियाँ उनकी आजीविका का आधार बन गई। जो जो गोष्ठिक थे, वे पौसालों वाले उनकी वंशावलियाँ माँडने से वे धर्मगुरु के स्थान से हट कर कुल-गुरु कहलाने लग गए। यह हाल मैंने कई प्राचीन एवं प्रमाणिक ग्रन्थों को पढ़ कर लिखा है। इसमें कई जातियों के गच्छों का रद्दोबदल हो गया है। कारण, कि ओसवाल जाति के मूल स्थापक आचार्य्य रत्नप्रभसूरि ही थे। बाद में आप की संतान परम्परा के आचार्यों ने इस वंश को खूब बढ़ाया था। अतः ओसवालों की अधिक जातियाँ इसी उपकेश गच्छ द्वारा ही स्थापित की गई थीं, किन्तु उस गोष्ठिक योजनानुसार कई कई जातियाँ अनेक गच्छों के नाम से विभाजित हो गईं, जो आज वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर हो रही हैं। जैसे बाफना रांका चोरड़िया सचेती आदि जातियों के पूर्वजों को २४०० वर्ष जितना प्राचीन इतिहास था जिसको नूतन मत धारियों ने ८००-९०० वर्ष जितनी अर्वाचीन ठहरा दिया और इनकी पुष्टि में कई कल्पित कथाएं भी घड़ डालीं। इसी प्रकार सभी भंडारी मुनोयतादि जातियों के विषय भी गड़बड़ कर डाली। इससे और तो कुछ नहीं पर उन जातियों के इतिहास अव्यवस्थित हो जाने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान हुआ है। इन गड़बड़ मचाने वालों में कई गच्छ तो नाम शेष ही रहे हैं पर उनके द्वारा फैलाई गलत फहमी अवश्य अमर बन गई है।

वंशावलियों में लिखा हुआ हाल कितना ही अतिशयोक्ति पूर्ण क्यों न हो किन्तु हमारे इतिहास के लिए इतना उपयोगी है कि दूसरे स्थानों में खोजने पर भी ओसवाल जाति का इतिहास नहीं मिलता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम उन वंशावलियों का ठीक संशोधन कर इतिहास के काम में लें। देखिये इतिहास के मर्मज्ञ एवं प्रसिद्ध लेखक प० गौरीशंकरजी ओझा स्वनिर्मित राजपूताने के इतिहास में पृष्ठ १० पर लिखते हैं —

"× × इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × × × × × × तथा जैनों की कई पटावलियां आदि मिलती हैं। वे भी इतिहास के साधन हैं"

पट्टावलियों और वंशावलियों के अतिरिक्त कई रासा, ढालें, चौपाई, सिलोकादि, अपभ्रंश भाषा का साहित्य उपलब्ध हुआ है और उसमें अर्वाचीन महापुरुषों की जीवन घटनाएँ आदि का वर्णन मिलता है। और वे घटनाएँ प्रायः सम सामयिक होने से ऐतिहासिक कही जा सकती हैं। इसके अलावा कई राजा, बादशाहों के दिए हुए फरमान (आज्ञापत्र) सनदें (प्रमाणपत्र) भी इतिहास के साधन हैं।

## वर्तमान की शोध-खोज से प्राप्त इतिहास की सामग्रीः—

वर्तमान में विद्वानों की इतिहास की ओर अधिक रुचि बढ़ती जा रही है और इसके लिए पौर्वात्य एवं पाश्चात्य

कुछ आया भी है तो इतना ही कि भगवान् पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्ष उपकेशपुर के राजा-प्रजा एव सवालक्ष क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन धर्म की दीक्षा देकर महाजन वश की स्थापना करने का ही उल्लेख किया हुआ दृष्टिगोचर होता है पर इतना उल्लेख करने से उन परम्परा के इतिहास की इति श्री नहीं हो जाती है। आचार्य्य रत्नप्रभसूरि की परम्परा सतान आचार्यों ने उस महाजन सघ का पालन पोषण और वृद्धि यहा तक की थी कि मरु धा,सिन्ध कच्छ, सौराष्ट्र, लाट कोंकण, शूरसेन, पचाल कुनाल आवती, बुन्देल खण्ड और मेदपाटादि प्रान्त में घूम घूम कर उस महाजन वश की वृद्धि कर करोड़ों की सख्या तक पहुँचा दिया था। उस शुद्धि की मशीन का जन्म विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में हुआ था और वह विक्रम की चौदहवीं पन्द्रहवी शताब्दि तक द्रुति एव मन्दगति से चलती ही रही थी। मेरा तो यहा तक खयाल है की भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास एक ओर रख दिया जाय तो जैन धर्म का इतिहास अपूर्ण एवं अधूरा ही रह जाता है।

जैन धर्म का इतिहास लिखने वाले को भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास लिखना परमावश्यक है। कारण कि, महाजन वश का इतिहास के साथ इस परम्परा का घनिष्ट सम्बन्ध है और महाजन वश का जितना इतिहास इस गच्छ व सम्प्रदाय के पास मिलेगा, दूसरे स्थान खोजने पर भी नहीं मिलेगा। यदि कोई विद्वान् लेखक इस कार्य को हाथों में लेता तो वे जैन धर्म का इतिहास सर्वाङ्ग सुन्दर बना सकता पर साथ में यह भी है कि इतिहास का लिखना कोई साधारण काम नहीं है इस कार्य में जितने साधनों की आवश्यकता है उतना ही पुरुषार्थ की जरूरत है इसको वे ही लोग जान सकते हैं कि जिन्होंने ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। जब हम देखते हैं कि साधारण जातियों का इतिहास जनता के सामने आ गया है तब जैन धर्म जैसा प्राचीन एव विशाल धर्म का इतिहास इतने अन्धेरे में पड़ा यह एक बड़ी शरम की बात है मैंने इस विषय के कई सामयिक पत्रों में लेख भी दिया पर किसी के कानोंतक जूं भी नहीं रेंगी इस हालत में मैं मेरी भावना को दबा नहीं सका तथापि मुझे पहले से ही यह कह देना चाहिये कि न तो मैं इस विषय का विद्वान ही हूँ न ऐसा सुलेखक ही और न इस प्रकार विशाल इतिहास लिखने जितनी सामग्री ही मेरे पास है फिर भी दूसरे किसी विद्वान ने इस ओर कदम न उठाता देख मैंने यह अनाधिकारी चेष्टा कर इस वृहद् कार्य में हाथ डाला है। मुझे यह भावना क्यों और किस तरह से पैदा हुई इसका भी थोड़ा हाल पाठकों के सामने रख देना अप्रसगिक न होगा।

मेरा जन्म ओसवाल जाति में हुआ और ससार में मेरा पेशा (जीविका) व्यापार करने का था मैंने जिस ग्राम में जन्म लिया था, उसमें २०० घर महाजनों के थे। किन्तु वहा पर हिन्दी पढ़ाई के लिए स्कूल न थी और न ही कोई सरकारी स्कूल थी। केवल एक जैन यतिजी का उपासरा था, और वे ही सब ग्राम के लड़कों को पढ़ाया करते थे। उनका परिश्रम-शुल्क ( महनताना ) एक पटी का एक टका था। करीब एक रुपये में एक विद्यार्थी अपनी काम चलाऊ पढ़ाई कर लेता था। इससे अधिक उस समय पढ़ाना लोग व्यर्थ ही समझते थे। कारण उन लोगों की धारणा थी कि इतनी पढ़ाई से ही हमारे लड़के लाखों का व्यापार कर लेते हैं। उनकी लिखी हुई लाखों की हुण्डी वगैरह सिकर जाती है तो फिर अधिक पढ़ाई करवा कर समय और द्रव्य का व्यय क्यों किया जाय। यतिजी की पढ़ाई केवल धार्मिक ही नहीं थी किन्तु धार्मिक के साथ २ महाजनी भी पढ़ाया करते थे। उनकी पढ़ाई में एक खास विशेषता यह थी कि माता पिता एव देवगुरु धर्म का विनय भक्ति पर अधिक जोर दिया जाता था। यतिजी का पढ़ाया हुआ प्रत्येक लड़का अपने २ कार्य्य में प्राय होशियार ही होता था। उन विद्यार्थीयों में मैं भी एक था किन्तु केवल एक व्यापार के अतिरिक्त ससार में क्या हो रहा है, इसको हम नहीं जानते थे। हमारे जीवन का ध्येय एकमात्र पैसा पैदा करना ही समझा जाता था।

जब छब्बीस वर्ष की उमर में मैं घर छोड़ कर स्थानकवासी समुदाय में साधु बना, सो यहा भी बोल चाल थोकड़ा तथा शास्त्र के पाठ रट-रट कर कण्ठाग्र करने के अलावा विशेष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। जो हमारे धर्म के शास्त्र प्राकृत सस्कृत भाषा में है, उनको पढ़ने के लिए उन भाषाओं के ज्ञान का भी मेरे पास अभाव ही था। उन शास्त्रों पर गुर्जरा भाषा का टब्बा (अर्थ) आप समझना या व्याख्यान द्वारा दूसरों को समझा देना। हमारा काम था। किन्तु यदि उस टब्बा

मुताजी लीछमीलालजी
फलौदी (मारवाड़)

मुताजी चंदनमलजी
फलौदी (मारवाड़)

मुताजी
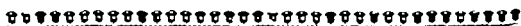
२ सुमतिमलजी    १ गणेशमलजी    ३ मिश्रीमलजी—जोधपुर

आप—मुनिश्रीज्ञानसुन्दरजी के संसार पक्ष के तीनों लघु भ्राता है

श्रीकापरड़ा तीर्थ
मुनिम—मुल्तानमलजी जैन

परमभक्त श्रावक
भंडारीजी चन्दनचन्दजी
जोधपुर
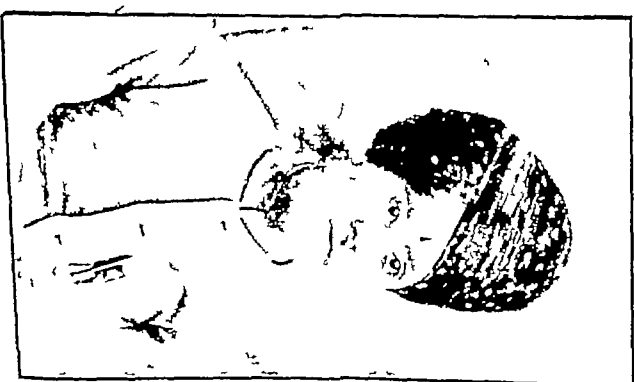
श्रीयुक्त सुगनचन्दजी जाघडा
कापरड़ा

हालत को परमात्मा सीमंधर स्वामी के पास कागज, हुण्डी पैठ परपैठ और मेझरनामा लिख कर भेजने की इच्छा हुई अत मेझरनामा लिख दिया। इसका मुख्य कारण तो यही था कि मैं स्थानकवासी समुदाय से आया हुआ था, क्रिया पर मेरी रुचि थी। इधर साधुओं का आचार-व्यवहार भी प्राय शिथिल ही था।

खैर, उस मेझर नामे के लिखने से एक दो नहीं किन्तु अखिल सवेगी मुनि मण्डल मेरे से खिलाफ हो उठा। स्थानकवासी तो पहिले से ही मुझ से खिलाफ थे, अब चारों ओर से ही विरोध के बादल उमड़ उठे। इससे नया ज्ञान-ध्यान करना तो दूर रहा किन्तु पहिले जो किया था उसकी भी सार सम्हाल होनी मुश्किल हो गई। मेरे पास अब केवल एक आधार अवश्य था और वह था सत्य। यदि उस समय मुझे इतना ज्ञान होता कि आज जिस दशा पर मैं मेझरनामा लिख रहा हूँ, भविष्य में मेरी भी यह दशा हो जायगी तो मुझे अवश्य विचार करना पड़ता। किन्तु जो होने वाला होता है वह तो अवश्य ही होकर रहता है। ‡

अभी तक इतिहास की ओर मेरी थोड़ी सी भी रुचि न थी। ससार में तो हम हमारे पूर्वजों के दो चार पीढ़ियों के नाम के अतिरिक्त और कुछ भी न जानते थे। हमारे कुलगुरु कभी नाम लिखने को आया करते थे तब वे कहते थे कि आपका गच्छ कवलागच्छ है। जब दीक्षा एव सवेग दीक्षाली, तब हमें इतना मालूम हुआ कि आचार्य्य रत्नप्रभसूरिजी ने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुर के राजा प्रजा एव सवालक्ष क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। जिनके आगे चल कर कई गौत्र हुए, उनमें १८ गौत्र मुख्य थे, जिनमें राव उत्पलदेव की सतान श्रेष्ठि गौत्र कहलाई और वैद महता उस श्रेष्ठि गौत्र की एक शाखा है। जब मैंने फलौदी में लगातार तीन चातुर्मास किए तो वहाँ कँवलागच्छ के उपाश्रय में एक विशाल ज्ञान भण्डार था, उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें उपकेशगच्छ, पट्टावलियाँ कुछ वशावलियों की वहियां एव लम्बे लम्बे ओलिये और कई फुटकर पन्ने देखने को मिले। उनके अन्दर से कुछ उतारने लायक पन्ने थे वे मैंने अपने हाथ से वहीं उतार लिये। इसके पूर्व राजलदेसर के यतिवर्य्य माणकसुन्दरजी तथा रायपुर के यतिवर्य्य लाभसुन्दरजी ने भी उपकेशगच्छ सम्बन्धी कई प्राचीन ग्रन्थ कई चित्र और कई बादशाहों के दिए फरमान व सनदें आदि मुझे दिखाई थीं किन्तु उस समय इस और मेरा लक्ष्य न होने के कारण उनको इतना उपयोगी नहीं समझा था। तथापि उन्होंने मुझे स्वगच्छ का समझ कर देखने के लिए एव रखने के लिए दे दिए थे। मैंने उन सबको ओशियां में एक पेटी भर रख दिये थे। अब फलौदी में इस विषय की ओर मेरी रुचि हुई तो ओसियां से पेटी मंगवाकर उनको भी देखने लगा किन्तु, फलौदी में मैं अकेला था तथा दोनों समय व्याख्यान भी बाँचना पड़ता था, अत समय बहुत कम मिलता था, फिर भी जितना हो सका अभ्यास जरूर करता रहा।

जब मैंने नागौरा में चातुर्मास किया तो एक सज्जन ने मुझे एक पुस्तक जिसका नाम "महाजन वश मुक्तावली" जो बीकानेर के यति रामलालजी ने वि० स० १९६५ में मुद्रित करवाई थी, मुझे दी और मैंने ध्यान लगा कर पढ़ा, उससे मालूम हुआ कि यतिजीने केवल गच्छ ममत्व के कारण ओसवाल जातियों के इतिहास का जबरदस्त खून कर डाला है। कारण कि उस पुस्तक में बाफना रांका पोकरणा चोरड़िया सचेती आदि जातियों—आचार्य्य रत्नप्रभसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित है। जिनका इतिहास कोई २४०० वर्ष जितना प्राचीन है, उनको अर्वाचीन आचार्य्यों द्वारा प्रतिबोधित बतला कर ७००-८०० वर्ष जितनी अर्वाचीन बतला दी। यह एक बड़े से बड़ा अन्याय है। इनके अलावा संघी, भण्डारी मुनौयत—इत्यादि

‡ स्थानकवासियों से जितने योग्य साधु सवेगी समुदाय में आये समाज सबका सत्कार किया पर मैं तो शुरू से ही समाज में कांटा खोंका की तरह खटकने लगा इसमें एक तो मैं किसी के पास नहीं रह कर स्वतत्र ही रहा। दूसरा मैं एकाकी होने पर भी उपकेश गच्छ 'जो सब गच्छों में ज्येष्ठ एव प्राचीन है' का नाम धराया। यही कारण है कि मेरा सत्कार तो होना दूर रहा पर मुझे मेरे ही विचारों के लिये अनेक कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ीं। योग्यात्मार्थी शिष्य मुझे मिला नहीं और अयोग्य को मैंने शिष्य बनाया नहीं। हाँ मूर्ति नहीं मानने वाले जैसे मुझे मिले वैसे ही उनको ले लेना ठीक समझा शायद वह योग्य नहीं निकले पर मूर्ति की निंदा करने वाले जितने कम हों उतने ही अच्छे। अत मैं करीब २५ वर्षों से मेरी प्रतिज्ञा पालता हुआ एक साधु के साथ विहार करता हूँ।

नहीं किया वरन् कार्य्य भी शुरू कर दिया। और कोई ६० फार्म अर्थात् १००० पृष्ठ और ४३ चित्रों के साथ प्रथम विभाग में छ प्रकरण का एक खण्ड सादडी श्रीसंघ की द्रव्य सहायता से मुद्रित करवा दिया। जिसको जैन समाज ने बहुत हर्ष एवं उत्साह के साथ अपनाया और द्वितीय खण्ड की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु प्रथम खण्ड के पश्चात् कार्य इतना शिथिल पड़ गया कि जिसको पुनः हाथ में नहीं लिया गया। इसका कारण एक तो मैं अकेला था दूसरा जैन साधुओं की दैनिक क्रिया व भ्रमण करना और व्याख्यान देना, चर्चादि करना, दूसरी और भी छोटी बड़ी कई पुस्तकें छपवाने में समय निकलता गया एवं कुछ अवस्था भी वृद्ध होती गई और बड़ा काम हाथ में लेने में कुछ आलस्य-प्रमादों का भी आक्रमण होजाना स्वाभाविक था। कुछ भी हो, किन्तु उस छुटे हुए काम को पुनः हाथ में न ले सका। इस समय में बहुत से सज्जनों के पत्र भी आये। खैर, जब इस निश्चय पर आते हैं तो यही संतोष होता है कि जब जो काम बनना होता है तब ही बनता है।

इतना होने पर भी न तो मैं उस काम को भूल गया और न मेरा उत्साह ही कम हुआ। सदैव मेरा यही विचार रहता कि समय मिलने पर अधूरा रहा ग्रन्थ अवश्य पूरा करना है। इतने समय के विलम्ब में एक लाभ अवश्य हुआ कि जो पहिली सामग्री थी उसमें अधिकाधिक वृद्धि ही होती गई। कारण कि कई ग्रन्थ पढ़ने से एवं जहां गया वहां के ज्ञान भण्डार देखने से, कुल गुरुओं के मिलने से, उनके पास की वंशावलियाँ एवं बहुत सी ख्यातें देखने से प्रमाणों एवं नई २ बातों का संग्रह करने में मुझे बहुत अधिक सहायता मिलती रही।

## पुनः कार्यारम्भ और विचारों का परिवर्त्तन

जब वि० सं० १९९४ का मेरा चातुर्मास सोजत शहर में हुआ और वहां पर मेरे शरीर में बीमारी होगई, एक दम शरीर कमजोर होगया। एक दिन मकान से नीचे उतरता था तो चक्कर खाकर भूमि पर गिर गया। कुछ सावधान हुआ तो यह दिल में आई कि आयुष्य का कुछ निश्चय एवं विश्वास नहीं। यदि यह प्रारम्भ किया गया कार्य्य अधूरा रह गया तो मेरे पीछे कोई व्यक्ति इस कार्य्य को शायद ही पूरा कर सके। अतएव इतनी सामग्री जो एकत्र की है वह व्यर्थ सी हो जायगी। इसलिये अब छोटी छोटी पुस्तकें छपवानी बन्द कर इसी कार्य्य को पूरा कर देना जरूरी है। जब तबियत सुधर गई तो मैंने कापरड़ा तीर्थ जैसे निवृत्ति के स्थान में पुन अधूरा काम हाथ में लिया। पर साथ ही यह भी विचार हुआ कि "जैन जाति महोदय" प्रथम खण्ड प्रकाशित हुए कोई ९-१० वर्ष हो गये। वे पुस्तकें किन किन के पास पहुँची हैं और अब लिखे जाने वाले ग्रन्थ किन किन को मिलेंगे। अत पहले वाले को अब छपने वाले ग्रन्थ नहीं मिलेंगे तो दोनों ही अधूरे रह जाँयगे। इसलिए अब शुरु से ही क्यों न लिखा जाय ? कि जिस किसी के पास जायगा तो वहाँ पूरा ग्रन्थ ही जायगा।

अब मैंने मेरे परामर्शदाताओं से सलाह की तो वे भी मेरे से सहमत हो गये। अत मैंने यह निर्णय कर लिया कि इस ग्रन्थ को शुरू से ही छपवाना और पूरा छप जाने पर ही इसको वितीर्ण करना उचित होगा। यद्यपि कई सज्जनों ने यह भी आग्रह किया जैसे जैसे इसके भाग निकलते जाय वैसे वैसे ही ग्राहकों को दे दिये जावें। इसमें ग्रन्थ छपाने में, लिखाने में, खरीदने एवं द्रव्य की सहायता में सुविधा रहेगी, किन्तु कई सज्जनों ने इसमें पहली वाली अव्यवस्था की आपत्ति की और सम्पूर्ण ग्रन्थ छपने पर ही प्रसिद्ध करने का विचार ठीक समझा और वैसा ही निर्णय किया तथा संस्था ने भी वही स्वीकार कर लिया।

## ग्रन्थ का नाम-करण

पहिले इस विषय का जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका था उसका नाम "जैन जाति महोदय" रखा गया था। साधारणतः इस नाम पर यही भान होता था कि इसमें जैन जातियों का ही इतिहास होगा ? यह अब इस ग्रन्थ का विषय बहुत विशाल कर दिया। कारण कि, इसमें केवल जैन जातियों का ही इतिहास नहीं वरन भ० पार्श्वनाथ की परम्परा के सम्प्रति समय तक ८४ पट्टधर हुए हैं उन सब का सामग्री के अनुकूल विस्तृत इतिहास एवं प्रत्येक पट्टधर के शासन में जैन धर्म सम्बन्धी जो कुछ कार्य्य हुआ है, उन सब को सम्मिलित कर दिया है। जैसे भ०पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर

इसका नतीजा यह हुआ कि वर्त्तमान स्कूलों में कोमल हृदय के विद्यार्थियों को जो पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें साधारण लोगों के इतिहास पढ़ाये जाते हैं पर जिन जैन वीरों ने एवं उदार नर रत्नों ने भारतके सार्वभौम उपकार करनेमें अपनी करोड़ों की सम्पत्ति पानी की तरह बहा दी, उनका इसमें प्रायः नामनिशान भी नहीं है। जब तक होनहार विद्यार्थियों को अपने पूर्वजों के गौरव शाली इतिहास को न पढ़ाया जाय तब तक उनकी सतानों की नशों में कदापि खून नहीं उबलेगा। जब कि भारत की सैकड़ों हजारों जातियोंमें जगतसेठ, नगरसेठ, चौवटिया, टीकायत शाह और पचों जैसी महान् पदवियाँ यदि मिली हैं तो एक इस जैन जाति के वीरों को ही मिली हैं। यह कुछ काम करने से मिली है या यों ही ? जब काम करने से मिली हैं तो उनके कामों का इतिहास कहां है ? यह इतिहास हमारी पट्टावलीयों वंशावलीयों में ही मिल सकेगा, कि जिन पर हमारे कई एक विद्वानों (!) का विश्वास कम हो रहा है। यह केवल भ्रम या पक्षपातका विमोह है।

फिर हमारे पास ऐसा कौनसा साधन है कि जिसके द्वारा हमारे पूर्वजों का इतिहास जनताके सन्मुख रखा जा सके। मेरी तो अब भी यही राय है कि अभी भी समय है जैन विद्वान् एक ऐसी संस्था कायम करें कि जिसके द्वारा जितनी पट्टावलीयां एवं वंशावलियादि इस विषय का जितना साहित्य मिले उन सब को एकत्रित कर उनका अनुसंधान करें और यदि कहीं त्रुटियाँ नजर आवें तो अन्य साधनों द्वारा संशोधन कर उसके अन्दर से जितना भी तथ्य मिले उनको इतिहास की कसोटी पर कस कर ठीक सिलसिलेवार संकलित कर जनता के सामने रखें तो मेरा पक्का विश्वास है कि विद्वत्समाज ऐसे इतिहास की अवश्य कद्र करेगा।

वर्तमान कइ सज्जनोंमें एक यह बड़ी भारी खूबी है कि आप कुछ काम करते नही और दूसरा कोइ करताहो तो उसके अन्दर कई प्रकार की व्यर्थ त्रुटियों निकालकर विघ्न उपस्थित करदेते हैं अतः काम करने वालों का उत्साह गिर जाता है यहाँ तो वही काम कर सकता है कि किसी के कहने सुनने की परवाह तक नही रखे और चुप चुप अपना काम करता रहे। हाँ जिस किसी को रुची हो या लाभ दिखताहो वह अपनावे यदि ऐसा नहो तो चुपचाप रहें।

मेरे खयालसे जैनधर्म के लिये कोई भी छोटा मोटा काम करेगा वह जैनधर्म को नुकशान पहुचाने को या जैनागमोंसे खिलाफ तो करेगा ही नही। काम करने वाले की इच्छा शासन की सेवा करने की ही रहती है हाँ किसी विषय की अनभिज्ञता के कारण कुछ अन्यथा होता हो तो उनको सज्जनता पूर्वक सूचना दें। मेरे खयालसे ऐसा मूर्ख कौन होगा कि जिसके हाथोंसे शासन को नुकसान होता हो और उसका एक भाइ ठीक सुझाव कर रहा हो तो वह इन्कार करे अर्थात् कोइ नहींकरेगा यदि इस पद्धतिसे कार्य किया जायतो शासन का न अहितहो और न आपसमें किसी प्रकार से मन मलीनता का कारण बने ?

प्रस्तावना को मैंने काफी लम्बी चौड़ी करदी है पर इसमें अनोपयोगी तो कइ बात मेरे खयाल से नही आइ होंगी फिर भी इतना बड़ाग्रन्थ का परिचय करवाना थोड़ा में हो नही सकता है खैर अब जिन जिन सज्जनों द्वारा सामग्री व सहायता मिली है उनका आभार मानना मैं मेरा कर्त्तव्य समझ कर उनकी नामावली लिख देता हूँ।

## सहायकों की शुभ नामावली

इस बृहद्ग्रन्थ लिखने में जिन जिन महानुभावों की ओर से मुझे किसी प्रकार से सहायता प्राप्त हुई है उन सज्जनों का उपकार मानना मैं मेरा खास कर्तव्य समझता हूँ और शास्त्रकारों ने भी फरमाया है कि उपकारियोंके उपकार को भूल जाय वे लोग कृतघ्नी कहलाते हैं और कृतघ्नी जैसा दूसरा कोई पाप ही नहीं होता है अतः उपकारियों का उपकार मानना जरूरी है यों तो मेरे इस कार्य में बहुत सज्जनों का उपकार हुआ है और उन सबका मैं आभार भी समझता हूँ पर जिन महानुभाव ने विशेष सहायता पहुँचाई और इस समय मेरी स्मृति में है उनकी शुभनामावली यहाँ दे दी जाती है।

१—उपकेशगच्छीय यतिवर्य लाभसुन्दरजी जो कई अर्सा से आप रायपुर (सीपी) में ही रहते थे जब १९७३ का मेरा चतुर्मास फलोदी में हुआ था तब खास मेरे से मिलने एवं दर्शनार्थ फलोदी आये थे और मुझे उपकेशगच्छ में क्रिया उद्धार किया देख आपको बड़ी खुशी हुई थी कारण जैसे आप निर्लोभी निःस्पृही एवं शान्तवृति वाले थे वैसे ही गच्छअनुरागी भी थे आपने कहा था कि मेरे पीछे ऐसा कोई सुयोग्य शिष्य

नम्बर ६

नम्बर ७

उपकेशगच्छ चरित्र ( स० १३६३ का वनाया हुआ )

वशावली न० १ वहुरा गौत्र

वशावली न० २ श्रीमाल वश

(शेष ८ ब्लॉक तैयार न होने से उत्तरार्द्ध में दिये जायगे )

सलाह देकर इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ाई है। और प्रेस के और भी सज्जनों ने एवं फोरमन आदि ने समय समय पर अच्छी सहायता पहुँचाई है अतः आप सज्जनों का नाम भी भूल नहीं सकते हैं।

उपरोक्त सज्जनों के अलावा भी इस ग्रन्थ लिखने एवं प्रकाशन करवाने में जिन जिन सज्जनों ने हमें सहायता पहुंचाई है उन सबका मैं सहर्ष उपकार मदर्शित करता हूं। ॐ शान्ति

## ग्रन्थका संक्षिप्त परिचय

अब हम इस ग्रन्थ का पाठकों को संक्षिप्त परिचय करवा देते हैं—

१—इस ग्रन्थ का नाम मैंने 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' क्यों रखा ? है कि इस ग्रन्थमें मुख्य विषय भगवान् पार्श्वनाथ, की परम्परा में ८४ आचार्य हुए हैं उनका तथा उन आचार्योंके किये हुए शासन हितार्थ कार्यों को ही प्रथम स्थान दिया है कारण इस विषय के आज पर्यन्त जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर नहीं होता है यदि किसी ने लिखा भी है तो इतना ही कि 'भ० पार्श्वनाथ के छटे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुर के क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर महाजन संघ की स्थापना की थी' पर बाद में भी पार्श्वनाथ के पट्टधर आचार्यों का हम पर कितना उपकार हुआ है कि जिन्होंने जैनधर्म की नींव ही क्यों पर जैनधर्म को जीवित रखा कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती कारण आज जैनधर्म पालन करने वाले ओसवाल पोरवाल और श्रीमाल वंश है व उन्हीं आचार्यों के बनाये हुए हैं इतना ही नहीं पर उन आचार्यों द्वारा स्थापन की हुए शुद्धि की मशीन करीब २००० वर्ष तक अपना काम करती रही जिसके जरिये लाखों नहीं पर करोड़ो अजैनों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर महाजनसंघ की अमर्यादित वृद्धि की थी ऐसे जबर्दस्त उपकार करने वाले आचार्यों के उपकार को भूलजाना एक बड़ा से बड़ा कृतघ्नीपन कहा जा सकता है इस कृतघ्नीपन के बज्रपाप से ही समाज का पतन हो रहा है अत मैंने उन आचार्यों का इतिहास लिख समाज के सामने रख दिया है।

२—इस ग्रन्थ का नाम 'भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास रखने से पाठक यह भूल न कर बैठे कि इस ग्रन्थमें केवल भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का ही इतिहास है पर इस ग्रन्थमें भगवान् महावीर की परम्परा का इतिहास भी विस्तृत रूप से दिया गया है जितना भी मुझे उपलब्ध हुआ है। इनके अलावा भी जैनधर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषय का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में यथा स्थान कर दिया गया है जिसको संक्षिप्त से बतला दिया जाता है।

३—राज प्रकरण इसमें महाराजा अश्वसेन के पश्चात् शिशुनागवंश, नंदवंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश पाण्डुवंश, मौर्यवंश, शुंगवंश, विक्रमवंश राजवंश चक्रवर्तीराजा महामेघवाहन कुशानवंश गुप्तवंश' हुणवंश, वल्लभीवंश, चेटकवंश मगध का राजवंश, कांगड़ा का राजवंश, सौवीरराजवंश कलिंगराजवंश, कोशलराजवंश, सिन्धु-सौवीर राजवंश इनके अलावा दक्षिण के जैनराजाओंका तथा परमार, चौहान, चावड़ा राठूड़, प्रतिहार वगैरह जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले राजाओं का वर्णन एवं वंशावलियों भी दी गई हैं

४—इस प्रकरण में चरा कुछ बड़ी जैन जातियों का इतिहास लिखा गया है इनके अलावा दिगम्बर, परविसपुरा बघेरवालादि दिगम्बरों की जातियों तथा अग्रवाल पल्लीवाल महेसरी वगैरह कि उत्पत्ति

५—इसमें जैनागमों की वाचना का वर्णन है, द्वादशवर्षीय जन संहारक दुष्काल के अन्त में पाटली पुत्र में संघसभा और आगम वाचना। पुन' वज्रसूरि के समय भयंकर दुष्काल के अन्त में सोपार पट्टन में आगम वाचना तीसरी मथुरानगरी तथा वल्लभी में आगम वाचना। आगमों के चारों अनुयोगकार पृथक २ करना ८४ आगमों की संख्या ४५ आगमों के योगद्वाहन। जैन श्रमणों के लिये पुस्तके रखना एवं लोकशा

पौसालों में घूम घूम कर कुछ द्रव्यार्थीयों को द्रव्य भी दिया पर बहुत सामग्री एकत्र की—जिसका उपयोग मैंने जैनजातिमहोदय तथा इस ग्रन्थ में किया है।

७—जब मैं जैतारण से बीलाड़ा जा रहा था मार्ग में खारिया ग्राम आया मे तपागच्छ के उपाश्रय में ठहरा वहाँ पर रद्दीखाते में वंशावलियों के लम्बे लम्बे १०-१२ भुगले पड़े थे मैंने वहा के अग्रेश्वर श्रावकों की आज्ञालेकर ले लिया इसी प्रकार पाली से कापरड़े जाते मार्ग में चौपड़ाग्राम आया वहा मन्दिर के भुंहार में महाजनों की बहियों के साथ वंशावली की बहियां तथा कई कागज के भूगले पड़े थे जो बिलकुल रद्दी खाते में थे वहा के श्रावकों की आज्ञा से मैंने ले लिया और एक आदमी कर कापरड़ाजी ले गया उसमें प्राय तपा गच्छ के श्रावकों की वंशावलियों थी।

८—जब मैं गोडवाड में विहार कर रहा था तो चांणोदगया वहां भी उपकेश गच्छ की पौसाल थी और वे भी श्रावकों की वंशावलिया लिखते हैं और उनके पास में भी प्राचीन साहित्य काफी था वहाँ से भी मुझे काफी मसाला मिला था इत्यादि मेरे २८ वर्षों का भ्रमन में जहाँ जहाँ इस विषय का साहित्य मिला मैं प्राय अधिक नोट ही करता रहा कारण इतनी सामग्री कहा लिये फिरता रहूँ। बहुतमा साहित्य जो मुझे मिला मैंने संग्रह भी किया और कई महात्मा मेरे से ले भी गये थे तथापि मेरे पास आया उसके नोट तो मैं बराबर करता ही रहा।

९—इनके अलावा भी मेरे भ्रमन में जहाँ जहाँ मैंने ज्ञान भण्डारों का अवलोकन किया तथा महात्माओं की पौसाला वालोसे मिला और उन लोगोंसे मुझे जो कुछ उपयोगी जानने योग्य साहित्य मिला उसका मैं सग्रह करतारहा जितना साहित्य मुझे मिला था उसपर मैंने आखें मूदकर अन्ध परम्परासे ही विश्वास नहीं कर लिया था कारण मैं जानता हूँ कि वंशावलियों में जिस जिस समय की घटनाए लिखी मिलती हैं वे उस समय की लिखी हुई नहीं है फिर भी कुछ परिश्रम करके संशोधन किया जाय तो उसमें से इतिहास की सामग्री प्राप्त हो सकती है मैंने सशोधन करने पर भी जिस पर मेरा विश्वास हो गया उसको ही काम में ली है।

१०—श्रीमान प्रतापमलजी अमोलखचन्दजी वेजवाड़ाके फार्म वाले श्रीमान् दुर्गाचन्दजी फर्मोंबस वाले तथा कुनणमलजी अनराजजी व्यावर वाले आपकी मारफत कम्पनी को कागजों का ओर्डर संस्था वालों ने दिया था तथा सस्थासे हुण्डी भी भजिवादी थी पर प्रतिबन्धादि कारणसे कम्पनी वाले कागज देने से इन्कार कर दिया हुण्डी भी वापिस आगई पर उपरोक्त ज्ञानप्रेमियोंने बहुत कोशिश कर कागज भिजवाया जिससे ही हमने इस ग्रन्थ को समाज की सेवामें रख मके अत आपका उपकार माना जाता हैं।

११—श्रीमान् त्रिभुवनदास लेहरचन्द शाह वड़ोदा वालों की मारफत शशीकान्त एण्ड कम्पनीने हमें कई ब्लौक छापनेके लिये देकर समाज के द्रव्य की रक्षा की है इस लिये हम आपका आभार समझते है।

१२ श्रीमान् देवकरणजी रूपकरणजी महता अजमेर वालोंने कागजों का स्टाक अपनी हवेलीमें रखवाया और समय-समय प्रेस वालों को देने में परिश्रम लिया अत आपकी भी ज्ञान भक्ति हम भूल नहीं सकते हैं।

१३- सेठजी हीराचन्दजी संचेती अजमेर वालों ने भी हमारा अजमेर स० २००० का चतुर्मास में सेवा का अच्छा लाभ उठाया है।

१४—श्रीमान् गणेशमलजी वसतीमलजी मिसरीमलजी वैद्य महता जोधपुर वालों ने भी इस ग्रन्थ के लिये प्रबन्ध करने में समय समय अच्छी सुविधाऐं कर दी थी।

१५—उपरोक्त सज्जनों के अलावा विशेष सहायता मुनि गुणसुन्दरजी की रही कि इसकी सहायता से ही मैंने इस वृहद्ग्रन्थ लिखने में सफलता हासिल की है।

१६—पण्डित गौरीनाथजी कि आपने कई संस्कृत पट्टा० फार्मे सध करने में सहायता पहुचाई।

१७—श्रीमान् रामलालजी गोयल मैनेजर आदर्श प्रेस ओं तो आपने मेरे वर्षों से कार्य दिलचस्पी मे करते आये हैं वरन इस ग्रन्थ के लिये तो आपने धार्मिक भावना से अच्छी सहायता एव समय २ पर

## इस ग्रंथ को लिखने में अन्य ग्रंथों की ली गई सहायता

१ उपकेशगच्छ की पट्टावली नं० १
२ „ „ „ नं० २
३ „ „ „ नं० ३
४ उपकेशगच्छ चरित्र नं० १
५ „ „ „ नं० २
६ नभिनन्दन जिनोद्धार
७ उपकेशगच्छ प्रबन्ध
८ म० पार्श्व नाथ चरित्र
९ उत्तर भारत में जैनधर्म
१० उपकेशगच्छ कम्पबद्ध पट्टावली
११ उपकेशगच्छ मारवाड़ी भाषा पट्टा०
१२ उपकेशगच्छाचार्यों की बड़ी पूजा
१३ उपकेशगच्छी श्रावकों की वंशावलियाँ
१४ *1* चोरड़िया जाति की बही
१५ *2* वैद्य मेहता जाति का बड़ा खोलिया
१६ *3* बाफणा जाति का बड़ा खोलिया
१७ *4* यतिवर्य लाभसुन्दरजी द्वारा वंशा०
१८ *5* यतिवर्य माणकसुन्दरजी द्वारा „
१९ *6* यतिवर्य दीपसुन्दरजी द्वारा
२० *7* भट्टारक देवगुप्तसूरि द्वारा बरा
२१ *8* छाजेड़ जाति की वंशावलियाँ
२२ *9* सुचन्ति जाति की वंशावलियाँ
२३ *10* संचेती जाति की वंशावलियाँ
२४ *11* वीसलमंत्रों की बही
२५ कोरंटगच्छीय श्री पूज्यजी की बही
२६ कोरंटगच्छीय श्रावकों की वंशावलियाँ
२७ कोरंटगच्छ की पट्टावली
२८ कोरंटगच्छ का इतिहास शिलालेखादि
२९ प्रभाविक चरित्र
३० प्रबन्ध चिंतामणि
३१ परिशिष्ठ पर्व
३२ प्रबन्ध कोष
३३ विविध तीर्थ कल्प
३४ जैनमित्र संग्रह
३५ आंचल गच्छ पट्टावली
३६ हेमवंत थेरावली
३७ तपागच्छ पट्टावली त्रिमासिक में
३८ तपागच्छ पट्टावली जै० क० हेरेल्ड में
३९ तपागच्छ पट्टावली प० समुच्चय में
४० पल्लीवालगच्छ पट्टावली (श्री अगर
४१ जैनधर्म का इतिहास (भावनगर)
४२ जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग १
४३ जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग २
४४ महाजनवंश मुक्तावली
४५ जैन सम्प्रदाय शिक्षा
४६ स्याद्वादानुभव रत्नाकर
४७ कल्पसूत्र हिन्दी भाषान्तर
४८ प्रभुमहावीर पट्टावली (स्था० मणिलाल)
४९ नागपुरिया तपागच्छ पट्टावली
५० महावीर चरित्र
५१ जम्बु स्वामी चरित्र
५२ श्रेणिक चरित्र
५३ बीसाख्ये प्रकार की पूजा
५४ शत्रुंजय माहात्म्य
५५ शत्रुंजय का रास
५६ शत्रुंजय उद्धारसार
५७ श्री आचारांगसूत्र
५८ श्री सूयगडा सूत्र
५९ श्री स्थानायांगसूत्र
६० श्री समवायांगजी सूत्र
६१ श्री भगवतीजी सूत्र
६२ श्री ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र
६३ श्री उपासकदशांगसूत्र
६४ श्री अन्तगडदशांगसूत्र
६५ श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र
६६ श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र
६७ श्री विपाकसूत्र
६८ श्री उववाईजीसूत्र
६९ श्री रायप्रश्नीजी सूत्र
७० श्री जीवाभिगमजीसूत्र
७१ श्री पन्नवणाजी सूत्र
७२ श्री जम्बुद्वीप पन्नतिसूत्र
७३ श्री निरियावलकाजी सूत्र
७४ श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र

बन्धनो का प्रायश्चित।। आवश्यकता होने पर पुस्तकें लिखना वल्लभी नगरी में संघ सभा और आगमो को पुस्तकारूढ करना इत्यादि

६—चैत्यवास प्रकरण, इसमें चैत्यवासियोंके लिये चैत्यवास कबसे, चैत्यवास क्या सुविहित सम्मत ? चैत्य वास से हानी लाभ ? चैत्तवास में विकार, चैत्यवास के समय समाज का सगठन, सघ व्यवस्था समाज की उन्नत दशा, चैत्यवासी बड़े बड़े धुरंधर आचार्य जिन्हों का समाज एव राजामहाराजो पर जबर्दस्तप्रभाव चैत्यवास हाटा देने से हानी लाभ इत्यादि

७— व्यापारी प्रकरण—जैन व्यापारियों के व्यापार क्षेत्र की विशालता-भारत और भारत को वाहर पश्चात्य प्रदेशों में व्यापारियों की पेढियों और व्यापार से लक्ष्मी का वरदान इत्यादि—

८—गच्छ प्रकरण—तीर्थकरों की मौजुदगीमें गच्छों की आवश्यकता—आचार्यों के शिष्योंसे पृथक् २ गच्छ, क्रिया भेद के गच्छ, एवग्रामों के नाम के गच्छ, बर्तमानमें ८४ गच्छ कहे जाते हैं पर इस प्रकरण में ३१० गच्छों का पता लगाया है इत्यादि—

९—तीर्थ प्रकरण—इसमें प्राचीन अर्वाचीन तीर्थों का वर्णन है।

१०—पट्टावलीयां–इसमें जितने गच्छों की पट्टावलियो उपलब्ध हुई हैं उनको तथा गच्छों की शाखाए बगैर ही पट्टा वलियों को भी दर्ज कर दिया है।

११—धर्म का प्रचार—किस प्रान्त में किस समय धर्म का प्रचार किस आचार्य द्वारा हुआ और किस कारण वे प्रान्त धर्म विहीन बनी।

१२—शाह प्रकरण—जैनोमें जगतसेठ नगरसेठ टीकायत चौधरी चौवटीया वौहरा कोठारी और शाह पद्वियों कब एवं क्यों तथा जैन समाज में ७४।। शाह क्यों कहे जाते हैं इत्यादि।

१३—सिक्का प्रकरण-सिका का चलन कब से प्रारम्भ हुआ है इसके पूर्व व्यापार कैसे चलता था सिक्कों पर धार्मिक चिन्ह इत्यादि।

१४—स्तूभ प्रकरण—जिसमें प्राचीन समय में स्तूभ भी बनवाये जाते थे अत: जैनोंने भी बहुत से स्तूभ करवाये थे पर विद्वान लोगो ने भ्राति से जैन स्तूभों को बौद्धोंकठहरादिये पर शोध खोज करने पर वे स्तूभ जैनों के ही सिद्ध हो गये इत्यादि

१५— गुफा प्रकरण–इसमें गुफाओं का वर्णन है पूर्व जमानेमें जैन श्रमण प्राय. गुफाओं एव जगलोंमें ही रहते थे इत्यादि इनके अलावा और भी कई विषय इस ग्रन्थ में लिखे गये हैं फिर भी जैन साहित्य समुद्र है जिसका पार पाना मुश्किल है तथापि अब सेकड़ों ग्रन्थ की बजाय इस एक ही ग्रन्थ पढनेसे ही पाठको का काम निकल जावेगा

अन्तमें मैं मेरे प्यारे पाठकों से इतना कहदेना आवश्यक समझता हूँ कि एक व्यक्ति पर अनेक कामों की जुम्मावारी होते हुए भी स्वल्प समयमें इतना बड़ा ग्रन्थ लिख कर समाज की सेवामें उपस्थित करदे और उसमें कई त्रुटियो रहजाना यह एक स्वभाविक बात है दूसरा जिस सिलसिलावर की पहली मैंने योजना बनवाई थी पर समय एव सहायक के अभाव में ठीक उसको पूर्त्ति कर नहीं सका दूसरा एक तो मेरी उतावल से लिखने की प्रकृति दूसरी इस समय मेरी ६३ वर्षों की अवस्था और नेत्रों की कमजोरी होने से कहीं कहीं अशुद्धि भी रह गई हैं फिर भी साथमें शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है पाठक पहले शुद्धिपत्र से पुस्तक शुद्ध कर पढ़ें फिर भी यदि कोइ त्रुटि रह गई हो तो मैं मेरे पाठकों से क्षमा की प्रार्थना करता हुआ मेरी प्रस्तावना को समाप्त कर देता हू शुभम्

ता० १-११-४१
अजमेर

ज्ञानसुन्दर

१४३ " " " भा० ४
१४४ " " " भा० ५
१४५ एक जूना पत्ना
१४६ श्रमण भगवान महावीर
१४७ वीर निर्वाण सवत् और जैनकालगणना
१४८ राजपूताना की शोध खोज
१४९ कुवलयमाला कथा
१५ श्रीमाल वणियों का ज्ञातिभेद
१५१ श्रमवाल जाति का इतिहास
१५२ महेसरी कल्पद्रुम
१५३ पीसांगण की हस्तलिखित पोथी
१५४ मारवाडा की हस्तलिखित पोथी
१५५ समररासु (आम्रदेवसूरि)
१५६ ओसियाँ का प्राचीन शिलालेख
१५७ ओसियाँ का एक प्राचीन कवित
१५८ ओसवाल जाति का रासा
१५९ ओसवाल मीपालोत्पत्तिरास
१६० महाजनों के प्राचीन कवित
१६१ भारी स्तिम्भ पाता
१६२ अंग चूलिका सूत्र
१६३ निशीथसूत्र चूर्णी
१६४ बृहद् कल्पसूत्र चूर्णी
१६५ आवश्यकसूत्र चूर्णी
१६६ नागवंशी राजाओं का वर्णन
१६७ मौर्यवंशी राजाओं का इतिहास
१६८ हिन्दू सम्राट (चन्द्रगुप्तमौर्य)
१६९ अशोक के धर्मलेख संग्रह
१८० सम्राट् सम्प्रति
१८१ गायकवाडी का मा स्तवन
१८२ महान् सम्प्रति
१८३ कलिंग का इतिहास
१८४ बौद्ध दिव्यावदान ग्रन्थ
१८५ बौद्ध ग्रन्थ अशोकावदान
१८६ पद्मपुत् अशोक और महान सम्प्रति
१८७ माहेश्वर पुराण
१८८ टॉड राजस्थान
१८९ भवतत्त्व भाष्य
१९ विचारश्रेणि थेरावली
१९१ तित्थोगाली पइन्ना
१९२ दैस्य कांड नामक पुस्तक
१९३ जैन रामायण
१९४ जैन साहित्य का इतिहास
१९५ गिरनारदीप का इतिहास
१९६ सुवराग निसास बौद्धग्रन्थ
१९७ कालसप्तति
१९८ दीपाली कल्प
१९९ रत्न संचय
२ तत्वार्थ सूत्र
२ १ कालकाचार्य की कथा
२ २ बृहत्कल्प भाष्य
२ ३ युग प्रधान
२ ४ कथावली
२ ५ योगशास्त्र
२ ६ ज्योतिष करण्डु पइन्ना
२०७ लोकप्रकाश
२ ८ उपदेशतरंगणी ?
२ ९ शिल्पिमाला
२१ प्राप्त हुए शिलालेख
२११ भद्रबाहु चरित्र
२१२ स्त्री मुक्ति प्रकरण
२१३ केवलीमुक्ति प्रकरण
२१४ दिगम्बर पट्टावली का भाग
२१५ मथुरा के शिलालेख
२१६ ज्ञानार्णव
२१७ श्रावक मूलाचार
२१८ रत्नमालिका
२१९ पोरवाल जाति का इतिहास
२२ भगवत्यादि
२२१ पार्श्व बस्ती का शिलालेख
२२२ सरस्वती मासिक का लेख
२२३ भारत के व्यापारी
२२४ महाजन संघ की पंचापथियाँ
२२५ मार्कण्डेय पुराण
२ ६ भागवत पुराण
२२७ दान महात्म्य
२२८ ब्रह्मचर्य महात्म्य
२२९ कर्मग्रन्थ
२३ भा. जैन इतिहास भा० १६

७५ श्री दशवैकालीक सूत्र
७६ श्री नदीसूत्र
७७ श्री अनुयोगद्वार सूत्र
७८ श्री ओघनिर्युक्तिसूत्र
७९ श्री निशीथसूत्र
८० श्री वृहद् कल्पसूत्र
८२ श्री व्यवहारसूत्र
८३ श्री दशश्रुतस्कन्ध सूत्र
८४ श्री कल्पसूत्र सुबोधका
८५ श्री कल्प द्रुम टीका
८६ श्री पण्ड नियुक्तिसूत्र
८७ श्री आवश्यकजी सूत्र
८८ बौद्धग्रन्थ महावगा
८९ बौद्ध ग्रन्थ दीर्घनिकाय
९० ,, ,, मज्जमिकाय
९१ ,, ,, विनय पिटिका०
९२ ऋग्वेद
९३ यजुर्वेद
९५ महाभारत
९६ रामायण
९६ मनुस्मृति
९७ पद्मपुराण
९८ ब्रह्माण्ड पुराण
९९ प्रभासपुराण
१०० शिवपुराण
१०१ श्रीमालपुराण
१०२ नागपुराण
१०३ योगवासिष्ट
१०४ दुर्वास महिम्नस्तोत्र
१०५ भवानी सहस्त्र नाम
१०६ स्कन्धपुराण
१०७ वृहद्अरण्यका
१०८ कालीतंत्र
१०९ महानिर्वाण तंत्र
११० भैरवीचक्र तंत्र
१११ रुद्रायणतंत्र
११२ वेद अंकुश
११३ सर्व धर्म संग्रह
११४ सुभापीत रत्नभाण्डागर
११५ उपदेश कथाकोष
११६ उपदेशप्रसाद
११७ बारह व्रता की टीप
११८ शीघ्रबोध भाग १ ला
११९ जैनतत्वालोक०
१२० मारवाड़ की ख्यात
१२१ मुर्णायत नैणसी की ख्यात भा १
१२२ मुर्णायत नैणसी की ख्यात भा० २
१२३ साहित्यरत्नाकर
१२४ विविध विषय विचार
१२५ आगम सार संग्रह
१२६ महाजन संघ
१२७ प्राचीन जैन स्मारक बंबई प्रान्त
१२८ ,, ,, ,, मैसूर प्रान्त
१२९ ,, ,, ,, मध्य प्रान्त
१३० ,, ,, ,, बंगाल प्रान्त
१३१ ,, ,, ,, संयुक्त प्रान्त
१३२ ,, ,, शिलालेख दक्षिण प्रान्त के
१३३ जैन लेख संग्रह खण्ड १ (बा० पू० ना०)
१३४ ,, ,, ,, खण्ड २ ,,
१३५ ,, ,, ,, खण्ड ३ ,,
१३६ धातु प्रतिमा लेख संग्रह भा० १ (बु०)
१३७ ,, ,, ,, ,, भा० २ ,,
१३८ जैन लेख संग्रह भा० १ (जिनवि०)
१३९ ,, ,, ,, भा० २ ,,
१४० जैन शिलालेख भा० १ (आ० वि० धर्म-)
१४१ राजपूताना का इतिहास
१४२ मारवाड़ का इतिहास
१४३ भारत के प्राचीन राजवंश भा० १
१४४ ,, ,, ,, भा० २
१४५ ,, ,, ,, भा० ३
१४६ जैनधर्म विषय प्रश्नोत्तर
१४७ जैनतत्वादर्श भा० १-२
१४८ भारत इतिहास की रूपरेखा भा० १
१४९ ,, ,, ,, भा० २
१५० प्राचीन भारत वर्ष भा० १
१५१ ,, ,, ,, भा० २
१५२ ,, ,, ,, भा० ३

(History of India ) Page 146.
3. The Venerable Ascetic Mahavira's Parents were Worshipers of Parsva and followers of the Sramans (S. B. E Vol 22 Kalpa Sutra B K II Lc 15 P 194 )
4. Buhler The Indian Sect of the Jainas, p. 32.
5 Jacobi, S. B. E., x/v., p XXI.
6 Wilson, op cit i p 334
7 Lasson, I. A., ii p 197
8. Jacobi, I. A., ix. p 160.
9 Belvalkar The Brahma-Sutras, p 106
10. Dasgupta op. cit p 173
11 Radha Krishna, op. cit, p. 281
12. Charpentier C H I i p 163
13 Mazumdar op cit pp 262 ff.
14. Guerinot, Bibliographie Jaina, Int., p xi
15. Frazer Literary History of India, p 128.
16 Elliot, Hinduism and Budhism, i p 110
17 Poussin, The way to Nirvana, p. 67
18. Guerinot op. and loc, Eit.
19 Charpentier Uttaradhyayana Int., p 21.
20 Colebrook op. cit ii p 377
21. Stevenson ( Rev ) op and loc, cit.
22 Thomas ( Edward ) op. cit., p. 6

\+ + + +

23 Colebrooke op. and loc cit
24. Early faith of Ashok Jainism by Dr Thomas South Indian page 29 Jainism II
25 Vienna Oriental Journal VII 362.
26 Indian Antiquary XXI 1960.
27 Jainism of the Early Faith of Asoka page 23
28 Journal or the Behar and Orissa Research Society Volume III
29 Oxford History of India

## इस ग्रन्थ में आये हुए चित्रों का संक्षिप्त परिचय

| पत्र नंबर | चित्र संख्या | चित्र नाम | परिचय पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | १ | भगवान् पार्श्वनाथ श्यामा चित्र | २ |
| २ | २ | आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज चौरंगा | ४ |
| ३ | ३ | आचार्य विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज सादित्य | ६ |
| ४ | ४ | परमयोगिराज मुनिवर्य श्रीरत्नविजयजी महाराज | ८ |
| ५ | ५ | इस ग्रन्थ के लेखक मुनि श्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज | २ |
| ६ | ६ | मुनिराज श्रीगुणसुन्दरजी महाराज | ४ |
| ७ | ७ | श्रीउपकेश गच्छ चरित्र का ब्लौक | ६ |
|  | ८ | श्रीउपकेश गच्छ चरित्र का ब्लौक | ६ |
| ८ | ९ | श्रीउपकेश गच्छ श्रावकों की वंशावलियों का ब्लौक | ८ |
|  | १ | श्रीउपकेश गच्छीय श्रावकों की वंशावलियों „ „ | ८ |
|  | ११ | श्रीउपकेश गच्छीय श्रावकों की वंशावलियों „ „ | ८ |
| ९ | १२ | श्रीउपकेश गच्छीय श्रावकों की वंशावलियों „ | १ |
|  | १३ | श्रीउपकेश गच्छीय श्रावकों की वंशावलियों „ „ | १ |
|  | १४ | श्रीउपकेश गच्छ एवं तपा गच्छ के श्रावकों की वंशा० | १ |
| १ | १५ | मुनि ज्ञानसुन्दरजी म० कापरडाजी तीर्थ में | १७ |

२३१ काव्यमाला गुच्छक सप्तम्
२३२ प्रबन्धावली
२३३ आत्मानन्द शताब्दी अंक
२३४ महावीर विद्यालय रोप्प महोत्सवांक
२३५ गच्छमत प्रबन्ध
२३६ विमल चरित्र
२३७ तपागच्छ श्रमण वृक्ष
२३८ नागरी प्रचारणी पत्रिका अंक
२३९ शंखस्मृति
२४० आसन स्मृति
२४१ पारासर स्मृति
२४२ दर्शनसार दिगम्बर
२४३ जैनहितैषी भाग ७ वा
२४४ डा, फूहरार का मत
२४५ प्रोफेसर ए, चक्रवर्ति
२४६ बौद्ध साधु धेनूसेन का ग्रन्थ
२४७ जैनीज्म (बाबू कृष्णा०)
२४८ सुक मुक्तावली
२४९ ललित विस्तरा
२५० डा० स्टीवेन्स का मत
२५१ डा० भाण्डाकार
२५२ मारी मेवाड़ यात्रा
२५३ सूरीश्वर और सम्राट
२५४ शतपदी भाषान्तर
२५५ डा० सर कनिंग होम
२५६ डा० फ्लाट साब का मत
२५७ जैनसत्यप्रकाशमासिक
२५८ जैन साप्ताहिक भावनगर
२५९ जैसलमेर का इतिहास
२६० मेहताजी का चरित्र
२६१ भगवान् पार्श्वनाथ
२६२ भ० महावीर—म० बुद्ध
२६३ राजपूतांना के जैनवीर
२६४ जैनवीरों का इतिहास
२६५ मारवाड़ के सुपुत
२६६ मेवाड़ के सुपुत
२६७ प्राचीन गुर्जर काव्य संचय
२६८ जैन ऐतिहासिक रास माला
२६९ जैन ग्रन्थावली
२७० नवपद प्रकरण टीका
२७१ ऐतिहासिक जैन काव्य
२७२ प्रवचन परीक्षा
२७३ पचासक प्रकरण
२७४ राज तरंगिणी
२७५ त्रिषष्टि सि० पुरुष चरित्र
२७६ वस्तुपाल तेजपाल
२७७ विमलमंत्री
२७८ वप्पभट्टसूरि और आमराजा
२७९ जैसलमेर ज्ञान भ० सूची
२८० पाटण ज्ञान भंडारों का सूची पत्र
२८१ बड़ौदा सेंट्रल लाइब्रेरी का सूची पत्र
२८२ कुमारपाल चरित्र
२८३ सिरोहीराज का इतिहास
२८४ उदयपुर राज का इतिहास
२८५ पाटण का इतिहास
२८६ सिद्धान्त समाचारी
२८७ ओसवाल जाति का इतिहास
२८८ जैनपत्र का रोप्यमहोत्सवांक
२८९ जैनगुर्जर कवियों भाग
२९० प्राचीन कलिंग और खारवेल
२९१ जैनसाहित्य का प्र० इतिहास
२९२ प्रगट प्रभाविकपार्श्वनाथ
२९३ तीर्थङ्करों के बोल
२९४ जैनसाहित्य संशोधक मासिक
२९५ जैनोंप्रतापी के पुरुष
२९६ सादा चमोतर शाह की ख्यात प्र० १
२९७ „ „ प्र० २
२९८ „ „ प्र० ३
२९९ „ „ प्र० ४
३०० „ „ प्र० ५

भगवान् पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध करने को कइ पश्चात्य विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों में उल्लेख किये हैं जिसको उत्तर भारत में जैनधर्म नामक पुस्तक में नामोल्लेख किया है पाठकों के जानने के लिये यह लिख दिया जाता है—

1 "Chandragupta Maurya" by Ho H. L O Garrett M A. L E S
2. Dr Vincent Smith,

# विषयानुक्रमणिका

संसार में विद्वानों की संख्या हमेशों कम से कम हुआ करती है कि वे संक्षिप्त लेख होने पर भी उसका भाव को ठीक समझ सके पर साधारण लिखे पढे कि संख्या विशेष होती है उन लोगों को बोध के लिये सादी सरल भाषा और लेख विस्तारपूर्वक स्पष्ट लिखा हुआ हो तो वे सुविधा के साथ लाभ उठा सकते हैं अतःमैंने जैसे इस ग्रन्थ को विस्तार से लिखा है वैसे ही इसकी विषयानुक्रमणिका विस्तार से लिखना समुचित समझा है और इस प्रकार विषयानुक्रमणिका विस्तारसेलिखने में एक दो फार्म बढ़ जायगा पर इतना बड़ा ग्रंथ में एक दो फार्म का खर्चा अधिक हो जाना कोई बात नहीं है पर साधारण जनता विषयानुक्रमणिका पढ कर सम्पूर्ण ग्रन्थ के भावों को ठीक तरह से समझ ले यही हमारे उद्देश्य की पूर्ति है।

## सिक्का-प्रकरण १८७



## स्तूप-प्रकरण १९४



### मथुरा का सिंह स्तूप



### साची स्तूप

मामराजा को एक रानी का संतान उप-
केश वंश में राज कोठारी जाति
राजा आम और बाप भट्टि सूरिका जी०
शत्रुंजय का शिलालेख १२१७

### आचार्य हरिभद्रसूरि १२१८

चित्तोड़ का भट्ट हरिभद्र
जैन मन्दिर में प्रभु का उपहास
साध्वी की एक गाथा
पुन मन्दिर में देव स्तुति
जिनदत्त सूरि का उपदेश भट्ट की दीक्षा
ज्ञानाभ्यास और सूरिपद
हंस परमहंस की जैन दीक्षा
बौद्ध शास्त्रों का अभ्यासार्थ
हंस की मृत्यु परमहंस भागकर
राजा सूरपाल के शरण
बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ में विजय
परमहंस हरिभद्रसूरि के पास
हरिभद्र सूरपाल की सभा में
बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ में परास्त
कार्पासिक का ग्रन्थ प्रचार
चौदहसौ चमालीस ग्रन्थ
महानिशीथ का उद्धार
कथावली का उल्लेख मतभेद
हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास

### आचार्य सिद्धर्षिका जीवन १२३१

रात्री में घर पर देरी से आना
माता का उपालम्भ
सिद्ध की दीक्षा-ज्ञान
बौद्ध ग्रन्थों का अभ्यासार्थ
भ्रांति और बौद्ध दीक्षा
गार्गर्षि के पास कलित विस्तरा
पुनः जैन दीक्षा कुवलयमाला कथा

### आचार्य महेन्द्रसूरि

सर्वदेव का द्रव्य शोमन की दीक्षा
मुनि शोमन का अथाह ज्ञान
पुन धारानगरी में धनपाल को बोध
भोज के साथ धनपाल शिवमन्दिर में
पं० धनपाल की युक्तियों
यज्ञार्थ एकत्र किये पशु
पुनः धनपाल की युक्ति
धनपाल की तिलकमंजरी कथा
राजा की मांग अस्वीकार-अग्नि में
धनपाल का चला जाना
भरोंच के पण्डित का धारा में आना
राज सभा के पण्डित असमरथ
राजा ने धनपाल को बुलाया विजय

### आचार्य सूराचार्य १२४१

द्रोणाचार्य के पास दीक्षा सूराचार्य नाम
राजाभोजएकगाथा पाटण राजा को भेजी
पाटण का राजाभीम ने सूराचार्य से
एक गाथा बनाकर धारा नगरी भेजी
राजा भोज का मान गल गया
सूराचार्य शिष्यों को पढ़ाने में रजोहरण
की एक दंडी हमेशा तोड़ डालना
लोहा की दंडी बनाने का विचार,
गुरु का उपालम्भ व्यांग में कहा धारा के
पण्डितों को जीत कर मान करना
सूराचार्य की तैयारी धारा का आमंत्रण
हस्ती पर सवार हो धारा गया
भोज का सम्मुख शानदार स्वागत
धारा के सब पण्डितों को परास्त
तबोली के वेष में पुन पाटण
सूराचार्य का प्रकण्ड प्रभाव

### आ० अभयदेवसूरि १२४७

धारा नगरी में लक्ष्मीपति सेठ
दो ब्राह्मणों को दीक्षा की भावना
८४ चैत्योंकाधिपति वर्द्धमानसूरि
क्रियोद्धार दो शिष्य
जिनेश्वर सूरि बुद्धिसागर सूरि
गुरु आज्ञा से पाटण पधारे
घरघर में भाषने पर भी स्थान नहीं
सोमेश्वर पुरोहित ने अपना मकान दिया
चैत्यवासियों के आदमी ने निकलने का
पुरोहित राजा दुर्लभ की राज सभा में
चैत्यवासी भी राजा के पास आये
श्री संघ की समक्ष धनराज की मर्यादा
राजा ने भूमि दी पु० मकान बनाया
जिनेश्वर० पाटण में चतुर्मास किया
वसतिवास नाम का नया मत नि०
प्रभाविक चरित्र का प्रमाण
दर्शन सप्तति का प्रमाण
दुकाल से आगमों की परिस्थत
देवी के आदेश से नौ अंग की टीका
सूरिजी के शरीर में बीमारी
धरेणन्द्र का आगमन
स्तम्मन तीर्थ की स्थापना

### आचार्य वादीदेवसूरि १२५४

मधुमति प्राग्वट वीर नाग का पुत्र
रामचन्द्र वहा से भरोंच नगर में आये
रामचन्द्र एक सेठ के कोलसे को सुवर्ण
देखा सेठ ने एक सौ दीनार बक्सीस
रामचन्द्र की दीक्षा देवमुनि नाम
सरस्वती का वरदान
वादियों को पराजय
सूरिपद देवसूरि नाम
वादी के गूढ़ श्लोक का अर्थ
देवसूरि ने बतलाया
अनेक वादियों को परास्त किये
वादी देवसूरि नाम करण
दिगम्बर कुमुदचन्द्र को परास्त

### आचार्य हेमचन्द्रसूरि १२६०

धधुंका के मोढ़ चाच का पुत्र
चगदेव की दीक्षा सोमचन्द्र नाम
सरस्वती के लिये काश्मीर की ओर
नेमिचैत्य में ठहरकर ध्यान
सामने आकर देवी ने वरदान दिया
सूरिपद और हेमचन्द्र सूरि नाम
सिद्धराजा की भेट और भक्त
राजा की विजय में आशीर्वाद
सिद्धहेम व्याकरण का निर्माण
पाण्डवों का शत्रुंजय पर मोक्ष जाना
ब्राह्मणों की ईर्षाग्नि-शान्त

आमराजा की एक रानी का संतान उप-
केश वंश में राज कोठारी जाति
राजा आम और बाप भट्टि सूरिका जी०
शत्रुंजय का शिलालेख १२१७

## आचार्य हरिभद्रसूरि १२१८

चित्तोड़ का भट्ट हरिभद्र
जैन मन्दिर में प्रभु का उपहास
साध्वी की एक गाथा
पुनः मन्दिर में देव स्तुति
जिनदत्त सूरि का उपदेश भट्ट की दीक्षा
ज्ञानाभ्यास और सूरिपद
हंस परमहंस की जैन दीक्षा
बौद्ध शास्त्रों का अभ्यासार्थ
हंस की मृत्यु परमहंस भागकर
राजा सूरपाल के शरण
बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ में विजय
परमहंस हरिभद्रसूरि के पास
हरिभद्र सूरपाल की सभा में
बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ में परास्त
कार्पासिक का ग्रन्थ प्रचार
चौदहसौ चमालीस ग्रन्थ
महानिशीथ का उद्धार
कथावली का उल्लेख मतभेद
हरिभद्रसूरि का स्वर्गवास

## आचार्य सिद्धर्षिका जीवन १२३१

रात्री में घर पर देरी से आना
माता का उपालम्भ
सिद्ध की दीक्षा-ज्ञान
बौद्ध ग्रन्थों का अभ्यासार्थ
भ्रांति और बौद्ध दीक्षा
गार्गर्षि के पास ललित विस्तरा
पुनः जैन दीक्षा कुवलयमाला कथा

## आचार्य महेन्द्रसूरि

सर्वदेव का द्रव्य शोभन की दीक्षा
मुनि शोभन का अथाह ज्ञान
पुनः धारानगरी में धनपाल को बोध
भोज के साथ धनपाल शिवमन्दिर में
पं० धनपाल की युक्तियों
यज्ञार्थ एकत्र किये पशु
पुन धनपाल की युक्ति
धनपाल की तिलकमजरी कथा
राजा की मांग अस्वीकार-अग्नि में
धनपाल का चला जाना
भरोंच के पण्डित का धारा में आना
राज सभा के पण्डित असमरथ
राजा ने धनपाल को बुलाया-विजय

## आचार्य सूराचार्य १२४१

द्रोणाचार्य के पास दीक्षा सूराचार्य नाम
राजाभोजएकगाथा पाटण राजा को भेजी
पाटण का राजाभीम ने सूराचार्य से
एक गाथा बनाकर धारा नगरी भेजी
राजा भोज का मान गल गया
सूराचार्य शिष्यों को पढ़ाने में रजोहरण
की एक दंडी हमेशा तोड़ डालना
लोहा की दंडी बनाने का विचार,
गुरु का उपालम्भ व्यंग में कहा धारा के
पण्डितों को जीत कर मान करना
सूराचार्य की तैयारी धारा का आमंत्रण
हस्ती पर सवार हो धारा गया
भोज का सम्मुख शानदार स्वागत
धारा के सब पण्डितों को परास्त
तबोली के वेष में पुन पाटण
सूराचार्य का प्रकण्ड प्रभाव

## आ० अभयदेवसूरि १२४७

धारा नगरी में लक्ष्मीपति सेठ
दो ब्राह्मणों को दीक्षा की भावना
८४ चैत्योंकाधिपति वर्द्धमानसूरि
क्रियोद्धार दो शिष्य
जिनेश्वर सूरि बुद्धिसागर सूरि
गुरु आज्ञा से पाटण पधारे
घरघर में याचने पर भी स्थान नहीं
सोमेश्वर पुरोहित ने अपना मकान दिया
चैत्यवासियों के आदमी ने निकलने का
पुरोहित राजा दुर्लभ की राज सभा में
चैत्यवासी भी राजा के पास आये
श्री संघ की समक्ष वनराज की मर्यादा
राजा ने भूमि दी पु० मकान बनाया
जिनेश्वर० पाटण में चतुर्मास किया
वसतिवास नाम का नया मत नि०
प्रभाविक चरित्र का प्रमाण
दर्शन सप्तति का प्रमाण
दुकाल से आगमों की परिस्थत
देवी के आदेश से नौ अग की टीका
सूरिजी के शरीर में बीमारी
धरेणन्द्र का आगमन
स्तम्मन तीर्थ की स्थापना

## आचार्य वादीदेवसूरि १२५४

मधुमति प्राग्वट वीर नाग का पुत्र
रामचन्द्र वहा से भरोंच नगर में आये
रामचन्द्र एक सेठ के कोलसे को सुवर्ण
देखा सेठ ने एक सौ दीनार बक्सीस
रामचन्द्र की दीक्षा देवमुनि नाम
सरस्वती का वरदान
वादियों को पराजय
सूरिपद देवसूरि नाम
वादी के गूढ़ श्लोक का अर्थ
देवसूरि ने बतलाया
अनेक वादियों को परास्त किये
वादी देवसूरि नाम करण
दिगम्बर कुमुदचन्द्र को परास्त

## आचार्य हेमचन्द्रसूरि १२६०

धधुका के मोढ़ चाच का पुत्र
चंगदेव की दीक्षा सोमचन्द्र नाम
सरस्वती के लिये काश्मीर की ओर
नेमिचैत्य में ठहरकर ध्यान
सामने आकर देवी ने वरदान दिया
सूरिपद और हेमचन्द्र सूरि नाम
सिद्धराजा की भेट और भक्त
राजा की विजय में आशीर्वाद
सिद्धहेम व्याकरण का निर्माण
पण्डवों का शत्रुंजय पर मोक्ष जाना
ब्राह्मणों की ईर्षाग्नि-भ्रान्ति

# भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास

# उत्तरार्द्ध

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास पूर्वार्द्ध की दो जिल्दें पाठकों की सेवामें पहुंच गई जिसको पढ़ने से आपको ज्ञात हो चुका है कि इसमें जैनधर्म का कितना विस्तृत इतिहास आया है कि आजपर्यन्त ऐसा ग्रन्थ कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ होगा और अब पाठकों की यह जिज्ञासा अवश्य रहती होगी कि—इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में क्या क्या विषय आवेंगे ? अतः यहां पर संक्षिप्त से बतला देना अच्छा होगा कि—

१—भगवान् पार्श्वनाथ के ३१ से ८४ पट्टधर आचार्यों का जीवन तथा उनके शासन में साधुओं की दीक्षाएं मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं तीर्थों के संघादि शुभकार्य—

२—भगवान् महावीर के ४० वें पट्टधर से वर्तमान के आचार्यों का जीवन तथा उनके जीवन के शासन सम्बन्धी कार्यों का इतिहास जितना मुझे मिला है।

३—तीर्थाधिकार इसमें प्राचीन अर्वाचीन तीर्थों का इतिहास उनकी उत्पत्ति मन्दिरों-मूर्तियों की प्रतिष्ठा का समयादि सब हाल लिखा जायगा।

४—गच्छाधिकार—भ० महावीर के पश्चात् किस समय से तथा किस कारण से और किस पुरुष द्वारा कौन सा गच्छ उत्पन्न हुआ जो तो ८४ गच्छ कहे जाते हैं पर मेरी शोध खोज से ११ गच्छों का पता तो मिल गया है।

५—जैनशासन के अन्दर जैसे पृथक् २ गच्छ निकले हैं वैसे कई मत एवं पन्थ भी निकले उन लोगों ने अलग मत पन्थ निकाल कर क्या किया ?

६—चैत्यवासी अधिकार चैत्यवास कब से क्यों और किसने किया चैत्यवास के समय जैन समाज की दशा तथा साथ में राजा महाराजा पर चैत्यवासियों का प्रभाव, चैत्यवास में विकार कब से हुआ और चैत्यवास के हटाने से समाज को क्या क्या हानी लाभ हुआ ?

७—पट्टावली—अधिकार जैनधर्म में जितने गच्छ हुए उन गच्छों की पट्टावलियों सब तो नहीं मिलती हैं पर जितनी मिली है उनको लिखी जायगी—

८—जैन जातियाँ—जैनाचार्यों ने अजैनों को प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किन जाय किस कारण से कौन कौन जातियाँ बनी जिसका विवरण। साथ साथ ग्याव मान्तवर ८४ जातियाँ वगैरह

९—आगमाधिकार—जैनधर्म के मूल अंगोपांग आगमों के अलावा किस समय किन किन आचार्यों ने किस किस विषय के ग्रन्थों का निर्माण किया।

१०—जैनधर्म कहां तक राष्ट्र-राजाओं का धर्म रहा अर्थात् कहाँ तक राजा महाराजा जैनधर्म के उपासक बन कर रहे बाद जैन लोग राजाओं के मंत्री, महामंत्री सेनापति दीवान प्रधानादि उच्चाधिकार पर रह कर देश समाज एवं धर्म की किस प्रकार सेवा की इत्यादि।

इसके अलावा और भी कई छोटी बड़ी विषय लिखी जायगी—

पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध लिखने में हमें बहुत सुविधा रहेगी कारण पूर्वार्द्ध लिखने में हमको बहुत कठनाइयों का सामना करना पड़ा है जिसमें अधिक मुश्किली तो प्रमाणों के लिये उठानी पड़ी है इस विषय का खुलासा मैंने प्रस्तावनादि में कर दिया है कि उस समय के प्रमाण बहुत कम मिलते हैं वह भी केवल एक मेरे इस ग्रन्थ के लिये ही नहीं पर किसी विषय के लिये क्यों न हो पर प्रमाण के लिये सबको यही अनुभव करना पड़ता है। यही कारण है कि पूर्वार्द्ध में अधिक प्रमाण वंशावलियों पट्टावलियों से ही लिये गये हैं अब उत्तरार्द्ध के लिये बहुत से ऐसे प्रमाण मिल सकते हैं कि जिनको हम ऐतिहासिक प्रमाण कह सकते हैं। पट्टावलियों वंशावलियों भी सर्वथा निराधार नहीं पर उनमें भी इतिहास की बहुत सामग्री भरी पड़ी है शेष समय पर—

## भ० आदीश्वर:

पूर्णानन्दमय महोदयमय कैवल्यचिद्दृङ्मयं,
रूपातीतमयं स्वरूप रमण स्वाभाविकाश्रीमयम् ।
ज्ञानोद्योतमय कृपारसमय स्याद्वादविद्यालय,
श्रीसिद्धाचलतीर्थराजमनिशं वन्देऽहमादीश्वरम् ॥

ⓞ ⓞ ⓞ ⓞ ⓞ

## भ० पार्श्वनाथ.

किं कर्पूरमय सुधारसमय किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमय महामणिमय कारूण्यकेलीमयम् ।
विश्वानन्दमय महोदयमय शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमय वपुर्जिनपतेर्भूयाद् भवालम्बनम् ॥

ⓞ ⓞ ⓞ ⓞ ⓞ

## भ० महावीर.

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीर बुधाः संश्रिता,
वीरणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्य नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयः श्रीवीर ! भद्रं दिश ॥
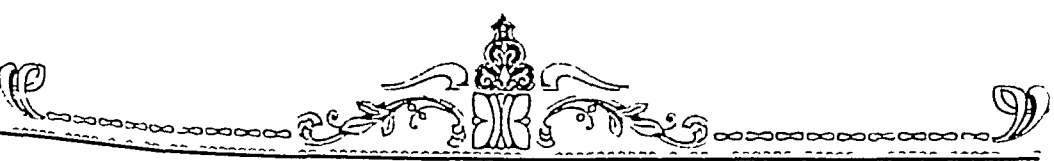
भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास
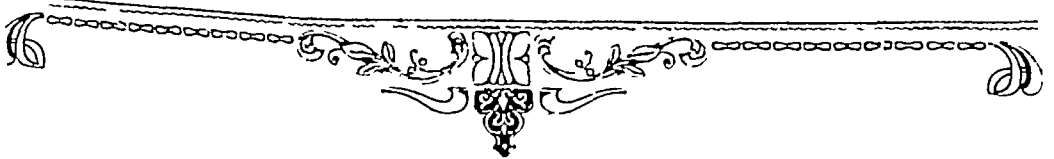
का केन्द्र थी,' जिस समय का इतिहास हम लिख रहे हैं उस समय बनारसी नगरी में महान् प्रतापी अश्व सेन नाम का राजा राज कर रहा था, उसने जनोपयोगी कार्य एवं भुजबल से अपनी कीर्ति एवं राज्य-सीमा खूब दूर-दूर तक फैला दी थी। राजा अश्वसेन के गृहदेवी एवं महिलाओं के उत्तम गुण विभूषित वामादेवी नाम की पट्टराणी थी महाराणी वामादेवी एक समय अपनी सुख शय्या में अर्ध निद्रावस्था में सो रही थी। मध्यरात्रि में महाराणीजी ने गज, वृषभादि चौदह महास्वप्न देखे बाद तत्क्षण सावधान हो एवं स्वप्नों की स्मृति कर अपने पतिदेव के पास आई और देखे हुए स्वप्न का हाल राजा को सुनाया। राजा स्वप्नों का हाल सुन कर बहुत हर्षित हुआ और मधुर वचनों द्वारा महाराणी से कहने लगा कि आप बड़े ही भाग्यशाली हैं और आपने उत्तम स्वप्न देखे हैं इनके प्रभाव से आपकी कुक्षि से उत्तम पुत्र-रत्न जन्म लेगा इत्यादि। राणीजी ने राजा के शब्द सुन कर बहुत हर्ष मनाया और शेष रात्रि अपनी शय्या में देवगुरु की भक्ति में व्यतीत की। सूर्योदय होते ही राजा राजसभा में आकर अपने अनुचरों द्वारा स्वप्न-शास्त्र के जानकार पण्डितों को बुलाए उनका सत्कार कर, राणीजी ने जो स्वप्न देखे थे जिनका फल पूछा। पण्डितों ने अपने शास्त्रों के आधार पर खूब जांच पड़ताल करके कहा हे राजन्! महाराणीजी ने बहुत उत्तम स्वप्न देखे हैं जिससे आपके कुल में केतु समान महा भाग्यशाली पुत्र जन्म लेगा और बड़ा होने पर वह राजाओं का राजा होगा। यदि स्वयमादि धारण करेगा तो संसार का उद्धार करने वाले तीर्थंकर होगा। राजा ने पण्डितों को पुष्कल द्रव्य दिया, बाद महाराणीजी के पास जाकर सब हाल कहा जिसको सुनकर महाराणी के हर्ष का पार नहीं रहा।

महाराणीजी गर्भ का सुखपूर्वक पालन पोषण कर रही थी और जो-जो दोहला-मनोरथ उत्पन्न होते थे उन राजाजी अच्छी तरह से पूर्ण करते थे और शांति से समय जा रहा था।

विक्रम संवत् पूर्व ८२ वर्ष पौष वद १० की रात्रि में माता वामादेवी ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय का वायुमण्डल स्वभाव से ही स्वच्छ रम्य और सुगन्धमय बन गया था। वृक्षों विना ऋतु के होने पर भी फल फूलित हो गये थी। सब ग्रह स्वभाव से ही उच्चस्थान पर आ गये। भगवान् के जन्म से दूसरे तो क्या पर नरक जैसे दुःखी जीवों को भी इस समय के लिये शांति मिली। भगवान् के जन्म के प्रभाव से छप्पन दिग्कुमारी देवियों के आसन कम्पने लगे, उन्होंने ज्ञान बल से जाना की भारत में तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है अतः हमारा पुरातन आचार है कि हम वहाँ जाकर सूतकी कार्य करें। अतः अपने अपने स्थान से चल कर छप्पन दिग्कुमारिये माता के पास आईं। माता और पुत्र को नमस्कार कर अपने-अपने करने योग्य सब कार्य किये। जब देवियां अपना कार्य कर चली गईं तब शक्रेन्द्र का आसन कम्पा और उन्होंने भी अपने ज्ञान बल से भगवान् का जन्म हुआ जानकर माता के पास आये और पांच रूप बना कर तथा एक प्रतिबिंब बना कर माता के पास रखा और भगवान् को सुमेरु पर ले गये वहां ६४ इन्द्र और असंख्य देव देवियों ने शामिल होकर बड़े ही समारोह से प्रभु का स्नात्र महोत्सव किया। बाद प्रभु को पूजा कर माता के पास रख दिये और प्रतिबिंब वापस लेकर देव, इन्द्र सब नंदीश्वर द्वीप जाकर वहां के ५२ चैत्यों में अष्टाह्निका महोत्सव कर अपने-अपने स्थान चले गये इति देवकृत महोत्सव। यह सब कार्य रात्रि के समय में ही हुए।

सूर्योदय होते ही राजा अश्वसेन स्नान मंजन कर राजसभा में आया और पुत्र-जन्म का शुभ समाचार

# तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ

श्री तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् ख्यात त्रिविंशोमहान् ।
सर्वैः स्वेतर धार्मिकः सनिवहो भिन्नं न यं ज्ञानवान् ॥
दीक्षाग्ने 'अ. सि. आ. उ सा', त्ति वचसा नागम् च यत्ना तवान् ।
कुर्याच्छि धरणेन्द्र नामक करः सर्पस्य सोऽत्रात्मवान् ॥ १ ॥
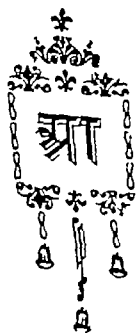
आज से क़रीबन् २८०० वर्ष पूर्व का जिक्र है जब कि भारत भूमि भगवान् पार्श्वनाथ' के पुनीत चरण कमलों से पवित्र हो रही थी। भगवान् पार्श्वनाथ का विश्वोपकारी शासन १६००० अतिशय प्रभावशाली लब्धिसम्पन्न उत्कृष्ट ज्ञानी ध्यानी विद्वान् मुनि पुङ्गवों, ३८००० विदुषी साध्वियों अनेक राजा महाराजा और असंख्य भव्य भक्तों से सुशोभित हो रहा था। प्रभु पार्श्वनाथ के कल्याणकारी-उपदेशामृत का पान कर भारत का जीवन परम उल्लासमय हो रहा था, उनके दिव्य चारित्र एवं भव्य भावनाओं से जन कल्याण के साथ-साथ आत्म विकास एवं मोक्ष साधन का मार्ग प्राणीमात्र के लिए खोल दिया गया था। क्षुद्र से क्षुद्र जीवों को जीने का स्वतंत्र अधिकार एवं अभयदान प्राप्त हो चुका था। आ हा! हा!! उस समय भारत में दो सूर्यों का प्रकाश हो रहा था। एक सूर्य संसार के द्रव्य अन्धकार को हटा रहा था, तब दूसरा सूर्य विश्व का भाव अन्धकार ( अज्ञान ) को समूल नष्ट कर रहा था। यही कारण है कि उन ज्ञान रश्मियों के आलोक में प्रेम का अद्भुत प्रवाह भारत के जीवन को नवप्लावित बना रहा था। बस, उन लोकोत्तर महापुरुष के दिव्य जीवन की यही विशेषता थी कि उनके दर्शन, स्पर्शन ही क्या, पर उनका स्मरण मात्र से ही जनों का कल्याण हो जाता था। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि उस समय संसार भर में इतने ही शुभ परमाणु थे कि जिससे भगवान् पार्श्वनाथ का शरीर का निर्माण हुआ था।

भगवान् पार्श्वनाथ किसी मत्त पथ समुदाय एवं व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं थे किन्तु आप किसी प्रकार के भेद भाव बिना अखिल विश्व के कल्याणकर्त्ता थे। यही कारण है कि आपश्री का नाम विश्व विख्यात हैं, आप श्री का उज्जवल यश एवं कमनीय कीर्ति जैन समाज में ही नहीं, पर सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। आप श्री का पुनीत एवं अलौकिक जीवन चरित्र के लिये यों तो वृहस्पति भी वर्णन करने में असमर्थ हैं तथापि कई विद्वानों एवं धुरंधरों ने आप श्रीजी के कई जीवन चरित्र लिखे और उनमें से कई मुद्रित भी हो चुके हैं। अब यहा पर मैं आप श्री का जीवन विस्तृत रूप से नहीं लिख कर आप श्री के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएं लिख कर पाठकों के सामने रख देता हूँ।

भारत के वक्षस्थल पर विश्व विख्यात काशी नाम का मनोहर एवं रम्य देश है, जो विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध है, उस काशी देश की मुख्य राजधानी बनारस नगरी जो धन धान्य से समृद्ध एवं व्यापार

पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा के हेतु पार्श्वकुंवर संसार में रह कर शुभ कर्मों को भोगने लगा। शास्त्रकारों ने भी कहा है कि सम्यग्दृष्टि के भोग भी कर्म निर्जरा का हेतु होता है। जिस जीव को निकट भविष्य में मोक्ष जाना है वह शुभ हो या अशुभ हो संचित कर्म को अवश्य भोगना ही पड़ता है। अतः पार्श्वकुंवर भी २९ वर्ष तक संसार में रहा। बाद में लोकान्तिक देव ने आकर प्रार्थना की कि हे! प्रभु! लोक में अज्ञान रूपी अन्धकार छा गया है पाखण्ड का जोर बहुत बढ़ गया है आप शीघ्र दीक्षा लेकर संसार का उद्धार करावें इत्यादि। बस! पार्श्वकुंवर ने उसी दिन से वर्षी दान देना प्रारम्भ कर दिया। दिन प्रति १ क्रोड़ ८ लक्ष सौनय्यों का दान दिया करता था। एक वर्ष में ३८८ क्रोड़ ८० लक्ष सोनइया दान में दिया, तत्पश्चात् ६४ इन्द्र और असंख्य देव दीक्षा महोत्सव निमित्त आये तथा मनुष्यों में राजा प्रजा ने भी दीक्षा महोत्सव में शामिल होकर खूब जोरदार महोत्सव किया। फिर वि. सं. पूर्व २७९० वर्ष पौष वद ११ के दिन ३०० नरनारी के साथ पार्श्वकुंवर ने संसार त्याग कर दीक्षा धारण कर ली। महापुरुषों का एक यह भी नियम हुआ करता है कि पहले अपनी आत्मा का सर्व विकास कर के बाद दूसरों को उपदेश देते हैं। अतः भगवान् पार्श्वनाथ ने दीक्षा स्वीकार कर घूमते घूमते एक दिन निर्जन जंगल में आकर प्रतिज्ञा पूर्वक ध्यान लगा दिया।

इधर कमठ तापस का जीव मर कर मेघमाली देव हुआ था उसने उपयोग लगाया कि मेरा वैरी पार्श्व कहां है, मैं जाकर उससे मेरा बदला लूं! मेघमाली ने अपने ज्ञान से पार्श्वनाथ को एक जंगल में ध्यान में खड़ा देखा। देव ने अपना बदला लेने का शुभावसर जान कर पार्श्वनाथ के पास आया और वैक्रिय शक्ति से पहले तो जोरों से वायु चलाई जिससे जंगल के झाड़ टूट टूट कर गिर गए। पर पार्श्व प्रभु थोड़े भी चलायमान नहीं हुए, बाद में धूल की वृष्टि की जिससे प्रभु का शरीर धूल में दब गया। केवल नाक और श्वास ही बची। तदनन्तर मूसलाधार पानी बरसाया प्रभु की नासिका तक पानी पहुँच गया पर प्रभु तो अचल मेरु थे वे धैर्य में अडिग रहे। इस हालत में धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ तो उसने ज्ञान लगा कर देखा तो भगवान् पार्श्वनाथ पर घोर संकट गुजर रहा है अतः धरणेन्द्र और पद्मावती शीघ्र ही प्रभु के पास आए। पद्मावती ने प्रभु को सिर पर ले लिया और धरणेन्द्र ने सहस्रफण बना कर प्रभु पर छत्र कर दिया। बाद में धरणेन्द्र ने ज्ञान लगा कर देखा तो वह नीच कर्मी मेघमाली कमठासुर का ज्ञात हुआ शीघ्र ही दुष्ट देव को बुला कर इन्द्र ने खूब फटकारा इस हालत में मेघमाली ने घबराकर प्रभु के चरणों में सिर झुका कर अपने अपराध की माफी मांगी और अपराध की क्षमा चाहता हुआ अपने स्थान को चला गया। धरणेन्द्र व पद्मावती ने प्रभु की भक्ति नाटक वगैरह करके वह भी स्वस्थान गये। प्रभु की प्रभुता ऐसी थी कि कष्ट देने वाले मेघमाली पर द्वेष नहीं धरणेन्द्र–पद्मावती भक्ति नाटक करने पर राग नहीं कहा भी है कि —

"कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति, प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः।"

भगवान् पार्श्वनाथ दीक्षा के दिन से लगा कर ८३ दिन तक देव मनुष्य तिर्यंच के अनुकूल प्रतिकूल जितने उपसर्ग परिषह हुए उन सब को समभाव से सहन किये और पूर्व संचित घाती कर्मों की समूले निर्जरा कर डाली। जब ८४ वां दिन वर्त रहा था तब शुक्ल ध्यान की श्रेणी और शुभ अध्यवसाय

से महोत्सव किया, जिन मंदिरों में सौ हजार और लक्ष द्रव्य वाली पूजा कराई। तीसरे दिन लोकाचार के अनुसार कुंवर को सूर्य चन्द्र के दर्शन कराए, छट्ठे दिन रात्रि जागरण, एकादशवें दिन असूची कर्म दूर करके बारहवें दिन देशोटन अर्थात् ज्ञाति भोज बनवा कर सज्जन संबंधी को भोजन करवा कर पंडितों की सम्मति से नवजात कुंवर का नाम पार्श्वकुंवर रखा। आनंद मंगल के साथ द्वितीया के चन्द्र तथा चम्पकलता की तरह पार्श्वकुंवर वृद्धि पा रहा और माता के मनोरथ को पूरा कर रहा था। बाल क्रीड़ा भी आपकी अलौकिक थी, जब आपकी वय विद्याग्रहण के योग्य हुई तो माता-पिता बड़े ही समारोह-महोत्सव के साथ पार्श्वकुंवर को पाठशाला में ले गये। पर बिचारे अध्यापक के पास इतना ज्ञान ही कहां था जो वह पार्श्वकुंवर को पढाता। उसने पार्श्वकुंवर से कई प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया। कारण जब पार्श्व माता के गर्भ में आया था उस समय मति श्रुति और अवधि ज्ञान अर्थात् तीन ज्ञान साथ में लेकर आए थे जिससे भूत भविष्य एवं वर्तमान की रहस्य छानी बातें भी जान सकें।

एक समय का जिक्र है कि बनारसी नगरी के बाहर एक कमठ नाम का तापस आया था और वह लकड़ जलाकर पंचाग्नि तापता हुआ तपस्या कर रहा था, जिस की महिमा नगरी में सर्वत्र फैल गई थी तथा नागरिक लोग पूजापा का सामान लेकर तापस की वन्दन पूजन करने को जा रहे थे जिसको देख कर माता वामादेवी की इच्छा भी तापस के दर्शनार्थ जाने की हुई, साथ में अपने प्यारे पुत्र पार्श्व को भी कहा क्या पार्श्व तू भी मेरे साथ चलेगा ? माता का मन रखने के लिए पार्श्वकुंवर भी हस्ती पर सवार हो माता के साथ तापस के पास आए। पर, वहां पार्श्वकुंवर क्या देखता है कि एक जलते हुए बड़े लकड़ के अंदर एक सर्प भी जल रहा था। करुणासागर पार्श्वकुंवर को सर्प की अनुकम्पा आई और तापस को कहने लगा कि हे महानुभाव! आप ऐसा अज्ञान कष्ट क्यों करते हो कि जिसके अंदर पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है ? इस पर तापस क्रोधित होकर बोला—हे राजकुंवार! आप केवल गज अश्व ही खेलना जानते हैं योग एवं तप में आप क्या जानते हैं, व्यर्थ तपसी की छेड़छाड़ करना अच्छा नहीं है। बतलाइये आपने हमारे उत्कृष्ट तप में कौन-सी हिंसा देखी है ? यदि आप सत्य वक्ता हैं तो इस जन-समूह के सामने बतलावें कि हमारे तप में कौन-सी हिंसा है ? इस पर पार्श्वकुंवर ने अपने अनुचरोंको हुक्म दिया कि यह बड़ा लकड़ जल रहा है इसको फाड़ तोड़ कर टुकड़े कर डालो ? बस! फिर तो क्या देर थी, अनुचरों ने उस लकड को चीर कर दो टुकड़े कर दिये कि अन्दर से तड़फड़ाट करता हुआ व्याकुल हुआ दीर्घकायवाला सर्प जलता हुआ निकला जिसको देख कर सब के दिलों में करुणा के भाव पैदा हुए। अत तापस की निंदा और पार्श्वकुंवर की प्रशंसा होने लगी जिससे तापस लज्जित होकर मुंह नीचा कर विचार करने लगा कि इतने जन समुदाय में पार्श्वकुंवर ने मेरा अपमान किया है, तो मेरी तपस्या का फल हो तो भविष्य में मैं पार्श्वकुंवर को दुःख दे कर अपना बदला लेने वाला होऊं, ऐसा निधान कर लिया। इधर जलता हुआ सर्प मरने की तयारी में था, पार्श्वकुंवर ने उसको अ सि आ उ सा मंत्र सुनाया जिससे सर्प के अध्यवसाय शुभ हुआ वह मर कर धरणेन्द्र नागकुंमार जाति का इन्द्र हुआ। तापस भी समयान्तर में मर कर मेघमाल जाति का कमठ देव हुआ।

पार्श्वकुंवर जब यौवन वय को प्राप्त हुआ तो अश्वसेन ने कुशस्थलनगर के राजा प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती के साथ बड़े ही समारोह के साथ पार्श्वकुंवर का विवाह कर दिया। इच्छा के न होते हुए भी

# भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर शुभदत्ताचार्य

भावार्थः "शुभदत्त इत्यगणभृत् पट्टेऽस्य तस्थौ सुधीः ।
तेजस्वी प्रणपापतुल्यविजयी भाद्वादशाङ्गी रच ॥
धीरो जैनमतोन्नतौ स मुकुटमिव प्रभु यत्नं महान् ।
गातुं तस्य गुणान् क्षमान् सुरगुरुः शक्तो भवेद्वा न वा ॥ २ ॥

भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर भगवान् शुभदत्ताचार्य हुए। आप भगवान् पार्श्वनाथ के द्वारा दीक्षित गणधरों में मुख्य थे। यद्यपि कल्पसूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गणधर कहे हैं पर आवश्यकवृत्ति आदि में दस गणधर होना लिखा है शायद दस गणधरों में से दो गणधर अल्पायु वाले हों और उनका मोक्ष हो जाने से कल्पसूत्रकार ने आठ गणधर ही लिख दिया हो तो अपेक्षा से उनका लिखना ठीक ही है। प्राचीन समय से एक यह भी कहावत चली आई है कि वर्तमान २४ तीर्थंकरों के १४५२ गणधर हुए हैं एवं मंदिरों में १४५२ गणधरों की पादुकाए स्थापित की हुई दृष्टिगोचर भी होती हैं। जब कि १४५२ की संख्या भगवान् पार्श्वनाथ के १० गणधर माने जा तब ही मिल सकती है, इससे भी यही पाया जाता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के दश गणधर हुए थे।

गणधर शुभदत्ताचार्य महान् तेजस्वी महा प्रभाविक द्वादशाङ्गी के रचयिता जिन नहीं पर जिन तुल्य सम्पूर्ण लोक चराचर एवं दृश्यादृश्य पदार्थों को हस्तामल की तरह जानने देखने वाले शासन नायकत्व एक धुरंधर आचार्य हुए। धर्म प्रचार करने में तो आप दिवसी सूर्य की तरह सदैव तत्पर रहते थे। शासन का संचालन करने में तो आप चतुर सुरमाओं का काम कर बतलाते थे। आपश्री की नायकत्व में चतुर्विध श्रीसंघ सुख और शांति से आत्मकल्याण सम्पादन किया करते थे। वादियों पर तो पहले से ही आपकी धाक जमी हुई थी कि आपका नाम सुन कर वे कोसों दूर भागते थे। वहां वादियों के अड्डे निर्मूल कर दिये थे। हिंसा जैसी राक्षसी निष्ठुर प्रथा निस्तेज बन गई थी। अहिंसा का सर्वत्र प्रचार हो गया था। बहुत से राजा प्रजा जैन धर्म को स्वीकार कर अपने-अपने राज्य में अहिंसा का प्रचार जोर से कर रहे थे। आपके आज्ञावर्ती हजारों साधु साध्वियां भारत के अनेक प्रान्तों में जैन धर्म का प्रचार कर रहे थे अर्थात् आप श्री के शुभ प्रयत्नों से जैन धर्म उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच गया था एवं जैन धर्म एक विश्व का धर्म बन चुका था।

गणधर शुभदत्ताचार्य ने ज्ञान ध्यान, तप, संयम की आराधना करते हुए घाती कर्मों को जड़ामूल से नष्ट कर दिया, जिससे आपको कैवल्यज्ञान कैवल्य दर्शन प्राप्त हो गया, जिससे आप लोकालोक के सर्व भावों को हस्तामल की भांति देखने, जानने लग गये। आपके जीवन के लिए मनुष्य तो क्या पर बृहस्पति जैसे देव भी कहने में असमर्थ हैं। आपने कैवल्यावस्था में भी सर्वत्र विहार कर संसार का उद्धार किया है।

से केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया जिससे सकल लोकालोक के चराचर एव दृश्यादृश्य सर्व पदार्थों को हस्ताभल की तरह जानने देखने लग गये, उस समय ६४ इन्द्र एव देवादि भगवान् के केवल कल्याण करने को आये रजत सुवर्ण और मणिरत्न मय तीन गढ़ वाला समवसरण की रचना की जिस पर प्रभू बिराजमान होकर देव,मनुष्य, तिर्यंच अपनी अपनी भाषा में समझ सके ऐसी अमृतमय देशना दी और यह बतलाया कि ससार असार है, कुटुम्ब कारमो स्वार्थी है, यौवन सध्या के रग के समान है, सम्पत्ति कुजर का कान समान, शरीर क्षण भगुर और आयु अस्थिर है यदि आप लोगों को जन्म मरण के दु खों से छूटना है तो साधु धर्म एव श्रावक धर्म की आराधना करो इत्यादि वैराग्यमय देशना सुनकर कई लोग तो ससार का त्याग कर दीक्षा ली कइयों ने श्रावक व्रत और कइयों ने समकित धारण की। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ ने ७० वर्ष तक केवलावस्था में विहार कर ससार का उद्धार किया। अनेक महानुभावों ने प्रभू के चरण कमलों में दीक्षा ली जिसमें १६००० महामुनिराज लब्धिसम्पन्न उत्तम ग्रंथों के रचने वाले मुनि तथा ३८००० विदुषी साध्वियां १६४००० उत्कृष्ट व्रतधारी श्रावक ३३९००० श्राविकाएं और असंख्य लोग जैन धर्म को पालन करने वाले हुए थे।

भगवान् पार्श्वनाथ जैनधर्म का प्रचार बढ़ाते हुए अपनी १०० वर्ष की पूरी आयु खत्म कर वि० स० पू० ७२० श्रावण शुक्ला ८ के दिन सम्मेत शिखर पहाड़ पर अनशन पूर्वक नाशवान शरीर का त्याग कर मोक्ष पधार गये। इनके पूर्व भी १९ तीर्थंकरों ने इसी स्थान पर मोक्ष प्राप्त किया था। जब भगवान् पार्श्वनाथ का निर्वाण हो गया तो चतुर्विध सघ निरुत्साही बन गया और ६४ इन्द्र तथा असख्य देव भी निरुत्साही होते हुए भी भगवान् का निर्वाण कल्याण किया और आपके पट्ट पर गणधर शुभदत्त को स्थापित कर उनकी आज्ञा में चतुर्विध श्रीसघ अपना कल्याण कार्य सपादन करने लगा इति पार्श्व चरित्र।"

कई पाश्चात्य विद्वान् लोग भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। पर अनेक प्रमाण उपलब्ध हुए तब विद्वानों ने यह उद्घोषणा कर दी कि भगवान् पार्श्वनाथ एव भगवान् महावीर काल्पनिक नहीं पर ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन विद्वानों के कतिपय ग्रन्थों के नाम उल्लेख कर दिये जाते हैं —

1 Stevenson ( Rev ) Kalpa-Sutra, Int, P XII 2 Lassen Indian Antiquary II P 261, 3 Jacobi, Sacred Books of the East, YIP P XXI, 4 Belvalkar, The Brahma Sutras P 106 5 Charpentier, Cambridge History of India I, P 153, 6 Guerinot Bibliographie Jaina Int P XI, 7 Frazer, Literary History of India P 128, 8 Elliet, Hinduism and Budhism I, P 110, 9 Poussin, The way of Nirvana P 67, 10 Dutt, op, cit, P 11, 11 Colebrooke, op, cit, II P 317 12 Thomas ( Edward ), op, cit, P 6, 13 Wilson, op, cit, I P 334, 14 Dasgupta, op, cit, P 173, 15 Radha Krishna, op, cit, P 281, 16 Mazumdar, op, cit, P 281, 17 Stevenson ( Rev ) op, and loc, cit

## २—आचार्य हरिदत्त सूरि

आचार्यो हरिदत्तसूरि रथ सं पट्टेऽनुयातो बहु ।
तेजस्वी निजधर्मवृद्धिनिरतः निष्पातशुद्धिर्गुरुः ॥
श्रावस्ती नगरी स्थितो जिनमत लौहित्यर्क दीपयन्
शिष्यानेक सहस्रकान् प्रतिरतान् यस्तान् महाराष्ट्रके ॥

आचार्य हरिदत्तसूरि—आप भी द्वादशांगी एवं चतुर्दशपूर्व के पूर्णज्ञाता एवं प्रखर पण्डित थे। ऋद्धि-सिद्धि और विद्या लब्धियों के तो आप खजाने ही कहलाते थे। धर्मप्रचार करने में आप एक मशीनगिरी का ही काम किया करते थे। वाद और शास्त्रार्थ में आप सदैव विजयी होकर वादियों को नतमस्तक कर डालते थे। आपकी आज्ञा में हजारों साधु साध्वियों एवं लाखों करोड़ों श्रावक श्राविकायें मोक्षमार्ग का आराधन किया करते थे।

यज्ञ में होने वाले बलिदान ने आपका चित्त आकर्षित किया। मांसभक्षण की हिंस भावना के कारण से हिंसा को धर्म का रूप देने वाले उन कर्मकाण्डियों को आपने अहिंसा तत्त्व का उपदेश कर जीव मात्र को अभयदान दिलाया। अहिंसा के प्रचार में संलग्न सूरीश्वरजी के हृदय की करुणा ने हिंसा पर विजय प्राप्त की। आपके सफल शासन में धर्म और नीति के चलिये वाले समाज रथ का सुचारु रूप से संचालन समस्त संसार को उन्नति के शिखर पर पहुँचा रहा था।

आचार्य हरिदत्तसूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ भ्रमण करते हुये एक बार सावत्थी नगरी के उद्यान में पधारे। वह समय जनता के लिये बड़े ही सौभाग्य का था। राजा अदीनशत्रुआदि जनमेदनी सूरिजी के स्वागत-दर्शन एवं वन्दनार्थ उमड़ पड़ी। आपके उपदेशामृत से सब लोग मंत्रमुग्ध बन गये थे। और अहिंसा परमोधर्म की ओर उनकी विशेषाभिरुचि जागृति हुई।

उसी समय सावत्थी नगरी में एक लोहित्याचार्य नामक यज्ञप्रचारक अपने शिष्यों के साथ आया हुआ था और वह अपने सिद्धान्त एवं यज्ञकर्म का जोर से प्रचार भी करता था। एक स्थान में दो धर्म के समर्थ प्रचारक एकत्र हो जाँय तो धर्मवाद खड़ा होना एक स्वाभाविक बात थी। चाहे समझदार लोग इन बातों को नहीं भी चाहते हों पर साधारण जनता का तो वह एक व्यवसाय ही बन जाता है। और आखिर वह बात उग्र रूप धारण कर धर्मेशों को मत-ममत्व के अन्दर गिरा बना ही देते हैं। यही हाल सावत्थी नगरी के अन्दर दोनों ओर का हो रहा था।

लोहित्याचार्य केवल विद्वान ही नहीं पर तत्त्वविद् भी था। अतः राजा अदीनशत्रु की राज सभा में दोनों आचार्यों का बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ। लोहित्याचार्य का पक्ष यज्ञकर्म का था और इसमें जो पशुबलि आदि हिंसा होती है वह हिंसा नहीं 'वैदिक हिंसा न हिंसा भवति' अर्थात् यज्ञादि में जो हिंसा होती है वह हिंसा अहिंसा ही समझी जाती है और इसमें पशुओं की मुक्ति, संसार की शान्ति और धर्म का उत्कर्ष होता है इत्यादि साम बतलाया जाता था।

—

एक समय की जिक्र है कि गणधर शुभदत्ताचार्य के हस्तदीक्षित मुनिवरदत्त ५०० शिष्यों के साथ विहार करते हुए जगल में जा रहे थे पर सूर्य्य अस्त हो जाने से उनके सब साधुओं को जगल में ही ठहर जाना पडा। जब वे अपनी आवश्यक क्रिया करके ज्ञान ध्यान में स्थित थे तो वहाँ कई चोर आ निकले और उन्होंने भी रात्रि में वहीं विश्राम लिया। चोरों का इरादा था कि इन साधुओं के पास कुछ माल हो तो छीन लिया जाय। जब रात्रि में वे चोर मुनियों के पास आये तो मुनियों के पास ज्ञान एव धर्मोपदेश के अलावा था ही क्या, उन चोरों को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया मुनियों के उपदेश में न जाने क्या जादू भरा हुआ था कि चोर अशुभ कृत्यों से नरक के दु.खों को सुन कर एकदम संसार से भय भ्रान्त होकर सोचने लगे कि आहा-हा-इन महात्मा का कहना सत्य है, एक मनुष्य अकृत्य करके द्रव्य उपार्जन करता हैं उसके खाने वाला तो सब कुटुम्ब है पर भवान्तर में दु ख जो पाप करता है उस एक मनुष्यको ही सहन करना पड़ता है अतः उन्हों के अन्दर मुख्य चोर जो हरिदत्त नामका राजपुत्र था उसने मुनियों से पूछा कि इसका कोई ऐसा उपाय है कि हम लोग इस बुरे कृत्य से छुट जावें और पहिले किये हुये पाप से मुक्त हो जावें ? मुनि ने कहा कि भव्य! इसका सीधा और सरल यही उपाय है कि आप भगवती जैनदीक्षा की शरण लें कि नये कर्म बन्ध हो जाय और पूर्व किये कर्मों का नाश हो जाय इत्यादि इनके अलावा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है बस उन चोरों ने मुनियों के पास दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया, अब उन्हीं ५०० चोरों ने सूर्य्योदय होते ही मुनियों के चरण कमल में भगवती जैनदीक्षा ग्रहण कर वे अपनी आत्मा के कल्याण में लग गये। अहाहा! जैन मुनियों की सगत का शुभफल कि अधम्म से अधम्म कार्य्य करने वाले भी मुनियों की क्षणिक सत्सग से अपना कल्याण कर सकते हैं।

मुनिवरदत्त उन हरिदत्तादि ५०० चोरों को दीक्षा देकर क्रमश विहार करते हुए गणधर शुभदत्ताचार्य के चरण कमलों में आये और उन नूतन मुनियों को देख गणधरश्री ने वरदत्त एवं नूतन मुनियों की खूब प्रशसा की। इस प्रकार गणधर भगवान् की समुदाय में ऐसे अनेकानेक रत्न थे जैसे समुद्र में अमूल्य रत्न होते हैं और वे महात्मा स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करने में सदैव तत्पर रहते थे। सत्य कहा है कि "सरवर तरुवर सन्त जन, चौथा कहिये मेह। परोपकार के कारणे चारों धारी देह।" इस प्रकार गणधर शुभदत्ताचार्य चिरकाल तक शासन की सेवा एव उन्नति कर अन्त में मुनि हरिदत्त को अपना उत्तराधिकारी बना कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक मोक्ष पधार गये।

भगवान पारस पट्टपर गणधर श्रीशुभदत्त हुए,
जो द्वादशांगी ज्ञान के विस्तार में समर्थ हुए।
उनकी विमल वर ज्योति से आलोकमय संसार था,
जैनधर्म के थे सूर्य वे उनके न यश का पार था।
विजयी सुभट सम वीर थे उनका चरित्र महान था,
पा सके नहीं थाह बृहस्पति गंभीर उनका ज्ञान था।

इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर शुभदत्ताचार्य हुए।

है, इतना ही क्यों पर आज की शोध खोज से भी महाराष्ट्रप्रान्त में जैनधर्म के प्रचार के लिये अब तक कई प्रमाण ⊛ मिलते हैं उससे भी साबित होता है कि आचार्य भद्रबाहु के पूर्व महाराष्ट्र में जैनधर्म का काफी प्रचार था।

आचार्य लोहित्य ने इस सूरि पद को केवल सजाने में प्रयत्नशील ही नहीं रख छोड़ा था पर उसको चिरस्थायी बनाने का जबर्दस्त प्रयत्न किया था। आपने अनेक स्थानों एवं राजसभाओं में बौद्धवादियों एवं हिंसाप्रचारकों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय का डंका बजाया था। पशु-बलि और अत्याचार को समूल कर असंख्य मूक प्राणियों को अभयदान दिलवाया था। अनेक भद्रिक जो मिथ्यात्व वमन कर सत्याभिमुख हो रहे थे उनको सदुपदेश देकर सम्यक्त्व अर्थात् उनको मोक्ष एवं स्वर्ग का अधिकारी बनाया इत्यादि। लोहित्याचार्य ने अपने पद को यथा की शाखी से शोभित कर दिया जो आज काल होने पर भी कृतज्ञ भावी के हृदय में उनकी पुण्य स्मृति को जागृति रखती है। अन्त में लोहित्याचार्य केवलज्ञान प्राप्त कर अपनी अन्तिम अवस्था में मुनि देवगुप्त को अपना पदाधिकार देकर आप अनशन एवं समाधि के साथ इस नाशवान शरीर को त्याग कर मोक्ष पधार गये। इन लोहित्याचार्य की संतान महाराष्ट्रप्रान्त में भ्रमण करती हुई लोहित्य शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इधर आचार्य हरिदत्तसूरि ने अपना विहारक्षेत्र इतना विशाल बना दिया कि अंग बंग पंचाल कलिंग और हिमालय तक आप स्वयं तथा अपने साधुओं को भेज भेज कर धर्म का खूब ही प्रचार बढ़ाया अन्त में आपने मुनि आर्य्यसमुद्र को सूरि बना कर व्यवहारगिरि पर्वत पर समाधि मरण कर अक्षय स्थान पर कब्जा कर लिया। हरिदत्तसूरि की संतान पूर्व भारत में रही वह निर्ग्रन्थ शाखा कहलाई।

पट्टधर उनके हुए आचार्य हरिदत्तसूरिवर ।
अद्भुत महिमा अकलुष स्वरूप जिन धर्म की आभा प्रखर ॥
वे धर्म का विस्तार कर विख्यात शासनकर हुए ।
सावत्थी नगरी मध्य जो शास्त्रार्थ में दुर्धर हुए ॥
एक सहस्र शिष्यों सहित लोहित्य को दीक्षित किए ।
सकल प्रजा महाराष्ट्र को जैनधर्म से भूषित किए ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधर आचार्य हरिदत्तसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए।

---

⊛ इतिहास की शोध खोज से पता मिलता है कि महाराष्ट्रप्रान्त के साहित्य निर्माण के लिए एक संघ कायम किया गया था। उसका उद्देश्य था कि प्रमाणित साहित्य जनता के सामने रक्खे। इस संघ का समय ईसवी सन् की पहली शताब्दी का था, ऐसा विद्वानों का मत है। उसी समय का तिरुवल्लुवर नामक तामिल जैन साधु का बनाया हुआ एक कुरल नामका उत्कृष्ट काव्य मिलता है। यह साधु जैन ही था। नीलकेशी की टीका में इस काव्य को जैन शास्त्र होना स्पष्ट शब्दों में कहा गया है। इस ऐतिहासिक साहित्य से भी यही सिद्ध होता है कि ईसवी सन् के आरम्भ में महा

आचार्य हरिदत्तसूरि का पक्ष अहिंसा परमोधर्म का था। उन्होंने प्रतिवाद में ऐसे अकाट्य प्रमाण पेश करते हुये प्रियवचनों से समझाया कि आप विचार कर सकते हो कि यदि हिंसा से ही जीवों की मुक्ति एवं शान्ति हो सकती हो तो फिर तो 'अहिंसा परमो धर्म.' यह शास्त्र वाक्य निरर्थक ही साबित होगा और जो शास्त्रों में अहिंसा का उच्च आदर्श बतलाया है उन सब को अप्रमाणिक ही समझना होगा इत्यादि। आचार्य श्री के शान्तिमय प्रमाणों ने लोहित्य की अन्तरात्मा पर खूब गहरा प्रभाव डाला। बस फिरतो था ही क्या, मुमुक्षुओं को सत्य का भास होते ही वे असत्य को त्याग सत्य ग्रहण कर लेते हैं यही हाल लोहित्य का हुआ। उसने हिंसा को त्याग कर अहिंसा भगवती के चरणों में शिर झुका दिया। यह हिंसा पर अहिंसा की पूर्ण विजय थी। अहिंसा का जयनाद हुआ। उपस्थित राजा महाराजा एव नागरिकों पर अहिंसा का खूब प्रभाव हुआ और लोहित्य के साथ अहिंसामय जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा ग्रहण कर वे भी जैन धर्म के उपासक बन गये।

लोहिताचार्य्य ने अपने हजार साधुओं के साथ आचार्य हरिदत्तसूरि के चरण कमलों में जैन दीक्षा लेने के पश्चात् जैनधर्म के शास्त्रों का गहरा अध्ययन कर लिया। तदनन्तर आपने निश्चय करलिया कि मैंने जैसे हिंसाधर्म का प्रचार किया था वैसे ही अब हिंसा का उन्मूलन कर अहिंसा का प्रचार करूँगा। जब आचार्य हरिदत्त ने लोहित्य की योग्यता देखी तो उसको गणि पद से विभूषित कर उनके १००० साधुओं को साथ दे महाराष्ट्र प्रान्त में विहार करने की आज्ञा फरमा दी। क्यों कि उस प्रान्त में यज्ञवादियों का खूब जोर जमा हुआ था और न वहाँ किसी अहिंसा प्रचारक का जाना ही होता था। यदि कोई साधारण व्यक्ति चला भी जाय तो उन हिंसा प्रचारकों के साम्राज्य में वह अधिक समय जीवित भी नहीं रह सकता था। अत आचार्यश्री ने लोहित्य को इस कार्य्य के लिए सर्वगुण सम्पन्न जान कर ही आज्ञा दे दी थी। इतना ही क्यों पर उन आगम विहारी भविष्यवेत्ता ने भविष्य का महान लाभ जान कर ही इस कार्य्य के लिए प्रयत्न किया था और आगे चल कर उन महर्षि हरिदत्तसूरि का प्रयत्न सफल भी हुआ जिसको आप आगे चल कर पढ़ ही लेंगे।

गणिवर लोहित्याचार्य बड़े ही उत्साह के साथ गुरु आज्ञा शिरोधार्य्य कर अपने सहस्र शिष्यों को साथ लेकर क्रमश भ्रमण करते हुये अपने निर्देश स्थान अर्थात् महाराष्ट्रीय प्रान्त में पदार्पण कर अपना प्रचार कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन हिंसक पाखण्डियों के साम्राज्य में इन अहिंसा के पुजारी को किस किस प्रकार कठनाइयों का सामना करना पड़ा था ? उन निष्ठुर हृदयी दैत्यों ने जैन साधुओं को जान से मार डालने के अनेकों प्रयत्न करने में भी कुछ उठा नहीं रक्खा था। पर आखिर अहिंसा भगवती के चरणों में उन हिसकों को शिर झुकाना ही पड़ा और गणिवर लोहित्य को अपने कार्य्य में आशातीत सफलता प्राप्त होती ही गई वह भी साधारण व्यक्तियों में नहीं पर अनेक राजा महाराजा अहिंसा के पुजारी बन गये अर्थात् जैन धर्म के अनुयायी बन कर लोहित्य के कार्य्य में सहायक भी बन गये। फिर तो था ही क्या, लोहित्य ने जैनधर्म की नींव सुदृढ़-मजबूत बनाने में मेदनी जिनालयों से मंडित बना दी। वहाँ के श्रीसघ ने लोहित्य की योग्यता पर मुग्ध बन उनको सूरिपद से विभूषित किया जो उस समय उस प्रान्त में इस पद की परमावश्यकता थी। इस विषय के जैनसाहित्य में अनेक प्रमाण विस्तृत सख्या में मिलते

१तत्पट्टे सूरिराचार्य, हरिदत्तःसुधीःस्थितः, स्वस्त्याख्यायांनगर्याञ्चसर्वशास्त्रविशारदम् ।
जित्वा लौहित्याचार्यं, शास्त्रार्थे शास्त्रवित्तमः, सहस्रछत्रयुक्तं तं, दीक्षयामासजैनधे ॥

उपकेशगच्छचरित्र

# ३—आचार्य समुद्रसूरि

आचार्यस्य समुद्रसूरि सुमते कान्त्याः प्रभावो महान् ।
भावो यत्र महान् नृपेन्द्र मुकुटान् संदीप्य जैन मत ।
उज्जैन्याः जयसेन नाम नृपतिं तस्यैव पत्नीं पुनः,
पुत्रं केशिकुमार नाम सहितं तने च जैन प्रभाम् ॥

आचार्य समुद्रसूरि—आप श्रीमान् आचार्य हरिदत्तसूरि के हस्त दीक्षित और आपके उत्तराधिकारी थे। आप चतुर्दशपूर्व के पारगामी थे। सूरिजी व योग्य सर्वगुण-सम्पन्न थे। आपके अलौकिक जीवन के विषय में अधिक लिखना मानो सूर्य को चिराग दिखाना है कारण कि आपकी प्रतिमा का प्रभाव प्राणीमात्र के हृदय कमल में उच्च स्थान पाये हुए था। क्यों कि आपने अनेक कठिनाइयों को सहन करके यज्ञवादियों के निष्ठुर आचरण को रोक प्राणीमात्र को अभयदान दिला कर अहिंसा का साम्राज्य स्थापित करवा दिया था। आपके उपदेश का असर केवल साधारण जीवों पर ही नहीं पर बड़े बड़े राजा महाराजाओं पर भी हुआ करता था। यही कारण है कि आपने अनेक राजाओं को जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा देकर अहिंसा देवी के उपासक बनाये थे।

आचार्य समुद्रसूरि के समय एक विकट समस्या थी। आपका जीवन संघर्षमय था। अहिंसको की अनेक कठिनाइयों का आपको सामना करना पड़ा था फिर भी इस अहिंसा के पुजारी ने अपनी सद् वृत्तियों और सत्य के नाद से अत्याचार और मिथ्यात्व की कुरूढ़ियों का उन्मूलन कर ऊँच-नीच के दम् रौसे भेद भावों को मिटाकर समभाव का साम्राज्य स्थापित करने में आशातीत सफलता प्राप्त करली थी अर्थात् आपका विजय झंडा चारों ओर फहरा रहा था। आपके आज्ञानुवर्ती हजारों निग्रंथकी साधु चारों ओर घूम घूम कर जैनधर्म के प्रचार की देश व्यापार से बढ़ा रहे थे।

आपके शासनवर्ति एक महाप्रभावशाली विदेशी नामक मुनि थे वे एक समय करीब ५०० मुनियों के साथ विहार करते हुये क्रमशः अवन्ती (उज्जैन) नगरी के उद्यान में आ विराजे। जब राजा प्रजा को इस बात की खबर मिली तो वे बड़े ही समारोह के साथ मुनिवर्य्य को वन्दन करने को आये। जिसमें आवन्ती नगर का अधिपति राजा जयसेन उनकी पट्टरानी अनंगसुन्दरी तथा आपका लीलासा पुत्र केशीकुमार भी साथ में थे। सब लोग मुनिप्रवर को वन्दन कर यथास्थान बैठ गये और उपदेश श्रवण की जिज्ञासा कर रहे थे।

अत मुनिवर्य ने अपना कर्त्तव्य जान कर जनता के कल्याणार्थ भववारणी धर्मदेशना दी जिसमें संसार की असारता सम्पत्ति की चंचलता, आयुष्य की अस्थिरता, कुटुम्ब की स्वार्थता और मनुष्य जन्मादि सामग्री की दुर्लभता का इस प्रकार व्याख्यान दिया कि श्रोतागण श्रवण कर मंत्रमुग्ध हो गये और कई लोगों की भावना संसार से विरक्त हो अपने कल्याण की ओर जागृत हो गई।

जब व्याख्यान खत्म हुआ तो सब लोग मुनिवर को वन्दन कर जाने लगे परन्तु राजकुमार वहीं वहाँ

राष्ट्रप्रान्त में जैनश्रमणों का अस्तित्व ही नहीं वरन् तामिल भाषा के ग्रन्थ निर्माण करने वाले मौजूद थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस समय के पूर्व भी उस प्रान्त में जैन धर्म प्रचलित होगा।

डॉ० फ्रेजरसाहिब ने अपने इतिहास में लिखा है कि यह जैनियों के ही प्रयत्न का सुंदर फल है कि दक्षिण भारत में नया आदर्श, साहित्य, आचार-विचार एवं नूतन भाषा शैली प्रगट हुई।"

इस घटना के लिये विश्वसनीय एवं ऐतिहासिक प्रमाण जैसा चाहिये वैसा मेरे जानने में अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसका यही कारण है कि यह घटना अति प्राचीन अर्थात् भगवान् महावीर के १५० वर्ष पूर्व की एवं विक्रमी ६२० वर्ष पूर्व की है। फिर भी एक प्रमाण ऐसा मिलता है कि पूर्वोक्त घटना का होना सम्भव हो सकता है।

दिगम्बर मतानुसार आचार्य्य भद्रबाहु अपने १२००० शिष्यों के साथ दुष्काल के समय महाराष्ट्र प्रान्त में पधारे थे और उन्होंने वहाँ के जिनालयों की यात्रा भी की थी। अतः भद्रबाहु के पूर्व वहाँ जैनधर्म होना सिद्ध होता है। प्रोफेसर ए. चक्रवर्ती का अनुमान है कि यदि भद्रबाहु के पूर्व दक्षिण भारत में जैनधर्म का प्रचार न होता तो दुर्भिक्ष के समय यकायक १२००० शिष्यों के साथ भद्रबाहु दक्षिण में जाने का साहस न करते, वरन् उनको अपने अनुयायियों द्वारा शुभागमन किये जाने का विश्वास था। इसी से वे दक्षिण में जाकर ठहर सके।

एक और भी प्रबल प्रमाण है कि सिंहलद्वीप के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला महावंश नामका एक पाली भाषा का ग्रन्थ है जिसे धेनुसेन नामक एक बौद्धभिक्षु ने लिखा है। इस ग्रन्थ का निर्माण काल ईसवी सन् की पांचवी शताब्दी का अनुमान किया जाता है। इस ग्रंथ में ईसा के ५४३ वर्ष पूर्व से लगा कर ३०१ वर्ष तक का वर्णन है। इसमें वर्णित घटनायें सिंहलद्वीप के इतिहास के लिये यथेष्ठ प्रमाणित मानी जाती हैं। इसमें सिंहलद्वीप के नरेश 'पनुगानय' के वर्णन में कहा गया है कि उन्होंने लगभग ४३७ ईसवी पूर्व अपनी राजधानी अनुराधपुर में स्थापित की और वहाँ निर्ग्रन्थ मुनियों के लिये एक गिरि नामक स्थान बनाया। निर्ग्रन्थ कुम्बन्ध के लिये राजा ने एक मन्दिर भी निर्माण कराया जो उक्त मुनि के नाम से विख्यात हुआ इत्यादि।

एक विधर्मी अर्थात् स्पर्द्धा करने वाला धर्म का भिक्षु इस प्रकार प्राचीन इतिहास लिखता है, जिससे ईसा की पांचवीं शताब्दी पूर्व अर्थात् भद्रबाहु की यात्रा के समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में जैन मुनियों का भ्रमण और राजा महाराजाओं का उनके उपासक होना सिद्ध होता है। अतएव महाराष्ट्र प्रान्त में लोहित्याचार्य द्वारा जैनधर्म की नीव डालना जैनपट्टावल्यादि ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है वह पूर्वोक्त प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों से साबित हो सकता है।

† लोहित्याचार्य के पट्टपर देवभद्राचार्य देवभद्र के पट्टपर गुणभद्राचार्य हुए। आचार्य श्रीकेशीश्रमण के बुलाने पर गुणभद्राचार्य अपने बहुत शिष्यों के साथ केशीश्रमण के पास आ गये—और शेप साधु महाराष्ट्रप्रान्त में रहे थे उनकी परम्परा कहां तक चली होगी पर भद्रबाहु के समय तो वे महाराष्ट्र में विद्यमान थे।

ठहर गया और मुनि के सामने टकटकी लगा कर देखने में इतना मस्त बन गया कि अपने माता पिता के वहाँ से रवाना होने की भी उसको सुधि न रही। तब सब लोगों के चले जाने पर केवल एक तेजस्वी बालक को बैठा हुआ देख कर एक मुनि ने उसको सम्बोधन कर कहा कुमार! क्या ध्यान लगा रहा है ?

कुमार—गुरुवर्य ! यह क्या कारण है कि मैं आपकी ओर देखता हूँ तो मेरे हृदय में एक प्रेम का समुद्र ही उमड़ उठता है कि जिसको मैं वाणी द्वारा कह भी नहीं सकता हूँ।

मुनि अपने ज्ञान में उपयोग देकर कुमार को जवाब दिया कि हे भव्य ! तुमने पूर्व भव में भगवती जैनदीक्षा का आराधन किया है अत तुमको दीक्षितों पर धर्म स्नेह होता है और ऐसा होना स्वभाविक भी है अतएव तुमको प्रेम का अनुभव हो रहा है यह पूर्वजन्म का ही संस्कार है।

कुमार—हे प्रभो ! क्या मैंने सचमुच ही पूर्व भव में दीक्षा ग्रहण कर उसका पालन किया था ? यदि ऐसा ही है तो कृपया मेरा पूर्वभव सुनाइये ? कारण, आप ज्ञानी हैं।

मुनि ने कहा कि हे कुमार ! सुन मैं तुझे पूर्वभव सुनाता हूँ। इसी भारत के वक्षस्थल पर धनपुर नाम का नगर था वहा पृथ्वीधर राजा और उसके सौभाग्यवती देवी थी। जिसकी कुक्ष से सात पुत्रियों के बाद एक कुमार ने जन्म लिया जिसका नाम देवदत्त रक्खा था। उस देवदत्त ने बाल्यावस्था में ही गुणभूषण आचार्य के पास जैनदीक्षा धारण कर चिरकाल दीक्षा का आराधन किया। अन्त में समाधिपूर्वक काल कर पाचवाँ ब्रह्म नामक स्वर्ग में उत्पन्न हुआ और वहा से चव कर तू यहा राजकुमार हुआ, अत दीक्षा एव दीक्षितों पर अनुराग होना स्वाभाविक है।

कुमार-मुनि से अपना पूर्वभव सुन कर इहापह लगाया तो क्षण भर में उसको जाति-स्मरण ज्ञानोत्पन्न हो आया, जिससे जैसे मुनि ने कहा उसने प्रत्यक्ष में अपना पूर्वभव देख लिया। फिर तो ज्ञानियों के लिये देर ही क्या थी ? उसको ससार कारागृह जैसा मालूम होने लगा और मुनिवर्य्य से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप यहाँ ही विराजें, मैं अपने माता पिता की आज्ञा लेकर आता हूँ और आपकी शरण में दीक्षा लूगा।

मुनि ने कहा जहाँ सुखम्। पर धर्म कार्य्य में विलम्ब नहीं करना। राजपुत्र केशीकुमार उन मुनियों को वन्दन नमस्कार कर वहाँ से चल कर सीधा ही अपने माता पिता के पास आया और उनको अपने विचारों को सुना कर दीक्षा की आज्ञा मागी। पर इस प्रकार एक छोटा सा बच्चा दीक्षा में क्या समझे, अत उन्होंने कुमार का कहना हँसी में गुजार दिया, पर जब कुमार ने अपने अनुभव एवं ससार की असारता और दीक्षा की उपादेयता के विषय में ठोस शब्दों में कहा तो माता पिता ने जाना कि केशी की बात हँसी की नहीं पर सचमुच दीक्षा की है। कुमार को बहुत समझाया पर आखिर कुमार की दीक्षा का प्रभाव उल्टा राजा रानी पर इस क़दर हुआ कि उन्होंने स्वय अपने बडे पुत्र को राज सौंप कर अपने प्यारे पुत्र के साथ मुनि विदेशी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की तैयारी कर ली। फिर तो था ही क्या ? नगर भर में इस बात की खूब हलचल मच गई और कई ५०० मुमुक्षु केशीकुमार का अनुमोदन कर दीक्षा के लिये तैयार हो गये और मुनिवर्य्य ने उन सब को बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा देकर उनका उद्धार किया।

राजर्षि जयसैन और आर्यका अनगसुन्दरी ने नाशवान राज का त्याग करके दीक्षा लेली बाद ज्ञान, ध्यान और तप सयम की आराधना में सलग्न हो गये और आपकी इच्छा अब अक्षय राज की ओर लग

गई। भला हो, आचार्य समुद्रसूरि जैसे गुरु और केशीश्रमण जैसे शिष्य, फिर तो कमी ही किस बात की थी; उन्होंने क्रमशः सब कर्मों का क्षय कर अन्त में केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर मोक्ष पधार गये।

इधर महर्षि केशीश्रमण को जातिस्मरण ज्ञान से पूर्व भव में पढ़ा हुआ सब ज्ञान स्मृति मात्र से हस्तामलक की तरह याद हो गया। इसके अलावा भी आपने चतुर्दश पूर्व का अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आपकी कठोर तपश्चर्या अखंड ब्रह्मचर्य आदि गुणों से अनेक विद्याओं एवं लब्धियों ने भी आपको पात्र समझ कर वे स्वयं वरदायी बन गईं। आप स्वमत और परमत के शास्त्रों में तो इतने प्रवीण हो गये थे कि वादी और प्रतिवादी आपकी कान्ति को सहन नहीं करते हुए दूर दूर भाग रहे थे।

जिस समय आचार्य समुद्रसूरि अपने शिष्य मंडल के साथ धर्मप्रचार करते हुवे भूमंडल पर विहार करते थे उस समय कौशाम्बी राजधानी में एक यज्ञ का आयोजन हो रहा था उसकी खबर आचार्य समुद्रसूरि को मिली। भला ऐसे सुअवसर को सूरिजी कब जाने देने वाले थे। इधर केशीश्रमण जैसे शिष्य की प्रबल प्रेरणा होने से वे चलकर कौशाम्बी राजधानी की ओर पधारे और आपका अहिंसा विषय पर जोरों से व्याख्यान होने लगा, जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ परन्तु यज्ञवादियों को यह कब अच्छा लगने वाला था। उनके दिल में यह शंका होने लगी कि यह नास्तिक लोग कभी अपने कार्य्य में विघ्न न डालदें। अतः उन्होंने भी अपना पक्ष मजबूत बनाने के लिये प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। आखिर सूरिजी की ओर से मुनि केशीश्रमण और यज्ञवादियों की ओर से उनके खास अध्यक्ष आचार्य मुकुन्द राजसभा में आये और उनका शास्त्रार्थ हुआ। आचार्य मुकुन्द ने यज्ञ की हिंसा को अहिंसा बतला कर खूब पुष्टि की। उपस्थित लोग यह समझते थे कि इसके खंडन के लिये जैनसाधु क्या कहेगा। पर केशीश्रमण ने अहिंसा परमोधर्म के विषय ऐसे अकाट्य प्रमाण सभा के सामने रक्खे कि जिसके समक्ष वे हिंसक लोग निरुत्तर होगये। अतः विजयमाला केशीश्रमण के कंठ में शोभायमान हो गई। हिंसकों पर केशीश्रमण की यह सर्व प्रथम विजय थी। बस जैनधर्म की जयध्वनि से गगन गूंज उठा अहिंसा भगवती का झंडा चारों ओर फहराने लगा। राजा और प्रजा उस घोर हिंसा से घृणा कर अहिंसा भगवती के उपासक बनगये। और आचार्य समुद्रसूरि ने अपने कर कमलों से उन सब की शुद्धि करके वासक्षेप के विधिविधान से उन सब को जैनधर्म में दीक्षित किये।

आचार्य समुद्रसूरि अपनी अन्तिमावस्था में मुनि केशीश्रमण को सर्वगुणसम्पन्न जान कर अपना पट्टाधिकार एवं गच्छ भार केशीश्रमण को देकर तीर्थाधिराज श्रीसम्मतशिखर पर सलेखना एवं समाधिपूर्वक अनशन कर केवल ज्ञान दर्शन प्राप्त कर मोक्ष पधार गये। *

इति श्री पार्श्वनाथ प्रभु के तीसरे पट्टधर आचार्य समुद्रसूरि महाप्रभाविक हुवे।

---

* समुद्रसूरिराचार्यो, महाधर्म प्रचारकः उज्जयिन्या नगर्यास्तु, जयसेनाभिधं नृपम् ॥
कश्चित्कुमार राट्पुत्रं, राज्ञीमनङ्ग सुन्दरीम् । सम्बोध्य जैन तत्वतु, जैन धर्मे ऽदीक्षत ॥
कश्चिन्नामा तथ्रिपो, यः प्रदद्धि नरान्तरम् । प्रबोध्य नास्तिकमतमा ज्जैन धर्मेऽध्यरोपयत् ॥

उपकेशगच्छ चरित्र

ठहर गया और मुनि के सामने टकटकी लगा कर देखने में इतना मस्त बन गया कि अपने माता पिता के यहां से रवाना होने की भी उसको सुधि न रही। तब सब लोगों के चले जाने पर केवल एक तेजस्वी बालक को बैठा हुआ देख कर एक मुनि ने उसको सम्बोधन कर कहा कुमार ! क्या ध्यान लगा रहा है ?

कुमार—गुरुवर्य ! यह क्या कारण है कि मैं आपकी ओर देखता हूँ तो मेरे हृदय में एक प्रेम का समुद्र ही उमड़ उठता है कि जिसको में वाणी द्वारा कह भी नहीं सकता हूँ।

मुनि अपने ज्ञान में उपयोग देकर कुमार को जवाब दिया कि हे भव्य ! तुमने पूर्व भव में भगवती जैनदीक्षा का आराधन किया है अत. तुमको दीक्षितों पर धर्म स्नेह होता है और ऐसा होना स्वभाविक भी है अतएव तुमको प्रेम का अनुभव हो रहा है यह पूर्वजन्म का ही संस्कार है।

कुमार—हे प्रभो ! क्या मैंने सचमुच ही पूर्व भव में दीक्षा ग्रहण कर उसका पालन किया था ? यदि ऐसा ही है तो कृपया मेरा पूर्वभव सुनाइये ? कारण, आप ज्ञानी हैं।

मुनि ने कहा कि हे कुमार ! सुन मैं तुझे पूर्वभव सुनाता हूँ। इसी भारत के वक्षस्थल पर धनपुर नाम का नगर था वहा पृथ्वीधर राजा और उसके सौभाग्यवती देवी थी। जिसकी कुक्ष से सात पुत्रियों के बाद एक कुमार ने जन्म लिया जिसका नाम देवदत्त रक्खा था। उस देवदत्त ने बाल्यावस्था में ही गुण-भूषण आचार्य के पास जैनदीक्षा धारण कर चिरकाल दीक्षा का आराधन किया। अन्त में समाधिपूर्वक काल कर पाचवों ब्रह्म नामक स्वर्ग में उत्पन्न हुआ और वहा से चव कर तू यहां राजकुमार हुआ, अत' दीक्षा एवं दीक्षितों पर अनुराग होना स्वाभाविक है।

कुमार-मुनि से अपना पूर्वभव सुन कर इहापह लगाया तो क्षण भर में उसको जाति-स्मरण ज्ञानोत्पन्न हो आया, जिससे जैसे मुनि ने कहा उसने प्रत्यक्ष में अपना पूर्वभव देख लिया। फिर तो ज्ञानियों के लिये देर ही क्या थी ? उसको ससार कारागृह जैसा मालूम होने लगा और मुनिवर्य्य से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप यहाँ ही विराजें, मैं अपने माता पिता की आज्ञा लेकर आता हूँ और आपकी शरण में दीक्षा लूगा।

मुनि ने कहा जहाँ सुखम् । पर धर्म कार्य्य में विलम्ब नहीं करना। राजपुत्र केशीकुमार उन मुनियों को वन्दन नमस्कार कर वहाँ से चल कर सीधा ही अपने माता पिता के पास आया और उनको अपने विचारों को सुना कर दीक्षा की आज्ञा मांगी। पर इस प्रकार एक छोटा सा बच्चा दीक्षा में क्या समझे, अत' उन्होंने कुमार का कहना हँसी में गुजार दिया, पर जब कुमार ने अपने अनुभव एवं ससार की असारता और दीक्षा की उपादेयता के विषय में ठोस शब्दों में कहा तो माता पिता ने जाना कि केशी की बात हँसी की नहीं पर सचमुच दीक्षा की है। कुमार को बहुत समझाया पर आखिर कुमार की दीक्षा का प्रभाव उल्टा राजा रानी पर इस क़दर हुआ कि उन्होंने स्वय अपने बड़े पुत्र को राज सौंप कर अपने प्यारे पुत्र के साथ मुनि विदेशी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की तैयारी कर ली। फिर तो था ही क्या ? नगर भर में इस बात की खूब हलचल मच गई और कई ५०० मुमुक्षु केशीकुमार का अनुमोदन कर दीक्षा के लिये तैयार हो गये और मुनिवर्य्य ने उन सब को बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा देकर उनका उद्धार किया।

राजर्षि जयसैन और आर्यका अनगसुन्दरी ने नाशवान राज का त्याग करके दीक्षा लेली बाद ज्ञान, ध्यान और तप सयम की आराधना में सलग्न हो गये और आपकी इच्छा अब अक्षय राज की ओर लग

रियों के हाथ में थी और वे समाज के सिरताज बन चुके थे । सत्ता आडंबर की गुलाम बन अपना दुरुपयोग कर रही थी । बलवान अपने बल की आजमाइश निर्बलों पर करते थे । सिवाय ब्राह्मणों के ज्ञान के द्वार सब के लिये बन्द थे । बिचारे शूद्रों की तो उस जमाने में सबसे बड़ी खराबी थी । उनकी संसार में घास फूस जितनी भी कीमत नहीं रही थी । उनको धर्मशास्त्र पढ़ना तो क्या पर सुनने से ही प्रायश्चित्त मिलता था । धर्म पर स्वार्थ का साम्राज्य था । कर्तव्य सत्ता का गुलाम बन चुका था । जनसमूह ने पैशाचत्व का रूप धारण कर जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी थी । मनुष्य कहलाने वालों ने अपने मनुष्यत्व को अत्याचार पर बलि कर दिया था । प्रेम, स्नेह और एकता केवल पुस्तकों के पृष्ठों पर ही अंकित थी अर्थात् इस भयंकरता ने चारों ओर पापाचार एवं तृष्णा की भट्टियें भभका दी थीं जिसके सामने यदि कोई पुकार भी करता तो सुनता कौन था ? फिर भी सुधारक लोग इन अत्याचारों के सामने कटिबद्ध हो जनता का रक्षण कर ही रहे थे पर वे थे बहुत थोड़े जो इस स्थिति का सुधार करने में असमर्थ ही माने जाते थे ।

इधर भगवान केशीश्रमणाचार्य ने अपने श्रमण संघ की एक विराट् सभा की जिसमें सम्राट अमेसर आदि वर्ग भी शामिल थे । आचार्य केशीश्रमण ने अपने साधुओं को सत्कर्तव्य समझाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा प्रभावशाली एवं सबोध उपदेश देकर कहा कि वीरो ! आपने जिस उद्देश्य को लक्ष्य में रख संसार का त्याग किया था, वह समय आपके लिये आ पहुँचा है । विश्वोद्धार के लिए प्राणप्रण से कटिबद्ध हो जाइये । जगत का उद्धार आप जैसे त्यागी महात्माओं से किया और करेंगे । एक नहीं पर अनेक आपत्तियें आपके सामने उपस्थित हों तो तुम तनिक भी परवाह मत करो, इतना ही क्यों पर इस नाशवान शरीर की भी परवाह मत करो और अपने कर्तव्य पर डट जाओ इत्यादि ।

आखिर तो शेर शेर ही होते हैं । भले ही थोड़ी देर के लिये उनकी निद्रावस्था में मृगादि पशु अपना विजय राज समझ लें पर जब वे शेर गर्जना करते हैं तो मृगादि पशुओं का धैर्य टिक नहीं सकता है, अतः सूरिश्वरजी का वीरतामय उपदेश सुनकर वे मुनिपुंगव शेरों की भाँति बोल उठे कि हे पूज्यवर ! जिस प्रकार आप हुक्म फरमावें हम शिरोधार्य करने को तैयार हैं किसी भी कठिनाइयों की हमें परवाह नहीं है । हम अपना कर्तव्य अदा करने को कटिबद्ध हैं

अपने साधुओं के वीरतामय वचन सुन कर सूरिजी का उत्साह और भी बढ़ गया और साधुओं की योग्यता पर उनकी अलग २ टुकड़ियाँ बनाकर निम्नलिखित स्थानों की ओर विहार करने की आज्ञा फरमा दी ।

- ५　मुनियों के साथ शुभदत्ताचार्य को तैलंग प्रान्त की ओर ।
- ५　मुनियों के साथ कार्तिकपुत्राचार्य को दक्षिण-महाराष्ट्र प्रान्त की ओर ।
- ५　मुनियों के साथ गर्गाचार्य को सिन्धु सौवीर प्रान्त की ओर ।
- ५　मुनियों के साथ यक्षाचार्य को काशी कौशल की ओर ।
- ५०　साधुओं के साथ [illegible] को अंग बंग कलिंग की ओर ।
- ५　मुनियों के साथ काश्यपाचार्य को सूरसेन ( मथुरा ) प्रान्त की ओर ।
- ५　मुनियों के साथ शिवाचार्य को अवन्ती प्रान्त की ओर ।
- ५०　मुनियों के साथ पालकाचार्य को कोंकण प्रदेश की ओर ।

# ४—आचार्य केशिश्रमण

तुर्यः पट्टधरेष्ट केशिश्रमणः स्वीयप्रभावेण यः,
चारित्रेण तपस्यया च जनतां निन्ये समग्रां वशे।
श्वेताम्वी नगरी नृपो वहुतया यो नास्तिको रचितः:
जालात्पापधियां च येन नृपतिर्यत्नात् प्रदेशी महान् ॥

चार्य केशीश्रमण—आप उगते सूर्य की किरणों की भांति प्रकाश करने में समर्थ वाल ब्रह्मचारी चतुर्दशपूर्वधर अहिंसा एवं जैनधर्म के कट्टर प्रचारक युवकाचार्य थे। आप की प्रतिभा का प्रचण्ड प्रभाव चारों ओर प्रकाशित हो रहा था। आप केवल मनुष्यों से ही नहीं पर देव देवेन्द्र नर नरेन्द्र एवं विद्याधरों से भी पूजित थे, आपके ज्ञान सूर्य्य का प्रभाव मिथ्यान्धकार को जड़मूल से नष्ट कर रहा था। पशु-हिंसक यज्ञ-प्रचारक तो आपके सामने इस प्रकार पलायन हो जाते थे कि जैसे शेर के सामने गीदड़ भाग छूटते हैं। आपकी उपदेश पद्धति इतनी मधुर रोचक और सारगर्भित थी कि जिसको सुनकर देव मनुष्य और विद्याधर मंत्र मुग्ध वन जाते थे। आपने जैसे जैनसख्या में वृद्धि की वैसे जैनश्रमण सघ की भी खूव वृद्धि की थी।

जिस समय आप पूर्व भारत में धर्म प्रचार वढ़ा रहे थे। उस समय लोहित्यशाखा के श्रमण दक्षिण भारत में विहार कर रहे थे। पर दुर्दैववशात् दक्षिण विहारी श्रमण समुदाय के अन्दर स्वच्छन्दता के कारण कुछ वैमनस्य पैदा हो गया था जिसको पूर्व भारत में रहे हुये केशीश्रमणाचार्य्य ने सुना, अत. आपने उन साधुओं को आज्ञा कर अपने पास पूर्व में वुला लिया, फिर भी कुछ साधु दक्षिण में रह भी गये थे। जो साधुगण दक्षिण में रहे थे वे अपना सगठन बल वढ़ा कर जैनधर्म के प्रचार में लग गये थे।

दक्षिण के साधु पूर्व में आने के वाद थोड़े समय तो शान्त रहे, पर वाद को तो जो हाल दक्षिण में था वह ही पूर्व में हो गया जिसको कलिकाल के उदय के पूर्व का प्रभाव कहा जा सकता है। अत एक ओर तो केशीश्रमणाचार्य घर की विगड़ी को सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे, तव दूसरी ओर यज्ञवादियों का जोर वढ़ता जा रहा था। वे लोग थोड़ी थोडी वात में वड़े २ यज्ञ कर असंख्य निरपराधी मूक प्राणियों के कोमल कंठ पर छुरे चला कर यज्ञवेदियों को खून से रंगने में धर्म वतला कर जनता को अज्ञान के गहरे गड्ढे में ढकेल रहे थे।

इतिहास की शोध खोज से यह पता सहज ही में लग जाता है कि वह जमाना भारत के लिये वड़ा ही विकट, भीषण और दुःखमय था राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक शृंखला का पतन हो चुका था और पाखण्डियों का अत्याचार भारत को गारत कर रहा था। उस जमाने का सव कारोवार ब्राह्मणों की जुल्मी सत्ता के नीचे चलता था। ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व को भूल कर स्वार्थ के पुतले वन वैठे थे। पारलौकिक सुखों के फरमान लिख कर समाज को उल्टे रास्ते ले जा रहे थे। क्षत्रियवर्ग एव राजा महाराजा उन स्वार्थ-प्रिय ब्राह्मणों के वाये हाथ के कठपुतले वन कर अपने पथ से च्युत हो रहे थे। समाज की वागडोर उन अत्या-

मुनिपेहित ने कपिलवस्तुनगरी के राजा शुद्धोदन एवं राजकुमार बुद्ध को धर्मोपदेश दिया जिससे विरक्त हो बुद्ध ने जैन दीक्षा स्वीकार करली। पृष्ठ १

केशीश्रमणाचार्य ने चित्रप्रधान के आग्रह से श्वेताम्बिकानगरी में जाकर के नास्तिक शिरोमणि राजा प्रदेशी को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किया। पृष्ठ १४
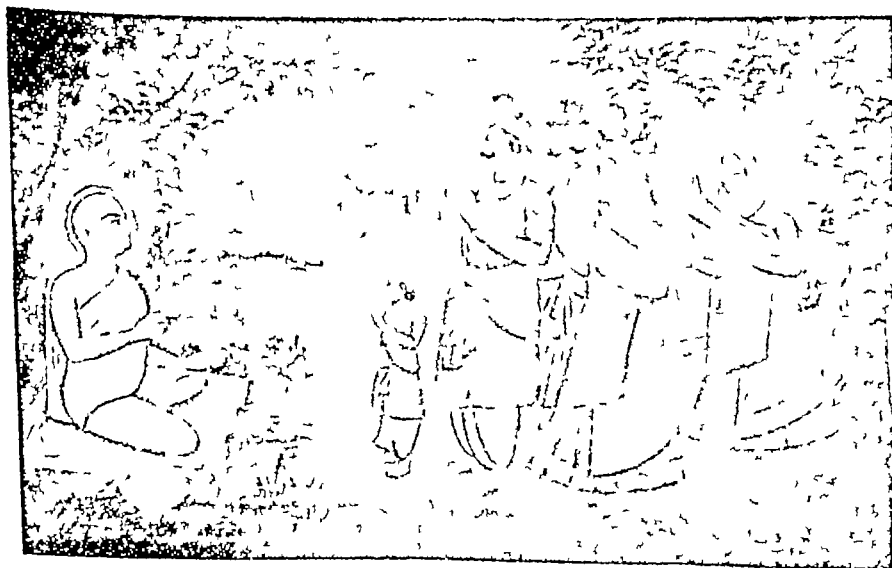
छोड़ कर साधु बन जाय, इसलिये उन्होंने अपने प्यारे पुत्र बुद्धकीर्ति के लिये ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा कि न तो वह दीक्षा ही ले सके और न उनकी आज्ञा बिना कहीं दूर प्रदेश में ही जा सके।

मुनिवर्य ने कुछ दिन वहाँ ठहरकर बाद वहाँ से विहार कर दिया। पर बुद्धकीर्ति के अन्तःकरण में जो वैराग्य का बीज बो गये थे वह दिन दूना और रात्रि चौगुना फलता फूलता ही गया। एक समय बुद्धकीर्ति संसार त्याग की भावना से अपने एक छीनिया नाम के नौकर को साथ ले अश्वारूढ़ हो अपने वास स्थान से चल पड़ा। आगे चल कर अश्व और नौकर को तो वापिस लौटा दिया और आप जाकर पेहित मुनि के पास जैनदीक्षा ले ली जो उसका अन्तःकरण चाहता था। बहुत अर्से तक बुद्ध ने जैनधर्म का पालन किया और यथाशक्य तपस्या भी की पर उसको इच्छित वस्तु न मिली। अतः तपस्या से उसका दिल हट गया और साधुओं से अलग हो स्वयं अकेला भ्रमण करने लगा। तदनन्तर उसने 'बौद्ध' नामक नूतन धर्म चलाया जो आज भी विस्तृत रूपमें विद्यमान है।

बौद्धमतवाले यद्यपि स्पष्ट रूप से यह स्वीकार नहीं करते हैं कि बुद्ध ने सबसे पहले जैनश्रमणों के पास जैनधर्म की दीक्षा ली थी। पर प्रमाणों के अनुशीलन करने पर यह पता सहज ही में लग जाता है कि बुद्ध ने प्रारम्भिक दीक्षा जैनसाधुओं के पास ही ली थी। जिसके कतिपय प्रमाण यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—सिरिपासणाहतित्थे, सरऊतीरेपलास णयरत्थ। पिहियासवस्ससीहे, महालुद्धोबुद्धकित्तिमुणी ॥
तिमिपूरणासणेया अहिगय पवज्जा पऊ परम भट्ठेरत्तंबरंधरिता पवट्टियंतणएयत्तं ॥
मंसस्सनत्थिजीवो, जहाफलेदहियदुद्धसक्कराए तम्हा तं वंछिता, भक्खतो नत्थि पाविट्ठो ॥
मज्जंणवज्जणिज्जं,दव्वदव्वं जहाजलतहा एदंइतिलोएघोसित्ता, पवत्तियं संघ सावज्जं ॥
अण्णो करेदिकम्मं, अण्णं भुंज दीसिद्धंतं परि कप्पिऊणे णूणं, वसि किच्चाणि रय मुववण्णे ॥
दर्शन सार नामक ग्रन्थ ( दिगम्बर

२. इसी प्रकार श्वेताम्बर समुदाय के श्रीआचारांगसूत्र की शिलांगाचार्य कृत टीका में भी बुद्ध को जैन साधु होना लिखा है।

३ बौद्धधर्म के 'महावग्ग' नामक ग्रन्थ में बुद्ध के भ्रमण समय का उल्लेख किया है जिसमें लिखा है कि एक समय बुद्ध राजगृह गया और वहाँ 'सुप' सुपास चस्ति में ठहरे थे। इससे यही सिद्ध होता है कि बुद्ध प्रारम्भ समय में जैन थे और जैनों के सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के मन्दिर में ठहरे थे।

४ बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तरा के उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि राजा शुद्धोधन जैनश्रमणोपासक थे अर्थात् पार्श्वनाथ सन्तानियों के उपासक थे। अतः बुद्ध ने सबसे पहिले जैनश्रमणों के पास दीक्षा ली हो तो यह असंभव भी नहीं है।

५ डॉ० स्टीवेन्सन साहब के मत से भी यही सिद्ध होता है कि राजा शुद्धोधन का घराना जैन धर्म का उपासक था।

६ इम्पीरियल गेजेटियर ऑफ इन्डिया व्हाल्यूम दो पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि कोई कोई इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गौतमबुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गौतम बुद्ध ने महावीर स्वामी के बाद शरीर त्याग किया यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहिले जैनियों के तेईस तीर्थङ्कर और हो चुके थे।

५०० मुनियों के साथ केशीश्रमण (जिन्होंने गौतम के साथ चर्चा की थी ) को पांचाल की ओर ❀ इनके अतिरिक्त कुछ छोटी २ और टुकड़िया बना कर शेप प्रदेशों में भेज दीं और स्वय १००० मुनियों के साथ मगध प्रदेश में रहकर सर्वत्र उपदेश कर धर्म प्रचार करने का बीड़ा उठा लिया । आचार्य श्री की इस महत्वपूर्ण योजना से आपको इतनी सफलता प्राप्त हो गई कि थोड़े ही दिनों में आपने चारों ओर जैनधर्म एवं अहिंसा भगवती का झंडा फहरा दिया और विश्व फिर से शान्ति का श्वास लेने लगा । जनता अपने कर्तव्य को समझने लगी । यज्ञ जैसे निष्ठुर कार्य से उनको सहज ही मे घृणा आने लगी जिसे थोड़े दिन पूर्व वे धर्म का एक मुख्य अग समझते थे ।

आचार्यजी के प्रयत्न का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पड़ा, था पर आपका प्रभाव बड़े २ राजा महाराजाओं पर हो चुका था । अत चारों ओर फिर से जैन धर्म चमकने लगा । फलस्वरूप —

१—वैशाली नगरी का राजा चेटक
२—राजगृह का राजा प्रसैनजीत
३—चम्पा नगरी का राजा दधिवाहन
४—क्षत्रिकुण्ड का राजा सिद्धार्थ
५—कपिलवस्तु का राजा शुद्धोदन
६—पोलासपुर नगर का राजा विजयसेन
७—सांकेतपुर का राजा—चन्द्रपाल
८—सावत्थी नगरी का राजा अदीनशत्रु
९ कांचनपुर नगरका राजाधर्मशील
१०—कपिलपुर नगर का राजा जयकेतु
११—कौशाम्बीका राजा सतानीक
१२—सुग्रीव नगर का राजा बलभद्र
१३—काशी कौशल के अठारह गण राजा
१४—श्वेताम्बिका का राजा प्रदेशी राजा

इनके अलावा भी कई भूपति जैनधर्म की शरण लेकर स्वपर कल्याण करने लगे और जब राजा भी इस प्रकार जैनधर्म के झण्डे के नीचे आ गये तो साधारण जनता का तो कहना ही क्या था ? वे लाखों नहीं पर करोडों की सख्या में अपनी पतित दशा को त्याग कर जैनधर्मोपासक बन गये । कहा भी है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' । अहाहा—संगठन में एक कैसी बिजली सी शक्ति रही हुई है कि जिसका साक्षात्कार हमारे चरित्र नायकजी ने प्रत्यक्ष में कर बतलाया था जिसको पढ़ सुन कर यदि आज भी हमारे सूरिसम्राट् उन महात्माओं का अनुकरण करें तो हमारे लिये कोई भी कार्य्य असाध्य नहीं है ।

## महात्मा बुद्ध

आचार्य्य केशीश्रमण के आज्ञावृति साधुओं में एक पेहीत नामक विद्वान एव प्रतिभाशाली साधु था । वह एक समय अपने शिष्य समुदाय के साथ विहार करता हुआ कपिलवस्तु नगर में आपहुँचा। वहाँ का नरेश पहिले से ही जैनधर्मोपासक था, अत आगतुक मुनियों का स्वागत सत्कार करना स्वभाविक ही था । मुनिपुंगव का व्याख्यान हमेशा त्याग एव वैराग्य पर होता था। जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था । राजा शुद्धोधन के पुत्र बुद्धिकीर्ति (गोतमबुद्ध) पर तो आप का इतना प्रभाव हुआ कि वह व्याख्यान सुन कर ससार से विरक्त हो गया । पर राजा शुद्धोदन एव आपका कुटुम्ब यह कब चाहता था कि बुद्धकीर्ति हमको

❀—श्री भगवतीजी सूत्र, राजप्रश्नीजी सूत्र, उत्तराध्ययनजी सूत्र, कल्पसूत्रादि सूत्रों में तथा चरित्र और पट्टावलियादिग्रन्थों में भगवान् पार्श्वनाथ संतानियों के अस्तित्व के उल्लेख प्रचुरता से मिलते हैं ।

महात्मा बुद्ध
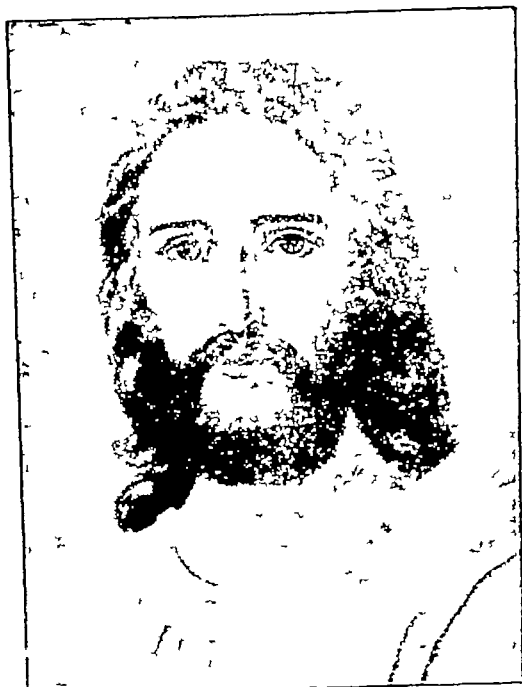
महात्मा इशु

( शशि कान्त एण्ड कम्पनी बड़ोदा के सौजन्य मे )

पता मिल गया था और उन्हें उनके सिद्धान्त में रुचि भी हो गई थी। उदाहरणार्थ उन श्लोकों में से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है जिसमें बुद्ध कहता है कि —

एक मिदाह, महानाम, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते से नखोपन समयेन संबहुला निगण्ठा इसिगि लिपस्से काळ सिलायं उब्भट्ठका होन्ति आसन पटिक्खित्ता ओपक्कमिका दुक्खातिप्पा कटुका वेदना वेदयन्ति अथखोहं महानाम सायण्ह समयं पटिसल्लाणा वुट्ठितो येन इसि गिलिपस्सम काय सिला येन ते निगण्ठा तेन उपसंकमिम् उपसंकमित्वा ते निगण्ठे एतद् वोचम् किन्तु तुम्हे आवुसो तुम्भट्का आसन पटिक्खित्ता ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदियथाति एव वुत्ते महानामते। निगण्ठामं एतदवोचुं ॥

निगण्ठो आवुसो नातपुत्तो सब्बञ्ञु सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाण दस्सन परिजानाति चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाण दस्सनं पच्चुपट्ठितंति सो एव माह अत्थि खोवो निगण्ठा पुब्बे पापं कम्मकतं, तंइमायकटुकाय दुक्करि कारिकाय निज्जीरेथ, यनेत्थ एतरहि कायेन संवुता, वाचाय संवुता, मनसा संवुता तं आयतिं पापस्स कम्मस्स अकरणं, इति पुराणानं, कम्मानं तपसा व्यन्तिभावा नवानं कम्मानं अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा, कम्मक्खया कम्मक्खयो, दुक्खयो, दुक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति तं चपन् अम्हाकं रुच्चति चेवखम ति च तेन च आम्हा अत्तमनाति।

*P T D Majjhim Vol. 18 I PP 92-93*

भावार्थ—महात्मा बुद्ध कहता है हे महानाम मैं एक समय राजगृह में गृद्धकूट नामक पर्वत पर विहार कर रहा था उसी समय ऋषिगिरि के पास कालशिला नामक पर्वत पर बहुत से निर्ग्रन्थ ( मुनि ) आसन छोड़ उपक्रम कर रहे थे और तीव्र तपस्या में प्रवृत थे। हे महानाम मैं सायंकाल के समय उन निर्ग्रन्थों के पास गया और उनसे कहा, "अहो निर्ग्रन्थ तुम आसन छोड़ उपक्रम कर क्यों ऐसी घोर तपस्या की वेदना का अनुभव कर रहे हो ? ॥" हे महानाम जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले कहो निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं हमारे चलते ठहरते सोते जागते समस्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा कि हे निर्ग्रन्थ तुमने पूर्व जन्म में पापकर्म किया है उसकी इस घोर दुष्कर तपस्या से निर्जरा कर डालो। मन वचन और काया की संवृती से नये पाप नहीं बंधते और तपस्या से पुराने पापों का व्यय हो जाता है। इस प्रकार नये पापों के रुक जाने से और पुराने पापों के व्यय से आयति रुक जाती है, आयति रुक जाने से कर्मों का क्षय होता है, कर्मों के क्षय से दुःख क्षय होता है दुःख क्षय से वेदना क्षय और वेदनाक्षय से सर्व दुखों की निर्जरा होती है। इस पर बुद्ध कहता है यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मन को ठीक जचता है।

ऐसा ही प्रसंग मज्झिम निकाय में भी एक जगह पर आता है यहाँ भी निर्ग्रन्थों ने बुद्ध से ज्ञातपुत्र ( महावीर ) के सर्वज्ञ होने की बात कही और उनके उपदिष्ट कर्मसिद्धान्त का कथन किया जिस पर बुद्ध ने फिर उपर्युक्त शब्दों में ही अपनी रुचि और अनुकूलता प्रगट की।

७—डाक्टर भण्डारकर ने भी महात्मावुद्ध का जैन मुनि होना स्वीकार किया है ( देखो जैन हितैषी भाग ७ वां अक १२ पृ० १ ) [ परिणाम है ।

८—वुद्ध ने अपने धर्म में जो अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है यह भी जैन धर्म के संसर्ग का ही

९—डाक्टर फहरार ने भी कहा है कि महात्मा बुद्ध का घराना जैनधर्मोपासक था। शायद् बुद्ध ने पहिले जैन धर्म की दीक्षा ली हो तो भी असंभव नहीं है।

१० श्रीमान् ध्रुव ने अपने भाषण में कहा है कि महात्मा बुद्ध का जन्म जैन घराने में हुआ था, यही कारण है कि आपने अहिंसा पर खूब जोर दिया जैसे महावीर ने दिया था।

११—बुद्ध ने आत्मा को क्षणिक स्वभाव माना है जो जैन सिद्धान्त में 'द्रव्य पर्याय' की व्याख्या की है द्रव्य नित्य और पर्याय अनित्य अर्थात पर्याय समय २ पर बदलते हैं। बुद्ध ने द्रव्य को पर्याय समझ आत्मा 'क्षणिक' प्रतिक्षण नाश होने वाला माना है, इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि बुद्ध का घराना जैन था और बुद्ध ने प्रारम्भ में जैनदीक्षा स्वीकार की थी।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि महात्मा बुद्ध ने जैनश्रमणों के पास दीक्षा अवश्य ली थी। बुद्ध का यज्ञ-हिंसा के प्रति विरोध और अहिंसा के विषय में उपदेश जैनों से मिलता जुलता होने से कई अनभिज्ञ लोगों ने जैनों को ही बौद्ध लिख दिया एवं जैनधर्म को बौद्धों की एक शाखा बतलाने की भी धृष्टता कर डाली। पर जब जैनों ने अपनी स्वतत्रता एव प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण विद्वानों के सामने रक्खे तब जाकर उन्होंने अपनी भूल समझ कर यह स्वीकार किया कि नहीं, बौद्धधर्म अलग है और जैन धर्म अलग है। बौद्धधर्म में यह शक्ति संगठन नहीं था कि वह जैनधर्म की बराबरी कर सके। कारण बौद्धधर्म अहिंसा की बुनियाद पर पैदा हुआ था पर बाद में वे मासभक्षी बन गये थे और आज भी उनमें मासभक्षण का प्रचुरता से प्रचार है तब जैनधर्म शुरू से आज तक अमांसभोजी है और भविष्य में रहेगा। अत जैनधर्म और बौद्धधर्म पृथक पृथक धर्म हैं।

जैन धर्म की नींव आस्तिवाद पर और बौद्ध धर्म की नींव क्षणिक वाद पर है। जैनधर्म का त्याग वैराग्य और तप सयम उत्कृष्ट होने से ससारलुब्ध एव इन्द्रियों के वशीभूत प्राणियों से पालना दुस्साध्य है। तब बौद्धधर्म के नियम सादा और सरल थे जिसमें ऐसी किसी खास वस्तु का निषेध एव कष्ट नहीं था जिससे हरेक व्यक्ति उसका पालन कर सकता था।

बुद्ध ने अपना नया मत निकाल कर अपना मत चलाया था पर फिर भी महावीर के स्याद्वादसिद्धान्त को वह ठीक ही समझता था, जिसका प्रमाण खास बुद्ध के निर्माण किये शास्त्रों में भी मिलता है।

बौद्धों के समस्त धार्मिक ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त हैं जो 'त्रिपिटक' कहलाते हैं, इनके नाम क्रमश विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक हैं। प्रथम पिटक में बौद्धमुनियों के आचार और नियमों का दूसरे में महात्मा बुद्ध के निज उपदेशों का और तीसरे में विशेषरूप से बौद्ध सिद्धान्त और दर्शन का वर्णन है। सुत्तपिटक के ५ निकाय अर्थात् अंग हैं जिसमें से दूसरे का नाम मझमीमनिकाय है इसमें अनेक स्थानों पर महात्मा बुद्ध का निर्ग्रन्थ मुनियों से मिलने और उनके सिद्धान्तों आदि के विषय में बात-चीत करने का उल्लेख आया है। इन उल्लेखों से सिद्ध होता है कि बुद्ध को भगवान महावीर की सर्वज्ञता का

राज धनधान्यशाली बनता गया। धनधान्य रत्न सुवर्ण और राज की खूब वृद्धि होने लगी। गर्भ के प्रभाव से रानी त्रिसला देवी को अच्छे २ दोहद (मनोरथ) होने लगे जिसको राजा सिद्धार्थ ने बड़े ही हर्ष के साथ पूर्ण किये। क्रमशः चैत्रशुक्लत्रयोदशी के दिन की रात्रि समय महावीर का जन्म हुआ। इधर से ही सब ग्रह उच्च स्थान पर आ गए थे ऐसे पुरुष के लिये आना चाहिये था। वह समय तीन लोक के जीवों के लिये बड़े ही आनन्द का था। नरकादि के जीवों को भी उस समय शान्ति मिली थी। उसी रात्रि में इन्द्रादि देवों ने भगवान को मेरुशिखर पर ले जाकर प्रभु का स्नात्र महोत्सव किया। तदनन्तर प्रभात होते ही राजा सिद्धार्थ ने जन्ममहोत्सव खूब समारोह से मनाया। विशेषता यह थी कि सौ हजार और लाख दिनार व्यय कर जिन मन्दिरों में पूजा रचवाई गई थी, क्योंकि राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिसला भगवान पार्श्वनाथ संतानियों के श्रावक थे और श्रावक के घरों में ऐसा मांगलिक कार्य हो तो पहिले प्रभुभक्ति होनी ही चाहिये। इस प्रकार क्रमशः महोत्सव मनाते हुए बारहवें दिन देवोत्थम (भोजन करके प्रभु का नाम 'वर्द्धमान' रखा जो यथा नाम तथा गुण था क्योंकि भगवान के गर्भ में आते ही राजा सिद्धार्थ के राज में धन धान्यादि की अभिवृद्धि हुई थी।

भगवान जब बालक्रीड़ा करते थे उस समय एक देव भगवान की वीरता की परीक्षा करने को आया पर भगवान के पराक्रम के सामने वह लज्जित हो गया था। तत्पश्चात् माता पिता ने अपने मनोरथ पूर्ण करने को भगवान को विद्यालय में प्रवेश करवाने का महोत्सव किया, पर बिचारे अध्यापक के पास इतना ज्ञान कहाँ था कि वह वर्द्धमान को पढ़ा सके। उस समय इन्द्र का आसन विचलित हुआ और उसने स्वर्ग लोक से चल कर ब्राह्मण का रूप धारण कर विद्यालय में आकर राजकुमार वर्द्धमान को ऐसे २ प्रश्न पूछे और भगवान ने उन प्रश्नों के उत्तर दिये, जिसको सुन कर विद्यालय का अध्यापक विस्मित हो गया। उन प्रश्नोत्तर का एक ग्रन्थ बन गया जिसका नाम जिनेन्द्र व्याकरण रखा गया था।

जब भगवान ने युवावस्था में पदार्पण किया तो अनेक राजाओं के यहाँ से विवाह के आमन्त्रण आये। भगवान की इच्छा के न होने पर भी माता पिता के आग्रह से राजकन्या यशोदा के साथ राजकुमार वर्द्धमान का विवाह बड़े ही समारोह से हो गया। हाँ पूर्व संचित जिनके कर्म होते हैं वह तो भोगने ही पड़ते हैं और सम्यग्दृष्टि जीवों के भोग भी कर्म निर्जरा का हेतु होता है।

भगवान वर्द्धमान ने माता के गर्भ में ही दीक्षा की भावना कर ली थी पर साथ में यह नियम कर लिया था कि जब तक माता पिता जीवित रहें वहाँ तक मैं दीक्षा नहीं लूंगा इसका कारण माता पिता का पुत्र प्रति अनुराग ही था। जब भगवान की उम्र २८ साल की हुई तो राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिसलादेवी का स्वर्गवास हो गया।

वर्द्धमान का अभिग्रह पूर्ण हो गया तो वृद्धभ्राता नन्दीवर्द्धन से कहा कि मैं दीक्षा लूंगा, आपकी अनुमति होनी चाहिये। वृद्धभ्राता ने कहा वीर! अभी तो मेरे माता पिता का वियोग और जो आधार है वह तुम पर ही है इस वर्ष अभी तुम ठहरो। अतः वृद्धभ्राता के कहने से दो वर्ष संसार में रहना स्वीकार किया। जब एक वर्ष व्यतीत हुआ तो लोकान्तिक देवों ने आकर प्रार्थना [illegible] विश्व में मिथ्यात्व का घोर अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है। अतः आप दीक्षा लेकर जगत उद्धार करावें।

इस उदाहरण से पाया जाता है कि भगवान महावीर का त्याग वैराग्य कठोर तप और स्याद्वाद को महात्मा वुद्ध बड़ी रुचि से मानता था।

महात्मा वुद्ध का समय भगवान महावीर के समकालीन था अर्थात् भगवान महावीर के जन्म के दो वर्ष पूर्व से महात्मा वुद्ध का जन्म हुआ था भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् छः वर्षों से महात्मा वुद्ध का निर्वाण हुआ था, अत. महावीर का आयुष्य ७२ वर्ष का था और महात्मा वुद्ध का आयुष्य ८० वर्ष का था। प्रसगोपात महात्मा वुद्ध का संक्षिप्त परिचय करवाने के बाद अब हम मूल विषय पर आते हैं।

केशीश्रमणाचार्य्य महाप्रतिभाशाली हुये। आपने जैनधर्म की कीमती सेवा की यज्ञवादियों की बढ़ती जाती क्रूरता को रोकने में भागीरथ प्रयत्न किया तथा उन पाखडियों के चंगुल में फंसे हुए नरेशों को एव जनता को जैनधर्म में स्थिर किया और जैनश्रमण संघ में खूब आशातीत वृद्धि की कि जिन्होंने भारत में चारों ओर भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार किया।

फिर भी उस समय की विगड़ी हुई परिस्थिति को सुधारने के लिए कुदरत एक प्रतिभाशाली अलौकिक महापुरुष की प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक उसी समय जगदोद्धारक विश्ववत्सल भगवान महावीर ने अवतार धारण किया। फिर तो था ही क्या ? जैसे सूर्य उदय होने के पूर्व ही चारों ओर प्रकाश फैल जाता है वैसे विश्व के वायुमण्डल में शान्ति के परमाणु प्रसरित होने लगे।

## भगवान् महावीर

यों तो भगवान् महावीर के पवित्र एवं परोपकारी जीवन पर प्रकाश डालने वाले पृथक २ विद्वानों की ओर से बडे २ ग्रन्थों का निर्माण हो चुका है ❀ उनके अन्दर से कई ग्रन्थ तो मुद्रित भी हो गये हैं। अत यहां पर भगवान महावीर के जीवन विषय संक्षिप्त में ही लिखा जाता है।

ई० स० पूर्व ५९८ वर्ष का समय था कि क्षत्रीकुण्डनगर के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिसला देवी की रत्न कुक्ष में चौदह स्वप्न सूचित भगवान महावीर ने अवतार लिया। उस दिन से ही राजा सिद्धार्थ का

१–भगवान महावीर की जन्म कुण्डली
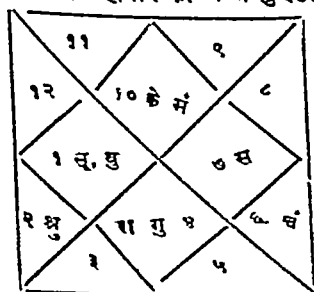
❀१ महावीर स्वामी चरित्र कर्ता गुणचन्द्र गणि
२ महावीर स्वामी चरित्र ,, नेमिचन्द्र वि० सं० ११३९
३ महावीर स्वामी चरित्र ,, पं० मंगलकलस वि० सं०
४ महावीर स्वामी चरित्र ,,
५ महावीर स्वामी चरित्र ,, पं० निधान कुशल वि० सं०
६ महावीर स्वामी चरित्र ,,
७ महावीर स्वामी चरित्र ,, जिनेश्वरसूरि शिष्य
८ महावीर स्वामी चरित्र ,, असग (दिगंबर)
इनके अलावा भी कई छोटे बड़े जीवन लिखे गये थे।

भगवान् महावीर के मानस को डिगाने के लिये कामातुर स्त्रियाँ हावभाव करती हैं पर वीर मेरु की भाँति अचल रहे।

भगवान् महावीर के पैरों पर गोपालों ने खीर पकाई। और कुत्तो से मांस कटाया

भगवान् महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने जोरों से काटा जिसके बदले उन्होंने सर्प को आठवां स्वर्ग पहुँचाया।

भगवान् महावीर के कानों में गोपालों ने कीले ठोक दी। फिर भी वीर तो वीर ही थे।

क्रोध में लाल भभूका होकर प्रभु को काटा, पर दूसरे लोगों को काटने पर खून निकलता है लेकिन भगवान को काटने पर सर्प ने दूध पाया, जिससे सर्प को बड़ा ही आश्चर्य हुआ उस समय प्रभु ने कहा चंडकोशिक ! बुझ बुझ इतने में तो सर्प को जाति-स्मरण हो आया उसने अपना पूर्व भव देखा कि मैं पूर्व भव में एक मुनि था । क्रोध के मारे मर कर सर्प हुआ हूँ और यहाँ भी क्रोध के वश हो अन्य जीवों को कष्ट पहुँचा रहा हूँ जिसमें भी महावीर जैसे लोकोत्तर पुरुष को, धिक्कार हो मेरे क्रोध को ।

कृतापराधेऽपि जने, कृपामंथरतारयोः । ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः ॥

बस उस सर्प ने शान्त चित्त से प्रतिज्ञा कर ली कि अब मैं किसी को भी तकलीफ नहीं दूंगा, इतना ही क्यों पर मुझे कोई कष्ट देगा तो भी क्षमा करूंगा । सर्प ने अपना मुह बांबी (बिल) में डाल कर शरीर को भूमि पर रख दिया । प्रभु ने वहां से विहार कर दिया । जब लोगों को मालूम हुआ कि सर्प ने शान्ति धारण कर ली है तो मिष्टान्न पदार्थों से सर्प की पूजा की, उस मिष्टान्न से वहां चींटियां आ गईं और सर्प के शरीर को काट २ कर खाने लगीं तो भी सर्प ने उन पर क्रोध द्वेष नहीं किया अतः सर्प समभावों से मर कर आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ ।

५—एक समय भगवान ने विहार करते हुये एक जंगल में ध्यान लगा दिया था । कोई किसान अपने बैलों को भगवान के पास छोड़ कर कार्यवशात् ग्राम में चला गया था । बलद वहाँ से चले गये, किसान ने वापिस आकर देखा तो बलद नहीं मिले । रात्रि भर ढूंढता फिरा पर बलद नहीं मिले । फिर सुबह वे बलद स्वयं प्रभु के पास आ गये । किसान ने आकर देखा तो उसको प्रभु पर बहुत गुस्सा आया । उसने कैर की कीलें लाकर प्रभु के कानों में इस कदर ठोक दीं कि कानों के छेद आरपार हो गये । इतना कष्ट होने पर भी भगवान् ने उस गोपाल पर किंचित भी द्वेष नहीं किया क्योंकि अपने पूर्वसंचित कर्म समझ कर समभाव से सहन कर लिया इस प्रकार अनेकानेक उपसर्ग एवं परिसह को बड़ी वीरता के साथ सहन करते हुये करीब साढे बारह वर्ष निकल गये और साढे बारह वर्षों में प्रभु ने तपस्या भी इतनी की कि पूरा एक वर्ष भी आहार पानी नहीं किया होगा ।

| तपश्चर्या के नाम | संख्या | तप दिन | पारणा दिन | सर्व दिन |
|---|---|---|---|---|
| छ मासी तप | १ | १८० | १ | १८१ |
| न्यून छ मासी तप | १ | १७५ | १ | १७६ |
| चातुर्मासी तप | ९ | १०८० | ९ | १०८९ |
| तीन मासी तप | २ | १८० | २ | १८२ |
| अढाई मासी तप | २ | १५० | २ | १५२ |
| दो मासी तप | ६ | ३६० | ६ | ३६६ |
| डेढ मासी तप | २ | ९० | २ | ९२ |
| एक मासी तप | १२ | ३६० | १२ | ३७२ |
| पाक्षिक तप | ७२ | १०८० | ७२ | ११५२ |
| अष्टम तप | १२ | ३६ | १२ | ४८ |
| छट्ठ तप | २२९ | ४५८ | २२९ | ६८७ |
| | | ४१४९ | ३४९ | [illegible] |

भगवान वर्द्धमान ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया जिसका प्रमाण प्रति दिन १०८००८०० सौनइयों का था, अत वर्षीदान के बाद ई. स पूर्व ५६८ वर्ष के मार्गशीर्ष कृष्णा १० के दिन इन्द्रादि असख्य देव और महाराजाओं के महोत्सव के साथ एकले दीक्षाव्रत ग्रहण कर लिया। विशेषता यह थी कि जिस दिन प्रभु ने दीक्षा ली उसी दिन अभिग्रह ( प्रतिज्ञा ) कर ली कि यदि देव मनुष्य और तिर्यन्च का कोई भी उपसर्ग होगा वह मुझे अपने पूर्व सचित कर्म समझ कर समयक् प्रकार से सहन करना होगा।

महापुरुषों का यह भी नियम हुआ करता है कि वे पहिले अपनी आत्मा का सर्व विकास कर लेते हैं तब ही वे दूसरों का कल्याण करने में प्रवृति करते हैं और यह बात है भी ठीक कि जिसने अपना कल्याण कर लिया है वही दूसरों का कल्याण कर सकता है। कहा भी है कि "तन्नाणं तारियाण"।

भगवान् वर्द्धमान ने जिस दिन दीक्षा ले कर विहार किया उस दिन से ही आप पर उपसर्ग एवं परिसहों ने हमला करना प्रारम्भ कर दिया था, एव बारह वर्षों में अधिक समय आपका उपसर्गों में ही व्यतीत हुआ था। यदि उन सब को लिखा जाय तो एक बड़ा भारी ग्रन्थ बन जाय, पर मैं अपने उद्देश्यानुसार संक्षिप्त में कतिपय उदाहरण आपके सामने रख देता हूँ कि भगवान महावीर ने कैसे २ उपसर्गों को सहन किया था।

१—भगवान के दीक्षा समय आपके शरीर पर चन्दनादि सुगन्ध पदार्थों का लेपन किया था जिसके मारे भ्रमरगण प्रभु के शरीर का मास काट काट खाने लग गये थे, तब दूसरी ओर भगवान के अद्भुत रूप को देख कर कामातुर औरतों ने अनेक प्रकार के हाव-भाव नृत्य विलासादि किये, पर प्रभु ने दोनों पर सम भाव ही रखा।

२—एक समय जगली गोपालकों ने अपने बैलों के कारण प्रभु को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये, उस समय शक्रेन्द्र का आसन कम्प उठा, अत इन्द्र ने आकर गोपालकों को सजा देकर दूर हटाया और भगवान की वन्दना स्तुति की, पर प्रभु ने न तो गोपालकों पर द्वेष ही किया न शक्रेन्द्र पर राग ही किया। इतना ही क्यों इन्द्र ने अर्ज की कि प्रभो आपको बड़े २ कष्ट होने वाले हैं, यदि आप आज्ञा फरमावें तो मैं आपकी सेवा में रह कर उन कष्टों को निवारण करू ? इस पर प्रभु ने कहा इन्द्र यह न तो हुआ और न होगा कि कोई भी व्यक्ति दूसरों की सहायता से कल्याण करे किया और करेगा अर्थात् अपना कल्याण आप ही कर सकेगा। अत आपकी सहायता की मुझे आवश्यकता नहीं है। आ हा, वीर तो सच्चे वीर ही थे।

३—शूलपाणि यक्ष और सगम नामक अधम देवों के उपसर्ग को सुनते ही कलेजा काप उठता है। उन अधम देवों ने प्रभु को इतने घोर कष्ट पहुँचाये कि वे अपनी आयुष्य से ही जीवित रहे, शेप देवों ने तो उपसर्ग करने में कुछ भी उठा न रक्खा।

४—एक समय महावीर जगल में जा रहे थे तो किसी गोपालक ने कहा कि आप किसी दूसरे रास्ते से जाइये, कारण कि इस रास्ते के बीच एक चंडकोषिक सर्प रहता है और उसका विप इतना जहरीला है कि वह जिधर दृष्टि प्रसार करता है उधर ही जीवों को भस्मीभूत बना देता है इत्यादि। प्रभु ने सोचा कि जब उस सर्प में इतनी शक्ति है और उसका दुरुपयोग करता है यदि उसी शक्ति का वह सदुपयोग करने लग जाय तो उसका कल्याण हो सकता है, क्योंकि 'कर्मशूरा सो धर्मशूरा' बस भगवान उसी रास्ते चले गये और जहा सर्प की बाबी ( बिल ) थी वहा ध्यान लगा दिया। फिर तो था ही क्या ? सर्प ने

१–राजगृह नगर का शिशुनागवंशी महाराजा श्रेणिक—आप राजा प्रसेनजित के उत्तराधिकारी थे। आपने शुरू से बौद्धधर्म की शिक्षा पाई थी और उसी धर्म के उपासक थे परन्तु आपका विवाह वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री चेलना के साथ हुआ था। महारानी चेलना कट्टर जैन उपासिका थी। उसने बड़ी कोशिश के साथ अपने पतिदेव को जैनधर्म के तत्त्वों को समझा कर जैनधर्म के उपासक बनाये। राजा श्रेणिक ने जैनधर्म की विशेषता समझ कर जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया। केवल भारत में ही नहीं पर भारत के बाहर विदेशों में भी प्रचुरता से प्रचार किया था। आपने बहुत से जैन मन्दिर बनवा कर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। हेमवन्तपट्टावली से ज्ञात होता है कि कलिंग की कुमारगिरि पहाड़ी पर आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बना कर उसमें स्वर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। उसी मूर्ति का जिक्र महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख में आता है जिसको हम आगे चल कर बतावेंगे। महाराजा श्रेणिक जिनभक्ति में इतना लीन था कि वह हमेशा १०८ स्वर्ण के जौ (चावल) बना कर जिन प्रतिमा के सामने स्वस्तिक किया करता था। यही कारण है कि उसने धर्म की प्रभावना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया जो आगामी चौबीसी में पद्मनाभ नामक तीर्थंकर होंगे।

२– चम्पा नगरी का महाराजा कोणिक (अशोकचन्द्र) आप राजा श्रेणिक के पुत्र और उत्तराधिकारी थे। आप भगवान महावीर के पूर्ण भक्त थे। आपको ऐसा नियम था कि भगवान महावीर प्रभु जहाँ विराजते हैं जिसका पता मिलने से ही अन्न जल ग्रहण करते थे। आज की भाँति तार डाक का साधन नहीं था फिर भी उसने मनुष्यों की ऐसी डाक बैठा दी थी जिसकी हमेशा खबर आया जाया करती थी।

"उववाईसूत्र"

३–पाटलीपुत्र नगर के राजा उदाई—आप महाराजा कोणिक के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। आपने चम्पानगरी को छोड़ कर अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में कायम की। आप बड़े ही धार्मिक कर्मठ एवं आत्म-कल्याण करने में ही संलग्न थे। किसी धर्मद्वेषियों द्वारा धर्म के विश्वास पर आपके जीवन का अन्त कर दिया गया। जैन चरित्र

४–वैशाली नगरी का महाराजा चेटक—आप भगवान महावीर के पूर्णभक्त थे एवं बारह व्रतधारी श्रावक भी थे। जैनसिद्धान्तों में आपका विशेष वर्णन आता है। भगवती सूत्र

५–२१–काशी कोशल देश के १८ गणराजा—ये भी भगवान के परमभक्त थे। भगवान की अंतिम अवस्था में पावापुरी नगरी में आकर महाराजा चेटक के साथ पौषधव्रत किये थे। निरियावलिका सूत्र

२३–सिन्धु सौवीर देश का वितभयपाटण का महाराजा उदाई और महारानी प्रभावती—ये दोनों भगवान महावीर के परमभक्त थे और इन्होंने भगवान के चरणों में जैन दीक्षा लेकर मोक्ष की प्राप्ति कर ली थी। भगवती सूत्र

२४–विजयपट्टण का राजा केसीकुमार—ये महाराज उदाई के भगिनी पुत्र (भानजा) थे वह भी जैनधर्मोपासक थे। भगवती सूत्र

२५–आमलकप्पा नगर के राजा श्वेतप्रभ—आपने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त कर ली थी। भगवती सूत्र

एक तरफ तो घोर उपसर्ग को सहन करना और दूसरी ओर उत्कृष्ट तपश्चर्या फिर बिचारे कर्म तो रह ही कैसे सकते थे ? अत. जम्भुक नामक ग्राम के पास रजुवालका नदी के किनारे पर सोमक के खेत में अशोक के वृक्ष के नीचे छट का तप गोधों आसन और शुक्लध्यान की उच्चश्रेणी में अध्यात्म चिन्तवन करते हुये ज्ञानावर्णिय, दर्शनावर्णिय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों घनघाती कर्मों को क्षय कर प्रभु महावीर ने कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन को प्राप्त कर लिया। आत्मा पर जो कर्मों के दलक के पर्दे थे वे दूर होते ही प्रभु लोकालोक के चराचर पदार्थों के द्रव्य गुण पर्याय को हस्तामलक की मुआफिक देखने लग गये।

इस सुअवसर को जान कर इन्द्रादि असंख्य देव-देवी महोत्सव करने को आये। प्रभु ने देव मनुष्य और विद्याधरों को धर्मदेशना दी, पर उस समय किसी ने व्रत नहीं लिया। दूसरे दिन देवों ने समवसरण की रचना की, उस पर विराजमान हो भगवान महावीर ने अहिंसा परमो धर्म पर व्याख्यान दिया।

भगवान के उपदेश का अधिक प्रभाव वेदान्तियों के निष्ठुर यज्ञ पर हुआ। यही कारण है कि इन्द्रभूति आदि ११ यज्ञाध्यक्ष महान् पंडितों ने अपने २ दिल की शंकाओं का समाधान करके वे स्वय तथा उनके ४४०० छात्रों ने भगवान महावीर के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण की और प्रभु के शिष्य बन गये फिर तो कहना ही क्या था ? प्रभु ने चतुर्विध सघ की स्थापना की और यज्ञ में होते हुये असख्य निराधार मूक प्राणियों को अभयदान दिलवा कर उस पापवृति को समूल नष्ट कर दिया और उस समय की विषमता एवं वर्ण ज ति उपजाति और नीच ऊंच के मिथ्या भ्रम का शिर फोड़ कर सब को समभावी बना कर प्राणी मात्र को अपना कल्याण करने का अधिकार दे दिया।

भगवान् महावीर ने ३० वर्ष तक चारों ओर घूम घूम कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया। कई नर नारियों को दीक्षा देकर अपने शिष्य बनाये, जिस में १४००० मुनि और ३६००० साध्वियाँ तो मुख्य थे। इसी प्रकार १५९००० श्रावक और ३३६००० श्राविकाए व्रतधारियों में अग्रेश्वर थे इनके अलावा जैनों की संख्या उस समय +४०००००००० कही जाती है।

भगवान महावीर के लिए अनेक पौर्वात्य और पाश्चात्य धुरंधर विद्वानों, सशोधकों और इतिहासज्ञों ने अपना मत प्रगट किया है कि भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं, परन्तु उपदेशक एव प्रचारक थे। इस विषय में मैंने बहुत से प्रमाण जैनजाति महोदय ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में उद्धृत कर दिये हैं और उनके अलावा भी अनेक प्रमाणों से यह बात स्पष्टतया निश्चित हो चुकी है कि भगवान महावीर एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उन्होंने अहिंसा का खूब जोरों से प्रचार करके प्राणीमात्र को जीने का अधिकार प्राप्त करा दिया था और यज्ञ यागादिक में दी जाने वाली बलि को उन्मूलन करके ब्राह्मण धर्म पर भी अहिंसा की जबर-दस्त छाप जमा दी थी इत्यादि। भगवान महावीर का जीवन जगत के कल्याण के लिए हुआ था। भगवान महावीर के अहिंसा परमोधर्म एवं स्याद्वाद सिद्धात का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं परन्तु बड़े २ राजा महाराजाओं पर भी हुआ था। अत कतिपय राजाओं के नाम यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

+ "भारत में पहिले ४००००००० जैनथे, उसी मत से निकल कर बहुत लोग अन्य धर्म में जाने से इनकी संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है, इस मत के नियम बहुत उत्तम हैं, इस मत से देश को भारी लाभ पहुँचा है"। "बाबू कृष्णनाथ बनर्जी, जैनिजम"

धर्म का खूब प्रचार किया। आपने महावीर के दीक्षा के सातवें वर्ष मुंडस्थल नगर में महावीर का दर्शन कर वहाँ महावीर का मंदिर बनाया। "कल्प सूत्र

(४१) कौशाम्बी नगरी के महाराजा शतानीक और आपकी पट्टराणी मृगावती भी जैन थे जिन्हों की बहिन जयन्ति बाई ने भगवान महावीर के पास जैनदीक्षा ग्रहण करी थी। महाराजा शतानीक के पुत्र उदायन आदि भी पक्के जैन थे। भगवती सूत्र

(४२) कपिलपुर के जयकेतु राजा भी जैन थे। 'उपासक दशांग

(४३) कांचनपुर के महाराजा धर्मशील भी जैन थे। उत्तराध्ययन सूत्र

(४४) हस्तिनापुर के राजा अदीनशत्रु और आपकी महाराणी धारणी भी जैन थे जिन्हों के पुत्र सुबाहुकुमार ने भगवान के पास दीक्षा ली थी। विपाक सूत्र"

(४५) ऋषभपुर नगर के महाराजा धनवाह और सरस्वती राणी जैनधर्मोपासक थे। आपके पुत्र भद्रनंदी ने प्रभु महावीर के पास जैनदीक्षा ग्रहण की थी। "विपाकसूत्र

(४६) वीरपुरनगर के महाराजा वीरकृष्णमित्र और श्रीदेवी जैनधर्म पालन करते थे, आपके पुत्र सुजातकुमार ने महावीर के पास जैनदीक्षा लेकर उसका सम्यक् प्रकार से पालन किया।

(४७) विजयपुरनगर के वासवदत्त राजा और कृष्णादेवी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र सुवासवकुमार ने महावीर के पास जैनदीक्षा ली थी। विपाकसूत्र"

(४८) सौगंधिकानगरी के अप्रतिहत नामक राजा जैनधर्म के बड़े भारी प्रचारक थे, आपके पुत्र महचन्द्रकुमार ने भी जैनदीक्षा ग्रहण की थी। विपाकसूत्र

(४९) कनकपुरनगर के प्रियचन्द्र राजा भी जैन थे आपके पुत्र वैश्रमणकुमार ने भी भगवान वीर प्रभु के पास दीक्षा लेकर स्वपर कल्याण किया था। विपाकसूत्र

(५०) महापुरनगर के बलराजा सुभद्रादेवी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र महाबलकुमार ने ५० अंतेवर और राज्य त्याग कर जैनदीक्षा ली थी। विपाकसूत्र"

(५१) सुघोषनगर के अर्जुन राजा भी जैन थे आप के पुत्र भद्रनन्दी ने बड़े वैराग्य के साथ भगवान महावीर के पास जैन दीक्षा ग्रहण करी। विपाकसूत्र

(५२) चम्पानगरी के राजादत्त और रक्तवतीराणी जैनधर्म को प्रेमपूर्वक पालन करते थे, आपके पुत्र महिचन्द्र ने राजऋद्धि और ५ अंतेवर का त्याग कर जैनदीक्षा ली थी। विपाकसूत्र

(५३) साकेतपाटननगर के राजा मित्रनन्दी और श्रीकान्ता राणी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र वरदत्तकुमार ने भगवान महावीर के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा को ग्रहण कर स्वपर कल्याण किया। "विपाक सूत्र

(५४) आमलकप्पानगरी के राजा सेत जैनधर्मी थे जिन्होंने भगवान महावीर प्रभु के आगमन समय बड़ा ही जोरदार स्वागत किया था। 'रायपसेणी सूत्र

(५५) श्वेताम्बिकानगरी के राजा प्रदेशी और सूरिकान्ताकुँवर भी जैनधर्म के परमोपासक थे। राजा प्रदेशी कठिन व्रत-तपश्चर्या करके सूर्याभ नाम का देव हुआ एक भव कर मोक्ष जायगा। रायपसेणीसूत्र

( २६ ) आवन्तीनगरी के महाराजा चंडप्रयोधन जैनधर्म बड़ी रुचि से पालन करते थे । "उत्तरा ध्ययन्सूत्र"

( २७ ) कपिलपुरनगर के महाराजा संयति ने भगवती जैनदीक्षा को पालन कर अक्षय सुख को प्राप्त किया था । "उत्तराध्ययनसूत्र"

( २८ ) दर्शानपुरनगर के महाराजा दर्शानभद्र जैन थे उन्होंने एक समय भगवान महावीर का स्वागत बड़ा ही शानदार किया था पर मन में ऐसा अभिमान आया कि भगवान के उपासक अनेक राजा हैं पर मेरे जैसा स्वागत शायद ही किसी ने किया हो ? यह बात वहाँ पर आये हुए शकेन्द्र को ज्ञात हुई जिसने वैक्रय मे अनेक हस्तियों के रूप बनाये कि जिसको देखते ही राजादर्शानभद्र का गर्व गल गया । अब वह इस सोच में था कि इन्द्र के सामने मेरा मान कैसे रह सके । आखिर उन्होंने ठीक सोच समझ के महावीर प्रभु के पास भगवतीजैनदीक्षा स्वीकर कर ली । यह देख इन्द्र ने आकर उन मुनि के चरणों में शिर झुका कर कहा हे मुनि सच्चा मान रखनेवाले ससार भर में एक आप ही हो, दर्शानभद्रमुनि ने उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करली । 'उत्तराध्ययनसूत्र"

( २९ ) आवंतीदेश के सुदर्शननगर के महाराजा युगबाहु और उनकी महाराणी मैणरया पक्के जैन थे । "उत्तराध्ययन सूत्र"

( ३० ) चम्पानगरी के महाराजा दधीवाहन भी जैनधर्मोपासक थे जिन्हों की पुत्री चन्दनबाला ने भगवान महावीर के पास सब से पहले दीक्षा ग्रहण की थी "कल्पसूत्र"

( ३१ ) काशीदेश के महाराजा शख ने भी भगवान के पास दीक्षा धारण कर कल्याण कर लिया था । "ठाणायंग सूत्र'

( ३२ ) विदेहदेशमियलानगरी के महाराजा नमिराज ' उत्तराध्ययन सूत्र'

( ३३ ) कलिङ्गपतिमहाराजा करकण्डू "  "

( ३४ ) पंचालदेश कपीलपुर के स्वामी महाराज दुमई "  "

( ३५ ) गधारदेश पुण्डवर्धननगर के नृपति निग्गई एव चारों नृपति कट्टर जैन थे । अध्यात्म का अभ्यास करते चारों को साथ ही में ज्ञान हो आया और नाशमान संसार का त्याग कर उन्होंने जैनदीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण कर लिया । "उत्तराध्ययन सूत्र"

( ३६ ) सुग्रीवनगर के महाराजाबलभद्र जैनश्रमणोपासक थे । आपके एकाएक मृगापुत्रनामक कुमार ने भगवती जैनदीक्षा पालन कर ससार का पार कर दिया था । "उत्तराध्ययन सूत्र अ० ११"

( ३७ ) पोलासपुरके राजाविजयसेन जिन्हों के पुत्र अइमन्ताकुमार ने भगवान् महावीर प्रभु के पास दीक्षा ले के ससार का अन्त किया । "अन्तगड्दशाग सूत्र

( ३८ ) सावत्थि नगरी के राजा अदीनशत्रु आदि भी परम जैन थे । "भगवती सूत्र"

( ३९ ) साकेतपुर नगर के राजा चन्द्रपाल जिन्हों के पुत्र ने महावीर प्रभु के पास दीक्षा ली थी । "उत्तराध्ययनसूत्र"

( ४० ) क्षत्रियकुन्ड नगर के राजा नन्दवर्धन जो भगवान महावीर के वृद्धभ्राता थे । आपने अहिंसा

और वीर संतानियों के एक श्वेत वर्ण के वस्त्र और वह भी परमाणुपेत होने से लोगों को शंका होना स्वाभाविक ही था जब कि दोनों का ध्येय मोक्ष मार्ग साधन करने का है तो फिर ये अन्तर क्यों ? अब दोनों आचार्यों के शिष्यों का आपस में मिलाप एवं संवाद हुआ और उन्होंने अपने २ आचार्यों को जा कर निवेदन किया तो वे आचार्य भी शासन के हितैषी एवं दूरदर्शी थे कि ऐसी बातें छोटे आदमियों के हाथों में न दे कर आप ही आपस में समाधान करके जनता की शंका को मिटा देवें। बस, फिर तो था ही क्या ? गणधर इन्द्रभूति ने सोचा कि भगवान पार्श्वनाथ के संतानिये हमारे लिए ज्येष्ठ हैं अतः मुझे उनकी सेवा में जाना चाहिये। गणधर इन्द्रभूति ने केवल ऐसा विचार ही नहीं किया परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों को ले कर तिन्दुकवन की ओर चलने के लिए प्रस्थान ही कर दिया जहाँ कि पार्श्वनाथजी के सन्तानिये ठहरे हुए थे।

इधर केशीश्रमण आचार्य को मालूम हुई कि गौतम यहाँ आ रहा है तब अपने शिष्यों को कहा कि हम गौतम के सामने आ रहे हैं तुम गौतम के लिए पाट या पट पर पास का आसन लगा के तैयार रखो। बस केशीश्रमण अपने कई शिष्यों को साथ ले कर गौतम के सामने गये। उधर गौतम आ ही रहा था रास्ते में दोनों का मिलाप हुआ और परस्पर मिलने से दोनों दल में धर्मस्नेह की तरंगें उछलने लगीं। और वे सब चल कर तिन्दुक उद्यान में आये जिस समय पूर्व स्थापित आसनों पर केशीश्रमण और गौतम विराजमान हुए उस समय प्रतीत होता था मानो सूर्य और चन्द्र ही उद्यान को शोभायमान कर रहे थे।

इधर इस बात की खबर स्वमत और परमत के लोगों को हुई कि आज दोनों आचार्य तिन्दुकवन में एकत्र हुए हैं। इनके आपस में संवाद होगा जिसमें किसका पक्ष सबल रहेगा चल कर देखें आज कुतूहल प्रसङ्ग यही और इससे १ उद्यान खचाखच भर गया। केवल मनुष्य ही नहीं पर आकाश में गमन करने वाले देव और विद्याधर भी इस संवाद सुनने को ललचा गये। जब उनको भूमि में बैठने को स्थान नहीं मिला तो वे आकाश में ही स्थिर रह, अब सब लोगों के इच्छा यही हो रही थी कि इनका संवाद कब प्रारम्भ हो।

केशीश्रमण भगवान मधुर स्वर से बोले कि हे महाभाग ! अगर आपकी इच्छा हो तो मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ ?

गौतमस्वामि विनय पूर्वक बोले कि— हे भगवान ! मेरे पर अनुग्रह करावें अर्थात् आपकी इच्छा हो वह प्रश्न पूछने की कृपा करें।

(१) प्रश्न—केशीश्रमण भगवान ने प्रश्न किया कि हे गौतम ! पार्श्वप्रभु और वीर भगवान दोनों ने एक ही मोक्ष के लिए यह धर्म रास्ता (दीक्षा) बतलाते हुए पार्श्वप्रभु ने चार महाव्रतरूपी धर्म और वीर भगवान ने पांच महाव्रत रूपी धर्म बतलाया है तो क्या इसमें आपको आश्चर्य नहीं होता है ?

उ०—गौतम स्वामी नम्रतापूर्वक बोले कि हे भगवान पहले तीर्थंकर श्रीआदिनाथ भगवान के मुनि सरल (माया रहित) थे किन्तु पहले न देखने से मुनियों का आचार व्यवहार का समझना ही दुष्कर था परन्तु प्रज्ञावान होने से समझने के बाद आचार में प्रवृत्ति करना बहुत ही सहज था और चरम तीर्थंकर वीर भगवान के मुनि प्रथम तो वक्र होने से समझना ही दुष्कर और वक्र होने से समझे हुए को भी पालन करना अति दुष्कर है इसीलिए इन्हीं दोनों भगवान के मुनियों के लिए पांच महाव्रत रूपी धर्म कहा है और शेष २२ तीर्थंकरों के मुनि प्रज्ञावान होने से अच्छी तरह से समझ भी सकते थे और सरल होने से परिपूर्ण आचार को पालन भी कर सकते थे अतः इन्हीं २२ भगवान के मुनियों के लिये चार महाव्रत रूपी धर्म कहा

( ५६ ) हस्तिनापुर के राजा शिव ने पहिले तापसी दीक्षा ली थी और इसका मत था कि संसार भर में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, परन्तु जब भगवान महावीर का समागम होने से आपको अपनी मान्यता मिथ्या मालूम हुई तो भगवानवीर के सिद्धान्तको स्वीकार कर जैनदीक्षा ग्रहण कर ली। "भगवती सूत्र"

( ५७ ) राजा वीरॉंग ( ५८ ) राजा वीरजस इन दोनों नृपतियों ने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्षपद को प्राप्त किया। "ठाणायाग सूत्र ठा०८"

( ५९ ) पावापुरी के राजा हस्तपाल जैनधर्म के कट्टर प्रचारक थे जिन्होंने भगवान महावीर को आग्रहपूर्वक विनती कर अन्तिम चातुर्मास अपने यहाँ कराया और उसी चातुर्मास में भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। "कल्पसूत्र"

इनके अलावा भी कई राजा महाराजा भगवान महावीर प्रभु के शान्तिमय झंडे के नीचे अपना आत्म-कल्याण करते थे। मैंने अपने उद्देश्यानुसार महावीर प्रभु का जीवन संक्षेप में लिखा है।

अन्त में वि. सं पूर्व ४७० वर्ष भगवान महावीर ने चरम चतुर्मास पावापुरीनगरी के महाराज हस्तपाल की रथशाला में किया और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में भगवान ने वेदनीय नाम गोत्र और आयुष्यकर्म का क्षय कर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात इन्द्रादिक असंख्य देव और चतुर्विध श्रीसंघ ने शोक संयुक्त प्रभु का निर्वाण कल्याणक किया उसी रात्रि के अन्त में गुरु गौतम स्वामीको केवल ज्ञान हुआ।

यह बात तो मैं पहिले ही लिख आया हूँ कि भगवान् के समय पार्श्वनाथ प्रभु के सन्तानिये केशी-श्रमण के आज्ञावृति हजारों की संख्या में साधु धर्मप्रचार कर रहे थे। यज्ञवादियों के चंगुल में फसे हुए कई राजा महाराजाओं को सदुपदेश देकर जैनधर्म के परमोपासक बनाये थे।

जब भगवान् महावीर ने चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना कर प्रचलित नियमों में समयानुसार रद्दो-बदल कर कई नये नियमों का निर्माण किया था, उस समय भी पार्श्व संतानिये मौजूद थे तथा ज्यों ज्यों उनकी महावीर से भेंट होती गई त्यों त्यों वे वीरशासन स्वीकार करते गये।

जैसे पार्श्वनाथ संतानिये केशीकुमार जिसका वर्णन श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के २३ वाँ अध्ययन में आता है जिसको मैं संक्षेप से यहाँ लिख देता हूँ। जो पाठकों के लिये बड़ा लाभदायक है।

एक समय का जिक्र है प्रभु पार्श्वनाथ के संतानियों में से मुनि केशीश्रमण भूमण्डल पर विहार करते हुए अपने ५०० मुनियों के परिवार से सावत्थी नगरी के तन्दुकवन उद्यान में पधार गये। आप तप संयम की सम्यक् आराधना कर रहे थे जिससे आपको अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था, अत. आप मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान एवं तीनज्ञानधारक थे।

उसी समय भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गणधर इन्द्रभूति जो मतिज्ञान श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनपर्यवज्ञान एव चार ज्ञान के ज्ञाता तथा चौदहपूर्वधर थे वे भी अपने ५०० शिष्यों के साथ जगत उद्धार करते हुए क्रमश. सावत्थी नगरी के कोष्ठक नाम के उद्यान में पधार गये।

इस बात की शहर में खूब चर्चा हुई। भक्त लोगों ने दोनों मुनियों का अच्छा स्वागत किया परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये चार महाव्रतरूपी धर्मदेशना तथा भगवान महावीर के सन्ता-निये पाच महाव्रत रूपी धर्मदेशना दे रहे थे तथा पार्श्वनाथ संतानियों के पाँच वर्णों के वस्त्र रखने का विधान

है, इन्हीं को अपने कब्जे में कर लेने से 'मन' के चार उमराव क्रोध, मान, माया, और लोभ यह मेरे आज्ञाकारी बन गये हैं। जब इन्हीं पांचों को आज्ञाकारी बना लिए तब ही से पांच पंच 'इन्द्रियाँ' हैं उन्हों का सहज में पराजय कर लिया, बस इन्हीं १० योद्धों को जीत लेने से सर्व दुश्मन अपने आदेश में हो गये हैं अतः मैं दुश्मनों के अन्दर निर्भय विचरता हूँ।

यह उत्तर श्रवण करने पर देवता विद्याधर और मनुष्यों को बड़ा ही आनन्द हुआ और भगवान् केशीश्रमण बोले कि महाभाग्य आपने मेरे प्रश्न का अच्छा युक्तिपूर्वक उत्तर दिया परन्तु मुझे एक और भी प्रश्न करना है ?

*गौतम—हे महाभाग्य आप अनुग्रह कर अवश्य फरमावें।*

( ४ ) प्रश्न—हे गौतम ! इस अपारपार संसार के अन्दर बहुत से जीव निबड़बन्धनरूपी पाश में बन्धे हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं तो आप इस पाश से मुक्त होके वायु की माफिक अप्रतिबन्ध कैसे विहार करते हो ?

ग०—हे भगवान ! यह पाश बड़ा भारी है परन्तु मैं एक तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र के प्रभाव से इस पाश को छेद-भेद कर मुक्त होकर अप्रतिबन्ध विहार करता हूँ।

सूर्य—हे गौतम ! आपके कौनसी पाश है और कौनसे शस्त्र से छेदी है ?

गण—हे महाभाग्य ! इस घोर संसार के अन्दर रागद्वेष पुत्र कलत्र धनधान्य रूपी जबरदस्त पाश है इन्हीं को जैन शासन के न्याय और सदागम शास्त्रों की शुद्ध श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शनरूपी तीक्ष्ण धारावाले शस्त्र से उस पाश को छेदन-भेदन कर मुक्त होकर आनन्द में विचर रहा हूँ। अर्थात् राग द्वेष मोहरूपी पाश को तोड़ने के लिए सदागम का श्रवण और सम्यग् ज्ञानात्मक सम्यग्दर्शनरूपी शस्त्र है इन्हीं के जरिये जीव पाश से मुक्त हो सकता है।

हे गौतम ! आप तो बड़े ही महाभाग हो और मेरे प्रश्न का उत्तर अच्छी युक्ति से कहके मेरे संशय को ठीक समाधान किया परन्तु एक और भी प्रश्न पूछता हूँ।

गौतम—हे भगवान् मेरे पर अनुग्रह करावें ।

( ५ ) प्रश्न—हे भाग्यशाली ! जीवों के हृदय में एक विषवेलि होती है जिसका फल विषमय होता है। उन्हीं फलों का आस्वादन करते हुए जगत् जीव भयंकर दुःख के भाजन हो जाते हैं तो हे गौतम आपने विषवेलि को मूल से कैसे उच्छेद न दूर करदी और अमृतपान करते हो ?

ग०—हे भगवान् ! मैंने उसी विषवेलि को एक तीक्ष्ण कुठार से जड़ामूल से उच्छेद दी, अब उन विषमय फल का भय न रखता हुआ जैन शासन में न्यायपूर्वक मार्ग का अवलम्बन कर अमृतपान करता हुआ विचरता हूँ।

सूर्य—हे गौतम ! आपके कौनसी विषवेलि है और कौन से हथियार से उसको उच्छेद कर दूर करी है ?

गणा०—हे केशीश्रमण ! इस घोर संसार के अन्दर रहे हुये अज्ञानी जीवों के हृदय में तृष्णारूपी विषवेलि है, वह वेलि भवभ्रमणरूपी विषमय फल देने वाली है परन्तु मैं संतोषरूपी तीक्ष्ण धारवाला कुठार से जड़ा-मूल से नष्ट करके शासन के न्याय माफिक निर्भय होके विचरता हूँ।

है। पाँच महाव्रत कहने से स्त्री चोथा व्रत में और परिग्रह धन धान्यादि पांचवाँ व्रत में गिना है परन्तु प्रज्ञा-वान समझ सकते हैं कि जब किसी पदार्थ पर ममत्त्व भाव नहीं रखना तो फिर स्त्रिया तो ममत्व भाव का पर ही हैं अत. स्त्री और परिग्रह को एक ही व्रत में माना गया है। हे भगवान इसमें किंचित भी आश्चर्य की बात नहीं है दोनों भगवानों का ध्येय तो एक ही है। यह उत्तर श्रवण कर के परिषदा को बड़ा ही सतोष हुआ।

यह उत्तर श्रवण करके भगवान केशीश्रमण बोले कि हे गौतम इस शका का समाधान आपने अच्छा किया परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है।

गौतम स्वामी ने कहा कि भगवान आप अवश्य कृपा करावें।

(२) प्रश्न—हे गौतम श्री पार्श्वप्रभु ने साधुओं के लिये 'सचेल' वस्त्र सहित रहना वह भी पांचों वर्ण के स्वल्प या बहुमूल्य अपरिमित मर्यादावाले वस्त्र रखना कहा है और भगवान वीरप्रभु ने 'अचेल' वस्त्र रहित अर्थात् जीर्ण वस्त्र वह भी श्वेतवर्ण और स्वल्प मूल्यवाला रखना कहा है इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे भगवान मुनियों को वस्त्रादि धर्मोपकरण रखने की आज्ञा फरमाई है इसमें प्रथम तो साधुलिंग है वह बहुत से जीवों का विश्वास का भाजन है और लिंग होने से भव्यात्मा धर्म पर श्रद्धा रखते हुये स्वात्मकल्याण कर सकते हैं दूसरा मुनियों की चित्तवृत्ति कभी अस्थिर भी हो जावे तो भी ख्याल रहेगा कि मैं साधु हूँ, दीक्षित हूँ, वेश में यह अतिचारादि मुझे सेवन करने योग्य नहीं हैं अर्थात अतिचारादि लगाते हुये चिन्ह देखके रुक जावेगा। अब यह लिंग एवं धर्मोपकरण संयम के साधक हैं इसमें पार्श्व प्रभु के सतानिये सरल और प्रज्ञावन्त होने से उन्हीं को किसी भी पदार्थ पर ममत्व भाव नहीं है और वीर भगवान के मुनि जड़ और वक्र होने से उन्हीं के लिये उक्त कायदा रखा गया है, परन्तु दोनों का ध्येय एक ही है धर्मोपकरण मोक्ष साधन करने में सहायक जान के ही रखने की आज्ञा दी है।

केशीश्रमण—हे गौतम। आपने इस शंका का अच्छा समाधान किया परन्तु और मुझे प्रश्न करना है। इस प्रकार दोनों के धर्म स्नेह युक्त वचनों को श्रवण करके परिषदा बड़ी ही आनन्द को प्राप्त हुई।

गौतम—हे भगवान आप कृपा करके फरमाइये।

(३) प्र०-हे गौतम। इस ससार भर में हजारों दुश्मन हैं उन्हीं दुश्मनों (वैरी) के अन्दर आप निवास किस प्रकार से करते हैं और वह दुश्मन आपके सन्मुख युद्ध करने को बाबर आते हैं और हमला भी करते हैं उन दुश्मनों को कैसे पराजय करते हो ?

उ०—हे भगवान जो दुश्मन हैं वह सर्व मेरे जाने हुये हैं। इन्हीं दुश्मनों का एक नायक है उसको पहिले से ही मैंने अपने कब्जे में कर रखा है और उसी नायक के चार उमराव हैं वह तो हमेश के लिये मेरे दास ही बन रहे हैं और नायक के राज्य में पाँच पच हैं। वह मेरे आज्ञाकारी ही हैं। इन्हीं दुश्मनों में यह १ + ४ + ५=१० मुख्य योद्धा हैं। इन्हीं को अपने कब्जेमें कर लेने से पीछे विचारे दूसरे दुश्मनोंकी तो सामर्थ ही क्या है ? अत मैं इन्हीं दुश्मनों का पराजय करता हुआ सुखपूर्वक विचरता हूँ।

तर्क—हे गौतम। आपके दुश्मन एक नायक, चार उमराव, पाच पच कौन हैं और किसको पराजय किया है ?

समाधान हे भगवान्। दुश्मनों का नायक एक 'मन' है, यह आत्मा के निज गुण को हरण करता

हे गौतम ! यह उत्तर आपने ठीक युक्ति द्वारा प्रकाश किया परन्तु एक और भी प्रश्न मुझे पूछना है।

हे समग्रगुणालंकृत भगवान फरमाइये ?

(९) प्रश्न—हे गौतम ! इस घोर संसार के अन्दर महापानी के वेग के अन्दर बहुत से पामर प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो इनके शरणदायक किसी द्वीप को आप जानते हो ?

उ०—हे भगवान ! इनको पानी के महावेग से बचाने के लिये एक बड़ा भारी विस्तारवाला और योग्य महर्षि सुंदराकार महाद्वीप है। वहां पर पानी का वेग कभी नहीं आता है, उसी द्वीप का आलम्बन करते हुए जीवों को पानी का वेग सम्बन्धी किसी प्रकार का भय नहीं होता है ?

प्रश्न—हे गौतम ! वह कौनसा द्वीप और कौनसा पानी है ?

समा —हे भगवान ! इस रौद्र संसारार्णव में जन्म जरामृत्यु रोग शोक भय आदि पानीका महावेग है इसमें अनेक प्राणी शारीरिक मानसिक दुःख का अनुभव कर रहे हैं। जिसमें एक सुंदर विशाल अनेक गुणागार धर्म नाम का द्वीप है। अगर पानी के वेग के दुःख को देखते हुये भी इस धर्म द्वीप का अवलम्बन कर ले तो इन दुःखो से बच सकता है। अर्थात् इस घोर संसार के अन्दर जन्म मृत्यु आदि दुःखी प्राणियों को सुखी बनाने के लिये एक धर्म ही का अवलम्बन है और धर्म ही से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है।

हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है। यह उत्तर आपने ठीक दिया परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है ?

हे कृपासिंधु ! आप अवश्य कृपा करावें।

(१० ) प्रश्न—हे गौतम ! महासमुद्र के अन्दर पानी का वेग (जल) बड़े ही जोर शोर से चलता है उसके अन्दर बहुत से प्राणी डूब कर मृत्यु-शरण हो जाते हैं और उसी समुद्र के अन्दर निवास करते हुवे, आप नौकारूढ़ हो कैसे समुद्र को तर रहे हो ?

उ —हे भगवान ! उस समुद्र के अन्दर नाव दो प्रकार की है (१) छिद्र सहित कि जिन्हों के अंदर बैठने से लोग समुद्र में डूब मरते हैं ( २ ) छिद्र-रहित कि जिन्हों के अन्दर बैठ के आनन्द के साथ समुद्र को तर सकते हैं।

प्रश्न—हे गौतम ! कौनसा समुद्र और कौनसी नाव के नाम है ?

समा —हे भगवान ! संसाररूपी महासमुद्र है। जिसमें औदारिक शरीररूपी नाव है परन्तु जिस नाव में आस्रवद्वार रूपी छिद्र है अर्थात् जिस जीव ने आस्रवद्वार सहित शरीर धारण किया है वह तो संसार समुद्र में डूब जाता है और जिसने आस्रवद्वार रोक कर शरीर रूपी नौकारूढ़ हुआ है। वह संसार समुद्र से तर के पार हो जाता है। हे भगवान ! मैं छेदरहित नौकारूढ़ होता हुआ ही समुद्र तर रहा हूँ।

हे गौतम ! यह उत्तर तो आपने ठीक युक्तिपूर्ण दिया परन्तु मुझे एक प्रश्न और भी पूछना है ?

हे स्वामिन् ! आप कृपा कर फरमावें।

( ११ ) प्र —हे गौतम ! इस भयंकर संसार के अन्दर घोरातिघोर अन्धकार फैल रहा है जिसके अन्दर बहुत से प्राणी इधर के उधर भटकते हुए भ्रमण कर रहे हैं, उन्हों को रास्ता तक भी नहीं मिलता है। तो हे गौतम ! इस अन्धकार में उद्योत कौन करेगा ? क्या यह बात आप जानते हो ?

उ०—हे भगवान ! इस घोर अन्धकार के अन्दर उद्योत करने वाला एक सूर्य है उन्हीं सूर्य के

(६) प्रश्न—हे गौतम ! इस रौद्र संसार के अन्दर प्राणियों के हृदय और रोमरोम के अन्दर भयंकर जाज्वल्यमान अग्नि प्रज्वलित होती हुई प्राणियों को मूल से जला देती है, तो हे गौतम ! आप इस ज्वलंत अग्निको शान्त करते निर्भय होकर कैसे विचरते हैं ?

उ०—हे भगवान् ! इस कुपित अग्नि पर मैं महामेघ की धारा के जल को छांट कर बिलकुल शान्त करके उस अग्नि से निर्भय होकर विचरता हूँ।

तर्क—हे गौतम! आपके कौन सी अग्नि है और कौनसा जल है ?

समा०—हे भगवान्! कषायरूपी अग्नि अज्ञानी प्राणियों को जला रही है परन्तु तीर्थंकररूपी महामेघ के अन्दर से सदागम रूपी मूसलधारा जल से सिंचन करके बिलकुल शान्त करता हुआ मैं निर्भय विचरता हूँ।

(७) प्रश्न-हे गौतम! एक महाभयंकर-रौद्र-दुष्ट दिशाविदशा में उन्मार्ग चलने वाला अश्व जगत के प्राणियों को स्वइच्छित स्थान पर ले जाता है तो हे गौतम! आप भी ऐसे अश्वारूढ हैं फिर भी आपको वह उन्मार्ग नहीं ले जाता हुआ वह अश्व तुमारी मरजी माफिक चलता है इसका क्या कारण है ?

उ०—हे भगवान्! उस अश्वका स्वभाव तो रौद्र भयंकर और दुष्ट ही है और अज्ञानी प्राणियों को उन्मार्ग लेजा के बड़ा ही दु खी बना देता है परन्तु मैंने उस अश्व के मुंह में एक जबरजस्त लगाम और गले में एक बड़ा रस्सा डाल दिया है कि जिन्हों से सिवाय मेरी इच्छा के किसी भी उन्मार्ग में बिलकुल जा नहीं सकता है अर्थात् मेरी इच्छानुसार ही चलता है।

तर्क—हे गौतम! आपके अश्व कौन और लगाम तथा रस्सा कौन सा है ?

समा०—हे भगवान्! इस लोक में बड़ा साहसिक रौद्र उन्मार्ग चलने वाला 'मन' रूपी दुष्टअश्व है वह अज्ञानी जीवों को स्वइच्छा घुमाये करता है परन्तु मैं धर्म शिक्षणरूपी लगाम और शुभ ध्यानरूपी रस्सा से खेंच के अपने कब्जे में कर लिया है कि अब किसी प्रकार के उन्मार्गादि का भय नहीं रखता हुवा मैं आनन्द में विचरता हूँ।

केशीश्रमण! हे प्रज्ञावान, गौतम! आपने अच्छी युक्ति से यह उत्तर दिया है परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है ? परिषदा को बड़ा ही आनन्द होता है।

गौतम–हे दयालु कृपा कर फरमावें।

(८) प्रश्न-हे गौतम इस लोक के अन्दर अनेक कुपन्थ ( खराब मार्ग ) हैं और बहुत से जीव अच्छे रास्ते का त्याग कर कुपन्थ को स्वीकार करते हैं। उन्हीं से अनेक शारीरिक मानसिक तकलीफें उठाते हैं तो हे गौतम आप इन्हीं कुपथ से बच के सन्मार्ग पर किस तरह चलते हो ?

उ०–हे भगवान्! इस लोक के अन्दर जितने सन्मार्ग और उन्मार्ग हैं वह सर्व मेरे जाने हुवे हैं अर्थात् सुपन्थ कुपन्थको मैं ठीक ठीक जानता हूँ इसी वास्ते कुपन्थ का त्याग कर सुपन्थ पर आनन्द से चलता हूँ।

तर्क—हे गौतम! इस लोक में कौनसा अच्छा और कौनसा बुरा रास्ता है ?

समा०—हे महाभाग्य! इस लोक में अनेक मत-मतांतर हैं जो स्वच्छंद निजमतिकल्पना इन्द्रियपोषक स्वार्थवृत्ति से तत्व के अज्ञात लोगों ने चलाये हैं अर्थात ३६३ पाखण्डियों के चलाये हुये रस्तों को कुपन्थ कहते हैं और सर्वज्ञ भगवान् ने निस्पृहता से जगतोद्धार के लिये तत्त्वज्ञानमय रस्ता बतलाया है वह सुपंथ है अत मैं कुपन्थ का त्याग करता हुआ सुंदर सद्‌बोधदाता सुपन्थ पर ही चलता हुआ आत्मरमणता कर रहा हूँ।

कई ऐसे भी पार्श्वनाथ के सन्तानिये थे कि अपने जीवन पर्यन्त वे पार्श्वनाथ के सन्तानिये ही रहे थे जैसे आनन्दस्थविरादि ५०० मुनि तुंगिया नगरी में पधारे थे जिन्हों को भगवान महावीर ने तथा गणधर गौतमस्वामी ने भी पार्श्वनाथ संतानिये कहा है तथा उन्होंने तुंगिया नगरी की श्राद्ध परिषदा में चार महाव्रतरूपी धर्मदेशना दी थी।

दूसरे प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने वाले केशीश्रमणाचार्य थे, उन्होंने भी चार महाव्रतरूपी देशना दी तथा उन्हों की मोक्ष भी पार्श्वनाथ संतानियों के रहते हुवे ही हुई थी और इन केशीश्रमणाचार्य का विस्तृत वर्णन रायपसेणी सूत्र में है और वह है भी बहुत उपयोगी जिसको पाठकों के लाभार्थ यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है कि भगवान केशीश्रमणाचार्य ने नास्तिक शिरोमणि कठोर हृदयी एवं क्रूर प्रकृति वाले राजा प्रदेशी को किस हेतु युक्ति एवं अपने ज्ञान द्वारा प्रतिबोध दे कर कट्टर आस्तिक एवं जैनी बनाया था जिसको मैं संक्षिप्त से यहाँ बतला देता हूँ।

एक समय भगवान महावीर प्रभु आमलकप्पा नगरी के उद्यान में पधारे वहाँ के राजा प्रजा ने

---

१—तप्पभिइं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वण्णु सव्वदरिसी, तए णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं एवं जहा कालासवेसियपुत्तो तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥

*भगवतीसूत्र शतक ९ उद्देश ३२

*—तेणं कालेणं २ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना णाणसंपन्ना दंसणसंपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना लाघवसंपन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियनिद्दा जितिंदिया जियपरीसहा जीवियासमरणभय विप्पमुक्का जाव कुत्तियावणभूया बहुस्सुया बहुपरिवारा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति २ अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति ॥ × × तएणं ते थेरा भगवंतो तीसे य महति महालियाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेंति।

भगवतीसूत्र शतक २ उद्देश ५ सू १११

†—एवं खलु देवा तुंगियाए नगरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजमेणं भंते! किं फले? तवे किंफले?

भगवती सूत्र शतक २ उद्देश ५ सू १४

‡—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसीनाम कुमार समणे जातिसंपन्ने × × तहेव केसीकुमार समणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महति महालियाए महच्च परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ

रायपसेणी सूत्र सू २१६-२२१

प्रकाश होने से अन्धकार का नाश हो जायगा है तब उधर इधर भ्रमण करने वालों को ठीक रास्ता मालूम होगा।

तर्क—हे गौतम ! अन्धकार कौन सा और उद्योत करने वाला सूर्य कौन सा है ?

समा०—हे भगवान ! इस आरापार लोक के अन्दर मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकार है जिसमें पामर प्राणी अन्धे होकर इधर उधर भ्रमण करते हैं परन्तु जब तीर्थंकररूपी सूर्य केवल ज्ञान रूपी प्रकाश में भव्यात्माओं को सम्यग्दर्शन रूप अच्छा सुन्दर रास्ता दिखला देगा तब उन्हीं रास्ते से जीव सीधा स्वस्थान पहुँच जावेगा। यह उत्तर सुन के देवादि परिषदा प्रसन्नचित्त हो रही थी।

हे गौतम ! यह आपने ठीक कहा परन्तु एक और भी प्रश्न मुझे करना है।

गौतम—फरमावो भगवान।

( १२ ) प्रश्न—हे गौतम ! इस अनादि प्रवाह रूप संसार के अन्दर बहुत स प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं उन्हों के लिए आप कौन सा स्थान मानते हो कि जहां पर पहुँच जाने से फिर जन्म मरण ज्वर रोग शोक की वेदना बिल्कुल ही न होने पावेगी।

उ०—हे भगवान् ! इस लोक में एक ऐसा भी स्थान है कि जहां पर पहुँच जाने के बाद किसी प्रकार का दुःख नहीं होता है।

तर्क—हे गौतम ! ऐसा कौनसा स्थान है ?

समा—हे भगवान् ! लोक के अग्रभाग पर जो निवृत्तिपुर ( मोक्ष ) नाम का स्थान है वहां पर सिद्धावस्था में पहुँच जाने पर किसी प्रकार का जन्म ज्वर मृत्यु आदि दुःख नहीं हैं अर्थात् कर्म रहित होकर वहां जाते हैं अव अव्याबाद सुखों में विराजमान हो जाते हैं।

केशीस्वामी—हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है और अच्छी युक्तियों द्वारा आपने इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया है। परिषदा भी यह प्रश्न सुन के शांत चित्त और वैरागरस का पान करती हुई जिनशासन की जयध्वनि के शब्द उच्चारण कर विसर्जन हुई।

इन प्रश्नोत्तरों के अन्त में केशीश्रमण ने अपने शिष्यों के साथ जो पहले चार महाव्रत थे उसको भगवान गौतम स्वामी के पास पांचमहाव्रत स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भगवान महावीर के शासन की आराधना करते हुए केशीश्रमण परमपद[१] को प्राप्त हो गये।

इसी प्रकार मुनि कालिसीवेसी[२] आदि ने भी महावीर शासन को स्वीकार कर के मोक्ष प्राप्त की तथा मुनि गगियाजी[३] वगैरह और भी बहुत से साधुओं ने भगवान महावीर के शासन का आलम्बन कर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

---

१—एवंतु संसए छिन्ने केसी घोर पराक्कमे। अभिवंदित्ता सिरसा गोयमंतु महाजसं ॥
पंच महव्वय धम्मं पडिवज्जइ भावओ। पुरिमस्स पच्छिमंमि मग्गे तत्थ सुहावहे ॥

उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन २३

२—तएणंसे कालासवेसियपुते अणगारे थेरे भगवंते वदइनमंसई वदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइया सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरई

"भगवतीसूत्र शतक १ उ० ६ पृष्ट ६६"

की परिभाषा से समझ गया कि आचार्य श्री अवश्य हमारे नगर में पधारेंगे। चित्र प्रधान गुरु महाराज को वंदन कर के वहाँ से रवाना हो गया। क्रमशः वह श्वेताम्बिका नगरी में पहुँचा तो सबसे पहिले मुनियों को ठहरने के लिये वनपालक को कह दिया कि यदि कोई जैनश्रमण यहाँ आ जावें तो तुम उनकी अच्छी खातिर कर के इस बगीचे में ठहरा देना तथा पाट पाटला व संथारा के लिये घास वगैरह की व्यवस्था करना। तत्पश्चात आकर हमको खबर देना। बाद प्रधान अपने मकान पर गया और राजा को सब हाल सुना दिया जो कि सावत्थी नगरी में कर के आया था।

प्रधान चित्र ने नगरी के अच्छे २ मनुष्य थे उनको भी यह शुभ समाचार सुना दिये कि यहाँ केशी-श्रमणाचार्य पधारने वाले हैं। इधर केशीश्रमण अपने शिष्य समुदाय के साथ क्रमशः विहार करते हुये श्वे-ताम्बिका पधार गये। वनपालक को खबर मिलते ही बड़े ही सत्कार के साथ उन्हें उद्यान में ठहराया तथा पाट पाटले व घास वगैरह की व्यवस्था करदी। बाद में नगरी में जा कर चित्र प्रधान को शुभ संदेश दे दिया। चित्र ने बहुत खुश हो कर वनपालक को खूब इनाम दिया। यह खबर सब शहर में पहुँच गई और विचारे बहुत से लोग मुनियों को वंदन करने के लिए आये जिन्हों को केशीश्रमण ने धर्मलाभपूर्वक धर्म उपदेश सुनाया जिसको सुन कर लोगों ने जैनधर्म पर श्रद्धा कर के आचार्य की भूरि २ प्रशंसा की।

चित्रप्रधान ने एक समय केशीश्रमण से प्रार्थना की कि गुरु महाराज आप प्रदेशी राजा को धर्मो-पदेश दिरावें। यदि यह राजा सुधर जायगा तो बहुत जीवों का भला होगा इत्यादि।

इस पर आचार्य श्री ने कहा हे चित्र ! धर्म सुनने के अयोग्य जीवों के चार लक्षण हैं १—साधु को आता सुन कर दो चार मील सामने न जावे २—मुनि उद्यान में आ गये हों फिर भी दर्शन करने को न जावे ३—मुनि मकान पर आ गये हों तब भी वन्दन न करे। ४—और रास्ता में मुनि मिल जावें फिर भी वन्दन न करे। भला ऐसे मनुष्यों को कैसे धर्म सुनाया जावे ?

चित्र ने कहा कि आपका कहना सत्य है परन्तु मैं एक उपाय से राजा प्रदेशी को आपके पास ले आऊं, फिर आप यथायोग्य धर्म सुनाइये ? बहुत सुन्दर

राजा प्रदेशी के कम्बोज देश से चार अच्छे घोड़े भेंट में आये थे। एक दिन चित्र ने राजा प्रदेशी को कहा और राजा ने स्वीकृति दे दी अतः प्रधान ने भेंट आये हुये चार घोड़ों के रथ को तैयार करवा कर राजा प्रदेशी को उस रथ में बैठा कर आप स्वयं सारथी बन कर रथ को जंगल में लेगया और इधर उधर खूब घुमाया जिससे राजा प्रदेशी कुछ थी घबराने लगा। चित्र ने कहा कि ये समीप उद्यान नजीक है, यदि आपकी आज्ञा हो तो वहाँ चले चलें वहाँ सब तरह का आराम है। बस, रथ को लेकर उद्यान में चले गये और एक कमरे में ठहर गये। पास में ही केशीश्रमण का व्याख्यान हो रहा था और हजारों मनुष्य सुन रहे थे जिसको देख कर राजा प्रदेशी ने चित्र को कहा रे चित्र ! यह जड़ मूढ़ कौन है और इनके जड़ मूढ़ इसका व्याख्यान सुनने वाले कौन हैं ? इस पर चित्र ने कहा कि यह जैन श्रमण हैं अपने धर्म का उप देश कर रहे हैं इनकी मान्यता जीव और शरीर को अलग अलग मानने की है। ये शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। पृच्छक के प्रश्नों का उत्तर अच्छी युक्ति से देते हैं। यदि आपकी मरजी हो तो आप भी पधारिये। इस पर राजा प्रदेशी प्रधान को साथ लेकर केशीश्रमण के पास गये परन्तु प्रदेशी ने मुनि को वंदन नहीं किया, फिर भी पूछा कि आप जीव और शरीर को अलग २ मानते हो क्या ?

भगवान का अभिवंदन किया और भगवान ने उनको धर्मदेशना सुनाई उस समय पहिले देवलोक में रहने वाला सूरयाभ नाम के देव ने अपने ऋद्धि एवं परिवार के साथ आकर भगवान का वंदन किया। भगवान ने उसको भी धर्म उपदेश दिया जिसको श्रवण कर के सूरयाभ ने कहा कि हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, अत' मेरी भक्ति को जानते हो परन्तु यह गोतमादिक मुनि हैं जिनको मैं भक्तिपूर्वक ३२ प्रकार का नाटक कर के बतलाऊंगा ऐसे दो तीन बार कहा उस पर भी भगवान ने मौन ही रक्खा 'मौनं सम्मति लक्षणं' बस, सूरयाभ ने ३२ प्रकार का नाटक किया, बाद भगवान को वन्दन कर के स्वर्ग चला गया।

गोतमने सूरयाभ देव का पूर्वभव पूछा जिसके उत्तरमें भगवानने फरमाया कि इस भारतके वक्षस्थल पर केकयी जिनपद देश की श्वेताम्बिका नाम की नगरी में राजा प्रदेशी राज करता था परन्तु वह था नास्तिक, जीव और शरीर को एक ही मानता था अत वह परभव और पुन्य पाप के फल को भी नहीं मानता था। फिर वह पाप करने में उठा ही क्यों रक्खे ? अत' वह राजा अधर्म की ध्वजा ही कहलाता था। राजा प्रदेशी के सूरिकान्ता परमवल्लभ एवं प्रियकारिणी रानी थी और सूरिकान्त नाम का कुंवर था वह राजकार्य्य चलाने में बड़ा ही कुशल था। राजा प्रदेशी के चित्त नाम का प्रधान था वह भी चार बुद्धि निपुण एव बड़ा ही विचारज्ञ, प्रत्येक राजकार्य में सलाह देने वाला मुत्सद्दी था। राजा के अधर्म कार्य को वह सहन नहीं कर सकता था और उसको अच्छे रास्ते पर लाने की कोशिश किया करता था।

एक समय राजा प्रदेशी को सावत्थी नगरी के राजा जसतु के साथ ऐसा कार्य उपस्थित हुआ कि उसने अपने प्रधान चित्त को सावत्थी भेजा। प्रधान चित्त सावत्थी जाकर अपने राजा की भेंट वहां के राजा की सेवा में रख जिस काम के लिये आया था उसको राजा से कह कर उस कार्य में लग गया।

चित्त प्रधान ने सुना कि यहां शहर के बाहर कोष्ठक नाम के उद्यान में पार्श्वनाथ के सन्तानिये केशीश्रमण आये हुए हैं अत' वहाँ से चल कर केशीश्रमण के पास आया और केशीश्रमण ने उस चित प्रधानादि को धर्म उपदेश सुनाया जिसको श्रवण कर के चित प्रधान बहुत खुश हुआ और वह गृहस्थ धर्म पालन करने योग्य श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर आचार्य श्री का परम भक्त बन गया। इधर राजा जयशत्रु ने प्रधान का कार्य कर दिया और राजा प्रदेशी से प्रेम की वृद्धि के लिए बहुमूल्य भेंट तैयार कर प्रधान को दे दी। जब प्रधान ने अपने नगर को जाने की तयारी करी तो वह अपने गुरु महाराज को वंदन करने के लिये उद्यान में आया और वदन कर के प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप श्वेताम्बिका नगरी पधारें आपको बहुत लाभ होगा। एक बार नहीं परन्तु दूसरी तीसरी बार कहा इस पर आचार्य ने फरमाया कि चित्त तू खुद नीतिज्ञ है और समझ सकता है कि बगीचा कितना ही सुन्दर या फलफूल वाला हो, परन्तु उसमें एक शिकारी पारिधि बैठा हो तो क्या वनचर पशु या खेचर जानवर आ सकता है ? अत' तेरी श्वेताम्बिका कितनी ही अच्छी हो परन्तु प्रदेशी जैसा जहाँ पारिधि है वहाँ कैसे आया जाय। इस पर चित्त प्रधान ने कहा हे प्रभो ! श्वेताम्बिका नगरी में बहुत उदार चित वाले एव भद्रिक लोग हैं। आपके पधारने पर वह लोग आपकी सेवा भक्ति उपासना करेंगे और विविध प्रकार का असान पान खादिम सादिम प्रतिलाभ करेंगे। फिर आपको प्रदेशी राजा से क्या प्रयोजन है ? यदि आपका वहां पधारना हो जाय और प्रदेशी राजा को उपदेश देने पर वह सभल गया तो बहुत द्विपद चौपद प्राणियों को आराम पहुँचेगा इत्यादि। इस पर आचार्य महाराज ने फरमाया ठीक है चित्त, वर्तमान योग अर्थात अवसर देखा जावेगा। बस, चित्त साधुओं

सकता है ? नहीं । इसी प्रकार मनुष्यलोक के दुर्गंधित पुद्गलों की गन्ध भूमि से ४०० या ५०० योजन ऊंची जाती है । अतः उस दुर्गंध के मारे देवता मर्त्यलोक में नहीं आते हैं । जैसे रसपूजन को जाने वाले के लिए टट्टी का उदाहरण । और भी शास्त्रों में कहा है कि १—तत्काल के उत्पन्न हुए देवताओं के मनुष्यों का सम्बन्ध टूट जाता है ( विस्मृत ) और वहाँ देव देवियों से नया सम्बन्ध हो जाता है इसीसे देवता आ नहीं सकते हैं । २—तत्काल का उत्पन्न हुआ देवता देवता सम्बन्धी दिव्य मनोहर काम-भोगों में मूर्छित हो जाते हैं अतः यहाँ के सड़न पतन विध्वंसन काम भोगों का तिरस्कार करते हैं इसलिए आ नहीं सकते ३—तत्काल का उत्पन्न हुआ देवताओं के आज्ञाकारी देवदेवियाँ एक नाटक करते हैं उन्हीं को देखने में लग जाते हैं वह सुखपूर्वक देखने वालों का भास होता है कि मुहूर्त मात्र का नाटक है परन्तु वहाँ २०० वर्ष व्यतीत हो जाते हैं अतः देवता आ नहीं सकते हैं ४—तत्काल के उत्पन्न हुए देवता मनुष्य लोक में आना चाहें परन्तु मनुष्य लोक की दुर्गन्ध ४००-५०० योजन ऊर्ध्व जाती है । अतः दुर्गंध के मारे देवता यहां पर आ नहीं सकते हैं । अतः राजन् ! तू इस बात को स्वीकार करले कि जीव और शरीर अलग २ है और जीव के किए हुये शुभाशुभ कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं जो सुखी, दुखी मूर्ख, विद्वान, ब्रह्मचारी, व्यभिचारी, अपुत्री, बहुपुत्री, रोगी, निरोगी दुर्भागी, सुभागी, आदि आदि विचित्र प्रकार का संसार आपकी नजरों के सामने मौजूद है । यदि तज्जीव तच्छरीर माना जाए तो जीव के पुन्य पाप का फल ही नहीं । पुन्य पाप का फल नहीं तो परलोक नहीं, परन्तु यह ऊपर बतलाई संसार की विचित्रता से वह प्रत्यक्ष दिखाता है अतः आप को मानना चाहिए कि जीव अलग है और शरीर अलग है ।

(२) प्रश्न—हे प्रभो आपको युक्तियाँ बहुत आती हैं परन्तु मैं आपको पूछता हूँ कि मेरे पितामह (दादा) बड़े ही अधर्मी थे । प्राणियों के रक्त से हमेशा हाथ रंगे रहते थे, जीवों को मारने में उनको घृणा नहीं थी अतः आपके मतानुसार वह नरक में गये होंगे । यदि वह आकर मुझे नरक के समाचार कहें कि हे पौत्र ! मैं पाप करके नर्क में गया हूँ यदि तू भी पाप करेगा तो तेरे को भी नर्क में दुःख सहन करना पड़ेगा तो मैं आपका कहना स्वीकार कर सकता हूँ कि शरीर और जीव अलग २ हैं वरना मेरा माना हुआ कथन है कि जीव शरीर एक ही है ।

उ०—हे राजन् ! मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि आपकी प्यारी पटरानी सूरिकान्ता के साथ कोई व्यभिचारी बलात्कार करे तो क्या आप उसको दंड देंगे ? हाँ प्रभो उस दुष्ट को भाले पर चढ़ा कर मार दूंगा । मुनि ने कहा यदि वह व्यभिचारी आपसे कहे कि थोड़ी देर के लिये मुझे जाने दीजिये कि मैं अपनी स्त्री पुत्रादि कुटुम्बियों से मिल कर वापिस आ जाऊं तो क्या आप उसको छोड़ देंगे ? नहीं प्रभो ऐसे दुष्कृत्य करने वाले को क्षण भर भी नहीं छोड़ूं । हे राजन् ! इसी भांति नारकी के नैरिये अपने दुष्कृत्यों को भोगते हुये यहां नहीं आ सकते हैं और उसके कई कारण भी हैं जैसे १—तत्काल उत्पन्न हुआ नैरिया नारकी की महावेदना को सहन नहीं कर सका अतः यह आना चाहता है तो भी नहीं आ सकता अर्थात् जितनी मुद्दत कारागार की है उसको पूर्ण न भुगत ली हो वहाँ तक आ नहीं सकता है २—नैरिये परमाधामी देवताओं के आधीन रहते हैं अतः देवता उसको क्षण भर भी नहीं छोड़ता है ३—नारकी में भोगने योग्य कर्म नहीं भोग सके अतः वह आ नहीं सकता है ४—नारकी सम्बन्धी आयुष्य जहां तक सम्पूर्ण क्षय नहीं करता है वहां तक वहां से निकल नहीं सकता है । इन कारणों से नैरिये चाहते हुये भी नहीं आ सके तो

हे प्रदेशी ! जैसे कोई हसल के चुराने वाला व्यापारी मार्ग को छोड़कर उन्मार्ग जाता है इसी प्रकार राजन् ! तुम भी हमारा हसल ( वंदना ) चुरा कर प्रश्न करते हो । हे नरेश्वर ! क्या यहाँ आने के पहिले तुम्हारे ये विचार हुये थे कि यह जड़ मूढ कौन बैठा है, और इनकी सेवा करने वाले जड़मूढ़ कौन हैं, क्या यह सत्य है ?

राजा प्रदेशी को केशीश्रमण का वचन श्रवण कर बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने सोचा कि यह कोई ज्ञानी महात्मा है फिर भी उसने पूछा हे प्रभो ! आपने मेरे मन की बात को कैसे जान ली ?

केशीश्रमण—हे भूपति ! हमारे जैन शासन में पाच प्रकार के ज्ञान बतलाये हैं यथा —

१—मतिज्ञान—मगज से शक्तियों द्वारा ज्ञान होना ।

२—श्रुतिज्ञान—श्रवण करने से ज्ञान होना ।

३—अवधिज्ञान—मर्यादायुक्त क्षेत्र पदार्थों का देखना ।

४—मन पर्यवज्ञान—अढ़ाई द्वीप के संज्ञी जीवों के मन का भाव जानना ।

५—केवल ज्ञान—आत्म का सर्व विकास होने से सर्व पदार्थों को हस्तामलक की भाँति देखना और जानना ।

इन पाच ज्ञानों से एक केवल ज्ञान छोड़ कर शेष चार ज्ञान मुझे हैं जिसके जरिये से मैंने तेरे मन की बात कही है ।

इस पर राजा प्रदेशी को इतना ज्ञान तो सहज ही में हो गया कि यह महात्मा कोई अलौकिक पुरुष है, शायद मेरे संशय को मिटा देवें तो भी ताज्जुब की बात नहीं । अब राजा ने मुनि से पूंछा कि क्या मैं यहा बैठ सकता हूँ ?

केशीश्रमण ने उत्तर दिया हे राजन् ! यह आपका ही मकान है ।

राजा बैठ गया और प्रश्न किया कि क्या आप जीव और काया को अलग अलग मानते हो ?

मुनि ने कहा हाँ, जीव और काया अलग अलग हैं और इसको मैं प्रमाणों द्वारा साबित भी कर सकता हूँ ।

१—प्रश्न राजा—यदि आपकी यही मान्यता है तो मैं पूछता हूँ कि मेरी दादी जो बड़ी धर्मात्मा थीं उनकी उम्र ही प्राय धर्म में गई थी । आपकी मान्यतानुसार वह अवश्य स्वर्ग में गई होंगी । यदि वह आके मुझे कह दें कि बेटा मैं धर्म करके स्वर्ग में गई हूँ और वहाँ सुख का अनुभव करती हूँ तुम भी पाप को छोड धर्म करो ताकि तुमको भी स्वर्ग मिले । तो मैं मान लूँ कि जीव और शरीर अलग हैं । जो मेरे दादीजी का शरीर यहाँ मेरे हाथ से जलाया गया और उनका जीव स्वर्ग में है । यदि ऐसा न हो तो मेरी मान्यता ठीक है कि वही जीव वही शरीर । शरीर के साथ जीव उत्पन्न होता है और शरीर नष्ट के साथ जीव भी नष्ट हो जाता है । जैसे पाच तत्वों के सयोग से जीव उत्पन्न होता है और पाँच तत्व नष्ट होने से जीव भी नष्ट हो जाता है ।

उ०—हे राजन् ! यह सब आपका भ्रम है । देखिये एक मनुष्य स्नान मज्जन कर सुगंधित पदार्थ ले देवपूजन को जा रहा है । रास्ते में एक टट्टी आई जो कि महादुर्गंधित थी । वहाँ किसी मनुष्य ने देवपूजन करने वाले को बुलाया कि जरा इस टट्टी में आइये तुम्हारे से कुछ बात करना है । भला वह देवभक्त आ

८—हे नरेश ! प्रत्येक जीवों में अनन्त शक्ति है परन्तु उनके आत्मा पर कर्मरूपी आवरण लगे हुए हैं जिसमें जिनके जितने आवरण दूर हट जाते हैं उतनी २ शक्ति विकास में आ जाती है इसके लिए सुनिये, दो समान बलवान मनुष्य हैं एक के पास नई कावर दूसरे के पास पुरानी कावर है। क्या वे दोनों बराबर वजन उठा सकते हैं ? नहीं। इसका क्या कारण है ? मनुष्य तो दोनों बलवान हैं परन्तु कावर नई और पुरानी का अन्तर है। बस जीव सरीखे हैं परंतु नये पुराने कर्मों का ही अंतर है। अतः मान लो कि जीव और शरीर अलग २ हैं।

९—प्रश्न—हे प्रभो ! यदि सब जीव बराबर हैं तो मैं पूछता हूँ कि एक मनुष्य बाण चलाता है वह बहुत दूर जाता है तब दूसरे का चलाया बाण नजदीक गिर जाता है इस कारण मैंने तो यह निश्चय किया है कि जीव और शरीर एक ही हैं।

१०—हे राजन् ! एक पुरुष के पास बाण या उसकी सब सामग्री नई है तब दूसरे के पास पुरानी है तब क्या वे दोनों बराबर बाण को दूर फेंक सकेंगे ? नहीं। बस, यही कारण है कि जीव पुराने होने पर भी उसके शरीर इन्द्रियें आदि सामग्री नई पुरानी का अंतर है। अतः इस उदाहरण से समझ लीजिये कि जीव और शरीर भिन्न हैं।

७—प्रश्न—प्रभो ! आपकी युक्तियें तो बहुत आदि हैं परंतु मैं भी पक्का खोजी हूँ। देखिये एक दिन कोतवाल ने एक चोर को लाकर मेरे सामने पेश किया। मैंने अपनी मान्यता की जाँच के लिये उस चोर के दो तीन चार एवं अनेक खंड करके देखा और खूब देखा परंतु कहीं भी जीव नहीं पाया। भला इस हालत में मैं कैसे मान लूं कि जीव और शरीर अलग २ हैं ?

८—वाह राजन् ! तुम भी एक मूढ़ कठियारे के समान दीख पड़ते हो। जैसे एक समय बहुत से कठियारे एकत्र हो काष्ठ लेने की गरज से जंगल में गये, वहाँ जाकर स्नान मज्जन देवपूजन करके रसोई बनाई सब ने भोजन किया बाद एक कठियारे को कहा कि तू यहां ठहर कर इस अग्नि का संरक्षण करना। शायद अग्नि बुझ जावे तो यह आरण की लकड़ियें हैं इससे अग्नि निकाल कर समय पर रसोई बना के तैयार रखना हम काष्ठ ले कर आवेंगे उसके अंदर से थोड़ा २ काष्ठ तुमको दे कर बराबरी का बना लेंगे। बस, कठियारे काष्ठ लेने को चले गये पीछे उस बेचारे ने अग्नि बुझ जाने की परवाह न की। जब अग्नि बुझ गई तो उसने आरण की लकड़ियों के दो तीन चार एवं अनेक खंड करके देखा तो कहीं भी अग्नि नहीं पाई। बस निराश हो कर बैठ गया। इतने में जंगल से कठियारे काष्ठ लेकर आये तो न थी रसोई न थी अग्नि जब उसको पूछा तो जवाब दिया कि अग्नि तो बुझ गई थी लकड़ियों के टुकड़े २ करके सब देखा परंतु कहीं भी अग्नि न पाई अब मेरा क्या कसूर है, इस पर कठियारों ने कहा हे मूढ़ ! हे तुच्छ !! तुझे इतना मालूम नहीं है कि लकड़ियों के टुकड़े २ करके अग्नि की तलाश करते हैं इत्यादि उसका खूब तिरस्कार किया। बाद में उन्होंने आरण की लकड़ियों को घिस कर अग्नि निकाली और भोजन बना कर उस को भी कर दिया। हे प्रदेशी ! तू भी कठियारे की भांति मूढ़, तुच्छ एवं मूर्ख है।

प्रदेशी—हे भगवान ! आपने इस विस्तृत परिषदा में मेरा अपमान किया क्या आपके लिये ऐसा करना योग्य है ?

केशीश्रमण—हे राजन् ! आप जानते हो परिषदा कितने प्रकार की होती है ?

फिर तुम्हारा दादा नर्क से आकर तुमको कैसे कह सके ? परन्तु पाप करने वालों को अवश्य नर्क में जाना पड़ता है। अतः तुम मान लो कि जीव और शरीर अलग २ है और पुन्य पाप का फल भवान्तर में अवश्य भुगतना पड़ता है।

३—प्रश्न—हे स्वामिन् ! एक समय मैं राज सिंहासन पर बैठा था उस समय कोतवाल एक चोर को पकड़ कर मेरे पास लाया। मैंने उस जीते हुए चोर को एक लोहे की कोठी में डाल दिया और ऊपर से ऐसा ढाकन लगा दिया कि जिसमें वायु तक भी प्रवेश न कर पावे फिर कितनेक समय बाद उस कोठी को खोली तो वह चोर मरा हुआ पाया। मैंने उस कोठी को बारीक दृष्टि से देखा तो कहीं पर छिद्र नजर नहीं आया जिससे कि चोर के शरीर से जीव अलग होकर बाहर निकल सका हो। बस, मैंने निश्चय कर लिया कि शरीर और जीव कोई भिन्न २ वस्तु नहीं है अतः एक ही है।

उ०—राजन् ! यह तुम्हारी कल्पना ठीक नहीं क्योंकि आपको विचारना चाहिये कि शरीर तो स्थूल पुद्गलों से बना है और जीव अरूपी पदार्थ है। तथा उसकी गति भी अप्रतिहत है वह किसी पदार्थ की रुकावट से रुक नहीं सकता है। यदि कोठी के छिद्र न होने से ही आपको भ्रांति हुई हो तो मेरा एक उदाहरण सुन लीजिये। भूमि के अन्दर एक गुप्त घर बड़ा ही सुन्दर है। जिसके अन्दर एक पुरुष को ढोल और डाका दे के बैठा दिया, बाद उसका दरवाजा व सब छिद्र बन्द कर दिये जैसे आपने कोठी के छिद्र बन्द किये थे, तब अन्दर बैठे हुये आदमी ने ढोल को खूब जोर से बजाया। क्यों राजन् ! क्या उस ढोल की आवाज बाहर आ सकती है एवं बाहर रहे हुए मनुष्य सुन सकते हैं ? हाँ प्रभो आवाज आती है और मनुष्य सुन भी सकते हैं। हे राजन ! जब आठ स्पर्श वाले स्थूल पुदगलों के गुप्त घर से बाहर आने में न तो छिद्र होता है और न रुकावट होती है तब जीव अरूपी अति सूक्ष्म कोठी से निकल जावें और उसके छिद्र न पड़े इसमें आश्चर्य की बात ही कौनसी है। कोठी तो क्या परन्तु बड़े २ पहाड़ और पृथ्वी के अन्दर से भी निकल जाता है, अत. आप को मान लेना चाहिये कि जीव और शरीर पृथक २ हैं।

४—प्रश्न—हे प्रभो ! एक समय कोतवाल ने चोर लाकर मेरे सामने खड़ा किया, मैंने उस चोर को मार कर कोठी में डाल दिया। ऊपर से ऐसा बन्द किया कि कोई छिद्र रहने नहीं पावे। फिर थोड़े दिनों में खोल के देखा तो उस चोर के मृत शरीर में बहुत से जन्तु दीख पड़े। जब कोठी के छिद्र न हुआ तो यह जीव कहा से आये ? अत मैंने निश्चय किया कि तज्जीव तत्शरीर।

उ०—हे राजन् ! यह आपकी एक भ्रान्ति है देखिये एक लोहे का गोला अग्नि में तपाने से अग्निमय बन जाता है परन्तु अग्नि शान्त होने पर उस गोले में कोई छिद्र होता है कि जिसके द्वारा अग्नि ने प्रवेश किया ? नहीं भगवान। बस समझ लो कि जैसे लोहे के गोले में स्थूल शरीर वाली अग्नि प्रवेश करने में छिद्र नहीं होता है तो कोठी में अदृश्य जीव के प्रवेश करने में छिद्र कैसे हो सकता है। अत' जीव और शरीर अलग २ हैं इसको मानना ही आप जैसे बुद्धिमानों का काम है।

५—प्रश्न-हे स्वामिन् ! आपका मानना ऐसा है कि प्रत्येक जीव में अनन्त शक्ति रही हुई है परन्तु मैं देखता हूँ कि जितना वजन युवक उठा सकता है उतना वृद्ध नहीं उठा सकता। बतलाइये इसका क्या कारण है ? यदि सब जीवों में शक्ति समान है तो वजन उठाने में वृद्ध और जवान का अन्तर क्यों ? अत मेरा मानना ठीक है कि शरीर और जीव अलग २ नहीं पर एक ही हैं।

पुद्गल ६—शब्द के पुद्गल ७—गंध के पुद्गल ८—भव्याभव्य ९—यह जीव इस भव में मोक्ष जावेगा या नहीं और १०—यह जीव तीर्थंकर होगा या नहीं ? इन दश बातों को सर्वज्ञ ही बता सकते हैं।

९—प्रश्न—हे भगवान्! आपके शास्त्र में सब जीवों को बराबर माना गया है तो हस्ति इतना बड़ा और कुंथवा इतना छोटा क्यों ?

उ०—एक दीपक है, उस पर छोटा सा ढाक्कन रख देने से दीपक का प्रकाश उस ढाक्कन के नीचे समावेश हो जाता है अगर उससे कुछ बड़ा ढाक्कन रक्खें तो दीपक का प्रकाश बड़ा ढाक्कन जितना पड़ेगा। इस न्याय से दीपक के मुवाफिक जीव प्रदेश है और ढाक्कन के माफिक नाम कर्म की जीवना (शरीरमान) है। जो पूर्व भव में जितना लम्बा चौड़ा शरीरमान-जीवना कर्म बांधा है उतने में जीव का प्रदेश समावेश हो सकता है जैसे हाथी और कुंथवा।

१०—प्रश्न—हे प्रभो! आपकी युक्तियें प्रबल एवं प्रमाणिक हैं, परन्तु आप सोच सकते हो कि मेरे बाप दादा से चला आया धर्म चाहे वह खोटा भी क्यों न हो परन्तु मैं उसे एकाएक कैसे छोड़ सकता हूँ ?

उ०—प्रदेशी तू भी लोहावाणिया का भाई है, परन्तु याद रखना जैसे लोहावाणिया को पश्चाताप करना पड़ा उसी तरह तुमको भी पछताना पड़ेगा।

प्रदेशी—भगवान्! लोहावाणिया कौन था और उसको क्यों पश्चाताप करना पड़ा था ? कृपा कर इसको भी सुना दीजिये।

केशीश्रमण—नरेश! ध्यानपूर्वक सुनना यह तुम्हारे लिये बड़े लाभ का दृष्टान्त है। एक नगर से बहुत से व्यापारी नानाविध गाड़ों में किरयाणा आदि माल भर कर उसको बेचने के लिये विदेश में जा रहे थे, चलते २ रास्ते में कई लोहे की खानें आई जो किरयाणा से बहुमूल्य वाली थीं अतः व्यापारियों ने अपने माल को छोड़ कर गाड़ों में लोहा भर लिया, फिर आगे चलने पर तांबे की खानें आई जो लोहे से कई गुणा अधिक मूल्य वाली थीं अतः व्यापारियों ने लोहे को छोड़ तांबा से गाड़ियां भरलीं। उसमें एक व्यापारी ऐसा भी था कि उसने तांबा न लेकर लोहा ही रक्खा तब दूसरे व्यापारियों ने उसका हित चाह कर कहा कि यह तांबा बहुमूल्य है हम सब लोगों ने लोहा छोड़ कर तांबा से गाड़ियां भर ली हैं अतः तुम भी तांबा ले लो परन्तु उसने जवाब दिया कि मैं जानता हूँ कि लोहा की बजाय तांबा बहुमूल्य है परन्तु मैं तुम्हारे जैसा चंचल चित्तवाला नहीं हूँ कि एक को छोड़ दूसरे को ग्रहण कर लूं चाहे लाभ हो चाहे हानि मैंने तो जो ले लिया सो ले लिया। फिर वहां से आगे चले तो चांदी की खानें आई सब लोगों ने तांबा छोड़ कर चांदी ले ली पर लोहा वाले लोहावाणिया ने तो लोहा ही रक्खा। आगे चल कर सोने की खानें आईं सब लोगों ने चांदी छोड़ सोना ले लिया फिर भी लोहावाणिया ने तो लोहे को ही महात्म्य दिया, आगे चल कर रत्नों की खानें आई। व्यापारियों ने सोना छोड़ कर गाड़ों में रत्न भर लिये और अपने साथ वाले लोहावाणिया का हितचिन्तन करते हुए उसको बार २ समझाया भाई तुमको तांबा चांदी और सोने की खानों पर समझाया था परन्तु तुमने एक की भी बात न सुनी फिर भी तुम हमारे साथ में आये हो इसलिये हम तुम्हारे भले की कहते हैं कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है तुम अब भी इस लोहे को छोड़ कर रत्नों को ले लो कि अपन सब बराबर हो जावें परंतु लोहावाणिया ने उत्तर दिया कि अपने बाप दादों से चली आई रीति रिवाज को हम कैसे छोड़ सकते हैं हमने एक बार ले लिया सो ले लिया अब अदला बदली नहीं करते हैं। भला ऐसे

प्रदेशी—हे भगवान ! मैं जानता हूँ कि परिषदा चार प्रकार की होती है (१) क्षत्रियों की परिषदा (२) गाथापतियों की परिषदा (३) ब्राह्मणों की परिषदा (४) ऋषियों की परिषदा

केशीश्रमण—प्रदेशी तू यह भी जानता है कि इन परिषदों का अपमान करने से क्या सजा मिलती है ?

प्रदेशी—हे प्रभो मैं जानता हूँ कि (१) क्षत्रियों की परिषदा का अपमान करने से सूली या फांसी की सजा (२) गाथापतियों की परि० का अपमान करने से डंडा या हाथ चपेटा की मार (३) ब्राह्मणों की परि० का अपमान करने से अक्रोष वचन और (४) ऋषि परि० का अपमान करने से मूढ, तुच्छ, मूर्ख आदि शब्दों की सजा दी जाती है।

केशीश्रमण—हे प्रदेशी ! तू जानता हुआ ऋषियों का अपमान करता है जब सजा मिलती है तब इज्जत और अपमान का बहाना लेता है। क्योंकि तुम जानते हुए मेरे से टेढ़ा टेढ़ा बर्ताव करते हो, क्या यह अपमान नहीं है ?

प्रदेशी – हे प्रभो ! आप का कहना सत्य है। आए मेरे मन की बात को जानते हो हे भगवान ! मैं आपकी पहली व्याख्या से ही ठीक समझ गया था परंतु अपनी जैसी श्रद्धा वाले अपने साथियों को समझाने के लिए मैंने आपसे प्रतिकूल प्रश्न किये थे।

केशीश्रमण—हे राजन् ! आप जानते हो लोक में व्यवहारिया (व्यापारी) कितने प्रकार के होते हैं ?

प्रदेशी—हे स्वामिन् ! मैं जानता हूँ। व्यवहारिया चार प्रकार के होते हैं जैसे (१)—यदि साहूकार रुपये मांगने को आया है उसको रुपया भी देवे और सत्कार भी करे (२) रुपया देवे पर सत्कार न करे (३) रुपया न देवे और सत्कार करे (४) न रुपया दे न सत्कार करे।

केशीश्रमण—हे प्रदेशी ! तू इन व्यवहारियों में से दूसरे नम्बर का व्यवहारिया है क्योंकि तू अपने मन में तो ठीक समझ गया है परंतु बाहर दिखाव में आदर सत्कार नहीं करता है। भला तुम्हारा मन गवाही देता है फिर लज्जा की क्या बात है, खुल्लमखुल्ला सत् धर्म को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हो ?

८—प्रश्न—भगवान् आप शरीर और जीव को प्रत्यक्ष हस्तामलक की माफिक बतला देवें तो मैं आपका कहना मानने को तैयार हूँ।

केशीश्रमण—पास में रहे हुये वृक्ष के पान चलते हुए देख कर पूछा कि हे प्रदेशी ! यह पान क्यों चलते हैं ?

प्रदेशी—वायुकाय चलने से पत्ते चल रहे हैं।

केशीश्रमण—प्रदेशी यदि तू वायुकाय से पत्ता चलना मानता है तो उस वायुकाय को हस्तामलक की तरह बता सकता है ?

प्रदेशी—नहीं प्रभो ! वायुकाय बहुत सूक्ष्म है उसे कैसे बताई जाय।

केशीश्रमण—जब वायुकाय आठ कर्म तीन लेश्या और चार शरीरवाला होने पर भी तू नहीं बतला सकता है तो अरूपी अशरीरी जीव को कैसे बतलाया जाय ? हे प्रदेशी ! एक जीव ही क्यों परन्तु छद्मस्थ मनुष्य दस बातों को नहीं देखता और नहीं बतला सकता है।

१—धर्मास्तिकाय २—अधर्मास्तिकाय ३—आकाशास्तिकाय ४—शरीररहित जीव ५—परमाणु-

रहस्य रहा हुआ है और वह यह है कि यह परिषदा ही पवित्र मामला है । यदि मैं यहां अकेला वन्दन कर भी लूँ तो इस कौन जानेगा अतः मेरा इरादा है कि कल मैं अपने अन्तेवर पुत्र कुटुम्ब और अपनी प्रजा के साथ बड़े ही समारोह और भक्ति सहित आकर आपको वन्दन नमस्कार करूंगा ।

केशीश्रमण—इसको सुन कर मौन धारण कर लिया क्योंकि साधुओं का ऐसा व्यवहार है कि धर्म की विधि विधान के लिए उपदेश तो कर सकते हैं परन्तु आदेश के समय मौन व्रत रखते हैं ।

प्रदेशी—उस रोज तो वहां से चला गया, बाद दूसरे दिन अपने पुत्र, रानियों मन्त्री और नागरिक लोगों के साथ चार प्रकार की सेना सहित बड़े ही समारोह के साथ आचार्यश्री को वन्दन करने के लिए आया जिसको देख कर और लोगों की भी जैनधर्म पर श्रद्धा होगई अर्थात् उन लोगों को भी आत्मकल्याण करने की रुचि हो गई ।

आचार्य केशीश्रमण ने राजा प्रदेशी आदि को बड़े ही विस्तार से धर्म उपदेश सुनाया जिसमें मुख्य विषय था आत्मकल्याण का जिसके लिए त्याग वैराग्य और तपश्चर्यादि का करना आवश्यक बतलाया था और दानादि के लिये विशेष जोर दिया था । इस उपदेश का असर राजा प्रदेशी वगैरह पर बहुत ही अच्छा हुआ । तदनंतर वे लोग आचार्य भगवान को वन्दन नमस्कार करके जाने के लिए तैयार हुए, उस समय केशीश्रमण ने मधुर वचनों से कहा कि हे नरेश ! आप रमणीक के स्थान अरमणीक न बन जाना ।

प्रदेशी—हे प्रभो ! मैं आपकी परिभाषा से समझ नहीं सका हूँ कि रमणीक और अरमणीक किसे कहते हैं ।

केशीश्रमण—जैसे एक किसान का खेत जिसमें फसल पकती है तब वह रमणीक कहलाता है क्योंकि वहां किसान, साहूकार, मेहमान, याचक भिक्षु, पशु पक्षी आया जाया करते हैं । तत्पश्चात् धान वगैरह अपने घरों पर ले जाते हैं । बाद वहां कोई भी नहीं जाता है, जिसको अरमणीक कहा जाता है इसी प्रकार इक्षु का खेत वगैरह भी समझ लीजिये, जो कि पहले रमणीक होता है बाद में अरमणीक हो जाता है और इसी प्रकार नाटकशाला जो प्रारम्भ में रमणीक दीखती है जब नाटक करके लोग चले जाते हैं वही नाटकशाला अरमणीक दीख पड़ती है एवं फलाफूला उद्यान रमणीक दीखता है जब वह उद्यान सूख जाता है तब अरमणीक होजाता है,इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं। अतः मैं आपसे यही कहता हूँ कि मेरी मौजूदगी में तो आप रमणीक दीखते हो जो कि आपकी धर्म पर श्रद्धा एवं व्रत धारण करना तथा वन्दन भक्ति आदि व धर्मकार्य्य में अभिरुचि है,परन्तु मेरे जाने पर अरमणीक न हो जाना कि यहीं भोग-विलास वमन-धावन में लीन होजाओ अर्थात् धर्म-भावना को बढ़ाते हुये स्वपर कल्याण करने में तत्पर रहना ।

प्रदेशी—हे प्रभो ! इस बात की आप पक्की खातिरी रक्खें कि मैं कदापि रमणीक का अरमणीक नहीं होऊंगा । मैं आपको विश्वास दिलाता हुआ प्रतिज्ञा करता हूँ । मेरे राज में स्वेताम्बिका नगरी आदि ७ ग्राम हैं जिसकी आमद आवेगी उसके चार भाग कर दूंगा । १–अन्तेवर २–सेना ३–खजाना और ४–दानशाला के लिये व्यय करूंगा, जिसमें याचकों को प्रति दिन अन्न, जल, वस्त्र वगैरह दान दिया जायगा

* राजा प्रदेशी अपनी आमद को अन्तेवर, सेना और खजाने में तो पहिले ही व्यय करता था परन्तु केशीश्रमण की उदारता के व्याख्यान से उसने दानशाला खोलने का निश्चय किया जिसको केशीश्रमण ने उपादेय समझ कर के ही इन्कार नहीं किया था । अहाहा ! भिक्षुओं की भिक्षा के अन्दर से भाग लेने वाले राजा के विचारों में कितना परिवर्तन हुआ । यह सब भगवान केशीश्रमण की महती कृपा का सुन्दर फल है ।

मूर्ख अपने हिताहित को नहीं जानने वाले मनुष्य को मनुष्य तो क्या पर साक्षात् अवतारी पुरुष भी कैसे समझा सकता है ? आखिर लोहावाणिया ने अपना हठ नहीं छोड़ा । फिर वे सब के सब अपने निवासस्थान पर आये और वे लोग बहुमूल्य रत्नों में से एक एक रत्न बेच कर जेवर वस्त्र मकान सवारियां वगैरह सुख के तमाम साधन बनाकर देवताओं के समान सुख भोगने लगे जिसको लोहावाणिया ने देखा तो उसकी आंखें खुलीं और अपनी मूर्खता या हटाग्रहता के लिये सिर ठोक २ कर पछताने लगा । हे प्रदेशी ! तू बुद्धिमान है ऐसा न हो कि रत्न मिलने पर भी उसका अनादर कर कुल परम्परा के बहाने लोहे को ही पकडे रख कर लोहेवाणिया के उदाहरण को चरितार्थ कर बैठे ।

प्रदेशी—हे प्रभो ! मैं लोहावाणिया का साथी नहीं हूँ। मैं हिताहित को अच्छी तरह से समझ गया हूँ। मेरे दिल में कुल परम्परा का वृथा भ्रम था वह आपके चरणों की कृपा से चोरों की भाति भाग गया है । हे प्रभो ! आप जैसे जगत उद्धारक पुरुषों का सुयोग होने पर इस भव में तो क्या परंतु किसी भव-भवान्तर में भी परचाताप करने की आवश्यकता नहीं रहती है । हे दयानिधे ! मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि आपकी पहिली ही व्याख्या से मेरी अन्तरात्मा में सत्य का सूर्य उदय हो चुका था और अब मैं जीव शरीर को भिन्न २ मान कर कट्टर आस्तिक बन गया हूं । अब तो आप कृपा कर मुझे ऐसा धर्म सुनावें एवं रास्ता बतलावें कि जो नास्तिकपने में कर्म सचय किया है वह शीघ्र ही टूट जाय ।

केशीश्रमण ने राजाप्रदेशी की अभ्यर्थना स्वीकार कर केवली प्ररूपित विचित्र प्रकार का धर्म सुनाना शुरू किया और उसको विस्तार से सुनाया । अन्त में कहा कि आत्म-कल्याण के लिए मुख्य २ मार्ग हैं १–साधुधर्म २–गृहस्थधर्म, जिसमें साधुधर्म के लिए सर्वथा संसार को त्याग कर पंचमहाव्रत पाच समति तीन गुप्ति, दस यती धर्म, १२ प्रकार तप और १७ प्रकार सयम की आराधना करना और गृहस्थ धर्म के लिये समकित मूल १२ व्रत हैं ।

प्रदेशी–सूरीजी का व्याख्यान श्रवण कर परम आनन्द को प्राप्त हुआ और बोला कि हे प्रभो ! दीक्षा लेने की योग्यता अभी मेरे अन्दर नहीं, परन्तु गृहस्थ धर्म के १२ व्रत पालने की मेरी इच्छा है अत इस विषय का जो विधि विधान हो वह करवा दीजिये ।

केशीश्रमण–जहा सुख कह कर उसको समकित मूल १२ व्रत उच्चराय दिये । राजा प्रदेशी व्रत धारण कर अपने आपको अहोभाग्य समझ कर अपने स्थान जाने को तैयार होगया, इस पर केशीश्रमण ने पूछा कि हे राजन् ! आप जानते हो कि आचार्य कितने प्रकार के होते हैं ।

प्रदेशी—हा प्रभो मैं जानता हूँ कि कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य एव तीन प्रकार के आचार्य होते हैं।

केशीश्रमण –हे प्रदेशी ! आपको ये भी मालूम होगा कि इन आचार्यों का बहुमान कैसे किया जाता है?

प्रदेशी—कलाचार्य्यो और शिल्पाचार्य्यो का बहुमान वस्त्राभूषण भोजनादिक से होता है तब धर्माचार्य्यो का सत्कार वन्दन, नमस्कार, सेवा और भक्ति से होता है ।

केशीश्रमण—हे राजन् ! जब आप इस प्रकार के जानकार हैं तब फिर तुमने अपने आचार्य का विना बहुमान किये कैसे जाने की तैयारी कर ली ?

प्रदेशी—हे स्वामिन् ! मैंने जो विना बहुमान किए जाने की तैयारी करी है इसमें भी कुछ महत्त्वपूर्ण

ज्ञान संयुक्त थे। २—राजा प्रदेशी को प्रतिबोध करने वाले चार ज्ञान वाले थे इसके लिये कल्पसूत्र में उल्लेख मिलता है कि पार्श्वनाथ प्रभु की युगान्तगड़ भूमि में पार्श्वनाथ के चार पट्टधर मोक्ष जावेंगे १—गणधर शुभदत्त २—आचार्य हरिदत्त ३—आचार्य समुद्रसूरि और ४—केशीश्रमणाचार्य। इस लेख से पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर केशीश्रमणाचार्य्य गौतम के साथ चर्चा करने वाले केशीश्रमण से अलग थे और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में मोक्ष गये हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि महावीर के निर्वाण समय भी पार्श्वनाथ के सन्तानिये पार्श्वनाथ के शासन की क्रिया समाचारी करने वाले विद्यमान थे।

भगवान महावीर ने यह भी आर्डर नहीं निकाला था कि अब मेरा शासन प्रवर्तमान हो गया है तो तुम पार्श्वनाथ के संतानिये कहला कर अलग क्यों रहते हो अर्थात् तुम सब हमारे शासन में चले आओ इत्यादि और न पार्श्वनाथ संतानियों का भी आग्रह था कि हम पार्श्वनाथ के संतानिये अलग रह कर पार्श्वनाथ का शासन चलावेंगे। इन सब का मतलब यह है कि जहां जहां पार्श्वनाथ के संतानियों को भगवान् महावीर की भेंट होती गई वहां वहां उन्होंने भगवान् महावीर के शासन को अर्थात् चार महाव्रत के पांच महाव्रत स्वीकार करते गये। शेष रहे हुए भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये क्रिया प्रवृत्ति सब भगवान् महावीर शासन की ही किया करते थे, एवं आज भी करते हैं और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में होने से महावीर संतानिये उनको पार्श्वनाथ संतानिये ही कहते थे। और भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये भी अपनी पट्ट परम्परा प्रभु पार्श्वनाथ से मिलाने की गरज से वे अपने को पार्श्वनाथ संतानिये कहलाते थे। दूसरे भगवान महावीर के पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व का यह एक सबल प्रमाण भी है। तीसरे जहां आत्म-कल्याण है वहां परम्परा की खींचतान को थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता है। परम्परा केवल व्यवहार मात्र से ही कही जाती है। वास्तव में जैनधर्म अनादिकाल से प्रचलित है। यही कारण है कि आज पर्यंत वीर शासन के किसी आचार्य ने पार्श्वनाथ संतानियों के लिये एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया है कि भगवान् महावीर के शासन में आप पार्श्वनाथ संतानिये क्यों कहलाते हो? इतना ही क्यों बल्कि इनको श्रेष्ठ समझ कर बहुमान-पूर्वक आदर सत्कार किया है। प्रसंगोपात् केशीश्रमणाचार्य के विषय के प्रश्नोत्तर लिखकर अब भगवान महावीर का विषय जो अपूर्ण रह गया था पूर्ण करते हैं।

भगवान् महावीर के छद्मस्थावस्था का विहार क्षेत्र १ अस्थिग्राम २ राजगृह ३ चम्पा ४ पृष्ठ चम्पा ५ भद्रिका ६ आलंभिका ७ राजगृह ८ भद्रिका ९ अनार्य भूमि १० श्रावस्ति ११ विशाला १२ चम्पानगरी एवं बारह चर्तुमास हुये और कैवल्यज्ञान होने के बाद वैशालिक और वाणिज्य गाँव में १२ राजगृह में १२ मिथिला में ६ और अंतिम चर्तुमास पावापुरी में हुआ, इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर का विहार प्रायः अंग बंग मगध कलिंग और सिन्धु सौवीर वगैरह पूर्व में ही हुआ था तथा महाराष्ट्रीय प्रान्त में लोहित्याचार्य्य की संतान विहार कर धर्म प्रचार किया करती थी।

ई० स पूर्व ५२६ वर्ष भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। और आपके पीछे गणधर सौधर्माचार्य्य

७—पासस्सणं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतगडभूमि हुत्था। तं जहा—जुगंतगडभूमिय परिआयंतगडभूमिय, जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगड भूमि—इत्यादि

और मेरे करने योग्य पोषध, उपवास, व्रत, पचरखान तथा आचार विचार का पालन करता रहूंगा। अत. मैं रमणीक का अरमणीक न होऊंगा। राजा के कहने पर सूरीजी को विश्वास हो गया कि राजा प्रदेशी बड़ा ही धर्मज्ञ है अत उसको और भी जो कुछ देने काबिल शिक्षा थी वह दी जिसको राजा ने बड़े हर्ष के साथ ग्रहण की। बाद सूरिजी को वन्दन नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया और आत्मकल्याण में लग गया इधर आचार्य केशीश्रमण भी वहां से विहार कर अन्य प्रदेश में चले गये।

आ हा! संसार की स्वार्थ वृत्ति, जब से राजा प्रदेशी ससार के कार्य्य से विरक्त हो आत्मकल्याण में लग गया और छट छट पारणे करने लगा तो उसकी रानी सूरिकान्ता जो एक दिन राजा को वल्लभ थी उसने सोचा कि राजा ने राज की सार-सम्भाल करना छोड़ दिया और केवल धर्म्म कार्य्य में ही लग गया तो ऐसे राजा से मेरा क्या स्वार्थ है अत किसी विष, शस्त्र या अग्नि के प्रयोग से मार डालूँ और अपने पुत्र सूरिकान्त को राज दे दूँ। इस विचार में रानी ने कई दिन निकाल दिये, परंतु ऐसा समय हाथ नहीं लगा कि वह राजा के जीवन का अत कर दे। तब उसने अपने पुत्र सूरिकांत को बुला कर सब हाल कहा, परतु कुवर अपने पिता को इस प्रकार मारने में रानी से सहमत नहीं हुआ। अत' वहा से उठ कर चला गया। इस पर रानी ने सोचा कि कहीं कुंवर जाकर राजा को न कह दे अत इस कार्य्य में विलम्ब न करना चाहिये।

राजा तो छट छट पारणा करता था उसके बारह छट हो चुके थे और तेरहवां छट का पारणा था उस समय रानी ने बड़ी नम्रता के साथ आग्रह किया कि हे धर्मात्मा पतिदेव! आज का पारणा (भोजन) हमारे यहा करके मुझे अनुगृहीत करें। राजा ने स्वीकार कर लिया और रानी ने विषमिश्रित भोजन से राजा को पारणा करा दिया। जब राजा के शरीर में विष फैलने लगा तो उसने जान लिया। फिर भी रानी पर किंचित भी द्वेष नहीं किया और अपने सचित कर्म समझ कर अपना चित्त समाधि में रक्खा। इतना ही नहीं पर उसने समाधि मरण की तैयारी कर ली अर्थात् घास का संथारा बिछा कर उस पर आप बैठ गया। पहला नमस्कार सिद्ध भगवान को किया, दूसरा नमस्कार अपने धर्माचार्य्य केशीश्रमण को किया। तत्पश्चात् अपने भवसम्बन्धी पापों की आलोचना की और १८ पाप तथा ४ प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग कर दिया और समाधि पूर्वक काल करके प्रथम देवलोक में सूरियाभ नाम के विमान में चार पल्योपम के आयुष्य वाला देव हुआ जिसका नाम सूरियाभ है जो अभी तुम्हारे सामने नाटक करके गया है। इसमे तुम्हारे प्रश्न का समाधान हो गया कि सूरियाभ देव पूर्व भव में श्वेताम्बिका नगरी का प्रदेशी राजा था।

गौतम—हे प्रभो! यह सूरियाभदेव देवता का भव समाप्त कर कहाँ जायगा?

महावीर—गौतम! यह सूरियाभ देवता का जीव यहा से चल कर महाविदेह क्षेत्र में राजकुँवर होगा जिसका नाम दृढ़पइना रक्खा जावेगा और वह वहा पर सब प्रकार के सासारिक सुखों का अनुभव करके आखिर दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला जायगा। "राजप्रश्नी सूत्र"

प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में गौतम और केशीश्रमण की आपस में चर्चा हुई और केशीश्रमण ने चार महाव्रत के पाँच महाव्रत स्वीकार कर लिये थे तो केशीश्रमण को पार्श्वनाथ की सतान कैसे कही जा सकती है?

उत्तर—उस समय केशीश्रमण नाम के दो मुनि हुये हैं १—गौतम के साथ चर्चा करने वाले तीन

ज्ञान संयुक्त थे। २—राजा प्रदेशी को प्रतिबोध करने वाले चार ज्ञान वाले थे इनके लिये कल्पसूत्र में उल्लेख मिलता है कि पार्श्वनाथ प्रभु की युगान्तकृत भूमि में पार्श्वनाथ के चार पट्टधर मोक्ष जावेंगे १-गण धर शुभदत्त २-आचार्य हरिदत्त ३-आचार्य समुद्रसूरि और ४-केशीश्रमणाचार्य। इस लेख से पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर केशीश्रमणाचार्य्य गौतम के साथ चर्चा करने वाले केशीश्रमण से अलग थे और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में मोक्ष गये हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि महावीर के निर्वाण समय भी पार्श्वनाथ के सन्तानिये पार्श्वनाथ के शासन की क्रिया समाचारी करने वाले विद्यमान थे।

भगवान महावीर ने यह भी आर्डर नहीं निकाला था कि अब मेरा शासन प्रवृतमान हो गया है तो तुम पार्श्वनाथ के संतानिये कहला कर अलग क्यों रहते हो अर्थात् तुम सब हमारे शासन में चले आओ इत्यादि और न पार्श्वनाथ संतानियों का भी आग्रह था कि हम पार्श्वनाथ के संतानिये अलग रह कर पार्श्व नाथ का शासन चलावेंगे। इन सब का मतलब यह है कि जहां जहां पार्श्वनाथ के संतानियों को भगवान् महावीर की भेंट होती गई वहां वहां उन्होंने भगवान् महावीर के शासन को अर्थात् चार महाव्रत के पांच महा व्रत स्वीकार करते गये। शेष रहे हुए भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये क्रिया प्रवृति सब भगवान् महावीर शासन की ही किया करते थे, एवं आज भी करते हैं और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में होने से महावीर संतानिये उनको पार्श्वनाथ संतानिये ही कहते थे। और भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये भी अपनी पट्ट परम्परा प्रभु पार्श्वनाथ से मिलाने की गरज से वे अपने को पार्श्वनाथ संतानिये कहलाते थे। दूसरे भगवान महावीर के पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व का यह एक सबल प्रमाण भी है। तीसरे जहां आत्म-कल्याण है वहां परम्परा की खींचतान को थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता है। परम्परा केवल व्यवहार नय से ही कही जाती है। वास्तव में जैनधर्म अनादिकाल से प्रचलित है। यही कारण है कि आज पर्यंत वीर शासन के किसी आचार्य ने पार्श्वनाथ संतानियों के लिये एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया है कि भगवान् महावीर के शासन में आप पार्श्वनाथ संतानिये क्यों कहलाते हो? इतना ही क्यों बल्कि इनको श्रेष्ठ समझ कर बहु मान-पूर्वक आदर सत्कार किया है। प्रसंगोपात् केशीश्रमणाचार्य के विषय के परिचय लिखकर अब भगवान महावीर का विषय जो अपूर्ण रह गया था पूर्ण करते हैं।

भगवान् महावीर के छद्मस्थावस्था का विहार क्षेत्र १ अस्थिग्राम २ राजगृह ३ चम्पा ४ पृष्ठ चम्पा ५ भद्रिका ६ आलंभिका ७ राजगृह ८ भद्रिका ९ अनार्य भूमि १० श्रावस्ति ११ विशाला १२ चम्पानगरी एवं बारह चर्तुमास हुवे और कैवल्यज्ञान होने के बाद वैशालिक और वाणिया ग्राम में १२ राजगृह में १२ मिथिला में ६ और अंतिम चर्तुमास पावापुरी में हुआ इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर का विहार प्रायः अंग बंग मगध कलिंग और सिन्धु सौवीर वगैरह पूर्व में ही हुआ था तथा महाराष्ट्रीय प्रान्त में कोटि रत्नाचार्य्य की संतान विहार कर धर्म प्रचार किया करती थी।

ई. स. पूर्व ५२६ वर्ष भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। और आपके पीछे गणधर सौधर्माचार्य्य

*—पासस्सणं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहाअंतगडभूमि हुत्था। तं जहा—जुगंतगडभूमिय परिआयंतगडभूमिय,जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगड भूमि—इत्यादि

कल्पसूत्र

पट्टधर हुये, क्योंकि भगवान् महावीर के नौ गणधर तो भगवान् की मौजूदगी में ही मोक्ष पधार गये थे, शेष इन्द्रभूति और सौधर्म दो गणधर रहे जिसमें इन्द्रभूति को तो उसी दिन केवल ज्ञान हो गया था. अत. भगवान् महावीर के पट्टधर गणधर सौधर्म को ही बनाया गया था। आप बड़े ही प्रतिभाशाली एवं धर्मप्रचारक थे, आपका पवित्र जीवन वीर वंशावली में विस्तार से लिखा मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है कि ज्ञातपुत्र महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों में कुछ कलह हो गया था पर जैनशास्त्रों में इस बात का जिक्र तक भी नहीं है कि महावीर के निर्वाण के बाद उनके शिष्यों में कुछ भी क्लेश हुआ हो। हां, भगवान् महावीर की मौजूदगी में जमाली और गोसाला का उत्पात जरूर हुआ था जो भगवत्यादिसूत्र में उल्लेख किया गया है। शायद बौद्धों ने उस जमाली गोसाला का क्लेश जो महावीर की मौजूदगी में हुआ उसको भगवान महावीर के निर्वाण के बाद लिख दिया हो तो उसको बौद्धों की भूल ही समझना चाहिये।

प्रसगोपात भगवान् महावीर का सक्षिप्त में जीवन कह कर अब मैं अपने मूल विषय पर आता हूँ कि आचार्य केशीश्रमण बड़े ही प्रभाविक एवं धर्म-प्रचार करने वाले सूरीश्वर हुये जिन्होंने मृत्यु के मुँह में जाने वाले जैनधर्म को जीवित रक्खा। इतना ही क्यों पर भगवान् महावीर के शासन समय में भी वे चारों ओर घूम २ कर धर्म का प्रचार किया करते थे।

अन्त में आचार्य केशीश्रमण अपनी अन्तिम अवस्था में केवल ज्ञान प्राप्त करके मुनि स्वयंप्रभसूरि को आचार्य पदसे विभूषित बना कर अपनी सब समुदाय का भार स्वयप्रभसूरि के अधिकार में करके आप जन्मजरामरणादि के दुःख को नष्ट कर अनशन एव समाधिपूर्वक मोक्ष पधार गये—

वे क्रान्ति के अवतार थे आचार्य समुद्र सुनाम था।
उनसे प्रभावित थे सभी उनका स्वरूप ललाम था॥
आवन्ति नृप जयसेन निज पटदेवी अनंग सेना सहित।
जैनधर्म में दीक्षित हुये हो वीतराग हिसा रहित॥
निजपुत्र केशीकुमार को भी धर्म में प्रवृत बना।
जैनधर्म को वर्द्धन किया कर दिव्यतम परभावना॥

---

ये तुर्य्य पटधर केशि ही विख्यात श्रमणाचार्य्य थे।
थे ब्रह्मचारी तापसी उनके अनोखे कार्य्य थे॥
सेविया का राजा प्रदेशी नास्तिकों में अग्र था।
आचार्य के उपदेश से ही वह बना जैनाग्र था॥
पाखंडियों के चक्र में अनेक भूपति ग्रस्त थे।
उनका किया उद्धार था वे अज्ञता से त्रस्त थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ केचतुर्थ पट्टधर आचार्य केशीश्रमण बड़े ही प्रतिभाशाली हुए॥

# ५—आचार्य स्वयंप्रभसूरि

आचार्योऽथ च पंचमः सुविदितो नाम्ना तु स्वयंप्रभः,
सूरिः सोऽप्यसुधीर्यवान् सरिद्वरो विद्यां सुविद्याधरः ।
श्रीमालेविपुरे चकार नगरे जैनान् सहस्रं तथा,
त्रिभिः सौरव धाम चैव सहितान् पद्मावती नाम्नि च ॥

आचार्य स्वयंप्रभसूरि—आप विद्याधरकुल के नायक थे। अतः अनेक विद्याओं से विभूषित होना स्वाभाविक ही था। आपकी दीक्षा आचार्य्य केशीश्रमण के कर कमलों से हुई थी। दीक्षा के पश्चात् आपने जैनागमों का अध्ययन किया तो स्वल्प समय में आगमोंके पारंगत बन गये। आप अहिंसा धर्म के कट्टर प्रचारक थे। यज्ञवादियों से शास्त्रार्थ में अनेक स्थानों पर विजयी हो आपने वादियों को नत-मस्तक कर दिया था। आपका विहारक्षेत्र पूर्व बंगाल कलिंग वगैरह विस्तृत था। आपके आज्ञावर्ति साधुओंकी संख्या भी अधिक थी कि वे विस्तृत प्रदेश में विहार कर धर्म का जोरों से प्रचार भी किया करते थे।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् आपके पट्टधर गणधर सौधर्म और आपके आज्ञावर्ति हजारों मुनिराज अंग बंग मगधादि प्रदेश में विहार कर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे। इधर आचार्य स्वयंप्रभसूरि भी अपने मुनियों के परिवार के साथ उसी प्रदेश में भ्रमण किया करते थे एवं दोनों समुदायों में अच्छा प्रेम स्नेह और मेल मिलाप था। एक दूसरे के धर्मकार्य्य में सहायता एवं अनुमोदन कर जैनधर्म का सितारा चमका रहे थे।

एक समय का जिक्र है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने सोचा कि इधर पूर्व में तो बहुत साधु हैं यदि किसी प्रान्त में साधुओं का विहार न हो उस प्रदेश में चल कर जैनधर्म का प्रचार किया जाय तो अधिक लाभ हो सकता है इत्यादि। हाँ, उस समय के साधुओं का केवल विचार में ही समय नहीं जाता था पर वे अपने कार्य्यों को शीघ्र ही कार्य्यक्रम में कर बतलाते थे अतः आचार्यश्री ने ५ साधुओं को अपने साथ रखने का निश्चय कर लिया और शेष साधुओं के लिये वहाँ ही विचरने की सुन्दर व्यवस्था कर दी।

सूरिजी ने पूर्व से ५ मुनियों के साथ विहार कर दिया और क्रमशः धर्मप्रचार करते हुये पधार रहे थे पर उन जनशून्य क्षेत्रों में विहार करना एक टेढ़ी खीर थी। कारण कई प्रदेश तो ऐसे भी थे कि वे जैनश्रमणों के आचार व्यवहार से बिलकुल अनभिज्ञ ही थे इतना ही क्यों पर कई लोग उन तपस्वी साधुओं को अनेक प्रकार के कष्ट देने में भी कुछ उठा नहीं रखते थे, पर जिन महात्माओं ने स्वात्म के साथ जगत के कल्याण की भावना से राजपाट धन सम्पत्ति एवं कुटुम्ब को त्याग कर साधु पद धारण किया था उनके लिये वे भीषण कठिनाइयें आत्म-कल्याण में बाधक नहीं पर साधक बन कर उनके उत्साह को और भी बढ़ाती थी अतः वे महात्मा उन परिषह ऐसे बालों को धर्म उपदेश देकर उनको सन्मार्ग पर लाने की कोशिश किया

पट्टधर हुये, क्योंकि भगवान् महावीर के नौ गणधर तो भगवान् की मौजूदगी में ही मोक्ष पधार गये थे, शेष इन्द्रभूति और सौधर्म दो गणधर रहे जिसमें इन्द्रभूति को तो उसी दिन केवल ज्ञान हो गया था. अतः भगवान् महावीर के पट्टधर गणधर सौधर्म को ही बनाया गया था। आप बड़े ही प्रतिभाशाली एवं धर्मप्रचारक थे, आपका पवित्र जीवन वीर वंशावली में विस्तार से लिखा मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है कि ज्ञातपुत्र महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों में कुछ कलह हो गया था पर जैनशास्त्रों में इस बात का जिक्र तक भी नहीं है कि महावीर के निर्वाण के बाद उनके शिष्यों में कुछ भी क्लेश हुआ हो। हां, भगवान् महावीर की मौजूदगी में जमाली और गोसाला का उत्पात जरूर हुआ था जो भगवत्यादिसूत्र में उल्लेख किया गया है। शायद बौद्धों ने उस जमाली गोसाला का क्लेश जो महावीर की मौजूदगी में हुआ उसको भगवान महावीर के निर्वाण के बाद लिख दिया हो तो उसको बौद्धों की भूल ही समझना चाहिये।

प्रसंगोपात भगवान् महावीर का संक्षिप्त में जीवन कह कर अब मैं अपने मूल विषय पर आता हूँ कि आचार्य केशीश्रमण बडे ही प्रभाविक एवं धर्म-प्रचार करने वाले सूरीश्वर हुये जिन्होंने मृत्यु के मुँह में जाने वाले जैनधर्म को जीवित रक्खा। इतना ही क्यों पर भगवान् महावीर के शासन समय में भी वे चारों ओर घूम २ कर धर्म का प्रचार किया करते थे।

अन्त में आचार्य केशीश्रमण अपनी अन्तिम अवस्था में केवल ज्ञान प्राप्त करके मुनि स्वयंप्रभसूरि को आचार्य पदसे विभूषित बना कर अपनी सब समुदाय का भार स्वयप्रभसूरि के अधिकार में करके आप जन्मजरामरणादि के दुःख को नष्ट कर अनशन एवं समाधिपूर्वक मोक्ष पधार गये—

वे क्रान्ति के अवतार थे आचार्य समुद्र सुनाम था।
उनसे प्रभावित थे सभी उनका स्वरूप ललाम था॥
आवन्ति नृप जयसेन निज पटदेवी अनंग सेना सहित।
जैनधर्म में दीक्षित हुये हो वीतराग हिंसा रहित॥
निजपुत्र केशीकुमार को भी धर्म में प्रवृत बना।
जैनधर्म को वर्द्धन किया कर दिव्यतम परभावना॥

---

ये तुर्य्य पटधर केशि ही विख्यात श्रमणाचार्य्य थे।
थे ब्रह्मचारी तापसी उनके अनोखे कार्य्य थे॥
सेविया का राजा प्रदेशी नास्तिकों में अग्र था।
आचार्य के उपदेश से ही वह बना जैनाग्र था॥
पाखंडियों के चक्र में अनेक भूपति ग्रस्त थे।
उनका किया उद्धार था वे अज्ञता से त्रस्त थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ केचतुर्थ पट्टधर आचार्य केशीश्रमण वड़े ही प्रतिभाशाली हुए॥

७

ने प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप क्या विचार करते हो ? वहाँ पधारने से आपको महान लाभ होगा, मेरी भी प्रार्थना है कि आप वहाँ अवश्य पधारें । वे वेदान्ती अपनी विषय वासना पोषणार्थ हम देवी देवों को बदनाम करते हैं और कहते हैं कि यह बलि देवी देवों को दी जाती है इत्यादि । आपके पधारने से हम लोगों का कलंक भी धुल जायगा ।

बस फिर तो देर ही क्या थी ? सुबह होते ही भिक्षा कायस से निवृत हो सूरिजी ने अपने शिष्यों के साथ श्रीमाल नगर की ओर विहार कर दिया पर उन पाखण्डियों के साम्राज्य में इस प्रकार विहार करना कोई साधारण काम नहीं था पर एक देवी और थी । रास्ते के संकट के लिये तो मुख्य भोगी ही जान सकते हैं । पर जिन महाभाग्यशालियों ने जन कल्याणार्थ अपने आप को अर्पण कर दिया है । उनको सुख दुःख एवं कठिनाइयों की क्या परवाह है । वे भूखे प्यासे क्रमशः चलते हुए श्रीमाल नगर के उद्यान में पहुँच गये पर वहाँ पहुँच जाने पर भी आपका कौन स्वागत करने वाला था । जो मधुकरवृत्ति पर गुजरान करने वाले थे वे भी मासकल्पात् उस समय बाहर मास गये हुये थे । खैर, मुनियों ने ध्यान लगा कर तपोवृद्धि की ।

जब मुनियों को क्षुधा पिपासा प्रबल सताने लगी तो वे सूरिजी की आज्ञा से नगर में भिक्षा के लिये गये और एक गृहस्थ के घर में प्रवेश किया तो वहाँ एक निर्दय दैत्य वधे पशुओं का वध करते नजर आया । बस, वे साधु तो वहाँ से ही वापिस लौट कर सूरिजी के पास आ गये और नगर का सब हाल सुना कर प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! यह नगर साधुओं के ठहरने काबिल नहीं है, अतः यहाँ से शीघ्र ही विहार करना चाहिये ।

सूरिजी ने साधुओं को धैर्य दिया और अपने विद्वान शिष्यों को साथ लेकर सीधे ही राजसभा में आये वहाँ कि अनेक जटाधारी ब्राह्मण एकत्र हो यज्ञ विषय की सब तैयारियां कर रहे थे । कुछ लोग एक तरफ बैठ कर जैन साधुओं के विषय में बातें कर रहे थे कि या जैन सेवड़ा अपने कार्य में विघ्न तो न डाल दें इत्यादि ।

राजा जयसेन राजसभा में बैठा था कि सामने से एक तेजस्वी महात्मा आते हुए नजर पड़े जिनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था । उनके साथ धीर्य वायु एवं विशाल हृदय था और भूमि देख कर चल रहे थे । राजा इस प्रकार सूरिजी का अतिशय प्रभाव देख कर अपने सिंहासन से बड़ से उठा और सूरिजी के सामने आकर उनको नमस्कार किया प्रत्युत्तर में सूरिजी ने धर्मलाभ * दिया जिसको सुन कर वे उपस्थित लोग मुसकरा कर हँसने लगे कि यही जैन साधुओं की मूर्खता है कि अभी तक इनको आशीर्वाद देना भी नहीं आया है । राजा जयसेन ने उन लोगों की चेष्टा देख कर सूरिजी से कहा कि महात्मजी ! आप नमन के उत्तर में आशीर्वाद नहीं देते जैसे कि अन्य साधु दिया करते हैं ? सूरिजी ने कहा कि राजन् ! यदि मैं आपको चिरंजीवी का आशीर्वाद दूं तो नरक में भी दीर्घ आयुष्य है । बहुपुत्र का दूं तो श्वानादि के

* किसी शिवोपासक ने जैनों से कहा कि

नो वापि नैव कूपं न च वरं तुलसी नैव गङ्गा न काशी ।
नो ब्रह्मा नैव विष्णुर्नच शिवसपर्शेनैव धर्मं न दुर्गा ॥
विप्रेभ्यो नैव दानं न च तीर्थगमनं नैव होमो हुताशी ।
रे रे पाखण्ड मूढ़ ! कथय भवतां कीदृशो धर्मलाभ ॥

करते थे जैसे आम्रवृक्ष पर लोग पत्थर फेंकते हैं पर वे तो बदले में आम्र जैसा मधुर फल ही देते हैं। बस इस प्रकार विहार करते हुए सूरीश्वरजी अपने शिष्यमडल के साथ तीर्थाधिराज श्री सिद्धगिरि पधारे और वहा की यात्रा बड़े ही आनन्द के साथ की। कुछ अर्सा वहा पर स्थिरता कर वहां से लौट कर आबुर्दाचल पधारे वहा के तीर्थ की यात्रा कर कुछ रोज निवृत्ति के निमित्त वहा ठहर गये। कभी २ वहा पर आपका व्याख्यान भी हुआ करता था। एक दिन आपका व्याख्यान अहिंसा पर हुआ। जिसमें मुख्यतया यज्ञ की हिंसा के लिये विस्तार से आलोचना की थी जिसके प्रमाण इतने अकाट्य थे कि सुनने वालों के हृदय में दया के अकुर पैदा हुये बिना नहीं रहते थे।

उस दिन के व्याख्यान में अन्य लोगों के साथ श्रीमाल नगर से आये हुये कुछ लोग भी थे। वे लोग सूरिजी का दयामय व्याख्यान सुन कर आश्चर्य में डूब गये और मन ही मन में विचार करने लगे कि अहो! कहा तो इन दया के अवतार का अहिंसा पर व्याख्यान और कहा अपने यहा होने वाले निष्ठुर यज्ञ, कि जिसके अन्दर असख्य मूक प्राणियों का निरापराध होते हुये बलिदान दिया जाता है। अत उनका हृदय दया से लबालब भर गया। उन्होंने सूरिजी को नमन करके प्रार्थना की कि हे दयालु! हम लोगों ने तो इस प्रकार का व्याख्यान अपनी जिन्दगी में आज पहिले ही सुना है यदि आप जैसे महात्मा हमारे यहां पधारें तो बड़ा भारी लाभ होगा। कारण, कि हमारे यहा नास्तिकों का साम्राज्य वरत रहा है। हाल तत्काल ही में एक वृहद् यज्ञ होना प्रारम्भ हुआ है जिसके लिये अनेक जाति के कई सवालक्ष निरापराध पशु एकत्र किये गये हैं जिनका बलिदान दिया जायगा। तदोपरान्त नगर के प्रत्येक घर से भैंसा और बकरे होमे जायगे और उसमें धर्म, स्वर्ग, मोक्ष तथा दुनिया की शाति एव उन्नति का कारण बतलाया जाता है और हम लोग भी उन लोगों के अन्दर के हैं। इतना होने पर भी हमारे यहां के राजा भी बड़े ही सरल स्वभाव के एव भद्रिक परिणामी हैं। हमें उम्मेद ही नहीं पर पूर्ण विश्वास है कि आपका वहाँ पधारना हो जाय तो आपके उपदेश का प्रभाव वहाँ की जनता पर काफी पड सकेगा और लाखों मूक प्राणियों को अभयदान भी मिल जायगा। अत आप कृपा कर हमारे श्रीमालनगर की ओर अवश्य पधारें।

सूरिजी ने उन गृहस्थों का कहना सुन कर अपने दिल में विश्वास कर लिया और कह दिया कि क्षेत्र स्पर्शन होगा तो हम उधर ही विहार करेंगे। पर यदि हमारा उधर आना होजाय तो आप अपनी विनती को याद रखना।

गृहस्थों ने कहा कि भगवान्! यदि हमारा भाग्य हो और आपका पधारना हमारे यहा होजाय तो हम तो क्या पर बहुत से लोग आपकी सेवा भक्ति करने वाले मिल जायगे। आप इस बात का तनिक भी विचार न करें।

सूरिजी ने कहा कि ठीक महानुभावो! हमारे क्या चाहिये, हमारा तो जीवन ही परोपकार के लिये है। बस सूरिजी के वचन पर उन गृहस्थों को विश्वास हो गया कि सूरिजी महाराज का पधारना हमारे यहा अवश्य होगा। अत वे लोग सूरिजी को वन्दन कर अपने नगर की ओर चले गये और नगर में पहुँच कर कई लोगों को यह शुभ समाचार सुना भी दिये।

इधर सूरिजी महाराज रात्रि समय विचार कर रहे थे कि मैंने गृहस्थों को कह तो दिया है, पर क्षेत्र अपरिचित है, पाखण्डियों का साम्राज्य है, इत्यादि। इतने में तो अर्बुदाचल की अधिष्ठात्री देवी चक्रेश्वरी
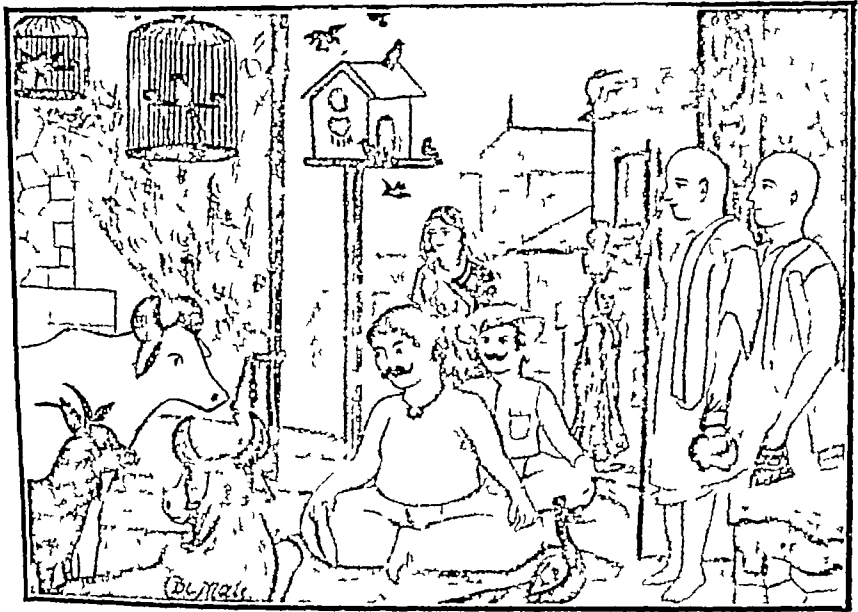
आचार्यस्वयप्रभसूरि के शिष्यों में दो मुनि मासोपवासी तपस्वी भिक्षार्थ श्रीमाल नगर के, एक घर में प्रवेश किया तो वहां माँस मदिरा एव जीव का वध होता देख वापिस लौट आये। पृष्ठ ५२
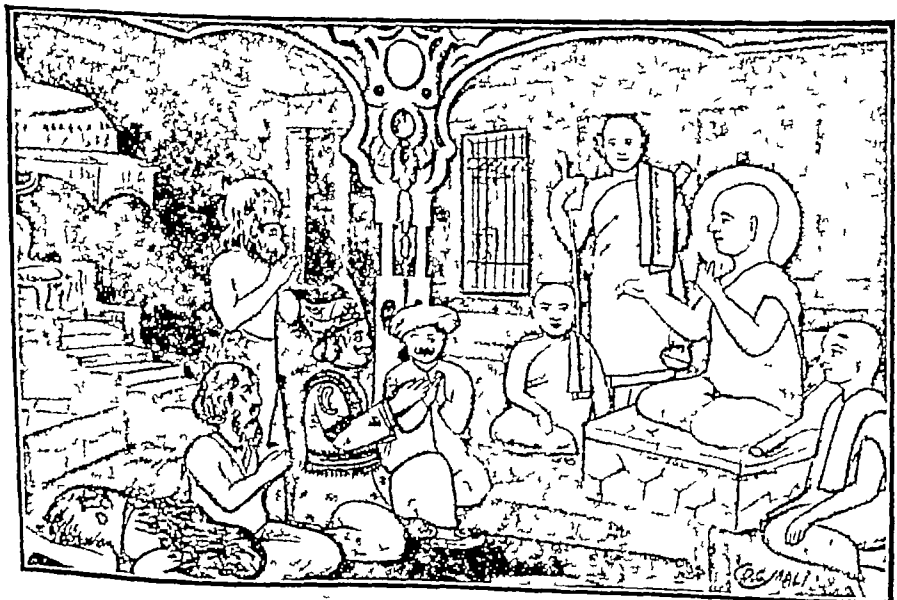
आचार्य स्वयप्रभसूरि श्रीमाल नगर की राजसभा में जाकर राजा प्रजा को धर्मोपदेश दिया और यज्ञ में बलिदान होने वाले सवालक्ष जीवों को अभयदान दिलाकर ९००१० घरवालों को जैन बनाये। पृष्ठ ५२

है क्योंकि साधुओं का सदैव आना और रहना मुश्किल है। अतः सूरिजी ने एक दिन व्याख्यान में जैन मन्दिर* के लिये उपदेश दिया और कहा कि *महानुभाव !* आत्मकल्याण के अन्य २ साधनों में अपने इष्ट देव का मन्दिर एक मुख्य साधन है क्योंकि इसके होने से देव की उपासना सेवा भक्ति हो सकती है, धर्म पर दृढ़ श्रद्धा और हमेशा के लिये चित्तवृत्ति निर्मल रहती है, पाप करने में घृणा होती है अन्याय एवं अत्याचार उनके हाथों से प्राय नहीं होता है यदि इन भक्तों के लिये साधुओं का आगमन न भी हो तो मन्दिरों के द्वारा अपना आत्मकल्याण कर सकते हैं इत्यादि, बस फिर तो देरी ही क्या थी ? उन भावुकों ने बड़ी खुशी के साथ स्वीकार कर उसी समय मन्दिर की नींव डाल दी।

आचार्यश्री ने वहाँ पर कितने ही समय ठहर कर उन नूतन श्रावकों को जैनधर्म के तात्त्विक विषय एवं सामायिकादि पूजा विधि और क्रिया विधान का अभ्यास करवाया।

एक समय सूरिजी ने यह संवाद सुना कि पद्मावती नगरी में एक वृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा है और वहाँ भी बिचारे मूक प्राणियों की बलि दी जायगी फिर तो था ही क्या ? आपने श्रीमाल नगर के मुख्य श्रावकों को सूचित किया कि मैंने पद्मावती नगरी की ओर जाने का निश्चय किया है। इस हालत में वे श्रावक लोग इस महान लाभ को हाथों से कब जाने देने वाले थे। उन्होंने कहा कि यदि आप पधारें तो हम भी इस कार्य्य के लिए पद्मावती चलेंगे !

इधर तो *सूरिजी पद्मावती पहुँचे उधर श्रीमाल नगर के श्रावक भी उपस्थित हो गये। सूरिजी* इस कार्य्य में पहले सफलता पा चुके थे व बड़े उत्साह से राजसभा में पहुँचे। पर वे यज्ञाध्यक्ष बड़े ही घमंड के साथ कहने लगे कि महात्मन् ! यह श्रीमाल नगर नहीं है कि आपने राजा प्रजा को भ्रम में डाल शास्त्र-विहित यज्ञ करना मना करा दिया। पर यहाँ तो है पद्मावती नगरी और वेदानुयायी कट्टर धर्मज्ञ राजा पद्मसेन। आप जरा संभल के रहना इत्यादि।

सूरिजी ने कहा विप्रो ! न तो मैं श्रीमाल नगर से कुछ ले आया और न यहाँ से कुछ ले जाना है। मेरा काम तो दुनिया को सन्मार्ग बतलाने का है वही बतलाया जायगा फिर मानने न मानने के लिये जनता स्वतन्त्र है इत्यादि सवाल जवाब हुये। इतने में तो बहुत से लोग एकत्र हो गये।

सूरिजी ने अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह तो आप पहिले ही पढ़ चुके हो कि इस प्रकार

---

केशि नामा तद्विनेयो, यः प्रदेशि नरेश्वरम् । प्रबोध्य नास्तिकाद्धर्मात्, जैन धर्मेऽध्यरोपयत् ॥१॥
*तच्छिष्या समभवन्, श्री स्वयंप्रभ सूरयः । विहरन्तः क्रमेणेयुः श्री श्रीमाले कदापि ते ॥
तत्र यज्ञे प्रवृत्तानां, जीवानां हिंसकं नृपम् । प्रत्यबोधयदा सूरिः, सर्व जीव दया रतः ॥
नवायुतगृहस्थाभून् सार्धं भूमापति नक्ता । जैन तथ्य संप्रदर्श्य, जैनधर्मे न्यवेशयत् ॥
पद्मावत्यां नगर्यां च, यज्ञस्या योजनं श्रुतम् । प्रत्यरौत्सीत्तदा सूरि, र्गत्वा तत्र महामतिः ॥
राजानं पृथिवीपमेव चत्वारिंशत् सहस्र कान् । ग्राम सहस्र संस्थाप्य, चक्रेऽहिंसात्मवापरान् ॥
अतः स्वरेण शिष्यार्णां संस्था में प्रसिद्धि मता । सुराणां पोषण यैन, पश्चिमेन्दोः कलाभर ॥
न सहिरे परे तत्र उन्नतिं धार्मिकीं तदा । यथा चान्द्रमसीं कान्ति तस्कराध्वान कामिनः ॥
तस्थुस्ते वद्गुरोद्याने माम कल्पं मुनीश्वराः । उपास्यमानाः सततं भव्यैर्भव तरुच्छिदे ॥

---

भी बहुपुत्र होते हैं। यदि धन धान्य का दूं तो वैश्या के भी होता है। अत यह आशीर्वाद नहीं पर दुराशीष ही हैं। पर जो मैंने आपको धर्मलाभ सही आशीर्वाद दिया है वह त्रिवर्ग साधन रूप आशीर्वाद है क्योंकि जो कुछ मन इच्छित सुख शांति मिलती है वह सब धर्म से ही मिलती है। इतना ही क्यों पर धर्म साधन ससार में जन्म मृत्यु मिटा कर मोक्ष में पहुँचा देता है। अत हमारा धर्मलाभरूप आशीर्वाद इस भव और परभव में कल्याणकारी है, इत्यादि।

सूरिजी के मार्मिक वचन सुन कर राजा की अन्तरात्मा में बड़ा ही चमत्कार पैदा हुआ और राजा को विश्वास हो गया कि यह अलौकिक महात्मा है अत राजा को धर्म का स्वरूप सुनने की जिज्ञासा जागृत हो गई। और प्रार्थना करने लगा कि महात्मन्! आप कृपा कर यहां पधारे हैं तो कुछ धर्म का स्वरूप तो फरमावें कि जिस धर्म से जनता का कल्याण हो सके।

नगर में यह खबर बिजली की भांति सर्वत्र फैल गई कि आज एक जैन सेवड़ा राजसभा में गया है और वहां कुछ धर्मचर्चा करेगा। चलिये अपन लोग भी सुनेंगे वह क्या कहेगा ? अत वे लोग भी शीघ्रता से राजसभा में आये और देखते देखते राजसभा खचाखच भरगई। उधर वे यज्ञाध्यक्ष भी सब सुनने को उपस्थित हो गये।

सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा धर्म का स्वरूप कहना प्रारम्भ किया जिसमें अधिक विवेचन हिंसा और अहिंसा की तुलना पर ही किया कि संसार में हिंसा सदृश कोई पाप नहीं और अहिंसा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है इत्यादि अपनी मान्यता को इस प्रकार सिद्ध कर बतलाया कि उपस्थित श्रोताओं के हृदय कमल में अहिंसा ने चिरस्थाई स्थान कर लिया। इस विषय में ज्यो ज्यों वाद विवाद होता गया त्यो-त्यों सूरिजी के प्रमाण जनता को अपनी ओर आकर्षित करते गये। आखिर उस निष्ठुर यज्ञ की ओर जनता की घृणा और अहिंसा की ओर सद्भाव बढ़ता गया। फलस्वरूप राजा जयसेन उनके मंत्री और नागरिक लोगों के ९०००० घर वालों को सूरिजी ने जैनधर्म की दीक्षा-शिक्षा देकर उन्हें जैनधर्म का अनुयायी बनाया।

जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक प्राणियों को एकत्र किया गया था उन सब को अभय दान दिला कर छुड़वा दिया और यज्ञ करना भी बंद करवा दिया। फिर तो था ही क्या ? श्रीमाल नगर में जैनधर्म और सूरिजी की घर २ में मुक्त-कण्ठ से भूरि भूरि प्रशसा होने लगी।

जब कि श्रीमाल नगर के राजा प्रजा जैन बन गये तो अब सूरिजी के प्रति उनकी भक्ति का पार नहीं रहा। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता रहा और जैनधर्म का सत्य स्वरूप सुन कर लोगों की श्रद्धा जैनधर्म प्रति खूब मजबूत हो गई। सूरिजी ने सोचा कि यहाँ पर एक जैन मन्दिर बन जाना अच्छा

---

जैनों की ओर से उत्तर—

नो ज्ञानं नैव सत्यं न च सुगुण धरो नैव तत्त्वादि चिंता।
नाहिंसा प्राणी वर्गे न तु विमल मनं केवलं तुंद भर्ति ॥
रात्रि भोजी च नित्य पयसी जलचरा जीव घाते कृताता ।
रे रे पाखण्ड विप्र कथयत भवतां कीदृशो यज्ञधर्म्मः ॥

अन्दर धम्मिल नाम का ब्राह्मण अपनी भद्दिला नाम की पत्नी के साथ रहता था। वे धन धान्य से पूर्ण और सुख शान्ति में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस ब्राह्मण के प्रबल पुन्योदय एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ जिसका नाम सुधर्म रक्खा गया था जो कि बचा नामसवागुप्त था। माता पिता ने कई महोत्सवों के साथ उसका लालन पालन किया और बाल भाव व्यतीत होने पर उसको विद्याध्ययन के लिये अध्यापक गुरु की सेवा में भेज दिया। यों तो ब्राह्मणों के लिए विद्या हमेशा के लिए वरदायी हुआ ही करती है पर आप पर विशेष कृपा थी पहिले जमाने में विद्याध्ययन में विशेष समय खर्च कर दिया जाता था और खास कर के ब्राह्मण लोग चार वेद छः शास्त्र अठारह पुराण और इतिहास आदि ग्रंथों का पठन पाठन कर लिया करते थे तदनुसार सुधर्म नाम का विद्यार्थी भी तमाम शास्त्रों का अध्ययन एवं चौदह विद्या के पारंगत हो गये। इनके अलावा आपने पण्डितपद पद को भी प्राप्त कर लिया था और इस कार्य्य में करीबन ५ वर्ष भी व्यतीत कर दिये थे।

एक समय अपापा नगरी के अन्दर सौमिल नाम के ब्राह्मण ने एक वृहद् यज्ञ करना प्रारम्भ किया जिसमें अन्य अन्य पंडितों के साथ सुधर्म नाम के पंडित भी शामिल थे। इधर जब भगवान महावीर को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ तब देवरचित समवसरण में विराजमान हो कर धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया तो उस समय भिन्न २ विचार वाले इन्द्रभूति आदि पंडित भगवान के समीप आकर अपनी शंकाओं को दूर कर भगवान के शिष्य बन गये जिसका वर्णन आवश्यक सूत्र एवं कल्पसूत्र में विस्तार से किया है जिसमें सुधर्म पंडित भी एक था। उसके दिल में यह शंका थी कि मनुष्यादि सर्व जीव जैसे इस भव में हैं वैसे ही अगले जन्म में होते हैं? या मनुष्य मर कर पशु आदि योनि को प्राप्त होते हैं, जैसे वेद की श्रुतियों में लिखा है कि—

पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वमित्यादिनि।

भावार्थ यह है कि जैसे इस जन्म में पुरुष की भांति हैं वैसे ही पुनर्जन्म में होंगे या इनसे विरुद्ध।

शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यत इत्यादि

इन सब श्रुतियों का भगवान ने यथार्थ अर्थ समझा कर उनके भ्रम को दूर कर दिया, अतः सुधर्म पंडित ने सच्चे तत्त्वों की ठीक परीक्षा कर के आत्म-कल्याण की उत्कृष्ट भावना से अपने ५०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर प्रभु के चरण कमलों में दीक्षा धारण कर ली और ३० वर्ष तक भगवान के चरणों की सेवा की तत्पश्चात् भगवान के पट्टधर बन १२ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में द्वादशांगी के पारंगतपने में शासन को सुचारु रूप से चला कर जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति की। जब आप को केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ, फिर भी आठ वर्ष तक भूमण्डल पर विहार कर अनेक भव्य प्राणियों का उद्धार किया। अन्त में आप अपने पट्टधर जम्बू स्वामी को स्थापन कर मोक्ष पधार गये। वे महावीर के प्रथम पाट सुधर्म गणधर हुवे। अब आगे जम्बू स्वामी के लिये भी संक्षिप्त से लिख दिया जाता है।

भगवान महावीर स्वामी के दूसरे पट्टधर आचार्य जम्बू स्वामी बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए। आपका जन्म मगधदेश के अन्तर्गत राजगृहनगर के निवासी काश्यप गोत्रीय ( ऋषभ श्रेष्ठि ) जिनके करोड़ सुवर्ण मुद्रिकापति सेठ ऋषभदत्त की इभ्य गोत्रीय भार्या धारणी की कुक्षि से हुआ था। जब वे गर्भ में थे तो इनकी माता को जम्बू सुदर्शन वृक्ष का स्वप्न आया था। वे पंचम ब्रह्मदेवलोक से चल के अवतीर्ण हुए थे। जब वे गर्भ में थे तो इनकी माता को अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। ऋषभदत्त ने बहुत हर्षोत्साह से धारणी के इन वस्तुओं द्वारा मनोरथ पूर्ण किए। शुभ घड़ी में आपका जन्म

कार्यों में सूरिजी पक्के अनुभवी और सिद्ध हस्त थे। आपके कहने की शैली इतनी उत्तम प्रकार की थी कि कठोर से कठोर हृदय वाले निर्दयी भी आपका उपदेश सुनने से रहमदिल बन जाते थे। कुछ होनहार भी यज्ञ का उन्मूल था। सूरिजी तो मात्र एक निमित्त कारण ही थे, अत' आपके उपदेश का प्रभाव उपस्थित लोगों पर इस कदर हुआ कि राजा प्रजा करीब ४५००० घर वालों ने उस निष्ठुर कर्म का त्याग कर सूरि जी के चरण कमलों में जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और अहिंसा भगवती के उपासक बन गये।

सूरिजी ने यहाँ पर मासकल्पादि ठहर कर उनको जैनधर्म के आचारव्यवहारादि का ज्ञान करवाया और वहाँ पर एक शान्तिनाथ के मन्दिर बनाने का निश्चय करवाया। इस प्रकार सूरिजी ने आर्बुदाचल से श्रीमाल नगर तक घूम घूम कर लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड्वा कर जैनधर्म का उपासक बनाया और उनके आत्म-कल्याण के लिये मेदनी जिनमन्दिरों से मण्डित करवा दी। सूरिजी की अध्य-क्षता में तीर्थ यात्रार्थ कई संघ निकाल कर भावुकों ने यात्रा कर अपने अहोभाग्य समझे इत्यादि जैन धर्म का खूब प्रचार किया तथा अनेक जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा देकर शासन की अपूर्व सेवा की।

आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि ने अपने पवित्र कर-कमलों से अनेक नर नारियों को दीक्षा देकर जैन श्रमणसंघ की आशातीत वृद्धि की थी पर एक महत्त्वपूर्ण दीक्षा आपके कर कमलों से ऐसी हुई कि वह चिरस्थाई बन गई थी। जिनका नाम था मुनि रत्नचूड़।

मुनिरत्नचूड़ का पवित्र एवं चमत्कारपूर्ण जीवन हम आगे चल कर आचार्य रत्नप्रभसूरि के नाम से लिखेंगे जिसको पढ़ कर पाठक मंत्रमुग्ध बन जायगे कि आत्मकल्याण एवं जैनधर्म के प्रचा-रक महात्माओं ने किस प्रकार ससार की ऋद्धि को असार समझ कर त्याग किया है और ऐसे त्यागी महात्माओं का जीवन जगत के जीवों के लिए कैसे उपकारी बन जाता है इत्यादि।

आचार्य स्वयप्रभसूरि ने अपने उपकारी जीवन में जैनशासन की बड़ी भारी कीमती सेवा बजाई। जिन प्रदेशों में जैनधर्म का नाम तक भी लोग नहीं जानते थे वहाँ हजारों कठिनाइयों को सहन कर जैनधर्म का बीज बो कर अपनी ही जिन्दगी में फला फूला देखना यह कोई साधारण बात नहीं है। जिन माँसाहारियों को सूरीश्वरजी ने जैनधर्म के परमोपासक बनाये थे वे आगे चल कर नगर के नाम से श्रीमाली एव प्राग्वट कहलाये और उन लोगों ने तथा उनकी सन्तान परम्परा के अनेक दानी मानी उदार नररत्नों ने शासन की बढ़िया से बढिया सेवा की है जिसको मैं अगले पृष्ठ पर लिखूँगा। आज जो श्रीमाल और पोरवाल लोग सुखपूर्वक जैनधर्म को आराधन कर आत्म कल्याण कर रहे हैं यह सब उन महान् उपकारी आचार्य स्वयप्रभसूरीश्वरजी के अनुग्रह का ही सुन्दर फल है।

पर दुख इस बात का है कि जिनके पूर्वजों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैनधर्म में दीक्षित किये थे वे श्रीमाल एवं पोरवाल आज उन परमोपकारी का नाम तक भूल कर कृतघ्नी बन गये हैं शायद उन लोगों के पतन का कारण ही यह कृतघ्नीपन तो न हो ?

आचार्य स्वयप्रभसूरि के समय भगवान महावीर के पट्टधर गणधर सौधर्माचार्य तथा सौधर्म गण-धर के पट्टधर आचार्य जम्बु हुए थे। जिनके जीवन का विस्तार से वर्णन जैनशास्त्रों में किया है पर मैं अपने उद्देशानुसार यहा सक्षिप्त से लिख देता हूँ।

गणधर सौधर्माचार्य्य—इस भारत भूमि पर एक कोल्लाग नाम का सुन्दर एव रम्य सनिवेश था जिसके

पुत्र के इस विनय व्यवहार से पिता-माता बहुत उत्साहपूर्वक विवाह के लिये तैयारी करने लगे । सारी सामग्री बात की बात में एकत्रित हुई । कन्याओं के माता पिता ने विवाह की तैयारी कराने के प्रथम अपनी आठों बालिकाओं को बुला कर पूछा कि जिस कुँवर के साथ तुम्हारा विवाह होने वाला है वह संसार से उदासीन है । वह एक न एक दिन संसार के बन्धनों को तोड़ राज्य सदृश लक्ष्मी और कामिनी को तिलांजलि दे दीक्षा अवश्य ग्रहण करेगा ही । तथापि उसका पिता विवाह करने पर उतारू है । वह बरजोरी अपने पुत्र को बाध्य कर विवाह के लिए तैयार करता है । तुम्हारी अनुमति इस विषय में क्या है ? निस्संकोचपूर्वक कहो, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी इच्छाओं के विरुद्ध मैं कुछ करूं ।

पुत्रियों ने प्रत्युत्तर दिया कि पिताजी ! निस्संदेह हम अपना जीवन उस कुंवर पर समर्पित कर चुकी हैं । उसने हमारे हृदय में घर करलिया है अतएव दूसरे पति के लिए हमारे मन में स्थान पाना असम्भव है । आप निस्संकोच हमारा पाणि-ग्रहण उसके साथ करवा दीजिए । पिता ने पुत्रियों की बात ही मानना उचित समझ कर विवाह की खूब तैयारियें की । निर्विघ्नतया विवाह सम्पन्न हुआ । पिता ने अपनी पुत्रियों को दहेज में इतना धन दिया कि सारे लोग उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे । वह धन ९९ के करोड़ सुनैया था । विवाह के पश्चात् जम्बुकुमार रात्रि को महल में पधारे तो आठों स्त्रियाँ सुन्दर वेश भूषा पहिन कर अपने चातुर्य से अपनी ओर आकर्षित करती हुई जम्बुकुमार के पास आकर हावभाव दिखा कर अपने वश में करने का प्रयत्न करने लगीं । पर भला उदासीन कुंवर पर इन बातों का क्या प्रभाव पड़ने का था ।

इधर प्रभव नाम का चोरों का सरदार अपने साथ ५०० चोरों को लेकर उस नगर में आया । उसने विचार किया कि जम्बुकुमार को ९९ करोड़ सुनैये दहेज में मिले हैं तो वहीं को जाकर किसी प्रकार चुरा कर लाना चाहिए । इसी हेतु से वह जम्बुकुमार के महलों में उसी दिन चतुराई से गुप्त रूप से पहुँच गया । जाकर क्या देखता है कि धन की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है । जम्बुकुंवर अपनी नवविवाहित स्त्रियों को समझाने में तन्मय हैं । और वह सुरसुन्दरियाँ अपने पति को संसार में रखने के लिए अनेक उदाहरण सुना रही थीं । चोरों ने उनकी बातें सुनी । कुंवर अपनी स्त्रियों को कह रहा था कि जिस सुख के लिए तुम मुझे लुभाने का प्रयत्न कर रही हो वह सुख वास्तव में तो दुख है । यदि तुम्हें सच्चे सुख को प्राप्त करने की इच्छा है तो मेरा अनुकरण करो । स्त्रियों ने समझाए जाने पर कुंवर की बात मान ली और इस बात की सम्मति प्रकट की कि हम भी आठों आप के साथ ही साथ दीक्षा ग्रहण करेंगी । चोर विस्मित हुए । उनकी समझ में नहीं आया कि यह कुँवर इस धन की ओर, जिसके लिए कि हम दिन-रात हाय हाय करते हुए अपने प्राण तक संकट में डालते हैं, इन स्त्रियों की ओर जिनके कि वशीभूत होकर हम अनेकों निर्लज्ज काम कर डालते हैं, दृष्टि तक नहीं उठाता । सचमुच यह कुँवर अवश्य पागल ही होगा । चोरों ने चाहा कि भजन तो अब इनका सम्वाद सुन चुके हैं । यहां से रफूचक्कर होना चाहिये । पर देखिये शासन देव ने क्या रचना रची । ज्योंही चोर सुवर्ण की गठरियां सर पर धर कर हटने लगे कि उनके पैर रुक गए । वे पत्थर मूर्ति की तरह वहीं पर अचल हो गये । चोरों के होश उड़ा दिए गए । वे प्रयत्न कर खूब हार कर अन्त में और कोई उपाय न देख कर गिड़गिड़ा कर कातर स्वर से कुँवर को सम्बोधन कर बोले कि आप को धन्य है ।

हुआ था। जन्मोत्सव बडे धूम-धाम से किया गया। स्वप्न के अनुकूल आपका नाम जम्बुकुमार रक्खा गया। आपने अपनी बाल्यावस्था खेलते-कूदते बहुत प्रसन्नता-पूर्वक विताई। आपने शिक्षा ग्रहण करने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रक्खी। आप बहोतर कला विज्ञ थे। जब आप विद्या पढ कर धुरन्धर कोटि के विद्वान हुए तो माता पिता ने इन्हीं के सदृश्य गुणों वाली विदुषी रूपवती देवकन्या सदृश्य आठ कुलीन लडकियों से आपका विवाह कराना उचित समझा और वाक्‌दान ( सगाई ) का भी निश्चय हो गया।

इधर भगवान सौधर्माचार्य विचरते हुए राजगृह नगरी की ओर पधारे। आप अपने शिष्यों के साथ गुण शिलोद्यान नामक रमणीक स्थान में पधार गये। नगर के सारे लोग सूरिराज का दर्शन करने को आतुरता से उद्यान मे आकर अपने जीवन को सफल बनाने लगे। ऋषभदत्त भी धारणी और जम्बुकुमार सहित सूरीश्वरजी की सेवा में दर्शनार्थ आ उपस्थित हुआ। आचार्यश्री ने धर्मोपदेश करते हुए बड़ी खूबी से प्रमाणित किया कि ससार असार एव कष्टप्रद है तथा इस द्वन्द्व को हरने का उपाय दीक्षा लेना है। इसी से मुक्ति का मार्ग मिल सकता है। सच्चे उपदेश का प्रभाव भी खूब पड़ा। जम्बुकुमार के कोमल हृदय पर ससार की असारता अकित होगई। जम्बुकुवर ने विचार किया कि पूर्व पुन्योदय से ही इस मानव जीवन का आनन्द मुझे प्राप्त हुआ है। बड़े शोक की बात होगी यदि मैं इस अपूर्व अवसर से लाभ न उठाऊँ। बार-बार मानव-जीवन मिलना दुर्लभ है। अब देर करके चुप रहना मेरे लिए ठीक नहीं, ऐसा सोच कर उन्होंने निश्चय किया कि आचार्यश्री के पास ही दीक्षा ले लेनी चाहिए। इससे बढ़ कर कल्याण की बात मेरे लिए क्या हो सकती है ? जम्बुकुमार ने आचार्यश्री के पास जाकर अपने मनोगत विचार प्रकट कर दिए। जम्बुकुमार इन्हीं विचार तरगों में गोता लगाता हुआ नगर को लौट रहा था कि एक बन्दूक की आवाज सुनाई दी। देखता क्या है कि एक गोली पास होकर सररररररर निकल गई। कुँवर बाल-बाल बच गया। जम्बुकुँवर ने विचार किया कि यदि मैं इस घटना से पचत्व को प्राप्त होता तो मेरे मनोरथ टूट जाते। अब देर करना भारी भूल है कौन कह सकताहै कि मृत्यु कब आवे ? उन्होंने सोचा क्षण भर भी व्यर्थ बिताना ठीक नहीं। इस समय मैं क्या कर सकता हूँ ? यह सोचने की देर थी कि तत्काल आत्मनिश्चय हुआ कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। मन ही मन में पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सम्यक् प्रकार से जीवन-पर्यन्त शीलव्रत रक्खूगा। धन्य। धन्य। जम्बुकुमार आतुरता से अपने माता-पिता के पास पहुँचा और उसने अपने निश्चय की बात कह सुनाई और भिक्षा मागी कि मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं दीक्षा लेकर अपने जीवन के उद्‌देश्य को प्राप्त करने में शीघ्र समर्थ होऊँ।

ऋषभदत्त और धारणी कब चाहती थी कि अद्वितीय पुत्र हमसे दूर हो। पुत्र ने प्रार्थना करने में किसी प्रकार की भी कमी न रक्खी। वैराग्य के रग में रगा हुआ कुमार ससार में रहने के समय को भार समझने लगा। पिता ने उत्तर दिया नादान कुमार। इतने अधीर क्यों होते हो ? अभी तुम्हारी आयु ही क्या है ? हमने तुम्हारा विवाह रूपवती शीलगुण सम्पन्न आठ कन्याओं से कराना निश्चय कर लिया है। अब न करने से सासारिक व्यवहार में ठीक नहीं लगेगा। यदि तुझे हमारी मान मर्यादा का तनिक भी विचार है तो अपना हठ छोड़ कर हमारी बात मान ले। विवाह करने से आनाकानी मत कर, क्या तू हमारी इतनी बात तक न मानेगा ? तू एक आदर्श पुत्र है। हमारी बात मान कर विवाह तो कर ले। जम्बुकुमार दुविधा में पड़ गया। आज्ञाकारी पुत्र ने पिता की बात टालनी नहीं चाही। विवाह करने की हामी भर ली।

आचार्य हरिभद्रसूरि का समय पट्टावलीकारों के मतानुसार वि० की छट्ठी शताब्दी का है परन्तु इतिहास की शोध से इनका समय ९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ का स्थिर होता है तब विक्रम की दूसरी शताब्दी में प्राग्वट ( पोरवाल ) जाति के वीरों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। देखिये पं० वीरविजयजी रचित ९९ प्रकार की पूजा में आप लिखते हैं —

संवत एक अठ्योतरे रे जावड़ सा नो उद्धार, उद्धरयो प्रभु साहिबा रे
न आवे फिर संसार हो जिनजी भक्ति हृदय मां धारजो रे

नवमी पूजा ढाल १

कविवर समयसुन्दरजी शत्रुंजय रास में फरमाते हैं कि —

अट्ठोत्तरसो बरस गयो विक्रम नृपथी जी वारोजी, पोरवाड़ जावड़ करायो ये तेरमो उद्धारोजी

शत्रुं० रास ढाल ११

इनके अलावा विमल मंत्री की वंशावली में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि० सं० ८०२ में वनराज चावड़ा ने पाटण नगर आबाद किया था। उस समय विमल मंत्री के पूर्वज लहरीनाम का पोरवाल उनके मंत्री पद पर नियुक्त किया गया था और उस लहरी के पिता का नाम नान्नग बतलाया जाता है जब विक्रम की आठवीं शताब्दी में नान्नग और लहरी पोरवाल वंश के वीर विद्यमान थे तथा उपरोक्त वि० सं० १०८ में जावड़ पोरवाल का अस्तित्व मिलता है तो फिर वि० की छट्ठी एवं नवीं शताब्दी में हरिभद्रसूरि ने पोरवाल वंश की स्थापना की कैसे मान लिया जाय ?

जब हम वंशावलियों की ओर देखते हैं तो इनके विषय में प्रचुरता से प्रमाण मिलते हैं जो आगे चल कर इसी ग्रन्थ में बतलाये जायेंगे जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि प्राग्वटवंश ( पोरवाल ) के आदि संस्थापक आचार्य स्वयंप्रभसूरि ही थे।

प्रश्न—कई लोग यह भी कहते हैं कि श्रीमाल जाति के स्थापक आचार्य स्वयंप्रभसूरि ही थे तो फिर आप स्वयंप्रभसूरि को कैसे बताते हो और इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण है ?

उत्तर—जैसे हरिभद्रसूरि ने जैनेतरों को जैन बना कर पोरवालों में मिलाया और वे पोरवाल कहलाये इसी प्रकार स्वयंप्रभसूरि ने भी जैनेतरों को जैन बना कर श्रीमालों में मिलाया और वे श्रीमाल कहलाये परन्तु इससे स्वयंप्रभसूरि को श्रीमाल वंश का संस्थापक नहीं कहा जा सकता संस्थापक तो स्वयंप्रभसूरि ही हैं।

श्रीमाल नगर की प्राचीनता के लिये कुछ सन्देह है ही नहीं, क्योंकि इस विषय के पुष्कल प्रमाण मिलते हैं अब रहा श्रीमाल जाति का विषय इसके लिये यह कहना अनुचित नहीं है कि श्रीमाल नगर के लोगों से ही श्रीमाल वंश कहलाया है। जब हम समय की ओर देखते हैं तो स्वयंप्रभसूरि का समय वि० की आठवीं शताब्दी का है और स्वयंप्रभसूरि का समय वि० पू० ४०० वर्ष का इन ११०० वर्ष के अन्तर में सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों श्रीमाल वंश के नररत्नों ने धर्म कार्य किये हैं जिसके उल्लेख पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थों में प्रचुरता से मिल रहे हैं जो हम आगे चल कर इसी ग्रन्थ में प्रमाण के साथ प्रकट करेंगे।

कहाँ तो हम अधम कि धन को ही जीवन का ध्येय समझ कर रात दिन इसकी ही प्राप्ति के लोभ में अपनी जिन्दगी को पशुओ से भी बदतर बिताते हुए मारे मारे फिरते हैं, जिसके कारण कि हम फटकारे जाते हैं और कहाँ आप से भाग्यशाली नर कि इस धन को तृण समान तथा इन रूपवती स्त्रियों को नर्क प्रद समझ कर छोड़ने का साहस कर रहे हो। वास्तव में हम अति पामर हैं हम अंधेरे कुए मे हैं। हम अपने लिये अपने हाथ से खड्डा खोद रहे हैं। आप अहोभागी हैं। सब कुछ करने में आप पूरे समर्थ हैं, मैं आज आप से एक बात की याचना करता हूँ। आप हम पर अनुग्रह कर वह शीघ्र दीजिएगा। मैं आपको उसके बदले दो चीजें दूंगा। अवसर्पिणी निद्रा और ताला तोड़ने की विद्या तो आप लीजिये और स्तम्भन विद्या दीजिये। जम्बुकुंवर ने समझाया कि जिस चीज को तुम प्राप्त करने की इच्छा करते हो वास्तव में वह नि सार है। तुम्हारे भागीरथ प्रयत्न का फल कुछ भी नहीं होगा। यदि सचमुच तुम्हारी इच्छा हो कि हम ऐसी विद्या सीखें कि जिस से सदा सर्वदा सुख हो तो चलो सौधर्माचार्य के पास और दीक्षा लेकर अपने जीवन का कल्याण करो। इस प्रकार से जम्बुकुंवर ने ५०० चोरों को भी प्रतिबोध देकर इस बात पर तत्पर कर दिया कि वे भी दीक्षा लेना चाहने लगे।

इस प्रकार कुंवर अपने माता पिता और ८ स्त्रियों के ८ माता ८ पिता आदि को भी प्रतिबोध दे कर सब मिला कर ५२७ स्त्री पुरुषों के साथ बडे समारोह के साथ सौधर्माचार्य से दीक्षा ग्रहण की। जम्बु मुनि अपने अध्ययन में दक्ष होने के लिये आचार्यश्री ही की सेवा में रहे। चौदहपूर्व और सकल शास्त्रों से पारंगत हो बीसवर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में दीक्षा पाली। वीरात् स० २० वर्ष में आचार्य सौधर्मस्वामी ने अपने पद पर सुयोग्य जम्बुमुनि को आचार्य पद दे मुक्ति का मार्ग ग्रहण किया। इनके पीछे बालब्रह्मचारी जम्बुआचार्य को कैवल्यज्ञान और कैवल्यदर्शन उत्पन्न हुआ। आपने ४४ वर्ष पर्यन्त भारत भूमि पर विहार कर जैनधर्म का विजयी झंडा यत्र तत्र फहराया। अपने अमृतमय उपदेश से कई भव्यात्माओं का उद्धार किया। इति जम्बू सम्बन्ध।

आचार्य स्वयप्रभसूरि ने मरुधर देश में विहार कर वाममार्गियों के साम्राज्य में इस प्रकार जैनधर्म की नींव डाल कर उसका प्रचार किया यह कोई साधारण बात नहीं थी फिर भी उन्होंने अनेक कठिनाइयों को सहन कर अपने कार्य्य की सिद्धि कर ही ली। आज जो मरुधर प्रान्त में जैनधर्म का अस्तित्व विद्यमान है वह उन सूरीश्वर जी महाराज की कृपा का ही मधुर फल है। आचार्यश्री ५२ वर्ष तक धर्म का प्रचार करके वीर सवत् ५२ की चैत्रशुक्ला प्रतिपदा के शुभदिन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय की शीतल छाया में चतुर्विध श्रीसंघ की उपस्थिति में मुनि रत्नचूड़ को अपना पट्ट अधिकार देकर अनशन और समाधि-पूर्वक स्वर्ग सिधाये।

प्रश्न—कई लोग कहते हैं कि पोरवाल सबसे पहिले हरिभद्रसूरि ने ही बनाये थे तो फिर आप क्यों फरमाते हो कि प्राग्वट (पोरवाल) वश की स्थापना स्वयंप्रभसूरि ने की थी ?

उत्तर—हरिभद्रसूरि ने पोरवाल बनाये हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ये तो जैनाचार्यों का मुख्य काम ही था। जैसे ओसवाल जाति आचार्य रत्नप्रभसूरि ने बनाई थी। बाद भी पिछले आचार्य जैनेतरों को प्रतिबोध करके ओसवालों में मिलाते गये, इसी प्रकार हरिभद्रसूरि ने भी पोरवाल बनाके पूर्व पोरवालों के शामिल कर दिये हों, परन्तु पोरवाल वश के आदि सस्थापक तो स्वयप्रभसूरि ही थे।

# ६—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी

षष्ठः पट्टमो बभूव गुणवान् रत्नप्रभो नामतः,
सोऽप्यासीद्विधिवत् प्रियो जिनमते विद्याधराणां प्रभुः ।
गत्वाउत्पलदेव नाम नृपतिं स्थापितोपकेश पुरं,
मंत्रीं मन्त्रिवरं तथोहडमपि सर्वांश्च सच्छ्राविकान् ॥
दत्वा श्रमणपदं महाजनगणं संस्थापयामास च,
य नैवास्ति त ओसवाल पद वाच्या ओसवंशोद्भवाः ।
श्री सूरेश्वरदेव वारि चतुर्वर्णं नित्यं तथा वर्द्धितम्,
अद्यापि हि कीर्त्यते गुणगणः प्राज्ञैः महद्भिर्जनैः ॥

आप श्रीमान् विद्याधरकुलभूषण और अनेक विद्याओं के वारिधि थे। रत्नपुर नगर के राजा महेन्द्रचूड़ की महारानी लक्ष्मी की रत्नकुक्षि से आपका जन्म हुआ था। आपका नाम रत्नचूड़ रक्खा गया था। आपकी बाललीला बड़ी ही मनोहरणीय थी। विद्याभ्यास के लिये तो कहना ही क्या; क्योंकि, विद्याधरों में विद्या प्रचार का तो जन्म-सिद्ध अधिकार था। अतः आप अनेक विद्याओं के पारगामी ही थे। जब आपने युवकवय में पदार्पण किया तो आपके पिताजी ने योग्य राजकन्या के साथ आपका लग्न कर दिया। आपका दाम्पत्य जीवन बड़ी ही सुख शान्ति में व्यतीत हो रहा था। आपके कई संतानें भी हुई थीं।

राजा महेन्द्रचूड़ अपनी वृद्धावस्था में अपने प्यारे पुत्र रत्नचूड़ को राजयोग्य सर्वगुणसम्पन्न जान कर अपना उत्तराधिकारी बना कर आप आत्म-कल्याण में जुट गये।

विद्याधरों का नायक राजा रत्नचूड़ बड़ी शान्ति और न्याय पूर्वक राज्य सम्पादन कर रहा था। अपनी कुल परम्परा से ही आप जैनधर्म के परमोपासक थे। इतना ही क्यों पर तीर्थंकर देवों की भक्ति और मूर्तिपूजा का तो आपके अटल नियम था कि बिना पूजन किये आप अन्न जल भी ग्रहण नहीं करते थे; जिसमें एक मूर्ति तो ऐसी थी कि जिसकी महत्त्वपूर्ण घटना इस प्रकार है।

जिस समय रावण ने महासती सीता का हरण किया था और इस कारण भगवान रामचन्द्रजी और वीर लक्ष्मण आदि ने लंका पर चढ़ाई की थी उस समय रत्नचूड़ के पूर्वज चन्द्रचूड़ नाम के विद्याधर भी भगवान रामचन्द्र के पक्ष में लंका गए थे और लंका की लूट में अन्य अन्य पदार्थों के साथ चन्द्रचूड़ विद्याधर रावण के चैत्यालय से एक मौलिक पन्नामय चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति ले आये थे। उसकी सेवा पूजा एवं उपासना क्रमशः परम्परा से भूपति करते आये थे उस नियमानुसार हमारे चरित्र नायक राजा रत्नचूड़ भी बड़ी भक्ति के साथ उस मूर्ति की त्रिकाल पूजा कर रहे थे। कहा भी है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजा धर्मिष्ठ होता है तब प्रजा भी उसका अनुकरण अवश्य किया करती है।

# उपसंहार

आचार्य स्वयंप्रभसूरि

१—आपका जन्म विद्याधर कुल में हुआ ।

२—आपकी दीक्षा केशीश्रमणाचार्य के कर कमलों से हुई ।

३—आप चौदहपूर्वज्ञान के धुरंधर विद्वान एव अहिंसा धर्म के कट्टर प्रचारक थे ।

४—आपके सूरिपद का समय महावीर निर्वाण वर्ष का है ।

५—आपने मरुधर भूमि में पधार कर जैनधर्म रूपी कल्पवृक्ष लगाया ।

६—आपने श्रीमाल नगर में पधार कर ९०००० घरों को दीक्षा दी । वही लोग आगे चल कर श्रीमाल कहलाये ।

७—आपने पद्मावती नगरी में जाकर यज्ञहिंसा बन्द कराई और ४५००० घर क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित किया । वही लोग समयान्तर में प्राग्वट ( पोरवाल ) नाम से प्रसिद्ध हुये ।

८—आपने आबू से कोरंटपुर तक जैनधर्म का काफी प्रचार किया ।

९—आपके शासन समय राजा जयसैन के पुत्र चन्द्रसैन ने चन्द्रावती नगरी और शिवसैन ने शिवपुरी की स्थापना कर जैन नगर बसाये । जो कि वहाँ के राजा प्रजा जैन धर्मोपासक थे । आपने अनेक मुमुक्षु नर नारियों को जैन दीक्षा देकर श्रमणसघ में खूब वृद्धि की जिसमें रत्नचूड़ विद्याधर को भी दीक्षा दी थी ।

१०—आपका स्वर्गवास वीर निर्वाण स० ५२ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के शुभ दिन सिद्धिगिरि की शीतल छाया में हुआ था ।

११—आपका जीवन त्याग वैराग्य एवं परोपकार के लिये ही हुआ था जिसको पढ़ने सुनने अनुकरण करने से जीवों का कल्याण हो सकता है ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि वर संसार में विख्यात थे ।
विद्वान थे बहुभाषी थे वे पंच पट्टधर ज्ञात थे ॥
श्री माल नगरी मध्य में नव्वे सहस्र कुटुम्बजन ।
इनसे आधे पद्मावती में जैनी बने थे धार प्रन ॥
इस तरह आचार्य ने वर्द्धन किया जिन धर्म का ।
वे सम हृदय पर हो सदय बन्धन मिटाया कर्म का ॥

॥ इति भगवान पार्श्वनाथ के पंचम पट्ट पर आचार्य श्री स्वयप्रभसूरि हुये ॥

आचार्य श्री ने उन मुमुक्षुओं को क्षमा प्रदान से संतुष्ट कर योग्य समझ कर ऐसी देशना दी कि जिससे वे संसार को असार जानकर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को उपस्थित हो गये। पर राजा रत्नचूड़ ने नम्रता धारण कर सूरिजी से निवेदन किया कि हे पूज्य वर! आपके कहने से हमको यो मालूम हो गये कि बिना दीक्षा के आत्म कल्याण हो नहीं सकता। इतना ही क्यों, पर हम दीक्षा लेने को भी तैयार हैं पर मेरे एक ऐसा अटल नियम है कि मैं चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति, जो मेरे पूर्वजों द्वारा लंका से लाई गई थी, की पूजा किये बिना मुंह में अन्न जल नहीं लेता हूँ। अतः मूर्ति साथ में रख कर दीक्षा ग्रहण करू जिससे कि मेरा नियम भी भंग न हो और दीक्षा पाल कर कल्याण भी कर सकू।

सूरिजी ने लाभालाभ को जान कर आज्ञा फरमादी। बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा रत्नचूड़ ने अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर ५०० विद्याधरों के साथ आचार्य स्वयंप्रभसूरि के चरण कमलों में दीक्षा धारण कर ली।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने उन मोक्षार्थियों को दीक्षा देकर राजा रत्नचूड़ का नाम रत्नप्रभ रख शेष पांच सौ मुनियों को रत्नप्रभ का शिष्य बना दिया। तदनन्तर मुनि रत्नप्रभ गुरु चरणों की सेवा उपासना करते हुये क्रमशः बारह वर्ष निरन्तर *ज्ञानाभ्यास कर द्वादशांग* अर्थात् *चतुर्दश पूर्व* के पूर्णतया ज्ञाता बन गये।

इतना ही क्यों, पर आपने तो आचार्य पद योग्य सर्वगुण भी प्राप्त कर लिये अतः आपको अन्य पदि सम्मान के सदृश समझने लग गया।

आचार्य्य स्वयंप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था और मुनिरत्नप्रभ की सुयोग्यता देख कर वीरात् ५२ वें वर्ष मुनिरत्नप्रभ को आचार्य्यपद से विभूषित‡ कर चतुर्विध संघ का नायक बना कर अपना सर्वाधिकार उनको सौंप दिया। तदनन्तर आचार्य रत्नप्रभसूरि शासन तंत्र सुचारु रूप से चलाते हुये पाँच सौ मुनियों को साथ लेकर भूतल पर धर्म प्रचार करते हुये विहार करने लगे।

आचार्य्य रत्नप्रभसूरीश्वर बड़े ही प्रतिभाशाली थे। आपका उपदेश मधुर, रोचक एवं प्रभावोत्पादक होता था। आप अनेक विद्याओं से विभूषित एवं अहिंसा परमोधर्म के प्रचुर प्रचारक थे। आपके तप संयम का तप तेज सूर्य की भांति सर्वत्र फैला हुआ था। वादिक, नास्तिक एवं वाममार्गियों पर आपकी जबरदस्त धाक जमी हुई थी। अतः आप अपने कार्य्य में सदैव सफलता पाया करते थे।

एक समय सूरिजी अपने शिष्य मंडल के साथ तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय की यात्रा कर अर्बुदाचल पधारे और वहाँ की यात्रा कर रात्रि में विहार का विचार कर रहे थे। उस समय वहाँ की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरीदेवी ने प्रार्थना की कि हे पूज्यवर! आपका शुभ विहार यदि मरुधर की ओर हो तो बहुत ही लाभ होगा। कारण आपके गुरुवर्य ने श्रीमाल नगर तक विहार कर लाखों मूक प्राणियों को जीवन प्रदान कर यज्ञ जैसी निष्ठुर प्रवृत्ति का उन्मूलन कर लाखों जैन बनाये थे पर वे मतिमन्दता के कारण वहाँ से आगे

‡ १ सगीतार्थं क्रमपञ्च, सूरिभिः स्वपद कृतः मुनि पंचशती युक्तो, विजहार धरातले
'[illegible] ४

२ "क्रमश द्वादशांगी चतुर्दशपूर्वी प्रभूत गुरुणास्वपदे स्थापितः श्रीमहावीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशत् वर्षे आचार्य पदे स्थापितः पंचाशत साधुभि सहधरां विचरति"
'[illegible] १ ४

एक समय का जिक्र है कि रथनुपुर के उद्यान में एक चारणमुनि का शुभागमन हुआ। राजा प्रजा सब लोग मुनि को वन्दन करने के लिये गये और मुनिश्री ने उन आये हुए श्रावकों को संसार असार एवं भव तारण रूप देशना दी। आत्म-कल्याण के साधन कार्य्य मे तीर्थ यात्रा भी एक है, इस पर मुनिराज ने खास अपना अनुभव किया हुआ अष्टम नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों का इस कदर वर्णन किया कि उपस्थित लोगों का दिल नदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की यात्रा करने को हो आया। व्याख्यान खत्म होने के बाद मुनिराज ने तो आकाशगामिनी लब्धि द्वारा विहार कर दिया। राजा प्रजा के दिल में यात्रा की लगन लगी थी वह वृद्धि ही पाती ही गई। अतः राजा प्रजा ने निश्चय कर अपने आकाशगामी विमानों को तैयार कर यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया पट्टावलीकार ने विमानों की सख्या का उल्लेख१ नहीं किया है। पर नामिनन्दन जिनोद्धार ग्रन्थकर्त्ता ने यात्रार्थ जाने वाले विद्याधरों के विमानों की सख्या एक लक्ष२ की बतलाई है और यह सम्भव भी हो सकता है। कारण, आगे चल कर इन विद्याधरों में से ५०० ने दीक्षा ली थी।

जब वे विमान में बैठे हुए विद्याधर आकाश मार्ग से गमन कर रहे थे तो आगे चल कर उनके विमान आकाश में रुक गये। इसका कारण जानने को नीचे देखा तो अनेक मुनियों के साथ एक महात्मा कई देव देवागनाओं को धर्म देशना दे रहे थे। विद्याधरों के नायक ने सोचा कि हम लोग स्थावर तीर्थ की यात्रार्थ जा रहे हैं और जंगम तीर्थ की आशातना कर डाली यह अच्छा नहीं किया। अब वे विद्याधर विमान से उतर कर सूरिश्री के चरण कमलों में आये और अपने अपराध की माफी माँगते हुये कहा कि हे प्रभो! हम लोगों ने अज्ञान के वश आपकी आशातना की है अत आप क्षमा प्रदान करें।

---

१ अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनां ददतां उपरि रत्नचूड़ विद्याधरो नन्दीश्वरे गच्छन् तत्र विमान स्तंभितः। तेनचिंतितः मदीयो विमानः केन स्तंभितः। यावत् पश्यति तावदधो गुरु देशनां ददतं पश्यति। स चिंतय ते मयाऽविनयः कृतः यतः जंगम तीर्थस्य उल्लंघनं कृतं! स आगतः गुरुं वन्दति धर्मं श्रुत्वा प्रतिवोद्धः स गुरु विज्ञापयति। मम परंपरागत श्री पार्श्व जिनस्य प्रतिमास्ति तस्य वन्दने मम नियमोस्ति। सा रावण लंकेश्वरस्य चैत्यालये अभवत्। यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीय पूर्वजेन चन्द्रचूड़ नरनाथेन वैताढ्ये आनीता सा प्रतिमा मम पार्श्वेस्ति तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता।

'उपकेश गच्छ पट्टावली' पृष्ठ १८४

२ तदा च वैताढ्य नगे, मणिरत्न इति प्रभुः विद्याधराणामैश्वर्य, पालयन्नस्ति विश्रुतः ॥
स च अन्यदाऽष्टम द्वीपे, दक्षिणस्या दिशि स्थिते नित्योद्यताञ्जन गिरौ, शाश्वत्तानृजिननायकान् ॥
विवन्दि पुर्निमानाना, लक्षेण सहितोऽम्वरे गच्छन् ददर्शतान्, सूरीन् मुनि पंचशती युतान ॥
नोल्लंघ्यं जंगम तीर्थं, मत्वाऽतोऽवत तार च प्रणम्य भक्तया न्यपदद्, देशनाकर्णनैच्छया ॥
सूरयोऽपिहि संसारासारता परिभाविकाम् तादृशी देशना चक्रुः स यथाऽभूद् विरक्त धी ॥
निवेश्यथ सुतं राज्येऽनुज्ञाप्य च निज जनम्, विद्याधर पञ्च शती युतो व्रतमुपाददे ॥

"नामिनन्दन जिनोद्धारपृष्ट २६"

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के जीवन में आप पढ़ चुके हो कि सूरिजी ने सबसे पहिले श्रीमाल के राजा जयसेनादि ९०००० घरों के क्षत्रियों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैन बनाया था। राजा जयसेन के दो रानियें थीं। बड़ी का पुत्र भीमसेन और छोटी का पुत्र चन्द्रसेन था। जिसमें चन्द्रसेन तो अपने पिता का अनुकरण कर जैनधर्म की उपासना एवं प्रचार करता था पर भीमसेन की माता शिवधर्मोपासिका होने से भीमसेन शिवधर्मोपासक ही रहा। यही कारण था कि दोनों बन्धुओं में धर्म विषय सम्बन्धी झंझा चलती थी। पर स्वयं राजा जयसेन के जैनधर्मोपासक होने के कारण भीमसेन की इतनी नहीं चलती थी। फिर भी राजा जयसेन इन बातों को सुनता था तब उसको बड़ा भारी दुःख हुआ करता था और यह भी विचार आया करता था कि यदि भीमसेन को राजसत्ता दे दी गई तो वह धर्मान्धता के कारण जैनधर्मोपासकों को सुख से श्वास नहीं लेने देगा इत्यादि।

राजा जयसेन ने अपनी अन्तिमावस्था में अपने मनोगत भाव चन्द्रसेन को कहे जिसके उत्तर में चन्द्रसेन ने कहा पूज्य पिताजी आप इस बात का कुछ भी विचार न करें। यह तो जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा है वैसे ही बनेगा। आप तो अन्तिम समय चित्त में समाधि रक्खें। जैनधर्म का यही सार है कि समाधि मरण से आराधिक हो अपना कल्याण करो इत्यादि।

फिर भी राजा जयसेन के दिल में जैनधर्म की इतनी लग्न थी कि उन्होंने उमराव मुत्सद्दी आदि कर्मचारों को बुला कर कहा कि मेरा तो अब अन्तिम समय है और मैं आप लोगों को यह कहे जाता हूँ कि मेरे बाद मेरा पदाधिकार चन्द्रसेन को देना। कारण, यह राजतंत्र चलाने में सर्व प्रकार से योग्य है इत्यादि कह कर राजा जयसेन ने तो उस समय में आराधना पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

बाद राजपद के लिये तत्काल ही दो पार्टियें बन गई एक पार्टी का कहना था कि राजा जयसेन की अन्तिमआज्ञानुसार राजपद चन्द्रसेन को दिया जाय। तब दूसरी पार्टी का कहना था कि राजा चाहे धर्मान्धता के कारण चन्द्रसेन को राज देना कह भी गये हों पर यह नीतिविरुद्ध कार्य कैसे किया जाय? कारण भीमसेन राजा का बड़ा पुत्र होने से राज्य का अधिकारी वही है। यह मतभेद केवल राजपद का ही नहीं था पर इसमें अधिक पक्षपात धर्म का ही था और इस पक्षान्धता ने इतना जोर पकड़ा कि जिसका अन्तिम निर्णय करना तलवार की धार पर आ पड़ा।

चन्द्रसेन जैसा धर्मज्ञ था वैसा ज्ञानी भी था। उसने सोचा कि यह जीव अनंत बार राजा हुआ है इससे आत्मिक कल्याण नहीं है। केवल एक नाशवान राज के कारण हजारों लाखों मनुष्यों का नाश हो जायगा। अतः उसने अपनी पार्टी वालों को समझा बुझाकर शान्त किया। बस फिर तो था ही क्या? शिवोपासकों का पानी भी गज चढ़ गया और भीमसेन को राजतिलक कर राजा बना ही दिया।

भीमसेन ने राजपद पर आते ही जैनों पर जुल्म गुजारना शुरू कर दिया मानो कि जैनों से पिछला दाज का बदला ही लेना हो? इस हालत में चन्द्रसेन की अध्यक्षता में जैनो की एक सभा हुई और उसमें नगर त्याग का निश्चय कर लिया। राजा चन्द्रसेन ने श्रीमालसे आबूकी ओर एक नया नगर बसानेकी गरज से प्रस्थान किया तो एक अच्छा उन्नत स्थान आपको मिल गया बस वहाँ ही उसने नींव डाल कर नगर

नहीं बढ़ सके। शायद उन्होंने वह प्रदेश आपके लिये ही छोड़ दिया हो, अतः मेरी प्रार्थना है कि आप मरु भूमि की ओर विहार करावें। कारण, आप इस प्रकार कार्य्य के लिये सर्व प्रकार से समर्थ हैं इत्यादि। देवी के वचन सुन कर सूरिजी ने अपने श्रुतज्ञान से उपयोग लगा कर देखा तो देवी का कथन सत्य जान पड़ा। बस फिर तो देर ही क्या थी ? सुबह होते ही विहार कर दिया और क्रमशः मरुधर भूमि की ओर चल दिये।

जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मरुभूमि की ओर विहार किया था उस समय मरुधर अज्ञान से छाया हुआ था। नास्तिकों का साम्राज्य वरत रहा था। मांस मदिरा एव व्यभिचार को धर्म का स्थान देकर इन बातों का जोरों से प्रचार हो रहा था। इतना ही क्यों पर इस विषय के कई ग्रन्थ† भी निर्माण कर उनको ईश्वरीय वाक्य कह कर जनता को विश्वास दिलाया जाता था। फिर तो जनता के लिये ऐसी कौनसी कामना शेष रह जाती थी कि वे धर्म के नाम पर अपनी इन्द्रियों एवं विषय कषाय का पोषण करने में थोड़ी सी भी कमी रक्खें ?

उन नास्तिक पाखण्डियों ने जनता को इस कदर वश में कर ली थी कि जैसे मंत्रवादी भूत पिशाच को वश में कर लेते हैं। इतना ही क्यों पर उन पाखण्डियों के साम्राज्य में किसी सत्यवक्ता का प्रवेश करना तो मानों एक चौरपल्ली के समान ही था। फिर भी आचार्य्य श्री किसी बात की परवाह नहीं करते हुये यूथपति की भांति अपने शिष्यों के साथ आगे बढ़ते ही गये। हाँ, उन पाखण्डियों की ओर से सूरिजी का का स्वागत (?) होने में भी किसी प्रकार की कमी नहीं थी। न मिलता था अहार पानी न मिलता था ठहरने को मकान। इतना ही क्यों पर स्थान स्थान पर जैन साधुओं की ताड़ना, व तर्जन और असभ्य शब्दों से अपमान होता था। पर जिन महात्माओं ने जन कल्याणार्थ अपना जीवन अर्पण करने का निश्चय कर लिया हो उनको मान अपमान एव जीवन मरण की परवाह ही क्या थी ? वे अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करते हुये एवं भूखे प्यासे क्रमश उपकेशपुर नगर तक पहुँच गये जो नास्तिकों का एक केन्द्र नगर कहलाता था।

प्रसगोपात उपकेशपुर ( वर्तमान जिसे ओसियाँ कहते हैं ) नगर का थोड़ा सा हाल लिख दिया जाता है कि इस नगर को कब और किसनें आबाद❀ किया था ?

---

❀ श्री महावीर निर्वाणात् द्विपंचाशत वत्सरे गुरोः सूरिपद प्राप्य ततो अष्टादश हायनैः ॥२१७॥

नाभिनन्दन जिनोद्धार पृष्ट

†मद्यं मांसं च मीनं च, मुद्रा मैथुन मेव च। एते पंचमकारश्च, मोक्षदा हि युगे युगे।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति भूतले। उत्थितः सन् पुनः पीत्वा, पुनर्जन्मो न विद्यते।
रजस्वला पुष्करं तीर्थं, चाण्डाली तु स्वयं काशी। चर्मकारी प्रयाग स्याद्रजकी मथुरा मता ×
मातृयोनि परित्यज्य विहरेत् सर्व योनिषु × ×सहस्र भग दर्शनात् मुक्तिः × × ×

❀ कदाचिदुपकेशपुरे, सूरयः समवासरन्। यादृक् तन्नगरं येन, स्थापितं श्रूयतां तथा।

'उपकेश गच्छ चरित्र'

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के जीवन में आप पढ़ चुके हो कि सूरिजी ने सबसे पहिले श्रीमाल के राजा जयसेनादि ९०००० घरों के क्षत्रियों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैन बनाया था। राजा जयसेन के दो रानियें थीं। बड़ी का पुत्र भीमसेन और छोटी का पुत्र चन्द्रसेन था। जिसमें चन्द्रसेन तो अपने पिता का अनुकरण कर जैनधर्म की उपासना एवं प्रचार करता था पर भीमसेन की माता शिवधर्मोपासिका होने से भीमसेन शिवधर्मोपासक ही रहा। यही कारण था कि दोनों बन्धुओं में धर्म विषय सम्बन्धी झगड़ा चलती थी। पर स्वयं राजा जयसेन के जैनधर्मोपासक होने के कारण भीमसेन की इतनी नहीं चलती थी। फिर भी राजा जयसेन इन बातों को सुनता था तब उसको बड़ा भारी दुःख हुआ करता था और वह भी विचार आया करता था कि यदि भीमसेन को राजसत्ता दे दी गई तो वह धर्मान्धता के कारण जैनधर्मोपासकों को सुख से श्वास नहीं लेने देगा इत्यादि।

राजा जयसेन ने अपनी अन्तिमावस्था में अपने मनोगत भाव चन्द्रसेन को कहे जिसके उत्तर में चन्द्रसेन ने कहा पूज्य पिताजी आप इस बात का कुछ भी विचार न करें। यह तो जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा है वैसे ही बनेगा। आप तो अन्तिम समय चित्त में समाधि रक्खें। जैनधर्म का यही सार है कि *समाधि मरण से आराधिक हो अपना कल्याण करो इत्यादि।*

फिर भी राजा जयसेन के दिल में जैनधर्म की इतनी लग्न थी कि उन्होंने उमराव मुत्सद्दी आदि अमेसरों को बुला कर कहा कि मेरा तो अब अन्तिम समय है और मैं आप लोगों को यह कहे जाता हूँ कि *मेरे बाद मेरा पदाधिकार चन्द्रसेन को देना। कारण, वह राजतंत्र चलाने में सर्व प्रकार से योग्य है इत्यादि* कह कर राजा जयसेन ने तो अन्त समय में आराधना पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

बाद राजपद के लिये तत्काल ही दो पार्टियें बन गईं एक पार्टी का कहना था कि राजा जयसेन की अन्तिमाज्ञानुसार राजपद चन्द्रसेन को दिया जाय। तब दूसरी पार्टी का कहना था कि राजा चाहे धर्मान्धता के कारण चन्द्रसेन को राज देना कह भी गये हों पर यह नीतिविरुद्ध कार्य्य कैसे किया जाय? कारण भीमसेन राजा का बड़ा पुत्र होने से राज्य का अधिकारी वही है। यह मतभेद केवल राजपद का ही नहीं था पर इसमें अधिक पक्षपात धर्म का ही था और इस पक्षान्धता ने इतना और पकड़ा कि जिसका अन्तिम निर्णय करना तलवार की धार पर आ पड़ा।

चन्द्रसेन जैसा धर्मज्ञ था वैसा ज्ञानी भी था। उसने सोचा कि यह कौन अनंत बार राजा हुआ है इससे आत्मिक कल्याण नहीं है। केवल एक नाशवान राज के कारण हजारों लाखों मनुष्यों का संहार हो जायगा। अतः उसने अपनी पार्टी वालों को समझा बुझाकर शान्त किया। *बस फिर तो था ही क्या!* शिवोपासकों का पानी भी चढ़ गया और भीमसेन को राज्याभिषेक कर राजा बना ही दिया।

भीमसेन ने राजपद पर आते ही जैनों पर जुल्म गुजारना शुरु कर दिया मानो कि जैनों से फिर काम का बदला ही लेना हो! इस हालत में चन्द्रसेन की अध्यक्षता में जैनों की एक सभा हुई और उसमें नगर त्याग का निश्चय कर लिया। राजा चन्द्रसेन ने श्रीमालसे आबूकी ओर एक नया नगर बसानेकी गरज से प्रस्थान किया तो एक अच्छा उन्नत स्थान आपको मिल गया बस वहाँ ही उसने नींव डाल कर नगर

बसाया और उसका नाम चद्रावती※ नगरी रख दिया। बस श्रीमाल नगर के जितने जैन थे वे सबके सब नूतन स्थापित की हुई चन्द्रावती नगरी में आकर अपने स्थान बनाकर वहां रहने लगे और वहाँ का राजा चन्द्रसैन को बना दिया। थोड़े ही समय में यह नगरी अलकापुरी के सदृश होगई और आस पास के बहुत से लोग आकर बस गये वहा के लोगों के कल्याणार्थ राजा चन्द्रसैन ने भगवान पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर भी बनाया, कहा जाता है कि एक समय चन्द्रावती में जैनों के ३६० मन्दिर थे अतः वह जैनपुरी ही कहलाती थी।

चन्द्रसैन का एक लघुभ्राता शिवसैन था उसने पास ही में एक शिवपुरी नगरी बसा कर अपना राज्य वहाँ जमा दिया।

जब श्रीमाल से जैन सबके सब चले गये तो पीछे था ही क्या ? फिर भी रहे हुए लोगों की व्यवस्था के लिये कार्य्यकर्त्ताओं ने तीन प्रकोट बना दिये प्रथम प्रकोट में कोटिध्वज द्वितीय प्रकोट में लक्षाधिपति और तृतीय प्रकोट में शेष लोग। इस प्रकार व्यवस्था करने पर फिर नगर की थोडी बहुत सुन्दरता दीखने लगी।

कई ग्रन्थों※ में इस नगर की प्राचीनता बतलाते हुए युग युग में नामों की रूपान्तरता भी बतलाई है जैसे कृतयुग में रत्नमाल, त्रेतायुग में पुष्पमाल द्वापर में वीरनगर और कलियुग में श्रीमाल भिन्नमाल बतलाया है।

† राजा भीमसैन के दो पुत्र थे १—श्री पुज २—सुरसुन्दर और श्रीपुंज के पुत्र उत्पल देव (श्रीकुमार)

---

※ चन्द्रावती नगरी आबू के पास थी विक्रम की तेरहवी चौदहवी शताब्दी तक तो इस नगरी की बड़ी भारी जाहु जलाली थी परन्तु आज तो उसके भग्न खण्डहर नजर आते हैं।

† शिवपुरी का रुपान्तर वर्तमान सिरोही शहर है जो पुरानी सिरोही के नाम से प्रसिद्ध है। यह दोनों नगर उस समय जैनों के केन्द्रस्थल कहलाये जाते थे।

१ श्रीमाल मितियन्नाम, रत्नमाल मिति स्फुटम्, पुष्पमालं पुनर्भिन्नमालं युग चतुष्टये।
चत्वारि यस्य नामानि, वितन्वन्ति प्रतिष्ठितम्, अहो! नगर सौन्दर्य प्रहार्यं त्रिजगत्मपि॥
'इन्द्र हंसगणि कृत उपदेश कल्प वल्ली'

१ कृत युगे रयण माला, त्रेतायुगे पुष्पमाला, द्वापरे वीर नगरी कलियुगे भीन्नमाल।
२ श्रीश्रीमालपुरे पूर्वं श्रीपुंजोऽभून्नरेश्वरः। सुरसुन्दरनामास्य, कुमारः सत्वशेवधि॥
स कदाप्यभिमानेन, पुरान्निर्गत्य निर्भयः। एकान्तेनिंजने भूदेशं नवस्थान चिकीर्षया॥
'उपकेश गच्छ चरित्र'

※ तत्रश्री राजा भीमसैन तत् पुत्र श्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार तस्य बान्धव श्रीसुरसुन्दर युवराज राज्यभार धुरंधर तयोरमात्य चन्द्रवंशीय द्वौभ्राता तत्र-निवासी सा० ऊहड़ १ उद्धरण २ लघुभ्राता गृहे सुवर्ण संख्या, अष्टादश कोट्यः संति वृद्धभ्रातुर्गृहे नवनवति लक्ष संति। ये कोटीश्वरास्ते दुर्गमध्ये वसतिये लक्षेश्वरास्ते बाह्ये वसंति। तत ऊहेडेन एक लक्ष भ्रातुः पार्श्वे उच्छीर्णं याचितं ततो बान्धवेन एवं कथितं भवते! विना नगरं उध्व समस्ति भवतां समागमे वासो भविष्यति। एवं ज्ञात्वा राजकुमार ऊहडेन आलोचितवान् नूतनं नगरं बसेय ततो मम बचनं अग्रे आयातः।
उपकेश गच्छ पटावल्ली पृष्ठ १८४

+ कई पटावलियों में उत्पल देव को श्री पूँज का छोटा भाई होना भी लिखा है।

एक समय का जिक्र है कि चन्द्रदेवकुमार आपकी माता के कारण अपमानित हो नगर से निकल गया उसकी इच्छा एक नया नगर बसा कर स्वयं राज करने की थी। जब कार्य बनने को होता है तब निमित्त कारण सब अनुकूल मिल ही जाता है। इधर तो राजकुमार अपमानित होकर नगर से निकल रहा था उधर प्रधान का पुत्र चन्द्र कुमार भी संयोग वश अपमानित होकर राजपुत्र के साथ हो गया।

नया नगर बसाना यह कोई बच्चों का खेल एवं साधारण कार्य नहीं था पर एक बड़ा ही जबरदस्त कार्य था। अतः न अकेला राजकुमार कर सकता था और न मंत्रीपुत्र ही, पर कार्य निकट भविष्य में ही बनने को था कि कुदरत ने दोनों का संयोग बना दिया।

जब दोनों नवयुवकों ने नगर को त्याग कर एक बड़ी आशा पर प्रस्थान कर दिया तब उनको प्रबल पुन्योदय के कारण शुभ शकुन अच्छे से अच्छे होने गये। अतः क्रमशः वे रास्ता चलते चलते एक जंगल में होकर जा रहे थे तो रास्ते में एक सरदार मिला। उसने उन्हें तेजपुंज और चेहरे पर वीरता की झलक देख कर पूँछा कि कुँवरजी कहाँ से पधारे और कहाँ जा रहे हो? कुमार ने जवाब दिया कि हम भीमाल नगर से आये और एक नया नगर आबाद करने को जा रहे हैं। सरदार ने सुन कर आश्चर्य किया और कहा कुँवरजी नयानगर आबाद करना बच्चों का खेल तो है ही नहीं, आपके पास ऐसी कौन सी सामग्री है कि जिसके आधार पर आप नया नगर बसाने की बातें कर रहे हो? कुमार ने जवाब दिया कि सामग्री हमारी भुजाओं में भरी हुई है जिससे हम नयानगर आबाद करेंगे। सरदार ने सोचा यह कोई राजवंशी है। अतः उसने प्रार्थना की कि कुंवरजी दिन थोड़ा ही रह गया है, आज तो यहाँ ही विश्राम कीजिये। कुमार ने मंत्री की ओर देखा और दोनों ने एक मत होकर सरदार की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ हो लिये। सरदार था विराट नगर का रूपामसिंह नाम का एक साधारण राजपूत।

सरदार ने दोनों मेहमानों को अपने घर लाकर भोजन पानी का आतिथ्य किया और अपने कुटुम्बियों से सलाह की कि अपने बालापनेवी कन्या बड़ी हो गई है, इन मेहमानों के साथ व्याही जाय तो भविष्य में एक राजरानी पद को प्राप्त कर लेगी। अतः सरदार ने कुंवरजी से प्रार्थना की कि आपने हमारा मकान पावन किया है तो इसको चिरस्थायी बनाने के लिये हमारी कन्या के साथ शादी कर लीजिये।

कुँवरसाहब ने जवाब दिया कि मैं एक मुसाफिर हूँ आप सोच समझ कर कार्य करें।

सरदार—मैंने ठीक सोच समझ करके ही प्रार्थना की है जिसको आप स्वीकार कीजियेगा।

जब सरदार का अति आग्रह हुआ तो मंत्रीकुमार चन्द्र ने इसको शुभ शकुन एवं अच्छा निमित्त समझ कर सरदार रूपामसिंह की प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार कर दी कि जब हम राज स्थापन कर पावेंगे तब आकर लग्न करेंगे। सरदार ने मंजूर करके सगाई की सब रस्म कर डाली। बस प्रभात होते ही दोनों कुमार वहाँ से रवाना हो गये। उस समय शकुन बहुत ही अच्छे हुये अतः दोनों का उत्साह बढ़ता ही गया।

एक सौदागर कई घोड़े लेकर जा रहा था। मंत्री चन्द्र ने जाकर १८ अश्व इस शर्त पर खरीद कर लिये कि जब हम नगर आबाद करेंगे तब तुम्हारे इन अश्वों का मूल्य चुका देंगे। केवल उनके वचन पर विश्वास करके सौदागर ने अश्व दे दिये।

दोनों वीर अश्व लेकर क्रमशः देवीपुर ( देहली ) नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ पर भी साधु नामक राजा राज कर रहा था पर उसके ऐसा नियम था कि ६ मास राज अपने देवता और ६ मास अपने

बसाया और उसका नाम चंद्रावती* नगरी रख दिया। बस श्रीमाल नगर के जितने जैन थे वे सबके सब नूतन स्थापित की हुई चन्द्रावती नगरी में आकर अपने स्थान बनाकर वहां रहने लगे और वहाँ का राजा चन्द्रसैन को बना दिया। थोड़े ही समय में यह नगरी अलकापुरी के सदश होगई और आस पास के बहुत से लोग आकर बस गये वहां के लोगों के कल्याणार्थ राजा चन्द्रसैन ने भगवान पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर भी बनाया, कहा जाता है कि एक समय चन्द्रावती में जैनों के ३६० मन्दिर थे अतः वह जैनपुरी ही कहलाती थी।

चन्द्रसैन का एक लघुभ्राता शिवसैन था उसने पास ही में एक शिवपुरी नगरी बसा कर अपना राज्य वहाँ जमा दिया।

जब श्रीमाल से जैन सबके सब चले गये तो पीछे था ही क्या ? फिर भी रहे हुए लोगों की व्यवस्था के लिये कार्य्यकर्ताओं ने तीन प्रकोट बना दिये प्रथम प्रकोट में कोटिध्वज द्वितीय प्रकोट में लक्षाधिपति और तृतीय प्रकोट में शेष लोग। इस प्रकार व्यवस्था करने पर फिर नगर की थोडी बहुत सुन्दरता दीखने लगी।

कई ग्रन्थों* में इस नगर की प्राचीनता बतलाते हुए युग युग में नामों की रूपान्तरता भी बतलाई है जैसे कृतयुग में रत्नमाल, त्रेतायुग में पुष्पमाल द्वापर में वीरनगर और कलियुग में श्रीमाल भिन्नमाल बतलाया है।

† राजा भीमसैन के दो पुत्र थे १–श्रीपुज २–सुरसुन्दर और श्रीपुज के पुत्र उत्पल देव (श्रीकुमार)

---

* चन्द्रावती नगरी आबू के पास थी विक्रम की तेरहवी चौदहवी शताब्दी तक तो इस नगरी की बडी भारी जाहु जलाली थी परन्तु आज तो उसके भग्न खण्डहर नजर आते हैं।

† शिवपुरी का रुपान्तर वर्तमान सिरोही शहर है जो पुरानी सिरोही के नाम से प्रसिद्ध है। यह दोनों नगर उस समय जैनों के केन्द्रस्थल कहलाये जाते थे।

१ श्रीमाल मितियन्नाम, रत्नमाल मिति स्फुटम्, पुष्पमालं पुनर्भिन्नमालं युग चतुष्टये।
चत्वारि यस्य नामानि, वितन्वन्ति प्रतिष्ठितम्, अहो! नगर सौन्दर्य प्रहार्य त्रिजगतमपि॥
'इन्द्र हंसगणि कृत उपदेश कल्प वल्ली'

१ कृत युगे रयण माला, त्रेतायुगे पुष्पमाला, द्वापरे वीर नगरी कलियुगे भीन्नमाल।
२ श्रीश्रीमालपुरे पूर्वं श्रीपुंजोऽभून्नरेश्वरः। सुरसुन्दरनामास्य, कुमारः सत्वशेवधि॥
स कदाप्यभिमानेन, पुरान्तिर्गत्य निर्भयः। एकान्तेर्निजने भूदेशं नवस्थान चिकीर्षया॥
'उपकेश गच्छ चरित्र'

* तत्रश्री राजा भीमसैन तत् पुत्र श्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार तस्य बान्धव श्रीसुरसुन्दर युवराज राज्यभार धुरंधर तयोरमात्य चन्द्रवंशीय द्वौभ्राता तत्र-निवासी सा० ऊहड़ १ उद्धरण २ लघुभ्राता गृहे सुवर्ण संख्या, अष्टादश कोट्यः संति वृद्धभ्रातुर्गृहे नवनवति लक्ष संति। ये कोटीश्वरास्ते दुर्गमध्ये वसतिये लक्षेश्वरास्ते बाह्ये वसंति। तत ऊहेडेन एक लक्ष भ्रातुः पार्श्वे उच्छीर्णां याचितं ततो बान्धवेन एवं कथितं भवते! बिना नगरं उध्व समस्ति भवतां समागमे वासो भविष्यति। एवं ज्ञात्वा राजकुमार ऊहडेन आलोचितवान् नूतनं नगरं वसेयं ततो मम वचनं अग्रे आयातः।
उपकेश गच्छ पटावल्ली पृष्ठ १८४

+ कई पटावलियों में उत्पल देव को श्री पूंज का छोटा भाई होना भी लिखा है।

इस नूतन बसे हुये नगर में व्यापार तो इतना होने लगा कि यदि पिता पुत्र अलग २ व्यापार करते तो वह कभी २ छः छः मास तक भी न मिल पाते थे। श्रीमाल नगर के अलावा और भी बहुत नगरों के बड़े २ व्यापारी लोग भी व्यापारार्थ आ रहे थे, जैसे आज बम्बई कलकत्ता व्यापार के केन्द्र हैं और दूर २ के लोगों ने व्यापारार्थ वहां आकर अपना निवास स्थान बना लिया है। इसी प्रकार उस समय नूतन बसे हुये उपकेशपुर में व्यापारार्थ दूर २ के लोग आकर बस गये हों तो यह सम्भव हो सकता है। जहाँ पानी की प्रचुरता* होती है वहां व्यापार खब फूल फलता है इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। प्रसंगोपात उपकेशपुर की स्थापना कह कर अब मूल विषय पर आते हैं।

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर पधार तो गये पर किसी एक आदमी ने भी उनका स्वागत सत्कार नहीं किया, इतना ही क्यों पर किसी ने ठहरने के लिये स्थान तक भी नहीं बतलाया। इस हालत में आचार्य श्री ने अपने साधुओं के साथ एक लूणाद्री पहाड़ी पर जाकर ध्यान लगा दिया। यह तो आप पहले ही पढ़ चुके हो कि उन मांस आहारियों के प्रदेश में जैन मुनियों के लाने योग्य सात्विक पदार्थ के आहार का कहीं पर योग नहीं मिलता था अतः कई मासों से मुनी तपस्या किया करते थे और इस प्रकार निरन्तर तपस्या करना कोई साधारण काम भी नहीं था। जब कई साधुओं को शरीर का निर्वाह न होता देख पारणा करने की इच्छा हुई तो वे गुरु महाराज की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षार्थ के लिये गये पर नगर में ऐसा

---

* १ आज भी उपकेशपुर ( ओसियाँ ) के आस पास जो इक्षुरस निकालने की अनेक पत्थर की घरटियें यत्र तत्र मिलती हैं इससे साबित होता है कि पूर्व जमाने में यहां पानी की प्रचुरता थी और बहुत गुड़ पैदा होता था।

२ वर्तमान जैसलमेर, फलौदी और बीकानेर नगर हैं, वहाँ पहिले पानी था। आज वहाँ भूमि खुदाई का काम होता है तो दीर्घकाय वाले मच्छों के कलेवर हाड़ पिंजर मिलते हैं, वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि पूर्व जमाने में यहाँ पानी की प्रचुरता थी।

३ प्राचीन वंशावलियों में यह भी लिखा मिलता है कि यहाँ बालदियों का बहुत व्यापार था। लाखों पोठों द्वारा माल आता जाता था। इस पानी के कारण बालदियों को बहुत चक्कर काटना पड़ता था। अतः अनेक बालदियों ने इस पानी को हटाने का प्रयत्न किया था जिसमें एक हेमानामक बिनजारा ने ही सफलता पाई थी जिसकी एक कहावत भी है कि—

"लाखा सरीखा लख गया, मोठा सरीखा आठ। हेम हठाउन आदमी, फिरन इणरी व मह॥

इत्यादि प्रमाणों से साबित होता है कि उपकेशपुर के पास मीठे पानी की झील थी।

‡ "गोचर्यां मुनीश्वरा व्रजंति परं भिक्षा न लभन्ते। लोकाः मिथ्यात्ववासिताः यादृशा गता तादृशा आगता। मुनीश्वराः पात्राणि प्रतिलिख्य मासं यावत् संतोषेन स्थिताः पश्चात् विहारं कृत्वा पुनः कदाचित् तत्रागताः ग्रामानदूरस्थापर्वते भो आचार्य अत्र चातुर्मासकं कुरु। तव महालाभो भविष्यति। गुरुः पंचत्रिंशत् मुनिभिः सहस्थितः मासी द्विमासी त्रिमासी चतुर्मासी उपवासिन कारिता"

उपकेशगच्छ पट्टावली—१ १

वरगृह में रहता। भाग्यवशात् जिस दिन दोनों कुमार देहली पहुँचे उसी दिन राजा ने अन्तेवरगृह में प्रवेश किया। अत' राजकुमार प्रतिदिन दरबार में मुजरो करने को जाकर एक अश्व भेंट कर दिया करता था। ऐसे करते १८० दिनों में १८० अश्व१ भेंट कर दिये। पर उसकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। इधर तो उत्पल देव हताश हो रहा था उधर राजा राजसभा में आया। जब उत्पलदेव के अश्वभेंट का समाचार राजा ने सुना तो तुरत ही कुमार को बुला कर पूंछा कि तुम क्या चाहते हो ? राजकुमार ने कहा कि मैं एक नगर आबाद करने के लिये भूमि चाहता हूँ। राजा ने कह दिया कि जहाँ ऊजड़ भूमि देखो वहाँ नयानगर वसा लो मेरी इजाजत है। बस फिर तो था ही क्या ? दोनों वीर वहाँ से चलते चलते मडोर तक आये पर उनको कोई ऐसी भूमि न मिली कि नगर आबाद कर सकें। वहाँ से आगे चल कर एक समुद्र तट पर आकर देखा तो वहाँ उन्होंने भूमि पसद कर ली क्योंकि जहाँ पानी की प्रचुरता होती है वहाँ सब बातों की सुविधा रहती है। खाद्य पदार्थ भी पैदा होता है जिससे व्यापार खुल उठता है इन फायदों को सोच कर उन्होंने वहीं छड़ी रोप दी अर्थात् नगर बसाने का निश्चय कर लिया।

इस बात की इत्तला भिन्नमाल में पहुँची कि वहाँ से हजारों लोग चल कर नूतन नगर में आ बसे। भूमि उसवाली होने से नूतन नगर का नाम उएस रख दिया। स्वल्प समय में नगर२ नौ योजन चौड़ा और १२ योजन लम्बा बस गया। भिन्नमाल में १८००० व्यापारी ९००० ब्राह्मण और दूसरे लोग तो इतने थे कि जिनकी गिनती लगानी भी मुश्किल थी। इसका कारण राजा भीमसैन का जनता के प्रति सद्भाव नहीं पर क्रूर भाव ही था। अत' राजा के अत्याचार से दुखित हुई जनता उन दु'खों से मुक्त हो नूतनवास उएस नगर में आ बसी। जब व्यापारी लोग आ गये तो दूसरे वहां रह कर करें भी क्या ? व्यापारियों के साथ ब्राह्मण भी आ गये और दो २ व्यापारी † एक एक ब्राह्मण का निर्वाह भी कर देते थे। और उस नूतन नगर की अधिष्टात्री चामुंडा देवी की स्थापना कर दी।

१ ढेलीपुरे राजाश्रीसाधु तस्य ऊहडेन १८० (५५) तुरंगमा भेंटिकृता उएसा संतुष्टो ददौ। ततो भिन्नमालात् अष्टादश सहस्र कुटुम्ब आगताद्वादश योजना नगरी जाता।

'उपकेश गच्छ पट्टावली'

२ अष्टादश सहस्राणि, कुलानां वणिजां तथा; तदर्द्धानि द्विजातीनामसंख्याः प्रकृतिरपि, सहादाय ययौ तत्र यत्रतन्नगरं कृतम्, नव योजन विस्तीर्णं दैर्ध्यं द्वादश योजनम्।

'उपकेश गच्छ चरित्र'

२ कई प्राचीन वंशावलियों में इस विषय के कवित्त भी मिलते हैं जैसे —

गाड़ी सहस गुण तीस, भला रथ सहस्रग्यारे, अट्ठारह सहस्र असवार पाला पायक नहीं कोई पारे
उट्ठी सहस अट्ठार, तीस हस्ती मद जरता; दश सहस्र दुकान वणिक व्यापार करता
नव सहस विप्र भिन्नमाल से मणिधर साथे मॉडिया; राव उपलदे मंत्री ऊहड, घरबार साथे छोंड़िया।१।

† द्वाभ्यां वणिग्भ्यां तत्रेक विप्रवृत्तिः प्रकल्पिता पाद्र देवी च चामुंडा तत्स्थ लोक कुलेश्वरीः। पिता पुत्रश्च यत्रोभौ वाणिजौ व्यवहारिणौ पण्मासी तस्थुपो जातु मिलितौ न मिथ क्वचित्

'उपकेशगच्छ चरित्र'
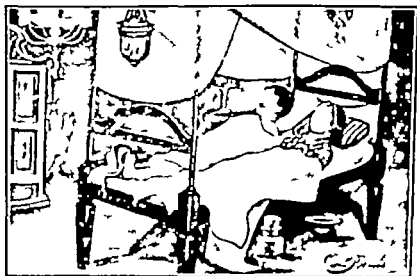
आचार्य रत्नप्रभ सूरि ५०० मुनियों के साथ अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुए उपकेशपुर पधारे और लुणाद्रि पहाडी पर ध्यान लगा दिया। पृष्ट ७०
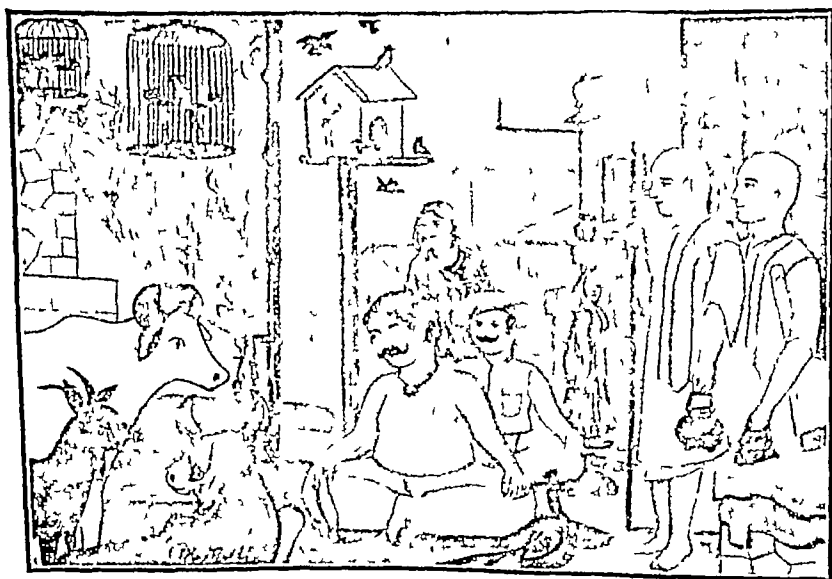
आचार्य रत्नप्रभ सूरि के दो तपस्वी साधु उपकेशपुर में भिक्षार्थ गये एक घर में प्रवेश किया वहाँ निर्दय लोग जीवों को काट रहे थे और मांस मदिरा [illegible] । देख मुनि वापिस लोट आये। पृष्ट ७०

एक भी घर नहीं पाया कि जिसके घर की जैन साधु भिक्षा ले सके। क्योंकि नगर के तमाम लोग मांसा हारी थे। और मदिरा पीते थे घर २ में मांस मदिरा का खूब गहरा प्रचार था। रक्त एवं हड्डियाँ घास फूस की भांति दृष्टिगोचर होती थीं एवं मदिरा पानी की भाँति पीयी जाती थी। अत. साधु जैसे रिक्त हाथों गये थे वैसे ही वापिस लौट आये और तपोवृद्धि कर ध्यान में स्थित हो 'ज्ञानामृत भोजनम्' इस युक्ति को चरितार्थ कर रहे थे पर औदारिक शरीर वाले इस प्रकार आहार बिना कहाँ तक रह सकते हैं ?

उपाध्याय वीरधवल ने समय पाकर सूरिजी से निवेदन किया कि हे पूज्यवर! साधुओं को तप करते को बहुत समय हो गया। सब साधु एक से भी नहीं होते हैं। अत. इस प्रकार कैसे काम चलेगा ? इस पर सूरिजी ने आज्ञा फरमा दी कि यदि ऐसा ही है तो यहां से विहार करो। इस बात को सुन कर उपाध्यायजी ने भी सब साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी और साधुओं ने विहार की तैयारी कर ली। वहा की अधिष्टात्री देवीचामुंडा ने अपने ज्ञानद्वारा इस सब हाल को जान विचार किया कि आर्बुदाचल से देवी चक्रेश्वरी के भेजे हुये महात्मा मेरे नगर में आकर इस प्रकार भूखे प्यासे चले जाँय इसमें मेरी क्या शोभा रहेगी। अत. देवीचामुण्डा ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप कृपा कर यहां चतुर्मास करावें आपको बहुत लाभ होगा इत्यादि। इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो वास्तव में लाभ होने वाला ही था, देवी की विनती स्वीकार कर ली और साधुओं को आर्डर दे दिया कि जो विकट तपश्चर्या के करने वाले हैं मेरे पास ठहरें। शेष विहार कर सुविधा के क्षेत्र में चतुर्मास करें। इस पर कनकप्रभादि ४६५ साधु विहार कर कोरटपुर की ओर चले गये और शेष ३५ साधु सूरिजी की सेवा में रहे, जो मास दो मास तीन मास और चार मास की तपश्चर्य्या करने में कटिबद्ध थे।

इधर तो सूरिश्वरजी अपने शिष्यों के साथ भूखे प्यासे जंगल की पहाडी पर ध्यान लगा रहे थे। उधर देवी ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा कर रही थी कि मैंने सूरिजी को वचन देकर चतुर्मास करवाया है तो इनके लिये कोई भी लाभ का कारण हो। ठीक है कि कार्य बनने को होता है तब कोई न कोई निमित्त भी मिल जाता है।

यह बात तो आप पीछे पढ़ आये हैं कि राजपुत्र उत्पलकुमार ने अपनी मुसाफिरी के समय वैराटपुर के क्षत्रिय वीर सग्रामसिंह के यहा एक रात्रि मेहमान रह कर उनकी पुत्री जलणदेवी के साथ सम्बन्ध किया था। बाद आप उपकेशपुर आबाद करने के पश्चात् उनके साथ शादी कर ली थी। उसी जालन देवी के एक पुत्री हुई थी जिसका नाम सौभाग्यसुन्दरी रक्खा था।

---

तस्मिन्नमूकेशिपुरे पर्यन्तोद्यानसीमनि। सूरीणाँ तस्थुषों कोऽपि नाऽकार्षीद वन्दनादिकम्।
तमानादरमालोक्य सूरीणं शासनामरी। गौरवार्थं शासनस्योत्सर्पणा ये मनो व्यधात्॥
ततो देव्याऽर्थितः सूरि श्चातुर्मास्यंतु स्थीयताम्। एवंकृते महानलाभः प्राप्स्यते हित्वया प्रभो।
आदि देश मुनिः शिष्या, नत्र तिष्ठन्तु साधवः। उग्रं तपः कर्तु कामा गच्छन्त्वन्येयदृच्छया॥
पंचत्रिंशतु मुनय; स्थितास्तत्र महोजसः। अन्ये विजहू कोरंटपुरं चातुर्मास्यचिकीर्षया।

उपकेशगच्छ चरित्र

इधर मंत्री ऊहड़ के एक पुत्र हुआ जिसका नाम त्रिलोक्यसिंह रखा था। भाग्यवशात् राजा उत्पलदेव ने नगर आबाद करवाने में मंत्री ऊहड़ का उपकार समझ अपनी पुत्री सौभाग्यसुंदरी का विवाह मंत्री पुत्र त्रिलोक्यसिंह के साथ कर उसने पर जो ऋण था उसे हलका कर दिया था। वे दम्पति आनन्द से अपना संसार निर्गमन कर रहे थे।

मरुभूमि में एक पीणा जाति के सर्प होते हैं। लघु शरीर होने पर भी उसका विष तेज होता है। जिस किसी को काटा हो तो फिर उसके जीवन की आशा कम हो जाती है।

भाग्यवशात् एक समय राजकन्या अपने पतिदेव की शय्या पर सो रही थी। रात्रि में अकस्मात् पीणा सर्प ने मंत्रीपुत्र त्रिलोक्यसिंह को डस खाया। जिसका विष उसके सब शरीर में व्याप्त हो गया। जब राजपुत्री ने जागृत हो अपने पतिदेव के शरीर को विष व्याप्त पाषाणवत् देखा तो एक दम दुःख के साथ रुदन करने लगी। जिसको सुन कर सब कुटुम्ब एकत्रित हुआ और कुमार की दशा पर करुणाक्रन्दन करने लगा। इधर बहुत से मंत्र यंत्रवादियों को बुलाया गया। उन्होंने अपना-अपना उपचार किया पर उन सबके सबने निराश होकर कह दिया कि राजकमाई मृत्यु को प्राप्त हो गया। अब इसको शीघ्र अग्नि-संस्कार कर देना चाहिये।

बस! फिर तो दुःख का पार ही क्या था? कारण इस प्रकार की मृत्यु उस समय बहुत कम होती थी। जिसमें भी मंत्रीपुत्र एवं राजकमाई की युवावस्था में अचानक मृत्यु हो जाना बड़े ही दुःख की बात थी। नगर भर में हाहाकार मच गया। पर इसका उपाय भी तो क्या था? उस मृत कुमार के लिये एक मांपन (मंडी) बना कर उसमें बैठा कर श्मशान की ओर जाने लगे। इधर राजकन्या अपने पतिदेव के साथ जल कर सतित्व धर्म रखने के लिये अग्रगामी हो मांपन के साथ हो गई।*

कई एक लोग नासमझी के कारण यह भी कह देते हैं कि रत्नप्रभसूरि एक शिष्य को साथ लेकर ओसियाँ में आये थे और वहाँ गोचरी नहीं मिलने से वह शिष्य जंगल से काष्ठ भार लाकर उसको बेच कर अन्न लाकर रोटी बना कर सूरिजी को खिलाता था। वह कार्य इतना अधर्म किया कि उसके सिर के बाल झड़ कर टाट पड़ गई। एक दिन सूरिजी ने उस शिष्य के सिर पर हाथ दिया तो सिर पर कोई बाल नहीं पाया। उस सूरिजी ने कारण पूछा शिष्य ने सब हाल सुनाया। अतः सूरिजी ने रुई की पूनी का सर्प बना कर उसके सांप से राजपुत्र को कटवाया। बाद राजा वगैरह सूरिजी के पास आकर पुत्र जिलाने की प्रार्थना की तब सूरिजी ने उस सांप से राजपुत्र का विष वापिस खिंचवाया। इस प्रकार चमत्कार बतला कर राजा प्रजा के

---

* पर्यंके राजपुत्र्यास्तु, पुत्रं राजमन्त्रिणः। दैवात्कालाद्दशत् सर्पः, निष्फलाः सकलो विधिः ॥
उत्पाटमानः श्मशानेतु, मृतो ज्ञात्वा जनैस्ततः मन्त्रि भस्म सार्द्धं, अनुगच्छत्तु ते मता ॥

उपकेशगच्छ चरित्र

अथ मंत्रीश्वर ऊहड़ सुतं सर्पेन दष्टः। अनेक मंत्र वादिनः आहूताः परं न कोपि समर्थस्तैः कथितं अयं मृत दाघो दीयतां। तस्य स्त्री काष्ठभक्षणे श्मशाने आगता, अहो महान् दुःखो जातः।

उपकेशगच्छ पट्टावलि १ १४२।

एक भी घर नहीं पाया कि जिसके घर की जैन साधु भिक्षा ले सके। क्योंकि नगर के तमाम लोग मांसा हारी थे। और मदिरा पीते थे घर २ में मांस मदिरा का खूब गहरा प्रचार था। रक्त एवं हड्डियाँ घास फूस की भाति दृष्टिगोचर होती थीं एवं मदिरा पानी की भाँति पीयी जाती थी। अत. साधु जैसे रिक्त हाथों गये थे वैसे ही वापिस लौट आये और तपोवृद्धि कर ध्यान में स्थित हो 'ज्ञानामृत भोजनम्' इस युक्ति को चरितार्थ कर रहे थे पर औदारिक शरीर वाले इस प्रकार आहार बिना कहाँ तक रह सकते हैं ?

उपाध्याय वीरधवल ने समय पाकर सूरिजी से निवेदन किया कि हे पूज्यवर! साधुओं को तप करते को बहुत समय हो गया। सब साधु एक से भी नहीं होते हैं। अत. इस प्रकार कैसे काम चलेगा ? इस पर सूरिजी ने आज्ञा फरमा दी कि यदि ऐसा ही है तो यहां से विहार करो। इस बात को सुन कर उपाध्यायजी ने भी सब साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी और साधुओं ने विहार की तैयारी कर ली। वहां की अधिष्टात्री देवीचामुंडा ने अपने ज्ञानद्वारा इस सब हाल को जान विचार किया कि आबुदाचल से देवी चक्रेश्वरी के भेजे हुये महात्मा मेरे नगर में आकर इस प्रकार भूखे प्यासे चले जाँय इसमें मेरी क्या शोभा रहेगी। अतः देवीचामुण्डा ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप कृपा कर यहां चतुर्मास करावें आपको बहुत लाभ होगा इत्यादि। इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञान में उप-योग लगा कर देखा तो वास्तव में लाभ होने वाला ही था, देवी की विनती स्वीकार कर ली और साधुओं को आर्डर दे दिया कि जो विकट तपश्चर्या के करने वाले हैं मेरे पास ठहरें। शेष विहार कर सुविधा के क्षेत्र में चतुर्मास करें। इस पर कनकप्रभादि ४६५ साधु विहार कर कोरटपुर की ओर चले गये और शेष ३५ साधु सूरिजी की सेवा में रहे, जो मास दो मास तीन मास और चार मास की तपश्चर्या करने में कटिबद्ध थे।

इधर तो सूरिश्वरजी अपने शिष्यों के साथ भूखे प्यासे जंगल की पहाड़ी पर ध्यान लगा रहे थे। उधर देवी ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा कर रही थी कि मैंने सूरिजी को वचन देकर चतुर्मास करवाया है तो इनके लिये कोई भी लाभ का कारण हो। ठीक है कि कार्य बनने को होता है तब कोई न कोई निमित्त भी मिल जाता है।

यह बात तो आप पीछे पढ़ आये हैं कि राजपुत्र उत्पलकुमार ने अपनी मुसाफिरी के समय वैराटपुर के क्षत्रिय वीर सग्रामसिंह के यहां एक रात्रि मेहमान रह कर उनकी पुत्री जलणदेवी के साथ सम्बन्ध किया था। बाद आप उपकेशपुर आबाद करने के पश्चात् उनके साथ शादी कर ली थी। उसी जालन देवी के एक पुत्री हुई थी जिसका नाम सौभाग्यसुन्दरी रक्खा था।

---

तस्मिन्नमूकेशिपुरे पर्यन्तोद्यानसीमनि। सूरीणाँ तस्थुषाँ कोऽपि नाऽकार्षीद वन्दनादिकम्।
तमानादरमालोक्य सूरीणं शासनामरी। गौरवार्थं शासनस्योत्सर्पणा यै मनो व्यधात्॥
ततो देव्याऽर्थितः सूरि श्चातुर्मास्यंतु स्थीयताम्। एवंकृते महानलाभः प्राप्स्यते हित्वया प्रभो।
आदि देश मुनिः शिष्या, नत्र तिष्ठन्तु साधवः। उग्रं तपः कर्तु कामा गच्छन्त्वन्येयदृच्छया॥
पंचत्रिंशतु मुनय; स्थितास्तत्र महोजसः। अन्ये विजहृ कोरंटपुरं चातुर्मास्यचिकीर्षया।

उपकेशगच्छ चरित्र

सब लोग आश्चर्यचकित हो गये । चारों ओर हर्ष के मारे बाजे बजने लगे । और सबके मुँह से यही शब्द निकलने लगे कि आज इस महात्मा की कृपा से मंत्रीपुत्र ने नया जन्म लिया है । अर्थात् काल के गाल में गया हुआ राजकुमार जीवित हो गया है इत्यादि । अब तो नगर में सर्वत्र आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि और जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी ।

राजा और मंत्री ने सोचा कि महात्मा का अपने पर महान् उपकार हुआ है तो प्रत्युपकार के लिये अपने को भी महात्मा का उचित सत्कार करना चाहिये । अतः उन्होंने अपने खजानचियों को हुक्म कर दिया कि तुम्हारे पास कोष में जितने बढ़िया से बढ़िया रत्न मणियाँ हों वह सूरिजी की भेंट कर दो । तत्पश्चात् महात्माजी की जयध्वनि और हर्ष वाजित्रों के साथ मंत्रीपुत्र को लेकर नगर की ओर चले गये और सर्व नगर में महान् हर्ष के साथ सूरिजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे । वे ही लोग क्या, पर चमत्कार को नमस्कार सर्वत्र हुआ ही करता है ।

जब राजखजानचियों ने बहुमूल्य रत्नादि आदि लेकर सूरिजी की सेवा में भेंट की तो सूरिजी सोचने लगे कि अहो संसार लुब्ध जीवों की अज्ञानता कि जिस परिग्रह को ज्ञानियों ने अनर्थ का मूल बतलाया है संसार में जितने पौद्गलिक सुख दुःख और तृष्णा है उनका मूल कारण परिग्रह ही है तथा मैं अनर्थ का मूल और संसार की वृद्धि समझ कर परिग्रह का त्याग कर आया हूँ । उसको ही संसारी लोग एक महत्व की वस्तु समझ यहाँ लाकर मुझे खुश करना चाहते हैं इत्यादि, विचार करते हुए आप विशेष उदासीनता के साथ केवल ध्यान में ही मस्त रहे ।

इस पर खजानचियों ने सोचा कि शायद महात्मा इतने थोड़ा द्रव्य से संतुष्ट नहीं हुये हों, उन्होंने जाकर राजा एवं मन्त्री से कहा कि हमारी भेंट महात्माजी ने स्वीकार नहीं की है । अतः आप को जैसा हुक्म फरमावें वैसा ही किया जाय ।

मन्त्री ने राजा से कहा कि अपनी बड़ी भारी गलती हुई है कि जिन महात्मा का अपने पर इतना बड़ा उपकार हुआ उनके लिये अपने नौकरों से भेंट करवाई । अतः खुद अपने को चलना चाहिये । बस, फिर तो देरी ही क्या थी ? चार प्रकार की सेना तैयार करवाई और सर्व नगर में इत्तला करवा दी । अतः बड़े ही समारोह से राजा मंत्री एवं नागरिक लोगों ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर वन्दन कर नम्रता

मार्गेकस्मिन्मुनिस्तत्र, प्रोवाच तांस्तु वाहकान् कथं यस्यन्ति नीरन्ध्रमिश्रुकस्माऽन्दं चौदिस ॥
अन्वेषितो ऽपिसाधुः स न तदा दृष्टिगोचरः ययुः सर्वे स्वास्थे परशं शोक विह्वला ॥
मृतकं तु समास्थाप्य जगत्सुस्ते यथा निधि मोतुम नम्र शिरसो स्तन्वो रव च बालकाः ॥
अस्माकं मृत्यु चौरेण, हृषित पुत्रो महानिधि । श्रीनयरत्न मंत्रि पुत्र रत्नजाभार्य च मा
मनन्तो हि महात्मान शरणागत वत्सल साम्नुयन्ति च कार्याणि साधव साधु दक्षना ॥
एवं श्रुत्वा सोऽहेतु तपामन्यतमोमुनि । प्रोवाच दयया तांस्तु उष्ण मानीयतां जलम् ॥
मुने क्षालित चरणन जलेन परिषेचनम् । कृतं मृतो परितदा सहसा जीवितोत्थित ॥
तदाच जनता तत्र हर्ष वादित्र निस्वने । अद्य त्वया मंत्रिपुत्र ! लब्धं जन्म द्वितीयकम् ॥
उपकेश गच्छ चरित्र

सवालक्ष मनुष्यों को ओसवाल बना कर जैनधर्म धारण करवाया इत्यादि। पर यह बात बिलकुल गलत ही नहीं बल्कि एक बिना शिर पैर की गप्प है। सूरिजी एक साधु के साथ नहीं पर ५०० साधुओं के साथ पधारे और भिक्षा के अभाव में वे तपश्चर्या करते थे। न रुई का सॉंप बनाया और न राजपुत्र को कटवाया। चौदहपूर्वधर महात्मा ऐसा कौतूहल करते ही क्यों? इन्होंने जो कुछ किया था, वह अपने आत्मबल और उपदेश द्वारा ही किया था। यह प्राचीन पट्टावलियों, चरित्र ग्रन्थों में विद्यमान है जिसको कि मैं आज लिख रहा हूँ। जिसको पढ़ने से आप स्वय समझ सकेंगे।

नगर में शोक के काले बादल सर्वत्र छा गये थे। राजा, मंत्री और नगर के लोग रुदन करते हुये राजजामाता की स्मशान यात्रा के लिये जा रहे थे। भाग्यवशात् रास्ता में एक लघु साधु ने आकर उन लोगों से कहा अरे मूर्ख लोगो! इस जीते हुये मंत्रीपुत्र को जलाने के लिये स्मशान क्यों ले जा रहे हो? बस, फिर तो था ही क्या? उन लोगों ने जाकर राजा एव मंत्री से सब हाल निवेदन किया। अत. उनके अन्तरात्मा में कुछ चैतन्यता जागृत हुई। शीघ्र ही कहा कि उस साधु को यहाँ लाओ। जब साधुको ढूँढने को गये तो वह नहीं मिला। इस हालत में सब की सम्मति हुई कि बहुत अर्से से शहर के बाहर लुणाद्री पहाड़ी पर कई साधु आये हुये हैं और वह लघु साधु भी उनके अन्दर से एक होगा, अत. मृतकुमार को लेकर वहाँ ही चलना चाहिये। बस गरजवान क्या नहीं करते हैं?

सब लोग चल कर सूरिजी के पास आये और राजा तथा मंत्री हाथ जोड़ कर दीनस्वर से करने लगे प्रार्थना। कि हे दयासिन्धो! आज हमारे पर दुर्दैव का कोप होने से हमारा राज्य शून्य हो गया है। हमारे पुत्र रूपी धन को मृत्यु रूपी चोर ने हरण कर लिया है। हे करुणावतार! आज हमारे दु:ख का पार नहीं है, अत. आप कृपा कर हमारे संकट को दूर कर पुत्र रूपी भिक्षा प्रदान करें। आप महात्मा हैं रेख में मेख मारने को समर्थ हैं इत्यादि नम्रता पूर्वक प्रार्थना की।

इस पर वीरधवलोपाध्याय ने समय एव लाभालाभ का कारण जान उन लोगों से कहा कि थोड़ा गर्म जल होना चाहिये। बस पास में ही नगर था और आज तो घर २ में गरम जल था। एक आदमी जाकर गर्म जल लाया। उस गर्मजल से सूरिजी के चरणांगुष्ठ का प्रक्षालन कर इस जल को मंत्री पुत्र पर डाला। बस, फिर तो था ही क्या, मंत्रीपुत्र के शरीर से विष चोरों की तरह भाग गया और मंत्रीपुत्र खड़ा हो कर इधर उधर देखने लगा।

---

वादित्रान् आकर्ण्य लघुशिष्यः तत्रागतः झंपाणो दृष्ट्वा एवं कथापयति भो! जीवितं कथं ज्वालयत्? ते श्रेष्ठिने कथितं एषः मुनिवरः एवं कथयति। श्रेष्ठिना झंपाणो वालितः क्षुल्लकः प्रणष्टः गुरु पृष्ठे स्थितः—मृतकामानीय गुरु अग्रे मुचति श्रेष्टिगुरुचरणो शिरं निवेश्य एवं कथयति भोदयालु! मम देवा रुष्ठः मम गृहो शून्यो भवति तेन कारणेन मम पुत्र भिक्षां देहि? गुरुणा प्रासुक जलमानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितं। सहसात्कारेण सज्जो बभूव हर्ष वादित्राणि बभूव। लोकैः कथितं श्रेष्टि पुत्र नूतन जन्मो आगतः।

उपकेशगच्छ पट्टावली पृ० १८५

मंत्र यंत्र वादियों ने कह दिया कि अब यह मरगया है इसका अग्निसंस्कार करवादो अत विमान में बैठाकर श्मशान में लेजा रहे थे उसकी पत्नी सती होने के लिये अश्वारूढ हो आगे चल रही थी। सामने एक लघु साधु आकर कहता है कि इस जीते हुये को क्यों जलाते हो ? पृष्ठ ७२

लोगों के कहने से विमान सूरिजी के पास लाया और राजा एव मंत्री ने प्रार्थना की कि हे पूज्य ! आज हमारा राज शून्य हो गया अत' आप हमको पुत्र रूपी भिक्षा दिरावें। पृष्ठ ७३

राजादि सब लोगों का सूरिजी के चारित्रमय विशुद्धचारित्र, निस्पृह और जमत्कल्याणकारी वचनों पर पहिले से ही श्रद्धा विश्वास हो आया था फिर सूरिजी ने स्वतः धर्म सुनने को फरमा दिया फिर तो बात ही क्या थी उन लोगों ने शिर झुका कर कह दिया कि प्रभो ! आप कृपा कर हम लोगों को जरूर धर्म का स्वरूप सुनावें ।

इस पर आचार्यश्री ने उन धर्म पिपासुओं पर दया भाव लाकर उच्च स्वर और मधुर भाषा से धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया, हे राजेन्द्र ! इस प्रकार संसार के अन्दर जीव को परिभ्रमण करते हुए अनंताकाल हो गया कारण कि सूक्ष्मबादर निगोद में अनंतकाल, पृथ्वी पाणि तेउ वायु में असंख्यातकाल और वनस्पति में अनंताअनंत काल परिभ्रमण किया । बाद कुछ पुन्य बढ़ जाने से बेन्द्रिय एवं तेन्द्रिय चौरिंद्रिय व तीर्यंच पांचेन्द्रिय व नरक और अनार्य मनुष्य व अकाम निर्जरादि से देवयोनि में परिभ्रमण किया पर उत्तम सामग्री के अभाव से शुद्ध धर्म न मिला, हे राजन् ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि सुकृतों का सुफल और दुष्कृत्यों का दुष्फल भवान्तर में अवश्य मिलता है। इस कारण शुभाशुभ कर्म करता हुआ जीव चतुर्गति में परिभ्रमण करता है जिसको अनंतानंतकाल व्यतीत हो गया । जिसमें अव्वल तो जीव को मनुष्यभव ही मिलना मुश्किल है । कदाच मनुष्य भव मिल भी गया तो आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शरीरआरोग्य, इन्द्रियपरिपूर्णता और दीर्घायुष्य क्रमशः मिलना दुर्लभ है, कारण पूर्वोक्त साधनों के अभाव में धर्म कार्य्य बन नहीं सकता है अगर किसी पुन्य के प्रभाव से पूर्वोक्त सामग्री मिल भी जावे परन्तु सद्गुरु का समागम मिलना तो अति कठिन है और सद्गुरु बिना सद्ज्ञान की प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है ।

हे नरेश ! आप जानते हो कि बिना गुरु के ज्ञान हो नहीं सकता है और संसार में जितना अज्ञान फैलाया है वह स्वार्थी कुगुरुओं ने ही फैलाया है । आप स्वयं सोच सकते हो कि क्या जीवहिंसा से भी कभी धर्म हो सकता है ? पर पाखण्डियों ने तो केवल मांस की लोलुपता के कारण मांस खाने में, मदिरा पीने में और व्यभिचार सेवन करने में भी धर्म बतला दिया है, इतना ही क्यों ? जिस माता बहिनों एवं पुत्रियों का अपने मनुष्य स्पर्श तक भी नहीं करते वे उनके साथ गमन करने में भी लोगों को जाता स्वर्ग पुन्य बतलाते हैं । अरे इन्होंने तो अपनी बहिन बेटी से भी परहेज नहीं रक्खा है । अतः एक जन्म के देने वाली माता के अलावा संसार भर की स्त्रियों के साथ मैथुन कर्म की छूट दे दी है । भला सोचिये विवेक

१ यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं भुज्यते फलम् । यादृशं मुप्यते बीजं तादृशं प्राप्यते फलम् ॥
सुचिनाकम्मा सुचिना फला दुचिना कम्मा दुचिना फला भवंति ।

० चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो । माणुसत्तं सुइ सद्धा संजमम्मि य वीरियं ।
समावन्नाण संसारे, नाणा गोत्तासु जाइसु । कम्मानानाविहा कट्टु पुढो विस्सं भया पया ॥
एगया देव लोएसु नरएसु विएगया । एगया आसुरं कायं, अहा कम्मेहिं गच्छइ ।
एगया खत्तिओ होई, तओ चंडाल बुक्कसो । तओ कीडपयंगोय तओ कुंथु पिपीलिया ॥
माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुइ धम्मस्स दुल्लहा । जं सोचा पडिवज्जन्ति, तव खंति महिंसयं ।
आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा । सुच्चा नेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ ॥
खेत्तं वत्थु हिरण्णं च पसवो दास पोरुसं । चत्तारि काम खंधाणि तत्थसे उववज्जइ ॥
मित्तवं नायवं होई, उच्चागोए य वण्णवं । अप्पायंके महापन्ने अभिजाए जसो बले ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३

के साथ प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आपका तो हम लोगों पर महान उपकार है, पर हम कृतघ्नी लोग उसको भूल कर आपका कुछ भी स्वागत नहीं कर सके। अत उस अपराध को तो क्षमा करें और यह हमारा राज्य१ को स्वीकार कर हम लोगों को कुछ कृतार्थ बनावें इत्यादि ।

सूरीश्वरजी ने लाभालाभ का कारण जान कर एव ध्यान से निर्वृति पाकर आये हुये उन राजादि को कहा कि हे राजन् ! आप भले मेरा उपकार समझे, पर मैंने अपने कर्तव्य के अलावा कुछ भी अधिकता नहीं की है । क्योंकि हम लोगों ने स्वात्मा के साथ जनता के कल्याण के लिये ही योग धारण किया है । दूसरे आप जो रत्नादि द्रव्य और राज का आमत्रण करते हैं वह ठीक नहीं क्योंकि अभी आपको यह ज्ञान नहीं है कि यह पदार्थ आत्म कल्याण में साधक हैं या बाधक ? यदि हमको इन पुद्‌गलिक पदार्थों का ही मोह होता तो हम स्वयं पुरअन्तेवर एव राजभंडार का त्याग कर साधु नहीं बनते । अत इस धन दौलत एवं राज से हम निस्पृही योगियों को किसी प्रकार से प्रयोजन नहीं है इत्यादि ।

राजा मन्त्री और नागरिक लोग सूरिजी महाराज के निस्पृहता के शब्द सुन कर मंत्र मुग्ध एव एकदम चकित हो गये और मन ही मन में विचार करने लगे कि अहो ! आश्चर्य कि कहा तो अपने लोभानन्दी गुरु कि जिस द्रव्य के लिये अनेक प्रयत्न एव प्रपंच कर जनता को त्रास देकर द्रव्य एकत्र करते हैं तब कहा इन महात्मा की निर्लोभता कि बिना किसी कोशिश के आये हुए अमूल्य द्रव्य को ठुकरा रहे हैं । वास्तव में सच्चे साधुओं का तो यही लक्षण है हमें तो अपनी जिन्दगी में ऐसे निस्पृही साधुओं के पहिले ही पहल दर्शन हुये हैं । फिर भी दुख इस बात का है कि ऐसे परम योगीश्वर अपने नगर में कई अर्से से विराजमान होने पर भी हम हतभाग्यों ने और तो क्या पर दर्शन मात्र भी नहीं किया । इनके खान पान का क्या हाल होता होगा ? इस वर्षा ऋतु में बिना मकान यह कैसे काल निर्गमन करते होंगे इत्यादि, विचार करते हुए राजा ने पुन प्रार्थना की कि हे दयानिधि ! यदि इस द्रव्य एव राज को आप स्वीकार नहीं करते हैं तो हमें ऐसा रास्ता बतलाइये कि हम आपके उपकार का कुछ तो बदला दे सकें ? क्योंकि हम लोग आपके आचार व्यवहार से बिलकुल अनभिज्ञ हैं ।

सूरिजी ने कहा राजेन्द्र ! हम लोग अपने लिये कुछ भी नहीं चाहते हैं हम केवल जनकल्याणार्थ भ्रमण करते हैं । हमारा कार्य यह है कि उन्मार्ग से भवान्तर में दुःखी बनते जीवों को सन्मार्ग पर लाकर सुखी बनाना । यदि आप लोगों की इच्छा हो तो धर्म का स्वरूप सुन कर जैन धर्म को स्वीकार कर लो ताकि इस लोक और परलोक में आपका कल्याण हो ।

---

*श्रेष्टिना गुरुणा अग्रे अनेक मणिमुक्ताफलसुवर्णवस्त्रादि आनीय भगवान गृह्यतां ? गुरुणां कथितं मम न कार्यं पर भवद्भि जैन धर्मो गृह्यतां ।

ततस्तुराजसचिव सूरये सूर्य वर्चसे । अर्पयामास सद्भक्त्या बहुरत्नं च हाटकम् ॥
"उपकेश गच्छ पट्टावली"

१ततोऽवरत् स सचिवं, श्रुत्वावै धर्मरूपकम् । गृह्यताम् जैन धर्मश्च, कल्याणं लभ्यतां त्वया ॥
'उपकेश गच्छ चरित्र

अर्पितं तद्धनं तेन, नाङ्गीकृतमलोभिना । पूज्यन्ते मुनयश्चैव, त्यक्त सर्व परिग्रहा ॥
'उपकेश गच्छ चरित्र

हे भूपेन्द्र ! आप जानते हो कि खून से लिप्त हुआ वस्त्र खून से कभी साफ हो सकता है ? नहीं कदापि नहीं । इसी प्रकार क्रूर कर्म करने वाले जीव ऐसी निर्दय प्रवृत्ति करते हैं जिसके जरिये उनको अवश्य नरक में जाना पड़ता है क्योंकि मांस भक्षण करने वाले को एक ही नहीं पर १८ दोष लगते हैं, इतना ही क्यों, पर यज्ञ का नाम लेकर निरपराध प्राणियों का वध करता है वह घोर नरक[१] में जाता है और जिस पशु को मारता है उसके जितने बाल हैं उतने हजार वर्ष तक नरक[२] में दुःख भोगना पड़ता है ।

हे धराधीश ! जब बड़े से बड़ा अपराधी जीव मुंह में तृण लेकर खड़ा हो जाता है तो वह अवध्य समझा जाता है तो सदैव तृण भक्षण करने वाले निरपराध जीवों के प्राण ले लेना कौन बहादुरी की बात है । यदि किसी धर्म शास्त्र इस प्रकार प्राणियों की हिंसा का उपदेश करते हों तो वह नास्तिक से भी नास्तिक हैं । इतना ही क्यों पर ऐसे नास्तिकों पर विश्वास रखने वाले भी घोर नरक में जाकर असंख्यकाल तक घोर दुःखों को भोगते हैं और भी देखिये महर्षियों ने क्या फरमाया है —

हे पृथ्वीपति ! जो लोग यज्ञ का नाम लेकर निराधार मूक प्राणियों के प्राण हरण करते हैं वे सीधे ही घोर नरक में जावेंगे । और अपने साथियों को भी वे नरक में साथ ले जाते हैं क्योंकि हिंसा से न तो कभी हुआ है और न कभी धर्म होने वाला ही है ।

†"जल पर पत्थर कभी नहीं तरता है, सूर्य पश्चिम में नहीं उगता है, अग्नि कभी शीतलता नहीं देती है, पृथ्वी कभी आकाश में नहीं जाती है इत्यादि पर उपरोक्त कार्य दैवयोग से कभी अपने असली भावों को छोड़ हुआ भी दिखाई देने लग जाय तथापि हिंसा से धर्म तो कभी भी नहीं होता है ।

हे नरेन्द्र ! कितनेक निर्दय दैत्य मतिक लोगों को उल्टे समझाते हैं कि भगवान ने यज्ञ के लिए ही पशु आदि जीवों को पैदा किया है अतः यज्ञ में जिन २ प्राणियों की बलि दी जाती है वह सीधे ही स्वर्ग[४] में पहुँच जाते हैं इत्यादि । पर उन निर्दय दैत्यों से कहा जाय कि यदि यज्ञ में बलिदान होने वाले जीव स्वर्ग में पहुँच जाते हैं तो क्या आप स्वयं एवं अपने माता पिता पुत्र आदि को स्वर्ग नहीं चाहते हो ? पहिले उनको बलि देकर स्वर्ग[५] पहुँचा दीजिये क्योंकि मूक प्राणी आपसे कभी यह याचना नहीं करते हैं कि हमको आप स्वर्ग

---

१ यस्तु मात्स्यानि, मांसानि भक्षयित्वा प्रपद्यते । अध्याहृत्यापराधं च, कल्पयामि वसुन्धरा ॥१॥
२ देवोपहार व्याजेन, यज्ञव्याजेन येऽथवा । घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा, घोरां ते यान्ति दुर्गतिम् ॥१॥
३ अन्धे तमसि मज्जामः, पशुभिर्ये यजामहे । हिंसा नाम भवेद् धर्मो, न भूतो न भविष्यति ॥
† यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते, प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि, सकलस्यापि जगतः । प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥
४ वैरिणोऽपि विमुच्यन्ते, प्राणान्ते तृणभक्षणात् । तृणाहाराः सदैवैते, हन्यन्ते पशवः कथम् ॥१॥
५ यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः, स्वयमेव स्वयम्भुवा । यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य, तस्मात् यज्ञे वधोऽवधः ॥
ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा । यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥

बुद्धि से सोचो कि ऐसा धर्म नरक में ले जाने वाला है या स्वर्ग में ? अर्थात इस प्रकार के दुराचार सेवन से सिवाय नरक के और स्थान ही कहां है ।

यह बात समझाई किसको जाय ? इन पाखण्डियों ने तो भद्रिक जनता के शुरू से ही ऐसे बुरे संस्कार डाल दिये हैं और साथ में यह भी प्रतिबन्ध लगा दिया है कि हमारे सिवाय किसी का उपदेश तक भी नहीं सुनना और जनता उन धर्मनाशकों के वचन पर विश्वास कर लेती है। ऐसे प्रज्ञाहिनों१ के लिये मनुष्य तो क्या पर ब्रह्माजी भी क्या कर सकते हैं ?

अत: मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि सब से पहिले आत्मकल्याणार्थ धर्म की परीक्षा२ करनी जरूरी है जैसे सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है कसोटी, सूलाक, ताप और पीटन। इसी प्रकार धर्म की परीक्षा भी शील, सत्य, दया, दान और तप से होती है, वही धर्म पवित्र कहा जा सकता है कि जिसमें पूरे चारों गुण हों। और आत्म-कल्याण भी उसी धर्माराधन से हो सकता है।

महानुभावो! केवल तिलक† और मुद्रा धारण करने से तथा मन्त्रोच्चारणमात्र से ही जीवों का कल्याण नहीं होता है। यदि जिसका हृदय आत्म-ज्ञान शून्य है तो वे चाहे ब्राह्मण ही क्यों न हो पर अपना जन्म व्यर्थ ही गवा देते हैं अत केवल बाह्य आडम्बर पर ही धोखा न खा जाना चाहिये। इतना ही क्यों पर सम्यग्ज्ञान रहित पाखण्डियों की सहायता करना एव पोषण करना भी नरक का कारण होता है, क्योंकि पाखण्डी संसार में पाखण्ड फैलाते हैं वे सब सहायकों की सहायता से ही फैलाते हैं, अत उनको भी उसका फल तो लगना ही चाहिये और इस कारण वे नरक* के द्वार देखते हैं।

हे राजेश्वर! अब इन पाखण्डियों के यज्ञ का भी थोड़ा सा हाल सुन लीजिये कि इन निर्दय दैत्यों ने ससार में मास का प्रचार करने के लिये जनता को किस तरह से धोखा दिया है। पहिले तो मैं शुद्ध यज्ञ का स्वरूप बतला देता हूँ कि जैसे सत्यरूपी स्तूप, तपरूपी अग्नि, कर्मरूपी समिधा अहिंसा रूपी आहुति से आत्मा के साथ अनादि काल से लगे हुये कर्मों को होम कर उसका नाश करना इत्यादि। इस यज्ञ से जीव स्वर्ग एवं मोक्ष का अधिकारी बनता है और इस विषय का यह एक ही उदाहरण नहीं है पर पूर्व महर्षियो ने अपनी अन्तरध्वनि अनेक३ प्रकार से उद्घोषित की है।

---

१ यस्य नास्ति स्वयंप्रज्ञा, शास्त्र तस्य करोति किं। लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणं किं करीष्यति॥

२ यथा चतुर्भि कनकं परीक्षते, निघर्णच्छेदन तापताड़नैः ।
तथैव धर्म्मः विदुषा परीक्षते, श्रुतेन शीलेन तपो दया गुणैः ॥

† तिलकैर्मुद्रयामंत्रै, क्षामतादर्शनेन च। अन्त शून्या वहिसारा वंचयन्ति द्विज जनम् ॥

* यतिने काँचनं दत्वा, ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे। चौरेभ्योऽप्यमय' दत्वा, स दाता नरकं व्रजेत् ॥

३ सत्य यूपं तपोह्यग्नि, कर्मणा समाघीमम्। अहिंसामाहुतिदद्या, देवं यज्ञ सतांमतः ॥१॥
इन्द्रियाणि पशुन् कृत्वा, वेदी कृत्वा तपो मयीं। अहिंसा माहुति कृत्वा, आत्म यज्ञ यजाम्यहम् ॥२॥
ध्यानाग्नौ जीव कुण्डस्थ, दममारुत दीपिते। असत्कर्म समितक्षेपे, अग्निहोत्रं कुरूतमम् ॥३॥

४ न शोणित कृतं वस्त्रं, शोणिते नैव शुद्धते। शोणिताद्रं यद्वस्त्रं, शुद्धं भवति वारिणा ॥

होती है अतः आप निश्चय समझ लें कि धर्म का लक्षण ही अहिंसा[1] है; इतना ही क्यों पर सर्व धर्मों ने पंच व्रत[2] मूल माने हैं उसमें भी अहिंसा को सबसे पहिला स्थान दिया गया[3] है।

महर्षियों ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई दानेश्वरी कांचन का मेरु और वसुंधरा दान देता है और दूसरा एक मरते हुये जीव को प्राणों का दान देता है तो प्राणदान के सामने कांचन[4] का मेरु और पृथ्वी कुछ भी गिनती में नहीं है।

हे राजन् ! एक तरफ तो सब वेदों[5] का अध्ययन, सर्व यज्ञ तथा सर्व तीर्थों की यात्रा और दूसरी ओर एक प्राणी के प्राणों को बचाना, इन दोनों में एक प्राणी के प्राणों को बचाना ही श्रेष्ठ रहेगा, कारण जितने धर्म कृत्य हैं; उनमें जीव दया ही प्रधान है और दया सहित धर्मकृत्य है वही आत्मकल्याण में साधक बन सकता है। जैसे अपने प्राण अपने को वल्लभ हैं वैसे ही सब जीवों को अपने[6] प्राण वल्लभ हैं, अतः किसी जीव को तकलीफ पहुँचानी यह मनुष्यधर्म[1] से बाहर की बात है इसमें भी जो मनुष्यों में राजा कहलाता है उसका तो खास धर्म ही है कि वे नीति के नाते सभी चराचर प्राणियों को अपने प्राणों के तुल्य समझें।

हे नरेन्द्र ! संसार में सब धर्मों में दान धर्म को ही श्रेष्ठ माना है जिसमें भी अभयदान को तो यहाँ तक उत्तम माना है कि उसकी बराबरी न गौदान[1] कर सकता है न पृथ्वीदान कर सकता है और न अन्नदान ही कर सकता है।

हे राजन् ! अहिंसा सब जीवों का हित करने वाली माता[1] के समान है। अहिंसा ही मरुस्थल जैसे निर्जल स्थान में अमृत की नालिका[2] समान है अहिंसा ही दुःखरूपी दावानल के शान्त करने में महामेघ की धारा समान है इत्यादि।

हे नरेन्द्र ! आप किसी भी धर्म के साहित्य को उठा कर देखिये यह अहिंसा ये ओत प्रोत ही मिलेगा, हाँ कोई लोग उसको काम में लेता हो या न लेता हो यह बात दूसरी है; पर पूर्व महर्षियों का तो यह अटल सिद्धान्त है कि बिना अहिंसा न तो धर्म होता है और न जीवों का कल्याण ही होता है, अतः आप अपना कल्याण करना चाहते हो तो आपको परमेश्वरी अहिंसा का उपासक बन जाना चाहिये।

---

१—अहिंसा लक्षणो धर्मो ह्यधर्म प्राणिनां वधः। तस्मात् धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्तव्या प्राणिनां दया ॥१॥
२—अहिंसा सर्व जीवेषु, तत्त्वज्ञैः परिभाषितम्। इदंहि मूल धर्मस्य, शेषस्तस्यैवविस्तरः ॥२॥
३—पंचैतानि पवित्राणि, सर्वेषां धर्मचारिणाम्। अहिंसासत्यमस्तेयं, त्यागो मैथुन वर्जनम् ॥३॥
४—यो दद्यात् कांचन मेरुं, कृत्स्नां चैव वसुन्धरा। एकस्य जीवितं दद्यात्, न च तुल्य युधिष्ठिर ॥४॥
५—सर्वे वेदा न तत् कुर्यु, सर्वे यज्ञाश्च भारत। सर्वेतीर्थाभिषेकाश्च, यत् कुर्यात् प्राणिनां दया ॥५॥
६—दीयते म्रिय माणस्य, कोटिर्जीवित एव वा, धनकोटिं परित्यज्य, जीवो जीवितु मिच्छति ॥६॥

१—न गोप्रदानं न महि प्रदानं, नान्नप्रदानं हि तथा प्रदानम्।
यथा वदन्तीह बुधा प्रदानं, सर्व प्रदानेष्वभयप्रदानम् ॥
२—मातेव सर्व भूतानामहिंसाहितकारिणि। अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारिणि ॥
३—अहिंसा दुःख दावाग्नि प्रावृषेण्यघनावली, भव भ्रमिरुगार्तानामहिंसा परमौषधी ॥

पहुँचावें। वे तो विचारे दीन स्वर से यही प्रार्थना करते हैं 'कि हम स्वर्ग को नहीं चाहते हैं हम तो जगल के जल घास† पर ही सन्तुष्ट हैं।'

अरे पाखण्डियो! यदि जीव हिंसा करके ही स्वर्ग चला जायगा तो नर्क के द्वार तो बन्द२ ही हो जायंगे। यदि कोई मांसभक्षी यह कहते हों कि हम यज्ञ में बलि देकर दुनिया की शान्ति३ करते हैं और इससे कुल वृद्धि भी होती है तथा दशहरे आदि में भैंसे बकरे मारना हमारी कुल परम्परा हैं तो यह उनकी भूल है क्योंकि न तो हिंसा से कभी शान्ति हुई है और न कुल वृद्धि ही होती है, वरन् हिंसा से तो उल्टी अशान्ति और कुल का नाश ही होता है।

राजन्! आप स्वय सोच सकते हो कि इस प्रकार हिंसा से धर्म की इच्छा रखने वाला अज्ञानी आत्मा मानो जाज्वल्यमान अग्नि से कमल४ की, अधकार मयी रात्रि में सूर्य की, सर्प के मुँह से अमृत की, विवहावाद में साधुवाद की अजीर्ण से निरोगता की कालकूट जहर से जीने की आशा रखता है अर्थात् उपरोक्त आशायें जैसे निरर्थक हैं वैसे हिंसा से धर्म की आशा रखना व्यर्थ है।

हे नरेन्द्र! जो मनुष्य ससार में रहता है वह भी झूठ बोलने में महापाप समझता हैं जब एक धर्म के उपदेशक झूठा उपदेश दें तथा मिथ्याग्रन्थों की रचना कर विचारे भद्रिक जीवों को तथा उनकी वश परम्परा के लिये नरक के द्वार खुल्ला रख देवे तो पहले नरक में जाकर उन भक्तों के लिये उन्हें ही नरक में स्थान करना होगा इसमें शंका की कोई बात नहीं है अर्थात् जो हिंसामय शास्त्रों की रचना करता है वह तो बिना किसी रुकावट के सीधा नरक में ही जाता है।

हे धराधिप! ससार में जितने प्राचीन धर्म हैं उन सब का एक ही सिद्धान्त है कि 'अहिंसापरमोधर्म' क्योंकि धर्म की माता अहिंसा है। विना अहिंसा न तो धर्म का जन्म होता है और न धर्म की वृद्धि ही

---

१ निहतस्य पशोर्यज्ञे, स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते। स्वपिता यजमानेन, किन्तु तस्मान्नहन्यते ॥

† नाहं स्वर्ग फलोपभोग तृषितो नाभ्यर्थितस्त्वमया। संतुष्टस्तृण भक्षणेन,सततं साधो न युक्तं तवं ॥
स्वर्गे यान्ति यादित्वया विनिहता यज्ञेध्रुवं प्राणिनो।यज्ञं किं न करोपि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथाबान्धवैः ?॥

२ यूपंच्छित्वापशूनहत्वा, कृत्वा-रुधिर कर्दमम्। यद्यवे गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥

३ हिंसाविघ्नाय जायते, विघ्न शान्त्यै कृतापिहि। कुलाचार धियाऽप्येषा, कृता कुल विनाशिनी ॥

४ स कमल वनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता, दमृत मुरगवक्त्रात् साधुवादं विवादात् ॥
रुगपम मम जीर्णाज् जीवितं कालकूटा, दभिलपतिवधाद् यः प्राणिनों धर्ममिच्छेत् ॥

१—ये चक्रुःक्रूर कर्माणः शास्त्रहिंसोपदेशकमक्ते, यास्यंतिनरके नास्तिकेभ्योऽपिनास्तिकाः

२—विश्वस्तो मुग्धधीर्लोकः, पात्यते नरकावनौ। अहो नृशंसैर्लोभान्धै, हिंसाशास्त्रोपदेश कैः ॥

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जउं। तम्हा पाणावहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंते णं ॥

कपिलाना सहस्राणि, यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति। एकस्य जीवित दद्याद्, न च तुल्यं युधिष्ठिर! ॥

न तो भूयस्तपो धर्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले। प्राणिना भयभीतानामभयंयत्प्रदीयते ॥

गुरु—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निस्पृहता एवं पंचमहाव्रत पांच समिति तीनगुप्ति, दश प्रकार का यतिधर्म, सतरह प्रकार संयम, बारह प्रकार तप, इत्यादि रत्न एव गुणयुक्त सम्यगज्ञानियों के कल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन ही अर्पण कर दिया हो उनको गुरु समझना चाहिये।

धर्म—'अहिंसापरमोधर्मः' अहिंसाही धर्म का मुख्य लक्षण है। इसके साथ क्षमा तप, दान, ब्रह्मचर्य, देवगुरु संघ की पूजा, स्वधर्मियों की सेवा उपासना भक्ति, आदि करना जिस धर्म से किसी प्राणियों को तकलीफ न पहुंचे और भविष्य में स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो उसको धर्म समझना। जैनधर्म की लिये यह श्रद्धा के मूल तीन तत्त्व हैं। इनके अलावा आत्म कल्याण के लिये श्रद्धा के साधन दो प्रकार के बतलाये हैं १—आचार ज्ञान, २—तात्त्विकज्ञान, जिसमें आचार मे अहिंसा जिसकी प्रत्येक धर्म कार्य्य में मुख्यता है। अहिंसा धर्म पालन करने वालों को सबसे पहिले तो जुआ, मांस, मदिरा वैश्या, चोरी शिकार, और परस्त्रीगमन एवम् सात कुव्यसनों का त्याग करना होता है। आगे चल कर व्रतधारी श्रावक होता है वह एक व्रत से लेकर बारह व्रत स्वीकार कर उसका पालन करता है। व्रत निम्न लिखित हैं:—

(१) पहिलाव्रत—हिलते चलते त्रस जीवों को बिना अपराध मारने की बुद्धि से मारने का त्याग करना। अगर कोई अपराध करे व मारने को आवे अथवा आज्ञा भंग करे इत्यादि उन व्यक्तियों के सामना करना गृहस्थों के लिये व्रतभंग नहीं है।

(२) दूसराव्रत—ऐसा झूठ न बोलना चाहिये कि वह राज कानून से खिलाफ हो अर्थात् राजदंड हो और लोगों में भंडाचार हो। अपनी कीर्ति व प्रतिष्ठा में हानि पहुँचे। इसी प्रकार झूठीसाक्षीदेना, विश्वासघात व धोखेबाजी राजद्रोह देशद्रोह मित्रद्रोह इत्यादि न करना इत्यादि असत्य कार्यों की मना है।

(३) तीसराव्रत—बिना दी हुई वस्तु नहीं लेना अर्थात् चोरी करने का त्याग है। जिस चोरी से राजदंड हो—लोगों में भंडाचार अर्थात् व्रतधारी की कीर्ति व विश्वास में शंका हो। परभव में उन क्रूर कर्म का बदला देना पड़े। ऐसे कार्यों की सख्त मना है।

(४) चौथेव्रत में—स्वदारासंतोष अर्थात् संस्कारपूर्वक शादी की हुई हो उनके सिवाय परस्त्री, वैश्यादि से गमन करना मना है।

(५) पांचवांव्रत में—धन माल हिरद चतुष्पद राज स्टेट जमीन वगैरह स्वेच्छा से परिमाण किया हो उनसे अधिक ममत्व बढ़ाना मना है।

(६) छठाव्रत में—पूर्वादि दश दिशाओं में जाने की मर्यादा करने पर अधिक जाना मना है।

(७) सातवांव्रत—उपभोग परिभोग की मर्यादा है जैसे खाने पीने के पदार्थ एक ही वक्त काम में आते हैं उसे उपभोग कहते हैं और वस्त्र भूषण स्त्री मकानादि पदार्थ बारम्बार काम मे आते हैं उस परिभोग कहते हैं। इनका परिमाण कर लेने के बाद अधिक नहीं भोग सकते हैं। और मांस मदिरा मधु, मक्खन, अनंतकाय, पकाया हुआ बासी अन्नादि रसचलितभोजन, द्विदलादि कि जिसमें असंख्य जीवोत्पत्ति होती है वह सर्वथा त्याज्य है। दूसरा व्यापारापेक्षा जो १५ कर्मादान अर्थात् अधिकाधिक कर्मबन्ध के कारण हों जैसे (१) अग्नि का आरंभ कर कोयलादि का व्यापार करना (२) वन कटवा कर व्यापार (३) शकटादि बनवाकर किराये से फिराना (४) किराये की निमित्त से मकानादि बनवाना व गाड़ी बैल वगैरह भाड़े देना या फिराना (५) पत्थर की खानें निकलवाना (६) दांत (७) लाख (८) रसघीतेल दूध मधु वगैरह (९) विष सोमलादि का व्यापार (१०) केशवाले जान-

हे सज्जनो! मैंने आपको हिंसा और अहिंसा की समालोचना करके बतलाई है। इसमें मेरा कुछ भी स्वार्थ नहीं है क्योंकि साधु का जीवन तो सदा परोपकार के लिये ही होता है। अगर किसी जीव को उन्मार्ग जाता हुआ देखें तो हमारा धर्म है कि हम उनको सन्मार्ग बतलावें, फिर मानना न मानना उनकी मरजी की बात है।

सूरिजी के सारगर्भित व्याख्यान का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा कि वे मन ही मन में हिंसा से घृणा करने लग गये तथा अहिंसा की ओर उनकी श्रद्धा झुकने लग गई। जैनशास्त्रों के अनुसार इधर तो उन लोगों के कर्मों की स्थिति परिपक्व होने से उपादान कारण सुधरा हुआ था, उधर आचार्यश्री का निमित्त कारण मिल गया फिर तो कहना ही क्या था ?

आचार्यश्री ने अपने सन्मुख बैठे हुये मठपतियो एवं ब्राह्मणों से कहा, कि क्यों, भट्टजी महाराज! आपके हृदय में भी अहिंसा भगवती का कुछ संचार हुआ है या नहीं ? कारण मैंने प्राय आपके महर्षियों के वाक्य ही आपके सन्मुख रखे हैं। हे भूर्षियो! आपके ऊपर जनता ठीक विश्वास रखती है और आप अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये विश्वास रखने वालों को अधोगति के पात्र बना रहे हो यह एक विश्वासघात और कृतघ्नीपना की बात है। इससे आप खुद डूबते हो और आपके विश्वास पर रहने वालों को भी गहरी खाई में डुबाते हो। अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो वीतराग-ईश्वर सर्वज्ञ प्रणीत शुद्ध पवित्र अहिंसामय धर्म को स्वीकार करो ताकि पूर्व किये हुये दुष्कर्मों से छुट कर और भविष्य के लिये आप की सद्गति हो अतः यह हमारी हार्दिक भावना है।

इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आपके सर्वज्ञ पुरुषों ने कौनसा धर्म बतलाया है कि जिससे आप हमारा भला कर सको ? तथा आपके धर्म का क्या तत्त्व है ? इसको भी सुना दीजिये।

सूरीश्वरजी महाराज ने कहा कि हे महानुभावो! धर्म का मूल-तत्त्व सम्यक्त्व ( श्रद्धा ) है। वह समकित दो प्रकार का है ( १ ) निश्चयसम्यक्त्व ( २ ) व्यवहारसम्यक्त्व। जिसमें यहाँ पर मैं व्यवहार सम्यक्त्व के लिये ही संक्षिप्त से कहूँगा। जैसे :—

देव—अरिहन्त-वीतराग[१] ईश्वर सर्वज्ञ सकलदोषवर्जित कैवल्यज्ञान, केवल्यदर्शन अर्थात् सर्व चराचर पदार्थोंको हस्तामलक की तरह जाने देखें और जिनका आत्मज्ञान तत्त्वज्ञान बढे ही उच्चकोटि का हो और सर्व जीवों के कल्याण के लिये जिनका सुप्रयत्न हो सर्वजीवों के प्रति जिनकी समदृष्टि हो, "अहिंसा परमोधर्म" जिनका खास सिद्धान्त हो, क्रीडा-कुतूहल और अष्टादश दोषवर्जित पुन पुन अवतार धारण करने से सर्वथा मुक्त हो उन्हें देव समझना चाहिये।

---

४—तुष्यन्ति भोजनैर्विप्रा, मयूर घन गर्जितैः। साधवा परकल्याणै, खल परविपत्तिभिः
देवत्व श्रीजिनेष्ववा, मुमुक्षपुगुरुत्वधी। धर्मधीरार्हताधर्मः, तत्स्यात् सम्यक्त्व दर्शनम् ॥

१ न राग रोषादिक दोष लेशो, यत्रास्ति बुद्धः सकल प्रकाशः।
शुद्ध स्वरूपः परमेश्वरऽसौ, सतां मतो देव पदाभिधेयः ॥
तस्मात् स देवः खलुवीतरागः प्रियऽप्रिय वा नहितस्य कश्चित्।
रागादिसत्ताऽऽचरणानिनाम, तद्दोषश्च सर्वज्ञ तयाकुतः स्यात् ? ॥

५—पाँचवा आयुष्य कर्म—जीव के अक्षयअवगाहना गुण को रोक देता है; जैसे कारागार में पड़ा हुआ कैदी। जितनी कैद हुई है उसी कैद भोगने से ही छुटकारा होता है। वैसे ही आयु कर्म समझ लेना।

६—छट्ठा नामकर्म—जीव के अमूर्तिगुण का रोक रखा है जैसे चित्रकार शुभाशुभ दोनों प्रकार के चित्र बना सकता है। वैसे ही शुभ अशुभ दो प्रकार नाम कर्म होता है।

७—सातवां गौत्रकर्म—जीव के अगुरुलघु गुण का रोकदेता है जैसे कुम्भकार का घड़ा जिसमें उच पदार्थ तथा नीच पदार्थ भरे जाते हैं। वैसे ही नीच ऊँच गौत्र कर्म है।

८—आठवां अन्तरायकर्म— जीव के वीर्य गुण को आच्छादित कर देता है जैसे राजा ने किसी को इनाम देने को कहा है पर भण्डारी बीच में अन्तराय डाल सकता है वैसे ही अन्तराय कर्म समझना इत्यादि।

जैन सिद्धान्त में कर्मों के विषय को खूब विस्तार से कहा है कर्मों की मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति, बन्ध, उदय उदीरणा, सत्ता तथा कर्मबन्ध के कारण जैसे कि- मिथ्यात्व, अव्रत कषाय और योग एवं चार कारण हैं। इन कारणों से जीव के कर्मबन्ध होता है उस बन्ध के भी प्रकृति स्थिति, अनुभाग, और प्रदेश एवं चार प्रकार हैं। जैसे १ अध्यवसाय से पाप कर्म करते हैं वैसे २ कर्मों की स्थिति और रस अनुभाग से कर्मबन्ध हो जाते हैं और उसकी स्थितपूर्ण होने पर वे कर्म उदय होते हैं तब उनको भोगना पड़ता है, अतः समझदार मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि इन कर्मबन्ध के कारणों से सदैव बचता रहे तथा पूर्व संचित कर्म हैं उनको तोड़ने के कारण ज्ञान, दर्शन चारित्र एवं वीर्य हैं इनकी आराधना कर कर्म को क्षय करे तो यह जीव आत्मा से परमात्मा बन सकता है जिसको ईश्वर भी कहते हैं।

९—हे धरापीश ! ईश्वर दो प्रकार से माने जाते हैं एक जीवनमुक्त दूसरे विदेहमुक्त। जीवनमुक्त का अर्थ यह है कि ऊपर जो आठ कर्म बतलाये हैं उनमें ज्ञानावर्णिय दर्शनावर्णिय, मोहनीय और अन्तराय कर्म एवं चार घनघाती कर्म अर्थात् आत्मघाती कर्म हैं। वे आत्मा के खास ४ गुणों को आच्छादित कर देते हैं अतः इनके दूर करने से कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन प्राप्त कर लेते हैं। जिससे वे एक समय मात्र में लोकालोक के सर्व भावों को हस्तामलक की तरह देख सकते हैं उनको जीवन मोक्ष कहते हैं तथा शेष रहे हुए वेदनी आयुष्य नाम और गौत्र एवं चार अघाती कर्मों का क्षय करने से इस नाशवान देह को छोड़ जीव मोक्ष में चला जाता है, वहाँ अनन्त सुखों में स्थित हो जाते हैं।

हे राजन् ! ईश्वर सच्चिदानन्द निरंजननिराकार, सकलकर्मविरहित, अगुरुलघुत्व आत्मगुणों में रमणता में ही लीन रहते हैं और लोकालोक के द्रव्य गुण पर्याय को जानते देखते हैं।

कई मतमिथ्र लोग जो ईश्वरतत्त्व के सच्चे स्वरूप को नहीं जानते हैं वह कहते हैं कि ईश्वर जगत का कर्त्ता-हर्त्ता है, ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है, ईश्वर जीवोंको कर्मों के फल भुक्ताते हैं, ईश्वर पुनः पुनः अवतार धारण करते हैं इत्यादि।

पर यह सब कहना बच्चों के खेल सदृश है क्योंकि ईश्वर न तो जगत का कर्त्ता हर्त्ता है न ईश्वर ने सृष्टि की रचना ही की है न ईश्वर जीवों को शुभाशुभ कर्मों का फल ही भुक्ताते हैं, और न वे पुन अवतार ही लेते हैं। इसका कारण यह है कि पूर्वोक्त सब काम कर्मोपाधी वाला जीव ही कर सकता है, परन्तु ईश्वर न तो सकल कर्मों से मुक्त होकर निरंजन निराकार पद को प्राप्त कर लिया है तब वे सकर्मिक कार्य कैसे कर सकते हैं ? अर्थात् ईश्वर पूर्वोक्त कार्यों से एक का भी कर्त्ता हर्त्ता नहीं है।

वरों का व्यापार तथा ऊन जट का व्यापार, ( ११ ) यन्त्र पीलन आदि ( १२ ) पुरुष को नपुंसक बनाना (१३) अग्नि वगैरह लगवाना (१४) तलाव के जल को शोषन करवाना ( १५ ) असतिजन का पोषन इस प्रकार १५ कर्मादान यानि अपनी आजीविका के निमित्त ऐसे तुच्छ कार्य्य करना व्रतधारी श्रावकों के लिये शक्त मना है । यह १५ कर्म व्यापार के लिये मना किये हैं।

( ८ ) अनर्थ दंडव्रत—निरर्थक आत ध्यान करना, अपना स्वार्थ न होने पर भी पापकारी उपदेश देना। दूसरों की उन्नति देख ईर्षा करना—आवश्यकता से अधिक हिंसाकारी उपकरण एकत्र करना। प्रमाद के वश हो घृत तेल दूध दही छाछ पाणी के बरतन खुले रख देना इनको अनर्था दण्ड कहते है अत' पूर्वोक्त चारों बातों का व्रतधारी श्रावक को त्याग करना पड़ता है ।

( ९ ) नौवाव्रतमें—हमेशा समताभाव रह कर सामायिक कर ने का नियम रखना पड़ता है।

( १० ) दशवाव्रतमें—दिशादि में रहे हुये द्रव्यादि पदार्थों के लिये १४ नियम याद करना

( ११ ) ग्वारहवाँव्रत—में तिथि पर्व के दिन अथवा अन्य दिवस जब कभी अवकाश मिले अवश्य करने योग्य पौषधव्रत जो ज्ञानध्यान से आत्मा को पुष्ट बनाने रूप पौषधव्रत करना।

( १२ ) बारहवांव्रत में—अतिथि सविभाग-महात्माओं को सुपात्र दान देना।

इनके अलावा श्रावकों को हमेशा परमात्मा की पूजा करना,नये २ तीर्थों की यात्रा करना,स्वधर्मी भाइयों के साथ वात्सल्यता और प्रभावना करना, जीवदया के लिये बने वहा तक अमारि पडह फिराना, जैनमादिर जैनमूर्ति ज्ञान, साधु, साध्विया, श्रावक, श्रावकाओं एवं सात क्षेत्र में समर्थ होने पर द्रव्य को खर्चना और जिनशासनोन्नति में तन मन और धन लगाना गृहस्थों का आचार है इत्यादि यह गृहस्थधर्म सम्राट् से लेकर साधारण इन्सान भी धारण कर सुखपूर्वक पालते हुए आत्म कल्याण कर सकते है ।

जो गृहस्थी ससार से विरक्त होकर साधु बनना चाहता है उनके लिये पांच महाव्रत है जीवहिंसा, मूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाचों अव्रतों को मन वचन काया से करना, करावन और अनुमोदन इस प्रकार सर्वथा त्याग करने से पच महाव्रत का अधिकारी बनता है उसको साधु एव सन्यासी भी कह सकते हैं।

अचायी, सच्चायी, अमायी न्यायी और वेपरवायी ये पाँच साधु के खास लक्षण होते हैं। कनककामिनी के सदैव त्यागी होते हैं और स्व-पर कल्याण के लिए वे हमेशाँ प्रयत्न किया करते हैं यह तो व्रत धारियों का आचार तत्त्व है।

अब थोड़ा सा तात्त्विक विषय को भी समझा देते हैं। जैनधर्म की नींव कर्म सिद्धान्त पर अवलम्बित है जीव शुभ या अशुभ जैसे जैसे कर्म करता हैं भव भवान्तर में वैसे२ ही फल भोगता हैं, वे कर्म आठ प्रकार के हैं।

१—पहिला ज्ञानावर्णिय कर्म— जिसके उदय से जीव का ज्ञानगुण आच्छादित हो जाता है, जैसे घाँणी के बैल की आँखों पर पाटे बाँध देने पर उसको कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है और वह घाणी के चारों ओर फिरता ही रहता है। ऐसे ही जीव ज्ञानावर्णीय कर्मोदय से संसार में परिभ्रमन करता है।

२—दूसरा दर्शनावर्णिय कर्म—जीव के दर्शन गुण को रोक देता है। जैसे राजा के पहिरेदार यदि कोई व्यक्ति राजा से मिलना चाहे पर पहिरेदार मिलने नहीं देता।

३—तीसरा वेदनीकर्म—जीव के अव्याबाधगुण को रोक देता है जैसे—मधुलिप्त छुरी जो मधुर भी लगती है और तीक्ष्णता से जबान को भी काट डालती है। इसी प्रकार साता असात वेदनी कर्म है।

४—चौथा मोहनीयकर्म— जो जीव के क्षायिक गुण को आच्छादित कर देता है। जैसे मदिरा पिया हुआ मनुष्य को हिताहित का भान तक नहीं रहता है। वैसे ही मोहनीय कर्मोदय जीव को हिताहित का भान नहीं रहता है।

वस्तु के अंश को वस्तुमानने का कारण यह है कि उस शुभ भावना में यदि काल प्राप्त हो जावतो उसकी अच्छी गति होती है। उदाहरण के तौर पर देखिये। जैसे आप इस समय व्याख्यान सुन रहे हैं इसको सात नयों द्वारा इस प्रकारसमझना चाहिये।

१—व्याख्यान सुनने की इच्छा की—नैगमनय के मत से व्याख्यान सुना ही कहा जा सकता है।

२—व्याख्यान सुनने को जाने के लिए सब सामग्री एकत्र की—दूसरी संग्रहनय वाले का मत है कि एक अपेक्षा से उसको व्याख्यान सुना ही कहा जाता है। पूर्व उदाहरण देखा।

३—व्याख्यान प्रारम्भ हो गया और श्रोताजन व्याख्यान सुन भी रहा है–तीसरी नयका मत है कि उसको व्याख्यान सुना ही कहा जाता है। पूर्ववत्

४—व्याख्यान के स्थूल विषय जैसे किसी का चरित्र एवं क्रिया—आचार विषयक व्याख्यान सुन लिया पर तात्विक विषय को नहीं समझा फिर भी चौथी नय के मत से व्याख्यान सुना ही कहा जाता है।

५—व्याख्यान के तात्विक विषय को सुन कर ठीक समझ लिया अर्थात् तत्त्वबोध हो गया उसको पाँचवी नय वाला व्याख्यान सुना मानता है।

६—व्याख्यान का जितना विषय सुना है उसमें अंशमात्र न समझने पर भी छठा नय वाला व्याख्यान सुना ही मान लेता है।

७—व्याख्यान का सब विषय सुन कर उसको धारण कर लेने पर सातवाँ नय वाला व्याख्यान सुना मानता है। इसने सम्पूर्ण व्याख्यान सुनना और उस पर अमल करने को व्या० सुना माना।

हे राजन्! इसमें यथास्थान नय को स्थापन कर उन सातों नय को यथाक्रम मानने वाले को सम्यग् दृष्टि कहा जाता है और एक एक नय को खेंच कर अपेक्षारहित एकान्त आग्रह करके मानने वाला मिथ्यादृष्टि कहलाया जाता है अतः निम्नांकित सातों नयों को मानना चाहिये। अब चार निक्षेप भी सुन लीजिये।

१—नामनिक्षेप–किसी भी पदार्थ का नाम रख दिया जैसे किसी पदार्थ का नाम ऋषभदेव रख दिया और उस नामसे बतलाना यह नाम निक्षेप है।

२—स्थापनानिक्षेप–किसी भी पदार्थ की स्थापना कर दी उस स्थापना को सत्य मानना यह स्थापना निक्षेप है जैसे ऋषभदेव की मूर्ति या ऋषभदेव ऐसा अक्षर लिख देना।

३—द्रव्य निक्षेप–जिस पदार्थ में भूतकाल में गुण था तथा भविष्य में गुण प्राप्त होवेगा उसको द्रव्य निक्षेप कहा जाता है। जैसे-धनासार्थवाहा का भव में ऋषभदेव ने तीर्थंकर नामोपार्जन किया वह द्रव्य ऋषभदेव है तथा ऋषभदेव का सिद्ध होने के बाद भी द्रव्य ऋषभदेव कहा जाता है।

४—भाव निक्षेप-वर्तमान में वस्तु के गुण को भाव निक्षेप कहते हैं। जैसे समवसरन में बैठे हुए ऋषभदेव

हे राजन्! इनके अलावा द्रव्य गुण, पर्याय, कारण कार्य निश्चय व्यवहार वगैरह वगैरह जैन सिद्धान्त में तत्वज्ञान विषय की विस्तार से चर्चा है तथा आसन, समाधि,१ योग और अध्यात्म विषय पर तो महर्षियों ने बड़े २ ग्रन्थों का निर्माण किया है कि वह उनकी हमेशां की क्रिया ही थी।

---

१ इच्छा च शास्त्रं च समर्थता चेत्स्येयोऽपि योगो मत आदिमोऽत्र
प्रमादतो ज्ञानवतोऽप्यशुद्धा ऽभिलाषिणो ऽप्यन्तरधर्मयोगः
श्रद्धान-बोधोद्यतप्रकर्षो हरममदस्य पचाऽऽस्मप्रकृति
यो धर्मयोगो वचनानुसारी स शास्त्रयोग परिवेदितव्य ॥

हे राजन् ! जैनधर्म ईश्वर को अनादि मानते हैं और यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध भी है। अतः न तो ईश्वर कर्त्ता हर्त्ता है, न सृष्टि का रचयिता सिद्ध हो सकता है। दूसरे न ईश्वर जीवों को पुन्य पाप के भुक्ताने वाला ही सिद्ध होता है कारण जीव स्वयं कर्म करता हैं और स्वयं भोगता हैं। भला ! एक मनुष्य ने भंग पी ली तो क्या उसका नशा ईश्वर देता है या स्वय आ जाता है ? भांग का नशा तो स्वयं आ जाता है। फिर निराकार ईश्वर को जगत के जाल में क्यों फसाया जाता है ? तीसरे ईश्वर के कर्मों का अशमात्र भी नहीं रहने से वे पुन अवतार भी नहीं लेते हैं इत्यादि विस्तार से समझाया।

हे राजन् ! जैन धर्म में मुख्य षट्द्रव्यों को माना है जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्य और कालद्रव्य।

धर्मद्रव्य अर्थात् धर्मास्तिकाय—जो अरूपी है सम्पूर्ण लोक व्यापी है। जीव और पुद्गलों को गमन-समय धर्मास्तिकाय सहायता देता है अर्थात् जीव और पुद्गल गमनागमन करते हैं इसमें धर्मास्तिकाय की ही सहायता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय जीव पुद्गलों को स्थिर रहने में सहायक है, आकाशास्तिकाय जीव और पुद्गलों को स्थान देने में सहायक है और कालद्रव्य जीव और पुद्गलों की स्थिति को पूर्ण करता है जीव द्रव्य अनन्त है और उपयोग यानी ज्ञान-दर्शन इसका गुण है और पुद्गल रूपी है सम्पूर्ण लोक-व्यापक है। मिलना और बिछुड़ना इसका लक्षण है। इन छः द्रव्य में पाच जड हैं और एक जीव द्रव्य चेतन है तथा इन छः द्रव्यों में पाच अरूपी और एक पुद्गल द्रव्य-रूपी है। इन छः द्रव्यों में एक जीव द्रव्य उपादय है एक पुद्गल द्रव्य हेय है और शेष चार द्रव्य ज्ञय हैं इत्यादि।

हे नरेन्द्र ! जैनधर्म में नौ तत्त्व माने गये हैं जैसे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर निर्ज्जरा, बंध और मोक्षतत्त्व। जीव अजीव के छः द्रव्य हैं वह पहले कह दिये हैं तथा पुन्य किसी भी दुःखी प्राणी को सुखी बनाना अर्थात् मन, वचन और काया से आराम पहुँचाना इसमें शुभ भावना से पुण्य होता है जिससे भवान्तर में सब अनुकूल सामग्री मिलती है एवं सुखों का अनुभव करते हैं और किसी जीव को दुःख देने से पाप-कर्म बन्धता है और भवान्तर में इसके कडुए फल से जीवन भर में दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। आश्रव पुन्य पाप रूपी कर्म आने का कारण है तब संवर ( तस्वरमणता ) कर्म आने को रोकता है। बन्ध शुभाशुभअध्यवसायों से कर्म का बन्ध होता है। निर्ज्जरा-आत्म प्रदेश पर कर्मों के दलक लगे हुए हैं उनको तप संयम दया दान पूजनादि सत्कर्मों से हटा देना उसको निर्ज्जरा कहते हैं जब सब कर्म हट जाता है तब उस जीव की मोक्ष हो जाती है इन नौ तत्त्वों का शास्त्रों में बहुत विस्तार है।

हे नरेश ! वास्त्विक पदार्थों को जानने के लिए सात नय और चार निक्षेप भी बतलाये हैं जैसे—

( १ ) नैगम नय—वस्तु के एक अंश को वस्तु मानना।
( २ ) संग्रह नय—वस्तु की सत्ता को वस्तु मानना।
( ३ ) व्यवहार नय—वर्तती वस्तु को वस्तु मानना।
( ४ ) ऋजुसूत्र नय—वस्तु के परिणाम रूप को वस्तु मानना।
( ५ ) शब्द नय—वस्तु के असली गुण को वस्तु मानना है।
( ६ ) समीरूढनय—वस्तु का एक अंश न्यून होने पर भी वस्तु को वस्तु मानना है।
( ७ ) एवंभूतनय—सम्पूर्ण वस्तु को वस्तु मानना है।

सबमें सुख की इच्छा करता है तो उसको धर्मोपार्जन करना चाहिये, वरन् अधर्म से दुःख ही सहन करना पड़ेगा ५। क्योंकि आम्रका बीज बोने से ही आम्र के फल मिलता है परन्तु बंबुल के बीज बोने से आम्रके फल कभी नहीं मिलता है ६। अतएव सुख का मूल धर्म ही है इन सब बातों में विवेक की जरूरत है। यदि विवेकवान पुरुष है तो इस संसार में चार डाकर मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है और विवेकशून्य मनुष्य स्वयं संसार को बढ़ा देता है ८। जीव अनादि काल से विषय कषाय आलस्य प्रमाद में ही दुःखी एवं मग्न रहा है यदि भोज शोक या संबंधों से गप्पी आदि कार्यों में तो खास कामों से भी समय निकाल लेता है पर धर्म के लिये कह बहाना करके कहता है कि मुझे समय नहीं मिलता है। यह विवेकहीनता भवान्तर में कैसे दुःखदाई होगी एवं विचार कर धर्म के लिये खास तौर से समय निकाल कर धर्म की आराधना अवश्य करनी चाहिये।

इत्यादि सूरीश्वरजी ने बड़ी ओजस्वी भाषा से धर्म देशना दी कि जिसको श्रवण कर उपस्थित श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध बन गये कारण कि इस प्रकार का धर्म उन्होंने अपनी जिन्दगी भर में कभी नहीं सुना था, अब वे लोग मन ही मन में सोचने लगे कि दुनिया में तरणतारण क्या आज तो एक बड़ी महात्मा और इनका कथन किया धर्म ही है क्योंकि इसमें स्वार्थ का तो अंशमात्र भी नहीं है, जो है वह परमार्थ के लिए ही है।

खेद और महाखेद है कि ऐसे महात्मा कई अर्सो से यहां पर विराजमान हैं पर अपन दुरात्माओं ने जाकर कभी दर्शन तक भी नहीं किया हाय ! हाय !! एक अमूल्य रत्न को कांच का टुकड़ा समझ कर उनसे दूर रहना सिवाय मूर्खता के और क्या हो सकता है, पर अब गई बात के सोचने से क्या होता है ? अब तो इन महात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि आप यहां विराजकर हम अज्ञानियों का उद्धार करावें, इत्यादि सब लोग एक सम्मत होकर सूरीश्वरजी से प्रार्थना की।

हे प्रभो ! आज आपने व्याख्यान देकर हमारे अज्ञानरूपी पर्दे को चीर डाला है। हमारी आत्मा अज्ञानरूपी अन्धकार में गोता खा रही थी आपने सूर्य्य सा प्रकाश कर सद्मार्ग बतलाया है।

---

५ इच्छन्ति धर्मस्य फलं तु सर्वे कुर्वन्ति नार्मं पुनरादरेण ।
नेच्छन्ति पापस्य फलं तु केऽपि कुर्वन्ति पापं तु महादरेण ॥ ६१ ॥

६ इच्छन्त आम्रस्य फलानि चेद् वम् तद्रक्षणादि प्रविधेयमेव ।
एवं च सम्प्यादिकमप्य कार्यां कुर्वन्त्यनोधा नहि धर्मरक्षाम् ॥ ६२ ॥

७ सुखस्य मूलं खलु धर्म एवच्छिन्न च मूले क्व फलाप्तलम्भः ।
मास्वः शाखा विनि कुन्दनं वद् यद् धर्म मुन्मुच्य सुखानुषङ्गः ॥

८ धर्मेन युक्तेन विवेक हीना, संसार बीजं परिपालयन्ति ।
धर्मेन युक्तेन विवेकभाजः संसार बीज परिशोषयन्ति ॥

"वयस्यगोष्ठीं विनियां विधातुं मिलेत् कथञ्चित् समयः सदापि ।
अस्तोऽवकाशोऽपि न यस्य समो देवस्य पूजा करवाम हन्त ॥
आत्मोमति वासरिकीं यदीयं समीहतेऽन्तःकरण स मर्त्यः ।
उपासनायं परमेश्वरस्य कर्याविरुध्याप्यवकाशमेव ॥

योग तीन प्रकार के हैं, मनयोग वचनयोग कायायोग। इनका निरोध करने को ही वास्तविक योग कहते हैं। इसका ही नाम मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति हैं। इनके अलावा क्रियायोग, इच्छायोग शास्त्रयोग, समर्थ्य योग, राजयोग, सहजसमाधियोग, इत्यादि इनके भेद हैं। इन सब में अध्यात्मयोग जो जड़ चैतन्य को यथार्थ भावों में समझ कर चिन्तवन करना उस योग को ही कर्म निर्ज्जरा का हेतु कहा जाता है। अध्यात्मयोग कार्य है और शेषयोग इनके कारण हैं इत्यादि खूब विवेचन करके समझायें।

मैं तो आपको भी सलाह एवं खास तौर पर उपदेश देता हूँ कि आपको किन्हीं भावों के प्रबल पुन्योदय से मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री मिल गई है इसको सफल बनाने के लिये धर्म आराधन करने में लग जाना चाहिए। क्योंकि संसार में परिभ्रमन करते हुए जीवों को एक धर्म का ही शरण है। यदि जिस प्राणी ने धर्म का आराधन नहीं किया वह सदैव दुःखी ही रहा है १ संसाररूपी दावानल में जलते हुए जीवों के लिये धर्मरूपी उद्यान ही एक विश्राम का स्थान है २ जिस माता पितादि कुटुम्ब के लिये अनर्थ किया जाता है वे दुःख भुकने के समय काम नहीं देंगा पर एक धर्म ही माता पिता है कि दुःख के समय रक्षा कर सकता है ३। संसार में धन धान्य राज सम्पत्ति एवं यश धर्म से ही मिलता है ४। यदि मनुष्य इस भव और पर

---

शास्त्रादुपायान् विदुषो महर्षेः शास्त्राऽप्रसाध्यानुभवाधिरोहः।
उत्कृष्ट सामर्थ्य तया भवेद् यः सामर्थ्ययोगं तमुदाहरन्ति ॥
न सिद्धिसम्पादनहेतुभेदा सर्वेऽपि शास्त्राच्छकनीयबोधः।
सर्वज्ञता तच्छ्रुतितोऽन्यथा स्यात् तत्प्रातिभज्ञानगतः स योगः
तत् प्रातिभं केवलबोधभानोः प्राग्वृत्तिकं स्यादरुणोदयाभम्।
'ऋतम्भरा' 'तारक' एवमादिनामानि तस्मिन्नवदन् परेऽपि।

*शुद्धाऽऽत्मतत्त्वं प्रविधाय लक्ष्यममूढ़ दृष्टया क्रियते यदेव।
अध्यात्ममेतत् प्रवदन्ति तज्ज्ञा नचाऽन्यदस्मादपवर्गबीजम् ॥

The enlightened define Adhyatma as everything that is done clearly keeping in view (realising) the unsullied nature of soul Nothing besides leads to salvation.

"देवतापुरतो वाऽपि जले वाऽकलुषात्मनि। विशिष्ट द्रुमकुंजे वा कर्त्तव्योऽयं सतां मतः"
"पद्मापलक्षितो यद्वा पुत्रंजीवकमालया। नासाग्रस्थितया दृष्ट्या प्रशान्तेनान्तरात्मना" ॥३८३॥

देखो यह तपस्वी साधु चार चार मास से भूखे प्यासे योगाभ्यास कर रहे हैं।

१ अस्ति त्रिलोक्यामपि कः शरण्यो जीवस्य नानाविधदुःखभाजः?।
धर्मः शरण्योऽपि न सेव्यते चेद् दुःखमहार्णं लभतां कुतस्त्यम् ? ॥५७॥

२ संसारदावानलदाहतप्त आत्मैष धर्मोपवनं श्रयेच्चेत्।
क्व तर्हि दुःखानुभवावकाशः ? कीदृक् तमो भास्वति भासमाने ? ॥५८॥

३ मातेव पुष्णाति पितेवपाति भ्रातेव च स्निह्यति मित्रवच्च।
पीणाति धर्मः परिषेवितस्तद् अनादरः साम्पतमस्य नैव ॥५९॥

४ सौख्यं धनित्वं प्रतिभां यशश्च लब्ध्वा सुखस्यानुभवं करोषि।
यस्य प्रभावेण तमेव धर्ममुपेक्षमाणो- नहि लज्जसे किम् ? ॥ ६० ॥

मनुष्य सुख की इच्छा करता है तो उसको धर्माराधन करना चाहिये वरन् अधर्म से दुःख ही सहन करना पड़ेगा ५। क्योंकि आम्रका बीज बाने से ही आम्र के फल मिलता है ६ परन्तु बंबुल के बीज बोने से उसके फल कभी नहीं मिलता है ६। अतएव सुख का मूल धर्म ही है इन सब बातों में विवेक की जरूरत है। यदि विवेकवान पुरुष है तो इस संसार से पार होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है और विवेकशून्य मनुष्य सदा संसार को बढ़ा देता है ८। जीव अनादि काल से विषय कषाय आलस्य प्रमाद में ही सुखी एवं मग्न रहा है यदि मोक्ष छोड़ या मनुष्यों से गोष्ठी आदि कार्यों में तो खास कामों से भी समय निकाल लेता है पर धर्म के लिये कई बहाना करके कहता है कि मुझे समय नहीं मिलता है। यह विवेक-हीनता भवान्तर में कैसे दुःखदाई होगी ऐसा विचार कर धर्म के लिये खास तौर से समय निकाल कर धर्म की आराधना अवश्य करनी चाहिये।

इत्यादि सूरीश्वरजी ने बड़ी ओजस्वी भाषा से धर्म देशना दी कि जिसको श्रवण कर उपस्थित श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध बन गये कारण कि इस प्रकार का धर्म उन्होंने अपनी जिन्दगी भर में कभी नहीं सुना था अब वे लोग मन ही मन में सोचने लगे कि दुनिया में तरणतारण कहा जाय तो एक यही महात्मा और इनका कथन किया धर्म ही है क्योंकि इसमें स्वार्थ का तो अंशमात्र भी नहीं है, जो है वह परमार्थ के लिए ही है।

खेद और महाखेद है कि ऐसे महात्मा कई वर्षों से यहां पर विराजमान हैं पर अपन दुर्भाग्यों ने जाकर कभी दर्शन तक भी नहीं किया हाय ! हाय !! एक अमूल्य रत्न को कांच का टुकड़ा समझ कर उससे दूर रहना सिवाय मूर्खता के और क्या हो सकता है, पर अब गई बात के सोचने से क्या होता है ! अब तो इन महात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि आप यहां विराजकर हम अज्ञानियों का उद्धार करावें, इत्यादि सब लोग एक सम्मत होकर सूरीश्वरजी से प्रार्थना की।

हे प्रभो ! आज आपने व्याख्यान देकर हमारे अज्ञानरूपी पर्दे को चीर डाला है। हमारी आत्मा अज्ञानरूपी अन्धकार में गोता खा रही थी आपने सूर्य सा प्रकाश कर सद्मार्ग बतलाया है।

---

५ इच्छन्ति धर्मस्य फलं तु सर्वे कुर्वन्ति नार्धं पुनरादरेण ।
नेच्छन्ति पापस्य फलं तु केऽपि कुर्वन्ति पापं तु महादरेण ॥ ६१ ॥

६ इच्छन्त आम्रस्य फलानि यद् वद् तद्रोपणादि प्रविधीयमानं ।
एवं च लक्ष्म्यादिफलाय कार्या कुर्वन्त्यबोधा नहि धर्मरक्षाम् ॥ ६२ ॥

७ सुखस्य मूलं खलु धर्म एवच्छिन्ने च मूले क्व फलागमः स्यात् ।
आरूढ़ प्रज्ञा इति ज्ञात्वा तद् यत् धर्मं कुर्वन्तु सुखार्थिनः ॥

८ यथैव देहेन विवेक हीना, संसार बीजं परिपोषयन्ति ।
तथैव देहेन विवेकभाजः संसार बीजं परिशोषयन्ति ॥

"अयस्स्थपाटी विरिषो विघातुं मिलेद् कथञ्चित् समयः सदापि ।
अस्योऽप्यमग्नोऽपि न धर्म लाभो देवस्य पूजा करणाय हन्त ॥
आत्मानमपि भास्करिकी यदीयं धर्माद्वलेन्त्वरस्य स मर्त्यः ।
उपासनाय परमेश्वरस्य कथंचिदप्येष्यवकाशमर ॥

हे करुणासिन्धो ! आपने केवल हमारे पुत्र को ही जीवन दान नहीं दिया है, पर हम सब लोग मिथ्यात्व समुद्र में डूब रहे थे, आज आप ने हाथ पकड़ कर हमारा उद्धार किया है। जिस धर्म को हम नास्तिक एवं अनीश्वरवादी धर्म समझते थे उसका आपने सत्यस्वरूप समझा कर हमारे चिरकाल के भ्रम को जड़मूल से उखाड़ दिया है। आज हमको एक अमूल्य रत्न की भांति अपूर्व धर्म की प्राप्ति हुई है जिससे हम अपनी आत्मा को कृतार्थ होना समझते हैं।

हे दयासागर ! हमारे शब्दकोष में ऐसा शब्द ही नहीं है कि हम आपके इस उपकार को शब्दों द्वारा व्यक्त कर सकें, तथापि हमारी यही प्रार्थना है कि आप यहां विराजमान रहें और हम अज्ञात लोगो पर दयाभाव लाकर जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा देकर हमारा उद्धार करावें इत्यादि।

इस पर सूरीश्वरजी महाराज ने राजा मन्त्री और उपस्थित लोगों को सम्बोधन करते हुए कहा कि महानुभावो ! इसमें तारीफ और प्रशंसा की क्या बात है ? क्योंकि मैंने जो धर्म देशना दी है इसमें अपने कर्तव्य पालन के अलावा कुछ भी अधिकता नहीं की है। यदि आपने सत्यधर्म को सत्य समझ लिया है तो इस पवित्र जैनधर्म को स्वीकार करने में अब आपको क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। कारण, धर्म का कार्य शीघ्रातिशीघ्र ही करना चाहिये।

बस, फिर तो देरी ही किस बात की थी। राजा प्रजा ने अपने गले के जनेऊ और कंठियें तोड़ तोड़कर सूरीश्वरजी के चरणों की ओर डाल दिये। बाद उन धर्मजिज्ञासु मुमुक्षुओं की उत्कंठा एव उत्साह को देख कर सूरीश्वरजी ने सबसे पहिले इस भव या पूर्वभवों में मिथ्यात्वादि पाप कर्म के आचरण किये थे उन सबकी आलोचना करवाई, बाद सम्यक्त्व धारण करने में जो क्रिया विधान करवाना जरूरी था वह विधि विधान करवाने में प्रवृत्तमान हुए।

जब जीवों के कल्याण का समय नजदीक आता है तब निमित्त कारण भी सदा अच्छे से अच्छे बन जाते हैं। इधर तो बड़े ही उत्साह के साथ विधि विधान हो रहा था। उधर जयध्वनि के नाद से गगन गूंज उठा। जनता आकाश की ओर ऊर्ध्व दृष्टि का प्रसार कर देखने लगी तो आकाश से कई विमान आते हुए दीख पड़े। उन विमानों के अन्दर कई तो विद्याधरों के विमान थे जो सूरीश्वरजी के दर्शनार्थ आ रहे थे और कई देवदेवांगनायें भी सूरीश्वरजी की भक्ति से प्रेरित होकर सूरिजी के चरण कमलों का स्पर्श एव वन्दन करने को आ रहे थे। जब उन आगन्तुकों ने देखा कि राजा प्रजा जो महामिथ्यात्व में फसे हुये थे, सूरीश्वरजी के शिष्य बनने की तैयारी कर रहे हैं तो उनको बड़ा भारी हर्ष हुआ और उन्हें धन्यवाद दिया क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवों को इससे अधिक क्या खुशी हो सकती है कि आज वे मिथ्यात्वी लोग सूरीश्वरजी के उपदेश से अपने स्वधर्मी बन रहे हैं।

समयज्ञ देवी चक्रेश्वरी ने वासक्षेप का थाल लाकर सूरिजी महाराज के सामने रख दिया; सूरिजी ने वर्द्धमान विद्यादि से उनको अभिमंत्रित कर सबसे पहिले राजा उत्पलदेव के शिर पर डाला। उस समय मंत्री ऊहड़ सिर की पाग हाथों में लेकर सूरिजी से वासक्षेप की प्रार्थना कर रहा था। अत सूरीश्वरजी

महाराज ने यथाक्रम उन राजा प्रजा पर ऋद्धि सिद्धि वृद्धि संयुक्त वासक्षेप डालकर करीबन् सवालक्ष क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित किये।

तत्पश्चात उन नूतन जैनों एवं विद्याधर और देवदेवांगनाओं को थोड़ी पर सारगर्भित धर्मदेशना दी जिसका उपस्थित श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात सभा विसर्जन हुई।

अहा! हा!! आज तो उपकेशपुर नगर में सर्वत्र हर्ष छा गया है और घर २ में कुंकुम पत्रिकाएं जा रही हैं। जैनधर्म और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाराज की जयध्वनि से गगन गूंज उठा है। घर घर में धवल मंगल के गीत गाये जा रहे हैं। वह शुभ दिन था श्रावण वद १४ का।

जब कि इस विधीकार को वहाँ के मठधारी पाखण्डियों ने देखा एवं सुना तो उन लोगों को बड़ा ही दुःख हुआ। क्यों न हो? उनके हाथ की सब्जी सब पानी ही चली गई। अतः उन लोगों ने खूब हुल्लड़ मचाया। फिर भी उनका प्रयत्न सर्वथा निष्फल भी नहीं हुआ। मांस मदिरा एवं व्यभिचार के लोलुप कामी कई लोग उन पाखण्डियों के सहकार बन उनके उपासक रह भी गये। अतः वे अपने पैर आगे बढ़ाने लगे।

एक दिन उन मठाधीशों के अग्रेसर सब लोग मिल कर राजा उत्पलदेव की राजसभा में आये और राजा को कहने लगे कि नरेन्द्र! आप जानते हो कि कुल परम्परा से चले आये धर्म को बिना सोचे समझे एकदम छोड़ देने से जीवों की नरक गति होती है। यदि आपको ऐसा ही करना था तो पहिले उन दुष्टों का हमारे साथ शास्त्रार्थ तो कराना था कि विश्व में सच्चा धर्म कौन है और कौनसे धर्म के पालन करने से जीवों का कल्याण होता है इत्यादि।

राजा ने कहा कि कुल परम्परा और धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या किसी परम्परा ने अन्याय ग्रहण किया हो तो उसकी संतान भी वही कार्य करती रहे? केवल मैंने ही क्यों पर मेरे पितामह राजा जयसेन ने भी मिथ्या मत का त्याग कर जैनधर्म को स्वीकार किया था तो मैंने क्या अन्याय किया? मैंने तो अपने पूर्वजों का ही अनुकरण किया है। इतना ही क्यों पर आपके और इन महात्माओं के धर्म को तुलनात्मक

---

१आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ग्रामानुग्राम में उपकेशपुर नगर में पधारे थे वहां मासकल्प करके आसपास के प्रदेश में भ्रमण किया तथा वापिस उपकेशपुर पधारे। और चतुर्मास भी वहीं किया इस अर्से में मुनियों को कहीं पर भी शुद्धआहार पानी का जोग नहीं मिला था, अतः वे तपस्या करते ही रहे। उस कठोर तपश्चर्या और परोपकार के लिये हजारों कठिनाइयाँ सहन की थीं, उसका प्रभाव जनता पर पड़न को ही था, परन्तु इसमें कुछ निमित्त कारण की भी आवश्यकता अवश्य थी। बस, श्रावण कृष्णा १३ के दिन मंत्रीपुत्र को सांप का काटना और इस कार्य में देवी की प्रेरणा का होना। बस, सूरिजी ने समय को अनुकूल में रख कर एवं जनता को विश्वास दिलाने को इधर तो थोड़ा गरम पानी मंगवाकर अपने अंगुष्ठ प्रक्षालन का जल उस मृतप्राय मंत्रीपुत्र पर छिड़काया तो वह निर्विष हो गया, उधर दूसरे दिन राजाप्रजा को धर्म-देशना देकर उन सबको भाद्रवाकृष्णा १४ को जैन-धर्म की दीक्षा शिक्षा दी। उन राजा, मंत्री और क्षत्रियों की संख्या पट्टावलीकारों ने सवालक्ष की लिखी है। अतः इस उपकार के बदले में ओसवालों को चाहिये कि भाद्रवाकृष्णा १४ को अपनी समाज का जन्म दिन समझ कर सर्वत्र महोत्सव मनावें।

दृष्टि से खूब विवेचना एवं परीक्षा करके ही सत्यधर्म को स्वीकार किया है। दूसरे आप शास्त्रार्थ का व्यर्थ ही घमड क्यों करते हो ? मेरे खयाल से तो जैसे शेर के सामने गीदड़ और सूर्य के सामने दीपक कुछ गिनती में नहीं वैसे ही जैनधर्म के सामने आप हैं। यदि आपके दिल में इस बात का घमंड है तो अब भी क्या हुआ है, तैयार हो जाइये पर इस बात को पहिले सोच लीजिये कि कहीं इन रहे सहे शूद्र लोगों को भी न खो बैठें ? फिर भी उन पाखण्डी वाममार्गियों का अत्याग्रह होने से सत्य के उपासक महाराजा उत्पलदेव एव मन्त्रीऊहड़देव ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर शास्त्रार्थ करवाने का निश्चय कर लिया और सूरीश्वरजी महाराज से प्रार्थना की, पर सूरिजी का तो यह काम ही था कि उपदेश एवं शास्त्रार्थ कर उन्मार्ग जाते हुए जीवों को सन्मार्ग पर लाना।

राजा के आदेशानुसार ठीक समय पर सभा हुई और इधर से तो सूरीश्वरजी अपने शिष्य-मंडल के साथ सभा में पधारे एव भूमिपमार्जन कर अपनी कम्बली का आसन लगा कर विराज गये तथा उधर से वे पाखण्डी लोग भी खूब सजधज कर बड़े ही घमड एवं आडम्बर के साथ आये। जब पहले से ही सूरिजी महाराज भूमि पर विराजे थे तो उनको भी भूमि पर आसन लगाकर बैठना पड़ा। सभा-स्थान राजा प्रजा से खचाखच भर गया था शास्त्रार्थ सुनने की सबके दिल में उत्कण्ठा थी।

प्रश्न—वाममार्गियों ने कहा कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है ?

उत्तर—सूरिजी ने कहा कि नास्तिक उसे कहा जाता है जो स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप आत्मा, कर्म, मोक्ष और ईश्वरादि तत्त्वों को न माने. पर जैनधर्म तो इन सब बातों को यथार्थ मानता है अत. जैनधर्म नास्तिक नहीं पर कट्टर आस्तिक[1] धर्म है।

प्र०—जैनधर्म प्राचीन नहीं पर अर्वाचीन धर्म है।

उ०—शायद् इस प्रदेश में आपने अपनी जिन्दगी में जैनधर्म को अभी ही देखा होगा, फिर भी जैनधर्म अर्वाचीन नहीं पर प्राचीन धर्म है जिसके प्रमाण* वेदों एव पुराणों में मिलते हैं जिन वेदों को व्यासकृत एव ईश्वरकृत कहा जाता है, उन वेदों के पूर्व भी जैनधर्म विद्यमान था तभी तो वेदों और पुराणों में जैनधर्म के विषय उल्लेख किया गया है।

प्र०—जैनधर्म ईश्वर, और ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानता है।

उ०—ईश्वर को जिस आदर्श रूप में जैनधर्म मानता है। इस प्रकार शायद ही कोई दूसरा मत्त मानता हो, क्योंकि जैनधर्म ईश्वर को सच्चिदानन्द, आनन्दघन, निरजन, निराकार, सकलोपाधिमुक्त, कैवल्यज्ञान, कैवल्य दर्शनादि, अनतगुणसयुक्त और स्वगुणभुक्ता, अनंतगुण ऐश्वर्य सहित को ही ईश्वर मानता है। हाँ, जैनधर्म का सिद्धान्त ईश्वर को जगत का कर्त्ता नहीं मानते हैं और यह है भी यथार्थ।कारण, ईश्वर सकलकर्मोपाधी रहित होने से जगत के साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि वे जगत् का कर्ता हर्ता

१—आत्मास्ति कर्माऽस्ति परभवोऽस्ति मोक्षोऽस्ति तत्साधकहेतुरस्ति।
इत्येवमन्तःकरणे विधेया दृढ़प्रतीतिः सुविचारणाभिः॥
परमैश्वर्य युक्तात्वाद मत्त आत्मैववेश्वर स च कर्त्तेति निर्दोषःकर्तृ विवादो व्यवस्थित्।

बन सके। आपने यह भी कभी सोचा होगा कि ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानने से ईश्वर की ईश्वरता रहती है या कुम्भकार के सदृश्य बन कर कई प्रकार की आपत्तें आ जाती हैं। भला! आप ही बतलावें कि यदि ईश्वर जगत का कर्त्ता हुवा है तो सृष्टि रचने में ईश्वर उपादान कारण है या निमित्त कारण!

जैनधर्म की प्राचीनता के विषय इस समय भी अनेक प्रमाण मिल सकते हैं जैसे कि—

ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो "[illegible]"

ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा "[illegible]"

ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितानां, चतुर्विंशति तीर्थंकराणां । ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां, सिद्धानां शरणं प्रपद्ये । "[illegible]"

ॐ पवित्रं नग्न मुपवि ( ई ) मसामहे येषां नग्ना ( नग्नेय ) जातिर्येषां वीरा । "[illegible]"

ॐ नग्नंसुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हन्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् स्वाहा । "[illegible]"

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं मरुदेव्या मनोहरम् । ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्यपूर्वकम् ॥

ऋषभाज्जारतोजज्ञे, वीरपुत्रशताग्रज । राज्ये अभिषिच्य भरतं, महाप्रव्रज्या माश्रितः "[illegible]"

युगे युगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिकापुरी । अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः

रेवताद्रौ जिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले । ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्यकारणम् "[illegible]"

दर्शयन्वर्त्मवीराणां, सुरासुरनमस्कृतः । नीति त्रयस्य कर्त्ता यो, युगादौप्रथमोजिनः ॥

सर्वज्ञ सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः । छत्रत्रयीभिरापूज्यो मुक्ति मार्गम् सौ वदन् ॥

आदित्य प्रमुखाः सर्वेबद्धाञ्जलिभिरीशितुः । ध्यायन्ति भवतो नित्यं, यदंघ्रियुगनीरजम् ॥

कैलाश विमले रम्ये, ऋषभोयं जिनेश्वरः । चकारस्वावतारं यो सर्वः सर्वगतः शिवः ॥ "[illegible]"

अष्टषष्टिषुतीर्थेषु, यात्रायां यत्फलं भवेत् । आदिनाथस्यदेवस्य, स्मरणेनापितद्भवेत् ॥ "[illegible]"

नाहं रामो नमे वांच्छा, भावेषु च न मे मनः । शान्तिमास्थातु मिच्छामि, चात्मन्येव जिनोयथा ॥

[illegible]

जैनमार्गरतो जैनो, जितक्रोधो, जितामयः [illegible]

तत्वदर्शनिमुख्यशक्ति रि ति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वंगुरुः ॥

[illegible]

कुम्भसनाभवस्वामी, मुद्गगस्थाजिनेश्वरी । जिनमाताजिनेन्द्रा च, शास्वतंसवासिनी [illegible]

कुलादिबीजंसर्वेषां, प्रथमोविमलवाहनः । चक्षुष्मांश्चयशस्वी, चाभिचन्द्रोथ प्रसेनजित् ॥

मरुदेवि च नाभिश्च, भरतेः कुल सप्तमः । अष्टमो मरुदेव्यां तु, नाभे जातिउरुक्रमः ॥

दर्शयन्वर्त्मवीराणां, सुरासुरनमस्कृतः । नीति त्रयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमोजिनः ॥ [illegible]

दृष्टि से खूब विवेचना एवं परीक्षा करके ही सत्यधर्म को स्वीकार किया है। दूसरे आप शास्त्रार्थ का व्यर्थ ही घमड क्यों करते हो ? मेरे खयाल से तो जैसे शेर के सामने गीदड़ और सूर्य के सामने दीपक कुछ गिनती में नहीं वैसे ही जैनधर्म के सामने आप हैं। यदि आपके दिल में इस बात का घमड है तो अब भी क्या हुआ है, तैयार हो जाइये पर इस बात को पहिले सोच लीजिये कि कहीं इन रहे सहे शूद्र लोगों को भी न खो वैठें ? फिर भी उन पाखण्डी वाममार्गियों का अत्याग्रह होने से सत्य के उपासक महाराजा उत्पलदेव एव मंत्रीऊहड़देव ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर शास्त्रार्थ करवाने का निश्चय कर लिया और सूरीश्वरजी महाराज से प्रार्थना की, पर सूरिजी का तो यह काम ही था कि उपदेश एव शास्त्रार्थ कर उन्मार्ग जाते हुए जीवों को सन्मार्ग पर लाना।

राजा के आदेशानुसार ठीक समय पर सभा हुई और इधर से तो सूरीश्वरजी अपने शिष्य-मंडल के साथ सभा में पधारे एव भूमिपर्माज्जन कर अपनी कम्बली का आसन लगा कर विराज गये तथा उधर से वे पाखण्डी लोग भी खूब सजधज कर बड़े ही घमंड एव आडम्बर के साथ आये। जब पहले से ही सूरिजी महाराज भूमि पर विराजे थे तो उनको भी भूमि पर आसन लगाकर बैठना पड़ा। सभा-स्थान राजा प्रजा से खचाखच भर गया था शास्त्रार्थ सुनने की सबके दिल में उत्कण्ठा थी।

प्रश्न—वाममार्गियों ने कहा कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है ?

उत्तर—सूरिजी ने कहा कि नास्तिक उसे कहा जाता है जो स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप आत्मा, कर्म, मोक्ष और ईश्वरादि तत्त्वों को न माने पर जैनधर्म तो इन सब बातों को यथार्थ मानता है अत जैनधर्म नास्तिक नहीं पर कट्टर आस्तिक[1] धर्म है।

प्र०—जैनधर्म प्राचीन नहीं पर अर्वाचीन धर्म है।

उ०—शायद इस प्रदेश में आपने अपनी जिन्दगी में जैनधर्म को अभी ही देखा होगा, फिर भी जैनधर्म अर्वाचीन नहीं पर प्राचीन धर्म है जिसके प्रमाण* वेदों एव पुराणों में मिलते हैं जिन वेदों को व्यासकृत एव ईश्वरकृत कहा जाता है, उन वेदों के पूर्व भी जैनधर्म विद्यमान था तभी तो वेदों और पुराणों में जैनधर्म के विषय उल्लेख किया गया है।

प्र०—जैनधर्म ईश्वर, और ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानता है।

उ०—ईश्वर को जिस आदर्श रूप में जैनधर्म मानता है। इस प्रकार शायद ही कोई दूसरा मत्त मानता हो, क्योंकि जैनधर्म ईश्वर को सच्चिदानन्द, आनन्दघन, निरजन, निराकार, सकलोपाधिमुक्त: कैवल्यज्ञान, कैवल्य दर्शनादि, अनन्तगुणसयुक्त और स्वगुणभुक्ता, अनतगुण ऐश्वर्य सहित को ही ईश्वर मानता है। हाँ, जैनधर्म का सिद्धान्त ईश्वर को जगत का कर्त्ता नहीं मानते हैं और यह है भी यथार्थ [कारण, ईश्वर सकलकर्मोपाधी रहित होने से जगत के साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि वे जगत् का कर्ता हर्ता

---

१—आत्मास्ति कर्माऽस्ति परभवोऽस्ति मोक्षोऽस्ति तत्साधकहेतुरस्ति।
इत्येवमन्तःकरणे विधेया दृढ़प्रतीतिः सुविचारणाभिः ॥
परमैश्वर्य युक्तात्वाद मत्त आत्मैववेश्वर स च कर्त्तेति निर्दोषःकर्तृ विवादो व्यवस्थित।

कारण है तो सृष्टि का उपादान कारण जो जड़चैतन्य वह कहाँ से आये ? और इसके पूर्व वह किस स्वरूप में थे कि जिस उपादान को लेकर ईश्वर ने सृष्टि की रचना की इत्यादि सूरीश्वरजी के वचन सुन कर पाखण्डियों की बोलती बन्द हो गई वे बिचारे इसका उत्तर ही क्या दे सकते ? कारण उन्होंने तत्त्वज्ञान को तो कभी स्पर्श ही नहीं किया था ।

---

वर्ष तमसः पुरस्तात् स्वाहा ॥ पात्रस्यन्तु मसव मातमृतेमा च विश्वभुवनानि सर्वत । स नेमिराजा परियति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्धय मानो अस्मै स्वाहा ॥ [illegible]

आतिथ्यरूपंमासरं महावीरस्यनग्न हु । रूपामुपास दामेत तिस्रो रात्रोः सुरासुताः ॥ [illegible]

ऋषभ एवं प्रथमस्य रोचते, शक्रश्च शुक्रस्य पुरोगा, सोमसामस्यपुरोगाः पचे सोमसाम्नं नाम आयुषि तस्मै स्वाराड्डामि तस्मै ते साम सामाय स्वाहा । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिन स्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दं धातु ॥ [illegible]

अप्पादर्दिमेयवामन, रोदसीइमाच विश्वा भुवनानि मन्मना यूथेन निष्ठा वृषभो विराजास ॥ [illegible]

सत्राहर्वदापितुप्रमिन्वं, महामपारं वृषभं सुवर्णं तापोरूपाद्रा सनितो तं वार्जं । [illegible]

नयेन्द्रियाण्याभिप्पार्श्वतमाप्तुर्नेमायामिभनदापयसुवन पुर्वतजारपममाके । [illegible]

इमस्तोममर्हतेजातवेदसे रथमिवसंमहेयममनीपया, भद्रादि न प्रमतिरस्यसंसदि । [illegible]

तरणिरित्सषासतिवाजंपुरं ध्या: युजावाइन्द्र पुरुहूतं नमोगिरा नेमि तष्टेव सुद्र । [illegible]

उपरोक्त प्रमाणों से कितनेक प्रमाण तो आज भी उपलब्ध हैं परन्तु कई प्रमाण स्यात् इस समय वेदों में नहीं मिलते हैं इसका कारण यह हो सकता है कि वेदों की अनेक शाखाओं तथा उन शाखाओं की मंत्रसंहिताओं में भी परस्पर अंतर है जैसे शुक्लयजुर्वेद कृष्णयजुर्वेद आदि वेदों की शाखाओं में भी कई अंतर है अतः जब तक कि समस्त शाखाओं की मंत्रसंहिताओं को न देख लीजाय तब तक प्राचीन जैनशास्त्रों में लिखे हुये उपरोक्त मन्त्रों को असत्य नहीं कहा जा सकता है ।

पुस्तकों में न्यूनाधिक करने की पद्धति तो उन लोगों में पहिले से ही चली आ रही है । मनुस्मृति में ग्रंथ श्लोकसंख्या आर्यसमाजी बहुत थोड़ी बतलाते हैं । शेष श्लोकों को जाली एवं प्रक्षिप्त कहते हैं और सनातन धर्मी सम्पूर्ण मनुस्मृति को प्रामाण्य मानते हैं । इसी प्रकार गीता के मूल ७ श्लोक कहते हैं जिसको बाद में बढ़ा कर ७ श्लोक कर दिये और आज उनके ७० श्लोक कहे जाते हैं तथा सत्यार्थप्रकाश किताब में आर्यसमाजी जो चाहते हैं वह स्वेच्छानुकूल काटछांट कर देते हैं इत्यादि इस विषय में अधिक जानने वाले जिज्ञासुओं को ग्रंथकोष, पुराणोंकी पोल, पुराण परिक्षा और पुराणसमीक्षा आदि ग्रंथों को देखना चाहिये । इनके अलावा अज्ञानतिमिरभास्कर नामक ग्रन्थ भी इस विषय पर काफी प्रकाश डाल सकता है उनको भी देखना खास जरूरी है ।

जैसे मिट्टी के बरतन को बनाने में मिट्टी उपादान कारण और कुम्भकार निमित्त कारण है। यदि आप कहोगे कि ईश्वर उपादान कारण है क्योंकि सृष्टि ईश्वरमय है तो सृष्टि में भले बुरे, सुशील, व्यभिचारी, दयावान, निर्दय, साहूकार और चोर भी ईश्वर ही है ऐसा मानना पड़ेगा यदि कहो कि ईश्वर निमित्त

आरोहस्व रथे पार्थ गांडीवंच करे कुरु । निर्जितामेदिनीमन्ये, निर्ग्रन्था यदि सन्मुखे ॥

महाभारत (तत्त्व निर्णयप्रासाद)

स्पष्ट्वाशत्रुजयंतीर्थं, नत्वारैवतकाचलम् । स्नात्वा गजपदे कुण्डे, पुनर्जन्म न विद्यते ॥
परमात्मानमात्मानं, लसत्केवल निर्मलम् । निरंजन निराकारं ऋषभन्तु महाऋषिम् ॥ स्कन्द पुराण
अकारादि हकारांतं, मूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ॥ नाद विन्दु कलाक्रान्तं, चन्द्रमण्डल सन्निभम् ॥
एतद्देविपरंतत्त्वं, यो विजानाति तत्त्वतः । संसार बन्धनं छित्वा, स गच्छेत्परमांगतिम् ॥
दशमिर्भोजितैर्विप्रः, यत्फलं जायते कृते । मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥ नागपुराण
पद्मासनसमासीनः, श्याममूर्तिदिगम्बरः । नेमिनाथःसिवोथैव नामचक्रेस्य वामनः ।
कलिकाले महाघोरे, सर्वपाप प्रणाशकः । दर्शनात्स्पर्शना देव, कोटियज्ञ फलप्रदः ॥ प्रभासपुराण
वामनेन रैवते, श्रीनेमिनाथाग्रे, बलिबन्धन सामर्थ्यार्थ,तपस्तेपे वामनावतार
आदित्य त्वमसि आदित्यासद आसीत् । अस्तभ्नाद्द्यां वृषभोतरिक्षं जमिमीते वरीमाणं ।
पृथिव्याः आसीत् विश्वा, भुवनानि सम्राड्विश्वे तानिवरुणस्यव्रतानि ॥ ऋग्वेद
यति धामानि हविषा, यजन्तिता तें विश्वापरि । भूरस्तुयज्ञ गयस्फानं प्रतणः सुवीरो वीरहा प्रचार सोमादुर्यात् ॥

ऋग्वेद

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्रे, वन्देतवश्रियंवृषभोगम्भवा नसिममध्वरेष्विध्यस ऋग्वेद
अर्हंता ये सुदानवो, नरोअसो मिसा स प्रयज्ञं । यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भयः ऋग्वेद
अर्हन्बिभर्षि सायकानि, धन्वार्हन्निष्कंयजत । विश्वरूपम् अर्हन्निदंदयसेविश्वंभवभुवं । ऋग्वेद
दीर्घायुत्वा युवलायुर्वा शुभ जातायु ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा । वामदेव शान्त्यर्थ मनुविधीयते सास्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा ॥
ऋषभपवित्रंपुरुहूतध्वरं यज्ञेषुयज्ञपरमपवित्रं, श्रुतधरं यज्ञंप्रतिप्रधानंऋतुयजनपशुमिंद्र माहवेति स्वाहा॥
× × ज्ञातारमिन्द्रऋषभवदन्ति, अतिचारमिन्द्रं तमरिष्टनेमिं, भवेभवे सुभव सुपार्श्वमिन्द्रं हवेतुशक्रं अजितंजिनेन्द्रं तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिंद्रं स्वाहा ॥ दधातु दीर्घायुस्तत्वाय बलायवर्चसे, सुप्रजास्त्वाय रक्ष रक्ष रिष्टनमि स्वाहा ॥

(वृहदारण्यके)

ऋषभ एव भगवान् ब्रह्मा, भगवताब्रह्मणास्वयमेवा । चीर्णानि ब्राह्माणितपासि च प्राप्तः परं पदम् ॥ (आरण्यके)
ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभः पवित्रं पुरुहूत मध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माह संस्तुतं वरं शत्रुंजयतं पशुरिंद्र माहुरिति स्वाहा ॥ ॐ ज्ञातारमिंद्रं वृषभं वदंति अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्व मिंद्र माहुरितिस्वा ॥ ॐ नग्न सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्म गर्भं सनातनं उपेमि वीरं पुरुषं महातमादित्य

(५) ऐसी संस्था होने से ही संगठन बल उत्तरोत्तर बढ़ता गया और संगठन बल से ही धर्म व समाजोन्नति के पथ में वे लोग आगे बढ़ते गये। अतः ऐसी संस्था होने की जरूरत थी।

(६) संस्था का ही प्रभाव था कि जो महाजन संघ लाखों की तादाद में था वह करोड़ों की संख्या तक पहुँच गया।

(७) ऐसी सुदृढ़ संस्था के अभाव से ही पूर्व आदि प्रान्तों में जो लाखों करोड़ों लोग जैनधर्म को छोड़ कर मांसाहारी बन गए थे। यदि उस समय वहां भी ऐसी संस्था होती और उसका कार्य ठीक तौर पर चलता तो आज "सराक" जैसी जैनधर्म पालन करने वाली जातियों को हम अपने से बिछुड़ी हुई कभी नहीं देखते, अतएव ऐसी संस्था का होना अत्यन्त आवश्यक था।

(८) संस्था का ही प्रभाव है कि आज "महाजन संघ" भले ही अल्प संख्यक हो, पर वह जैन धर्म को अपने कंधे पर लिए समग्र संसार के सामने टक्कर खा रहा है अर्थात् उसे जीवित रख सका है। यह "महाजन संघ" बनाने का ही शुभ फल है इत्यादि—

सूरिजी महाराज ने जिस शुभ लक्ष्य में रख 'महाजन संघ' नामक संस्था को जन्म दिया था वे उसके सब सिद्ध हुए आज भी हमारी दृष्टिगोचर हो रहे हैं धन्य है जैनधर्म को जीवित रखने वाले सूरिपुंगव को

सूरिजी महाराज जिस उद्देश्य से अनेक आपत्तियों को सहन कर मरुधर में पधारे थे उन्होंने अपने कार्य्य में खूब सफलता हासिल करली। आज तो उपकेशपुर में जैनधर्म का झंडा फहरा रहा है।

आचार्यश्री उन नूतन श्रावकों को जैनधर्म का स्वाध्याय—तात्त्विक ज्ञान एवं आचार व्यवहार विधि आदि वगैरह ज्ञानाभ्यास करवा रहे थे। विशेषतया अहिंसा परमोधर्मः के विषय में उनके संस्कार इस प्रकार जमा रहे थे कि जीवों को मारना तो क्या पर किसी जीव को दुःख पहुँचाना भी एक जबरदस्त पाप है इत्यादि सम्यग् ज्ञान एवं धर्म का प्रचार कर रहे थे।

इसी प्रकार श्रावक के बारह व्रतों का भी उपदेश कर रहे थे। राजा उत्पलदेव और मंत्री ऊहड़ादि समझदार लोग ज्यों-ज्यों सूरिजी का उपदेश एवं जैनधर्म की विशेषतायें सुनते थे त्यों त्यों उनको बड़ा भारी आनन्द आता था।

इस प्रकार आनन्द में समय जा रहा था। पर्यूषणों का समय नजदीक आया तो जनता में और भी उत्साह बढ़ गया। सूरिजी की आज्ञानुसार पर्व का खूब आराधन किया। कारण जैनों में आत्माराधन में सब से बड़ा पर्व पर्यूषण ही है। इधर तो सूरिजी महाराज का उपदेश उधर वे उत्साही श्रावक गण, फिर तो कहना ही क्या था? आनन्दपूर्वक पर्वाराधन किया।

जब आश्विन मास आया तो इधर तो सूरिजी ने आंबिल की ओलियों और सिद्धचक्र आराधन का उपदेश दिया उधर पूर्वसंस्कारों की प्रेरणा से लोगों को देवीपूजन याद आ गया। वे लोग विचार करने लगे कि इधर तो सूरिजी कह रहे हैं कि जीव हिंसा नहीं करना और उधर है देवी चामुण्डा। यदि इसको बलि न दी जाय तो अपने को सुख से रहने नहीं देगी।

इस बात का विचार कर सब लोग एकत्र हो पूज्य आचार्य महाराज की सेवा में आये और हाथ जोड़ अर्ज करने लगे कि हे पूज्यवर! यहां की देवी निर्दय होने के कारण भैंसे और बकरे का बलिदान लेती है और उन्हें मारने के समय आप कौतूहल से प्रसन्न होती है। रक्तसिक्त भूमि पर [illegible]

वाद यज्ञ के विषय के प्रश्न हुये जिनको भी सूरिजी ने इस कदर से समझाये कि राजा प्रजादि उपस्थित लोगों की उस निष्ठुर हिंसा प्रति घृणा और अहिंसा की तरफ विशेष रुचि होने लग गई।

इस शास्त्रार्थ में भी सूरीश्वरजी का ही पक्ष विजयी रहा और जैनधर्म की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। बस! उपकेशपुर में जहां देखो वहां जैनधर्म और आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज की प्रशंसा एवं गुणानुवाद हो रहा था।

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था। उन नूतन जैनों के लिये जिस जिस विषय की आवश्यकता थी उसी विषय का व्याख्यान सूरिजी महाराज दिया करते थे। आचार्यश्री इस बात को सोच रहे थे कि इन लोगों को जैनी तो बना दिया पर यह किस प्रकार से सदैव के लिये सच्चे जैन बने रहें इत्यादि। आखिर सूरिजी ने यह निश्चय किया कि इन लोगों के लिये एक ऐसी सुदृढ़ संस्था कायम करवा दी जाय कि जिसके जरिये यह लोग तथा इनकी वंश परम्परा जैनधर्म की उपासना करते रहें। सूरिजी महाराज ने अपने विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए राजा उत्पलदेव के अध्यक्षत्व में एक सभा की और सूरिजी ने अपने विचार सभा के सामने उपस्थित किये जिसको सब लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य किया और आचार्यश्री ने उन नूतन जैन समूह के लिये—

## "महाजन संघ"

नाम से संस्था स्थापन करवादी। जब से उपकेशपुर के जैन-महाजनों के नाम से कहलाने लगे। इस संस्था के कायम करने में सूरिजी महाराज के निम्नलिखित उद्देश्य ही मुख्य थे।

(१) जिस समय प्रस्तुत संस्था स्थापित की थी उसके पूर्व उस प्रान्त में क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, और क्या धार्मिक सभी कार्यों की शृंखलायें टूट कर उनका अत्याधिक पतन हो चुका था। अब इन सबका सुधार करने के लिये ऐसी एक संगठित संस्था की परमावश्यकता थी, और उसी की पूर्ति के लिये आचार्यश्री का यह सफल प्रयास था।

(२) संस्था कायम करने के पूर्व उन लोगों में मांस मदिरा का प्रचुरता से प्रचार था। यद्यपि आचार्यश्री ने बहुत लोगों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देने के समय इन दुर्व्यसनों से मुक्त कर दिये थे। तथापि सदा के लिये इस नियम को दृढ़तापूर्वक पालन करवाने तथा अन्यान्य समाजोपयोगी नये नियमों को बनवा कर उनका पालन करवाने के लिये भी एक ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जिसको सूरिजी ने पूर्ण करने का प्रयत्न किया था।

(३) नये जैन बनाने पर भी अजैनों के साथ उनका व्यवहार बंद नहीं करवाया था क्योंकि किसी भी क्षेत्र को संकुचित बनाना आप पतन का प्रारंभ समझते थे। पर किसी संगठित संस्था के अभाव में वे नये जैन, शेष रहे हुए आचार-पतित अजैनों की संगति कर भविष्य में पुनः पतित न बन जाय, इस कारण से भी एक ऐसी संस्था की आवश्कता थी जिसकी सूरिजी ने पूर्ति की।

(४) ऐसी संस्था के होने पर अन्य स्थानों में अजैनो को जैन बनाकर संस्था में सामिल कर लिया जाय तो नये जैन बनाने वालों को और बनने वालों को अच्छी सुविधा रहे, इसलिए भी ऐसी एक सुदृढ संस्था की जरूरत थी। जिसके लिये ही सूरीश्वरजी का यह सफल प्रयत्न था।

पर्व सूरिजी ने देवी के मन्दिर में जा कर उन पक्वान्नादि सात्विक पदार्थों को देवी के सामने रख दिया। और आचार्यश्री ने कहा कि लो देवी मैं आपको करड़-मरड़ ( लड्डू खाजा गुलपापड़ ) दिलाता हूँ। उस समय देवी एक कुमारिका के शरीर में अवतीर्ण होकर बोली कि हे प्रभो ! मैंने अन्य प्रकार के करड़-मरड़ की याचना की थी और आपने मुझे अन्य प्रकार के करड़-मरड़ दिलवाया। इस पर सूरिजी

एकदा प्रोक्तं भो यूयं श्राद्धा तेषां देवीनां निर्दय चित्ताया महिष वास्कट्यादि जीव वधासिक्त भंग सम्पर्क-भयद कुतूहल प्रियया अतिरताया रक्ताक्ति भूमितले आद्रिचर्म्मबद्ध चंदनमाले निष्ठुर जन सेवितं धर्मध्यान विघातके महाबीभत्स रौद्रे श्रीचामुण्डादेवीगृहे गंतुं न युज्यते। इति आचार्य वचः श्रुत्वा ते प्रोचुः प्रभो युक्त मेतत् परं रौद्र देवी यदि छलिष्यामस्तदा सा कुटुम्बान मारयति। पुनराचार्यैः प्रोक्तं अहं रक्षां करिष्यामि। इत्याचार्य वाक्यं श्रुत्वा ते देवी गृह गमनात् स्थिताः। आचार्याणाम् मत्परी भूय देव्या सक्षेप मित्युक्तं आचार्य मम सेवकान् मम देव गृह अगच्छ मानान् निवारयन्त्य त्वं न भविष्यसि। इत्युक्त्वा गता देवी परं सातिशय काल मारात् महा प्रमादात् अनेक सुरछद्म प्राविशोऽपि आचार्ये देवो न प्रभवति। एकदा छलं लब्ध्वा देव्या आचार्यस्य काल वेलायां किंचित् स्वाध्यायादि रहितस्य वामनेत्र भूरधिष्ठिता वदना जाता। आचार्यै प्रातः सावधानी भूय पीड़ायाः कारण चिन्तितं तावत् देवी प्रत्यक्षी भूय। इति प्रोक्तं। मया पीड़ा कृता। अहं स्वयकृत्या त्वं स्वेच्छयिष्यामि। इति सा वदेम। आचार्योक्तं श्रुत्वा समयाख्यं सविनय प्रोक्तं भगवन्स्तानां श्रावकी चिन्तये विशेषा न युक्तः परित्वं करड़-मरड़ ददासि तदाहं वेदनी अपहरामि। आचन्द्रार्कं स्यात् किंकरी भवामि। इति श्रुत्वा आचार्यैः प्रोक्तं करड़-मरड़ दापयिष्यामि। इत्युक्त्वा गता देवी।

प्रभाते श्रावका नामादिष्टं तैः पक्वान्न लड्डुकादि सुंडक द्रव्यं कर्पूर कुंकुमादि भोगाश्च आनीय श्री चामुण्डादेवी द्वय गृहे श्रीरत्नप्रभाचार्यः श्रावकैः सार्धंगताः। ततः श्रावकैः पात्रादि पूर्ण कारायय वाम दक्षिणो हस्ताभ्यां पक्वान्न सुंडकादि पूर्ण यावत् आचार्याः प्रोक्तं देवी करड़ मरड़ं दत्तमास्ति। अतः परं ममोपासिकात्वं इति वचनानन्तरं एव समीपस्थ कुमारिका शरीरे आवेशः कृत्वा तदा प्रोक्तं प्रभो अन्य करड़-मरड़ं याचितं अन्य दत्तं। आचार्यैः प्रोक्तं त्वयाचिन्तो याचितं सतु दातुं दातुं न युज्यते इत्यादि सिद्धान्त वाक्यं कुमारी शरीरस्था श्रीसच्चिकादेवी सर्व लोक प्रत्यक्षं श्रीरत्नप्रभाचार्य प्रतिबोधिता। श्रीउपकेशपुरस्था श्रीमहावीर भक्ता कृता सम्यक्त्वधा-रिणी सजाता। अस्याः मांसं कुसुममपि रक्तं नेच्छति। कुमारिका शरीरे अवतीर्य सती इति वक्ति भो मम सेवकाः यत्र उपकेशपुरस्थं स्वर्णभूमहावीर जिन पूजयति श्रीरत्नप्रभाचार्य उपदेशानि भगवन् शिष्यं प्रशिष्यं वा सेवति तस्याहं तोषं गच्छामि। तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा विधं धारयामि। एतानि शरीरे अवतीर्या सा कुमारी कथयती। श्रीसच्चिका देव्या वचनात् क्रमेण भुत्वा मधुरा जनाः श्रावकत्वं प्रतिपन्ना।                    [illegible]

खुश होती है और निष्ठुर हृदय वाले उसके भक्त उसे प्रसन्न करने के लिये ऐसे जघन्य कार्य्य करते हैं। इस पर आचार्यश्री ने कहा कि यह कार्य धर्म के प्रतिकूल एवं महावीभत्सतापूर्ण हैं, अब आप जैसे धर्मात्माओं को उस देवी के मंदिर में नहीं जाना चाहिये। इस पर भक्त लोगों ने कहा कि हे प्रभो! यदि हम उस देवी की इस प्रकार पूजा न करें तो वह देवी हमारे सब कुटुम्बों का नाश कर डालेगी। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम क्यों घबराते हो। मैं स्वय तुम्हारी रक्षा करूंगा। बस! उन भक्त लोगोंने सूरिजी पर विश्वास कर देवी के मंदिर जाना एव पूजा करना बंद कर दिया। जब देवी ने इस बात को अपने ज्ञान से जाना तो वह प्रत्यक्ष रूप से आचार्य्यश्री के पास जाकर कहने लगी कि हे प्रभो! मेरे सेवकों को मेरे मंदिर में आने व पूजन करने से रोक दिया यह आपने ठीक नहीं किया है? सूरिजी ध्यान में थे अत: कुछ भी उत्तर नहीं दिया इसलिये देवी का क्रोध इतना बढ़ गया कि वह आचार्य्यश्री को किसी प्रकार से कष्ट पहुँचाना चाहने लगी। अहा! क्रोध कैसा पिशाच है कि जिसके वश मनुष्य तो क्या पर देव देवी भी अपना कर्त्तव्य भूल कर बे मान बन जाते हैं खैर देवी ने एक परोपकारी आचार्य्य को कष्ट देने का निश्चय कर लिया। किन्तु आचार्य्य देव सदैव अप्रमत्तावस्था में रहते थे एव आप श्रीमान इतने प्रभावशाली थे कि उनके अतिशय प्रभाव के सामने देवी का कुछ भी वश नहीं चला। फिर भी एक समय का जिक्र है कि आचार्य्यश्री अकाल के समय स्वाध्याय-ध्यान रहित कुछ प्रमाद योनि निद्राधीन थे। उस समय देवी ने उनकी आखोंमें वेदना उत्पन्न करदी। सावधान होने पर आचार्य्यश्री ने जान लिया कि यह तकलीफ देवी ने ही पैदा की है। खैरऐसा समझ लेने पर भीवे ध्यानस्थ हो गये। बाद चक्रेश्वरी आदि कई देवियें सूरिजी के दर्शनार्थ आईं और सूरिजी के नेत्रों में वेदना देख अपने ज्ञान से सब हाल जान लिया और देवी चामुडा को बुलायी एव शक्त उपालम्भ दिया। अब देवी प्रत्यक्ष रूप होकर सूरिजी से कहने लगी कि यह वेदना मैंने ही की है और उसको मैं ही मिटा सकती हूँ। परन्तु आप मेरी प्रिय वस्तु जो करड़-मरड़ है वह मुझे दिला दीजियेगा। मैं शीघ्र ही इस वेदना को दूर कर दूंगी और यावचन्द्रदिवाकर आपकी किंकरी होकर रहूँगी। यह सुन कर आचार्य्यश्री ने स्वीकार कर लिया कि मैं तुझे करड़ मरड़ दिला दूगा। इस पर देवी संतुष्ट होकर सूरिजी की वेदना का अपहरण कर तथा चक्रेश्वरी देवी का सत्कार सन्मान कर अपने स्थान पर चली गई। बाद चक्रेश्वरी आदि देवियाँ भी सूरिजी को वन्दन कर अदृश्य हो गई।

जब सूरिजी के भक्त गण श्रावकों ने सुना कि सूरिजी के नेत्रों में बीमारी हुई है और इसका कारण शायद देवी चामुडा की पूजा बन्द करवाना ही तो न हो? अत सुबह होते ही भक्त-लोगों ने सूरिजी के पास आकर नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे प्रभो! यह चामुडा आप जैसे समर्थ महात्मा से ही इस प्रकार पेश आई है तो हमारे जैसे अल्प सत्त्व वालों के लिए तो कहना ही क्या है? जब तक आप यहा विराजमान हैं तब तक तो फिर भी जनता को विश्वास है पर आपके पधार जाने के बाद न जाने यहां का क्या हाल होगा? अब हम लोगों की अर्ज है कि आप देवी-पूजन का आदेश दे दीजिये जैसा कि आप मुनासिब समझें। क्योंकि नागरिक लोगों की यह ही इच्छा है।

सूरिजी ने उन श्रावकों को कहा कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम पक्वान्न खाजा गुलराब आदि तथा कर्पूर कुकुमादि से देवी पूजन कर सकते हो यदि तुम लोगों को देवी का भय है तो मैं आपके साथ चलने को भी तैयार हूँ। बस फिर तो था ही क्या? श्रावकों ने ऐसा ही किया और राजा प्रजा

तो हे प्रभो ! आपके और आपके वंशजों के मैं अवश्य आधीन हो जाऊंगी । ऐसा कहती हुई देवी को आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि हे देवि ! आप अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो मैं आपको अभीष्ट 'कड़का 'मड़का' दिलाऊंगा आप उनमें ही रती करना । गुरु के उक्त कथन पर देवी संतोष के साथ अन्तर्ध्यान हो गई और प्रातःकाल गुरुजी के पास सब श्रद्धालु श्रावक एकत्रित हुए उनको कहा कि हे श्रावकों ! तुम सब सुहाली आदि पक्वान्न तथा प्रत्यक्ष घर से चंदन, अगर, कस्तूरी आदि अच्छे भोग एकत्रित करो और इस प्रकार सब सामग्री सजा कर अपनी ही पौषधागार ( पोषधशाला ) में एकत्र मिलो आज संघ को साथ लेकर चामुण्डा देवी के मंदिर चलेंगे । यह सुन कर श्रावकगण सब सामग्री एकत्रित कर पौषधशाला में एकत्रित हुये और सूरिजी उन्हें साथ ले चामुण्डा के मन्दिर में गये । वहां पहुँच कर श्रावकों ने देवी का पूजन किया और सूरिजी ने कहा कि हे देवी ! तुम प्रसन्न अभीष्ट से हो । ऐसा कह कर दोनों तरफ के पक्वान्न एवं सुहालों ( खाजे ) को दोनों हाथों से पूर्ण कर पुनः बोले कि हे देवी अपना अभीष्ट ग्रहण करो । यह सुन देवी प्रत्यक्ष रूप हो सूरिजी के सामने खड़ी रही और बोली कि हे प्रभो ! मेरी अभीष्ट वस्तु 'कड़का मड़का' है । गुरु बोले हे देवी ! यह वस्तु तुम्हे लेना और मुझे देना योग्य नहीं क्योंकि मांसाहारी तो केवल राक्षस ही होते हैं। देवता तो अमृत पान करने वाले होते हैं। हे देवी ! तू देवताओं के आचरण को छोड़कर राक्षसों के आचरण को करती हुई क्यों नहीं लजाती है ? हे देवी ! तेरे भक्त लोग तेरी भेंट में लाये हुये पशुओं को तेरे सामने मारकर तुमको इस घोरपाप में शामिल कर उस मांस को स्वयं खाते हैं, तू तो कुछ नहीं खाती अतः तू व्यर्थ हिंसात्मक कार्य्य को अंगीकार करती हुई क्या पाप से नहीं डरती है ? यह तो निर्विवाद है कि चाहे देवता हो चाहे मनुष्य हो पाप कर्म करने वाले को भवान्तर में नरक अवश्य मिलता है । इस जीव हिंसा के समान भयंकर और कोई पाप नहीं है । यह बात सब दर्शनों ( धर्म शास्त्रों ) में प्रसिद्ध है । अब तू जगत की माता है तो तेरा कर्त्तव्य है कि

---

निज प्रतिज्ञा वचने, स्थिरी भाव्यं त्वया सदा । कड़कां मड़कां देवि दास्ये तत्र रतिं कुरुः ॥
प्रतिज्ञाय गुरूक्तंतद्, देवी सपरितोषदपे । प्रातः समानपि श्राद्धान्, गुरव पर्यमीलयन् ॥
मिलितानाँ श्रावकाणाँ, पुरतः सूरयोऽवदन् । पक्वान्नानि विधाप्यन्तां सुहाल्य प्रमुखानि भोः ॥
प्रतिगेहं घनसाराऽगुरु कस्तूरिकाऽऽदिकः । भोग संमील्यतां भव्यो पुष्पाणां कुसुमानि च ॥
कृत्वैवं पौषधागारे, क्षिप्रं मागम्यतां यथा । चामुण्डाऽऽयतनं याम, संघेन सहिता वयम् ॥
पूजोपस्कर मादाय, श्रावकाः पौषधोकसि । अभ्ययुः सूरयः सार्धं, तैर्देवी सदनं ययुः ॥
अथ पूजन् सूरी श्राद्धैः, सूरयो द्वार संस्थिता । अवदंश्च निजाभीष्टं, गृहाण देवि ! ददाम्यहम् ॥
इत्युक्तोभय पात्रस्थ, पक्वान्नभृत सुम्भकः । पाणिभ्यां पूर्णमित्वोऽगुः, स्वाभीष्टमिति गृह्यताम् ॥
अथ प्रत्यक्ष रूपेण, सूरीशाँ पुरतः स्थिता । प्राह प्रभो मद भीष्टं, कड़का मड़का ऽपरा ॥
गुरु रूचे न सा युक्ता, लातुं दातुं च ते मम । पलादा राक्षसा एव, देवा सुनि ! सुधा ऽशनाः ॥
एवं दर्शन निस्यात, स्वनामार्थ निरुन्त्यपि । पलाशानां समाचारं, कुर्वन्ती किं न लज्जसे ॥
लोक मोपायन पशून्, विनिहत्य पुरस्तव । तानपि नीत्वा स्वगृहे, त्वमश्नासि न किंचन ॥
इति हृत्वा मुधा हिंसा, पातकाय विधिमक्षिप् । देवानां मानवानांच, नरकः पाप कर्मणा ॥

ने कहा कि जिस प्रकार तुमने मांगा था वह न तो मुझे दिलाना योग्य है और न आपको ग्रहण करना ही योग्य है। इसके अलावा सूरिजी ने और भी कहा कि हे देवी तुमने पूर्व जन्म में कुछ अच्छे कार्य किये थे उसकी वजह से तो तुम्हें देवयोनि प्राप्त हुई है और अब ऐसे जघन्य कार्य में रत हो कर न जाने किस योनि में जन्म लोगी इत्यादि, हित वचनों से महात्मा ने ऐसा प्रतिबोध दिया कि कुमारिका के शरीर में रही हुई देवी को सर्वजनों के समक्ष उपकेशपुर के महावीर मन्दिर की पूर्ण भक्त बना दी। देवी सम्यकत्त्व धारिणी हो गई, इतना ही क्यों ? देवी ने यहां तक प्रतिज्ञा कर ली कि मास मदिरा तो क्या ? पर मैं किसी लालपुष्प व लालवस्त्र को भी ग्रहण न करुगी। बाद में देवी ने उपस्थित लोगों के समक्ष कहा कि उपकेशपुर स्थित श्रीस्वयंभूमहावीर भगवान की मूर्ति को पूजेगा या रत्नप्रभसूरि और इनके शिष्य प्रशिष्यों की सेवा भक्ति करते रहेगा उसके लिए मैं सदैव उनके दुःखों को दलित करने के लिये तैयार रहूँगी।

इस चमत्कारपूर्ण घटना को देख कर पहिले जो जैन बने थे उनकी श्रद्धा दृढ़ मजबूत हो गई तथा और भी बहुत से लोगों ने जैन धर्म की बहुत कुछ प्रशंसा की और उन्होंने सूरिजी के उपदेश से मिथ्या मत को त्याग कर जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। अर्थात् जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ।

इसी प्रकार उपकेशगच्छ चरित्र में भी उल्लेख मिलता है यथा —

एक दिन पूज्य आचार्यश्री ने देवी के उपासक भक्तों को उपदेश दिया कि तुम चण्डिका का पूजन मत करो। क्योंकि इसके मन्दिर में हमेशा प्राणियों को मारे जाते हैं अतः देवी पापिनी है। लोगों ने कहा कि हे प्रभो ! यदि हम लोग इस देवी की पूजा न करे तो निस्सन्देह यह सकुटुम्ब हमारा सहार कर देगी। सूरीश्वरजी ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी रक्षा करुगा। सूरिजी के इस कथन पर श्रावकगण देवी की पूजा से विमुख हो गये। इस पर देवी सूरीश्वरजी पर बहुत कुपित हुई। वह रात दिन गुरु के छल-छिद्र देखने लगी। एक दिन जब गुरुजी सायंकाल के समय बिना ध्यान के बैठे एव सोए हुए थे तो देवी ने उनके नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न कर दी। पूज्यसूरिजी ने योगबलद्वारा नेत्र पीड़ा का कारण जान गये और उस देवी के अपने पर ऐसा उपदेश दिया कि देवी स्वयं लज्जित हो गई। वह सूरिजी से इस तरह प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामिन् ! मैंने अज्ञान भाव से प्रेरित हो आपका यह अपराध किया है, आप मुझे क्षमा करें। मैं अब फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करुगी, हे विभो ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। सूरिजी बोले देवी इतना रोष क्यों ? देवी ने कहा आपने मेरे भक्तों को मेरी पूजा से मना किया है। यदि आप मेरा अभीष्ट जो ( कड़ड मडड ) मुझे दिलादो

१ अन्यदोपासकाः पूज्यैः प्रोक्ताः माचण्डिकाऽर्चनम्। कुरुध्वं यदियं सत्व घात पातकिनी सदा ॥
स प्रभावा प्रभो! देवी, नार्च्यते यदि तद् ध्रुवम। हन्ति नः स कुटुम्बेन, प्येवं माहुरुपासकाः ॥
अहं रक्षाँ करिष्यामि, त्युक्ते सूरिभिरर्चनात् । निवृत्ताः श्रावकाः सर्वे, कुप्यतिस्माथ सा गुरौ ॥
छलं विलोकयन्त्यस्थात्सा गुरूणामहर्निशम्। सायं ध्यान विहीनानां, नेत्र पीडामकल्पयत् ॥
विज्ञाय ज्ञान तो हेतुं, पूज्याः देवीमकीलयन् । तथा तथा स कष्टा सा, सूरिनेवं व्यजिज्ञपत् ॥
अज्ञान भाव विहितो ऽपराधः क्षम्यतां मम । न विधास्ये पुनः स्वामि, न्नेव जातु प्रसीद नः ॥
सूरि रूचे कथ रोपः ? सऽऽहमत्सेवकान् भवान् । अरक्षयन्मदमीष्ट, मदुक्त चेत्करिष्यसि ॥
लब्धेऽभीष्टे प्रमोऽवश्यं, वश्याते ऽन्वयिनामपि । भवित्रीति वदन्तीं ताँ, जगुराचार्य पुङ्गवाः ॥

तो हे प्रभो ! आपके और आपके वंशजों के मैं अवश्य आधीन हो जाऊंगी। ऐसा कहती हुई देवी को आचार्यश्वर ने उत्तर दिया कि हे देवि ! आप अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहो मैं आपको अभीष्ट 'कड़का मड़का' दिलाऊंगा आप उनमें ही रती करना। गुरु के इस कथन पर देवी संतोष के साथ अन्तर्ध्यान हो गई और प्रातःकाल गुरुजी के पास सब भद्रात्मा श्रावक एकत्रित हुए उनको कहा कि हे श्रावको ! तुम सब सुहाली आदि पक्वान्न तथा प्रत्येक घर से चंदन, अगर, कस्तूरी आदि भव्य भोग एकत्रित करो और इस प्रकार सब सामग्री तैयार कर जल्दी ही पौषधागार ( पोसाल ) में एकत्र मिलो आज संघ को साथ लेकर चामुण्डा देवी के मंदिर चलेंगे। यह सुन कर श्रावक-गण सब सामग्री एकत्रित कर पौषधशाला में एकत्रित हुए और सूरिजी उन्हें साथ ले चामुण्डा के मन्दिर में गये। वहां पहुँच कर श्रावकों ने देवी का पूजन किया और सूरिजी ने कहा कि हे देवी ! तुम अपना अभीष्ट ले लो। ऐसा कह कर दोनों तरफ के पक्वान्न पूर्ण सुहालों ( खोपरे ) को दोनों हाथों से चूर्ण कर पुनः बोले कि हे देवी अपना अभीष्ट ग्रहण करो। यह सुन देवी प्रत्यक्ष रूप हो सूरिजी के सामने खड़ी रही और बोली कि हे प्रभो ! मेरी अभीष्ट वस्तु 'कड़का मड़का' है। गुरु बोले हे देवी ! यह वस्तु तुम्हे देना और तुम्हे लेना योग्य नहीं क्योंकि मांसाहारी तो केवल राक्षस ही होते हैं। देवता तो अमृत पान करने वाले होते हैं। हे देवी ! तू देवताओं के आचरण को छोड़कर राक्षसों का आचरण को करती हुई क्यों नहीं लजाती है ? हे देवी ! तेरे भक्त लोग तेरी भेंट में लाये हुये पशुओं को तेरे सामने मारकर तुमको इस घोर पाप में शामिल कर उस मांस को वे स्वयं खाते हैं, तू तो कुछ नहीं खाती अतः तू क्यों हिंसात्मकार्यों को अंगीकार करती हुई क्या पाप से नहीं डरती है ? यह तो निर्विवाद है कि चाहे देवता हो चाहे मनुष्य हो पाप कर्म करने वाले को भवान्तर में नरक अवश्य मिलता है। इस जीव हिंसा के समान भयंकर और कोई पाप नहीं है। यह बात सब दर्शनों ( धर्म शास्त्रो ) में प्रसिद्ध है। अतः तू जगत की माता है तो तेरा कर्त्तव्य है कि

---

निज प्रतिज्ञा वचने, स्थिरी भाव्यं त्वया सदा । कड़हीं मड़हा देवि दास्ये तत्र रतिं कुथाः ॥
प्रतिज्ञाय गुरूर्वाक्यं, देवी स्वपस्तिरोदधे । प्रातः सर्वानपि श्राद्धान्, गुरव पर्यमीलयन् ॥
मिष्ठान्नं भाजनस्थां, पुरतः स्वयोऽवदन् । पक्वान्नानि विधाप्यन्तां सुहाली प्रभृतीनि भोः ॥
प्रतिगृहं घनसारागुरु कस्तूरिकाऽदिकः । भोग संमील्यतां भव्यो गृह्यन्तां कुसुमानि च ॥
कृत्वैव पौषधागारं, शीघ्र मागम्यतां यथा । चामुण्डाऽऽयतने यामः, संघेन सहिता वयम् ॥
पूजोपस्कर मादाय, श्रावका पौषधोकसि । अभ्यगु स्तरयः सार्धं, देवी सदने ययुः ॥
अथ पूजन् सुगैं श्राद्धैः, सुरयो हृद मेस्यिताः । अधर्द्धेव निजाभीष्टं, साहि देवि ! यथाम्यताम् ॥
इत्युक्त्वोभय पाणस्य, पक्वान्नमकृत चूर्णकं । पाथिम्यां चूर्णयित्वोचुः, स्वाभीष्टं देवि गृह्यताम् ॥
अथ प्रत्यक्ष रूपेण, सूरीणां पुरतः स्थिता । आह प्रभो मद् भीष्टं, कड़हा मड़हा उभरा ॥
गुरु रूच न सा युक्ता, दातुं दातुं च त मम । पलाद्दा राक्षमा एव, देवा देवि ! सुधा ऽशनाः ॥
पूर्ण दर्शन दिव्यार्त, स्वनामार्थ विडम्बपपि । पलादानां समाचारं, चरन्ती किं न लज्जसे ॥
लोक भोपायन पशून, निनिहत्य पुरस्तव । तानपि भीस्वा स्वगृह, त्वमश्नामि न किंचन ॥
स्वी कुराण कृथा हिंसा, पातकम निर्गमक्षिम् । देवानां मानवानांच, नरकः पाप कर्मणा ॥

सब 'जीवों पर दया भाव रखना' और तू इसी 'अहिंसापरमोधर्म' का आश्रय ले इत्यादि। इस प्रकार सूरिजी कथित उपदेश से प्रतिबुद्ध हुई देवी सूरिजी को कहने लगी, हे प्रभो ! आपने मुझे संसार कूप में पड़ती हुई को बचायी है। हे प्रभो ! आज से मैं आपकी आधीनता स्वीकार करूंगी और आपके गण में भी व्रतधारियों का सांनिध्य करूंगी तथा यावच्चन्द्रदिवाकर आपका दासत्व ग्रहण करूंगी। किन्तु हे प्रातःस्मरणीय सूरिपुंगव ! आप यथा समय मुझे स्मरण में रखना और देवतावसर करने पर मुझे भी धर्मलाभ देना। अपने श्रावकों से कुंकुम, नैवेद्य, पुष्प आदि सामग्री से साधार्मिक की तरह मेरी पूजा करवाना इत्यादि। दीर्घदर्शी श्रीरत्नप्रभ सूरि ने भविष्य का विचार करके देवी के कथन को स्वीकार कर लिया। क्योंकि सत्पुरुष गुणग्राही होते हैं। पापों को खण्डित करने वाली वह चण्डिका सत्य प्रतिज्ञा वाली हुई। यह जान उस दिनसे जगत में देवी का नाम 'सत्यका' प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर ने देवी को प्रतिबोध देकर सर्वत्र विहार करते हुये सवालाख से भी अधिक श्रावकों को प्रतिबोध दिया।

—ऊहडमंत्री का बनाया महावीर मन्दिर—

उपकेशपुरनगर में मंत्री ऊहड़ अपनी पुन्यवृद्धि के लिये एक नया मंदिर बना रहा था। पर दिन को जितना मन्दिर बनावे वह रात्रि में गिर जाता था। अतः विस्मय को प्राप्त हुये मंत्री ने तमाम दर्शनकारो को मन्दिर गिर जाने का कारण पूछा। पर उनमें से किसी एक ने भी समुचित उत्तर देकर मंत्री के भ्रमित मन को

पापं नातः परं किंचित्, सर्व दर्शन विश्रुतम। तस्माज्जीव दयाधर्म, सारमेकं समाश्रय ॥
इत्यादिभिरुपदेशैः प्रबुद्धा प्राह हे प्रभो ! । भव कूपे पतयालो, र्हस्तालम्ब प्रदा मम ॥
इतः प्रभृति दासत्वं, करिष्येऽस्मि तव प्रभो ! । आ चन्द्रार्कं त्वद्गणेऽपि संनिध्यं व्रतिनामपि ॥
परमास्मि स्मरणीयाः ! स्मर्तव्या समये सदा। धर्मलाभः प्रदातव्यो, देवताऽवसरे कृते ॥
तथा कुंकुम नैवेद्य-, कुसुमादिभिरुद्यते। श्रावकैः पूजयध्व मां, यूयं साधर्मिकीमिव ॥
दीर्घ दर्शिभिरालोच्य, श्रीरत्नप्रभसूरिभिः। तद्वाक्य मुररी चक्रे, यत्सन्तो गुण कांक्षिणः ॥
सत्य प्रतिज्ञा जातेति, चण्डिका पाप खंडिका। सत्यकेति ततो नाम, विदितं भुवनेऽभवत् ॥
एवं प्रबोध्यतां देवीं, सर्वत्र विहरन् प्रभुः। सपादलक्ष श्राद्धाना, मधिकं प्रत्यबोधयत् ॥
इतश्च श्रेष्ठी तत्राऽऽस्ते, ऊहड़ कृष्ण मन्दिरम्। कारयन्नतुलंनव्यं, पुण्यवान् पुण्य हेतवे ॥
दिवा विरचित देव, मदिरं राज मन्त्रिणा। भिन्नत्वं प्राप्नुयाद्रात्रौ, ततो विस्मयता गतः ॥
अप्राक्षीद्दार्शिकान् मंत्री, कथ्यतामस्य कारणम्। न कश्चिद्वचे तत्वज्ञः, सत्यं सत्यं वचस्तदा ॥
ततोऽपृच्छन्मुनिं मन्त्री, कारणं च कृताञ्जलिः। प्रत्युवाच ततः सूरि, मंन्दिरं कस्य निर्मितम् ॥
नारायणस्य मन्त्रीति, प्रोवाचाचार्यमक्षरम्। तच्छ्रुत्वा मुनि शार्दूलः, प्रोवाच गिर मुत्तमाम् ॥
उपद्रवं नेच्छसिचेन्, महावीरस्य मन्दिरम्। कारयत्वं हे मन्त्रिन्। मदाज्ञां च गृहाणत्वम् ॥
मन्त्रिणैवं कृते चैव, नाभूत् पुनरुपद्रवः। एव मालोक्य लोकास्च, सर्वे वित्मयतां गताः ॥
तन्मूल नायक कृते, श्री वीर प्रतिमां नवाम्। तस्यैव श्रेष्टिनो धेनोः, पयसा कर्त्तु माद्दणात् ॥

उपकेश गच्छ चरीत्र

संतुष्ट नहीं किया । इस हालत में मंत्री ने आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास जाकर सही हाल पूछा कि गुरु महाराज ! दिन को बनाया हुआ मेरा मन्दिर रात्रि में क्यों गिर जाता है ? इस पर सूरिजी ने कहा कि मन्त्रेश्वर ! आप मन्दिर किसका बनाते हो ? मंत्री ने कहा कि मंदिर नारायण का बनाता हूँ ( जो पहिले से प्रारम्भ किया हुआ है ) । इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञानबल से देख कर कहा कि यदि आप महावीर के नाम से मन्दिर बनावें तो ऐसा उपद्रव नहीं होगा । मंत्री ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य कर ली । और महावीर के नाम से मन्दिर बनाना शुरू किया फिर तो एक भी उपद्रव नहीं हुआ और मन्दिर क्रमशः तैयार होने लग गया । जिसको देख सब लोग आश्चर्ययुक्त हो गये ।

इधर पहले से ही देवी ने उस मन्दिर के योग्य महावीरदेव की मूर्ति बनानी शुरू कर दी थी । जिसका हाल यह है कि—मंत्री की गाय 'जो पट्टावलीकारों के मतानुसार देवी—चामुण्डा के नाम से मशहूर थी' वह गाय गोपाल से पृथक् हो लूणाद्रिपहाड़ी के नजदीक एक कैर का झाड़ के पास जाती थी तो स्वयं दूध-स्राव हो जाता था ।

जब गाय का दूध कम होने लगा तो मंत्री ने गोपाल को धमका कर उसका कारण पूछा ? गोपाल दिन भर गाय के साथ रहा और शाम को प्रस्तुत स्थान दूध-स्राव होता देख कर मंत्री के पास आया और सब हाल कहा एवं साथ चलकर मंत्री को वह स्थान भी बतलाया कि यह गाय का दूध स्वयं झर जाता था ।

बाद मंत्री के दिल में संदेह हुआ कि यहां क्या चमत्कार होगा कि गाय का दूध स्वयं झर हो जाता है । इस संदेह के निवारणार्थ सब दर्शनिकों को एकत्र कर अपनी गाय का दूध झरने का कारण पूछा तो किसी ने कहा यहां धन का खजाना है । किसी ने कहा यहाँ ब्रह्मा की मूर्ति है किसी ने विष्णु, किसी ने शिव किसी ने बुद्ध और किसी ने गणेश की मूर्ति बतलाई । इस प्रकार भिन्न २ कारण बतलाने से मंत्री का सन्देह नहीं मिटा और इस सन्देह २ में उसने कई मास व्यतीत कर दिये ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर में चतुर्मास करके आस पास के ग्रामों में विहार कर पुनः उपकेशपुर में पधारे थे और किसी उद्यान के एक विभाग में आप ठहरे हुवे थे । अब मंत्री ने जाकर विनय के साथ सूरिजी से अपनी गाय का दूध के विषय प्रश्न पूछा जिसको अच्छा लाभ जाना जान सूरिजी ने मंत्री से कहा कि मंत्री तुम कल प्रभात होते ही आना मैं तुम्हारे प्रश्न का समुचित उत्तर दूंगा । विश्वास का भाजन मंत्री सूरिजी को वंदन कर अपने मकान पर चला गया । बाद सूरिजी ध्यान में स्थित हो गये । रात्रि में देवी चामुंडा ने सूरिजी के पास आकर अर्ज की कि हे पूज्यवर ! कई महीनों से मैं भगवान महावीर की मूर्ति

---

पयोध्नी मंत्रिणो धेनुः, साथ निर्गत्य गोकुलात् । अवण्यद्रवनामाद्रौ, क्षीरं क्षरति नित्यशः ॥
गोपालः मंत्रिणाऽभ्यधि, दुग्धाभावस्य कारणम् । तेन सम्यग विनिश्चित्य, कथितं दर्शितं च तत्॥
सोऽपि विमानपाऽश्यच्च्, तथा दर्शनिनोऽप्यशिक्षत् । स्वर्गोदुग्ध स्राव हेतुं, तेऽप्यास्यन् नैक मानसा॥
केऽप्याहुः शेषधि रिह, केऽपि कृष्णः शिवोऽपरे । त्वरेव गृह योग्योऽय, बुद्धो लम्बोदरो ऽथवा ॥
मिथो विभिन्न वाक्येभ्य, स्तेभ्यः सन्दिग्ध मानसः । मासान् पंच व्यतीयाय, साचिकान् कतिचिद्दिनै ॥
सूरयोऽपि मास कल्पं, तत्र कृत्वाऽन्यतो गतः । चतुर्मास कल्पान्ते, पुनस्तद् पुरमागमन् ॥
तान् पुरोद्यान भूभागे, ज्ञात्वा नगरस्य सः । सरीन् पेत्य पप्रच्छ, मंत्री सन्देह मात्मनः ॥
तत्रिवाय प्रमोदर्क, सूरि माह विचिन्त्य मोः । प्रातस्ते संशयं मंत्रि, अपने प्याम्य संशयम् ॥

सप 'जीवों पर दया भाव रखना' और तू इसी 'अहिंसापरमोधर्म' का आश्रय ले इत्यादि। इस प्रकार सूरिजी कथित उपदेश से प्रतिबुद्ध हुई देवी सूरिजी को कहने लगी, हे प्रभो ! आपने मुझे ससार कूप में पड़ती हुई को बचायी है। हे प्रभो ! आज से मैं आपकी आधीनता स्वीकार करूंगी और आपके गण में भी व्रतधारियों का सांनिध्य करूंगी तथा यावच्चन्द्रदिवाकर आपका दासत्व ग्रहण करूंगी। किन्तु हे प्रात स्मरणीय सूरिपुंगव ! आप यथा समय मुझे स्मरण मे रखना और देवतावसर करने पर मुझे भी धर्मलाभ देना। अपने श्रावकों से कुंकुम, नैवेद्य, पुष्प आदि सामग्री से साधार्मिक की तरह मेरी पूजा करवाना इत्यादि। दीर्घदर्शी श्रीरत्नप्रभ सूरि ने भविष्य का विचार करके देवी के कथन को स्वीकार कर लिया। क्योंकि सत्पुरुष गुणग्राही होते हैं। पापों को खण्डित करने वाली वह चण्डिका सत्य प्रतिज्ञा वाली हुई। यह जान उस दिनसे जगत में देवी का नाम 'सत्यका' प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर ने देवी को प्रतिबोध देकर सर्वत्र विहार करते हुये सवालाख से भी अधिक श्रावकों को प्रतिबोध दिया।

—ऊहडमंत्री का बनाया महावीर मन्दिर—

उपकेशपुरनगर में मन्त्री ऊहड़ अपनी पुन्यवृद्धि के लिये एक नया मंदिर बना रहा था। पर दिन को जितना मन्दिर बनावे वह रात्रि में गिर जाता था। अत. विस्मय को प्राप्त हुये मन्त्री ने तमाम दर्शनकारो को मन्दिर गिर जाने का कारण पूछा। पर उनमें से किसी एक ने भी समुचित उत्तर देकर मंत्री के भ्रमित मन को

पापं नातः परं किंचित्, सर्व दर्शन विश्रुतम। तस्माज्जीव दयाधर्मं, सारमेकं समाश्रय ॥
इत्यादिभिरुपदेशैः प्रबुद्धा प्राह हे प्रभो !। भव कूपे पतयालो, र्हस्तालम्ब मदा मम ॥
इतः प्रभृति दासत्वं, करिष्येऽस्मि तव प्रभो !। आ चन्द्रार्कं त्वद्गणेऽपि संनिध्यं व्रतिनामपि ॥
परमस्मि स्मरणीयाः ! स्मर्तव्या समये सदा। धर्मलाभः प्रदातव्यो, देवताऽवसरे कृते ॥
तथा कुंकुम नैवैद्य–, कुसुमादिभिरुद्यते। श्रावकैः पूजयध्व मां, यूयं साधमिकीमिव ॥
दीर्घ दर्शिभिरालोच्य, श्रीरत्नप्रभसूरिभिः। तद्वाक्य मुररी चक्रे, यत्सन्तो गुण कंक्षिणः ॥
सत्य प्रतिज्ञा जातेति, चण्डिका पाप खंडिका। सत्यकेति ततो नाम, विदितं भुवनेऽभवत् ॥
एवं प्रबोध्यतां देवीं, सर्वत्र विहरन् प्रभुः। सपादलक्ष श्राद्धाना, मधिकं प्रत्यबोधयत् ॥
इतश्च श्रेष्ठी तत्राऽऽस्ते, ऊहड कृष्ण मन्दिरम्। कारयन्नतुलंनव्यं, पुण्यवान् पुण्य हेतवे ॥
दिवा विरचित देव, मंदिरं राज मन्त्रिणा। भिन्नत्व प्राप्नुयाद्रात्रौ, ततो विस्मयता गतः ॥
अप्राक्षीद्दार्शिकान् मंत्री, कथ्यतामस्य कारणम्। न कश्चिद्वचे तत्वज्ञः, सत्यं सत्यं वचस्तदा ॥
ततोऽपृच्छन्मुनिं मन्त्री, कारण च कृताञ्जलिः। प्रत्युवाच ततः सूरि, मंन्दिरं कस्य निर्मितम् ॥
नारायणस्य मन्त्रीति, प्रोवाचाचार्यमक्षरम्। तच्छ्रुत्वा मुनि शार्दूलः, प्रोवाच गिर मुत्तमाम् ॥
उपद्रवं नेच्छसिचेन्, महावीरस्य मन्दिरम्। कारयत्वं हे मन्त्रिन्। मदाज्ञां च गृहाणत्वम् ॥
मन्त्रिणैवं कृते चैव, नाभूत् पुनरुपद्रवः। एव मालोक्य लोकास्च, सर्वे वित्मयतां गताः ॥
तन्मूल नायक कृते, श्री वीर प्रतिमां नवाम्। तस्यैव श्रेष्ठिनो धेनोः, पयसा कत्तुं माद्दणात् ॥

उपकेश गच्छ चरीत्र

जो बालुरेती और मंत्री की गाय के दूध से तैयार कर रही हूँ। जब छः मास पूर्ण होगा तब मूर्ति सर्वांग-सुन्दर बन जायगी। जिसको पुरा छ मास होने पर ही निकाली जायगी।

सूरिजी ने कहा देवी आप स्वयं मन्त्रीश्वर के पास प्रगट हो सब हाल उसको सुनादो तो अच्छा होगा। देवी ने ऐसा ही किया कि रात्रि में उसने मत्री के पास जाकर कहा कि मैं यहा की चामु डा देवी हूँ। गुरु महाराज की आज्ञा से यहा आई हूँ। तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि तुम्हारी गाय के दूध से मैं तुम्हारे मंदिर के योग्य मूर्ति बना रही हूँ। इत्यादि सब हाल सुना दिया और अत में कहा कि तुम पाप के घररूप-सन्देह का शीघ्र त्याग कर देना। बस इतना कह कर देवी अदृश्य हो गई। सुबह होते ही मंत्री ने सूरिजी के पास आकर चरण-कमलों में नमस्कार किया और अपने प्रश्न के उत्तर कि प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा कि रात्रि में देवी ने तुमसे कह दिया है न ?

मंत्री ने कहा हा देवी ने तो कहा पर मैं पुन. आपसे सुनना चाहता हूँ। इस पर सूरिजी ने मत्री को सब हाल कह सुनाया। सूरिजी से सब हाल सुन कर मंत्री को भगवान महावीर प्रभु की मूर्ति के दर्शन की इतनी उत्कंठा लगी कि उसी समय सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! पधारिये प्रभुबिंब निकलवा कर उसके दर्शन करवाकर हमारे जन्म को कृतार्थ बनावें। इस पर सूरिजी ने कहा मत्रीश्वर जरा धैर्य्य रक्खो, अभी सात दिन की देरी है। जब यह मूर्ति सर्वांग सुन्दर बन जायगी तब अच्छे मुहूर्त्त में खूब समारोह के साथ लावेंगे।

---

श्रद्धधानः सतद्वाक्यं, स्वमन्दिर मयाद् ययात्। सूरयोऽपि व्यधुर्घ्यान, निश्या गाच्छा सनामरी ॥
व्याजित्तयदिदं देवी, प्रभोर्वीर जिनेशितुः। कुर्वाणाऽस्मि नवं बिम्बं, षण्मासात्तद् भविष्यति ॥
प्रभवः प्रोचिरेदेवि ! प्रत्यक्षी भूय तत्परः। सर्व मेतत्समाख्याहि, स्वमुखेन यथा तथम् ॥
साऽपि गुर्वाज्ञया गत्वा, तत्र प्रत्यक्षरूपिणी। श्रेष्ठिनं गत निद्रद्राक् प्राह विस्मित मानसम् ॥
भोः श्रेष्ठिन् ! गुर्वनुज्ञाता, ऽयाता हं शासनामरी। गोस्राव हेतुं गदितुं, शृणु तत् प्रयताशयः ॥
त्वदोगृक्षीरेण वीरस्य, कुर्वाणा प्रतिमां शुभाम्। वत्ते हं मास्म तत्कार्षीः, सन्देहं गेह मेनसः ॥
इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त, सोऽपि मोह वशं वदः। प्रातर्गत्वा च नत्वा च, गुरू पादानुपाविशत् ॥
संयोज्यपाणी सोऽपृच्छत्, प्रश्नं स्वीयमथप्रभुः। प्रोचे शासन देवो ते, आच चक्षे स्वयं निशि ॥
यद्यप्येवपरं पूज्यै,स्तथापि प्रतिपाद्यताम्। ततः सर्वं यथा वृत्त, गुरुराख्यात वानपि ॥
व्याजिज्ञ पदथ श्रेष्ठी, शीघ्रं सॅचलत प्रभो। यथा वीर जिनेशस्य, बिम्बॅ निष्कास्यतेऽधुना ॥
सूरयोऽपि विलम्बस्व, सादरः सप्तवासरीम। आने ष्यामः शुभे लग्ने, पूर्णीभूत मिदॅ जगुः ॥
श्रेष्ठ्यपि प्राह तल्लग्नं, शुभं यत्र सुरी वचः। पूज्यादेशश्च तत्तूर्णम्, पूर्णं कुरु मतंममः ॥
अत्याग्रहत्तस्य पूज्या, श्चेलुश्चलत्तोज्झिताः। श्रेष्ठिना सहितास्तत्र, यत्र वीर जिनेश्वरः ॥
तत्र स्वर्णमय यव, स्वस्तिक कुसुमानि च। वीक्ष्य स्वयम् खनित्वोर्वीं, श्रेष्ठी प्राकाशयज्जिनम् ॥
हृदये निम्बुक फल सम ग्रन्थि युगान्वितः। निःससार महावीरो, न्यून सप्त दिनत्वत्तः ॥
दिवि दुन्दुभयोनेदुर्भुवि मानव वादितः। नान्दी निनादः प्रसरन्, व्यानशे व्योम मण्डलम् ॥

उपकेशपुर में महावीर मन्दिर की तथा कोरंटपुर में भी महावीर मन्दिर की एक ही साथ में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्ष माघ शुक्ल पंचमी गुरुवार ब्रह्ममुहूर्त में प्रतिष्ठा करवाई। आचार्यश्री ने वैक्रियलब्धि से दो रूप बनाये थे। पृष्ठ १ ५
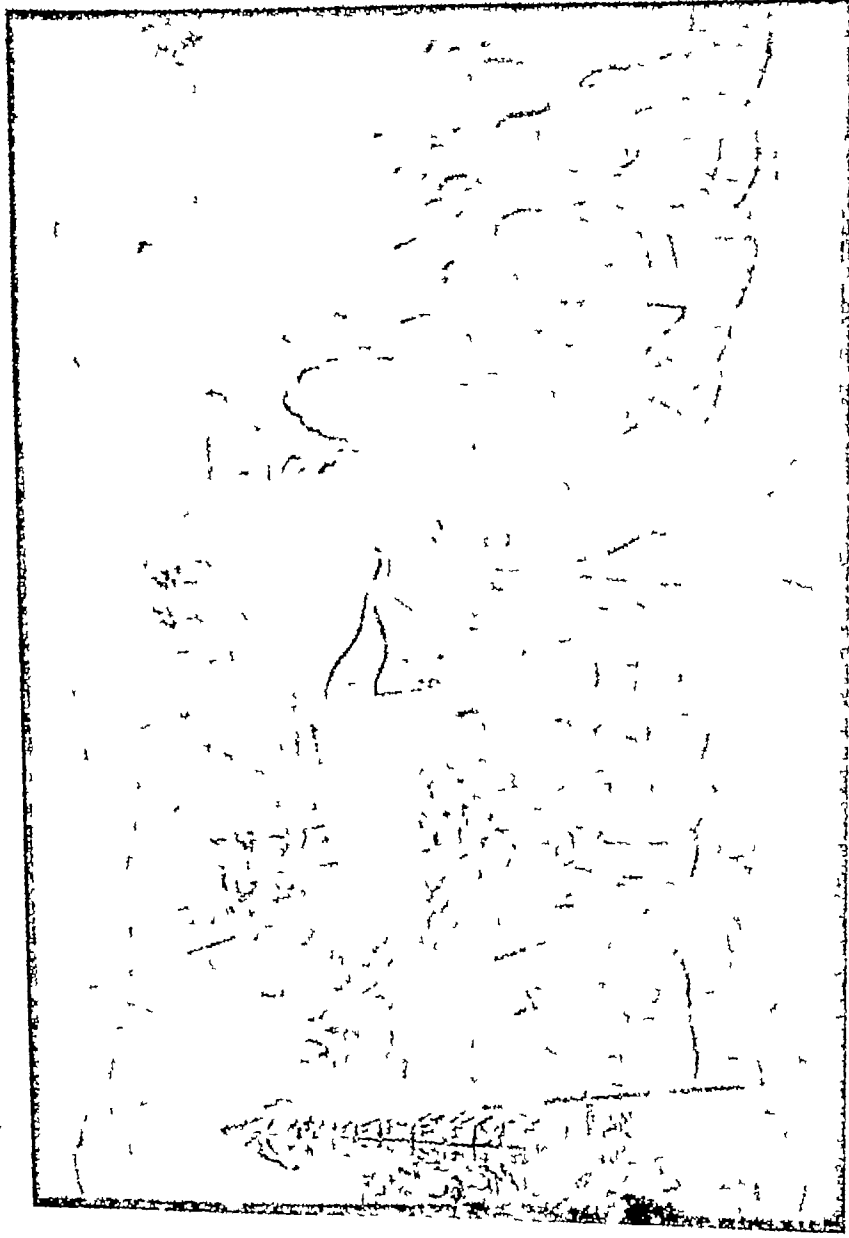
उसी समय आकाश मार्ग अर्थात् वैक्रय लब्धि से दूसरा रूप बना कर उसी लग्न में कोरंटपुर जाकर वहाँ की महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा दी और वार्ता होने के पश्चात् पुनः उपकेशपुर पधार गये । इन दोनों मंदिरों की प्रतिष्ठा का समय वीर निर्वाण के बाद ७० वें वर्ष का था अर्थात् वीर निर्वाण के बाद ७० वर्ष माघ शुक्ल पंचम के दिन दोनों नगरों में भगवान महावीर की मूर्तियां स्थिर स्थापन की । धन्य है ऐसे उपकारक महात्माओं को कि जिन्हों का नाम विश्व में आज भी अमर है ।

इसके अलावा उपकेशगच्छ पट्टावलीकारों ने भी मंत्री ऊहड़ के बनाये हुए महावीर मंदिर तथा कोरंटपुरके महावीर मंदिर का संक्षेप में वर्णन किया है जो चारित्रकार के कथन से ठीक मिलता जुलता है।

---

पूर्वं मेहडिना नारायण प्रासादं कारयितुमारब्धं स दिवसे करोति रात्रौ पतति सर्वे दर्शनिकाः पृष्टा न कापि उपायो कथितं तेन रत्नप्रभाचार्यो पृष्टा भगवान् मम प्रासादो रात्रौ पतति ? गुरुणां प्रोक्तं कस्य नाम्नः कारयसि ? नारायणस्य नाम्नः । एवं नहीं महावीर नाम्नः कुरु मंगलं भविष्यति प्रासादस्य विघ्नं न भविष्यति मेहडिना तथैव प्रतिपन्न । अथ श्रावकत्वं दत्त्वा गुरुणां कथितं हे भग वन ! अस्य प्रासाद योग्यं मपादय प्रदान् उत्तरस्यां दिशी लूणाद्रहाभिधाने डुगरिकायां श्रीमहा-वीर बिम्बं कारयितुमारब्धं । तत्र तेन मेहडिना गोपाल वचनात् गोदुग्ध-स्राव कारणं ज्ञात्वा सर्वेपि दर्शनिनः पृष्टाः ते पृथक् पृथक् भाषया अन्यदन्यद्युक्त ततः मेहडिना स आचार्योऽपि तत्र पृष्ट ततः श्रावक दृष्ट्वा तस्मात् आचार्यो ज्ञात्वा एवं कथयति तत्र स्थानमासात् योग्य बिम्बो भविष्यति पर षट् मासैः सप्त दिनं निष्काम नीय मेहडि उच्छुक संजात किंचिन्नोदिने निष्काशित निंबु फल प्रमाण हृदयस्य ग्रन्थी इव सहितं । आचार्यैः प्रोक्तं अद्यापि किंचित् असम्पूर्णं बिम्बं विलम्ब त्व मेहडिना प्रोक्त गुरुणां कर प्रासादस्य सम्पूर्ण भविष्यति ।

तेनावसरे कोरंटकस्य श्रद्धानां आह्वानं आगतं भगवन् प्रतिष्ठार्थमागच्छ ? गुरुणां कथितं मुहूर्त वेलाया आगच्छामि ।

निजरूपेण उपकेशे प्रतिष्ठाकृता वैक्रय रूपेण कोरंट के प्रतिष्ठा कृता श्राद्धै द्रव्य व्यय कृतः तत्रस्थ मेहडिना श्री ओपकेशपुरस्य श्रीमहावीर बिम्ब पूजा भावतिक स्नात्र करण देववन्दनादि विधिः श्री रत्नप्रभाचार्यात् शिक्षिता तदनंतर मिथ्यात्वा भवात् श्रावकत्वं कथंचित् मेडि सम्बन्धिनो संजातं तद आचार्येण ते सम्यक्त्वधारी कृताः ।

सप्तत्य वत्सराणां चरम जिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षे ।
पंचम्यां शुक्ल पक्षे सुरगुरु दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युक्तै सर्व संघानुज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य बिम्बे भव शत मथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥
उपकेशे च कोरंटे, तुल्य श्रीवीरबिम्बयोः । प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या श्री रत्नप्रभ सूरिभिः ॥

आचार्य रत्नप्रभसुरि उपकेशपुर में ५०० मुनियों के साथ पधारे थे, जिसमें ३५ मुनियों ने तो सूरीजी के पास में चतुर्मास किया था, शेष कनकप्रभादि ४६५ ने सूरिजी की आज्ञा से विहार कर दिया था। उन्होंने चल कर कोरंटपुर में चतुर्मास किया था औरआपके उपदेश से कोरंटपुर के श्रीसंघ ने अपने यहाँ एक महावीर का मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा का शुभमुहूर्त माघ शुक्ला पंचमी गुरुवार ब्राह्ममुहूर्त और धनुर्लग्न में निकला। अत. कोरटपुर के श्रीसघ ने मुनि कनकप्रभ से प्रतिष्ठा के लिये कहा तो मुनिवर ने साफ कह दिया कि प्रतिष्ठा तो हमारे गुरुवर्य रत्नप्रभसूरि ही करावेंगे। अत' कोरंटपुर श्रीसंघ चल कर उपकेशपुर आया और सूरीजी से साग्रह विज्ञप्ति की कि प्रतिष्ठा के समय आप कोरंटपुर पधार कर प्रतिष्ठा करावें। सूरिजी ने कहा कि वही मुहूर्त यहाँ के मन्दिर की प्रतिष्ठा का है जो आपके यहाँ है। फिर हमारे से कैसे आया जा सकेगा ?

इस पर कोरंट सघ निराश हो गया। इतना ही क्यों पर उनके चेहरा भी उदास हो गया जिसको देख कर सूरिजी ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि महानुभावो! आप उदास क्यों होते हो ? आप लोगों का यही आग्रह है तो आप प्रतिष्ठा की सब सामग्री तैयार रक्खो, प्रतिष्ठा के ठीक समय पर मैं वहां आकर आपके यहा भी प्रतिष्ठा करवा दूंगा, इत्यादि। इस पर कोरटसघ खुश हो सूरिजी को वदनकर निज स्थान को चला गया और वहां जाकर प्रतिष्ठा की सब सामग्री जुटाने में दत्तचित्त से लग गया।

इधर सूरिजी महाराज ठीक लग्न के समय श्रीसम्पन्न उपकेशपुर में वीर बिम्बकी प्रतिष्ठा करवा रहे थे

---

तत्प्रतिष्ठा विधानाय, संघाऽभ्यर्थनयाऽनया। प्रसीद भगवन्नेहि, पूरयाऽस्मन्मनोरथान् ॥
तदेव लग्नं विज्ञप्ते, रवधार्य धियाँ निधिः। सूरिः प्रोचे कथं भव्याः! घटतेऽस्माकमागमः ॥
यत्तत्राप्यत्र चैवैकं, लग्नं शुद्धं तथाऽपरम्। तदत्रत्यं कथं त्यक्त्वा, कार्यमन्यत्र गम्यते ॥
तच्छ्रुत्वा सविषादाँस्तान् व्रीडापन्नान् विलोक्यच। प्रभुराह मास्म यूयं, विषीदत्त मुधा बुधाः॥
देहे क्यादेक लग्नत्वा, चसमं लग्न साधनम्। परमत्र साधयित्वा, व्योम्नाऽऽयास्यामि तत्रहि ॥
कार्या प्रतिष्ठा सामग्री, भवद्भिः कृत निश्चयैः। यथा तत्रैव लग्नेऽहं, कुर्व्वे सघ समीहितम ॥
ततः प्रोल्लसिताऽऽनन्दाः, श्रावकाः सूरिपुङ्गवम्। वन्दित्वा स्वपुरं जग्मुः, सद्यायाऽऽचरन्प्युराशुते॥
ततः सर्वा पि सामग्री, प्रतिष्ठाया उपासकैः। मिलित्वा मीलयामासे; माघे मासे यथा विधि॥
ततः श्रीमत्युपकेशे, पुरे वीर जिनेशतुः। प्रतिष्ठों विधिनाऽऽधाय, श्री रत्नप्रभ सूरयः ॥
कोरंटकपुरे गत्वा, व्योम मार्गेण विद्यया। तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठों विदधुर्वराम् ॥
श्री महावीर निर्वाणाद्, ससत्या वत्सरैर्गतैः। ऊकेशपुर वीरस्य, सुस्थिरा स्थापनाऽजनि ॥
भूयोऽपि व्योम यानेन, व्यावृत्याऽऽगत्य सूरयः। श्रष्ठिनं बोधयामासु, र्जिनस्नानार्चनक्रियाम ॥
सक्रमादूहड श्रेष्ठी जिन धर्मधरोऽभवत। शुद्ध सम्यक्त्व भृत्तस्य परिवारोऽपि चाभवत् ॥
श्रीरत्नप्रभसूरीणा मागत्या ऽऽगत्य तस्थुपाम। मासकल्पास्तदानेके व्यतीयुः कल्पसेविनाम ॥
उपकेशपुर एव सूरेः संयमिनस्तदा। विस्तरेण प्रभावस्य कालो ऽप्यनल्पतों गतः ॥
भव्याब्ज बोधंकुर्वन्तं;तत्रस्थंसूरिभास्करम्। वीक्ष्य द्विजातमोघूक इव नोद्वीक्षितुंक्षमाः ॥

है ? ब्राह्मण अपने पुत्र के वचन को सुनकर बोला कि हे कुलकल्पतरुवत् प्यारे मेरे वत्स ! आज तू मृत्यु के मुख में पहुँच गया था । परन्तु कृपा के सागर महागुणों के आगार पूज्यवरसूरिजी ने सकुटुम्ब मेरा और तेरा पुनः जीवन दान किया है ! ब्राह्मण पुत्र ऐसी सरस वाणी को सुनते ही प्रणाम करने की इच्छा से वहां से उठ कर सब ब्राह्मणों सहित गुणों में श्रेष्ठ गुरुजी के पास गया । वहां आ कर और सूरिजी को आदर सहित देख कर मस्तक के केशों को उनके पैरों में झुलाता हुआ भक्तिपूर्वक स्वयं पृथ्वीतल पर लोटता हुआ उनके पैरों की वन्दना करने लगा और बोला हे भगवन ! मुझे जीवन दान देके आज आपने ब्राह्मण और श्रमण ( जैनी सन्यासी ) के आपसी चिरकाल के वैर को भुला दिया । हे गुरो ! आज से आप वैश्यों के तुल्य हमारे भी पूज्य हो । इस वचन को उपस्थित अन्य ब्राह्मण समुदाय ने भी अंगीकार किया । उस दिन से ले कर सारे ब्राह्मण श्रावक वैश्यों के समान ही पूज्य सूरिजी का गौरव करने लगे और उनकी आज्ञा का आदर करने लगे । इस प्रकार अठारह हजार ब्राह्मणों आदि को प्रतिबोध कर जैन बनाये । जिससे जैन संख्या में वृद्धि और धर्म की खूब प्रभावना हुई इस प्रकार आचार्य श्री ने अनेक स्थानों पर जैन बना कर मरुधर जैसा वाममार्गियों के प्रदेश को जैनमय बना दिया पट्टावलिकारों ने इन सब को मिला कर १८४०० घरों की संख्या बतलाई है वह ठीक ही है अस्तु । आचार्य रत्नप्रभसूरि की सर्वत्र भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के लिये यह दूसरी बार का मौका था क्योंकि पहले मंत्रीपुत्र की घटना ऐसी ही बनी थी उसके बाद देवी को प्रतिबोध किया तत्पश्चात् मंत्री ऊहड़ के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई बाद यह ब्राह्मण के पुत्र की घटना घटी । यही कारण है कि ब्राह्मण लोग कह रहे हैं कि हे पूज्यवर हम ब्राह्मण भी वैश्यों की भाँति आपके उपासक हैं इससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणपुत्र की घटना के पूर्व आचार्य श्री ने उपकेशपुर में राजा मंत्री क्षत्री एवं वैश्य (व्यापारी) लोगों को जैन धर्म म दीक्षित कर आये थे अतः किसी को यह भ्रान्ति न हो जाय कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने केवल ब्राह्मण पुत्र को जिला कर १८ [illegible] लोगों को ही जैन बनाये थे ! पर यह घटना तो बाद में दूसरी बार घटी थी और इस प्रकार सूरिजी ने अपने जीवन में १४ [illegible] नये जैन बनाये थे जो इस ग्रन्थ के पढ़ने से विदित हो जायगा ।

---

इतिश्रुत्वा (सरसाँ) सद्वचनाय विविन्दिषुः । गुरून् गुण गुरून् विप्रा, सर्व विप्र समन्विताः ॥
भूपीठे विलुठन् भक्त्या, लीन शीर्ष सशादरम् । पादौ वन्दे मौलिस्थ, केश मोक्षन पूर्वकम् ॥
अवादी इष भगवन, जीवितं ददता मम । विप्र श्रमणयोर्वैरं, चिरं मिथ्या कृतं त्वया ॥
इतः प्रभृतिनः पूज्या, गुरवो वणिजामिव । अन्यैरपि तदा विप्रै, स्तदुक्तं बहुमन्यत ॥
तदा प्रभृति सर्वेपि, ब्राह्मणा श्रावका इव । तद्गौरवं वितन्वन्ति, तदाज्ञा नाममेनिरे ॥
एवं प्रभावयन्तस्ते, सूरयो जैन शासनम् । अष्टादश सहस्राणि ब्राह्मणाँ मत्यबोधयन् ॥

वंशावलीकारों ने इस प्रतिष्ठा का विस्तार से वर्णन करते हुए फरमाया है कि इस प्रतिष्ठा का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। क्यों न पड़े! पहिले तो इस प्रान्त में यह जैन मंदिर और प्रतिष्ठा पहिले ही पहिल था दूसरे नूतन बने हुए राजा प्रजा जैनों का उत्साह भी अपूर्व था, तीसरे द्रव्य की खुले हाथों छूट थी, चतुर्थ उन लोगों को जैनोपासकों की वृद्धि भी करनी थी, पंचम देवी चामुंडा की बन ई हुई अतिशय चमत्कारी मूर्ति छटे प्रतिष्ठा करवाने वाले महाप्रभाविक आचार्य रत्नप्रभसूरि और सातवां वह समय जैन धर्म के उदय का था एवं सात शुभ निमित्त कारण मिल गया। फिर तो कहना ही क्या था।

इस प्रतिष्ठा का ठाठ देख राजा उत्पलदेव का उत्साह और भी विशेष बढ़ गया और उसने भी नगर की पहाड़ी पर एक पार्श्वनाथ प्रभु का मंदिर बनाने का निश्चय कर डाला और वह केवल विचारमात्र ही नहीं पर तत्काल ही कार्य्य प्रारम्भ भी कर दिया।

## ब्राह्मण पुत्र की घटना और सूरिजी का चमत्कार

एक समय दैववशात् ब्राह्मणों में मुख्य एक कोट्याधीश ब्राह्मण के पुत्र को काले नाग ने डस लिया तो वह मृतप्राय हो गया। उसके पिता ने विष वैद्यों से अनेक जड़ी बूटियाँ आदि यंत्र मंत्र तंत्र से प्रेम पूर्वक उपचार कराया और भी अनेक उपाय किये परन्तु वे सब दुष्ट के साथ किये हुए उपकार के समान व्यर्थ हुए। अब उस मृतप्राय ब्राह्मण पुत्र को पालकी में बैठा कर शोक से विह्वल तथा विलाप करते हुए उसके पिता आदि ब्राह्मण श्मशान पर चले! सूरिजी ने धर्म की उन्नति के लिये, उस ब्राह्मण कुमार को जिन्दा जान कर शोक विह्वल उसके पिता को अपने पास जल्दी ही बुलवाया और कहा हे ब्राह्मण! यदि तेरा पुत्र पुनर्जीवन प्राप्त कर ले तो तुम लोग क्या करोगे? ब्राह्मण ने उत्तर दिया मैं आजन्म आपका दास बन कर रहूँगा और मानो पूज्यवर! आपने मुझे सकुटुम्ब को जीवन दान दिया हो ऐसा मानूगा। विशेष क्या? आप ही मेरे पिता, माता, स्वामी और देवता स्वरूप हैं।

ब्राह्मण के ऐसा कहने पर सूरिजी ने अपने पैर धोये और जल को उसे देकर भेजा। ब्राह्मण ने पुत्र को शवारोही पालकी से उतार चारों तरफ से उसका अभिसिंचन किया। अमृत तुल्य उस जल से अभिसिंचन हुआ ब्राह्मण कुमार विष रहित हो निद्रा मे जगे प्राणी के समान बैठा हो गया और पिता से पूछा कि यह क्या

---

❀ तदा मुख्य ब्राह्मणस्य धन कोटी शितुः सुतः। दुष्ट कृष्णाऽहिनादंष्टोमृत कल्पइवाऽभवत् ॥
पिताऽगदै जाँङ्गुलिकै रुपचारत्समादरात्। धनैरुपायैस्तद् व्यर्थ मासी दिव खले कृतम् ॥
शिविकायाँ तमारोप्य क्रन्दन्तः शोक विह्वलाः। पितृ प्रभृतयो विप्राश्चेलुः प्रेत वनोपरि ॥
धर्मोन्नत्यै सूरयोऽपि, त विदित्वा सजीवितम्। शीघ्रमाकारया मासु, स्तत्तातं शोक संकुलम्॥
पूज्यै रुक्तं त्वत्सुतश्चे, दुज्जीवति ततो भवान्। किंकरोति स आहत्वत्, किंकरो जीवितावधि॥
सकुडम्बस्य मे पूज्यै, र्दत्तंस्याज्जीवितं तथा। किमन्यतत्त्व पितामाता, त्वं स्वामी त्वं च देवता॥
स्वपादक्षालन जल, दत्वा प्रैपीत्तत्तोद्विजः। शिविकायाः समुत्तार्याऽभ्यपिञ्चत् सर्वतः सुतम ॥
पीयूषेणेव तेनाऽथ, संसिक्तः पादवारिणा। विष मुक्तः समुत्तस्थौ, गतनिद्र इवाङ्गवान् ॥
किमेतदिति पृच्छन्त, तातस्तत्सुतम् ब्रवीत्। वत्स! स्वच्छाशय! भवान्, यममुख गतोऽभवत्॥
पर कृपा वारिधिभिः, सूरिभिर्गुण भूरिभिः। वितीर्णं सकुडम्बस्य, तवमेऽपि च जीवितम ॥

उपकेशपुर में एक कोटीधिश ब्राह्मण के पुत्र को सांप काट खाया था इसके बहुत उपाय किये पर कुच्छ इलाज नहीं लगा। आखिर स्मशान ले जा रहे। पृष्ठ १०७

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास आकर अर्ज की कि यदि आप हमारे पुत्र को जीलादें तो हम और हमारी वंशपरम्परा आपके श्रावकों के सदश श्रावक बनकर भक्ति करेंगे। अतः सूरिजी ने अपने योग से उसे निर्विष बना दिया और १८००० लोगों को जैन बनाये पृष्ठ १०८

आचार्य रत्नप्रभसूरि क्रमशः कोरंटपुर के नजदीक पधार रहे थे। यह शुभ समाचार कोरंटपुरमें पहुँचे तो बड़े ही हर्ष के साथ आचार्य्य कनकप्रभसूरी ने अपने शिष्य-मंडल के साथ सूरीजी के स्वागत के लिए प्रस्थान कर दिया। भला इस हालत में कोरंटसंघ कब पीछे रहने वाला था। एक कोरंटसंघ ही क्यों, पर उस प्रान्त में खासी चहल पहल मच गई थी और उन्होंने बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं कनकप्रभसूरि जिस समय कोरंटपुर स्थित महावीर मन्दिर का दर्शन कर व्याख्यान पीठ पर विराजमान हुए तो सूर्य्य और चन्द्र की भाँति ही शोभने लगे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मंगलाचरण के पश्चात् फरमाया कि कोरंट श्रीसंघ ने हमारे गुरुभाई कनकप्रभ को आचार्य बना कर योग्य सत्कार किया है इसके लिए मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ, क्योंकि जब दुनियाँ बढ़ती है तो उनके संचालक भी बढ़ने ही चाहिए। इस समय हमें धर्म का क्षेत्र विशाल बनाने की आवश्यकता है। यदि कनकप्रभसूरि इस पद की जुम्मेवारी समझ कर अपना कर्तव्य अदा करेगा तो श्री संघ का किया हुआ प्रस्तुत कार्य अधिक लाभकारी होगा और मैं श्रीसंघ के किए हुए शुभ कार्य्य में शामिल होने की स्वीकृति भी देता हूँ। जिस कारण को लेकर आपने कनकप्रभ को आचार्य बनाया है थोड़ा उसका भी खुलासा कर देना अनुचित न होगा। बात यह थी कि आप लोग तो गुरु महाराज के बनाये हुए श्रद्धासम्पन्न श्रावक थे। आपकी श्रद्धा मजबूत है, पर उपकेशपुर के श्रावक अभी नए हैं, इसलिये मेरी उपस्थिति वहाँ खास जरूरी थी। अतः मैं भूलगी कर वहाँ रह कर देवत्त रूप से आपके यहाँ आया था। बस इसके अलावा दूसरा कोई भी कारण नहीं था। यदि इसके अलावा आप लोगों के दिल में कोई दूसरा भाव हो तो शीघ्र ही निकाल दें।

सूरिजी के इन वचनों को सुन कर कोरंटसंघ बड़ा ही संतुष्ट हुआ और नम्रतापूर्वक कहने लगे कि हे प्रभो! आप जैसे शासन स्तम्भ एवं धुरंधरों के हितैषी भाव तो ही कैसे सके ? पर हम अल्प बुद्धि वालों ने अज्ञान के वश एवं कलिकाल के प्रभाव से व्यर्थ ही दुर्विचार कर यह कार्य्य कर डाला है, अतः क्षमा प्रदान करावें। इधर कनकप्रभसूरि ने अर्ज की कि हे विभो! इस संघ की आतुरता से यहाँ का वातावरण देख मैंने संघ का कहना स्वीकार कर लिया था। फिर भी मैं आपका आज्ञापालक एक शिष्य हूँ और आप तो मेरे पूज्य ही हैं मैं यह आचार्य पद आपके चरण कमलों में अर्पण कर देता हूँ। क्योंकि आप जैसे पूज्य पुरुषों की मौजूदगी में यह पद मुझे शोभा नहीं देता है, इत्यादि।

सूरिजी ने संघ एवं कनकप्रभसूरि को सम्बोधन कर कहा कि श्रीसंघ ने आपकी योग्यता पर जो कार्य्य किया है वह अच्छा ही किया है और आज मैं भी अपनी ओर से आपको आचार्य पद दे देता हूँ। अतः अब आप इस चतुर्विध श्रीसंघ का सुन्दर रीति से संचालन कर जैन धर्म की वृद्धि करो।

अहाहा! जैनाचार्य्यों का धर्म प्रेम स्नेह और वात्सल्यता कि जिसको देख संघ चकित हो गया और मन ही मन पश्चाताप करने लगा कि हम लोगों की भ्रांति मिथ्या ही थी। और सभा प्रमुख हो जाने से सभा शान्ति के साथ विसर्जित हुई।

बाद दोनों आचार्यों ने प्रेम के साथ धर्म-प्रचार के हित कई प्रकार की योजना तैयार की और उनको शीघ्र ही अमल में लेने का निश्चय किया। इधर कोरंटश्रीसंघ ने सूरिजी से चतुर्मास की विनती की और

# कोरन्ट गच्छ की उत्पत्ति

भारत में पचमारा ( कलिकाल ) का पदार्पण हो चुका था। भले ही वह शैशवावस्था का ही क्यों न हो ? पर उसकी मौजूदगी में इतना वृहद् कार्य्य बिल्कुल निर्विघ्नता से सम्पादन हो जाना तो एक उसके लिए कलंक रूप ही था। अत वह अपनी करने में ठठा क्यों रक्खे ? जब उसको कहीं भी अवकाश न मिला तब उसने कोरटपुर के संघ को उत्तेजित किया।

बात यह बनी कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर और कोरंटपुर के श्री महावीरमन्दिर की एक लग्न में प्रतिष्ठा करवाई थी। इसमें मूलगे रूप से तो उपकेशपुर में और वैक्रय रूप से कोरटपुर में प्रतिष्ठा करवाई थी। कोरंटपुर में प्रतिष्ठा करवा कर वे तत्काल ही उपकेशपुर पधार गये थे। बाद में जब कोरंट सघ को इस बात की खबर हुई कि आचार्य रत्नप्रभसूरि मूलगे रूप से तो उपकेशपुर में रहे और अपने यहां तो वैक्रय ( मायावी ) रूप से आये थे, भला इस मायावी रूप से कराई प्रतिष्ठा का क्या प्रभाव पड़ेगा ? अतः उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि मुनि कनकप्रभ को अपने आचार्य बना कर पुन प्रतिष्ठा करवानी चाहिये। परन्तु वास्तव में उनके इस निश्चय में कोई औचित्य न था और न उनके अन्त करण में रत्नप्रभसूरि के प्रति अश्रद्धा थी, केवल कलिकाल के प्रभाव से मतिभ्रम के कारण ऐसा निश्चय कर डाला, परन्तु जब मुनि कनकप्रभ से सघ ने प्रार्थना की तो पहिले तो उन्होंने इन्कार किया। इतना ही क्यों पर उन्होंने सघ को ठीक समझाया कि रत्नप्रभसूरि जैसे प्रतिभाशाली आचार्य होते हुए दूसरा आचार्य बनना एव बनाना अनुचित है। इससे समुदाय में भेद पड़ जायगा और भविष्य में सगठन शक्ति का ह्रास होने से बड़ा भारी नुकसान होगा। दूसरे यह तो आप जानते हो कि एक शरीर से इतने फासले पर एक लग्न में दोनों प्रतिष्ठा कैसे हो सकती हैं ? आपके यहा वैक्रय से नहीं आते तो उपकेशपुर में वैक्रय से रहते बात तो एक ही थी। अत मेरी सलाह है कि इस विषय में आप शान्ति रखें इत्यादि। पर सघ के दिल को सतोष नहीं हुआ। उन्होंने तो श्रीमाल पद्मावती वगैरह आमन्त्रण भेज संघ को बुला लिया और आग्रह पूर्वक मुनि श्री कनकप्रभ को आचार्य्य पद से विभूषित कर ही दिया। मुनि कनकप्रभ ने भी उन सघ के विग्रह चित्त को शान्त करने के लिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव देख कर सघ का कहना स्वीकार कर लिया।

जब इधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने कोरटपुर का हाल सुना तो आपने विचार किया कि कुदरत ने जो किया है वह अच्छा ही किया है कारण इस समय धर्म प्रचार के लिए ऐसे समर्थ पद की आवश्यकता भी है। क्योंकि आचार्यपद एक ऐसा महत्त्व का एवं जुम्मेदारी का पद है कि जिसको धारण करने पर उसका कर्तव्य को अदा करना पड़ता है और कोरटपुर सघ ने कनकप्रभ को आचार्य्य बना कर मेरे कन्धे का कुछ भार भी हलका कर दिया है अत कोरन्टसघ का मुझे उपकार ही मानना चाहिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि इतने दीर्घदर्शी और शासन हितैषी थे कि नूतनाचार्य्य और कोरंटपुर श्रीसंघ का उत्साह बढ़ाने के लिए अपने कुछ साधुओं को साथ लेकर कोरटपुर की ओर विहार कर दिया। कहा भी है कि 'संदेसे खेती नहीं पकती है और काम सुधारो तो डोले पधारो'

अहा ! हा !! पूर्व जमाने के आचार्यो की कैसी वात्सल्यता ? कैसी शासन चलाने की पद्धति और कितनी निरभिमानता कि स्वय सूरिजी ने भविष्य को लक्ष्य में रख कर कोरटपुर की ओर विहार करदिया।

उत्साह फैल गया। महावीर मंदिर को आज सात वर्ष हो गुजरे थे। आज उपकेशपुर में बड़ी ठाठ लग रहा है। हर्ष के वाजिंत्र चारों ओर बज रहे हैं। नूतन मूर्तियों की अंजन सिलाका और महावीर पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े ही महोत्सव के साथ हो गई। इसका समय वंशावलियों में वीर निर्वाण सं० ७० माघ शुक्लपंचमी का बतलाया है। ठीक है इतने बड़े मंदिर के बनने में शायद सात वर्ष तो लग ही गये होंगे।

इस मन्दिर के कम्पाउण्ड में देवी सच्चायिका का भी एक मन्दिर बना दिया था जिसकी प्रतिष्ठा भी पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ही सूरिजी के कर-कमलों से करवा दी थी। देवी सच्चायिका उपकेशपुर के जैनों की गोत्र देवी कहलाती थी। जिसका प्रभाव जनता पर खूब ही हुआ था तथा इसके अनुकरण में और भी कई नये मन्दिरों की वहाँ तथा आसपास के प्रदेश में सूरिजी ने प्रतिष्ठायें करवाई थीं।

महाराज उत्पलदेव का बनाया पार्श्वनाथ का मन्दिर विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक तो ठीक हालत में पूजित रहा। पर इस समय उपकेशपुर पर यवनों का एक बड़ा आक्रमण हुआ था और उन्होंने कई मन्दिर मूर्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट भी कर दिया। उस समय उपकेशपुर में एक वीरभद्र[1] नाम का साधु महावीर के मंदिर में ठहरा हुआ था और वह था भी विद्याभूषित पर जब यवनों का आक्रमण होने वाला था तो उन उपकेशों ने महावीरमन्दिर की मूर्ति के रक्षण निमित्त, मूल गंभारे की वेदी पर एक पत्थर की दीवार बनवाई और वहाँ से बहुत से लोग चले भी गये।

यवनों ने महावीर के ऊपर के पार्श्वनाथ मन्दिर पर भी धावा बोल दिया। कुछ मूर्तियाँ खंडित कर डाली। देवी सच्चायिका का मन्दिर भी तोड़ डाला। इस बुरी हालत में वहाँ के जैन लोग अपना जान माल लेकर रफूचक्कर हुये। जब उपकेश लोगों ने पार्श्वनाथ के मूल मन्दिर से पार्श्वनाथ की मूर्ति उठा कर टूटे हुये देवी के मन्दिर से देवी की मूर्ति ले जा कर पार्श्वनाथ के मूल मन्दिर में रख दी। इस बात को उस जमाने के सब लोग जानते थे, पर समय व्यतीत होने पर पिछले लोग उस मन्दिर को देवी का मन्दिर ही मानने लग गये। पर वास्तव में यह देवी का नहीं पार्श्वनाथ का ही मन्दिर था और यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से साबित भी होती है, जैसे कि —

१—देवी का मन्दिर हो तो एक ही कम्पाउण्ड यानी एक ही देहरी होनी चाहिये पर इस मन्दिर में तीन दहरी सामने और आस पास में भी देहरियाँ बनी हुई हैं जो जैन मन्दिर को साबित कर रही हैं।

---

[1] सिद्धपुत्रिकमत्र, वीरदत्तमहापुरे। ओकेशनिवमन्नासीत्, पाठयन्मानसर्मकम्।
न मोगमनदिपाय, क्वचित् सम्भ्रमस्तु च। सिद्धमसिद्धमर्वत्र, मनभूत ततो गुणैः॥
भुक्त्वा प्रसिद्धं गरिष्ठः, कोऽपी योगोवदमये। एत्योवाच मुने! वारि, पाप्यतां तर्षितोऽस्म्यहम्॥

× × ×

वीरदत्त मुनौ तत्र, निष्ठम्यर्थं समारके। प्रिपमाद्दपितन्, प्रोच्य हास्यवत्सय॥
निक्रमाद्धर्पोत्सवकेन्द्र नगरे वसन्। तुरुष्कायामा समागम, पौरलोकः पलायित॥
वीरदत्तो नमोयामि, नियमस्थ बलात् स्थिर। अमुत्र पावसुगमर्थ, म्लेच्छ मैत्यमुपागमम्॥
तत्र श्रीवीर बिम्बस्य, पुरः पाषाण भित्तिकम्। दत्वाकारि निस्सार, सा म्लेच्छाउपायता॥

आचार्य्य श्री ने उसे स्वीकार भी कर लिया । उधर उपकेशपुर के संघ अग्रेसर कोरंटपुर आये थे । और चतुर्मास के लिये सामह प्रार्थना की । इस पर आचार्य्य रत्नप्रभसूरि ने कनकप्रभसूरि को उपकेशपुर चतुर्मास करने का आदेश दे दिया । बस दोनों नगरों के संघ में आज आनन्द एवं हर्ष का पार नहीं था । और दोनों सूरीश्वर ने कई असी तक कोरंटपुर में विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया ।

तत्पश्चात् इधर तो कनकप्रभसूरि ने उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया और उधर रत्नप्रभसूरि श्रीमाल पद्मावती चन्द्रावती आदि अर्बुदाचल के आस पास के प्रदेश में विहार कर धर्म की प्रभा बढ़ाई बाद कोरंटपुर में चातुर्मास कर दिया । उस जमाने में अजैनों को जैन बनाने की तो एक मशीन ही चल पडी थी । जहा पधारते वहाँ थोड़ी बहुत सख्या में नये जैन बना ही डालते और उनके आत्म-कल्याण साधन के निमित्त जैनमन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाया करते थे कि जिसमे आत्म-कल्याण के साथ धर्म पर श्रद्धा भक्ति भी बढ़ती रहे दूसरा धर्म पर अनुयायत और गौरव भी रहता है ।

दोनों सूरियों का दोनों नगरों में चतुर्मास हो जाने से श्रीसघ में धार्मिकप्रेम स्नेह भक्ति एव श्रद्धा और धर्म का उत्साह खूब ही बढा । जो दोनों सघ में कलिकाल ने अपनी प्रभा का बीज बोया था उसे सत्ययुग में जन्मे हुये सूरिजी ने मूल से नष्ट कर डाला अर्थात् दोनों सूरिजी एव दोनों नगरों के श्रीसंघ में शान्ति और धर्म-स्नेह बढता ही गया ।

चतुर्मास समाप्त हो जाने के बाद दोनों सूरियों का विहार हुआ । वे भूभ्रमण कर धर्म प्रचार करने में लग गये ।

इस प्रकार उपकेशपुर के आस पास विचरने वाले मुनिगण आचार्य रत्नप्रभसूरि की आज्ञा में रहे उन समूह का आगे चल कर उपकेशगच्छ नाम सस्करण हुआ तथा कोरंटपुर के आस पास में विहार करने वाले श्रमणगण जो आचार्य कनकप्रभसूरि की आज्ञा में रहे आगे चल कर उनके गच्छ का नाम कोरंटगच्छ कहलाया इस तरह से भगवान पार्श्वनाथ की परम्परावृति श्रमणसघ की दो शाखाए हो गई और वे आद्यवधि विद्यमान है ।

—राजा उत्पलदेव के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा—

राजा उत्पलदेव जो एक पहाड़ी पर मन्दिर बना रहा था एव खूब रफ्तार से तैयार हो रहा था । उस मंदिर के लिये चतुर शिल्पकारों से मूर्तियाँ भी तैयार करवाई । जब क्रमश: सब काम तैयार होगया तो राजा मत्री और नागरिक लोगों की प्रतिष्ठा के लिये इतनी उत्कठा हो आई कि उन्होंने दोनों सूरीश्वरों को आमन्त्रण के लिये अपने निज मनुष्यों को आमन्त्रण पत्रिकायें देकर भेजे और विशेषतया कहलाया कि पूज्यवर ! आप की आज्ञानुसार सब कार्य्य निर्विघ्नता से तैयार हो गया है । अब आप शीघ्र पधार कर इस मंदिर की प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनावें इत्यादि )

दोनों[1] सूरिजी राजा का आमन्त्रण पाकर विहार कर उपकेशपुर पधारे । अत जनता में खूब ही

---

१—एक पट्टावली में यह प्रतिष्ठा कनकप्रभसूरि के करकमलों से होना लिखा है, पर पट्टावली नंबर ४ में आचार्य रत्नप्रभसूरि और कनकप्रभसूरि एवं दोनों आचार्यों का नाम लिखा हुआ है, संभव है कि दोनों सूरिवर पधारे हों । कारण, राजा उत्पलदेव को जैनधर्म का बोध कराने वाले आचार्यरत्नप्रभसूरि ही थे तो ऐसे समय पर वे नहीं पधारें यह कम जचता है । अतः यह अधिक विश्वसनीय है कि प्रतिष्ठा के समय दोनों सूरिवर पधारे हों ।

२—पार्श्वनाथ की मूर्ति जो मूल मन्दिर में थी वह सामने की देहरियों के पीछे एक ताक में विराजमान कर दी,वह आज भी उसी स्थान मे विराजमान है जिसका यह फोटू सामने दिया गया है। यदि पार्श्वनाथ का मन्दिर नहीं होता तो वहाँ पार्श्वनाथ की मूर्ति क्यों होती ?

३—इस मन्दिर के पीछे एक उपाश्रय के खण्डहर हैं. टूटे हुये स्थंभा पर एक * शिलालेख खुदा हुआ है कि किसी श्रावक ने महावीर की रथयात्रार्थ यह उपाश्रय करवाया था। इससे भी पाया जाता है कि उस उपासरे में जैन श्रमण रहते होंगे और महावीर के मन्दिर की रथयात्रा निकलती थी वह इस पार्श्वनाथ के मन्दिर तक आकर रात्रि यहाँ ठहर भजन भक्ति और स्वामिवात्सल्य करके दूसरे दिन वापिस जाती थी।

४—मन्दिर और प्रकोट के बीच देवी के मन्दिर के चिन्ह भी इस समय नजर आ रहे हैं।

५—इस मन्दिर की शिल्पकला भी जैन मन्दिरों से मिलती जुलती है।

६—मारवाड़ में इस मन्दिर के सदृश देवी का कहीं भी मन्दिर नहीं है पर जैन मन्दिर बहुत से नजर आते हैं। अत यह मन्दिर पार्श्वनाथ का ही था जिसको आज देवी का मन्दिर कहा जाता है।

उपकेशपुर से श्री शत्रुंजय तीर्थ का विराट् संघ—

एक दिन सूरीश्वरजी महाराज ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जैनतीर्थकी यात्राका उपदेश दिया और पूर्व जमाने में भरत, सागर, राम, पांडवादि एवं जयसेन नरेशों के यात्रार्थ निकाले संघों का बड़ी खूबी से व्याख्यान दिया जिसका प्रभाव इस कदर हुआ कि वहा की जनता को यात्रा करने की एकदम उत्कठा हो आई। भला राजा उत्पलदेव अपनी वृद्धावस्था में ऐसा सुअवसर कब जाने देने वाले थे। आपने सूरिजी की सम्मति लेकर तीर्थों के सघ की तैयारिया कर लीं और सकल श्रीसंघ को आमन्त्रण भी भेज दिया। जिनके पास राजसत्ता हो उनके सामग्री का कहना ही क्या है ? वशावलियों में इस सघ का वर्णन करते हुए लिखा है कि करीब एक लक्ष भावुक तो सघ के प्रस्थान समयही थे। कई ५००० साधु साध्वियाँ और कई देरासर सघमें साथ थे जिसके नायक थे आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि एव श्री कनकप्रभसूरि। सघपति पद महाराजा उत्पलदेव को दिया गया था। शुभ मुहूर्त में सघ ने प्रस्थान कर दिया सघ के लिए सब इन्तजाम राजा उत्पल देव की ओर से हुआ था। जैसे जैसे संघ आगे बढ़ता गया वैसे २ नर नारियों की सख्या भी बढ़ती गई। मानो तीर्थ यात्रा के लिए मानव मेदनी उलट गई हो। कारण, इस प्रदेश में पहले ऐसा सघ कभी नहीं निकला था। दूसरे लोगों को महान पवित्र सिद्धगिरी के दर्शन की भी उत्कठा थी। अत सिद्धक्षेत्र में संघ पहुँचा तो वहाँ करीब पाच लक्ष जनता सघ में एकत्र हो गई थी। रास्ता में अनेक स्थानों में सघ का शानदार स्वागत भी हुआ था हीरा पन्ना माणक मोतियों से तीर्थ को बधाया कई दिन यात्रा का आनन्द लुटा कइ स्वामिवात्सल्य हुए तीर्थ पर सघमालादि महोत्सव हुए तत्पश्चात् सघ आनन्द से यात्रा कर वापिस लौटकर उपकेशपुर आया।

---

नाशकन्मण्डपे छन्ने, नमस्युत्पतितुंमुनिः। तरवारि करैर्म्लेच्छैः, सआहत्य निपातितः॥
ततोदेवप्रभावेण, सुप्रतिष्ठाविशेषतः। मध्येप्रवेष्टुंजवना, नशेकुर्गर्भवेश्मनः॥ उ० च०

* स० १२४५ फाल्गुनसुदि ५ अयेहश्रीमहावीर रथशाला निमित्तं • • पाल्हियाधति देवचंद बंधू यशधर भार्या सम्पूर्ण श्राविकया आत्म श्रेयार्थ समस्त गोष्ठि प्रत्यक्षं च आत्मीया स्वजन वर्ग्ग समतेन आत्मीय गृहं दत्तं। शिलालेख प्रा० पू० ख० २ पृष्ठ १९६ लेखांक ८०७

रात्रि समय सूरिजी ने स्मशान में ध्यान लगा लिया था। उसी समय यक्षराज ने मारे गुस्से के स्मशान में आकर इतना उपद्रव करना शुरु किया कि कायर मनुष्य का कलेजा फट जाय या वह जान लेकर वहां से भाग जाय। पर सूरिजी को तो इस बात की परवाह ही नहीं थी और वह यक्ष भी सूरिजी का एक बाल भी बाँका नहीं कर सका। तत्पश्चात् सूरिजी ने 'वसीकर्ण' महा मन्त्र का जाप किया जिससे यक्ष का कोप शान्त हुआ और उसने सूरिजी के पास आकर सिर झुका दिया और सूरिजी उस यक्ष को उपदेश देने लगे कि हे यक्षराज ! पूर्व जन्म में तो तुमने कुछ अच्छे पुन्यों का संचय किया था कि इस भव में तुमको देवयोनि मिली है पर इस देव योनि में इस प्रकार का घोर पातक कर रहा है इसका फल सिवाय नरक के क्या हो सकेगा इत्यादि। सूरिजी के उपदेश से यक्ष को थोड़ा बहुत बोध तो हुआ पर वह था गुस्से में अतः बोला कि हे महामुनि ! इस नगर के लोग बड़े ही पातापक एवं दुष्ट हैं। इन लोगों ने मेरी बहुत आशातना की है। इतना ही नहीं पर मेरी मूर्ति को तोड़फोड़कर टुकड़े २ करदिये हैं तो क्या मैं अपना बदला नहीं लूँगा ?

सूरिजी ने कहा, हे यक्षराज ! अगर आपका किसी ने अपराध भी किया हो तो उसका बदला लेने में आपकी बड़ाई या महत्त्व नहीं है पर उदारता के साथ उस अपराध को क्षमा करने में ही महत्त्व है यह तो नीच पुरुषों का काम है कि अपराध का बदला लेना दूसरे आशातना तो एक दो जीवों ने की होगी और उसका द्वेष सब नगर को दिया जाय यह विवेकी पुरुषों का काम नहीं है अतः आप शान्ति रक्खें।

सूरिजी के इन वचनों से यक्ष शान्त होकर कहने लगा कि गुरु महाराज आपके उपदेश ने मेरे पर बहुत प्रभाव डाला है और आज से मैं आपको अपना गुरु ही समझता हूँ। मैं अब आपकी आज्ञानुसार इस नगर के लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूँगा पर मेरी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। सूरिजी ने यक्ष की बात स्वीकार करली और कहा ठीक है यक्षराज ! आपकी मूर्ति बन जायगी। अतः यक्ष सूरिजी का भक्त बन गया और वन्दन नमस्कार कर कहा कि पूज्यवर ! आप जब मुझे याद करेंगे मैं सेवा में हाजिर होऊँगा। इतना कह कर चला गया।

सुबह सहस्रकिरणवाला सूर्य प्रकाशमान होते ही सूरिजी महाराज नगर के नजदीक उद्यान में पधार गये उधर नगर के सब लोग सूरिजी को वन्दन करने को आये। सूरिजी ने मधुर ध्वनि से प्रभावशाली देशना दी। व्याख्यान के अन्त में जैन जैनेतर लोगों ने अपनी दुःख कथा कह सुनाई और उसको मिटाने की प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा कि किसी भी देवस्थान की आशातना करना इस लोक और परलोक में अहित का ही कारण है अतः तुम्हारे नगर से यक्ष की आशातना हुई है। यद्यपि देव मिथ्यात्वी था पर अब वह समदृष्टि बन गया है। अतः आप लोग उस यक्ष की मूर्ति पूर्ववत् स्थापित करो तुम्हारा सब संकट मिट जायगा। भक्त लोगों ने स्वीकार कर लिया। सूरिजी महाराज के इस चमत्कार को देखकर नगर के लोग जैनधर्म की भूरिभूरि प्रशंसा करने लगे। साथ में सूरिजी का भी महान उपकार समझकर कई जैनेतर लोगों ने जैनधर्म का भी स्वीकार कर लिया। अतः सूरिजी के पधारने से जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई। नगर में जहाँ देखो वहाँ जैनधर्म का ही यशोगान हो रहा था।

सूरिजी कई दिन तो राजपुर नगर में ठहरकर जनता को धार्मिक उपदेश सुनाया बाद आस पास के प्रदेश में विहार किया तथा वहाँ के तीर्थों की यात्रा कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाई। श्रीसंघ के आग्रह से वह चतुर्मास तो राजपुर नगर में ही व्यतीत किया।

मगधदेश के अन्तर्गत राजगृह नगर में एक यक्ष ने ऐसा उत्पात मचा रक्खा था कि जिसके उपद्रव से सम्पूर्ण नगर निवासी लोग महान दुःखी हो गये, अर्थात् नगर में त्राहि त्राहि मच गई। इस संकट के लिए नगर निवासियों ने बहुत उपचार किये पर वे सब के सब निष्फल ही रहे।

मरुधर के कई मनुष्य व्यापारार्थ मगध में गये थे, वहां के लोगों ने मरुधर निवासियों के मुंह से आचार्य रत्नप्रभसूरि की धवल कीर्ति एव अतिशय प्रभाव सुना और उनकी इच्छा रत्नप्रभसूरि को मगध में लाने की हुई, अत. कई भक्तजन मगध से चल कर मरुधर में आये और आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी के दर्शन कर प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन मगधों ने अपनी दुःख गाथा सुनाई और श्रीसघ का आमन्त्रण पत्र सूरीश्वर जी को दिया और साथ में पूर्व में पधारने की भी साग्रह प्रार्थना की। इस पर सूरीश्वरजी ने बहुत कुछ विचार किया पर आपश्री तो उस समय एक ऐसे ध्यान के कार्य में लगे हुए थे कि उन विशेष कारणों से पधार नहीं सके, परन्तु आपके हृदय में सघ संकट दूर करने की भावना अवश्य थी। अत. आपश्री ने अपने योग्य शिष्य यक्षदेवसूरि को आदेश दे दिया कि राजगृह श्रीसघ की इतनी आग्रह है तो तुम जाओ और श्री संघ के संकट को दूर करो इत्यादि।

यद्यपि यक्षदेवसूरि की इच्छा सूरीश्वरजी की सेवा छोड़ने की नहीं थी, तथापि सूरीश्वरजी की आज्ञा शिरोधार्य्य भी करना जरूरी बात थी।

अत गुरु आदेश को शिरोधार्य्य कर लिया पर उस समय कोरटपुर का संघ भी सूरिजी से विनती करने आया हुआ था और उनकी अत्याग्रह देखकर सूरीश्वरजी ने यक्षदेवसूरिको आज्ञा दे दी कि तुम यहाँ से कोरंटपुर होकर[1] ही पूर्व में जाना। अत सूरिजी की आज्ञानुसार उपकेशपुर से १०० साधुओं को साथ लेकर यक्षदेवसूरि विहार कर पहिले कोरंटपुर पधारे। अत. कोरंटसघ में खूब हर्ष एवं उत्साह फैल गया। सूरि जी महाराज ने जिस कार्य के उद्देश्य से पूर्व की ओर पधारने का इरादा किया था वह आपकी परीक्षा तो पहले ही होने वाली थी कि कोरटपुर में आपके किसी लघु शिष्य ने पात्र प्रक्षालन का जल बिना उपयोग से एक यक्ष की मूर्ति पर डाल दिया। बस, यक्ष क्रोधित हो उस साधु को पागल सा बना दिया। यह घटना सूरिजी ने सुनी तो साधु को उपालम्भ दिया और उस यक्ष को प्रत्यक्ष में बुलाकर ऐसा समझाया कि वह सूरिजी महाराज का परम भक्त बनगया। खैर सूरिजी महाराज ने कुछ अर्सा तक कोरटपुर में स्थिरता कर वहा से विहार किया तो शौरीपुर मथुरा की यात्रा करते हुए पूर्व प्रान्त में पदार्पण किया।

क्रमश वे विहार करते हुए मगध प्रान्त एव राजगृह नगर में पधार गये समय के अभाव उस रोज आप नगर के बाहर स्मशानों में ही ठहर गये। नगर में सर्वत्र यह बात फैल गई थी कि मरुधर प्रान्त से एक जबर्दस्त जैन साधु आया है अत अब अपना सब दु ख सकट दूर हो जायगा।

---

१—सूरिः कोरंटकपूरे, कदाऽपिविहरन् ययौ। मणिभद्राख्ययक्षस्य, सद्मनिस्थितिमादधे ॥
तच्छिष्योलघुकःकोऽपि, यक्षमूर्द्धनि मोर्ख्यतः। बालभावाचंचलत्वात् पात्रक्षालनवार्यधात् ॥
ततः प्रकुपितोयक्षः, शिष्यं तं ग्रहिलव्यधात्। सूरयोज्ञानतोज्ञात्वा, निग्रहं साग्रह व्यधुः ॥
निगृहीतः स आचार्यैः, सेवकत्व मपन्नवान्। यक्षाऽऽराद्ध पुदस्यास्य, सान्वय नामचाभवत् ॥
२—शौरिपुर्य्यां च मथुरायां, विहरन्तो मुनीश्वराः। अंग वग कलिगेषु, मगधेषु तथैव च ॥
पताकोत्सर्पितातैस्तु जैनधर्मस्य शाश्वती। धर्मात्मानोहि कुर्वन्ति, धर्मकृतंनिरन्तरम् ॥

साधुओं का संगठन एवं संचालन भी बड़ी खूबी से किया । हजारों नरनारियों को दीक्षित कर आपने जैनशासन के उत्थान में पूरा हाथ बँटाया ।

आपने अन्तिम अवस्था में श्रुतज्ञान द्वारा उपयोग लगा कर जानना चाहा कि मैं अपने पीछे आचार्यपद से किसको विभूषित करूं ? पर कोई साधु दृष्टिगोचर नहीं हुआ तब आपने श्रावकवर्ग की ओर निरीक्षण किया तो कोई होनहार पुरुष नहीं जँचा । आपने आश्चर्य किया कि मेरे सम्मुख लाख करोड़ों जैनी हैं क्या कोई भी आचार्यपद के योग्य नहीं है ? तो अब क्या किया जाय ? तब आपने जैनेतर लोगों की ओर दृष्टिपात किया तो आपने समस्या हल होने की सम्भावना अनुभव की । आपको ज्ञात हुआ कि राजगृह नगर का रहने वाला वत्सगौत्रिय यजुर्वेदीय यज्ञारंभ करते हुए ब्राह्मणों में शय्यंभव भट्ट इस पद के योग्य हो सकता है । इसके अतिरिक्त और कोई नहीं है । तब आपने अपने साधुओं को उस स्थान की ओर भेज कर यह संदेश कहलाया कि वहां यज्ञ करने वालों को जाकर बार २ कहो कि "अहो कष्ट महोकष्टं तत्वं न ज्ञायते परम्" । इस सूत्र को बार बार उच्चारण करो तथा वापिस लौट आओ । आचार्यजी की आज्ञानुसार मुनिगण उस यज्ञ स्थान की ओर गये और शय्यंभवभट्ट के समक्ष जाकर उपरोक्त वाक्य की कई बार पुनरावृत्ति की । शय्यंभवभट्ट ने विचार किया कि यह निरपेक्षी जैनमुनि असत्य नहीं बोलते । क्या मेरा श्रम सब व्यर्थ है ? क्या वस्तुतः मैं अविशुद्ध मार्ग का पथिक हूँ ? सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए वह अपने गुरु के पास खड्ग लेकर गया और पूछा कि आप सत्य सत्य फरमाइये कि इस क्रियाकलाप का क्या फल है ? यदि तुमने संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया तो इसी तलवार से तुम्हारी गरदन लूंगा । गुरु ने देखा कि अब असत्य कहने से प्राण जोखों में है तो सत्य हाल कह दिया कि वत्स ! इस यज्ञ के स्तम्भ के नीचे जैन-तीर्थंकर शान्तिनाथ स्वामी की मूर्ति है और इसी मूर्ति के अतिशय से ही अपना यज्ञ का कार्य चल रहा है । अन्यथा अपना इतना प्रभाव कभी नहीं पड़ सकता था । यह समाचार सुनते ही शय्यंभवभट्ट ने यज्ञ स्तम्भ को हटा कर शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति निकाल कर दर्शन किये । दर्शन करते ही उसे प्रतिबोध हुआ । मिथ्या गुरु को त्याग कर आपने सम्यक् दर्शन का अवलम्बन लिया तथा यज्ञादि की निष्ठुर क्रियाओं से दूर होकर आपका मन शुद्ध जैनधर्म के चरित्र की ओर झुक गया । आपने प्रभव आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा लेकर आपने गुरुकुल में रह चौदहपूर्वों का अध्ययन एवं मनन किया ।

आचार्य प्रभवसूरि आचार्यपद का भार शय्यंभवमुनि को दे निवृत्ति मार्ग पर चलते हुए वैभारगिरि पर्वत पर अनशन लेकर वीरात् ७५ संवत् को स्वर्ग गमन पधारे । आपके पट्ट पर आचार्य शय्यंभवाचार्य हुए, अतः आपका संक्षिप्त परिचय भी यहां करा दिया जाता है ।

भगवान महावीर के चौथे पट्ट पर शय्यंभवसूरि बड़े योगस्वी एवं निस्पृह हुए । जिस समय आपने गृह नारि को त्याग कर प्रभवआचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की थी उस समय आपकी धर्मपत्नी गर्भवती थी । इस गर्भ से मनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बालक आठ वर्ष का हुआ तो सहपाठियों द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर अपनी माता को आकर पूछने लगा कि मेरे पिताजी कहाँ हैं ? माता ने अपने पुत्र मनक को उत्तर दिया कि बेटा "तेरा पिता तो जैन साधु है जब तू मेरे गर्भ में था तब उन्होंने एक जैनाचार्य के पास दीक्षा लेली थी । आज वे मुनि राजा महाराजाओं से पूजे जाते हैं । तेरे पिता अपनी योग्यता से वहाँ भी आज आचार्य पद पर सुशोभित हैं"।

पट्टावली नं ५ में लिखा है कि यक्षदेवसूरि ने पूर्व देश में विहार कर कई सवा लक्ष अजैनों को जैन बनाये और ३०० मुमुक्षुओं को जैनधर्म की दीक्षा दी फिर भी आपकी इच्छा उस प्रान्त में विचरने की थी परन्तु आपको पुन आचार्यश्री की सेवा में पधारने की बहुत जल्दी थी। अत वहाँ से विहार कर जल्दी ही गुरु सेवा में उपकेशपुर पहुँच गये और अपने विहार का सब हाल सूरीश्वरजी की सेवा में निवेदन कर दिया जिसको सुनकर आचार्य्यश्री बहुत प्रसन्न हुये, कहा भी है कि 'कमाऊ बेटो किसकों प्यारो नहीं लागे'।

आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज इधर अपना योगकार्य सफल होने के बाद राजपूताना एवं मरुधर प्रान्त में नये नये अजैनों को जैन बना बना कर जैनधर्म का खूब जोरों से प्रचार कर रहे थे और अनेक नये २ मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराके जैनधर्म की नींव को मजबूत बना रहे थे। उधर पूर्व बंगाल और मगधदेश में आचार्य जम्बूस्वामी की अध्यक्षता में हजारों साधु जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे। आचार्य जम्बूस्वामी को भगवान महावीर के निर्वाण के बाद २० वर्षों में केवल ज्ञान हुआ और ४४ वर्ष तक आपने केवल ज्ञान में धर्मोपदेश दिया और वीर निर्वाण संवत् ६४ में आपकी मोक्ष हुई। आपके पश्चात् आपके पट्टधर प्रभवस्वामी हुये। आपका चरित्र भी महाप्रभावशाली था, जिसको मैं यहां संक्षेप में लिख देता हूँ।

भगवान महावीर प्रभु के—पहले पट्टधर गणधर सौधर्म, दूसरे पट्टधर आर्यजम्बु हुए जिनका जीवन पहले पढ चुके हैं अब तीसरे पट्ट पर आचार्यश्रीप्रभवस्वामी बड़े ही प्रतिभाशाली हुये। इनकी जीवनी महत्वपूर्ण -रहस्यमयी है। आपका जन्म विन्ध्याचल पर्वत के समीपवर्ती जयपुर नगर के कात्यायण गोत्रिय नरेश जयसेन के घर हुआ था। आपका लघु भाई विनयधर था। जिसका स्वभाव राजसी था। छोटे भाई पर पिता विशेष प्रसन्न रहता था। विनयधर भी चतुर और राजनीति विशारद था अतएव जयसेन ने अपना उत्तराधिकारी विनयधर को ही बनाया। यह बात प्रभव को अनुचित प्रतीत हुई। प्रभव इस बात को सहन न कर सका। अत वह अपने भाई से असहयोग कर नगर के बाहर चला गया। जाता जाता एक अटवी में पहुँच गया। वहा क्या देखता है कि उस स्थान पर बहुत से लश्कर एकत्रित हैं। वह उनके पास गया और उन्हें अपना परिचय इस ढंग से दिया कि सारे दस्युगण चाहने लगे कि यदि यह रुठा राजकुमार हमारा नायक हो जाय तो हम निर्भय होकर चोरिया करेंगे। बना भी ऐसा ही कि प्रभव उस पल्ली के ४९९ चोरों का नायक बन कर उसने जनता को हर प्रकार से लुटना प्रारम्भ किया। देश भर में त्राहि त्राहि मच गई। उस देश के राजा ने इन चोरों को पकड़ने का पूर्ण प्रयत्न किया पर एक भी चोर हाथ नहीं लगा। प्रभव ने चोरों को ऐसी युक्तिया बता दीं कि कोई उनका बाल भी बाका नहीं कर सकता था। प्रभव की प्रकृति बड़ी उग्र थी। जिस कार्य्य में वह हाथ डालता उसे सम्यक् प्रकार से सम्पादित कर ही लेता था। एक बार वह श्रेष्टि महल में गया और वहा जम्बुकुमार का उपदेश सुना। इस वृत्ति को तिलांजलि दे उसने अपने ४९ चोरों सहित, सौधर्माचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। उसने उग्र प्रकृति के कारण शास्त्रों का ज्ञान बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया। उसका कार्य इतना श्रेष्ठ हुआ कि वह अन्त में वीरात् ६४ संवत् में जम्बुमुनि के पीछे आचार्य पद पर आरूढ हुआ।

जिस प्रकार प्रभव संसार में लूटने खसोटने में शूरवीर थे उसी भांति दीक्षित होने पर कर्म काटने में पूर्ण योद्धा थे। किसी ने ठीक ही तो कहा है "कर्मशूरा ते धर्मशूरा"। प्रभव मुनि चौदह पूर्वधरज्ञानी और सकल शास्त्र पारंगत थे। आपने जैनधर्म का खूब अभ्युदय किया। आपने अपने आज्ञावर्ती सहस्रों

आचार पतित क्षत्रियों को जैन बना कर जैनशासन की खूब उन्नति की। और मारवाड़ जैसे प्रान्त में अनेक जैन मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की नींव सुदृढ़ बनाकर धर्म को चिरस्थायी बना दिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं आपके साधुओं का विशेष विहार उपकेशपुर एवं उसके आस पास के प्रदेश में होने से आगे चलकर उनके समूह एवं सम्प्रदाय का नाम उपकेशगच्छ हुआ और आचार्य कनकप्रभसूरि के श्रमणों का विहार प्रायः कोरंटपुर एवं उसके आस पास के प्रदेश में होने से वह समूह कोरंटगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि जैन समाज पर इन आचार्यों का कितना जबर्दस्त उपकार है कि जिन्होंने मांस मदिरा आदि दुर्व्यसन सेवन से नरक के अभिमुख हुए जीवों का दुर्व्यसन छुड़ा कर जैनी बना स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये। यदि इस उपकार को हम लोग क्षण भर भी भूल जाँय तो हमारे जैसा कृतघ्नी पापी जगत में कौन होगा? अतः उन पूज्यवर आचार्यों का प्रति समय उपकार समझ स्मरण करना हमारा सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। लोक युक्ति है कि—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागूं पाय। बलिहारी गुरु देव की जो, मार्ग दिया बताय॥

मैं इस परोपकारी सूरीश्वर के सम्पूर्ण जीवन से न तो इतना वाकिफ हूँ और न इस छोटे सी तुच्छ लेखनी से लिख ही सकता हूँ तथापि जितना मसाला मुझे मिला है वह एक बालक्रीड़ा की तौर लिखा है। फिर भी मैं उम्मेद रखता हूँ कि मेरा यह लिखा हुआ संक्षिप्त जीवन भी जैनसमाज के लिए परोपकारी होगा।

आचार्य रत्नप्रभसूरि का जन्म महावीर निर्वाण का वर्ष था आपने ४० वर्ष की उम्र में राजपाट सुख सम्पत्ति एवं कुटुम्ब परिवार को त्याग करके आचार्य स्वयंप्रभसूरि के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा को ग्रहण किया तत्पश्चात् १२ वर्ष पर्यंत ज्ञान ध्यान एवं अभ्यास पर योग्य सर्व गुण संपन्न होकर वीरात् ५२ वें वर्ष आचार्य पद पर आरूढ़ हुए और अठारह वर्षों के बाद उपकेशपुर नगर में पधार कर आचार पतित क्षत्रियों को जैन धर्म की दीक्षा शिक्षा देकर 'महाजन संघ' की स्थापना करी तथा १४ वर्ष तक उसकी खूब वृद्धि करी। अन्त में १५ ० साधु १ साध्वियां और असंख्य भक्त गणों के साथ महातारक परम पुनीत तीर्थाधिराजश्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर वहां चतुर्विध श्री संघ की विद्यमानता में अनशन एवं समाधि के साथ जैनधर्म की आराधना पूर्वक इस नाशवान शरीर का त्याग कर वीरात् ८४ वर्ष माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन बारहवाँ अच्युत स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

अतः ओसवाल समाज का यह सब से पहिला कर्त्तव्य है कि वे प्रति वर्ष श्रावण कृष्ण चतुर्दशी के दिन ओसवाल जाति का जन्म दिन का महोत्सव और माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन बड़ी २ सभायें करके आचार्यरत्नप्रभ सूरि की जयन्ति मनाकर यह शुभ संदेश प्रत्येक प्राणी के हृदय तक पहुँचाकर कृतार्थ बने।

प्रथम पट्टधर जो हुए आचार्य रत्न सुनाम था। विद्याधरों के अग्र थे उद्धार उनका काम था॥
उपकेशपुर में प्रतिबोध नृपति रविवंशी उपलदेव को। दीक्षित किया मंत्री ऊहड़ सह सब धनी वीर को॥
उपकेशवंशी ओसवंशी ही आज ओसवाल है। आचार्य गुण कैसे करें उनका बहुत उपकार है॥

॥ इति भगवान् पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि का संक्षिप्त जीवन ॥

जब माता से पुत्र ने यह बातें सुनी तो उसकी भी इच्छा हुई कि एक बार चलकर देख तो आऊ कि वे आचार्य कैसे हैं ? विचार करते २ उसने मिलने के लिए प्रस्थान करना निश्चय किया। उसने सोचा कि कदाचित् माताजी मेरे प्रस्ताव से सहमत न हों अतएव बिना पूछे चुपचाप वहां से भाग जाना ही ठीक है। 'मनक' अन्त में घर से बाहर निकल गया और शय्यभव आचार्य का समाचार पूछता पूछता चम्पानगर में पहुँच गया। नगर के द्वार पर यह बैठा था कि उसने आचार्य श्री को प्रवेश करते हुये देखा। उसने उन्हें जैनमुनि समझ कर पूछा कि क्या आपको ज्ञात है कि मेरे पिता शय्यंभव, जो आज कल आपके आचार्य कहलावे हैं इस नगर में हैं ? आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि "सो तो ठीक, पर तुम्हें उनसे अब क्या सरोकार है। क्या तुम्हें पिता के पास दीक्षा लेना है ?" मनक ने उत्तर दिया, "जी हाँ, मेरी इच्छा है कि मैं भी दीक्षा लूँ"। आचार्य श्री ने कहा कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो चलो मेरे साथ। मैं वही हूँ। तुम्हें दीक्षा दूँगा। मनक की दीक्षा समारोह के साथ हुई। आचार्य श्री ने विचार किया कि इस मनक मुनि को कुछ अध्ययन कराना चाहिये क्योंकि श्रुतज्ञान के योग से ज्ञात हुआ कि इसकी आयु स्वल्प है। आचार्य श्री जो शिक्षा प्रणाली से पूर्ण परिचित थे इस मुनि के पाठ्यक्रम की नई योजना करने लगे। पाठ्यक्रम बनाने के हेतु से पूर्वांग उद्धृत कर वैकाल के अन्दर दशाध्ययन सङ्कलित कर उसका नाम दशवैकालिक सूत्र रख दिया और मनक मुनि ने इस सूत्र का अध्ययन कर केवल अर्द्ध वर्ष में ही आराधिपद प्राप्त कर स्वर्ग की ओर स्थान किया।

जिस समय मनक मुनि का देहान्त हुआ उस समय आचार्य श्री की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। इन प्रेमाश्रुओं से अन्य मुनियों ने उदासीनता समझ कर आचार्यश्री से प्रश्न किया कि आपकी इस दशा का क्या कारण है ? आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि मनक मेरा सांसारिक नाते से पुत्र और धार्मिक नाते से लघु शिष्य था। ऐसी छोटी उम्र में काल कर जाने के कारण मुझे खेद है पर साथ में मेरे ही हाथों से इसने चारित्र आराधन कर उच्च पद को प्राप्त किया है इसी का मुझे हर्ष है।

यशोभद्र आदि मुनियों ने पूछा, "भगवन ! आपने यह बात हमें प्रथम क्यों नहीं प्रकाशित की ? अन्यथा हम इसकी वय्यावच का पूर्ण लाभ उठाते।"

आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि यदि यह नाता मैं पहिले बता देता तो कदाचित इसके अध्ययन में व ध्यान में कुछ खामी रह जाती। इसी कारण से मैंने तुम्हें यह बात नहीं कही। फिर आचार्य श्री ने विचार किया कि उस नूतन सूत्र दशवैकालिक को पुन पूर्वांग तक संहारण करूँ। इस पर चतुर्विध संघ ने अनुरोध किया कि भगवन् ! इस पंचमकाल में ऐसे सूत्र की नितान्त आवश्यकता है अतएव आप इस सूत्र को ऐसा ही रहने दीजिये ताकि अल्प बुद्धि वाले भी इसका आराधन कर अपना कल्याण करने में समर्थ होवें। आचार्य श्री ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर वह सूत्र उसी रूप में रहने दिया। इसी सूत्र के प्रताप से आज साधु साध्विया अपना कल्याण कर रही हैं और इस आरे के अन्त तक कई प्राणी अपना उद्धार करेंगे।

आचार्यश्री शय्यभवसूरि बडे ही उपकारी हुये। धर्म का प्रचार अपने प्रबल प्रयत्न से करते रहे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने इस भूमि पर जन्म लेकर अपने कल्याण के साथ अनेक भव्यों का कल्याण किया। इतना ही क्यों पर महाजन संघ रूपी एक कल्प वृक्ष लगाकर उनकी वंश परम्परा हजारों वर्षों तक चिरस्थायी बना दी। आपने अपने जीवन में १५०० साधु ३००० साध्विया और १४००००० घर वाले

## प्रमस्याकाद्

शान्तिचंद्र—आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?

कान्तिचंद्र—मैं प्राचीन इतिहास लिख रहा हूँ।

शान्ति—वह किस विषय का है ?

कान्ति—क्या पूछते हो, विषय बहुत कठिन है।

शान्ति—आखिर वह है क्या ?

कान्ति—मैं अपने पूर्वजों का इतिहास लिख रहा हूँ।

शान्ति—कितनाक लिख लिया है ?

कान्ति—लिखें क्या, भाई साहब कुछ साधन ही नहीं मिलता है।

शान्ति—फिर भी कुछ तो मिला ही होगा न ?

कान्ति—बहुत कम मिला है।

शान्ति—आपने प्राचीन जैन पट्टावलियों या कुलगुरुओं की लिखी हुई वंशावलियों का अवलोकन किया है या नहीं ?

कान्ति—मुझे उस साहित्य पर विश्वास नहीं है।

शान्ति—किस कारण से ?

कान्ति—उस साहित्य में केवल इधर उधर की सुनी हुई बातें ही हैं।

शान्ति—पट्टावलियें वंशावलियें सर्वथा निराधार नहीं हैं उनमें भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत सा तथ्य रहा हुआ है, अतः इतिहास लिखने में वे उपादेय हैं। देखिये खास इतिहास के लिखने वाले पं. गौरीशंकरजी ओझा क्या कहते हैं —

"इतिहास के साधनों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × × तथा जैनों की कई एक पट्टावलियें आदि मिलती हैं। ये भी इतिहास के साधन हैं। "राजपूताना का इतिहास पृष्ठ १०"

कान्ति—कोई कुछ भी कहे जहाँ तक ऐतिहासिक प्रमाण न मिलें वहाँ तक मैं इन्हें उपादेय नहीं समझता हूँ।

शान्ति—आपका कहना थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय तो भी इतिहास के अनुसंधान में ये बड़ी महत्वपूर्ण हैं। अतः यह आदरणीय हैं।

कान्ति—इतिहास की सामग्री शिलालेख, दानपत्र, ताम्रपत्र सिक्का और उस समय के लिखे हुए प्रामाणिक पुरुषों के ग्रन्थ ही हो सकती हैं और इनको ही हम ऐतिहासिक एवं प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं।

शान्ति—आपका कहना ठीक है परन्तु विशाल भारत के लिये पूर्वोक्त साधन अपर्याप्त ही समझे जाते हैं। अतः इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के साथ परोक्ष प्रमाण ( आगम उपमान और अनुमान ) साथ लिये जांय तो इतिहास सर्वाङ्ग-पूर्ण बन सकता है।

कान्ति—मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। मेरा सिद्धान्त तो एक ही है।

शान्ति—ये आपका एकान्तवाद केवल हठवाद ही है। लीजिये एक उदाहरण आपके सामने उपस्थित करता हूँ। किसी गोविन्दराजा का शिलालेख वि. सं. ९८ का मिला, उसी वंश के मदनराजा का दूसरा शिलालेख वि सं १७१ का मिला। इन दोनों के बीच में ९१ वर्ष का अन्तर है जिसके लिये कोई भी साधन नहीं मिला, परन्तु वंशावलियों में गोविन्द का पुत्र चंद्र और चन्द्र का पुत्र इन्द्र लिखा मिलता है अब आप गोविंद का ९१ वर्ष राज समझेंगे या वंशावलियों में लिखा हुआ गोविन्द का पुत्र चंद्र तथा चन्द्र का पुत्र इन्द्र और इन्द्र का पुत्र मदन समझेंगे ?

कान्ति—गोविन्द और मदन के बीच ९१ वर्ष का अन्तर है जिसके लिये चाहे इतिहास में मिले या न मिले पर अनुमान से दो राजा होना मानना ही पड़ता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शान्ति—जब मैं भी यही कहता हूँ और इसी का नाम ही परोक्ष प्रमाण अर्थात् अनुमान प्रमाण

# सिंहावलोकन

१—वीर निर्वाण संवत् एक में आचार्य रत्नप्रभसूरि का विद्याधर वंश में जन्म।

२—वी० नि० सं० ४० मे आचार्य स्वयंप्रभसूरि के हाथों से रत्नप्रभसूरि की दीक्षा।

३—वी० नि० स० ५२ में आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरि के करकमलों से आचार्य रत्नप्रभसूरि का आचार्य पद प्रतिष्ठत होना।

४—वी० नि० स ७० के वैशाख मास में आचार्य रत्नप्रभसूरि का ५०० मुनियों के साथ में उपकेशपुर पधारना।

५—वी० नि० स० ७० श्रावण कृष्ण चतुर्दशी के शुभदिन में रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के सूर्य्यवंशी राजाउत्पलदेव चान्द्रवंशी मंत्री उहड़ और नागरिक क्षत्रियों को कुव्यसन छुड़ाकर जैनधर्म में दीक्षित करना।

६—वी० नि० सं० ७० श्रावणशुद्धप्रतिपदा के शुभदिन में उन नूतन जैनों की 'महाजनसंघ' रूपी एक सुदृढ़ संस्था कायम करना।

७—वी. नि. स. ७० माघशुक्ल पंचमी के दिन आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से उपकेशपुर और कोरटपुर नगर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा का होना।

८—वी नि स. ७० में कोरंटपुर के श्रीसंघ द्वारा कनकप्रभ को आचार्य पद होना।

९—वी. नि. सं. ७७ में उपकेशपुर के महाराजा उत्पलदेव के बनवाये पहाड़ी पर के प्रभु पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं कनकप्रभसूरि के कर कमलों से होना।

१०—वी नि सं. ८२ में आचार्यरत्नप्रभसूरि के कर कमलों से वीरधवलोपाध्याय को आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेव सूरि रखना और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी अन्तिम सलेखना-योग एवं ध्यान में लग जाना। यह पहले जमाना की पद्धति थी कि आचार्य श्री अपने गच्छ का भार किसी योग्य मुनि को देकर आप विशेष निवृत्ति में लग जाते थे तदानुसार आचार्य रत्नप्रभसूरि ने भी किया था।

११-वी नि स ८३ में आचार्य यक्षदेवसूरि ने राजगृह नगर में उपद्रव करते हुये यक्ष को प्रतिबोध करके वहाँ चतुर्मास किया तथा पूर्व देश की यात्रा कर सवा लक्ष नये जैन तथा ३०० साधु साध्वियों को दीक्षा देकर पुन उपकेशपुर पधारना।

१२—आचार्य रत्नप्रभसूरि का अपने शेष जीवन में १४००००० नये जैन श्रावक श्राविकाओं तथा १५०० साधु ३००० साध्वियों को जैनधर्म की दीक्षा देना।

१३-वी नि स ८४ माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन श्री सिद्धगिरि पर आचार्य यक्षदेवसूरि को गच्छ नायक पदार्पण कर चतुर्विध श्रीसंघ की मोजुदगी में अनशनपूर्वक आचार्य रत्नप्रभसूरिका स्वर्गवास होना।

१४—श्रीसिद्धगिरी पर श्रीसंघ की ओर से आचार्य रत्नप्रभसूरि के स्मृति के लिये एक विशाल स्तूप करवाना।

शान्ति—ओसवालों की उत्पत्ति वि पू० ४ वर्ष में हुई। ऐसा मेरा ख्याल है।

कान्ति—क्या बात करते हो ? क्या ओसवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में हुई है ? मैंने तो आज ही यह बात आपके मुह से सुनी है ?

शान्ति—हाँ, मैं ठीक कहता हू ।

कान्ति—इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण है ?

शान्ति—यह लीजिये पट्टावलियों वंशावलियों वगैरह वगैरह बहुत प्रमाण हैं।

कान्ति—मैं आपसे पहिले ही कह चुका हूँ कि मुझे इस साहित्य पर विश्वास नहीं है।

शान्ति—भाई साहब ! आप अपनी शिक्षा के आधार हैं वरना यह कभी नहीं कहते कारण मैं आपको अभी समझा चुका हूँ कि पट्टावलियों और वंशावलियों इतिहास के खास साधन हैं और यही हमको बतला रहे हैं कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा वि पू ४०० वर्ष में हुई। फिर आप नहीं मानते तो इसका क्या कारण है ?

कान्ति—ओसवाल जाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि के द्वारा हुई, इसमें तो किसी प्रकार की शंका नहीं है, पर इसका समय वि पू ४ वर्ष का मानने में जरा दिल हिचकिचाता है। हाँ, इस जाति की उत्पत्ति विक्रम की दशवीं शताब्दी के आस-पास हुई होगी ऐसा विद्वानों का ख्याल है जिसको मैं भी ठीक समझता हूँ।

शान्ति—इसके लिए आपके पास क्या प्रमाण है ?

कान्ति—प्रमाण तो मेरे पास कुछ भी नहीं है पर इस समय के पूर्व इस जाति के अस्तित्व का शिलालेखादि कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है।

शान्ति—जब आपके पास प्रमाण ही नहीं है, तो फिर आप दशवीं शताब्दी कैसे कह सकते हो ? और प्रमाण के लिये केवल शिलालेख का ही आग्रह क्यों ? दूसरे भी कई प्रमाण हो सकते हैं।

कान्ति—मैं तो केवल अनुमान से ही कहता हू ।

शान्ति—अनुमान आप अपने काम की बखत में ही मानते हो या सब बातों के लिये ?

कान्ति—कुछ विचार कर कहा कि सब के लिये।

शान्ति—भला आपका काम तक जाता है तब तो आप अनुमान से मान लेते हो, तब हमारे महान संयमी पुरुषों के लिखे हुये ग्रन्थ पट्टावल्यादि के मानने में आप हिचकिचाते हो। इसको पक्षपात कहते हैं या हठधर्मीपना ?

कान्ति—पर वे सैंकड़ों वर्षों की पुरानी बातें बाद में किस आधार पर लिखी होंगी ?

शान्ति—पहिले के लोग उस ज्ञान को कण्ठस्थ रखते थे और गुरु परम्परा से वह ज्ञान सैंकड़ों वर्षों तक उसी रूप में चला आता था। जब बुद्धि की मंदता हुई तो पुस्तकों में लिखा गया जैसे हमारे धर्म के मूल आगम भगवान महावीर के कहे हुये हैं और उस ज्ञान को करीब १ ० वर्ष तक साधु कंठस्थ ही याद रखते रहे। जब स्मरण-शक्ति मंद पड़ने लगी तो उन्होंने पुस्तकों पर लिख लिये। इसी तरह पट्टावल्यादि ग्रन्थों को भी समझ लीजिये।

कान्ति—आपके कथन और आगम के न्याय पर मैं मान तो लेता हूँ, पर मेरी अन्तरात्मा इस बात को मंजूर नहीं करती है।

शान्ति—खैर, इस विषय को तो मैं आपको फिर आगे चल कर समझाऊंगा पर पहिले आप से यह पूछ लेता हूँ कि आपके पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—मेरे पिता का नाम है केसरीसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—दुकान पर मौजूद बैठे हैं आप देख लें।

शान्ति—केशरीसिंहजी के पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—अमरावसिंह ?

शान्ति—क्या प्रमाण है ?

है। इतना ही क्यों पर इन अनुमान प्रामाणादि प्रमाणों से ही इतिहास की भींत खड़ी की जाती है।

कान्ति—मैंने वंशावलियाँ और प्राचीन ग्रन्थ बहुत से देखे हैं उनमें साल, संवत, घटना, स्थान और व्यक्ति के विषय मे इतनी गड़बड़ है कि स्थान मिले तो समय नहीं मिलता है और समय मिलता है तो व्यक्ति नहीं मिलता है, तो फिर उस पर कैसे विश्वास किया जाय ?

शान्ति—यदि किसी स्थान पर ऐसा हुआ हो तो क्या सब पट्टावलियें त्याज्य हो सकती हैं। दूसरे इस प्रकार की गड़बड़ इतिहास में भी कम नहीं है और उन लोगों को भी समय समय पर अन्य साधनों द्वारा संशोधन करना पड़ता है। देखिये पृथ्वीराज रासो, मुणोयत नैणसी की ख्यात और टॉड साहब का राजस्थान वगैरह कई ग्रन्थ हैं जो इधर उधर की सुनी हुई बातों के आधार पर निर्माण किये गये हैं और वे परमोपयोगी होने से उनकी गिनती ऐतिहासिक साधनों में है। तो फिर हमारी पट्टावल्यादि का तिरस्कार क्यों किया जाता है ?

कान्ति—आपका कहना ठीक है परन्तु पृथ्वीराज रासो, नैणसी की ख्यात और टॉड राजस्थान आदि ग्रन्थों को इतिहास मे स्थान भले ही दे दिया है, परन्तु उनमे बहुत से स्थानों पर त्रुटियें हैं।

शान्ति—हाँ, उन ग्रन्थों में त्रुटियें जरूर रही हुई हैं पर उन त्रुटियों के कारण उनका अनादर कर दिया जाय तो उन ग्रन्थों मे जो इतिहास का मसाला है वह आपको खोजने पर भी अन्यत्र नहीं मिल सकता है। अत संशोधकों का कर्तव्य है कि उनका संशोधन करके उनको काम मे लें, जैसे नैणसी की ख्यात काशीनागरीप्रचारिणी सभा ने मुद्रित करवाई है। जहाँ त्रुटियें थीं वहां उन्होंने संशोधन कर फुटनोट मे टिप्पणियें कर दी हैं। इसी प्रकार प्राचीन पट्टावल्यादि ग्रन्थों का भी संशोधन करना चाहिये न कि एकदम उनमे मुँह मोड़ लेना। इतिहास का मसाला जितना पट्टावल्यादि ग्रन्थों मे है उतना अन्य स्थानों में नहीं मिलेगा। पर शायद आपकी शिक्षा में इसका स्थान न हो ?

कान्ति—आप परोक्ष प्रमाण किसको कहते हैं ?

शान्ति—आगम, उपमान और अनुमान ये परोक्ष प्रमाण हैं।

कान्ति—आगम का अर्थ क्या है ?

शान्ति—प्राचीन समय के लिखे हुये सूत्र, ग्रन्थ, रास, पट्टावलियां वंशावलिया ये सब आगम प्रमाण, तथा एक वस्तु का सम्बन्ध दूसरी वस्तु से जोड़ देना और आगे चल कर वे सत्य सिद्ध हो जाय उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।

कान्ति—आप जो चाहे वह माने परन्तु मैं तो ऐतिहासिक प्रमाण एवं प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता हूँ

शांति—आपने एक विद्वान का कहना सुना है ?

कांति—नहीं, कृपा कर सुनाइये।

शांति—वस्तु की मूलस्थिति को जानने के लिये दो प्रमाणों की आवश्यकता है १—प्रत्यक्षप्रमाण २—परोक्ष प्रमाण। यद्यपि परोक्ष प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने गौण है तथापि परोक्ष प्रमाण के बिना प्रत्यक्ष प्रमाण का काम भी तो नहीं चलता है। सच पूछो तो परोक्ष प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण का ठीक मार्गदर्शक है। परोक्ष प्रमाणकी सहायतासे ही प्रत्यक्ष प्रमाण आगे चलता है। इतना ही क्यों पर प्रत्यक्ष प्रमाण वाले पग २ पर अनुमान प्रमाण की शरण लेते हैं। समझा नहीं कान्ति।

कान्ति—मेहरबान! मैं खडन मडन के झगड़े में उतरना नहीं चाहता हूँ। खैर, बतलाइये। आप इस समय क्या लिख रहे हैं ?

शान्ति—मैं ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय का इतिहास लिख रहा हू।

कान्ति—आप किस निर्णय पर आये हैं ?

कान्ति—भाई साहब आपका कहना सत्य है। दूसरों के लिये क्या पर मरी भूल की ही बड़ी धारणा थी। आप तो क्या पर ब्रह्माजी भी आकर मुझे कह देवे कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम स ४०० वर्ष पूर्व हुई तो मैं कदापि नहीं मानता। पर आपके साथ वार्तालाप होने स यह निशंक हो चुका है कि पट्टावलियों के अनुसार ओसवालों की उत्पत्ति वि० पू० ४ वर्षों में हुई है और इसके विषय में पट्टावलियों और वंशावलियों में जो लिखा है उसमें शंका करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि उन त्यागी संयमी महात्माओं को असत्य लिखने का कोई भी कारण नहीं था अतः यह सत्य ही है। दूसरी बात यह भी है कि यदि पट्टावली और वंशावलियों को न माना जाय तो इस विषय के लिए हमारे पास दूसरा साधन ही क्या है ? आज हम देखते हैं तो किसी ओसवाल के पास ४ पुरत, किसी के पास ८ पुरत और किसी के पास १० पुरत स आगे के नाम तक भी नहीं मिलते हैं तो उनके पूर्वजों ने देशसमाज और धर्म की क्या क्या सवायें की उसका तो पता ही क्या चलता है। यही कारण है कि ओसवाल समाज के नररत्नों ने देश की बड़ी बड़ी सेवायें की और अपना तन, मन और धन अर्पण किया पर आज संसार में उनका कहीं पर मान या स्थान नहीं है। इसका मूल कारण पट्टावलियों का अनादर करना ही है। उनके बिना हम जनता को क्या बता सकते हैं ?

एक विद्वान न ठीक कहा है कि जिस किसी जाति को नष्ट करना है तो पहिले उसका इतिहास नष्ट कर दो वह स्वयं नष्ट हो जायगी इस युक्ति के अनुसार ओसवाल जाति के नष्ट होने में मुख्य कारण अपना इतिहास न जानना ही है। और, एक बात और पूछनी है और वह यह है कि ओसवाल जैसी बुद्धिमती और समझदार जाति ने इस बात का अवलम्बन क्यों किया होगा कि वह अपने इतिहास के लिए इस प्रकार उदासीन रहे।

शान्ति—इसमें मुख्य कारण नये नये गच्छ एवं समुदाय तथा आपसी भेद भाव ही है।

कान्ति—पर उन्होंने ऐसा क्यों किया और इसमें उनका क्या स्वार्थ था।

शान्ति—नये नये गच्छवालों को अपने पग जमाने थे। जब तक उनका प्राचीन इतिहास न भुला दिया जाय तब तक वे उन मूल गच्छवालों के भक्त बन ही नहीं सकते थे। अतः उन्होंने पूर्व ओसवालों के इतिहास को ही नष्ट कर दिया। जैसे आदित्यनाग (चो०डिया) बाप्पनाग (बाफना) संचेति आदि १८ गोत्र और उनकी सैंकड़ों शाखा प्रशाखाओं का इतिहास २४०० वर्ष जितना प्राचीन है जिसको ८ ०-१०० वर्ष में बतला दिया जिसमें भी ८ १ ०० वर्ष में उनके पूर्वजों ने जो कार्य किये उसका नाम निशान भी नहीं, केवल एक उत्पत्ति के लिये कल्पना का कलेवर खड़ा कर बिचारे भद्रिक लोगों के प्राचीन इतिहास का खून कर दिया और भविष्य के लिये उनको कदाग्रह की शृंखला में ऐसा जकड़ दिया कि वे शोध-खोज एवं निर्णय तक भी नहीं कर सके। दूसरे एक समुदाय भेद भी ऐसा पड़ गया कि उनके उपासक अपने पूर्वजों का नाम लेने में भी पाप समझते हैं। कारण उन्होंने अनेक मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, अनेक बार तीर्थयात्रा के संघ निकाल यात्रा की इत्यादि। यह वर्तमान मंदिर मूर्ति नहीं मानने वालों के लिये उनकी मान्यता से खिलाफ है इत्यादि कारणों से ओसवाल जाति का इतिहास नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

कान्ति—भाई साहब यह तो बड़ा भारी कृतघ्नता है। कारण एक साधारण उपकार को भी भूल जाय उसे कृतघ्नी कहते हैं तो जिन महापुरुषों ने

कान्ति—हमारे पितामह के समय का उनका फोटू मेरे पास मौजूद है। देख लीजिये।

शान्ति—उमरावसिंह के पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—रामसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—उन्होंने एक सुनार से सोने की कंठी खरीद की थी उसके रुपये सुनार की वही में नाम मडे हुये थे, जिसके रुपये ब्याज सहित मैंने हाल ही में चुकाये हैं।

शान्ति—रामसिंह के पिता का क्या नाम ?

कान्ति—छत्रसिंह।

शान्ति—क्या प्रमाण है ?

कान्ति—उन्होंने एक तालाब पर छत्री बनाई थी जिसका शिलालेख आज भी मौजूद है।

शान्ति—छत्रसिंह के पिता का क्या नाम था ?

कान्ति—लक्ष्मणसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—आप तीर्थों की यात्रा पधारे थे उस समय पंडों को कुछ दान दिया था, वह पंडों की वही में उसी समय का लिखा हुआ मिलता है।

शान्ति—लक्ष्मणसिंह के पिता का क्या नाम था ?

कान्ति—सुन्दरसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—इसके लिये ऐतिहासिक प्रमाण तो कोई नहीं हैं परन्तु हमारे पितामह ने अपनी याद-दाश्त से जैसा कि उन्होंने अपने पितामह से सुना था एक खुर्शीनामा बनाया था। उसमें लक्ष्मणसिंह के पिता का नाम सुन्दरसिंह लिखा है।

शान्ति—इस खुर्शीनामा में आपको किसी प्रकार की शंका तो नहीं है न ?

कान्ति—इसमें शंका का क्या काम, देखलो यह खुर्शीनाम मौजूद है।

शान्ति—शायद कोई तुम्हारे पितामह ने कल्पना से वैसे ही लिख दिया हो।

कान्ति—वाह भई तुम भी कमाल करते हो ? कहीं ये बातें कल्पना से लिखी जाती हैं ? हमारे पितामह ने अपने पितामह के कथनानुसार ठीक ठीक लिखा है।

शान्ति—आपके पितामह के पितामह को कैसे मालूम हुआ हुगा ?

कान्ति—वाह! यह भी कोई पूछने की बात है ? उन्हें अपने पिता से मालूम हुआ होगा।

शान्ति—तो तुम्हारे कहने का अभिप्राय यह है कि वंशपरम्परा से खुर्शीनामे का ज्ञान चला आया है।

कान्ति—हाँ, बस अब तुम समझ गये।

शान्ति—मैं तो समझ गया मेहरबान! पर आप अभी नहीं समझे हैं।

कान्ति—क्यों ?

शान्ति—क्योंकि वंशपरम्परा के ज्ञान से लिखी हुई अपनी वंशावली में तो आपको सन्देह नहीं है, परन्तु गुरु परम्परा के ज्ञान से लिखी हुई पट्टा-वलियों और वंशावलियों में आपको सन्देह है।

कान्ति—सत्य है भाई साहब! यह मेरा मिथ्या भ्रम था। वास्तव में पट्टावलियाँ और वंशावलियां माननीय ग्रन्थ हैं। यह मेरी भूल थी कि मैं इस साहित्य पर सन्देह करता था।

शान्ति—कान्ति! एक तुम ही नहीं पर ऐसे वर्तमान शिक्षा पाये हुये अर्द्धदग्ध बहुत से लोग भ्रम में पड़े हुये हैं। फिर भी उनमें विशेषता यह है कि दूसरे के प्रमाणों को मानते नहीं और आपके पास प्रमाण नहीं। और कह देते हैं कि फलां ग्रन्थ पट्टा-वलियों को हम नहीं मानते हैं। ऐसे अर्द्ध दग्ध मनुष्यों को कैसे समझाया जाय ?

कान्ति—भाई साहब आपका कहना सत्य है। दूसरों के लिये क्या पर मेरी खुद की ही यही धारणा थी। आप तो क्या पर ब्रह्माजी भी आकर मुझे कह देते कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व हुई तो मैं कदापि नहीं मानता। पर आपके साथ वार्तालाप होने से यह निर्णय हो चुका है कि पट्टावलियों के अनुसार ओसवालों की उत्पत्ति वि० पू० ४०० वर्षों में हुई है और इसके विषय में पट्टावलियों और वंशावलियों में जो लिखा है उसमें शंका करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि उन त्यागी संयमी महात्माओं को असत्य लिखने का कोई भी कारण नहीं था अतः यह सत्य ही है। दूसरी बात यह भी है कि यदि पट्टावली और वंशावलियों को न माना जाय तो इस विषय के लिए हमारे पास दूसरा साधन ही क्या है? आज हम देखते हैं तो किसी ओसवाल के पास ४ पुश्त किसी के पास ८ पुश्त और किसी के पास १० पुश्त से आगे के नाम तक भी नहीं मिलते हैं तो उनके पूर्वजों ने देशसमाज और धर्म की क्या क्या सेवायें की उनका तो पता ही क्या चलता है। यही कारण है कि ओसवाल समाज के नररत्नों ने देश की बड़ी बड़ी सेवायें की और अपना तन, मन और धन अर्पण किया, पर आज संसार में उनका कहीं पर मान या स्थान नहीं है। इसका मूल कारण पट्टावलियों का अनादर करना ही है। उनके बिना हम जनता को क्या बता सकते हैं?

एक विद्वान् ने ठीक कहा है कि जिस किसी जाति को नष्ट करना है तो पहिले उसका इतिहास नष्ट कर दो वह स्वयं नष्ट हो जायगी इस युक्ति के अनुसार ओसवाल जाति के नष्ट होने में मुख्य कारण अपना इतिहास न जानना ही है। और एक बात और पूछनी है और वह यह है कि ओसवाल जैसी बुद्धिमान और समझदार जाति ने इस पट का अवलम्बन क्यों लिया होगा कि वह अपने इतिहास के लिए इस प्रकार उदासीन रहे।

शान्ति—इसमें मुख्य कारण नये नये गच्छ एवं समुदाय तथा आपसी भेद का ही है।

कान्ति—पर उन्होंने ऐसा क्यों किया और इसमें उनका क्या स्वार्थ था।

शान्ति—नये नये गच्छवालों को अपने गच्छ बनाने थे। जब तक उनका प्राचीन इतिहास न भुला दिया जाय तब तक वे उन मूलगच्छवालों के भक्त बन ही नहीं सकते थे। अतः उन्होंने पूर्व ओसवालों के इतिहास को ही नष्ट कर दिया। जैसे आदित्यनाग (चोरड़िया) बाप्पनाग (बाफना) संचेति आदि १८ गोत्र और उनकी सैंकड़ों शाखा प्रशाखाओं का इतिहास २४०० वर्ष जितना प्राचीन है जिसको ८००-१००० वर्ष में बतला दिया जिसमें भी ८००-१ वर्ष में उनके पूर्वजों ने जो कार्य किये उसका नाम निशान भी नहीं केवल एक उत्पत्ति के लिये कल्पना का कलेवर खड़ा कर बिचारे भद्रिक लोगों के प्राचीन इतिहास का खून कर दिया और भविष्य के लिये उनको कदाग्रह की शपथ में ऐसा जकड़ दिया कि वे खोज-शोध एवं निर्णय तक भी नहीं कर सके। दूसरे एक समुदाय भेद भी ऐसा हो गया कि उनके उपासक अपने पूर्वजों का नाम लेने में भी पाप समझते हैं। कारण उन्होंने अनेक मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, अनेक बार तीर्थयात्रा के संघ निकाल यात्रा की इत्यादि। वह वर्तमान मंदिर मूर्ति नहीं मानने वालों के लिये उनकी मान्यता से खिलाफ है इत्यादि कारणों से ओसवाल जाति का इतिहास अस्त-व्यस्त हो गया।

कान्ति—भाई साहब यह तो बड़ा भारी कृतघ्नीपना है। कारण, एक साधारण उपकार को भी भूल जाय उसे कृतघ्नी कहते हैं तो जिन महापुरुषों ने

मांस मदिरा और व्यभिचार-सेवी नरक के अभिमुख हो रहे थे उनको दुर्व्यसनों से छुटवा कर सन्मार्ग पर लाये और स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये और केवल उन पर ही नहीं परन्तु उनकी वंश-परम्परा आज तक के लोगों पर बड़ा भारी उपकार है, उनको भूल जाना तो एक जबर्दस्त कृतघ्नीपना है। आपका कहना ठीक है कि इस समाज का पतन प्राय: इस कृतघ्नीपना से हुआ और हो रहा है।

शान्ति--अरे भाई! तुम्हारे जैसे लिखे पढ़े आदमी का एक घंटा पहिले यह हाल था तो अपठित लोगों का तो कहना ही क्या।

कान्ति--मेहरबान! आपका कहना सत्य है पर अब इस वार्तालाप को ज्यों का त्यों छपवा कर जनता के हाथों में रख देना अच्छा, है क्योंकि आजकल के लिखे-पढे लोगों के इस प्रकार बात समझ में आजायगी तो साँप की भांति निर्मोल कांचली उतार के दूर फेंकने में उसके थोड़ी भी देर नहीं लगेगी। हाँ, हमारी शिक्षा कितनी भी बुरी हो, पर हम को ठीक समझाने वाले हों और हम समझ जाय, तो असत्य त्याग और सत्य ग्रहण करने में हठ-धर्मी कभी नहीं करते हैं। कारण, हम न तो रूढ़ि के गुलाम हैं और न कल्पित परम्परा के दास ही हैं। हम हैं सत्य के शोधक और सत्य के उपासक।

शान्ति--अच्छा भाई कान्तिचन्द्र, आप से वार्तालाप करने में मुझे बड़ा ही आनन्द आया और आपके दिल ने बड़ा भारी पलटा खाया जिससे मैं अपने परिश्रम को भी सफल समझता हूँ और आप की इतनी आग्रह है तो मैं इस सम्वाद को मुद्रित करवा कर सर्व-साधारण की सेवा में रख ही दूंगा।

कान्ति--अच्छा इस सम्वाद को छपाने में खर्चा का क्या इन्तजाम है?

शान्ति--खर्चा का आप कुछ भी विचार न करें। कार्य करने वाले हों तो समाज में द्रव्य की कुछ भी कमी नहीं है। व्यर्थ तो हजारों लाखों का पानी हो रहा है, तो इस छोटे से काम के लिये ऐसी कौन सी बात है।

कान्ति--जेब में हाथ डाल कर २०) नोट निकाल कर दे दिये और कहा कि अधिक खर्चा लगेगा तो मैं दूसरे मास की तनख्वाह आने पर दे दूंगा। आप इसको अवश्य मुद्रित करवा कर हाथों-हाथ भेंट दें।

शान्ति--पर आप तकलीफ क्यों उठाते हो? इतना सा खर्चा तो मैं भी कर सकूंगा।

कान्ति--आपने तो मुझे समझाने में कितना लाभ कमाया है इतना लाभ तो मुझे भी लेने दीजिये।

शान्ति--अच्छा भाई जै जिनेन्द्र की, अब मैं जाता हूँ। आपका समय लिया इसके लिये क्षमा करना।

कान्ति--जैं जिनेन्द्र भाई साहब! आप ने तो आज मेरे पर बहुत उपकार किया है कि मैं कृतघ्नीत्व के समुद्र में डूब रहा था आपने बाह पकड़ कर मेरा उद्धार किया है जिसको मैं कभी भूल नहीं सकता हूँ। खैर फिर कभी कृपा कर इस प्रकार वार्तालाप का लाभ देना।

---

१--वि० १० वीं शताब्दी का इतिहास इतना अँधेरे में नहीं है। यदि ओसवाल जाति १० वीं शता० में बनी होती तो तत्कालीन साहित्य में उसका वर्णन अवश्य होता, क्योंकि उस समय घटित साधारण घटनाओं का उल्लेख होने पर भी एक जबरदस्त घटना ( लाखों मनुष्यों का धर्म परिवर्तन ) का साहित्य में नाम निशान तक न होना, यह सूचित करता है कि ओसवाल जाति बहुत समय पूर्व बन चुकी थी।

२--जैन शिलालेख का समय प्राय वि० १० वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है परन्तु यह जाति इससे बहुत पूर्व बन चुकी थी फिर उसका शिलालेख कैसे मिल सकता है? अत यह जाति बहुत प्राचीन है।

# ओसवाल जाति की ऐतिहासिकता

ओसवाल ये महाजन संघ का रूपान्तर नाम है। इस महाजन संघ की संस्था को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने स्थापित की थी। महाजन संघ में केवल ओसवाल ही नहीं पर श्रीमाल पोरवाल आदि जातियों का भी समावेश हो जाता है। अत यहाँ महाजन संघ के लिये ही लिख दिया जाता है।

१—महाजन यह शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध है।

२—इस महाजनसंघ संस्था के निर्वाह के लिये जहाँ २ महाजन लोग बसते हैं एवं व्यापार करते हैं वहाँ वहाँ व्यापार पर प्राचीन समय से 'महाजनाउ' लाग्त लगाई गई है ये महाजन संस्था को साबित कर रही है कि यह संस्था बहुत प्राचीन है।

३—महाजनसंघ रूपी संस्था के आय व्यय के हिसाब के लिये ग्रामोग्राम बहियों चौपड़ा रखते हैं और उनका हिसाब सालों-साल होता है।

४—महाजनों के वहाँ लग्न शादी होती है उसमें भी संघ पूजा वगैरह की जाती है उस समय भी 'महाजनाउ' को याद किया करते है। कहीं २ पुत्र जन्म वगैरह शुभ अवसर पर भी महाजन संस्था को कुछ न कुछ भेंट करते हैं।

५—महाजन संघ के महत्व बतलाने वाले प्राचीन अर्वाचीन कई कवित्त भी मिलते हैं।

इत्यादि प्रमाणों स महाजनसंघ की प्राचीनता यथार्थिकता और महत्ता स्वयं-सिद्ध हो जाती है कि महाजनसंघ रूपी एक सुदृढ़ संस्था प्राचीन कालसे चली आरही है जिस का जन्म समय वि पू. ४०० वर्ष का है।

---

⊛ महाजन न भयो मंत्री, राज गयो रावण को, महाजन की सलाह बिन शिशुपाल नास्यो है।
भयो यो भिखारी नल, हरचंद में विखो पड़यो, महाजन पासिटी बिन कौरव कुल नास्यो है।
महाजन सुम्मती बिन कन राज्य बदल गये, महाजन की बुद्धि बिन यादवकुल घास्यो है।
महाजन दिवान राणा महाराणा ज्याके हुए, भयो मान आप कमल ज्यूं प्रकाशो है ॥१॥
महाजन जहाँ होत वहाँ रही बजार सार, महाजन जहाँ होत वहाँ माल ब्याज गल्ला है।
महाजन जहाँ वहाँ लेन देन विधि व्यवहार, महाजन जहाँ होत वहाँ सब ही का भला है।
महाजन जहाँ होत वहाँ रुगन को फगरार, महाजन जहाँ होत वहाँ दुष्टन पै हल्ला है।
महाजन जहाँ होत वहाँ लक्ष्मी प्रकाश करे, महाजन नहीं होत वहाँ रहनो बिन मल्ला है ॥२॥
भूप नृगि अरु दुर्योधन क भला मां बाप हैं। अकाल के भी काल हैं और हरन दुख संताप हैं ॥
दुख नहिं सकत दुखी पशु का भी इनकी बान है। सब जीव इन का मायमम है रामम की यान है ॥
हैं महाजन ही महा जन सब गुणों की खान है। जगतसेठ नगरसेठ पंचादि पद जो महान हैं ॥
पाप मनसों मार बहु फिर भी न कुछ अभिमान है। ये धीर हैं गंभीर है बम रममम रमनम संतान हैं ॥

## उपकेश वंश

उपकेश वंश—यह महाजन संघ की एक शाखा है। प्राचीन साहित्य में उपकेशवंश के उएेश, उकेश, उकेशी, उकेशीय, उकोसिय, और उपकेश एवं नाम मिलते हैं और उनके उत्पन्न होने के कारण इस मुजब हैं:—

१—ऊस—ओसवाली भूमि पर जिस नगर को आबाद किया उसे ऊस-ओस-उएेश कहा, यह उस ओसवाली भूमि का ही द्योतक है। तत्पश्चात उपकेशपुर निवासी लोग उपकेशपुर छोड़ कर अन्य नगर में जा वसने के कारण वहाँ के लोग उस उपकेशपुर से आये हुये समूह को उपकेशवंशी कहने लग गये और यह बात है भी स्वभाविक, जैसे —

कोरंटनगर से कोरटवाल, पालीनगर से पल्लिवाल, खडवा से खंडेलवाल, श्रीमाल नगर से श्रीमाली, अग्रह से अग्रवाल, महेश्वरी से महेसरी, रामपुर से रामपुरिया, साचोर से साचोंरा, मेड़ता से मेड़तवाल, प्राग्वट से प्राग्वटवंश, इस प्रकार उपकेशपुरवासियों का नाम उपकेशवंश हो गया।

२—उकेश—यह उएेश का रूपान्तर प्राकृत भाषा वालों ने उकेस लिखा है।

३—उपकेश—उएेश और उकेस को संस्कृत भाषा वालों ने अपनी सहूलियत के लिये उपकेश लिखा है। यह तीनों शब्द नगर के नाम के साथ व्यवहृत किये हैं जैसे :—

### १—उपकेशपुर के लिये

| | |
|---|---|
| उएशपुरे समायती— | "उपकेशगच्छ पट्टावली" |
| उकेशपुरे वास्तव्य— | "उपकेशगच्छ चरित्र" |
| श्रीमत्युपकेशपुरे— | "नाभिनन्दन जिनोद्धार" |

### २—उपकेशवंश के लिये

| | |
|---|---|
| उएशवंशे चंडालिया गोत्रे— | "बा० पूर्णचन्दजी सम्पादित शिला० नं १२८५ |
| उकेशवंशे जापड़ा गोत्रे— | "बा० पू० ना० स० शि० नं० ४८० |
| उपकेशवंशे श्रेष्टिगोत्रे— | "बा० पू० च० स० शि० न० १२५६ |

### ३—उपकेशगच्छ के लिये

| | | | |
|---|---|---|---|
| उएश गच्छे श्री सिद्धिसूरिभि | बुद्धिसागर | सूरि स० | लेखाँक ५५८" |
| उकेशगच्छे श्री कक्कसूरि सन्ताने | " | " | " १०४४" |
| उपकेशगच्छे श्री कुकुन्दाचार्य सन्ताने | " | " | " १९५" |

---

इस महाजन संघ के कई लोग व्यापार करने लगे तो गुर्जरादि प्रान्तों में उनको वाणिया कहने लगे, पर इससे उन लोगों का महत्त्व कम नहीं हुआ था। कहा है कि

"लिये दिये लेखे करी, लाख कोट धन धार, वणिक समों को नहीं, भरण भूप भंडार"
बीस वसा नहिं वणिक जीमे जो झूट्ठ बोले, वीस वसा नहिं वणिक पेट नो परदो खोले।
वीस वसा नहिं वणिक उतावलियो जे थाये, वीसवसा नहिं वणिक वनता सूं विहि पाये॥
वली वीस वसा ते वणिक नहिं चढ़यो रावले जाणिये, जे सत्य तजे सामल कहे वीस वसा नहिं वाणियो।

इस प्रकार उपरा उकेश और उपकेशवंश के नाम की उत्पत्ति हुई और जैसे उपकेशपुर के साथ उपकेशवंश का सम्बन्ध है वैसे ही उपकेशपुर और उपकेशवंश के साथ उपकेशगच्छ का भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका समय महाजन संघ की उत्पत्ति से दो तीन शताब्दियों का समझा जा सकता है। कारण, महाजनसंघ के नाम के बाद १०१ वर्षों में तो १८ गौत्र होने का प्रमाण मिलता है। अतः महाजनसंघ एवं उपकेशवंश को इस समय से पूर्व बना होना मानना न्यायसंगत और युक्तियुक्त है।

## उपकेश गच्छ

उपकेशवंश की मूल उत्पत्ति खास तौर तो उपकेशपुर से ही हुई है और इसके प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि ही थे। ये बात स्वाभाविक है कि जहाँ लाखों मनुष्यों को मांस मदिरा आदि कुव्यसन छुड़ा कर जैनधर्म में दीक्षित करने पर उनको बार २ उपदेश करने के लिये आना जाना पड़ता ही है। बस, रत्नप्रभसूरि या उनकी संतान उपकेशपुर या उसके आस पास अधिक विहार करने से इस समूह का नाम उपकेश और उपकेशगच्छ हो गया जैसे कोरंटपुर से कोरंटगच्छ, संडेरपुर से संडेरगच्छ, पल्लवी से पल्लवीगच्छ, वायटगाँम से वायटगच्छ, और खेटा से खेटागच्छ इत्यादि, इसी माफिक उपकेशपुर से उपकेशगच्छ हुआ।

## ओसवाल

ओसवाल-यह उपकेशवंश का अपभ्रंश है क्योंकि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास उपकेशपुर का अपभ्रंश ओसियाँ हुआ, तब से ही उपकेशवंश का नाम ओसवाल हो गया और ऐसा होना असंभव भी नहीं है जैसे जाबलीपुर का जालौर, नागपुर का नागौर, मांडव्यपुर का मंडोर, हर्षपुर का हरसोरा, कूर्चपुर का कुचेरा, किराटकूप का किराडू, आदि अपभ्रंश हुआ है वैसे ही उपकेशपुर का ओसियाँ हुआ है।

ओसवालों के लिये शिलालेख देखा जाय तो विक्रम की तेरहवीं शताब्दी पूर्व का कोई भी नहीं मिलता है। यदि मिलते भी हैं तो विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के, वे भी बहुत कम संख्या में। इसका यही कारण हो सकता है कि इस जाति का मूलनाम उपकेशवंश था बाद उसका अपभ्रंश ओसवाल होने पर भी लिखने वालों ने ग्रन्थों के एवं शिलालेखों में बीसवीं शताब्दी तक जहाँ तहाँ उपकेशवंश का ही प्रयोग किया है, जैसे पोरवाल जाति का प्रचलित नाम पोरवाल होने पर भी शिलालेखों में प्राग्वट ही लिखे जाते हैं। इसी प्रकार ओसवालों को समझ लेना चाहिये। यों तो ये प्रमाण ही इस जाति की प्राचीनता साबित कर रहा है, परन्तु उन पट्टावलियों वंशावलियों के अलावा अनेक ऐतिहासिक साधनों के आधार पर अच्छे अच्छे विद्वान लोगों ने इस जाति की प्राचीनता के लिये जो अभिप्राय दिये हैं उसको मैं यहाँ उद्धृत कर देता हूँ।

# श्रीउपकेशवंश की व्युत्पत्ति और उपकेशगच्छ का वास्तविक अर्थ

मूलकर्त्ता—खरतरगच्छीय पं० वल्लभगणि ( वि० सं० १६५५ )

## अथ—ओकेश शब्दस्यार्थाः लिख्यते

१ मूल—इशिक ऐश्वर्ये ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या सा ओकेशा, सत्यका नाम्नी गोत्र देवता। अत्र ओक शब्दः अकारान्तः तस्यां भवस्तस्या अयमिति वा ओकेशः। भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अण् प्रत्ययः। सत्यका देवीहि नवरात्रादिषु पर्व सु अस्मिन् गणे पूज्यते सा चास्यगणस्य अधिष्ठात्री अतएवाऽस्य गच्छस्य ओकेश इति यथार्थ नाम प्रोच्यते सद्भिरिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

हिन्दी अनुवाद—मूल शब्द ओकेश में दो भिन्न पद हैं जैसे—"ओक-ईश" इनमें ईश शब्द की व्युत्पत्ति इशिक् ऐश्वर्य्यवाची इस धातु से होती है और ओक का अर्थ है घर। जो श्रावक आदिकों के घरों में पूज्यमान हो करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो उसे ओकेशा कहते हैं। यह ओकेशा सत्यका के नाम से प्रसिद्ध एक गोत्र देवी है। "इस जगह सकारान्त ओकस् शब्द का ग्रहण न कर अर्थ सगति की सुविधा के लिए अकारान्त ओक शब्द का ग्रहण किया है जो ध्यान में रहे" और जो गच्छ ओकेशा देवी के नाम पर प्रसिद्ध हो या उसका उपासक हो उस गच्छ को "ओकेश" ऐसा कह सकते हैं। यहाँ व्याकरण नियम से "भवे" इस अर्थ में या 'तस्येदम्" वह उसका है इस अर्थ में सूत्रादेश से अण प्रत्यय होता है। इस ओकेश गच्छ में नवरात्रादि पर्वों के प्रसंग पर सत्यकादेवी की घर घर पूजा होती है क्योंकि वह देवी इस गण की अधिष्ठात्री देवी है और इसी से इस गच्छ का नाम यथार्थरूप से "ओकेश" यह सज्जनों द्वारा कहा जाता है। यह ओकेश शब्द का पहिला अर्थ हुआ ॥ १ ॥

२ मूल—ईशनमीशः ऐश्वर्य ओकैर्महर्द्धिक श्राद्धप्रमुखलोकानाँगृहैरीशो यस्यां सा ओकेशा ओसिकानगरी। तत्र भवः ओकेशः। ओसिका नगर्या हि अस्य गणस्य ओकेश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरतो विख्यातं जातम्। इति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद—ईशन याने ईश=ऐश्वर्य्य। तथा ओकै—अर्थात् महाधनिक श्रावक आदि मनुष्यों के घरों से युक्त है ऐश्वर्य्य जिसमें ऐसी ओकेशा "ओसिका" नाम की नगरी, और उस नगरी में पैदा हुए गच्छ का नाम ओकेश। क्योंकि इसी नगरी से ही इस गण का नाम "ओकेश" ऐसा श्री रत्नप्रभसूरीश्वर से विश्व में विख्यात हुआ है। यह ओकेश शब्द का दूसरा अर्थ है ॥

मूल—अः कृष्णः, उः शंकरः, को ब्रह्मा। एषां द्वन्द्वसमासे ओकास्ते ईशते पूज्यमानाः सन्तो देवत्वेन मन्यमाना सन्त्येभ्यस्ते ओकेशाः। ओकैः—कृष्ण, शंभु ब्रह्मभिर्देवैरीशते ये ते वा ओकेशाः। पर शासन धना क्षत्रिय राजपुत्रादयः। प्रतिबोध विधानात्तेषामयं ओकेशः। तस्येद मित्यण् प्रत्ययः। श्रीरत्नप्रभसूरिभिस्तेषां पारलौकिकधर्म, निष्ठता सिद्धान्तोक्तविशुद्धजैनधर्म निष्ठायां प्रतिबोध दानेन प्रवर्तना कृता। तथा च श्रूयते पूर्वेहि श्रीरत्नप्रभसूरीणां गुरवः श्रीपार्श्वापत्यीय केशीकुमाराऽनगार सन्तानीयत्वेन विख्यातिमन्तो जगति जज्ञिरे। तत प्राप्त सूरिमंत्राः समर्थतः रमणीयाऽतिशय निचया स्वकीय निस्तुल शेमुषी प्राग्भार संभारात् प्राप्तविरुद सूरयः श्रीमद्रत्नप्रभसूरयः कियति गते काले विहरंत संत श्रीओसिका नगर्यां समवसृताः। तस्यां च सर्वे लोकाः पारलौकिक धर्मधारिणोऽसंति। न कोऽपि जैनधर्मधारी। तत साध्वाचारं प्रतिपालयद्भिः सिद्धान्तोक्त तीर्थङ्कर धर्म शुभकर्मप्ररूपणां कुर्वद्भिः सद्भिः श्रीरत्नप्रभसूरिभि पारलौकिकाः नैकश्रेष्ठिक्षत्रियलोकाः प्रतिबोधितास्तत एतेओकेशा इति विरुदो विख्यातो जात। इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

हिन्दी अनुवाद—अ=कृष्ण उ=शंकर, क=ब्रह्मा, ये एकाक्षरी कोष से प्रसिद्ध नाम हैं। इनका द्वन्द्व समास करने पर "ओक्" ऐसा शब्द बना। अब ये तीनों देव जिन मनुष्यों द्वारा ईशते=अपने देव स्वरूप से पूज्यमान होते हुये ऐश्वर्य को प्राप्त हों उन मनुष्यों को ओकेश कहते हैं। अथवा ओकैः=कृष्ण, शंभु और ब्रह्मा नामक देवताओं से जो शुद्ध ऐश्वर्य "धन दौलत" प्राप्त करें उन्हें ओकेश कहते हैं। ये सब पर शासन को धारण करने वाले क्षत्रिय राजपुत्र आदि हैं और उनका प्रतिबोध करने से यह गच्छ ओकेश नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां "तस्येदम्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है ये चमत्कारी श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा उनके पारलौकिक धर्म की निष्ठा से सिद्धान्तों से कहे हुए विशुद्ध जैनधर्म की निष्ठा में प्रतिबोध देने से प्रचलित हुए। जैसे सुना जाता है कि —

"प्राचीन काल में श्री रत्नप्रभसूरि के गुरु श्री पार्श्वनाथ सन्तानीय केशीकुमारश्रमणगार के सन्तानीय होने से जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उनसे सूरि मंत्र को प्राप्त कर, सर्व व प्र स्वकीय रमणीय अतिशय समूह वाले स्वकीय निष्कल बुद्धि व बृहस्पति तक को नीचा दिखाने वाले सूरीश्वर श्रीरत्नप्रभसूरि कुछ समय बीत जाने पर विहार करते हुए श्रीओसियानगरी को आए। वहां सब मनुष्य पारलौकिक धर्म को धारण करने वाले थे जैन धर्मी कोई नहीं था। तब साधु के सदाचार को पालने वाले सिद्धान्त कथित तीर्थंकरों के धर्म की शुभ-शुद्ध प्ररूपणा को करने वाले महात्मा श्रीरत्नप्रभसूरिजी ने पारलौकिक धर्मी अनेक विचारशील क्षत्रिय लोगों को प्रतिबोध दिया। उसी दिन से ये ओकेश गच्छ हैं" ऐसा विरुद जिसमें विख्यात हुआ। यह इसका तीसरा अर्थ है।

खुलासा—ओक—का अर्थ एकाक्षरी कोष द्वारा कृष्ण, शंभु और ब्रह्मा होता है, उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले क्षत्रिय आदि अन्य धर्मावलम्बी ओकेश कहाए और उनके प्रतिबोध देने से श्रीरत्नप्रभसूरि का गच्छ भी ओकेश नाम से प्रसिद्ध होगया।

# श्रीउपकेशवंश की व्युत्पत्ति और उपकेशगच्छ का वास्तविक अर्थ

मूलकर्त्ता—खरतरगच्छीय पं० वल्लभगणि ( वि० सं० १६५५ )

## अथ—ओकेश शब्दस्यार्थः लिख्यते

१ मूल—इशिक ऐश्वर्यें ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या सा ओकेशा, सत्यका नाम्नी गोत्र देवता । अत्र ओक शब्दः अकारान्तः तस्यां भवस्तस्या अयमिति वा ओकेशः । भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अण् प्रत्ययः । सत्यका देवीहि नवरात्रादिषु पर्व सु अस्मिन् गणे पूज्यते सा चास्यगणस्य अधिष्ठात्री अतएवाऽस्य गच्छस्य ओकेश इति यथार्थं नाम प्रोद्यते सद्भि-रिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

हिन्दी अनुवाद—मूल शब्द ओकेश में दो भिन्न पद हैं जैसे—"ओक-ईश" इनमें ईश शब्द की व्युत्पत्ति इशिक् ऐश्वर्य्यंवाची इस धातु से होती है और ओक का अर्थ है घर । जो श्रावक आदिकों के घरों में पूज्यमान हो करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो उसे ओकेशा कहते हैं । यह ओकेशा सत्यका के नाम से प्रसिद्ध एक गोत्र देवी है । "इस जगह सकारान्त ओकस् शब्द का ग्रहण न कर अर्थ सगति की सुविधा के लिए अकारान्त ओक शब्द का ग्रहण किया है जो ध्यान में रहे" और जो गच्छ ओकेशा देवी के नाम पर प्रसिद्ध हो या उसका उपासक हो उस गच्छ को "ओकेश" ऐसा कह सकते हैं । यहाँ व्याकरण नियम से "भवे" इस अर्थ में या 'तस्येदम्" वह उसका है इस अर्थ में सूत्रादेश से अण प्रत्यय होता है । इस ओकेश गच्छ में नवरात्रादि पर्वों के प्रसग पर सत्यकादेवी की घर घर पूजा होती है क्योंकि वह देवी इस गण की अधि ष्ठात्री देवी है और इसी से इस गच्छ का नाम यथार्थरूप से "ओकेश" यह सज्जनों द्वारा कहा जाता है । यह ओकेश शब्द का पहिला अर्थ हुआ ॥ १ ॥

२ मूल—ईशनमीशः ऐश्वर्यं ओकैर्महर्द्धिक श्राद्धप्रमुखलोकानांगृहैरीशो यस्यां सा ओकेशा ओसिकानगरी । तत्र भवः ओकेशः । ओसिका नगर्या हि अस्य गणस्य ओकेश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरतो विख्यातं जातम् । इति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद—ईशन याने ईश = ऐश्वर्य्य । तथा ओकै—अर्थात् महाधनिक श्रावक आदि मनुष्यों के घरों से युक्त है ऐश्वर्य्य जिसमें ऐसी ओकेशा "ओसिका" नाम की नगरी, और उस नगरी में पैदा हुए गच्छ का नाम ओकेश । क्योंकि इसी नगरी से ही इस गण का नाम "ओकेश" ऐसा श्री रत्नप्रभसूरीश्वर से विश्व में विख्यात हुआ है । यह ओकेश शब्द का दूसरा अर्थ है ॥

हिन्दी अनुवाद—अब इस प्रस्तावना से उपकेश शब्द के भी कुछ अर्थ लिखते हैं। जैसे उप समीप में हैं केश जिसके वह उपकेश अर्थात् श्रीपार्श्वनाथ सन्तानीय केशीकुमाराऽनगार "इनका उत्पत्ति वृत्तान्त श्री रायपसेणी सूत्र की वृत्ति में सप्रपंच ( विस्तार से ) वर्णित है अतः जिन्हें देखने की इच्छा हो उस पुस्तक से देख लेना चाहिये।" बाद में उपकेशः = श्री केशीकुमाराऽनगार है पूर्वज गुरु जिस गच्छ में उस गच्छ का नाम भी उपकेश हुआ यहाँ बहुव्रीहि समास करके "अभ्रादित्वात्" इससे अ प्रत्यय होता है। भावार्थ—इस गच्छ में ही श्री केशीकुमाराऽनगार प्राचीन गुरु थे और उन्हीं के अपर नाम उपकेश से इस गच्छ का नाम भी उपकेश शब्द का प्रथम अर्थ हुआ ॥ १ ॥

२ मूल—उपवर्जितास्त्यक्ता केशाः यत्र स उपकेशः "ओसिकानगरी" तस्यां हि सच्चिका देव्याश्चैत्यमस्ति । तत्रोपवर्णनैर्जनैः प्रथमजातबालकानांमुदिनेदिने मुण्डन कार्यते । तत उपकेश इति यथार्थ नाम ओसिकानगर्यामस्यायतं जातम् । तत्र भवो योगच्छः स उपकेश प्रोच्यते सद्भिर्विबुधैः । अत्र हि "भवे" इत्यनेन सूत्रेण अणि प्रत्यये "संज्ञा पूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्वृद्धेर भावः" । श्रीरत्नप्रभसूरितः अनेक श्रावक प्रतिबोध विधानाऽनन्तरंलोके गच्छस्य उपकेश इति नाम प्रसिद्धं जात मिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद—उपवर्जित = छोड़े हैं केश जहाँ उस स्थान का नाम उपकेश अर्थात् ओसिया नगरी में एक सच्चिका देवी का मन्दिर है और उसके आगे वणिक लोग अच्छा दिन देख वहाँ पर अपने पैदा हुए बच्चों का प्रथम मुण्डन संस्कार "मस्तक मुंडा" कराते हैं। इससे उपकेश यह ओसिया नगरी से ही यथार्थ नाम प्रसिद्ध हुआ है। क्योंकि विद्वान् लोग व्याकरण नियमाऽनुसार वहाँ होने वाले पदार्थ को भी उसी नाम से संबोधित करते हैं। अतः उपकेश "ओसिया" से वहाँ पर प्रसिद्ध होने वाले गच्छ का भी उपकेश नाम होना सर्वथा संभव है। यहाँ पर "भवे" इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है और "संज्ञा पूर्वस्य विधेरनित्यत्वात्" इस नियम से वृद्धि का अभाव हो जाता है अन्यथा "औपकेश" ऐसा शब्द बन जाता।

निष्कर्ष—श्री रत्नप्रभसूरि से उपकेश "ओसिया" नगरी में अनेक क्षत्रियों का प्रतिबोध किये जाने पर लोक में उस गच्छ का भी उपकेश नाम प्रसिद्ध हो गया। यह उपकेश शब्द का दूसरा अर्थ है ॥ २ ॥

३ मूल—कः ब्रह्मा, अः कृष्णः, उः ईश्वरः तेषां द्वन्द्वे काउ । तैरीशैश्वर्यमनुभवति यः स केशः । अथवा ईशाः ऐश्वर्य यस्मात्स केशः पारलौकिका धर्म्मः स उपवर्जितस्त्यक्तो यस्मात् स उपकेशस्तीर्थंकरः तदुक्त विशुद्ध धर्मः सः विद्यते यस्मिन् गच्छे स उपकेशः । अत्राऽपि "अभ्रादित्वात् प्रत्ययः" इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

हिन्दी अनुवाद—कः = ब्रह्मा अ = कृष्ण पुनः उ = शंकर इनका क्रमशः समास करने पर 'का' बना। फिर ई = उस ब्रह्मा कृष्ण और शंभु रूप वाले 'का' से जो ऐश्वर्य को अनुभव करे वह हुआ केश अथवा काना = ईशाः ऐशः ब्रह्मा कृष्ण और शंभु का है ऐश्वर्य जिससे ऐसा जो केश याने पारलौकिक धर्म और वह पारलौकिक धर्म जिसने उपवर्जित = याने छोड़ दिया है वह हुआ उपकेश याने तीर्थंकरों से कहा हुआ विशुद्ध धर्म तथा ऐसा तीर्थंकरोक्त विशुद्ध धर्म जिस गच्छ में विद्यमान हो उस गच्छ का नाम भी हुआ उपकेश। यहाँ पर भी "अभ्रादित्वात् इस गण सूत्र से अ प्रत्यय होता है। इस प्रकार उपकेश शब्द का यह तीसरा अर्थ है ॥ ३ ॥

४—मूल—अः कृष्णः, आ ब्रह्मा, उः शंकरः, एषों द्वन्द्वे आवस्ततः ओभिः कृष्ण ब्रह्मा शंकर देवैः कायते स्तूयते देवाधिदेवत्वादिति ओकः प्रस्तावात् श्रीवर्धमानस्वामी। "क्वचिदिति ड प्रत्ययः ओकश्चासौ ईशश्च ओकेशस्तस्याऽयं ओकेशः। वर्त्तमान तीर्थाधिपति श्रीवर्धमानजिन पति तीर्थाश्रयणादिति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

हिन्दी अनुवाद—अ' = कृष्ण, आ = ब्रह्मा, उ' = शंकर, इनका द्वन्द्व समास करने पर 'ओ" ऐसा शब्द बना फिर ओभिः = कृष्ण ब्रह्मा और शंकर से जो कायते = स्तुति किया जाय देवाधिदेवपणे से वह ओक हुआ याने कृष्णादि से स्तुत देवाधिदेव। यहाँ पर प्रस्तावक्रम से ओक = इसका अर्थ श्रीवर्धमान स्वामी ग्रहण करना चाहिये। ओक इसमें "क्वचित्०"-- इससे ड प्रत्यय होता है। अन्तर ओकश्च असौईशः = जो ओक वही ईश्वर ऐसा कर्म धारय समास करने से ओकेश शब्द सिद्ध होता है। फिर "तस्य अयं = उसका यह" इस तद्धित निगम से ओकेश का उपासक गच्छ भी ओकेश ही रहा। क्योंकि यह गच्छ वर्त्तमान तीर्थाधिपति श्री वर्धमान जिनपति तीर्थङ्कर का आश्रित है। यह ओकेश शब्द का चौथा अर्थ हुआ।

५ मूल—अः अर्हन् "अः स्यादर्हति सिद्धे चेत्युक्तेः" प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्री वर्द्धमानस्वामी प्रोच्यते। ततः अस्य ओका गृहं चैत्यमिति यावत्। ओकः श्रीवर्द्धमानस्वामि चैत्य मित्यर्थः। तस्मादीशः ऐश्वर्यं यस्य स ओकेशः। यतोऽयं गणः श्रीमहावीरतीर्थंकरसान्निध्यतः स्फाति मवापोति पञ्चमोऽर्थः॥ एवमस्य पदस्याऽनेकेऽप्यर्थाः संवोभुवति परं किं बहु श्रमेणेति ॥ शम्॥

हिन्दी अनुवाद—अ = अर्हन् "अ स्यादर्हति सिद्धे च" = अ' नाम अर्हन् और सिद्ध का है इस वचन से। प्रकरण क्रम से इस स्थल पर अ इस शब्द से वर्धमानस्वामी को जानना चाहिये। फिर अस्य = महावीरस्वामी का ओक = गृह अर्थात् मन्दिर इस तत्पुरुष समास से ओक इसका अर्थ वर्धमान स्वामी का चैत्य हुआ। बाद में तस्मात् = उस वर्धमान स्वामी के चैत्य से है ईश = ऐश्वर्य जिसका "इस बहुव्रीहि समास से" वह ओकेश हुआ। कारण यह ओकेश गण श्री महावीर तीर्थङ्कर के सान्निध्य से ही स्फाति = वृद्धि को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार ओकेश शब्द का यह पाँचवाँ अर्थ हुआ ॥ ५ ॥

शेष में इस ओकेश पद के इस प्रकार अनेक अर्थ हो सकते हैं परन्तु मैंने अधिक श्रम करना ठीक नहीं समझा है।

## अथ उपकेश शब्दस्य कियन्तोऽर्थाः लिख्यन्ते—तद्यथाः—

१ उप, समीपे केशाः शिरोरुहाः सन्त्यस्येति उपकेशः श्रीपार्श्वापत्यीय केशीकुमाराऽनगारः। एतदुत्पत्ति वृत्तान्तस्तु श्रीस्थानांगवृत्त्यादौसमपञ्चः प्रतीत एऽस्ति। तत एवाऽवगन्तव्यः। ततः उपकेशः श्रीकेशीकुमाराऽनगार पूर्वजोगुरुर्विद्यतेयस्मिन् गणे स उपकेश "अभ्रादित्वाद प्रत्ययः" अस्मिन् गच्छे हि श्रीकेशीकुमारानगार प्राचीनोगुरुरासीत्। ततोयथार्थमुपकेश इति नाम जात मिति प्रथमोऽर्थः॥ १ ॥

४ मूल—कं च सुखं ई च लक्ष्मीः कयौ ते ईशे स्वायत्ते यत्र यस्माद्वा सः केशः अर्थात् जैनोधर्मः । सः उपसमीपे अधिको वाऽस्माद्गच्छात् स उपकेश इति चतुर्थोर्थः ॥ ४ ॥

हिन्दी अनुवाद—क = सुख, ई = लक्ष्मी ये दोनों जिस धर्म में या जिस धर्म में तद्धर्मी मनुष्यों के स्वाधीन हैं उस धर्म का नाम हुआ केश अर्थात् स्वाधीन सुख सपत्ति वाला जैनधर्म। और वह धर्म ( जैन धर्म ) जिस गच्छ से उप = समीप में हो या जिससे अधिक प्राप्त हो उस गच्छ का नाम भी उपकेश गच्छ है। इस प्रकार यह इसका चौथा अर्थ है।

५ मूल—कश्च, अश्च, ईशश्च = केशाः ब्रह्मा विष्णु महेशाः। तद्धर्म निराकरणात्ते उपहताः येन सउपकेशः। प्रकरणादत्र श्री रत्नप्रभसूरि गुरुः तस्याऽयं उपकेशः। अत्राऽपि "तस्येद मित्यणि प्रत्यये पूर्ववद्वृद्धेरभावो न दोष पोषणायेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥

हिन्दी अनुवाद—क, अ, और ईश इन तीनों से बना केश जिसका अर्थ होता है ब्रह्मा विष्णु और महेश। तथा उनके "ब्रह्मा विष्णु महेश के" धर्म का निराकरण करने के कारण ते = वे ( ब्रह्मा विष्णु महेश ) उपहता = दूर किये गए हैं येन = जिससे स = वह हुआ उपकेश। प्रकरण वश यहाँ उपकेश नाम से श्री रत्नप्रभसूरि का ग्रहण करना चाहिये। बाद में तस्य = उस "उपकेश" विभूषित श्री रत्नप्रभसूरि का अयं = यह गच्छ है इससे इस गच्छ का नाम भी उपकेश प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी "तस्येदम्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर पूर्ववत् वृद्धि का अभाव हो जाता है। यह उपकेश शब्द का पाँचवाँ अर्थ है।

इत्थमन्येऽप्यनेकेर्थाः ग्रन्थाऽनुसारेण विधीयंते। परमलं बहु श्रमेणेति। एव मुक्त व्यक्त युक्ति व्यतिशक्त्या ओकेशोपलक्षणे– उभे अपि नाम्नी यथार्थे घटां प्राचत इति ओकेशोपकेश पद द्वयदशार्थी समाप्ता ॥

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार ग्रयों के अनुसार इन दोनों पदों के और भी अनेक अर्थ किए जा सकते हैं पर यहाँ पर मैंने सक्षेप से पूर्वोक्त दश अर्थ किये हैं, विद्वानों के लिये येही पर्याप्त हैं। तथा इस तरह की कथित प्रकट युक्ति व्यतिशक्ति से ओकेश शब्द के उपलक्षण रूप दोनों शब्द अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट करते हैं।

इस तरह ओकेश ओपकेश इन दोनों पदों के दश अर्थ यहाँ समाप्त होते हैं। ॐ शान्ति. ३ ॥

इति संवत् १६५५ वर्षे श्रीमद्विक्रमपुरनगरे सकलवादी वृन्द कंद कुदाल श्रीकक्कुदाचार्य्य सन्तानीय श्रीमच्छ्रीसिद्धसूरीणां आग्रहतः श्रीमद्बृहत्खरतर-गच्छीयवाचनाचार्य्य श्रीज्ञानविमल गणि शिष्य पण्डित श्रीवल्लभगणिविरचितायेयम् ॥ श्रीरस्तु ॥

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के आचार पतित क्षत्रियों को मांस मदिरा और व्यभिचारादि कुव्यसन छुड़ा कर जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैनी बना कर इस जनसमूह का नाम 'महाजन-सघ रक्खा। इस संस्था ने आगे चल कर इतना जबरदस्त काम किया कि पिछले आचार्यो ने जब जब जैनेतरों को उपदेश देकर जैनधर्म में दीक्षित किया तो वे पूर्व स्थापित महाजन सघ में ही मिलाते गये। क्योंकि वे दूरदर्शी आचार्य इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि अपने बनाये नूतन जैनों को अलग रक्खेंगे तो

# "महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ति विषय पट्टावल्यादि ग्रन्थों के प्रमाण

१—हिमवन्त पट्टावली—जैनपट्टावलियों में यह हिमवन्त पट्टावली सबसे प्राचीन पट्टावली है। इसके रचयिता आचार्य हिमवन्तसूरि हैं। आपका का नामोल्लेख श्रीनन्दी सूत्र की स्थविरावली में मिलता है—

"अमिद्दमो मउमागो पयराइ अज्ञनि अड्ढभरहम्मि, बहुनयर निग्गयजसे ते वन्दे खंदिलायरिए।
तत्तो हिमवन्त महन्त विक्कम धिइ परक्कमणंते, सज्झायमणंतधरे हिमवन्त वंदिमोसिरसा॥
कालियसुय अणुओगस्स धारए धारए य पुव्वाण, हिमवन्त खमासमणे वन्दे णागज्जुणायरिए॥

आचार्य हिमवन्तसूरि आर्य स्कन्दिल के पट्टधर थे। अत इतिहास के लिए प्रस्तुत पट्टावली बड़ी उपयोगी है। इसमें वर्णित घटनाओं में किसी प्रकार की शंका नहीं है फिर भी समय व अविसंवादन की आवश्यकता है।

"जमणट्ठे मुणि पवरो, तप्पयसोहंकरो परो भाणो। अहमखंडोमगढ़े, रज्जंकुमर तपागढ़ोरी॥
सुट्ठिय सुपडिबुद्ध, भ जे दुभे नि से नमंसामि। भिक्खुराय-कलिंगा-हिवेस सम्मासिए विट्ठे॥

हिमवन्त पट्टावली और वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना पृष्ठ १११

यशोभद्रसूरि मन्त्रराज, आर्यसुस्थीसूरि, महाराजाभिक्षुराज (खारवेल) वगैरह को पट्टावली की उपरोक्त गाथा में वर्णन है वह सब उड़ीसा की खंडगिरिपहाड़ी की हस्ती गुफा से प्राप्त महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेख से ठीक मिलता है। अत इस पट्टावली की सत्यता में थोड़ी भी शंका को स्थान नहीं मिलता है। वी० नि० सं० जै० का० पृष्ठ १४

प्रस्तुत हेमवंत पट्टावली को प्रखर इतिहासवेत्ता पं० मुनिश्री कल्याणविजयजी महाराज ने स्वरचित "वीर निर्वाण संवत् और जैनकालगणना" नामक प्रबन्ध में स्थान दिया है और उस पट्टावली के आधार पर लिखा है कि—

"मथुरा निवासी ओसवंशशिरोमणि श्रावक पोलाक ने गंधहस्ती विवरण सहित उन सर्व सूत्रों को ताड़पत्रादि में लिखवा कर पठन-पाठन के लिये निर्ग्रन्थों को अर्पण किया। इस प्रकार जैनशासन की उन्नति करके स्थविर आर्यस्कंदिल विक्रम संवत् २ २ में मथुरा में ही अनशन करके स्वर्गवासी हुए" वी० नि० सं० पृ० १

प्रस्तुत लेख में गन्धहस्ती विवरण के लिये लिखा है वह विवरण यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, पर यत्र-तत्र कई स्थानों में इसके अस्तित्व के प्रमाण अवश्य मिलते हैं यथा—

वि० सं० ९१२ में आचार्य शीलांकसूरि हुये हैं आपने श्रीआचारांगसूत्र पर टीका बनाई है जिसके प्रारम्भ में आप लिखते हैं कि—

शस्त्र परिज्ञा विवरण मति, बहु गहनं च गंधहस्तिकृतम्।
तस्मात् सुखबोधार्थ गृह्णाम्यहमञ्जसा सारम्॥ "श्रीआचारांगसूत्रटीका"

४८० उकेशवंशे जांगड़ा गोत्रे
४८८ उकेशवंशे श्रेष्टि गोत्रे
१२७८ उकेशज्ञा० गहलाड़ागोत्रे
१२८० उपकेश ज्ञातौ दूगड़गोत्रे
१२८५ उएशवशे चंडालिया गोत्रे
१२८७ उपकेशवंशे कटारिया गोत्रे
१०२५ उए ज्ञा० कोठारी गोत्रे
१०९३ उ० ज्ञा० गुदेचा गोत्रे
११०७ उपकेश ज्ञाति डागरेचा गोत्रे
१२१० उ० सीसोदिया गोत्रे
१२५५ उपकेश ज्ञाति साधु सास्तायां
१२५६ उपकेश ज्ञातौ श्रेष्टि गोत्रे
१४१३ उकेशवंशे भणशाली गोत्रे
१४३५ उएसवंशे सुचिन्ती गोत्रे
१४९४ उपकेश सुचति
१५३१ उ० ज्ञातौ वलहागोत्र रांका
१५१६ उपकेश ज्ञातौ सोनी गोत्रे
१५८१ उपकेश वंशे श्रेष्टिगोत्रे०

इसी प्रकार आचार्य बुद्धिसागरसूरि एवं विजयेन्द्रसूरि के सम्पादित किये शिलालेख संग्रह की मुद्रित पुस्तकों में उपकेशवश के प्रमाण तथा और भी अनेक शिलालेखों में ओसवाल जातियों के आदि में उपकेशवंश का प्रयोग हुआ है पर यहां पर तो केवल नमूने के तौर थोड़े से शिलालेखों को नम्बर के साथ उद्धृत किये हैं।※

जिस प्रकार ओसवालों की जातियों के साथ उपकेशवंश का प्रयोग हुआ है इसी प्रकार पोरवालों के साथ प्राग्वटवश तथा श्रीमालियों के साथ श्रीमाल वंश एवं श्रीमाली जाति का प्रयोग हुआ है।

इन शिलालेखों के अन्दर ओसवालों की प्रत्येक जातियों के आदि में उपकेशवंश का प्रयोग देख कर आपको इतना तो सहज ही में ज्ञात हो जायगा कि पूर्वाचार्य्यों का हृदय कितना विशाल था कि उन्होंने अपने या दूसरों के बनाये हुये जैनों की तमाम जातियों को उपकेशवश में शामिल कर दी थीं। कारण, वे अच्छी तरह से समझते थे कि ओसवाल जाति की शुरुआत उपकेशपुर से ही हुई थी और शुरू से इस जाति का नाम उपकेशवंश ही था। इतना ही क्यों पर उन दूरदर्शी आचार्यों ने शुरू से महाजनसंघ की स्थापना करने वाले आचार्यश्रीरत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज का सन्मान एवं सत्कार भी किया है।

महाजन सघ, उपकेशवश और ओसवाल जाति की मूल व्याख्या के पश्चात् अब इस जाति की उत्पत्ति के समय के विषय में जितने प्रमाण मुझे मिले हैं उनको तीन विभागों में विभक्त कर दिया है १-विभाग में पट्टावलियों के प्रमाण २-वंशवलियों के प्रमाण ३-ऐतिहासिक प्रमाण। इनके अलावा कई विद्वानों की सम्मतियें और जैनाचार्य एव मुनिवरों के लेखों को यथाक्रम आगे के पृष्टों में लिखने का प्रयत्न किया जायगा।
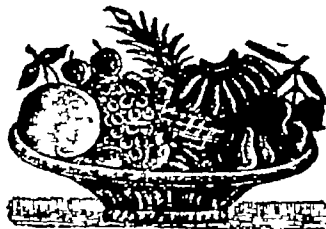
※यहाँ हमारा अभिप्राय केवल इस बात को ही सिद्ध करने का था कि उएश-उकेश-उपकेश शब्द जैनजातियों के साथ सर्वत्र व्यवहृत हुआ है। अतः उपरोक्त शिलालेखों के केवल उन्हीं शब्दों को नम्बरों के साथ दे दिया है क्योंकि समय का निर्णय तो हम आगे चल कर करेंगे।

जब कि वि०पू० एक शताब्दी में १८ गोत्र केवल पूना में स्थापित हुये थे तो संभव है कि इनके भशाखा भी उप केशपुर में तथा अन्य नगरों में और भी कई गोत्र होंगे परन्तु उन्हें जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है फिर भी हम यह तो दावे के साथ कह सकते हैं कि विक्रम की दूसरी तीसरी चौथी शताब्दी में उपकेशवंश के वीरों ने अनेक धर्म कार्य किये थे जो वंशावलियों में आज भी उपलब्ध होते हैं।

इत्यादि प्रमाणों से हेमवन्त पट्टावली विक्रम की दूसरी शताब्दी में लिखी गई हो तो उस समय ओसवाल वंश शिरोमणि पोलाक श्रावक के होने में सन्देह करने को कोई स्थान नहीं है। अब हम आगे चल कर और पट्टावलियें उद्धत कर देते हैं कि जिससे हेमवन्त पट्टावली पर और भी प्रकाश पड़े।

२—उपकेशगच्छीय पट्टावलियादि ग्रन्थ

अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनाँ ददतीँ उपरि रत्नचूड़ विद्याधरो नंदीश्वरे गच्छन् तत्र विमानं स्तंभितः। × गुरुणा धर्मदेशना तस्मैदीयादत्ता। क्रमेणाधातादशाङ्ग चतुर्दश पूर्वी बभूव,गुरुणा स्वपदे स्थापितः श्रीमत् वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशत्वर्षेआचार्यपदे स्थापितः पंचशतसाधुभिः सह धरीं विचरति × तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरि पंचशतशिष्य समेत लूणाद्री समायाति × मासकल्प आरभ्येस्थिता × सपादलक्षश्रावकानाँ प्रतिबोधकारक × प्रचुरायनाः श्रावकर्ताः प्रतिपन्ना। क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य वीरात् ८४ वर्षे स्वर्गगत : 　　उपकेशगच्छ पट्टावली १०४

एवं भगोप्यतां देवीं सर्वत्र विहरन् प्रभुः। सपादलक्ष श्राद्धानामविकंप्रत्यबोधयत्॥
　　उपकेशगच्छ चरित्र

श्रीमहावीरनिर्वाणात् द्विपंचाशति वत्सरे। गुरो द्वारिपदं प्राप्य स्वोऽष्टादशदशायनैः॥
उकेश-कोरण्टकयोः पुरयोस्थितलग्न शुभः। जिनस्य बिम्बे संस्थाप्य चामुण्डाँ प्रतिबोध्य च॥
सपादलक्षमधिकमद्भानाँ प्रतिबोध्य च। चारित्रं निरतीचारं पालयित्वा यथोदितम्॥
　　नाभिनन्दन जिनोद्धार पृ० ४२

रयणप्पभसूरिहिं उएसपुरे थप्पिओ उएसवंसं, संठविओ महावीरं वीरनिव्वाणाओ दुसयमी वरिसेहि सवुन्दे सग्ग संपत्तो तस्स पट्टघर जक्खदेवो मस्थ परिवुडो गणो सिन्ध भूमिओ अत्थ राव दवाड पुच कक्कादिविवसम्मे पिरिक्कमो॥　　उपकेशगच्छ प्राचीन लिखित

भगवान महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा के समय के विषय में देखिये—

यत्रास्ते वीरनिर्वाणात्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः। श्री मद्रत्नप्रभाचार्यैः, स्थापितं वीर मंदिरम्॥
　　"नाभिनन्दन जिनोद्धार"

उपकेशे च कोरंटे, तुल्यं वीर बिम्बयोः। प्रतिष्ठा निर्मिता यत्क्षणा, श्री रत्नप्रभसूरिभिः॥
　　उपकेशगच्छ पट्टावली"

इनके अलावा गंधहस्तीकृत तत्त्वार्थ भाष्य के सम्बन्ध में मध्यकालीन साहित्य में कहीं २ उल्लेख मिलता है जैसे "धर्मसंग्रहणीटीका" आदि में "यदाह गंधहस्ती-माणपानौ उच्छ्वास निश्वासौ" इत्यादि गंधहस्ती के ग्रन्थों के भी अवतरण दिये हुये मिलते हैं।

इससे स्पष्ट पाया जाता है कि पूर्व जमाने में गन्धहस्ती आचार्य ने जैनागमों पर विवरण जरूर लिखा था जिसको ओसवंशशिरोमणिश्रावकपोलक ने लिखवा कर जैनश्रमणों को स्वाध्याय करने के लिये समर्पण किया था

पोलाक के साथ ओसवंश शिरोमणि विशेषण स्पष्ट बतला रहा है कि उस समय मथुरा में इस वंश की संख्या विशेष थी तब ही तो पोलाक को ओसवंश शिरोमणि कहा है। जब हम ओसवंश की वंशावलियों को देखते हैं तो पता मिलता है कि उस समय मथुरा में जैनमंदिर बनाने एवं जैनाचार्य्यों की आग्रहपूर्वक विनती करके चतुर्मास करवाने वाले बहुत श्रावक बसते थे जो हम आगे चल कर बतलावेंगे। तथा आर्य्य स्कन्दिल ने वाचना जैसा वृहद् कार्य उसी मथुरा में प्रारंभकिया था अत' यहा जैनों की घन वसति हो इसमें शंका ही क्या हो सकती है।

प्रस्तुत पट्टावली में उपकेशवंश की उत्पत्ति के विषय में भी लिखा है कि.—

"भगवान महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष बाद पार्श्वनाथ की परम्परा के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभ ने उपकेशनगर में १८०००० क्षत्रिय पुत्रों को उपदेश देकर जैनधर्मी बनाया, वहाँ से उपकेश नामक वंश चला। 'जैनकाल गणना० पृष्ट १६५'

इस लेख से भी पाया जाता है कि वीरनिर्वाणात् ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर में उपकेशवंश की उत्पत्ति हुई थी

इसी प्रकार पं० हीरालाल हंसराज जामनगरवालों ने हेमचंद पट्टावली का आधार लेकर लिखा है –

"मथुरा निवासी अने श्रावकों मां उत्तम अने ऊसवस मां शिरोमणि एवा पोलाक नामना

---

†आदित्यनागगौत्र-चोरडिया शाखा में भैंसाशाह नाम के चार पुरुष हुए और चारों ही नामी हुए जैसे

१—वि० सं० २०९ में श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ का विराट्संघनिकाला जिसकावर्णन नागोरीजी ने एव डांगीजी ने अपने लेख में किया है

२—वि० सं० ५०८ में अटारू ग्राम में भैसाशाह ने जैनमन्दिर बनाया जिसका शिलालेख मुन्शी देवीप्रसादजी की शोधखोज से प्राप्त हुआ और मुन्शीजी ने ' राजपूताना की शोधखोज" नामक पुस्तक में विस्तार से मुद्रित भी किया है।

३—वि० सं० ११०८ में भैसाशाह हुआ। आपके अपार लक्ष्मी थी और गदियाणा नाम का सिक्का चलाने से आपकी सन्तान 'गदइया' नाम से प्रसिद्ध हुई, वे अद्यावधि विद्यमान हैं।

४—विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में नागोरशहर में भैंसाशाह हुआ जिसके वृद्ध भ्राता 'बालाशाह' ने नागौर में भगवान् ऋषभदेव का मन्दिर बनाया वह इस समय बड़ा मन्दिर के नाम से विद्यमान है।

जब कि वि०पू० एक शताब्दी में १८ गोत्र केवल पूजा में सामिल हुवे थे तो संभव है कि इनके अलावा भी उपकेशपुर में तथा अन्य नगरों में और भी कई गोत्र होंगे परन्तु उन्हें जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है फिर भी हम यह तो दावे के साथ कह सकते हैं कि विक्रम की दूसरी तीसरी चौथी शताब्दी में उपकेशवंश के वीरों ने अनेक धर्म कार्य किये थे जो शिलालेखों में आज भी उपलब्ध होते हैं।

इत्यादि प्रमाणों से हेमचन्द्र पट्टावली विक्रम की दूसरी शताब्दी में लिखी गई हो तो उस समय ओसवाल अग्रवाल पोरवाल श्रावक के होने में सन्देह करने को कोई स्थान नहीं है। अब हम आगे चल कर और पट्टावलियें उद्धृत कर देते हैं कि जिससे हेमचन्द्र पट्टावली पर और भी प्रकाश पड़े।

२—उपकेशगच्छीय पट्टावलियादि ग्रन्थ

अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनाँ ददतौं उपरि रत्नचूड विद्याधरो नंदीश्वरे गच्छन् तत्र विमानः स्तंभितः। × गुरुभ्या धार्मश्रुत्वा तस्मैदीक्षादत्ता। क्रमेणद्वादशांग चतुर्दश पूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापित' श्रीमत् वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशतवर्षेआचार्यपदे स्थापित' पंचशतसाधुभि' सह धरांविचरति × तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरि पंचशताशिष्य समेत लुणाद्री समागति × मासकल्प अरण्येस्थिता × सपादलक्षश्रावकानाँ प्रतिबोधकारक × प्रभुराज्ञमाः श्रावकत्वं प्रतिपन्ना। क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य वीरात् ८४ वर्षे स्वर्गगत :

उपकेशगच्छ पट्टावली १०८

एवं भवोप्यतां देवीं सर्वत्र विहरन् प्रभु'। सपादलक्ष श्राद्धानामधिकंप्रत्यबोधयत् ॥

उपकेशगच्छ चरित्र

श्रीमहावीरनिर्वाणात् द्विपंचाशति वत्सरे। गुरोः सूरिपदं प्राप्य ततोऽष्टादशवत्सरैः॥
उपकेश-कोरण्टकयोः पुरयोरेकलग्ने मुदा। जिनस्य बिम्बे संस्थाप्य चामुण्डाँ प्रतिबोध्य च॥
सपादलक्षमधिकभव्यानाँ प्रतिबोध्य च। चारित्रं निरतीचारं पालयित्वा यशोदिवम् ॥

नाभिनन्दन जिनोद्धार पृ० ४१

रयणप्पभसूरिहिं उपकेशपुरे चउम्मिसो उएसवंसं, संठविओ महावीरं कोरनिम्वाणमओ दुतसवी वरिसेहि समुत्ते सग्ग संपत्तो तस्स पट्टवर जक्खदेवों अवस पविट्ठो गयो सिन्ध भूमिओ तत्थ राय ददृट पुत्त कक्कज्झियकम्मे पिरिज्झओ ॥

उपकेशगच्छ प्राकृत पट्टावलि

भगवान महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा के समय के विषय में देखिये—

पञ्चास्ते वीरनिर्वाणात्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः। श्री मद्रत्नप्रभाचार्यैः, स्थापितं वीर मंदिरम् ॥

"नाभिनन्दन जिनोद्धार"

उपकेशे च कोरंटे, तुल्यं वीर बिम्बयो'। प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या, श्री रत्नप्रभसूरिभिः॥

"उपकेशगच्छ चरित्र"

सप्तत्यावत्सराणाँ चरमजिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षे ।
पंचम्यों शुक्लपक्षे सुर गुरू दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्त्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युतैः सर्व संघानुज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य विंबे भव शतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥

"उपकेशगच्छ चरित्र"

"उपकेशगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरियेंन उएशनगरे कोरंटनगरे च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वय कारणेन चमत्कारश्च दर्शिताः ।"

"कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कलिका टीका स्थविरावलि"

ततः श्रीमत्युपकेशपुरे, वीर जिनोशेतुः । प्रतिष्ठाँ विधिनाऽऽधाय श्रीरत्नप्रभसूरयः ॥
कोरंटकपुरंगत्वा व्योम मार्गेण विद्यया । तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठों विदधुर्वराम् ।
श्री महावीरनिर्वाणान्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः । उपकेशपुरे वीरस्य सुस्थिरा स्थापनाऽजनि ॥

'नाभिनन्दन जिनोद्धार"

इन पट्टावल्यादि ग्रन्थों से निश्चय होता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७०वर्षे श्रावण कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन उपकेशपुर में 'महाजनसंघ' की स्थापना करी और उसी वर्ष के माघ शुक्ल पंचमी के दिन शुभ मुहूर्त में शासनाधीश चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई । वे मन्दिर आज भी ओसियां एवं कोरंटपुर में विद्यमान हैं ।

विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्रीयक्षदेवसूरि जो पहले बतलाए जा चुके हैं । आप एक समय सोपारपट्टन में विराजते थे । उस समय वज्रस्वामी के पट्टधर वज्रसैनाचार्य ने चार शिष्यों को दीक्षा दी और वे सपरिवार सोपारपट्टण यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्यास के लिए आये । और वे शिष्यों को ज्ञानाभ्यास करवाने लगे । बीच में ही अकस्मात् आचार्य वज्रसैनसूरि का स्वर्गवास हो गया । बाद उन चारों शिष्यों को आचार्यश्री ने स्वशिष्यों से भी विशेष समझ कर खूब ज्ञानाभ्यास करवाया, इतना ही क्यों पर उन चारों मुनियों के बहुत से शिष्य करवा कर शुभ मुहूर्त्त में आगम विधि अनुसार क्रिया कल्प करवा कर वासक्षेप देकर सूरिपद से विभूषित किया, तत्पश्चात् उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का परमोपकार मानते हुए भूमंडल पर विहार किया ।

अहा ! हा ! पूर्व जमाने में जैनाचार्य्यों की कैसी वात्सल्यता ! कैसी उदारता !! और शासनप्रति कैसी शुभभावना !!! कि समुदाय या गच्छ का किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुये एक दूसरे को किस प्रकार सहायता करते थे जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है । यही कारण है कि जैनधर्म की सर्व प्रकार से उन्नति हो रही थी ।

अस्तु । वे चन्द्रादि चारों सूरीश्वर महान् प्रभाविक हुये कि उन चारों के नाम पर चार कुल अथवा चार शाखा प्रसिद्ध हो गई और उन चार कुल एवं शाखाओं में बड़े-बड़े धुरन्धर आचार्य हुए, जिन्होंने जैन-धर्म का खूब ही उद्योत किया । जैसे कि —

१— चन्द्रसूरि से चन्द्रशाखा—जिसमें सर्वदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, विजयहीरसूरि, आदि तथा बड़गच्छ तपागच्छ पूर्णतालगच्छ आदि ये सब चन्द्रकुल में हुये ।

त्यों २ उनके द्रव्य की पुष्कल वृद्धि होती रहेगी। केवल एक जगाशाह ने ही नहीं पर ऐसे तो सैंकड़ों हजारों उदार दानेश्वरी हुये हैं कि एक धर्म कार्य में लाखों नहीं पर करोड़ों द्रव्य व्यय किया था। वह जमाना तो जैनों के उत्कृष्ट अभ्युदय का था, पर आज गये गुजरे जमाने में भी जैनी लोग धर्म के नाम पर लाखों रुपये व्यय कर रहे हैं। सेठ कर्मचन्द नगीनचंद पाटण वालों के संघ में छ लक्ष, सेठ माणकलाल भाई अहमदाबादवालों के संघ में दश लक्ष, सेठ धारसी पोपटलाल जामनगर वालों के संघमें पांच लक्ष और संघपति पाँचूलालजी वैद्य मेहता फलोदी वालों के संघ में सवा लक्ष रुपये खर्च हुए थे। जब हम पाश्चात्य उदार गृहस्थों की ओर देखते हैं तो एक एक व्यक्ति विद्या प्रचार एवं धर्म प्रचार के लिये करोड़ करोड़ पौंड बात की बात में दे डालते हैं तो उस जमाने में इतना व्यय कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

वि० स० ११५ में उपकेशगच्छ में एक यक्षदेवसूरि नाम के महाप्रभाविक एवं दशपूर्वधर आचार्य हुये हैं जो आर्य वज्रस्वामी के समकालीन थे। आप सोपारपट्टन में विराजते थे उस समय आर्य वज्रसेन अपने नवदीक्षित चन्द्र, नागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर नामक चार शिष्यों को पढ़ाने के लिये सोपारपट्टण में आये चन्द्रादि चारमुनि किस वंश जति के थे, इस विषय का एक लेख उपाध्याय छगनलाल शान्तिलाल ने आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ के गुजराती विभाग पृष्ठ १०० पर प्रकाशित करवाया है जिसमें लिखा है कि:—

"आर्य वज्रसेन ने ( उक्कोसिया गोत्रना ) चार स्थविरों शिष्यों तरीके हता"

उपाध्यायजी यह 'उक्कोसिया' शब्द कहां से लाये होंगे ? यह खास कल्पसूत्र से ही लिया गया है। कारण, उकेस, उकेशी, उकेशिय वंश को ही शायद उक्कोसिया कहा हो तो असंभव भी नहीं है।

उक्केशिय और उक्कोसिया एक ही वन्श एव गोत्र का नाम हो तो नि शंक होकर कहना चाहिये कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशवंश के उदार वीरों का मथुरा में विस्तृत परिमाण में अस्तित्व था।

जब हम वंशावलियों की ओर देखते हैं तो उपकेशियवंश के बलाहगोत्र बापनागोत्र, चींचटगोत्र श्रेष्टि गोत्र और आदित्यनागादिगोत्र के कई उदार वीरों ने विक्रम की दूसरी तीसरी चौथी शताब्दी में मथुरा, आभापुरी, चंदेरी आदि नगरियों में जैन मन्दिर बनाने के प्रमाण मिलते हैं और यह बात असंभव भी नहीं है क्योंकि वि० पू० ९७ वर्ष अर्थात वीरात् ३७३ वर्षे उपकेशपुर में भगवान महावीर की मूर्ति के वक्षस्थल पर प्रतिष्ठा के समय जो दो ग्रन्थियें रह गई थी जिसको छेदन करवाने के लिये टाकी लगावे ही रक्त की धारा बहने लग गई थी अर्थात् बड़ा भारी उत्पात मच गया, उसकी शांति के लिये आचार्य कक्कसूरि की अध्यक्षता में वृहद् शान्ति स्नात्र पूजा पढ़ाई गई थी, उस समय १८ गोत्र वाले धर्मज्ञ लोग स्नात्रिये बने थे, जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार मिलता है।

"तप्तभट्टो[१]बप्पनाग[२], स्ततःकर्णाट[३] गोत्रजः। तुर्यो बलाभ्यो[४] नामाऽपि, श्रीश्रीमालः[५]पंचमस्तथा॥
कुलभद्रो[६] मेरिपश्च[७], विरिहिद्य[८] ह्ययोऽष्टमः। श्रेष्टि[९] गोत्राण्य मून्यासन् पक्षे दक्षिण संज्ञ के॥
सुचिन्तता[१]ऽऽदित्यनागौ[२], भूरि[३]र्भाद्रो[४]ऽथ चिंचटिः[५]। कुंभट[६]: कान्यकुब्जो[७]ऽथ डिड्डभाख्यो[८]ऽष्टमोऽपिच॥
तथाऽन्यः श्रेष्टि[९] गोत्रीयो, महावीरस्य वामतः। नव तिष्ठन्ति गोत्राणि, पंचामृत महोत्सवे॥

"उपकेश गच्छ चरित्र"

इसमें ९ गोत्र वाले प्रभु प्रतिमा के दायें और ९ स्नात्रिये जीमणी ओर पूजापा लेकर खड़ा होना लिखा है

सप्तत्यावत्सराणों चरमजिनपतेर्भुक्त जातस्य वर्षे।
पंचम्यों शुक्लपक्षे सुर गुरू दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्त्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युतैः सर्व संघानुज्ञातैः।
श्रीमद्वीरस्य विंबे भव शतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥

"उपकेशगच्छ चरित्र"

"उपकेशगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरियेंन उएशनगरे कोरंटनगरे च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वय कारणेन चमत्कारश्च दर्शिताः।"

"कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कलिका टीका स्थविरावलि"

ततः श्रीमत्युपकेशपुरे, वीर जिनोशेतुः। प्रतिष्ठों विधिनाऽऽधाय श्रीरत्नप्रभसूरयः॥
कोरंटकपुरंगत्वा व्योम मार्गेण विद्यया। तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठों विदधुर्वराम्।
श्री महावीरनिर्वाणान्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः। उपकेशपुरे वीरस्य सुस्थिरा स्थापनाऽजनि॥

"नाभिनन्दन जिनोद्धार"

इन पट्टावल्यादि ग्रन्थों से निश्चय होता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७०वर्षे श्रावण कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन उपकेशपुर में 'महाजनसंघ' की स्थापना करी और उसी वर्ष के माघ शुक्ल पंचमी के दिन शुभ मुहूर्त में शासनाधीश चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। वे मन्दिर आज भी ओसियां एवं कोरंटपुर में विद्यमान हैं।

विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्रीयक्षदेवसूरि जो पहले बतलाए जा चुके हैं। आप एक समय सोपारपट्टन में विराजते थे। उस समय वजूस्वामी के पट्टधर वज्रसेनाचार्य ने चार शिष्यों को दीक्षा दी और वे सपरिवार सोपारपट्टण यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्यास के लिए आये। और वे शिष्यों को ज्ञानाभ्यास करवाने लगे। बीच में ही अकस्मात् आचार्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। बाद उन चारों शिष्यों को आचार्यश्री ने स्वशिष्यों से भी विशेष समझ कर खूब ज्ञानाभ्यास करवाया, इतना ही क्यों पर उन चारों मुनियों के बहुत से शिष्य करवा कर शुभ मुहूर्त में आगम विधि अनुसार क्रिया कल्प करवा कर वासक्षेप देकर सूरिपद से विभूषित किया, तत्पश्चात् उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का परमोपकार मानते हुए भूमण्डल पर विहार किया।

अहा! हा! पूर्व जमाने में जैनाचार्य्यों की कैसी वात्सल्यता! कैसी उदारता!! और शासनप्रति कैसी शुभभावना!!! कि समुदाय या गच्छ का किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुये एक दूसरे को किस प्रकार सहायता करते थे जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। यही कारण है कि जैनधर्म की सर्व प्रकार से उन्नति हो रही थी।

अस्तु। वे चन्द्रादि चारों सूरीश्वर महान् प्रभाविक हुये कि उन चारों के नाम पर चार कुल अथवा चार शाखा प्रसिद्ध हो गई और उन चार कुल एवं शाखाओं में बड़े-बड़े धुरन्धर आचार्य हुए, जिन्होंने जैन-धर्म का खूब ही उद्योत किया। जैसे कि:—

१—चन्द्रसूरि से चन्द्रशाखा—जिसमें सर्वदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, विजयहीरसूरि, आदि तथा बड़गच्छ तपागच्छ पूर्णतालगच्छ आदि ये सब चन्द्रकुल में हुये।

२—नागेन्द्रसूरि से नागेन्द्रकुल-जिसमें उदयप्रभसूरि मल्लिषेणसूरि आदि कई महाप्रभाविक आचार्य हुए जिन्होंने लाखों अजैनों को जैन बना कर जैन संख्या की वृद्धि की।

३—निवृत्तिसूरि से निवृत्ति कुल-जिसमें शीलांगाचार्य, द्रोणाचार्य, सुराचार्य गर्गाचार्य आदि धुरन्धर आचार्य हुए जिनके चरणकमलों में अनेक भूपति सिर झुकाते थे।

४—विद्याधरसूरि से विद्याधरकुल-जिसमें १४४४ ग्रन्थों के रचयिता आचार्य हरिभद्रसूरि आदि महाप्रभाविक आचार्य हुए। जो जैन जैनेतर लोगों में खूब मशहूर हैं।

इस विषय का उल्लेख उपकेशगच्छपट्टावली में इस प्रकार मिलता है।

"एवं अनुक्रमेण श्रीवीरात् ५८५ वर्षे श्रीयक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकर्त्ता, द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षमध्ये वज्रस्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरौ परलोक प्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चतस्रः शाखाः स्थापिता "इत्यादि।"　　　　उपकेश गच्छ पट्टा० १४१

भावार्थ—श्रीवीर के निर्वाणकाल से ५८५ वर्ष बीतने पर महाप्रभाविक श्रीयक्षदेवसूरि आचार्य हुये। इस समय दुर्भिक्षवश १२ वर्ष का अकाल पड़ने पर वज्रस्वामी के शिष्य श्री वज्रसेनसूरि के परलोक प्रयाण करने पर श्रीयक्षदेवसूरि ने चार शाखायें स्थापित की जिसका वर्णन ऊपर लिखा जा चुका है।

इनके अलावा उपकेशगच्छ चरित्र में भी इस विषय का उल्लेख मिलता है।

तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्गुणधियां निधिः । दशपूर्वधरो वज्रस्वामीयुग्मसमयदा ॥
दुर्भिक्षे द्वादशवर्षीये, जनसंहारकारिणी । वर्तमानेऽन्नाशनेन, स्वर्गेऽगुर्बहुसाधवः ॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलिताम् मुनीन् । अमेलयन्यक्षदेवा, चार्याश्चन्द्रगणे तथा॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रव्राजनाविधौ । आम्नायो चास निक्षेपं, चन्द्रगच्छः प्रसिद्धिर्वै ॥
गणः कोटिकनामापि, वज्रशाखाऽपिसंमता । चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन्, साम्प्रतं कथ्यते तदा॥
एतानि पंच मापूनां, पुनगच्छेऽपिमितविधि । एतानि सप्त साध्वीनां,तथोपाध्याय सप्तकम् ॥
दशश्रीवाचनाचार्या, अत्वारो गुरवस्तथा । प्रवर्तकौ द्वावभूतां, तथैवोभे महत्तरे ॥
द्वादशस्तु मनस्विन्यः, सुमीति द्वौ महत्तरौ । मिलितौ चन्द्रगच्छान्ता सद्रूपेण कथ्यते गणे ॥
　　　　"उपकेशगच्छ चरित्र"

अर्थ—दशपूर्वधर आचार्य वज्रसूरि के सदृश अनेक गुणनिधि आचार्य यक्षदेवसूरि भूमंडल पर विहार करते थे उस समय बारह वर्षीय जनसंहार करने वाला भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिए मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे तो साधुओं के लिए भिक्षा का प्रश्न ही क्या था ? यदि कहीं मिल भी जाय तो मुख से छीनने कौन देता ? उस भयंकर दुष्काल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जाते तो भिक्षुक उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे। इस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशनपूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे हुए मुनियों ने ज्यों-त्यों कर उस दुष्काल रूपी अटवी का उल्लंघन किया। जब वज्रसूरि के पट्टधर वज्रसेन के निमित्त ज्ञान से अकाल के बाद सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि (वज्रसूरि चार-पूर्वों को पढ़ाने वाले) ने रहे हुए साधुओं को एकत्र किये तो ५० साधु, ७ साध्वियां, ७ उपाध्याय,

सप्तत्यावत्सराणां चरमजिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षे ।
पंचम्यां शुक्लपक्षे सुर गुरू दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युतैः सर्व संघानुज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भव शतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥ "उपकेशगच्छ चरित्र"

"उपकेशगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरियेंन उएशनगरे कोरंटनगरे च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वय कारणेन चमत्कारश्च दर्शिताः ।" "कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कलिका टीका स्थविरावलि"

ततः श्रीमत्युपकेशपुरे, वीर जिनेशितुः । प्रतिष्ठां विधिनाऽऽधाय श्रीरत्नप्रभसूरयः ॥
कोरंटकपुरंगत्वा व्योम मार्गेण विद्यया । तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठां विदधुर्वराम् ।
श्री महावीरनिर्वाणात्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः । उपकेशपुरे वीरस्य सुस्थिरा स्थापनाऽजनि ॥
'नाभिनन्दन जिनोद्धार"

इन पट्टावल्यादि ग्रन्थों से निश्चय होता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७०वर्षे श्रावण कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन उपकेशपुर में 'महाजनसंघ' की स्थापना करी और उसी वर्ष के माघ शुक्ल पचमी के दिन शुभ मुहूर्त में शासनाधीश चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। वे मन्दिर आज भी ओसियां एवं कोरंटपुर में विद्यमान हैं।

विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्रीयक्षदेवसूरि जो पहले बतलाए जा चुके हैं। आप एक समय सोपारपट्टन में विराजते थे। उस समय वज्रस्वामी के पट्टधर वज्रसेनाचार्य ने चार शिष्यों को दीक्षा दी और वे सपरिवार सोपारपट्टण यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्यास के लिए आये। और वे शिष्यों को ज्ञानाभ्यास करवाने लगे। बीच में ही अकस्मात् आचार्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। बाद उन चारों शिष्यों को आचार्यश्री ने स्वशिष्यों से भी विशेष समझ कर खूब ज्ञानाभ्यास करवाया, इतना ही क्यों पर उन चारों मुनियों के बहुत से शिष्य करवा कर शुभ मुहूर्त में आगम विधि अनुसार क्रिया कल्प करवा कर वासक्षेप देकर सूरिपद से विभूषित किया, तत्पश्चात् उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का परमोपकार मानते हुए भूमंडल पर विहार किया।

अहा! हा! पूर्व जमाने में जैनाचार्य्यों की कैसी वात्सल्यता! कैसी उदारता!! और शासनप्रति कैसी शुभभावना!!! कि समुदाय या गच्छ का किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुये एक दूसरे को किस प्रकार सहायता करते थे जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। यही कारण है कि जैनधर्म की सर्व प्रकार से उन्नति हो रही थी।

अस्तु। वे चन्द्रादि चारों सूरीश्वर महान् प्रभाविक हुये कि उन चारों के नाम पर चार कुल अथवा चार शाखा प्रसिद्ध हो गई और उन चार कुल एवं शाखाओं में बड़े-बड़े धुरन्धर आचार्य हुए, जिन्होंने जैन-धर्म का खूब ही उद्योत किया। जैसे कि .—

१—चन्द्रसूरि से चन्द्रशाखा—जिसमें सर्वदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, विजयहीरसूरि, आदि तथा बड़गच्छ तपागच्छ पूर्णतालगच्छ आदि ये सब चन्द्रकुल में हुये।

वाचनाचार्य ४ गुरु ( आचार्य ),२ प्रवर्तक, २ महत्तर ( पदविशेष ) १२ प्रवर्तनी,२ महत्तरिका इत्यादि सबको शामिल मिला कर गच्छ मर्यादा बांध दी कि इस चंद्रकुल में आजसे यदि किसी को दीक्षा दी जाय अथवा श्रावक को समकित या व्रत उच्चाराया जाय उस समय वासक्षेप दिया जाता है उस समय कोटिक गण वज्रीशाखा और चद्रकुल के नाम लिये जायंगे इत्यादि । यह मर्याद। चंद्रकुल की परम्परा में अद्यावधि विद्यमान है ।

इस प्रमाण से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छ के अन्दर बड़े २ विद्वान् मुनि और यक्षदेवसूरि सरीखे पूर्वधर आचार्य विद्यमान थे, इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है ।

इस विषय में आचार्य विजयानन्द सूरीश्वरजी अपने जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ के पृष्ठ ७७ पर आचार्य यक्षदेवसूरि द्वारा चद्रादिक चार कुलों की थापना होना बतलाया है जो इसी निबन्ध में आप श्री के किये हुये प्रश्नोत्तरों को ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिया जायगा ॥

## ३ कोरटगच्छीय पट्टावली आदि ग्रन्थ

वीर निर्वाणात् ७० वें वर्षे आचार्यरत्नप्रभसूरि उपकेशपुर नगर में आव्या । उठे आहार पाणी रों जोग नहीं मिल्यो तरे कनकप्रभादि ४६१ साधु विहार करने कोरंटपुर में चौमासो किधो । ज्यारे मुनिवर ना उपदेश सु कोरटपुर में महावीरजी रो एक मन्दिर बणायो । उठीने रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर का राजा उपलदेव तथा मंत्रीऊहड़ और सवालक्ष राजपूतों ने जैनधर्म के श्रावक बनाया और मंत्रीऊहड़ ने महावारस्वामी रो मन्दिर बनायो उण वखत कोरंटपुर का संघ रत्नप्रभसूरि री विनती करणने उपकेशपुर गयो तरे रत्नप्रभसूरि कह्यो के अठे पण महावीरजी रा मन्दिर री प्रतिष्ठा करवाणी है जिणरो मुहुर्त्त माघ शुद्ध ५ रो है ने थारों उठारा मन्दिर को मुहुर्त्त पण माघ शुद्ध ५ को है । पण सघरा आग्रे से रत्नप्रभसूरि हामल भरी । पछे मुहूर्त्त पर दोय रूप बना कर एक सुं उपकेशपुर दूसरा से कोरंटपुर में प्रतिष्ठा कराई तिके दोनोंई मन्दिर आज सुधी ऊभा छे इत्यादि ।

कोरटपुर की हस्तलिखित पट्टावली पन्ना ३

आचार्य विजयानन्दसूरिजी महाराज फर्माते हैं कि :—

तथा अयरणपुर की छावनी से ६ कोस के लगभग कोरंट नाम नगर उज्जड़ पड़ा है जिस जगा कोरटानामें आज के काल में गाँव बसता है तहा भी श्री महावीरजी की प्रतिमा मन्दिर की श्री रत्नप्रभसूरिजी की प्रतिष्ठा करी हुई अब विद्यमान काल में सो मन्दिर खड़ा है ।"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रन्थ पृष्ठ ८१'

कोरटगच्छ के विषय तो पाठक आचार्यरत्नप्रभसूरि के जीवन में पढ़ आये हैं कि कोरंटगच्छ की उत्पत्ति कोरंटपुर में आचार्यकनकप्रभसूरि से ही हुई है जिसकी प्रमाणिकता के लिए 'प्रभावक चरित्र' में एक देवचन्द्रोपाध्याय का उदाहरण मिलता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में कोरटपुर के महावीर मन्दिर में देवचन्द्रोपाध्याय रहता था जिसको सर्वदेवसूरि ने चैत्यवास छुड़ा कर उग्र विहारी वनाया इत्यादि । जैसे कि —

तत्र कोरंटकं नाम पुर मस्त्युन्नता श्रयम् । द्विजिह्व विमुखायत्र विनता नन्दना जनाः ॥
तत्राऽस्ति श्री महावीर चैत्यं चैत्यं दधद् दृढम । कैलाश शैलवद्भाति सर्वाश्रय तयाऽन्यया ॥
उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्रीदेवचन्द्र इति श्रतः । विद्वद्वृन्द शिरोरत्न तमस्ततिहारो जनैः ॥

१९

समा०—यह समाज नहीं पर संघ का व्यवस्थित रखने की सुन्दर व्यवस्था थी और जब तक उन दूरदर्शी आचार्यों की व्यवस्था ठीक तरह से चलती रही तब तक समाज में अच्छी शान्ति रही। बाद में नये नये मत पंथ एवं गच्छ पैदा हुये और उन्होंने उन शासन शुभचिंतकों की व्यवस्था को तोड़-फोड़ कर टुकड़ों में विभाजित कर दी। बस उस दिन से ही जैन समाज के दिन बदल गये और गच्छ भेद का झगड़ा पैदा होगया। अतः उन दूरदर्शी आचार्यों की व्यवस्था ममत्व भाव की नहीं पर शासन को व्यवस्थित रखने की ही थी।

२—दूसरी एक घटना ऐसी भी लिखी है कि भिन्नमाल के राजा भाण के बहुत रानियें होने पर भी उसके कोई संतान नहीं थी तब एक निमित्त शास्त्र के वेत्ता से पूछा तो उसने अपने निमित्त ज्ञान से कहा कि उपकेशपुर में ओसवाल जाति का जगमाल सेठ है उसकी कन्या रत्नाबाई जो कि बहुत शुभ लक्षण है उसके साथ राजा का विवाह हो तो राजा के सन्तान हो सकती है। राजा भाण ने मंत्रियों से रत्ना बाई की याचना की, पर सेठ साहब ने इन्कार कर दिया। तब राजा ने एक वैश्या को धन का लोभ देकर उपकेशपुर भेजी। उसने रत्नाबाई से गुप्त बात की पर रत्नाबाई ने कहा कि यदि राजा के साथ मेरी शादी हो जाय और शायद मेरे पुत्र भी हो जाय परन्तु दूसरी रानियों के पुत्र होगा तो राज का मालिक वह होगा तो फिर मेरे पुत्र की और मेरी क्या दशा होगी, अतः राजा इस बात को स्वीकार करें कि मेरे पुत्र हो तो राज्याधिकार उसको ही दिया जाय दूसरे को नहीं तो मैं शादी करने को तैयार हूँ। वैश्या ने राजा के पास आकर सब हाल निवेदन किया जिसको राजा ने स्वीकार कर लिया क्योंकि गरजवान क्या नहीं करता है। बस राजा रूप बदल कर वैश्या के साथ उपकेशपुर गया और रत्नाबाई को गुप्तरूप से लेकर भिन्नमाल आया और बड़े ही समारोह से उसके साथ शादी करली। जगडू चरित्र टब्बा

इस घटना से पाया जाता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर उपकेशवंशियों से भरा पूरा आबाद था।

६—जैन धर्म का प्राचीन इतिहास

श्रीमहावीर स्वामीना निर्वाण पछी सीत्तेर वर्ष बाद श्री पार्श्वनाथ संतानी मां छट्ठी पाटे श्रीरत्नप्रभसूरि नामे आचार्य थया। तेमणे उपकेशपट्टण नामना नगरमां श्रीमहावीरस्वामीनी मूर्ति-मानी प्रतिष्ठा करी। तथा ओस्या नगरीमा क्षत्रियनी जातिओने प्रतिबोधीने ओशवालोनी स्थापना करी, अने भीमाल नगर मां श्रीमालियोनी स्थापना करी। जैन इतिहास एम्पायर भाग १ पृष्ठ ६८

७—भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास लेखक त्रिभुवनदास लेहरचन्द बड़ौदा वालों का मत है कि—

२३ मां तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ संतानीयामां छट्ठी पेढीमें थयेला रत्नप्रभसूरि नामना आचार्य हता तेमणे लाखोनी संख्यामां जैनो बनाव्या हता।" प्राचीन भारतवर्ष भाग तीजा पृ० १

ओसवालों की उत्पत्ति पोरवालों के समकालीन हुई है। जब पोरवालों के अस्तित्व का प्रमाण मंत्री विमल के पूर्वज नेढ़ी नामक का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी और उसके का समय विक्रम की पहिली शताब्दी का मिलता है तब ओसवाल जाति को ही अर्वाचीन क्यों मानी जाय अर्थात् ओसवाल जाति का समय वि० पू० ४०० वर्ष का मानना न्यायसंगत ही है इसी प्रकार श्रीमाली जाति के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है कि वि० सं० ७९५ में आचार्य उदयप्रभसूरि ने श्रीमाल के ९० कोटिधीशों को जैन बना

इसी प्रकार जैन श्वे० कान्फ्रेंस हेरल्ड अखबार पृष्ठ ३३० में मुद्रित तपागच्छ की पट्टावली में भी आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवंश की उत्पत्ति लिखी है।

५—आंचलगच्छ पट्टावली

पार्श्वनाथजीनी पाटे छट्ठा आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिजी के उपकेशपट्टन मां महावीर स्वामि नी प्रतिमा नी प्रतिष्ठा करी तथा ओशयां नगरी मा ओशवालों नी तथा श्रीमाल नगरमा श्रीमाली नी स्थापना करी।

हीरालाल हंसराज कृत जैनधर्म का इतिहास पृष्ठ १४०

श्री महावीर प्रभु थी सीत्तेर वर्षों गया बाद श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी छट्ठी पाटे स्थविर श्रीरत्नप्रभनामना आचार्य थया। तेमणे उपकेश नगर मां अेक लाख अेसी हजार क्षत्रिय पुत्रों ने प्रतिबोध्या, अने तेओने जैन धर्म स्वीकारवा थी तेओने तेमणे उपकेश (ओसवाल) नामना वंशमां स्थाप्या। आंचलगच्छ मोटी पट्टावली पृष्ठ ५

प० हीरालाल हंसराज जामनगर वालों ने आंचलगच्छ बड़ी पट्टावली का गुजराती भाषान्तर किताब के पृष्ट ७८ पर कुछ ऐतिहासिक घटनायें लिखी हैं जिसके अन्दर से कुछ सार हिन्दी में यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

१—भिन्नमाल नगर के राजा भाण ने जब शत्रुञ्जय का संघ निकालने की तैयार की तो प्रस्थान के समय संघपति के तिलक करने के विषय एक ऐसा मतभेद खड़ा हुआ कि राजा भाण के प्रतिबोधक गुरु तो उदयप्रभसूरि थे और इनके ससार पक्ष के काका ने दीक्षा ली उनका नाम सोमप्रभसूरि था। सोमप्रभसूरि ने अपने भतीजपने का हक लगा कर तिलक करना चाहा पर अन्य बहुत आचार्यों की सम्मति से यह निर्णय हुआ कि संघ प्रस्थान का तिलक एव वासक्षेप उदयप्रभसूरि ही दे सकेंगे क्योंकि राजा भाण को धर्मबोध उदयप्रभसूरि ने ही दिया था।

इस निर्णय के पश्चात भी सब आचार्यों की सम्मति से एक लिखित कर लिया कि जिस आचाय के प्रतिबोधक श्रावकसंघ निकालें या मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करावें तो उस कार्य्य में उन आचार्य तथा उनकी संतान का ही प्रधानत्व रहेगा जिन्होंने उनके तथा उनके पूर्वजों को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाया इत्यादि। इस लिखित में हस्ताक्षर करने वाले आचार्य्यों के नाम इस प्रकार लिखे हैं। १—नागेन्द्रगच्छीय सोमप्रभाचार्य २—ब्राह्मणगच्छीय जिज्जगसूरि ३—उपकेशगच्छीयसिद्धसूरि ४—निर्वृत्तिगच्छीय महेन्द्रसूरि ५—विद्याधरगच्छीयहरियाणादसूरि ६—सांडेरागच्छीयईश्वरसूरि ७—बृहद्‌गच्छीयउदयप्रभसूरि ८—आहदसूरि ९—आर्द्रसूरि १०—जिनराजसूरि ११—सोमराजसूरि १२—राजहंससूरि १३—गुणराज सूरि १४—पूर्णभद्रसूरि १५—हसतिलकसूरि १६—प्रभारत्नसूरि १७—रगराजसूरि १८—देवरत्नसूरि १९—देवाणंदसूरि २०—महेश्वरसूरि २१—ब्रह्मसूरि २२—विनोदसूरि २३—कर्मराजसूरि २४—तिलकसूरि २५—जयसिंहसूरि २६—विजयसिंहसूरि २७—नामिगसूरि २८—भीमराजसूरि २९—जयतिलकसूरि ३०—चंद्रहंससूरि ३१—वीरसिंहसूरि ३२—रामप्रभसूरि ३३—श्रीकर्णसूरि ३४—विजयचंद्रसूरि तथा ३५—अमृतसूरि।

इनके अलावा राजा भाण तथा श्रीमाली जोगा, राजपूर्ण और श्रीकर्णआदि सब अग्रेश्वरों के भी हस्ताक्षर करवाये गये थे, अत यह मर्यादा चिरकाल तक पालन की गई थी और सघ में अच्छी शान्ति भी बनी रही थी।

तर्क—उस समय के आचार्यों को श्रावकों के लिये इतना ममत्व था कि जिसके लिये लिखित बनाना पड़ा।

माहेश्वरी, वैश्य और ब्राह्मण जाति वालों को प्रतिबोध देकर ( अर्थात् ऊपर कहे हुए महाजनवंश का विस्तार कर ) उनके महाजनवंश और अनेक गोत्रों को स्थापन किया है।"

इसी प्रकार खरतरगच्छीय यति रामलालजी ने अपनी 'महाजनवंशीय मुक्तावली' नामक किताब में लिखा है कि वीर निर्वाण से ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाराज उत्पलदेव आदि क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन श्रावक बनाये जिनके १८ गोत्रों का नाम ऊपर यति श्रीपालजी के लेखानुसार ही लिखा है तथा खरतरगच्छीय मुनि चिदानन्दजी ने अपने स्याद्वादानुभव रत्नाकर नाम की पुस्तक में भी इसी आशय का लेख लिखा है।

खरतरगच्छीय श्रीयुत आनन्दसागरजी ने अपने कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ४१७ पर लिखा है कि "इसी तरह उपकेशगच्छ में ओसवंश स्थापक श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर हुए जिन्होंने अपनी लब्धि से दो रूप करके ओसियाँ और कोरंटनगर में समकाल प्रतिष्ठा कराई"।

९—स्थानकवासी समुदाय के मुनि श्री मणिलाल ने "जैनधर्मनोप्राचीनसंक्षिप्त इतिहास अने प्रभु वीर पट्टावली" नामक एक गुर्जर भाषा की पुस्तक लिखी है जिसके पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि:—

"महावीर स्वामीना निर्वाण पछी सित्तरे वर्षे बाद श्रीपार्श्वनाथभगवान ना शासन मां छट्ठी पाटे "श्रीरत्नप्रभ" नामे आचार्य थया तेमणे "ओसीया" नामनी नगरी मां क्षत्रिय जाति ने प्रतिबोध आपी श्रावको बनाव्या त्यारे ओसवालों नी स्थापना थई, अने "श्रीमाल" नगर मां श्रीमाली ओनी स्थापना थई, एम श्री जैनधर्म विद्या प्रसारक वर्ग तरफ थी बहार पडेल "जैन इतिहास" नामक ग्रन्थ मांथी उल्लेख मली आवे छे, महावीर स्वामी ना समय मां पण श्री पार्श्वनाथ भगवानना "संतानियां" संघो विचरता हता, ते श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां आवेला श्री पार्श्वनाथ शासनना श्रीकेशीस्वामी अने प्रभु वीरना शासन ना श्री गौतम स्वामी बे बंने वच्चे थएल चर्चा आदि वातचीत आवेला संवाद पर थी सिद्ध थाय छे। आ उत्पत्ति बाबतनो बहु उल्लेख दृष्टिगोचर थयो नथी; पण समय परत्वे अनुसंधान विचारतां आ हकीकत केटलेक अंशे सत्य होवानुं मानी शकाय।

इस प्रकार और गच्छों की पट्टावल्यादि ग्रन्थों में ओसवाल उत्पत्ति विषयक उल्लेख होना संभव होता है क्योंकि यह एक प्रसिद्ध बात है कि जहाँ ओसवाल पोरवाल और श्रीमालों का प्रसंग आता है वहाँ इस बात को अवश्य लिखते हैं। आज हम सामयिक पत्र पत्रिकाओं और रासकगीतों को पढ़ते हैं तो इस विषय के अनेक लेख मिलते हैं। अतः इस विषय के ज्यों ज्यों पट्टावल्यादि ग्रन्थ मिलते जावेंगे त्यों त्यों विषय पर प्रकाश पड़ता जायगा।

उपरोक्त पट्टावल्यादि ग्रन्थ साधारण व्यक्तियों के लिखे हुये नहीं हैं परन्तु हमारे परमपूज्य प्राचीन आचार्यों के लिखे हुये हैं कि जिनपर हमारा अटल विश्वास है। अतः कोई कारण नहीं कि हम इन प्रमाणों में किसी प्रकार की शंका करें क्योंकि उन महाव्रतधारी सत्यवक्ता, निस्पृही आचार्यों को गलत लिखने में कोई भी स्वार्थ नहीं था। अतः इन पट्टावल्यादि के प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति का वि० पू० ४०० वर्ष मानना न्याय संगत और युक्तियुक्त है।

कर पूर्व स्थापित श्रीमाल ज्ञाति में मिला दिया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रीमालज्ञाति के समकालीन ओसवाल जाति ही इतनी ही प्राचीन है कि जितनी श्रीमाल जाति प्राचीन है।

८—खरतरगच्छीय यतिवर्य श्रीपालजी ने अपनी 'जैनसम्प्रदाय शिक्षा' नामक किताब के पृष्ट ६०७ पर ओसवालोत्पत्ति के विषय में लिखा है कि:—

चतुर्दश (चौदह) पूर्वधारी, श्रुतकेवली, लब्धिसंयुक्त, सकलगुणों के आगर, विद्या और मंत्रादि के चमत्कार के भंडार, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय, एवं समस्त आचार्यगुणों से परिपूर्ण, उपकेशगच्छीय जैनाचार्य्य श्रीरत्नप्रभसूरिजी महाराज पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करते हुये श्री आबूजी अचलगढ़ पधारे थे, उनका यह नियम था कि वे (उक्त सूरिजी महाराज) मासक्षमण से पारणा किया करते थे, उनकी ऐसी कठिन तपस्या को देख कर अचलगढ़ की अधिष्ठात्री अम्बादेवी प्रसन्न होकर श्री गुरु महाराज की भक्त हो गई, अत: जब उक्त महाराज ने वहाँ से गुजरात की तरफ विहार करने का विचार किया तब अम्बादेवी ने हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना की कि—"हे परमगुरो! आप मरुधर (मारवाड़) देश की तरफ विहार कीजिये, क्योंकि आपके उधर पधारने से दयामूल धर्म (जिनधर्म) का उद्योत होगा" देवी की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने उपयोग देकर देखा तो उनको देवी का उक्त वचन ठीक मालूम हुआ।

आगे यतिजी लिखते हैं कि रत्नप्रभसूरि एक शिष्य के साथ उपकेशपुर में पधारे। देवी से रूई मंगा कर सांप बनाया और राजा के कुँवर को कटाया बाद उसका विष उतार का राजाप्रआदि नगर निवासियों को धर्मोपदेश दिया इसको यतीजी ने बहुत विस्तार से लिखा है साथ में दो छप्पय भी दिए हैं, जिस में एक तो किसी भाटों का अर्वाचीन कल्पित है और प्राचीन पट्टावलियों से मिलता जुलता है जो कि:—

वर्द्धमान तणें पछै बरष बावन पद लीधो । श्रीरत्नप्रभसूरि नाम तासु सत गुरु व्रत दीधो ॥
भीनमाल सुं ऊठिया जाय ओसियाँ बसाया । क्षत्रि हुआ शाख अठारा उठै ओसवाल कहाया ॥
इक लाख चौरासी सहस घर राजकुली प्रतिबोधिया। रत्नप्रभसूरि ओस्याँ नगर ओसवाल जिण दिन किया + ॥१॥

उस समय श्री रत्नप्रभसूरि महाराज ने ऊपर कहे हुए राजपूतों की शाखाओं का महाजन वश और अठारह गोत्र स्थापित किये थे जो कि निम्नलिखित हैं:—

१ तातहड़गोत्र, २ बाफणागोत्र, करणाट ३ बलहारागोत्र, ५ मोराक्षगोत्र, ६ कुलहटगोत्र ७ विरहटा गोत्र, ८ श्री श्रीमालगोत्र ९ श्रेष्ठीगोत्र, १० सुचिंतीगोत्र, ११ आईचनागगोत्र, १२ भूरि (भटेवरा) गोत्र, १३ भाद्रगोत्र, १४ चींचटगोत्र, १५ कुमटगोत्र, १६ डिंडूगोत्र, १७ कनौजगोत्र १८ लघुश्रेष्ठिगोत्र।

इस प्रकार ओसियां नगरी में महाजनवश और उक्त १८ गोत्रों की स्थापना कर श्री सूरिजी महाराज विहार कर गये और इसके पश्चात् १० वर्ष के पीछे पुन लक्खीजगल नामक नगर में सूरिजी महाराज विहार करते हुए पधारे और उन्होंने राजपूतों के दशहजार घरों को प्रतिबोध देकर उनका महाजनवश और सुघड़ादि बहुत से गोत्र स्थापित किये।

प्रिय वाचकवृन्द! इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सबसे प्रथम महाजनवंश की स्थापना जैनाचार्य्य श्री रत्नप्रभसूरिजी महाराज ने की, उसके पीछे वि० सं० सौलहसौ तक बहुत से जैनाचार्यों ने राजपूत

+ दूसरा कवित्त की समालोचना आगे के पृष्टों में की गई है। अतः यहां नहीं लिखी है।

माहेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण जाति वालों को प्रतिबोध देकर ( अर्थात् ऊपर कहे हुए महाजनवंश का विस्तार कर ) उनके महाजनवंश और अनेक गोत्रों को स्थापन किया है ।"

इसी प्रकार खरतरगच्छीय यति रामलालजी ने अपनी 'महाजनवंशीय मुक्तावली' नामक किताब में लिखा है कि वीर निर्वाण से ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाराज उत्पलदेव आदि क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन श्रावक बनाये जिनके १८ गोत्रों का नाम ऊपर यति श्रीपालजी के लेखानुसार ही लिखा है तथा खरतरगच्छीय मुनि चिदानन्दजी ने अपने स्याद्वादानुभव रत्नाकर नाम की पुस्तक में भी इसी आशय का लेख लिखा है ।

खरतरगच्छीय पीरपुत्र आनन्दसागरजी ने अपने कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ४६७ पर लिखा है कि "इसी तरह उपकेशगच्छ में ओसवंश स्थापक श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर हुए जिनने अपनी शक्ति से दो रूप करके ओसियाँ और कोरंटनगर में समकाल प्रतिष्ठा कराई"।

९—स्थानकवासी समुदाय के मुनि श्री मणिलालजी ने "जैनधर्मनोप्राचीनसंक्षिप्त इतिहास अने प्रभु वीर पट्टावली" नामक एक गुर्जर भाषा की पुस्तक लिखी है जिसके पृष्ठ ७२ पर लिखा है कि:—

"महावीर स्वामीना निर्वाण पछी सित्तरे वर्षे बाद श्रीपार्श्वनाथभगवानना शासन मां थई गये "श्रीरत्नप्रभ" नामे आचार्य थया तेमणे "ओसीया" नामनी नगरी मां क्षत्रिय जाति ने प्रतिबोध आपी श्रावको बनाव्या त्यारे ओसवालो नी स्थापना थई, अने "श्रीमाल" नगर मां श्रीमाली ओनी स्थापना थई, एम श्री जैनधर्म विस्तार प्रचारक वर्ग तरफ थी, बहार पडेल "जैन इतिहास" नामक ग्रंथ मांथी जणाय छे, महावीर स्वामी ना समय मां पण श्री पार्श्वनाथ भगवानना "संतानिया" संतो विचरता हता ते श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां आवेला श्री पार्श्वनाथ शासनना श्रीकेशीस्वामी अने प्रभु वीरना शासन ना श्री गौतम स्वामी ने मळे बन्ने हता, तथो आदि शास्त्रमां आवेला संवाद पर थी सिद्ध थाय छे । आ उपरांत पण बीजे घणु जगोए दृष्टिगोचर थयो नथी, परा समय हुं अनुसंधान विचारतां आ हकीकत केटलेक अंशे सत्य होवानुं मानी शकाय ।

इस प्रकार और गच्छों की पट्टावल्यादि ग्रन्थों में ओसवाल उत्पत्ति विषयक उल्लेख होना संभव होता है क्योंकि यह एक प्रसिद्ध बात है कि जहाँ ओसवाल पोरवाल और श्रीमालों का प्रसंग आता है वहाँ इस बात को अवश्य लिखते हैं । आज हम सामयिक पत्र पत्रिकाओं और समाचारपत्रों को पढ़ते हैं तो इस विषय के अनेक लेख मिलते हैं । अतः इस विषय में ज्यों ज्यों पट्टावल्यादि ग्रन्थ मिलते जावेंगे त्यों त्यों विषय पर प्रकाश पड़ता जायगा ।

उपरोक्त पट्टावल्यादि ग्रन्थ साधारण व्यक्तियों के लिखे हुये नहीं हैं परन्तु हमारे परमपूज्य महान आचार्यों के लिखे हुये हैं कि जिनपर हमारा अटल विश्वास है । अतः कोई कारण नहीं कि हम इन प्रमाणों में किसी प्रकार की शंका करें क्यों कि उन महाव्रतधारी उत्कृष्ट निस्पृही आचार्यों को गलत लिखने में कोई भी स्वार्थ नहीं था । अतः इन पट्टावल्यादि के प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति का वि० पू० ४०० वर्ष मानना न्याय संगत और युक्तियुक्त है ।

# महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की प्राचीनता के विषय वंशावलियों के कतिपय प्रमाण
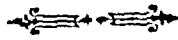
१-विक्रमपूर्व ९७ वर्ष के समय में जिन १८ गोत्रों का उल्लेख मिलता है उसी १८ गोत्रों की वंशावलियों में प्रत्येक गोत्रों के स्थापक वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि का ही नाम बतलाया जाता है। शायद इसका यह कारण हो कि महाजन सङ्घ के आदि संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरि थे अत उन परमोपकारी आचार्यश्री की स्मृति के लिये सर्वत्र अर्थात् क्या उपकेशवंश के अठारह गोत्रों के और क्या ओसवाल जाति के आदि पुरुष रत्नप्रभसूरि ही को बतलाया गया हो तो यह यथार्थ ही है क्योंकि उपकेशवंश अठारह गोत्र और ओसवाल जाति यह कोई अलग अलग नहीं है पर ये सबके सब उस महाजनसङ्घ के रूपांतर नाम एवं उसकी शाखा प्रतिशाखा रूप हैं अतः उनके आदि में रत्नप्रभसूरि का नाम लेना या लिखना यह उनका कृतज्ञपना ही है।

अब थोड़े से प्रमाण वंशावलियों के बतला देते हैं कि ओसवाल जाति कितनी प्राचीन है ?

१-उपकेशपुर में श्रेष्ठिगोत्रीय राव जगदेव ने वि० सं० ११९ में चंद्रप्रभ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य यक्षदेवसूरि ने की।

२-खतरीपुर में तप्तभट्ट गोत्रीय शाह नोढ़ा जैतल ने वि० सं० १२२ में श्री शत्रुञ्जय का विराट् सङ्घ निकाला जिसमें आचार्य यक्षदेव आदि बहुत से साधु साध्वी थे।

३-विजयपट्टन में बाप्पनाग गोत्रीय मंत्री सज्जन ने वि० सं० ११९ में भगवान् महावीर का मंदिर बनाया जिसकी प्र० यक्षदेवसूरि ने की। जिसमें मंत्रीश्वर ने सवालाख रुपये खर्च किये।

४-धेनपुर में भाद्रगोत्रीय मंत्री मेहकरण ने वि० सं० ३०९ में आचार्य रत्नप्रभसूरि की अध्यक्षता में तीर्थों की यात्रा के लिये एक बड़ा भारी सङ्घ निकाला जिसमें एक लाख यात्रियों की संख्या थी।

५-उपकेशपुर में श्रेष्ठिगोत्रीय राव जल्हणदेव ने वि० सं० २०८ में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से महावीर मंदिर में अठाई महोत्सव किया। जिसमें संघ को आमन्त्रण कर एकत्र किया, सात दिन तक स्वामी वात्सल्य और एक दिन नगर सहरनी की और आये हुये स्वधर्मी भाइयों को पहरामणि में वस्त्र वगैरह के साथ एक एक सोना मोहर भी दी, इस सुअवसर पर आचार्य अपने विद्वान शिष्यों में से पांचों को पंडित पद, १२ को वाचनाचार्य पद ४ को उपाध्याय पद प्रदान किया।

६-भिन्नमाल नगर में सुचंति गोत्रीय शाह पेथड़ हरराज ने वि० सं० ३५८ में आचार्य श्री देवगुप्तसूरि के उपदेश से भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा देवगुप्तसूरि ने की।

७-माडव्यपुर में कुलभद्रा गोत्रीय शाह नाथा खेमा ने आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से देवाधिदेव ऋषभनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० ३७७ में आचार्य सिद्धसूरि द्वारा करवाई।

८-सालणपुर में श्रेष्टि गोत्रीय मंत्री ऊहड़ ने महावीर का मंदिर बनाया। जिसकी प्रतिष्ठा ३९२ में आचार्य सिद्धसूरि ने करवाई।

९—चूंकों की वंशावली में लिखा है कि सुघड़ समरथ कांना ने रत्नपुर में श्रीमहावीरका शिखर मंदिर बनाया था जैसे—

वि० सं० १४७ माघशुदि ५ उकेशवंशे सुघड़गोत्र शा० समरथ काना क्षेम निज बाव झुमरोती श्रेयार्थे श्रीमहावीर बिंब कारापितं प्र० श्री उपकेशगच्छे कक्क सूरिभिः ।

वि सं० ११९ वैशाखशुक्ला ७ उपकेशवंशी सुघड़ गोत्र शाह देदा भारमल ने रोहलीग्राम में श्री चिंतामणि पारसनाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा उपकेशगच्छीय आचार्य कक्कदेवसूरि से कराई ।

१०—गदैया गोत्र का शा देवराज ने चंदेरी नगरी में सं० ५२१ में श्रीपार्श्वनाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा सिद्धसूरि ने की तथा आपने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाल कर यात्रा की और स्वधर्मी भाइयों को प्रेम-पहिरावणी दी । आपका पुत्र भगराज और जगराज का पुत्र नरदेव बड़े ही नामी हुये ।

११—कुम्मट गौत्रे शा दुर्गमपाल ने वि सं ५१९ में आचार्य सिद्धसूरि का पट्ट महोत्सव किया और आपके अध्यक्षत्व में सम्मेतशिखर तीर्थ का संघ निकाल साधर्मी भाइयों को पहिरावणी दी जिसमें एक लक्ष द्रव्य शुभ कार्यों में व्यय किया । आपके पुत्र कनवीर और कनवीर के पुत्र धन्नुपाल तथा धन्नुपाल का पुत्र चन्द्रसरण हुआ, इसने वि० सं ६ ४ में भिन्नमाल नगर में भगवान् पार्श्वनाथ का मंदिर कराया जिसकी प्रतिष्ठा उपगच्छीय सिद्धसूरि ने करवाई ।

१२—आदित्यनागगोत्रे चोरडिया शाखा में वि० सं० ५१३ में शा० करमण माधु जलकन्यादि ने नागपुर में श्रीपार्श्व नाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य देवगुप्तसूरि से करवाई और आपके अध्यक्षत्व में श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला, इस शुभ कार्यों में इन वीरों से पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

१३—आम्नगगोत्रे वि सं० ५८९ में शा० शाहु वीरमदेव जोशा आसलादि ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला स्वामिवात्सल्य कर साधर्मी भाइयों को मोदक में एक एक सुवर्णमुद्रिका और वस्त्रादि की पहिरामणि दी इस संघ में मुख्य नायक आचार्य कक्कसूरि थे ।

१४—चोरडिया जाति के बोकाणा में एक लालाशाह से लालोरिया शाखा निकली । इन लालाशाह ने वि सं ६०९ में बड़े भयंकर दुष्काल में मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास देने में अपनी लाखों रुपयों की सम्पत्ति प्रदान कर दी । उस दिन से शाह लाला की संतान 'लालोरिया' नामक शाखा से प्रसिद्ध हुए । लालाशाह के तीसरी पुश्त में जयदूशाह बड़ा ही नामी उदार पुरुष हुआ ।

१५—समसट्ट ( सुरोद )—वि सं ५११ नागपुर में शाह रघुवीर हरदेव ने आचार्यदेवगुप्तसूरि के उपदेश से शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया । साधर्मी भाइयों को सोने मोहरों की पहिरामणी दी और तीन बड़े यज्ञ भी किये तथा आचार्यश्री को नागपुर में चातुर्मास करा कर अपनी ओर से महा महोत्सव पूर्वक श्री भगवती सूत्र बंचा कर श्री संघ को महाप्रभाविक आगम सुनाया । जिसमें आपने कई लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

१६—वीरहटगोत्रे वि० सं० ५७८शा० सारगके पुत्र सायर ने माघशुक्ला ५ को चन्द्रावती नगरी में आचार्य कक्कसूरि के पट्टमहोत्सव में सवालक्षद्रव्य व्यय किया। इसकी परम्परा में वि० सं० १०३७ में शा० सोनपाल ने हणावा ग्राम से श्रीशत्रुंजय का सघ निकाला तथा श्रीविमलनाथ स्वामी का मंदिर बनाया जिसकीप्रतिष्टा उपकेशगच्छीय आचार्य सिद्धसूरि ने की। सोनपाल का पुत्र दहेल हुआ वह हणावा को छोड धारा नगरी गया इसका एक कवित्त भी मिला है।

"धाराधीप देहलने पद मंत्री सिर थापे। शाह मोटो सामंत जगत सगलो दुःख कापै॥
धर्मकर्म सहुसाचवे दान अड़कल समर पै। नवखड नाम देहल कियो सोनपाल सुत सहु जंपै॥

१७—भाद्रगोत्रे समदड़िया शाह हरचंद ने वि० स० ७९९ नागपुर में आचार्य कक्कसूरि को ४५ आगम लिखा कर भेंट किया।

१८—श्रेष्टिगोत्रिय शा० रूपचन्द के पुत्र मलयसी ने आभानगरी में आचार्य देवगुप्त सूरि का पद महोत्सव किया, सम्मेतशिखर का सघ निकाल यात्रा की। इस शुभ कार्य में पुष्कल द्रव्य व्यय किया जिस का समय वि० सं० ८३९ का था।

१९—लघुश्रेष्टि गोत्रिय शा० देपाल धनदेव ने वि० सं० ५९५ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से भीनमालनगर से श्रीशत्रुंजय का सघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया। धनदेव की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर महानंद ने चन्द्रावती नगरी में वि० स० ६६९ में आचार्य सिद्धसूरि की अध्यक्षता में शत्रुंजय का बड़ा भारी सघ निकाला। जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय कर पुन्योपार्जन किया।

२०—चिंचट गोत्रे शाह वीरदेव ने वि० स० ५९९ में शत्रुंजय का सघ निकाला जिसमें आपने ७ लक्ष द्रव्य खर्च किया इस सघ में आचार्य कक्कसूरि नायक थे।

इस गोत्र में वि० सं० ७०३ में जल्हन का पुत्र देसल बड़ा ही नामी एवं उदार पुरुष हुआ उसने दुकाल में एक करोड़ मन धान गरीबों को दिया, आपकी संतान देसड़ा कहलाई शा० देसल ने कीराटकुम्प में मदिर बना कर पार्श्वनाथ की सोने की मूर्त्ति बना कर वि० सं० ७०३ में आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई। आह-हा धर्म पर कैसी श्रद्धा और भावना थी।

२१—कनोजिया गोत्रे वि० सं० ८८५ कनकावती नगरी में शा० राजधर ने श्रीशान्तिनाथ का मन्दिर बना कर आचार्य देवगुप्त सूरि से प्रतिष्ठा करवाई तथा शत्रुजयादि तीर्थों का सघ निकाला तत्पश्चात् राजधर ने करोड़ों की सम्पति छोड़कर आचार्यश्री के पास दीक्षा ली।

इसी गोत्र में आज्जा का पुत्र कुकुम को सच्चायिका देवी तुष्टमान हुई जिससे अपार लक्ष्मीवान् हुआ बाद उसने करोड़ों रुपया शुभकार्य्य में व्यय किया सातवार संघ निकाला, साधर्मीभाइयों को सोने मोहरों की प्रभावना दी और २१ नये मंदिर बना कर प्रतिष्टा करवाई, उजमणादि में पुष्कल द्रव्य व्यय किया इसके वश में भोजराज हुआ, ओसियों जाकर महावीर देव का स्नात्र और सच्चायिका देवी का महोत्सव कर याचकों को अथाह दान दिया इनका समय वि० की नौवीं शताब्दी का था।

२२—इन कनोजिया गोत्र से दूधाशाह से वि० स० ९०८ में धूपिया शाखा निकली जिसका कारण बतलाया है कि यह जिन भक्ति में सदैव लीन रहता था इनके यहा वनजारा बहुत सी कस्तूरी लाया था जिसको लेकर सब की सब मदिरजी में धूप होता था उस पर डाल दी और वनजारे को मुंह मागे दाम दे दिये।

२३—मोरख गोत्र वि० सं ६५८ में शा० रतनो जोमी शासनि बड़े ही उदार दानेश्वरी हुवे। दुष्काल में गरीबों और पशुओं को अन्न घास देकर नाम कमाया। आपकी वंश परम्परा में एक नाथासाह नामक पुरुष पुष्कर में रहता था। उस पर गुरु महाराज की पूर्ण कृपा थी वा पूर्वभव के पुन्य से उसके घर में लक्ष्मी अखूट हो गई थी। वि० सं० ७२२ में एक दुकाल पड़ा था। वह महाभयंकर जनसंहारक था उस समय नाथा ने विग्रहारों द्वारा जहां जिस भाव से मिला धान और घास मंगवा कर दुकाल को सुकाल बना दिया इसकी कीर्ति के कई वंशावलियों में कवित्त भी मिलते हैं जैसे कि

कवि आया र दुष्काल तू नाथा के दरबार में। मिलेगा न मान तोहू जा जा देश पार में॥
कूब कोरा दोरा स्थान हुन पिच्छोरा तौर में। अनाथ सनाथ भयो नाथो उगत ही भोर में॥

२४—वि० सं ९ १९ में आचार्य सिद्धसूरि ने राष्ट्रकूट वंशीय राव सुखा को प्रतिबोध कर जैन श्रावक बनाया। जिसकी बड़ी पुस्तक में गोसल धनराज नाम के दो नामी पुरुष हुए।

सुखो सुप्रसिद्ध नयर मोरीयो अरघल। कर्मीपुर पोकरणा मारख सुखा सुनिश्चल॥
तस सुत गोसल कल्पवृक्ष अरघल जग छाजै। रीमर्दायोगरु कउरसिंह सुडील बड़ गाजै॥
पीयक मिगरो भगर नर सुकवि गल्ह मसुचर। पुविलासवण हीवसखमो धनराज बहु उवरे॥

२५—भूरिगोत्र—भटेवरा शाखा के शाह नाम्हा धीरमदेव ने वि सं ४९७ भद्रेश्वर में पार्श्वनाथ का देहरा कराया म उपकेशगच्छीय आचार्य देवगुप्त सूरि ने करवाई।

२६—पद्मावती नगरीमें मामल वरसिंह चतुर्भुज ने वि सं ३३५ में आचार्य यक्षदेवसूरि के उपदेश से सब लाख द्रव्य सात क्षेत्र में व्यय कर बाप बेटे ने आचार्य श्री के पास दीक्षा लीनी।

२७—वि स ४ ९ म चन्द्रावती नगरी में प्राग्वट लालन पाताजी ने भगवान महावीर का मंदिर बना कर आचार्य रत्नप्रभसूरि से प्रतिष्ठा करवाई। इस शुभ कार्य में एक लाख रुपये खर्च किये। साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी साथ बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये।

२८—वि स० २०९ में कोरंटपुर म श्रीमाल सुचंतसी खेतसी ने आचार्य देवगुप्तसूरि के उपदेश से सम्मेतशिखरजी आदि तीर्थों का बड़ा भारी संघ निकाला। सब तीर्थों की यात्रा की, तीन बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये, साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी। इस शुभ कार्य में आपने नौ लाख द्रव्य व्यय किया।

२९—भिन्नाली ग्राम में श्रीमाल चन्द्रभाण कुम्भावती ने वि स २१५ में आचार्य कक्कसूरि का पट्ट महोत्सव करके आपके उपदेश से बीस श्रावक तर का वनमाला किया जिसमें ५२ ग्रामों के संघ को आमंत्रण पूर्वक बुलाया। सात यज्ञ (जीमणवार) किये। इस शुभ कार्य में तीन लाख द्रव्य व्यय किया।

---

* उपकेशगच्छ में क्रमशः ५ रत्नप्रभसूरि ६ यक्षदेवसूरि १३ कक्कसूरि २२ देवगुप्तसूरि २२ सिद्धसूरि नाम के आचार्य हुए हैं इनके अलावा भिन्नमाल शाखा चन्द्रावतीशाखा, कोरंटपुर शाखा, खीमपुरीशाखा वगैरह में भी आचार्यों के यही नाम थे अतः समय निश्चय करने के चक्कर में न पड़ जाय। इसलिये पहले पट्टावलियों से जाँच कर लेनी चाहिए।

३०—वि० सं० ३०२ रूणी ग्राम में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से प्राग्वट वंशीय शा० देदा करमण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला, यज्ञ करके साधर्मी भाइयों को सोना मोहर और वस्त्रादि की पहिरामणी दी। इस दानवीर ने शुभ कार्यो में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

३१—वि० सं० ४६६ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से कोटियाला ग्राम में श्रीमालवंशीय सुरजण पुनड़ ने अपनी लाखों रुपयों की मिलकियत सात क्षेत्र में खर्च कर सकुटुम्ब पचास नर नारियों के साथ सूरिजी महाराज के पास दीक्षा ली जिसमे जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई।

३२—वि० सं० ५९२ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से हथियाण ग्राम में प्राग्वटवंशीय कल्हण करमण ने भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर बना कर सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि से करवाई।

३३—वि० स० ५११ में आचार्य देवगुप्तसूरि के उपदेश से चंद्रावती के मंत्री सारंगदेव ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थो का बडा भारी संघ निकाला तथा चंद्रावती में भगवान् महावीर का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा कक्कसूरि ने कराई। मंत्रेश्वर ने न्यायोपार्जन द्रव्य को शुभ काम में लगाया।

३४—वि० सं० २१६ में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से शिवपुरी के मंत्री धनवीर के पुत्र सलखण ने ४७ नर नारियों के साथ सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में मंत्रीश्वर ने सवालक्ष द्रव्य खर्च करके जैनधर्म का उद्योत किया।

इत्यादि यह तो केवल नमूने के तौर पर थोडे से प्रमाण लिखे हैं पर इस प्रकार के प्रमाणों से वंशावलियां भरी पड़ी हैं और यह ग्रन्थ ही इन भंडारों में पड़ी बातों को प्रसिद्ध करने की गरज से निर्माण किया जा रहा है। अतः यथास्थान उन वीरों के धर्म कार्य प्रकाशित किये जायगे।

पाठकों को उपरोक्त कार्य्य पढ कर आश्चर्य होगा कि एक एक कार्य में वे धर्मज्ञ लोग लाखों रुपये खर्च कर देते थे तो उनके पास कितना द्रव्य होगा या वे इतना द्रव्य कहा से लाते होंगे ?

हाँ, आजकल के पचीस पचास एवं सौ रुपये माहवारी पर नौकरी करने वाले या झूठ कपट से व्यापार करने वालों को यह आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। पर उन लोगों ने न तो कभी नौकरी की थी और न व्यापार में कभी झूठ ही बोला था। उनका सब कार्य एवं व्यापार हमेशा न्यायपूर्वक औ सत्यता से ही होता था। दूसरों का बिना हक्क एक छदाम लेना भी वे हराम समझते थे अत न्याय और सत्य से वे लोग द्रव्योपार्जन करते थे और उसको इस प्रकार शुभ कार्यों में लगाते थे। वह जमाना तो बहुत दूर का है पर आप आज अमेरिकादि पाश्चात्य देशों को देखिये उनके पास कितनी लक्ष्मी है और अपने धर्मप्रचार के लिये किस प्रकार करोड़ों द्रव्य व्यय करते हैं, तो फिर उस जमाने के लिये कौनसी आश्चर्य की बात है।

जिस जमाने के मैंने ऊपर प्रमाण दिये हैं उस जमाने में धर्म कार्यो में मुख्य कार्य मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाना, तीर्थों की यात्रार्थ बडे बड़े संघ निकाल कर हजारों लाखों साधर्मी भाइयों को यात्रा करवाना और उन साधर्मी भाइयों को वस्त्राभूषण एवं सोने मोहरादि की पहिरामणी देना, साधर्मीभाइयों की सहायता करना, आचार्य्यो का पट्टमहोत्सव करना, अपने घर से महोत्सव कर भगवत्यादि बडे सूत्र बचाना उजमना वगैरह करना और दुकालादि में अन्न घास देकर प्राण बचाना इत्यादि। बस, इन शुभ कार्य्यों से ही उनका पुन्य बढ़ता था और जहाँ पुन्य है वहाँ लक्ष्मी बिना बुलाये ही आकर डेरा डाल देती है।

ऊपर का मेटर लिखने के पश्चात् पुरानी वंशावलियों के पन्ने उथलते समय एक ऐसी घटना का भी उल्लेख नजर आया है कि वि० सं० १११ में उपकेशवंशीय श्रेष्ठिगोत्र के शाह वीरमदेव ने एक महेश्वरी रामपाल की पुत्री के साथ शादी करली थी उस समय उपकेशवंशियों का बेटी व्यवहार राजपूतों के साथ होता था तथापि कई लोगोंने वीरमदेवके लिये महेश्वरीकी कन्या के साथ लग्न कर लेने का विरोध किया जिससे एक मतभेद खड़ा हो गया पर उस समय समाज के धुरंधर जैनाचार्य आपसी मतभेद नहीं पड़ने देने के लिये सदैव कदम रखते थे और उन आचार्यों का समाज पर बड़ा भारी अंकुश भी था अतः आचार्य [illegible] प्रभसूरि को खबर होते ही उन्होंने महेश्वरी कन्या को विधि विधान से वासक्षेप देकर जैन बनाली जैसे अन्य राजपूतादि को बनाते थे। बस, यह मतभेद वहां ही शांत हो गया।

इस घटना से इतना तो सहज ही में जाना जा सकता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में ओसवंश एवं उपकेशवंश अच्छी आबादी पर था। अतः इसका जन्म चार पांच शताब्दी पूर्व हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इन वंशावलियों में केवल श्रावकों के कराए हुए मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं तीर्थयात्रा निमित्त निकाले संघादि का ही वर्णन नहीं है पर उस समयवर्ती राजकीय प्रकरण का भी बहुत मसाला मिलता है। सूर्यवंशी महाराजा उत्पलदेव ने जैनधर्म स्वीकार करने के बाद कितने पुश्त तक उपकेशपुर में राज किया तथा आपकी संतान ने भिन्न-भिन्न वीरों ने कौन से नये नगर एवं ग्राम बसा कर वहां पर कितने २ समय तक राज किया तथा समीपवर्ती माण्डव्यपुर में कौन २ राजा हुए तथा चन्द्रसेन की सन्तान ने चन्द्रावती नगरी में कब तक राज किया।

किस जैनाचार्यों ने किस किस समय जैनेत्तर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाये और किन किन कारणों से उनकी जातियों के नाम संस्करण हुये इन सब बातों का पता वंशावलियों से मिल सकता है। अतः जैनधर्म और जैन जातियों के हाल जानने के लिये वंशावलियें बड़े ही काम की वस्तुयें हैं। उन वंशावलियों आदि साधनों को न जानने से ही आज हमारी यह दशा हो रही है कि न तो हमारा कहीं स्थान मान है और न हम अपने पूर्वजों के किये हुए सुन्दर कार्यों को जनता के सामने रख ही सकते हैं। यही कारण है कि हमारी नसों में अपने पूर्वजों के गौरव का खून बहना बंद होगया है फिर भी हम समाज का ढ़ोल बजा कर उन्नति २ चिल्ला रहे हैं पर इस कोरे चिल्लाने की क्या कीमत है ?

हमारी वंशावलियां आज व्यवस्थित रूप में नहीं हैं। जो जिनके पास है उन्होंने उनको अपनी आजीविका का मुख्य साधन समझ रखा है। यदि कोई जिज्ञासु देखना चाहे तो वे इतना संकुचित भाव रखते हैं कि एक अक्षर दिखाने को अपनी आजीविका का अन्त होना समझते हैं। यही कारण है कि हमारा ऐतिहासिक ज्ञान प्रायः लुप्त हुआ और होता जारहा है और इसकी ओर किसी का लक्ष तक भी नहीं पहुँचता है इससे ज्यादा क्या अफसोस हो सकता है !

प्रस्तुत वंशावलियें जो मुझे मिली हैं प्राचीनता की दृष्टि से इतनी प्राचीन तो नहीं हैं कि जिस समय की घटनायें इनमें उल्लिखित हैं फिर भी यह बिल्कुल निराधार भी नहीं हैं। ये भी किसी न किसी आधार एवं वंशपरम्परा से चले आये ज्ञान के आधार पर ही लिखी होंगी।

## एक जूना पन्ना में निम्नलिखित मन्दिरों की प्रतिष्ठा के लेख हैं।

१—वि० स० २०८ माघ शुद्ध ७ बाप्पनाग गौत्रे शा० महीपाल भा० मायादे पु० अरजूनकेन श्रीमहावीर विम्ब करपितं प्र० रत्नप्रभ सूरिभि. ।

२—वि० स० २४३ फाल्गुन शुद्ध ११ सुचति गौत्रे शा० आना मानाकेन श्री पार्श्वनाथ बिंब करापितं प्र० कक्क सूरिभि

३—वि० सं० २९७ जेष्ठ कृष्ण ५ श्रेष्टि गौत्रीय मंत्रीश्वर हरपाल जसदेवकेन श्री आदिनाथ प्रतिमा करावित प्र० आ० सिद्धसूरिभि. ।

४—वि० स० ३४२ मार्गशीर्ष शुद्ध १३ श्रेष्टिगौत्रीय शा० ठाकुर धर्मसीकेन चौवीसी पट्टक करापिता प्र० कक्कसूरिभि ।

५—वि० स० ६८३ वैशाख शु० ३ गुरौ श्रेष्टि भोपालकेन श्री पार्श्वबिम्ब करापितं प्र० श्री उपकेश गच्छे कक्कसूरिभि ।

६—वि० सं० ७१२ माघ शुद्ध १३ बाप्पनाग गौत्रे सा० देपाल भा० देवलदे पु० धना महकरणेनश्री शान्तिनाथ बिम्ब करापित प्र० उपकेशगच्छे कक्कसूरिभि ।

७—वि० स० ७४३ फाल्गुन शु० ७ भौम आदित्यनागगौत्रे चोरडियाशाखायाँ शा० मंगला भा० मागी पु० जसो भा० जसादे पु० नाथ रूपा जोधाकेन श्रीमहावीर बिम्ब करापित प्र० उपकेश गच्छे देवगुप्तसूरिभिः

८—स० ८०३ मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी सुचिन्ती गौत्रे सा० भीमा करणदेव धांधलकेन मातु पिता श्रेयार्थ श्रीपार्श्वनाथ बिम्ब करापित प्रतिष्ठा श्री उपकेशगच्छे कक्कसूरिभि' ।

९—स० ८४२ फाल्गुन शुक्ल ३ भाद्रगौत्रे सा० लल्लु भार्या ललतादे पुत्र सारंगेकेन श्रीपार्श्वबिम्ब करापित प्रतिष्ठा श्री उपकेश गच्छे देवगुप्तसूरिभि ।

१०—सं० ८७२ ज्येष्ठ कृष्णा ७ उकेशवशे श्रेष्टिगौत्रे सा० जैता भा० जैतलदे पु० रत्नाकानाकेन श्री आदिनाथ बिम्ब करापितं प्रतिष्ठा श्री उपकेश गच्छे देवगुप्त सूरिभि ।

११—स० ९११ ज्येष्ठ कृष्णा ११ उकेशवशे चीचटगौत्रे सा रघुवीर भा० रानादे पु० देवपाल हरजीवन केन श्री पार्श्वबिम्ब करापितं प्रतिष्ठा श्री उपकेशगच्छे सिद्धसूरिभि ।

१२—सं० ९६६ माह शुक्ल १५ उपकेशपुर वारतव्य उकेशवशे तप्तभट्टगौत्रे सा नानग भार्या नानोद पु० धरण पूरण केशव खेमा आदि कुटुम्बेन श्री वासपूज्य बिम्ब करापित प्रतिष्ठा श्री उपकेशगच्छे देवगुप्तसूरिभि ।

१३—स० ५८७ माघ शुद्ध ५ उपकेशवशे सचति गौत्रे सा० पोमा नागडकेन श्री शातिनाथ बिम्ब करापितं प्र० श्रीउपकेशगच्छे गुप्तसूरिभि ।

१४—स० ४९९ वैशाख शुक्ला १० श्री उपकेशवशे भाद्रगौत्रे शा० पुरदर जगमल्लकेन श्रीआदिनाथ बिम्ब करापितेन प्र० उप० श्री देवगुप्तसूरिभि ।

१५—स० ५१३ माघ शुद्ध ३ उपकेशवशे चोरडिया गोत्रे सा० छाड भार्य छाडदे पु० नोढा भा० नागणदे केन स्व माता छाहड़ी श्रेयार्थ श्री महावीर देव बिम्ब करापित प्र० उप० श्रीदेवगुप्तसूरिभि ।

# महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति के उत्पत्ति विषयक
# ऐतिहासिक प्रमाण

१—विक्रमकी बारहवीं शताब्दी से आज पर्यन्तके प्रमाण देने की आवश्यकता ही नहीं है। कारण, इस समय के तो सैकड़ों प्रमाण उपलब्ध ही हैं। खास तौर तो इस समय पूर्व के प्रमाण उपस्थित करने की आवश्यकता है जिसके लिए ही यह मेरा प्रयत्न है।

पुनीत पौर्णमीयागच्छ के पन्द्रहवें पट्टधर रत्नप्रभसूरि ने जिनके समर्पित हुए हैं आपने पूर्व की लेखक का वर्णन 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' नामक ग्रन्थ में किया है। यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसके पढ़ने से पाठक स्वयं जान सकेंगे कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास में उपकेशपुर उपकेशवंश एवं उपकेशगच्छ किस परिस्थिति में था। जैसा कि—

अस्ति स्वस्तिकवन्म ( कम) पु भूमेर्मध्यदेशस्य भूषणम्। निसर्गसर्गसुभगमुपकेशपुरं परम् ॥
सागा यत्र सदारामा सदारा मुनिसत्तमाः। विद्यन्ते न पुनः कोऽपि वारक पौरेषु दृश्यते ॥
यत्र रामागतिं हंसा रामा वीक्ष्य च तद्गतिम्। विनोपदेशमन्योन्यं तां कुर्वन्ति सुशिक्षिताम् ॥
सरसीषु सरोजानि विकचानि सदाऽभवन्। यत्र श्रीमजिनेन्द्रोविर्भस्वराश्रितमस्तकाः ॥
निघासु गतमद् यौ गृहवालेषु सुमृगम्। माझामन्त्रकराः कामविशा रूप्या इव ॥
यत्रास्ते वीरनिर्वाणात्सप्तत्या वत्सरैर्गतैः। श्रीमद्रत्नप्रभाचार्यैः स्थापितं वीरमन्दिरम् ॥
तदादि विघ्नधातीनो यत्राद्यापि जिनेश्वरः। श्री रत्नप्रभसूरीणां महिमाऽधिकं जने ॥
यत्र कृष्णागरुत्थ धूपमस्यामलितत्विषा। सदैव ध्रियते तस्मात्मसा श्याम वपु ॥
सुदङ्गध्वनिमाकर्ण्य मेघगर्जित विभ्रमात्। मयूरा कुर्वते नृत्यं यत्र प्रेक्षकसम्पदे ॥
प्रतिवर्षं पुरस्यान्तर्यत्र स्वर्णमयो रथः। पौराणां पाप मुच्छेत्तुं मिव भ्रमति सर्वत ॥
यत्रास्ते स्निग्धा नाम वापी वा (पा) पीनविभ्रमा। निम्नाऽपोऽधोगामिनीभिर्योऽसौ सोपानपंक्तिभिः ॥
यस्यां ये कौतुकी लोकाः, कृत कुसुम दस्तकाः। सोपानैर्यास्यपीमार्गं न निर्यान्ति स तैः पुनः ॥
तत्पुरप्रभवो वंश उपकेशाभिध उन्नतः। सुपर्वा सरल, किन्तु, नान्तः शून्योऽस्ति यः क्वचित् ॥
तत्राऽष्टादश गोत्राणि पात्राणीव समन्ततः। विभान्ति तेषु विख्यातं, श्रेष्ठिगोत्रं पृथुस्थिति ॥
तत्र गोत्रेऽभवद् भूरि माणपसम्पन्न वैभव। श्रेष्ठी वेसट इत्याख्याविख्यातः क्षितिमंडले ॥
य एव जन संतानें, निश्चितेष्वविषमस्तु। तन्नाम्ना (तस्यामा) दिव दाक्षिण्य, त्वरितं दूरतोऽनवत् ॥
कीर्त्या यस्य प्रसर्पन्त्या, शुभ्रया शमने विधुम्। विनाऽपि कौमुदीत्सवः समाजग्मत श्रावकः ॥
यस्माः सोमोऽपि सोमो पि, न साम्यं समुपेयिवान्। एककर्यं चाऽमृतरेखा, सौम्यत्वेन नवेन च ॥
प्रद्रुप सम्मृया येन, धनदेवेन (निष)म(यी) स्थितम्। क्षेमे ननु कुबेरत्वं, न पिशाचकिताऽपि च ॥
कोऽप्याऽपूर्वस्वगुणानां स्वभावः प्रभवत्यपम्। मनोऽस्य गुण सम्पर्द, मोचयन्त्यपि विविधाः ॥

तस्य शस्यतमस्यापि कुतश्चिदपि कारणात् । विरोधः सहजाज्जज्ञे नागराग्रेसरैः सह ॥
ततश्च वेसटः श्रेष्ठी यत्र वैरं परस्परम् । तत्र देशे न वास्तव्यमिति नीतिमचिन्तयत् ॥
एवं विचार्य सोऽधामैमतिर्गन्तुमना मनाक् । बभूव भूमिभाजाँ किं क्वचिदस्ति स्थिरा मतिः ॥
ततः सर्वस्वमादाय दायाद इव गोत्रतः । अभिमानेन सा श्रेष्ठी बभूव नगरात् पृथक् ॥
सोच्छ्रा (त्सा) हं रथमारुढः शुभायतिविसूचकैः । शकुनैः प्रेरितोऽचालीत् सुवाग्भिः स्वजनैरिव ॥
अविलम्बैः प्रयाणैः स गच्छन्नच्छाशयः पथि । किराटकूपनगरं प्राप पापविवर्जितः ॥
सुरसद्मपताकाभिश्चलन्तीभिश्चतुर्दिशम् । पथिकानाह्वयतीव यत्पुरं सर्वदिग्गतान् ॥
यत्र वापीषु कूजन्तो राजहंसादिपक्षिणः । कथयन्तीव पान्थानां वारिणो रमणीयताम् ॥
दह्यमानागरुद्भूतधूमोर्मिकलितेऽम्बरे । वर्षारात्र इवाभाति यत्र नित्यं घनोन्नतिः ॥
नानादेशागतोपान्तविश्रान्तानन्तसार्थिकम् । सार्थं तन्नगरं वीक्ष्य श्रेष्ठी स्थितिमतिं व्यधात् ॥
तत्र त्रित्रामिताशेषशात्रवो देशनायकः । परमार कुलोत्पन्नो जैत्रसिंहाभिधः सुधीः ॥

नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रस्ताव १ श्लोक ७७ से ४८

मरूभूमि का भूषणरूप उपकेशपुर नाम का एक श्रेष्ट नगर है जो पृथ्वी पर स्वस्तिक की तरह अति सुन्दर और षट् ऋतु के फल फूलों सहित बाग बगीचे से शोभायमान है। वहाँ रहनेवाले मुनिजन कनक कामिनी के सम्बन्ध से बिल्कुल मुक्त हैं परन्तु नागरिक लोगों में ऐसा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता है कि जिसके पास पुष्कल द्रव्य और विनीत सुन्दर रमणी न हों। उस नगर में हंसों की चाल रमणिया और रमणियों की चाल हंस विना ही उपदेश के शिक्षा पा रहे हैं। मकानों पर लगी हुई मणियों की कान्ति से अन्धकार का नाश होता है और तालावों के अन्दर कमल सदा प्रफुल्लित रहते हैं। रात्रि के समय मकानों की जालियों के अन्दर चन्द्र की किरणों का प्रकाश विरहणि औरतों को कामदेव के बाण की भाँति संतप्त करता है। व्यापार का तो एक ऐसा केन्द्र है कि पिता पुत्र अलग २ व्यापार करनेवाले शायद छे छे मास में भी मिल नहीं सकते। उस नगर में वीर निर्वाण से ७०वें वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि ने भगवान् महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति आज पर्यंत विद्यमान है। उस मन्दिर में धुकता हुआ धूप के धुयें से आकाश श्यामावर्ण का दीखता है। जब मन्दिर में पूजा भक्ति नाटक होता है जिसकी ध्वनि से मयूर मेघ की भ्रान्ति कर नाचने लग जाते हैं। उस नगर के लोगों के पाप को उच्छेद करनेवाला एक नर्दम नामक स्वर्णमय सुन्दर रथ जो महावीर की रथयात्रा के निमित्त सालभर में एक बार सब नगर में घूमता है। उस नगर के बाहर एक विदग्धा नामकी ऐसी भूलभुलैया वापी है कि जिस सोपान से कुंकुम के छापा लगा कर वापी के अन्दर जाता है फिर कोशिश करने पर भी उस सोपान के द्वारा वापिस नहीं आया जाता है। उस नगर में विशाल एव उन्नत धन धान्य सम्पन्न एक संगठन में सगठित हुआ उपकेश नाम का उन्नत वश है और जैसे वश पत्तों से एव बहु शाखाओं से शोभायमान है वैसे यह उपकेशवश १८ गोत्र से शोभायमान है। उस नगर में धन धान्य से समृद्धिशाली और भूमडल में विख्यात श्रेष्टि गोत्र अवतश वेसट नाम का सेठ रहता था जिस ने याचकों को बार२ दान देकर उनका घर द्रव्यसे भर दिया था कि उनके घरों से दरिद्र चोरोंकी तरह भाग गया था। उनकी

उज्ज्वल कीर्ति का प्रकाश विश्व में चारों ओर इतना फैल गया था कि चन्द्र के उदय न होने पर भी पवि निवासी कमल सदा के लिए विकसित रहने लगे। स्वयं चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सौम्यता से भी श्रेष्ठि की बराबरी नहीं कर सकता था लक्ष्मी में तो आप की बराबरी कुबेर भी नहीं कर सकता था क्योंकि कुबेर में निरुपणपना था वह श्रेष्ठि में नहीं था। अतः श्रेष्ठि के सर्वगुण अलौकिक थे जिस किसी ने एक बार आपके गुणों का दर्शन मात्र कर लिया उसका हृदय दूसरों के अनुराग से स्वतः ही मुक्त हो जाता था।

ऐसे अलौकिक पुरुष की कीर्ति एक स्थान स्थिर होजाय यह कुदरत को मंजूर नहीं था, अतः उस नगर के अग्रसरों के साथ श्रेष्ठि का मतभेद हो गया। इस हालत में श्रेष्ठि ने विचार किया कि जहाँ रहने पर अपने या दूसरों के कर्मबंध का कारण हो वहाँ रहने में क्या फायदा है। अतः श्रेष्ठि देसल अपना सम्पत्ति अनेक गाड़ों में भर कर तथा आप स्वकुटुम्ब एक रथ में बैठ कर उपकेशपुर से प्रस्थान कर गया। परन्तु भाग्यशाली जहाँ जाता है वहाँ सब सामग्री अनुकूल मिल ही जाती है। चलते समय शकुनी के अच्छे अच्छे-शकुन और कई प्रकार के शुभनिमित्त स्वतः मिल जाने क्रमशः चलते हुये किराटकूप नगर के उद्यान तक पहुँच गये। ग्रन्थकार ने किराटकूप नगर का थोड़ा सा वर्णन इस प्रकार किया है।

किराटकूपनगर बड़ा ही सुंदर था और चारों ओर मंदिरों पर ध्वजायें इस कदर फहरा रही थीं कि मानो मुसाफिरों के मनको मन्दिरों की ओर आकर्षित कर रही हैं। स्वच्छजल से भरी हुई वापियों के अन्दर राजहंसादिक पक्षियों के मधुर शब्द मानों फिरते घूमते मुसाफिरों को वापियों की सुन्दरता और जल की स्वच्छता ही बतला रहे थे जिन मन्दिरों में सुगन्धि धूप इतना हो रहा था कि जिस के धुवें से आकाश मानों वर्षा ऋतु के बादलों की तरह श्यामवर्ण का मालूम होता था। अन्य २ देशों के अनेक सार्थवाह—व्यापारी एवं वणजारे नगर के समीप विश्रान्ति लेते थे इत्यादि नगर की आबादी सुन्दरता और आरोग्य-वर्धक जलवायु देखकर श्रेष्ठि देसल का दिल ललचा गया कि मैं इसी नगर में निवास करूं।

उस नगर में पँवार वंश विभूषण महागुणनिधान जैनोपासक 'जैत्रसिंह' नाम का राजा राज करता था जिसने अपने पराक्रम से तमाम शत्रुओं को अपने अधिकार में कर लिया यही कारण था कि उसकी उज्ज्वल कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी।

श्रेष्ठिवर्य देसल बहुमूल्य रत्नों की भेंट लेकर राजा के पास आते हैं और राजा श्रेष्ठि को यहाँ आने का कारण पूछता है तब श्रेष्ठी ने अपना हाल सुनाया तो राजा खुश होकर सेठ को अपने नगर में रहने की अति आग्रह से आमंत्रण करता है। कहा भी है कि भाग्यशाली जहाँ जाता है वहाँ सब ऋद्धि सिद्धियें तैयार रहती हैं। राजा और श्रेष्ठि का वार्तालाप हो रहा था इतने में दरबान आकर अर्ज कर रहा है कि दरवाजे पर महाजनसंघ आया है और आप से मिलना चाहता है। राजा ने आज्ञा दे दी और महाजनसंघ राजा के पास आकर प्रार्थना की कि हमारे मन्दिरों में अठाई महोत्सव शुरू हुआ है जिसका आज वरघोड़ा है अतः जीवदया के लिये उद्घोषणा होजानी चाहिये कि राजनगर में कोई जीव न मारने पावे। इस पर राजा ने कहा कि यह तुम्हारा क्या धर्म है कि हरएक काम में तुम लोग इस प्रकार की प्रार्थना किया करते हो। इस पर पास में बैठा हुआ श्रेष्ठिवर्य देसल ने राजा को इस प्रकार का उपदेश दिया कि वह दया—अहिंसा के सच्चे स्वरूप को समझ कर हिंसा त्याग कर अहिंसा भगवती का परम उपासक बन गया और श्रेष्ठि ने किराटकूप को अपना निवास स्थान बना लिया। श्रेष्ठि देसल का वंश-वृक्ष ग्रन्थकार ने इस प्रकार लिखा है।

इसमें शाह गोशल के पुत्र देसल का ही यहाँ वर्णन किया जाता है।

उपकेशवंशीय
|
वेसट
|
वरदेव
|
जिनदेव
|
नागेन्द्र
|
सलक्षण
|
(पालनपुर गया)
|
आजड़
|
गोसल
|
देसल
|
(पाटण गया)
|
समरसिंह
|
शालहाशाह

श्रेष्टिवर्य्य शाहदेसल बड़ा ही भाग्यशाली धर्मात्मा एवं उदार था आप अपने जीवन में १४ बार तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकाले जिस में आपने १४ करोड़*रुपयेखर्चकिये तथा वि० सं० १३६९ में अलाउद्दीन खिलजी ने धर्मान्धता के कारण पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय का उच्छेद कर दिया था जिसका उद्धार कराना उस समय एक टेढ़ी खीर समझी जाती थी क्यों कि उस समय मुसलमानों के अत्याचार ने भारत में त्राहि २ मचा दी थी, परन्तु उपकेशगच्छाधिपति गुरुचक्रवर्ती आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से श्रेष्टिवर्य्य देसल एवं आपके पुत्ररत्न तिलग देश के स्वामी स्वनामधन्य समरसिंह ने दो वर्षों के अन्दर अन्दर शत्रुंजय तीर्थ को पुन स्वर्ग सदृश्य बना कर वि० स० १३७१ माघशुक्ल १४ सोमवार पुष्य नक्षत्र के शुभमूहुर्त में उपकेशगच्छाधिपति गुरुचक्रवर्ति आचार्य सिद्धसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा† कराई इस विषय के लिये उसी समय कई ग्रन्थ निर्माण हुये थे जैसे वि० सं० १३७१ माघशुक्ल १४ को प्रतिष्ठा हुई सवत् १३७१ चैत्रवदी ७ के दिन निर्वृतिगच्छ के आचार्यश्राम्रदेवसूरी ने "समररासुनामक" रास की रचना की तथा वि० सं० १३९३ में आचार्य कक्कसूरि ने नाभिनंदन जिनोद्धार नामक ग्रंथ निर्माण किया जिन्होंने अपने हाथों से इस प्रतिष्ठा का करने योग्य सब कार्य्य सम्पादन किया था। अत. दोनों ग्रथों को ऐतिहासिक ग्रथ कहा जा सकता है।

नाभिनदन जिनोद्धार ग्रंथ शत्रुंजय तीर्थ का पंद्रहवा उद्धार को ही लक्ष्य में रख कर लिखा गया है और समरसिंह के पूर्वजों का संक्षिप्त परिचय के लिये ग्रथकार ने श्रेष्टिवर्य वेसट से ही परिचय करवाया है परंतु वेसट के पूर्वज उपकेशपुर में कब से बसते होंगे इन के लिये यह कहना अतिशययुक्ति न होगा कि वि० पू० ४०० वर्ष में सूर्यवंशी महाराजा उपलदेव को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने जैनधर्म में दिक्षित किया उसी उपलदेव की वंश-परम्परा में वेसट के पूर्वज उपकेशपुर में रहते आये होंगे। जब हम वशावलियों की ओर देखते हैं तो विक्रम की सातवीं शताब्दी से श्रेष्टिवर्य रघुवीर हुआ उसकी परम्परा में ही वेसट हुआ है जिसको हम इसी ग्रंथ में यथास्थान लिखेंगे। यहा तो केवल ऐतिहासिक प्रमाण को लक्ष्य में रख कर श्रेष्टि वेसटका उदाहरण दिया है कि श्रेष्ठिवर्य वेसट के समय उपकेशपुर और किराटकूप नगर उपकेशवशियों से किस प्रकार आबाद एव फलाफूला था और उन विशाल सख्यक लोगों के नगरातर होने के कारण यह वश कितना प्राचीन समझा जाता है।

---

*श्रीदेशलः सुकृत पेसल वित्त कोटी। चंचच्चतुर्दश जगज्जनितावदातः
शत्रुंजय प्रमुख विश्रुत सप्त तीर्थः। यात्रा चतुर्दश चकार महमहेन ।। उपकेशगच्छ पट्टावली ष्ट १९२
†श्रीविक्रमादुडुपवाजि कृशानुसोम-संवत्सरे १३७१ तपसि मासि चतुर्दशेऽह्नि।
पुष्ये शुभे धवलपक्षशशाङ्कवारे, लग्ने झपे च बलशालिनि वर्तमाने।। 'नाभिनन्दन जिनोद्धार पृष्ट १६८

२—वि सं० १००५ में उपकेशगच्छीय पं० जम्बुनाग ने 'मुनिपति चरित्र' नाम का ग्रन्थ लिखा है और यह ग्रन्थ जेसलमेर के भण्डार में विद्यमान है।

३—वि० सं० १०११ का एक शिलालेख ओसियों के मन्दिर की एक मूर्ति पर है जिसको श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने प्राचीन लेख संग्रह भाग १ पृष्ठ ११ पर मुद्रित करवाया है।

४—वि सं० १ १३ का शिलालेख भी ओसियों के मन्दिर में लगा हुआ है इसको भी श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने प्राचीन लेख संग्रह भाग १ पृष्ठ १९२ पर छपाया है।

५—वि स० १०२५ उपकेशगच्छीय पं जम्बुनाग ने 'जिनशतक' नामक काव्य की रचना की वह समय काव्य गुच्छक नामक पुस्तक के पृष्ठ ५२ पर मुद्रित हो चुका है।

६—वि सं० १०७३ आचार्य देवगुप्तसूरि ने 'नवपद प्रकरण' नामक ग्रन्थ निर्माण किया था वह सेठ देवचन्द्र लालभाई सूरत वालों की ओर स मुद्रित हो चुका है तथा नवतत्वगाथा नामक ग्रन्थ भी इसी आचार्य ने लिखा है।

७—वि० सं ९१५ में उपकेशगच्छाचार्य कृष्णर्षि के शिष्य जयसिंह ने धर्मोपदेशमालावृत्ति की रचना की थी। वह पाटण के भण्डार में विद्यमान है जिसकी नोंध जैन ग्रन्थावली पृष्ठ १८२ पर की गई है।

८—विक्रम की नौवीं शताब्दी में बापदगच्छीय आचार्य बप्पभट्टसूरि एक महाप्रभाविक आचार्य हुए जो जैनसमाज में विशेष विख्यात हैं। उन्होंने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया जिसने ग्वालियर में एक विशाल मन्दिर बना कर उसमें सुवर्णमय मूर्ति स्थापन करवाई थी। राजा आम के एक राणी वैश्यवंश की थी उनकी सन्तान जैनधर्म पालन करने से ओसवंश में शामिल हुई तथा उनमें स किसी ने राजा के कोठार का काम करने से उनकी जाति राजकोठारी कहलाई उसी वंश में सेठ कर्माशाह हुआ कि जिन्होंने विक्रमकी सोलहवीं शताब्दी में पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय का सोलहवां उद्धार करवाया जिसका शिलालेख आज भी शत्रुंजय तीर्थ पर विद्यमान है उसमें लिखा है कि—

> एतश्च गोपाह्वगिरौ गरिष्ट: श्रीबप्पभट्टी प्रतिबोधितश्च ।
> श्री आमराजोऽजनितस्यपत्नी काचित् बभूव व्यवहारि पुत्री ।।
> तत्कुक्षि जाता: किल राज कोष्टागाराह्व गोत्रे सुकृतैक पात्रे ।
> श्री ओसवंशे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽमी पुरुषाः प्रसिद्धाः ।।
>
> "प्राचीन जैन लेख संग्रह द्वि० भाग पृ० १

इस लेख स इतना तो स्पष्ट पाया जाता है कि वि० सं ८० पूर्व ओसवंशीय लोग भारत के चारों ओर फैल गये थे इस प्रकार एक प्रान्त एक एक नगर में उत्पन्न हुआ महाजनसंघ इस प्रकार फैल जाने में कितनी शताब्दियों का समय चाहिये पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

९—मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज की शोध खोज से ओसियों के एक भग्न मन्दिर के खण्डहरों म एक टूटी हुई चन्द्रप्रभ की मूर्ति के नीचे खण्डित पत्थर के टुकड़े पर शिलालेख मिला था जिसमें सं० १ २ ××× आदित्यनाग गोत्रे × × लिखा हुआ था शायद आदित्यनाग गोत्र वालों ने उस मन्दिर एवं मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई हो। इससे पाया जाता है कि सं १ २ पू० उपकेशपुर उपकेशवंशियों से फला-फूला एवं अच्छा आबाद था।

१०—विक्रम की छट्ठी शताब्दी का जिक्र है कि श्वेत हूण तोरमाण ने पजाब की तरफ से आकर मारवाड़ को विजय कर भिन्नमाल में अपनी राजधानी कायम की। वहा जैनाचार्य्य हरिगुप्तसूरि आये थे उन्होंने तोरमाण को उपदेश देकर जैनधर्म का अनुरागी बनाया और उसने भिन्नमाल में भगवान् ऋषभदेव का मंदिर भी बनाया पर तोरमाण के बाद उसका पुत्र मेहिरकुल हुआ। जब मे मेहिरकुल ने राजसत्ता हाथ में ली तब से ही जैनों के दिन बदल गये। मेहिरकुल ने जैनों पर इतना सख्त जुल्म गुजारा कि कई जैनों को अपने जान माल बचाने की गरज से जननी जन्मभूमि का त्याग कर सौराष्ट्र, कोंकन और लाट प्रदेश (गुजरात) की ओर जाना पड़ा था। आज उक्त प्रदेशों में ओसवाल, पोरवाल और श्रीमालादि जातिया निवास करती दृष्टिगोचर हो रहीं हैं वे सब मेहिरकुल के अत्याचारों से दुखित होकर मारवाड से ही गई हुई हैं। अत विक्रम की छट्ठी शताब्दी में ओसवाल, पोरवाल और श्रीमाल जातियों का मारवाड में विशाल संख्या में होना साबित होता है। अत इससे उपकेशवश की प्राचीनता साबित होती है।

११-वि० स० ८०२ मे आचार्य शीलगुणसूरि की सहायता मे वनराज चावड़ा ने अणहल्लपुर नाम का नया पाटन शहर बसाया था। उस समय भी चंद्रावती भिन्नमालादि मारवाड के नगर ओसवालादि जैन जातियों से सुशोभित थे और कई मुत्सद्दी एवम् व्यापारियों को आमन्त्रण-पूर्वक बडे ही सन्मान सत्कार से पाटण ले गये थे और यह बात है भी ठीक कि पहिले जमाने में नगर की आबादी का मुख्य कारण महाजन ही समझा जाता था। जहा महाजन होते हैं व्यापार खुल उठता है और व्यापार की उन्नति का कारण भी महाजन ही हैं तथा राजतत्र चलाने में भी महाजन मुत्सद्दियों की कार्यकुशलता से राज का प्रबन्ध व्यवस्थित और जनता को आराम रहता था। अत पहिले जमाने में जहा तहा महाजनों की आवश्यकता रहा करती थी।

इन प्रमाणों से विक्रम की पाचवीं छट्ठी शताब्दी में ओसवश के लोग भारत के अनेकों विभागों में फैले हुए थे तो यह जाति कितनी प्राचीन समझी जा सकती है।

१२—वल्लभी का भग जो एक बार ही नहीं किन्तु कई बार हुआ है पर सबसे पहिली बार वल्लभी का भग विक्रम की चौथी शताब्दी में हुआ था और उसमें कागसी का कारण की कथा को मुख्य बतलाई जाती है जिसके लिए प्राचीन ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है कि—

केकावती नगरी में काकु और पातक नाम के दो बनाह गौत्रीय साधारण गृहस्थ रहते थे। जब वहा से श्रीशत्रुजय तीर्थ का एक बड़ा भारी सघ निकला तो वे काकु और पातक भी उस सघ में यात्रार्थ सिद्धगिरी गए थे। पूर्व जन्म के सस्कारों के कारण किसी वल्लभीनगरी के साधर्मी भाई ने उन काकु पातक की धर्म निष्ठा देख कर अपने यहा रख लिए और उनको सहायता देकर व्यापार कराया। इन बिरादरों के बडे भारी पुण्योदय हुए कि उस व्यापार में पुष्कल द्रव्य पैदा कर लिया। बाद इनकी सतान में दो पुरुष पैदा हुए जिन्हों का नाम था राका और बाका। राका के एक पुत्री थी जिसका नाम था चम्पा। राका ने किसी देश के व्यापारियों से अपनी पुत्री चम्पा के लिए एक बाल सँवारने के कारण 'कागसी' खरीद की थी तथा वह कागसी ऐसी थी कि वल्लभीनगरी में उसके सदृश दूसरी कौंगसी नहीं थी। एक समय राजा शल्यादित्य की कन्या बगीचा में गई थी, भाग्यवशात् उसी समय चम्पा भी वहा आ गई थी। उसके पास कागसी देखी तो राजकन्या ने कहा कि चम्पा यह कागसी मुझे दे दे और जितना खर्चा लगा हो वह मेरे से ले ले, पर चम्पा ने बालभाव के कारण कागसी देने से इन्कार कर दिया और वहा से चल कर अपने मकान पर आ

१५-वि० स० ५०८ का एक शिलालेख कोटा राज्यान्तर्गत अटारू नामक ग्राम के एक जैनमन्दिर के भग्न खण्डहरों में प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी जोधपुरवालों की शोध-खोज से मिला था। मुंशीजी ने उस शिलालेख की ठीक समालोचना करते हुए स्वरचित "राजपूतानाकीशोध-खोज" नामक पुस्तक में लिखा है कि प्रस्तुत शिलालेख में भैंसाशाह के नाम का उल्लेख किया/गया है। उस भैंसाशाह के लिए मुन्शीजी ने लिखा है कि भैंसाशाह के और रोड़ा विनजारा के आपस में व्यापारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट था कि जिसको चिरस्थायी बनाने के लिए उन दोनों ने अपने नाम से एक ग्राम आबाद किया जिसका नाम भैंसरोडा .भैंसरोड़ा अर्थात् भैंसाशाह का नाम और रोड़ा विनजारा का नाम। प्रस्तुत भैंसरोड़ा ग्राम मेवाड़ इलाके में आज भी विद्यमान है। इस लेख से यह पाया जाता है कि विक्रम की पाचवी शताब्दी पूर्व उपकेशवंश अनेक नगरों में खूब ही फला फूला और वृद्धि पाया हुआ था। जब हेमवन्त पट्टावलीकार दूसरी शताब्दी में मथुरा निवासी ओसवश शिरोमणि श्रावक पोलाक का उल्लेख करते हैं तथा वि० स० २२२ में आभा नगरी में धनकुबेर जगाशाह सेठ वसता था उस पर क्यों नहीं विश्वास किया जाय ? तथा विक्रमपूर्व ९७ वर्ष उपकेशपुर में महावीर स्नात्र समय १८ गोत्र के भावुकों ने स्नात्रीय वन कर पूजा पढाई थी इसमें शंका ही क्यों हो सकती है। पूर्वोक्त सब प्रमाण हमारी पट्टावलियों में लिखा हुआ ओसवंश उत्पत्ति का समय वि० स० पूर्व ४०० वर्षों को प्रमाणित करता है।

१६-पुरातत्त्व की शोधखोज से अनेक पदार्थ ऐसेभी मिलते हैं जो इतिहास क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। कुछ अर्सा पहले पूर्व प्रदेश की भूमि खोदने का काम करते समय एक मूर्ति मिली है जिस पर कुछ भाग खंडित शिलालेख भी है उसमें स० १८४ (८४) और श्रीवश अक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं जिसकी समालोचना-'श्वेताम्बर जैन' अखबार में जो आगरे से प्रकाशित होता है की गई थी। जब हम श्रीवश ज्ञाति की ओर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि यह ज्ञाति उपकेशवश की ही होनी चाहिये। कारण, इसी जाति का एक शिलालख विक्रम की सोलहवीं* शताब्दी का मिलता है। इनके अलावा वंशावलियों में भी श्रीवंश ज्ञाति के यत्र तत्र प्रमाण मिलते हैं। यदि हमारी धारणा ठीक है और श्रीवश ज्ञाति उपकेशवंश की ही ज्ञाति हो तो कोई कारण नहीं कि हम उपकेश वश को वीरात् ७० वर्ष मानने में किसी प्रकार की शका करें, क्योंकि वि० स० पूर्व ९७ वर्ष में तो उपकेशवश के १८ गोत्रों का पता मिलता है और वे गोत्र उस समय के पूर्व बन चुके थे। जब वीरात् ७० वर्षों में इस वश की उत्पत्ति हुई हो तो १८४ वर्षों में गोत्रों का नाम सस्करण हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

१७-महावीर निर्वाण से ८४ वर्ष का एक शिलालेख पं० गौरीशंकरजी ओझा की शोध-खोज से वर्ली ग्राम से मिला है वह लेख एक पत्थर खण्ड पर खुदा हुआ है और अजमेर के अजायबघर में सुरक्षित है। शिलालेख खंडित है। अत यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि यह शिलालेख इतना ही था या इसके पूर्व उत्तर विभाग में और भी कुछ लिखा हुआ था जो प्रस्तुत लेख के साथ सम्बन्ध रखता हो।

---

*"संवत् १५३० वर्षे माघशुद्धि १३ रवौ श्री श्रीवंशे श्रे० देवा० भा० पाचु पु० श्रे० हापा भा० पुहती पु० श्रे महिराज सुश्रावकेण भा०मातरसहितेनपितृ श्रेयसे श्रीअंचलगच्छेश जयकेशरी-सूरिणामुपदेशेन श्री सुमतिनाथ बिंब कारितं प्र० श्री संघेन"। 'बा० पू० ना० लेखांक ६६४"

आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास वीर निर्वाण सं० ८४ में हुआ था और पट्टावलियों में यह भी लिखा मिलता है कि आपश्री के शरीर का सिद्धगिरि पर जहाँ अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ श्रीसंघ ने एक विशाल स्तूप भी बनाया था। शायद प्रस्तुत लेख उस स्तूप के साथ सम्बन्ध रखने वाला हो। और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि वीर निर्वाण के बाद ८४ वर्ष का जैसा रत्नप्रभसूरि के स्वर्गवास का समय मिलता है वैसा दूसरा कोई नहीं मिलता है। यह केवल मेरा अनुमान ही है, पर कभी २ ऐसा अनुमान सत्य भी हो सकता है।

परन्तु यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास सौराष्ट्र के शत्रुंजय तीर्थ पर हुआ है तब बर्ली ग्राम शत्रुंजय से सैकड़ों मील दूर है, फिर बर्ली से मिलने वाला शिलालेख रत्नप्रभसूरि से क्या सम्बन्ध रख सकता है ?

भगवान महावीर का मोक्ष पावापुरी में हुआ था पर आपके मन्दिर स्तूप अन्यान्य प्रदेश में भी मिलते हैं। इसी प्रकार रत्नप्रभसूरि भी एक महान उपकारी पुरुष हुए हैं और आपके भक्त लोग अनेक स्थानों में रहते थे। आपका उपकार भी बिलकुल निकट समय का ही था। यदि किसी भक्त जन के यदि स्फुरित हो उस समय तथा बाद में कुछ स्मृति-चिन्ह बनाया हो और उसमें लिख दिया हो कि भगवान महावीर के बाद ८४ वें वर्ष में आपका स्वर्गवास हुआ था तो कुछ असंभव भी नहीं है। मैंने यह निर्णय की तौर पर नहीं पर एक कल्पना की तौर पर ही अनुमान किया है।

इत्यादि उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से हम इस निर्णय पर आ सकते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि हुए थे और उन्होंने वीरात् ७ वें वर्ष उपकेशपुर में पधार कर वहाँ के राजा और प्रजा के लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित कर उस समूह का नाम 'महाजन संघ' रखा था। वही महाजन संघ आगे चल कर नगर के नाम पर उपकेशवंश कहलाया और ओसवंश व ओसवाल उसी उपकेशवंश का रूपान्तर नाम हुआ था इत्यादि।

हम उपरोक्त प्रमाणों से जिस निर्णय पर आये हैं जब तक इसके खिलाफ कोई विश्वासनीय प्रमाण न मिले वहाँ तक हमारा दृढ़ विश्वास है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि पू ४ वर्ष अर्थात् वीर निर्वाण के बाद ७ वर्ष में हुई थी और इसी प्रकार सब विद्वानों एवं ओसवालों को भी मानना एवं इस मान्यता पर विश्वास रखना चाहिये।

# महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ती विषय विद्वानों की सम्मतियें

१-श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने स्वसम्पादित प्राचीन लेख सग्रह खण्ड तीसरे के पृष्ठ २५ पर लिखा है कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम सं० ५०० से १००० वर्ष में हुई होगी जैसे कि आप लिखते हैं—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'ओसवाल' में 'ओस' शब्द ही प्रधान है। ओस' शब्द भी 'उएस' शब्द का रूपान्तर है और 'उएस' 'उपकेश' का प्राकृत है। इसी प्रकार मारवाड के अन्तर्गत 'ओसिया' नामक स्थान भी 'उपकेशनगर' का रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहां के राजपूतों की जीवहिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये। × × ×

जहाँ तक मैं समझता हूँ ( मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी असम्भव नहीं ) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य थे। उपरोक्त घटना के प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था इत्यादि जैन लेख संग्रह खण्ड तीसरा पृ० २५

नोट—ओसवालों का उत्पत्ति स्थान ओसियाँ और प्रतिबोधक आचार्यरत्नप्रभसूरि थे इस विषय में श्रीमान नाहरजी हमारे सम्मत हैं तथा आपका यह कहना भी ठीक है कि ओसवाल बनने की घटना के पूर्व पार्श्वनाथ की पट्ट-परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था ? क्योंकि पार्श्वनाथ की परम्परा का उपकेशगच्छ नाम उपकेशपुर में महाजनसघ बनाने के बाद में ही हुआ है। शेष शकाओ के लिये देखो 'शकाओं का समाधान' नामक लेख जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

२-इसी प्रकार 'ओसवाल जाति का इतिहास' के लेखक श्रीमान्भडारीजी ने भी नाहरजी का ही अनुकरण करते हुए कहा है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० स० ५०० से ९०० के बीच में हुई होगी।

३-श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालों ने पल्लीवाल पट्टावली नामक एक लेख आत्मानन्द शताब्दी अक के पृष्ठ १८७ पर मुद्रित करवाया है जिसमें आप लिखते हैं कि —

"श्वेताम्बर समाज में दो तीर्थंकरों की परम्परा अद्यावधि चली आती है। १-पार्श्वनाथ २-महावीर। भगवान महावीरदेव की विद्यमानता में प्रभु पार्श्वनाथजी के सन्तानिये केशीगणधर की विद्यमानता के प्रमाण श्वे० मूल आगमों में पाये जाते हैं यद्यपि केशी के अतिरिक्त और भी कई मुनिराज पार्श्वनाथ सन्तानिये उस समय विद्यमान थे और उसका उल्लेख अगसूत्रों में कई जगह प्राप्त है तथापि केशी मुख्य और प्रभाविक थे उनकी परम्परा आज तक भी चली आ रही है इसलिये वे यहाँ उल्लेखनीय हैं।

इस परम्परा के छट्ठे पटधर रत्नप्रभसूरिजी नामक आचार्य बहुत प्रभाविक हो गये हैं कहा जाता है कि ओसिया ( उपकेश ) नगरी में वीर निर्वाण सम्वत् ७० के बाद १८०००० क्षत्रियपुत्रों को उपदेश देकर जैनधर्मी आपने ही बनाये और वहाँ से उपकेशनामावश चला जो आज भी ओसवाल के नाम से सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महत्वपूर्ण कार्य्य के लिये उनका नाम सदा चिरस्मरणीय रहेगा।"

४-जैनज्योति नामक साप्ताहिक अखबार जो अहमदाबाद से प्रकाशित होता है जिसके ता० ५-६-३७ के अक में एक पुस्तक की समालोचना करते हुए लिखते है —

आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास वीर निर्वाण सं० ८४ में हुआ था और पट्टावलियों में यह भी लिखा मिलता है कि आपश्री के शरीर का सिद्धगिरि पर जहाँ अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ श्रीसंघ ने एक विशाल स्तूप भी बनाया था। शायद प्रस्तुत लेख उस स्तूप के साथ सम्बन्ध रखने वाला हो। और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि वीर निर्वाण के बाद ८४ वर्ष का जैसा रत्नप्रभसूरि के स्वर्गवास का उल्लेख मिलता है वैसा दूसरा कोई नहीं मिलता है। यह केवल मेरा अनुमान ही है, पर कभी २ ऐसा अनुमान सत्य भी हो सकता है।

परन्तु यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास सौराष्ट्र के शत्रुंजय तीर्थ पर हुआ है तब बर्ली ग्राम शत्रुंजय से सैंकड़ों मील दूर है, फिर बर्ली से मिलने वाला शिलालेख रत्नप्रभसूरि से क्या सम्बन्ध रख सकता है ?

भगवान महावीर का मोक्ष पावापुरी में हुआ था पर आपके मन्दिर स्तूप अन्यान्य प्रदेशों में भी मिलते हैं। इसी प्रकार रत्नप्रभसूरि भी एक महान उपकारी पुरुष हुए हैं और आपके भक्त लोग अनेक स्थानों में रहते थे। आपश्री का उपकार भी बिलकुल निकट समय का ही था। यदि किसी भक्त जन ने भक्ति से प्रेरित हो उस समय तथा बाद में कुछ स्मृति-चिन्ह बनाया हो और उसमें लिख दिया हो कि भगवान महावीर के बाद ८४ वें वर्ष में आपका स्वर्गवास हुआ था तो कुछ असम्भव भी नहीं है। मैंने यह निर्णय की तौर पर नहीं पर एक कल्पना की तौर पर ही अनुमान किया है।

इत्यादि उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों से हम इस निर्णय पर आ सकते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि हुये थे और उन्होंने वीरात् ७० वें वर्ष उपकेशपुर में पधार कर वहाँ के राजा और प्रजा के लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित कर उस समूह का नाम 'महाजन संघ' रखा था। यही महाजन संघ आगे चल कर नगर के नाम पर उपकेशवंश व उपकेशगच्छ और ओसवाल व ओसवाल उसी उपकेशवंश का रूपान्तर नाम हुआ था इत्यादि।

हम उपरोक्त प्रमाणों से जिस निर्णय पर आये हैं, जब तक इसके खिलाफ कोई विश्वासनीय प्रमाण न मिले वहाँ तक हमारा दृढ़ विश्वास है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० पू० ४०० वर्ष अर्थात् वीर निर्वाण के बाद ७० वर्ष में हुई थी और इसी प्रकार सब विद्वानों एवं ओसवालों को भी मानना एवं इस मान्यता पर विश्वास रखना चाहिये।

# महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ती विषय विद्वानों की सम्मतियें

१-श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने स्वसम्पादित प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरे के पृष्ठ २५ पर लिखा है कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम स० ५०० से १००० वर्षमें हुई होगी जैसे कि आप लिखते हैं—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'ओसवाल' में 'ओस' शब्द ही प्रधान है। ओस' शब्द भी 'उएस' शब्द का रूपान्तर है और 'उएस' 'उपकेश' का प्राकृत है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत 'ओसिया' नामक स्थान भी 'उपकेशनगर' का रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहाँ के राजपूतों की जीवहिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये। × × ×

जहाँ तक मैं समझता हूँ ( मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी असम्भव नहीं ) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य थे। उपरोक्त घटना के प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था इत्यादि जैन लेख संग्रह खण्ड तीसरा पृ० २५

नोट—ओसवालों का उत्पत्ति स्थान ओसियाँ और प्रतिबोधक आचार्यरत्नप्रभसूरि थे इस विषय में श्रीमान नाहरजी हमारे सम्मत हैं तथा आपका यह कहना भी ठीक है कि ओसवाल बनने की घटना के पूर्व पार्श्वनाथ की पट्ट-परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था ? क्योंकि पार्श्वनाथ की परम्परा का उपकेशगच्छ नाम उपकेशपुर में महाजनसंघ बनाने के बाद में ही हुआ है। शेष शंकाओ के लिये देखो 'शंकाओं का समाधान' नामक लेख जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

२-इसी प्रकार 'ओसवाल जाति का इतिहास' के लेखक श्रीमान्भण्डारीजी ने भी नाहरजी का ही अनुकरण करते हुए कहा है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० स० ५०० से ९०० के बीच में हुई होगी।

३-श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालों ने पल्लीवाल पट्टावली नामक एक लेख आत्मानन्द शताब्दी अंक के पृष्ठ १८७ पर मुद्रित करवाया है जिसमें आप लिखते हैं कि —

"श्वेताम्बर समाज में दो तीर्थंकरों की परम्परा अद्यावधि चली आती है। १-पार्श्वनाथ २-महावीर। भगवान महावीरदेव की विद्यमानता में प्रभु पार्श्वनाथजी के सन्तानिये केशीगणधर की विद्यमानता के प्रमाण श्वे० मूल आगमों में पाये जाते हैं यद्यपि केशी के अतिरिक्त और भी कई मुनिराज पार्श्वनाथ सन्तानिये उस समय विद्यमान थे और उसका उल्लेख अगसूत्रों में कई जगह प्राप्त है तथापि केशी मुख्य और प्रभाविक थे उनकी परम्परा आज तक भी चली आ रही है इसलिये वे यहाँ उल्लेखनीय हैं।

इस परम्परा के छट्ठे पटधर रत्नप्रभसूरिजी नामक आचार्य बहुत प्रभाविक हो गये हैं कहा जाता है कि ओसिया ( उपकेश ) नगरी में वीर निर्वाण सम्वत् ७० के बाद १८०००० क्षत्रियपुत्रों को उपदेश देकर जैनधर्मी आपने ही बनाये और वहाँ से उपकेशनामावंश चला जो आज भी ओसवाल के नाम से सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महत्वपूर्ण कार्य्य के लिये उनका नाम सदा चिरस्मरणीय रहेगा।"

४-जैनज्योति नामक साप्ताहिक अखबार जो अहमदाबाद से प्रकाशित होता है जिसके ता० ५-६-३७ के अंक में एक पुस्तक की समालोचना करते हुए लिखते है —

# महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ती विषय विद्वानों की सम्मतियें

१–श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने स्वसम्पादित प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरे के पृष्ठ २५ पर लिखा है कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम स० ५०० से १००० वर्ष में हुई होगी जैसे कि आप लिखते हैं—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'ओसवाल' में 'ओस' शब्द ही प्रधान है। ओस' शब्द भी 'उएस' शब्द का रूपान्तर है और 'उएस' 'उपकेश' का प्राकृत है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत 'ओसिया' नामक स्थान भी 'उपकेशनगर' का रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहां के राजपूतों की जीवहिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये। × × ×

जहाँ तक मैं समझता हूँ ( मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी असम्भव नहीं ) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य थे। उपरोक्त घटना के प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था इत्यादि         जैन लेख संग्रह खण्ड तीसरा पृ० २५

नोट—ओसवालों का उत्पत्ति स्थान ओसियाँ और प्रतिबोधक आचार्यरत्नप्रभसूरि थे इस विषय में श्रीमान नाहरजी हमारे सम्मत हैं तथा आपका यह कहना भी ठीक है कि ओसवाल बनने की घटना के पूर्व पार्श्वनाथ की पट्ट-परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था ? क्योंकि पार्श्वनाथ की परम्परा का उपकेशगच्छ नाम उपकेशपुर में महाजनसघ बनाने के बाद में ही हुआ है। शेष शकाओ के लिये देखो 'शकाओं का समाधान' नामक लेख जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

२–इसी प्रकार 'ओसवाल जाति का इतिहास' के लेखक श्रीमान्भंडारीजी ने भी नाहरजी का ही अनुकरण करते हुए कहा है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० स० ५०० से ९०० के बीच में हुई होगी।

३–श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालों ने पल्लीवाल पट्टावली नामक एक लेख आत्मानन्द शताब्दी अंक के पृष्ठ १८७ पर मुद्रित करवाया है जिसमें आप लिखते हैं कि —

"श्वेताम्बर समाज में दो तीर्थंकरों की परम्परा अद्यावधि चली आती है। १–पार्श्वनाथ २–महावीर। भगवान महावीरदेव की विद्यमानता में प्रभु पार्श्वनाथजी के सन्तानिये केशीगणधर की विद्यमानता के प्रमाण श्वे० मूल आगमों में पाये जाते हैं यद्यपि केशी के अतिरिक्त और भी कई मुनिराज पार्श्वनाथ सन्तानिये उस समय विद्यमान थे और उसका उल्लेख अंगसूत्रों में कई जगह प्राप्त है तथापि केशी मुख्य और प्रभाविक थे उनकी परम्परा आज तक भी चली आ रही है इसलिये वे यहाँ उल्लेखनीय हैं।

इस परम्परा के छट्ठे पटधर रत्नप्रभसूरिजी नामक आचार्य बहुत प्रभाविक हो गये हैं कहा जाता है कि ओसिया ( उपकेश ) नगरी में वीर निर्वाण सम्वत् ७० के बाद १८०००० क्षत्रियपुत्रों को उपदेश देकर जैनधर्मी आपने ही बनाये और वहाँ से उपकेशनामावश चला जो आज भी ओसवाल के नाम से सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महत्वपूर्ण कार्य्य के लिये उनका नाम सदा चिरस्मरणीय रहेगा।"

४–जैनज्योति नामक साप्ताहिक अखबार जो अहमदाबाद से प्रकाशित होता है जिसके ता० ५–६–३७ के अंक में एक पुस्तक की समालोचना करते हुए लिखते है —

जो आन्दोलन ओसियाँ नगर से ( जो मारवाड़ में जोधपुर के निकट आजकल तो ग्राममात्र है ) आरम्भ किया था और सर्व प्रथम उस नगर के राजा उत्पलदेव पवार ( सूर्यवंशी) को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर राजा सहित १८ गोत्रों के क्षत्रियों को जैनधर्म अंगीकार कराया था, एवं उन्हें सकुटुंब जैन क्षत्रिय बनाया था। उसके फलस्वरूप ओसवाल ( ओसियाँ वाले ) जाति उत्पन्न और आरम्भ हुई। एक जाति की स्थापना सिर्फ चमत्कार वश नहीं हो सकती थी। सिद्धि और चमत्कार तो कई जगह नजर आते हैं लेकिन कोई जनसमूह अन्धश्रद्धा या अंध विश्वास से एक सूत्र में बंधना स्वीकार नहीं करता है। जब तक मनोवृत्तियाँ एक कौम में नहीं आतीं और चित्त को शान्ति व आनन्द की आशा नहीं होती तब तक कोई भी नये पंथ पर आना पसन्द नहीं करता। बाद में १८ गोत्र स्थापित हुये और यह आन्दोलन कभी तीव्र तो कभी मंद गति से चलता रहा।

ओसवाल समाज की परिस्थिति पृष्ठ २ लेखक श्रीमान् मूलचन्दजी बोहरा—अजमेर

८—ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय मैंने आज पर्यन्त जितने ग्रन्थ देखे हैं उनके सारांश रूप इस निर्णय पर आया हूँ कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई है और इसका शुरू से महाजन संघ, बाद उपकेशवंश नाम था जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं। एक समय इस जाति की बड़ी भारी जाहोजलाली थी। 'हंसराज मूथा महाजनों की महत्ता शीर्षक लेख"

९—मैं ओसवालों को उत्पत्ति के विषय में कतई अनभिज्ञ था परन्तु जब मुझे ओसवालोत्पत्ति विषयक साहित्य पढ़ने का मुनि श्रीज्ञानसुंदरजी की कृपा से अवसरप्राप्त हुआ और उपकेशगच्छ चरित्र, नाभिनन्दन जिनोद्धार पट्टावलियां और वंशावलियां आदि तथा शिलालेख संग्रह आदि का अवलोकन किया तो मेरी तो यह धारणा हुई कि ओसवाल जाति जिसके पहले दो नाम उपकेशवंश और महाजनवंश हैं वह अति प्राचीन है और विक्रम से ४०० वर्ष पहिले इसकी उत्पत्ति होने में कोई शंका नहीं है। जो लोग धार्मिक साहित्य को बिलकुल गप्प ही समझते हैं और उस पर विश्वास नहीं करते उनकी बात तो जाने दीजिये परन्तु मैं उन आदमियों में से नहीं हूँ। धार्मिक साहित्य धार्मिक पुरुषों द्वारा लिखा जाता है और वे हमसे ज्यादा सच्चे होते हैं। कोई बात किस विशेष कारण से कुछ की कुछ लिख गई हो वह बात दूसरी है परन्तु यह नहीं हो सकता कि सबका सब साहित्य ही झूठ कल्पित अथवा गप्प हो। "श्रीवल्लभ शर्मा"

इस प्रकार अनेक विद्वानों की सम्मतियें मेरे पास मौजूद हैं पर ग्रंथ बढ़ जाने के भय से केवल नमूने के तौर पर कतिपय सज्जनों की सम्मतियां दर्ज कर शेष को मुलतवी रखदी हैं। उपरोक्त सम्मतियों को दो विभागों में विभाजित कर दिया जाय तो एक विभाग ओसवंश की उत्पत्ति का समय विक्रम की पांचवीं शताब्दी से दशवीं शताब्दी का और दूसरा विक्रम पूर्व ४०० वर्ष का निर्णय करता है। विक्रम की पांचवीं से दशवीं शताब्दी कहने वालों के पास कुछ भी प्रमाण नहीं है वे केवल अनुमान से ही अपना मगज लड़ाते हैं और उनका मुख्य आधार शोध खोज पर है। यदि शोध खोज से भविष्य में इस समय से प्राचीन प्रमाण मिल जायगा तो वे उसको सहर्ष मानने को तैयार हैं। अतः उनका मत अभी निश्चित नहीं हैं। तब दूसरे पक्ष की सम्मतियें वि० पू० ४०० वर्ष की हैं। इनका विश्वास ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ जैनधर्म के धुरन्धर आचार्यों के लिखे पट्टावल्यादि ग्रंथों पर है। इन सबका निर्णय करना विद्वानों की विचारधारा पर ही छोड़ दिया जाता है।

इन्द्रिय जन्य सुख से रहित केवल महाकष्ट रूप परम्परा नहीं चला सकता है। इस वास्ते जैनधर्म का संप्रदाय धूर्त का चलाया हुआ नहीं किन्तु अष्टादश दूषण रहित अर्हत् का चलाया हुआ है।

जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रन्थ पृष्ठ ७७

२—आचार्य श्रीविजयनेमिसूरिश्वरजी जब पालड़ी के संघ के साथ जैसलमेर पधार रहे थे ओसियाँ तीर्थ पर आपके दर्शन हुए और रत्नप्रभसूरि के विषय में वार्तालाप हुआ तो आपने फरमाया कि आचार्य रत्नप्रभसूरि जो भगवान पार्श्वनाथ के छट्टे पाट पर हुये उन का जैन समाज पर बड़ा भारी उपकार है कि उन्होंने इसी ओसियां नगरी में ओसवालवंश की स्थापना की थी इत्यादि।

३—वयवृद्ध मुनिश्री सिद्धविजयजी महाराज जो लोहार की पोल के उपाश्रय विराजते थे जब एक मदिर में पूजा पढ़ाई जा रही थी वहाँ मैं भी गया और करीब ७५ साधु साध्वियें वहाँ पधारे थे। कई साधुओं ने मुझे पूछा कि तुम किस गच्छ के हो ? मैं उपकेशगच्छ का हूँ। उपकेश एटले शु ? आचार्य रत्नप्रभसूरि का गच्छ उपकेशगच्छ है। यह नाम ही उन्होंने नया ही सुना अर्थात् उनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। बाद मैंने उन महात्माओं को समझाया तथा मुनिश्रीसिद्धविजयजीमहाराज ने कहा कि अरे साधुओ ! तुम इस बात को भले ही न समझते हो पर मैं जानता हू कि उपकेश गच्छ सब से पुराना और जेष्ठ गच्छ है इसके संस्थापक हैं आचार्यरत्नप्रभसूरीश्वरजी जो भगवान् पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर हुये हैं जिन्होंने मारवाड़ में ओसियाँनगर में क्षत्रियों को प्रतिबोध करके ओसवाल बनाये थे इत्यादि।

४—पन्यास श्रीगुलाबविजयजीमहाराज भट्ठी की पोल एवं पं० वीरविजयजी महाराज के उपाश्रय में विराजते थे। मैं जब विं० स० १९७४ में अहमदाबाद गया था तो आप के दर्शनार्थ गया। वहां भी ओसवालों के संबध में बातें हुई तो आपने फरमाया कि ओसवालों को वीर स ७० में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने बनाये थे। मैंने पूछा कि इसके लिये आपके पास कोई प्राचीन प्रमाण है तो आपने एक हस्तलिखित प्राचीन पट्टावली के पन्ने निकाल कर मुझे बताया कि देखो इस पट्टावली में स्पष्ट लिखा है कि वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में आचारपतित सवा लक्ष क्षत्रियों को जैनी बनाया। उन जैनों का नाम ही उपकेशवंश तथा ओसवाल हुआ है इत्यादि।

५—आचार्य विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज ने सूरतनगर गोपीपुरा की नेमुभाई की वाड़ी में व्याख्यान में फरमाया कि ओसवालो ! तुम्हारी जन्मभूमि मारवाड़ में ओसियां नगरी है, वीरात ७० वें वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहा के राजपूतों को जैनी बनाये, वही लोग ओसियां नगरी के नाम से ओसवाल कहलाये। विक्रम की छट्ठी शताब्दी में हूणों के अत्याचार के कारण मारवाड़ से बहुत से ओसवाल इधर गुजरात की ओर आगये हैं पर ओसवालों का उत्पत्तिस्थान तो ओसियां नगरी ही हैं। आचार्य रत्नप्रभसूरि की कराई हुई प्रतिष्ठा वाला महावीर मंदिर आज भी ओसिया में विद्यमान है।

६—आचार्य बुद्धिसागरसूरिजी महाराज फरमाते हैं कि —

उपकेशगच्छ—तेवीसमा तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभुना शासननी गच्छ परंपरा हजु चालु जहती। अत्यारे तेमनी पाटे छट्ठा श्रीरत्नप्रभसूरिजी थया। तेमणे उपकेश पट्टनमाँ महावीर स्वामीनी प्रतिमानी प्रतिष्ठा करी। तेमणे ओसियानगरीमां राजा अने क्षत्रियोने प्रतिबोधी तेओनो ओशवंश

अधिक से अधिक टैक्स था (पञ्चशतीश शोषणपाशिकम्) कि जिसको साधारण लोग सुख से दे ही नहीं सकते थे। फिर भी ब्राह्मणों के साम्राज्य में वह बिचारे कर भी तो क्या सकते थे? उनको मजबूर हो देना ही पड़ता था इस कारण उन ब्राह्मणों की सुस्ती तथा अर्थात् नादिरशाही से जनता के नाक में दम आ गया था और वह इस कष्ट से मुक्त होना चाहती थी पर इसका कोई उपाय ही नहीं था।

जब उपकेशपुर के राजा मन्त्री और नागरिक लोगों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था तब उन ब्राह्मणों का टैक्स जनता पर ज्यों का त्यों ही रहा। कारण जैन हो गए तो क्या हुआ? संस्कार विधान जन्म विवाह और मरणादि क्रिया तो करानी ही पड़ती थी क्योंकि वह जमाना ही क्रियाकांड का था। छोटी २ बातों में भी उन ब्राह्मणों की खुशामद करनी पड़ती थी।

पर कहा है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत' अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो उसके पैर उखड़ ही जाते हैं। इन ब्राह्मणों के अन्याय का भी यही हाल हुआ।

एक समय मंत्री ऊहड़ किसी कार्यवशात् म्लेच्छों के देश में गया था। वापिस लौटने के बाद में ब्राह्मणों ने उद्घोषणा कर दी की ऊहड़ मंत्री म्लेच्छो के देश में जाकर पतित बन गया है। अतः इसके यहाँ कोई भी ब्राह्मण क्रियाकाण्ड नहीं करावे इत्यादि। इस पर ऊहड़ ने उन विप्रों के सामने बहुत नम्रता पूर्वक लाचारी की और द्रव्य खर्च करने या ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिए कहा पर सत्ता के नशे में ब्राह्मणों ने एक भी नहीं सुनी। अतः मंत्री दुःखित हो कर सदैव के लिए जनता को इस संकट से मुक्त होने का एक उपाय सोच कर अपने आदमियों को हुक्म दे डाला और उन्होंने ब्राह्मणों को खूब पीटा परन्तु ब्राह्मण हमेशा अवध्य हुआ करते हैं। तत्पश्चात् एक ऐसी घटना बनी कि ऊहड़ ने एक लाख [illegible] को [illegible] और ब्राह्मणों के पीछे कर दिये। ब्राह्मण वहां से भाग कर श्रीमालनगर में चले गये ऊहड़ ने भी उनका पीछा किया और जाकर श्रीमालनगर पर धावा बोल दिया। श्रीमाल नगर के महाजनों ने ब्राह्मणों से पूछा और उन्होंने सब हाल कह सुनाया। इस पर महाजनों ने ऊहड़ के पास जाकर प्रार्थना की ऊहड़ ने कहा कि यदि ब्राह्मण उपकेशपुर वासियों पर अपना हक छोड़ दें तो मैं उनको क्षमा कर वापिस लौट सकता हूँ। बस, महाजनों के कहने से श्रीमाली ब्राह्मणों ने स्वीकार कर लिया और एक इकरारनामा लिख दिया कि आज से उपकेशपुरवासियों पर हमारा कोई हक नहीं है। उस दिन से उपकेशवासियों के साथ ब्राह्मणों का सम्बन्ध टूट गया। अब उपकेशवंश वाले स्वतंत्र हैं कि अपना दिल चाहे उस ब्राह्मण से क्रियाकाण्ड करा सकते हैं और वह रिवाज आज पर्यन्त चला भी आ रहा है कि संसार भर की तमाम आर्य जाति के गुरु ब्राह्मण हैं पर उपकेशवंश वाले ओसवालों के साथ ब्राह्मणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा है।

तस्मात्उकेशज्ञातिर्निगुरवोब्राह्मणानहि । उएसनगरंसर्वकररीत्यासमृद्धिमत् ॥
सर्वथा सर्व ( रि ) निर्मुक्तमुएसनगरंपरम् । तत्प्रभृतिसंजातमितिलोकप्रवीणाम् ॥१॥

( [illegible] ) "श्रीमाली वणिक ज्ञातिभेद पुस्तक पृ० [illegible]"

इस लेख में मंत्री ऊहड़ का जिक्र आया है। यह वही ऊहड़ है जिसने उपकेशपुर में महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई थी जिसका समय वि० पू० ४०० वर्ष का ही था।

समयतुं छे, के जे वखते रत्नप्रभसूरिना पट्टधर यक्षदेवसूरि सिंधमा आव्या हता। अने सिंधमां आवता तेमने घणु कष्ट उठाववु पडयु हतु। आ यक्षदेवसूरिना उपदेश थी कक नामना एक राजपुत्रे जैन मंदिरो बंधाव्यों हतां, अने पछी दीक्षाधी हती।

"मुनिश्री विद्याविजयजी कृत मारी सिंधयात्रा पेज १२"

९—"उपस या ओसवंश के मूल सस्थापक यही रत्नप्रभसूरिजी थे जिन्होंने ओसवश की स्थापना महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष बाद उकेश ( वर्तमान ओसिया ) नगर में की थी"। आधुनिक कतिपय कुलगुरु कहा करते हैं कि रत्नप्रभाचार्यजी ने वीये बावीसे ( २२२ ) में ओसवाल बनाये यह कथन कपोल कल्पित है, इसमें सत्यांश बिल्कुल नहीं है। जैन पट्टावली और जैन ग्रन्थों में ओसवश स्थापना का समय महावीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद ही लिखा मिलता है जो वास्तविक मालूम होता है।

आबूके मन्दिरों का निर्माण ग्रन्थ पृष्ट २

१०—मुनि श्री ललितविजयजी जो आप सद्गुणानुरागी शान्तमूर्ति मुनि श्रीकर्पूरविजयजी महाराज के शिष्य हैं। आपने एक 'आगम सारसंग्रह' नामक वृहद्ग्रन्थ का निर्माण किया है जिसके सातवें भाग के पृष्ठ १४३ पर लिखा है कि —"प्रथमे आनगर नो नाम उपकेशपट्टण हतु × × श्रीपार्श्वनाथप्रभुना सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि × राजा उपलदेव × आदिकने प्रतिबोधी १८०००० अभिय राजपूतों के जेनु अरहकमल विरुद छे इत्यादि"

११–उवएसगच्छह मडणउ ए गुरु रयणप्पहसूरि त, धम्मु प्रकासइ तहि नयरे पाउ पणासइ दूरित ॥
तसु पटलच्छीसिरिमउडो गणहरु जखदेवसूरि त, हंसवेसि जसु जसु रमए सुरसरीयजलपूरि त ॥
तसु पयकमलमरालुलउ ए कक्कसूरि मुनिराउ त, ध्यानधनुपि जिणि भंजियउ ए मयणमल्ल भड़िवाउ त ॥
तसु सींहासणि मोहई ए देवगुप्तसूरि वईठु त, उदयाचलि जिम सहसकरो अगमतउ जिण दीठु त ॥
तिह पहुपाटअलंकरणु गच्छभार धोरउ त, राजु करइ संजम तणउ ए सिद्धसूरि गुरु एहु त ॥

आम्रदेवसूरि कृत समरा समरसिंह पृष्ट २३४ ॥

१२–सब ससार की आर्यजातियों के क्रिया काड कराने वाले गुरु ब्राह्मण हैं जब ओसवाल जाति के साथ ब्राह्मणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है इसका क्या कारण है ? उत्तर के लिये समरादित्य कथा का संस्कृत सार में एक श्लोक उद्धृत किया है और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली घटना प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होती है जिससे महाजनसघ एव उपकेशवश की प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

यह तो आप पहिले पढ़ ही चुके हैं कि श्रीमालनगर से १८००० व्यौपारियों के साथ ९००० ब्राह्मण भी उपकेशपुर में आये थे और यह बात है भी ठीक। कारण जहाँ यजमान जाते हैं उनके पीछे याचक भी जाया करते हैं क्यों कि याचकों का जीवनाधार यजमान ही होते हैं दूसरे यजमानों के संस्कारादि क्रिया काण्ड करने वाले वे ब्राह्मण ही थे उस समय के ब्राह्मणों ने इस सूत्र की भी रचना कर डाली थी कि 'ब्राह्मणो च जगत गुरु' बस फिर वो था ही क्या ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता और जबर्दस्त बाड़ा बन्दी कर रक्खी थी कि अपने यजमान के घरों में कोई भी क्रियाकाण्ड करवाना होता तो सिवाय उनके गुरु के (ब्राह्मण) कोई दूसरा करा ही नहीं सकता था। यही कारण है कि उन ब्राह्मणों का जनता पर

अधिक से अधिक टैक्स था (पंचदशीरा ग्रोकपाधिकम् ) कि जिससे साधारण लोग सुख से दे ही नहीं सकते थे । फिर भी ब्राह्मणों के साम्राज्य में वह विचार कर भी तो क्या सकते थे ? उनको मजबूर हो देना ही पड़ता था इस कारण उन ब्राह्मणों की जुल्मी सत्ता अर्थात् अधिकारशाही से जनता के नाक में दम आ गया था और वह उस कष्ट से मुक्त होना चाहती थी पर इसका कोई उपाय ही नहीं था ।

जब उपकेशपुर के राजा मन्त्री और नागरिक लोगों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था तब उन ब्राह्मणों का टैक्स जनता पर ज्यों का त्यों ही रहा कारण जैन हो गए तो क्या हुआ ? संस्कार विधान एवं जन्म विवाह और मरणादि क्रिया तो करानी ही पड़ती थी क्योंकि वह ब्राह्मणों ही क्रियाकांड का था । थोड़ी २ बातों में भी उन ब्राह्मणों की खुशामद करनी पड़ती थी ।

पर कहा है कि 'अतिसर्वत्र वर्जयेत्' अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो उसके पैर उखड़ ही जाते हैं । इन ब्राह्मणों के अन्याय का भी यही हाल हुआ ।

एक समय मंत्री ऊहड़ किसी पार्श्वनाथसन्तानीय महात्माओं के डेरा में गया था । वापिस लौटने के बाद भी ब्राह्मणों ने उपालम्भ कर दी की ऊहड़ मंत्री महात्माओं के डेरा में जाकर पतित बन जाता है । अब इनके यहाँ कोई भी ब्राह्मण क्रियाकांड नहीं कराते इत्यादि । इस पर ऊहड़ ने उन विप्रों के सामने बहुत नम्रता पूर्वक लाचारी की और द्रव्य खर्च करने या ब्राह्मणों को भोजन करने के लिए कहा पर उत्ता के घमंड में ब्राह्मणों ने एक भी नहीं सुनी । अतः मंत्री कुपित हो कर सदैव के लिए जनता को इस आतङ्क से मुक्त होने का एक उपाय सोच कर अपने आदमियों को हुक्म दे डाला और उन्होंने ब्राह्मणों को खूब पीटा परन्तु ब्राह्मण हमेशा अवध्य हुआ करते हैं । तत्पश्चात् एक ऐसी घटना बनी कि ऊहड़ ने एक लाख यवनों को बुलाकर और ब्राह्मणों के पीछे कर दिए । ब्राह्मण वहां से भाग कर श्रीमालनगर में चले गये यवनों ने भी उनका पीछा किया और चलकर श्रीमालनगर पर धावा बोल दिया । श्रीमाल नगर के महाजनों ने ब्राह्मणों से पूछा और उन्होंने सब हाल कह सुनाया । इस पर महाजनों ने ऊहड़ के पास जाकर प्रार्थना की ऊहड़ ने कहा कि यदि ब्राह्मण उपकेशपुर वासियों पर अपना हक छोड़ दें तो मैं यवनों को समझा कर वापिस लौटा सकता हूँ । बस, महाजनों के कहने से श्रीमाली ब्राह्मणों ने स्वीकार कर लिया और एक इकरारनामा लिख दिया कि आज से उपकेशपुरवासियों पर हमारा कोई हक नहीं है । उस दिन से उपकेशवंशियों के साथ ब्राह्मणों का सम्बन्ध टूट गया । अब उपकेशवंश वाले स्वतंत्र हैं कि अपना दिल चाहे उस ब्राह्मण से क्रियाकांड करवा सकते हैं और यह रिवाज आज पर्यन्त चला भी आ रहा है कि संसार भर की तमाम आर्य जाति के गुरु ब्राह्मण हैं पर उपकेशवंश वाले ओसवालों के साथ ब्राह्मणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा है ।

तस्माउकेशज्ञातिनांगुरवोब्राह्मणानहि । उएसनगरंसर्वकरीयासमृद्धिमत् ॥
सर्वथा सर्व ( वि ) निर्मुक्तमुएसनगरंपरम् । तत्प्रभृतिसंजातमितिलोकप्रवीणाम् ॥१॥

( [illegible] ) [illegible]

इस लेख में मंत्री ऊहड़ का जिक्र आया है । यह वही ऊहड़ है जिसने उपकेशपुर में महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई थी जिसका समय वि पू ४ [illegible] वर्ष का ही था ।

# ओसवंशोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान

ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उपकेशवंश अर्थात् ओसवालवंशोत्पत्ति का समय निश्चित करना जटिल समस्या है। इस सम्बन्ध में जितने साधनों की आवश्यकता है, उतने साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही बाधा भारतीय प्रत्येक विषय के इतिहास-निरूपण में उपस्थित होती है। ऐतिहासिक साधनों की न्यूनता का मुख्य कारण गत शताब्दियों में मुस्लिम शासन की अत्याचार पूर्ण धर्मान्धता ही है। उन्होंने अपने युग में भारतीय इतिहास के प्रधान साधनों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। कई उत्तम २ पुस्तक-भंडार जला दिये, भारतीय मन्दिर और मूर्त्तियों को खंडित कर दिया, अनेक कीर्तिस्तभ एवं असंख्य शिलालेख नष्ट प्राय कर दिये। इस प्रकार आर्य्य जनता के धार्मिक अधिकारों पर सघातिक चोट कर ऐतिहासिक साधनों को भविष्य के लिये लुप्त प्राय: कर दिया। इतस्तत प्राप्त हुये जीर्णावशिष्ट साधनों का भी बहुत कुछ अंश जीर्णोद्धार करते समय लक्ष्य न देने से अलभ्य हो गया। अततोगत्वा जो कुछ भी ऐतिहासिक मसाला विद्वानों के हाथ लगा है, उन्हीं साधनों की सहायता से इतिहास की आधार-भित्ति प्रस्तुत की जाती है। इधर पौर्वात्य और पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों और संशोधकों की शोध खोज से इतिहास की कुछ सामग्री प्राप्त हुई है। वह अपर्याप्त होने पर भी इतिहास-क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डालती है। जैसे कि :—

१—भगवान महावीर को ऐतिहासिक पुरुष मानने में एक समय विद्वत्समाज हिचकिचाता था, परन्तु पुरातत्वज्ञों की खोज के पश्चात् केवल महावीर को ही नहीं अपितु प्रभु पार्श्वनाथ को भी ऐतिहासिक महापुरुष एक ही आवाज से स्वीकार करता है। इतना ही नहीं किंतु अभी निकट भविष्य में ही प्राप्त काठिया वाड़ प्रान्त के अन्तर्गत प्रभास पाटण नगर के एक ताम्रपत्र ने तो भगवान नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध कर दिया है, जो कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर थे।

२—ऐतिहासिक प्रमाणों से मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्त भी जैन सिद्ध हो चुके हैं और जिस सम्प्रति को लोग काल्पनिक व्यक्ति समझ बैठे थे, आज इतिहास की कसौटी पर एक जैन सम्राट प्रमाणित हुये हैं। यही क्यों ? किन्तु जो शिलालेख, स्तंभलेख एव आज्ञापत्र इत्यादि आज तक सम्राट अशोक के माने जाते थे, उन सब लेखों को डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचद ने इतिहास के अकाट्य प्रमाणों द्वारा सम्राट सम्प्रति के सिद्ध किये हैं। इस सम्बन्ध में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष १६ के प्रथम अक में उज्जैन निवासी श्रीमान् सूर्य्यनारायणजी व्यास ने भी लेख लिख कर प्रकाश डाला है एव श्री नागेन्द्र वसु ने भी यह सिद्ध किया है कि जो शिलालेख, स्तम्भलेख, आज्ञापत्र इत्यादि सम्राट अशोक के माने जा रहे हैं, वास्तव में प्राय वे लेखादि सम्राट सम्प्रति के हैं।

३—कलिंगपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराज खारवेल, जिनके आदर्श कार्य्यों के उल्लेख में जैन और जैनेतर साहित्य प्राय: मौन था, किन्तु उड़ीसा की हस्तीगुफा के शिलालेख ने यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि महाराजा खारवेल जैन धर्म के उपासक ही नहीं अपितु कट्टर प्रचारक थे।

४—इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों का अनुमान था कि ओसवालजाति की उत्पत्ति दशवीं वि० शताब्दी के निकटवर्ती समय में हुई होगी परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक साधनों के आधार पर एव कोटाराज्यान्तर्गत

…क नाम से प्राप्त वि० सं० ५०८ का शिलालेख जो कि इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी की शोध खोज से प्राप्त हुआ है और आपने जिसका उल्लेख "राजपूताना की शोध खोज" नामक पुस्तक में भी किया है। इन सब साधनों के आधार पर ओसवालजाति की उत्पत्ति का समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी सिद्ध होता है और पट्टावलियों के आधार से वि० पू० ४०० वर्ष। तथा ज्यों २ शोध का कार्य विशाल रूप धारण करेगा, त्यों २ ऐतिहासिक विषयों पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जायगा।

आज १० वर्ष पूर्व मैंने "ओसवालजाति समय निर्णय" सम्बन्धी एक पुस्तिका लिखी थी। इस पुस्तक के द्वारा प्रस्तुत विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ा। तथापि कुछ व्यक्तियों ने इसी विषय में कई शंका उठाई उपस्थित की हैं, उनका समुचित समाधान करना ही मेरे इस निर्बंध का मुख्य उद्देश्य है।

उपकेश (ओसवाल) वंश के संस्थापक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के छट्टे पट्टधर आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि थे। इस विषय का प्रस्तुत ग्रन्थ में विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। आचार्य रत्नप्रभसूरि वि० पू० ४०० वर्ष अर्थात् वीर निर्वाण सं० ७० में मरुधर प्रान्त के उपकेशनगर में पधारे। अजैनों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये। इस नवदीक्षित जनसमूह का नाम "महाजन वंश" रख एक सुदृढ़ संस्था स्थापित की। कालान्तर में वे उपकेशनगर से अन्य प्रान्तों में जा जा कर बसने लगे। वहां वे अपने आदि स्थान के नामानुसार "उपकेशवंशी" कहलाने लगे। संभवतः यह नामसंस्कार मूल समय के पश्चात् ही चौथी शताब्दी में हुआ हो इसका एक कारण यह भी है कि महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा के पश्चात् ३०३ वर्ष में उपकेशपुर में महावीर मूर्ति के ग्रन्थीछेद का उपद्रव हुआ तब से कई उपकेशपुर के निवासी लोग उपकेशपुर का त्याग कर अन्य नगरों में जा जा कर बसने लगे और वहाँ के लोग उपकेशपुर से आने वाले को उपकेशी कहने लगे हों और बाद में उस उपकेश शब्द ने उपकेशवंश का रूप धारण कर लिया हो तो यह संभव हो सकता है। जब हम पट्टावलियों देखते हैं तो उसमें भी विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशवंश के आम-तौर से उल्लेख मिलते हैं इससे हमारा ऊपर का कथन और भी पुष्ट हो जाता है।

अब रही शिलालेख की बात इस विषय में यह समझना कठिन नहीं है कि उस समय शायद साधारण बातों के शिलालेख नहीं खुदाये जाते होंगे जैसे आज भी खुदाई काम होता है तो भूगर्भ से बहुत सी जैन मूर्तियां निकलती हैं उन पर शिलालेख नहीं हैं एवं सम्राट सम्प्रति के कई मन्दिर मूर्तियें इस समय मौजूद हैं पर उनमें से किसी पर शिलालेख नहीं है तथा ओसियों और कोरंटा के महावीर मूर्तियों पर भी शिलालेख नहीं है। दूसरे शायद कथित शिलालेख होंगे भी परन्तु मुस्लिम अत्याचारों से वे नष्ट हो गये होंगे*। अतः उस समय और उसके आस पास के समय से जैन समाज की करोड़ों की तादाद और लाखों मूर्तियाँ बनाने पर भी आज उस समय का कोई शिलालेख नहीं मिलता है यही कारण है कि जैन शिलालेखों का समय विक्रम की नौवीं दसवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है।

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उपकेशपुर का अपभ्रंश ओसियों नाम हुआ। इस समय में उपकेशवंश का नाम भी रूपान्तरित हो कर "ओसवाल" होना युक्तियुक्त ही है। वर्तमान "ओसवाल"

* मथुरा का कंकाली टीला आदि का खोद काम करने से कई मूर्तियां आदि प्राचीन स्मारक मिले हैं उसमें थोड़े पर शिलालेख हैं शेष पर शिलालेख नहीं हैं।

# ओसवंशोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान

ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उपकेशवंश अर्थात् ओसवालवंशोत्पत्ति का समय निश्चित करना जटिल समस्या है। इस सम्बन्ध में जितने साधनों की आवश्यकता है, उतने साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही बाधा भारतीय प्रत्येक विषय के इतिहास निरूपण में उपस्थित होती है। ऐतिहासिक साधनों की न्यूनता का मुख्य कारण गत शताब्दियों में मुस्लिम शासन की अत्याचार पूर्ण धर्मान्धता ही है। उन्होंने अपने युग में भारतीय इतिहास के प्रधान साधनों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। कई उत्तम २ पुस्तक-भंडार जला दिये, भारतीय मन्दिर और मूर्त्तियों को खण्डित कर दिया, अनेक कीर्तिस्तंभ एवं असंख्य शिलालेख नष्ट प्राय' कर दिये। इस प्रकार आर्य्य जनता के धार्मिक अधिकारों पर संघातिक चोट कर ऐतिहासिक साधनों को भविष्य के लिये लुप्त प्राय. कर दिया। इतस्तत प्राप्त हुये जीर्णावशिष्ट साधनों का भी बहुत कुछ अश जीर्णोद्धार करते समय लक्ष्य न देने से अलभ्य हो गया। अततोगत्वा जो कुछ भी ऐतिहासिक मसाला विद्वानों के हाथ लगा है, उन्हीं साधनों की सहायता से इतिहास की आधार-भित्ति प्रस्तुत की जाती है। इधर पौर्वात्य और पाश्चात्य पुरातत्वज्ञों और सशोधकों की शोध खोज से इतिहास की कुछ सामग्री प्राप्त हुई है। वह अपर्याप्त होने पर भी इतिहास-क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डालती है। जैसे कि .—

१—भगवान महावीर को ऐतिहासिक पुरुष मानने में एक समय विद्वत्समाज हिचकिचाता था, परन्तु पुरातत्वज्ञों की खोज के पश्चात् केवल महावीर को ही नहीं अपितु प्रभु पार्श्वनाथ को भी ऐतिहासिक महापुरुष एक ही आवाज से स्वीकार करता है। इतना ही नहीं किंतु अभी निकट भविष्य में ही प्राप्त काठियावाड़ प्रान्त के अन्तर्गत प्रभास पाटण नगर के एक ताम्रपत्र ने तो भगवान नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध कर दिया है, जो कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर थे।

२—ऐतिहासिक प्रमाणों से मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्त भी जैन सिद्ध हो चुके हैं और जिस सम्प्रति को लोग काल्पनिक व्यक्ति समझ बैठे थे; आज इतिहास की कसौटी पर एक जैन सम्राट प्रमाणित हुये हैं। यही क्यों ? किन्तु जो शिलालेख, स्तंभलेख एवं आज्ञापत्र इत्यादि आज तक सम्राट अशोक के माने जाते थे, उन सब लेखों को डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचद ने इतिहास के अकाट्य प्रमाणों द्वारा सम्राट सम्प्रति के सिद्ध किये हैं। इस सम्बन्ध में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष १६ के प्रथम अक में उज्जैन निवासी श्रीमान् सूर्य्यनारायणजी व्यास ने भी लेख लिख कर प्रकाश डाला है एव श्री नागेन्द्र वसु ने भी यह सिद्ध किया है कि जो शिलालेख, स्तम्भलेख, आज्ञापत्र इत्यादि सम्राट अशोक के माने जा रहे हैं, वास्तव में प्राय वे लेखादि सम्राट सम्प्रति के हैं।

३—कलिंगपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराज खारवेल, जिनके आदर्श कार्य्यों के उल्लेख में जैन और जैनेतर साहित्य प्राय. मौन था, किन्तु उड़ीसा की हस्तीगुफा के शिलालेख ने यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि महाराजा खारवेल जैन धर्म के उपासक ही नहीं अपितु कट्टर प्रचारक थे।

४—इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों का अनुमान था कि ओसवालजाति की उत्पत्ति दशवीं वि॰ शताब्दी के निकटवर्ती समय में हुई होगी परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक साधनों के आधार पर एव कोटाराज्यान्तर्गत

इन्हीं परमार जाति के उत्पलदेव को और हमारे श्रीमालनगर के राजवंश में उत्पन्न हुआ सूर्य्यवंशी उत्पलदेव को एक ही समझ लेना यह एक भयंकर भूल है देखिये।

तत्र श्री राजा भीमसेनः तत्पुत्र उत्पलश्च कुमार अपर नाम श्री कुमारः तस्य बान्धवः श्री सुरसुन्दरो युवराजो राज्य भारे धुरन्धरः" ॥ उपकेशगच्छ चरित्र"

इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमाल के राजवंश के साथ परमारवंश का कोई सम्बंध नहीं है। वंशावलियों में श्रीमालनगर के राजा भीमसेन को सूर्य्यवंशी कहा है। "तत्रश्रीमालनगरेसूर्य्यवंशी भीमसेन राजा राज्यंकरोति"। अब आगे चल कर देखिये श्रीमालनगर कितना पुराणा है।

श्रीमालनगर की प्राचीनता के संबंध में श्रीमालपुराण में लिखा है — [विमल प्रबन्ध

श्रीमाले ऽ हं निवत्स्यामि, श्रीमालं दयितं मम। श्रीमाले ये निवत्स्यन्ति, त भविष्यन्ति मे प्रियाः"॥
श्रीकारस्थापनापूर्व ,श्रीमालेद्वापरान्तरे। श्रीश्रीमाले इतिख्याति, तस्थाने निहिता श्रिया ॥
श्रीमालमितियन्नाम,रत्नमालमितिस्फुटम्। पुष्पमालंपुनर्भिन्नमालं,युगचतुष्टये ॥ खंड ५
चत्वारि यस्यनामानि, वितन्वन्ति मतिस्थितिम्। अहो! नगरसौन्दर्य्यं, महार्यं त्रिजगत्यपि ॥

उपदेश पति इन उपदेश आनन्दजी

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों में श्रीमालपुर ( भिन्नमाल ) की प्राचीनता के सम्बन्ध में प्रमाण मिलते हैं। इस नगर की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में यह कथन ठीक है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में भिन्नमाल के शासनकर्ता परमार थे। परमार कृष्णराज के दो शिलालेख विक्रम संवत् ११११ और ११२३ के मिले हैं। इसके पूर्व भिन्नमाल नगर पर किसका राज्य था ? इस विषय में पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ५९ पर लिखा है कि वि० संवत् ४० और इसके पूर्व भिन्नमाल पर गुर्जरों का राज्य था। विक्रम की ६ ठी शताब्दी में हूण तोरमाण पंजाब की ओर से मारवाड़ में आया, उस समय भी भिन्नमाल पर गुर्जरों का ही राज्य था। तोरमाण ने गुर्जरों को पराजित कर दिया अतएव वे गुर्जर लाट प्रान्त की ओर चले गये। उन गुर्जर लोगों के नामानुसार ही उस प्रान्त का नाम गुर्जर पड़ गया। हूण तोरमाण आया था उस समय मारवाड़में बाघपुर, उपकेशपुर, भानलीपुर, माण्डव्यपुर एवं भिन्नमालादि अनेक प्रसिद्ध नगर थे। इन नगरों में से भिन्नमाल नगर को अधिक पसंद कर हूण तोरमाण ने वहीं पर अपनी राजधानी कायम की। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भिन्नमाल नगर अच्छा आबाद नगर होगा। जिस समय तोरमाण ने भिन्नमाल में अपनी राजधानी स्थापित की, उस समय वहाँ पर जैनाचार्य हरिदत्त एवं देवगुप्त विराजते थे। उन्होंने तोरमाण को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनधर्मानुरागी बनाया था। और जैनधर्म का अनुरागी होकर तोरमाण ने भिन्नमालनगर में भगवान् ऋषभदेवजी का मन्दिर बनाया। अतएव इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भिन्नमालनगर में जैन-धर्मानुयायियों की खूब अच्छी आबादी होगी इत्यादि। ( कुवलयमाला कथा से )

ओझाजी के उपरोक्त लेख में यह भी लिखा मिलता है कि वि० सं० १८५ में भिन्नमालनगर पर

शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शोध खोज करने पर भी दशवीं शताब्दी से प्राचीन प्रमाण नहीं मिलता है। यह स्वाभाविक ही है। जिस शब्द का प्राचीनता की दृष्टि से अभाव है, उसका अस्तित्व ढूँढ़ना मानो "पानी को मथ कर घृत निकालना है"। अतएव यह निर्विवाद स्वीकार करना चाहिये कि "महाजन-वंश" के रूप में "ओसवाल" जाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई। इस घटना के समय के सम्बन्ध में मतभेद अवश्य है। इस सम्बन्ध में नवीन विचार वाले निश्चयात्मक सिद्धान्त पर तो नहीं आये हैं, किन्तु कई प्रकार की दलीलें अवश्य किया करते हैं किसी पदार्थ के निर्णय करने में तर्क और शंकाएं उत्पन्न होना लाभप्रद ही है किंतु इसके पूर्व सत्य को स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त करना कुछ विशेष लाभप्रद है।

पदार्थ विशेष की पूर्णतया जाच और निर्णय करने में सर्व प्रथम समय, शक्ति, अभ्यास एवं साधन जुटाना आवश्यक होता है, किन्तु दु ख है कि प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में शायद ही किसी संशोधक ने आज तक यथा साध्य परिश्रम किया हो। इस महत्वपूर्ण विषय के सम्पादन के लिए सर्व प्रथम कर्त्तव्य तो ओसवालों का ही है। उन्हें चाहिये कि वे अपनी जाति की उत्पत्ति के विषय में शोध खोज कार्य के लिए सतर्क हों। यह लिखते हुए भी हमें दु ख होता है कि अखिल भारतीय ओसवाल महासम्मेलन ने अपने ४-५ अधिवेशनों में इस विषय के इतिहास के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। यह उचित नहीं कि जिस समाज के उद्धार के लिए तो हम हजारों रुपयों के साथ अपनी शक्ति और समय का व्यय कर दें किन्तु उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बिल्कुल मौन रहें। कहा है कि—"मूलं नास्ति कुत शाखा" अर्थात् जिस वृक्ष के मूल का पता नहीं, उसके अन्यान्य अङ्गों का उद्धार कैसे संभव हो सकता है? जब सम्मेलन के विद्वानों की भी यही दशा है तो अन्य साधारण व्यक्तियों के सम्बन्ध में तो कहा ही क्या जाय? प्रायः ओसवालवंशीय आज केवल धनोपार्जन करने में ही अपना गौरव समझते हैं, किन्तु इसकी उन्हें चिन्ता नहीं है कि सभ्य समाज उन्हें प्राचीन समझता है या अर्वाचीन। आधुनिक समय की इस विषम परिस्थिति को देखते हुये यह आवश्यक हो गया है कि हम सर्व प्रथम अपने इतिहास को उपलब्ध करें।

उपकेश वंश (ओसवालों) की उत्पत्ति के समय के सम्बन्ध में हमारे सम्मुख जो शंकाएँ उपस्थित होती हैं, उनका समाधान करने के पूर्व हम दो बातों का उल्लेख करना परमावश्यक समझते हैं १—कुछ लोगों ने हमारे पूर्वज सूर्य्यवंशी महाराजा उत्पलदेव को भ्रम से परमार जाती का उत्पलदेव समझते हुये ओसवाल जाति को दशवीं शताब्दी का निकटवर्ती समाज समझ लिया २—दूसरी बात महाजनसंघ या उपकेशवंश की उत्पत्ति के वास्तविक समय पर बिल्कुल लक्ष्य न देते हुये "ओसवाल" शब्द की उत्पत्ति के समय को ही महाजन संघ का मूल उत्पत्ति-समय समझ लिया। ये दोनों भ्रमात्मक बातें ओसवंश उत्पत्ति-समय के समय निर्णय में बाधक हैं। अतएव प्रथम इनका समाधान करना अधिक आवश्यक है।

उपकेशपुर नामक नगर बसाने वाले उत्पलदेव को कई इतिहास से अनभिज्ञ व्यक्ति परमार कहते हैं। वस्तुत वे परमार नहीं थे। भाट भोजकों की दंतकथाओं के अतिरिक्त किन्हीं प्राचीन ग्रन्थों और पट्टावलियों में उत्पलदेव राजा को परमार लिखा नहीं मिलता है। हमारे उत्पलदेव का समय तो विक्रम से ४०० वर्ष पूर्वका है, उस समय परमारों का अस्तित्व ही नहीं था। परमारों के आदि पुरुष धूम्रराज थे। उनके बाद उत्पलदेव नाम के एक राजा अवश्य हुये हैं, जिनका कि समय वि० की दशवीं शताब्दीका है।

और कैसे हुई ? अनेक प्रमाणों के आधार से यही स्पष्ट होता है कि ओसवाल शब्द की उत्पत्ति ओसियाँ नगरी से ही हुई । ओसियाँ उपकेशपुर का अपभ्रंश शब्द है और इस शब्द की उत्पत्ति का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास का है । इसके पूर्व इस नगर का नाम उपकेशपुर और जाति का नाम उपस-ऊकेश और उपकेश था । जैसे —

क—"उपस" यह मूल शब्द है और ऊसवाली भूमि का द्योतक है, अर्थात् जिस भूमि पर ऊस (ओस का पानी) पड़ता हो उसे ओस अर्थात् ऊपस कहते हैं । इस भूमि पर जो शहर आबाद हुआ वह ऊपपुर-ओसपुर ऊसपुर कहलाया ।

ख—प्राकृत भाषा के लेखकों ने "उपस" शब्द को व्यवहृत करने में "ऊकेसपुर" प्रयुक्त किया है।

ग—संस्कृत के रचयिताओं ने अपनी सुविधा के लिये "ऊकेसपुर" को "उपकेशपुर" शब्द के रूप में परिवर्तित कर दिया । प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम ऊपस, ऊकेश और उपकेशपुर ही मिलता है । यथा—

"समेव मेवत भवितं पृथिव्यामूकेश नामास्ति पुरं" ॥ [illegible]

"कदाचितुपकेशपुरेश्वरस्य समवासरन्, वा पाश्वा उपनगरेषिन, स्थापितं भूपर्वा तथा" [illegible]

"अस्तिमस्तिपम्मकर्, भूमेर्मरुदेशस्यभूषणम् । निसर्गसर्गसुभगमूकेशपुरं परम्" [illegible]

"अस्ति उपकेशपुरंनगरं, तत्रोत्पलदेवनरेश्वोराज्यंकरोति । [illegible]

पूर्वोक्त प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों में सर्वत्र ऊपस ऊकेश या उपकेशपुरके नाम का ही उल्लेख मिलता है; परन्तु किसी भी स्थान पर ओसियाँ शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता । इससे यह निश्चय होता है कि जिसको आज हम ओसियाँ कहते हैं; उसका मूल नाम ऊकेश या उपकेशपुर ही था और इसी उपकेशपुर के नामानुकूल यहां के निवासियों का नाम उपकेशवंश हुआ है । यद्यपि कालांतर में तत्कालीन कारणों से गोत्र एवं जातियों के पृथक् पृथक् नाम पड़ गये, किन्तु अद्यावधि इन जातियों के प्रारम्भ में वही मूल नाम उपस ऊकेश, अथवा उपकेशवंश लिखने की पद्धति विद्यमान है । प्रमाणस्वरूप अनेकों शिलालेख इस समय भी विद्यमान हैं । देखिये इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १२१ पर ।

जब उपकेशपुर का अपभ्रंश "ओसियाँ" हुआ तब से कहीं २ ओसवंश ( ओसवाल ) शब्द का भी उल्लेख हुआ है पर वह बहुत थोड़े प्रमाण में और वह भी वि० १२ वीं शताब्दी के समीपवर्ती समय में दृष्टिगत होता है जैसे—

'सं० १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ भौमे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने श्री ओसवंशे मंत्रि धांधूकेन श्रीविमलमंत्री हस्तीशालायाँ श्रीआदिनाथ समवसरणं कारयाँ चक्रे श्रीनन्नसूरिपट्टे श्रीककसूरिभिः प्रतिष्ठितं पेथापदमी वात्सल्येन । [illegible]

इससे पूर्व ओसवाल शब्द का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है ।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यही प्रमाणित होता है कि ओसवाल शब्द मूल शब्द नहीं है, अपितु

---

✽ इस स्थान पर हमने समय का निर्णय न करके केवल प्राचीनकाल से व्यवहार में आते हुये "उपस" या उपकेश शब्द की व्यवहारिकता को ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

चावड़ावंशियों का राज्य था। सभवतः हूणों से ही चावड़ा वंशियों ने भिन्नमालनगर का अधिकार छीन लिया होगा।

पं० हीरालाल हसराज ने अपनी "जैनगोत्रसंग्रह" नामक पुस्तक में लिखा है कि वि० स० २०२ में भिन्नमाल पर अजीतसिंह नामक राजा का राज था। उस समय भिन्नमालनगर अच्छी आबादी पर था, परन्तु म्लेच्छ मीर मामोची ने इस नगर पर आक्रमण कर खूब लूटा था। खैर इसके पूर्व भिन्नमाल में किसका राज्य था ? इस सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक साधन उपलब्ध नहीं है पर पट्टावलियों के अनुसार वि० स० के ४०० वर्ष पूर्व भिन्नमाल पर सूर्य्यवंशी राजा भीमसेन का राज्य होना सिद्ध होता है।

इस प्रकार भिन्नमाल नगर की प्राचीनता सिद्ध करने के पश्चात् इस बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि कुछ व्यक्तियों ने आबू एव किराडू के उत्पलदेव परमार को और उपकेशपुर बसाने वाले भिन्नमाल के राजकुमार उत्पलदेव को एक ही मानने की भूल की है। पट्टावल्यादि प्रमाणो से भिन्नमाल के राजकुमार उत्पलदेव का समय वि० पू० ४०० वर्ष सिद्ध होता है। तब किसी कारणवश आबू के उत्पलकुमार परमार को जिसका कि समय वि० की दशवीं शताब्दी है—उपकेशपुर ( ओसिया ) के प्रतिहारों का आश्रय लेना पड़ा हो और—पश्चात् वह वापिस अपने नगर लौट गया हो। ऐसी दशामें ऐसा भ्रम करलेना कि उत्पलदेव परमार ने ही दशवीं शताब्दी में उपकेशपुर (ओसिया) बसाया होगा, अक्षम्य भूल है क्योंकि यह बात तो साधारण मनुष्य की समझ में भी आ सकती है कि जब उत्पलदेव परमार ओसियों में आकर प्रतिहारों की शरण में रहा था तब ओसियां उस समय से कितना प्राचीन होगा कि जिसमें उत्पलदेव परमार ने आकर आश्रय लिया था।

दूसरे ओसियों के महावीर मन्दिर में वि सं० १०१३ का शिलालेख लगा हुआ है उसमें लिखा है किः—

तस्या कापत्किल प्रेम्णालक्ष्मणः प्रतिहारताम् ततोऽभवत् प्रतीहार वंशोराम समुद्भवः ॥६॥ तद्वंशे सवशी वशीकृत रिपुः श्रीवत्सराजोऽभवत्कीर्त्तिर्य्यस्य तुषार हार विमला ज्योत्स्नास्तिरस्कारिणी नस्मिन्माभि सुखेन विश्व विचरे नत्वेव तस्माद्बहिर्निर्गन्तुं दिगिभेन्द्र दन्त मुसल व्याजाद कार्य्यीन्मतुः ॥ ७ ॥ समुदा समुद्रायेन महता चमूःपुरा पराजिता येन ˙ ˙ समदा ॥ ८ ॥ ˙ ˙˙समदारण तेनावनीशेन कृता भिरक्षैः सद् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रैः । समेतमेतत्प्रथितं पृथिव्यामूकेशनामास्ति पुरं गरीयः ॥ ९ ॥

जैनलेख सग्रह खड पहिला पृष्ट १९३

इस शिलालेख में उपकेशपुर में प्रतिहार वत्सराज का राज होना लिखा है। जब वत्सराज प्रतिहार का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का है अत आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर अच्छा आबाद था, फिर भी वह आठवीं शताब्दी में ही नहीं बसा था पर उस समय से भी बहुत प्राचीन था जो हमारी पट्टावलियों में विक्रमपूर्व चारसौ वर्ष से भी पूर्व बसा लिखा है। अत यह शका करना व्यर्थ है कि आबू के परमार उत्पलदेव ने वि० की दशवीं शताब्दी में ओसियां बसाई थी। यदि यह भूल उपकेशपुर बसाने वाले राजकुमार उत्पलदेव को परमार समझ लेने से ही हुई हो तो इस लेख में सशोधन कर लेना परमावश्यक है।

दूसरी शका उपकेशवश का नाम रूपान्तरित होकर "ओसवाल" शब्द से व्यवहार में आने से उत्पन्न हुई है। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना चाहिये कि "ओसवाल" शब्द की उत्पत्ति किस समय में

उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। प्राचीन कालमें जो जैन धर्मानुयायी उपकेशवंशीय थे वे ही आज ओसवाल नाम से विख्यात हैं। ओसवाल शब्द की प्रसिद्धि का प्रारम्भ वि० की ११ वीं शताब्दी के निकट होता है।

श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर अपने जैन लेखसंग्रह तृतीयखण्ड के पृष्ठ २५ पर "ओसवाल जाति" नामक लेख में लिखते हैं कि —

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि "ओसवाल" में ओस शब्द ही प्रधान है। 'ओस' शब्द भी उएश शब्द का रूपान्तर है और उएश शब्द उपकेश (संस्कृत रूप) का प्राकृत रूप है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत "ओसियां" नामक स्थान भी उपकेशनगर का ही रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहां के राजपूतों से जीवहिंसा छुड़ा कर उन्हें दीक्षित किया। पश्चात् वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये।"

श्रीमान् बाबूजी का कथन भी ऊपर के प्रमाणों से सर्वथा मिलता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि "ओसिया" शब्द उपकेश का ही अपभ्रंश है। और इस नगर को बसाने वाले श्रीमालनगर के राजकुमार उत्पलदेव के साथ पँवार (परमार) शब्द किसी स्थान पर नहीं है। अतएव जिन्हें आज हम ओसियां कहते हैं प्राचीन समय में उपकेशनगर था और जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं, प्राचीन काल में उन्हीं का मूलनाम उपकेशवंश था।

उपरोक्त दोनों बातों का निर्णय करने पर हमे इस सारांश को लक्ष्य में लेना चाहिये कि—

१—ओसवाल शब्द की प्राचीनता के सम्बन्ध में विक्रम की ११ वीं शताब्दी से पूर्व अन्वेषण करने में अपने समय को व्यर्थ व्यय न करें और न इस विषय की व्यर्थ दलीलों द्वारा दूसरों का समय नष्ट करें। कारण, ओसवाल शब्द मूल नहीं अपितु उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। अतएव जिन्हें ११ वीं शताब्दी से पूर्व इस जाति की प्राचीनता के प्रमाण ढूँढ़ने हों वे "उपकेशवंश" के नाम का प्रमाण ढूंढे, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व इस ओसवाल जाति का यही नाम प्रचलित था। और एक यह भी बात स्मरण रहे कि उपकेशवंश की प्राचीनता साबित हो जायगी तब ओसवाल जाति की प्राचीनता तो स्वतः सिद्ध हो जायगी, क्योंकि एक ही जाति के समयानुसार दो नाम व्यवहार में आये हैं।

२—दूसरा निष्कर्ष-कि उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर के राजकुमार उत्पलदेव और हैं तथा आबू के उत्पलदेव परमार और हैं। दोनों के समय में १४०० वर्ष का अंतर है। अतएव कोई भी व्यक्ति उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल नगर के राजकुमार उत्पलदेव को परमारवंशीय समझने की भूल न करें। कारण, वे वस्तुतः परमारवंशी नहीं पर सूर्यवंशी थे। केवल दोनों के नाम की सौम्यता होने से कई इतिहासानभिज्ञ मनुष्यों ने एक ही समझने की भूल की है। इसी कारण ये शंकाएँ उत्पन्न हुई हैं, किन्तु भविष्य के लिये ये शंकाएँ निर्मूल हो जायँ, इसी निमित्त ही हमारा यह प्रयास है अस्तु।

अब हम यहाँ यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि आज कल के कई लोग विचार-स्वातंत्र्य के नाम पर ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय किस प्रकार की शंकाएं करते हैं और वास्तव में वे शंकाएं ठीक हैं या स्वपर का समय शक्ति का व्यर्थ व्यय कराने वाली हैं देखिये।

शंका नं० १ —मुनोयत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसिया बसाई और इस उत्पलदेव का समय वि० की दशवीं शताब्दी है। यदि ओसवालजाति इसी ओसियां से उत्पन्न हुई है तो यह जाति वि० की दशवीं शताब्दी से प्राचीन किसी दशा में नहीं हो सकती है?

और कैसे हुई ? अनेक प्रमाणों के आधार से यही स्पष्ट होता है कि ओसवाल शब्द की उत्पत्ति ओसियाँ नगरी से ही हुई। ओसियाँ उपकेशपुर का अपभ्रंश शब्द है और इस शब्द की उत्पत्ति का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास का है। इसके पूर्व इस नगर का नाम उपकेशपुर और जाति का नाम ऊपस-ऊकेश और उपकेश था। जैसे —

क—"ऊपस" यह मूल शब्द है और ऊसवाली भूमि का द्योतक है अर्थात् जिस भूमि पर ऊस (ओस का पानी) पड़ता हो उसे ओस अर्थात् ऊपस कहते हैं। इस भूमि पर जो शहर आबाद हुआ वह ऊपसपुर ओसपुर उपसपुर कहलाया।

ख—प्राकृत भाषा के लेखकों ने "ऊपस" शब्द को ग्रन्थबद्ध करने में "ऊकेसपुर" प्रयुक्त किया है।

ग—संस्कृत के रचयिताओं ने अपनी सुविधा के लिये "ऊकेसपुर" को "उपकेशपुर" शब्द के रूप में परिवर्तित कर लिया। प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम ऊपस ऊकेश और उपकेशपुर ही मिलता है। यथा—

"समेव मेवत मथितं पृथिव्यामूकेश नामास्ति पुरं" ॥ ओसिया मंदिर का शिलालेख [illegible]

"कदाचित्पकेशपुरे वरपःसमवासरत्, ना प्राप्य तभगरस्मिन्, स्थापितं भूपतौ तथा" उपकेशगच्छ चरित्र

"अस्तिमस्तिचमत्कृत् भूमेर्मरुदेशस्य भूषणम्। निसर्गसर्गसुभगमुपकेशपुरं वरम्" [illegible]

"अस्ति उपकेशपुरं नगरं, तत्रोत्पलदेवनरेशोराज्यंकरोति।" उपकेशगच्छ पट्टावली

पूर्वोक्त प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों में सर्वत्र ऊपस ऊकेश या उपकेशपुरके नाम का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु किसी भी स्थान पर ओसियाँ शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। इससे यह निश्चय होता है कि जिसको आज हम ओसियाँ कहते हैं, उसका मूल नाम ऊकेश या उपकेशपुर ही था और इसी उपकेशपुर के नामानुकूल यहाँ के निवासियों का नाम उपकेशवंश हुआ है। यद्यपि कालांतर में तत्कालीन कारणों से गोत्र एवं जातियों के पृथक् पृथक् नाम पड़ गये, किन्तु अद्यावधि इन जातियों के प्रारम्भ में वही मूल नाम ऊपस ऊकेश, अथवा उपकेशवंश लिखने की पद्धति विद्यमान है। प्रमाणस्वरूप अनेकों शिलालेख इस समय भी विद्यमान हैं। देखिये इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १२१ पर।

जब उपकेशपुर का अपभ्रंश "ओसियाँ" हुआ तब से कहीं २ ओसवंश (ओसवाल) शब्द का भी उल्लेख हुआ है पर वह बहुत थोड़े प्रमाण में और वह भी वि० ११ वीं शताब्दी के समीपवर्ती समय में दृष्टिगत होता है जैसे—

'सं १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ भौमे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने श्री ओसवंशे मंत्रि धांधूकेन श्रीनिमसर्मंत्री हस्तीशालायाँ श्रीआदिनाथ समवसरणं कारयाँ चक्रे श्रीनन्नसूरिपट्टे श्रीकक्कसूरिभिः प्रतिष्ठितं वेसापाडमी वास्तव्येन। [illegible]

इससे पूर्व ओसवाल शब्द का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यही प्रमाणित होता है कि ओसवाल शब्द मूल शब्द नहीं है, अपितु

* इस स्थान पर हमने समय का निर्णय न करके केवल प्राचीनकाल से व्यवहार में आते हुये "ऊपस" या उपकेश शब्द की व्यवहारिकता को ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। प्राचीन कालमें जो जैन धर्मानुयायी उपकेशवशीय थे वे ही आज ओसवाल नाम से विख्यात हैं। ओसवाल शब्द की प्रसिद्धि का प्रारम्भ वि० की ११ वीं शताब्दी के निकट होता है।

श्रीमान बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर अपने जैन लेखसग्रह तृतीयखड के पृष्ठ २५ पर "ओसवाल जाति" नामक लेख में लिखते हैं कि :—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि "ओसवाल" में ओस शब्द ही प्रधान है। 'ओस' शब्द भी उएश शब्द का रूपान्तर है और उएश शब्द उपकेश (सस्कृत रूप) का प्राकृत रूप है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत "ओसियां" नामक स्थान भी उपकेशनगर का ही रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहां के राजपूतों से जीवहिंसा छुड़ा कर उन्हें दीक्षित किया। पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये।"

श्रीमान् बाबूजी का कथन भी ऊपर के प्रमाणों से सर्वथा मिलता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि "ओसिया" शब्द उपकेश का ही अपभ्रश है। और इस नगर को बसाने वाले श्रीमालनगर के राजकुमार उत्पलदेव के साथ पँवार (परमार) शब्द किसी स्थान पर नहीं है। अतएव जिन्हें आज हम ओसियां कहते हैं प्राचीन समय में उपकेशनगर था और जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं, प्राचीन काल में उन्हीं का मूलनाम उपकेशवश था।

उपरोक्त दोनो बातों का निर्णय करने पर हमे इस साराश को लक्ष्य में लेना चाहिये कि—

१—ओसवाल शब्द की प्राचीनता के सम्बन्ध में विक्रम की ११ वीं शताब्दी से पूर्व अन्वेषण करने में अपने समय को व्यर्थ व्यय न करें और न इस विषय की व्यर्थ दलीलों द्वारा दूसरों का समय नष्ट करें। कारण, ओसवाल शब्द मूल नहीं अपितु उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। अतएव जिन्हें ११ वीं शताब्दी से पूर्व इस जाति की प्राचीनता के प्रमाण ढूँढने हों वे "उपकेशवश" के नाम का प्रमाण ढूंढे, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व इस ओसवाल जाति का यही नाम प्रचलित था। और एक यह भी बात स्मरण रहे कि उपकेशवश की प्राचीनता साबित हो जायगी तब ओसवाल जाति की प्राचीनता तो स्वत सिद्ध हो जायगी, क्योंकि एक ही जाति के समयानुसार दो नाम व्यवहार में आये हैं।

२—दूसरा निष्कर्ष-कि उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर के राजकुमार उत्पलदेव और हैं तथा आबू के उत्पलदेव परमार और हैं। दोनों के समय में १४०० वर्ष का अतर है। अतएव कोई भी व्यक्ति उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल नगर के राजकुमार उत्पलदेव को परमारवशीय समझने की भूल न करें। कारण, वे वस्तुत परमारवंशी नहीं पर सूर्यवशी थे। केवल दोनों के नाम की सौम्यता होने से कई इतिहासानभिज्ञ मनुष्यों ने एक ही समझने की भूल की है। इसी कारण ये शकाएँ उत्पन्न हुई हैं, किन्तु भविष्य के लिये ये शकाएँ निर्मूल हो जायँ, इसी निमित्त ही हमारा यह प्रयास है अस्तु।

अब हम यहाँ यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि आज कल के कई लोग विचार-स्वातन्त्र्य के नाम पर ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय किस प्रकार की शकाए करते हैं और वास्तव में वे शकाएं ठीक हैं या स्वपर का समय शक्ति का व्यर्थ व्यय कराने वाली हैं देखिये।

शका न० १—मुनौयत नैणसी की ख्यात मे लिखा है कि आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसियां बसाई और इस उत्पलदेव का समय वि० की दशवीं शताब्दी है। यदि ओसवालजाति इसी ओसियां से उत्पन्न हुई हैं तो यह जाति वि० की दशवीं शताब्दी से प्राचीन किसी दशा में नहीं हो सकती है ?

समाधान—'मुनोयत नैणसी की ख्यात' में किसी भी स्थान पर यह नहीं लिखा है कि ऊहड़ के उत्पलदेव परमार ने ओसियां बसाई किन्तु नैणसी की ख्यात से तो ओसियां की बहुत प्राचीनता ही सिद्ध होती है। देखिये "नैणसी की ख्यात" प्रकाशक काशीनागरीप्रचारिणी सभा पृष्ठ २११ पर लिखा है कि—

"बारधी वराह का भाई उत्पलराय किराडू छोड़ कर ओसियां में जा बसा। सच्चियाय देवी प्रसन्न हुई और धन-माल दिया। ओसियां में देवल कराया।" इसकी टिप्पणी में लिखा है कि "वसंतगढ़ से प्राप्त हुवे सं० १ ९९ के परमारों के शिलालेख से पाया जाता है कि उत्पल राजा धरणीवराह का भाई नहीं किन्तु परदादा था, जिसका समय दशवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होना चाहिये।"

इस प्रमाण से यही प्रमाणित होता है कि ओसियां नगर उत्पलदेव परमार के पूर्व भी समृद्धि-सम्पन्न नगर था। इसी कारण उत्पलदेव परमार ने किराडू छोड़ कर ओसियां में निवास किया। यहां केवल शंका का ही समाधान है। ओसियां कितनी प्राचीन है, यह हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे। तात्पर्य यह है कि शंका करने वालों को पहले ग्रंथ का पूर्वापर सम्बन्ध देख लेना चाहिये ताकि समय व श्रम का अपव्यय न हो।

शंका नं० २—भगवान् श्रीपार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के ६ आचार्य हुए हैं। यदि ओसवाल वंश के संस्थापक अंतिम रत्नप्रभसूरि मान लिये जायें तो क्या आपत्ति है? इनका समय वि० की पांचवीं शताब्दी का है। यह समय ऐतिहासिक प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति के समय से मिलता जुलता है। अतः अनुमान किया जा सकता है कि ओसवंश के संस्थापक अन्तिम रत्नप्रभसूरि हैं?

समाधान—भगवान् श्रीपार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के ६ आचार्य हुवे और अंतिम रत्नप्रभसूरि का समय ५ वीं शताब्दी का है, यह सत्य है। अतः कुछ समय के लिये मान भी लिया जाय कि ओसवालजाति के आद्यसंस्थापक अंतिम रत्नप्रभसूरि हैं फिर भी इस समय के सम्बन्ध में प्रमाण देने के लिये तो प्रश्न हमारे सामने ज्यों का त्यों खड़ा ही रहेगा न? आद्यरत्नप्रभसूरि और अंतिम रत्नप्रभसूरि के बीच ९  वर्षों का अन्तर है। अंतिम रत्नप्रभसूरि के समय के तो अनेकों ग्रन्थ प्राप्त भी मिलते हैं, परन्तु किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख से यह पता नहीं चलता कि वि० की ५ वीं शताब्दी में अन्तिम रत्नप्रभसूरि ने ओसवालवंश की स्थापना की हो, क्योंकि उस समय का इतिहास इतने अंधेरे में नहीं है। कारण, अन्तिम रत्नप्रभसूरि के समकालीन एवं आस पास के समय में हुए अन्याचार्यों के निर्मित बहुतसारे ग्रन्थों में बहुत उल्लेख मिलते हैं। जब अन्तिम रत्नप्रभसूरिजी द्वारा एक प्रांत में इतना बड़ा परिवर्तन हो जाय और इस परिवर्तन के सम्बन्ध में उस समय के बने हुवे ग्रन्थों में गंध तक नहीं मिलता, यही प्रमाणित करता है कि यह घटना तत्कालीन ग्रंथ रचना के पूर्व सैंकड़ों वर्षों की होनी चाहिये। अन्यथा इतना महान परिवर्तन को लाखों मनुष्य एक धर्म को छोड़ दूसरे धर्म की दीक्षा ले कदापि छिपा हुआ नहीं रह सकता। अतएव जिनके सम्बन्ध में प्रमाण की गन्ध तक न मिले उन्हें केवल कल्पना एवं अनुमान मात्र से ओसवाल वंश का संस्थापक मान लेना और आद्य रत्नप्रभसूरि के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलने पर भी उनको न मानना यह दुराग्रह के सिवाय क्या है? उन प्रमाणों को लिखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह इस ग्रंथ में प्रमाण रूप में ही लिखा गया है, एवं आद्योपान्त पठन करने के पश्चात् पाठक स्वयं ही निर्णय कर सकेंगे।

शंका नं० ३—ओसवाल बनाने के समय ओसियां में महावीर का मंदिर बना। उसी मंदिर में एक

उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। प्राचीन कालमें जो जैन धर्मानुयायी उपकेशवशीय थे वे ही आज ओसवाल नाम से विख्यात हैं। ओसवाल शब्द की प्रसिद्धि का प्रारम्भ वि० की ११ वीं शताब्दी के निकट होता है।

श्रीमान बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर अपने जैन लेखसंग्रह तृतीयखंड के पृष्ठ २५ पर "ओसवाल ज्ञाति" नामक लेख में लिखते हैं कि —

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि "ओसवाल" में ओस शब्द ही प्रधान है। 'ओस' शब्द भी उएश शब्द का रूपान्तर है और उएश शब्द उपकेश (संस्कृत रूप) का प्राकृत रूप है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत "ओसियां" नामक स्थान भी उपकेशनगर का ही रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहाँ के राजपूतों से जीवहिंसा छुड़ा कर उन्हें दीक्षित किया। पश्चात् वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये।"

श्रीमान् बाबूजी का कथन भी ऊपर के प्रमाणों से सर्वथा मिलता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि "ओसिया" शब्द उपकेश का ही अपभ्रंश है। और इस नगर को बसाने वाले श्रीमालनगर के राजकुमार उत्पलदेव के साथ पँवार (परमार) शब्द किसी स्थान पर नहीं है। अतएव जिन्हें आज हम ओसिया कहते हैं प्राचीन समय में उपकेशनगर था और जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं; प्राचीन काल में उन्हीं का मूलनाम उपकेशवश था।

उपरोक्त दोनों बातों का निर्णय करने पर हमें इस साराश को लक्ष्य में लेना चाहिये कि.—

१—ओसवाल शब्द की प्राचीनता के सम्बन्ध में विक्रम की ११ वीं शताब्दी से पूर्व अन्वेषण करने में अपने समय को व्यर्थ व्यय न करें और न इस विषय की व्यर्थ दलीलों द्वारा दूसरों का समय नष्ट करें। कारण, ओसवाल शब्द मूल नहीं अपितु उपकेश शब्द का अपभ्रंश है। अतएव जिन्हें ११ वीं शताब्दी से पूर्व इस जाति की प्राचीनता के प्रमाण ढूँढ़ने हों वे "उपकेशवश" के नाम का प्रमाण ढूंढे; क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व इस ओसवाल जाति का यही नाम प्रचलित था। और एक यह भी बात स्मरण रहे कि उपकेशवश की प्राचीनता साबित हो जायगी तब ओसवाल जाति की प्राचीनता तो स्वत' सिद्ध हो जायगी, क्योंकि एक ही जाति के समयानुसार दो नाम व्यवहार में आये हैं।

२—दूसरा निष्कर्ष–कि उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर के राजकुमार उत्पलदेव और हैं तथा आबू के उत्पलदेव परमार और हैं। दोनों के समय में १४०० वर्ष का अतर है। अतएव कोई भी व्यक्ति उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल नगर के राजकुमार उत्पलदेव को परमारवशीय समझने की भूल न करें। कारण, वे वस्तुत परमारवंशी नहीं पर सूर्यवशी थे। केवल दोनों के नाम की [illegible] से कई इतिहासानभिज्ञ मनुष्यों ने एक ही समझने की भूल की है। इसी कारण ये शकाएं [illegible] हैं, किन्तु भविष्य के लिये ये शकाएँ निर्मूल हो जायँ, इसी निमित्त ही हमारा यह प्रयास है [illegible]

अब हम यहाँ यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि आज कल के कई लोग [illegible] पर ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय किस प्रकार की शंकाएं करते हैं और [illegible] हैं या स्वपर का समय शक्ति का व्यर्थ व्यय कराने वाली हैं देखिये।

शका न० १—मुनोयत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि आबू के [illegible] हुई। बसाई और इस उत्पलदेव का समय वि० की दशवीं शताब्दी है। [illegible] महत्वपूर्ण से उत्पन्न हुई है तो यह जाति वि० की दशवीं शताब्दी से प्राचीन [illegible] उपरोक्त उद्धृत

शिलालेख महावीर मंदिर का नहीं अपितु जिनदेव नामक श्रावक द्वारा किसी मंदिर के टूटे हुवे रंगमंडप के जीर्णोद्धार से सम्बन्ध रखता है। अतएव इस शिलालेख के द्वारा ओसवालवंशोत्पत्ति के समय का अनुमान करना केवल कल्पना मात्र ही है।

शंका नं० ४—कल्पसूत्र में भगवान महावीर से १००० वर्ष तक के आचार्यों की नामावली लिखी है; इस नामावली में न तो रत्नप्रभसूरि का नाम है और न ओसवाल बनाने का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि इस समय के बाद किसी समय में ओसवालों की उत्पत्ति हुई होगी।

समाधान—श्रीकल्पसूत्र भद्रबाहुकृत है और इसकी स्थविरावली देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय की है; जिनका कि समय ५ वीं शताब्दी का है। श्रीमान देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने महावीर से १००० वर्षों का क्रमबद्ध सब इतिहास नहीं लिखा, परन्तु उन्होंने केवल अपनी गुरुआवली लिखी है। भगवान महावीर के समय में दो परम्पराएं थीं १—पार्श्वनाथ परम्परा २—महावीर परम्परा। देवर्द्धि क्षमाश्रमण महावीर की परम्परा में थे। आचार्य वज्रसेनसूरि के ४ शिष्यों से चार शाखायें उत्पन्न हुई। उनमें से एक शाखा में क्षमाश्रमणजी थे अतः आपने केवल एक अपनी शाखा की गुरुआवली का उल्लेख कल्पसूत्र में किया है। जब कि श्री क्षमाश्रमणजी इस कल्पस्थविरावली में महावीर परम्परा और चन्द्रगुप्तादि समयोचित विषयों का ही इतिहास नहीं मिलता है तो पार्श्वनाथ परम्परा एवं उपकेशगच्छ के लिये तो कल्पसूत्र में स्थान कहां से मिले ? इतना यह तो नहीं कहा जा सकता कि जिस घटना का उल्लेख कल्पसूत्र की स्थविरावली में न हो वह ऐतिहासिक घटना ही नहीं। भला सम्राट सम्प्रति एवं खारवेल वगैरह का महत्त्वपूर्ण इतिहास है और उक्त स्थविरावली में उनकी गन्ध तक भी नहीं है इसको हम मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो फिर केवल ओसवंश और रत्नप्रभसूरि के लिये ही विरोध क्यों ? और। यह शंका तो ओसवाल बनाने की है; परन्तु कल्प स्थविरावली में तो पार्श्वनाथ परम्परा का नाम भी नहीं है, तथापि यह निर्विवाद सिद्ध है कि महावीर के समय के पहिले से ही पार्श्वनाथ की परम्परा विद्यमान थी। अतएव यह शंका निर्मूल है। इससे ओसवालोत्पत्ति की प्राचीनता में आक्षेप नहीं किया जा सकता है।

शंका नं० ५—ओसवालों में प्रथम अठारह गोत्रों का निर्माण हुआ बताया जाता है एवं वे अठारह जाति के राजपूतों से बने हैं। इन अठारह जाति के राजपूतों के सम्बन्ध में एक कवित्त भी कहा जाता है कि—

"प्रथम साख पवार १ सेष सिसोदा २ सिंगाला,
रणथंभा राठौर ३ वंश चवाल ४ बाछावाला ५
दइया ६ भाटी ७ सोनीगरा ८ कच्छावा ९ धनगौड़ १० कहीजे,
जादव ११ झाला १२ जिंद १३ लाज मरजाद लहीजे ॥
खरदरा पाट औपे खरा लेणा पाटज लाखरा,
एक दिन एते महाजन भये, सूरा बड़ी बड़ी साखरा ॥

इस कवित्त में कई जातियों के नाम रह भी गये हैं, फिर भी ये जातियां इतनी प्राचीन नहीं हैं जितना कि पट्टावलियों में ओसवालोत्पत्ति का समय मिलता है। अतः इस कवित्त के आधार पर हम ओसवाल जाति की उत्पत्ति दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास की समझते हैं।

प्राचीन शिलालेख लगा हुआ है। शिलालेख का समय वि० सं० १०१३ का है इससे अनुमान हो सकता है कि ओसवालोत्पत्ति का समय दशवीं, ग्यारहवीं शताब्दी का ही हो।

समाधान—यह शंका केवल शिलालेख का संवत् देख कर ही की गई है न कि लेख को आद्योपान्त पढ़ कर। यदि सम्पूर्ण लेख दृष्टि में निकाल लिया होता तो इस शंका को स्थान नहीं मिलता। यही शिलालेख श्रीमान् बाबू पूर्णचन्दजी संपादित शिलालेख समह प्रथमखड लेखक ७८८ में ज्यों का त्यों मुद्रित हुआ है। शिलालेख खंडित है फिर भी शेष भाग को भी ध्यानपूर्वक पढ़ने पर यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि वह लेख न तो ओसवालों की उत्पत्ति का है, और न महावीर के मंदिर की मूल प्रतिष्ठा का ही, न किसी मंदिर बनाने वाले का, न प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य का नाम है। इस लेख से तो ओसिया का अधिक प्राचीनत्व सिद्ध होता है। इस शिलालेख में ओसियाँ में प्रतिहारों का राज्य होना लिखा है, जिसमें वत्सराज प्रतिहार की बहुत प्रशंसा की गई है, ( देखो पृष्ठ १७९ ) तदनुसार विक्रम की ८ वीं शताब्दी में ओसियां वत्सराज के राजत्वकाल में एक ऐश्वर्यशाली नगर सिद्ध होता है। अतएव यह शिलालेख भी इस नगर की प्राचीनता प्रमाणित करता है। यह शिलालेख स्थान २ पर अत्यन्त खंडित हो गया है। अतएव उसके कुछ आवश्यक अंग पाठकों की जानकारी के लिये हम यहां उद्धृत करते हैं —

× × × प्रकट महिमा मण्डपः कारितोऽत्र × × भूमण्डनो मण्डपः पूर्वस्यां ककुभि त्रिमारा विकलासन् गोष्ठिकानु × × × तेन जिनदेवधाम तत्कारितं पुनरमुष्य भूषणं × × + संवत्सर दशदत्यामंधिकायां वत्सरैस्त्रयो दशभिः फाल्गुन शुक्ल तृतीय × × जै० ल० पृष्ठ १९३

इन खंडित वाक्यांशों से यह वृतांत ज्ञात होता है कि जिनदेव नामक श्रावक ने वि० स० १०१३ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को किसी मंदिर के रंगमंडप का जीर्णोद्धार करवाया, पर यह ज्ञात नहीं होता है कि यह शिलालेख किस मंदिर का है ? क्योंकि प्रस्तुत शिलालेख दूसरे मंदिरों के खण्डहरों में प्राप्त हुआ था और इसकी रक्षा के निमित्त महावीर मंदिर में लगा दिया गया था।

यदि इस मंदिर को १०१३ में बना हुआ मान लें तो एक आपत्ति हमारे सामने ऐसी खड़ी हो जाती है कि वह हमें महावीर मंदिर को १०१३ में बनना मानने में बाध्य करती है और वह यह है कि —

"आचार्य कक्कसूरि के समय मरकी का उपद्रव हुआ था उस समय महावीर मन्दिर में शांति पूजा पढ़ा कर भगवान् शान्तिनाथ की मूर्त्ति स्थापन की थी इस विषय का एक शिलालेख भी मिलता है।

"ॐ संवत् १०११ चैत्र सुदी ६ श्री कक्काचार्य्य शिष्य देवदत्तगुरुणा उपकेशीय चैत्यगृह अस्वयुज चैत्रषष्ठ्यं शान्तिप्रतिमा स्थापनिय गंदोदकान् दिवालिकाभासुलप्रतिमा इति" बाबु लेखांक १३४

भला महावीर का मंदिर वि०स० १०१३ में ही बना होता तो उसमें १०११ में शांतिनाथ की मूर्त्ति कैसे स्थापन करवाई जाती, अत प्रस्तुत महावीर का मंदिर १०१३ में नहीं पर वि०सं०पू० ४०० में मंत्री ऊहड़ने अपने निज द्रव्य से बनाया। देवी चामुंडा ने गाय के दूध और बालूरेत से महावीर प्रभु की प्रतिमा बनाई, जिस प्रतिमा को ७ दिन पूर्व ही निकालने से मूर्ति के वक्षस्थल पर निंबू फल जैसी दो गाठें रह गईं। प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों द्वारा हुई। मंदिर प्रतिष्ठा सम्बन्धी ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना को उद्धृत शिलालेख में स्थान न मिले, यह असम्भव है। अतएव ओसियांजी का उपरोक्त उद्धृत

मूर्ति के मस्तक प्रदेश का एक स्फुरण हुआ। उस समय शान्ति स्नात्र पूजा पढ़ाई गयी थी। उस पूजा में ९ सीमन्धी और ९ बाद और स्नात्रिये बनाये गये थे, जिनका उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है कि वे १८ स्नात्रिये १८ गोत्र के थे, पर यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि उस समय १८ गोत्र ही थे ? और यहां पर देखना तो यह है कि १८ गोत्रों और राजपूतों की उपरोक्त १८ जातियों का आपस में क्या सम्बन्ध है।

राजपूतों की ११ जाति और ओसवालों के १८ गोत्रों की ऊपर दी हुई इस तालिका से पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि इनमें न तो समय की समानता है और न किसी शब्द की समानता है। फिर समझ में नहीं आता है कि ऐसी अर्थशून्य निस्सार दलीलें करके जनता में व्यर्थ भ्रम क्यों पैदा किया जाता है ? यह तो केवल "परेत्कर्ष दर्शन असहिष्णु" बुद्धि का ही प्रदर्शन करना है। अस्तु ऐसे निस्सार कवित्तों पर विश्वास करना अज्ञता का ही पोषक है। ओसवालों के १८ गोत्रों की सृष्टि हुई है उसमें निम्न लिखित कारण हैं जैसे कि —

१—तप्तभट्ट—यह एक प्रसिद्ध पुरुष के नाम पर गोत्र हुआ है जिसको आज तातेड़ कहते हैं।

२—बाप्पनाग—यह नागवंशी राव बाप्पा की स्मृति में गोत्र बना है जिसको आज बाफणा-बहुफणा कहते हैं और नाहटा जांगड़ा वैताला दफ्तरी बालिया और पटवा आदि इनकी शाखायें हैं।

३—कर्णाट—यह कर्णाट प्रान्त से आया हुआ समूह का नाम है।

४—बलाह—यह एक बलाहनगर से आये हुये वस्ती का नाम है। रांका बांका सेठ इनकी शाखा है।

५—श्रीश्रीमाल—यह श्रीमालनगर से आये हुए लोगों का गोत्र है।

६—आदित्यनाग—यह आदित्यनाग नामक नागवंशी उदार धर्म वीर पुरुष के नाम पर गोत्र हुआ है। चोरड़िया, गुलेच्छा, पारख सावसुखा और गदइया आदि इनकी शाखायें हैं।

७—माता भूरि के नाम पर भूरि गोत्र कहलाया।

८—कन्नोज से आये हुए कनौजिया कहलाये।

९—कुम्मट का व्यापार करने से कुम्मट कहलाये।

१०—संघ में श्रेष्ठ काम करने से श्रेष्ठि कहलाये।

११—संचय करने से संचेती कहलाये।

इत्यादि कारणों से महाजन संघ के गोत्र बन गये और इन गोत्रों में ज्यों ज्यों वृद्धि होती गई त्यों त्यों इनकी शाखायें फैलती गई। इनके अलावा बाद में भी जैनेतरों को जैन बनाये गये और इसी प्रकार कारणों से उनके भी गोत्रों का नाम संस्करण होता गया।

इस कथन से पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि पूर्वोक्त कवित्त में बतलाई हुई राजपूतों की ११ जातियों के साथ ओसवालों के १८ गोत्रों का क्या सम्बन्ध है ? कुछ भी नहीं, क्योंकि ओसवालों के १८ गोत्रों का समय वि पू ४ वर्षों का है। तब राजपूतों की पूर्वोक्त ११ जातियों का समय वि की चौथी से सातवीं शताब्दी का है तथा राजपूतों की जातियों के कारण कुछ और ही हैं।

समझ में नहीं आता है कि ओसवालजाति का इतिहास लिखने वाले महाशयजी ने इतनी बड़ी भूल क्यों की होगी कि एक कल्पित कवित्त को अपनी ऐतिहासिक किताब में उद्धृत कर अपना और पाठकों का क्या दूसरों का समय शक्ति और द्रव्य का व्यर्थ व्यय क्यों किया होगा।

समाधान—यह कविरा स्वयं अपने को अर्वाचीन साबित करता है तथा किसी भी प्राचीन ग्रन्थ, पट्टावलियों एव वंशावलियों में यह कवित्त दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके अतिरिक्त शंकाकर्ताओं को जरा यह भी विचारना चाहिये था कि यदि ओसवालोत्पत्ति दशवीं शताब्दी में भी मानली जाय तो भी यह कवि, तो समय और भाषा की दृष्टि से अर्वाचीन ही ठहरता है। इसी प्रकार इस कवित्त में उल्लिखित राजपूतों की जातियें वि० की पांचवी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी में पैदा हुई हैं। तब तो इस कवित्त के आधार पर ओसवालोत्पत्ति का समय भी वि० की १७ शताब्दी का ही समझना चाहिये।

इस कवित्त के अनुसार क्या आपकी अन्तरात्मा इस बात को मंजूर करने को तैयार है कि ओसवालों की उत्पति वि० की १७ वीं शताब्दी में हुई होगी ? नहीं, कदापि नहीं।

जरा चश्मा उतार कर देखना चाहिये कि आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय न तो इन राजपूत जातियों का अस्तित्व ही था और न उन्होंने अठारह गोत्र स्थापित ही किये थे। सूरिजी का उद्देश्य तो भिन्न २ जातियों के टूटे हुये शक्ति ततुओं को संगठित करने का था और वास्तव में उन्होंने ऐसा ही किया था। पश्चात् भिन्न २ कारण पाकर गोत्रों का निर्माण हुआ है जैसे कि वीरप्रभु से ३७३ वर्षे उपकेशपुर में महावीर

| राजपूतों की १८ जातिया | समय | ओसवालों के १८ गोत्र | समय |
|---|---|---|---|
| १—परमार | विक्रम की नवी शताब्दी | तप्तभट्ट—तातेड़ | महाजन संघ के संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरि होने से इन १८ गोत्रों का समय वि० पू० ४०० वर्ष का है तथा इन गोत्रों के नाम का पता मिलने का समय वि० पू० १७ वर्ष का है। इनको राजपूतों की जातियों से मिलाइये। |
| २—शिशोदा | वि० १४वी शताब्दी | वाप्पनाग—बापना | |
| ३—राठौर | वि० ६ठी शताब्दी | कर्णाट—करणावट | |
| ४—वासंचा | अप्रसिद्ध | बलहा—राँका बाँका | |
| ५—वालेचा | ,, | मोरप—पोकरणा | |
| ६—दइयों | वि० की १३वीं शताब्दी | कुलहट | |
| ७—भाटी | वि० की ४थी शताब्दी | वीरहट | |
| ८—सोनीगरा | वि० की १३वीं शताब्दी | श्रीश्रीमाल— प्रसिद्ध | |
| ९—कच्छावा | वि० की ८वीं शताब्दी | श्रेष्टि—वैद्यमेहता ,, | |
| १०—गोड़ | वि० की १२वीं शताब्दी | सुचंती—सचेती ,, | |
| ११—जादव | प्राचीन | आदित्यनाग—चोरड़िया ,, | |
| १२—झाला | वि० १०वी शताब्दी | भूरि—भटेवरा ,, | |
| १३—जिन्द | वि० अप्रसिद्ध | भाद्र—समदड़िया ,, | |
| इस कवित्त में राजपूतों की कुल १३ जातियां बताई हैं परन्तु ओसवालों के गोत्र १८ हैं। इसके लिये शंकाकर्ता क्या उपाय सोचेंगे। | | चींचट—देसरडा ,, | |
| | | कुम्मट— ,, | |
| | | कनौजिया— ,, | |
| | | डीड़ु—कोचर मेहता ,, | |
| | | लघुश्रेष्टि—अ सिद्ध | |

६—प्रसर पंडित श्रीमान् द्रोणाचार्य्य के शिष्य सूराचार्य्य ने धारा नगरी में जा कर राजा भोज की सभा के पंडितों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस वृतान्त के सम्बन्ध में ग्रन्थों में विस्तृत प्रमाण मिलते हैं। इनका समय विक्रम की ११ वीं १२ वीं शताब्दी का निकटवर्ती है।

७—आचार्य उद्योतनसूरि ने अपने शिष्यों को वट-वृक्ष के नीचे सूरिपद दिया; उसी दिन से बड़गच्छ की स्थापना हुई। इसका उल्लेख तत्कालीन ग्रन्थों में मिलता है। इस घटना का समय १०वीं शताब्दी का है।

इत्यादि अनेक प्रमाण उस समय के साहित्य में विद्यमान हैं इतना ही क्यों पर साधारण से साधारण घटनाओं के सम्बन्ध में भी विस्तृत वर्णन किया गया है। ऐसी दशा में आठवीं, दशवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में अनुमानतः माने गये लाखों मनुष्यों के धर्म परिवर्तन के संबंध में किसी भी ग्रन्थ में कुछ भी उल्लेख न मिलना आपके अनुमान को कल्पित प्रमाणित करता है और साथ में यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि ओसवाल जाति ( उपकेशवंश-महाजनसंघ ) की उत्पत्ति न तो वि० की ८ वीं शताब्दी में हुई और न १० वीं ११ शताब्दी में हुई। पर इस घटना का समय इतना प्राचीन है कि जिस समय जैनों का कोई भी इतिहास व दूसरी घटना पुस्तकारूढ़ नहीं हुई थी और न उस समय का कोई शिलालेख ही मिलता है। उस समय के आचार्य एवं मुनिवर्ग सब ज्ञान को कंठस्थ ही रखते थे और अपनी शिष्य परम्परा को भी यही शिक्षा दी जाती थी कि वे गुरु परम्परा से ज्ञान मुखपाठी ही रखते थे। दूसरों के लिए तो क्या पर जो जैन धर्म के मुख्य आगम थे वे भी मुखपाठी ही रखते थे। यदि उस समय की तमाम घटनाओं के लिए केवल शिलालेखों द्वारा ही निर्णय किया जाता हो तो हमारे परमपूज्य जम्बुस्वामी, प्रभवस्वामी शय्यंभव आचार्य संभूतिविजय और यशोभद्रादि बहुत से ऐसे आचार्य हुए हैं कि शिलालेखों में उनका नाम निशान तक भी नहीं है तो क्या हम उनको भी नहीं मानेंगे ? यह कदापि नहीं हो सकता।

ओसवाल जाति का प्राचीन शिलालेख नहीं मिलने से तो यह जाति उल्टी प्राचीन ही ठहरती है क्योंकि जैन शिलालेखकाल विक्रम की दशवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है अतः इस समय के बहुत पूर्व इस जाति का जन्म हुआ था अतः उस समय का शिलालेख न मिलना स्वाभाविक ही है।

अब रही पट्टावलियों की बात। हाँ पट्टावलियें उतना समय की नहीं हैं। इसका कारण उस समय हमारे अन्दर लिखने की पद्धति नहीं थी जब मूल आगम ही वीर निर्वाण से ९ [illegible] वर्ष बाद लिखे गये थे तो पट्टावलियाँ इसके पूर्व लिखी जाना सर्वथा असम्भव ही है, पर इससे पट्टावलियों की महत्ता एवं सत्यता को क्षति नहीं पहुँचती है। कारण पट्टावलियें भी गुरु परम्परा से आये हुए ज्ञान के आधार से ही बनी हैं। यदि २५०० वर्षों का इतिहास लिखते समय हमारी पट्टावलियों को दूर रख दी जाय तो हमारा इतिहास नहीं के बराबर है। हमारी पट्टावलियों में केवल जैनधर्म सम्बन्धी ही उल्लेख नहीं है पर अन्य भी इतने उपयोगी लेख हैं कि वे दूसरी जगह खोजने पर भी नहीं मिलते हैं। देखिये विद्वान लोग क्या कहते हैं —

"इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं + + तथा जैनों की कई एक पट्टावलियाँ आदि मिलती हैं। ये भी इतिहास के साधन हैं। पं० गौ० ओ० [illegible] राजपूताना का इतिहास प्र० १"

अतः इतिहास लिखने में पट्टावलियें एक साधन है। हाँ अब से गच्छों एवं समुदाय के भेद हुवे और कई लोगों ने मताग्रह के कारण पट्टावलियों में गड़बड़ कर दी है उसके लिये हमारा कर्तव्य है कि उसका संशोधन करें न कि एकाध पट्टावली में त्रुटियें देख सब पट्टावलियों का अनादर कर बैठें।

शंका नं० ६—ओसवालों की उत्पत्ति के समय के सम्बन्ध में कुछ व्यक्ति विक्रम की ८ वीं कुछ दशवीं और कुछ ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी का अनुमान करते हैं। और कहते हैं कि इस विषय के प्रमाण तो हमारे पास कुछ भी नहीं हैं, परन्तु ओसवाल जाति के शिलालेखादि कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं अतः अनुमान किया जा सकता है कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम की ८ वीं १० वीं या ११ वीं शताब्दी में हुई होगी ?

समाधान—पहिले ही हम सिद्ध कर चुके हैं कि 'ओसवाल' शब्द इस जाति की उत्पत्ति के समय का नहीं है बल्कि 'महाजनसंघ' और उपकेशवंश शब्दों का रूपान्तरित नाम है। इस रूपान्ततरित नामकरण का समय वि० की ११ वीं शताब्दी है। इसलिए इस ओसवाल शब्द के सम्बन्ध में ११ वीं शताब्दी के पूर्व शिलालेख इत्यादि ऐतिहासिक साधन खोजना व्यर्थ है। क्योंकि जिस नाम का प्राचीन काल में जन्म ही न हुआ हो उसका अस्तित्व मिले ही कहां से ?

आज-कल कई लोगों को यह एक प्रकार का चेपी रोग लग गया है कि वे स्वय तो कुछ परिश्रम करते नहीं हैं; किन्तु प्रत्येक वस्तु के लिए कह उठते हैं कि अमुक वस्तु को हम नहीं मानते क्यों कि इसके प्रमाण के लिए शिलालेख नहीं मिलते हैं। तो क्या जिनका शिलालेख नहीं मिले, वे सब घटनायें असत्य ही समझी जाती है ? साथ ही जो लोग ओसवालों की उत्पत्ति वि० की ८ वीं, १० वीं एव ११ वीं शताब्दी की कहते हैं, क्या वे शिलालेखादि ऐतिहासिक साधनों एव प्रमाणों से प्रमाणित कर सकते हैं ? नहीं उनके पास तथ्यहीन एक मनगढ़न्त कथनमात्र के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

वि० की ८ वीं से १० वीं शताब्दी तक का इतिहास इतना अंधेरे में नहीं है कि जनता में एक इतना बड़ा जबरदस्त परिवर्तन अर्थात् लाखों मनुष्यों का धर्म परिवर्तन हो जाय और इस परिवर्तन के सम्बन्ध में उस समय या उसके बाद के साहित्य में गन्ध तक न मिले, यह कदापि सम्भव नहीं है। जब कि उस समय की साधारण घटनाओं के लिये बड़े २ ग्रन्थ निर्माण हो चुके हैं। जैसे कि:—

१—आचार्य हरिभद्रसूरि ब्राह्मण धर्म से जैनधर्म में आये। ऐसी तत्कालीन सामान्य घटनाओं का विस्तृत वर्णन जैनसाहित्य में उपलब्ध होता है। आपका समय जैनग्रन्थों के आधार छट्टी शताब्दी का है।

२—आचार्य बप्पभट्टसूरि ने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया और उसकी एक रानी की सतान ओसवश में मिल गई, जिसका गोत्र राजकोष्ठागर हुआ जो कि ओसवाल जाति का एक अग है। इस घटना का उल्लेख भी जैन साहित्य में अत्यन्त विस्तारपूर्ण मिलता है। इस घटना का समय विक्रम की ९ वीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल है।

३—आचार्य शीलगुणसूरि ने वनराज चावड़ा को प्रतिबोध देकर जैन बनाया उसने वि० सं० ८०२ में पाटण नगर बसाया। जिसका उल्लेख भी उसी समय के ग्रन्थों में मिलता है।

४—आचार्य उदयप्रभसूरि ने विक्रम की आठवीं शताब्दी में भिन्नमाल नगर के राजा भाण तथा ६२ कोटाधीशों को जैन बनाया इत्यादि। घटनाओं से साहित्य शोभायमान हैं।

५—वादीवैताल आचार्य शान्तिसूरिने राजा भोज की सभा में जाकर वहां के पंडितोंसे बड़ाभारी यश कमाया इत्यादि। इन सबका अधिकार जैनसाहित्य में विद्यमान है इनका समय विक्रम की दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी का है।

पक्षपात रहित जैनेतर विद्वानों का हमारी पट्टावलियों प्रति जितना सद्भाव है उतना कई जैन नाम धराने वालों का नहीं है इसका कारण पूर्व बतलाया गच्छ एवं समुदाय भेद ही है, पर उन लोगों को मताग्रह के कारण अभी यह बात नहीं सूझती है कि हम अपने ही पैरों पर कुठाराघात कर रहे हैं जिसका भविष्य में क्या फल मिलेगा ? इस सत्य वस्तु को छिपाने एवं मिटाने से जैनजातियों एवं ओसवाल जाति का गौरव बढ़ता है या मिट्टी में मिल जाता है। जिस जाति का २४०० वर्षों का उज्जवल इतिहास है उसको ८००-९०० वर्ष जितना समझना कितनी भारी भूल है। इस भूल का परिणाम यह होगा कि १५००-१६०० वर्षों में ओसवाल जाति ने तन धन मन से लाखों नहीं पर करोड़ों रुपया देश सेवा के लिये व्यय किये हैं एव देश पर बड़ा भारी उपकार किया है उन सब पर पानी फिर जायगा।

अरे अक्कल के बादशाहो ! जरा विशाल दृष्टि से विचार करो कि ओसवालों को जगतसेठ नगरसेठ, पच चौधरी आदि महत्वपूर्ण पद मिले हैं वह कुछ करने से ही मिले होंगे, तथा बड़े बड़े राजा महाराजाओं ने पट्टा, परवाने, सनद एव पत्रों द्वारा ओसवालों का बड़ा भारी उपकार माना है और राज रखने वाला कहा है, यह कुछ करने पर कहा होगा या यों ही लिख दिया है। पर इस उज्जवल इतिहास को छिपा देने से आपकी क्या दशा हुई है ! कहाँ पर आपकी पूँछ रही है !! कहाँ पर आपका आसन रहा है !!! इतना ही क्यों पर आप दुनिया में जीते गिने जाते हो या मुर्दों ? जो अपने पूर्वजों को भूल कृतघ्नी बन जाते हैं उनकी इससे अधिक क्या दशा हो सकती है।

अरे अर्द्ध शिक्षको ! आज तुम्हारे प्रतिपक्षी तुम्हारे उज्जवल इतिहास को नेस्त नाबूद करना चाहते हैं और तुम उसमें सहायक बनते हो, यह एक बड़ी मजा की बात है। देखिये आज स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें जिसमें साधारण व्यक्तियों के विषय में कितने गौरवशाली इतिहास लिखे गये हैं तब तुम्हारे भगवान महावीर के विषय में तो कई लोग महावीर को जानते ही नहीं हैं और कोई जानते हैं तो साधारण व्यक्ति की तरह दो शब्द लिख दिये। परन्तु वह किसके पुत्र थे इनकी माता कौन थी उनका क्या व्यवसाय था और उन्होंने कौन सा महत्वशाली काम किया था आदि आदि बातों के लिये अभी जनता अंधेरे में ही है। यह हमारे अर्द्धदग्ध शिक्षितों की सकुचितता का ही परिणाम है। जब भगवान महावीर का ही यह हाल है तो जगडूशाह चम्पाशाहादि जैसे दानेश्वरियों का तो नाम ही कहा से हो ? क्योंकि ऐसे अनेक दानी मानी उदार एव वीर पुरुषों का पुनीत जीवन पट्टावलियों वशावलियों में है और उनको मानने से आपने इन्कार कर दिया इतना ही क्यों बल्कि आपने तो उनको झूठा बतला कर अवहेलना भी कर डाली। अत' आपकी सतान उन वीरों के नाम तक को भी भूल जायगी तो कौन सी आश्चर्य की बात है ?

ओसवालो ! आप अपने उन पूर्वजों के उदार जीवन नहीं पढोगे वहाँ तक तुम्हारे हृदय में गौरव नसों में खून कभी नहीं उबलेगा। जब आपके हृदय मे गौरव और नसों में खून ही नहीं रहेगा तो तुम दुनिया के सामने कुछ भी करने एव बतलाने काबिल नहीं रहोगे। इसी कारण तुम दर दर के भिखारी बन कर पग २ पर ठुकराये जाते हो। खैर अभी तो इतनी ही हालत हुई है पर भविष्य में न जाने कुदरत ने आपके लिये क्या क्या तजवीज सोच रक्खी है।

ओसवालो ! यदि तुम्हारे मगज के सामने गच्छ या समुदाय की दीवार खड़ी हो गई हो तो

# अघटित प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर

आजकल विचार-स्वातन्त्र्य का साम्राज्य है, अतः जिस ओर दृष्टिपात किया जाता है उसी ओर अर्थात् सर्वत्र समाज, जातियों और धर्म के नाम से आक्षेपों तथा समालोचनाओं की वृष्टि होती नजर आती है। वास्तव में समालोचना संसार में बुरी वस्तु नहीं है, परन्तु समाज तथा जाति की बुराइयों को निकालने वाली, मार्गप्रदर्शिका, एवं उन्नतिदायिनी है। जिस समाज में जितने निःस्वार्थ तथा निष्पक्षपात आलोचक हैं, उतने ही उसके लिए अधिक लाभदायी हैं। किन्तु अनुभव से इसका प्रतिकूल ही मानना पड़ता। वर्तमान में कुत्सित भावनाओं को आगे रख कर आलोचक महोदय आक्षेपपूर्वक से कुसमालोचना किया करते हैं। जिससे समाज को लाभ के बदले अधिकाधिक हानि पहुँचती जाती है और क्लेश के कारण समाज अस्तव्यस्त हो गया है।

आजकल के लिखे पढ़े नवयुवकों के मगज में जितनी तर्कशक्ति है उतना उनके पास समय नहीं है कि जिस विषय का वे प्रश्न, तर्क एवं समालोचना करें उसके लिए वे उस समय का इतिहास देख सके कि उस समय कि क्या परिस्थिति थी उस समय किन २ बातों की आवश्यकता थी इत्यादि। जब तक इन बातों का अध्ययन न कर लिया जाय तब तक व्यर्थ आक्षेप तथा तर्क करने में अपना तथा दूसरों का समय को ही बर्बाद करना है। दूसरे उन लोगों में यह भी एक विशेष गुण है कि न तो उनको अपने पूर्वजों पर विश्वास है और न प्राचीन ग्रन्थों पर ही भरोसा है, फिर उनको समझाया जाय तो भी किस प्रकार किंवा वे स्वयं अभ्यास करते नहीं और दूसरे कि सुनते नहीं।

खैर। वे लोग क्या क्या प्रश्न करते हैं उनका थोड़ा सा नमूना पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ दर्ज कर दिया जाता है जरा ध्यान लगाकर पढ़ें।

१—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने क्षत्रियों को जैन बना कर उनको गौत्र एवं जातियों के बन्धन में बांध दिये अतः बहुत ही बुरा किया। जो विश्वव्यापी जैन धर्म था वह एक जाति मात्र में ही रह गया!

२—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने एक वीर बहादुर राजपूत वर्ण को ओसवाल बना कर उनकी वीरता को मिट्टी में मिला दी और उनको कायर कमजोर डरपोक बना दिया।

३—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि क्षत्रियों को ओसवाल बनाने के कारण ही शेष क्षत्रियों से जैनधर्म से किनारा ले लिया।

४—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ओसवाल बनाने से ही जैनधर्म राजसत्ता-विहीन बन गया।

५—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बना कर बहुत बुरा किया कि इसमें अनेक गौत्र जातियें एवं मत पन्थ गच्छ फिरके और समुदायें बन गईं। जिसमें इनकी समुदायिक शक्ति के टुकड़े २ हो कर पतन के गहरे गढ़े में गिर गई।

इत्यादि अनेक प्रश्न करते हैं और इन बातों के लिये बहुत से लोगों को क्षोभ भी रहा करती है, पर जब तक वस्तु के असली स्वरूप को मनुष्य नहीं समझ पाता है तब तक शंकायें पैदा होना स्वाभाविक ही है। पर मैं उन प्रश्नकर्त्ताओं का इस गरज से उपकार मानता हूँ कि उन्होंने इस प्रकार के प्रश्न करके उनके उत्तर जान के लिए हमारे हृदय में एक शक्ति पैदा की है। तथा जन के मन में भ्रम बढ़ना और उस भ्रम को हमेशा के

का आग्रह करने वालों से हम प्रश्न करते हैं कि अपने जिन पूर्वजों को आप मानते हैं, क्या उन सब के शिलालेख ही क्यों पर नाम को भी आप जानते हैं ? संभवत २-४ पीढ़ी से पूर्व के कोई ऐतिहासिक साधन नहीं होंगे ? इस प्रश्न के उत्तर में या तो आपको अपने पूर्वजों को मानने से इन्कार करना होगा या हमारी हीपद्धति का अनुकरण करना पड़ेगा। अतएव दुराग्रह मात्र से वस्तुतत्व की सिद्धि में गति नहीं हो सकती।

सुज्ञ पाठक ! उपरोक्त समाधानों से यह स्पष्ट रूपेण विदित हो गया होगा कि जैनसाहित्य में एवं अन्य ग्रन्थों में कहीं भी ओसवाल वशोत्पत्ति का समय आठवीं, नवमी दशवीं अथवा ग्यारहवीं शताब्दि नहीं बताया गया है किन्तु इसके विरुद्ध विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में महाजनसघ, उपकेशवश,—ओसवालों की उत्पत्ति सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण मिलते हैं और भविष्य में ज्यों ज्यों अधिक शोध होगी त्यों २ अनेक प्रमाण उपलब्ध भी होंगे। जितने प्रमाण हमें मिले हैं वे इसी ग्रथ में मुद्रित करवा दिये हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि वि० स० पू० ४०० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर में क्षत्रिय वर्ण से ओसवाल जाति बनी है अतः उन परमोपकारी आचार्यदेव का जितना उपकार हम माने उतना ही थोड़ा है यदि उन महापुरुषों का उपकार भूल कर हम कृघ्नी बन जाय तो हमारे जैसा पापी इस संसार में कौन हो सकता है? देखिये प० वीरविजयजी महाराज ने बारहव्रत की पूजा में क्या फरमाया है कि—

" मांसाहारी मातगी बोले। भानु प्रश्न धरयोरे। मो०।
जूठानर पग भूमिशोधन। जल छटकाव करयोरे। मा०।

जिस चांडालनी के शिर पर भ्रष्टा की ओढ़ी और हाथ में मांस की बोंटी है पर वह भूमि को जल छटकाव से शुद्ध करती जा रही थी इसको देख किसी भानु ने उसको प्रश्न पूछा जिसके उत्तर में चांडालनी (भगण) ने कहा कि यदि इस भूमि पर झूठा बोला कृघ्नी लोग निकला हो तो मैं भूमि को शुद्ध कर पैर रखती हूँ। क्योंकि झूठा बोला कृतघ्नी बड़े भारी पापी होते हैं उसके परमाणु इतने खराब होते हैं कि जिस भूमिपर पैर रखने से वह भूमि अपवित्र हो जाती है कि उस पर कोई दूसरा पुरुष चले तो वे परमाणु उसके लगने से उसकी चित्तवृत्ति मलीन हो जाती है। अतः मैं भूमि को शुद्ध करके पैर रखती हूँ।

पाठकों झूँठ बोलना और किया हुआ उपकार को भूल कर कृतघ्नी बन जाने का कैसा जबर पाप है अत उपकारी पुरुषों का उपकार मान कर कृतज्ञ बनो यही मेरी हार्दिक भावना है।

और जातियों के होने से धर्म की विश्व-व्यापकता मिट भी नहीं सकती है। भला ! गौत्र जाति के होने से ही धर्म की विश्व-व्यापकता मिट जाती हो तो भगवान महावीर के समय काश्यप गौत्र, वसिष्ठ गौत्र कोडिन्य गौत्रादि गौत्र वाले जैनधर्म पालन करते थे। उसी समय आनन्दादि गाथापति अर्जुनमाली, सकडाल कुम्भार ऋषभदत्तादि ब्राह्मण और हरकेशी एवं मेतार्यादि शूद्र लोग भी जैन धर्म पालन करते थे। जैनधर्म की विश्व-व्यापकता गौत्र जातियों से नहीं मिटी है, पर इसका असली कारण कुछ और ही है। और वह है संकुचित विचार वालों की संकुचितता कि जिन्होंने अपने संकुचित विचारों के साथ जैनधर्म के क्षेत्र को भी संकुचित बना दिया। यदि गौत्र एवं जातियां बनने से ही जैनधर्म की विश्व-व्यापकता मिट जाती हो तो आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आचारपतित क्षत्रियों को जैन बनाने के बाद भी सैकड़ों वर्ष तक अजैनों की शुद्धि कर उनको जैन बना कर पूर्व जैनों में शामिल मिलाते थे और उनकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। यह कैसे बन सकता ?

और, जैनधर्म के लिये तो आपने अपने परमोपकारी महापुरुषों पर इस दोषारोपण कर दिया, पर आपके साथ ही बौद्ध एवं वेदान्ति धर्म है और उनमें अनेक गौत्र जातियां शामिल होने पर भी उनकी विश्व-व्यापकता नहीं मिटी है तो एक जैनधर्म की विश्व-व्यापकता कैसे मिट सकती है। अतः आचार्य रत्नप्रभसूरि पर यह आक्षेप करना बिल्कुल मिथ्या और अनभिज्ञता का सूचक है कि उन्होंने क्षत्रियों को जैन बना कर उनके पृथक् २ गौत्र एवं जातियां बना दीं तथा जातियां बनाने से जैनधर्म जो विश्व-व्यापक था वह केवल एक जाति मात्र में रह गया, इत्यादि।

उन महापुरुषों ने तो जो किया था वह जीवों के कल्याण और जैनधर्म की उन्नति के लिये ही किया था और उनके इस प्रकार करने से ही जैनधर्म जीवित रह सका है।

२ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने एक वीर बहादुर राजपूतों को ओसवाल बना कर उनकी वीरता को मिट्टी में मिला कर उनको कायर कमजोर डरपोक बना दिया।

उ०—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने न तो ओसवाल बनाये थे और न उनको कायर कमजोर ही बनाये थे। कारण आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में आचारपतित क्षत्रियों को विक्रम पूर्व ४०० वर्षों में जैन क्षत्रिय बनाये थे तब उपकेशपुर का अपभ्रंश नाम ओसियां तथा ओसियों के नाम से ओसवाल शब्द की उत्पत्ति हुई है, इसका समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का है। फिर यह आक्षेप रत्नप्रभसूरि पर क्यों ? और इस प्रकार ग्रामों के नाम से तो और भी बहुत नाम हुए हैं जैसे महेश्वरीपुरी से महेश्वरी, खण्डेला से खण्डेलवाल, पाली से पल्लीवाल इत्यादि, तो क्या इन नामों से ही नुकसान हो गया।

दूसरे ओसवाल कहलाने से ही कायर एवं कमजोर कहना भी एक भ्रम ही है क्योंकि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने जिन क्षत्रियों को जैन बनाये थे न तो वे कायर कमजोर हुये थे और न उनकी संतान ही कायर कमजोर कहलाई थी। जरा इतिहास के पृष्ठों को उलट कर देखिये राव उत्पलदेव की संतान ने १८ पुश्तों तक राज्य किया था। महाराज चन्द्रगुप्त बिन्दुसार, अशोक और सम्राट सम्प्रति ने जैनधर्म पालन करते हुये ही बड़ी वीरता से राज का संचालन किया था। महामेघवाहन चक्रवर्ती खारवेल कट्टर जैन होते हुये भी उन्होंने भारत पर विजय कर चक्रवर्ती पद को प्राप्त किया था। सम्राट विक्रम भारत का राज बड़ी वीरता से करता हुआ भी जैन धर्म का पालन करता था। वल्लभी का शिलादित्य राजा, अन्यकुब्ज का सिद्ध-

लिये दिल में दबा कर रखने के बजाय प्रश्न करना कई गुणा अच्छा है कि जिससे शंका का समाधान भी हो सके और चित्त का भ्रम दूर होकर विश्वास की भी वृद्धि हो सके।

महानुभावो ! पहिले तो आपको उस समय की परिस्थिति के इतिहास का अभ्यास करना चाहिये था कि उस समय इस महान् कार्य्य की जरूरत थी या नहीं ? दूसरे यह भी सोचना चाहिये था कि आचार्य-रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल एवं गौत्र जातियां आदि अलग २ जातियां बनाई थीं या अलग २ जातियों का संगठन कर एक शक्ति एवं संगठनमय सुदृढ़ संस्था स्थापित करवाई थी ? तथा आचार्यश्री ने उन वीर क्षत्रियों को कायर कमजोर बनाये थे या उनकी शक्ति और भी बढ़ाई थी ? आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उन आचारपतित क्षत्रियों को जैन बना कर जैनधर्म को राजसत्ता विहीन बनाया था या जैनधर्म राजाओं का धर्म बन गया था? आचार्य रत्नप्रभसूरि के राजपूतों को जैन बनाने से जैनधर्म का क्षेत्र संकुचित बन गया था या विशाल बन गया था ? इत्यादि इन सब बातों को खूब दीर्घदृष्टि से सोचना चाहिये था।

इन सब बातों का अभ्यास करके ही प्रश्न करना था। खैर, अब आप अपने प्रश्नों का उत्तर भी सुन लीजिये।

१ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने क्षत्रियों को जैन बना कर उनको गौत्र एवं जातियों के बन्धन में बांध कर बहुत ही बुरा किया कि जो विश्वव्यापी जैनधर्म था वह एक जाति मात्र में ही रह गया।

उ०—आचार्यरत्नप्रभसूरि जिस समय मरुधर में पधारे थे उस समय मरुधर अज्ञान से छाया हुआ था। घर २ में मास, मदिरा एवं व्यभिचार की भट्टियें धधक रही थीं। वर्ण जाति उपजाति एवं पृथक २ मत-पंथों में विभक्त हुई जनता की शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। उस समय में अनेक कठिनाइयों और परिसहों को सहन करके केवल उन जीवों के कल्याण के लिये ही सूरिजी पधारे थे। इतना ही क्यों पर वसति के अभाव में जंगल में ठहर कर चार-चार मास तक भूखे प्यासे रहते हुये भी उन पाखण्डियों के कठोर उपसर्गों को सहन किया था।

सूरिजी ने अपने आत्मबल और उपदेश द्वारा उन आचारपतित क्षत्रियों की शुद्धि कर सब को समभावी बनाके उनका संगठन चिरस्थायी बनाये रखने की गरज से 'महाजनसंघ' नामक संस्था स्थापित करवाई थी, पर उस समय उनको स्वप्न में भी यह मालूम नहीं था कि हमारे पीछे ऐसे सपूत (!) जन्मेंगे कि आज हम जिन पृथक् २ वर्ण जाति मत पथ वालों को एक सूत्र में ग्रंथित कर रहे हैं, वे आगे चल कर इस संस्था के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, जैसे कि पिछले लोगों ने कर दिया और आज भी कर रहे हैं। इस पर भी तुर्रा यह कि अपना दोष पूर्वाचार्यों पर मढ़ना इससे अधिक कृतघ्नीपना भी क्या हो सकता है।

दूसरे गौत्र और जाति का होना, यह भी रत्नप्रभसूरि ने नहीं बनाई है। उन्होंने तो एक 'महाजन-संघ' स्थापित करवाया था पर बाद में उस महाजनसंघ की ज्यों २ वृद्धि एवं उन्नति होती गई और उसके अन्दर ऐसे २ नामांकित पुरुष होते गये कि जिनके नाम से जातियां बनतीं गईं, जो उन जातियों के नामों से पता लग सकता है, जैसे आदित्यनाग के नाम पर आदित्यनाग गौत्र, बापनाग से बापनाग गौत्र, उत्तमभट्ट से उत्तमभट गौत्र, भादा से भाद्र गौत्र इत्यादि।

गौत्रों का होना बुरा भी नहीं है क्योंकि आचार्य रत्नप्रभसूरि के पूर्व भी गौत्र थे और गृहस्थ लोगों के विवाह शादी में इन गौत्रों की जरूरत भी रहती है कि वे कई गौत्र छोड़ के ही अन्य गौत्रीयों के साथ अपना विवाह करते हैं।

करीब २००० वर्ष तक क्षत्रिय लोग जैन बन कर ओसवालों में शामिल होते आये हैं। फिर यह क्यों कहा जाय कि ओसवाल बनाने से ही क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया ?

क्षत्रियों के जैनधर्म से किनारा लेने का कारण ओसवाल होना नहीं है पर इसका कारण कुछ और ही है। वह यह है कि एक जैनधर्म के नियम सख्त हैं जो संहार-कुशल वीरों से पलना मुश्किल है, दूसरे ओसवालों में जो नये जैन बनने वालों के साथ सहानुभूति पहिले थी वह बाद में नहीं रही। तीसरे ओसवालों का खुद का संगठन भी छिन्न-भिन्न हो गया था। कारण एक तरफ तो शासन में भेद-भेद डाल नये मत-गच्छ निकाल कर अपनी २ बाड़ाबन्दी में लग गये थे, जिससे समाज में राग द्वेष क्लेश कदाग्रह की भट्टियें धधकने लगीं और उनकी जो शक्ति अजैनों को जैन बनाने में लग रही थी वही शक्ति जैनधर्म को नुकसान पहुँचाने में काम करने लगी। जब खास जैन धर्म का प्रचार बढ़ाने वाले साधुओं का ही यह हाल था तो उनके उपासकों के लिये तो कहना ही क्या था ? वे तो उन साधुओं के हाथ के कठपुतले ही बने हुए थे। जैसे वे नचाते वैसे ही नाचते थे। दूसरी ओर आगे चल कर इस ओसवाल समाज में भी एक ऐसा उत्पात मच गया कि जिसके दो टुकड़े बन गये जो छोटा साजन और बड़ा साजन के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं, इत्यादि कारणों से क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया है न कि ओसवाल बनने से—

४ प्र —आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ओसवाल बनाने से ही जैनधर्म राजसत्ता-विहीन बन गया।

उ —यह केवल समझ की भ्रांति है कि ओसवाल बनाने से जैनधर्म राजसत्ता विहीन बन गया, पर राजसत्ता विहीन होने का कारण ओसवाल बनाना नहीं किन्तु इसका मुख्य कारण उन राजा महाराजाओं को जैनधर्म का सत्य उपदेश नहीं मिलना ही है। राजा महाराजाओं को सदुपदेश क्यों नहीं मिलता है इसका कारण साधुओं में ऐसे ज्ञान का अभाव है, क्यों कि सब से पहिले तो साधु बनते समय यह नहीं देखा जाता है कि यह व्यक्ति साधुपद के योग्य है या अयोग्य ? जब अयोग्यों को साधुपद दे दिया जाता है तो वे अपनी उदरपूर्ति में ही अपने जीवन की सफलता समझ कर समाज का भला करने के बजाय समाज के भारभूत बन जाते हैं। कई साधु ऐसे भी होते हैं कि जिन्होंने एक ग्रन्थ से दूसरे ग्रन्थ का मुंह भी नहीं देखा होगा। राजा महाराजा तो दूर रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए श्रावकों को भी वे संभाल नहीं सकते हैं। उदाहरण के तौर पर देखिये एक गुर्जर प्रान्त में आज करीब २ ० साधु साध्वियां विद्यमान हैं, फिर भी एक दो शताब्दी पूर्व कई २०-२५ जातियों के हजारों लाखों लोग जैनधर्म पालन करते थे आज वे सब जैन धर्म को त्याग कर जैनेतर बन गये हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साधु अपनी सुविधा के लिए बड़े बड़े शहरों में रहना पसन्द करते हैं जहाँ आवश्यकता नहीं, वहाँ १०-१५ एवं २ साधु साध्वियां एकत्र रह जाते हैं। तब जहाँ ग्राम में भ्रमण कर उपदेश की खास जरूरत है वहाँ कोई जाते तक भी नहीं। यदि कभी विहार करने को निकले तो उनके परिग्रह सेवक नौकर चाकर आदि का ठाठ एवं खर्चा देख वे ग्रामवासी लोग दूर से ही डरते जाते हैं। तब दूसरे धर्म वाले लोग घूम घूम कर उनको उपदेश कर तथा कई प्रकार की सुविधाएं बता कर एवं आराम पहुँचा कर अपने धर्म में मिला लेते हैं। जब पूर्वाचार्यों के बनाये श्रावकों का ही यह हाल है तो राजा महाराजाओं को उपदेश देने के लिए तो हम आशा ही क्यों रक्खें ? फिर भी दुःख यह कि वर्तमान में अपना कसूर है वह पूर्वाचार्यों पर डाल दिया जाता है। यह एक प्रकार से कृतघ्नीपना ही है।

गेंद राजा, ग्वलनेर का आम राजा, महाराष्ट्र के चोलवंश, राष्ट्रकूटवंश, पांड्यवंश, कलचूरीवंश, वगैरह, वगैरह, अनेक राजाओं ने जैनधर्म पालन करते हुये भी बड़ी वीरता से राज किया है। इतने दूर क्यों जाते हो, परमार्हत महाराजा कुमारपाल के जीवन को पढ़िये तो आपको जैनों की वीरता का पता चलेगा कि कायर कमजोर थे या वीर थे।

किसी भी धर्म के उपासकों को देखिये, वे सब के सब राजा नहीं होते हैं। कई राज करते हैं तो कई दीवान, प्रधान मन्त्री, महामन्त्री, फौजी हाकिम वगैरह पद वाले होते हैं, तो कई व्यापार एवं कृषी कर्मवाले भी होते हैं। यही हाल जैनधर्म का या और इस प्रकार कई जैनों ने राज कर्मचारी पद को सुशोभित करते हुये भी अपनी वीरता का परिचय दिया था। कायरता तो उनके पास भी नहीं फटकती थी जिसके उज्जवल यश और धवल कीर्ति से इतिहास भरा पड़ा है। वीर यशोदित्य, शार्दूल, नारायण, त्रिभुवनसिंह, जसकरण, समर्थसिंह ठाकुरसी, जेतापावा, विमल, वस्तुपाल तेजपाल, समरसिंह, तेजसिंह, सुलतानसिंह वगैरह वगैरह हजारों वीर हुये। हाल थोड़े समय पूर्व संघवी इन्द्रराजजी, फतेहराजजी, बच्छराजजी, मुनोयत, सुन्दरदास नैणसी, मेहता नयमलजी, और मेहताजी विजयसिंहजी। इन्होंने ओसवाल कहलाते हुये भी क्षत्रियों से बढ़ चढ़ के वीरता के काम किये हैं। क्या कोई इतिहास का जानकर ओसवाल जाति पर कायरता और कमजोरी का कलंक लगा सकता है ? कदापि नहीं!

ओसवाल जाति में कायरता और कमजोरी होने का कारण क्षत्रियों से जैन बनाना नहीं है पर ओसवालों के खराब आचरण तथा दया का असली स्वरूप को न जानने वाले उपदेश ही हैं। जैसे धनमाल की कृपणता के कारण, आर्त्तध्यान करना, दूसरे का बुरा चाहना, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कुजोड़ लग्न आदि कई कारण हैं कि वे अपने बुरे आचरणों से स्वयं कायर कमजोर बन बैठे हैं और उनका दोष पूर्वाचार्यों पर पर लगाते हैं। इससे अधिक अन्याय ही क्या हो सकता है ? वास्तव मे जैनधर्म वीरों का ही धर्म है और वीर होगा वही जैनधर्म पालन कर सकता है। आज के जैनधर्मोपासक केवल नाम के ही जैन कहलाते हैं। जैनत्व तो इन लोगों से हजार हाथ दूर रहता है। यदि जैनी कहलाना हो तो सब से पहले वीर बनो जैसे पूर्व जमाने में थे।

३ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि के क्षत्रियों को ओसवाल बनाने के कारण ही क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया।

उ०—यह पहिले कहा जा चुका है कि रत्नप्रभसूरि ने क्षत्रियों को ओसवाल नहीं बनाये थे, पर 'महाजन संघ' बनाया था और उसकी स्थापना उपकेशपुर में हुई। बाद उपकेशपुर के लोगों ने अन्य स्थानों में जाकर निवास किया, इस हालत में वे लोग उपकेशपुर के होने के कारण उपकेशी कहलाये और आगे चल कर उनका वंश उपकेशवंश कहलाने लगा। वह शिलालेखों में सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उपकेशपुर का नाम अपभ्रंश होकर ओसिया हो गया, जैसे जावलीपुर का जालौर, नागपुर का नागौर, माण्डव्यपुर का मँडोर, नारदपुर का नाडोल, वैसे उपकेशपुर का ओसियां नाम पड़ गया। अत ओसियों में बसने वाले ओसवाल कहलाये पर इस प्रकार ओस्वाल नाम होने से क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया कह देना तो एक अनभिज्ञता की ही बात है, क्योंकि महाजनवंश स्थापन करने के पश्चात्

करीब २००० वर्ष तक क्षत्रिय लोग जैन धर्म पालन कर ओसवालों में शामिल होते आये हैं। फिर यह क्यों कहा जाय कि ओसवाल बनाने से ही क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया ?

क्षत्रियों के जैनधर्म से किनारा लेने का कारण ओसवाल होना नहीं है पर इसका कारण कुछ और ही है। वह यह है कि एक जैनधर्म के नियम कठिन हैं जो संहार-कुशल वीरों से पलना मुश्किल है, दूसरे ओसवालों में जो नये जैन बनने वालों के साथ सहानुभूति पहिले थी वह बाद में नहीं रही। तीसरे ओसवालों का खुद का संगठन भी छिन्न-भिन्न हो गया था। कारण, एक तरफ तो शासन में भेद-भेद वाले नये मत-पन्थ निकाल कर अपनी २ बाड़ाबन्धी में लग गये थे, जिससे समाज में राग द्वेष क्लेश कदाग्रह की भट्ठियें धधकने लगीं और उनकी जो शक्ति अजैनों को जैन बनाने में लग रही थी वही शक्ति जैनधर्म को नुकसान पहुँचाने में काम करने लगी। जब खास जन धर्म का प्रचार बढ़ाने वाले साधुओं का ही यह हाल था तो उनके उपासकों के लिये तो कहना ही क्या था ? वे तो उन साधुओं के हाथ के कठपुतले ही बने हुए थे। जैसे वे नचाते वैसे ही नाचते थे। दूसरी ओर आगे चल कर उस ओसवाल समाज में भी एक ऐसा उत्पात मच गया कि जिसके दो टुकड़े बन गये जो लोढ़ा साजन और बड़ा साजन के नाम से आज भी जीवित हैं, इत्यादि कारणों से क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया है न कि ओसवाल बनने से—

४९—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ओसवाल बनाने से ही जैनधर्म राजसत्ता-विहीन बन गया।

५०—यह केवल समझ की भ्रांति है कि ओसवाल बनाने से जैनधर्म राजसत्ता विहीन बन गया, पर राजसत्ता विहीन होने का कारण ओसवाल बनाना नहीं किन्तु इसका मुख्य कारण उन राजा महाराजाओं को जैनधर्म का सत्य उपदेश नहीं मिलना ही है। राजा महाराजाओं को उपदेश क्यों नहीं मिलता है इसका कारण साधुओं में ऐसे ज्ञान का अभाव है, क्यों कि सब से पहिले तो साधु बनते समय यह नहीं देखा जाता है कि यह व्यक्ति साधुपद के योग्य है या अयोग्य ? जब अयोग्यों को साधुपद दे दिया जाता है तो वे अपनी उदरपूर्ति में ही अपने जीवन की सफलता समझ कर समाज का भला करने के बजाय समाज के भारभूत बन जाते हैं। कई साधु ऐसे भी होते हैं कि जिन्होंने एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त का मुंह भी नहीं देखा होगा। राजा महाराजा तो दूर रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए श्रावकों को भी वे संभाल नहीं सकते हैं। उदाहरण के तौर पर देखिये एक गुर्जर प्रान्त में आज करीब ९ साधु साध्वियाँ विद्यमान हैं, फिर भी एक दो शताब्दी पूर्व कई २०-२५ जातियों के हजारों लाखों लोग जैनधर्म पालन करते थे, आज वे सब जैन धर्म को त्याग कर जैनेतर बन गये हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साधु अपनी सुविधा के लिए बड़े बड़े शहरों में रहना पसन्द करते हैं जहाँ आवश्यकता नहीं वहाँ १००-१५ एवं २ साधु साध्वियें एकत्र ठहर जाते हैं। पर जहाँ ग्राम में भ्रमण कर उपदेश की खास जरूरत है वहाँ कोई जाते तक भी नहीं। यदि कभी विहार करते या निकले तो उनके परिचित सेवक नौकर चाकर आदि का ठाठ एवं खर्चा देख के ग्रामवासी लोग दूर से ही घबरा जाते हैं। तब दूसरे धर्म वाले लोग घूम घूम कर उनको उपदेश कर तथा कई प्रकार की सुविधाएं बता कर एवं आराम पहुँचा कर अपने धर्म में मिला लेते हैं। जब पूर्वाचार्यों के बनाये श्रावकों का ही यह हाल है तो राजा महाराजाओं को उपदेश देने के लिए तो हम आशा ही क्यों रक्खें ? फिर भी दुःख यह कि वर्तमान में अपना कसूर है वह पूर्वाचार्यों पर डाल दिया जाता है। यह एक प्रकार से कृतघ्नीपना ही है।

जैन साधुओं की ही क्यों पर आज तो जैनाचार्यों की संख्या भी इतनी घट रही है कि कई दर्जन आचार्य होने पर भी किसी आचार्य ने किसी राज-सभा में जाकर व्याख्यान दिया हो ऐसा कभी सुनने में नहीं आता है। हाँ, यदि किसी श्रावक की कोशिश से यदि किसी छोटे बड़े राजा ने एक दिन किसी आचार्य का व्याख्यान सुन लिया हो तो वे अखबारों में, पुस्तकों में, छोटी बड़ी पत्रिकाओं में, अपने नाम के आगे यह टाइटिल लगा देते हैं कि अमुक राजा प्रतिबोधक आचार्य श्री • बस इतने में आप कृतकृत्य बन जाते हैं। पर अब जमाना ऐसा नहीं है। जमाना पुकार पुकार कर कहता है कि कुछ काम करके दिखाओ। समझ गये न ? जैनधर्म राजसत्ता विहीन होने का कारण रत्नप्रभसूरि नहीं पर उनको जैनधर्म का उपदेश नहीं मिलना है। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने तो क्षत्रियों को जैनधर्मी बना कर जैनधर्म को राष्ट्रीय धर्म बना दिया था यही कारण है कि रत्नप्रभसूरि के बाद भी अनेक राजाओं ने जैनधर्म के परमोपासक बन कर जैनधर्म का पालन एव प्रचार किया था।

५ प्र०—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बना कर बहुत बुरा किया कि इसमें अनेक गौत्र जातिया एव फिरके समुदाय बन गये, जिससे इनकी सामुदायिक शक्ति टुकड़े २ हो कर पतन के गहरे गड्ढे में गिर गई।

उ०—क्या आपको यह विश्वास है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ही पृथक् २ गौत्र, जातियां, गच्छ समुदाय और फिरके बनाये थे ? आप पहिले पढ़ चुके हो कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने तो क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मण लोग जो पृथक् २ मत-पंथ में विभाजित हो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते थे, उनको उपदेश देकर एवं संगठन का महत्व बतला कर उनके हृदय के चिरकाल के नींच-ऊंच के जहरीले भावों को मिटा कर उन सब को समभावी बना कर 'महाजन सघ' रूपी एक सुदृढ़ सस्था स्थापन की थी और उनमें जैसे रोटी-व्यवहार था वैसे बेटी-व्यवहार भी चालू हो गया और वह चिरकाल तक चलता भी रहा था। यद्यपि उस महाजनसघ में नगर के नामों से कई शाखायें चल पड़ी थीं जैसे उपकेशवश, श्रीमाल वश, प्राग्वटवशादि, तथापि उन सब का रोटी-बेटी-व्यवहार एक ही था। शिलालेखों से पता मिलता है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो इन सबके प्राय रोटी बेटी व्यवहार शामिल था। बाद में सघ के स्वार्थी अग्रेसरों के मगज मे अहंपद का कीड़ा घुस गया। किसी को धनमद, किसी को राजसत्ता का अहंकार, किसी को ऐश्वर्य एवं सख्याबल का गर्व। बस, एक ने कहा कि हम तुमको बेटी नहीं देंगे। दूसरे ने अपनी चली वहा कह दिया कि हम तुमको बेटी नहीं देंगे। पर उस समय सब की संख्या अधिक होने से किसी को तकलीफ नहीं हुई, अत न रक्खी परवाह और न किया प्रयत्न। बस, एक एक के दिल खिंचते ही गये, बाद तो दिन निकलने पर यह भाखने लगे कि हम कभी शामिल थे ही नहीं। फिर भी उस समय के आचार्यों ने धर्म कार्य, पूजा-प्रभावना, स्वामिवात्सल्य में उनका लेना-देना खाना-पीना अलग नहीं होने दिया। अत रोटी व्यवहार शामिल रहा और बेटी-व्यवहार टूट गया। रोटी-व्यवहार शामिल होते हुए भी बेटी-व्यवहार टूट जाना एक पार्टीबन्दी का कारण था। यही कारण था कि अपनी २ पार्टी बन्ध गई और अपनी पार्टी में ही बेटी का लेन देन होने लगा।

बस, उन अभिमान के पुतलों के घर में अभिमान के परमाणु चारों ओर घूमने लगे। क्या आहार में और क्या पानी में जहाँ देखो वहाँ उनकी ही प्रबलता थी। भला इस हालत में उनके घरों से आहार

पानी से जाकर गोचरी करने वाले साधु कैसे बन सकते ? उनका असर आये बिना कैसे रह सकता ? जैन साधु जिन्होंने राग-द्वेष का त्याग कर दीक्षा ली थी, पर संस्कारों के कारण उनके समाज में भी ऐसे भी पैदा हुये कि उन्होंने जैनसमाज को टुकड़े २ कर अपने २ गच्छ बना कर उनको कई भागों में विभक्त कर डाला । अतः एक ही वीर शासन में अनेक गच्छ-मत-पंथ-समुदाय बन कर पूर्व संगठन के टुकड़े २ हो गये । इसका दोष पूर्वाचार्यों पर मढ़ना यह कितना अन्याय है । क्या आचार्यरत्नप्रभसूरि ने महाजनसंघ स्थापित किया था उस समय उनको स्वप्न में भी यह ख्याल था कि आज मैं भिन्न २ जातियों के क्षत्रिय-वन्धुओं को एकत्र कर संगठन का किला बना रहा हूँ उसको मेरे पीछे ऐस सपूत (!) जन्मेंगे कि वे इस किले को तोड़ फोड़ कर एक-एक पत्थर अलग २ कर डालेंगे और उसका सब दोष मेरे पर मढ़ देंगे ?

इस बात को इतिहास डंके की चोट बतला रहा है कि महाजनसंघ के लिये आचार्यरत्नप्रभसूरि ने जो जो नियम निर्माण किये थे और महाजनसंघ उन नियमों का ठीक तौर पर पालन करता गया वहाँ तक तो इस महाजनसंघ की खूब उन्नति होती गई । यहाँ तक कि संसारभर में जगतसेठ, नगरसेठ, टीकायत पंच, चौधरी वगैरह सन्मानसूचक पद थे वे सबके सब महाजनों को ही दिये गये थे । महाजनों ने इन पद की जुम्मेवारीको अच्छी तरह समझ कर अपने न्यायपूर्वक उपार्जित द्रव्य को देश समाज और धर्म के हित व्यय करने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था । इस बात किसी से छिपी नहीं है ।

समय की बलिहारी है कि एक समय ओसवाल जाति उन्नति के ऊँचे शिखर पर पहुँच गई थी, वही जाति आज अवनति के गहरे गड्ढे में जा पड़ी है । बस परिवर्तनशील संसार इसी का ही नाम है । इस में यों तो अनेकों कारण है पर मुख्य कारण उस (कृतघ्नपने) का ही है जो इन प्रश्नों से आप ठीक तौर पर समझ गये होंगे कि मांस, मदिरा व्यभिचारादि दुर्व्यसन व नरक के मार्ग जाते हुओं को आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने अनेक कष्टों को सहन कर उनको उपदेश द्वारा जैनधर्म के सन्मार्ग पर लाकर स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये जिसके बदले में वे आक्षेप करते हैं ऐसे मनुष्यों की क्या कभी उन्नति हो सकती है ? खैर ! अब भी समय है कि अपने अधर्म विचारों को हटा कर उन परमोपकारी महात्माओं का उपकार समझे, इत्यलम् ।

प्र०—कई लोग यह भी कहा करते हैं कि जैनियों की दया अहिंसा ने भारत को गारत बना दिया है ?

उ०—यह उन लोगों के अधूरे अभ्यास का ही परिणाम है । कारण यदि ठीक तौर से अभ्यास कर लिया होता तो यह कदापि नहीं कह सकते कि जैनियों की अहिंसा ने भारत को गारत बना दिया । या यह कहने वाले लोग अहिंसा के स्वरूप को ही नहीं समझते होंगे कि अहिंसा किसको कहते हैं ?

अहिंसा एक अमोघ शस्त्र है जिसके सामने बड़े बड़े हिंसकों ने अपना सिर झुकाया है । अहिंसा में दिव्य शान्ति है, महान् क्रान्ति है और अचिन्त्य शक्ति है । एक समय भारत में हिंसकों की प्रबलता थी और उस हिंसा के जरिये भारत कब्रिस्तान बन गया था । उस समय भगवान् महावीर ने अहिंसा का उपदेश भारत के कोने २ में पहुँचा दिया था, तब जाकर जनता ने शान्ति का श्वास लिया ।

यह तो बहुत दूर के समय की बात है पर आप वर्तमान में ही देखिये कि एक ओर तो हिंसाचारी हैं कि अनेक प्रकार की हिंसा वृत्ति से काम लेते हैं तब दूसरी ओर महात्मा गाँधी हैं कि जो अहिंसा को एक

अपना बड़े से बड़ा अस्त्र बना कर काम ले रहे हैं जिसके सामने हिंसावादियों को अपना सिर झुकाना ही पड़ा है। इस विषय में अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है कि सच्ची एव शुद्ध मन से अहिंसा का पालन करने वाला सदैव विजयी होता है।

सच्ची अहिंसा है वहा मान, मद, क्रोध, लोभ, विश्वासघात, धोखेबाजी आदि अनुचित कार्य्य स्वप्न में भी नहीं होते हैं। जब कि पर आत्मा को थोड़ा ही कष्ट पहुँचाना हिंसा समझी जाती है तो पूर्वोक्त कार्य तो हिंसापूर्ण होते हैं।

हा कितनेक भाई जैन कहलाते हुए भी अहिंसा के स्वरूप को ठीक तौर पर नहीं समझ कर दया का उल्टा दुरुपयोग करते हैं कि वे क्षुद्र प्राणियों की दया करते हुए पाचेन्द्रिय जैसे जीवों तथा अपने भाइयों की ओर दुर्लक्ष रखते हैं। वे अहिंसक कहलाते हुए क्रोध, मान, माया, लोभ, विश्वासघात, धोखेबाजी, झूठ बोलना आदि कुकृत्यों से नहीं बचते। यह तो एक अहिंसा का केवल विकृत ढांचा ही है और इसको अहिंसा नहीं पर वस्तुत हिंसा ही कही जाती है। और जो लोग आज जैनियों की दया के लिये आक्षेप करते हैं वे इसी विकृत अहिंसा के लिये ही करते हैं न कि सच्ची अहिंसा के लिये।

## ओसवाल जाति के अठारह गोत्र

प्र०—कई लोग यह भी कहते हैं कि जैन जातियों में सब से पहले तातेड़१, बाफना२, कर्णावट३, बलहा४, मोरक्ष५, कुलहट६, वीरहट७, सचेती८, श्रेष्टि९, आदित्यनाग१०, भूरि११, भाद्रो१२, कुमट१३, चिंचट१४, श्रीश्रीमाल१५, कनौजिया१६, डिड्डु१७, व लघुश्रेष्टि१८ यह १८ गौत्र रत्नप्रभसूरि ने ही स्थापन किये थे ?

उ०—आचार्य रत्नप्रभसूरि का ध्येय अलग २ गौत्र स्थापन करने का नहीं था, पर अलग २ जातियों में विभक्त प्रजा को एक सूत्र में सगठित करने का था और उन्होंने ऐसा ही किया था बाद में जैसे २ समय निकलता गया तथा उसमें एक एक कारण पाकर गौत्र एव जातियां बनती गईं, जैसे —

१—तप्तभट्ट नामक एक नामाकित पुरुष की सन्तान तप्तभट्ट गौत्र के नाम से कहलाई। बस, आगे चल कर उसका गौत्र ही तप्तभट्ट कहलाने लगा और उसका अपभ्रंश नाम तातेड़ हो गया।

२—आदित्यनाग नामक एक उदार पुरुष ने शत्रुंजय का सघ निकाला जिसमें करोड़ द्रव्य व्यय किया जिसकी सन्तान आदित्यनाग गौत्र से मशहूर हुई और आगे चल कर चोरड़िया पारख गुलेच्छा वगैरह कई नामों से जातिया बन गई।

३—बापनाग नामक वीर पुरुष की सन्तान बापनाग गौत्र से कहलाने लगी, इसका अपभ्रंश बाफना बहुफूनादि हो गया और जांघड़ा, नाहटा, वैतालादि कई जातियें बन गई।

४—श्रीमाल से आये हुये समूह का नाम श्रीमाल और राज की ओर से उनको एक श्री मिलने से वे श्रीश्रीमाल कहलाये।

५—भाद्र नाम के प्रसिद्ध पुरुष की सन्तान भाद्रगौत्र के नामसे विख्यात हुई। आगे चल कर समुद्री व्यापार के कारण इनको समदरिया भी कहने लगे। इसमें एक भाडाशाह नामक प्रतापी पुरुष होने से उनकी सन्तान भाण्डावतों के नाम से कही जाने लगी।

६—कन्नौज से आने वाले समूह का गौत्र कन्नौजिया हो गया ।

७—लाहड़ा नगर से आने वाले लोग लाहड़ा गौत्र से प्रसिद्ध हुये तथा इनके अन्दर रांका और बांका नाम के दो वीर पुरुष हुये जिनकी सन्तान रांका बांका कहलाई ।

८—श्रेष्ठिगौत्र-राजा उत्पलदेव की सन्तान ने अनेक ऐसे श्रेष्ठ कार्य कर बतलाये कि उनकी परम्परा में वे श्रेष्ठ कहलाये तथा इनकी सन्तान में एक वाळासिंह नाम के प्रसिद्ध पुरुष हुये कि उन्हों को वैद्य की पदवी मिली तब से वे श्रेष्ठि गौत्री वैद्य एवं वैद्य मेहता कहलाये ।

९—करणाट देश से आये हुये समूह के लोग कर्णाट कहलाने लगे ।

१०—कुम्मटि का व्यापार करने वालों का कुम्मट गौत्र बन गया ।

इत्यादि कारणों स गौत्र एवं जातियें बन गई थीं जिनकी संख्या के लिये निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि उनकी संख्या कितनी थी । और इनकी संख्या हो भी तो नहीं सकती है क्योंकि जब कभी कारण बन गया तब ही जाति बन जाती है । हाँ, जिस दिन महाजन संघ की स्थापना हुई थी उस दिन के ३०३ वर्षों के बाद उपकेशपुर में ग्रन्थि-छेदन का उपद्रव हुआ और उसकी शान्ति के लिये वृहद् शान्ति स्नात्र पूजा पढ़ाई गई थी उस पूजा में १८ गौत्र वाले स्नात्रिये थे । उनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है । उसके आधार पर अठारह गौत्रों के नाम बतलाये जाते हैं, पर यह केवल उपकेशपुर और उसमें भी पूजा स्नात्रिये बने उनके गौत्र हैं, पर इनके अलावा उपकेशपुर में तथा उपकेशपुर के अलावा अन्य स्थानों में इस महाजनसंघ रूपी समुद्र में गौत्र रूप कितनी रत्न होंगी उनका पता कौन लगा सकता है ?

हाँ, आचार्य रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये महाजन संघ के १८ गौत्र होने के कारण यह कह दिया जाय कि रत्नप्रभसूरि ने १८ गौत्र स्थापित किये तो इस अपेक्षा से अनुचित भी नहीं है, क्योंकि वे गौत्र उसी महाजनसंघ के थे कि जिसको रत्नप्रभसूरि ने स्थापित किया था ।

दूसरे यह १८ गौत्र और इससे भी अधिक गौत्र एवं जातियाँ बन जाना यह महाजनसंघ की उन्नति एवं वृद्धि का ही द्योतक है । कारण जैसे जैसे महाजनसंघ की वृद्धि होती गई और उसमें जैसे जैसे नामांकित पुरुष पैदा हो हो कर देश समाज एवं धर्म की सेवा करते गये वैसे वैसे उनकी सन्तानों के साथ उन पुरुषों के नाम चिरस्थायी बनते गये । बस वे ही नाम जातियों एवं गौत्रों के नाम धारण करते गये, जिनकी संख्या यहां तक बढ़ गई थी कि उनको मनुष्य गिन भी नहीं पाते थे ।

अब समय पलट गया और महाजनसंघ की अवनति होने लगी तो उन गौत्र और जातियों की संख्या घटने लगी कि वह अंगुलियों पर गिनने जितनी रह गई, अर्थात् गौत्र एवं जातियों का घटना बढ़ना महाजनसंघ की उन्नति अवनति पर ही था

सारांश यह है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अलग २ गौत्र स्थापन नहीं किये थे । वे एक एक कारण पाकर गौत्र एवं जातियें बन गई थीं । मगर रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये महाजन सं के गौत्र होने से यदि इनको रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये कह दिया जाय तो पूर्वोक्त अपेक्षा से यह अनुचित भी नहीं है ।

गामी के जाकर गौचरी करने वाले साधु कैसे बच सकते ? उनका असर आये बिना कैसे रह सकता ? जैन साधु जिन्होंने राग-द्वेष का त्याग कर दीक्षा ली थी, पर संसर्गों के कारण उनके मानस में भी ऐसे भाव पैदा हुये कि उन्होंने जैनसमाज को टुकड़े २ कर अपने २ गच्छ बना कर उनको कई भागों में विभाजित कर डाला। अतः एक ही वीर शासन में अनेक गच्छ-मत-पंथ-समुदाय बन कर पूर्व संगठन के टुकड़े २ हो गये। इसका दोष पूर्वाचार्यों पर मढ़ना, यह कितना अन्याय है। क्या आचार्यरत्नप्रभसूरि ने महाजनसंघ स्थापित किया था उस समय उनको स्वप्न में भी यह ख्याल था कि आज मैं भिन्न २ जातियों के व्यक्तियों को एकत्र कर संगठन का किला बना रहा हूँ, उसको मेरे पीछे पंच सपूत (!) जन्मेंगे कि वे इस किले को तोड़ फोड़ कर एक-एक पत्थर अलग २ कर डालेंगे और उसका सब दोष मेरे पर मढ़ देंगे ?

इस बात को इतिहास डंके की चोट बतला रहा है कि महाजनसंघ के लिये आचार्यरत्नप्रभसूरि ने जो जो नियम निर्माण किये थे और महाजनसंघ उन नियमों का ठीक तौर पर पालन करता गया वहाँ तक तो इस महाजनसंघ की खूब उन्नति होती गई। यहाँ तक कि संसारभर में जगत्सेठ, नगरसेठ, टीकायत पंच, चौधरी वगैरह सम्मानपूर्वक पद थे वे सबके सब महाजनों को ही दिये गये थे। महाजनों ने इस पद की जुम्मेवारीको अच्छी तरह समझ कर अपने न्यायपूर्वक उपार्जित द्रव्य को देश समाज और धर्म के हित व्यय करने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। इस बात किसी से छिपी नहीं है।

समय की बलिहारी है कि एक समय ओसवाल जाति उन्नति के ऊँचे शिखर पर पहुँच गई थी, वही जाति आज अवनति के गहरे गड्ढे में जा पड़ी है। बस, परिवर्तनशील संसार इसी का ही नाम है। इस में यों तो अनेकों कारण है पर मुख्य कारण क्या (?) कृतघ्नीपने का ही है जो इन महानों से आज ठीक तौर पर समझ रहे होंगे कि मांस, मदिरा व्यभिचारादि दुर्व्यसन जो नरक के मार्ग वाले हैं उनसे छुड़ा कर आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने अनेक कठनाइयों को सहन कर उनको उपदेश द्वारा जैनधर्म के सन्मार्ग पर लाकर स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये, जिसके बदले में वे आक्षेप करते हैं ऐसे मनुष्यों की क्या कभी उन्नति हो सकती है ? खैर ! अब भी समय है कि अपने अपमर्श विचारों को हटा कर उन परमोपकारी महात्माओं का उपकार समझें, इत्यलम्।

प्र०—कई लोग यह भी कहा करते हैं कि जैनियों की दया अहिंसा ने भारत को गारत बना दिया है ?

उ०—यह उन लोगों के अधूरे अभ्यास का ही परिणाम है। कारण, यदि ठीक तौर से अभ्यास कर लिया होता तो यह कदापि नहीं कह सकते कि जैनियों की अहिंसा ने भारत को गारत बना दिया। या यह कहने वाले लोग अहिंसा के स्वरूप को ही नहीं समझते होंगे कि अहिंसा किसको कहते हैं ?

अहिंसा एक अमोघ शस्त्र है जिसके सामने बड़े बड़े हिंसकों ने अपना सिर झुकाया है। अहिंसा में दिव्य शान्ति है, महान क्रान्ति है और अचिन्त्य शक्ति है। एक समय भारत में हिंसकों की प्रबलता थी और उस हिंसा के जरिये भारत रसातल पहुँच गया था। उस समय भगवान् महावीर ने अहिंसा का उपदेश भारत के कोने २ में पहुँचा दिया था तब जाकर जनता ने शान्ति का श्वास लिया।

यह तो बहुत दूर के समय की बात है पर आज वर्तमान में ही देखिये कि एक ओर तो हिंसावादी हैं कि अनेक प्रकार की हिंसा वृत्ति से काम लेते हैं तब दूसरी ओर महात्मा गाँधी हैं कि जो अहिंसा को एक

बड़े २ राजा महाराजा और माण्डलिक लोगों ने ओसवाल जाति को जगत्सेठ,-नगरसेठ,-पंच, चौधरी, टीकायतादि पद अर्पण कर इस जाति की मान-प्रतिष्ठा इज्जत-आबरू बढ़ाई, एवं सम्मान प्रकट किया है, ऐसा शायद ही किसी दूसरी जाति का बढ़ाया है। अत: इसमें शूद्र शामिल नहीं हैं।

यह एक प्रसिद्ध बात है कि भारत में जितना उच्चासन ओसवाल जाति का रहा है शायद ही किसी अन्य जाति का रहा हो। यदि ओसवाल जाति में शूद्र शामिल होते तो ओसवालों के लिये जो पूर्वोक्त सम्मान मिला है वह शायद ही मिलता। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ओसवाल जाति में कोई शूद्र शामिल नहीं है पर यह जाति उच्च खानदान के लोगों से ही बनी है।

ओसवाल जाति में यदि शूद्रवर्ण शामिल होता तो ब्राह्मण धर्म के कर्मवीर शय्यंभव भद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, सुहस्ती, सिद्धसेनदिवाकर, और हरिभद्र जैसे धुरंधर विद्वान् ओसवाल जाति के गुरु बन उनके घरों की भिक्षा लेकर कदापि भोजन नहीं करते। कारण उनके संस्कार शुरू से ही शूद्रों प्रति घृणा के थे।

आप शंकराचार्य को यह ज्ञात होता कि जैनियों में एवं ओसवालों में शूद्र वर्ण शामिल है तो वे कई महाजन जैनों को जैन धर्म से पतित बना कर अपने उपासक बना उनके यहाँ की भिक्षा कदापि नहीं करते अथवा शंकराचार्य्य ने अन्यान्य कारणों को लेकर जैनधर्मोपासकों की निन्दा की है, उस समय वह कदापि नहीं भूल जाते कि ओसवालों में शूद्रवर्ण भी शामिल है। पर इस विषय में उन्होंने एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। अत: ओसवाल जाति में कोई भी शूद्र शामिल नहीं, पर यह जाति उच्चवर्ण से ही बनी है।

यदि ओसवालों में शूद्र जातियें शामिल होतीं तो हमारे पड़ौस में रहने वाले शिव, विष्णु धर्मोपासक महेश्वरी, अग्रवालादि जातियें तथा राजा महाराजा जो भोजनादि व्यवहार ओसवालों के साथ रखते थे या रख रहे हैं, वे कदापि नहीं रखते। इतना ही क्यों पर वे लोग ओसवालों को घृणा की दृष्टि से बाहर देखते पर ऐसा कहीं पर न तो सुना है और न देखा है। इतना ही क्यों पर ओसवालों को वे बड़े ही सत्कार की दृष्टि से देखते एवं भोजन व्यवहार करते थे और आज भी कर रहे हैं। इस हालत में यह कह देना कि ओसवालों में शूद्र जाति शामिल है यह केवल अज्ञानता एवं द्वेष बुद्धि का द्योतक नहीं तो और क्या है ?

यद्यपि आज अंग्रेजों के राजत्वकाल में शूद्रों के साथ इतनी घृणा नहीं रखी जाती है कि जितनी ब्राह्मण युग में रखी जाती थी; फिर भी शूद्रों को शामिल मिलाने से ईसाइयों का एवं आर्य समाजियों का प्रचार-कार्य शिथिल पड़ गया अर्थात् आगे नहीं बढ़ सका तब ओसवाल जाति विक्रम पूर्व ४ वर्षों से कि की पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी तक बढ़ती ही गई। इसका कारण यही था कि ओसवाल जाति उच्चवर्ण से पैदा हुई थी और इनका आचार व्यवहार एवं विचार जैसा उच्च वर्ण का होना चाहिये वैसा ही था। अत: हम निःशंक होकर डंके की चोट कह सकते हैं कि ओसवाल जाति में एक भी शूद्र शामिल नहीं है, परन्तु यह जाति शुद्ध से उच्च खानदान के क्षत्रियों से बनी और बाद में ब्राह्मण वैश्य भी इसमें शामिल हो गये थे।

२—दूसरी दलील—ओसवालों में डेडिया चण्डालिया नामक जातियां हैं और वे शूद्रता का परिचय दे रही हैं, इत्यादि।

यह दलील अपनी गहरी अज्ञानता को ही जाहिर कर रही है। कारण दलील करने वाले को पहिले तो उन जातियों के इतिहास को देखना चाहिये कि वास्तव में ये नाम उन जातियों के शुरू से थे या बाद में किसी कारण से हुये हैं। यदि केवल नाम पर ही कल्पना की गई हो तो हमारे भाई शिव विष्णु उपासकों में जो

# क्या ओसवाल जाति में शूद्र भी शामिल हैं ?
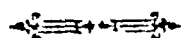
कई इतिहास एवं ओसवाल जाति की उत्पत्ति से अनभिज्ञ लोग यह भी कह उठते हैं कि ओसवाल जाति में भंगी ढेढादि शूद्र जातिया भी शामिल हैं और वे अपनी बात की पुष्टि के लिये दो दलीलें पेश करते हैं।

१—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में आकर जब ओसवाल बनाये थे उसमें राजा प्रजा सब नगर के लोग शामिल थे। अत यह स्वयं प्रमाणित हो जाता है कि जब सब नागरिक ही जैन बन गये तो उसमें शूद्र भी आ गये, अत ओसवालों में शूद्र वर्ण भी शामिल है।

२—ओसवालों में ढेढिया बलाई चंडालिया आदि जातियें आज भी विद्यमान हैं, वे स्वयं शूद्रत्व की सबूती दे रही हैं। जो पूर्व अवस्था में ढेढ बलाई चंडाल थे ओसवाल बनने के पश्चात् भी उनके वे ही नाम ज्यों के त्यों रह गये, इसमे भी पाया जाता है कि ओसवालों में शूद्र वर्ण भी शामिल है।

उ०—जमाना बहुत सभ्यता का होने पर भी हमारे भारतीय सुपुतो (!) के अज्ञान के पर्दे अभी सर्वथा दूर नहीं हुये जिसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है। सब से पहिले तो यह देखना है कि किसी पट्टावलियों अथवा वंशावलियादि ग्रन्थों में यह लिखा है कि उपकेशपुर नगर के निवासी सब के सब लोग जैन हो गये थे ? परन्तु पट्टावलियां वगैरह में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि उस समय उपकेशपुर में करीब ५००००० मनुष्यों की संख्या थी जिसमें सवालक्ष क्षत्रियों ने ही जैनधर्म स्वीकार किया था, इतना ही क्यों पर वाममार्गियों का शूद्र लोगों को अपने पक्षकार बना कर राज-सभा में सूरिजी के साथ शास्त्रार्थ करने का भी उल्लेख मिलता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में जैन बनाये उसमें एक भी शूद्र नहीं था यदा सब नगर ही जैन बन गया होता तो जन संख्या लिखने का क्या कारण था ? यही लिख देते कि नगर निवासी सब के सब जैनी बन गये थे।

दूसरे उस समय की परिस्थिति को देखा जाय तो उस समय शूद्रों के लिये किस प्रकार का परहेज रक्खा जाता था कि उन बिचारों को राजपूतों के शामिल मिलाना तो क्या पर यदि कोई ब्राह्मण अपने धर्म-शास्त्र को पढ़ता वहा शूद्र की छाया भी पड़ जाय या दृष्टिपात हो जाय तो वह शूद्र बड़ा भारी अपराधी समझा जाता था। अतः इस हालत में क्षत्री एव ब्राह्मण उन शूद्रों के साथ भोजन कर लें या बेटी का लेन-देन कर लें यह सर्वथा असंभव है।

यदि ओसवाल जाति के अन्दर शूद्र लोग शामिल होते तो जैन धर्म के कट्टर विरोधी न जाने ओस-वालों के लिये कौन सी सृष्टि की रचना कर डालते। राजा वेन, नौनंद एव चन्द्रगुप्त उच्च कुलीन क्षत्रिय होने पर भी जैनधर्म स्वीकार कर लेने के कारण उनको हलकी जाति के पतित करार दे दिया था तो ओसवालों के लिये वह कब चुप रहने वाले थे, पर उन्होंने ऐसा एक भी शब्द उच्चारण नहीं किया कि ओसवालों में शूद्र जाति शामिल है और न पिछले लोगों ने अपने पुराणादि ग्रन्थों में एक अक्षर भी इस विषय का लिखा है। अतः ओसवाल जाति पवित्र क्षत्रियवर्ण से बनी है। इस जाति के जन्म-दिन से आज तक कोई भी शूद्र इसमें शामिल नहीं है।

यह भी भय था कि शायद पीछे से जागीरदार के आदमी न आ जावें। अतः उन्होंने अपनी ओसवाली पोशाक बदल कर किसान जैसी पोशाक पहिन ली और माल की गाड़ियों पर कुछ घास के डाल दिये। वे जा रहे थे पीछे जागीरदार को खबर होते ही रात्रि में सवारों को भेजा। उन्होंने बोहराजी की गाड़ियों को पकड़ लिया और पूछा तुम कौन हो ? उन्होंने अपना माल बचाने की नीयत से कहा आपको दूर से हम बलाई हैं। बस सवार वापिस लौट गये और बोहराजी अपना माल बचा कर सकुशल इच्छित स्थान पर पहुँच गये। बाद जागीरदार को मालूम हुआ कि बोहराजी बड़े ही बुद्धिमान एवं मुत्सद्दी निकले कि बलाई बन कर अपना माल बचा लिया। उस दिन से लोग बोहराजी को बलाई-बलाई कहने लगे और उनकी संतान आज भी उसी बलाई नाम से कहलाती हुई ओसवाल समाज में विद्यमान है।

इसी प्रकार कई हाँसी मश्करी से, कई व्यापार से, कई अपने नामांकित पिता के नाम से जातियें बन गई थीं जिनके थोड़े से नामों का यहाँ परिचय करवा देना अप्रासंगिक न होगा।

१—मोर, सीयाल, मक्कड़ कागा, बुगला, गदइया, कुकड़, बिल्ली, चील गदहिया हंस, मच्छा, फोफलिया हीरण, नागनार, बकरा, हुंडक गजा घोड़ावत् नाहीवाल, पोसा, मुर्गीपाल, चमगादड़ इत्यादि पशुओं के नाम पर ओसवालों की जातियों के नाम पड़ गये, पर यह तो कदापि नहीं समझा जावे कि यह जातियाँ पशुओं से पैदा हुई हैं परन्तु यह केवल हाँसी ठट्ठा का ही फल है।

२—हथुंडिया, साचोरा जालोरी, सिरोहीया रामसेणा, नागोरी, रामपुरिया, फलोदिया, मेड़तिया, मंडोवरा, चीतोड़ा, पुरोहा, नरवरा, सांभरा, रामपुरा, हमीरवाल, हरसोरा, मोलासा, कुचेरिया, बोहथीया भिन्नमाला, चीतोड़ा मरमेरा, संभरिया पाटणी, कोरंटा, जावड़, डीडिया, मंडालिया, पूंगलिया बीकानेरा, इत्यादि जातियाँ निवासस्थान के नाम से ओलखाई जाती हैं।

३—भंडारी, कोठारी खजानची, कामदार, पोतदार, चौधरी पटवारी सेठ, मेहता कानुंगा, पटवा रखेचा, बोहरा, दफ्तरी इत्यादि जातियाँ राजाओं के काम करने से क्रमशः उपनाम पड़ गये हैं।

४—घीया, तेलिया केसरिया कपूरिया बजाज गुगलिया कुंकुमिया, पटवा मणोरिया, सोनी, नामर, गान्धी, कड़िया बोहरा, हुंडिया मणियार, मीनारा, सराफ, जौहरी, मिरचिया, कंदोइया, इत्यादि जातियों के नाम व्यापार से पड़े हैं।

५—बोरेचा, हमीरेचा भाणेचा आगरेचा भूंगरेचा सालेचा मालेचा नालेचा पाकरेचा, संखलेचा नरीच मारेचा, गुणधेचा, सुरेचा वैसेचा दुधिया इत्यादि जातियाँ भी कई-कई कारणों से एवं उपनाम पड़िया की तरह गये हुये ओसवालों के हैं।

६—आभावत्, चम्पावत् नानावत्, सिंहावत आदि तथा सेठाणि, लालाणि, पमाणि, तेजाणि, दुदाणि मीमाणि, रेगाणि, भावाणि अखाणि,सिंघाणि इत्यादि बलीमान्य व योग्यताशाली मान्य होने वालों के पिता के नाम पर जातियों के नाम पड़ गये हैं।

इत्यादि अनेक कारणों से ओसवालों की शाखा-प्रतिशाखाएँ सैकड़ों नहीं पर हजारों जातियाँ बन गई, जो ओसवालों में "१४४४ गौत्र कहे जाते हैं, पर अन्तिम "ढोसी और बलाई होसी" इस पुरानी कहावत के अनुसार भी प्रत्येक गौत्र से अनेक जातियाँ प्रसिद्धि में आई थीं। यहाँ पर यह कहना भी अतिशयोक्ति

महेश्वरी जाति है उनमें कई जातियों के ऐसे भी नाम हैं कि मुर्दा, काग, कवु, चंडक, बुच, भूतड़ा, कावरा, सारडादि तो क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि मुर्दों से मुर्दा, चडालों से चंडक, भूतों से भूतड़ा, कागों से काग और कवुओं से शामिल कवु आदि जातियाँ बनी हैं, क्या कोई बुद्धिमान इस कल्पना को सत्य मान लेगा ? नहीं, कदापि नहीं। तो फिर ओसवाल जाति के लिये ही यह क्यों कहा जाता है कि इसके अन्दर नामानुसार ढेढियादि शूद्र जातियां हैं ?

यह तो हम ऊपर सिद्ध कर आये हैं कि ओसवाल जाति पवित्र क्षत्रिय वर्ण से बनी है। हाँ, क्षत्रिय वर्ण के लिये यह कहावत आज भी कही जाती है कि "दारूड़ा पीणा और मारूड़ा गवाणा" अर्थात् मदिरा पान करना और ढोला मरूवणादि के गीत सुनना और नशे की तार में मनमानी मस्करी करनी। अत. राजपूतों में हांसी ठट्टा मस्करी करने का रिवाज बहुत था। आचार्य रत्नप्रभसूरि आदि ने उन क्षत्रियों को मांस मदिरा तो छुड़ा दिया, पर उनके हांसी ठट्टा मस्करी करने का रिवाज था वह ज्यों का त्यों रह गया, जिसके लिए आज भी ओसवालों के गीत सुन लीजिये। वही राजपूतां के गीत गाये जाते हैं।

मारवाड़ में कई ऐसे भी ग्राम हैं कि जिन्हों के नाम चंडावल ग्राम, चामड़िया ग्राम, ढेढियाग्राम, साढिया ग्राम, भूत ग्रामादि हैं। इन ग्रामों के नामों पर वहां के रहने वालों के नाम भी वैसे ही पड़ गये। देखिये उदाहरण के तौर पर —

ढेढियेग्राम* के ओसवाल कहीं जा रहे थे। रास्ते में साढिये ग्राम के ओसवाल मिल गये। उन्होंने हाँसी हाँसी में पूछा कि अरे ढेढियो ! आज कहां जा रहे हो ? तो उन्होंने उत्तर दिया कि साढिया में साढ मरे पड़े हैं, हम उन साढों को घीसने को जाते हैं। बस, इस हाँसी से एक का नाम ढेढिया और दूसरे का नाम साढ पड़ गया और आगे चल कर यह नाम उनकी वंश परम्परा के लिये जाति के रूप में परिणित हो गये कि अद्यावधि इन दोनों जातियों के लोग कई ग्रामों में विद्यमान हैं।

चडालिये—इसी प्रकार चडावल के ओसवाल चंडावल को छोड कर अन्य ग्राम में जा बसने से वे चंडालिये कहलाये। और चामडिया ग्राम से चामड़ कहलाये जैसे नागपुर से नागौरी, जालौर से जालोरी, फलोदी से फलोदिया इत्यादि।

बलाई—रत्नपुरा के जागीरदार और वहां के रहने वाले बोहराजी लीछमणदासजी के आपस में मनोमालिन्य हो गया। उस समय कानून तो सत्ताधारियों की जबान में ही थे, वह चाहते वैसा ही अन्याय कर सकते थे। अत बोहराजी अपना धन-माल गाड़ों में डालकर रात्रि समय गुप्त रीति से चल दिये, पर उन्हों को

*॥ॐ संवत् १५६५ वर्षे वैशाष वदि १३ र वौ ढेढीया ग्रामे श्री उएसवंशे स० पीदा भार्या धरणू पुत्र सं० तोला सुश्रावकेण भा० नीनू पुत्र सा० राण सा० लषमण भ्रातृ सा० आसा प्रमुख कुटुंब सहितेन स्वश्रेयोर्थ श्रीअंचलगच्छेश श्रीभावसागरसूरीणामुपदेशेन श्रीअजितनाथ मूलनायके चतुर्विंशति जिनपट्टकारितः प्रतिष्ठित. श्रीसंघेन

बा० पू० शिलालेख न० ५८८

यह ढेढीया गाव सोजत परगने में था और साढिया चंडावल, चामदिया नामक ग्राम आज भी सोजत परगने में विद्यमान हैं। इन्हीं गावों के नाम जैन क्षत्रियों की जातिया बन गई हैं।

१—बलाइ—वि सं ९११ में आचार्य पूर्णचंद्रसूरि आबू के आस पास विहार कर रहे थे। बलाई ग्राम में सूरिजी का पधारना हुआ। वहाँ के अधिपति परमार राव हलपतादि सूरिजी का व्याख्यान सुनने को आये। सूरिजी ने अहिंसा के विषय पर खूब जोर एवं युक्ति प्रमाण द्वारा उपदेश दिया और साथ में हिंसा और मांसाहारियों के लिये सिवाय नरक के कौन गति हो सकती है और नरक के दुःखों का भी इस प्रकार वर्णन किया कि उपस्थित लोगों का हृदय एकदम कम्प उठा और वे जैनधर्म स्वीकार कर अहिंसा के परमोपासक बन गये। जैनधर्म स्वीकार करने के बाद उनके पास बहुत द्रव्य जमा हो गया, जिससे उन्होंने बोहरगत का काम किया। अतः ये बोहरावी कहलाये। इन लोगों की सन्तान की भी खूब वृद्धि हुई। उन्हीं के अन्दर से विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में बोहरगजी सिंघमणगासजी रामपुरा में बसते थे जिनके विषय हम ऊपर लिख आये हैं कि बोहरावी से बलाई कहलाये।

२—ढेढ़िया—यह मूल परमार जाति के राजपूत थे, वि.सं ८८९ में आचार्य सोमप्रभसूरि ने धर्मोपदेश देकर जैन बनाये जिसका उदाहरण ऊपर लिखा जा चुका है कि केवल ईर्षा-मत्सरी से ही इनका नाम ढेढ़िया पड़ गया था।

इत्यादि ओसवाल समाज की तमाम जातियाँ प्रायः क्षत्रियों से ही बनी हैं, जो इस ग्रन्थ के पढ़ने से आप भली भाँति जान सकोगे। इस हालत में बिना सोचे समझे एक पवित्र जाति पर क्षुद्रता का आक्षेप कर देना यह कितना अन्याय और द्वेष-बुद्धि का कारण है।

इस प्रकार के आक्षेप यह पहिले पहल ही नहीं हैं पर इसके पूर्व कुचेरानिवासी छोटूलाल शर्मा ने अपनी 'जाति अन्वेषण' नामक पुस्तक में भी मनगढ़न्त कल्पना द्वारा कई प्रकार के आक्षेप किये थे। पर जब पीपाड़ के श्रीसंघ ने उन्हें नोटिस द्वारा सूचित किया कि आपने जो अपनी पुस्तक में आक्षेप ओसवाल समाज पर किया है इसके लिये आप क्या सबूती दे सकते हैं? वरना तुम्हारे पर कानूनी कार्यवाही क्यों न की जाय? इसके उत्तर में शर्माजी ने क्षमायाचना करते हुये लिखा कि मैंने जैसा सुना, वैसा लिख दिया है। यदि मेरे लिखने से आपकी जाति का अपमान हुआ हो तो मैं माफी चाहता हूँ और आप जो सत्य लिखी मेज देंगे तो द्वितीय आवृत्ति में मैं अपनी भूल सुधार लूँगा इत्यादि।

यह तो हुई ओसवाल जाति के विषय की बात, अब रही धर्म विषय की बात। धर्म कोई भी जाति एवं वर्णवाला पालन कर सकता है क्योंकि धर्म का सम्बन्ध जाति एवं वर्ण के साथ नहीं, पर आत्मा के साथ है, जैसे शैव और वैष्णव धर्म का पालन करने वाले क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य हैं वैसे शूद्र भी हैं, पर धर्म पालन करने वालों का ज्ञाति-व्यवहार एक हो यह नियम नहीं है। इसी प्रकार जैन-धर्म को भी समझ लीजिये। यदि कोई शूद्र जैनधर्म पालन करना चाहे तो उसके लिये मनाही भी नहीं है। क्योंकि कहा है कि—

शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो, गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रापत्य समोभवेत्॥

शास्त्रकारों ने वर्ण का आधार कर्म पर रख छोड़ा है। कारण जिसका कर्म अच्छा है उसका परिणाम अच्छा है। जिसका परिणाम अच्छा है वह धर्म का पात्र है।

इत्यादि इन प्रमाणों द्वारा समाधान से हमारे जन्मादिकों की शंका निर्मूल हो जाती है और निश्चय हो जायगा कि पवित्र ओसवाल जाति २४ वर्ष पूर्व पवित्र क्षत्रिय वर्ण से उत्पन्न हुई।

न होगा कि ओसवाल ज्ञाति उस जमाने में शाखाप्रतिशाखा फलफूल से वटवृक्ष की माफिक फली फूली थी। यह उस समय के इस जाति के अभ्युदय को बतला रही है, क्योंकि उस समय ओसवाल जाति में सम्प था, सगठन था, जाति भाइयों के प्रति प्रेम, स्नेह, वात्सल्यता और सहानुभूति के भाव थे, एवं ओसवालों के दिन चढ़ते थे। यही कारण था कि एक एक गोत्र से अनेक शाखाप्रतिशाखा निकल कर वटवृक्ष की भांति भारत के सब प्रान्तों में प्रसर गई थीं।

ससार में उदय और अस्त का चक्र हमेशा चलता ही रहता है। जब उदय के कारण अस्त के कारणों का रूप धारण कर लेते हैं तब उदय की रुकावट होकर अस्त का चक्र चल पड़ता है। ओसवाल जाति का भी यही हाल हुआ कि इसमें सम्प के स्थान कुसम्प, सगठन के स्थान फूट, प्रेम के स्थान द्वेष स्नेह के स्थान विद्रोह, वात्सल्यता के स्थान एक दूसरे को नीचा गिराना, सहानुभूति के स्थान अपने भाइयों को तकलीफ पहुँचा कर जड़मूल से उखेड़ फेंकने की नीति को स्वीकार की। बस, उस दिन से ही ओसवालों के दिन बदल गये। जहा हजारों घर थे वहा नाम मात्र को ओसवाल रह गये और कई हजारों की बस्ती वाले ग्राम तो ऊजड़ से हो गये। देखिये नमूना—

१—मेड़वारोड फलौदी में कई ५००० घर ओसवालों के थे, आज एक पार्श्वनाथ का मदिर रहा है।

२—ओसियों में लाखों ओसवाल बसते थे, आज एक महावीर मदिर खड़ा है।

३—रानकपुर में ३५०० घर ओसवाल पोरवालों के थे, आज एक आदीश्वर बाबा ही विराजमान हैं

४—पुच्छाला महावीर के पास हजारों घरों की बसती थी, आज एक महावीर का मदिर है।

५—जैतारन के पास एक रत्नपुरा ग्राम था, जहा के ओसवालों के नाम वशावलियों में लिखे मिलते हैं, आज वहां किसान लोग खेत खड़ते हैं।

६—मडोवर में जैनों की काफी आबादी थी, आज जैनों के तीन मंदिर ही शेष रह गये हैं।

७—नागौर में एक समय जैनों के ८००० घर कहे जाते हैं। केवल एक चोरड़िया जाति के १००० घर थे, आज मात्र ओसवालों के ४०० घर रह गये हैं।

८—मेड़ता में ३५०० घर थे, आज करीब १०० आ रहे हैं।

९—रुणावती (रूण) में ७५० घर तो केवल एक लोढ़ों के ही थे, आज ३५ घर आ रहे हैं।

यदि इस प्रकार लिखा जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जाता है और इसमे आश्चर्य करने जैसी कोई बात भी नहीं है। क्यों कि जिसके घर में पूर्वोक्त फूटादि के कारण पैदा होते हों वे कब जीने काबिल रहते हैं। प्रसगोपात ओसवाल जाति के उदय अस्त का थोड़ा सा दिग्दर्शन करवा कर अब चंडालियादि जातियों की उत्पत्ति के विषय में थोड़ा सा हाल लिख दूंगा कि यह जातिया किस वश वर्ण से उत्पन्न हुई हैं जैसे—

१—चडालिया—इन का मूल गौत्र लुंग या लुगिया है जो लुगों के बड़े भारी व्यापारी थे। इनके प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि ही थे। लुगिया गोत्र वालों को इनकी कुलदेवी ने प्रसन्न होकर अखूट द्रव्य दिया था और उस द्रव्य को उन्होंने जैन धर्म के अभ्युदय के निमित्त खुले दिल से व्यय भी किया था। कई वार सघ निकाल कर साधर्मी भाइयों को वस्त्राभूषण और सोनामुहरों की पहिरामणि दी थी। कई स्थानों में जैन मन्दिर भी बनाये थे और दुष्कालों में मनुष्य और पशुओं को अन्न एव घास देकर उनके प्राण भी बचाये थे। चंडालिया ग्राम के कारण इन गोत्र वालों का नाम चंडालिया हुआ है।

४—ओसवालों का धर्म—ओसवालों का धर्म जैनधर्म है। बचपन से ही वे अपने लड़कों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि जिससे उनके संस्कार जैन धर्म पर दृढ़ जम जाते हैं वे लोग अपने जैन मन्दिर मूर्तियों की [illegible] प्रार्थना पूजा, पाठ, सेवा भक्ति, उपासना करना अपना धर्म समझते हैं और जैनमुनियों की सेवा, उपासना व व्याख्यानादि उपदेश श्रवण कर आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान तत्वज्ञान और ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपने सत्यज्ञान द्वारा अन्य लोगों को ही नहीं, पर राजा महाराजाओं के चित्त को इस पवित्र जैन धर्म की ओर आकर्षित करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

५—ओसवालों के धर्म-कार्य—जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवानी, पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाना जैन तीर्थों की यात्रा के लिये बड़े बड़े संघ निकालना, स्वामिवात्सल्य करना, अर्थात् सधर्मी भाइयों को हर प्रकार से मदद करना शासन की प्रभावना अर्थात् किसी प्रकार से अपने धर्म का प्रभाव जनता पर डालना स्थान स्थान पर ज्ञान-भण्डारों की स्थापना करना, अहिंसा परमोधर्मः का प्रचार विश्व व्यापि कर देना इत्यादि धर्मकार्य एवं परोपकार करना ओसवाल अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

६—ओसवालों की परोपकारिता—दानशाला (सदाव्रत), अनाथालय, औषधालय विद्यालय, कुआ खिदवाना कुंडे तालाब बावड़ियां, धर्मशाला, पानी की प्याऊ, दुष्कालादि में अन्नदानादि से दीन दुःखियों का उद्धार करना पींजरापोलादि अनेक शुभ कार्य कर देशवासी भाइयों की सेवा में हजारों लाखों करोड़ों द्रव्य खरच करना ओसवाल लोग अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

७—ओसवालों की पंचायतियों—ओसवालों में ज्ञाति ज्ञाति पंचायतियों का संगठन इतना उत्तम रीति से रचा गया है कि आपस में लेना-देना विवाह व लेन-देन सम्बन्धी किसी प्रकार से वैमनस्य हो जाय तो उनको अदालतों का मुंह देखने की आवश्यकता नहीं रहती है, कारण ओसवाल पंच उन वादी प्रतिवादियों को इस उत्तम रीति से घर के घर में समझा देते हैं कि फिर वकील तक का अवकाश ही नहीं रहता है। इतना ही नहीं पर ओसवाल पंच ग्राम-सम्बन्धी अनेक कार्य करने में अपना समय व द्रव्य खरच कर स्वयं कष्ट उठा लेते हैं। पर ग्राम वालों को गरम हवा तक नहीं पहुँचने देते हैं इसलिये ही पंच परमेश्वर और माँ-बाप कहलाते हैं।

८—ओसवालों के पर्व दिन—कार्तिकवद १५ महावीर-निर्वाण, कार्तिक शुक्ला १ गौतम-केवल महोत्सव शुक्ला ५ ज्ञानपंचमी पूजा शुद ८ से १५ तक अठाई महोत्सव मार्गशीर्ष शुद ११ मौन-एकादशी, पोष वद १ पार्श्वनाथ जन्म-कल्याणक, माघ वद ११ मेरु-त्रयोदशी, फाल्गुन शुद ८ से १५ तक फाल्गुन अष्टा महोत्सव चैत्र शुद ७ से पूर्णिमा तक आंबिल तपस्याओं के साथ अठाई महोत्सव वैशाख में अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ मास में शान्तिनाथकल्याणक, आषाढ़ मास शुद ८ से पूनम तक अठाई महोत्सव श्रावण शुद ५ को नेमिनाथ भगवान का जन्मदिन भाद्रपद में पर्वाधिराज पर्युषण पर्व ८ दिन महोत्सव आश्विन मास में आंबिल की तपस्या के साथ अठाई महोत्सव। इनके सिवाय जिनकल्याणक तिथि प्रतिष्ठा दिन आदि जैनों में पर्व माना गया है। इन पवित्र दिनों में धर्म-ध्यान विशेष किया जाता है, पाप कर्म का त्याग कर आत्मध्यान में रमणता करना ओसवाल लोग अपना कर्तव्य समझते हैं।

# ओसवाल जाति का आदर्श

ओसवाल जाति के प्रादुर्भाव का मूलस्थान उपकेशपुर है। तदनुसार इस जाति का प्राचीन प्रचलित नाम उपकेशवश है। उपकेशपुर का अपभ्रंश होकर ओसियां ( नगर ) शब्द बना। तदनुसार उपकेशवंश शब्द का भी रूपान्तर होकर ओसिया नगर के आधार पर ओसवंश शब्द प्रसिद्ध हुआ। अन्यान्य नगरों में जाकर बसने से इसी वश के लोग "ओसवाल" नाम से सम्मानित होने लगे।

उपकेशवश के प्रादुर्भाव का समय वि० पूर्व ४०० वर्ष है। आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुर में इस वश की स्थापना की थी। आचार्य श्री ने हिंसामय आचार वाले राजपूतों की शुद्धि कर के महाजनसघ रूपी सुदृढ सस्था की स्थापना की। यही सघ भारतीय जातियों के इतिहास में मान-मर्यादा, वैभव, दानशीलता एव उदारता इत्यादि की दृष्टि से अनुपम स्थान रखता है। हमारे इस महाजन-सघ अथवा ओसवाल जाति के रीति रिवाज इत्यादि इतने उत्तम हैं कि इस भव और पर-भव में कल्याण-कारी हैं। पाठकों की जानकारी के निमित्त यहा संक्षिप्त परिचय देना ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

१—ओसवाल ज्ञाति—राजपूतों से बनी है। इसमें प्रथम तो सूर्य्यवंशी-चन्द्रवशी क्षत्रिय सम्मिलित हुए – पश्चात् परमार, चौहान प्रतिहार-सोलकी, राठौड़, शिशोदिया, कच्छवाह एव खीची इत्यादि राजपूतों को भी प्रतिबोध दे एवं जैनधर्म में दीक्षित कर पूर्व के ओसवालों में सम्मिलित कर दिए। इस विषय में अगर आप किसी ओसवाल से प्रश्न करेंगे कि आपका नख क्या है ? उत्तर में यही कहेंगे कि हमारा नख परमार चौहान या अन्य जिन राजपूतों से वे बने होंगे वही बताएंगे। राजपूतों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं वैश्यों को भी जैनाचार्यों ने जैन बना कर ओसवाल जाति में सम्मिलित कर लिए।

२—ओसवाल ज्ञाति का स्थान—इसका मूलोत्पत्ति स्थान उपकेशपुर था, जिसको वर्तमान में ओसियां नगरी कहते हैं। पश्चात विभिन्न स्थानों से भी ओसवाल बनाते गए वैसे ही यह जाति भारत के सब प्रदेशों में फैलती भी गई जैसे मारवाड़, मेवाड, मालवा, ढूंढाड़, हाड़ौती सयुक्तप्रात, मध्यप्रात, पजाब, पूर्व, आसाम, दक्षिण, कर्नाटक, तैलग, महाराष्ट्रीय, गुजरात, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ एव सिंध इत्यादि—प्राय भारत में ऐसा कोई नगर या प्रात नहीं कि जहा ओसवालों की बस्ती न हो।

३—ओसवालों के धर्म गुरु—जैनाचार्य जो कनक कामिनी आदि जगत की सब उपाधियों से बिल्कुल अलग रहते हैं और पच महाव्रत पालते हैं, परम निर्वृति भाव से मोक्षमार्ग का साधन करते हैं। उन मुनिवर्ग को ओसवाल अपने धर्म-गुरु मानते हैं और उन्हीं पर वे इतना भक्ति-भाव रखते हैं कि एकेक पदाधिकार और नगर-प्रवेश के महोत्सव में हजारों लाखों रुपये खरच कर डालते हैं। ऐसे आचार्य महाराज केवल ओसवालों को ही नहीं, पर आम जनता को उपदेश दे उनका जीवन नीतिमय, धर्म्ममय, परोपकारमय, बनाकर इस लोक और परलोक में सुख के अधिकारी बना देते हैं। ओसवालों के दूसरे कुलगुरु होते हैं वे ओस-वालों के घरों में सोलह-सस्कार वगैरह कार्य कराया करते हैं और ओसवालों की वंशावलिया भी लिखा करते हैं। ओसवाल अपने कुल गुरुओं का भी यथा उचित सम्मान किया करते हैं।

४—ओसवालों का धर्म—ओसवालों का धर्म जैनधर्म है। बचपन से ही वे अपने लड़कों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि जिससे उनके संस्कार जैन धर्म पर दृढ़ जम जाते हैं वे लोग अपने जैन मन्दिर मूर्त्तियों की त्रिकाल प्रार्थना पूजा, पाठ, तथा भक्ति उपासना करना अपना धर्म समझते हैं और जैनमुनियों की सेवा, उपासना व व्याख्यानादि उपदेश श्रवण कर आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान तत्त्वज्ञान और ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपने सत्यज्ञान द्वारा अन्य लोगों को ही नहीं, पर राजा महाराजाओं के चित्त को इस पवित्र जैन धर्म की ओर आकर्षित करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

५—ओसवालों के धर्म-कार्य—जैन मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवानी, पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाना जैन तीर्थों की यात्रा के लिये बड़े बड़े संघ निकालना, स्वामिवात्सल्य करना, अर्थात् स्वधर्मी भाइयों को हर प्रकार से मदद करना, शासन की प्रभावना अर्थात् किसी प्रकार से अपने धर्म का प्रभाव जनता पर डालना स्थान स्थान पर ज्ञान-भण्डारों की स्थापना करना अहिंसा परमोधर्म का प्रचार विश्व व्यापि कर देना इत्यादि धर्मकार्य एवं परोपकार करना ओसवाल अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

६—ओसवालों की परोपकारिता—दानशाला (सदाव्रत), अनाथालय, औषधालय विद्यालय, कुवा खुदवाना, कुवे तालाब बावड़ियों, सदाव्रत, पानी की प्याऊ, दुष्कालादि में अन्नदानादि से दीन दुःखियों का उद्धार करना गौशाला पांजरापोलादि अनेक शुभ कार्य कर देशवासी भाइयों की सेवा में हजारों लाखों करोड़ों द्रव्य खरच करना ओसवाल लोग अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

७—ओसवालों की पंचायतियों—ओसवालों के न्याति जाति पंचायतियों का संगठन इतना उत्तम रीति से रचा गया है कि ग्राम में झगड़ा-टंटा विवाद व लेन-देन सम्बन्धी किसी प्रकार से वैमनस्य हो जाय तो उनको अदालतों का मुंह देखने की आवश्यकता नहीं रहती है, कारण ओसवाल पंच उन वादी प्रतिवादियों को इस उत्तम रीति से घर के घर में समझा देते हैं कि फिर अपील तक का अवकाश ही नहीं रहता है। इतना ही नहीं पर ओसवाल पंच ग्राम-सम्बन्धी अनेक कार्य करने में अपना समय व द्रव्य खरच कर स्वयं कष्ट उठा लेते हैं। पर ग्राम वासों को गरम हवा तक भी नहीं पहुँचने देते हैं इसीलिये ही पंच परमेश्वर और मां-बाप कहलाते हैं।

८—ओसवालों के पर्व दिन—कार्तिक वद १५ महावीर-निर्वाण, कार्तिक शुक्ला १ गौतम केवल महोत्सव शुक्ला ५ ज्ञान पंचमी पूजा, शुद ८ से १५ तक अठाई महोत्सव मार्गशीर्ष शुद ११ मौन-एकादशी पोष वद १ पार्श्वनाथ जन्म-कल्याणक, माघ वद १३ मेरुत्रयोदशी फाल्गुन शुद ८ से १५ तक फाल्गुन अठाई महोत्सव चैत्र शुद ७ से पूर्णिमा तक आंबिल तपश्चर्या के साथ अठाई महोत्सव वैशाख में अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ मास में शान्तिनाथकल्याणक, आषाढ़ मास शुद ८ से पुनम तक अठाई महोत्सव श्रावण शुद ५ को नेमिनाथ भगवान का जन्मदिन, भाद्रव में पर्वाधिराज पर्युषण पर्व ८ दिन महोत्सव आश्विन मास में आंबिल की तपस्याओं के साथ अठाई महोत्सव। इनके सिवाय कल्याणक तिथि प्रतिष्ठा दिन आदि कईयों को पर्व माना गया है। इन पवित्र दिनों में धर्म-कृत्य विशेष किया जाता है पाप कर्म का त्याग कर आत्मभाव में रमणता करना ओसवाल लोग अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

९—ओसवालों का सम्मेलन—दीर्घदर्शी ओसवालों ने अपने सम्मेलन के लिये प्रत्येक प्रान्त में एकेक तीर्थों पर ऐसे मेले मुकर्रर कर दिये हैं कि वर्ष भर में एक दो सम्मेलन तो सहज ही में हो जाता है। वे भगवान की भक्ति के साथ अपने न्याति जाति सामाजिक और धार्मिक विषय मे किसी प्रकार के नये नियम बनाना और पुराणे नियमों का संशोधन करना, खराब रूढ़ियों को निकालना सदाचार का प्रचार करना इत्यादि समयानुसार कार्य कर सकते हैं कारण वहा सब प्रान्त के लोग एकत्र होने से न तो किसी के घर पर वह कार्य होता है न किसी को बुलाने के लिये खरचा उठाने का जोर पड़ता है और धर्मस्थान पर प्रेम एक्यता से किये हुय कार्य को चलाने में कोशिश भी नहीं करनी पड़ती है।

१०—ओसवालों का आचार व्यवहार—जुवा, चोरी, शिकार, मास, मदिरा, वैश्या, परनारी एवं सात कुव्यसन और विश्वासघात धोखेबाजी, राजद्रोह, देशद्रोह, समाजद्रोह आदि लोक निंदनीय कार्य सर्वथा त्याज्य हैं और वासीअन्न ( भोजन ) द्विदल, बावीशअभक्ष, अनछाना पाणी, रात्रीभोजन, आदि २ जीवहिंसा का कारण और शरीर में बीमारी बढ़ाने वाले पदार्थ ओसवालों के लिये सर्वथा अभक्ष हैं। सुवा सुवकवाले घरों में अन्नजल नहीं लेना ऋतु-धर्म्म चार दिन बराबर टालना सदैव स्नान मज्जन से शरीर व वस्त्रशुद्धि कर पूजा पाठ आदि अपना इष्ट स्मरण करने के बाद स्त्री व पुरुष अपने गृह कार्य्य में प्रवृतमान होते हैं इतना ही नहीं पर यज्ञोपवीत लेना भी ओसवालों का कर्त्तव्य है ओसवाल लोग सदैव थोड़ा बहुत पुन्य अपने घरों से निकालते हैं जैसे अभ्यागतों को अन्नजल, गायों को घास, कुत्तों को रोटी, भिक्षुकों को भोजन यह ओसवालों की दिनचर्या है।

११—ओसवालों की वीरता—भारतीय अन्योन्य ज्ञातियों से ओसवालों की वीरता बढ़बढ़ के है। कारण यह ज्ञाति मूल राजपूतों से बनी है ओसवालों में ऐसे ऐसे शूरवीर हुये हैं कि सैंकड़ों जगह संग्राम में प्रतिपक्षी व अन्यायीओं को पराजय कर अपनी विजय पताका भूमण्डल में फहरावे हुए देश का रक्षण किया जिनवीरों की वीरता का उज्वल जीवन इतिहास के पृष्ठों पर आज भी सुवर्ण अक्षरों से अंकित है।

१२—ओसवालों का पदाधिकार—दीवान, मंत्री, महामंत्री, सेनापति, हाकिम, तहसीलदार, जज—जगतसेठ, नगरसेठ, पच, चौधरी, पटवारी, कामदार, खजानची, कोठारी, बोहराजी, आदि ओसवालों को अपनी योग्यता पर पदाधिकार मिला एव मिल जाता है तदनुसार वे जहाँ तहाँ नागरिकों का भला भी किया करते हैं और नागरिकों की तरफ मे ही नहीं पर राजा महाराजाओं की तरफ से बड़ा भारी मान मरतबा भी मिलता है यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि उस समय राजदरबार में ओसवाल चाहते वह ही जनता का भला कर गुजरते थे। अर्थात इस पदाधिकार के जरिये ओसवालों ने दुनिया का बहुत भला किया देश और राजाओं की कीमती सेवा करके अच्छी तरक्की दी थी।

१३—ओसवालों की मानमर्यादा—रीतिरिवाज इज्जत वगैरह अन्योन्य ज्ञातियों से खूब बढ़बढ़ के हैं कारण ओसवालों की शौर्यता वीरता, धैर्यता, गभीर्यता, नीतिकुशलता, रणकुशलता, सन्धिकुशलता, साम, दाम, दण्ड, भेद प्रतिज्ञापालन, देशसेवा, राजसेवा, समाजसेवा, धर्म्मसेवा और चतुर्यादि अनेक सद्-गुणों से आकर्षित हो राजा और प्रजा ओसवाल लोगों को इज्जत आदर सत्कार—मानमहत्व देना अपना खास कर्त्तव्य समझते हैं।

२७

<u>१४—ओसवालों का पेशा ( धंधा )</u>—जिन राजामहाराजाओं को मिथ्यात्वरूप गुफा के ओसवाल बनाये गये थे। वह चिरकाल ( कई पीढ़ियों ) तक राज ही करते रहे और कितनेक लोगों ने राजकर्मचारी बन राजतंत्र चलाये और कितनेक लोग व्यापार करने लगे उनके लिये यह कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि व्यापार में जितनी हिम्मत महाजनों की है उतनी शायद ही अन्य जाति की होगी। व्यापार करने का तात्पर्य केवल पैसा पैदा करने का ही नहीं था, किन्तु व्यापार देशोन्नति का एक अंग समझा जाता है। जिस देश में व्यापार की उन्नति है वह देश सदैव के लिए सुखी और समृद्धशाली रहता है, इसीलिये देशसेवा में ओसवाल अग्रेसर माने जाते हैं और ओसवालों ने खेती को भी व्यापार का एक अंग माना है और जो साधारण गाँव में रहते हैं वे ओसवाल व्यापार के साथ खेती भी करवाया करते हैं। इसमें उन लोगों ने मुख्य दो बातें लक्ष्य रक्खी हैं; १—पुरुषार्थी जीवन २—गृहजीवन में सुख शान्ति। यही कारण है कि वे खेती से अपना तमाम खर्चा निकाल सकते हैं। इतना ही क्यों पर वे अनेक पशु जाति का रक्षण भी करते हैं, जिससे अपने शरीर का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे। दूसरे व्यापार में जो द्रव्य पैदा करते हैं वह धर्मकार्य में खुशी से लगा देते हैं।

<u>१५—ओसवालों की दौलत</u>—ओसवाल लोग बहुत धनाढ्य थे। वे राजा महाराजा ठाकुरों जमीनदारों और किसान लोगों को द्रव्य कर्ज में दिया करते हैं। इसमें स्वार्थ के साथ देशसेवा भी रही हुई है कारण देश आबादी का आधार किसानों पर है किसानों को जैसे जैसे साधन सामग्री अधिक मिलती है वैसे वैसे पैदावारी अधिक करते हैं; जिस देश में धान्यघासादि की अधिक पैदावारी है, वहाँ राजा प्रजा सब सुखी और उन्नत रहते हैं।

<u>१६—ओसवालों के व्यापारक्षेत्र की विशालता</u>—भारतीय देशों के सिवाय सामुद्रिक जहाजों द्वारा अन्य देशों में भी ओसवाल व्यापारियों का व्यापार था, जाति भाइयों के सिवाय अपने देश-भाइयों को भी व्यापार में उन्नत बनाने की कोशिश करते हैं जो लोग देश में व्यापार करते हैं वह भी बड़े ही विलक्षण व्यापार करते हैं कि एक बड़े व्यापारी के पीछे सैकड़ों लोग अपना गुजारा अच्छी तरह से कर सकें। ओसवालों को कुलदेवी का वरदान है कि वह व्यापार में प्रचुर द्रव्य पैदा करें। 'उपकेशे बहुलं द्रव्यं'। ओसवाल जैसे न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जन करते हैं वैसे ही वह शुभ कार्यों में भी लाखों करोड़ों द्रव्य खरच के अपने जीवन को सफल बनाते हैं।

<u>१७—ओसवालों के ब्याह लग्न</u>—जो राजपूतों से ओसवाल बनाये गये थे उनकी लग्न-शादी कितनेक अरसे तक तो राजपूतों के साथ ही होती रही। बाद ओसवाल जाति का एक बड़ा भारी जत्था बन गया तब से उनकी लग्न शादी जैनधर्म पालने वाली जातियों में होने लगी अतः ओसवालों का लग्न-क्षेत्र विशाल था। और इस जाति के पूर्वजों ने ऐसे उत्तम रीतरिवाज बाँध रखे हैं कि जिससे धनाढ्य और साधारण एवं सब का निर्वाह अच्छी तरह से होता रहे। इस जाति में धर्म-विवाह बड़ी इज्जत के साथ होते हैं। कन्या का पैसा लेना तो दूर रहा पर कन्या के घर के यहाँ का पानी पीना भी पाप समझते हैं। इसी कारण से इस जाति की बड़ी भारी इज्जत मानी जाती है और विस्तार में फली-फूली है।

<u>१८—ओसवालों की गृहदेवियाँ</u>—ओसवालों के घरों में महिलाओं की बड़ी भारी इज्जत मान-मर्यादा कायदा-कानून है। बाहर जाने के समय दो चार इतर जाति की औरतें साथ रहती हैं यानी नायन, कमार

९—ओसवालों का सम्मेलन—दीर्घदर्शी ओसवालों ने अपने सम्मेलन के लिये प्रत्येक प्रान्त में एकेक तीर्थों पर ऐसे मेले मुकर्रर कर दिये हैं कि वर्ष भर में एक दो सम्मेलन तो सहज ही में हो जाता है। वे भगवान की भक्ति के साथ अपने न्याति जाति सामाजिक और धार्मिक विषय में किसी प्रकार के नये नियम बनाना और पुराणे नियमों का संशोधन करना, खराब रूढियों को निकालना सदाचार का प्रचार करना इत्यादि समयानुसार कार्य कर सकते हैं कारण वहां सब प्रान्त के लोग एकत्र होने से न तो किसी के घर पर वह कार्य होता है न किसी को बुलाने के लिये खरचा उठाने का जोर पड़ता है और धर्मस्थान पर प्रेम एक्यता से किये हुय कार्य को चलाने में कोशिश भी नहीं करनी पड़ती है।

१०—ओसवालों का आचार व्यवहार—जुवा, चोरी, शिकार, मांस, मदिरा, वैश्या, परनारी एवं सात कुव्यसन और विश्वासघात धोखेबाजी, राजद्रोह, देशद्रोह, समाजद्रोह आदि लोक निंदनीय कार्य सर्वथा त्याज्य हैं और बासीअन्न ( भोजन ) द्विदल, बावीशअभक्ष, अनछाना पाणी, रात्रीभोजन, आदि २ जीवहिंसा का कारण और शरीर में बीमारी बढ़ाने वाले पदार्थ ओसवालों के लिये सर्वथा अभक्ष हैं। सुवा सुतकवाले घरों में अन्नजल नहीं लेना ऋतु-धर्म्म चार दिन बराबर टालना सदैव स्नान मज्जन से शरीर व वस्त्रशुद्धि कर पूजा पाठ आदि अपना इष्ट स्मरण करने के बाद स्त्री व पुरुष अपने गृह कार्य्य में प्रवृतमान होते हैं इतना ही नहीं पर यज्ञोपवीत लेना भी ओसवालों का कर्त्तव्य है ओसवाल लोग सदैव थोड़ा बहुत पुन्य अपने घरों से निकालते हैं जैसे अभ्यागतों को अन्नजल, गायों को घास, कुत्तों को रोटी, भिक्षुकों को भोजन यह ओसवालों की दिनचर्या है।

११—ओसवालों की वीरता—भारतीय अन्योन्य ज्ञातियों से ओसवालों की वीरता चढ़बढ़ के है। कारण यह ज्ञाति मूल राजपूतों से बनी है ओसवालों में ऐसे ऐसे शूरवीर हुये हैं कि सेंकड़ों जगह संग्राम में प्रतिपक्षी व अन्यायीओं को पराजय कर अपनी विजय पताका भूमण्डल में फहराते हुए देश का रक्षण किया जिनवीरों की वीरता का उज्वल जीवन इतिहास के पृष्ठों पर आज भी सुवर्ण अक्षरों से अंकित है।

१२—ओसवालों का पदाधिकार—दीवान, मंत्री, महामंत्री, सेनापति, हाकिम, तहसीलदार, जज—जगतसेठ, नगरसेठ, पच, चौधरी, पटवारी, कामदार, खजानची, कोठारी, बोहराजी, आदि ओसवालों को अपनी योग्यता पर पदाधिकार मिला एवं मिल जाता है तदनुसार वे जहाँ तहाँ नागरिकों का भला भी किया करते हैं और नागरिकों की तरफ से ही नहीं पर राजा महाराजाओं की तरफ से बड़ा भारी मान मरतबा भी मिलता है यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि उस समय राजदरबार में ओसवाल चाहते वह ही जनता का भला कर गुजरते थे। अर्थात इस पदाधिकार के जरिये ओसवालों ने दुनिया का बहुत भला किया देश और राजाओं की कीमती सेवा करके अच्छी तरक्की दी थी।

१३—ओसवालों की मानमर्यादा—रीतिरिवाज इज्जत वगैरह अन्योन्य ज्ञातियों से खूब चढ़बढ़ के हैं कारण ओसवालों की शौर्यता, वीरता, धैर्यता, गम्भीर्यता, नीतिकुशलता, रणकुशलता, सन्धिकुशलता, साम, दाम, दंड, भेद प्रतिज्ञापालन, देशसेवा, राजसेवा, समाजसेवा, धर्म्मसेवा और चतुर्यादि अनेक सद्गुणों से आकर्षित हो राजा और प्रजा ओसवाल लोगों को इज्जत आदर सत्कार—मानमहत्व देना अपना खास कर्त्तव्य समझते हैं।

२३—ओसवालों के याचक—यों तो जितने याचक हैं उनकी याचना पर ओसवाल यथाशक्ति देते ही हैं, परन्तु एक सेवग जाति ओसवालों के लिये मुकर्रर है और वे सेवक सिवाय ओसवालों के किसी से याचना नहीं करते फिर भी ओसवालों की कृपा से वे अन्य याचकों की अपेक्षा बढ़-चढ़ के रहते हैं। ओसवालों के न्याति-जाति, पंच पंचायती शादी व संघ-सम्बन्धी हरेक काम काज अर्थात् एक घर सम्बन्धी व समुदाय सम्बन्धी कोई कार्य हो, उनके लिये सेवग लोग हैं, वह ओसवालों के हरेक कार्य करने को व देश-वस्ती में हाजर रहते हैं और जैनमन्दिर उपासरायों का कचरा-कचरा निकालना, बरतन बिछायतादि चीज के सम्भार रखना, इत्यादि और उन सेवग जाति के निर्वाह के लिये ओसवालों ने प्रतिदिन प्रत्येक घर से एकेक रोटी देना और लग्न शादी में त्याग या इनाम वगैरह के रुपये देना कि जिससे उन सेवगों का सुखपूर्वक निर्वाह हो जाय और सेवगों ने भी ऐसी प्रतिज्ञा ले रखी है कि हम ओसवालों के सिवाय दूसरी जाति से याचना नहीं करेंगे।

२४—ओसवालों की सर्व जीवों के प्रति मैत्री की भावना—पर्युषणादि पर्व-दिनों में ओसवाल सर्व पापकर्मों का त्याग करते हैं और दूसरी जातियों को उपदेश द्वारा व द्रव्य द्वारा अनेक पापकार्य छुड़ाते हैं इतना नहीं पर इस विषय में बड़े बड़े राजामहाराजा और बादशाहों के दिल को आकर्षित कर जीव दया व पर्व-दिनों में अगते पलाने के विषय में पट्टे परवाने सनदें फरमान प्राप्त कर उनका अमल दर अमल देश-प्रदेश में करवा कर बिचारे निरपराधी असंख्य जीवों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। केवल पशुओं के लिये ही नहीं बल्कि कई दुष्कालों में क्रोड़ों रुपैये खरच कर अपने देश भाइयों के प्राण भी बचाये हैं यह ओसवालों की उदार भावना का परिचय है।

२५—ओसवालों के गोत्र जातियां—ये हम पहिले लिख आये हैं कि ओसवाल जाति मात्र क्षत्री वर्ण से ही बनी है। उन क्षत्रियों की अनेक जातियां इसमें शामिल हैं। जब से आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उन और क्षत्रियों को ऐक्यता के सूत्र में संगठित कर महाजन संघ बनाया था तब तो वे सब महाजन संघी कहलाते थे परन्तु बाद में कई २ कारणों से उनके गोत्र बन गये और ऐसे गोत्रों की आवश्यकता भी रहा करती है। क्योंकि जब गृहस्थों के लग्न शादी का काम पड़ता है तब वे कई गोत्र छोड़ कर शादी करते हैं। मारवाड़ में चार गोत्र १—बाप २—बाप की माता ३—अपनी माता ४—अपनी माता की माता इन चार गोत्रों को छोड़ कर शादी की जाती है। अतः गोत्रों की आवश्यकता है।

एक समय ओसवालों की जातियों की गिनती करने के लिये निकला और जहां ओसवाल बसते थे और उसको मालूम थी वहां घूम २ कर उसने ओसवालों की जातियां एक किताब में लिखनी शुरू कर दीं। जब वह जातियां लिखते २ एक मकान पर आया तो उसकी औरत ने पूछा कि आपने ओसवालों की कितनी जातियां लिखी हैं? सेवगजी ने जवाब दिया कि मैंने ओसवालों के १४४४ गोत्र लिखे हैं। इस पर उस औरत ने पूछा कि मेरे पीहर में जो ओसवालों का गोत्र है वह भी आपने लिख लिया है न? उसका क्या नाम है? डोसी। सेवग ने कहा यह ओसवाल जाति एक समुद्र है, इसका पता मेरे जैसे से नहीं लगता है। "रह गया एक डोसी तो बहुत सा डोसी" अर्थात् यह ओसवालों की एक बड़ा उत्पत्ति का ही दिग था जिसके आधार पर हमने यह ओसवाल जाति का आदर्श लिखा है।

पीसना, गोबर उठाना वगैरह हलके कार्य वह नहीं करती हैं वैसे कार्य उन्होंके घरों में प्रायः मजूर ही किया करते हैं। ओसवालों की स्त्रियाँ प्रायः लिखी पढ़ी होती हैं। हुन्नर उद्योग में वह होशियार होती हैं। सलमा-सितारा व जरी के कसीदे वगैरह आवश्यक्ता माफिक गृहकार्य में वह दूसरों की अपेक्षा बगैर सब कार्य स्वय कर लेती हैं। जैसे वह गृहकार्य में चतुर होती हैं वैसे धर्म्मकार्य में भी बड़ी दक्ष हुआ करती हैं। हाँ कई लोग छोटे मामों में रहते हैं वह अन्य लोगों के ससर्ग के कारण पराधीन न रह कर सब कार्य स्वय कर लेते हैं।

१९—ओसवालों की पोशाक—ओसवालों की पोशाक प्राय' मारवाड़ी है। वे श्रेष्ठ कपड़ों के साथ जेवर पहनना अधिक पसन्द करते हैं। मुसाफिरी के समय तलवारादि शस्त्र भी रखा करते हैं। ओसवालों के घरों में औरतों की पोशाक जितनी सुन्दर व शोभनीय होती है उतनी ही अदनमय है। चाहे ओसवाल लोग विदेश में चले जावे परन्तु उनकी पोशाक तो अपने देश की ही रहेगी, परन्तु जो चिरकाल से विदेशवासी हो गये हैं उन्हों की पोशाक देशानुसार बदल भी गई है, पर वह कभी देश में आते हैं तब तो उनको अपने देश की पोशाकादि धारण करनी पड़ती है।

२०—ओसवालों की भाषा—ओसवालों की मूल भाषा मारवाड़ी है पर वे प्राय सस्कृत, प्राकृत, गुजराती मराठी, कनाडी, तैलगी, बंगाली आदि बहुत भाषा भाषी हुआ करते हैं। यह कहना भी अतिशय युक्ति न होगा कि जितनी भाषाओं का बोध ओसवालों को है उतना शायद ही किसी अन्य ज्ञाति को होगा। ओसवालों में उच्च भाषा व उच्च शब्दों का प्रयोग विशेष रूप में होता है। पत्रों की लिखावट में भी ऐसे प्रिय और उच्च शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसमे प्रेम-ऐक्यता का सचार स्वभाव से ही हो जाता है। ओसवालों को जैसे भाषा का विशाल ज्ञान है वैसे लिपियों का ज्ञान भी विस्तृत है। वह हरेक लिपि को इशारा मात्र से पढ़ सकते हैं। इसका कारण ओसवालों का व्यापार हरेक देशवासियों के साथ होना ही है।

२१—ओसवालों का महत्त्व—ओसवाल ज्ञाति अन्यान्य ज्ञातियों से बढ़-बढ़ के होने पर भी अन्यअन्य ज्ञातियों के साथ प्रेम ऐक्यता के साथ उनकी उन्नति में आप सहायक बन मदद करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि ग्राम-सम्बन्धी कोई भी कार्य हो, उसमें आप कितने ही कष्ट व नुकसान उठा लेते हैं, राज दरबार में जाने का काम पड़ने पर आप अपना काम छोड़ वहा जावें, जवाब सवाल करें, पैसा खरच करें, पर ग्रामवासियों तक गरम हवा तक नहीं आने देवे इस परोपकार-वृत्ति से ही दुनिया में ओसवालों का मान-महत्त्व मशहूर है।

२२—ओसवालों के घरों में गौधन का पालन—ओसवालों के घरों में गौधन का पालन विस्तृत संख्या में होता है। ऐसा शायद ही घर होगा कि जिस घर में गौमाता का पालन न होता हो ? सन्तान वृद्धि और वीरता का मुख्य कारण कहा जाय तो गौ का पालन करना ही है। दूसरी बात यह भी है कि ओसवाल के घरों में गौ का पालन इतनी उत्तमरीति से होता है कि आप कष्ट सहन कर लेने पर भी गौ को तकलीफ नहीं होने देते। इसी कारण से दूसरों से पंच दश रुपये ओसवालों से कम लिये जाते हैं। किसानों को विश्वास है कि ओसवालों के घरों मे गौधन बहुत सुखी रहते हैं। उन गौओं का लाभ केवल ओसवालों को ही नहीं, पर दूध दही छाछ वगैरह का बहुत से लोगों को भी लाभ मिलता है, यह उनकी उदारता का परिचय है।

विचार साधुओं के सामने प्रगट किया तो साधुओं ने अपनी सम्मति दे दी। कारण, एक तो साधुओं को भ्रमण करने का दिल रहा करता है, दूसरे भवभीरु मुनियों को तीर्थंकरों के कल्याणक भूमि की यात्रा भी करनी थी; अतः पूर्व की ओर विहार करना निश्चय कर लिया।

सूरीश्वरजी महाराज ने बहुत से साधुओं को मरुधर में विहार करने की आज्ञा दे दी और ५०० साधुओं को अपने साथ लेकर पूर्व की ओर विहार कर दिया क्रमशः सौरीपुर तथा मथुरा की यात्रा कर के वहाँ से हस्तनापुर बनारस होते हुये अंग बंग कलिंगादि पूर्व प्रान्त में घूम घूम कर †सम्मेतशिखर पावापुरी चम्पापुर वगैरह तीर्थों की यात्रा की और राजगृह वगैरह नगरों के श्रावकों को धर्मोपदेश सुना कर बहुत उपकार किया। इधर हेमवंत कुमारगिरी कुमारगिरि (खं)डों की यात्रा कर अपने जीवन को पवित्र बनाया।

उधर मरुधर में रहे हुये साधुओं ने एक सम्मेतशिखर तीर्थ का विराट संघ निकाला कर यात्रा निमित्त पूर्व में गये वह बात आचार्य यक्षदेवसूरि ने सुनी तो वे भी अपने साधुओं के साथ आकर संघ में शामिल हुये जिससे मरुधर वासियों का उत्साह बहुत ही बढ़ गया और उन सब लोगों ने सूरीश्वरजी से प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! आप तो पूर्व में पधार कर हम लोगों को भूल ही गये। अब आप कृपा करके मरुधर की ओर विहार करावें अर्थात् इस संघ के साथ ही मरुभूमि की ओर पधारें।

सूरीश्वरजी को भी कई वर्ष पूर्व में विहार करने को हो गये थे, अतः संघ के साथ आये हुये मुनियों को पूर्व में विचरने की आज्ञा देदी और आप सपरिवार संघ के साथ यात्रा कर पुनः मरुधर में पधार गये और राजा उत्पलदेव के आग्रह से वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही किया। आप श्री के उपकेशपुर में विराजने से उपकेशपुर और आसपास के ग्रामों में धर्म की खूब ही जागृति एवं प्रभावना हुई।

एक समय आपने रात्रि में आत्म-चिंतन करते समय यह विचार किया कि कहाँ आचार्य स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि कि जिन्होंने अनेकानेक कठिनाइयों को सहन कर वाममार्गियों जैसे पाखण्ड का निकन्दन कर जैनधर्म का प्रचार कर हजारों लाखों करोड़ों प्राणियों का उद्धार किया और कहाँ मैं ! क्या मैं उन पूर्वजों के बनाये हुये श्रावकों पर ही अपना जीवन व्यतीत करूंगा ? नहीं, मुझे भी किसी नये प्रदेश में जाकर जैनधर्म का प्रचार करना चाहिये इत्यादि विचार करते थे कि इतने में सच्चायिकादेवी आकर कहने लगी कि हे आचार्य ! आप इतना क्या विचार करते हो ? यदि आप पुरुषार्थ करें तो वही कार्य आप कर सकते हो जो आपके पूर्वजों ने किया है। आप के लिये यह सिन्ध प्रान्त नजदीक ही है और वहाँ भी वाममार्गियों का इतना ही जोर है जितना कि एक समय इस मरुभूमि में था मैं इस बात को दावे के साथ कहती हूँ कि यदि आप सिन्ध प्रान्त में पधारें तो आपको वही सफलता मिलेगी जो आचार्य स्वयंप्रभ और रत्नप्रभसूरि को मिली थी।

---

†[illegible] विहार क्षेत्र इतना विशाल था कि वे किसी भी व्यक्ति या परिवार [illegible] सम्मेतशिखर तीर्थ के आसपास पू..र्व में विहार कर अनेक व्यक्तियों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी। आज भी जैनधर्म से बिछुड़े हुये 'सराक' जाति बंगाल के बीच जैनधर्म से वंचित हुये पाये जाते हैं वे भी उन [illegible] के अनुयायी थे। अब ही जैनधर्म के उपदेशकों का [illegible] न होने से यह [illegible] जैनधर्म को भूल गये हों परन्तु जैनी का संस्कार अभी तक उनके अन्दर विद्यमान है। [illegible] धर्म के वे ऐसे ही पालक ही हैं। [illegible] वे पार्श्वनाथ को ही मानते हैं और उनके जो [illegible] हैं उनको भी [illegible] कहते हैं। वे सब वहाँ उनको पूर्व जैन होना ही साबित कर रही हैं।

# ७—आचार्य यक्षदेवसूरिः

क्षात्रः सप्तम पट्टधृक् समभवद्देवस्तु यक्षोत्तरः,
सूरिः सिन्धुजल प्रवाह भरिते प्रान्ते सुतं भूभृतः ।
कक्कं ज्ञानसमूह मादिशदयं तत्याज वेध्यं यथा,
क्षत्रान् रुद्रट वंशजानुप दिशद्दीक्षां च तस्यास्तटे ॥

आचार्य यक्षदेवसूरि—आप अद्वितीय प्रभावशाली थे। पिछले प्रकरण में आप पढ़ आये हैं कि आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास वीरधवल नामक उपाध्याय थे। महाजनसघ की स्थापना का सब कार्य्य आपश्री के हाथों से ही सम्पादन हुआ था। आपश्री जैसे विशुद्ध क्षत्रिय वंश के वीर थे, वैसे ही आप धर्म के कार्य्य भी वीरता के साथ किये करते थे। जैनधर्म का प्रचार और वादियों के साथ शास्त्रार्थ करने में तो आप विजयी सुभट की तरह सिद्ध हस्त ही थे।

आचार्य कनकप्रभसूरि के साथ आप रत्नप्रभसूरि सा व्यवहार रखते थे। समय समय आप उनके दर्शनार्थ जाते थे अत' दोनों आचार्य एव आप दोनों के श्रमण सघ में विनय-व्यवहार और धर्म-स्नेह दिन प्रति दिन बढ़ता ही रहता था।

एक समय आचार्य यक्षदेवसूरि अपने शिष्यमण्डल के साथ मरुधर को उपदेशामृत का सिंचन करते हुये क्रमश' कोरटपुर पधार रहे थे, जब यह खबर वहा के श्रीसघ को मिली तो उनके उत्साह का पार नहीं रहा। एक कोरटपुर ही क्यों पर उनके आस-पास के नगरों में खबर होने से सूरिजी के दर्शन एवं स्वागत के लिये मानो मानव मेदिनी एक दम उमड़ उठी हो? और बड़े ही समारोह के साथ सूरिजी को नगर प्रवेश कराया। अहा हा! आज कोरटपुर के घर घर में यह खुशिया मनाई जारही कि आज अपना अहोभाग्य है कि सूरीश्वरजी का पधारना हुआ है इत्यादि। सूरीश्वरजी ने सघ के साथ महावीर मदिर के दर्शन किये। तत्पश्चात् मगलाचरण के साथ थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी। जिसको सुनकर उपस्थित लोगों के हृदय में वैराग्य के अकूर उत्पन्न हुये। फिर शासन की प्रभावना के साथ सभा विसर्ज्जन हुई।

सूरीश्वरजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर ही विशेष होता था, यही कारण था कि आपके श्रमण-श्रमणियों की सख्या खूब बढ़ रही थी। इसी प्रकार आपने जैनेतरों को जैनधर्म में दीक्षित कर श्राद्ध सख्या भी बढ़ाई।

आचार्य यक्षदेवसूरि को एक समय पूर्व के भक्त लोगों की भक्ति एव सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रा स्मृति में आई तो आपका विचार उधर की तरफ विहार करने का हो आया। जब आचार्यश्री ने अपना

श्रीयक्षदेवस्तत्पट्टे, पूर्वाचल इवाऽर्यमा। सूरिरभ्युदितोरेजे, तमस्तोमहरोऽङ्गिनाम् ॥

उपकेशगच्छ चरित्र

आचार्य्य श्री ने कहा कि हे राजन् ! आप जानते हो कि इस प्रकार की सहायता से हम कब तक काम कर सकते हैं ? जब मंगलाचरण में ही हम सहायता के अधीन बन जावें तो आगे चल कर हम क्या काम कर सकेंगे ? अतः आपकी शुभ कामना अच्छी है, पर हम इस बात को बिलकुल नहीं चाहते हैं।

बस सूरिजी ने अपने ५०० साधुओं के साथ उपकेशपुर से विहार कर दिया और क्रमशः सिन्ध प्रान्त की ओर आगे बढ़ने लगे। रास्ते में जैन श्रावकों के मकान आते रहे तब तक तो उनको किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई, पर जब केवल उन वाममार्गियों के ही ग्राम आये तो उन लोगों ने जैनसाधुओं को देख उनके साथ अनेक कुचेष्टायें करनी शुरू कर दीं अर्थात् नाना प्रकार के परिसह देने लगे। इस पर भी न खाने को भोजन न पीने को पानी न ठहरने को मकान तो फिर सन्मान और स्वागत की तो आशा ही क्या ? हां स्वागत के बदले लेकर धीर भक्ति के स्थान पग २ पर अपमानादि। यहां तक कि वे लोग साधुओं को पत्थर और लकड़ियों से मारने पीटने में भी कमी नहीं रखते थे। कभी कभी तो वे भूखे-प्यासे साधु स्थान के अभाव में जंगलों में ही रात्रि व्यतीत करते थे, इत्यादि। नये जैन बनाने में कितनी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं यह तो वे भुक्त-भोगी ही जानते हैं। खैर, फिर भी जिन परोपकारी महापुरुषों ने जन कल्याण का बीड़ा उठा लिया हो उनके सामने सुख और दुःख कौन गिनती में है। जैसे चलता हुआ पंथी आम्र वृक्ष को पत्थर मारता है, पर आम्र वृक्ष तो उसको मधुर फल ही देता है। इसी भांति वे अज्ञानी जीव सूरिजी को कितना ही कष्ट दें, पर वे तो उनको शान्त वचनों से समझा कर धर्म-पथ पर लाने की कोशिश करते थे और सूरीश्वरजी का तप-तेज एवं अतिशय प्रभाव का असर उन बाल लोगों पर इस प्रकार होता था कि वह शान्ति मूर्ति साधुओं को देख कर अपने आप ही उनके सद्गुणों पर मुग्ध हो जाते थे।

एक समय का जिक्र है कि सूरीश्वरजी अपने शिष्य मंडल के साथ एक भयंकर जंगल से जा रहे थे। इतने में पीछे से कई घुड़सवार बड़े ही वेग से आ रहे थे। उनके हाथों में विद्युत के सदृश चमकते हुए शस्त्र और एक ओर धनुषबाण थे। इन सवारों के भय से बिचारे मृगादि पशुगण जीव भय-भ्रान्त होकर दूर २ भागते जा रहे थे। इस कारुण्य दृश्य को देखते ही उस अवस्था के प्रति सूरीश्वरजी का हृदय दया से लबालब भर आया और उन्होंने घुड़सवारों को सम्बोधन करते हुए कहा कि ठहरो, ठहरो ! इस आवाज को सुन कर प्रथम घुड़सवार ने घोड़ा का मुंह मोड़ कर सूरिजी के सामने देखा—और कहा कि तुम्हें क्या जरूरत है और तुम क्या कहना चाहते हो ? जल्दी से कह दो हमारी शिकार जा रही है।

जब घुड़सवार ने सूरिजी की ओर टकटकी लगा कर देखा तो सूरिजी के तप तेज एवं अतिशय प्रभाव तथा शांत मुद्रा देख कर उसने घोड़े से नीचे उतर कर सूरिजी के पास आकर कहा।

घुड़सवार—आप कौन हैं ?

सूरिजी—हम 'अहिंसापरमोधर्म' का उपदेश करने वाले साधु हैं।

घुड़—आप कहां से आये और कहां जाते हो ?

---

१ उपकेशपुरं गत्वा, सिन्धु देशं ततो गतः । दुःसहानेक कष्टानि सेहे तत्र महा मुनिः ॥
एकदा तत्र पुत्रोऽपि रुद्र नामा महामतिः । आखेटे गत आलोकेऽर्हिंसा धर्मं च सूरितः ॥
"उपकेशगच्छ चरित्र"

सूरिजी की तो पहिले से ही भावना थी, फिर देवी के कहने ने तो और भी पुष्ट बना दी। आचार्य श्री ने ठीक निश्चय कर लिया कि चातुर्मास समाप्त होते ही सिंध भूमि की ओर विहार करना है।

इधर तो चतुर्मास खत्म होने को था, उधर सूरीश्वरजी ने राजाउत्पलदेव मत्री ऊहड़ वगैरह 'ध र्मेश्वरों की सलाह ली कि मेरा विचार सिन्ध प्रान्तकी ओर विहार करने का है, इसमें आपकी क्या राय है ?

राजा व मत्रीने बड़ी प्रसन्नता के साथ अर्ज की कि हे पूज्यवर ! आपका यह विचार तो अत्युत्तम है एवं बड़ा भारी उपकार का काम है और यह प्रवृति आपके पूर्वजों से ही चली आई है और यह कार्य्य आप जैसे समर्थ पुरुषों का ही है, पर पहिले आप इस बात को अच्छी तरह से सोच लीजिये कि सिन्धप्रान्त में विहार करना साधारण बात नहीं पर एक टेढ़ी खीर है, क्योंकि वहाँ सर्वत्र पाखण्डियों का साम्राज्य जमा हुआ है। वहाँ जाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, अत आप अपने साधुओं की शक्ति पर विचार कर लीजिये।

इस पर सूरिजी ने कहा कि नरेन्द्र ! आप जानते हो कि बिना परिश्रम लाभ भी कहां है ? और जितना अधिक कष्ट है उतना लाभ भी अधिक है। आप जानते हो कि आपके मरुधर में आने में कौन सा कम कष्ट सहन करना पड़ा था ? हा, साधुओं को पूछना जरूरी बात है। अत मैं साधुओं को पूछ लूंगा पर मुझे विश्वास है कि मेरे साधुओं में एक भी ऐसा साधु न होगा जो परिसह के सहन करने में कायरता दिखा दे। राजा ने कहा ठीक है, हम लोगों को तो आपकी सेवा-एवं दर्शन का अन्तराय रहेगा, पर यह कार्य्य भी बड़े भारी उपकार का है। अत हम लोग आप के इस उत्तम कार्य्य में सहमत हैं।

एक दिन सूरीश्वरजी ने अपने श्रमण सघ को एकत्र कर अपने विचार प्रगट कर दिये कि मेरे सिन्ध प्रान्त में विहार करने का विचार है पर उधर विहार करने में बहुत कठिनाइयें और परिसह उपस्थित होने की संभावना है, क्योंकि वहाँ न तो श्रावक हैं और न कोई स्वागत करने वाला ही है। इतना ही क्यों पर उल्टा उपद्रव करने वाले हैं, पर साथ में यह भी समझ लेना कि जितना कष्ट ज्यादा है उतना ही लाभ अधिक है। अत' जो साधु इन सब बातों को सहन करने वाले हों वह मेरे साथ चलने को तैयार हो जायँ और शेष साधुओं के लिये मैं यहा विचरने की आज्ञा दे देता हूँ।

सूरीश्वरजी के वचन सुन कर ऐसा कौन साधु था कि जिसके हृदय में उत्साह की बिजली न चमक उठे। बस, मानो गिरिराज की गुफाओं से शेर गर्जना कर मैदान में आते हैं, वैसे ही मुनिवर्ग बोल उठा कि हे पूज्यवर ! हमारा जीवन ही इस काम के लिये है, एक नहीं पर हजारों सकट आजावें तो क्या परवाह है ? आप अपनी वृद्धावस्था में भी इतना साहस दिखला रहे हैं तो क्या हम इस लाभ से वंचित रहने वाले हैं ? अर्थात् हम सब आपश्री के साथ विहार करने के लिये कटिबद्ध हैं—तैयार हैं।

सूरीश्वरजी ने साधुगण के धीरता के वचन सुन कर यह निश्चय कर लिया कि इस कार्य्य में हमें अवश्य सफलता मिलेगी। बस, चतुर्मास समाप्त होते ही आचार्यश्री ने अपने १०० साधुओं को अपने साथ चलने की और शेष साधुओं को मरुधर में विहार करने की आज्ञा दे दी, जिसको साधुओं ने शिरोधार्यकर ली।

राजा और मत्री ने प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! सिन्ध प्रान्त एक नया क्षेत्र है। वहाँ के सब लोग मिथ्यात्वी हैं। आपको उधर विहार में असुविधा रहेगी, अत' हमारा विचार है कि कई श्रावक एवं आदमी आपकी सेवार्थ साथ में भेज दू।

आचार्य यक्षदेवसूरि सिन्धधरा में प्रवेश करते हैं राजकुँवरादि शिकार को जाते हुए घुड़ सवारों को खड़े रख अहिंसा परमोधर्म का उपदेश कर रहे हैं ।

आचार्य यक्षदेवसूरी ने कोरटपुर या राजगृह के यक्ष को प्रतिबोध कर संघ का संकट मिटा कर शान्ति स्थापन की अन्त अपने नाम को सार्थ किया है ।

करता है। अतः जीवनदान करने के सामने कांचन का मेरु पर्वत एवं सुवर्ण मय पृथ्वी भी किसी गिनती में नहीं है। अतः प्राणियों को जीवन दान देना सब से श्रेष्ठ धर्म है।

सर्वेवेदाननतत्कुर्यात्सर्वेयज्ञाश्च भारत। सर्वेतीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात् प्राणिनां दया ॥

अर्थात् एक जीव के प्राणों को बचाने में जितना पुन्य है वह पुन्य न तो वेद पढ़ने में है न यज्ञ करने में है और न सब तीर्थों का अभिषेक करने में है।

इनके अलावा भी सूरिजी ने कई हेतु युक्ति दृष्टान्त द्वारा उन मुमुक्षुओं को समझाते हुये कहा कि हे महानुभावो! आप जानते हैं कि इस नाशमान संसार के अन्दर धर्म ही एक ऐसा कल्पवृक्ष है कि जिसके सेवन से जीव मन इच्छित फल को पा सकता है। धर्म से ही इस भव और पर भव में सुखी बन सकता है। धन-धान्य, पुत्र, कलत्र, राजपाट, सुख, सौभाग्य यश, कीर्ति, मान, प्रतिष्ठा ऋद्धि-सिद्धि और सर्व कार्यों में सफलता— विजय धर्म से ही मिलती है। और जिन दुष्ट प्राणियों ने पूर्व जन्म में धर्मोपार्जन नहीं किया है और पापाचरण में अनुरक्त रह कर अनेक प्राणियों के प्राणों को नष्ट किया है अर्थात् हिंसा मृषा, चोरी और मैथुन कर्म किया है, वह इस जन्म में दीन, हीन, दुःखी, दरिद्र, दुर्भाग्य, रोग शोक से पीड़ित और पराधीन रह कर अनेकानेक दुःखों का अनुभव कर रहे हैं और इन सब बातों को आप प्रत्यक्ष में देख भी रहे हो। और पर भव में नरकादि अनेक दुःखों को सहन करना पड़ेगा ही अतः रत्न चिन्तामणि जैसा नरभव मिला है, इसको धर्मकार्य कर सफल बनाना ही बुद्धिमत्ता है इत्यादि। थोड़े समय और थोड़े शब्दों में सूरिजी ने इस कदर उपदेश दिया कि उन सुनने वालों को पाप से घृणा होने लगी और धर्म की ओर रुचि बढ़ने लगी, एवं उन्होंकी अन्तरात्मा इस निर्णय की ओर प्रेरणा करने लगी।

मुख०—क्यों महात्माजी! ऐसा कौन सा धर्म है कि जिसके करने से जीव सदैव के लिये सुखी बन सके!

सूरिजी—'अहिंसा परमोधर्म' जो मैंने अभी आपको सुनाया है।

मुख०—महात्माजी! हम हिंसा अहिंसा में नहीं समझते हैं। कृपया आप इसका स्वरूप समझावें।

सूरिजी—सुनिये! 'अन्यस्य दुःखोत्पादनं हिंसा' किसी जीव को दुःख देना हिंसा है और दुःखी जीवों को सुखी बनाना अहिंसा है। बस, संसार में सब से बढ़िया धर्म अहिंसा है।

मुख०—महात्माजी! हम लोग तो हमेशा शिकार करते हैं अनेक जीवों को मार कर उनका मांस भी भक्षण करते हैं। इस कार्य में आज पर्यन्त किसी ने पाप नहीं बतलाया है इतना ही क्यों पर हमारे धर्मोपदेशक तो शिकार करना क्षत्रियों का धर्म भी बतलाते हैं और वे खुद भी मांस-भक्षण करते हैं।

सूरिजी—बड़ा ही दुःख है कि इस भारत भूमि पर ऐसे भी धर्मोपदेशक मौजूद हैं कि शिकार करना और मांस भक्षण करना भी धर्म बतलाते हैं और वे स्वयं मांसभक्षण करते हैं। महानुभावो! आपके कहने से मालूम होता है कि अभी आपको न तो मिला है सच्चा उपदेशक और न आपने अभी सच्चे धर्म का स्वरूप को ही समझे है। और मैं आपसे इतना ही पूछता हूँ कि आप एक निर्जन स्थान पर बैठे हैं और कोई बटमारा मनुष्य आकर आपके एक कांटा लगा दें तो आपको दुःख होगा या आराम? या आप उसको दंड देंगे या इनाम?

मुख०—महात्माजी! कांटा लगने से कभी आराम होता है? परन्तु बड़ा भारी दुःख होता है और उस बटमारा को इनाम तो क्या पर मैं ऐसा दंड दूं कि मारपीट कर फांसी लटका देता हूँ।

सूरि०—हमारा एक स्थान निश्चित नहीं है, हम हमेशा घूमते ही रहते हैं।

घुड़०—आप घूम घूम कर क्या करते हो ?

सूरि०—हम जनता को धर्मोपदेश दिया करते हैं।

घुड़०—आप किस धर्म का उपदेश करते हैं ?

सूरि०—जिस धर्म से जनता का इस लोक और परलोक में कल्याण हो।

घुड़०—आपके धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

सूरि०—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निस्पृहता।

घुड़सवार मन में समझ गया कि इनका सिद्धान्त तो ठीक ही है, पर जब तक कुछ सुना नहीं जावे तब तक क्या मालूम हो सकता है। और यह तो कोई नये साधु हैं, क्योंकि मैंने पूर्व कभी ऐसे साधुओं को देखा भी नहीं है। अतः प्रार्थना की कि क्या आपका धर्म मैं भी सुन सकता हूँ ?

सूरिजी—खुशी के साथ आप धर्म सुन सकते हैं।

घुड़०—आप कहां पर ठहर कर धर्म सुना सकते हैं ?

सूरिजी—हमारे किसी स्थान का प्रतिबन्ध नहीं है। हम तो यहां जंगल में भी धर्म सुना सकते हैं।

घुड़सवार—ठीक है, तब आप अपना धर्म सुनाइये। बस ! सवार शिकार करना तो भूल गये और महात्माजी से कुछ धर्म सुनने के लिए अपने साथियों के साथ सूरिजी के पास आ कर बैठ गये। हां वे चाहे कौतूहल के वश ही बैठे हों, पर इस कारण से आगे चल कार्य क्या पैदा होता है ?

सूरिजी ने अपना उपदेश सुनाना प्रारम्भ किया कि—

"अहिंसालक्षणोधर्मोह्यधर्मःप्राणिनोवधः। तस्माद्धर्मार्थिभिर्लोकैःकर्त्तव्योप्राणिनांदयाः।

भावार्थ—धर्म का लक्षण अहिंसा और अधर्म का लक्षण हिंसा है। अतः सद्बुद्धि वाले मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वह मनुष्य जन्मादि अच्छी सामग्री पा कर सदैव प्राणियों की दया रूप धर्म का आचरण करे। हे भव्यो ! इस अहिंसा धर्म में किसी धर्म का मतभेद नहीं है, अर्थात् इस धर्म के लिए सब धर्म वालों का एक ही मत है, देखिये।

पंचैतानिपवित्राणिसर्वेषांधर्मचारिणाम्। अहिंसासत्यमस्तेयत्यागोमैथुनवर्जनम्॥

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य और त्याग इसको सब दर्शन वालों ने बड़े ही आदर के साथ माना है इसमें अहिंसा मुख्य धर्म बतलाया है।

अहिंसासर्वजीवेषुतत्वज्ञैःपरिभाषितम्। इदंहिमूलधर्मस्यशेषस्तस्यैवविस्तरम्॥

अर्थात्—ससार में जितने तत्वज्ञ महात्मा हुये हैं उन सबों ने धर्म का मूल अहिंसा बतलाया है, शेष सत्यशील वगैरह तो इसका विस्तार है। हा, दान वगैरह देना भी धर्म है, पर अहिंसा की तुलना वह भी नहीं कर सकते हैं देखिये

योदद्यात्कांचनंमेरुःकृत्स्नांचैववसुंधरा। एकस्यजीवितंदद्यात् न च तुल्ययुधिष्ठिरा॥

अर्थात् एक मनुष्य सोने का मेरु दान करता है तब दूसरा मनुष्य एक मरते हुवे जीव को प्राणदान

वाममार्गियों के आसन चलायमान होने लगे और उनके दिल में अनेक प्रकार की तरंगें भी उठने लगीं कि ऐसा न हो कि मरुधर की भाँति यहाँ भी इन पाखण्डियों के पाँव जम जावें इसका तो पहिले से प्रबन्ध करना चाहिये। अतः सबसे पहिले राजा और राजकुंवर वगैरह को समझा कर अपने पक्ष में पक्के कर देना चाहिये कि वे इन पाखण्डियों के पञ्जे में फंस नहीं जावें इत्यादि।

राजकुंवर के ध्यान में तो था कि महात्माओं के खानपान वगैरह की व्यवस्था करनी है, पर वह राजकार्य में ऐसे फंस गया कि उनको समय ही नहीं मिला। फिर शाम के समय बहुत देरी से याद आया तो उन्होंने बहुत ही अफसोस के साथ अपनी भूल के लिये पश्चाताप किया कि मेरे विश्वास पर आये हुये महात्मा भूखे प्यासे पड़े होंगे फिर भी वह रात्रि के समय वहाँ जा नहीं सका।

सुबह आवश्यकादि कार्यों से निवृत्त हो पाते ही समारोह से राजकर्मचारी गण और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ राजा, राजकुंवर, मंत्री वगैरह उस बगीचे की ओर चले कि जहाँ महात्माजी ठहरे थे। राजा को जाते हुए देख कई लोगों ने गतानुगतिक बुद्धि के वश हो राजा का अनुकरण किया तो कई एक कौतूहलवश राजा के साथ हो चले, कई एक ने सोचा कि अगर अपने न जावेंगे और राजा को मालूम पड़ेगी तो अपनी दुकानदारी ही उठ जावेगी, इस भय से, तो कईएक ने सोचा कि देखें, इन सेवड़ों—साधुओं की क्या मान्यता है और कैसा उपदेश देते हैं? इत्यादि विविध कारणों को आगे रख कर सारे नगर के लोगों ने राजा का अनुसरण किया और शीघ्र ही राजा राजकुंवर मंत्री आदि अपनी प्रजा के साथ उस बगीचे में सूरिजी के सम्मुख आकर उपस्थित हुए। वन्दन नमस्कार कर राजा अपने उचित स्थान पर बैठ गया और सभी को शांतिपूर्वक बैठ जाने का इशारा किया।

सर्वत्र शांति का साम्राज्य छाया हुआ था, उस समय राजकुंवर ने खड़े हो कर सूरिजी से नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो! मैं आपका बड़ा ही अपराधी हूँ। क्योंकि मेरे ही आग्रह से आप इतनी तकलीफ उठा कर यहाँ पधारे और मैंने आपकी तनिक भी खबर न ली। इस नगर में कोई साधारण मुसाफिर भी भूखा प्यासा नहीं रहता है और आप महात्मा हमारे मेहमान—अतिथि होते हुये भी क्षुधा-पिपासा पीड़ित रात्रि निकाली, यह बड़े अफसोस की बात है, इस हेतु मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

सूरिजी राजा और श्रोतागणों की ओर इशारा करके हसमुख और शीतल दृष्टि से मुस्कराते हुये बोले कि कुंवरजी! आप जरा भी दिलगीर न हो, आपकी तरफ से अपराध नहीं हुआ, परन्तु मुनियों के ठहरने लायक सुन्दर मकानादि की प्राप्ति होने से ज्यादा सत्कार हुआ है। देखिये यह सब मुनि लोग तपस्वी हैं, इसलिए इनको भोजन की आवश्यकता नहीं है। इतने पर भी आपके दिल में किसी तरह का रंज होता हो तो आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि साधु लोग सदा क्षमाशील होते हैं। अतः आपकी तकलीफ की संभावना करना यह व्यर्थ है। हे राजेन्द्र! आपकी धर्म भावना पर हमें खूब संतोष है। और अधिक हर्ष तो इस बात का है कि आप सज्जन धर्म-श्रवण निमित्त यहाँ पर उपस्थित हुये हैं। यह हमारा व्यापार है और इसी कार्य के लिये हम लोगों ने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है। अपनी कार्यसिद्धि के लिये अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुये हम लोग इससे भी विकट भूमि में परिभ्रमण कर सकते हैं इत्यादि; सम्भाषण के पश्चात् सूरिजी महाराज ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया —

सुज्ञ श्रोतागण! इस असार एवं अपार जाती भवादि अनंत संसार में जितने चराचर जीव हैं, वह सब

सूरिजी—जब आपके एक कांटा लगने से यह हाल है तो विचारे निरपराधी मूक प्राणी जो जंगल की घास पर अपना निर्वाह करते हैं, उनके प्राणों को नष्ट कर डालना अर्थात् मार डालना, इससे क्या उन्हें दुःख न होता होगा। और किसी भव में वह समर्थ होगा तो आपको फांसी नहीं लटका देगा। हे भद्रो! सब जीव सदा-काल एक ही अवस्था में नहीं रहते हैं, पर कर्मानुसार सबल निर्बल हुआ ही करते हैं। आज आप सबल हैं और वे विचारे पशु निर्बल हैं, पर कभी वे पशु सबल होगये और आप निर्बल हो गये तो वे अपना बदला अवश्य लेंगे। इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

सूरिजी के हितकारी एवं रोचक वचनों ने उन सवारों पर बहुत कुछ प्रभाव डाला और उन लोगों ने भी सूरिजी के शब्दों पर विश्वास कर सूरिजी से प्रार्थना की कि महात्माजी! यदि आप हमारे नगर में पधारें तो हम आपसे और भी धर्म के विषय कुछ पूंछ कर निर्णय करेंगे क्योंकि यहाँ जंगल में कहां तक ठहरें? इधर दिन भी बहुत चढ़ गया है आप भले तपस्वी हैं पर हमे तो खुधा लग रही है।

सूरिजी—आप का नगर यहां से कितनी दूर है?

दूसरा सवार—महात्माजी! हमारा शिवनगर यहाँ से दो कोस के फासले पर है। यह शिवनगर के राजा रुद्राट का पुत्र कक्कुवर है। नगर में पधारने से आपको बहुत लाभ होगा और हम लोगों को भी सुविधा रहेगी, अतः आप कृपा करके हमारे नगर में अवश्व पधारें।

सूरिजी—आपने सोचा कि मेरी पहिले से धारणा थी कि यह पुरुष कोई उच्च खानदान का होना चाहिये यह सोलह आना सत्य ही निकली। खैर, इन लोगों का इतना आग्रह है तो अपने को तो कहीं न कहीं जाना ही है। सूरिजी बँधी कमर अपने शिष्य मंडल के साथ उन राजकुमारादि सवारों के साथ हो गये। जब मनुष्य का भाग्योदय होता है तब निमित भी ऐसा ही मिल जाता है बस! उन सवारों के मनमंदिर में सूरिजी के प्रति इतना पूज्यभाव हो आया कि वे सूरिजी के साथ ही साथ पैदल चल कर शिवनगर के पास एक बगीचा था वहाँ आये और सूरिजी के ठहरने के लिये उस बगीचे में सुन्दर व्यवस्था कर अपने मकान पर चले गये *

राजकुंवर कक्क और साथ के सवार जो मन्त्रि पुत्र वगैरह थे उन्हों ने जाकर सब हाल राजा रुद्राट को सुना दिये। इस पर राजा ने प्रसन्नता प्रगट की तथा उनकी भी इच्छा महात्माजी के दर्शन कर वार्तालाप करने की हुई।

इधर यह समाचार सारे नगर में बिजली की भांति फैल गया कि आज एक महात्मा आया है, उनके साथ बहुत साधुओं की जमात भी है और उसने राजकुंवर शिकार के लिये जाता था, उसकी शिकार बन्द करवा दी है। सुनाजाता है कि वे यहा पर अपने धर्म का प्रचार भी करेगा, इत्यादि।

---

* जैन आचार्योंए लखेली जूनी पट्टावलियों अने प्रशस्तियों मां एवा सैंकड़ों प्रमाणों मले छे के जेमां जैनाचार्योंना सिन्ध मां विचरवाना उल्लेख मले छे। जूनामांजूनो प्रमाण वि० स० पूर्वे लगभग ४०० वर्षना समयानोछे के जे वखते रत्नप्रभसूरि ना पट्टधर यक्षदेवसूरि सिन्धमां आव्याहता अने सिन्ध में आवतां तेमने घणु कष्ट उठावबुं पड्युं हतु आ यक्षदेवसूरिना उपदेशथी कक्कनाम ना एक राजपुत्रे जैन मन्दिरो बन्धव्या हता अने पछी दीक्षा लीधी हती।

म्हारी सिन्ध यात्रा पृष्ठ १२ नर्ता मुनि श्री विद्याविजयजी

वाममार्गियों के आसन चलायमान होने लगे और उनके दिल में अनेक प्रकार की तरंगें भी उठने लगीं कि ऐसा न हो कि मरुधर की भांति यहाँ भी इन पाखण्डियों के पैर जम जावें; इस बात का पहिले से प्रबन्ध करना चाहिये। अतः सबसे पहिले राजा और राजकुँवर वगैरह को समझा कर अपने पक्ष में पक्के कर देना चाहिये कि वे इन पाखण्डियों के फंदे में फंस नहीं जावें इत्यादि।

राजकुँवर के ध्यान में तो था कि महात्माओं के खानपान वगैरह की व्यवस्था करनी है, पर वह राजकार्य में ऐसे फंस गया कि उनको समय ही नहीं मिला। फिर शाम के समय बहुत देरी से याद आया तो उन्होंने बहुत ही अफसोस के साथ अपनी भूल के लिये पश्चात्ताप किया कि मेरे विश्वास पर आये हुये महात्मा भूखे प्यासे रहे होंगे फिर भी वह रात्रि के समय वहाँ जा नहीं सका।

सुबह आवश्यकादि कार्यों से निवृत्त हो बड़े ही समारोह से राजकर्मचारी गण और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ राजा, राजकुँवर, मंत्री वगैरह उस बगीचे की ओर चले कि जहाँ महात्माओं ठहरे थे। राजा को जाते हुए देख कई लोगों ने गतानुगति बुद्धि के वश हो राजा का अनुकरण किया तो कई एक कौतूहलवश राजा के साथ हो गये, कई एक ने सोचा कि अगर अपने न जायेंगे और राजा को मालूम होगी तो अपनी दुकानदारी ही उठ जायगी, इस भय से, तो कईएक ने सोचा कि देखें, इन सेवड़ों—साधुओं की क्या मान्यता है और कैसा उपदेश देते हैं ? इत्यादि विविध कारणों को आगे रख कर सारे नगर के लोगों ने राजा का अनुसरण किया और शीघ्र ही राजा राजकुँवर मंत्री आदि अपनी प्रजा के साथ उस बगीचे में सूरिजी के सम्मुख आकर उपस्थित हुए। वन्दन नमस्कार कर राजा अपने उचित स्थान पर बैठ गया और सभी को शांतिपूर्वक बैठ जाने का इशारा किया।

सर्वत्र शांति का साम्राज्य छाया हुआ था उस समय राजकुँवर ने उठ कर सूरिजी से नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो ! मैं आपका बड़ा ही अपराधी हूँ। क्योंकि मेरे ही आग्रह से आप इतनी तकलीफ उठा कर यहाँ पधारे और मैंने आपकी तनिक भी खबर न ली। इस नगर में कोई साधारण मुसाफिर भी भूखा प्यासा नहीं रहता है और आप महात्मा हमारे मेहमान—अतिथि होते हुये भी क्षुधा-पिपासा पीड़ित रात्रि निकाली, यह बड़े अफसोस की बात है, इस हेतु मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

सूरिजी राजा और श्रोतागणों की ओर इशारा करके हसवदन और शीतल दृष्टि से मुस्कराते हुये बोले कि कुँवरजी ! आप जरा भी दिलगीर न हों आपकी तरफ से अपराध नहीं हुआ परन्तु मुनियों के अच्छे लाभ सुन्दर तपस्यादि की प्राप्ति होने से उलटा उपकार हुआ है। देखिये यह सब मुनि लोग तपस्वी हैं, इसलिए इनको भोजन की आवश्यकता नहीं है। इतने पर भी आपके दिल में किसी तरह का रंज होता हो तो आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि साधु लोग सदा समरसिक होते हैं। अब इसकी तकलीफ की संभावना करना यह व्यर्थ है। हे राजेन्द्र ! आपकी धर्म भावना पर हमें खूब संतोष है। और अधिक हर्ष तो इस बात का है कि आप सब जन धर्म-श्रवण निमित्त यहाँ पर उपस्थित हुये हैं। यह हमारा व्यापार है और इसी कार्य के लिये हम लोगों ने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है। अपनी कार्यसिद्धि के लिये अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुये हम लोग इससे भी विकट भूमि में परिभ्रमण कर सकते हैं इत्यादि; समाधान के पश्चात सूरिजी महाराज ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया —

सुज्ञ श्रोतागण ! इस असार एवं अपार वाली अनादि अनंत संसार में जितने चराचर जीव हैं यह सब

अपने २ पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोग रहे हैं। शुभ कार्य करने से सुख की प्राप्ति और अशुभ कार्य करने से दुःख की प्राप्ति भवान्तर में अवश्य होती है। इस मान्यता में किसी शास्त्र के प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं है। कारण, कि आज चर्म चक्षु वाले मनुष्य भी उन शुभाशुभ कर्मों का प्रतिविम्व रूप फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि एक राजा, दूसरा रंक, एक सुखी, दुसरा दुःखी, एक धनी दूसरा निर्धन, रोगी-निरोगी, ज्ञानी-अज्ञानी, अपुत्रीय-बहुपुत्रीय, सद्गुणी दुर्गुणी, सुन्दररूपवान-बदस्वरूप, बुद्धिमान-निर्बुद्धि, यश-अपयश, कीर्ति-अपकीर्ति वगैरह। एक का हुक्म हजारों मान्य करते हैं तब दूसरा हजारों की गुलामी उठाता है। एक पालकी में बैठ सैर करता है, दूसरा उसे अपने कंधों पर उठा कर दुःख का अनुभव कर रहा है। यह सब पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। प्यारे आत्मबन्धुओ! जो मनुष्य बबूल का बीज बोता है वह मनुष्य फल भी वैसा ही पावेगा, न कि आम्र फल; और जो मनुष्य आम्र वृक्ष का बीज बोता है उसको आम्रफल की ही प्राप्ति होती है न कि बबूल की। अर्थात् जैसा बीज बोवेगा वैसा ही फल पावेगा। इस न्याय से जो बुद्धिमान लोग मनुष्यभव धारण कर शुद्ध देव गुरु और धर्म पर अटल श्रद्धा रखते हैं और सेवा भक्ति उपासना, सत्संग, पवित्र अहिंसाधर्म का प्रचार क्षमा, दया, शील, संतोष, ब्रह्मचर्य्य, दान पुण्य प्रभु भजन और परोपकारादि पुण्य कार्य्यों से शुभ कर्मों का संचय करता है उन जीवों को भवान्तर में आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, आरोग्यपूर्ण शरीर, पूर्ण इन्द्रियों की प्राप्ति, दीर्घायुष्य, देव-गुरु धर्म की सेवा और अन्त में स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म मरण का फेरा ही मिट जाता है। जो अज्ञानी जीव इस अमूल्य मनुष्य जन्म को धारण कर जीवहिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी, मैथुन, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, परनिन्दा, निर्दयता, शिकार एवं मांस मदिरादि भक्षण करता है, कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की उपासना करता है, एवं दुर्जनों की संगति में रह कर अनेक विधि पाप कर्मों से अशुभ कर्म का संचय करता है, वह भवान्तर में घोरातिघोर नरक-कुण्ड में जाकर चिरकाल तक महान् भयंकर दुःखों का अनुभव कर वहाँ से फिर पशु आदि दुःखमय चौरासी लाख योनियों में अरट-माल की तरह परिभ्रमण करता है। इसलिये विद्वानों को स्वयं विचार करना चाहिये कि मैंने अनेक भव-भ्रमण करते हुये बड़ी दुर्लभता से यह मनुष्य देह पाया हूँ तो अब मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ? क्या मैंने अपनी जिन्दगी में कुछ भी सुकृत पुन्य कार्य किया है? या खाना-पीना, मौज मजा, भोग विलास, हँसी ठठ्ठा, खेल कूद और तृणभक्षी निर्दोष प्राणियों के प्राण लूटने में सारी जिन्दगी व्यतीत कर दी है? मैंने अपने साथ पूर्वभव से कितना पुन्य संचय कर लाया हूँ? अथवा जिन पाप कर्मों द्वारा धन वैभव प्राप्त कर कुटुम्ब का पोषण कर रहा हूँ। परन्तु जब मैं यहाँ से परभव की ओर विदा होऊँगा तब यह राजपाट, लक्ष्मी, पुत्र कलत्र, पिता माता, भाई-बहिन आदि कुटुम्ब वर्ग में से कोई मेरा साथ देगा? या परभव में मेरे पर दुःख गुजरेंगे उस समय कोई मेरा सहायक होगा? या मैं अकेला ही दुःख सहन करूंगा? इत्यादि विचार करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि "बुद्धे फलं तत्त्व विचारणं च" बुद्धि का फल यही है कि मनुष्यों को तत्त्व का विचार करना चाहिये। सज्जनो! यह भी याद रखना चाहिये कि यह सुअवसर यदि हाथ से चला गया तो पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी मिलना मुश्किल है।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वशास्त्रेषुसंस्थितिः न कर्त्तव्यमतः पापं कर्तव्यो धर्म संचयः।
धर्मं न कुरुषे मूर्ख! प्रमादस्य वशंवदः कल्येहिश्रास्यतेकस्त्वां नरके दुःख विह्वलम्॥

वाममार्गियों के आसन चलायमान होने लगे और उनके दिल में अनेक प्रकार की तरंगें भी उठने लगीं कि ऐसा न हो कि मरुधर की भांति यहां भी इन पाखण्डियों के पैर जम जावें; इस बात का पहिले से प्रबन्ध करना चाहिये। अतः सबसे पहिले राजा और राजकुंवर वगैरह को समझा कर अपने पक्ष में पहिले कर लेना चाहिये कि वे इन पाखण्डियों के फन्दे में फँस नहीं जायँ इत्यादि।

राजकुंवर के ध्यान में तो था कि महात्माजी के खानपान वगैरह की व्यवस्था करनी है, पर वह राजकार्य में ऐसे फँस गया कि उनको समय ही नहीं मिला। फिर शाम के समय बहुत देरी से याद आया तो उन्होंने बहुत ही अफसोस के साथ अपनी भूल के लिये पश्चाताप किया कि मेरे विश्वास पर आये हुये महात्मा भूखे प्यासे पड़े होंगे फिर भी वह रात्रि के समय वहां जा नहीं सका।

सुबह आवश्यकादि कार्यों से निवृत्त हो बड़े ही समारोह से राजकर्मचारी गण और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ राजा, राजकुंवर, मंत्री वगैरह उस बगीचे की ओर चले कि जहां महात्माजी ठहरे थे। राजा को जाते हुए देख कई लोगों ने गतानुगतिक बुद्धि का धारा हो राजा का अनुकरण किया तो कई एक कौतूहलवश राजा के साथ हो चले, कई एक ने सोचा कि अगर अपने न जावेंगे और राजा को मालूम पड़ेगी तो हमारी हुकूमदारी ही उठ जायगी, इस भय से, तो कईएक ने सोचा कि देखें, इन सेवड़ों—साधुओं की क्या मान्यता है और कैसा उपदेश देते हैं? इत्यादि विविध कारणों को आगे रख कर सारे नगर के लोगों ने राजा का अनुसरण किया और शीघ्र ही राजा राजकुंवर मंत्री आदि अपनी प्रजा के साथ उस बगीचे में सूरिजी के सम्मुख आकर उपस्थित हुए। वंदन नमस्कार कर राजा अपने उचित स्थान पर बैठ गया और सभी को यथोचितपूर्वक बैठ जाने का इशारा किया।

सर्वत्र शांति का साम्राज्य छाया हुआ था, उस समय राजकुंवर ने उठ कर सूरिजी से नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो! मैं आपका बड़ा ही अपराधी हूँ। क्योंकि मेरे ही आग्रह से आप इतनी तकलीफ उठा कर यहां पधारे और मैंने आपकी तनिक भी खबर न ली। इस नगर में कोई साधारण मुसाफिर भी भूखा प्यासा नहीं रहता है और आप महात्मा हमारे मेहमान—अतिथि होते हुये भी क्षुधा-पिपासा पीड़ित रात्रि निकाली, यह बड़े अफसोस की बात है, इस हेतु मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

सूरिजी राजा और श्रोतावर्ग की ओर इशारा करके हस्तकमल और शीतल दृष्टि से मुसकराते हुये बोले कि कुँवरजी! आप जरा भी दिलगीर न हों, आपकी तरफ से अपराध नहीं हुआ, परन्तु मुनियों के ध्यान रूपक सुन्दर मकानादि की प्राप्ति होने से हमारा सत्कार हुआ है। देखिये यह सब मुनि लोग तपस्वी हैं, इसलिए इनको भोजन की आवश्यकता नहीं है। इतने पर भी आपके दिल में किसी तरह का रंज होता हो तो आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि साधु लोग सदा क्षमाशील होते हैं। अतः आपकी तकलीफ की संभावना करना यह व्यर्थ है। हे राजेन्द्र! आपकी धर्म भावना पर हमें खूब संतोष है। और अधिक हर्ष तो इस बात का है कि आप सम्पूर्ण धर्म-श्रवण निमित्त यहां पर उपस्थित हुये हैं। यह हमारा व्यापार है और इसी कार्य के लिये हम लोगों ने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है। अपनी कार्यसिद्धि के लिये अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुये हम लोग इससे भी विकट भूमि में परिभ्रमण कर सकते हैं इत्यादि; प्रस्तावना के पश्चात् सूरिजी महाराज ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया —

सुज्ञ श्रोतागण! इस अपार एवं असार चारगत्यादि अनंत संसार में जितने चराचर जीव हैं, वह सब

अपने २ पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोग रहे हैं। शुभ कार्य करने से सुख की प्राप्ति और अशुभ कार्य करने से दुःख की प्राप्ति भवान्तर में अवश्य होती है। इस मान्यता में किसी शास्त्र के प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं है। कारण, कि आज चर्म चक्षु वाले मनुष्य भी उन शुभाशुभ कर्मों का प्रतिविम्ब रूप फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि एक राजा, दूसरा रंक, एक सुखी, दुसरा दुःखी, एक धनी दूसरा निर्धन, रोगी-निरोगी, ज्ञानी-अज्ञानी, अपुत्रीय-बहुपुत्रीय, सद्गुणी दुर्गुणी, सुन्दररूपवान-बदस्वरूप, बुद्धिमान-निर्बुद्धि, यश-अपयश, कीर्ति-अपकीर्ति वगैरह। एक का हुक्म हजारों मान्य करते हैं तब दूसरा हजारों की गुलामी उठाता है। एक पालकी में बैठ सैर करता है, दूसरा उसे अपने कधों पर उठा कर दुःख का अनुभव कर रहा है। यह सब पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। प्यारे आत्मबन्धुओ! जो मनुष्य बबूल का बीज बोता है वह मनुष्य फल भी वैसा ही पावेगा, न कि आम्र फल, और जो मनुष्य आम्र वृक्ष का बीज बोता है उसको आम्रफल की ही प्राप्ति होती है न कि बबूल की। अर्थात् जैसा बीज बोवेगा वैसा ही फल पावेगा। इस न्याय से जो बुद्धिमान लोग मनुष्यभव धारण कर शुद्ध देव गुरु और धर्म पर अटल श्रद्धा रखते हैं और सेवा भक्ति उपासना, सत्संग, पवित्र अहिंसाधर्म का प्रचार क्षमा, दया, शील, संतोष, ब्रह्मचर्य्य, दान पुण्य प्रभु भजन और परोपकारादि पुण्य कार्य्यों से शुभ कर्मों का सचय करता है उन जीवों को भवान्तर में आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, आरोग्यपूर्ण शरीर, पूर्ण इन्द्रियों की प्राप्ति, दीर्घायुष्य, देव-गुरु धर्म की सेवा और अन्त में स्वर्ग एव मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म मरण का फेरा ही मिट जाता है। जो अज्ञानी जीव इस अमूल्य मनुष्य जन्म को धारण कर जीवहिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी, मैथुन, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, परनिन्दा, निर्दयता, शिकार एव मांस मदिरादि भक्षण करता है, कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की उपासना करता है, एव दुर्जनों की सगति में रह कर अनेक विधि पाप कर्मों से अशुभ कर्म का सचय करता है, वह भवान्तर में घोरातिघोर नरक-कुण्ड में जाकर चिरकाल तक महान् भयकर दुःखों का अनुभव कर वहाँ से फिर पशु आदि दुःखमय चौरासी लाख योनियों में अरट-माल की तरह परिभ्रमण करता है। इसलिये विद्वानों को स्वय विचार करना चाहिये कि मैंने अनेक भव-भ्रमण करते हुये बड़ी दुर्लभता से यह मनुष्य देह पाया हूँ तो अब मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ? क्या मैंने अपनी जिन्दगी में कुछ भी सुकृत पुन्य कार्य किया है? या खाना-पीना, मौज मजा, भोग विलास, हँसी ठठ्ठा, खेल कूद और तृणभक्षी निर्दोष प्राणियों के प्राण लूटने में सारी जिन्दगी व्यतीत कर दी है? मैंने अपने साथ पूर्वभव से कितना पुन्य सचय कर लाया हूँ? अथवा जिन पाप कर्मों द्वारा धन वैभव प्राप्त कर कुटुम्ब का पोषण कर रहा हूँ। परन्तु जब मैं यहाँ से परभव की ओर विदा होऊँगा तब यह राजपाट, लक्ष्मी, पुत्र कलत्र, पिता माता, भाई-बहिन आदि कुटुम्ब वर्ग में से कोई मेरा साथ देगा? या परभव में मेरे पर दुःख गुजरेंगे उस समय कोई मेरा सहायक होगा? या मैं अकेला ही दुःख सहन करूगा? इत्यादि विचार करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि "बुद्धे फलं तत्त्व विचारण च" बुद्धि का फल यही है कि मनुष्यों को तत्त्व का विचार करना चाहिये। सज्जनो! यह भी याद रखना चाहिये कि यह सुअवसर यदि हाथ से चला गया तो पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी मिलना मुश्किल है।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वशास्त्रेषुसंस्थितिः न कर्त्तव्यमतः पापं कर्तव्यो धर्म संचयः।
धर्मं न कुरुषे मूर्ख! प्रमादस्य वशंवदः कल्येहिग्रास्यतेकस्त्वां नरके दुःख विह्वलम्॥

वाममार्गियों के आसन चलायमान होने लगे और उनके दिल में अनेक प्रकार की तरंगें भी उठने लगीं कि ऐसा न हो कि मरुधर की भांति यहां भी इन पाखण्डियों के पैर जम जावें; इस बात का पहिले से प्रबन्ध करना चाहिये। अतः सबसे पहिले राजा और राजकुंवर प्रभृति को समझा कर अपने पक्ष में कर लेना चाहिये कि वे उन पाखण्डियों के फन्दे में फंस नहीं जावें इत्यादि।

राजकुंवर के ध्यान में तो था कि महात्माजी के खानपान वगैरह की व्यवस्था करनी है, पर वह राजकार्य में ऐसे फंस गया कि उनको समय ही नहीं मिला। फिर शाम के समय बहुत देरी से याद आया तो उन्होंने बहुत ही अफसोस के साथ अपनी भूल के लिये पश्चाताप किया कि मेरे विश्वास पर आये हुए महात्मा भूखे प्यासे पड़े होंगे फिर भी वह रात्रि के समय वहां जा नहीं सका।

सुबह आवश्यकादि कार्यों से निवृत्त हो कर ही समारोह से राजकर्मचारीगण और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ राजा, राजकुंवर, मंत्री वगैरह उस बगीचे की ओर चले कि जहां महात्माजी ठहरे थे। राजा को जाते हुए देख कई लोगों ने गतानुगति युक्ति के वश हो राजा का अनुकरण किया तो कई एक कौतूहलवश राजा के साथ हो चले, कई एक ने सोचा कि अगर अपने न जावेंगे और राजा को मालूम पड़ेगी तो अपनी दुकानदारी ही उठ जावेगी, इस भय से, तो कईएक ने सोचा कि देखें, इन सेवड़ों—साधुओं की क्या मान्यता है और कैसा उपदेश देते हैं? इत्यादि विविध कारणों को आगे रख कर सारे नगर के लोगों ने राजा का अनुसरण किया और शीघ्र ही राजा राजकुंवर मंत्री आदि अपनी प्रजा के साथ उस बगीचे में सूरिजी के सम्मुख आकर उपस्थित हुए। वंदन नमस्कार कर राजा अपने उचित स्थान पर बैठ गया और सभी को शांतिपूर्वक बैठ जाने का इशारा किया।

सर्वत्र शांति का साम्राज्य छाया हुआ था, उस समय राजकुंवर ने उठ कर सूरिजी से नम्रतापूर्वक कहा कि हे प्रभो! मैं आपका बड़ा ही अपराधी हूँ। क्योंकि मेरे ही आग्रह से आप इतनी तकलीफ उठा कर यहां पधारे और मैंने आपकी तनिक भी खबर न ली। इस नगर में कोई साधारण मुसाफिर भी भूखा प्यासा नहीं रहता है और आप महात्मा हमारे मेहमान—अतिथि होते हुये भी क्षुधा-पिपासा पीड़ित रात्रि निकाली, यह बड़े अफसोस की बात है, इस हेतु मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

सूरिजी राजा और श्रोतावर्ग की ओर इशारा करके हस्तवदन और सौम्य दृष्टि से मुस्कराते हुये बोले कि हे कुँवरजी! आप जरा भी दिलगीर न हों, आपकी तरफ से अपराध नहीं हुआ परन्तु मुनियों के उचित साधन सुन्दर नक्समादि की प्राप्ति होने से हमारा सत्कार हुआ है। देखिये यह सब मुनि लोग तपस्वी हैं, इसलिये इनको भोजन की आवश्यकता नहीं है। इतने पर भी आपके दिल में किसी तरह का रंज होता हो तो आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि साधु लोग सदा क्षमाशील होते हैं। अतः आपकी तकलीफ की संभावना करना यह व्यर्थ है। हे राजेन्द्र! आपकी धर्म भावना पर हमें खूब संतोष है। और अधिक हर्ष तो इस बात का है कि आप सब धर्म-श्रवण निमित्त यहां पर उपस्थित हुये हैं। यह हमारा व्यापार है और इसी कार्य के लिये हम लोगों ने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है। अपनी कार्यसिद्धि के लिये अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुये हम लोग इससे भी विकट भूमि में परिभ्रमण कर सकते हैं इत्यादि, व्याख्यान के पश्चात सूरिजी महाराज ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया —

सुज्ञ श्रोतागण! इस असार एवं अपार पानी प्रभृति अनंत संसार में जितने चराचर जीव हैं, वह सब

अपने २ पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोग रहे हैं। शुभ कार्य करने से सुख की प्राप्ति और अशुभ कार्य करने से दुःख की प्राप्ति भवान्तर में अवश्य होती है। इस मान्यता में किसी शास्त्र के प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं है। कारण, कि आज चर्म चक्षु वाले मनुष्य भी उन शुभाशुभ कर्मों का प्रतिविम्ब रूप फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि एक राजा, दूसरा रंक, एक सुखी, दूसरा दुःखी, एक धनी दूसरा निर्धन, रोगी-निरोगी, ज्ञानी-अज्ञानी, अपुत्रीय-बहुपुत्रीय, सद्गुणी दुर्गुणी, सुन्दररूपवान-यद्दस्वरूप, बुद्धिमान-निर्बुद्धि, यश-अपयश, कीर्ति-अपकीर्ति वगैरह। एक का हुक्म हजारों मान्य करते हैं तब दूसरा हजारों की गुलामी उठाता है। एक पालकी में बैठ सैर करता है, दूसरा उसे अपने कंधों पर उठा कर दुःख का अनुभव कर रहा है। यह सब पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। प्यारे आत्मबन्धुओ ! जो मनुष्य बबूल का बीज बोता है वह मनुष्य फल भी वैसा ही पावेगा, न कि आम्र फल; और जो मनुष्य आम्र वृक्ष का बीज बोता है उसको आम्रफल की ही प्राप्ति होती है न कि बबूल की। अर्थात् जैसा बीज बोवेगा वैसा ही फल पावेगा। इस न्याय से जो बुद्धिमान लोग मनुष्यभव धारण कर शुद्ध देव गुरु और धर्म पर अटल श्रद्धा रखते हैं और सेवा भक्ति उपासना, सत्संग, पवित्र अहिंसाधर्म का प्रचार क्षमा, दया, शील, संतोष, ब्रह्मचर्य्य, दान पुण्य प्रभु भजन और परोपकारादि पुण्य कार्य्यों से शुभ कर्मों का संचय करता है उन जीवों को भवान्तर में आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, आरोग्यपूर्ण शरीर, पूर्ण इन्द्रियों की प्राप्ति, दीर्घायुष्य, देव-गुरु धर्म की सेवा और अन्त में स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म मरण का फेरा ही मिट जाता है। जो अज्ञानी जीव इस अमूल्य मनुष्य जन्म को धारण कर जीवहिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी, मैथुन, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, परनिन्दा, निर्दयता, शिकार एवं मांस मदिरादि भक्षण करता है, कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की उपासना करता है, एवं दुर्जनों की संगति में रह कर अनेक विधि पाप कर्मों से अशुभ कर्म का संचय करता है, वह भवान्तर में घोरातिघोर नरक-कुण्ड में जाकर चिरकाल तक महान् भयंकर दुःखों का अनुभव कर वहाँ से फिर पशु आदि दुःखमय चौरासी लाख योनियों में अरट-माल की तरह परिभ्रमण करता है। इसलिये विद्वानों को स्वयं विचार करना चाहिये कि मैंने अनेक भव-भ्रमण करते हुये बडी दुर्लभता से यह मनुष्य देह पाया हूँ तो अब मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ ? क्या मैंने अपनी जिन्दगी में कुछ भी सुकृत पुन्य कार्य किया है ? या खाना-पीना, मौज मजा, भोग विलास, हँसी ठठ्ठा, खेल कूद और तृणभक्षी निर्दोष प्राणियों के प्राण लूटने में सारी जिन्दगी व्यतीत कर दी है ? मैंने अपने साथ पूर्वभव से कितना पुन्य संचय कर लाया हूँ ? अथवा जिन पाप कर्मों द्वारा धन वैभव प्राप्त कर कुटुम्ब का पोषण कर रहा हूँ। परन्तु जब मैं यहाँ से परभव की ओर विदा होऊँगा तब यह राजपाट, लक्ष्मी, पुत्र कलत्र, पिता माता, भाई-बहिन आदि कुटुम्ब वर्ग में से कोई मेरा साथ देगा ? या परभव में मेरे पर दुःख गुजरेंगे उस समय कोई मेरा सहायक होगा ? या मैं अकेला ही दुःख सहन करूंगा ? इत्यादि विचार करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि "बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणं च" बुद्धि का फल यही है कि मनुष्यों को तत्त्व का विचार करना चाहिये। सज्जनो ! यह भी याद रखना चाहिये कि यह सुअवसर यदि हाथ से चला गया तो पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी मिलना मुश्किल है।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वशास्त्रेषुसंस्थितिः न कर्त्तव्यमतः पापं कर्तव्यो धर्म संचयः ।
धर्मं न कुरुषे मूर्ख ! प्रमादस्य वशंवदः कल्येहित्रास्यतेकस्त्वां नरके दुःख विह्वलम् ॥

महानुभावो ! महाऋषियों ने जिस समय वर्णव्यवस्था की शृंखलाबद्ध की थी उस समय शौर्य-पुरुषार्थ द्वारा जनता की एवं सर्व चराचर प्राणियों की सदा रक्षा करने का काम भार क्षत्रियों पर रख छोड़ा था। कारण कि उनको पूर्ण विश्वास था कि यह क्षत्रिय जाति दया का दरिया व उच्च विचार और अपने पराक्रम द्वारा जनता की रक्षा-सेवा करने योग्य है परन्तु आज सत्संग और सदुपदेश के अभाव से उन क्षत्रवीरों के हृदय में पलटा खाया एवं—कुसंग मिथ्योपदेश से ऐसे खराब संस्कार पड़ गये कि वह अपने क्षत्रिय धर्म को ही भूल बैठे हैं। जो लोग गरीब, अनाथ, और मूक प्राणियों के रक्षक कहलाते थे वे ही आज भक्षक बन गये हैं। जिस शौर्य्य और पुरुषार्थ द्वारा क्षत्रिय लोग संपूर्ण विश्व का रक्षण करते थे आज वे ही लोग निरपराधी मूक प्राणियों के खून से नदियां बहा रहे हैं इत्यादि। इसमें केवल क्षत्रियों का ही दोष नहीं है परन्तु विशेष दोष मिथ्या उपदेशकों का है। कारण, जिन महर्षियों ने संपूर्ण जगत की शांति के लिए जिनके हाथ में जपमाला दी थी कि वह निःस्वार्थ भाव से पूजा, पाठ, जप, जाप, स्मरणादि द्वारे संसार में शांति का साम्राज्य बना रखेगा परन्तु उन पर दुर्दैव का कोप इस कदर हुआ कि वह स्वार्थ के कीचड़ में फंस कर जपमाला के स्थान क्रूर हाथों में तीक्ष्ण छुरा धारण कर निर्दय दैत्य की भाँति बिचारे मूक प्राणियों के कंठ पर चलाने में अपना कर्त्तव्य समझने लगे। इतना ही नहीं परन्तु उस भयंकर पाप की पुष्टि के लिये नया विधि विधान बना कर उस पाप से छुटकारा पाने का मिथ्या प्रयत्न भी किया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि क्षत्रिय लोग उनके हाथ के कठपुतले बन गये इस हालत में वे पाखंडी लोग प्राणियों के रक्त से यज्ञवेदी को रंग कर अपने नीच स्वार्थों की पूर्ति करते हुये धर्म के नाम से जनता को गहरी खाई में धकेल दें इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अगर वह धर्म के ठेकेदार धर्म के नाम पर अपने खुद के शरीर में से एक बूंद रक्त की निकाल कर अपने इष्टदेव की पूजा में चढ़ावे तो उसे मालूम होगा कि प्राणियों की घोर हिंसा करने में धर्म है या महान पातक है ?

हे राजन् ! शिकार खेलना मांस भक्षण करना मदिरादि का पान करना और व्यभिचार सेवन ये चारों अधर्म कार्य्य खास करके नरक में ले जाने वाले हैं। यदि आप अपने आत्मा का इस भव में और पर भव में कल्याण चाहते हो तो सब से पहिले इनका त्याग करना चाहिये कारण इन अधर्म कार्यों के होते हुए कोई भी जीव धर्म का अधिकारी नहीं बन सकता है। आप नीतिज्ञ हैं आप में विचार करने की शक्ति है, आप हृदय पर हाथ रख कर सोच सकते हैं कि जहाँ तक लोक व्यवहार ही शुद्ध नहीं है वहाँ तक कोई भी मनुष्य धर्म समझने का अधिकारी कैसे बन सकता है क्योंकि धर्मकी भूमि शुद्धाचार है। पहिले सदाचार रूपी भूमि शुद्ध नहीं है तो उसमें धर्मरूपी बीज कैसे बोया जावे ? अगर ऐसी अशुद्ध भूमि में बीज बो भी दिया जाय तो उसका फल क्या ? अतः मैं आप सब सज्जनों को खूब जोर देकर पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि इन चारों दुराचारों को इसी समय प्रतिज्ञा पूर्वक त्याग कर दें, इसी में ही आपका हित-सुख-कल्याण है।

आचार्य्य श्री के प्रभावशाली व्याख्यान का असर जनता के अन्तःकरण पर इस कदर हुआ कि उन घृणित दुराचार से दुनियों का दिल एक दम हट गया। बस, फिर तो वीरों के लिए देरी ही क्या थी ! "कर्मेशूरा वह धर्मे शूरा" इस युक्ति को चरितार्थ करते हुए राजा-प्रजा आदि उपस्थित सर्व सज्जनों ने प्रतिज्ञा पूर्वक हाथ जोड़ कर कह दिया कि हे दयानिधि ! आज पर्यन्त हम अज्ञान अन्धकार में रह कर दुराचार का सेवन कर रहे थे परन्तु आज आप श्री के उपदेश रूपी सूर्य किरणों से हमारे अन्तःकरण पर इस कदर प्रकाश

अपने २ पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दु'ख भोग रहे हैं। शुभ कार्य करने से सुख की प्राप्ति और अशुभ कार्य करने से दु ख की प्राप्ति भवान्तर में अवश्य होती है। इस मान्यता में किसी शास्त्र के प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं है। कारण, कि आज चर्म चक्षु वाले मनुष्य भी उन शुभाशुभ् कर्मों का प्रतिविम्ब रूप फल प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि एक राजा, दूसरा रक, एक सुखी, दुसरा दु खी, एक धनी दूसरा निर्धन, रोगी-निरोगी, ज्ञानी-अज्ञानी, अपुत्रीय-बहुपुत्रीय, सद्गुणी दुर्गुणी, सुन्दररूपवान-बदस्वरूप, वुद्धिमान-निर्वुद्धि, यश अपयश, कीर्ति-अपकीर्ति वगैरह। एक का हुक्म हजारों मान्य करते हैं तब दूसरा हजारों की गुलामी उठाता है। एक पालकी में बैठ सैर करता है, दूसरा उसे अपने कधों पर उठा कर दुःख का अनुभव कर रहा है। यह सब पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। प्यारे आत्मबन्धुओ ! जो मनुष्य बबूल का बीज बोता है वह मनुष्य फल भी वैसा ही पावेगा, न कि आम्र फल; और जो मनुष्य आम्र वृक्ष का बीज बोता है उसको आम्रफल की ही प्राप्ति होती है न कि बबूल की। अर्थात् जैसा बीज बोवेगा वैसा ही फल पावेगा। इस न्याय से जो वुद्धिमान लोग मनुष्यभव धारण कर शुद्ध देव गुरु और धर्म पर अटल श्रद्धा रखते हैं और सेवा भक्ति उपासना, सत्संग, पवित्र अहिंसाधर्म का प्रचार क्षमा, दया, शील, सतोष, ब्रह्मचर्य्य, दान पुण्य प्रभु भजन और परोपकारादि पुण्य कार्य्यों से शुभ कर्मों का सचय करता है उन जीवों को भवान्तर में आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, आरोग्यपूर्ण शरीर, पूर्ण इन्द्रियों की प्राप्ति, दीर्घायुष्य, देव-गुरु धर्म की सेवा और अन्त में स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिससे पुन. जन्म मरण का फेरा ही मिट जाता है। जो अज्ञानी जीव इस अमूल्य मनुष्य जन्म को धारण कर जीवहिसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी, मैथुन, ममत्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, परनिन्दा, निर्दयता, शिकार एव मास मदिरादि भक्षण करता है, कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की उपासना करता है, एव दुर्जनों की सगति में रह कर अनेक विधि पाप कर्मों से अशुभ कर्म का सचय करता है, वह भवान्तर में घोरातिघोर नरक-कुण्ड में जाकर चिरकाल तक महान् भयकर दु.खों का अनुभव कर वहाँ से फिर पशु आदि दु.खमय चौरासी लाख योनियों में अरट-माल की तरह परिभ्रमण करता है। इसलिये विद्वानों को स्वय विचार करना चाहिये कि मैंने अनेक भव-भ्रमण करते हुये बड़ी दुर्लभता से यह मनुष्य देह पाया हूँ तो अब मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ ? क्या मैंने अपनी जिन्दगी में कुछ भी सुकृत पुन्य कार्य किया है ? या खाना-पीना, मौज मजा, भोग विलास, हँसी ठठ्ठा, खेल कूद और तृणभक्षी निर्दोष प्राणियों के प्राण लूटने में सारी जिन्दगी व्यतीत कर दी है ? मैंने अपने साथ पूर्वभव से कितना पुन्य सचय कर लाया हूँ ? अथवा जिन पाप कर्मों द्वारा धन वैभव प्राप्त कर कुटुम्ब का पोषण कर रहा हूँ। परन्तु जब मैं यहाँ से परभव की ओर विदा होऊँगा तब यह राजपाट, लक्ष्मी, पुत्र कलत्र, पिता माता, भाई-बहिन आदि कुटुम्ब वर्ग में से कोई मेरा साथ देगा ? या परभव में मेरे पर दु'ख गुजरेंगे उस समय कोई मेरा सहायक होगा ? या मैं अकेला ही दु'ख सहन करूगा ? इत्यादि विचार करना बहुत आवश्यक है। क्योंकि "वुद्धे फल तत्त्व विचारण च" वुद्धि का फल यही है कि मनुष्यों को तत्त्व का विचार करना चाहिये। सज्जनो ! यह भी याद रखना चाहिये कि यह सुअवसर यदि हाथ से चला गया तो पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी मिलना मुश्किल है।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वशास्त्रेषुसंस्थितिः न कर्त्तव्यमतः पापं कर्तव्यो धर्म संचयः ।
धर्म न कुरुषे मूर्ख ! प्रमादस्य वशंवदः कल्येहित्रास्यतेकस्त्वां नरके दुःख विह्वलम् ॥

से रसोई पकाते हैं और न उनके लिए बनाई हुई रसोई उनके काम में आती है क्योंकि रसोई बनाने में जल अग्नि वनस्पति आदि की जरूरत पड़ती है और इन सब में जीव सत्ता है अर्थात् आत्मा है। अब मुनियों के निमित्त बिचारे निर्दोष जीवों को हिंसा करके बनाये हुए भोजन का उपयोग साधु कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि हम तो चराचर समस्त जीवों के रक्षक हैं न कि भक्षक !

मंत्रीश्वर ने पूछा कि आप जल, अग्नि और फल-फूलादि वनस्पति को अपने काम में नहीं लेते हैं ?

आचार्य श्री—नहीं काम में लेना तो दूर रहा परन्तु स्पर्श तक भी नहीं करते हैं।

मंत्रीश्वर—आप भोजन करते हो ? पानी पीते हो ?

आचार्य श्री —हाँ जिस रोज उपवासादि तपश्चर्या नहीं करते हैं उस रोज भोजनपान करते हैं।

मंत्रीश्वर—फिर आपके लिए भोजन-पानी कहाँ से आता ? कारण आप स्वयं बनाते नहीं और आपके लिये बनाई रसोई आपके काम में नहीं आती है।

सूरिजी—जब हमको भिक्षा की जरूरत होती है तब गृहस्थों की अपने लिये बनाई हुई रसोई में से थोड़ी २ भिक्षा ले लेते हैं जिसमें हमारा गुजर हो जाता और किसी जीव को तकलीफ नहीं होती है।

मंत्रीश्वर—भोजन तो आप पूर्वोक्त रीति से ग्रहण कर लेते होंगे परन्तु पानी तो आप को वही पीना पड़ता होगा कि जिसमें आप जीव सत्ता बतलाते हैं ?

आचार्य श्री—नहीं, हम कुआ, तलाव, नदी आदि का कच्चा जल नहीं पीते हैं अगर जो गृहस्थ लोग अपने निजके लिये गरम जल बनाया हो यदि उसमें बच जाता हो तो उस पानी से काम चला सकते हैं।

मंत्रीश्वर—अगर आपकी मर्यादानुसार भोजन और जल न मिले तो फिर आप क्या करते हैं ?

आचार्य—ऐसे समय में भी हम खुशी मानते हुए तपवृद्धि करते हैं।

इस वार्तालाप को सुन कर राजकुंवर और मंत्रीश्वर आश्चर्य मुग्ध बन गये और उनके हृदय से आन्तर भाव निकला कि अहो ! आश्चर्य ! अहो जैन मुनि ! अहो जैन धर्म ! अहो जैन मुनियों के मोक्ष वृत्ति के कठिन नियम ! दुनिया में क्या कोई ऐसे कठिन नियम पालने वाले साधु होंगे ? एक चींटी और मकोड़ी तो क्या परन्तु मिट्टी जल, और वनस्पति के फल-फूल को स्पर्श कर हिंसा के भागी नहीं बनते हैं। यह एक जैन मुनियों के ब्रह्म उत्कृष्ट भावना का अपूर्व परिचय है।

मंत्रीश्वर ने कहा राजकुंवर ! कहाँ तो अपने मठपति लोभान्ध और कहाँ यह निस्पृही जैन महात्मा? कहाँ तो अपने दुराचारियों का भोगविलास और व्यभिचार लीला ? और कहाँ इन परोपकारी महात्माओं की शान्ति और सदाचार ? इतना ही क्यों पर इन परमतपस्वी साधुजनों को तो अपने शरीर तक की भी परवाह नहीं है। राजकुँवर ! मैंने तो दृढ़ निश्चय कर लिया है कि ऐसे महात्माओं द्वारा ही जगत का उद्धार होगा इत्यादि। राजकुमार ने भी अपनी सम्मति प्रदर्शित करते हुए कहा मंत्रीश्वर ! आपका कहना सत्य है कि जो पुरुष अपना कल्याण करता है वही जगत का भला कर सकता है। अस्तु।

पुनः मंत्रीश्वर ने अर्ज करी कि भगवान् ! जैसे आपका आचार व्यवहार हो वैसा फरमावें हमें हम कुछ भी नहीं कह सकते पर हमारे नगर में पधार कर आप भूखे प्यासे न रहें। दरबारजी ने फल के लिये भी बहुत परचाताप कर रहे हैं इस वास्ते हमारी भूल पर क्षमा प्रदान करें और आप नगर में पधार कर भिक्षा

डाला है कि जिसके द्वारा मिथ्या तिमिररूपी-अज्ञान स्वयं नष्ट हो गया और इसकी बदौलत ही हम उन दुराचार से घृणा कर प्रतिज्ञा पूर्वक आप श्रीमानों के समक्ष वचन देते हैं कि मांस, मदिरा, शिकार और व्यभिचार इन चारों व्यसनों का कभी सेवन नहीं करेंगे इतना ही नहीं परन्तु हमारी संतान भी इन दुर्व्यसनों का कभी स्पर्श तक न करेगी। महाराजकुमार कक्क खड़ा होकर कहने लगा कि मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि मेरी राज-सीमा में कोई भी शख्स किसी भी प्राणी को मारेगा तो जीव के बदले अपने प्राणों का ही दंड देना पड़ेगा।

उपसंहार में आचार्य श्री ने फरमाया कि महानुभावो! मैं आप सज्जनों को एक बार नहीं पर कोटिश धन्यवाद देता हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं था कि चिरकाल से चली आई कुरूढ़ियों को आप एक ही साथ में तिलांजली दे देंगे। परन्तु मोक्षभिलाषी जीवों के लिये ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कारण सच्चे क्षत्रिय शूरवीरों का यह ही धर्म है कि सत्य बात समझ में आ जाने के बाद असत्य-अहितकारी कोई भी रूढ़ि हो परन्तु उसको उसी क्षण त्याग देते हैं। आज आप लोगों ने ठीक उसी क्षत्रिय धर्म का यथार्थ पालन कर अपनी शूरवीरता का प्रत्यक्ष परिचय करवा दिया है। अन्त में मैं उम्मेद रखता हूँ कि जिनवाणि—अर्थात् सत्योपदेश श्रवण करने मे आप अपना उत्साह आगे बढ़ाते रहेंगे कि जिसमें आपका कल्याण हो।

राजा, राजकुमार, मन्त्री और नागरिक लोग आचार्यश्री का महान उपकार मानते हुए सूरिजी को वंदन नमस्कार कर जयध्वनि पूर्वक विसर्जन हुये।

शिवनगर में एक तरफ आचार्य श्री और जैन धर्म की तारीफ हो रही थी तब दूसरी ओर कई एक पाखण्डी लोग गुप्त बातें कर रहे थे कि देखिये इन साधुओं ने लोगों पर कैसा जादू डाला! गडरी परवाह की तरह एक के पीछे प्रायः सभी लोगों ने मास मदिरा और शिकार का त्याग कर दिया! अब तो यज्ञ में बलि व पिंडदान मिलाना ही मुश्किल होगा। अगर इस तरह कुछ दिन और चलेगा तो सनातन धर्म का सर्वनाश होना नजीक ही है इस लिए अपने को भी इनके सामने कुछ प्रयत्न करना चाहिये इत्यादि, उन लोगों ने अपने मठों में विशेष मोरचाबन्दी करनी शुरू कर दी।

राजा, मन्त्री आदि बुद्धिमान लोग बड़े ही हर्ष के साथ आत्मकल्याण के लिए खूब विचार कर रहे थे। तो इतना सब को विश्वास होगया था कि यह महात्मा खासकर निर्लोभी, सदाचारी, परोपकारी, तपस्वी और ज्ञानी जो कि भूखे प्यासे रहने पर भी निःस्वार्थ वृत्ति से अपने पर उपकार किया है। मन्त्रीश्वर ने कहा, महाराज! आपका कहना सर्वथा सत्य है कारण कि अपने लोगों से इनको लेना देना क्या है? तथापि केवल निःस्वार्थ भाव से इतना परिश्रम उठा कर जनता पर उपकार कर रहे हैं। श्रेष्ठ जनों का वचन है कि जो परमार्थी होते हैं वे ही सांसारिक जीवों पर करुणा दृष्टि से उपकार करते हैं। महाराज कुमार कक्क ने कहा कि यह सब तो ठीक है परन्तु उनके खाने पीने का क्या बन्दोबस्त है? दरबार ने कहा कि यह तो अपनी बड़ी भारी गलती हुई है। उसी समय मन्त्रीश्वर को हुक्म दिया कि तुम जाओ और शीघ्र ही सब से पहिले इनके खान-पान का सुन्दर इन्तजाम करो इस पर महाराज कुमार कक्क और मन्त्रीश्वर चलकर आचार्य श्री के पास आये और अर्ज करी कि महात्माजी! आप भोजन अपने हाथ से पकावेंगे या तैयार भोजन करने को पधारेंगे? जैसी आज्ञा हो वैसा इन्तजाम करवा दिया जाय।

प्रियवर! आप लोग जैन मुनियों के आचार व्यवहार से अनभिज्ञ हैं। कारण जैन मुनि न तो हाथों

करावें। इस पर सूरीश्वरजी महाराज ने फरमाया कि मंत्रीश्वर आपकी और दरबार की हमारे प्रति भक्ति है वह बहुत अच्छी बात है और ऐसा होना ही चाहिये। इतना ही नहीं पर जैसे हमारे प्रति आपकी वात्सल्यता है वैसे ही सर्व जीवों प्रति रखना आपका परमकर्त्तव्य हैं। आपके आग्रह को स्वीकार करने में हमको किसी प्रकार का इन्कार नहीं है पर हमारे कितनेक मुनियों को एक मास का कितनेक को दो मास का एव यथा साध्य तप प्रत्याख्यान है। आप जानते हो कि पूर्व सचित कर्म सिवाय तपस्या के नष्ट नहीं हो सकते हैं। तपश्चर्या से इन्द्रियों का दमन होता है मन कब्जे में रहता है,ब्रह्मचर्यव्रत सुखपूर्वक पल सकता है। ध्यानमौन आसन समाधि आनन्द से बन सकते हैं। इसीलिए ही पूर्व महर्षियों ने हजारो लाखों वर्षों तक घोर तपश्चर्या की और आज भी यथा साध्य करते हैं। हे मत्रीश्वर! हम जैनसाधु न तो मनुहार करवाते हैं और न आग्रह की राह ही देखते हैं। जिस रोज हमको भिक्षा करना हो उसी रोज हम स्वय नगर में जाकर सदाचारी घरों से जहाँ कि मास-मदिरा का प्रचार न हो, अतु धर्म पाला जाता हो वैसे घरों से योग्य भिक्षा लाकर इस शरीर का निर्वाह करने को भिक्षा कर लेते हैं इस वास्ते आप किसी प्रकार का अन्य विचार न करें। हम आपकी भक्ति से बहुत ही प्रसन्नचित्त हैं इत्यादि।

मुनिवरों की प्रभावशाली तपश्चर्या का प्रभाव राजकुमार और मत्रीश्वर की अन्तरात्मा पर इस कदर हुआ कि वे आश्चर्य्य मे मुग्ध बन गये और उन महात्माओं के आदर्श जीवन के प्रति कोटिश धन्यवाद देते हुये वन्दन नमस्कार कर वापिस लौट गये और महाराज रुद्राट को सब हाल निवेदन किया। जिसको सुन कर दरबार ने साश्चर्य्य महात्माओं की कठिन तपश्चर्या का अनुमोदन किया इतना ही नहीं पर राजा की मनोभावनारूपी बिजली आचार्यश्री के चरण कमलों की ओर इतनी झुक गई कि उन्होंने शेष दिन और रात्रि एक योगी की भांति बिताई और सुबह होते ही अपने कुँवर व मंत्रीश्वर और राजअन्तेवर वगैरह सब परिवार को लेकर सूरिजी के चरणों में बड़े ही समारोह के साथ हाजिर हुये। इधर नागरिक लोगों के झुन्ड के झुन्ड तथा उधर मठपति और ब्राह्मण लोग भी बड़े ही सजधज के साथ उपस्थित हुये। वन्दन नमस्कार के पश्चात् सूरीश्वरजी ने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। कारण,पहिले दिन के व्याख्यान की सफलता से आपश्री का उत्साह खूब बढ़ा, हुआ था अत' उन्होंने पुन जनता को धर्म का स्वरूप विस्तार से समझाते हुये कहा कि जैसे सुवर्ण की परीक्षा की जाती है वैसे धर्म की भी परीक्षा हो सकती है देखिये नीतिकार क्या कहते से ?'—

> यथा चतुर्भिः कनक परीक्ष्यते, निर्घषण छेदन ताप ताडनैः ।
> तथैव धर्मोविदुषां परीक्ष्यते, श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणै ॥१॥

भावार्थ— कष, छेद-सुलाक, और ताप ताड़न, एवं चार प्रकार से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है वैसे ही (१) श्रुत (ज्ञान-ध्यान) (२) शील ब्रह्मचर्य्य व खान पान रहन सहनादि सदाचार (३) तपश्चर्या-इच्छा का निरोध (४) दया सर्व प्राणियों के प्रति वात्सल्यभाव अर्थात् जिस धर्म में पूर्वोक्त चारों प्रकार के गुण होते हैं वही धर्म जगत का कल्याण करने में समर्थ समझना और उसी को ही स्वीकार कर एव पालन कर आत्म-कल्याण करना चाहिये।

सज्जनो! जैनधर्म शुद्ध-सनातन प्राचीन सर्वोत्तम पवित्र धर्म है और जनता का कल्याण करने में स व

सकता है। अगर आचार्य श्री चाहते तो उन नास्तिकों का दमन करवा सकते पर उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा। कारण धर्म पालना या न पालना आत्म-भावना पर निर्भर है न कि जोर जुल्म पर।

आचार्यश्री का प्रति दिन व्याख्यान होता रहा। देव गुरु धर्म का स्वरूप तथा मुनि धर्म गृहस्थधर्म और साधारण आचार व्यवहार से उन नूतन जैनों में पक्का संस्कार डाल दिये कि दिन दिन उनकी जैन धर्म पर श्रद्धा रुचि बढ़ती गई। कालान्तर में आचार्यश्री ने वहाँ से विहार करने का विचार किया इस पर महाराज रुद्राट ने अर्ज करी कि भगवान! यहाँ के लोग अभी नये हैं, मिथ्यात्वी लोगों का चिरकाल का परिचय है न जाने आपके पधार जाने पर इन लोगों का फिर भी जोर बढ़ जावे, इस वास्ते मेरी अर्ज तो यह है कि आप चतुर्मास भी यहाँ ही करें। इस पर आचार्यश्री ने फरमाया कि राजन्! मुनि तो हमेशा घूमते ही रहते हैं, जैनधर्म की नींव मजबूत बनाने को खास दो बातों की आवश्यकता है (१) जैन मन्दिरों का निर्माण होना (२) जैन विद्यालय स्थापन कर जैनतत्त्वज्ञान का प्रचार करना। ये दोनों कार्य आप लोगों के अधिकार के हैं। राजा ने अर्ज करी कि हम इन दोनों कार्यों को शीघ्रता से प्रारम्भ करवा देंगे पर साथ में साधुओं के उपदेश की भी बड़ी आवश्यकता है। सूरिजी महाराज ने इस बात को स्वीकार कर कितनेक मुनियों को शिवनगर में रख, आपने आस पास में विहार किया। जहाँ जहाँ आप पधारे वहाँ वहाँ जैन धर्म का खूब प्रचार किया। जहाँ नये जैन बनाये वहाँ जैन मन्दिर और विद्यालय की नींव डलवा ही देते थे और कहीं कहीं पर तो आप अपने साधुओं को वहाँ ठहरने की आज्ञा भी दे देते थे।

इधर महाराज रुद्राट ने बड़ा भारी आलीशान जैन मन्दिर बनाना शुरू कर दिया। मन्त्री की कार्य कुशलता एवं द्रव्य की छूट होने से कार्य शीघ्रातिशीघ्र बन रहा था। और कई विद्यालय खोल दिये कि जिनके अन्दर ज्ञान का प्रचार भी हो रहा था।

महाराज रुद्राट और श्रीसंघ के आग्रह से आचार्यश्री यक्षदेवसूरि का चतुर्मास शिवनगर में हुआ जिससे श्री-संघ में उत्साह की और भी वृद्धि हुई। और बड़े ही आनन्द से चतुर्मास समाप्त हुआ।

तत्पश्चात महाराज रुद्राट के बनाये हुये महावीरप्रभु के मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धाम-धूम से हुई। विद्यालय के जरिये जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार हो रहा था साथ मे आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था जिस प्रभावशाली उपदेश का यों तो सब लोगों पर अच्छा असर हुआ, पर विशेष प्रभाव महाराजा रुद्राट और राजकुमार कक्क पर हुआ कि वो अपने राजपाट और संसार सम्बन्धी सर्व कार्यों का परित्याग कर सूरिजी महाराज के चरणों की सेवा करने को सन्नद्ध हो गये इतना ही क्यों? राजा और राजकुँवर दीक्षा लेने को भी तैयार होगये। उनका अनुकरण करने को कई नागरिक लोग भी मुनि रत्नों की वरमाला म सजाने गये। महोत्सव के साथ शुभ मुहूर्त के अन्दर महाराज रुद्राट ने अपने बड़े पुत्र

*ततो नगर मागत्य, रुद्राटश्चैव नागरान्। कृत्वा सूरिश्च तान् जैनान्, मन्दिरार्थं मुरापद ॥
कक्काख्यो रामपुत्रस्तु, पुत्र लीमिव मानवै। अनर्क्विगृहे दीक्षां, पश्चिम्यो ज्ञान द्रव्ये ॥
दीक्षा संप्राप्त तेजस्वी, कक्क वेति नृपात्मज। जननीं जन्म भूमिं च, उद्धार जिनालयैः ॥
कक्क सूरिं गुरुं माऽपि, स्वपट्टऽस्थापयत् प्रभुः। यक्षगुरुसान्नेपरो गार्ते सोऽपि चित्र विराजिताः ॥

समर्थ है। हम सब लोगआप श्रीमानों के उपदेशानुसार जैन धर्म स्वीकार करने को तैयार हैं अर्थात् आप हमारे धर्म-गुरु हैं, हम और हमारी संतान आप के शिष्य उपासक हैं। इस अभिरुचि का कारण जैसे आचार्य्यश्री का सदुपदेश था वैसे ही उन पाखण्डियों का दुराचार भी था, कारण दुनिया पहिले से ही उन दु'शीलों से घृणा कर शान्तिमय धर्म की प्रतीक्षा कर रही थी वह शान्ति आज सूरीश्वरजी के चरणों में मिल रही है।

इस सुअवसर पर उपकेशपुर की अधिष्ठात्री सच्चायिकादेवी अपनी सहचारिणी देवियों को साथ ले सूरीश्वरजी के दर्शनार्थ आई थी उसने वन्दन नमस्कार के पश्चात्, वहाँ की भद्रिक जनता सूरिजी के उपदेश की ओर झुकी हुई है, यह देख देवी को बड़ा भारी आनन्द हुआ। कारण, सूरिजी को इस प्रान्त में विहार करवाने की प्रेरणा सच्चायिका ने ही की थी। सच्चायिका देवी ने सूरिजी से कहा "हे प्रभो! यह मातुलादेवी शिवनगर की अधिष्ठात्री है और प्रति वर्ष में हजारों लाखों जीवों का बलिदान ले रही है। आप इसको उपदेश दें"। यह कहते ही मातूलादेवी ने हाथ जोड़ कर अर्ज कर दी कि हे भगवान! आप उपदेश की तकलीफ न उठावें आपका प्रभाव मेरे अन्त करण पर पड़ चुका है। मैं आपश्री के सन्मुख प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से मेरे नाम पर किसी प्रकार की जीव हिंसा न होगी, इस पर सूरिजी ने सतुष्ट हो देवी को वासक्षेप देकर जैनधर्मोपासिका बनाई। इसका प्रभाव राजअन्तेवर और महिला समाज पर भी बहुत अच्छा पड़ा। उधर राजा प्रजा बडे ही आतुर हो रहे थे, सूरिजी ने उनको पूर्वसेवित मिथ्यात्व की आलोचना करवा के ऋद्धि-सिद्धि सयुक्त महामत्रपूर्वक वासक्षेप के विधि विधान से सबको जैन धर्म की शिक्षा दी और सब को जैनी बनाया। बाद सक्षेप से निश्य कर्म में आने वाले नियम बतलाये। खान पान आचार की शुद्धि करवा दी, मांस, मदिरा, शिकार, वेश्यागमन, चोरी, जुआ और परस्त्री-गमनादि दुर्व्यसन सर्वथा त्याग करवा दिये और देवगुरु धर्म एवं शास्त्र का थोड़े से में स्वरूप समझा दिया इत्यादि। देवी सच्चायिका ने नूतन जैन जनता को उत्साहवर्द्धक धन्यवाद दिया। तत्पश्चात सब लोग सूरिजी महाराज को वदन नमस्कार कर जैनधर्म की जयध्वनि के साथ विसर्जन हुये।

आचार्यश्री और सच्चायिकादेवी आपस में वार्तालाप कर रहे थे जिसके अन्दर देवी ने कहा भगवान! आपने अथाह परिश्रम उठा कर जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत किया। सूरिजी ने कहा "देवी! इस उत्तम कार्य में निमित्त कारण तो खास आप का ही है" देवी ने कहा "प्रभो! आप और आपकी सतान इसी माफिक घूमते रहेंगे तो अपने पूर्वजों की माफिक आपभी प्रत्येक प्रान्तमें जैनधर्मका खूब प्रचार कर सकोगे।"

आपश्री ने फरमाया कि बहुत खुशी की बात है हमारा तो जीवन ही इस पवित्र कार्य्य के लिये है इत्यादि, बाद देवी ने सूरीश्वरजी को वन्दन कर निज स्थान की ओर प्रस्थान किया।

इधर शिवनगर में एक तरफ जैनधर्म की तारीफ—प्रशसा हो रही थी तब दूसरी ओर पाखण्डियों ने अपना बाड़ा-बन्धी के लिये भरसक परिश्रम करना शुरू किया। जो शूद्र लोग थे कि जिनको वह लोग धर्म श्रवण करने का भी अधिकार नहीं देते थे, इतना ही नहीं पर वे कुछ गिनती में भी नहीं थे, पर आज उनको भी मास मदिरा और व्यभिचारादि का लालच बतला के पाखण्डी लोग अपने उपासक बना रखनेकी ठीक कोशिश कर रहे हैं। बात भी ठीक है कि दुराचारियों का जोर जुल्म ऐसे अज्ञानी लोगों पर ही चल

प्रदान किया था । जब आपने अपनी अन्तिमावस्था जानी, तब चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष मुनि कनक को आचार्य पद पर नियुक्त कर शासन का सब भार उनको सुपुर्द कर आप कई मुनियों को साथ लेकर विहार करते हुए पवित्र सिद्धगिरि की शीतल छायामें शेषायु निर्वृत्तिमें बिताने लगे । अन्तमें पन्द्रह दिनके अनशन और समाधि-पूर्वक मासखमण अष्टमी को नाशवान शरीर को त्याग कर स्वर्गवास किया । उस समय आपके उपासक साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं की उपस्थिति बहुत विशाल संख्या में थी। श्रीसंघ ने आपश्री की भक्ति एवं स्मृति के लिये सिद्धगिरि पर एक बड़ा भारी स्तूप बनवाया था ।

महाराज उत्पलदेव के पांच पुत्र थे—सोमदेव भग्गदेव, भास्करदेव, मल्लदेव और भोजदेव; जिसमें सोमदेव को तो अपना उत्तराधिकारी बनाया, शेष चार पुत्रों को अलग २ भूमि द दी गई थी और उन्होंने अपने नामों से छोटे २ ग्राम आबाद कर लिये थे उन ग्रामों के नाम भी अपने २ नाम पर रक्खे थे जैसे भंगालु भास्करपुर मल्लसर और भोजपुर । वंशावलियों में इनका परिवार भी विस्तार स लिखा है। राजा उत्पलदेव के पाँचों पुत्र पाँच पाण्डवों की तरह शूरवीर एवं बड़े ही योद्धा थे। उन्होंने अपने अपने राज्य की अच्छी आबादी की थी ।

परमार्हत महात्मा उत्पलदेव राजकार्य अपने पुत्रों को सौंप कर आप जैनधर्म की आराधना एवं आत्मकल्याण में संलग्न हो गया । मंत्री ऊहड़ ने भी अपना गृहभार अपने पुत्रों के सुपुर्द कर राजा उत्पलदेव के साथ निवृत्ति मार्ग का अनुसरण किया और जैनधर्म के इन दोनों आद्य प्रचारकों ने स्वआत्मा के साथ अनेक परआत्माओं का कल्याण कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया ।

इधर आचार्य कनकप्रभसूरि मरुधर स आबू तक के प्रदेश में विहार कर धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थ । वे जब कभी अजैनों को प्रतिबोध कर जैन धर्ममें दीक्षित करते थे तो उधर वल्लभी वाले जैनों के शामिल मिला देते थे जो आचार्य स्वयंप्रभसूरि के प्रतिबोधित श्रावक थे । आचार्य कनकप्रभसूरि ने जैस मरुधर में अभिवृद्धि की थी उसी प्रकार भ्रमण पथ में भी खूब वृद्धि की आपके आज्ञावृति हजारों साधु साध्वी चारों ओर विहार कर जैन धर्म का प्रचार और अपना विहारक्षेत्र विशाल बना रहे थे ।

अन्त में आचार्य कनकप्रभसूरि कोरंटपुर श्रीसंघ के महा महोत्सव पूर्वक अपने योग्य शिष्य सोमप्रभ को अपना उत्तराधिकारी देकर अर्थात् आचार्य बना कर आप भी एक मास का अनशन कर कोरंटपुर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया ।

आचार्य सोमप्रभसूरि—आप महाराजा चन्द्रसेन के म्यारह पुत्रों में से एक थे आपने अपनी किशोर वय में राज साहबी को तिलाञ्जली देकर आचार्य कनकप्रभसूरि के चरण कमलों में दीक्षा ली थी। आचार्यश्री की आप पर बड़ी कृपा थी अतः थोड़े समय में सामयिक साहित्य के धुरन्धर विद्वान एवं सर्वगुण सम्पादित कर लिये थे यही कारण था कि सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में अपना सर्वाधिकार सोमप्रभ को देकर अपने पट्ट पर सूरिपद स विभूषित किये थे ।

आचार्य सोमप्रभसूरि बड़े ही प्रतिभाशाली एवं क्रान्तिकारी आचार्य थे आपश्री भू भ्रमण करते हुए एक समय अपने शिष्य परिवार के साथ चन्द्रावती पधारे आपका शुभागमन सुन कर राजा प्रजा को बड़ा ही हर्ष हुआ क्यों न हो एक राजकुमार दीक्षा लेकर इस प्रकार आचार्य पद प्राप्त कर पुनः नगर में पधारे।

शिवकुमार को राज्याभिषेक कर आप अपने लघु पुत्र कक्व और करीवन १५० नर नारियों के साथ आचार्य श्री यक्षदेव सूरि के पास बडे ही समारोह के साथ जैन दीक्षा धारण करली । सिन्ध प्रदेश में यह पहला-पहला महोत्सव होने से जैन धर्म का बडा भारी उद्योत हुआ। जनता पर जैन धर्म का बड़ा भारी प्रभाव पडा। कारण, उस जमाने में सिंध प्रदेश का महाराजा रुद्राट एक नामी राजा था। उसने अपने पुत्र के साथ जैन दीक्षा लेने से सम्पूर्ण सिंध प्रदेश में जैन धर्म की बड़ी भारी छाप पड़ गई थी ।

शिवनगर के चतुर्मास से आचार्य श्री को बड़ा भारी लाभ हुआ था। बाद मे भी आस-पास में अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठा और अनेक विद्यालयों की स्थापना करवा के उन्हो ने जैन धर्म का खूब प्रचार किया ।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने शिष्य समुदाय के साथ सिंध भूमि में खूब ही परिभ्रमण किया । फल-स्वरूप थोडे ही दिनों में आपने १००० साधु-साध्विया को दीक्षा दी । सैंकड़ो जैन मंदिरों और विद्यालयों की स्थापना करवाई , अतएव चारों और जैन धर्म का झंडा फहरा दिया ।

मुनिगण में कक्क नाम के मुनि जो महाराज रुद्राट के लघु पुत्र थे वे थोड़े ही दिनों में ज्ञानाभ्यास कर स्व-परमत के अनेक शास्त्रों के पारगामी हो गये, जैसे आप ज्ञान में उच्च कोटि के ज्ञानी थे, वैसे ही जैन धर्म का प्रचार करने में भी बड़े वीर थे । जिस में भी अपनी मातृभूमि का तो आपको बहुत गौरव था अतएव आपने पहले से ही प्रतिज्ञा करली थी कि मैं सब से पहले सिंध भूमि का ही उद्धार करूगा अर्थात सिंध प्रान्त को जैनधर्म मय बना दूंगा और आपने किया भी ऐसा ही ।

एक समय का जिक्र है कि आचार्यश्री ने परम पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी के महात्म्य का व्याख्यान किया, उसको श्रवण कर चतुर्विध श्रीसघ ने अर्ज करी कि हे प्रभो । आप हम को उस पवित्र तीर्थ की यात्रा करवा के गर्भावास को छुड़ाइये । इस बात को सुरिजी महाराज ने स्वीकार कर ली । तत्पश्चात् यह उद्घोषणा प्राय' सिन्धप्रान्त में करवा दी गई कि जिसको सिद्धाचलजी की यात्रा करनी हो वह तैयार हो शिवनगर आ जाय । सूरीश्वरजीने अपने १००० साधु साध्वियोंके साथ तथा और करीवन एक लक्षश्राद्धवर्ग शिवनगरमे एकत्र होगये । तत्पश्चात महाराज शिवको सघपति पद अर्पण कर शुभ मुहूर्त्तके अन्दर सघ छरी पालता हुआ यात्रा करने को रवाना हो गया,जिसके अन्दर सोना चाँदी के देरासर रत्नोंकी प्रतिमायें और हस्ती,घोड़े, रथ, पैदल,, बाजा, गाजा नक्कारा निशान वगैरह बड़ा ही आडम्बर था । उस भक्ति का प्रभाव अन्य लोगों पर भी काफी पड़ रहा था । ग्राम नगर और तीर्थों की यात्रा करता हुआ क्रमश सघ श्रीशत्रुजय पहुँचा और सघपति आदि लोगों ने मणी माणिक मुक्ताफल तथा श्रीफल और स्वर्ण से तीर्थ को बधाया और चतुर्विध सघ ने सूरीजी महाराज के साथ यात्रा कर अपने जीवन को सफल किया । बादमें गिरनार वगैरह तीर्थों की यात्रा कर आनन्द मगल से श्रीसघ वापिस सिन्धप्रदेश में पहुँचा गया । इस यात्रा से जैनधर्म पर लोगों की श्रद्धा रुचि और भी बढ़ गई इत्यादि ।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने जीवन में जैनशासन की बड़ी भारी सेवा करी । आचार्य स्वयप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि के बनाये हुये महाजनसघ का रक्षण पोपण और वृद्धि करी । सिन्ध जैसी विकट भूमि में विहार कर सब से पहिले लुप्त हुये जैनधर्म का आपश्री ने ही प्रचार किया, हजारों जैनमदिर और विद्यालयो की स्थापना करवाई और हजारों साधु साध्वियों को दीक्षा दे श्रमणसघ में वृद्धि करी इत्यादि । आपश्री का जैनशासन पर बड़ा भारी उपकार हुआ है । आपने सिन्धप्रान्त में विहार कर जैनधर्म का बड़ा भारी झंडा

प्रदान किया था। जब आपने अपनी अन्तिमावस्था जानी,तब चतुर्विधश्रीसंघ के समक्ष मुनि कनक को आचार्य पद पर नियुक्त कर शासन का सब भार उनको सुपुर्द कर आप कई मुनियों को साथ लेकर विहार करते हुए पवित्र सिद्धगिरि की शीतल छाया में शेषायु निवृत्ति में बिताने लगे। अन्त में पन्द्रह दिन का अनशन और समाधिपूर्वक भाद्रशुक्ल अष्टमी को नाशवान शरीर को त्याग कर स्वर्गवास किया। उस समय आपके उपासक साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओं की उपस्थिति बहुत विशाल संख्या में थी। श्रीसंघ ने आपश्री की भक्ति एवं स्मृति के लिये सिद्धगिरि पर एक बड़ा भारी स्तूप बनवाया था।

महाराज उत्पलदेव के पांच पुत्र थे—सोमदेव जगदेव भाभलदेव, अमरदेव और भोजदेव; जिसमें सोमदेव को तो अपना उत्तराधिकारी बनाया, शेष चार पुत्रों को अलग २ भूमि दे दी गई थी और उन्होंने अपने नामों से छोटे २ ग्राम आबाद कर लिये थे उन ग्रामों के नाम भी अपने २ नाम पर रक्खे थे जैसे जंगालु भाभलपुर अमरसर और भोजपुर। वंशावलियों में इनका परिवार भी विस्तार से लिखा है। राजा उत्पलदेव के पाँचों पुत्र पाँच पाण्डवों की तरह शूरवीर एवं बड़े ही योद्धा थे। उन्होंने अपने अपने राज्य की अच्छी आबादी की थी।

परमार्हत महाराजा उत्पलदेव राजकार्य अपने पुत्रों को सौंप कर आप जैनधर्म की आराधना एवं आत्मकल्याण में संलग्न हो गया। मंत्री ऊहड़ ने भी अपना गृहभार अपने पुत्रों के सुपुर्द कर राजा उत्पलदेव के साथ निवृत्ति मार्ग का अनुसरण किया और जैनधर्म के इन दोनों आद्य प्रचारकों ने स्वात्मा के साथ अनेक परआत्माओं का कल्याण कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

इधर आचार्य कनकप्रभसूरि मरुधर से आबू तक के प्रदेश में विहार कर धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे। वे जब कभी अजैनों को प्रतिबोध कर जैन धर्म में दीक्षित करते थे तो उधर बसने वाले जैनों के शामिल मिला देते थे जो आचार्य स्वयंप्रभसूरि के प्रतिबोधित श्रावक थे। आचार्य कनकप्रभसूरि ने जैसे श्रावकों में अभिवृद्धि की थी उसी प्रकार श्रमण संघ में भी खूब वृद्धि की आपके आज्ञानुवर्ति हजारों साधु साध्वी चारों ओर विहार कर जैन धर्म का प्रचार और अपना विहारक्षेत्र विशाल बना रहे थे।

अन्त में आचार्य कनकप्रभसूरि कोरंटपुर श्रीसंघ के महा महोत्सव पूर्वक अपने योग्य शिष्य सोमप्रभ को अपना उत्तराधिकार देकर अर्थात् आचार्य बना कर आप भी एक मास का अनशन कर कोरंटपुर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य सोमप्रभसूरि—आप महाराजा चन्द्रसेन के ग्यारह पुत्रों में से एक थे आपने अपनी किशोर वय में राज्य सम्पत्ती को तिलांजली देकर आचार्य कनकप्रभसूरि के चरण कमलों में दीक्षा ली थी। आचार्यश्री की आप पर बड़ी कृपा थी आप थोड़े समय में सामयिक साहित्य के धुरन्धर विद्वान एवं सर्वगुण सम्पादित कर लिये थे यही कारण था कि सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में अपना सर्वाधिकार सोमप्रभ को देकर अपने पट्ट पर सूरिपद से विभूषित किये थे।

आचार्य सोमप्रभसूरि बड़े ही प्रतिभाशाली एवं क्रान्तिकारी आचार्य थे आपश्री भू भ्रमण करते हुए एक समय अपने शिष्य परिवार के साथ चन्द्रावती पधारे आपका शुभागमन सुन कर राजा प्रजा को बड़ा ही हर्ष हुआ क्यों न हो एक राजकुंवर दीक्षा लेकर इस प्रकार आचार्य पद प्राप्त कर पुनः नगर में पधारे।

राजा चन्द्रसेनादि सब लोग सूरिजी को वन्दन करने को आये सूरिजी ने अपनी विद्वतापूर्ण त्याग वैराग्य मय धर्मोपदेशना दी जिसको श्रवण कर श्रोताजन अपना कल्याण करने को तत्पर हो गये। महाराजा चन्द्रसेन और आपकी पट्टराणी सूरिजी (अपने पुत्र से) से प्रार्थना की कि आप तो संसार से मुक्त हो अपना कार्य सिद्ध कर लिया पर अब हमारी अन्तिमावस्था है कल्याण का रास्ता बतलाइये। सूरिजी ने कहा कि सबसे पहिले तो आपको राज सम्बन्धी खटपट से मुक्त होना चाहिये दूसरा अब शेष उमर तीर्थ श्री शत्रुंजय की शीतल छाया में रह कर धर्माराधना में व्यतीत करना चाहिये कारण एक तो वहाँ के परमाणु स्वच्छ है दूसरी ससार सम्बन्धी सब कार्यों से निवृत्ति मिलेगा इत्यादि सूरिजी का कहना स्वीकार कर राजा ने अपने पुत्र धर्मसेन को राज्य देकर शत्रु जय का संघ निकालने की तैयारी करनी शुरू कर दी। चतुर्विध श्रीसंघ को आमन्त्रण भेज कर बुलाये। सब सामग्री तैयार हो जाने पर सूरिजी महाराज ने संघपतिपद महाराजा चन्द्रसेन को दिया और शुभमुहूर्त में सघ प्रस्थान कर दिया क्रमश यात्रा करते हुए सिद्धगिरि पर आये और वहाँ की यात्रा कर अनेक सुकृत कार्य किये। राजा चन्द्रसेन जैनधर्म का एक महान प्रभाविक राजा हुआ एव जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया।

भगवान् महावीर की परम्परा में चतुर्थ पट्टधर आचार्य शय्यंभवसूरि हुये। आपका जीवन आचार्य रत्नप्रभसूरि के जीवन प्रकरण में लिखा जा चुका है कि आपने भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा देख कर प्रतिबोध पाया था। जैसे कहा है कि —

यत्-सिज्जंभवं गणहरं जिणपडिमादंसणेण पडिवुद्धं।

आचार्य शय्यंभवसूरि जाति के ब्राह्मण थे आचार्य प्रभवस्वामी के पास दीक्षा लेकर चतुर्दशपूर्वधर ए और अपने पुत्र मनक को दीक्षा देकर उनका स्वल्प आयु जान कर उनको आराधिक पद देने के लिये दशवैकालिक सूत्र की रचना की। कहा है कि.—

कृतं विकालवेलायाँ, दशाध्ययनगर्भितम्। दशवैकालिकमिति नाम्ना शास्त्र बभूव तद् ॥ १ ॥
अतः परं भविष्यंति, प्राणिनोह्यल्पमेधसः। कृतार्थास्ते मनकवत्, भवतु त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥
श्रुताँभोजस्य किंजल्कं, दशवैकालिकं ह्यदः। आचम्पाचम्प मोदन्ता—मनगार मधुव्रताः ॥ ३ ॥
इति संघोपरोधेन, श्रीशय्यंभव सूरिभिः। दशवैकालिको ग्रन्थो, न संवत्रे महात्मभिः ॥ ४ ॥

आचार्य शय्यंभवसूरि गृहस्थावास २८ वर्ष व्रत ११ वर्ष युगप्रधान २३ वर्ष एवं सर्वायुष्य ६२ वर्ष का पूर्ण कर वीर निर्वाण से ९८ वें वर्ष में आप अपने पट्टधर मुनिवर्य यशोभद्र को आचार्य पद पर नियुक्त कर स्वर्ग को प्राप्त हुए।

आचार्य वर श्री यक्षदेव सप्तम पट्टधर हुये। आप क्षत्रिय वंश भूषण सिंघ पद्रावित हुये ॥
आखेट को जाते हुये श्री कक्कराजकुमार को। नृप रुद्राट लाखों मनुज उपकृत किये हरबार को ॥
करके कृपा आचार्य ने यों सिंध को जीवन दिया। भ्राँति सबकी दूर कर जिनधर्म में दीक्षित किया ॥

। इति श्री पार्श्वनाथ प्रभु के सातवें पाट पर आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि महाप्रभाविक हुये।

# ८—आचार्य कक्कसूरि

आचार्योऽस्य ककसूरिर्भवत्स्वयंस्य वंशांकुरः
सौराष्ट्रेऽपि च कच्छदेश विषयम्रान्त्वा च देम्यावलिम् ।
सेवित्वा नृपमं तथा जनगणं राजान माहिम्य-मा-
हिंमायाः परमं मतं जिनमते जातो मुनि दीक्षः ।

आचार्य कक्कसूरी—आपश्री के लिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आप पहले पढ़ आये हैं कि आप शिवनगर के राजा रुद्राट के पुत्र थे। आचार्य यक्षदेव सूरि के उपदेश से सिन्ध जैसे पाखण्डियों के प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार करने में काफी सफलता पा चुके थे। कई जैन मन्दिरों का भी आपने निर्माण करवाया था। इतना ही क्यों पर आप अपनी चढ़ती जवानी में राज रमणी एवं संसारी सुखों को तिलांजलि देकर अपने पिता राव रुद्राट एवं १८ नर-नारियों के साथ सूरिजी के चरण-कमलों में भगवती जैन दीक्षा ली थी। तत्पश्चात् ज्ञानाभ्यास करने में भी आपने कुछ भी कसर नहीं रक्खा अर्थात स्वपरमत के साहित्य का खूब अध्ययन कर लिया। तत्पश्चात आचार्य यक्षदेवसूरि ने आपको सर्वगुण सम्पन्न जान कर, आचार्य पद से विभूषित कर चतुर्विध संघ के नायक बनाये।

आचार्य कक्कसूरि—तरुण सूर्य की किरणों की भांति अपने प्रखर ज्ञान का चारों ओर प्रकाश करने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा। आप सच्चे प्रतिज्ञा पालक थे। आपने जिस समय दीक्षा ली थी उस समय प्रतिज्ञा की थी कि मैं सब से पहले अपनी जन्मभूमि का उद्धार करके ही दम लूंगा और आपने ऐसा ही किया। इतना ही क्यों पर आपने तो हजारों सिन्धी पुरुषों को जैनधर्म में दीक्षित भी कर दिये।

धन्य है सिन्ध भूमि के सुपुत्र नर रत्नों को कि जिन्होंने मांसाहारी सिन्ध प्रदेश को आज जैन-धर्ममय एवं अहिंसामयाम भूमि बना दी। जहाँ देखो वहाँ ऊँचे २ शिखर वाले जैन मन्दिरों की ध्वजायें मनुष्य मात्र को धर्म की ओर आकर्षित कर रही हैं। यह सब स्वर्गस्थ आचार्य यक्षदेवसूरि के प्रबल पुरुषार्थ एवं राजकुंवर कक्क अर्थात् आचार्य कक्कसूरि की असीम कृपा का ही सुन्दर एवं स्वादिष्ट फल है। अस्तु !

एक समय आचार्य कक्कसूरि अपने ५ शिष्यों के साथ सिन्ध भूमि में विहार करते हुए शिव-नगर की ओर पधार रहे थे। जैसे कोई चक्रवर्ती विजय कर अपने नगर की ओर आ रहा हो। बस, नगर वासियों को खबर मिलते ही उनका उत्साह ऐसा बढ़ गया कि जैसे शरद पूर्णिमा के चन्द्र की शीतल किरणों से समुद्र का जल बढ़ जाता है। क्या राजा और क्या प्रजा सब लोग सूरिजी के स्वागतार्थ बहुत दूर तक गये। जब सूरिजी के दर्शन हुये तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। बड़े ही समारोह के साथ नगर प्रवेश करवाया। महावीर मन्दिर का दर्शन कर उपाश्रय में पधारे और लोगों पर वैराग्यमय ज्ञानमयी देश-ना दी जिसका प्रभाव उपस्थित लोगों पर बहुत अच्छा हुआ।

राजा चन्द्रसेनादि सब लोग सूरिजी को वन्दन करने को आये सूरिजी ने अपनी विद्वतापूर्ण त्याग वैराग्य मय धर्मोपदेशना दी जिसको श्रवण कर श्रोताजन अपना कल्याण करने को तत्पर हो गये। महाराजा चन्द्रसेन और आपकी पट्टराणी सूरिजी (अपने पुत्र से) से प्रार्थना की कि आप तो संसार से मुक्त हो अपना कार्य सिद्ध कर लिया पर अब हमारी अन्तिमावस्था है कल्याण का रास्ता बतलाइये। सूरिजी ने कहा कि सबसे पहिले तो आपको राज सम्बन्धी खटपट से मुक्त होना चाहिये दूसरा अब शेष उमर तीर्थ श्री शत्रुंजय की शीतल छाया में रह कर धर्माराधना में व्यतीत करना चाहिये कारण एक तो वहाँ के परमाणु स्वच्छ है दूसरी ससार सम्बन्धी सब कार्यों से निवृत्ति मिलेगा इत्यादि सूरिजी का कहना स्वीकार कर राजा ने अपने पुत्र धर्मसेन को राज्य देकर शत्रुंजय का संघ निकालने की तैयारी करनी शुरू कर दी। चतुर्विध श्रीसघ को आमन्त्रण भेज कर बुलाये। सब सामग्री तैयार हो जाने पर सूरिजी महाराज ने संघपतिपद महाराजा चन्द्रसेन को दिया और शुभमुहूर्त में संघ प्रस्थान कर दिया क्रमश यात्रा करते हुए सिद्धगिरि पर आये और वहाँ की यात्रा कर अनेक सुकृत कार्य किये। राजा चन्द्रसेन जैनधर्म का एक महान प्रभाविक राजा हुआ एव जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया।

भगवान् महावीर की परम्परा में चतुर्थ पट्टधर आचार्य शय्यंभवसूरि हुये। आपका जीवन आचार्य रत्नप्रभसूरि के जीवन प्रकरण में लिखा जा चुका है कि आपने भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा देख कर प्रतिबोध पाया था। जैसे कहा है कि —

यत्-सिज्जंभवं गणहरं जिणपडिमादंसणेण पडिबुद्धं।

आचार्य शय्यंभवसूरि जाति के ब्राह्मण थे आचार्य प्रभवस्वामी के पास दीक्षा लेकर चतुर्दशपूर्वधर ए और अपने पुत्र मनक को दीक्षा देकर उनका स्वल्प आयु जान कर उनको आराधिक पद देने के लिये दशवैकालिक सूत्र की रचना की। कहा है कि'—

कृतं विकालवेलायाँ, दशाध्ययनगर्भितम्। दशवैकालिकमिति नाम्ना शास्त्र बभूव तत्॥ १॥
अतः परं भविष्यंति, प्राणिनोह्यल्पमेधसः। कृतार्थास्ते मनकवत्, भवतु त्वत्प्रसादतः॥ २॥
श्रुतांभोजस्य किंजल्कं, दशवैकालिकं ह्यदः। आचम्पाचम्प मोदन्ता—मनगार मधुव्रताः॥ ३॥
इति संघोपरोधेन, श्रीशय्यंभव सूरिभिः। दशवैकालिको ग्रन्थो, न संवत्रे महात्मभिः॥ ४॥

आचार्य शय्यंभवसूरि गृहस्थावास २८ वर्ष व्रत ११ वर्ष युगप्रधान २३ वर्ष एव सर्वायुष्य ६२ वर्ष का पूर्ण कर वीर निर्वाण से ९८ वें वर्ष में आप अपने पट्टधर मुनिवर्य यशोभद्र को आचार्य पद पर नियुक्त कर स्वर्ग को प्राप्त हुए।

आचार्य वर श्री यक्षदेव सप्तम पट्टधर हुये। आप क्षत्रिय वंश भूषण सिंघ पद्मांकित हुये॥
आखेट को जाते हुये श्री कक्कराजकुमार को। नृप रुद्राट लाखों मनुज उपकृत किये हरसार को॥
करके कृपा आचार्य ने यों सिंघ को जीवन दिया। भ्रांति सबकी दूर कर जिनधर्म में दीक्षित किया॥

। इति श्री पार्श्वनाथ प्रभु के सातवें पाट पर आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि महाप्रभाविक हुये।

भगवान पार्श्वनाथ के ८ वाँ पट्टधर
आचार्य श्री कक्कसूरिजी महाराज

वीरों की सन्तान भी वीर ही होती है। सूरिजी का वास्क्षेप ही वीरता का था अतः ऐसा एक भी साधु सूरिजी के पास नहीं था कि इस कार्य में पीछे पैर रक्खे। साधुओं ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा कि हे पूज्यवर! परोपकार और जैन धर्म के प्रचार के लिये सख्त परिसह तो क्या पर हम अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हैं। कीजिये आप विहार, हम सब साधु आपकी सेवा में चलने को तैयार हैं।

बस, फिर तो था ही क्या? आचार्यकक्कसूरि ने शेष साधुओं के लिए अच्छी व्यवस्था कर वहाँ और शिवनगर का राजा शिव तथा और भी संघ अग्रेसरों की सम्मति लेकर सूरिजी ने अपने ५०० शिष्य समुदाय के साथ कच्छ की ओर विहार कर दिया।

विहार के दरम्यान मार्ग का हाल तो जो सिन्ध में जाते हुये यक्षदेवसूरि का हुआ था वही हाल कक्कसूरि का हुआ। पर मुनिपुङ्गवों को इसकी कुछ भी परवाह नहीं थी। वे मार्ग में धर्म का उपदेश देते हुए एवं भूखे प्यासे रहते हुवे भी आनन्द के साथ कच्छ की ओर जा रहे थे।

एक समय का जिक्र है कि एक ओर तो साधु तपस्वी थे। दूसरी ओर पानी तक भी नहीं मिला तो सूरिजी ने साधुओं को ओर्डर दे दिया कि जिधर ग्राम देखो उधर जाकर जो कुछ भिक्षा का योग मिले तो पारणा कर आओ हम इधर रास्ते होकर जा रहे हैं। शाम को सब शामिल हो जायेंगे।

जब साधु इधर उधर चले गये तो आचार्यश्री स्वयं रास्ते की भ्रान्ति से चार साधुओं के साथ एक महान अटवी में जा निकले जहाँ चारों ओर जङ्गल व झाड़ियें और विषम भूमि दिखाई दे रही थी। दिशायें अपनी भयंकरता का इतना प्रभाव डाल रही थीं कि मनुष्य तो क्या पर पशु-पक्षी भी वहाँ ठहर नहीं सकते थे। इधर तरुण सूर्य अपने प्रचण्ड प्रताप से विश्व को व्याकुल बना रहा था, पर हमारे आचार्यश्री उसकी पर्वाह नहीं करते हुए बड़ी खुशी के साथ अटवी का उल्लंघन कर रहे थे। उस भयंकर अटवी के अन्दर चलते हुए आपश्री क्या देख रहे हैं कि एक पर्वत के निकट देवी का मन्दिर है। एक तरफ अनेक भैंस बकरे आदि पशु बंधे हुए हैं तब दूसरी ओर बहुत से जंगली आदमी खड़े हैं। देवी के सामने एक महान तेजस्वी तरुणावस्था में पदार्पण किया हुआ नवयुवक बैठा हुआ है, जिसकी सुन्दराकृति होने पर भी चेहरे पर कुछ म्लानि छाई हुई दृष्टिगोचर हो रही थी। उस तरुण के पास में ही एक पिशाच जैसा आदमी अपने क्रूर हाथों में कुठार उठाये हुवे खड़ा है। शायद तरुण की म्लानि का कारण यह ही हो कि उस कुठार द्वारा उसकी देवी को बलि चढ़ाई जाय।

उस घृणित दृश्य देख कर आचार्यश्री को उस तरुण पर वात्सल्य भाव हो आया; अतएव सूरिजी महाराज एकदम चल करके वहाँ गये और उन क्रूरवृत्ति वालों से कहने लगे कि महानुभावो! आप क्या कर रहे हैं? उन लोगों ने उत्तर दिया कि तुमको क्या जरूरत है, तुम अपने रास्ते जाओ। सूरिजी ने कहा कि मैं आपके इस चरित्र को सुनना चाहता हूँ कि आपने इस सुकुमार के लिये यह क्या तजवीज कर रक्खी है? एक मठपति बोला कि तुम नहीं जानते हो यह जगदम्बा महाकाली है, बारह वर्षों से इसकी महापूजा होती है। बत्तीस लक्षण संयुक्त पुरुष की बलि देकर सम्पूर्ण विश्व की शान्ति की जाती है। इस पर सूरिजी महाराज ने सोचा कि अहो आश्चर्य! यह कितना अज्ञान! यह कितना पाखण्ड!! यह कितना दुराचार!!! यहाँ नरबलि दी जा रही है।

श्रीसघ की अत्याग्रह प्रार्थना को मान देकर सूरिजी ने वह चतुर्मास शिवनगर में करना स्वीकार कर लिया और वहा की जनता को जिनवाणीरूपी अमृतपान से हमेशा सिंचन करने में ही प्रस्तुत रहते थे।

एक समय का जिक्र है कि सूरीश्वरजी महाराज रात्रि समय धर्म प्रचार की भावना में तल्लीन थे और विशेष यह विचार कर रहे थे कि धन्य है ! पूज्य आचार्य स्वयं प्रभसूरि, रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि को कि जिन्होंने अनेकानेक कठिनाइयों एव परिसहों की तनिक भी परवाह न करते हुए, नये २ प्रान्तों में भ्रमण करके जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया तो क्या मैं उनके बनाये हुए श्रावकों की रोटियें खाकर ही अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर डालूंगा या मैं भी कहीं अज्ञात प्रदेश मे जाकर जैनधर्म का प्रचार करूंगा इत्यादि आचार्यश्री मन ही मन में तर्क वितर्क कर रहे थे, इतने में एक आवाज ऐसी सुनाई दी कि भो आचार्य! आप यदि कच्छ प्रान्त में विहार करें तो आपको बड़ा भारी लाभ होगा और आपकी जो मनोभावना है वह भी सफल होगी इत्यादि। इस प्रकार के वचन सुन कर आचार्यश्री एकदम चौंक उठे और इधर उधर देखा तो कोई भी व्यक्ति नजर नहीं आया। सूरिजी ने सोचा कि यह अदृश्य शक्ति कौन है ? कि जो मुझे कच्छ में जाने की प्रेरणा कर रही है। इतने में तो देवी मातुला प्रत्यक्ष आकर कहने लगी कि प्रभो ! आप हमारे सिन्ध के सुपुत्त हैं आपने सिन्ध का उद्धार किया, पर अब आप कच्छ प्रान्त में पधारें। जैसे आपके पूर्वजों ने नये जैन बनाने में सफलता प्राप्त की है वैसे ही आपको भी सफलता मिलेगी और कच्छ जैसे मिथ्यात्व व्यापक प्रदेश में जाना आप जैसे समर्थ पुरुषों का ही काम है न कि कोई साधारण व्यक्ति वहाँ जाकर कुछ कार्य्य कर सके। अतः पुन प्रार्थना है कि आप कच्छ प्रदेश में अवश्य पधारें। आचार्य श्री ने कहा 'तथास्तु' देवीजी ! मैं जानता हूँ कि हमारे पूर्वजों को भी आप जैसे शासनशुभचिन्तक देवों का ही इशारा मिला था और उन पूज्यवरों ने अपने कृतकार्य्यों में सफलता भी पाई, अत मुझे भी विश्वास है कि आपकी सहायता से मैं भी अपने कार्य्य में अवश्य सफलता पाऊंगा। बस, देवी तो अदृश्य हो गई। सूरिजी ने निश्चय कर लिया कि कल सुबह ही कच्छ की ओर विहार कर देना चाहिये।

प्रभात होते ही सूरिजी ने अपने श्रमण संघ को आमन्त्रण कर अपना विचार प्रगट कर दिया कि मेरा विचार कच्छ प्रदेश की ओर विहार करने का है। अत कठिन मे कठिन तपश्चर्य्या के करने वाले एव बड़े से बड़े परिसहों को सहन करने वाले मुनि मेरे साथ चलने को तैयार हो जाइये और शेष साधुओं को इस सिन्ध की भूमि में विहार कर स्वात्मा का कल्याण के साथ जनता को धर्मोपदेश दे उनका कल्याण करते रहना चाहिये। इस बात की मैं आज्ञा देता हूँ।

---

सिन्ध प्रदेश में अधिक विहार उपकेशगच्छाचार्य्यों का ही हुआ था। अतः वहाँ की जनता का संगठन बल बहुत ही मजबूत था कि राग, द्वेष क्लेश और कदाग्रह को कहीं स्थान नहीं मिलता था, परन्तु जब वहाँ भी नये २ गच्छधारियों के पैर जमने लगे तो वहाँ का वह हाल नहीं रहा, फिर भी विक्रम की १२ शताब्दी तक तो केवल एक उपकेशगच्छ उपासकों के अधिकार में ५०० जैन मन्दिर थे। देखिये —

> यस्य देवगृहस्येच्छा, श्राद्धेच्छावाऽपियस्यताम्। पूरये तत्र मद्देव, गृह पचशती मम ॥
> श्रावका अप्यसंख्याता, श्चलता तो झटित्यपि। संक्लेश कारकं स्थानं, दूरतः परिवर्जयेत् ॥

—उपकेशगच्छ चरित्र ४८३, ४८४ श्लोक

आचार्य ने उस नवयुवक के सामने देखते हुये कहा कि महानुभाव ! आपके चेहरे से तो ज्ञात होता है कि आप किसी उच्च खानदान के वीर हैं। फिर समझ में नहीं आता है कि तुम इन निरपराधी मूक प्राणियों की घास को नजरों से कैसे देख रहे हो ! बस तरुण ने सूरिजी के यह वचन सुनते ही बड़ी वीरता से उठ कर उन भैंसे बकरों को एकदम छोड़ दिया और सूरीजी महाराज के चरणों में शिर झुका कर बोला कि भगवान ! आज हमको नया जन्म देने वाले आप हमारे धर्मपिता हैं। आप के इस परोपकार को मैं कभी नहीं भूल सकूंगा।

आचार्य—महानुभाव ! इस में ऐसी कौनसी बात है हमने ऐसी कोई अधिकता नहीं की है ! यह तो हमारा कर्तव्य ही है और इसके लिये ही हम अपना जीवन अर्पण कर चुके हैं, पर मुझे आश्चर्य इस बात का है कि इन पाखण्डियों के जाल में आप कैसे फंस गये ?

नवयुवक—महाराज ये लोग स्वर्ग भेजने की शर्त पर हम को यहां लाये थे। अगर आप श्रीमानों का पधारना न होता तो न जाने ये निर्दयी लोग मेरी क्या गति कर डालते। आपका भला हो कि आपने मुझे जीवन संकट से बचाया। अब मेरा जीवन तो आपश्री के चरणों में अर्पित है। यह कहते ही उस तरुण के हृदय की व्याकुलता के कारण नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहने लगी।

आचार्य—महानुभाव ! घबराओ मत ! अगर आपको इस बात का अनुभव हो गया हो और अन्य प्राणियों को इस संकट से बचाना हो तो वीरतापूर्वक इस आसुरी नीच प्रथा को जड़मूल से उखाड़ दो कि तुम्हारी तरह और किसी को दुःखी न होना पड़े।

युवक—महाराज ! आपका कहना सत्य है, और मैं प्रतिज्ञापूर्वक आपके सामने कहता हूँ कि आप हमारे नगर में पधारें। मैं थोड़े ही दिनों में इन पाखण्डियों के पैर उखाड़ दूंगा। क्योंकि इन दुराचारियों का मुझे ठीक अनुभव हो गया है।

आचार्य—हे भद्र ! हम इतने ही साधु नहीं, पर हमारे साथ बहुत से साधु हैं। हम लोग रास्ता भूल करके इधर आ गये हैं और हमारे साधु न जाने किस तरफ गये होंगे ! कारण हम सब लोग इस भूमि की राह से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। अगर यहाँ से कोई ग्राम नजदीक हो तो उसका रास्ता हमको बतला दीजिये।

युवक—पूज्यवर ! यहाँ से बारह गाउ पर हमारी महावती नगरी है, अगर आप वहाँ पर पधार जावें तो हम लोग आपके लिये सब इन्तजाम कर देंगे।

आचार्यश्री ने इस बात को स्वीकार कर लिया। बस, वह नवयुवक साथ में हो गया और क्रमशः सायंकाल होते ही महावती नगरी में पहुँच गये। नगरी के बाहर किसी योग्य स्थान (बगीचे) में आचार्य श्री को ठहरा कर वह नवयुवक सूरिजी की आज्ञा लेकर नगर में गया।

आचार्य श्री के साथ जो नवयुवक था वह इस महावती नगरी के महाराजा शिवदत्त का लघु पुत्र देवगुप्त था। जिस राजकुमार के लिए राजा एवं राजसम्बन्धियों के होश हवास उड़ रहे थे राज-अन्तेउर में रोना-पीटना मच रहा था नगर के लोग चिन्तातुर थे कारण, दिन भर चारों ओर खूब खोज खोज करने पर भी देवगुप्त लापता था। नगर भर में जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा चल रही थी कि आज राजकुमार देवगुप्त न जाने कहाँ चला गया कि जिसका अभी तक कुछ भी पता नहीं मिला है।

आचार्य—जगदम्बा अर्थात् जगत की माता, क्या माता अपने बालकों का रक्षण करती है या भक्षण?

जंगली—तुम क्या समझते हो ? यह भक्षण नहीं है पर जिसकी वलि दी जाती है वह सदेह स्वर्ग में जाकर सदैव के लिये अमर बन जाता है।

आचार्य—तो क्या आप लोग सदैव के लिये अमर बनना नहीं चाहते हो ? जो इस नवयुवक को अमर बना रहे हो।



आचार्य कक्कसूरी विहार करते देवी मन्दिर में राजकुँवर की बली होती देखकर घातीक लोगों को उपदेश दे राजकुँवर के प्राण बचाये

का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे कुछ बोल नहीं सके।

१—एकदा विहरन सूरि स्त्यक्त मार्गः सुविस्मितः। देव्यालयं गतस्तत्र ददर्श च नृपात्मजम् ॥
देवगुप्त मनार्य्यैस्तु, वलिं देव्यै समर्पितम्। तदारक्षच्च सूरिस्त मनार्य्यान् सं प्रबोध्य च ॥
सूरितो लब्ध दीक्षस्तु, देवगुप्तोऽभवन्मुनिः। गुरु कृपा प्राप्त ज्ञानः शरणोल्लीढ़ इवाऽशनिः ॥

विद्यालयों की खूब मजबूत नींवें डाली जा रही थी कि भविष्य के लिए भी जनता में जैनधर्म की शुद्ध श्रद्धा और ज्ञान का प्रचार होता रहे। आचार्यश्री की आज्ञानुसार कई मुनि आस पास के ग्रामों में परिभ्रमण कर अहिंसा धर्म का प्रचार भी किया करते थे। कच्छ प्रदेश में कई वर्षों से जैन धर्म का प्रायः लुप्त सा हो गया था, पर इस समय आचार्य श्री कक्कसूरिजी ने फिर से जैन धर्म का बीज बो दिया। इतना ही नहीं पर उसके सुन्दर अंकुर भी दिखाई देने लग गये थे। महाराज कुमार देवगुप्त और उनके सहचारी १२५ नरनारी जो जैन दीक्षा के लिए उम्मीदवार थे उन्हें सूरिजी महाराज ने बड़े ही समारोह से जैन दीक्षा दी और हजारों नहीं पर लाखों लोगों को जैनधर्मोपासक बनाये। राजा प्रजा का आत्याग्रह देख तथा भविष्य के लाभालाभ पर विचार कर आचार्यश्री ने वह चातुर्मास भद्रावती नगरी में ही किया। आपश्री के विराजने से वहाँ पर बड़ा भारी लाभ हुआ। सद्ज्ञान के प्रचार द्वारा जनता की श्रद्धा जैनधर्म पर विशेष सुदृढ़ हो गई। आसपास के ग्रामों में भी सूरिजी महाराज का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा अर्थात् थोड़े ही दिनों में जैन धर्म एक नवपल्लव वृक्ष की भाँति फलने फूलने लग गया। चातुर्मास के पश्चात आचार्यश्री एवं मुनि देवगुप्तादि कच्छभूमि में विहार कर चारों ओर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे।

मुनि देवगुप्त ने पहिले से ही प्रतिज्ञा की थी कि मैं दीक्षा लेकर सब से पहिले अपनी मातृभूमि का उद्धार करूंगा। इसी माफिक आपने धर्मध्वज हाथ में लेकर चारों ओर पाखण्डियों की घोर लीला का होमादि में असंख्य प्राणियों की होती हुई घोर हिंसा और दुराचारियों की व्यभिचार-वृत्ति समूल नाश कर जहाँ तहाँ अहिंसा भगवती का ही प्रचार किया। जैनधर्म का खूब झण्डा फहराया। आचार्यश्री कक्कसूरिजी ने जैसे महान परिश्रम उठाया था वैसे ही आपश्री को महान् लाभ भी प्राप्त हुआ कारण कच्छभूमि में जैनधर्म का प्रचार किया सैकड़ों मुनियों को दीक्षा दी सैकड़ों जैनमन्दिरों की प्रतिष्ठा और कई जैन विद्यालयों की स्थापना करवाई लाखों लोगों को जैनधर्मोपासक बनाया इत्यादि। आपने अपने पूर्ण परिश्रम द्वारा अधोगति में जाती हुई जनता का उद्धार किया।

जिस समय मरुस्थल का श्रीसंघ सूरिजी महाराज की विनती के लिए आया था उस समय कच्छ में तीर्थाधिराज श्री सिद्धगिरि की यात्रा निमित्त संघ की बड़ी भारी तैयारियाँ हो रही थीं पट्टावलिकारों ने इस संघ के लिए इतना वर्णन किया है कि सिन्ध और कच्छ के सिवाय मरुस्थलादि प्रान्तों के अनेक लोगों से कच्छ मेदिनी विभूषित हो रही थी, हजारों हस्ती रथ अश्व वगैरह सवारियाँ और सोना चाँदी के देरासर रत्नों की प्रतिमायें आदि बहुत आडम्बर से संघ के लिए सामग्री तैयार हो रही थी तथा अनेक वाजिंत्रों से गगन गूंज उठा था। करीबन पांच हजार साधु साध्वि और लाखों गृहस्थ यात्रा निमित्त संघ में एकत्र हुए थे। इस में मुख्य प्रेरक मुनि देवगुप्त ही थे और आपको इस बात का बड़ा ही आनन्द भी आता था।

सूरिजी महाराज के दिये हुए शुभ-मुहूर्त्त से महाराजा विजयरथ के संघपतित्व में संघ रवाना हुआ। क्रमशः तीर्थ यात्रा करता हुआ श्री सिद्धगिरि का दूर से दर्शन करते ही हीरा पन्ना और मुक्ताफल से तीर्थ पूजा की और सूरिजी महाराज के साथ भगवान् आदीश्वर की यात्रा कर सब लोगों ने अपने जीवन को पवित्र किया। इस शुभावसर पर आचार्यश्री ने देवगुप्त को योग्य समझ श्री संघ के समक्ष सिद्धाचल की शीतल छाया में वासक्षेप के विधि-विधान से आचार्य पद से विभूषित कर अपना भार आचार्य देवगुप्तसूरि

इधर देवगुप्त ने सूरिजी को बगीचा में ठहरा कर सीधा ही राजभुवन मे गया और अपने पिता से मिल कर सब हाल उनको सुना कर कहा कि पूज्य पिताजी ! भला हो इन महात्माजी का कि काल के मुह में गये हुए को मुझे बचा लिया इत्यादि। उस घृणित दुराचार का वर्णन करते हुए देवगुप्त का सब शरीर कांप उठा था, जिसको देख राजा ने उन मठपतियों की घातक वृति पर बहुत अफसोस किया और अपने पुत्र को जीवन दान देने वाले आचार्यश्री के प्रति भक्ति भाव से प्रेरित हो देवगुप्त को साथ ले आचार्यश्री के चरणों में हाजिर हुआ और नमस्कार कर बोला "भगवान ! आपने मेरे पर बड़ा भारी उपकार किया इसका बदला तो मैं किसी प्रकार से नहीं दे सकता हूँ, पर अब आप अपने भोजन के लिए फरमावें कि आप भोजन बनावेंगे या हम बनवा लावें "।

आचार्य—न तो हम हाथ से रसोई बनाते हैं न हमारे लिए बनाई रसोई हमारे काम में आती है और हमको इस समय भोजन करना भी नहीं है। बहुत से साधुओं के तपश्चर्या भी है, इधर सूर्य्य भी अस्त होने की तैयारी में है और सूर्य्यास्त होने के बाद हम लोग जलपान तक भी नहीं करते हैं।

देवगुप्त—भगवान् ! ऐसा तो न हो कि आप भूखे रहें और हम भोजन करें। अगर आप अन्न-जल नहीं लें तो हम भी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम भी अन्नजल न लेंगे। बस, देवगुप्त ने भी उस रात्रि सूरि जी का अनुकरण किया अर्थात् अन्नजल नहीं लिया। इसका नाम ही सच्ची भक्ति है। देवगुप्त ने सूरिजी के अन्य साधुओं की खबर लेने को आदमी भेजे तो रात्रि में ही खबर मिल गई थी कि नगरी से थोड़े ही फासले पर एक पर्वत के पास सूर्य्यास्त हो जाने पर सूरिजी महाराज की राह देखते हुये सब साधु वहाँ ही ठहरे हैं। देवगुप्त ने यह समाचार सूरिजी महाराज के कानों तक पहुँचा दिया, मुनिवर्ग अपने ध्यान में मग्न हैं।

इधर भद्रावती नगरी में उन पाखण्डियों की पापवृति के लिये जगह २ धिकार और आचार्यश्री की परोपकार-परायणता के लिये भूरि २ प्रशंसा हो रही थी।

सूर्य्योदय होने के पश्चात इधर तो आचार्य श्री ने अपनी नित्य क्रिया से निवृत्ति पाई, उधर राजा प्रजा बड़े ही उत्साह एवं समारोह के साथ सूरिजी महाराज के दर्शनार्थ और देशनारूपी अमृतपान करने की अभिलाषा से असख्य लोग आकर उपस्थित हो गये। सूरिजी महाराज ने भी धर्मलाभ के पश्चात देशना देनी प्रारम्भ की। आचार्य ककसूरिजी महाराज बड़े ही समयज्ञ थे। आपने अपने प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा उन पाखण्डियों की घोर हिंसा और व्यभिचार वृत्ति पर कड़ी आलोचना की, जिसको सुन कर जनता को उन पाखण्डियों की पाप वृत्ति पर घृणा आने लगी इत्यादि। सूरिजी के व्याख्यान का उपस्थित लोगों पर इतना प्रभाव हुआ कि राजा और प्रजा एकदम सूरिजी महाराज के झण्डेली झण्डा के नीचे जैनधर्म की शरण में आ गये अर्थात जैनधर्म स्वीकार करने को तैयार हो गये। आचार्य श्री ने भी अपने वासक्षेप से उनको पवित्र बना कर जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दे, जैनी बना लिए। इतना ही नहीं, पर महाराजकुमार देवगुप्त ने तो प्रतिज्ञापूर्वक कह दिया कि मैं तो सूरिजी महाराज के समीप दीक्षा लेकर कच्छ देश एव जननी जन्मभूमि का उद्धार करूंगा।

जैसे दिन प्रतिदिन आचार्यश्री का व्याख्यान होता रहा वैसे जैनधर्म का प्रचार बढ़ता गया तथा सदाचार की वृद्धि के साथ साथ दुराचार के पैर भी उखड़ते गये। इनके अलावा जैन मन्दिर और जैन

आचार्यश्री के प्रभावशाली उपदेश का असर जनता पर इस कदर हुआ कि उनकी नस २ में एक उबाल उठा और जैनधर्म का प्रचार करना एक खास उनका ध्येय बन गया था। तदनुसार बहुत से मुनि पुङ्गवों ने हाथ जोड़ सूरिजी से अर्ज करी कि भगवान्! आप आज्ञा फरमावें उसी देश में हम विहार करने को तैयार हैं, जैनधर्म के प्रचार के लिये कठिनाइयें और परिसह की हमको परवाह नहीं है। वर हम प्राण भी देने को भी तैयार हैं। इत्यादि इसी माफिक श्रीसंघ ने भी आप श्रीमानों की आज्ञा को शिरोधार्य करने की भावना प्रदर्शित करी इस पर सूरिजी महाराज को बड़ा सन्तोष हुआ और यथायोग्य आज्ञा फरमा कर श्रीसंघ को कृतार्थ किया। बाद जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

तदनन्तर कोरंटपुर श्रीसंघ एवं आचार्य सोमप्रभसूरि ने सूरीश्वरजी महाराज को चतुर्मास की विनती करी और लाभालाभ का कारण देख आचार्यश्री कक्कसूरि और सोमप्रभसूरि ने कोरंटपुर में चतुर्मास किया।

आचार्यश्री के कोरंटपुर में विराजने से शासन-प्रभावना, धर्म का उद्योत, जनता में जागृति आदि अनेक सद्कार्य हुये। इतना ही नहीं पर आस पास के ग्रामों में भी अच्छा लाभ हुआ। बाद चतुर्मास के आपश्री ने मरुस्थल के अनेक ग्राम नगरों में विहार कर धर्म प्रचार बढ़ाया। क्रमशः आप श्रीमानों का पधारना उपकेशपुर की तरफ हुआ। यह शुभ समाचार मिलते ही उस प्रान्त में मानों एक नई चैतन्यता प्राप्त हो गई। उपकेशपुर के श्रीसंघ ने सूरिजी का बहुत उत्साह से स्वागत किया। श्रीसंघ के आग्रह से ५० मुनियों के साथ वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही विराज कर जनता में परोपकार और जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया, बाद आपकी वय वृद्ध होने से आप कई वर्षों तक वहाँ ही विराजमान रहे। आपने दिव्य ज्ञान द्वारा अपना अन्तिम समय जान आलोचनापूर्वक अठारह दिन का अनशन कर लूणाद्रिगिरि पर फाल्गुण शुक्ल ७ के दिन समाधिपूर्वक काल कर स्वर्गवास किया। आचार्यश्री के देहान्त से श्रीसंघ में बड़ा भारी शोक छा गया आपश्री का अग्नि-संस्कार हुआ था उस जगह आपश्री की स्मृति के लिये एक बड़ा भारी विशाल स्तूप कराया जिसकी सेवा भक्ति से जनता अपना कल्याण कर सके।

लूणाद्री पहाड़ी जनता के लिये एक कल्याण-भूमि एवं तीर्थरूप मानी जाती है यद्यपि विरकाल होने के कारण वहाँ इतने चिन्ह तो नहीं मिलते हैं, तथापि कुछ २ निशान अभी मौजूद हैं। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में एक मुनि ने वहाँ अनशन किया जिनकी पादुका वहाँ विद्यमान है।

आठवें पट्ट आचार्य श्रीकक्कसूरिजी हुए,
जो क्षत्री कुल अवतंस थे उत्थान में समर्थ हुए।
कष्ट शुभ सौराष्ट्र में बली की प्रथा को मेट कर,
बली के रहे थे सुकेश्वर को रक्षित किया अज्ञान हर।
राजा प्रजा को पथ दिखाया जैन धर्म में महत् किया,
जो तप्त थे भव ताप से उनको सदय अमृत दिया।

इति भगवान् पार्श्वनाथ के आठवें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रभाविक सूरि हुए।

को सुपुर्द कर दिया। आचार्यश्री की समय-सूचकता को देख श्रीसघ में बड़ा ही हर्ष और आनन्द मंगल छा गया। सिद्धगिरि की यात्रा के पश्चात आचार्य देवगुप्त सूरि की अध्यक्षता में संघ वापिस लौट गया और आचार्य कक्कसूरि सौराष्ट्र लाट वगैरह में विहार कर मरुभूमि की और पधार गये। अर्बुदाचल की यात्रा कर चन्द्रावती, शिवपुरी, पद्मावती साचउर और श्रीमालादि क्षेत्र को पावन करते हुए आप कोरटपुर पधारे वहा आचार्य सोमप्रभसूरि आदि हजारों साधु साध्विया आपश्री के दर्शनों की पहिले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा प्रजा ने सूरिजी के नगर प्रवेश का बड़ा भारी महोत्सव किया, कितनेक दिन वहा विराज के चिरकाल से देशना-पिपासु भव्य जीवों को धर्मोपदेश से संतुष्ट किया।

आचार्यश्री की अध्यक्षता में कोरंटपुर के श्रीसंघ ने एक विराट सभा करने को आस-पास में विहार करने वाले साधु साध्वियों और अनेक ग्राम नगरों के श्रीसघ को आग्रहपूर्वक आमन्त्रण भेजा। इस पर प्रथम तो आचार्यश्री का चिरकाल से पधारना हुआ इस वास्ते उनके दर्शन का लाभ, दूसरा यह प्राचीन तीर्थरूप स्थान है भगवान महावीर की मूर्ति का दर्शन, तीसरे श्रीसघ एकत्र होगा उनका दर्शन, चौथे आचार्यश्री की अमृतमय देशना का लाभ और हजारों साधु साध्वियों के दर्शन, पाचवे धर्म और समाज-सम्बन्धी अनेक सुधार होंगे इत्यादि कारणों को लेकर हजारों साधु साध्विया और लाखों श्रावक श्राविकायें एकदम एकत्र हो गये। देवगुरु और श्रीसघ के दर्शन एवं यात्रा के पश्चात् सूरिजी महाराज के मुखारविन्द की देशना पान के लिये सब की अभिलाषा हो रही थी। उस समय जनता की धर्म पर कैसी श्रद्धा थी जिसका यह नमूना है।

सूरीश्वरजी महाराज ने चतुर्विध संघ के अन्दर खड़े हो अपनी वृद्धवय होने पर भी बड़ी बुलन्द आवाज से धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया। आपश्री ने अपने व्याख्यान के अन्दर श्रमणसघ की तरफ इशारा कर फरमाया कि प्यारे श्रमणगण! आप जानते हो कि एक प्रान्त में भ्रमण करने की अपेक्षा देश-देशान्तर में विहार करने से स्वपरात्मा का कितना कल्याण होता है वह मैं अपने अनुभव से आपको बतला देना चाहता हूँ कि आचार्य स्वयम्प्रभसूरि ने पूर्व से पधार कर श्रीमाल नगर और पद्मावती नगरी में हजारों नये जैन बनाये।। आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में लाखों श्रावक बनाये, आचार्यश्री यक्षदेवसूरि ने सिन्ध जैसे देश को जैनमय बना दिया, इतना ही नहीं पर मेरे जैसे पामर प्राणियों का उद्धार भी किया। मेरे विहार के दरम्यान कच्छ जैसा पतित देश भी आज जैनधर्म का भली-भाति आराधन कर स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बन रहे हैं। अभी तक ऐसे प्रान्त भी बहुत हैं कि जहा पूर्व जमाने में जैनधर्म का साम्राज्य बरत रहा था, आज वहां जैनधर्म के नाम को भी नहीं जानते हैं, उस प्रदेश में जैनमुनियों के विहार की बहुत जरूरत है। आशा है कि विद्वान मुनि कमर कस के तैयार हो जायगे। साथ में आपश्री ने फरमाया कि जैसे मुनिवर्ग का कर्त्तव्य है कि देश विदेश में विहार कर जैनधर्म का प्रचार कर, जैसे श्राद्धवर्ग का भी कर्तव्य है कि इस कार्य्य में पूर्णतया सहायक बनें। नूतन श्रावकों के प्रति वात्सल्य भाव रक्खें, उनके साथ सब तरह का व्यवहार रक्खें, अपने २ ग्राम नगर में जैन विद्यालय और जैन मन्दिरों का निर्माण करवा के शासनकी सेवा का लाभ हासिल करें इत्यादि। सूरीश्वरजी महाराज की देशना से श्रोताजन को यह सहज ही में ख्याल हो आया कि आचार्यश्री के हृदय में ही नहीं, पर नस २ में और रोम २ में जैनधर्म का प्रचार करने की बिजली चमक उठी है। जिसको ही आपने वाणि द्वारा व्यक्त की है।।

आचार्यश्री के प्रभावशाली उपदेश का असर जनता पर इस कदर हुआ कि उनकी नस २ में एक उबल उठा और जैनधर्म का प्रचार करना एक खास उनका कर्त्तव्य बन गया था। तदनुसार बहुत से मुनि पुङ्गवों ने खड़े हो सूरिजी से अर्ज करी कि भगवान्! आप आज्ञा फरमावें उसी देश में हम विहार करने को तैयार हैं, जैनधर्म के प्रचार के लिये कठिनाइयें और परिसह की हमको परवाह नहीं है। पर हम अपने प्राण देने को भी तैयार हैं। इत्यादि इसी माफिक श्रीसंघ ने भी आप श्रीमानों की आज्ञा को शिरोधार्य करने की भावना प्रदर्शित करी इस पर सूरिजी महाराज को बड़ा सन्तोष हुआ और यथायोग्य आज्ञा फरमा कर श्रीसंघ को कृतार्थ किया। बाद जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

तदनन्तर कोरंटपुर श्रीसंघ एवं आचार्य सोमप्रभसूरि ने सूरीश्वरजी महाराज को चतुर्मास की विनती करी और लाभालाभ का कारण देख आचार्यश्री कक्कसूरि और सोमप्रभसूरि ने कोरंटपुर में चतुर्मास किया।

आचार्यश्री के कोरंटपुर में विराजने से शासन-प्रभावना, धर्म का उद्योत, जनता में जागृति आदि अनेक सत्कार्य हुये। इतना ही नहीं पर आस पास के ग्रामों में भी अच्छा लाभ हुआ। बाद चतुर्मास के आपश्री ने मरुस्थल के अनेक ग्राम नगरों में विहार कर धर्म प्रचार बढ़ाया। क्रमशः आप श्रीमानों का पधारना उपकेशपुर की तरफ हुआ। यह शुभ समाचार मिलते ही उस प्रान्त में मानो एक नई चैतन्यता प्रगट हो गई। उपकेशपुर के श्रीसंघ ने सूरिजी का बहुत उत्साह से स्वागत किया। श्रीसंघ के आग्रह से ५ मुनियों के साथ वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही विराज कर जनता में परोपकार और जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया, बाद आपकी वय वृद्ध होने से आप कई वर्षों तक वहाँ ही स्थिरवास रहे। आपने दिव्य ज्ञान द्वारा अपना अन्तिम समय जान आलोचनापूर्वक अठारह दिन का अनशन कर लुणाद्रिगिरि पर फाल्गुन शुद ५ के दिन समाधिपूर्वक काल कर स्वर्गवास किया। आचार्यश्री के देहान्त से श्रीसंघ में बड़ा भारी शोक छा गया आपश्री का अग्नि-संस्कार हुआ था उस जगह आपश्री की स्मृति के लिये एक बड़ा भारी विशाल स्तूप कराया जिसकी सेवा भक्ति से जनता अपना कल्याण कर सके।

लुणाद्री पहाड़ी जनता के लिये एक कल्याण-भूमि एवं तीर्थरूप मानी जाती है यद्यपि विच्छेद होने के कारण वहाँ इतने चिन्ह तो नहीं मिलते हैं, तथापि कुछ २ निशान अभी मौजूद हैं। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में एक मुनि ने वहाँ अनशन किया जिनकी पादुका वहाँ विद्यमान है।

आठवें पट्ट आचार्य श्रीकक्कसूरिजी हुए,
जो क्षत्री कुल अवतंस व उत्थान में समर्थ हुए।
कच्छ सुन्ध सौराष्ट्र में बली की प्रथा को नष्ट कर,
बली दे रहे थे दुर्जेश्वर को रक्षित किया प्राण हर।
राजा प्रजा को पथ दिखाया जैन धर्म में प्रवृत्त किया,
जो त्रस थे भव ताप से उनको सदय अमृत दिया।

इति भगवान् पार्श्वनाथ के आठवें पट्ट पर आचार्य कक्कसूरि महान् प्रभाविक सूरि हुए।

# भगवान महावीर की परम्परा

५—भगवान महावीर के पांचवे पट्ट पर आचार्य यशोभद्रसूरि महा प्रतिभाशाली हुये। आप तुगियन गोत्र के वीर थे। आपने ससार को असार जान आन्तरिक वैराग्य भाव से आर्य शय्यंभवसूरि के चरण-कमलों में भगवती जैन दीक्षा धारण की थी। तत्पश्चात् अभिरुचि और परिश्रम द्वारा आगमों का अध्ययन किया तो आप द्वादशाग के पारगत हो गये थे, जिसमें स्वमत परमत के आप पूर्ण रूपेण ज्ञाता थे। आपने अपने परोपकारी जीवन में शासन की उन्नति के साथ अनेक भव्यों का उद्धार किया। वादी प्रतिवादियों के साथ शास्त्रार्थ में आप सदैव ही विजयी रहते थे। आपके समय जैनधर्म का चारों ओर प्रचार हो रहा था। वादियों पर तो आपकी इतनी छाप पड़ती थी कि वे आपका नाम सुन कर दूर दूर भागते थे। वेदान्तियों का मत फीका सा पड़ गया था। बौद्धभिक्षु यत्र-तत्र घूम २ कर अपना प्रचार बढाने की कोशिश करते थे, पर जैनश्रमण जहाँ तहाँ खड़े कदम उपदेश कर जनता को सन्मार्ग पर लाने में प्रयत्नशील रहते थे, इत्यादि।

आचार्य यशोभद्रसूरि के शासन में यों तो हजारों मुनि आत्म-कल्याण कर रहे थे पर एक अग्निदत्त नाम का मुनि शासन का ऐसा शुभचिन्तक था कि वह वर्तमान ही नहीं पर भविष्य के लिये भी शासन का सदैव विचार किया करता था। एक समय अग्निदत्त मुनि आचार्य यशोभद्रसूरि के पास आया और भविष्य का प्रश्न किया कि हे ज्ञानेश्वर! भविष्य में जैन शासन का क्या हाल होगा इसका उद्योत करने वाला कौन होगा ? तथा जैन शासन को झाका दिखाने वाला भविष्य में कौन होगा ?

इस पर श्रुतकेवली एव अवधिज्ञानी आचार्य श्रीयशोभद्रसूरि ने कहा कि हे अग्निदत्त! भगवान महा-वीर के निर्वाण के बाद २९१ वर्ष जाने पर मौर्य मुकुटमणि सम्राट सम्प्रति होगा और वह भारत और भारत के बाहर जैनधर्म का खूब प्रचार करेगा और जैन मन्दिरों से मेदिनी मण्डित कर जैनधर्म का उद्योत करेगा और सम्प्रति राजा के बाद १६९९ वर्ष जाने पर बावीस गोटीले वणिक पुत्र होगा, वह श्रुत धर्म की अवहे-लना करेगा, उस समय हे अग्निदत्त! श्रीसंघ की राशि पर अट्ठावीसवाँ धूम्रकेतु नामक दुष्ट ग्रह का संक्रमण होगा। उसकी स्थिति ३३३ वर्ष की होगी उसके बाद पुन' शासन का उदय होगा इत्यादि। इसका साराश यह हुआ कि वीरात् २९१ में सम्राट सम्प्रति हुआ और उसने जैनधर्म का प्रचार बढा कर शासन की खूब उन्नति की। बाद १६९९ वर्ष में श्रुतज्ञान की अवहेलना करने वाले २२ गोष्ठीक पुत्र हुये, अर्थात् २९१ + १६९९ = १९९० अर्थात् वि० स० १५२० के बाद जिनप्रतिमा का विरोध करने वाले पैदा हुये। ठीक उस समय इधर तो भस्मगृह की स्थिति का अन्त होता है और वह बुझते हुये दीपक की भांति एक बार अपना अन्तिम तेज दिखाने का साहस करता है और उधर श्रीसघ की राशि पर धूम्रकेतु नामक दुष्ट ग्रह का सक्र-मण होने का समय था। इन दोनों क्रूर ग्रह के कारण शासन में एक ऐसा बड पैदा हुआ कि उन गोठीलों ने श्रुत, सिद्धान्त, टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वगैरह, सूत्र मानने से इनकार कर दिया। इतना ही क्यों पर जैनधर्म के स्तम्भ रूप मदिर मूर्तियों का भी विरोध किया, जिनसे जैन शासन को बड़ा भारी नुकसान हुआ तथा जैन-धर्म की क्रियाओं के विरुद्ध आचरणों के कारण ससार में जैनधर्म की हीनता भी करवाई। खैर, आगे चल कर उस धूम्रकेतु की अवधि पूर्ण होने के पहिले भी उसने जाते २ भी अपना प्रभाव इस कदर बतलाया कि जैन-

आपकी दीक्षा आचार्य यशोभद्र के करकमलों से हुई थी। आप चतुर्दश पूर्वधर एवं श्रुतकेवली थे। आपका जीवन लिखने के पूर्व कुछ शंकास्पद प्रश्नों पर लिखना जरूरी है।

१—आचार्य भद्रबाहु के विषय में जितने लेखकों ने भद्रबाहु जीवन लिखे हैं, प्राय. उन सबने श्रुतकेवली भद्रबाहु[1] को वराहमिहिर के लघुभ्राता लिखा है। इतना ही क्यों, पर इन दोनों भ्राताओं की दीक्षा भी एक ही साथ हुई। दोनों चतुर्दश पूर्वधर थे। दोनों ज्योतिष विद्या के धुरंधर विद्वान थे। और दोनों ने ज्योतिष विषय के महान् ग्रंथों की रचना की, जिन्होंके क्रमशः वराहमिहिरसंहिता और भद्रबाहुसंहिता नाम हैं। पर भद्रबाहु लघु होने पर भी उन को आचार्य पद प्राप्त होने से वराहमिहिर रुष्ट होकर ❀ जैनधर्म का त्याग कर दिया, इत्यादि लिखा है।

पर जैन साहित्य का अवलोकन करने से किसी प्राचीन साहित्य में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि श्रुतकेवलीभद्रबाहु वराहमिहिर के लघु भ्राता थे, पर कई प्रमाण इन से खिलाफ मिलते हैं कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ वराहमिहिर का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। इतना ही क्यो पर वराहमिहिर श्रुतकेवली भद्रबाहु के बाद कई आठ नौ ‡ शताब्दियों के पीछे हुआ था, जब वराहमिहिर और श्रुतकेवली भद्रबाहु के बीच आठ नौ शताब्दी का अन्तर है तो श्रुतकेवली भद्रबाहु और वराहमिहिर को समसामयिक एवं दोनों को भाई कैसे मान लिया जाय? अर्थात् श्रुतकेवली भद्रबाहु का समय वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी है, तब वराहमिहिर का समय वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी का है।

जब भद्रबाहु और वराहमिहिर समकालीन नहीं थे तो उनके निर्माण किये वराह संहिता और भद्रबाहु संहिता ज्योतिष के ग्रन्थ आज विद्यमान हैं वे किसने और कब लिखे? इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि विक्रम की छठवीं शताब्दी ( वीर निर्वाण १०३२ ) में वराहमिहिर जो ऊपर बतलाया है उसका भाई भद्रबाहु होगा और उन दोनों ने जैन दीक्षा ली होगी। भद्रबाहु लघु होने पर भी उसको आचार्य

१ श्रीभद्रबाहुस्वामीतुश्रीआवश्यकादिनिर्युक्तिविधाता। व्यंतरीभूतवराहमिहिरकृत संघोपद्रवनिवारकोपसर्गहरस्तवनेनप्रवचनस्य महोपकारं कृत्वा, पंचचत्वारिंशत् ४५ गृहे, सप्तदश १७ व्रते, चतुर्दश १४ युग प्र० चेति सर्वायुः षट् सप्तति ७६ वर्षाणि परिपाल्य श्रीवीरात् सप्तत्यधिकशत १७० व० स्वर्गभाक्।छ।

पट्टावली समुच्चय पृष्ठ ४८

❀ "प्रतिष्ठानपुरे वराहमिहिरभद्रबाहुद्विजौबांधवौप्रव्रजितौ। भद्रबाहोराचार्यपददाने रुष्टः सन् वराहो द्विजवेषमादृत्य वाराहीसंहितांकृत्वानिमित्तैर्जीवति।"

कल्पकिरणावली १६३

वराहोऽपि विद्वानासीत्। केवलमखर्वगर्व पर्वतारूढः सूरिपदंयाचतेभद्रबाहोस्सहोदर पार्श्वात्। भद्रबाहुनाभाषितःसः—वत्स! विद्वानसि, क्रियावानसि, परंसगर्वोऽसि। सगर्वस्यसूरिपदं न दद्मः। एतत्सत्यमपि तस्मै न सस्वदे। यतो 'गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।' ततो व्रतं तत्याज। मिथ्यात्वं गतः पुनर्द्विजवेष जग्राह।

प्रबन्ध कोष पृष्ठ २

‡ सप्ताश्वि वेद संख्यं शक कालमपास्य चैत्र शुक्ला दौ।
अर्द्धस्तमितेभानौ, यवनपुरेसौम्यादिवसाद्ये॥

"पंचसिद्धान्तिका"

पड़ मिल गया हो और इस कारण वराहमिहिर कुपित हो जैन धर्म की दीक्षा को छोड़ कर भद्रबाहु की भद्र-बाहुसंहिता की स्पर्धा में ही वराहसंहिता नामक ग्रन्थ निर्माण किया हो तो यह बात संभव हो सकती है। अतः, वराहमिहिर के भ्राता भद्रबाहु अलग हैं और श्रुतकेवली चतुर्दशपूर्वधर भद्रबाहु अलग हैं।

इसमें वराहमिहिर का अस्तित्व शक सं ४२७ ( और वि० सं १०११ ) का बतलाया है।

३—भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के विषय में एक संदृग्ध प्रश्न और भी है उसका भी यहाँ उल्लेख कर देना असांगिक नहीं होगा। वह प्रश्न निम्नलिखित है।

दिगम्बर लेखकों ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने १६ स्वप्ने देखे और भद्रबाहु से उन स्वप्नों का फल पूछा। भद्रबाहु ने उन अनिष्ट स्वप्नों का भविष्य कहा जिससे चन्द्रगुप्त ने वैराग्य को प्राप्त हो भद्रबाहु के पास दीक्षा ग्रहण की और दुष्काल के समय आचार्य भद्रबाहु मुनिचन्द्रगुप्तादि १२००० की संख्या में संघ को लेकर दक्षिण की ओर चले गये। भद्रबाहु का स्वर्गवास दक्षिण में हुआ। बाद चन्द्रगुप्त मुनि एक पर्वत पर तपश्चर्या करते रहे, अतः उस पर्वत का नाम चन्द्रगिरि पहाड़ हो गया इत्यादि।

इस विषय का प्राचीन प्रमाण न तो श्वेताम्बर ग्रन्थों में है और न दिगम्बर ग्रन्थों में ही मिलता है। हाँ श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पहाड़ पर एक शिलालेख में भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का उल्लेख जरूर है। पं मुनिश्री कल्याणविजयजी की मान्यता है कि उस लेख का समय शक संवत् ५७२ के आसपास का है। यदि यह मान्यता ठीक है तो यह आसानी से कबूल किया जा सकता है कि उस समय के किसी चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु के पास दीक्षा ली होगी। इस बात को पूर्वोक्त लेख ही सिद्ध कर रहा है। कारण, प्रस्तुत लेख में न तो भद्रबाहु को श्रुतकेवली कहा है और न चन्द्रगुप्त को मौर्य ही कहा है।

इस विषय का दिगम्बर सम्प्रदाय में सब से प्राचीन ग्रन्थ हरिषेणकृत्य बृहत्कथा कोष है। यह ग्रन्थ शक संवत ८५३ ( वि० सं ९८८ ) में रचा हुआ है। इसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु के मुख से दुर्भिक्ष का हाल सुन कर उज्जैन के चन्द्रगुप्त ने दीक्षा ली। आगे चल कर उस चन्द्रगुप्त को दशपूर्वधर बना कर विशाखाचार्य नाम का उल्लेख किया है इस कथा से पाटलीपुत्र का मौर्य्य चन्द्रगुप्त से यह उज्जैन का चन्द्रगुप्त भिन्न है तब श्रुतकेवली भद्रबाहु से उज्जैन के चन्द्रगुप्त को दीक्षा देने वाले भद्रबाहु स्वत अलग सिद्ध होते हैं।

इनके अलावा पार्श्वनाथ बस्ती में शक संवत ५२२ के आसपास का एक शिलालेख भी मिलता है, उसमें भद्रबाहु की भांति सूचना से संघ के दक्षिण में जाने का उल्लेख है पर उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता है कि जिनकी दुर्भिक्ष सम्बन्धी सूचना से जैन संघ दक्षिण की ओर गया था वे भद्रबाहु श्रुतकेवली ही थे परन्तु दिगम्बरों के लेखों स ही सिद्ध होता है कि वे भद्रबाहु श्रुतकेवली की परम्परा में होने वाले दूसरे भद्रबाहु थे जिनकी निमित्तवेत्ता के नाम से प्रसिद्धि हुई थी जिसका प्रस्तुत लेख निम्नलिखित है—

महावीरसवितरि परिनिर्वृते भगवत्परमर्षि गौतमगणधर साक्षाच्छिष्यलोहार्यजम्बु-विष्णु-देवापराजित-गोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख प्रोष्ठिल-कृत्तिकार्य-जयनाम-सिद्धार्थ-धृतिषेण-बुद्धिलादि-गुरु-परम्परीणक्र—( क ) माभ्यागतमहापुरुषसंतति समवद्योतितान्वय भद्रबाहुस्वामिनाउज्जयन्याम-ष्टांग-महानिमित्ततत्त्वज्ञानत्रैकाल्यदर्शिनानिमित्तेन द्वादशसंवत्सरकालवैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्व संघ उत्तरापथाद्दक्षिणापथं प्रस्थित"

श्रवणबेलगोल की पार्श्वनाथ बस्ती का लेख

आपकी दीक्षा आचार्य यशोभद्र के करकमलों से हुई थी। आप चतुर्दश पूर्वधर एव श्रुतकेवली थे। आपका जीवन लिखने के पूर्व कुछ शकास्पद प्रश्नों पर लिखना जरूरी है।

१—आचार्य भद्रबाहु के विषय में जितने लेखकों ने भद्रबाहु जीवन लिखे हैं, प्राय. उन सबने श्रुतकेवली भद्रबाहु[1] को वराहमिहिर के लघुभ्राता लिखा है। इतना ही क्यों, पर इन दोनों भ्राताओं की दीक्षा भी एक ही साथ हुई। दोनों चतुर्दश पूर्वधर थे। दोनो ज्योतिष विद्या के धुरधर विद्वान थे। और दोनों ने ज्योतिष विषय के महान् ग्रंथों की रचना की, जिन्होंके क्रमशः वराहमिहिरसहिता और भद्रबाहुसहिता नाम हैं। पर भद्रबाहु लघु होने पर भी उन को आचार्य पद प्राप्त होने से वराहमिहिर रूष्ट होकर ❀ जैनधर्म का त्याग कर दिया, इत्यादि लिखा है।

पर जैन साहित्य का अवलोकन करने से किसी प्राचीन साहित्य में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि श्रुतकेवलीभद्रबाहु वराहमिहिर के लघु भ्राता थे, पर कई प्रमाण इन से खिलाफ मिलते हैं कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ वराहमिहिर का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। इतना ही क्यों पर वराहमिहिर श्रुतकेवली भद्रबाहु के बाद कई आठ नौ ‡ शताब्दियों के पीछे हुआ था, जब वराहमिहिर और श्रुतकेवली भद्रबाहु के बीच आठ नौ शताब्दी का अन्तर है तो श्रुतकेवली भद्रबाहु और वराहमिहिर को समसामयिक एव दोनों को भाई कैसे मान लिया जाय ? अर्थात् श्रुतकेवली भद्रबाहु का समय वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी है, तब वराहमिहिर का समय वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी का है।

जब भद्रबाहु और वराहमिहिर समकालीन नहीं थे तो उनके निर्माण किये वराह सहिता और भद्रबाहु सहिता ज्योतिष के ग्रन्थ आज विद्यमान हैं वे किसने और कब लिखे ? इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि विक्रम की छठवीं शताब्दी ( वीर निर्वाण १०३२ ) में वराहमिहिर जो ऊपर बतलाया है उसका भाई भद्रबाहु होगा और उन दोनों ने जैन दीक्षा ली होगी। भद्रबाहु लघु होने पर भी उसको आचार्य

---

१ श्रीभद्रबाहुस्वामीतुश्रीआवश्यकादिनिर्युक्तिविधाता। व्यतरीभूतवराहमिहिरकृत संघोपद्रवनिवारकोपसर्गहरस्तवनेनप्रवचनस्य महोपकारं कृत्वा, पंचचत्वारिंशत् ४५ गृहे, सप्तदश १७ व्रते, चतुर्दश १४ युग प्र० चेति सर्वायुः पट् सप्तति ७६ वर्षाणि परिपाल्य श्रीवीरात् सप्तत्यधिशत १७० व० स्वर्गभाक्।छ।

पट्टावली समुच्चय पृष्ठ ४४

❀ "प्रतिष्ठानपुरे वराहमिहिरभद्रबाहुद्विजोगाधवौप्रव्रजितौ। भद्रबाहोराचार्यपददाने रुष्टः सन् वराहो द्विजवेषमादृत्य वाराहीसहिताकृत्वानिमित्तैर्जीवति।"

कल्पकिरणावली १६३

वराहोऽपि विद्वानासीत्। केवलमखर्वगर्व पर्वतारुढः सूरिपदंयाचतेभद्रबाहाह्वसहोदर पार्श्वात्। भद्रबाहुनाभापितःसः—वत्स ! विद्वानसि, क्रियावानसि,परंसगर्वोऽसि। सगर्वस्यसूरिपदं न दद्मः। एतत्सत्यमपि तस्मै न सस्वदे। यतो 'गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थित शूलमभव्यस्य।' ततो व्रतं तत्याज। मिथ्यात्वं गतः पुनर्द्विजवेष जग्राह।

प्रबन्ध कोष पृष्ठ ७

‡ सप्ताश्वि वेद संख्यं शक कालमपास्य चैत्र शुक्ला दौ।
अर्द्धस्तमितेभानौ, यवनपुरेसौम्यादिवसाद्ये ॥ "पचसिद्धान्तिका"

D—चतुर्थ—बारह वर्षीय दुष्काल आर्य भद्र स्वामि के समय—विक्रम की दूसरी शताब्दी।

इनके अलावा आचार्य भद्रबाहु के विषय एक प्रश्न और भी है जैसे दिगम्बरों के ग्रंथों में दुष्काल के समय १२००० संघ को साथ लेकर भद्रबाहु दक्षिण की ओर गये थे लिखा है। इसी प्रकार श्वेताम्बर ग्रंथों में दुष्काल के समय भद्रबाहु अपने ५०० शिष्यों को साथ ले कर नैपाल की ओर चले गये थे इसका उल्लेख आवश्यक चूर्णि आदि ग्रंथों में मिलते हैं; परन्तु परिशिष्टपर्व⊛ में आचार्य हेमचंद्र सूरि लिखते हैं कि उस दुष्काल के समय भद्रबाहु ने समुद्र के तट पर रह कर काल निर्गमन किया था।

इन दोनों मतों का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि शायद आचार्य भद्रबाहु दुष्काल के समय अपने शिष्यों को लेकर समुद्र तट पर अपने निर्वाह के लिये चले गये हों। कुछ अर्सा रहने पर वहाँ निर्वाह होता न देखा हो और वहाँ से नैपाल की ओर चले गये हों तो यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि जब पाटलीपुत्र में जैन श्रमणों की सभा हुई थी उस समय भद्रबाहु नैपाल में ही थे और उनको बुलाने के लिये मगध से साधुओं को नैपाल भेजा था जिसका प्रमाण हम ऊपर उद्धृत कर आये हैं।। अतः यह कोई विशेष मतभेद नहीं है।

इन शंकास्पद प्रश्नों का समाधान करके बाद अब हम आचार्यभद्रबाहुके जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

जैनपट्टावल्यादि ग्रन्थों में श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय मगध के सिंहासन पर मौर्य चंद्रगुप्त का राज होना भी बतलाया है। इतना ही क्यों पर मौर्य सम्राट जैनधर्मोपासक था और आचार्य भद्रबाहु स्वामी का परमभक्त भी था। एक समय सम्राट धर्म भावना को लक्ष्य में रख कर रात्रि के समय सो रहे थे तो आपने कुछ निद्रा और कुछ जागृत अवस्था में सोलह स्वप्न देखे और जागृत होने पर सोचने लगे कि ये क्या स्वप्न हैं और इनका भावी फल क्या होगा? अतः आपने अपने गुरु आचार्य भद्रबाहु के समीप जाकर नम्रता पूर्वक निवेदन किया कि हे प्रभो! मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं उनका भविष्य में क्या फल होगा? कृपया आप सुनाइये? आचार्य भद्रबाहु ने उन स्वप्नों का फल कहते हुए बतलाया कि।

१—पहिले स्वप्न में सम्राट ने कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी? फल-अब से कोई भी मुकुटबन्ध राजा जैन दीक्षा नहीं लेगा क्योंकि वे राज्यासक्ति कीचड़ में ऐसे फंस जायेंगे कि इच्छा के होते हुए भी आजीवन संसार में ही रहेंगे।

२—दूसरे स्वप्न में अकाल में सूर्य अस्त हुआ देखा? फल—अब से किसी को केवलज्ञान उत्पन्न न होगा, क्योंकि पंचमारा के जीव मंद संहनन वाले और अल्प सत्त्वधारी होंगे; वे अपने मन की चंचलता को रोक नहीं सकेंगे। और बिना मनको रोके केवल ज्ञान नहीं होगा।

---

✽ 'तंमि य काले बारसवरिसो दुकालो उवट्ठिओ सञ्जयाइतो य समुद्दतीरे अच्छित्ता पुणरवि पाडलिपुत्ते मिलिता अण्णस्सउद्देसओ अण्णस्स खंडं एवं संघाडितेहिं तेहिं एकारस अंगाणि य संघातिताणि, दिट्ठिवादो नत्थि, नेपालवत्तणी भयवं भद्दबाहुस्सामी अच्छति चोद्दसपुव्वी।"

—आवश्यक चूर्णि

⊛ "इतश्चतस्मिन्दुष्कालेकरालेकालरात्रिवत्। निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरंनीरनिधेर्ययौ॥"

—परिशिष्ट पर्व सर्ग ९

चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र का राजा न लिख कर उज्जैन का ही राजा लिखा है·—

"अवंति विषयेऽत्राथ, विजिताखिलमंडले। विवेक विनयानेक-धन धान्यादि सम्पदा ॥ ५ ॥
अभादुज्जयिनी नाम्ना, पुरी प्राकारवेष्टिता। श्रीजिनागार सागार-मुनि सद्धर्म मंडिता ॥ ६ ॥
चन्द्रावदात सत्कीर्त्तिश्चंद्रवन्मोदकर्तृ (कृन्नृ) णाम्। चन्द्रगुप्तिर्नृपस्तत्राऽ च कच्चारु गुणोदय ॥७॥

भट्टारक रत्नानदि कृत भद्रबाहु चरित्र २ परिच्छेद।

भट्टारक शुभचन्द्र ने अंग पन्नति नामक ग्रन्थ में भद्रबाहु को अगधर बतलाया है जिसका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी के आस पास का स्थिर हो सकता है। देखिये —

"अग्गिम अंगि सुभद्दो, जसभद्दो भद्दबाहु परमगणी। आयरिय परंपराइ, एवं सुदणाणमा वहदि॥४६॥

अंग पन्नति

प्रस्तुत भद्रबाहु को श्रुत केवली नहीं पर अष्टांग निमितधर कहा है।

"आयरिओ भद्दबाहू, अट्ठ गमहणिमित्तजाणयरो। णिण्णासइ कालवसे, सचरिमो हु णिमित्ति ओ होदि ॥८॥

इत्यादि प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि दुष्काल के समय भद्रबाहु अपने चन्द्रगुप्तादि शिष्यों को लेकर दक्षिण में गये थे। वे भद्रबाहु विक्रम की दूसरी शताब्दी के आसपास निमित्तवेत्ता एव ज्योतिष शास्त्र के विद्वान थे और उनका शिष्य चन्द्रगुप्त कोई गुप्तवशी राजा होगा,जैसे श्वेताम्बर समुदाय में हरिगुप्त एव देवगुप्त नाम के गुप्तवशी क्षत्रियों ने दीक्षा लेकर आचार्य हुये थे।

श्वेताम्बर ग्रथों में यह भी लिखा हुआ मिलता है कि आचार्य श्री वज्रस्वामि के समय बारह वर्षीय दुष्काल पड़ा था। आपका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी का था, अत. उसी समय दिगम्बर मतानुसार आचार्य भद्रबाहु ( द्वितीय ) चन्द्रगुप्तादि शिष्यों को लेकर दक्षिण की ओर गये हो तो यह बात संभव हो सकती है और इस कथन से श्रुतकेवली आर्य भद्रबाहु ( प्रथम ) अलग थे और निमितवेता दक्षिण की ओर जाने वाले आचार्य भद्रबाहु ( द्वितीय ) अलग थे।

उपरोक्त लेख का साराश यह है कि भद्रबाहु नाम के तीन आचार्य हुए और इन तीन भद्रबाहु के समय चार बार दुष्काल पड़े थे जैसे कि—

१—आचार्य भद्रबाहु—आपका समय वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दी और आप चतुर्दशपूर्वधर श्रुत-केवली के नाम से मशहूर थे।

२—आचार्य भद्रबाहु—आपका समय विक्रम की दूसरी शताब्दी और आपने उज्जैन के चन्द्रगुप्त को दीक्षा दे कर दक्षिण की ओर विहार करने वाले।

३—आचार्य भद्रबाहु—आपका समय दिगम्बरमतानुसार विक्रम की छठी शताब्दी का था और आपके वृद्ध भ्राता वराहमिहिर थे, इन भद्रबाहु ने भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रथ की रचना की थी।

A—प्रथम बारह वर्षीय दुष्काल—आर्य भद्रबाहु के समय में।

B—द्वितीय बारह वर्षीय दुकाल—मौर्य चन्द्रगुप्त के समय ( पं० मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराज के मतानुसार ) तथा आचार्य हेमचन्द्र सूरि कृत परिशिष्ट पर्वानुसार।

C—तृतीय बारह वर्षीय दुकाल—आर्य सुहस्ती के समय—वीर नि० की तीसरी शताब्दी।

३—तीसरे स्वप्न में छिद्र वाला चन्द्र को देखा ? फल—एक ही धर्म में अनेक मत पंथ फरिके समुदाये हो जायगे और कुमति कदाग्रह के वशीभूत होकर उत्सूत्र प्ररूपना करके भद्रिक जीवों के सगठन को छिन्न-भिन्न करके उनको अनेक विभागों में विभाजित कर देंगे ।

४—चौथे स्वप्न में भूतों को नाचते देखा ? फल—कुमति लोग मोह कर्म के वशीभूत होकर उच्छखलता-पूर्वक आप स्वय नाना प्रकार के वेश-विटम्बक होकर नृत्यकों की भांति नाचेंगे और अपने आश्रितों को नचावेंगे।

५—पाचवें स्वप्न में १२ फण वाला भुजग देखा ? फल-भविष्य निकट में १२ वर्षीय दुष्काल पड़ेगा कालिकसूत्र आदि अव्यवस्थित होगा, मुनियों का आचार शिथिल हो जायगा। शुद्ध क्रिया पात्र बहुत कम रहेंगे ।

६—छटे स्वप्न में देव विमान को गिरता हुआ देखा? फल—जगाचारण, विद्याचारण आदि लब्धिया निस्तेज हो जायगी । कितनेक वेश विटम्बक पेटार्थी ऐसे भी होंगे कि उन लब्धियों के नाम से या मंत्र, तंत्र आदि से जनता को लूट कर अपनी आजीविका चलावेंगे ।

७—सातवें स्वप्न में कचरे वाली भूमि में कमल उगा देखा? फल—उच्चवर्ण वाले धर्म का आदर कम करेंगे, प्राय' वैश्य वर्ण में ही धर्म रह जायगा, जिसमें भी सूत्र सिद्धान्त एवं तात्विक विषय पर अरुचि और हास्य, शृ गार वीर रस आदिक कौतुकी कथाओं पर रुचि होगी ।

८—आठवें स्वप्न में आगिया ( जुगनू ) का प्रकाश देखा ? फल—जैनधर्म का प्रकाश सूर्य के सदृश्य था, वह अब आगिया के प्रकाश तुल्य रहेगा । जैन धर्म की पूजा सत्कार बहुत कम रहेगा, और मिथ्यात्वियों का जोर बढेगा और वे ही पाखंड के जरिये पूजा-सत्कार पायेंगे ।

९—नवें स्वप्न में समुद्र को तीन दिशाओं में सूखा हुआ तथा दक्षिण दिशा में थोड़ा सा जल वह भी गदला हुआ देखा । फल—जिन कल्याणक आदि क्षेत्रों में धर्म की हानि होगी तथा दक्षिण दिशा में थोडा बहुत धर्म रहेगा, परन्तु उनमें भी मत, पथ, क्लेश, कदाग्रह बहुत होगा ।

१०—दसवें स्वप्ने में स्वर्ण के पात्र में क्षीर खाते हुए श्वान को देखा ? फल—उत्तम घरों की लक्ष्मी नीच घरों में जावेगी और उसका वे लोग प्राय दुरुपयोग ही करेंगे । उच्च खानदान के सरल और साहुकार तकलीफें उठावेगा और अधर्मी चोर लुचा बेइमान प्राय आराम में रहेगा —

११—ग्यारहवें स्वप्ने में बन्दर को हाथी पर चढ़ा हुआ देखा ? फल-दुर्जन लोग सुखी रहेंगे और सज्जन लोग दुखी होंगे । उत्तम कुल वश के राजाओं का राज अधर्मी लोगों के हाथों में जायगा और वे लोगों को आराम के बदले बहुत कष्ट पहुँचावेंगे, नाना प्रकार के दड-कर लेकर प्रजा को दुखी करेंगे ।

१२—बारहवें स्वप्ने में समुद्र को मर्यादा उलघन करते हुये देखा ? फल—अच्छे कुलीन लोग अपनी मर्यादा को छोड़ देंगे । पुत्र माता पिता एव देव गुरु की भक्ति न कर उनका अपमान करेगा, स्त्रिया अपनी मर्यादा को छोड़ कर स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करेंगी । शिष्य गुरु का विनय करना छोड़ देगा । समाज निर्नायक हो जायगा । एक गच्छ में बहुत आचार्य होंगे, अहमीन्द्र बन कर दूसरों की निन्दा करेंगे इत्यादि ।

१३—तेरहवें स्वप्ने में एक बड़े रथ में छोटे बछड़े को जुड़ा देखा ? फल—वृद्ध लोग समाज एवं धर्म रूपी रथ को चलाने में असमर्थ होंगे, परन्तु नवयुवक एवं बच्चा धर्म कार्य में अग्र भाग लेंगे जब वे धर्म एव समाज सुधार के कार्य करेंगें और वृद्ध लोग उसमें अनेक प्रकार के विघ्न करेंगे इत्यादि ।

प्रायश्चित्त आता है । इस पर भद्रबाहु समझ गये और कहा कि मैं दृष्टिवाद पढ़ाने से इन्कार नहीं करता पर इस समय मेरे महाप्राण योग चल रहा है मैं मगध में तो नहीं आ सकता हूँ यदि मेरे पास कोई भी आवें तो मैं उनको पढ़ा सकता हूँ । इस पर वे मुनि पुनः मगध में आये और श्रीसंघ को भद्रबाहु के वचन सुना दिये । इस पर स्थूलिभद्रादि ५०० साधु नैपाल में गये और भद्रबाहु से दृष्टिवाद का अभ्यास प्रारम्भ किया परन्तु भद्रबाहु को अपने योग के कारण समय बहुत कम मिलता था । जो समय मिलता था, में ५०० साधुओं को अध्ययन कराया करते थे । अतः स्वाभाविक है कि वाचना बहुत कम मिलती थी ।

वाचना कम मिलने के कारण बहुत से साधुओं ने सोचा कि दृष्टिवाद अंग तो एक महान् समुद्र सा है । इस प्रकार वाचना मिलने से यह कब समाप्त होगा ? अतः वे निराश हो पढ़ना बन्द कर वहाँ से चले गये केवल एक स्थूलिभद्र ही उनके पास रह कर जितना ज्ञान मिलता उसे पढ़ते रहे । इस प्रकार पढ़ते पढ़ते दशपूर्व की वाचना चलती थी तो एक दिन स्थूलिभद्र ने विनय के साथ भद्रबाहु से पूछा कि भगवन् अब दृष्टिवाद कितना शेष रहा है ? भद्रबाहु ने कहा स्थूलिभद्र अभी तो सरसव जितना पढ़ा है और मेरु जितना शेष रहा है । फिर भी स्थूलिभद्र हतोत्साही न होकर अभ्यास करते ही रहे आचार्य भद्रबाहु का योग समाप्त कर पुनः मगध की ओर पधार गये ।

स्थूलिभद्र की सात बहिनों ने भी दीक्षा ली थी । जब भद्रबाहु के साथ अपना भाई स्थूलिभद्र आ गया तो वे वन्दन करने को गईं । भद्रबाहु को वन्दन कर पूछा कि हमारा भाई मुनि स्थूलिभद्र कहाँ है हम उनको वन्दन करेंगी । भद्रबाहु ने इशारा किया कि उस तरफ है जाओ वन्दन कर आओ । जब साध्वियाँ वन्दन करने को स्थूलिभद्र के पास जाती हैं तो स्थूलिभद्र अपने ज्ञान का प्रभाव बतलाने को एक सिंह का रूप धारण कर बैठ जाता है । जब साध्वियाँ वहाँ आईं तो स्थूलिभद्र को न देख कर वहाँ एक सिंह को देखा तो पुनः भद्रबाहु के पास आईं और वहाँ का हाल कहा इस पर भद्रबाहु ने कहा जाओ अब तुम को स्थूलिभद्र मिल जायगा । साध्वियाँ पुनः गईं तो स्थूलिभद्र असली रूप में बैठा पाया फिर वन्दन कि और सिंह के विषय में पूछा तो स्थूलिभद्र ने कहा कि यह ज्ञान का ही प्रभाव था ।

भद्रबाहु ने सोचा कि स्थूलिभद्र को ज्ञान पाचन नहीं हुआ है । जब स्थूलिभद्र जैसे का ही यह हाल है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है भविष्य में इस ज्ञान का दुरुपयोग न हो ? अतः उन्होंने वाचना देनी बन्द कर दी । स्थूलिभद्र ने अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य के लिये प्रतिज्ञा कर ली कि कभी ऐसा न करूंगा । साथ में श्रीसंघ ने भी बहुत आग्रह किया कि यह पहिली भूल है इसको क्षमा कर आप स्थूलिभद्र को वाचना दिरावें । अतः संघ आग्रह से चार पूर्व मूल पढ़ाया एवं स्थूलिभद्र १० सार्थ ४ पूर्व मूल मिला कर १४ पूर्व के ज्ञाता हुये ।

भद्रबाहु के पूर्व प्रायः जैनश्रमण जंगलों में व नगर के नजदीक उद्यानों में रह कर आत्मकल्याण करते थे पर जब १२ वर्षीय महा भयंकर दुष्काल के अन्दर साधुओं का संयम से निर्वाह नहीं होता देख तो समय श्रीसंघ ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव देख कर उस विकट समय के लिए मार्यादा की होगी कि

× दृष्ट्वा सिंहं तु भीतास्ता सूरिमेत्य व्यजिज्ञपन् । ज्येष्ठार्यं अग्रसे सिंह स्तत्सोऽद्यापि तिष्ठति ॥
आचार्य हेमचन्द्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्व सर्ग ९

जब दुष्काल के बुरे असर से साधुओं का निर्वाह नहीं होता देखा तो अपने ५०० साधुओं को साथ कर आचार्य हेमचन्द्रसूरि के मत से समुद्रतट एवं नैपाल तथा आवश्यक चूर्णी व पट्टावलियों के मत से [ने]पाल की ओर चले गये। शेष साधु जो पूर्व में रहे थे उनमें से कई एकों ने तो अनशन व्रत करके स्वर्ग की ओर कूच किया और कई साधुओं ने ज्यों त्यों कर अकालरूपी अटवी का उल्लंघन किया। उस दुष्काल की भयंकरता ने जैनश्रमण संघ पर इतना बुरा प्रभाव डाला कि उनको आगम भी विस्मृत होगये। जब पुनः [सु]काल हुआ तो उन श्रमणों ने पाटलीपुत्र में एक सभा की * उसमें जिस २ मुनि को जो २ ज्ञान याद था [उ]सको एकत्र कर ११ अंगों की तो शृंखला ठीक कर ली परन्तु बारहवाँ अग किसी को भी याद नहीं रहा। [इ]स हालत में संघ ने सोचा कि बारहवाँ अग आचार्य भद्रबाहु को याद है। उनको बुला कर योग्य साधुओं [क]ो अध्ययन करवाना चाहिए नहीं तो बारहवा अग दृष्टिवाद विच्छेद हो जायगा। अत. भद्रबाहु को बुलाने के लिए मुनियों को नैपाल भेजा। वे मुनी नैपाल गये और भद्रबाहु के पास जा कर वन्दना की और श्री [सं]घ का संदेश सुना दिया इस पर भद्रबाहु ने कहा कि इस समय मैं महाप्राण योग कर रहा हूँ अत मैं चल नहीं सकता हूँ। मुनियों ने कहा कि यह शासन का भड़ा भारी काम है अत श्रीसंघ की आज्ञा को मान दे कर आपको वहां पधार कर मुनियों को बारहवें दृष्टिवादाग का अध्ययन करवाना चाहिये। ताकि आपके बाद दृष्टिवाद अग का विच्छेद होना रुक जाय, किन्तु इस पर भी भद्रबाहु ने लक्ष्य नहीं दिया।

उस हालत में मुनियों ने कहा कि आप जानते हो कि श्रीसघ की आज्ञा का भंग करे उसको क्या

---

* इतश्च तस्मिन्दुष्काले कराले कालरात्रिवत्। निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरं नीरनिधेर्ययौ ॥
अगुण्यमानं तु तदा साधूनां विस्मृतं श्रुतम्। अनभ्यसनतो नश्यत्यधीतं धीमतामपि ॥
सङ्घोऽथ पाटलीपुत्रे दुष्कालान्तेऽखिलोऽमिलत्। यदङ्गाध्ययनोद्देशाद्यासीद्यस्य तदाददे ॥
ततश्चैकादशाङ्गानि श्रीसङ्घोऽमेलयत्तदा। दृष्टिवादनिमित्तं च तस्थौ किंचिद्विचिन्तयन् ॥
नेपालदेशमार्गस्थं भद्रबाहुं च पूर्विणम्। ज्ञात्वा सङ्घः समाह्वातुं ततः प्रैषीन्मुनिद्वयम् ॥
गत्वा नत्वा मुनी तौ तमित्यूचाते कृताञ्जली। समदिशति वः सङ्घस्तत्रागमनहेतवे ॥
सोऽप्युवाच महाप्राणं ध्यानमारब्धमस्तियत्। साध्यं द्वादशभिर्वर्षैर्नागमिष्याम्यहं ततः ॥
महाप्राणे हि निष्पन्ने कार्ये कस्मिंश्चिदागते। सर्व पूर्वाणि गुण्यन्ते सुत्रार्थाभ्यां मुहूर्ततः ॥
तद्वचस्तौ मुनी गत्वा सङ्घस्याशंसतामथ। सङ्घोऽप्यपरमाहूयादिदेशेति मुनिद्वयम् ॥
गत्वा वाच्यः स आचार्यो यः श्रीसङ्घस्यशासनम्। न करोति भवेत्तस्य दण्डःक इतिशंसनः॥
सङ्घबाह्यः स कर्तव्य इति वक्तियदा स तु। तर्हि तद्दण्डयोग्योऽसीत्याचार्यो वाच्य उच्चकैः॥
ताभ्यां गत्वा तथैवोक्त आचार्योऽप्येवमूचिवान्। मैव करोतु भगवान्सङ्घः किं तु करोत्वदः ॥
मयि प्रसादं कुर्वाणः श्रीसङ्घः प्रहिणोत्विह। शिष्यान्मेधाविनस्तेभ्यः सप्त दास्यामि वाचनाः ॥
तत्रैकां वाचनां दास्ये भिक्षाचर्यात आगतः। तिसृषु कालवेलासु तिस्रोऽन्या वाचनास्तथा ॥

आचार्य हेमचन्द्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्व पृष्ट ८८

उवस्सय पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगराइं वा दुराय वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहार वा।

६—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए। दुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहार वा।

७—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सव्वराइए पईवे दिप्पेज्जा, नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए। दुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वत्थए नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

८—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए पिण्डए वा लोयए वा खीरं वा दहिं वा सप्पि वा नवणीए वा तेल्ले वा फाणियं वा पूवे वा सक्कुली वा सिहिरिणी वा ओखित्ताणि वा निक्खित्ताणि वा विइगिण्णाणि वा विप्पइण्णाणि वा नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए।

९—अह पुण एवं जाणेज्जा नो ओखित्ताइं ४ रासिकडाणि वा पुंजकडाणि वा भित्तिकडाणि वा कुलियकडाणि वा लंछियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा, कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा हेमन्तगिम्हासु वत्थए।

१०—अह पुण एवं जाणेज्जा—नो रासिकडाइं ४ कोट्ठाउत्ताणि वा पल्लाउत्ताणि वा मंचाउत्ताणि वा मालाउत्ताणि वा कुम्भिउत्ताणि वा करभिउत्ताणि वा ओलित्ताणि वा विलित्ताणि वा लंछियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा वासावासं वत्थए

इस मूलपाठ में लिखा है कि जिस गृहस्थों के मकान में धन धान्य गुड़ घृत दूध दही आदि वगैरह के बरतन इधर उधर बिखरा हुआ पड़ा हो। रात्रिभर अग्नि एवं दीपक जलता रहे ऐसे मकान में हाथ की रेखा सूझे वहाँ तक भी नहीं ठहरना पर दूसरे मकान की याचना करनी। यदि दूसरा मकान नहीं मिले और ग्रामानुग्राम ठहरने की जरूरत हो तो १-२ रात्रि ठहर सकते हैं इस से अधिक ठहर जाय तो प्रायश्चित्त जाति छेद तथा तप प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं। यदि पूर्वोक्त पदार्थों की साधारण व्यवस्था की हो तो एक मास तथा उन पदार्थों को कोठा वगैरह में रखकर ताला दिया हो और उस पर मुद्रा कर दी हो तो चतुर्मास करना कल्पता है। इन सब बातों को लक्ष्य में ली जाय तो यही मालूम होता है कि पूर्व जमाने में ग्राम नगरों में धर्मशाला वगैरह साधुओं के लिए ठहरने का स्थान नहीं थे। और वे प्रायः जंगलों में ही रहते थे।

साधुओं की अपेक्षा साध्वियों के लिए तो और भी विशेष प्रबन्ध किया है जैसे—

दुकाल के समय आप नगर मे पधार जावें तथा दीर्घ दुकाल के कारण मुनियों के दिल में भी शिथिलता आ गई हो। कुछ भी हो पर उस समय के पूर्व जैननिर्ग्रन्थ प्राय जंगल में ही रहते थे परन्तु उस दुकाल के कारण उन्होंने नगर में रहना स्वीकारकर लिया।

यही कारण है कि आचार्य भद्रबाहु को उस विषम समय की विकट परिस्थिति को लक्ष में रख कर छेद सूत्रों का निर्माण करना पड़ा था जैसे बृहत्कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र दशाश्रुतस्कन्धसूत्र और इन सूत्रों में अन्यान्य नियमों के साथ साधुओं को ठहरने के लिये मकान उपाश्रयों का भी विधान बतलाया है। व्यवहार सूत्र में मकान के दाता के घर का आहार पानी आदि कोई भी वस्तु लेना साधुओं को नहीं कल्पता है। इतना ही क्यों पर जिस दुकान में दूसरों के साथ मकानदाता का विभाग हो तो उस दूकान से भी कोई पदार्थ साधु नहीं ले सकेगा तथा मकान का मालिक साथ चल कर दूसरों से जरूरी वस्तु साधु को दिरावे वह भी साधु को लेना नहीं कल्पेगा मतलब यह कि मकान के दातार को साधुओं की ओर से किसी प्रकार की तकलीफ न होनी चाहिये ताकि दातार मकान देने में संकोच न करे इत्यादि।

बृहत्कल्पसूत्र में यह भी लिखा है कि यदि साधु-गृहस्थ के मकान में ठहरे तो यह मकान कैसा होना चाहिये ? जिस गृहस्थ का मकान में साधु ठहरे उस गृहस्थ को किसी प्रकार का नुकसान न होना चाहिये ? देखिये थोड़े से अवतरण यहा उद्धृत कर दिये जाते हैं यथा —

१—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सालीणि वा वीहीणि वा मुग्गाणि वा मासाणि वा तिलाणि वा कुलत्थाणि वा गोधुमाणि वा जवाणि वा जवजवाणि वा ओखिण्णाणि वा विक्खिण्णाणि वा विइगिण्णाणि वा विप्पइण्णाणि वा, नो कप्पई निग्गण्थाणा वा निग्गन्थीणा वा अहालन्दमवि वत्थए।

२—अह पुण एवं जाणेज्जा—नो ओखिण्णाइं नो विक्खिन्णाइं नो विइगिण्णाइं नो विप्पइण्णाइं, रासिकडाणि वा पुंजकडाणि वा भित्तिकडाणि वा कुलियकडाणि वा लञ्छियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा, कप्पइ निग्गन्थाणा वा निग्गन्थीण वा हेमन्तगिम्हासु वत्थए।

३—अह पुण एवं जाणेज्जा—नो रासिकडाइं नो पुंजकडाइं नो भित्तिकडाइं नो कुलियकडाइं, कोट्ठाउत्ताणि व पल्लाउत्ताणि वा मंचाउत्ताणि वा मालाउत्ताणि वा ओलित्ताणि वा निलित्ताणि वा लंछियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा, कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा वासवासं वत्थए।

४—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सुरावियडकुम्भे वा सोवरियवियडकुम्भे वा उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गथाणवा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए। हुरत्था य उवस्सय पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एव से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ पर एअरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओवा पर वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

५—उवस्सयस्स अन्तो वगडाय सीओदगवियडकुम्भे वा उसिणोदगावियडकुम्भे वा उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए। हुरत्था य

उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ।

६—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए । दुल्लहा य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ।

७—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए सव्वराइए पईवे दिप्पेज्जा, नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए । दुल्लहा य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वत्थए नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए । तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसेज्जा, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा ।

८—उवस्सयस्स अन्तो वगडाए पिण्डए वा लोयए वा खीरं वा दहिं वा सप्पिं वा नवणीए वा तेल्ले वा फाणियं वा पूवे वा सक्कुली वा सिहिरिणी वा ओखित्ताणि वा निक्खित्ताणि वा विइगिण्णाणि वा विप्पइण्णाणि वा नो कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा अहालन्दमवि वत्थए ।

९—अहपुण एवं जाणेज्जा नो ओखित्ताइं ४ रासिकडाणि वा पुंजकडाणि वा भित्तिकडाणि वा कुलियकडाणि वा लञ्छियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा, कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा हेमन्तगिम्हासु वत्थए ।

१०—अह पुण एवं जाणेज्जा—नो रासिकडाइं ४ कोट्ठाउत्ताणि वा पल्लाउत्ताणि वा मंचाउत्ताणि वा मालाउत्ताणि वा कुम्भिउत्ताणि वा करभिउत्ताणि वा ओलित्ताणि वा विलित्ताणि वा लंछियाणि वा मुद्दियाणि वा पिहियाणि वा कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा वासावासं वत्थए

वृह० कल्प सूत्र उ० २

इस मूलपाठ में लिखा है कि जिस गृहस्थों का मकान में धन धान्य गुड़ घृत दूध दही पानी वगैरह के बरतन इधर उधर बिखरा हुआ पड़ा हो । यातिमर अग्नि एवं दीपक जलता रहे ऐसे मकान में रात को रेना सूतें वहाँ तक भी नहीं ठहरना पर दूसरे मकान की याचना करनी । यदि दूसरा मकान नहीं मिले और कारणात् ठहरने की जरूरत हो तो १-२ रात्रि ठहर सकते हैं इस से अधिक ठहर जाय तो प्रायश्चित आदि तप तथा छेद प्रायश्चित के पात्र होते हैं । यदि पूर्वोक्त पदार्थों की साधारण व्यवस्था की हो तो एक माह तथा उन पदार्थों को कोठा वगैरह में रखकर ताला दिया हो और उन पर मुद्रा कर दी हो तो चर्तुमास करना कल्पता है । इन सब बातों के तात्पर्य से ही जान तो यही मालूम होता है कि पूर्व जमाने में प्रायः नगरों में धर्मशाला वगैरह साधुओं के लिए ठहरने का स्थान नहीं थे । और वे प्रायः जंगलों में ही रहते थे ।

साधुओं की अपेक्षा साध्वियों के लिए तो और भी विशेष प्रबन्ध किया है जैसे.—

१–नोकप्पई निग्गन्थीणं सागारिय अनिस्साए वत्थए २–नोकप्पई निग्गन्थीणं पुरिससागरिए उवस्सए वत्थए ३–कप्पइ निग्गन्थीणं पडिबद्धाए सेज्जाए वत्थए　　बृहत् कल्प सूत्र पृष्ठ २

इन अवतरणों से पाया जाता है कि जिस दुकाल की भीषण मार के कारण जैन श्रमणों ने ग्राम नगरों में रहने की शुरूआत की थी उस समय नगरों में साधुओं के लिए धर्मशालायें उपाश्रम बनाने का उपदेश भी नहीं देते थे। इसके लिए आचरांग सूत्र में सख्त मना है। यदि कोई गृहस्थ साधु के लिए मकान बना भी दे तो उस मकान में साधु को पैर रखने की भी मनाई है तो उपदेश देकर नया मकान बनाने की तो बात ही कहां रही ? यही कारण है कि साधुओं के लिए बनाये मकान में साधु ठहरे तो सावद्य क्रिया एवं वज्र क्रिया का विधान आचारांग सूत्र में बतलाया।

जैन श्रमणों के लिए उपाश्रय का होना तो प्राय: सम्राट सम्प्रति के समय से ही पाया जाता है। जब सम्प्रति ने नये नये मन्दिरों का निर्माण कराया था तो उसके एक विभाग मे श्रमणों के ठहरने को मकान भी बना दिये हों और साधुओं के लिये आम तौर से उपाश्रय एव वसतिवास की शुरूआत तो आचार्य जिनेश्वर सूरि से ही होने लगी थी जिसका समय विक्रम की ग्यारवी शताब्दी का है।

आचार्य भद्रबाहु ने तीन छेद ग्रथों के अलावे कई सूत्रों पर निर्युक्तियों की भी रचना की थी जैसे आवश्यकसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, आचारांगसूत्र, सूत्रकृतागसूत्र, सूर्य्यप्रज्ञप्तिसूत्र, ऋषिभाषितसूत्र, कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र और दशाश्रुतस्कन्द इनके अलावा उवसगाहरं स्वोत्रादि भी बनाये थे।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी जैन धर्म के महान् आचार्य हुये। आप जैनशासन में खूब ही विख्यात है। आप ४५ वर्ष गृहवास १७ वर्ष सामान्यव्रत १४ वर्ष युग प्रधान एवं ७६ वर्ष की आयु पाल कर वीर निर्वाणात् १७० वर्षे देवगति को प्राप्त हुये †

आचार्य भद्रबाहु तक तो वीर परम्परा में एक सौधर्मगच्छ ही चला आया था, पर आचार्य भद्रबाहु के चार शिष्य हुए उनसे पृथक २ गच्छ एव शाखाए का निकलना प्रारम्भ हुआ ? जसे कि—

आचार्य भद्रबाहु

| गोदास | अग्निदत्त | जिनदत्त | सोमदत्त |
|---|---|---|---|

गोदास नामक शिष्य से 'गोदास' नाम का गच्छा निकला और इस 'गोदास नामक गच्छ की चार शाखा हुई, यथा—तामलित्तिया, कोडिवरिसिया, पोंडवद्धणिया, दासीखाबडिया, बस। गच्छ और शाखा का श्रीगणेश यहाँ से ही होना शुरू हुआ है, हां इन गच्छों और शाखाओं के अन्दर तत्वभेद या क्रियाभेद नहीं था जैसे बारहवीं शताब्दी के गच्छों में हुआ था। केवल अपनी गुरु-परम्परा के कारण ही इस प्रकार के गण और शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ था और आगे चल कर वे एक एक गण शाखाओं में मिल कर पुन: एक रूप में भी हो गये, अत: उनका अस्तित्व चिरकाल नहीं रह सका।

आचार्य यशोभद्रसूरि के पट्ट पर दो आचार्य हुए थे पर आगे चल कर आचार्य भद्रबाहु के बाद फिर स्थुलिभद्र नाम के एक ही आचार्य हुए, जिनका चरित्र आगे के पृष्ट में दिया जायगा।

† वीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गतेसति। भद्रबाहुरपिस्वामीययौस्वर्गं समाधिना॥ परिशिष्ट पर्वपृष्ट ९०

## राज प्रकरण

यों तो जैन धर्म क्षत्रियों का ही धर्म है इस धर्म के वर्तमान कालापेक्षा चौवीस तीर्थंकर जिन्होंने क्षत्री वंश में अवतार लेकर समय २ पर जैन धर्म का उद्धार एवं प्रचार किया और जैनधर्म को विश्व व्यापी धर्म बना दिया। यही कारण है कि एक समय जैन धर्म राष्ट्रीय धर्म एवं विश्व धर्म कहलाता था। भूतकाल में जितने चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव, प्रति वासुदेव और माण्डलीक राजा महाराजा हुए वे प्रायः सबके सब जैन धर्मोपासक एवं जैन धर्म प्रचारक ही थे। इन सबका इतिहास कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' नामक ग्रन्थ में खूब विस्तार से लिखा था और वह ग्रन्थ मुद्रित भी हो चुका है। तथा संक्षिप्त रूप से इसी ग्रन्थ के आदि में कोष्टक के रूप में दे दिया गया है जिसको पढ़ने से पाठक स्वयं जान सकेंगे कि जैन धर्म कितना विशाल एवं जन कल्याण के लिये कितना उपयोगी है।

मैंने इस पुस्तक में भगवान पार्श्वनाथ के समय से ही इतिहास लिखना प्रारम्भ किया है। अतः उस समय के जैनराजाओं का इतिहास इस प्रकरण में लिखा जाना न्याय संगत है।

यह बात तो जगत्प्रसिद्ध है कि भगवान पार्श्वनाथ का जन्म काशी देश की बनारसी नगरी के राजा अश्वसेन की महारानी वामादेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था भगवान पार्श्वनाथ अपनी ३० वर्ष की आयु में संसार के भौतिक पदार्थों का त्याग कर जैन दीक्षा स्वीकार करली थी। राजा अश्वसेन के पार्श्व कुमार एक ही पुत्र था। जब राजा अश्वसेन का देहान्त हुआ तब आपके राज के लिये कोई भी उत्तराधिकारी नहीं था। काशी के नजदीक में समीपवर्ती मगध देश का राजा काशी को अपने अधिकार में करना चाहता था कहा है कि 'जोरू जमीन जोर की और जोर नहीं तो और की।' इस युक्ति के अनुसार मगध की लिच्छवी जाति के क्षत्री शिशुनाग नामक वीर पुरुष मगध से आकर काशी प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया और काशी पति बनकर वहाँ का राज करने लगा। जब राजा शिशुनाग का काशी पर राज होने से उनके राज ऐसा कोषागार भरपूर एवं बल बढ़ गया बाद मगध देश के हितचिन्तक अग्रेसर लोग शिशुनाग राजा के पास आकर प्रार्थना की कि आप तो यहाँ पधार गये हैं पर मगध में अराजकता छा गई है अतः आप मगध पधार कर पुनः वहाँ का राज अपने आधीन करके वहाँ की जनता को सुखी बनाने की कोशिश करें। राजा शिशुनाग ने उन लोगों की प्रार्थना स्वीकार कर के अपना काकवर्ण नामक पुत्र को काशी का राज संभला कर आप मगध में आये और वहाँ की व्यवस्था ठीक कर वहाँ का राज भी अपने आधीन कर लिया। राजा

शिशुनाग महान् शक्तिशाली एवं प्रतापी राजा हुआ है। जिसकी सन्तान शिशुनाग वंश के नाम से प्रसिद्ध हुई। वायुपुराण में लिखा है कि शिशुनागवंश के १० राजाओं ने ३३२ वर्ष तक राज किया है। जैन शास्त्रों में भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ई० स० पूर्व ८७७ वर्ष में हुआ लिखा है और ई० स० पूर्व ८४७ वर्ष में पार्श्वनाथ ने संसार का त्याग कर दीक्षा ली तथा ई० स० पूर्व ७७७ वर्ष में भगवान पार्श्वनाथ की मोक्ष हुई। उनके बाद १७८ वर्ष में भगवान महावीर का जन्म हुआ। भगवान महावीर ३० वर्ष गृहवास में रहने के बाद दीक्षा ली और ४२ वर्ष दीक्षा पाल कर अपना सर्वायु ७२ वर्ष पूर्ण कर ई० सं० पू० ५२७ वर्ष में मोक्ष गये। जिस दिन भगवान महावीर की मोक्ष हुई उसी दिन उज्जैन नगरी की गद्दी पर राजा पालक का राज अभिषेक हुआ और उसने ६० वर्ष तक राज किया। इधर उज्जैन में पालक राजा के राज का ६० वां वर्ष खत्म होता है उधर मगद की गद्दी पर नदवंशी राजा नदवर्धन का राज अभिषेक हुआ। इस हिसाब से भगवान महावीर मोक्ष होने के बाद मगद के सिंहासन पर ६० वर्ष शिशुनागवंश के राजा का राज रहा। वायु पुराण के लेखानुसार शिशुनाग वंश का राजकाल ३३३ वर्ष का माना जाय तो ई० सं० पूर्व ८०० वर्षे शिशुनाग वंश के राज का प्रारम्भ होता है और ई० स० पूर्व ४६७ वें वर्ष अर्थात् भगवान महावीर की मोक्ष के बाद ६ वर्षे शिशुनाग वंश के राज का अन्त हुआ माना जा सकता है। परन्तु श्रीमान त्रिभुवनदास लेहरचंदशाह ने अपना 'प्राचीन भारत वर्ष' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ में शिशुनाग वंश के राजाओं की वंशावली में शिशुनाग वंश की स्थापना का समय ई० सं० पूर्व ८०५ वर्ष का बतलाया है। तब उपरोक्त हिसाब से ई० स पूर्व ८०० वर्ष का आता है। पर यह दोनों प्रकार के समय अनुमान मात्र ही है अत इस पर इतना जोर नहीं दिया जाता है। पर खास विचारणीय विषय तो यह है कि मैंने जैन शास्त्रों के आधार पर भगवान महावीर के निर्वाण के बाद शिशुनाग वंश का राज ६० वर्ष रहना लिखा है तब शाह ने ५४ वर्ष लिखा है क्योंकि कोणिक ३० वर्ष (कोणिक का राज जो ३२ वर्ष रहा पर २ वर्ष महावीर की मौजूदगी में बाद ३० वर्ष ही रहा) १६ वर्ष उदाई और ८ वर्ष अनरुद्ध एवं मुंदा एवं ३०-१६-८ कुल ५४ वर्ष माना है इससे ६ वर्ष का अन्तर पड़ जाता है और यह अन्तर दूसरा नहीं पर राज कोणिक के राजकाल का है। कारण शाह ने कोणिक का राज ३२ वर्ष का माना है और कोणिक के राजगद्दी पर बैठने के बाद २ वर्ष में भगवान महावीर का निर्वाण होना बतलाया है। यह एक विचारणीय प्रश्न बन गया है। श्रीमान शाह लिखते हैं कि राजा कोणिक मगद के सिंहासन पर आरूढ़ होने के ४ वर्ष के बाद अपनी राजधानी चम्पा नगरी में ले गया जब भगवान महावीर की मोक्ष दूसरे वर्ष ही हो गई इससे राजा कोणिक चम्पा में राजधानी कायम करने के बाद भगवान महावीर को देखा भी नहीं होंगे। तब जैन ग्रंथों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि भगवान महावीर चम्पानगरी पधारे उस समय वहा पर राजा कोणिक राज्य करता था इतना ही क्यों पर राजा कुणिक ने भगवान महावीर का बड़ा ही शानदार स्वागत किया है इनके अलावा भगवान महावीर जब चम्पा नगरी पधारे उस समय कोणिक राजा की काली आदि दस रानियों ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी इत्यादि। प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि राजा कोणिक अपनी राजधानी चम्पा में ले जाने के बाद भी भगवान महावीर विद्यमान थे। और कई बार चम्पा नगरी में पधारे भी थे इससे कोणिक का राजकाल भगवान महावीर की मौजूदगी में दो वर्ष नहीं पर कुछ अधिक मानना होगा तथा भगवान महावीर के निर्वाण के बाद में कोणिक उदाई-अनुरुद्ध के ६० वर्ष मानना होगा—

को कहा कि मेरी लगाई हुई मुद्रा को तोड़ना नहीं और तुम सब भोजन कर पानी पी लो। पुत्रों ने सोचा कि पिताजी ने यह कैसा भोजन करने का आदेश दिया। बिना मुद्रा तोड़े कैसे भोजन करें ? इत्यादि विचार करते हुए निराश हो कमरा से निकल गए केवल एक श्रेणिक ही रह गया। श्रेणिक ने सोचा कि पिताजी ने जो कुछ किया, वह सोच समझ के ही किया होगा। अतः इसका कोई उपाय सोचना चाहिये। बस ! श्रेणिक ने उन वंश की छाबें को हाथ से पकड़ कर इधर उधर जोर से हिलाई कि अन्दर के खाएड खाजा टूट २ कर कपड़े पर गिरने लगे जिसको श्रेणिक ने खा लिया। इसके बाद पानी के घड़ों पर बारीक मलमल के कपड़े लगा दिये कि जिसकी सर्द से कपड़ा गीला हो जाये। उसको निचोड़ २ कर पानी भी पी लिया। बाद में सब भाई मिलकर राजा के पास गये। ९९ पुत्रों ने तो कहा कि हम तो सब भूखे प्यासे हैं। कारण, आपने हुक्म दिया था कि मुद्रा न तोड़ना और भोजन करके पानी पी लेना। मगर जब कि उन पर मुद्रा लगी हुई है तो हम किस तरह भोजन करे या पानी पी सकते हैं। इसके बाद श्रेणिक ने अपना हाल कहा, इस पर राजा प्रसन्न हुआ पर ऊपर से उपालम्भ्या दिया कि तुमने सब खाजे क्यो तोड़ डाले ?

२—एक समय राजा अपने पुत्रों को भोजन करवाने के लिये अच्छा २ भोजन थालों में पुरुसवाकर एक कमरे में रख कर सबको कहा—आओ भोजन करो। जब सब पुत्र भोजन करने को बैठे ही थे कि राजा ने ऐसे कुत्तों को छोड़ा कि जिन्हों की भूस भूसाट के सामने एक श्रेणिक के अलावा सब कुंवर डर कर भाग गये। तब श्रेणिक ने दूसरे भाइयों के थाल अपनी ओर खींच कर उनका भोजन कुत्तों को डालता गया और आप आपना भोजन करता गया। भोजन करने के बाद सब कुंवर मिल कर राजा के पास आये और अपना २ हाल कहा। राजा अन्दर से तो श्रेणिक पर प्रसन्न था किन्तु ऊपर से कहा श्रेणिक ने तो कुत्तों के साथ बेठ कर भोजन किया।

३—एक समय राजा ने महल में अच्छी २ वस्तुए रखवा कर कुंवरों को कहा कि जाओ जो चीज जिसके हाथ आवेगी मैं तुमको इनाम में दे दूंगा। कुंवर दौड़ कर धन, माल, वस्त्र और भूषण अपनी २ रुचि अनुसार ले आये पर श्रेणिक ने एक बजाने की भैरी जिसको बजाने से ६ मास का पुराना रोग चला जाय या ६ मास तक नया रोग न आवे। उस भैरी अर्थात् बजाने का बाजा उठा लाया

सब कुंवर राजा के पास आये। जो-जो पदार्थ जिस २ कुंवर ने लिये वो उन को इनायत कर दिये पर श्रेणिक से कहा कि क्या तू यह भैरी ही बजाया करेगा इत्यादि। कई प्रकार की परीक्षा कर राजा ने निर्णय कर लिया कि मेरे राज का अधिकारी होने योग्य एक श्रेणिक ही है। परन्तु वह इस देश में रहेगा तो न जाने ईर्षा के वशीभूत होकर दूसरा कुंवर इसके साथ कुछ कर नहीं डाले ? इस बात को सोच कर एक दिन राजा ने सब कुंवरों को बगीचे में एकत्र किये उसमें श्रेणिक का इस प्रकार अपमान किया कि वो बिना खबर दिये ही परदेश के लिए रवाना हो गया। श्रेणिक जैसा भाग्यशाली, बुद्धिमान था वैसा ही साहसी वीर भी था। वह निडर होकर अपने नगर से निकल गया और चलते २ दूर देश में जा रहा था तो रास्ते में एक धनानाम के सेठ का साथ हो गया। सेठ को देखते ही श्रेणिक ने कहा—मामाजी आप कहा जा

× भैरी का नाम भंभा अथवा बिंवा भी था और वह सब में सारभूत होने से श्रेणिक ने परोपकार को लक्ष में रख कर उसको ही लिया था और इस कारण आप का नाम भमसार एवं बिम्बसार हो गया।

रहे हैं, मैं भी आपके साथ चलूंगा । सेठ ने देखा नवयुवक दीखने में तो कोई अच्छा खानदानी दीखता है पर है कोई पागल कारण मैं इसकी माता का कब भाई था जिससे इसने मुझे मामा कहा ? पर खैर, मुसाफिरी में एक से दो होना अच्छा ही है । सेठ ने नाम पूछा तो उसने कहा कि मेरा नाम देवदत्त है और वे दोनों आगे बढ़े तो एक बड़ा नगर आया पर वहां उनको ठहरने को स्थान नहीं मिला और न किसी ने भी उनकी सार संभाल की । रात्री के समय देवदत्त ने कहा—कि मामाजी अपन कैसे अमुक नगर में आ गये ? मामाजी ने कहा—यह नगर तो बड़ा भारी है । और वह आगे बढ़े तो एक छोटा ग्राम आया वहां ठहरने को अच्छा मकान मिल गया लोगों ने उनकी अच्छी तरह संभाल की । पुनः रात्री में देवदत्त ने कहा—मामाजी यह कैसा ईश्वर नगर है । पुनः आगे चलने पर एक नदी आई जिसमें पानी बह रहा था तब देवदत्त ने अपने पहिने जूते निकाल कर पहन लिए । सेठ ने सोचा कि यह बड़ा ही मूर्ख । जब नदी पार करली तो जूतों को उतार कर हाथ में ले लिया । जब एक वृक्ष के नीचे बैठे तो देवदत्त ने छाता तान कर सिर पर लगा लिया । जब वहां से चलने लगे तो धूप में छाता बंद कर हाथ में ले लिया। आगे चल कर उन्होंने देखा कि लोग एक मुर्दे को लेकर श्मशान जा रहे हैं तो देवदत्त ने पूछा क्यों भाई यह जिन्दा है या मुर्दा । पुनः आगे चले तो एक औरत दौड़ रही थी जिसके पीछे २ लोग उसको पकड़ने को दौड़ रहे थे तो देवदत्त ने पूछा कि लोगो—औरत बंधी हुई है या खुली इत्यादि । सेठ ने इस प्रकार की बातें सुन कर अपने मन में निश्चय कर लिया कि यह तो सच ही पागल है । इससे तो इसका साथ छोड़ देना ही अच्छा है । चलते-चलते सेठजी का मेनाखद नगर नजदीक आया तो देवदत्त से कहा कि मुझे तो अपने घर जाना है अब तुम कहां ठहरोगे ? आज तो मैं बाजार में किसी दुकान पर ठहरूंगा कल आगे जाऊंगा । इसके बाद सेठजी अपने घर आ गये ।

सेठजी के एक मन्दा नाम की पुत्री थी जो अच्छी पढ़ी लिखी, चतुर और विदुषी थी । पिता घर आये तो रास्ते के कुशल क्षेम पूछा इसपर सेठजी ने कहा पुत्री और तो सब अच्छा था, पर, रास्ते में एक मूर्ख का साथ हो गया । उसने मुझे बड़ा ही हैरान कर दिया । मंदा ने कहा-पिता जी आपने उसको मूर्ख कैसे समझा ? पिता ने कहा कि बेटी सबसे पहले तो मिलते ही उसने मुझको मामा कहा बतलाओ मैं उसकी मां का कब भाई बना था बाद में सेठजी ने रास्ते की सब बातें अपनी बेटी से कह सुनाई इस पर बेटी ने कहा-पिताजी, वह मूर्ख नहीं बल्कि बड़ा ही चतुर बुद्धिशाली एवं विद्वान है । इस पर, सेठ जी ने कहा कि बेटी ! संसार में एक तूं दूसरा वह बस । दो ही विद्वान हैं पर तूं यह तो बतला कि उसमें क्या बुद्धिमता है ? इस पर मंदा ने जवाब दिया कि सुनिये पिता जी—

१—आप के साथ जो नवयुवक था उसकी माता पतिव्रता—सती है । उसके पति के अलावा पुरुष मात्र उसके भाई हैं अत आप उसके मामा ही हुए ।

२—बड़ा नगर होने पर भी मुसाफिर को आराम नहीं वह बड़ा नगर छोटा ग्राम से भी तुच्छ है ।

३—छोटा ग्राम होने पर भी सुविधा मिले तो वह बड़े नगर से भी अच्छा है ।

४—पानी में चलते समय कांटा कीला नजर नहीं आता है इस लिये जूता पहनना अच्छा है ।

५—जल में जूता पहनने से रोग होता है । कारण जल का परिवर्तन पीछा उसतम में समा जाने से रोग होता है ।

---

२५७(ख)—

६—वृक्ष पर पक्षी आदि बैठे रहते हैं। भ्रष्टा कर देने से पोशाक खराब हो जाती है इस लिए छात तान कर शरीर को आच्छादित किया होगा।

७—रास्ते में चलते समय शरीर पर छाता करने से शरीर को ताप और छाया दोनों के होने से सर्द-गरमी एवं जुखाम तथा सिर के रोग का भय रहता है।

८—मनुष्य ने मृत्यु से पहले कुछ जनोपयोगी एवं पुन्य कार्य किया हो तो वह मुर्दा भी जिन्दा है नहीं तो ऐसा मुर्दा, मुर्दा ही कहा जाता है।

९—जिस औरत के पीछे बाल-बच्चे हैं वह बंधी हुई कही जाती है।

बतलाये इसमें उसने क्या बुरा कहा। ये सब बातें बुद्धिमता की ही हैं। आप यह बतलाइये कि आज वह देवदत्त कहा पर ठहरा हैं। सेठ ने कहा बाजार में किसी दूकान पर होगा। नदा ने अपनी दासी के साथ थोड़ा सा गरम पानी एक मासा तेल भेज कर कहलाया कि आप इस तेल से मालिश कर रास्ते की थकावट को दूर कीजिये ? दासी बाजार में आई तो पसारी की दुकान पर एक मुसाफिर ठहरा हुआ था। दासी ने जरा सा तेल देकर नंदा का समाचार कह दिया। उस समय मुसाफिर के पास ५-६ मनुष्य और भीबैठे थे, उन्होंने दासी को कहा कि तूँ मासा भर तेल लाकर क्या मश्करी करने आई है ? मुसाफिर ने कहा नहीं तेल भेजने वाली बड़ी चतुर है। तेल थोड़ा नहीं, पर, गहरा है। पास में पड़ा हुआ एक गरम जल के लोटे में तेल डालने से वह तेल सर्वत्र फैल गया जिससे मुसाफिर ने मालिश कर थकावट को दूर किया। दासी ने पास की दुकान वाले को कहा—लो पैसा मुझे वस्तु दीजिये—

मठ माहैं योगी बसे, विच दीजे जीकार।
सहचारी को दीजिये, वस्तु रूप विचार॥

विचारा दुकानदार दासी के दोहे को सुनकर विचार में पड़ गया। कि क्या वस्तु दूँ ?

मुसाफिर ने कहा कि पौन पैसे की मजीठ और छदाम की मेंहदी दे दो क्यों कि म ठ के बीच जी जोड़ने से मजीठ होती है और इसकी सहचारिणी मेंहदी होती है। दूकानदार की दी हुई दोनों वस्तु लेकर दासी ने नदा के पास जाकर सब हाल कहा। तब नंदा ने अपने पिता से कहा कि ऐसा बुद्धिनिधान पुरुष रत्न आप के हाथ आ गया है, आप उसको हरगिज न जाने दें अपने यहां बुलालें। सेठजी सुबह जाकर मुसाफिर को अपने यहा बुला लाये। अब तो मुसाफिर और नन्दा के हमेशा विद्वत पूर्वक वार्तालाप होने लगी। देवदत्त ने अपना असली नाम आरम्भ से ही बदल दिया था और अब सेठजी की दूकान पर जाकर व्यापार की तरफ भी अपना ध्यान लगाना आरम्भ किया। सेठ जी की व्यापार कोठी ( दूकान ) बहुत बड़ी थी। उनकी एक कोठरी में उनके पूर्वजों की सींची हुई धूल ( तेजमतुरी ) का ढेर पड़ा हुआ था। सेठजी ने उस ढेर को फैंक देने की आज्ञा दे दी थी मगर देवदत्त ने उस ढेर को देखकर बाहर फेंकने की मनाई करदी। और कहा कि यह धूल मुझे दे दीजिये ? सेठजी ने धूल तो दे दी पर उसको मूर्ख समझा—

एक समय बैनातट नगर में विदेश से व्यापारी आये। उनको बहुत दिन हुए पर उनके माल खरीदने [illegible] नगर में कोई [illegible] ा। अत वे व्यापारी निराश होकर वापिस जाने की तैयारी की। साथ में [illegible] ों ने राजा [illegible] उचित समझ कर कुछ भेंट लेकर राजा के पास मिलने को गये। राजा ने

देखो इसी पुस्तक के पृष्ठ ७१५ पर )

# मौर्यवंशीराजा और मन्त्री चाणक्य

मौर्यवंशी राजाओं के पूर्व थोड़ा सा हाल महाबुद्धिशाली मंत्री चाणक्य का लिख दिया जाता है —

गोल्लदेश के अन्तर्गत चणक नामक गाँव में चणी नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जिसके चणेश्वरी नामक भार्या थी। वह दोनों परम्परा से ही जैन धर्म पालते थे। एक समय कई जैन मुनि उस ब्राह्मण चणक के घर आ ठहरे जो कि बड़े ही भविष्य वेत्ता थे। उसी समय चणेश्वरी को शुभ रत्न स एक पुत्र पैदा हुआ था जिसकी तो बड़ी खुशी थी, परन्तु साथ में उस नवजातपुत्र के जन्म से ही मुँह में दांत-बत्तीसी देख माता को आश्चर्य हुआ। उसने आये हुए मुनि से निर्णय के लिये प्रश्न किया। मुनि ने कहा यह तुम्हारा पुत्र इस शुभ लक्षण से एक बड़ा राजेश्वरी होगा। इस पर ब्राह्मण दम्पति को खुशी हुई, परन्तु साथ में धार्मिक दृष्टि से विचार किया कि राजेश्वरी बाद नरकेश्वरी होता है, अतः उन्होंने नवजात पुत्र के दांत घिस डाले और यह बात मुनिजी को भी सुना दी। मुनि ने कहा भवितव्यता बलवान होती है। दांत घिसने से अब तुम्हारा पुत्र किसी बड़े राजा का मंत्री होगा बस ब्राह्मणने बड़ा-उत्सव महोत्सव के साथ पुत्र का नाम चाणक्य दिया।

क्रमशः चाणक्य बड़ा हुआ। विद्याध्ययन भी खूब किया। जैन धर्म पर इसकी अटल श्रद्धा थी। जब युवक वय में पदार्पण किया तो एक कुलीन ब्राह्मण कन्या के साथ उसका लग्न कर दिया। एक समय चाणक्य की स्त्री के भाई का लग्न था, अतः वह अपने पीहर गई। वहाँ दूसरी भी इसकी बहिनें अपनी अपनी ससुराल से आई हुई थीं जिनके शरीर पर बढ़िया बढ़िया वस्त्राभूषण चमकते थे जिनको चाणक्य की स्त्री ने देख कर विचार करने लगी कि मैं हतभाग्य हूँ पुण्य हीन हूँ पूर्व जन्म में सुकृत नहीं किया कि इस भव में मैं भूषणहीन दरिद्री हूँ। उधर लोग भी उस निर्धन ब्राह्मणी की हँसी करने लगे, अतः वह लज्जा के मारी वहीं भी रह नहीं सकी। जब लग्न कार्य समाप्त हुआ तो वह लौट कर अपने ससुराल आई और सदैव उदास रहने लगी। इस पर चाणक्य ने अपनी प्यारी पत्नी से पूछा और उसने सब वृत्तान्त निवेदन किया जिसको सुन कर चाणक्य के दिल में धनोपार्जन करने की फिक्र पैदा हुई। जिसके उपाय सोचने पर उसको यह मालूम हुआ कि पाटलीपुत्र नगर का राजा नन्द ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देता है अतः मुझे पाटलीपुत्र जाना चाहिये। बस उसने ऐसा ही किया। पाटलीपुत्र आकर राजसभा में राजासन छोड़ कर दूसरे आसन पर बैठ गया। इतने में राजा नन्द अपने पुत्र के साथ राजसभा में आये। राजकुँवर ने अपने आसन पर एक ब्राह्मण को बैठा हुआ देख के राजा से कहा कि यह ब्राह्मण कौन है कि मेरे आसन पर बैठ गया है ! फिर भी चाणक्य तो बैठा ही रहा। इतने में एक दासी आई और उसने कहा ब्राह्मण देव पास में रखे हुवे दूसरे आसन पर बैठ जाइये। इस पर चाणक्य ने दूसरे आसन पर अपना कमण्डल रख दिया एवं फिर कहने पर तीसरे आसन पर दंड रख दिया चौथे पर जपमाला रख दी पांचवें पर जनेऊ रख दी, इस पर दासी ने कहा अरे यह ब्राह्मण कैसा धूर्त है कि कहने पर आसन नहीं छोड़ता है, परन्तु ज्यों ज्यों कहा जाता है त्यों त्यों अन्य

आसन को कब्जे करता जाता है। ऐसे ब्राह्मण का यहाँ क्या काम है ? ऐसा कह कर दासी ने एक लात मार कर उठाने लगी। इस पर चाणक्य कुपित होकर सभा के समक्ष ऐसी प्रतिज्ञा की कि मैं इस नन्द राजा को सकुटम्ब नाश कर डालूँगा। ऐसा कह कर चाणक्य वहाँ से रफूचक्कर हो गया और विचारने लगा कि मेरे जन्म समय ज्ञानवान मुनि ने जो भविष्य कहा था मुझे उसके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये; बस।

"अब चाणक्य राजगद्दी के योग्य मनुष्य की खोज में फिरने लगा। जिस गाँव में क्षत्रिय जाति के मयूर-पोषक लोग रहते थे, एक दिन चाणक्य परिव्राजक-वेश धारण करके भिक्षा के लिये उसी गाँव में चला गया। मयूर पोशकों का जो सरदार था उसकी एक लड़की गर्भवती थी अतएव उसे यह दोहदा ( दोहला ) उत्पन्न हुआ कि मैं चन्द्रमा को पी जाऊँ, परन्तु इस दोहले को पूर्ण करने के लिये कोई समर्थ न हुआ। उसी समय परिव्राजक-वेश में यहां पर चाणक्य आ पहुँचा। मयूर-पोशकों ने यानि उस गर्भवती कन्या के कुटुम्बियों ने चाणक्य से यह सब हाल कह सुनाया। चाणक्य बोला—"भाई यह दोहला तो पूर्ण करना बड़ा दुष्कर है तथापि तुम लोग मेरा कहना स्वीकार करो तो मैं इस दुष्कर दोहले को पूर्ण कर सकता हूँ।" मयूर-पोषकों ने कहा—'महाराज ! हमें आपकी आज्ञा स्वीकार है अब आप इस कन्या के प्राण बचावें' चाणक्य बोला—इस देवी के जो गर्भ है उसे उत्पन्न होते ही तुम मुझे दे दो तो मैं इसकी इच्छा अभी पूर्ण करदू, अन्यथा दोहला पूर्ण न होने से इसके गर्भ का भी विनाश होगा और इस देवी की भी खैर खूबी नहीं है। मयूर-पोशकों ने चाणक्य की बात स्वीकार करली। तब चाणक्य ने वहां पर सूखे हुये घास का एक

इतश्च गोल्ल विषये ग्रामे चणकनामनि, ब्राह्मणोऽभूच्चणी नामतद् भार्या च चाणेश्वरी ॥
बभूव जन्म प्रभृति श्रावकत्व चणश्चणी, ज्ञानिनो जैनमुनयः पर्यवात्सुश्चतद्गृहे ॥
अन्यदातुद्गतैर्दन्तैश्चणेश्वर्या सुतोऽजनि, जातं च तेभ्यः साधुभ्यस्तं नमोऽकारयच्चणी ॥
तंजातदन्तं जातं च मुनिभ्योऽकथयच्चणी ज्ञानिनोमुनयोऽप्यरव्यन् भावी राजैष बालकः ॥

परिशिष्ट पर्व स्वर्ग ८ श्लोक १९४ से १९७

मयूर-पोषक ग्रामेतस्मिंश्च चणिनन्दनः प्राविशत्कणभिक्षार्थ परिव्राजक वेषभृत् ।
मयूर-पोषक महत्तरस्य दुहितुस्तदा, अभूदापन्न सत्वायाश्चन्द्र पानाय दोहदः ॥
तत्कुटम्बेन कथितश्चाणक्यय स दोहदः पूरणीयः कथम सावितिपृष्टोऽवदच्चसः ।
यद्येतस्य जात मात्रं दारक मम दत्थ भोः तदाहं पूराम्येव शशभृत्पान दोहदम् ॥
अपूर्णे दोहदे गर्भनाशोऽस्यमाभवत्विति, तन्मतापितरौ तस्यामं साता वचनंहितत् ।
चाणक्योऽकारयच्चाथ सच्छिद्रं तृणमण्डपम्, पिधान धारिणं गुप्तं तदूर्ध्वेचामुचन्नरम् ॥
तस्याधोऽकारयामास स्थाल च पयोमाभृतम्, ऊर्जराकानिशीथे च तत्रेन्दुः प्रत्यबिम्ब्यत् ।
गुर्विण्यास्तत्र सङ्क्रान्तं पूर्णेन्दु तम दर्शयत्, पिबेत्युक्ता च सा पातुमारभे विकसन्मुखी ॥
सापाद्यथ यथा गुप्तपुरुषेण तथा तथा, न्यधीयत पिधानेन तच्छिद्रं तार्णमण्डपम् ।
पूरिते दोहदे चैवं समयेऽसूत सा सुतम् चन्द्रगुप्ताभिधानेन पितृभ्योसोऽभ्यधीयत ॥

परिशिष्ट पर्व स्वर्ग ८ श्लोक २३०—२३६

मण्डप बनवाया और उस मण्डप के बीच में एक छिद्र ऐसा रख दिया कि पूर्णिमा की मध्यरात्रि के समय जब चन्द्रमा ठीक उस मण्डप के ऊपर आवे और मण्डप के बीच में उसका प्रतिबिम्ब पड़ने लगे तब चाणक्य ने एक आदमी को ठीक समझा कर उस मण्डप के ऊपर चढ़ा दिया। चाणक्य ने मण्डप के अन्दर जहाँ पर चन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ता था, वहाँ पर दूध से भर कर एक थाली रखवी, जब बराबर पूर्णतया चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब उस दूध की थाली में पड़ने लगा तब चाणक्य ने उस गर्भवती देवी को बुलवा कर उसे चन्द्रमा से प्रतिबिम्बित उस दूध की थाली को दिखाया। उस समय दूध की थाली में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब साक्षात् चन्द्रमा के समान प्रतीत होता था। चाणक्य ने उस देवी को पीने की अनुमति देदी। वह बड़े चाव से उस थाली के मुँह लगाकर पीने लगी। जैसे जैसे वह थाली के दूध को पीती गई वैसे २ चाणक्य के संकेत करने पर मण्डप पर चढ़ा हुआ मनुष्य मण्डप के छिद्र को ऐसी खूबी से आच्छादित करता रहा कि दूध की थाली में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी दूध के साथ-साथ घटता हुआ मालूम होने लगा। जिससे कि उस गर्भवती देवी को साक्षात् चन्द्रमा पीने का विश्वास होगया। इस प्रकार चाणक्य ने अपनी चतुरता से दोहला पूर्ण करवा दिया। तत्पश्चात् चाणक्य वहां से चला गया और द्रव्य के लिए किसी धातुवादी की खोज में भ्रमण कर रहा था। इधर दोहला पूर्ण होने पर नवमास-बाद उस देवी की कुक्ष से चन्द्रमा के समान सौन्दर्य को धारण करने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। उसकी माता को चन्द्रमा का पान करने का दोहला उत्पन्न हुआ था इसीलिये उस बालक का नाम "चन्द्रगुप्त रखा गया।

"एक समय की बात है, जब कि चन्द्रगुप्त अन्य लड़कों के साथ खेल रहा था, उन्होंने एक खेल खेलना शुरू किया। इस खेल को "राजनीति खेल" कहते थे। चन्द्रगुप्त स्वयं राजा बना अन्यों को उसने अमात्य आदि के पद दिये। कुछ को न्यायाधीश बनाया गया। कईयों को राजा के गुप्तचर का अधिकारी बनाया। कई चोर और डाकू बनाये गये। इस प्रकार जब कुछ निश्चित करके वह न्याय के लिये बैठ गया। गवाहियाँ सुनाई गई। जब देखा कि दोष अच्छी तरह सिद्ध हो गया, तब न्यायाधीशों के फैसले के अनुसार राजा ने कचहरी आफीसरों को आज्ञा दी कि अभियुक्तों के हाथ-पैर काट डाले जावें। जब उन्होंने कहा—"देव हमारे पास कुल्हाड़े नहीं हैं, तब उसने उत्तर दिया—'यह राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा है कि इनके हाथ-पैर काट डाले जावें यदि तुम्हारे पास कुल्हाड़े नहीं हैं तो लकड़ी का डण्डा बनाओ और उसके आगे बकरी के सींग लगा कर कुल्हाड़ा बनाओ'। उन्होंने वैसा ही किया। कुल्हाड़ा बन गया तब हाथ-पैर काट डाले गये। चन्द्रगुप्त ने हुक्म दिया 'फिर जुड़ जावें' हाथ-पैर। बस हाथ-पैर फिर जुड़ गये"।

वास्तव में बचपन के ही संस्कार भविष्य में भाग्य निर्माता होते हैं। होनहार बालकों की प्रभा उनके बड़े होने के पूर्व ही सूर्य-रेखाओं के समान फैलने लगती हैं। वे इसी अवस्था में खेले हुये खेल—हंसी हंसी में किये गये संकल्प—बड़े होने पर कार्य रूप में परिणित कर दिखाते हैं एक बार "विलियम" से किसी ने पूछा जब कि वह निरा बालक था कि "ये ग्रासफ्लीज क्या कहती हैं? बालक विलियम ने

१—इस वर्णन को अस्वाभाविक नहीं समझना चाहिये। यहां लेखक ने अपनी लेखन चातुरी दिखाई है। बालकों के खेल भी बालकों के जैसे ही होना चाहिये। बालक चन्द्रगुप्त की अन्धा-भावना होगी ही चाहे ये भी और हुई भी नहीं। बालक बहुत बार अपने खेलों में माता और पिता बना करते हैं। यह स्वाभाविक वर्णन है। (सैकिल ... १-२)।

उत्तर दिया कि 'क्लोक सेज दी टन, टन, टन ऐण्ड विलिंगटन भी दी लार्ड औफ लण्डन" ( घड़ी कहती है टन, टन, टन और लण्डन का लार्ड बनेगा विलिंगटन ) यह भविष्यवाणी सत्य निकली। बालकों के हथियारों की अड़चन डालने पर बालक चन्द्रगुप्त का यह कहना कि "यह राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा है" कितना उत्तेजक, आज्ञाकारक, आत्मविश्वासक तथा मनोबल को प्रकट करने वाला है। चन्द्रगुप्त ने खेल खेल में बतला दिया कि 'संसार को चन्द्रगुप्त की आज्ञा उलङ्घन करने का साहस न होगा। वह अत्याचारियों का संहारक और अपने पांव पर खड़ा होने वाला असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाला स्वावलम्बी वीर होगा। अबोध शिशु चन्द्रगुप्त के इस चमत्कारिक प्रभावोत्पादक क्रीड़ा को उसके बाल्य-सखा क्या पर खास समझदार ही समझ सकते थे। स्वयं चन्द्रगुप्त भी कस्तूरी वाले हिरन की भांति अपने जौहर से अनभिज्ञ या सिंहनी का बच्चा भेड बकरियों में खेल रहा था।

ऐसी ही एक मिलती-जुलती चन्द्रगुप्त की बाल्य-क्रीड़ा का उल्लेख आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने परिशिष्ट पर्व में किया है यथा —"चन्द्रगुप्त अपने पड़ोस के लड़कों के साथ गांव से बाहर जाकर क्रिडाएं करता। किसी लड़के को हाथी, किसी को घोड़ा बनाता और उनके ऊपर स्वयं चढ़ कर राजा बन कर अन्य लड़कों को शिक्षा देता तथा राजा के समान प्रसन्न होकर किसी को गांव आदि इनाम में देता एक दिन उन बालकों के क्रीडा करते समय कहीं से भ्रमण करता हुआ चाणक्य आ निकला। चंद्रगुप्त की उक्त चेष्टाएं देख कर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, वह परीक्षा लेने के तौर पर बोला—"महाराज! कुछ मुझ गरीब ब्राह्मण को भी दान देना चाहिये।"

चन्द्रगुप्त ने बाल्य-सुलभ किन्तु वीरोचित शब्दों में कहा—"ब्रह्मदेव! ये गाँव की गायें चर रही हैं इनमें से जितनी तुझे आवश्यक हो ले जा, मैं तुझे सहर्ष देता हूँ।"

चाणक्य मुस्कराकर बोला —"गायें कैसे ले जाऊँ? इनके मालकों से भय लगता है वे मारेंगे तो?

बालक चन्द्रगुप्त ने सगर्व उत्तर दिया—मैं तुझे सहर्ष दान कर रहा हूँ निर्भय होकर इन्हें गृहण करले, मेरे होते हुए तुझे भय कैसा क्या नहीं जानता है कि 'वीरभोग्या-वसुन्धरा?

इस प्रकार उस बालक का धैर्य देखकर चाणक्य विस्मित होकर दूसरे बालकों से पूछने लगा कि यह किसका पुत्र रत्न है? लड़कों ने उत्तर दिया, महाराज! यह तो एक परिव्राजक का पुत्र है क्योंकि इसके नाना ने जब यह अपनी माता के गर्भ में ही था तब से ही इसे एक परिव्राजक को दे दिया है।" चाणक्य यह उत्तर सुनकर समझ गया कि यह तो वही बालक है जिसके गर्भ का मैंने दोहलापूर्ण किया था। चाणक्य बोला "अरे भाई! जिस परिव्राजक को तेरे माता पिता ने तुझे समर्पण कर दिया है वह परिव्राजक मैं ही हूँ, और राजाओं की तू यह नकल क्या करता है। चल मेरे साथ मैं तुझे असली राज्य देकर राजा बनाऊ।" राज्य लेने की इच्छा से चन्द्रगुप्त भी चाणक्य की अंगुली पकड़कर उसके साथ चल पड़ा"।

चाणक्य अबोध चन्द्रगुप्त के साथ उसके घर गया और कुछ भेट देकर कहा —"मैं तुम्हारे पुत्र को सब कुछ सिखाऊंगा, उसे मेरे साथ कर दो।" तदनुसार कर दिया अत. चाणक्य चद्रगुप्त को अपने साथ ले गया, और उसे बहुत शीघ्र युद्ध-विद्या में निपुण कर दिया, जब चन्द्रगुप्त सैन्य सचालन योग्य हो गया, तो चाणक्य ने जो रसायन सिद्धि द्वारा द्रव्य प्राप्त किया था, उस धन से कुछ सैन्य इकट्ठी की गई, और वह चंद्रगुप्त के नेतृत्व में विजय यात्रा को निकली। साहस तो महान् था किन्तु मुट्ठीभर अशिक्षित सैनिक सबल राष्ट्रों के

समय क्या जाकर ठहरते ! अन्त में युद्ध-क्षेत्र का परित्याग करना ही चाणक्य की सम्मति से उचित समझा गया और अब चन्द्रगुप्त और चाणक्य गुप्त वेष में भ्रमण करने लगे। अनेक बार शत्रुओं के गुप्तचरों से बच निकलने का साहस किया था जिसको आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने परिशिष्ट पर्व के आठवां सर्ग में खूब विस्तार से मनोरञ्जक उल्लेख किया है किन्तु विस्तार-भय से यहां पर नहीं लिख कर मैं पाठकों को सलाह देता हूँ कि पूर्वोक्त ग्रन्थ स पढ़ लें। यहाँ तो सिर्फ एक उदाहरण का उल्लेख कर दिया जाता है जैसे-

चाणक्य और चन्द्रगुप्त जब गुप्त-वेष में भ्रमण कर रहे थे तब एक रोज अकस्मात किसी गाँव में एक बुढ़िया के घर जा पहुँचे। बुढ़िया ने उस समय खिचड़ी पकाई हुई थी और गरम गरम थाली में निकाल कर अपने बच्चों को दे रही थी, उसमें एक लड़के ने कुछ अधिक भूखा और उतावला होने के कारण—जल्दी खाने के लिये खिचड़ी के बीच में हाथ मारा, खिचड़ी बहुत गरम थी, इसलिये उसका हाथ जल गया और हाथ जलने से लड़का दुखे मारकर रोने लगा। लड़के की यह चेष्टा देखकर बुढ़िया बोली "अरे मूर्ख ! तू भी चन्द्रगुप्त और चाणक्य के समान अबोध ही रहा !"

अपना नाम सुनकर चन्द्रगुप्त और चाणक्य उस बुढ़िया के समीप चले गये, और पूछा—मैया! यह चन्द्रगुप्त और चाणक्य कौन है? और इस लड़के के हाथ जलने पर उसके दृष्टान्त से तुम्हारा क्या प्रयोजन है!" बुढ़िया बोली ! चन्द्रगुप्त भी एक राजपूत है जो सम्राट् बनने की अभिलाषा रखता है, उसने सीमाप्रान्त के विजय किये बगैर ही मुख्य राजधानी पर आक्रमण कर दिया, इसीसे लोग उसके विरुद्ध उठ खड़े हुये और सीमाप्रान्तों से आक्रमण करके उसको बीचमें घेर लिया बगैर सीमाप्रान्तों के विजय किये राजधानी पर या बीच के शहरों पर—आक्रमण कर देना यही उसकी मूर्खता थी उसी तरह इस लड़के ने भी आस पास की ठंडी खिचड़ी छोड़कर गरमा-गरम खिचड़ी में हाथ मारा तभी इसका हाथ जल गया।

बुढ़िया की भेद-भरी बातों से चाणक्य और चन्द्रगुप्त की आँखें खुली वे मन ही मन में उस बुढ़िया को प्रणाम कर के वहां से रवाना हुये और बहुत शीघ्र एक विशाल सैन्य संगठित करके पहली बार उन्होंने सीमाप्रान्त को अधीन किया और वहां से ग्रामों और नगरों को विजय करते हुए उनके स्वामियों को अपने पक्ष में लेते हुए धीरे-धीरे पाटलिपुत्र तक बढ़ आये और राजा नन्द (जो उस समय का सबसे बलशाली नरेश था)—पर आक्रमण कर दिया। राजा नन्द को चन्द्रगुप्त के रण-कौशल के सामने घुटने टेकने पड़े और जब वह चारों ओर से हताश हो गया तब बुद्धिमान चन्द्रगुप्त और चाणक्य की स्वीकृति से राज्य छोड़ कर कहीं चला गया। जाते समय राजा नन्द की एक युवती कन्या चंद्रगुप्त पर आसक्त हो गई थी, अतएव उसे चंद्रगुप्त को पति करने की खुद अनुमति राजा नंद ने दे दी ऐसा आचार्य हेमचन्द्र सूरि कृत परिशिष्टपर्व में उल्लेख मिलता है।

संक्षेप में यही चंद्रगुप्त का जीवन-वृतान्त है। मगध का राज्य प्राप्त कर लेने पर चंद्रगुप्त ने यूनानी आक्रमणकर्त्ता सेल्युकस को कैसी गहरी हार दी फिर काबुल कंधार, हिरात जैसे प्रदेश लेकर और उसकी कन्या के साथ ब्याह कर संधि करली है।

चन्द्रगुप्त के समय में भारत की सभ्यता किस प्रकार की थी जिसके विषय में कई एक प्रमाण उपलब्ध होते हैं परन्तु भारतसम्राट चन्द्रगुप्त की राजसभा में यूनान का सेल्युकस जो सम्राट के हाथों से पराजय हो सन्धि करली थी जिसका हाल ऊपर लिखा है, उसका दूत मेगास्थनीज भारत में आया और

चन्द्रगुप्त की राजसभा में रहता था उसने जो अपनी आखों से देखकर जो हाल लिखा है उसको यहा उद्धृत कर दिया जाता है।

चन्द्रगुप्त की राजधानी—अर्थात् पाटलिपुत्र नगर सोन और गङ्गा नदियों के संगम पर बसा हुआ था। आज कल इसके स्थान पर पटना और बांकीपुर नाम के शहर बसे हुये हैं। प्राचीन पाटलिपुत्र भी आजकल की तरह लम्बा बसा हुआ था उसकी लम्बाई उन दिनों में ९ मील और चौड़ाई १॥ मील थी उसके चारों ओर काष्ट की बनी हुई एक दीवार थी, जिसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्ज थे। दीवार के चारों ओर एक गहरी परिखा या खाई थी, जिसमें सोन नदी का पानी भरा रहता था। राजधानी में चन्द्रगुप्त के महल अधिकतर काष्ट के बने हुये थे, पर शान शौकत में वे फारस के राजाओं के महलों से भी बढ़कर थे।

चन्द्रगुप्त का दरबार—बहुमूल्य वस्तुओं से सुसज्जित था। वहाँ रखे हुए सोने चाँदी के बर्तन और खिलौने जड़ाऊ मेज् और कुर्सियाँ तथा कीनखाब के कपड़े देखने वालों की आख में चकाचौंध पैदा करते थे। जब कभी कभी चन्द्रगुप्त बड़े बड़े अवसरों पर राजमहल के बाहर निकलता था तो वह सोने की पालकी पर चढ़ता था। उसकी पालकी मोती की मालाओं से सजी रहती थी। जब उसे थोड़ी ही दूर जाना होता था तो वह घोड़े पर चढ़कर जाता था, पर लम्बे सफ़र में वह सुनहरी भूलों पर सजे हुये हाथी पर चढ़ता था। जिस तरह आजकल बहुत से राजाओं और नवाबों के दरबार मे मुर्गी, बटेर, गढ़े और सॉड़ वगैरह की लड़ाई में दिलचस्पी ली जाती है, उसी तरह चन्द्रगुप्त भी जानवरों की लडाई से अपना मनोरञ्जन करता था। पहलवानों के परस्पर युद्ध भी उसके दरबार में होते थे। जिस तरह आजकल घोड़ों की दौड होती है और उसमें हजारों की बाजी लगाई जाती है उसी तरह चन्द्रगुप्त के समय में भी बैल दौड़ाये जाते थे और वह उस दौड को बड़ी रुचि से देखता था आजकल की तरह उस समय भी लोग दौड़ में बाज़ी लगाते थे। दौडने की जगह हजार गज् के घेरे में रहती थी और एक घोडा तथा उसके उधर उधर दो बैल एक रथ को लेकर दौड़ते थे१ •• • •••"

चन्द्रगुप्त की शासन-पद्धति—मगास्थनीज् तथा कौटिलीय-अर्थशास्त्र से चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक-व्यवस्था और शासन पद्धति का जो पता लगता है उसे अत्यन्त संक्षेप में श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम० ए० ने 'अशोक के धर्मलेख" नामक पुस्तक के तृतीय अध्याय में दिया है उसे यहाँ पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत किया जाता है:—

सैनिक व्यवस्था—चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना प्राचीन प्रथा के अनुसार चतुरगणी थी, किन्तु उसमें जल सेना की एक विशेषता थी। चन्द्रगुप्त की सेना में हाथी ९०००, रथ ८०००, घोड़े ३००००, और पैदल सिपाही ६०००००, थे। हरएक रथ पर सारथी के अलावा दो धनुर्धर और हर हाथी पर महावत को छोड़कर तीन धनुर्धर बैठते थे। इस तरह कुल सैनिकों की सख्या ६००००० पैदल, ३००००, घुड़सवार ३६००० गजारोही और २४००० रथी, अर्थात् कुल मिलाकर ७२०००० थी। इन सबों को राज-खजाने से वेतन नियमित रूप से मिला करता था।

सैनिक मण्डल—सेना का शासन एक मण्डल के अधीन था। इस मण्डल में ३० सभासद थे, जो ६ विभाग में विभक्त थे। प्रत्येक विभाग में पाँच सभासद होते थे। प्रथम विभाग में पाँच सभासद होते

थे प्रथम विभाग जलसेनापति के सहयोग से जलसेना का शासन करता था। द्वितीय विभाग के अधिकार में सैन्य-सामग्री और रसद वगैरह रहता था। रण बाजा बजाने वाले, साइस घसियारे आदि का प्रबन्ध भी इसी विभाग से होता था। तृतीय विभाग पैदल सेना का शासन करता था। चतुर्थ विभाग के अधिकार में सवार सेना का प्रबन्ध था। पंचम विभाग रथसेना की देख भाल करता था और षष्ठ विभाग हस्तिसैन्य का प्रबन्ध करता था। चतुरंगणी सेना तो बहुत प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। पर जल-सेना-विभाग और सैन्य-सामग्री-विभाग चन्द्रगुप्त की प्रतिभा के परिणाम ही थे।

सेना की भर्ती—चाणक्य के० अनुसार पैदल सेना के सिपाही ६ प्रकार से भर्ती किये जाते थे। यथा —'मौल' जो बाप-दादों के समय से राजसेना में भर्ती होते चले आये थे, 'भृत' जो किराये पर लड़ने के लिये भर्ती किये जाते थे 'श्रेणी' जो सहयोग के सिद्धान्तों पर एक साथ रहने वाली कुछ योद्धा जातियों में से भर्ती किये जाते थे, 'मित्र' जो मित्र देशों में से भर्ती किये जाते थे, 'अमित्र' जो शत्रु देशों में से भर्ती किये जाते थे और 'अटवी' जो जंगली जातियों में से भर्ती किये जाते थे।

सेना के अस्त्र-शस्त्र—कौटिलीय अर्थ-शास्त्र में 'स्थिर-यन्त्र' ( जो एक से दूसरी जगह न ले जा सकें ) 'हस्तमुख' ( जिनका सिर हल की तरह हो ) 'धनुष, बाण, खड्ग क्षुर-कल्प' ( जो छुरे के समान हो ) आदि अनेक अस्त्र-शस्त्रों के नाम मिलते हैं। इनके भी अलग अलग ६ बहुत से भेद थे।

दुर्ग के किले—चाणक्य के० अनुसार उन दिनों दुर्ग कई प्रकार के होते थे और चारों दिशाओं में बनाये जाते थे निम्न लिखित प्रकार के दुर्गों का पता चलता है —'औदक' जो द्वीप की तरह चारों ओर पानी से घिरा रहता था। 'पार्वत' जो पर्वत की चट्टानों पर बनाया जाता था। 'धान्वन' जो रेगिस्तान या ऊसर जमीन में बनाया जाता था। इनके अलावा बहुत से छोटे छोटे किले गांवों के बीचों बीच बनाये जाते थे। जो किला ८०० गांवों के केन्द्र में बनाया जाता था उसे 'स्थानीय', जो किला ४०० गांवों के बीचोंबीच बनाया जाता था उसे 'द्रोणमुख', जो किला २०० गांवों के मध्य में बनाया जाता था उसे 'खार्वटिक' और जो किला १० गांवों के केन्द्र में रहता था उसे 'संग्रहण' कहते थे।

नगर शासक-मण्डल—जिस प्रकार सेना का प्रबन्ध एक सैनिक मण्डल के अधीन था उसी प्रकार नगर का शासन भी एक दूसरे मण्डल के हाथ में था। यह मण्डल एक प्रकार से आजकल की 'म्यूनिसिपैलिटी' का काम करता था, और सैनिक-मण्डल की तरह ६ विभागों में बटा हुआ था। इस मण्डल में भी ३० सभासद थे और प्रत्येक विभाग चार सभासदों के आधीन था। इन विभागों का वर्णन मेगास्थनीज ने निम्न लिखित प्रकार से किया है —

प्रथम विभाग—का कर्त्तव्य शिल्पकलाओं, उद्योग-धन्धों और कारीगरों की देखभाल करना था। यह विभाग कारीगरों की मजदूरी की दर भी निश्चित करता था। कारखाने वालों के कच्चे माल की देख भाल का काम भी इसी विभाग का काम था। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि वहाँ के लोग घटिया या खराब सामान तो काम में नहीं लेते। कारीगर राज्य के विशेष समझे जाते थे। इसलिये जो कोई उनका अंग भंग करके उन्हें निकम्मा बनाता था उसे प्राण दण्ड दिया जाता था।

चन्द्रगुप्त की राजसभा में रहता था उसने जो अपनी आखों से देखकर जो हाल लिखा है उसको यहा उद्धृत कर दिया जाता है।

चन्द्रगुप्त की राजधानी—अर्थात् पाटलिपुत्र नगर सोन और गङ्गा नदियों के सगम पर वसा हुआ था। आज कल इसके स्थान पर पटना और बांकीपुर नाम के शहर बसे हुये हैं। प्राचीन पाटलिपुत्र भी आजकल की तरह लम्बा बसा हुआ था उसकी लम्बाई उन दिनों में ९ मील और चौड़ाई १॥ मील थी उसके चारों ओर काष्ट की बनी हुई एक दीवार थी, जिसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्ज थे। दीवार के चारों ओर एक गहरी परिखा या खाई थी, जिसमें सोन नदी का पानी भरा रहता था। राजधानी में चन्द्रगुप्त के महल अधिकतर काष्ट के बने हुये थे, पर शान शौकत में वे फारस के राजाओं के महलों से भी बढ़कर थे।

चन्द्रगुप्त का दरबार—बहुमूल्य वस्तुओं से सुसज्जित था। वहाँ रखे हुए सोने चाँदी के बर्तन और खिलौने जड़ाऊ मेज् और कुर्सियाँ तथा कीनखाब के कपड़े देखने वालों की आख में चकाचौंध पैदा करते थे। जब कभी कभी चन्द्रगुप्त बड़े बड़े अवसरों पर राजमहल के बाहर निकलता था तो वह सोने की पालकी पर चढ़ता था। उसकी पालकी मोती की मालाओं से सजी रहती थी। जब उसे थोडी ही दूर जाना होता था तो वह घोड़े पर चढ़कर जाता था, पर लम्बे सफर में वह सुनहरी झूलों पर सजे हुये हाथी पर चढ़ता था। जिस तरह आजकल बहुत से राजाओं और नवाबों के दरबार में मुर्गी, बटेर, गढ़े और सॉड़ वगैरह की लड़ाई में दिलचस्पी ली जाती है, उसी तरह चन्द्रगुप्त भी जानवरों की लडाई से अपना मनोरञ्जन करता था। पहलवानों के परस्पर युद्ध भी उसके दरबार में होते थे। जिस तरह आजकल घोड़ों की दौड होती है और उसमें हजारों की बाजी लगाई जाती है उसी तरह चन्द्रगुप्त के समय में भी बैल दौडाये जाते थे और वह उस दौड को बड़ी रुचि से देखता था आजकल की तरह उस समय भी लोग दौड में बाजी लगाते थे। दौडने की जगह हजार गज के घेरे में रहती थी और एक घोडा तथा उसके उधर उधर दो बैल एक रथ को लेकर दौड़ते थे। • •• •"

चन्द्रगुप्त की शासन-पद्धति—मगास्थनीज् तथा कौटिलीय-अर्थशास्त्र से चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक-व्यवस्था और शासन पद्धति का जो पता लगता है उसे अत्यन्त संक्षेप में श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम० ए० ने 'अशोक के धर्मलेख" नामक पुस्तक के तृतीय अध्याय में दिया है उसे यहाँ पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत किया जाता है'—

सैनिक व्यवस्था—चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना प्राचीन प्रथा के अनुसार चतुरगणी थी, किन्तु उसमें जल सेना की एक विशेषता थी। चन्द्रगुप्त की सेना में हाथी ९०००, रथ ८०००, घोड़े ३००००, और पैदल सिपाही ६०००००, थे। हरएक रथ पर सारथी के अलावा दो धनुर्धर और हर हाथी पर महावत को छोड़कर तीन धनुर्धर बैठते थे। इस तरह कुल सैनिकों की सख्या ६००००० पैदल, ३००००, घुड़सवार ३६००० गजारोही और २४००० रथी, अर्थात् कुल मिलाकर ७२०००० थी। इन सबों को राजखजाने से वेतन नियमित रूप से मिला करता था।

सैनिक मण्डल—सेना का शासन एक मण्डल के अधीन था। इस मण्डल में ३० सभासद थे, जो ६ विभाग में विभक्त थे। प्रत्येक विभाग में पाँच सभासद होते थे। प्रथम विभाग में पाँच सभासद होते

प्रान्तों का शासन—दूरस्थित प्रान्तों का शासन राजप्रतिनिधियों के द्वारा होता था। राजप्रतिनिधि आम तौर पर राजघराने के लोग हुआ करते थे। उनके अधीन अनेक कर्मचारी होते थे। 'अर्थशास्त्र के अनुसार प्रत्येक राज्य चार मुख्य प्रान्तों में विभक्त होना चाहिये और प्रत्येक प्रान्त एक एक राजकुमार या 'स्थानिक' नामक शासक के अधीन होना चाहिये। इस बात का पता निश्चित रूप से नहीं है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का विस्तृत साम्राज्य कितने प्रान्तों में बटा हुआ था, पर अशोक के लेखों से पता लगता है कि उसका साम्राज्य चार भिन्न २ प्रान्तों में बटा हुआ था। 'तक्षशिला' 'उज्जयिनि' 'तोशली' और 'सुवर्णगिरि' नामक चार प्रान्तीय राजधानियों के नाम अशोक के शिला-लेखों में मिलते हैं। 'तक्षशिला' पश्चिमोत्तर प्रान्त की और 'सुवर्णगिरि' दक्षिण प्रान्त की राजधानी थी। ऐसा कहा जाता है कि अशोक अपने पिता के जीवन-काल में तक्षशिला और उज्जैन दोनों जगह प्रान्तिक शासक रह चुका था। राज-प्रतिनिधि या राजकुमार के बाद "राजुकों" का ओहदा था जो आज कल के कमिश्नरों के समान थे। उनके नीचे 'युक्त' 'उपयुक्त' 'प्रादेशिक' आदि अनेक कर्मचारी राज्य का काम नियमपूर्वक चलाते थे। "अर्थशास्त्र" और अशोक के लेखों से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त और अशोक की शासन प्रणाली बहुत ही सुव्यवस्थित और ऊँचे ढंग की थी।

दूरस्थित राजकर्मचारियोंकी कार्यवाही की सूचना देने और रत्ती २ भर के समाचार सम्राट् को भेजने के लिये "प्रतिवेदक" (सम्वाददाता) नियुक्त थे ये लोग प्रतिदिन हर एक नगर या ग्राम का सब समाचार राजधानी को भेजा करते थे।

अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य-शासन काम लगभग ३ विभागों में बटा हुआ था। इन विभागों के अध्यक्ष या सुपरिन्टेन्डेन्टों का कर्तव्य बहुत ही विस्तार के साथ "अर्थशास्त्र" में दिया गया है। इन विभागों मे से मुख्य-मुख्य "गुप्तचर-विभाग, सैनिक-विभाग व्यापारवाणिज्यविभाग, नौ-विभाग, शुल्क विभाग, (चुंगी का महकमा) आबकारी विभाग सुरा-विभाग (आबकारी का महकमा) कृषि-विभाग, नगर विभाग, पशु रक्षा विभाग चिकित्सा-विभाग, मनुष्य गणना विभाग" आदि-आदि थे।

गुप्तचरविभाग—सेना के बाद राज्य की रक्षा गुप्तचरों पर निर्भर थी। अर्थशास्त्र मे गुप्तचर विभाग तथा गुप्तचरों का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। गुप्तचर लोग भिन्न भिन्न भेषों में गुप्तरीति से घूम-फिर कर हरएक प्रकार के समाचार राजा को दिया करते थे। वे न केवल साम्राज्य के भीतर बल्कि साम्राज्य के भी बाहर स्वाधीन तथा शत्रु-राज्यों मे जाकर गुप्त बातों का पता लगाया करते थे। जिस तरह "जर्मनी के केसर ने" गुप्तचरों का एक अलग विभाग खोल रखा था और उसके द्वारा वह शत्रु-मित्र तथा उदासीन सबों का समाचार प्राप्त किया करता था उसी तरह चन्द्रगुप्त ने भी एक गुप्तचर-संस्था स्थापित की थी और इसी संस्था के द्वारा वह सब बातों का पता लगाया करता था। वेश्याओं से भी गुप्तचर का काम लिया जाता था। गुप्तचर लोग "गूढ़ या सांकेतिक" द्वारा गुप्त संवाद भेजा करते थे जिस तरह जर्मन लोग युद्ध मे कबूतरों से चिट्ठीरसा का काम लेते थे उसी तरह चन्द्रगुप्त के गुप्तचर भी कबूतरों के द्वारा खबरें भेजा करते थे।

कृषि-विभाग—राज्य की ओर से एक "सीताध्यक्ष" नामक अफसर नियुक्त था जो "कृषि-

द्वितीय विभाग—का कर्तव्य विदेशियों की देख रेख करना था। मौर्यसाम्राज्य का विदेशियों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। अनेक विदेशी लोग व्यापार अथवा भ्रमण के लिये इस देश में आते थे। उनका इस विभाग की ओर से उचित निरीक्षण किया जाता था और उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार ठहरने के लिये उन्हें स्थान तथा नौकर चाकर दिये जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर वैद्य लोग उनकी चिकित्सा करने के लिये नियुक्त रहते थे। मृत विदेशियों का अन्तिम संस्कार उचित रूप से किया जाता था। मरने के बाद उनकी सम्पत्ति तथा रियासत आदि का प्रबन्ध इसी विभाग की ओर से होता था और उसकी आय उनके उत्तराधिकारियों के पास भेज दी जाती थी। यह विभाग इस बात का बड़ा अच्छा प्रमाण है कि विक्रम पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दि में मौर्य-साम्राज्य का विदेशी राष्ट्रों से लगातार सम्बन्ध था और बहुत से विदेशी व्यापार आदि के सम्बन्ध से भारतवर्ष में आते थे।

तृतीय विभाग—का कर्तव्य साम्राज्य के अन्दर जन्म और मृत्यु की संख्या का हिसाब ठीक ठीक नियमानुसार रखना था। जन्म और मृत्यु की संख्या का हिसाब इसलिये रक्खा जाता था कि जिसमें राज्य को इस बात का ठीक ठीक पता रहे कि साम्राज्य की आबादी कितनी बढी या कितनी घटी। जन्म और मृत्यु का लेखा रखने से प्रजा से कर वसूल करने में भी सहूलियत रहती थी। यह एक प्रकार का पोल टैक्स ( Poll-Tax ) था जो हर एक मनुष्य पर लगाया जाता था। विदेशियों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस प्राचीन समय में भी एक भारतीय शासक ने अपने साम्राज्य की जन-संख्या जानने का कैसा अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था। इसके लिये एक अलग विभाग ही खुला हुआ था।

चतुर्थ विभाग—के आधीन वाणिज्य-व्यवसाय का शासन था। बिक्री की चीजों की दर नियत करना तथा सौदागरों से बटखरों और नापजोखों का यथोचित उपयोग कराना इस विभाग का काम था। इस विभाग के अधिकारी बडी सावधानी से इस बात का निरीक्षण करते थे कि बनिये तथा व्यापारी राज-मुद्रांकित बटखरों और मापों का प्रयोग करते हैं या नहीं। प्रत्येक व्यापारी को व्यापार करने के लिये राज्य से लाइसन्स या परवाना लेना पड़ता था। और इसके लिये उसे एक प्रकार का कर भी देना पडता था। एक से अधिक प्रकार का व्यापार करने के लिये व्यापारी को दूना कर देना पडता था।

पंचम विभाग—कारखानों और उनमें बनी हुई चीजों की देखभाल करता था। पुरानी और नयी चीज को अलग २ रखने की आज्ञा राज्य की ओर से दी गई थी। राज्याज्ञा के बिना पुरानी चीजों का बेचना नियम के विरुद्ध और दण्डनीय समझा जाता था।

षष्ट विभाग—बिकी हुई वस्तुओं के मूल्य पर दशमांश कर वसूल किया जाता था। जो मनुष्य कर न देकर इस नियम को भंग करता था उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।

अपने अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त सभासदों को एक साथ मिल कर नगर-शासन के सम्बन्ध में सभी आवश्यक काम करने पड़ते थे। हाट, बाट, घाट और मन्दिर आदि सब लोकोपकारी कार्यों और स्थानों का प्रबन्ध इन्हीं लोगों के हाथ में था। मालुम पड़ता है कि तक्षशिला, उज्जयनि आदि साम्राज्य के सभी बड़े २ नगरों का शासन भी इसी विधि से होता था।

ने बन्धा को फिर से बनवाया और इस बन्धा तथा झील का संक्षिप्त इतिहास उसने एक शिलालेख में लिख दिया जो गिरनार की चट्टान पर खुदा हुआ है।

चाणक्य के कथन से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि-विभाग के साथ साथ "ऋतुविज्ञान विभाग" ( Beteorologiol Department ) भी था। यह विभाग एक प्रकार के यन्त्र के द्वारा इस बात का निश्चय करता था कि कितना पानी बरस चुका है। बादलों की रंगत से भी इस बात का पता लगाया जाता था कि पानी बरसेगा या नहीं और बरसेगा तो कितना। सूर्य, शुक्र और बृहस्पति की स्थिति और चाल से भी यह निश्चय किया जाता था कि कितना पानी बरसने वाला है।

साम्राज्य की सड़कें—सुव्यवस्थित दशा में रक्खी जाती थीं। आध कोस पर पथ-प्रदर्शक पत्थर ( माइलस्टोन ) गड़े रहते थे। एक बड़ी सड़क आजकल की ग्रांडट्रंक रोड ( कलकत्ते से पेशावर वाली सड़क ) के समान पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में तक्षशिला से लगाकर सीधे मौर्यसाम्राज्य की राजधानी अर्थात् पाटलिपुत्र तक जाती था। यह सड़क लगभग १००० मील लम्बी थी। अर्थशास्त्र से पता लगता है कि मौर्यसाम्राज्य में सड़कें उन दिशाओं को जाती थीं, जिस दिशा में यात्रियों और व्यापारियों का आना जाना अधिक रहता था उसी दिशा में अधिकतर सड़कें बनवाई जाती थीं। उन दिनों जो दक्षिण की ओर सड़कें जाती थीं वे अधिक महत्त्व की गिनी जाती थीं। क्योंकि वहाँ व्यापार अधिक होता था और वहीं से हीरे जवाहिर, मोती, सोना इत्यादि बहुमूल्य वस्तुएं आती थीं। सड़कें कई किस्म की होती थी। भिन्न २ प्रकार के मनुष्यों और पशुओं के लिए भिन्न २ सड़कें थीं। जिस सड़क पर राजा का जुलूस निकलता था वह "राजमार्ग" कहलाता था जिस सड़क पर रथ चलते थे, वह 'रथपथ' कहलाता था जिस सड़क पर खच्चर और ऊंट चलते थे, वह "खरोष्ट्रपथ" कहलाता था; जिस सड़क पर पशु चलते थे वह 'पशुपथ' कहलाता था। और जिस सड़क पर पैदल मनुष्य चलते थे वह "मनुष्य पथ" कहलाता था। इसी तरह से कुछ सड़के ऐसी थीं जिन का नाम उन देशों या स्थानों के नाम पर पड़ा हुआ था जिन देशों और स्थानों को वे जाती थी इसी तरह की एक सड़क राष्ट्र-पथ की छोटे छोटे जिलों को जाती थी। 'विवीत पथ' नामक सड़क चरागाहों को जाती थी जो सड़क सेना के रहने स्थानों जाती थी वह 'व्यूहपथ' के नामसे पुकारी जाती थी। और जो सड़क श्मशान को जाती थी वह श्मशान-पथ कहलाती थी। वन की ओर जाने वाला मार्ग 'वन-पथ' के नाम से पुकारा जाता और जो मार्ग पुलों तथा बान्धों की ओर जाता था वह सेतु-पथ कहलाता था।

राज्य के सभी काम राज-कोष पर निर्भर रहते हैं। इसलिये कर लगाना राजा के लिये बहुत आवश्यक है। अर्थ शास्त्र में एक स्थान पर मौर्यसाम्राज्य के आय के द्वार निम्न क्रम से लिखे गये हैं— (१) राजधानी (२) ग्राम और प्रांत (३) खानें (४) सरकारी बाग (५) जंगलात (६) जानवर और चरागाह तथा (७) 'वणिक पथ'।

चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था का उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र और मेगस्थनीज के भ्रमण वृत्तान्त में विस्तार पूर्वक मिलता है। उसी वृत्तान्त को अत्यन्त संक्षेप में गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी के इतिहास लेखक एवं प्रोफेसर श्रीसत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने मौर्यसाम्राज्य के इतिहास में प्रतिबिम्बित किया है। यहाँ उस पुस्तक से अत्यन्त आवश्यकीय, ज्ञातव्य, और रुचिकर अंश उद्धृत किया जाता है—

विभाग" का शासन करता था। उसका पद वही था जो आज कल के "डाइरेक्टर आफ एग्रिकल्चर" का है। खेती की भूमि राजा की सम्पत्ति गिनी जाती थी और राजा किसानों से पैदावार का चौथाई भाग करके रूप में आम तौर पर वसूल करता था। इस बात का पता नहीं लगता कि लगान का बन्दोवस्त हर साल होता था या कई साल के बाद। किसान लोग सैनिक सेवा से अलग रखे जाते थे।

मेगास्थनीज साहब इस बात को देखकर बड़े चकित थे कि जिस समय शत्रु सेनाएँ घोरसंग्राम मचाये रखती थीं उस समय भी खेतीकर लोग शान्ति पूर्वक अपने खेती के काम में लगे रहते थे।

भारतवर्ष सदा से कृषि-प्रधान देश रहा है। अतएव इस देश के लिये सिंचाइ का प्रश्न हमेशा से बड़े महत्त्व का गिना जाता है। चन्द्रगुप्त के शासनके लिये यह बड़े गौरव का विषय है कि उसने सिंचाई का एक विभाग ही अलग नियत कर दिया था। इस विभाग पर वह विशेष ध्यान देता था, मेगास्थनीज साहब ने भी लिखा है कि "भूमिके अधिकतर भाग में सिंचाई होती है इसी से साल में दो फ़सलें पैदा होती हैं राज्य के कुछ कर्मचारी नदियों का निरीक्षण और भूमि की नाप जोख उसी तरह करते हैं, जिस तरह मिश्र में की जाती है वे उन गूलों अथवा नालियो की भी देख भाले करते हैं जिनके द्वारा पानी खास नहरों से शाखा नहरों में जाता है, जिसमें कि सब किसानों को समान रूप से नहर का पानी सिंचाई के लिये मिल सके।" मेगास्थनीज का उक्त कथन अर्थशास्त्र से पूरी तरह पुष्ट हो जाता है। सिंचाई के बारे में कुछ बातें अर्थशास्त्र में ऐसी भी लिखी हैं जो मेगास्थनीज के वर्णन में नहीं पाई जाती हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार सिंचाई चार प्रकार से होती थी, यथा (१) "हस्तप्रावर्त्तिम" अर्थात् हाथ के द्वारा (२) "स्कान्ध प्रावर्त्तिम" अर्थात् कन्धों पर पानी ले जाकर (३) "स्रोतयन्त्रप्रावर्त्तिम" अर्थात् यंत्रके द्वारा (४) "नदीसरस्तटाकूपोद्घाटम्" अर्थात् नदियों, तालावों और कूपों के द्वारा, सिंचाई के पानी का महसूल क्रम से पैदावार का पचमाश, चतुर्थांश और तृतीयाश होता था। अर्थशास्त्र में कुल्या का नाम भी आता है। जिसका अर्थ "कृत्रिमासरित" अथवा नहर है। इससे विदित होता है कि उन दिनों भारतवर्ष में नहरें बनाई जाती थीं। और उनके द्वारा खेत सींचे जाते थे। पानी जमा करने के लिये सेतु या बान्धा भी बान्धे जाते थे और तालाब या कूप इत्यादि की मरम्मत हमेशा हुआ करती थी। इस बात की भरपूर देख-रेख रखखी जाती थी कि यथा समय हर एक मनुष्य को आवश्यकतानुसार जल मिलता है या नहीं। जहा नदी सरोवर तलाव इत्यादि नहीं थे वहाँ राजा की ओर से तालाब वगैरह खुदवाये जाते थे। गिरनार में (जो काठियावाड़ प्रात में है) एक चट्टान पर क्षत्रपाल रुद्रायम का एक लेख खुदा हुआ है। उससे विदित होता है दूरस्थित प्रान्तों में भी सिंचाई के प्रश्न पर मौर्यसम्राट कितना ध्यान देते थे। यह लेख ई० सन १५० के बाद ही लिखा गया था। इसमें लिखा है कि पुष्यगुप्त वैश्य ने जो चन्द्रगुप्त की ओर से पश्चिमी प्रान्तों का शासक था गिरनार की पहाड़ी पर एक छोटी नदी के एक ओर बन्धा बनावाया जिससे एक झील सी बन गई। इस झील का नाम 'सुदर्शन' रक्खा गया और इससे खेतों की सिंचाई होने लगी। बाद सम्राट् अशोक ने उसमें से नहरें भी निकलवाई। नहरें अशोक के प्रतिनिधि राजा "तुपस्फ" की देख भाल में बनवाई गई थी। मौर्य सम्राटों की बनवाई हुई झील तथा बान्ध दोनों ४०० वर्ष तक क़ायम रहे। उसके बाद सन् १५० में बड़ा भारी तूफ़ान आने से झील और बन्ध दोनों नष्ट हो गये तब शक क्षत्रप रुद्रदामन

को प्राप्त था। "चंद्रगुप्त के समय में राज्य की ओर से अनेक चिकित्सालय होते थे। उनके साथ औषधागार ( Store-Rooms ) भी होते थे। मानव चिकित्सा के अलावा पशु चिकित्सा का भी प्रबंध था। सम्राट चंद्रगुप्त के समय में इस बात के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाता था कि रोग होने ही न पावें। अकालमृत्यु अपेक्षा आदि रखने पर चिकित्सकों को भी दण्ड दिया जाता था।"

किंतु आज हम उक्त कथन का बिलकुल विपरीत देखते हैं। जितने अधिक चिकित्सालय खुलते जा रहे हैं उतने ही अधिक दिनदूने रात चौगुने—रोगी बढ़ते जा रहे हैं। नये २ रोग उत्पन्न हो रहे हैं। चिकित्सालयों में रोगियों की संख्या घटने के बजाय मक्खियें बढ़ती रही है। इसका कारण केवल यही है कि राज्य की ओर से "रोग होने ही न पावें" जैसा चन्द्रगुप्त के शासनकाल में प्रबन्ध था वैसा इस समय कोई नियम ही नहीं है। जब यह स्थिर है तब नर्सों के पचमाड होने से लाभ क्या ? व्यापारी नकली, हानिकारक, मिलावटी खाद्य वस्तु नहीं बेच सकते थे। सफाई का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। बाजार, गली, मोहल्लों में कूड़ा पेशाब पाखाना, मरे हुये साँप, चूहे तथा मरे जानवरों को डाल देने पर दण्ड मिलता था।

सार्वजनिक संकटों का निवारण—सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल में दुर्भिक्ष, अग्नि, बाढ़ आदि सार्वजनिक संकटों के निवारण के लिये अनेक प्रकार से उपाय किया जाता था।"

आवागमन के साधन—"चन्द्रगुप्त का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इसलिये आवागमन के लिये उत्तम साधनों और मार्गों की बहुत आवश्यकता थी। मार्गों का प्रबन्ध सरकार ने एक पृथक विभाग के सुपुर्द रक्खा था। जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों का उत्तम प्रबन्ध था।

जलमार्ग—मौर्य चन्द्रगुप्त के शासनकाल में नौकाओं और जहाजों का बहुत अधिक चलन था। नौकानयन-शास्त्र की बहुत उन्नति हो चुकी थी। उस समय कितने ही प्रकार के जहाज होते थे। समुद्र से मोती, शंख आदि एकत्रित करने वाले जहाज भी थे। समुद्र में आई हुई विपत्तियों और डाकुओं के आक्रमण आदि से रक्षा के भी अच्छे अच्छे उपाय थे।

स्थल मार्ग—सड़कों का उत्तमोत्तम प्रबन्ध था जो ऊपर लिख आये हैं।

रीति-रिवाज, स्वभाव, सभ्यता— मौर्य-कालीन भारतीयों के रीति रिवाजों के सम्बन्ध में यूनानी लेखकों के कुछ विवरण उद्धृत करना भी आवश्यक प्रतीत होता है —

'भारतीय लोग निष्कपट के साथ रहते विशेषत जब कि वे कैम्प में हों।"

"भारतीय लोग अपने आचरण में सीधे और मितव्ययी होने के कारण बड़े सुखी रहते हैं।"

"उनके कानून और व्यवहार की सरलता इससे अच्छी तरह प्रमाणित होती है कि वे न्यायालय में बहुत कम जाते हैं। उनमें गिरवी और धरोहर के अभियोग नहीं होते और न वे मुहर व गवाह की जरूरत रखते हैं। वे एक दूसरे के पास धरोहर रखकर आपस में विश्वास करते हैं। अपने घर व सम्पत्ति, वे प्रायः अरक्षित अवस्था में ही छोड़ देते हैं" ये बातें सूचित करती हैं कि उनके भाव उदार थे।

"अपने चाल की साधारण सादगी के प्रतिकूल वे बारीकी और बनावट के प्रेमी होते हैं। उनके

न्याय-व्यवस्था—"सम्राट् चन्द्रगुप्त के विस्तृत साम्राज्य में न्याय के लिये एक ही न्यायालय पर्याप्त नहीं हो सकता था। इसलिये पाटलिपुत्र के बड़े न्यायालय के सिवाय अन्य अनेक छोटे बडे न्यायालय साम्राज्य में विद्यमान थे। सब से छोटा न्यायालय 'ग्राम-संघ' का होता था, ग्राम की सभा भी अपनी ग्राम सम्बन्धी बातों का फैसला स्वयं किया करती थी। इस के ऊपर 'संग्रहण' का न्यायालय होता था, इसके ऊपर 'द्रोणमुख' का और 'द्रोणमुख' के उपर 'जनपदसन्धि' का। जनपदसन्धि न्यायालय के ऊपर राजा का अपना न्यायालय होता था, इसमें राजा स्वयं उपस्थित होता था और उस की सहायता के लिये अन्य अनेक न्यायाधीश होते थे। ग्राम सघ और सम्राट् के न्यायालयों के सिवाय शेष पाँच श्रेणियों के न्यायालय दो भागों में विभक्त थे। दोनों की रचना और कार्य सर्वथा भिन्न २ थे। एक नाम था 'धर्मस्थीय' और दूसरे का 'कण्टक-शोधन'। धर्मस्थीय न्यायालयों में तीन ३ न्यायाधीश होते थे, इन्हें 'धर्मस्थीय' या 'व्यवहारिक' कहा जाता था। इसी प्रकार 'कण्टकशोधन' न्यायालयों में भी तीन ३ न्यायाधीश होते थे, परन्तु इन्हें 'प्रदेष्टा' कहा जाता था। अनेक विद्वानों के धर्मस्थीय को Civil और कण्टकशोधन को Criminal न्यायालय कहा है। इन न्यायालयों में किन किन विषय पर विचार होता था, न्याय किस कानून के आधार पर होता था, न्यायालयों में मुकदमे किस प्रकार किये जाते थे, अपराधी को विविध प्रकार के दण्ड किस प्रकार दिये जाते थे, गवाहों और न्यायाधीश का कर्तव्य उनके अधिकार आदि का रोचक वर्णन कौटिल्य अर्थशास्त्र में अत्यन्त विस्तार से दिया गया।"

शिक्षा विभाग—"मौर्यकाल में शिक्षा पद्धति क्या थी, यह कह सकना बहुत कठिन है। हमें मालूम है कि उस काल में तक्षशिला जैसे स्थानों पर विश्वविद्यालय विद्यमान थे। जिन में बहुत से विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त किया करते थे। साथ ही वनों में वानप्रस्थी आचार्य लोग बहुत से शिष्यों को साथ में रख कर विद्या पढ़ाया करते थे। राज्य इनको सहायता देता था। प्राय यह रीति थी कि आचार्यों को अपने शिक्षणालय के अनुरूप भूमि दे दी जाती थी। इसकी सम्पूर्ण आमदनी शिक्षणालय के लिये ही खर्च होती थी। बहुत से शिक्षणालय सीधे तौर पर राज्य के आधीन थे। इन शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन मिलता था।" इत्यादि शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध था।

दान विभाग—"चन्द्रगुप्त-कालीन राष्ट्रीय व्यय का 'दान' भी बहुत महत्त्व पूर्ण भाग था। बाल, वृद्ध, व्याधि-पीड़ित, आपत्तिग्रस्त आदि व्यक्तियों का पालन-पोषण सब राज्य की तरफ से होता था। मौर्यकाल में इन असहाय व्यक्तियों के पालन के लिये व्यवस्थित रूप से प्रबन्ध होता था।..... इन असहायों से ऐसे कार्य (चर्खा कातना आदि) कराये जाते थे जिन्हें कि ये आसानी के साथ कर सकें। और उनको परिश्रमानुसार मजदूरी अतिरिक्त राज-कोष से भी आवश्यकतानुसार उचित सहायता दी जाती थी। इससे प्रतीत होता है कि उन दिनों आजकल जिस तरह भिखमगों की भरमार है उन दिनों में मगते ढूढने पर भी न मिलते होंगे। इसके अतिरिक्त कारीगरों, कृषकों, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, सस्थाओं और अन्य सगठन कार्य वगैरह के लिये राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। देश-हितैषी परोपकारी मनुष्यों पर राजा की कृपादृष्टि रहती थी।"

चिकित्सालय और स्वास्थ्य-रक्षा—"प्राचीन भारत में चिकित्सा-शास्त्र ने जो उन्नति की थी, उसका विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चन्द्रगुप्त के समय में चिकित्सा-शास्त्र बहुत उन्नति

भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दी। किन्तु ज्योंही चार करके जब युद्धभूमि में दोनों सेनाओं का सामना हुआ, तब चन्द्रगुप्त की सेना के मुकाबिले में सैल्यूकस की सेना न ठहर सकी। सैल्यूकस को लाचार होकर पीछे हटना पड़ा और चन्द्रगुप्त के साथ उसी की शर्तों के मुताबिक सन्धि कर लेनी पड़ी। जिसके अनुसार ५०० हाथियों के बदले चन्द्रगुप्त को सैल्यूकस से परोपनिषदी, एरिया और आरकोसिया नाम के तीन प्रान्त मिले जिनकी राजधानी क्रम से आज कल के काबुल हिरात और कन्धार तीन नगर हैं। सन्धि को दृढ़ करने के लिए सैल्यूकस ने अपनी बेटी 'हेलेन' भी चन्द्रगुप्त को दी। इस प्रकार हिन्दुकुश पहाड़ तक उत्तरी भारत चन्द्रगुप्त के हाथ में आ गया। जब विदेशियों के साथ भी उसकी यह वीरता है तो भारत के लिए तो कहना ही क्या है ? भारत के सम्राट होने का सब प्रथम महत्त्व चन्द्रगुप्त को ही मिला है।

## सम्राट चन्द्रगुप्त का धार्मिक जीवन

मंत्री चाणक्य के लिये आप पहिले ही पढ़ चुके हैं कि उसका घराना जैन था। उसके माता पिता दृढ़तापूर्वक जैनधर्म पालन करते थे अतः चाणक्य जैन था इसमें किसी प्रकार का सन्देह हो ही नहीं सकता है। जब चाणक्य ने राजा चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र का राजा बना दिया था तो उसकी इच्छा हुई कि चन्द्रगुप्त भी जैनधर्म को स्वीकार कर इस धर्म का विश्व में खूब जोरों से प्रचार करके स्वात्म्य के साथ अनेक आत्माओं का कल्याण कर सकें; इस हेतु से राजा चन्द्रगुप्त को धर्म का तत्त्व सुनाने के लिये प्रत्येक धर्म के साधुओं को आमन्त्रण किया। जब वे साधु आते थे तो उनके लिए एक स्थान मुकर्रर कर दिया था वहां उनका ठहरा देता था तथा उनकी परीक्षा के निमित्त बारीक रेत डाल रक्खा था। जब राजा के आने में देर होती तो वे साधु राजा के महल वाली झरोखों जालियां स्त्रियां आदि पदार्थ देखने के लिये इधर उधर घूमते रहते थे। इससे मंत्री चाणक्य तथा राजा चन्द्रगुप्त समझ गया कि ये केवल नाम के ही साधु हैं। जब क्रमशः जैन मुनि भी आये तो वे जब तक राजा सभा में नहीं आये तब तक स्वाध्याय ध्यान ज्ञान में ही अपना समय व्यतीत करते थे। अतः राजा की श्रद्धा जैन मुनियों की ओर झुक गई। बाद जैन मुनियों से धर्म का स्वरूप सुन कर राजा चन्द्रगुप्त ने सकुटुम्ब जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और इसी धर्म के आराधन में संलग्न हो गया।

पुरे प्रयोर्थ चाणक्यस्तत्पथेनमकारयत, धर्म ओप्पति सर्वेषामपि पाखण्डिनां नृप ॥
ततआहूय तान्सर्वान् शुद्धान्त स्यात् वीयसि देशे निवेशयामास स निविके विपिकधीः ॥
शुद्धान्ता मनविग्भागे, चाणक्येनाप्रतोऽपि हि, प्रलोक्य तर्थ साक्ष्यं च सद नृपं महीतले ॥
ततोपदसनाय ते चाणक्येन प्रवेशिताः, ज्ञात्वा निविर्क स्थानं तच्छुद्धान्तमिसुख पशुः ॥
श्री लोलासे समाधेन नृप लेपमर्सपता, गवाक्षे विवरैर्युग्मपदक मिरे तत ॥
ते राजपत्नी पश्यन्त स्तावदस्थुर्दुरात्मनः, नयावदाययौ राज्ञा निपेतुस्तुत दागमे ॥
ततश्च चन्द्रगुप्ताय धर्म माख्याय ते ययुः, पुनरागम मिच्छान्तोऽन्तःपुर श्री दिदृक्षया ॥
गतेषु तेषु चाणक्यश्चन्द्रगुप्तम भाषत, पश्य श्री लोष्टावियं वत्स पाखण्डि नामिह ॥
पारत्वदगन्तर्विस्तदन्त पुरमीक्षितम्, गवाक्ष विवरक्षिप्त लोचनैरजितेन्द्रियैः

वस्त्रों पर सोने का काम किया हुआ होता है। वे वस्त्र मूल्यवान रत्नों से विभूषित रहते हैं। वे लोग अत्यन्त सुन्दर मलमल के बने हुये फूलदार कपड़े पहनते हैं। सेवक लोग उनके पीछे पीछे छाता लगाये चलते हैं। वे सौन्दर्य का बड़ा ध्यान रखते हैं और अपने स्वरूप को सँवारने में कोई उपाय उठा नहीं रखते।"

"सचाई और सदाचारी दोनों की वे समान रूप से प्रतिष्ठा करते हैं।' 'भारतवासी मृतक के लिये कोई स्मारक नहीं बनाते, वरन् उस सत्यशीलता को जिसे मनुष्यों ने अपने जीवन में दिखलाया है तथा उन गीतों को जिनमें उनकी प्रशंसा वर्णित रहती है मरने के बाद उनके स्मारक को चिरस्थायी रखने के लिये पर्याप्त समझते हैं।"

"चोरी बहुत कम होती हैं। मेगस्थनीज़ कहता है कि उन लोगों ने जो सेण्ड्रोकोटश ( चन्द्रगुप्त ) के डेरे में थे, जिसके भीतर ४०००८० मनुष्य पडे थे, देखा कि चोरी जिसकी इत्तला किसी एक दिन होती थी, और वह ऐसे लोगों के बीच जिनके पास लिपि बद्ध कानून नहीं, वरन् जो लिखने से अनभिज्ञ हैं और जिन्हें जीवन के समस्त कार्यों में स्मृति पर ही भरोसा करना पड़ता है।"

"भारतवासियों में विदेशियों तक के लिये कर्मचारी नियुक्त होते हैं, जिनका काम यह देखने का रहता है कि किसी विदेशी को हानि न पहुँचने पावे। यदि उन विदेशियों में से कोई रोगग्रस्त हो जाता है तो वे उसकी चिकित्सा के निमित्त वैद्य भेजते हैं तथा और दूसरे प्रकार से भी उसकी रक्षा करते हैं। यदि वह मर जाता है, तो उसे गाड़ देते हैं और जो सम्पत्ति वह छोड़ जाता है उसे उसके सम्बन्धियों के हवाले कर देते हैं। न्यायाधीश लोग भी उन मामलों का जो विदेशियों से सम्बन्ध रखते हैं, बड़े ध्यानपूर्वक फैसला करते हैं और उन लोगों पर बड़ी कड़ाई करते हैं, जो उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं।"

"भूमि जोतने वाले, यद्यपि उनके पड़ोस में युद्ध हो रहा हो, तो भी किसी प्रकार के भय की आशका से विचलित नहीं होते। दोनों पक्ष के लड़ने वाले युद्ध के समय एक दूसरे का सहार करते हैं, परंतु जो खेती में लगे हुये हैं उन्हें पूर्णतया निर्विघ्न पड़ा रहने देते हैं। इसके सिवाय न तो वे शत्रु के देश का अग्नि से सत्यानाश करते हैं और न उनके पेड काटते हैं"।

डाक प्रबन्ध—"मौर्यकाल में डाक का प्रबध कबूतरों और तेज चलने वाले घोड़ों द्वारा होता था।"

अत्यन्त सक्षेप में दिये हुये उक्त अवतरणों के पढ़ने से प्रत्येक मनुष्य स्वयं विचार कर सकता है कि चद्रगुप्त कैसा प्रतापी और विलक्षण राजा था। जिसने केवल २४ वर्ष के अल्प समय में ही अपने हाथों से स्थापित किये नवीन राज्य को ऐसी उन्नत दशा पर पहुँचा दिया कि आज से २२ सौ वर्ष पूर्व के इसके राज्य-प्रबंध का वर्णन पढ़कर हमारे पूर्वजों को मूर्ख समझने वाली आजकल की सभ्यता भिमानी जातियाँ भी आश्चर्य चकित होती हैं। इच्छा थी कि इस प्राचीन काल के प्रबन्ध सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन वर्तमान शासन की सभ्यता, नीति आदि से किया जाय किंतु विस्तार-भय से विचार स्थगित करने पड़ते हैं।

सम्राट की वीरता—मौर्य्य मुकटमणि सम्राट चन्द्रगुप्त की वीरता के लिये अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसने नद वंशीय राजाओं को पराजय कर मगध का राजतत्र अपने हस्तगत किया था और जब वह अपने साम्राज्य के संगठन में लगा हुआ था उसी समय सेल्यूकस ने जो सिकन्दर का सेनापति था, सिकन्दर के जीते हुये भारतीय प्रदेशों को फिर से अपने अधिकार में करने के लिये,

इस मूर्ति के बनाने से पाया जाता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त की जैनधर्म एवं जैनमूर्तियों पर अटूट श्रद्धा एवं भक्ति थी और उन्होंने सफेद सोने की मूर्ति बनाई थी इनके अलावा एक प्रमाण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है कि सम्राट् ने देवस्थानों के लिये एक ऐसी कठोर आज्ञा निकाली थी कि ।

"आक्रोशादेवचैत्यानामुत्तमं दंड मर्हति"

मतलब कि यदि कोई चैत्य ( मन्दिर ) के विषय में थोड़ा बहुत अपराध यद् कर आशातना करेगा वह व्यक्ति भारी दंड का भागी होगा । ऐसा जिनशासन का भक्त यदि सफेद सोने की मूर्ति बनावे तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? अन्य २ साधनों से यह भी पता मिलता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्राट् चन्द्रगुप्त ने श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु से करवाई थी ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का महत्व पूर्ण जीवन जैन श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदाय के लेखकों ने खूब ही विस्तारपूर्वक लिखा है । पर मैंने मेरा उद्देशानुसार यहाँ पर संक्षिप्त से ही लिखा है पर इससे पढ़ने वाले पाठकों को भली भांति ज्ञात हो जायगा कि सम्राट् चन्द्रगुप्त जैसे एक अद्वितीय राजकर्त्ता था कि केवल २४ वर्ष के राजत्व कालमें इसने अपने साम्राज्य की यहाँ तक संसार भर की अच्छी उन्नति कर बतलाई थी इसके पूर्व साम्राज्य की इस प्रकार की सुन्दर व्यवस्था शायद ही किसी ने की हो इतना ही क्यों पर आज कहलानेवाली सभ्यता एवं सत्ता भी उन सम्राट् की राज व्यवस्था देख कर अपना गौरव मय शिर उनके चरणों मे झुकाती है ।

अब हम धर्म की ओर देखते है तो सम्राट् ने अपना जीवन मे अधिकतर धर्म को ही स्थान दिया था जैन धर्म का प्रचार के लिये तो आपने अधिक से अधिक प्रयत्न किया था आप पढ़ चूके हो कि सम्राट् ने जैन धर्म को केवल भारत मे ही नहीं पर पाश्चात्य प्रदेशों मे भी जैन धर्म का प्रचार किया था और आप अपनी अन्तिमावस्था में तो राज कार्य को छोड़ समस्त आत्म कल्याण में लग गये थे हाँ चन्द्रगुप्त ने अपने जीवन के अन्तिमावस्था में दीक्षा ली या नहीं ली इस बात का श्वेताम्बर दिगम्बर में मत भेद अवश्य है पर चन्द्रगुप्त ने अन्तिमावस्था में आत्म कल्याण करने मे संलग्न था इसमे दोनों सम्प्रदायों एकमत है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का समय के विषय विद्वानों का अभी मतभेद है जिसके लिये हम सम्राट् सम्प्रति के जीवन के अन्त में यथा साध्य निर्णय करेंगे। यहाँ पर इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने मंत्री चाणक्य की सहायता से मगध का राज प्राप्त कर २४ वर्ष तक मगध की गादी पर निष्कंटक राज किया था और अन्त में जैनधर्म की आराधना पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया ।

---

उज्जैनी नगरी धणी, ते थयो सम्प्रति राय । जातिस्मरण पामियो, ते भवि गुरु पसाय ॥
वली तिण गुरु प्रतिबोधियो, थयो श्रावक सुविचार । मुनिवर रूप करावियो अनार्य देश विहार ॥
पुण्य उदय प्रगटियो घणो, साध्या भारत त्रिखंड । जिन पृथ्वी जिनमंदिरे, मण्डित करी अखंड ॥
वी सय तीढोत्तर वीर थी, संवत् सबल पंडूर । पद्मप्रभ प्रतिष्ठिया, आर्य सुहस्ती सूर ॥
महा सुदी शुक्ल अष्टमी, शुभ मुहूर्त रविवार । लिपि प्रतिमा पूठ लिखी, ते बांची सुविचार ॥

[illegible]

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जैनाचार्य से जैनधर्म स्वीकार करने के बाद जैनधर्म की सेवा करने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। इतना ही क्यों पर सम्राट् ने जैनधर्म का भारत मे ही नहीं पर भारत के बाहर विदेशों में भी खूब प्रचूरता मे प्रचार किया था। चन्द्रगुप्त ने जैसे कुएँ तालाव मुसाफिर खाने आदि सर्व साधारण के आराम के लिये बनवाये थे, इसी प्रकार जनता की धर्म भावना बढ़ाने के लिये एव आत्म कल्याण के लिए अनेकों मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। वे भी केवल पूर्व प्रान्त में ही नहीं परन्तु उनके बनाये मन्दिर भारत और भारत के बाहर भी जनता का कल्याण कर रहे थे।

मारवाड़ में एक गांगाणि नाम का ग्राम है जो कि जोधपुर मे १८ मील के फासले पर पहला बढ़ा नगर था। वहाँ पर एक पार्श्वनाथ का बहुत प्राचीन मंदिर जो सम्राट् सम्प्रति का बनाया हुआ मालूम होता है वि स १६६२ का जेष्ठ मास में वहा के तालाब के पास भूगर्भ मे कई मूर्तिया मिली थीं। उस समय के कई आठ मास के पश्चात् कविवर समयसुन्दर गणि यात्रार्थ गांगांणी गये और उन मूर्तियों का दर्शन एवं निरीक्षण किया और वहा का सब हाल उसी समय एक स्तवन मे लिपिबद्ध कर दिया। वह स्तवन अभी हाल में अहमदाबाद निवासी वकील केशवलाल प्रेमचन्द जो पुरातत्त्व एव इतिहास के अच्छे प्रेमी हैं द्वारा प्राप्त हुआ है जिसकी तीसरी ढाल में लिखा है :—

"मूलनायक श्रीजोवली, सकल सुकोमल देहो जी। प्रतिमा श्वेत सोना तणी, मोटो अचरज ये होजी ॥१॥
अर्जुन पास जुहारिया, अरजुन पुरी शृंगारोजी। तीर्थङ्कर तेवीस मो, मुक्ति तणो दातारोजी ॥२॥
चन्द्रगुप्त राजा भयो, चाणक्य दिरायों राजो जी। तिण यह बिंब भरावियो, साध्या आत्म काजो जी ॥१॥

अर्थात्-समाद् चन्द्रगुप्त ने भगवान पार्श्वनाथ की सफेद स्वर्णमय मूर्ति बनाई थी जिसकी प्रतिष्ठा के लिये कविवर ने लिखा है कि सम्राट् सम्प्रति ने अपने गुरु आचार्य सुहस्ति सूरि से वी० स० २७३ माघ शुक्ला अष्टमी रविवार के दिन करवाई थी ऐसी मूर्ति के पीछे खुदी हुई लिपि ( शिलालेख ) को कविवर ने अपनी नजर से देखी हैं जैसे कविवर ने अपने स्तवन में भी लिखा है। ×

---

पदपङ्क्तिमिमातेषां सुव्यक्तं प्रतिबिंबताम्, गवाक्षविवराधस्ता दृष्ट्वा प्रत्ययमुद्वह ॥
सञ्जात प्रत्ययेसाज्ञि द्वितीयेऽहनि सद्गुरुः धर्मं माख्यातु माह्वास्त तत्र जैनमुनि नपि ॥
निषेदुस्ते प्रथमतोऽप्यासनेष्वे व साधवाः स्वाध्यायायवश्य के नाथ नृपागममपालयन् ॥
ततश्च धर्म माख्याय साधवो वसतिं ययुः, इर्या समिति लीनत्वात्पश्यन्तोभुवमेवते ॥
गवाक्षविवराधस्ताल्लोष्ठ चूर्णं समीक्षतम्, चाणक्यश्चन्द्रगुप्ताय तद्यथास्थम दर्शयत् ॥
ऊचे च नैते मुनयः पाषण्डि वदिहाययुः, तत्पाद प्रतिबिंबानी न दशान्ते कुतो अन्यथा ॥
उत्पन्न प्रत्ययः साधून् गुरून्मेनेऽथपार्थिवः, पाषण्डिषु विरक्तोऽभूद्विषयेष्विवयोगवित् ॥

परिशिष्ट पर्व स्वर्ग ८ श्लोक ४२० से ४३५

× जैसा साहित्यसंशोधक त्रिमासिक पत्र वर्ष ५ अक २ पृष्ठ पर एक तपगच्छ पट्टावली मुद्रित हुई है उसमें भी इस बात का उल्लेख किया है कि सम्राट् सम्प्रति ने गांगाणी में जिनमन्दिर करवाया था।

---

ही पहला व्यक्ति नहीं है।" मि० राईस कि जिन्होंने श्रवण बेलगोल के शिलालेखों का अध्ययन किया है पूर्ण रूप से अपनी राय इसी पक्ष में देते हैं कि मौर्य चन्द्रगुप्त जैनी था—

डाक्टर स्मिथ अपनी Oxford History of India नामक पुस्तक के ७५, ७६ पृष्ठ में लिखते हैं कि "चन्द्रगुप्त मौर्य की घटना-पूर्ण राज्यकाल किस प्रकार समाप्त हुआ इस बात का उचित विवेचन एक मात्र जैन कथाओं से ही जाना जा सकता है। जैनियों ने सदैव उक्त मौर्य सम्राट् को बिम्बसार (श्रेणिक) के सदृश जैन धर्मावलम्बी माना है और उनके इस कथन को असत्य समझने के लिए कोई उपयुक्त कारण नहीं है। यह बात भी सर्वथा सत्य है कि शैशुनाग, नंद और मौर्यवंश के राजाओं के समय मगध देश में जैन धर्म का प्रचार प्रचुरता से था। चन्द्रगुप्त ने राजगद्दी एक चतुर ब्राह्मण की सहायता से प्राप्त की थी। यह बात इस बात में बाधक नहीं होती कि चन्द्रगुप्त जैनी था मुद्राराक्षस नामक नाटक में एक जैन साधु का भी उल्लेख है। यह साधु नंदवंशीय एवम् पीछे से मौर्यवंशीय राजाओं के राक्षस मंत्री का खास मित्र था।"

Mo H. L. O Garrett M A L. E. S in his essay "Chandragupta Maurya says— Chandragupta who was said to have been a Jain by religion, went on a pilgrimage to the South of India at the time of a great Famine There he is said to have starved himself to death At any rate he ceased to reign about 298 B C

१—सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० विन्सेन्ट ए० स्मिथ 'भारत का प्राचीन इतिहास' (History of India) की तृतीयावृत्ति पृष्ठ १४६ में लिखते हैं कि —'जैन कथाओं में उल्लेख मिलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन था। जब बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा तब चन्द्रगुप्त अन्तिमश्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया और मैसूर के अन्तर्गत श्रवणबेलगोला में—जहाँ अब तक उसके नाम की यादगार है—मुनि के रूप में रह कर और अन्त में वहीं पर उसने उपवास पूर्वक प्राण त्याग दिये। मैंने अपनी पुस्तक की द्वितीयावृत्ति में इस कथा को रद्द कर दिया था और बिल्कुल कल्पित बयान किया था परन्तु इस कथा की सत्यता के विरुद्ध में जो शंकायें हैं, उस पर पूर्णरूप से विचार करने से अब मुझे विश्वास होता है कि यह कथा सम्भव तथा सची है। चन्द्रगुप्त ने वास्तव में राजपाट छोड़ दिया होगा और वह जैन साधु हो गया होगा। निस्संदेह इस प्रकार की कथायें बहुत कुछ समालोचना के योग्य हैं और लिखित साक्षी से ठीक २ पता नहीं लगता तथापि मेरा वर्तमान में यह विश्वास है कि यह कथा सत्य पर निर्धारित है और इसमें सचाई है। 'राइस साहब' ने इस कथा की सत्यता का अनेक स्थलों पर बड़े जोर से समर्थन किया है। उन्होंने "शिला-लेखों से मैसूर तथा कुर्ग" नामक पुस्तक में इसका जिक्र किया है।"

२—मेगास्थनीज ने जो सेल्युकस की ओर से चन्द्रगुप्त के दरबार में राजदूत था राजस्थान की बहुत सी बातें जानकर अपने इतिहास में उसका बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। उस वर्णन में जहाँ भारतीय ऋषियों का उल्लेख किया गया है वहाँ श्रमणों का भी वर्णन आया है। दूसरी जगह जहाँ उन्होंने भारतीय दार्शनिकों की चर्चा की है वहाँ श्रमणों का भी उल्लेख किया है। उनका कथन है कि ये श्रमण, ब्राह्मणों तथा बौद्धों से भिन्न थे। इनका घनिष्ठ सम्बन्ध महाराजा चन्द्रगुप्त से था। वे अपने राजनीतिक विषय में जहाँ जहाँ दूतों को भेज कर उन श्रमणों की सम्मति लिया करते थे। वे स्वयं अथवा दूसरों द्वारा वही विनय और

# मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्त जैनधर्मावलम्बी था, इस विषय में विद्वानो की सम्मतियाँ

सम्राट् चन्द्रगुप्त का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन कई वर्षों तक गुप्त रहा। यही कारण था कि कई लोग चन्द्रगुप्त को जैनी मानने में सकोच किया करते थे। और कई तो साफ इन्कार करते थे कि चन्द्रगुप्त जैनी नहीं था। पर अब यूरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों की शोध और खोज से तथा ऐतिहासिक साधनों से सर्वथा सिद्ध तथा निश्चय हो चुका है कि चन्द्रगुप्त मोर्य जैनी था। कतिपय विद्वानों की सम्मतियों का यहां लिखा जाना युक्तियुक्त और न्यायसगत होगा।

चन्द्रगुप्त के जैनी होने के विशद प्रमाण राय बहादुर डाक्टर नरसिंहाचार्य ने अपने "श्रवण बेलगोल" नामक पुस्तक में संग्रह किये हैं। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है। जैन गजट आफिस, ८ अस्मन कुवेल स्ट्रीट, मदरास के पते से मगाने पर मिल सकती है इस पुस्तक में चन्द्रगुप्त का जैनी होना प्रमाणित है। अशोक भी अपनी तरुण व्यय में जैनी होना सिद्ध है। इन सब का वर्णन श्रवण बेलगोल के शिलालेखों (Early faith of Ashok Jainism by Dr Thomas South Indian Jainism II page 39) एवं राजतरंगणी और आइनई अकबरी में मिल सकता है। पाठकों को चाहिए कि उपरोक्त पुस्तकें मंगा कर इन बातों से जरूरी जान कारी प्राप्त करें। आगे और भी देखिये, भिन्न भिन्न विद्वानों का क्या मत है ?

डाक्टर ल्यूमन Vienna Oriental Journal VII 382 में श्रुतकेवलीभद्रबाहुस्वामी और चन्द्रगुप्त की दक्षिण की यात्रा को स्वीकार करते हैं।

डाक्टर हनिले Indian Antiquary XXI 5960 में तथा डाक्टर टामस साहब अपनी पुस्तक Jainism of the Early Faith of Asoka page 23 में लिखते हैं कि "चन्द्रगुप्त एक जैन समाज का योग्य व्यक्ति था। जैन ग्रथकारों ने एक स्वय सिद्ध और सर्वत्र विख्यात बात का वर्णन करते हुए उपरोक्त कथन को भी लिखा है जिसके लिए किसी भी प्रकार के अनुमान का प्रमाण देने की आवश्यकता ज्ञात नहीं होती है। इस विषय में लेखों के प्रमाण बहुत प्राचीन हैं तथा साधारण तया संदेह रहित हैं। मैगस्थनीज ( जो चन्द्रगुप्त की सभा में विदेशी दूत था ) के कथनों से भी यह बात झलकती है कि चन्द्रगुप्त ब्राह्मणों के सिद्धान्तों के विपक्ष में और श्रमणों (जैनमुनियों) के धर्मोपदेश को ही स्वीकार करता था।" डॉ० टामस साब अपने लेखों में यह सिद्ध करते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र और बिन्दुसार और पौत्र अशोक भी जैन धर्मावलम्बी ही थे। इस बात को पुष्ट करने के लिये डॉ० साहब ने जगह जगह मुद्राराक्षस, राज तरंगिणी और आइनई अकबरी के प्रमाण दिये हैं।

श्रीयुत का० प्र० जायसवाल महोदय Journal or the Behar and Orissa Research Society Volume III में लिखते हैं— "प्राचीन जैन ग्रंथ और शिलालेख चन्द्रगुप्त मोर्य को जैन राजर्षि प्रमाणित करते हैं। मेरे अध्ययन ने मुझे जैन ग्रन्थों की ऐतिहासिक वार्ताओं का आदर करना अनिवार्य कर दिया है। कोई कारण नहीं कि हम जैनियों के इन कथनों को कि चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रौढ़ा अवस्था में राज्य को त्याग कर जैन दीक्षा ले मुनिवृति में ही मृत्यु को प्राप्त हुए, न माने इस बात को मानने वाला मैं

महाराजा बिन्दुसार—चन्द्रगुप्त के राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र बिन्दुसार हुआ। वह भी बड़ा पराक्रमी और नीतिज्ञ राजा था। वह जैन धर्म का उपासक एवं प्रचारक भी था। इसके शासनकाल में भी जैनधर्म उत्थान के उच्च शिखर पर था। बौद्ध और वेदान्तियों का जोर मिटता जा रहा था। उनके दिन पर नहीं थे। जो राजा का धर्म होता है वही प्राय प्रजा का होता है यह एक साधारण बात है। इसी नियमानुसार जैनधर्म का क्षेत्र बहुत ही बढ़ गया था। बिन्दुसार राजा शान्ति प्रिय एवम् संतोषी था। इसका राज्यकाल निर्विघ्नतया बीत रहा था। इसके शासन के समय मे ऐसी कोई भी महत्व की घटना नहीं घटित हुई जिसका कि इस जगह विशेष उल्लेख किया जाय।

राजा अपनी प्रजा को पुत्र तुल्य समझता था तथा प्रजा भी अपने राजा की पूर्ण भक्त थी। जैनधर्म का एक अद्वितीय शक्ति भी है जिसका अमल बिन्दुसार के साम्राज्य समय में विशेष था। इसने कई आश्चर्य की। कुमारी कुमार तीर्थ पर तो यह राजा निर्वृत्ति भाव में कई बार संलग्न रहता था। लोकोपकारी कार्यों में राजा की अधिक रुचि थी। प्रजा के सुभीते के लिए जगह-जगह कूप, तालाब सड़के और बगीचे बनाने में इसने विपुल सम्पत्ति व्यय की। अनेक विद्यालय एवं चिकित्सालय इनके हाथ से प्रतिष्ठित हुए। कृषि, व्यापार और शिल्प की उन्नति के लिए भी बिन्दुसार ने विशेष प्रयत्न किया था।

सम्राट बिन्दुसार के समय में भारतवर्ष का व्यापारिक विकास बहुत हुआ। पश्चिमीय देशों के साथ चन्द्रगुप्त के समय में भारत का जितना व्यापारिक सम्बन्ध था बिन्दुसार के समय में वह उससे बहुत अधिक बढ़ गया था। व्यापार के लिए बहुत से नये-नये मार्ग खुल गये थे। और दूसरे देशों के साथ आपस म दूतों का आदान प्रदान हुआ करता था। अर्थात् यहां के राजदूत दूसरे देशों की राज सभाओं में और दूसरे देशों के राजदूत यहां की राजसभा में उपस्थित रहा करते थे। मेगस्थनीज के चले जाने के पश्चात् सेल्यूकस निकेटर के पुत्र "एन्टीओकस" ने अपना नवीन दूत समूह सम्राट् बिन्दुसार के राज-दरबार में भेजा। उसके पश्चात् मिश्र के तत्कालीन राजा 'टालमी फिलाडेल्फस" ने भी 'डियोनी सेयस' नामक राजदूत की प्रधानता में अपना एक दूत समूह भेजा। इससे प्रगट होता है कि उस समय भारत वर्ष का दूसरे देशों के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध था। इतना होते हुए भी इन देशों के ऊँची श्रेणी के विद्वान दूसरे देशों में कम आते जाते थे। इस विषय में सम्राट् बिन्दुसार के शासन की एक घटना प्रसिद्ध है एक बार सम्राट् बिन्दुसार ने यूनानी नरेश एन्टीओकस को लिखा था कि आप अपने देश का एक ऊँचा दार्शनिक हमारे देश में भेज दें। उसके बदले में हम आपको बहुतसी मूल्यवान वस्तुएं भेंट में प्रदान करेंगे। इसके उत्तर में एन्टीओकस ने परिहास के साथ यह उत्तर दिया कि, "यूनान के तत्वज्ञानी दुकानों के मूल्य में नहीं बिका करते। इस उत्तर से साफ जाहिर होता है कि उस समय के सभ्य देश अपने विद्वानों की कितनी इज्जत किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि बिंदुसार ने अपने शासनकाल में दक्षिण प्रांत को जीत कर अपने पिता के साम्राज्य में मिला दिया परन्तु अन्य विद्वानों की राय है कि दक्षिण प्रान्त को चन्द्रगुप्त ने ही अपने साम्राज्य में मिला लिया था। कुछ भी हो बिन्दुसार ने अपने २५ वर्ष के शासनकाल में चन्द्रगुप्त के द्वारा जमाई हुई नीव को बिल्कुल ढीली न होने दिया बल्कि उसको और भी मजबूत बनाने की चेष्टा करते रहे।

भक्ति के साथ उन श्रमणों की पूजा किया करते थे । उन्हें बड़े प्रभावशाली एव प्रखर ज्ञानी जानकर महाराज चन्द्रगुप्त सदा उनके कृपाभिलाषी रहा करते थे और उन्हें बड़ी पूज्य दृष्टि से सम्मानित कर प्राय देवताओं की पूजा और आराधना उन्हीं से कराया करते थे ।"

३—मि० ई० थॉमस कहते हैं कि:—"महाराज चन्द्रगुप्त जैनधर्म के नेता थे । जैनियों ने कई शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा इस बात को प्रमाणित किया है । और आपका यह भी कथन है कि मौर्य चन्द्रगुप्त के जैन होने में शकोपशंका करना ही व्यर्थ है, क्योंकि इस बात की साक्षी कई प्राचीन प्रमाणपत्रों में मिलती है और वे प्रमाणपत्र ( शिलालेख ) निस्सशय प्राचीन हैं । महाराज चन्द्रगुप्त का पौत्र जो एक प्रबल सार्वभौम नृपति था । वह यदि अपने पितामह के धर्म का परिवर्तन नहीं करता अर्थात् बौद्धधर्म अङ्गीकार नहीं करता तो उसको जैनधर्म का आश्रयदाता कहने में किसी प्रकार की अत्युक्ति न होती । मेगस्थनीज का कथन है कि "ब्राह्मणों के विरुद्ध जो जैनमत प्रचलित था उसी को चन्द्रगुप्त ने स्वीकार किया था ।"

४—मि० विल्सन साहब कहते हैं कि:—"यदि मुझे जैनधर्मावलम्बियों की समालोचना करनी होगी तो भारतवर्ष पर आक्रमणकर्ता मसीडोनियन अलेकजेण्डर तक की ऐतिहासिक बातें की खोज करनी पड़ेंगी । अर्थात् मेगस्थनीज ने जैनियों का वर्णन किया है "एरियन" 'स्ट्रैबो' इन प्रसिद्ध ग्रन्थकारों ने भी पूर्ण उल्लेख किया है । और मेगस्थनीज लगभग उसी समय में ( अलेकजेण्डर के समय में ) भारतवर्ष में आया था ।"

५—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ और पुरातत्ववेत्ता मि० बी० लुइसराइस साहब कहते हैं कि:—"चन्द्रगुप्त के जैन होने में कोई सन्देह नहीं है" और यह भी कहते हैं कि "निस्संदेह चन्द्रगुप्त भद्रबाहु के समकालीन थे ।"

६—एन्सायक्लोपीडिया आफ रिलीजन में लिखा हुआ है कि:—"वि० पू० सं० २९७ में ससार से विरक्त होकर चन्द्रगुप्त ने मैसूर प्रान्तस्थ श्रवणबैलगुल में बारह वर्ष तक जैनदीक्षा से दीक्षित होकर तपस्या की और अन्त में तप करते हुए स्वर्गधाम को सिधारे ।"

७—मि० जार्ज सी० एम० बर्डवुड लिखते हैं कि:—"चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार ये दोनों बौद्धधर्मावलम्बी नहीं थे । किन्तु जैनधर्मोपासक थे, हाँ चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने जैनधर्म को छोड़ कर बौद्धधर्म स्वीकार किया था । ।

The venerable Ascetic Mahavira's Parents were worshipers of Parsva and Followers of the Sramanas

S B E Vol 22 Kalpa sutra
B K II Lc 15 P 191

अर्थात्— भगवान महावीर के मातापिता पार्श्वनाथ के उपासक थे और श्रमणों के अनुयायी थे ।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त जैनधर्मोपासक था यों तो सम्राट हमेशा आत्म भावना के साथ जैनधर्म की आराधना करता ही था पर अपनी पिछली अवस्था में तो दूसरी दूसरी खटपटें छोड़कर निर्वृत्ति पथ का पथिक बन गया था

उस समय कश्मीर, नेपाल, हिन्दुकुश पर्वत तक का सारा अफगानिस्तान बलुचिस्तान, और पंजाब मिले हुए थे। तक्षशिला का विश्वविद्यालय आयुर्वेद शिक्षा के लिए उस समय जगत् प्रसिद्ध था। अशोक ने बहुत उद्योग करके उस विश्वविद्यालय की बहुत उन्नति की उस समय सारे भारतवर्ष के धनी मानी लोगों के लड़के और विद्याप्रेमी लोग विद्या प्राप्त करने के लिए तक्षशीला जाते थे।

वीर राजा अशोक ने तक्षशिला में रह कर एक होनहार राजा की तरह शासन को सुचारु रूप से चलाया। वैरियों पर अशोक की बड़ी भारी छाप पड़ गई कि वे किसी प्रकार से सिर ऊँचा न कर पाते थे। जब सम्राट् बिन्दुसार ने अशोक का राज प्रबन्ध अच्छा जान कर उसको उज्जैन भेज दिया तो वहाँ भी उसने अपनी कार्य कुशलता से राजतन्त्र सुव्यवस्थित रूप से चलाया।

जब बिन्दुसार का देहान्त हो गया तो राजतन्त्र अशोक के हस्तगत हो गया फिर भी अशोक का ४ वर्ष तक राज्याभिषेक नहीं हुआ। उसने अपने भाइयों को समझाने में चार व व्यतीत किये। बिन्दुसार के एक रानी का पुत्र सुसीम था उसने अशोक पर चढ़ाई की थी परन्तु उस युद्ध में वह मारा गया।

बौद्ध ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि अशोक ने अपने ९९ भाइ बहिनों को मार डाला था पर यह बात प्रमाणित नहीं होती है। कारण अशोक के राज्यारोहण होने के बाद कई भाई और बहिन जीवित थे। शायद पहिली अवस्था में अशोक जैन था अतः बौद्धों ने बौद्धत्वकाल में अशोक को क्रूरघातिवाला चित्रित कर दिया हो। वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। अशोक ने ४ वर्ष तक अपना राज्याभिषेक नहीं करवाया इसका मुख्य कारण अपने भाइयों को समझाने का ही था तो फिर यह कैसे समझा जाय कि अशोक ने अपने सब भाई बहिनों को मारडाला था।

जब सम्राट् अशोक का मगध की राजधानी पाटलीपुत्र में राज्याभिषेक हुआ इसके पश्चात् अशोक ने अपनी राजसीमा को भारत के बाहर के प्रदेश तक प्रसरित करदी थी। सम्राट अशोक जैसा वीर था वैसा उदार भी था। वह अपनी प्रजा को सब तरह से आराम पहुँचाना चाहता था पर साथ में जनता में अन्याय और अत्याचार को रोकने का भी पूरा पूरा प्रबन्ध रखता था। कहा जाता है कि अशोक ने दंडविधान में एक जैन शास्त्रों के अनुसार नरकावास भी बनाया था। उस नरकावास की सजा उसको ही दी जाती थी कि जिसका बड़े से बड़ा अपराध हो। हाँ, कभी कभी निरपराधी लोग भी इस नरकावास का दंड सहन करते हुए अपने प्राणों की बलि दे देते थे। जब सम्राट् को इस नरकावास की क्रूरता मालूम हुई तो फौरन उसने उसको तोड़ दिया।

कुछ भी हो पर अशोक ने अपनी प्रजा के अन्दर सदाचार के ऐसे संस्कार डाल दिये थे तथा ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा था कि इसके दीर्घकाल के शासन में ऐसी कोई घटना नहीं बनी कि जिसको प्रजा की पुकार कह सकें।

यह तो पहिले ही लिखा जा चुका है कि अशोक ने प्रायः भारत और भारत के अलावा कई प्रान्त पर भी अपनी विजय ध्वजा फहरा दी थी पर मगध के निकटवर्ती कलिंग देश के राजाओं ने अशोक की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। यह बात अशोक को खटकती थी। अतः समय पाकर अशोक ने कलिंग पर धावा बोल दिया।

सम्राट् बिन्दुसार २५ वर्ष तक शान्तिपूर्वक शासन करके समाधि पूर्वक स्वर्गवासी हुये। उनके पश्चात उनके कनिष्ठ पुत्र "अशोक" राज्यसिंहासनारूढ़ हुये।

सम्राट अशोक—यह अपने पिता बिन्दुसार का उत्तराधिकारी था। इतिहास काल में भारत सम्राटों में आपका नम्बर दूसरा है। यद्यपि सबसे प्रथम सम्राट् का यश चन्द्रगुप्त को ही है परन्तु अशोक भी उससे कम नहीं था किन्तु किसी अपेक्षा उसकी उदारता और भी विशाल थी जो कि आगे चलकर आप इसके जीवन को पढ़ेंगे तो स्वयं ज्ञात हो जायगा।

अशोक का जन्म—बौद्धों के प्राचीन साहित्य में "अशोकावदान" नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्राय अशोक की जीवनी से ही अधिक सम्बन्ध रखता है। इसमें अशोक के जन्म से सम्बन्ध रखने वाली एक विचित्र घटना का उल्लेख किया गया है। उसमें लिखा है —

"चम्पानगरी में एक ब्राह्मण के घर पर एक सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। एक ज्योतिषी ने उस कन्या के सब लक्षण देख कर कहा कि यह कुमारी अवश्य किसी चक्रवर्ती की माता होगी। यह सुनकर वह ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ, और जब वह कन्या युवती हुई तो उसे सम्राट् बिन्दुसार के पास ले गया, एव ज्योतिषी के द्वारा कही हुई भविष्यवाणी भी उन्हें कह सुनाई। उस कन्या के अलौकिक रूप को देखते ही सम्राट् बिन्दुसार उस पर मोहित हो गये और तुरत ही उन्होंने उसे अपने रनवास में भेज दिया। रनवास की दूसरी रानिया इस कन्या के रूप को देखकर मन ही मन कुढ़ने लगीं। उसके मन में यह सन्देह होने लगा कि कहीं सम्राट् इस कन्या के रूप पर मोहित होकर हमारी उपेक्षा न करने लग जाय। इस आपत्ति से बचने के लिए उन्होंने एक युक्ति सोची। वे सब उस कन्या को "नापितानी" कह कर ज़ाहिर करने लगीं और उससे उन्होंने दासी की तरह काम लेना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय के पश्चात् एक दिन सम्राट् बिन्दुसार ने उसे देखा, वे उस पर फिर दुबारा मोहित हो गये। वे उससे कहने लगे कि, "तुम्हारी अपूर्व रूप राशि ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है, बताओ तुम्हारी क्या कामना है? हम तुम्हारी सब कामनाओं को पूर्ण करेंगे" यह सुनकर उस ब्राह्मण कन्या ने लज्जा से नीचा मुँह कर लिया। राजा के दूसरी बार प्रश्न करने पर उसने कहा कि मैं तो आपको चाहती हूँ। यह सुनकर राजा ने हस कर कहा कि तुम तो एक नापित कन्या हो और मैं भारतवर्ष का सम्राट् हूँ, भला यह सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इस पर ब्राह्मण कन्या ने कहा, "भगवान। मैं नापित कन्या नहीं प्रत्युत एक ब्राह्मण कन्या हूँ। आपकी पत्नी बनने का सोभाग्य मुझे प्राप्त हो, इसी उद्देश्य से मेरे पिता मुझे आपके सुपुर्द कर गये थे।" यह सुनते ही राजा को तत्काल पूर्व घटना की स्मृति हो आई और उन्होंने उस ब्राह्मण कन्या को पटरानी बना दिया। इस कन्या के गर्भ से दो पुत्रों का जन्म हुआ। पहिला अशोक और दूसरा वीताशोक।"

अशोक के पहिले सम्राट् बिन्दुसार के पूर्व पट्टरानी से उत्पन्न "सुसीम" नामक एक और पुत्र था। एक बार सम्राट् बिन्दुसार ने अशोक पर नाराज होकर उसे तक्षशिला के बलवाइयो को (एक बार तक्षशिला के लोगों ने बिन्दुसार के विरुद्ध बलवा किया था) दबाने के लिये भेज दिया। अशोक सेना वगैरह से सुसज्जित होकर तक्षशिला पर चढ़ गया और बिना युद्ध किये हुए अपने कौशल से उस बलवे को दबा दिया। इसके पश्चात् कितने ही दिनों तक वह तक्षशिला का राज्य प्रतिनिधि रहा। तक्षशिला के राज्य मे

नीति कमजोर थी। सम्राट् चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार की नीति के आधार पर सम्राट् अशोक ने अपनी नीति बनाई थी। दीवानी और फौजदारी की अदालतें भी उसी प्रकार चलती थीं। गुप्तचर विभाग भी काम किया करता था। जो कि भविष्य में अत्याचारियों के अत्याचार को रोकने में समर्थ कहा जा सकता।

सम्राट् अशोक ने अपने तमाम कर्मचारियों अफसरों और जिले के मजिस्ट्रेटों का एक प्रधान कर्तव्य यह ठहराया था कि वे अपने क्षेत्रों में कभी २ भिन्न २ स्थानों पर सभाएँ करके जनता को धर्मनीति और चरित्र की शिक्षा दें। उन्हें हमेशा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये कि जिससे जनता के अपराधों की संख्या न बढ़े। एक नीति निरीक्षकों का दल भी उसने इस लिए नियुक्त किया था कि वह विशेष रूप से जीवों की रक्षा के लिए कानून बनावे और गुरुजनों के सम्मान और पूजन के लिए जो व्यवस्था राज्य की ओर से की गई है उसका पालन यत्न-पूर्वक जनता से करवावे। इस दल के अफसरों को यह आज्ञा दी थी कि सभी लोगों और सभी सम्प्रदायों पर यहां तक कि राज परिवार पर भी वह दृष्टि रक्खे।

इससे मालूम होता है कि अशोक ने अपराधों की संख्या घटाने के लिए कितना अधिक प्रयत्न किया था। और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह अपने प्रयत्नों में सफलीभूत भी हुआ। अशोक के शासन में अपराधों की संख्या बहुत घट गई थी।

उसकी शासन नीति की सफलता का एक सुन्दर प्रमाण यह भी है कि उसके इकतालीस वर्ष के विस्तीर्ण काल में साम्राज्य के अन्दर कहीं भी बलवा या विद्रोह नहीं हुआ। इतने बड़े विशाल राज्य में इतने दीर्घ काल तक बिना किसी विद्रोह के रहना इस बात को प्रमाणित करता है कि उसकी शासन नीति बहुत ही उत्तम थी। और उसके शासन में प्रजा बहुत सुखी और सम्पन्न थी।

आयुर्वेदीय विभाग—चन्द्रगुप्त के समय के औषधालय-विभाग की प्रशंसा हम पहले कर आए हैं। पर सम्राट् अशोक ने इस विभाग में उससे भी अधिक उदारता दिखलाई। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के ही अन्दर औषधालयों का आयोजन किया था। पर अशोक ने न केवल अपने साम्राज्य में ही प्रत्युत पश्चिमी भारत और यूनानी एशिया के प्रान्तों में भी औषधालय खुलवाये थे। सारे संसार के इतिहास में शायद यही पहला सम्राट् था जिसने इतनी उदारता का परिचय दिया।

पथिकों के विश्राम का प्रबन्ध—सम्राट् अशोक के समय में स्थान २ पर सड़कों पर व्यवस्थित प्रबन्ध था। सड़कों पर बड़े २ पीपल के वृक्ष आमों की वाटिका और कई प्रकार के पेड़ लगाए हुए रहते थे जिनकी सघन छाया सड़कों पर पड़ती रहे। जिसके कारण पथिकों को मार्ग में कष्ट न हो। प्रति माइल पर कूप भी खुदवाये जाते थे। धर्मशालाएँ और सराएँ भी स्थान २ पर बनवाई जाती थीं।

ललित कलाओं की उन्नति—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० विन्सेण्ट स्मिथ ने अशोक के समय की ललित कलाओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "अशोक के समय में भारत की ललित कलाओं ने उन्नति की चरम सीमा देखी थी। राजकीय इन्जिनियर और स्थपित पत्थर, ईंट और लकड़ी के अत्यन्त विशाल और महत्वयुक्त निर्माण करते थे। इनमें भिन्न भिन्न और उचित अवसरों पर पानी के जाने और आने के लिए द्वार बने हुए रहते थे। वे कठिन से कठिन चट्टानों को बहुत ही सुंदर, सीधे और बड़े २ स्तम्भ बनाने एवं

कहा जाता है कि जिस समय अशोक ने कलिंक पर चढ़ाई की थी उस समय कलिंग निवासी क्या राजा और क्या प्रजा सब के सब जैन धर्मोपासक थे। इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कारण वेदान्ती लोगों ने तो कलिंगवासियों को "वेदविनाशक" कहा है तथा ब्राह्मणों ने तो यहाँ तक भी लिख दिया था कि —

"गत्वैतान् कामतो देशात् कलिंगाश्च पतित् द्विजा"

अब वेदान्तियों ने तो कलिंग में जैन रहने के कारण उस देश को ही अनार्य भूमि कह कर ब्राह्मणों को कलिंग में जाने की सख्त मनाही कर दी थी। इतना ही क्यों पर कलिंग में जाने वाले ब्राह्मणों को पतित कह दिया है। दूसरे अशोक के युद्ध के पूर्व वहाँ बौद्धधर्म का नाम निशान तक भी नहीं था। अत अशोक के युद्ध के पूर्व कलिंग देश के निवासी सब के सब जैनधर्मावलम्बी थे।

अशोक की सेना के साथ कलिंग के वीरों ने खूब युद्ध किया जहाँ तक अपनी चली वहाँ तक सामना किया पर आखिर अशोक की सेना के सामने कलिंग की सेना ठहर नहीं सकी। इस युद्ध में अशोक की विजय तो हो गई पर लड़ाई में इतने लोगों का सहार हुआ कि जिसको देख अशोक के दिल में युद्ध के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न हो गये और उसने मन ही मन यह प्रतिज्ञा भी करली कि अब मैं ऐसा युद्ध कभी नहीं करूँगा। यहा तक अशोक जैन ही था एव जैन सस्कारों से ही उसे युद्ध से घृणा आई थी।

एक तरफ तो अशोक को उस घोर हिंसा प्रति घृणा हो रही थी तब दूसरी ओर बौद्ध भिक्षुओं का उसी समय आगमन हुआ। बस, उस समय थोड़े से उपदेश की ही जरूरत थी। बौद्ध भिक्षुओं ने ज्योंही अशोक को उपदेश दिया त्योंही उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। फिर भी अशोक के पिता पितामह से चले आये जैनधर्म का सस्कार उनके हृदय से सर्वथा दूर नहीं हुआ था। इस बात की साबूती स्वय अशोक की धर्म लिपियें दे रही हैं। जिन लिपियों को सम्राट् अशोक की वतलाई जारही हैं उनमें भी कहीं २ जैनत्व की झलक आती है जैसे तक्षशिला की आज्ञा के मगलाचरण में भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। खैर, इसके विषय तो हम आगे चल कर लिखेंगे पर इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि अशोक का घराना शुरू से जैनधर्मापासक था और जब तक अशोक ने बौद्धधर्म स्वीकार नहीं किया था तब तक स्वय अशोक भी जैन ही था।

कलिंग के युद्ध के बाद अशोक ने अपना शेप जीवन धर्म करनी में एव धर्म प्रचार में ही व्यतीत किया था। जनता के हित के लिये उसने कुँवाँ, तालाब, सड़कें, मुसाफिरखाने तथा साधु सन्यासियों के लिये मठ सधाराम वगैरह अनेक पुण्य कार्य्य किया था। सम्राट् अशोक समय समय पर अपनी आज्ञायें— पत्थर की बड़ी बड़ी चट्टानों पर खुदवा कर जनता के दिल में सदाचार एव धार्मिक सस्कारों को खूब दृढ़ करता था। अशोक यों तो बौद्धधर्मी कहलाता था पर किसी धर्म के खिलाफ उसने न तो कभी एक शब्द भी उच्चारण किया था और न उनकी खुदाई हुई धर्म आज्ञायें में एक अक्षर भी दीखता है यही कारण हैं कि अशोक के दीर्घकाल के शासन में किसी प्रकार का धर्म युद्ध हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सम्राट अशोक का शासन विभाग—हम पहले लिख आये हैं कि सम्राट् अशोक का जीवन प्राय, धर्म प्रचार में ही अधिक व्यतीत हुआ। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनके समय की शासन

पश्चिमी एशिया के कुछ भाग को छोड़ कर सारे एशिया में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया। सिंहासन पर आरूढ़ होते ही सम्राट् ने बौद्धधर्म की दीक्षा ली और उसके पश्चात् करीब ढाई वर्ष तक वे स्वयं भिक्षु के वेश में रहे। उन्होंने स्थान २ पर प्रचारकों को भेज कर बौद्धधर्म का प्रचार करवाया। उन्होंने न केवल भारत में वरन् पश्चिमी देशों में भी प्रचारक भेजे। एक इतिहास लेखक लिखते हैं कि "सम्राट् अशोक संसार में पहिले शासक थे, जिन्होंने अपनी राजकीय सम्पत्ति को धर्म प्रचार में लगाया और जिसने इस धर्मप्रचार से अपने लिए, अपने उत्तराधिकारियों के लिए और अपनी जाति के लिए किसी प्रकार के लाभ की इच्छा न रक्खी। सारे संसार के इतिहास में धर्मप्रचार का यह उदाहरण अद्वितीय और अनुपम है। दूसरे धर्मों में धर्मप्रचार के साथ २ देशों को जीता गया, दूसरे धर्म के मन्दिरों को गिराया गया, लड़ाइयां लड़ाई गईं जैसा कि अब भी लोगों का विश्वास है कि बाइबिल का प्रचार यूरोपीय जातियों की सेना का अग्रगामी होता है। कई इतिहासज्ञ अशोक की तुलना ईसाई राजा कॉन्स्टेण्टाइन से करते हैं परन्तु कॉन्स्टेण्टाइन और अशोक की प्रचार नीति में बहुत अधिक अन्तर है। न्याय यह चाहता है कि अशोक को अपने ढङ्ग का एक अकेला ऐसा शासक समझा जाय जिसके ढङ्ग का आज तक मनुष्य जाति ने उत्पन्न नहीं किया। हाँ कान्स्टेण्टाइन के समय में ईसाई धर्म कुछ बहुत फैल चुका था।"

सम्राट् अशोक ने मिश्र, शाम सायरीन मकदूनिया, लंका और दक्षिण भारत के स्वतंत्र राष्ट्रों में भी अपने धर्मप्रचारक भेजे थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत, हिमालय के प्रान्त, हिंदूकुश के प्रांत, काबुल के उत्तर का गान्धार और यवन देशों में भी उन्होंने बौद्धधर्म का प्रचार किया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक अलबरूनी लिखता है कि "मुसलमान धर्म के आरम्भ के पूर्व सारे मध्य एशिया में बौद्धधर्म फैला हुआ था। ईरान, ईराक, रूम, आसाम, शाम आदि देशों में भी बौद्धधर्म का गहरा असर पड़ रहा था। लंका में बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिये स्वयं अशोक का भाई महेन्द्र गया था और उसके साथ अशोक की पुत्री संघमित्रा भी गई थी उसने वहां के तत्कालीन राजा को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी और सारे लङ्का द्वीप में बौद्धधर्म का प्रचार किया। तब से आज तक लङ्का द्वीप बौद्धधर्म का उपासक है। महेन्द्र ने अपना बाद जीवन लङ्का में धर्म प्रचार करते हुए व्यतीत किया। आज भी लङ्का मे बौद्ध लोग महेन्द्र की पूजा करते हैं। उसके स्मारक स्वरूप वहा पर एक स्तूप बनाया गया था। इस समय भी वह स्तूप लंका मे दर्शनीय गिना जाता है। हाल ही में पुरातत्त्व वेत्ताओं के परिश्रम से लंका मे अनुराधपुर नामक नगर के कुछ खण्डहर मिले हैं। यह अनुराधपुर संसार में बौद्धधर्म का एक अद्भुत स्मारक है। एक अंग्रेज लेखक ने इस नगर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि इसके सम्मुख रोम और यूनान तुच्छ जान पड़ते हैं। अस्तु ! सम्राट् अशोक ने पेगू—जिसे उस काल में स्वर्णभूमि कहते थे—वहां भी बौद्धधर्म का प्रचार करवाया था। इसके अतिरिक्त चोल पाण्ड्य करेलपुत्र सतियपुत्र इन चार स्वतंत्र दक्षिण प्रांतों में भी उसने बौद्ध धर्म के अनेक विहार और मंदिर बनवाये थे। मतलब यह है कि बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए सम्राट् अशोक ने कोई भी बात उठा न रक्खी। यदि सम्राट् अशोक, और महाराजा कनिष्क न होते तो आज महात्मा बुद्ध के नाम करोड़ अनुयायी दिखलाई पड़ते या नहीं यह कौन कह सकता है ? उस समय बौद्धधर्म का प्रभाव प्रायः सारी ज्ञात दुनिया पर पड़ रहा था। यूनानी तत्त्वज्ञान और ईसाई धर्म पर भी बौद्धधर्म का बहुत प्रभाव पड़ा।

सुसज्जित कमरे खोद देते थे। आलेख्यवस्तु विद्या का एक अंग समझा जाता था। तमाम महत्वपूर्ण इमारतों में आलेख्य और चित्र बड़ी कारीगरी से बनाए जाते थे।"

वास्तव में सम्राट् अशोक संसार के उन सम्राटों में से एक थे। जिन्होंने बड़े २ विशाल भवनों का निर्माण करवाया। गुप्त साम्राज्य के द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में जब प्रसिद्ध चीनी यात्रि फाहियान आया था तब सम्राट् अशोक का विशाल राजप्रासाद मौजूद था। उसे देख कर चीनी यात्री दङ्ग रह गया। उसने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है कि, "यह राजभवन इतना विशाल था और उसके अन्दर मीनाकारी और पत्थर का ऐसा आश्चर्यजनक काम देखा था कि उस देख कर कोई भी मनुष्य उसको मनुष्य निर्मित नहीं कह सकता। वास्तव में ये प्रासाद देवनिर्मित मालूम होते हैं। राजप्रासाद की ही तरह अशोक ने बहुत से विशाल बौद्ध मन्दिर और विहार भी बनाए थे। ये मन्दिर भी उस समय की वास्तु विद्या की उच्चता को प्रकट करते हैं। अशोक के समय के बहुत से ऐसे पाषाण के स्तम्भ मिले हैं, जिनकी ऊँचाई लगभग पचास फीट और वजन करीब पचास टन हैं। उनकी पालिश इतनी सुन्दर है कि अब तक नहीं मिटी और आधुनिक इन्जिनियर लोग भी यह नहीं बतला सकते कि वह पालिश किस प्रकार की जाती थी। इसी प्रकार सारनाथ के अशोक के सिंहाकृति वाले सिरों को जिन्होंने देखा है, वे उस समय की कारीगरी की उत्तमता का अनुमान कर सकते हैं।

अब हम उस मुख्य विषय की ओर झुकते हैं जो सम्राट् अशोक के जीवन का प्रधान विषय रहा था। हम पहले ही लिख आए हैं कि सम्राट् अशोक की प्रधान रुचि धर्मप्रचार की ओर ही थी। सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व वे किस धर्म के अनुयायी थे। यह विषय अभी विवादास्पद है। कुछ लोगों का अनुमान है कि सम्राट् अशोक सिंहासन पर बैठने के पूर्व जैनधर्मानुयायी थे। इसका प्रमाण देते हुए वे कहते हैं कि, यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार जैनी थे, और पुत्र का पिता और पितामह के स्वीकृत किये हुए धर्म का अनुयायी होना अधिक स्वाभाविक है। यदि उसका मत बदलता भी है तो पूर्ण अध्ययन के पश्चात्। अतएव सम्राट् अशोक का प्रारम्भ में जैनी होना ही अधिक उपयुक्त मालूम होता है×। कुछ लोग उन्हें वेदमतावलम्बी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। वे कहते हैं कि पहिले उसकी पाकशाला में सहस्रों जीव मारे जाते थे। बौद्धधर्म ग्रहण करने पर भी दो मोर और एक हिरण उसके लिये मारा जाता था। जो कुछ भी हो पर इस बात के सत्य होने में सन्देह नहीं हो सकता कि सम्राट् अशोक अपने पूर्वकाल में बुद्धानुयायी नहीं थे। इसका एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि उस समय तक बौद्धधर्म भारतवर्ष में भले प्रकार प्रतिष्ठित भी न हो सका था। जब जैनधर्म प्राचीन समय से चला आ रहा है और खूब प्रतिष्ठा पा चुका था यद्यपि बौद्ध और जैन धर्म के प्रचारकों ने लोगों के हृदय में वेदधर्म के विरुद्ध बहुत से भाव फैला दिये थे तथापि जनता के हृदय में अभी तक बौद्ध जैसे नवीन धर्मो की जड़ मजबूती से नहीं जमने पाई थी वास्तव में सम्राट् अशोक ने बुद्धधर्मानुयायी हुए पश्चात् ही बौद्धधर्म की अधिक उन्नति हुई। ज्योंही उन्होंने बौद्धधर्म स्वीकार किया त्योंही तन, मन, धन से उन्होंने इस धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप कुछ ही समय में

+ देखो—जैनधर्म का प्राचीन इतिहास पे० ही० हो० जामनगर

काश्मीर प्रान्त भी इनके साम्राज्य में मिले हुए थे। काश्मीर की राजधानी "श्रीनगर" को स्वयं सम्राट् ने ही बसाया था। नैपाल में भी इन्होंने "ललितपुर" नामक एक नवीन राजधानी बसाई थी। जो कि काठमान्डू से दो तीन मील दक्षिण-पूर्व में है। सम्राट् की लड़की चारुमति ने भी नैपाल में अपने पति देवपाल के स्मरणार्थ देवपाटन नामक एक नगर बसाया था। यह तो साम्राज्य की उत्तर सीमा हुई। पूर्व में बंगाल प्रान्त अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था। दक्षिण में कलिङ्ग आन्ध्र और पूर्वी किनारे का सारा प्रान्त अशोक के अधीन था।। केवल चौल पाण्ड्य, करेलपुत्र और सतीयपुत्र अशोक साम्राज्य से बाहिर थे। इस सारे साम्राज्य को अशोक ने कई भागों में विभक्त कर दिया था। इनमें भिन्न २ भागों में एक एक राजप्रतिनिधि राज्य करता था। एक राजप्रतिनिधि तक्षशिला में, दूसरा कलिंग के अन्तर्गत तोसली में, तीसरा उज्जैन में और चौथा दक्षिण देश में रहता था। इन प्रतिनिधियों में राज्य घराने के अथवा उनके पूर्ण विश्वास पात्र लोग ही रहा करते थे।

सम्राट अशोक की तीर्थयात्रा—अब कि सम्राट अशोक ने अपने तमाम बौद्ध तीर्थों की यात्रा करना प्रारम्भ किया। सबसे पहले वे मुजफ्फरपुर (आधुनिक) और चम्पारन के जिलों में होते हुए नैपाल गये। मार्ग में कई स्थानों पर इन्होंने चार बड़े २ स्तम्भ खड़े करवाये। वहां से चलकर वे महात्मा बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनि कानन में पहुँचे। भगवान बुद्ध की माता मायादेवी को नैहर जाते समय रास्ते में इसी स्थान पर प्रसव वेदना हुई थी, और यहीं पर सिद्धार्थ कुमार का जन्म हुआ था। इस स्थान सम्राट ने एक स्तम्भ खड़ा करवाया वहां से चलकर सम्राट् बुद्धदेव के पिता शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु गये। इसके पश्चात् वे सारनाथ जहां पर कि, भगवान् बुद्ध ने सर्व प्रथम उपदेश किया था गये। सारनाथ से वापिस लौटते हुए वे बुद्ध गया पहुँचे। इस स्थान पर भगवान् बुद्ध को बोधी ज्ञान प्राप्त हुआ था। वहां से कुशीनगर लौटते हुए वे पुनः अपनी राजधानी लौट गये।

सम्राट अशोक के खुदाये हुए शिलालेख—पुरातत्त्व विभाग के शोध खोज द्वारा भगवान महावीर के ८४ वर्ष बाद का तथा एक लेख महात्मा बुद्ध का इन प्राचीन दो लेखों के बाद मौर्य राजाओं का नम्बर आता है और इनके शिलालेखों में कलिंग के दो शिलालेख सात बड़े स्तम्भ लेख छोटे के दो शिलालेख, चट्टानों के दो शिलालेख चौदह पहाड़ियों के शिलालेख गुफाओं के तीन लेख छोटे स्तम्भ लेख सारनाथ, गिरनार, गया वगैरह स्थानों से जो शिलालेख मिले हैं इन सब शिलालेखों की एक पुस्तक भी प्रकाशित हो गई है कई विद्वानों का मत है कि यह शिलालेख सम्राट् अशोक के खुदवाये हुए हैं तथा कई विद्वानों का मत है कि सम्राट् अशोक के पौत्र सम्प्रति के खुदवाये हुए हैं। इस मत भेद का कारण यह है कि प्रस्तुत शिलालेखों में न तो शिलालेख खुदाने वाले राजा का नाम है और न उसमें संवत् मिती ही है कि जिसके जरिये स्पष्ट निर्णय किया जाय। उन शिलालेखों में नाम के स्थान पर प्रियदर्शी एवं देवानुप्रिय और संवत् के स्थान मेरे राज्य के इतने वर्ष के बाद मैं यह शिलालेख खुदवाये गये हैं। इससे कई लोगों ने प्रियदर्शी एवं देवानुप्रिय अशोक का विशेषण मान लिया है तब कई लोगों ने सम्प्रति का विशेषण स्वीकार किया है। सम्राट् अशोक पहली अवस्था में जैन था बाद में बौद्ध बन कर बौद्धधर्म का प्रचार किया था तब सम्राट् सम्प्रति शुरू से आखिर तक जैनधर्मी ही था। और उसने जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार भी किया

कहा जाता है कि, अशोक ने अपने जीवन काल में बौद्ध भिक्षुओं की एक विशाल सभा की थी। जिसमें उपगुप्ताचार्य्य आदि बौद्धधर्म के कई महान् भिक्षुक सम्मिलित हुये थे। उनमें उत्तम और चरित्रवान भिक्षुओं को चुन २ कर प्रचार के लिये भेजा गया था। शेष दुरंगे और पाखण्डी भिक्षुओं से भिक्षुक वेष छीन लिया गया था। यह बात कहां तक सत्य है इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सम्राट् अशोक का व्यक्तित्त्व—सम्राट् अशोक के व्यक्तित्व के विषय मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। इतने बड़े साम्राज्य का इतना उत्तम ढंग से सचालन करना ही उनके महान् व्यक्तित्व का सूचक है। वे एक अद्भुत कर्मशील, उच्च-चरित्र और शांत मनुष्य थे। उनके वचन और कर्म में आश्चर्यजनक एकता पाई जाती है।

सम्राट् अशोक के सिद्धान्त—अशोक के शिलालेखों और उनकी धर्म लीपियों में उनके सिद्धान्तो का पूर्ण परिचय मिलता है। उनके मुख्य सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, पवित्र जीवन, बड़ों और श्रमण ब्राह्मणों का सम्मान आदि विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। अहिंसा, और जीवरक्षा तो भविष्य में जाकर अशोक के जीवन का मूलमन्त्र हो गई थी। पहले उनकी पाकशाला मे प्रति दिन सहस्रों जीवों की हत्या होती थी, बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पश्चात भी उनके भोजन के लिए दो मोर और एक हिरण मारे जाते थे। पर अपने शासन के सोलहवें वर्ष में उन्होंने अपनी पाकशाला में जीवहिंसा बिलकुल बन्द कर दी और उसके दो वर्ष पश्चात् शिकार खेलना भी बन्द कर दिया। शासन के ३० वें वर्ष में उन्होंने अपने राज्य में जीवो का वध एक दम बन्द करवा दिया। 'अहिंसा के पश्चात् सम्राट् का दूसरा सिद्धान्त सत्य-प्रेम' था। प्रत्येक मनुष्य का सत्य वक्ता होना उनकी दृष्टि में आवश्यक था। इसके अतिरिक्त उस समय जो बौद्ध लोग दूसरे धर्मों को हेय निगाह से देखने लग गये थे, उनके लिए भी उन्होंने एक कानून बनाया था। उस कानून के द्वारा उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य ठहराया कि, वह दूसरों के धर्म विश्वास और उपासना की रीति में बाधक न हो। और प्रत्येक धर्म के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करे। किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि, वह दूसरे धर्म के लिए अपमान सूचक शब्दों का व्यवहार करे। क्योंकि, सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त जीवन को पवित्रता की ओर ले जाने वाले होते हैं। अशोक का तीसरा सिद्धान्त बड़ों का सम्मान, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति श्रद्धा और छोटों पर दया करने का था। उनके साम्राज्य में प्रत्येक व्यक्ति का यह अनिवार्य्य कर्तव्य ठहराया गया था कि, वह अपने गुरुजनों के साथ सम्मान पूर्वक आचरण करे। यदि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार अपमान करता तो वह दण्ड का भागी होता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की ओर से आदेश था कि, वह अपने अधीनस्थ लोगों के साथ दया और अनुकम्पा का व्यवहार करे। एक धर्मलिपि में अशोक ने दान की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि, औषधालय मनुष्यों की शरीर-रक्षा के लिए है। एवम् मन्दिर पुण्य के लिए ही बनाए जाते हैं परन्तु वास्तविक दान तो धर्म का दान है जो मनुष्य को आध्यात्मिक भोजन देता है।

अशोक का साम्राज्य—अशोक के साम्राज्य का विस्तार जितना अधिक हुआ था उतना शायद ही अभी तक किसी सम्राट् के समय हुआ हो। उनका राज्य उत्तर में हिमालय और हिन्दूकुश पर्वत तक था। सारा अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, और सिन्ध उनके साम्राज्यान्तर्गत था। कश्मीर, नैपाल, स्वात और

इन दोनों लेखकों का एक ही मत है केवल स्थान का अंतर। बौद्ध तक्षशिला बतलाते हैं तब वे उज्जैन् कहते हैं परंतु यह तक्षशिला उज्जैन का ही नाम है। वैजयंती कोष पृष्ठ १५९ पर "अवन्तिस्तु तक्षशिला" अर्थात् अवन्ती का नाम ही तक्षशिला था।

कुणाल के उज्जैन में रहते हुये एक पुत्र हुआ। कुणाल स्वयं अंधा था अतः राजगादी के अयोग्य था परन्तु जब उसके पुत्र हो गया तो उसकी इच्छा हुई कि मैं पुत्र को राजगद्दी बैठाऊं। कुणाल गान विद्या में बड़ा ही प्रवीण था अतः गवगात पुत्र को साथ लेकर क्रमशः पाटलीपुत्र पहुँचा और गाने के कारण उसकी सम्पूर्ण नगर में प्रसिद्धि होगई एवं सर्वत्र धूम मच गई अतः राजा को मालूम होने पर उसे राजसभा में बुलाया गया और एक कनात लगा दी गई एवं कुणाल राजसभा में आया। कनात के अन्दर में बैठकर राजा को गायन से खुश किया। इस पर राजा ने कहा कि मैं तुझे क्या दूं? कनात के अन्दर बैठा हुआ कुणाल कहता है।

पपुत्तो चन्द्रगुत्तस्स बिन्दुसारस्स नत्तुओ, असोगसिरीणो पुत्तो अन्धो जायइ कागिणी १॥

इन शब्दों को सुन कर अपना आज्ञापालक पुत्र कुणाल समझ कर राजा चौंक उठा। परदा दूर करके कुणाल को गले से लगाकर मिला क्योंकि कुणाल सरीखे विनीत पुत्र का चिरकाल से मिलने से अशोक को हर्ष होना स्वाभाविक ही था। बाद अशोक ने पूछा कि पुत्र तुमने काकणी का क्या मांगा। पास में बैठे हुए मंत्रियों ने कहाकि यह राज परिभाषा है और इसका अर्थ होता है राज्य। अशोक ने पुनः पूछा कि अब तू आंखों से अंधा है फिर राज को लेकर क्या करेगा। कुणाल ने उत्तर दिया कि आपके पौत्र का जन्म हुआ है। अशोक ने कहा कि कब? कुणाल ने कहा कि 'सम्प्रति'। बस, अशोक ने सम्प्रति को गोद में लेकर उसको युवराज पद अर्पण कर उज्जैन का शासनकर्त्ता नियुक्त कर दिया। वहां से लौट कर कुणाल सम्प्रति को लेकर उज्जैन आगया।

---

प्रपौत्रश्चन्द्रगुप्तस्य, बिन्दुसारस्य नप्तृकः एषोऽशोकश्रियः सूनुरन्धो मार्गति काकिणीम्

यथाप्रबन्धमन्येन, गीयमानमथिपतिः श्रुत्वापप्रच्छ को नाम त्वमस्यास्याहि गायन ॥१॥

× × ×

क्रमेण साधयामास भरतार्धं सदक्षिणम्, प्रचण्डशासनमभूत्पाक शासनसन्निभः

"परिशिष्ट पर्व ९ श्लोक ५४-५४"

ॐ "किं काहिसि अंधओ रज्जेणं, कुणालो भणति-मम पुत्तोऽत्थि, संपति नाम कुमारो, दिण्णं, रज्जं"

[illegible] चूर्णि ११

तस्यसुतः कुणालस्तन्नंदनस्त्रिखण्डभोक्ता संप्रतिनामाभूपतिः भूत्स च जाता मात्र एव पितामहदत्तराज्यः"

कल्पसूत्र व्याख्या १६६

पूर्वोक्त शिलालेख एवं आज्ञापत्रों से अधिक सम्भव सम्प्रति का हो हो सकता है कारण इन शिलालेखों में जिन जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे प्राय' जैनधर्म से ही अधिक सम्बंध रखता है इस विषय में डा० त्रि० ले० बड़ोदा वाला तथा सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैन वाले और बगाल का इतिहासज्ञ बाबु नागेंद्र वसु ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पूर्वोक्त शिलालेख धर्मलिपियें और आज्ञापत्र सम्राट् सम्प्रति के ही हैं। पाठकों को चाहिए कि सस्था से प्रकाशित प्राचीन जैन इतिहास संग्रह भाग ५ वाँ मंगवाकर आद्योपात पढ़ ले कि जिससे इस विषय का ठीक निर्णय हो जाय।

सम्राट् अशोक का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखने काबिल है। सम्राट् ने बौद्धधर्म का खूब ही प्रचार किया था। अपनी अतिमावस्था तक उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया था। सम्राट् ने ४१ वर्ष राज कर इस मनुष्यलोक से विदा ली।

महाराजा कुणाल—यह सम्राट अशोक के पुत्र थे इनके विषय में जैन और बौद्ध ग्रथकारों ने अपने २ ग्रथों में खूब विस्तार से लिखा है जैसे बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान और अवदानकल्पलता में लिखा है जिसका साराश यह है कि राजकुमार कुणाल की आखें बड़ी सुदर थीं उस पर अशोक की तिष्यरक्षिता नामक रानी ने मोहित हो कर कुणाल से अनुचित प्रार्थना की परतु कुणाल बड़ा ही सुशील एवं सदाचारी था उसने रानी को अपनी विमाता समझ कर उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की इससे वह नाराज हो गई और अवसर मिलने पर इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया।

एक समय राजा अशोक बीमार हो गया था और उसने अनेक वैद्यों से इलाज भी करवाया, परंतु उसकी बीमारी गई नहीं। उस समय रानी तिष्यरक्षिता ने अपनी कार्य कुशलता से ऐसा उपचार किया कि राजा की बीमारी चली गई और शरीर आरोग्य हो गया। राजा ने खुश होकर रानी के माँगने पर ७ दिन का राज दे दिया। बस फिर तो था ही क्या? रानी ने कुणाल से अपना वैर लेने के लिए राजा अशोक के नाम से एक आज्ञापत्र लिखकर तक्षशिला के अधिकारियों पर भेजा कि कुणाल हमारे कुल में कलकरूप है इसलिये उसकी आंखें निकाल दी जायं। बस, पत्र पहुँचते ही अधिकारी लोगों ने उस पत्र को कुणाल को सुनाया और कुणाल ने उसको स्वीकार भी कर लिया। चाडालों को बुलाया परन्तु इस अनुचित कार्य्य में किसी ने साहस नहीं किया। इस पर कुणाल ने स्वय अपनी आँखें निकाल कर अपने पिता के नाम से आये हुए पत्र की आज्ञा का पालन किया।

जैन लेखकों ने लिखा है कि महाराज अशोक ने अपनी रानी की खटपट से अपना कुंवर कुणाल को सकुशल रहने के लिए विचार करके उज्जैन भेज दिया था। बाद एक समय सम्राट् ने उज्जैन के अधिकारियों को एक पत्र लिखा कि अब कुँवर विद्याध्ययन करे "अधीयउ कुमारो" उस समय अशोक की रानी तिष्यरक्षिता पास में बैठी थी। राजा के कहीं जाने पर उसने पत्र को पढ़ा और सोचा कि कुणाल पढ़ जायगा तो राज का मालिक हो जायगा इस इरादे से अपनी आखों के कज्जल से एक शलाका भर अकार के ऊपर बिंदी लगा दी की वह "अंधीयउ कुमारो" हो गया। राजा वापिस आया और बिना ही पढे कागज पर मुहर कर उसको उज्जैन भेज दिया और पत्र पहुँचते ही वहाँ के अधिकारियों ने कुणाल को सूचित किया। कुणाल ने प्रसन्नता पूर्वक अपने नेत्र निकाल डाले।

राजाने अमात्य राधगुप्त को बुलाकर कहा—"बोलो राधगुप्त ! इस समय पृथ्वी में ईश्वर कौन है ?" विनय के साथ उत्तर देते हुए राधगुप्त ने कहा—'आप ही तो पृथिवी में ईश्वर हैं' यह सुनकर अशोक किसी तरह उठा और चारों ओर नजर दौड़ा कर माथा झुका भिक्षु संघ को नमस्कार कर बोला—'खजाने को छोड़ कर इस समुद्रपर्यंत महापृथिवी को संघ के लिए अर्पण करता हूँ' इस प्रकार पृथिवी का दान करके राजा अशोक शरण हो गया बाद अमात्यों आदि ने बाजे के साथ अशोक के शरीर का अग्निसंस्कार किया और वे मगध के सिंहासन पर संपदी को बिठाने की तैयारी करने लगे, तब राधगुप्त ने कहा—चार करोड़ स्वर्ण के बदले यह पृथिवी अशोक ने संघ को दान करदी है, इस वास्ते जब तक सब देन पृथिवी छोड़ाई नहीं जाय, तब तक इस पर दूसरा राजा नहीं हो सकता। अमात्यों ने पूछा कि क्या अशोक ने संघ को पृथिवी दान में दी ? उन्होंने कहा हाँ तब अमात्यों ने राज खजाना से ४ करोड़ सुवर्ण मोहरें को दे कर पृथिवी को छुड़ाया और बाद में संपदी का राज्याभिषेक किया।

"अपिच राधगुप्त, अयंमेमनोरथोऽभूत्कोटीशतंभगवच्छासनेदानंदास्यामीति, स च मेऽभिप्रायो न परिपूर्णः ततोराज्ञाऽशोकेन चत्वारः कोटयः परिपूरयिष्यामीति हिरण्यसुवर्ण कुर्कुटारामं प्रेषयितु मारब्ध

तस्मिंश्चसमये कुनालस्यसंपदीनामपुत्रोयुवराज्येप्रवर्तते। तस्यामात्यैरभिहितं—कुमाराशोक राजाअल्पकालमवस्थायीइदं च द्रव्यं कुर्कुटाराममप्रेष्यते कोशबलिनश्च राजानो निवारयितव्य। यावत्कुमारेणभांडागारिकः प्रतिषिद्धः तस्यसुवर्णभाजने आहार। मुपनाम्यते, भुक्त्वातानिसुवर्ण भाजनानिकुर्कुटाराममेषप्रतितस्यसुवर्णभाजनंप्रतिषिद्धं रूप्यभाजनेआहारमुपनाम्यते, तान्यपिकुर्कुटारामंप्रेषयति। ततोऽस्यभाजनमपिप्रतिषिद्धं या मृत्तिकाभाजनआहारमुपनाम्यते। तान्यपिराजा अशोकः कुर्कुटारामंप्रेषयति। तस्यपानन्तु भाजनमाहारमुपनाम्यत। तस्मिन्समयेराज्ञोऽशोक स्यामलकमर्धंकरगतंवम्। अथराजाऽशोकः संविग्नोऽमात्यान् पौरांश्चसंनिपात्यकथयतिकःसाम्प्रतंपृथिव्यामीश्वरः। ततोऽमात्यउत्थायाऽऽसनात् येनराजाशोकस्तेनांजलिं प्रणम्योवाच—देव पृथिव्यामीश्वरः अथराजाऽशोकः साश्रुदुर्दिननयनवदनोऽमात्यानुवाच—

दाक्षिण्याद् अनृतं हि किं कथयथ, भ्रष्टाधिराज्या वयम्
शेषं त्वामलकार्धमित्यवसितं यत्र प्रभुत्वं मम।
ऐश्वर्यं धिगनार्यं मुद्धत नदीतोय प्रवेगोपमम्,
मर्त्येन्द्रस्य ममापि यद् प्रति भय दारिद्र्य मभ्यागतम ॥

× × ×

ततो राजाऽशोकः समीपगतं पुरुषमाहूयोवाच—भद्रमुख । पूर्वगुणानुरागाद् भ्रष्टैश्वर्यस्यापि मम इमं तावत् पश्चिमं व्यापारं कुरु—इदं ममाऽर्धामलकं गृहीत्वा कुर्कुटारामं गत्वा संघे निर्यातय,

# सम्राट् सम्प्रति

सम्राट् सम्प्रति—भारत के सम्राटों में आपका तीसरा नम्बर है। ऐतिहासिक लेखों में जैसा चन्द्रगुप्त और अशोक का हाल मिलता है इतना सम्प्रति का नहीं मिलता है फिर भी इस विषय के कुछ उल्लेख यत्र-तत्र अवश्य मिलते हैं। परंतु जैन लेखकों ने तो इसको त्रिखंड भोक्ता के नाम से लिखा हैं। शायद राजा सम्प्रति जैनधर्म उपासक एवं प्रचारक होने से ही समुदाय पक्षपात के कारण इसकी प्रसिद्धि के जितने चाहिए उतने उल्लेख नहीं किये हों तो यह स्वाभाविक ही है फिर भी वेदांतियों के पुराणों में और बौद्धों के अवदानों में सम्प्रति को स्थान अवश्य मिला है। वे लिखते हैं कि सम्प्रति अशोक का पौत्र एव उत्तराधिकारी था। अशोक की अन्तिम बीमारी के समय सम्प्रति अशोक की सेवा में था, अशोक के देहात के बाद पाटलीपुत्र के सिंहासन पर सम्प्रति का राज्याभिषेक हुआ था।

बौद्धों के दिव्यावदान ग्रन्थ के २९ वें अवदान में इस प्रकार लिखा है कि "राजा अशोक को बौद्ध सघ को सौ करोड़ सुवर्ण का दान देने की इच्छा हुई, और उसने दान देना शुरू किया। ३६ वर्षों में उसने ९६ करोड़ सुवर्ण तो दे दिया पर अभी ४ करोड़ देना बाकी था जब अशोक बीमार पड़ गया, और उसने सोचा की जिन्दगी का क्या भरोसा है ऐसा समझ कर उसने ४ करोड़ का दान पूरा करने के लिए खजाने से बौद्धों के कुर्कुटाराम सघ में भिक्षुओं के लिए द्रव्य भेजना शुरू कर दिया।

उस समय अशोक के पुत्र कुनाल और कुनाल का पुत्र 'सम्पदी' (सम्प्रति) नामक राजकुमार युवराज पद पर था। अशोक की दान प्रवृति की बात सम्पदी को कह कर मन्त्रियों ने कहा—राजा अशोक थोड़ी देर का महमान है, वह जो द्रव्य कुर्कुटाराम भेजा जा रहा है, जिससे उसे रोकना चाहिये क्योंकि खजाना ही राजाओं का यल है। मन्त्रियों के कहने पर युवराज सम्पदी ने खजानची को धन देने से रोक दिया। इस पर अशोक अपने स्वर्णमय भोजन पात्र ही कुर्कुटाराम को भेजने लगा, तब अशोक के भोजन के लिए क्रमश रौप्य लोह और मार्तिक पात्र भेजे गये, जिनका भी उसने दान कर दिया। उस समय राजा अशोक के हाथ में सिर्फ आधा आवला (फल) बाकी रहा था। राजा बहुत विरक्त हुआ, मंत्रीगण और प्रजागणों को इकट्ठा करके वह बोला—"बोलो इस समय पृथ्वी में सत्ताधारी कौन है? मन्त्रियों ने कहा—'आप ही पृथ्वी में ईश्वरसत्ताधारी राजा हैं।" आखों से आसू बहाते हुए अशोक ने कहा—तुम दाक्षिण्यता से झूठ क्यों बोलते हो? हम तो राज्य-भ्रष्ट हैं। इस समय हमारा प्रभुत्त्व मात्र इस आर्धामला पर है। पास में खड़े आदमी को बुला कर अशोक ने यह आर्द्धामलक उसे दिया और कहा—"भद्र! मेरा यह थोड़ा सा काम कर कुर्कुटाराम जाकर मेरे वन्दन के साथ यह अर्द्धामलक संघ को भेंट कर दें। उस आदमी ने अशोक के हुक्म से आराम में जाकर वह आधा आमला भिक्षुओं को दे दिया इस पर भिक्षु सघ ने अशोक का वह आखरी दान उसकी इच्छा के अनुसार दूसरे पदार्थ में मिला करके सारे सघ में बाट दिया।

"षट् त्रिंशत्तु समा राजा, भविताऽशोक एव च।
सप्तति (संप्रति) दशवर्षाणि, तस्य नप्ता भविष्यति ॥२३॥ मत्स्यपुराण अध्याय २७२

मगध के सिंहासन पर सम्प्रति का राज्याभिषेक अशोक की मृत्यु के बाद तत्काल ही हुआ हो के इसमें संदेह को स्थान नहीं मिल सकता है।

सम्राट् सम्प्रति के शासन में राज के प्रबन्ध एवं व्यवस्था सम्राट् चन्द्रगुप्त एवं अशोक से कम नहीं पर किसी अपेक्षा बढ़ बढ़ के थी क्योंकि इसमें जैसी वीरता थी वैसी ही उदारता भी एक प्रकार की थी। जनता के हित के लिये इसने अनेक प्रकार की सुविधायें कर दी थीं। इतना ही क्यों पर इस बात के लिये सम्राट् ने अपने जीवन का ध्येय ही बना लिया था। यही कारण था कि जनता इस भूपति को खूब चाहती थी और वह सब के लिये बहुत प्रिय भी बन चुका था यही कारण है कि आप प्रियदर्शी नाम से प्रसिद्ध थे। अतः इसके राज प्रबन्ध एवं व्यवस्था के लिये दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

कई लोगों का यह मत है कि सम्राट् अशोक के बाद मौर्य्य राज में शिथिलता आ गई थी। राज की नींव कमजोर पड़ गई थी कई राजाओं ने स्वतन्त्र हो कर अपने २ राज्य पर फिर से अधिकार जमाना शुरू कर लिया था इत्यादि। परन्तु यह समय सम्राट् सम्प्रति के समय का नहीं पर वृहद्रथ के शासन काल का जिसको हम आगे चल कर बतलावेंगे। सम्प्रति के समय भारत का राजतन्त्र सुव्यवस्थित एवं एक झंडे के नीचे था।

यह केवल मेरा ही अनुमान नहीं है परन्तु सम्प्रति के शिलालेखों में भी इस विषय का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसको मैं आगे चल कर लिखूंगा तथा डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचन्द अपने प्राचीन भारत वर्ष का इतिहास नामक ग्रन्थ में इस विषय को अच्छी तरह से प्रमाणित कर दिया है कि सम्राट सम्प्रति ने अपने राज का विस्तार केवल भारत ही नहीं पर भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी किया था जो कि चन्द्रगुप्त और अशोक भी नहीं कर पाये थे।

सम्राट् सम्प्रति के विषय में सम्राट् ने अपनी युवराजावस्था में भारत के समस्त राजाओं को करदाता बना दिया; और अटक के निकट आकर सिन्धु नदी पार करने के बाद अफगानिस्तान के मार्ग से ईरान, अरब और मिस्र आदि देशों पर अधिकार किया और उनसे 'कर' लिया जिस प्रकार अजातशत्रु राजा के आधीन १६ करद राजा थे, उसी प्रकार इनकी संख्या भी अठारह ही थी। इस प्रकार जब वे दिग्विजय कर स्वदेश वापस लौटे तब सम्राट् अशोक के मुख से ये उद्गार निकले कि "मेरे पितामह चन्द्रगुप्त तो केवल भारत के ही सम्राट् थे, किन्तु मेरा पौत्र सम्प्रति तो संसार भर का सम्राट् है।"

इन शब्दों से चन्द्रगुप्त अशोक और प्रियदर्शिन (सम्प्रति) इन तीनों के राज विस्तार को समझने के साधन मिल सकता है।

सम्राट् सम्प्रति की राजधानी—यह तो आप पहिले ही पढ़ चुके हैं कि सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र कुनाल को उज्जैन भेजा था। सम्प्रति का जन्म उज्जैन में ही हुआ और सम्प्रति को युवराज पद देकर उज्जैन भेजा था और सम्प्रति ने युवराज पद में सोराष्ट्र और दक्षिणादि प्रान्तों को विजय भी उज्जैन में रह कर ही किया। अतः उज्जैन की भूमि सम्प्रति को वल्लभ होना स्वाभाविक ही था परन्तु अशोक के अन्त समय सम्प्रति पाटलीपुत्र में था और अशोक के मृत्यु के बाद उनका राज्याभिषेक मगध की गादी पर पाटली-

पूर्वोक्त बौद्ध ग्रन्थ से यह स्पष्ट सिद्ध है कि अशोक के मृत्यु समय सम्प्रति पाटलीपुत्र एवं अशोक की सेवा में हाजिर था तथा अशोक की मृत्यु के समय पाटलीपुत्र में ही सम्प्रति का राज्याभिषेक हो गया था इतना ही क्यों पर अशोक की मौजूदगी में ही सम्प्रति ने राजसत्ता अपने हस्तगत करली थी जब ही तो उनके मना करने से राज खचाञ्ची दान के निमित्त द्रव्य देने से रुक गये थे अत इससे अधिक सम्प्रति का मगध के राज सिंहासन पर अभिषिक्त होने में और क्या प्रमाण हो सकता है ?

कई लोग अशोक के बाद मगध की राजगद्दी पर दशरथ का राज होना कहते हैं तथा दशरथ के राज समर्थन के विषय में कई शिलालेख भी मिलते हैं। शायद मगध के प्रदेश में कुछ समय के लिये दशरथ का राज रहा भी हो। पर बौद्धों के उपरोक्त अवदान के प्रमाण से अशोक की मृत्यु के समय ही सम्प्रति का मगध के सिंहासन पर राज्याभिषेक होना पाया जाता है। इतना ही क्यों पर जब सम्प्रति केवल दस मास का बालक था तभी अशोक ने उसको युवराज पद से भूषित कर उसके पिता कुनाल के साथ उज्जैन भेज दिया था और उज्जैन का राजतंत्र कुनाल ने अपने अधिकार में कर दिया था। सम्प्रति बड़ा होकर राजतंत्र को अपने हाथ में लिया और उसको बड़ी वीरता से चलाया। जैन ग्रंथों में यह भी उल्लेख मिलता है कि सम्प्रति ने सौराष्ट्र † ( काठियावाड़ ) और दक्षिण भारत ‡ को तो युवराज अवस्था में ही विजय कर लिया था। इस हालत में

---

मद्वचनाश्च संघस्य पादाभिनन्दनं कृत्वा वक्तव्यं जम्बूद्वीपैश्वर्मस्य राज्ञ एव सांपतं विभव इति। इद तावद् अपश्चियं दानं तथा मति भोक्तवं यथा मे संघगता दक्षिणा विस्तीर्णा स्यादिति।

× × × ×

यावत्तदर्धामलकं चूर्णयित्वा यूपे प्रक्षिप्य संघे चरितम्। ततो राजाऽशोको राधगुप्तमुवाच— कथय राधगुप्त! कः साम्प्रतं पृथिव्यामीश्वरः अथ राधगुप्तोऽशोकस्य पादयोर्निपत्य कृतांजलिरुवाच देवः पृथिव्यमीश्वरः। अथ राजाऽशोकः कथचिदुत्थाय चतुर्दिशमवलोक्य संघायाञ्जलिंकृत्वा 'एप इदानीं महत्कोशस्थापयित्वा इमां समुद्रपर्य्यन्तां महापृथिवीं भगवच्छ्रावकसंघे निर्यातयामि'।

यावत्पत्राभिलिखित कृत्वा दत्तं मद्रया मुद्रितम्। ततो राजामहापृथिवीं संघे दत्वा कालगतः यावदमात्यैर्नीलपीताभिः शिविकाभिर्निर्हरित्वा शरीर पूजा कृत्वा राजानं प्रतिष्ठापयिष्याम इति यावद् राधगुप्तेनाभिहितं राज्ञाऽशोकेन महापृथिवी संघे निर्यातिता इति। तेषाऽमात्यैरीमहित किमर्थमिति राधगुप्त उवाचएप राज्ञोऽशोकस्य मनोरथो बभूव कोटिशतंभगवच्छासमे दानं दास्यामीति तेन षण्णवतिकोट्योदत्तायावद्राज्ञाप्रतिषिद्धाः तदभिप्रायेणराज्ञा पृथिवी संघेदत्ता यावदमात्यैश्चतस्रःकोट्योभगवच्छासनेदत्वा पृथिवींनिष्क्रीयसंपदी राज्ये प्रतिष्ठापित।"

'दिव्यावदान अ० २९"

†—"तेण सुरट्ठविसयो अन्धा दमिला य ओयविया" निशीथ चूर्ण

इसी विषय में कल्प चूर्णिका का मत इस प्रकार का है: —

‡—"ताहे तेण संपइणा उज्जेणीआइं काउं दक्खिणावहो सव्वो तत्थ ठिएण वि अज्जावितो"।

काठियावाड़ और दक्षिणा प्रान्त को जीतने से सम्प्रति के सम्बन्ध में यह अनुमान हो सकता है कि सौराष्ट्र और दक्षिण हिन्दुस्थान में उसने युवराज अवस्था में ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापन कर दी होगी।

पुत्र में ही हुआ था फिर भी उसने अपनी जननी जन्म भूमि को नहीं भूला अत राज्य सिंहासन पर बैठने के बाद उसे अपनी राजधानी बनाया। साथ ही राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर भी वे कुछ दीर्घ-दृष्टि वाले माने जा सकते हैं। क्योंकि इतने बड़े साम्राज्य की व्यवस्था ठेठ पाटलीपुत्र या राजगृह जैसे एक कोने में पड़े हुये मगध देश के एक नगर में रह कर चलाने की अपेक्षा भारतवर्ष के हृदय रूप मध्यस्थल अवंति से शासन सूत्र चलाना श्रेयस्कर और अधिक उचित कहा जा सकता है।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार मौर्यसाम्राज्य के इतिहास में लिखते हैं कि —

मौर्य इतिहास में सम्राट् सम्प्रति बड़ा महत्वपूर्ण व्यक्ति है। दशरथ की मृत्यु के बाद वह स्वयं राज-सिंहासन पर बैठा। इससे पूर्व बहुत काल तक वह शासन का संचालन करता रहा था। अशोक के समय वह युवराज था और उसी ने अपने अधिकार से अशोक को राज्य-कोष में से बौद्ध संघ को दान करने का निषेध कर दिया था। सम्राट् कुनाल के शासन में भी शासन-सूत्र उसी के हाथ में था। दशरथ के समय में भी वही वास्तविक शासक रहा। यही कारण है कि बहुत से ग्रन्थों में सम्प्रति को ही अशोक का उत्तराधिकारी लिख दिया है। जैन-साहित्य में भी अशोक के बाद सम्प्रति के ही राजा बनने का उल्लेख है। जैन साहित्य में सम्प्रति का वही स्थान है, जो बौद्ध-साहित्य में अशोक का। जैन-अनुश्रुति के अनुसार सम्राट् सम्प्रति जैन धर्म का अनुयाई था। और उसने अपने प्रिय धर्म को फैलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया था। परिशिष्ट[1] पर्व में लिखा है कि एक बार रात्रि के समय सम्प्रति को यह विचार पैदा हुआ कि अनार्य देशों में भी जैन-धर्म का प्रचार हो और जैन साधु स्वतन्त्र रीति से विचर सकें। इसके लिये उसने इन देशों में जैन साधुओं को धर्म-प्रचार के लिए भेजा। साधु लोगों ने राजकीय प्रभाव से शीघ्र ही जनता को जैन-धर्म और आचार का अनुगामी बना लिया। इस कार्य के लिए सम्प्रति ने बहुत से लोकोपकारी कार्य भी किये। गरीबों को मुफ्त भोजन बाटने के लिए दान शालायें खुलवाईं। इन लोकोपकारी कार्यों से भी जैन धर्म के प्रचार में बहुत सहायता मिली। सम्प्रति द्वारा अनार्य देशों में प्रचारक भेजे गये, इसके प्रमाण अन्य ग्रन्थों[2] में भी मिलते हैं। अनेक जैनग्रन्थों में लिखा है कि इस कार्य के लिए सम्प्रति ने अपनी सेना के योद्धाओं को साधुओं का वेष पहनाकर प्रचार के लिए भेजा था। एक ग्रन्थ में उन देशों में से कतिपय नाम दिए हैं, जिनमें सम्प्रति ने जैन धर्म का प्रचार किया था। ये नाम आन्ध्र, द्रविड, महाराष्ट्र, कुडुक आदि हैं। जिनप्रभासूरि के मत्त अनुसार सम्राट् सम्प्रति ने बहुत से विहारों का निर्माण भी कराया था। ये विहार अनार्य देशा में भी बनवाये गये थे।"

सम्प्रति-द्वारा बनाये गये अनेक जैन मन्दिरों में से एक का उल्लेख राजपूताने का भ्रमण करते हुए महात्मा टॉड साहब ने इस प्रकार किया है —

"कमलमेर का शेष शिखर समुद्रतल से ३३५३ फीट ऊँचा है। यहाँ से मैंने मरु-क्षेत्र बहुदूरवर्त्ति स्थानों का प्रान्त निश्चय कर लिया। यहा ऐसे कितने ही दृश्य विद्यमान हैं, जिनका चित्र अंकित करने में लगभग एक मास का समय लगने की सम्भावना है। किन्तु हमने केवल उक्त दुर्ग और एक बहुत पुराने

१—देखो आचार्य हेमचन्द्रसूरि कृत परिशिष्ट पर्व नामक ग्रन्थ।

२—देखो तपागच्छ पट्टावली, आवश्यक चूर्णि, और कल्पसूत्र।

जैन धर्म स्वीकार किया इसमें ऐसा कोई मतभेद नहीं है । राजा सम्प्रति ने आचार्य सुहस्तीसूरि के पास जैनधर्म स्वीकार किया इसमें सब का एकमत ही हैं ।

अब हमें यह देखना है कि सम्राट् सम्प्रति ने जैनधर्म स्वीकार करने के बाद संसार में जैनधर्म का किस तरह एवं कहाँ तक प्रचार किया था ? यह बात सम्प्रति से छिपी हुई न थी कि सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर उसका भारत और भारत के बाहर किस प्रकार प्रचार किया था । सम्राट् सम्प्रति यह भी जानता था कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त से ही हमारा घराना जैनधर्म का उपासक ही नहीं पर प्रचारक रहा है केवल अशोक ने ही बौद्धधर्म स्वीकार कर उसका प्रचार जोरों से किया था । और बौद्ध धर्म का थोड़े समय में इतना प्रचार हो जाने में दो कारण मुख्य थे एक तो महात्मा बुद्ध का घराना जैन धर्मोपासक था अतः स्वयं बुद्ध कई वर्षों तक जैनदीक्षित होकर जैनभिक्षा पाली थी । अतः अहिंसा के लिये उनके संस्कार पहिले से ही जमे हुए थे दूसरे वेदान्तियों की यज्ञ सम्बन्धी हिंसा से लोगों को घृणा हो रही थी । अतः बुद्ध को नूतन मत का जल्दी ही प्रचार हो गया । फिर भी जैनों के आचरण में जितना अहिंसा का आदर्श था उतना बौद्धों का नहीं था क्योंकि आप पहिले अशोक के जीवन में पढ़ चुके हो कि अशोक के बौद्धधर्म स्वीकार कर लेने के बाद भी सूद के लिए दो मयूर और एक मृग की हिंसा प्रति दिन होती थी जब जैनधर्मोपासक गृहस्थों के लिये इस बात की सख्त मुमानियत थी । जब हम सम्प्रति के जीवन को देखते हैं उनके जीवन में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है कि उनके लिये कभी किसी जीव की हिंसा हुई हो । कारण उनके पहले तो सम्प्रति के पिता कुनाल और माता कांचनदेवी भी जैनधर्म के उपासक थे कि सम्प्रति के जन्म से ही अहिंसा के संस्कार थे और बाद तो आचार्य सुहस्तीसूरि का समागम से उसने जैनधर्म श्रद्धा पूर्वक स्वीकार कर उसका पालन किया । अतः सम्राट् अशोक की अपेक्षा सम्राट् सम्प्रति अहिंसा के लिये खूब बढ़ा चढ़ा हो तो इसमें अतिशयोक्ति एवं आश्चर्य जैसा कुछ भी नहीं है ।

सम्राट् सम्प्रति द्वारा जैनधर्म का प्रचार—जैन लेखकों ने अपने ग्रन्थों में राजा सम्प्रति के विषय में खूब ही विस्तार से उल्लेख किया है कि सम्प्रति ने जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार किया था जैन

---

ॐ अनुदिवसं बहुनि प्राणासत सहस्त्रानि आरभिसु सुपाथाय से अज नि यदा अयं धंमलिपि लिखिता ती एवं प्राणा आरभे रे सुपथ यदो मोर एको मिगे से पि च मिगे नो धुवे"

संस्कृतानुवाद—देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः अनुदिवसं बहुनि प्राण शत सहस्राणि आलब्धानि सूपार्थाय तद् इदानीं यदा इयं धर्मलिपिः लिखिता तदा त्रयः एव प्राणाः आलभ्यन्ते द्वौ मयूरौ एकः मृग सः अपि च मृगः न ध्रुवः

हिन्दी अनुवाद—पहिले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई सौ एवं सहस्र जीव सूप (शोरबा-शाक) बनाने के लिये मारे जाते थे पर अब से जब कि यह धर्म लेख लिखा जा रहा है केवल तीन जीव मार जाते हैं अर्थात् दो मोर और एक मृग पर मृग का मारा जाना नियत नहीं है ।　　　　अशोक के धर्मलेख गिरनार के लेख से इस लेख नं० १ ।

पुन. पूछा इस पर सूरिजी ने अपने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो अपना शिष्य जान कर कहा कि राजन्! आपने अपने पूर्व जन्म में जैन दीक्षा ली थी। वास्तव में बात यह बनी थी कि —

"आर्य सुहस्तीसूरि के समय एक भयकर दुष्काल पड़ा था जिसमें जनता को अन्न मिलना दुष्कर हो गया था। एक समय आर्य सुहस्ती के साधु भिक्षा के निमित्त किसी गृहस्थ के घर गये थे। साधुओं ने गृहस्थ के मकान में प्रवेश किया बाद बाहर एक भिक्षुक भी वहाँ आ गया था जब गृहस्थ ने उन साधुओं को मिष्टान्नादि आहार दिया तो बाहर खड़ा हुआ भिक्षुक देखता था। जब साधु भिक्षा लेकर जाने लगे तो भिक्षुक भी पीछे हो गया और कहने लगा कि हे मुने! इस भिक्षा में से थोड़ी सी मुझे भी दें कि मैं कई दिनों का भूखा हूँ। इस पर मुनि ने कहा यह कार्य मेरे अधिकार का नहीं है पर मेरे गुरु महाराज के अधिकार का है। बस, वह भिक्षु मुनि के साथ आर्य सुहस्ती के पास आया और वही याचना की इस पर सूरिजी ने ऐसे मधुर वचनों से समझाया कि भिक्षुक ने सूरिजी के पास दीक्षा ले ली बस फिर तो था ही क्या नव-दीक्षित भिक्षुक के सामने गोचरी के पात्र रख दिये और उसने बहुत दिनों की क्षुधा को भगा देने के इरादे से इतना अधिक भोजन कर लिया कि पूरा पाचन न हो सका। रात्रि में पेट में दर्द इस कदर का हुआ कि जी ने की आशा तक छुट गई जब नूतन साधु की बीमारी की मालूम हुई तो बड़े २ कोटाधीश श्रावक वर्ग तथा साधु और स्वय आचार्यश्री उसकी व्यावच्च के लिये उपस्थित हुये और उसकी खूब सार संभाल की इस पर उस नवदीक्षित साधु ने सोचा कि अहा! जैनधर्म कि मेरे जैसे रंक ने केवल जैनधर्म की दीक्षा के नाम से शिर मुंडा कर वेश मात्र धारण किया है जिसमें ही इतने बड़े धनाढ्य एव खुद आचार्य महाराज मेरी इतनी व्यावच्च करते हैं इत्यादि शुद्ध भावना से काल कर मौर्य्यवंश के राजा कुनाल की कांचनमाला रानी की कुक्ष में जन्म लिया जिसका ही नाम राजा सम्प्रति है।

राजा ने कहा भगवान्! सत्य है मैं आपकी एक दिन की दिक्षा वाला शिष्य हूँ। यह सब राजादि ऋद्धि आपकी कृपा से मिली है। इसको आप स्वीकार कर मुझे कृतार्थ बनावें सूरिजी ने कहा राजन्! हम निस्पृही निर्गन्थों को राज ऋद्धि से कुछ भी प्रयोजन नहीं है जिस जैनधर्म की स्वल्प समय की आराधना से आप इस प्रकार की सुख सम्पत्ति को प्राप्त हुये हैं तो इसको धर्मप्रचार में उपयोग करें कि आपका भविष्य और भी कल्याणकारी हो। सूरिजी महाराज के निस्पृही वचन सुन कर राजा का दिल जैनधर्म की ओर विशेष झुक गया और उसी समय राजा सम्प्रति ने सूरिजी के चरण कमलों में वन्दन कर जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। पर कई स्थानों पर यह भी लिखा है कि राजा ने आचार्य श्री के स्थान* पर जाकर

---

* इतो य अज्जसुहत्थी उज्जेणिं जियसामिं वदओ आगओ रहाणुज्जाणे य हिंडतो राउलगणपदेसे रन्ना आलोयण गतेण दिट्ठो, ताहे रन्नो ईहपोहं करें तस्स जात (जाइसरणजातं, तहा-तेण मणुस्सा भणिता-पडिचरह आयरिए कहिं ठितत्ति तेहिं पडिचरिउं कहत सिरे घिरे ठिता। ताहे तत्थ गंतुं धम्मो णेण सुओ, पुच्छितं धम्मस्स किं फलं? भणितं "अव्यक्तस्य तु सामाइयस्य राजाति फलं" सो संमंतो हानि (होती?) सच्चं भणसि अहं मे कहिं चिदिट्ठेल्लओ, आयरिएहिं उवउज्जितं दिट्ठेल्लओ त्ति ताहे सो सावओ जाओ पंचाणुव्वयधारी तसजीव पडिकमओ पभावओ समणसंघस्स।

"कल्प चूर्णी"

कि मेरे प्रपितामह सम्राट चन्द्रगुप्त ने भी अनार्य देशों में जैनधर्म की जागृति की थी तो मैं इस पवित्र कार्य के लिये चुपचाप बैठ जाऊं ? यह मेरे लिये उचित नहीं है । अतः मुझे भी इस बात का उद्योग अवश्य करना चाहिये । परन्तु यह कार्य केवल मेरे अकेले के उद्योग से पूर्णतया सफल होना मुश्किल है अतः इसमें जैन साधु भी शामिल किए जावें कि वे अनार्य देशों में जा जा कर जैन धर्म का उपदेश करें इत्यादि।

सम्राट् सम्प्रति ने अपने विचारों को अपने गुरु आचार्य सुहस्तीसूरि की सेवा में आकर निवेदन किया । इस पर आचार्यश्री ने बड़ी खुशी के साथ अपनी सम्मति दे दी और कहा कि यदि आप इस प्रकार जैनधर्म का प्रचार करना चाहते हो तो हम कब पीछे रहने वाले हैं । हम यथा साध्य सब प्रकार से सहयोग देने को तैयार हैं । बस, सूरीश्वर और सम्राट् एक मत हो उज्जैन नगरी में एक श्रमण सभा करने को तैयार हो गये और तत्काल ही उसको कार्य रूप में परिणित करनेको तमाम श्रमणों एवं संघ को आमन्त्रण देने के लिए सम्राट् ने अपने मनुष्यों को भेज दिये जिस आमन्त्रण को पाकर नजदीक ही नहीं पर बहुत दूर दूर से श्रमण संघ और श्राद्धवर्ग भी गहरी तादाद में उज्जैन नगरी में पधार गये । क्यों न आवे एक तो तीर्थ रूप की यात्रा, दूसरे आचार्य सुहस्ती जैसे धर्मधुरंधरों का दर्शन, तीसरे राजा सम्प्रति का आमन्त्रण, चतुर्थ जैन धर्म के प्रचार निमित्त सभा का होना और उसमें यथासाध्य सहायता कर लाभ हासिल करना ।

जब श्रमणसंघ एवं श्राद्धवर्ग एकत्र होगये तो आचार्य सुहस्तीसूरि की अध्यक्षता में सभा हुई आचार्यश्री ने भगवान् महावीर के धर्म की महत्ता बतलाते हुये राजा श्रेणिक, कोणिक, उदाई, नौनन्द मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक के राजत्वकाल का वर्णन और जैनधर्म के प्रचार के लिए अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार उपदेश दिया कि धर्मप्रचार में मुख्य राजसत्ता की आवश्यकता रहती है कहा भी है कि "यथाराजास्तथाप्रजा" मैं सम्मत करता हूँ कि सम्राट् सम्प्रति इस कार्य को हाथ में ले तो निस्सन्देह सफलता प्राप्त कर सकते हैं जैसे अशोक ने बौद्धधर्म के प्रचार में सफलता पाई थी ।

इत्यादि सूरीश्वरजी के उपदेश ने उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ पर इतना जोरदार प्रभाव डाला कि उनकी अन्तरात्मा में धर्म प्रचार निमित्त एक दम बिजली चमक उठी और कहा कि पूज्यवरों आपका कहना सोलह आना सत्य है । कारण इस कार्य के लिये सम्राट् सम्प्रति ही भाग्यशाली हैं और वे यदि इस कार्य को अपने हाथों में ले तो आसानी से सफलता प्राप्त कर सकेंगे और हम सब लोग इस पुनीत कार्य में यथा साध्य सहायता करने को कटिबद्ध तैयार हैं । इत्यादि ।

सम्राट् सम्प्रति ने खड़े हो कर आचार्यश्री को नमस्कार करके नम्रतापूर्वक अर्ज की कि हे प्रभो ! आपश्री की और चतुर्विध श्रीसंघ की मेरे पर महान् कृपा है कि इस कार्य्य का लाभ मुझे देना चाहते हो जिसको मैं अपना अहो भाग्य समझता हूँ पर इस वृहद् कार्य को सम्पादन करने के लिये केवल मैं अकेला ही समर्थ नहीं हो सकता हूँ । पर इसमें श्रीसंघ एवं विशेष कर आप पूज्य पुरुषों की भी जरूरत है । कारण, उन अनार्य देशों में आखिर तो आप श्रमण संघ को पधार कर उपदेश देना पड़ेगा ।

सूरिजी ने कहा राजन । आपका कहना सत्य है और वहाँ जाने के लिये हम तैयार भी हैं पर सब से पहला यह कार्य्य आपका है कि पहिले साधुओं के जाने योग्य क्षेत्र तैयार करने का उद्योग करें फिर हम अपने साधुओं को भी भेज देंगे ।

सूरीश्वरजी के उत्साहवर्धक शब्द सुन कर सम्राट् का उत्साह और भी बढ़ गया और उसने अपने

मन्दिरों से मेदनी मंडित कर दी थी। कहा जाता है कि सवा लक्ष नये मन्दिर और सवा करोड़ जिन प्रतिमायें बनवा कर प्रतिष्टा करवाई थी जिसमें ८५००० प्रतिमायें तो सर्वधात की थीं। साठ हजार जीर्ण मन्दिरो का जीर्णोद्वार भी करवाया था। जैनमन्दिरों के अन्दर एक विभाग में तथा मंदिरों के आस पास के प्रदेश में जैन श्रमणों के ठहरने को उपाश्रय भी बनवाये थे, इतना ही क्यों पर सर्व साधारण जनता के हितार्थ तालाब कुए बाग बगीचे सड़के तथा मुसाफिर ठहरने के लिये अनेक मकान भी बनवाये थे। इन के अलावा मनुष्यों के एवं पशुओं की चिकित्सा के लिये औषधालय भी स्थान स्थान पर स्थापित करवा दिये थे विद्या प्रचार के निमित्त विद्यालयों का सर्वत्र प्रचार करवा दिया था। सदाचार एव धर्म की भावना वृद्धि के लिये राजा की ओर से उपदेशक सब स्थानों पर घूम २ कर उपदेश दिया करते थे।

जैन ग्रन्थों में यह भी उल्लेख मिलता है कि सम्राट् सम्प्रति ने उज्जैन से एक शत्रुंजय तीर्थ का बड़ा भारी सघ निकाला था जिसमें आर्य सुहस्ती आदि ५००० जैनश्रमण श्रमणियें थी। सोना चांदी मणि माणिक की मूर्तियों के साथ कई देरासर भी सघ में थे। इस सघ में कई पाच लक्ष भावुक नरनारियों की सख्या कही जाती है सघ के साथ चलते २ रास्ते में भी सम्राट् ने कई स्थानों पर मन्दिरों की नींव डलवा कर कार्य प्रारम्भ करवा दिया था। इस प्रकार श्री शत्रु जय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा कर अन्य लाखों भावुकों को तीर्थ यात्रा का लाभ दिया था।

सम्राट् सम्प्रति ने श्रीशत्रु जय गिरनार आदि का यह एकही सघ निकाल कर यात्रा की हो, ऐसी बात नहीं है पर उसने अनेक बार इस पुनीत तीर्थ की यात्रा की थी। ऐसा जैनसाहित्य में उल्लेख मिलता है। यही कारण है कि सौराष्ट्र प्रदेश आपको बहुत प्रिय हो गया था।

गिरनार की तलेटी में एक सुदर्शन नाम का तालाव जो सम्राट् चन्द्रगुप्त ने खुदवाया तथा उसका घाट अशोक ने बँधवाया था उसका उद्धार भी सम्राट् सम्प्रति ने करवाया था। देखो वहाँ का शिलालेख।

सम्राट् सम्प्रति भारत विजय कर लेने के पश्चात् राजकार्यों से निश्चित हो जैनधर्म के प्रचार के लिये सदैव संलग्न रहता था और आप यह भी सोचता रहता था कि भगवान् महावीर के समय अनार्य देशो में भी जैनधर्म का प्रचार था। सम्राट् श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के उद्योग से आर्द्रकपुर नगर के राजपुत्र आर्द्रककुमार ने भगवान् महावीर के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा ली थी इत्यादि। सुना जाता है

---

सम्प्रति नामा ऽभूत। स च जात मात्र एव पितामहदत्तराज्ये रथयात्रा प्रवृत श्री आर्य सुहस्ति दर्शनाज्जात जातिस्मृतिः सपादलक्षजिनालयसपादकोटीनवीनबिंबपट्त्रिंशत्जीर्णोद्वार–पंचनवति सहस्रपित्तलमय प्रतिमाऽनेक शतसहस्रसत्रशालादिभिर्विभूपितां त्रिखंडाम पिमहीमकरोत्।

कल्पद्रुम की टीका

डाक्टर योम्स लिखते हैं कि·

The multitudinous images of the Maurya s, which were so easily reproduced in the absolute repetitive identity and so largely distributed as part and parcel of the creed itself

The people in Jambudvipa, who had remained unassociated with the Gods, became associated with the Gods

---

तथा तथात तेऽप्यूचुः । धर्मएवंततोनृपः । सुस्थान् प्रेषयामास । स्वस्थानं साम्प्रतमपि ॥ १६१ ॥
सत्वपस्वि समाचारं । यथानुकूल यथाविधि । माविपोन्नपतिस्तम । बहूंस्तत्रपचारिका ॥ १६२ ॥
ते च तत्र गतास्तेषाँ । वदन्त्येवं पुरःस्थिताः । अस्माकमन्नपानादि । मदेयंविधिनमुना ॥ १६३ ॥
द्वि चत्वारि कृता दोषौर्विशुद्धंयन्नयेपदि । तवैवकल्पतेऽस्माकंवस्त्रपात्रादिकिञ्चन ॥ १६४ ॥
आधाकर्मादिपथामी, दोषा इत्थं भवन्ति भोः । तच्छुद्धमेव नः सर्व, मदेय सर्व दैव दि ॥ १६५ ॥
न चाचार्ये वयं भूयो, भक्षिष्यामः किमप्यहो । स्वगुरुपास्तव एवोपैर्यतस्त्वं स्वामी तुल्ये ॥ १६६ ॥
इत्यादिभिवचोमस्ते,तथा पर्यासितास्तम् । कालेन बहिरेऽनार्य, अप्यार्येभ्यो यथाधिका ॥ १६७ ॥
मन्येधुश्च ततोराज्ञा, परयो भणितो यथा । साधवोऽन्नार्यदेशेषु, किं न वो विहरन्त्यमी ॥ १६८ ॥
परिराह न ते साधु, समाचारं विजानते । राज्ञा च भ्यपते तास्तु, को प्रतीतव् प्रतिक्रिया ॥ १६९ ॥
ततो राज्ञापरोधेन, परिभिः केऽपि साधवः । प्रेषिता तत्सेषु स पूर्व, वासनावासिततरा ॥ १७० ॥
साधूनामन्नपानादि, सर्वदयी योचितम् । नीत्या संपादयन्तिस्म, दर्शयन्तोऽति संभ्रमम् ॥ १७१ ॥
परीक्षमन्तिकेऽन्ये, पु साधव समुपागताः । उक्तवन्तो यथानार्य, नाममात्रस केवलम् ॥ १७२ ॥
भक्षाभपानदानादि,व्यवहारेण ते पुनः । आर्येभ्योऽभ्यधिका एव, मतिमान्ति सदैव नः ॥ १७३ ॥
तस्मात् सम्मति राज्ञेनाऽनार्यदेशा अपिभ्रमोः । विहारे योग्यतां याता सर्वतोऽपि तपस्विनाम् ॥ १७४ ॥
श्रुत्वैवं साधु वचनं, माचार्य सुहस्तिनः । भूयोऽपि प्रेषयामासुर । न्यानन्यों तपस्विनः ॥ १७५ ॥
ततस्ते भद्रका जाताः, साधूना देशनाश्रुतेः । तद् प्रभृत्येव ते सर्वे, निशीथेऽपि यथोदितम् ॥ १७६ ॥
एवं सम्प्रति राजेन, यतिनों संप्रवर्तितः । विहारेऽनार्यदेशेषु, शासनोन्नतिमिच्छता ॥ १७७ ॥

"परिशिष्टपर्व"

समण भड भाविएसु तेसुं देसेसुएसणा इहिं । सोहु सुहं विहारियाँ तेणते भद्दया जाया ॥ १७८ ॥

(निशीथचूर्णि)

सारांश यह है कि अनार्य देशों में जैन धर्म का प्रचारार्थ सूरिजी के साधु गये थे वे अपने कार्य में अच्छी सफलता पा कर वापिस सूरिजी महाराज के चरणों में आये और वहां का सब हाल सूरिजी से निवेदन करते हुए कहते हैं कि पूज्यवर ! आप के यहां के आर्य तो केवल नाम मात्र के ही जैन एवं श्रावक हैं पर अनार्य देश वासियों की धर्म पर श्रद्धा और साधुओं प्रति भक्ति देखी जाय तो आपके आर्य किसी गिनती में भी नहीं आ सकते हैं । इत्यादि बात भी ठीक है कि नये मनुष्यों का उत्साह ऐसा ही होता है।

इसके अलावा आचार्य हेमचन्द्रसूरि अपने परिशिष्ट पर्व नामक ग्रन्थ में भी सम्राट् सम्प्रति और आचार्य सुहस्तीसूरि का विस्तार से वर्णन किया है जिसको मैं यहां थोड़े से श्लोक उद्धृत कर देता हूँ कि

"इतश्च सम्प्रतिनृपो ययावुज्जयिनी पुरीम्, कदापि स्वापितिष्ठन्ति स्वभूमौ हि महीभुजः ॥२३॥
जीवंतस्वामिप्रतिमा रथयात्रा निरीक्षितुम्, आयतावन्यदाऽवन्त्यां महागिरि सुहस्तिनो ॥२४॥

× × ×

सेवकों में से योग्य पुरुषों को जैन धर्म एव जैन साधुओं के आचार विचार क्रिया कांड का ठीक अभ्यास करवा कर उनको साधु के वेश पहना कर अनार्य देशों में भेज दिये और साथ में उनकी सहायता के लिये ऐसे पुरुषों को भी भेज दिये कि उन नकली साधुओं के आवश्यक कार्यों की ठीक व्यवस्था कर सकें। इस प्रकार व्यवस्था करने से उन नकली साधुओं ने अनार्य देश में जाकर उन लोगों को जैनधर्म का प्रतिबोध करना शुरू किया। साथ साथ में जैन साधुओं का आचार व्यवहार भी समझाते रहे कि जैन साधु इस प्रकार से आहार पानी लेते हैं इस प्रकार उनका व्यवहार है इत्यादि।

नकली साधुओं के उपदेश से उन अनार्य पुरुषों पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनका मानस जैनधर्म की ओर जल्दी से ही झुक गया। कारण, एक तो जैनधर्म के तत्त्व ही हृदयग्राही थे दूसरे जैन साधुओं का आचार व्यवहार क्रिया काण्ड रहन सहन और निस्पृहता भी ऐसी थी कि जनता को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। जब वे अनार्य लोग जैनधर्म के साधुओं के आचार व्यवहार समझने लगे और उनके खानपान में भी बहुत सुधार हो गया तो वे नकली साधु लौटकर सम्राट् के पास आये और वहाँ का सब हाल कह सुनाया इस पर सम्राट् ने जाकर सूरिजी से प्रार्थना की कि भगवान्! अनार्य प्रदेश जैनश्रमणों के विहार करने योग्य बन गया है। कृपा कर आप अपने साधुओं को उस प्रदेश में धर्म प्रचार करने के लिये विहार करने की आज्ञा दीलावे।

सूरीश्वरजी ने सम्राट् के वचन सुनकर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपने साधुओं को अनार्य देशों में विहार करने की आज्ञा देदी। पर वे साधु आजकल के एक प्रान्त में रहने वाले साधुओं जैसे नहीं थे कि अनेक ललकारें फटकारें लगते हुये भी एक ही प्रदेश में अपना अपमानित जीवन गुजार रहे हैं। किन्तु उस समय के साधु जैनधर्म का प्रचार करने में अपना जीवन अर्पण करने वाले थे कि सूरीश्वरजी की आज्ञा होते ही जैसे शेर के बच्चे गर्जना कर गुफा से निकलते हैं उसी भांति बड़े ही उत्साह एव खुशी के साथ अनार्य देश की ओर विहार कर दिया। हाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तो अनार्य प्रदेश में जाना तो उन्होंने जानबूझ के ही आपत्तियों को अपना मेहमान बना लिया था। जैसे इस समय सुलभ और परिचित क्षेत्र में भी विहार में नौकर-चाकर एवं रसोइया साथ रहते हैं वैसे उन्होंने नहीं किया था। यदि वे भी ऐसा करते तो जैसा आज के सूरियों का पग पग पर अपमान एव अनादर होता है, इसमे अधिक फायदा वे भी नहीं उठा सकते थे पर उन्होंने तो सब कठिनाइयों को सहन करते हुए अनार्य देशों में जाकर भगवान महावीर के स्याद्वाद एव अहिंसापरमोधर्म का सन्देश अनार्य्यों के घर घर में नहीं पर कान कान तक पहुँचा दिया था। इस कार्य में उन्होंने जैसे अधिक सकटों को सहन किया वैसे लाभ भी अधिकाधिक प्राप्त कर लिया। जब वे अनार्य जैनधर्म के उपासक बन जैनधर्म पालन करने लगे तो वे आर्यों से भी दो कदम आगे बढ़ गये। प्रमाण रूप में जब अनार्य देश में विचरने वाले साधुओं में से कई वापिस सूरिजी के पास आते तब वे वहाँ के अनार्यों के भक्ति भाव का इस प्रकार वर्णन करते थे कि

प्रवर्तयामिसाधूनाँ। सुविहारविधित्सया अन्ध्राद्यनार्यदेशेषु। यति वेषधारान्भटान् ॥ १५८ ॥
येन व्रत समाचारः। वासना वासितोजनः। अनार्योत्पन्नदानादौ। साधूनाँ वर्तते सुखम्॥ १५९ ॥
चिन्तयित्वेत्थमाकार्यानार्योनेवममापत। भो यथा मद्भटायुष्मान् याचन्ते मामकं करम् ॥ १६० ॥

पार्थिव सम्प्रतिरपि पालयन् श्रावक व्रतम्, पूर्वापुर्द्रम्य मूर्त्तिर्भिः क्रमेणापगमिष्यति ॥१२७॥
"परिशिष्ट पर्व सर्ग ११ वाँ"

अहा हा ! धन्य है सम्राट् सम्प्रति और धन्य है उनके गुरु आचार्य सुहस्ती सूरि को कि जिन्होंने हृदय में जैन धर्म प्रचार की इतनी गहरी लग्न थी कि सम्राट् ने किस प्रकार स भावपूर्ण से अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया कि जैनधर्म के प्रचारार्थ अपना तन मन और धन सब लगा दिया तथा इस काम के सम्पादन किसी प्रकार की आपत्तियों एवं कठिनाइयों की परवाह नहीं करते हुये और अपने प्राणों की बाजी लगा के भी जैन धर्म का प्रचार किया पर परिषहों स डर कर तनिक भी पीछे कदम नहीं रक्खे एवं जैनधर्म के प्रचार निमित्त प्राणों को अर्पण कर दिया।

अब भारत से लगा कर अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, तुर्किस्तान, ईरान, यूनान, मिश्र तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, आसाम, लंका अफ्रीका और अमेरिका तक के प्रदेशों में जैनधर्म का प्रचार हो गया तो इनको चिरस्थायी बना रखने के लिये सम्राट् सम्प्रति ने वहाँ कई जैनमंदिरों का भी निर्माण करवा दिया कि जिनसे वहाँ के निवासियों की धर्म पर श्रद्धा सदैव के लिये बनी रहे।

आज उन प्रदेशों में भले ही जैनधर्मोपासक न रहे हों पर सम्राट् सम्प्रति के बनाये हुये मन्दिर मूर्त्तियों का अस्तित्व तो आज भी विद्यमान है जो खोद काम करते समय भूगर्भ से कई जैन मूर्त्तियाँ वगैरह स्मारक चिन्ह उपलब्ध होते हैं जैसे कि —

१—आस्ट्रिया-हंगरी प्रान्त के बुडापेस्ट ग्राम के एक किसान के खेत में खोद काम करते समय भूमि स भगवान् महावीर की मूर्त्ति निकली वह आज भी वहाँ के म्यूजियम में सुरक्षित रक्खी हुई है।

२—अमेरिका के एक भू भाग स ताम्रमय बड़ा सिद्धचक्रजी का गट्टा निकला है।

३—मंगोलिया प्रान्त में तो भूगर्भ से इतने अवशेष स्मारक निकले हैं कि एक भारतीय पुरातत्त्व विद्वान् ने पाश्चात्यदेशों की यात्रा की थी और उसने अपनी आँखों से देखा है उसके विषय में एक लेख 'बम्बई समाचार' नामक प्रसिद्ध दैनिक अखबार ता० ४ अगस्त १९३४ के अंक में जैन धर्म शीर्षक स मुद्रित करवाया था जिसमें आप लिखते हैं कि एक समय इस प्रान्त में जैनों की घनी बस्ती थी और जैनों के अनेक मंदिर भी थे वे जिनके कि आज वहाँ कई भग्न मूर्त्तियों के खण्डहर एवं तोरण वगैरह भूगर्भ से निकलते हैं। मेरा तो यहाँ तक खयाल है कि जैन ग्रन्थों में महाविदेह क्षेत्र का उल्लेख किया है। शायद जैनों का महाविदेह यही हो कि किसी समय यहाँ जैनों की घन बस्ती थी।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि आर्यसुहस्तीसूरि और सम्राट् सम्प्रति के समय भारत और भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार था। यही कारण है कि आज कल के इतिहासकार अन्वेषक एवं जरमन ग्रन्थों में लिखते हैं कि एक समय जैन जनता की संख्या ४००००००० चालीस करोड़ थी।

* "भारत में पहिले ... जैन थे। इन्हीं मत से निकल कर बहुत अन्य मतों में प्रविष्ट होने लगे। इसी कारण से इनकी संख्या घट गई है। यह धर्म अति प्राचीन है। इस धर्म के नियम बहुत उत्तम हैं जिनसे देश को अतीव लाभ पहुँचा है।"
—बाबू कृष्णनाथ वर्मा

गते राजकुलद्वारंरथेऽथपृथिवीपतिः, वातायनस्थितो दूराद् दर्शार्य सुहस्तिनम् ॥२८॥
दृष्ट्वैवंमुनीन्द्रोऽयं मन्मनः कुमुदोडुपः, क्वापिदृष्टइवाभाति न स्मरामितुकिंह्यदः ॥२९॥
एवंविमर्षकुर्वाणो मूर्च्छितोन्यपतन्नृपः, आः किमेतदिति वदन्दधावेच परिच्छदः ॥३०॥
व्यजनैर्वीज्यमानश्चसिच्यमानश्चचन्दनैः, जातिस्मरणमासाद्योदस्थादवनिशासनः ॥३१॥
समाग्जन्मगुरुं ज्ञात्वा, जातिस्मृत्या सुहस्तिनम्, तदैव वन्दितुमगाद्विस्मृतान्य प्रयोजन ॥३२॥
पञ्चांगस्पृष्ट भूपीठः सनत्वार्य सुहस्तिनम्, पप्रच्छ जिनधर्मस्य भगवन्की दृशं फलम् ॥३३॥

इसके आगे भिक्षुक के भव में दीक्षा लेना और वहाँ से मर कर कुनाल के पुत्र सम्प्रति होने का वर्णन है।

त्वया प्रव्राजितो न स्यां तदाहंभगवन्यदि, भगवंस्त्व त्प्रसादेन प्राप्तोऽहं पदवी मिमान ॥५५॥
पुनर्विज्ञपयामास सुहस्तिन मिलापतिः, अस्पृष्ट जिनधर्मस्य का गतिः स्यातनोमम ॥५६॥
तदादिशत मे किंचित्प्रसीदत करोमि किम्, भवामि नानृणो ऽहं वः पूर्व जन्मोपकारिणाम् ॥५७॥
जन्मन्यत्रापि गुरवोयूयं मे पूर्वजन्मवत्, अनुगृह्णीत मा धर्मपुत्रं कर्त्तव्य शिक्षया ॥५८॥
कृपालुरादि देशार्य सुहस्ति भगवान्नृपम्, जिनधर्मं प्रपद्यस्व परत्रेह च शर्मणे ॥५९॥
स्वर्गः स्याद पवर्गो वामुत्रार्हद्धर्मशालिनाम् इह हस्त्यश्व कोशादि सम्पदश्चोतरोत्तराः ॥६०॥
अभ्यग्रही दथनृपस्तदग्रेतदनुज्ञया, अर्हन्देवो गुरुःसाधुः प्रमाणं मेर्हतो वचः ॥६१॥
अणुव्रतगुणव्रत शिक्षाव्रतं पवित्रतः। प्रधान श्रावको-ज्जे सम्प्रतिस्तत्प्रभृत्यपि ॥६२॥
त्रिसन्ध्यमप्य वन्ध्यश्री जिनार्चामर्चति, स्मसः साधर्मिकेषु वात्सल्यं वन्धुष्विवचकार व ॥६३॥
स सर्वदाजीवदया तरङ्गितमनाः सुधीः, अवदानरतोदानं दानेभ्योऽभ्यधिकंददो ॥६४॥
आवैताढ्यं प्रतापाढ्यः स चकारा विकारधी, त्रिखंण्डं भरतक्षेत्रं जिनायतान मण्डितम् ॥६५॥

इसके आगे सम्राट् सम्प्रति ने जैन धर्म की प्रभावना की जिसका विस्तृत विवरण है।

सम्प्रतिश्चिन्तयामास निशीथ समये ऽन्यदा, अनार्येष्वपि साधूनाँ विहारं वर्तयाम्यहम् ॥८९॥
इत्यनार्यानादि देशराजा दध्वं कर मम, तथा तथास्मत्पुरुषा मार्गयन्ति यथा यथा ॥९०॥
ततः प्रैषीदनार्येषु साधुवेषधरान्नरान्, से सम्प्रत्याज्ञयानार्यनेवमन्वशिषन्भृशम् ॥९१॥

सम्राट् ने अनार्य देश में अपने सुभटों को भेजकर साधुओं के विहार योग्य क्षेत्र तैयार करके साधुओं को भेजे।

एवं सम्प्रति राजेन स्वशक्त्या बुद्धिगर्भया, देशाः साधु विहारार्हा अनार्येऽपि चक्रिरे ॥१०२॥
राज्ञा प्रग्जन्मरङ्कत्व वीभत्सं स्मरतानिजम्, महासत्राण्य कार्यन्तपूर्द्वारेषुचतुर्ष्वपि ॥१०३॥

सम्प्रति ने नगर के चारों दरवाजे भोजनशाला खुला दी इतना ही क्यों पर नगर के सब व्यापारियों को भी कह दिया कि साधुओं को जिस वस्तु की जरूरत हो तुम दिया करो और उसकी कीमत राज के खजाने से ले जाया करो अहा-हा यह कैसी उदारता ? यह कैसी भक्ति ? पर यह था जैन मुनियों के आचार से खिलाफ। यही कारण था कि आगे चल कर इसका फल यह हुआ, कि आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती के आपस में सभोग टूट गया।

× × ×

आष्ट्रीया के अन्तर्गत हींगरी प्रान्त के वुढपेस्त नगर के एक गृहस्थ के बगीचा का खुदाई काम करते हुए भूमि मे निकली—महावीर की प्राचीन मूर्ति ।

इतिहास के प्राचीन साधन
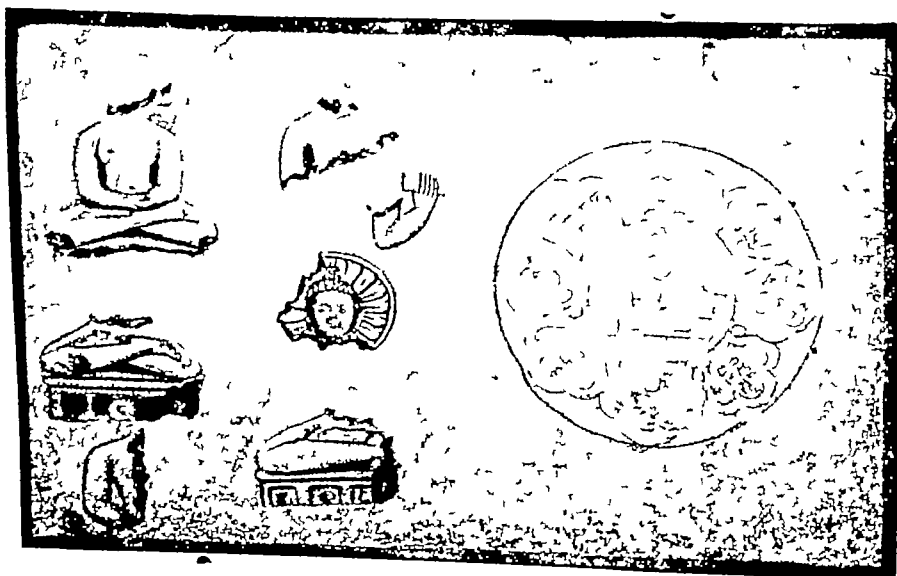
पूरक जैन होना चाहिये। कारण जीवदया के लिये इस प्रकार की आज्ञा देना जैनधर्म का ही सिद्धान्त है दूसरा अष्टमी चतुर्दशी पूर्णिमा और अमावस्या वगैरह तिथियों का उल्लेख किया है इन तिथियों को जैन धर्म में मुख्य मानी है और इन तिथियों में जैन लोग पापारंभ से बच कर पौषधादि विशेष धर्माराधन करते हैं अतः यह कहना न्याय संगत है कि प्रस्तुत लेख सम्राट सम्प्रति की आज्ञा रूप ही समझना चाहिये।

हाँ कई लोग इन लेखों को सम्राट् अशोक के भी कहते हैं जो बौद्ध धर्मोपासक था पर सम्राट् अशोक को बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था बाद भी उनके रसोई के भोजन के लिये दो मयूर और एक मृग तो हमेशा मारे जाते थे अतः यह आशा कब रखी जासकती है कि इस प्रकार जीवदयाके लिये उसने फरमान जारी किये हो अतः पूर्वोक्त आज्ञा लेख जैन धर्मोपासक अहिंसा व्रत के पालक एवं प्रचारक सम्राट् सम्प्रति का ही है।

२—ब्रह्मगिरिका द्वितीय लघुशिलालेख "धर्म्म" के सिद्धान्त—देवताओं के प्रिय इस तरह कहते हैं—माता और पिता की सेवा करनी चाहिये। प्राणियों के प्राणों का आदर दृढ़ता के साथ करना चाहिये (अर्थात् जीव-हिंसा न करनी चाहिये। सत्य बोलना चाहिये, "धम्म" (धर्म्म) के गुणों का प्रचार करना चाहिये। इसी प्रकार विद्यार्थी को आचार्य की सेवा करनी चाहिये और अपने जाति भाइयों के प्रति उचित बर्ताव करना चाहिये यही प्राचीन धर्म की रीति है। इससे आयु बढ़ती है और इसी के अनुसार मनुष्य को चलना चाहिये। पड नामक लिपिकार (लेखक) ने यह लेख लिखा है।

३—देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—प्राचीन काल में हर समय में राजकार्य्य प्रजाजन और गुप्तचरों के समाचारों को सुनने की प्रथा न थी। मैंने इस प्रकार का नियम कर दिया है कि, चाहे जिस समय में—खाने के समय विश्राम के समय शयनागार में एकान्त में अथवा वाटिका में—वे कर्मचारी लोग जिनके ऊपर प्रजा विषयक कार्य्यों का भार है मुझ से मिल सकते हैं। मैं अपनी प्रजा के सम्बन्ध की सब बातें उन से जान लेता हूँ। मेरी कही हुई शिक्षाओं को मेरे धर्म महामात्र लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि जहाँ कहीं धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद अथवा झगड़ा हो उसकी सूचना मुझे सदा मिल जानी चाहिए। क्योंकि, न्याय के प्रबन्ध में जितना भी उद्योग किया जाय कम है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा लोगों का उपकार करूं। निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध ही सर्व साधारण के हित की जड़ है। और इससे अधिक उपकारक कुछ नहीं है। मेरे सब कार्यों का मुख्य उद्देश्य है कि, मैं सर्व साधारण के ऋण से मुक्त हो जाऊं। जहाँ तक मुमकिन हो सकता है मैं उन्हें सुखी रखने का प्रयत्न करता हूँ। और इस बात का भी प्रयत्न करता हूँ कि, भविष्य में भी स्वर्ग सुख प्राप्त करें। भविष्य में मेरे पुत्र और पौत्र भी सर्व साधारण के हित में रत रहें। इसी उद्देश्य से मैंने यह लिपि खुदवाई है।

४—देवताओं के प्रिय राजाप्रियदर्शी की यह बड़ी इच्छा है कि, सब स्थानों में सब जातियाँ सुखी रहें। सब लोग समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। और आत्मा को पवित्र बनावें। मनुष्य संसार की वस्तुओं में अधीर है। संसारचक्र के कारण वह जितनी बातें चाहता है उतनी कर नहीं सकता। फिर भी धार्मिक रूप से उसे कर्त्तव्य पालन में रत रहना चाहिए। दान एक श्रेष्ठ धर्म है। लेकिन जो लोग धार्मिक

सम्राट् सम्प्रति ने अपने धर्म प्रचार के हित कितना प्रयत्न किया होगा, पाठक उपरोक्त लेख से अच्छी तरह समझ गये होंगे। फिर भी वह इतना करके चुप नहीं बैठ गया पर उसने कई पाषाण की चट्टानों पर अपनी आज्ञाओं को अंकित भी करवा दी थीं कि जिससे एक तो जनता हमेशा उसको पढ़ती रहे और अपना जीवन धर्ममय बनाले। दूसरे धर्मलिपियें खुदवाने का मतलब है कि यह चिरकाल रहें जिससे भविष्य की प्रजा भी अपना जीवन धार्मिक कार्यों में व्यतीत करे।

सम्राट सम्प्रति ने उन लिपियों में किसी धर्म का नाम न लिखवा कर ऐसे धर्म नियमों को पालन करने का निर्देश किया है कि जिसमें सब धर्मों का समावेश हो सकता है। कारण, जीव हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, सदाचार रखना अपनी मान्यता के अलावा दूसरे के धर्म की निन्दा नहीं करना आदि आदि जिसमें किसी धर्मवालों का विरोध हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि सम्राट् सम्प्रति के धर्म का जनता पर जल्दी और गहरी तादाद में असर हो गया।

सम्राट् सम्प्रति की लिपिया उस जमाने की पाली आदि भाषाओं में हैं कि जिसको साधारण मनुष्य पढ कर उसके भाव को नहीं समझ सकता है अत कई हिन्दी भाषा भाषी सज्जनों ने उन लिपियों का हिन्दी अनुवाद कर दिया है जो अशोक के धर्म लेख के नाम से पुस्तक के रूप में मुद्रित हो चुकी है, उसके अन्दर से कतिपय लेख नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—पंचम स्तम्भलेख—देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं—कि राज्याभिषेक के २६ वें वर्ष बाद मैंने इन प्राणियों का वध करना सब के लिये सर्वदा मना कर दिया है यथा—सुग्गा, मैना, अरुण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगीदड़) अम्बाकपिलिका, दुडि (कछुवी) वे हड्डी मछली, वेदवेयक ( जीवजीवक ) गंगापुटक, संकुजमत्स्य, कछुआ, साही, पर्णशश, बारह सिंहा, सांड, ओकपिण्ड मृग सफेद कबूतर, गाँव के कबूतर और सब तरह के सब चौपाये जो न तो किसी प्रकार उपभोग में आते हैं और न खाये जाते हैं। गाभिन या दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़ और सुअरी तथा इनके बच्चों को जो ६ महीने तक के हों न मारना चाहिये। मुर्गों को वधिया न करना चाहिये। जीवित प्राणियों के साथ भूसी को न जलाना चाहिये। अनर्थ करने के लिये या प्राणियों की हिंसा करने के लिये वन में आग न लगानी चाहिये। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाना चाहिये। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं की तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मास की पूर्णिमा के दिन, अष्टमि, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन मछली न मारना चाहिये न बेचना चाहिये। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाब में कोई भी दूसरे प्रकार के प्राणी न मारे जाने चाहिये। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या वा पूर्णिमा तथा पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, और प्रत्येक चार चार महीने के त्योहारों के दिन बैल को न दागना चाहिये तथा बकरा, भेड़, सुअर और इसी तरह के दूसरे प्राणियों की, जो दागे जाते हैं न दागना चाहिये। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन, प्रत्येक चातुर्मास्य ... पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्लपक्ष में घोड़े और बैल को न दागना चाहिये। रा... के बाद २६ वर्ष के अन्दर मैंने २५ बार कारागार से लोगों को मुक्त किया है।

इस लेख को पढ़ने से इतना तो निश्चय सहज ही में हो सकता है कि इस लेख ... का यह

कर्तव्य होना चाहिए कि दूसरे धर्मों का भी सब अवसरों पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार आचरण करने से मनुष्य दूसरों की सेवा करते हुए भी अपने धर्म की उन्नति कर सकता है। इसके विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य न तो अपनी ही भलाई कर सकता है न दूसरों की ही। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपने धर्म की वृद्धि करने के लिए दूसरे धर्मों की निन्दा करता है वह अपने ही हाथों अपने धर्म पर कुठाराघात करता है। सहयोग ही सब से उत्तम वस्तु है। इसी के कारण सब लोग एक दूसरे के मतों को सुनते हुए प्रेम-पूर्वक समाज में रह सकते हैं। देवताओं के प्रियदर्शी की यह इच्छा है कि सब लोगों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय जिससे कि, उनके सिद्धान्त शुद्ध हों। सब धर्म के लोगों को यह बतला देना चाहिये कि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् दान और बाहरी विधानों की अपेक्षा वास्तविक धर्माचरण की उन्नति और सब धर्मों के पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्व देता है। इसी उद्देश्य से धर्म का प्रबंध करने वाले कर्मचारी, निरीक्षक और अन्यान्य कर्मचारी लोग काम करते हैं। इसी का फल मेरे धर्म की उन्नति और धार्मिक दृष्टि से उसका प्रचार है।

९—देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं — धर्म उत्तम है पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म है क्या पदार्थ ? धर्म थोड़ी से थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक भलाई करने में है। धर्म दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन में है। इसलिए मैंने मनुष्यों, चौपायों पक्षियों और जल-जन्तुओं के निमित्त अनेक प्रकार के दान दिये हैं। मैंने उनके हित के लिए बहुत से कार्य किये हैं। यहाँ तक कि उनके पीने के लिए जल का भी प्रबन्ध किया है। मैंने इस उद्देश्य से इस सूचना को खुदवाई है कि जिससे लोग उसके अनुसार चलें और सत्य पथ को ग्रहण करें। यह कार्य बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है।

इनके अलावा भी बहुत से शिलालेख एवं आज्ञापत्र खुदे हुए भिन्न भिन्न स्थानों में मिले हैं पर स्थानाभाव से उन सबका यहाँ उल्लेख नहीं किया है तथापि पाठक उपरोक्त लेखों से अनुमान कर सकेंगे कि प्रस्तुत धर्म लेखों के खुदाने वाला सम्राट सम्प्रति जैनधर्म का कट्टर अनुयायी था। विशेष विस्तार के लिये डा० त्रि० ले० बड़ोदा वाले का लिखा 'प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास' नामक ग्रंथ पढ़ कर इस विषय की ठीक जानकारी हासिल करें कि प्रस्तुत लेख किस सम्राट् के हैं ?

सम्राट सम्प्रति का जीवन जैन ग्रंथकारों ने बहुत विस्तारपूर्वक लिखा है। सम्राट ने अपने जीवन में जैनधर्म का इतना अभ्युदय किया था कि इनके बाद इस प्रकार का किसी ने भी नहीं किया। हाँ, कुमारपालादि कई राजाओं ने जैनधर्म की समय समय पर उन्नति की पर वे सम्राट् सम्प्रति की बराबरी नहीं कर पाये थे। सम्राट् सम्प्रति के बाद मौर्य वंश में ऐसा कोई राजा नहीं हुआ कि सम्राट् चन्द्रगुप्त अशोक और सम्प्रति के राज्य विस्तार का पूर्णतया रक्षण कर सके। हाँ सम्प्रति के बाद मगध के सिंहासन पर कुल १९ वर्ष में वृषसेन देववर्मा शतधनु और बृहद्रथ नाम के चार राजा हुए। अन्तिम बृहद्रथ नाम का राजा हुआ जिसके सेनापति पुष्पमित्र ने विश्वासघात से राजा को मार कर आप स्वयं मगध का राजा बन गया था। पुष्पमित्र वैदिक धर्मानुयायी था। इसके हाथ में राज की सत्ता आते ही जैन और बौद्धों के दिन बदल गये। परन्तु कलिंगपति महामेघवाहन चक्रवर्ती राजा खारवेल जो कट्टर जैन था, मगध पर आक्रमण कर उसके शिर को अपने पैरों में झुका दिया था जिसका हाल आगे के प्रकरणों में लिखा जायगा।

हीनता के कारण दान नहीं कर सकते उन्हें सयम चित्तशुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़ चिन्तवना आदि गुणों का एकान्त पालन करना चाहिए।

५—देवताओं का प्रिय, प्रियदर्शी सम्राट् कहता है कि प्राचीन समय के राजा लोग अहेरिया के लिए जाया करते थे। अपना जी बहलाने के लिए वे जानवरों का शिकार तथा अन्य इसी प्रकार के खेल किया करते थे। मैं देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट अपने राज्य के दशवें वर्ष में इस प्रकार मनोरंजन को बन्द करता हूँ। अब मुझे सत्यज्ञान प्राप्त हो गया है। आज से ब्राह्मणों और श्रमणों की भेंट करना उनको दान देना, वृद्धों से परामर्श करना, द्रव्य बाटना, राज्य में प्रजा से भेंट करना, प्रजाजनों को धार्मिक शिक्षा देना आदि कार्य्य ही मेरे मनोरञ्जन की सामग्री होगी। इस प्रकार देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अपने भले कामों से उपन्न हुए सुखों को भोगता है।

६—देवताओं के प्रिय-प्रियदर्शी सम्राट् इस के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कीर्ति अथवा यश को पूर्ण नहीं समझता कि, उसकी प्रजा वर्तमान मे अथवा भविष्य में उसके धर्म्म को माने और उसके अनुसार कार्य्य करे। इसी एक मात्र यश को देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् चाहता है। प्रियदर्शी सम्राट् के सब उद्योग आगामी जीवन में मिलने वाले सुखों तथा जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त होने के लिए हैं। क्योंकि जीवन मरण दुख ही सब से बड़ा दु ख है। लेकिन इस दु ख से छुटकारा पाना छोटे और बड़े दोनों ही के लिए कठिन है तब तक कठिन जब तक कि, वे अपने को सब वस्तुओं से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करेंगे। खास कर बड़े लोगों के लिए इसका उद्योग करना बड़ा ही कठिन है।

( बोधमत में आत्मा को क्षणक माना है अत परभव का तो वहां आस्तित्व ही नहीं है अतः इस लेख के खुदवाने वाला कट्टर आस्तिक एव जैन होना चाहिये जो सम्राट सम्प्रति था )

७—देवताओं केप्रिय, प्रियदर्शीसम्राट् कहते हैं—धर्म्म की मित्रता के समान मित्रता, धर्म की भिक्षा के समान भिक्षा,धर्म्म के सम्बन्ध और धर्म्म के दान के बराबर दान दुनिया में कोई नहीं है। इसलिए अपने दास और साधारण भृत्यों के प्रति सदय व्यवहार, माता पिता की शुश्रूषा, मित्र, परिचित और जाती का सम्मान, ब्राह्मण और श्रमण लोगों को दान, प्राणियों के प्रति अहिंसाभाव, आदि सत्कार्य्यों को सम्पन्न करते रहना चाहिये। माता पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, परिचित और जाति के लोगों को यह उपदेश देते रहना चाहिए कि, ये कार्य्य सत्कार्य्य हैं—ये मनुष्य के कर्तव्य हैं। जो लोग हमेशा इस प्रकार का आचरण अथवा धर्म्मदान किया करते हैं वे इस लोक में पूजित एवं परलोक में अनन्त सुख भोगी होते हैं।

८—देवताओं का प्रिय, प्रियदर्शी सम्राट् सब धर्म के लोगों का—क्या सन्यासी और क्या गृहस्थ—उचित सत्कार करता है। वह उन्हें भिक्षा और दूसरे प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। लेकिन प्रियदर्शी सम्राट् इस प्रकार के दानों को उनके धर्माचरणों की उन्नति के सम्मुख कुछ भी नहीं समझता। यद्यपि यह सत्य है कि, भिन्न २ धर्मों में भिन्न २ प्रकार के पुण्य समझे जाते हैं तथापि उन सब का आधार एक ही है। वह आधार सुशीलता और सम्भाषण में शान्ति होना है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह कभी अपने धर्म की व्यर्थ प्रशसा और दूसरों के धर्म की निन्दा न करे। किसी भी व्यक्ति का यह कर्तव्य नहीं है कि वह दूसरों के धर्म को विना कारण हलका समझे। इसके विपरीत सब लोगों का यह

ऊपर दी हुई तालिका का यह सारांश है कि 'विचारश्रेणीकार' के मत से नवनंदों का राज १५५ वर्ष का और पुष्पमित्र का राज ३० वर्ष का है। तब तित्थोगाली पइन्ना के मत से नंदों का राज १५० वर्ष और पुष्पमित्र का राज ३५ वर्ष माना है। इसमें ५ वर्ष का इधर उधर अन्तर होने पर भी हिसाब में फर्क नहीं आता है। आगे विचारश्रेणीकार मौर्यवंश का राज १०८ और राजों का १५२ वर्ष बतला कर दोनों को मिला कर २६० वर्ष पूरा किया है। तब तित्थोगाली पइन्ना में मौर्यवंश को १६० वर्ष और राजों का १०० वर्ष मान कर २६० वर्ष का हिसाब मिलाया गया है। अतः वी० नि० सं० से शक संवत् का प्रारम्भ में दोनों ग्रन्थकारों का एक ही मत है जो ६०५ वर्ष बतलाते हैं।

उपरोक्त गणना में खास अन्तर तो मौर्यवंश के राजाओं का ही है। जो विचारश्रेणीकार १०८ वर्ष बताते हैं तब पइन्ना १६० वर्ष का प्रतिपादन करता है। अतः मौर्य राज में ५२ वर्ष का अन्तर पड़ता है। जब मौर्य राजाओं के राज काल की गणना लगाई जाय तो १६० वर्ष का मानना ठीक बैठता है। क्योंकि मौर्य चन्द्रगुप्त ने २४, बिन्दुसार ने २५, अशोक ने ४१, सम्प्रति ने ५३ और उनके बाद पुष्यमित्र से पहले १९ वर्ष राज किया बतलाया जाता है। इन सब की जोड़ लगाई जाय तो १६२ वर्ष आता है। जो पइन्ना के मत से मिलता जुलता है फिर विचार-श्रेणीकारों ने ५२ वर्ष का अन्तर क्यों डाला होगा।

वास्तव में यह भूल मौर्यवंश के राजाओं की नहीं पर यह भूल नंद वंश के राजाओं के समय में पाई जाती है। कारण आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने परिशिष्ठ पर्व नामक ऐतिहासिक ग्रंथ में लिखा है कि—

अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात्। गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः ॥

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद ६० वर्ष व्यतीत होने पर मगध के सिंहासन पर नंदवंशीय राजा का राज स्थापित हुआ अर्थात् ६० वर्ष तक शिशुनागवंशी राजा कोणिक और उदाई का राज रहा। बाद में नंद का राज हुआ। अब नन्दों का राज्य कहाँ तक रहा इसके लिये कहते हैं कि—

एवं च श्रीमहावीर मुक्तेर्वर्षशते गते। पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥

जब १५५ वें वर्ष में मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त मौर्य का राज प्रारम्भ होता है तो ६०-१५५ बीच में ९५ वर्ष रहे। इधर नंदों का राज ९५ वर्ष रहा जिसको १५० या १५५ वर्ष का मान लेना ही इस अंतर का मूल कारण हो सकता है।

इस विषय में कई विद्वान अपनी शोध एवं खोज के बाद इस निर्णय पर आते हैं कि मगध की गद्दी पर नंदों का राज ९५—१०० वर्षों से अधिक नहीं रहा था। उदाहरण यहाँ पर दर्ज कर दिया जाता है।

(१) डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्द ने अपने 'प्राचीनभारतवर्ष' नामक पुस्तक में मौर्यवंश के राजा चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक समय ई० स० पू० ३७२ का लिखा है। अर्थात् वी० नि० सं० १५५ का आता है।

(२) बंगाल का इतिहासज्ञ डा० नागेन्द्र बसु ने अपने 'वैश्यकाण्ड' नामक पुस्तक में लिखा है कि चन्द्रगुप्त का समय ई० स० पू० ३७५ से शुरू होता है। अर्थात् वीर निर्वाण स० १५२ वर्ष आता है।

(३) श्रीमान् सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैनवाले ने एक विस्तृत लेख हमारी बनारसी विक्रमीय पत्रिका वर्ष ११ अंक १ में मुद्रित करवाया है जिसमें उन्होंने चन्द्रगुप्त का राज समय ई० स० पू० ३७२ का बड़े ही विश्वास से सिद्ध किया है। इससे वि० १५५ वर्ष चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण समय स्थिर होता है।

# मौर्य साम्राज्य का समय

मोर्य साम्राज्य का समय निश्चित करना एक प्रकार की विकट समीक्षा बन गयी है। इतिहासकारों का इस विषय में एक मत नहीं पर पृथक २ मत है। जैन काल गणना में भी इस विषय का काफी मतभेद है। कई लोगों का मत है कि भगवान महावीर के पश्चात् १५५ वें वर्ष में चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर आरूढ हुआ। तब कई एकों का मत है कि महावीर निर्वाण के बाद २१० वें वर्ष चन्द्रगुप्त मगध के राजा हुऐ। और कई लोगों का इन दोनों से अलग ही मत है। अतः इन सबों का उल्लेख यहां पर दर्ज कर दिया जाता है।

आचार्य मेरुतुंगसूरि कृत विचारश्रेणी

वीर निव्वाण रयणीश्रो चडपज्जोय राय पट्टम्मि।
उज्जेणीए जाश्रो पालय नामा महाराया ॥
सट्ठी पालगराश्रो, पणवन्न सय तु होइ नन्दाण।
श्रट्ठसय मुरियाणं तीसच्चिया पूसमित्तस्स ॥
बलमित्त भाणुमित्राण सट्ठि वरिसाणी चत नहवहणे।
तह गद्दभिल्लस्स रज्जं तरेस वासे सगस्स चउ ॥
विक्रम रज्जाणतर सतरस वासेहिं वच्छर पवित्ती।
सेसंपुण पणतीस सय विक्कम कालम्मिय पविट्ठं ॥

अर्थात उपरोक्त गाथाओं का भाव

| | | |
|---|---|---|
| पालग का राज | ६० | वर्ष |
| नौ नंदो का राज | १५५ | ,, |
| मौर्य वंश का राज | १०८ | ,, |
| पुष्पमित्र का राज | ३० | ,, |
| बलमित्र भानुमित्र का राज | ६० | ,, |
| नभवाहन का राज | ४० | ,, |
| गर्दभभिल्ल का राज | १३ | ,, |
| शाकों का राज | ४ | |

विक्रम सवत्-४७० वर्ष

| | | | |
|---|---|---|---|
| विक्रमादित्य का राज | | ६० | वर्ष |
| धर्मादित्य का | ,, | ४० | ,, |
| भाइल का | ,, | ११ | ,, |
| नाइल का | ,, | १४ | ,, |
| नाहाड़ का | ,, | १० | ,, |
| | | १३५ | |

शाक सवत—६०५

पूर्वाचार्य निर्मित तित्थोगाली पइन्नो

जरयणि सिद्धि गश्रो, अरहा तित्थकरो महावीरो।
तरयणिमवतीए श्रभिसित्तो पालश्रो राया ॥ ६२०
पालग रण्णे सट्ठी पुण पणासयं वियाणि णंदाणाम्
मुरियाण सट्ठिसय पणतीसा पूस भित्ताणाम् ॥६२१
बलमित्त भाणुमित्ता सठ्ठा चताय होती नहासणे।
गद्दभसयमेगं पुण पडिवन्नो तो सगो राया ॥६२२
पंचयमासा पचयवासा छच्चेव होति वास सया।
परिनिव्वुश्रस्सऽरिहतो उपन्नो सगो राया ॥ ६२३

श्रर्थात उपरोक्त गाथाओं का भाव

| | | |
|---|---|---|
| पालग का राज | ६० | वर्ष |
| नौ नदो का राज | १५० | ,, |
| मोर्य वरियों का राज | १६० | ,, |
| पुष्पमित्र का राज | ३५ | ,, |
| बलमित्र भानुमित्र का राज | ६० | ,, |
| नभसैन का राज | ४० | ,, |
| शाकों का राज | १०० | ,, |

शाक सवत्—६०५

इस तित्थोगाली पाइन्ना की गाथाओं में केवल शाक सवत् का ही उल्लेख है। पर विक्रम सवत् का कहीं पर न जिक्र है और न गणना से ही हिसाब मिलता है। हाँ नभसैन के राज का ५ वा वर्ष जाने के बाद विक्रम संवत् माना जाय तो वी० नि० स० ४७० आ सकता है। पर इसके मानने के लिये कोई भी कारण नहीं पाया जाता है कि सवत् किसने एव क्यों चलाया।

वर्ष में वे स्वर्गवासी हुये थे। आगे हम सम्प्रति का समय को देखते हैं तो आर्य सुहस्तीसूरि के समय उन्हीं का राजा होना भी मालूम नहीं देता है कारण वि० नि० सं० ११ वर्ष चन्द्रगुप्त का राज प्रारम्भ होता है। तब २४ चन्द्रगुप्त के २५ बिन्दुसार के ४१ अशोक के एवं ९० वर्ष मिलाने पर वि नि०सं० २० वे वर्ष सम्प्रति का राज प्रारम्भ होता है इससे तो आर्यसुहस्तीसूरि ने सम्प्रति को देखा भी न होगा। जो यह बिलकुल असम्भव सी प्रतीत होती है कारण राजा सम्प्रति को जैनधर्म की दीक्षा आचार्यसुहस्तीसूरिने ही दी और उनके द्वारा कई अनार्य देशों में जैनधर्म का प्रचार भी कराया था। अर्थात् आर्य सुहस्तीसूरि ने ४६ वर्ष के युगप्रधान काल में राजा सम्प्रति से जैनधर्म का प्रचार करवाया था। क्योंकि आर्यसुहस्ती सूरि का युगप्रधान समय वीर निर्वाण सं २४५ का है। तब सम्राट् सम्प्रति का राज्याभिषेक वीर निर्वाण संवत् २४५ में हुआ था। इससे २४, २५, ४१ एवं ९० वर्षों को बाद करदें तो भी वीर निर्वाण सं० १५५ चंद्रगुप्त के राज का समय कहा जा सकता है। और आचार्य सुहस्ती का स्वर्गवास वी नि सं० २९१ में हुआ था। तब सम्राट सम्प्रति का स्वर्गवास वी नि स ९९ मे हुआ एवं आर्यसुहस्तीसूरि के स्वर्गवास के बाद ८ वर्ष तक सम्राट् सम्प्रति जीवित रहा था। अतः इन प्रमाणों से चन्द्रगुप्त का राज वी० नि० सं० २१० की बजाय १५५ मानना अधिक उपयोगी समझा जा सकता है।

उपरोक्त काल गणना से मौर्यवंशी राजाओं के समय तक तो हम ठीक पहुँच सकते हैं कि मौर्यवंशीय राजाओं का राज वी० नि सं ३१३ में समाप्त होता है और आगे चल कर मगध के राज का समय गिना जावे तो ३० वर्ष पुष्पमित्र का मिला दिया जावे तो भी नि सं ३१३ वर्ष का आता है इसके बाद मगध के सिंहासन पर किस का राज रहा इसको जानने के लिये हमारे पास कोई भी साधन इस समय विद्यमान नहीं है।

अब भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद विक्रम संवत् का प्रारम्भ के लिये हमे बलमित्र भानुमित्र का समय देखना पड़ता है जिसका राज भरूच्छ और उज्जैन में रहा था और ६ वर्ष उन्होंने राज किया था बलमित्र भानुमित्र के समय कालकाचार्य और आपकी बहेन सरस्वती साध्वी की घटना बनी थी जिसका समय जैनपट्टावलियों के आधार पर ३५३ का है यदि इस समय को बलमित्र भानुमित्र के राज का अन्तिम समय भी मान लिया जाय तो उनका राज भी वि० सं० ३९१ से प्रारम्भ होता है जब मगध के पुष्पमित्र का राज वी० नि० ३५३ वर्ष में समाप्त हो चुका था अतः इसमें कम से कम ४ वर्ष का अन्तर तो रही जाता है यदि यह कल्पना की जाय कि बलमित्र भानुमित्र के राज के बाद नभसेनका ४० वर्ष राज रहा था यह बल भानु के पूर्व हुआ होतो काल गणना मिल सकती है जैसे ३५३ मगध के राजाओं का ४० नभसेन ६० वर्ष बल० भानु और १० वर्ष शकों का सब मिल कर ४७० वर्ष के बाद विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ है। और आचार्य मेरुतुंगसूरि की विचारश्रेणी के मत से १७ वर्ष शकों का राज मान लिया जाय तो भी नि सं ६ ५ वर्ष से शाक संवत् प्रारम्भ हुआ भी मिल सकता है।

परन्तु यहाँ एक बात और भी विचारणीय है कि मगध के सिंहासन पर अन्तिम राजा पुष्पमित्र हुआ उसके बाद मगध की राजधानी पर किसका राज रहा ? इसके लिए तो हमारे पास कोई भी साधन नहीं है कि हम इसका निर्णय कर सकें। तब महावीर के बाद विक्रम संवत् का समय मिलाने के लिये

( ४ ) सिंहली इतिहास के अनुसार सम्राट अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध निर्वाण के २१८ वे वर्ष बाद हुआ और सिंहली लोगों की गणना बुद्ध निर्वाण (बोधप्राप्त) ई० पू० ५४३ - है इस तरह ५४३ —२१८= ई० पू० ३२५ में अशोक का राज्याभिषेक मानना पड़ेगा जिससे २४ चन्द्रगुप्त के २५ बिन्दुसार के एव ४९ वर्षों को निकाल दिया जाता है तो ३७४ आता जो वी० नि० स० १५३ वर्ष कहा जाता है।

( ५ ) सुदर्शन विभाश जो चीनी ग्रन्थ है, उसमें लिखा है कि अशोक बुद्ध स० २१८ में राजा हुआ था। चीनी लोग भी सिंहाली गणना के अनुसार ही अपनी सवन् गणना करते हैं। अब उसका काल ई० पू० ३२५ ही माना जायगा। पूर्ववत् वी० नि० स० १५३ वर्ष आता है।

( ६ ) डा० फ्लीट भी अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध सवत् २१८ में उपरोक्त प्रमाणों से मानते हैं पूर्ववत् वी० नि० सं०१५३ वर्ष आता है।

( ७ ) जनरल सर कनिंगहम अपनी पुस्तक ( कॉर्पूसे इन्स्क्रीशन्स इन्डीकेरम ) की प्रस्तावना पृ० ९ में लिखते हैं कि अशोक का राज्य काल बुद्ध सं० २१५ से २५६ तक ४१ वर्ष तक रहा है। ( ५४४—२१५=ई० पू० ३२९ से ई० पू० २८८ तक ) पूर्ववत् वी० नि० सं० १४९ आता है।

( ८ ) ब्राह्मणों के पुराणों में भी नंदों का राजा १०० वर्ष का ही लिखा है अत पूर्व प्रमाणों से नदों का राज्य ९५—१०० तक रहा है। ऐसा सिद्ध होता है इनके अलावा एक और भी प्रमाण मिलता है जो कि उपरोक्त मान्यता को परिपुष्ट करता है।

अन्तिम नन्द राजा के मन्त्री शकडाल था। जैसे कहा है कि —

ततस्त्रिखण्डपृथिवीपतिः पतिरि व श्रियः। समुत्खातद्विपत्कन्दो नन्दोऽभून्नवमो नृपः ॥
विशङ्कटः श्रियों वासोऽसङ्कटःशकटोधियाम्। शकटाल इति तस्य मन्त्यभूत्कल्पकान्वयः ॥

इसमें लिखा है कि नौवा नन्द राजा का मन्त्री शकडाल था। उस शकडाल के दो पुत्र थे। स्थुलभद्र और श्रीयक। शकडाल के रहस्य मय हाल कहने से श्रीयक ने शकडाल को मार डाला। नन्द राजा ने स्थुलभद्र को मन्त्री पद देने का निश्चय किया पर स्थुलभद्र इस प्रकार मन्त्री पद ग्रहण कर राज के अनेक झगड़ों में पड़ने की अपेक्षा दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना अच्छा समझा। अत. स्थूलभद्र ने आचार्य सभूतिविजय* के पास दीक्षा स्वीकार करली थी। आचार्य सभूतिविजय का स्वर्गवास वी० स० १५६ वर्ष में हुआ है। अत स्थूलभद्र की दीक्षा का समय १५६ वर्ष पूर्व का ही था। और जिस समय स्थूलिभद्र की दीक्षा हुई उस समय मगद के सिंहासन पर अन्तिम नद का राज था अत आचार्य हेमचन्द्रसूरि का लिखना ठीक साबित होता है। कि वि० १५५ वें वर्ष नदों का राज समाप्त और मौर्य का राज्य प्रारम्भ हुआ। और यह बात ऊपर के प्रमाणों से सत्य भी कही जा सकती है।

एक दूसरा प्रमाण यह भी है कि हम चन्द्रगुप्त का राजरोंहण समय २१० का मान लेते हैं। तो हमारे सामने एक बड़ी भारी आफत यह खड़ी हो जाती है कि आर्य सुहस्तीसूरि का युगप्रधान पद वीर निर्वाण से २४५ वर्ष से प्रारम्भ होता है। और ४६ वर्ष युगप्रधान पद पर रह कर वीर नि० स० २९१ में

* स्थूलभद्रोऽपि गत्वा श्रीसम्भूतिविजयान्ति के। दीक्षाँ सामापिकोच्चारपूर्विकाँ प्रत्यपाद्यता।

# ६—आचार्य देवगुप्तसूरि

आचार्योऽथ च देवगुप्त नवमो राजास्समो विश्रुत्।
कुर्वन् जैनमत प्रचार मनिशं पाञ्चाल देशं गतः ॥
आचार्यास्य सु सिद्ध पुत्र विजयी शिष्येभ्य आज्ञां ददौ।
यूयं यात मनस्विनः सुकुशलाः सर्वत्र धर्मेच्छया ॥

आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी महाराज एक महान प्रतिभाशाली तथा के अवतार धर्म के एक जैनधर्म के अद्वितीय प्रचारक महान आचार्य हुये। आपके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। कारण आप आचार्य कक्कसूरी के जीवन में पढ़ चुके हैं कि आप श्रीमान् कच्छभूमि के सुपुत्र थे। अर्थात् महावती नगरी के राजा शिवदत्त के प्यारे लघु पुत्र थे। आपकी कान्ति की प्रभा मध्यान्ह के सूर्य के समान चारों ओर चमकती थी। आप प्रबल प्रतापी एवं पुरुषार्थी थे आप कुलक्रम में पराक्रम करने पर भी अकोर अहिंसा धर्म पालन करने में मेरु की भांति अडग थे। आपके जीवन की परीक्षा एक दिन देवी के द्वार पर पाखंडी लोगों द्वारा हो रही थी पर न जाने आपके पुण्य से ही आचार्य श्री कक्कसूरिजी को मार्ग की भांति कष्ट कर खींच लाये थे। सूरिजी ने उन पातकी लोगों को उपदेश दे कर देवगुप्त को भयानक संकट से बचा कर एक जीवन प्रदान किया था। जिस उपकार को कृतज्ञ मनुष्य एक भव में तो क्या पर भवोंभव में भी नहीं चुका सकता यही कारण था कि देवगुप्त ने उसी समय अपना जीवन सूरिजी के चरण कमलोंमें अर्पण कर दिया था। इतना ही नहीं पर देवगुप्त ने जिस पातकी दुरवृत्ति का अनुभव किया था उसको जड़मूल से नष्ट करने का भी दृढ़ संकल्प कर लिया था। क्योंकि जिस प्रकार आज "मैं मेरे जीवन से हाथ धो बैठा था उसी प्रकार इन पातकी लोगों ने दूसरे लोगों का प्राण हरण किया होगा। जब मनुष्य की ही यह दशा है तो बिचारे निरपराधी मूक पशुओं का तो कहना ही क्या ? एक मनुष्य स्वल्प सुखों के लिए एवं भौज शौक या खाना पीना और भोग-विलास में अपना जीवन नष्ट कर देता है। इससे बजाय तो ऐसी कुप्रथाओं का उन्मूलन कर अपने भाइयों का संकट दूर करने में जीवन व्यतीत किया जाय तो स्व-पर आत्मा का उद्धार एवं महान् उपकार हो सकता है। अतः मैं यदि मनुष्य हूँ और अपने कर्तव्य को समझता हूँ तो सब से पहिला मेरा कर्तव्य इसी पातक प्रवृत्ति को देश निकाला कर देना ही है और अपने जननी जन्मभूमि को महान संकट से बचाकर इसका उद्धार करूँ, और अपने भाइयों को पूर्ण सुखी बनाने में सफल हो जाऊं। इसी प्रकार की अनेक प्रतिज्ञायें रातभर देवगुप्त ने की और उसी प्रकार से पहिले तो अपनी राज सत्ता से और बाद में तप संयम और आत्मसत्ता एवं उपदेश द्वारा कच्छ भूमि का उद्धार किया। अर्थात् कच्छ भूमि को अहिंसा धर्म जैनधर्म मय बना दिया। वे ही देवगुप्त आज आचार्य पर विभूषित हो हजारों साधु साध्वियों के साथ भूमण्डल पर जैनधर्म का प्रचार करते हुये विहार कर रहे हैं।

इस प्रकार स धर्म के नाम पर चिरकाल स जमी हुई कुप्रथाओं को एक दम उखेड़ फेंकना कोई साधारण कार्य न था, यही कारण था कि सूरिजी के इन मांगलिक कार्यों में उन धर्म के ठेकेदार पाखण्डियों ने अने-

भरुच्छ और उज्जैन के राजा बलमित्र भानुमित्र का समय मगद के राजाओं के साथ जोड़ दिया जाता है पर बलमित्र भानुमित्र को कहीं परभी मगद के राजा होना नहीं लिखा है खैर यह भी ज्ञात नहीं होता है कि जिस समय मगद के राजा पुष्पमित्र का मृत्यु हुआ उसी समय भरुच्छ में बलमित्र भानुमित्र का राज प्रारम्भ हुआ है। इसका भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

अब हम बलमित्र भानुमित्र की ओर देखते हैं कि इसके पूर्व भरुच्छ में किस राजा का राज था एवं बल० भानु० किस के उतराधिकारी थे। और मगद के साथ इनका क्या सम्बन्ध था ? कि मगद के राजाओं के साथ इनके राजत्व को जड़ दिया गया था इन बातों के लिये अभी तक कोई भी विश्वासनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है अत: जब तक इन उलझनों को सुलझाने वाला प्रमाण नहीं मिले वहा तक हम यहाँ पर मगद के राजाओं का ही समय जो उपरोक्त प्रमाणों से स्थिर होता है उसको ही यहा पर लिख देते हैं

| राजाओं के नाम | वीर निर्वाण संवत् |
|---|---|
| १—शिशु नाग वंशी —कोणिक, और उदाई का राज | ६० वर्ष |
| २—नन्द वशी नोनन्दों का —१६, २८, ३, ?, ?, २, २, २, ४३ | १०० ,, |
| ३—मौर्य वशी चन्द्रगुप्त का राज | २४ ,, |
| ४— ,, ,, विन्दुसार का राज | २५ ,, |
| ५— ,, ,, अशोक का राज | ४१ ,, |
| ६— ,, ,, सम्प्रति का राज ( कुन्नाल, दशरथ इसके शामिल है ) | ५४ ,, |
| ७— ,, ,, शालीशुक से—वृहद्रथ तक ४ राजा | १९ ,, |
| | ३२३ |

"इति मौर्यवशी राजाओं का समय निर्णय"
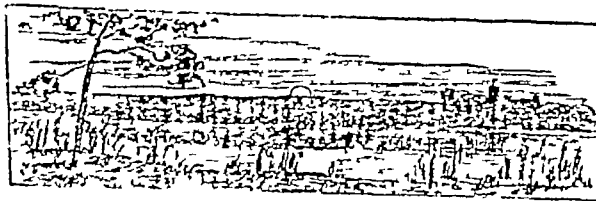
योयोगविद्यया मृत्युं ज्ञात्वासिद्धाचलंनगम्, गत्वाऽनशनात्तत्र, जहौदेह समाधिना ॥
नेदुर्दुन्दु भयःस्वेच ननृतुश्चाप्सरेगणाः मोचुर्जयतदादेवा गुनौतस्मिन देवंगतं ॥
तत्पट्टे श्रीदेवगुप्त सूरयगुणभूरयः, जज्ञिरेयद्यशः शौक्ल्य दूपितोऽगान्नभःशशी ॥
देवगुप्तस्ततः सूरिर्देशं पाञ्चालकंगतः, संबोध्यसिद्धपुत्रंच स्वीयशिष्य चकारसः ॥

"उपकेशगच्छ चरित्र"
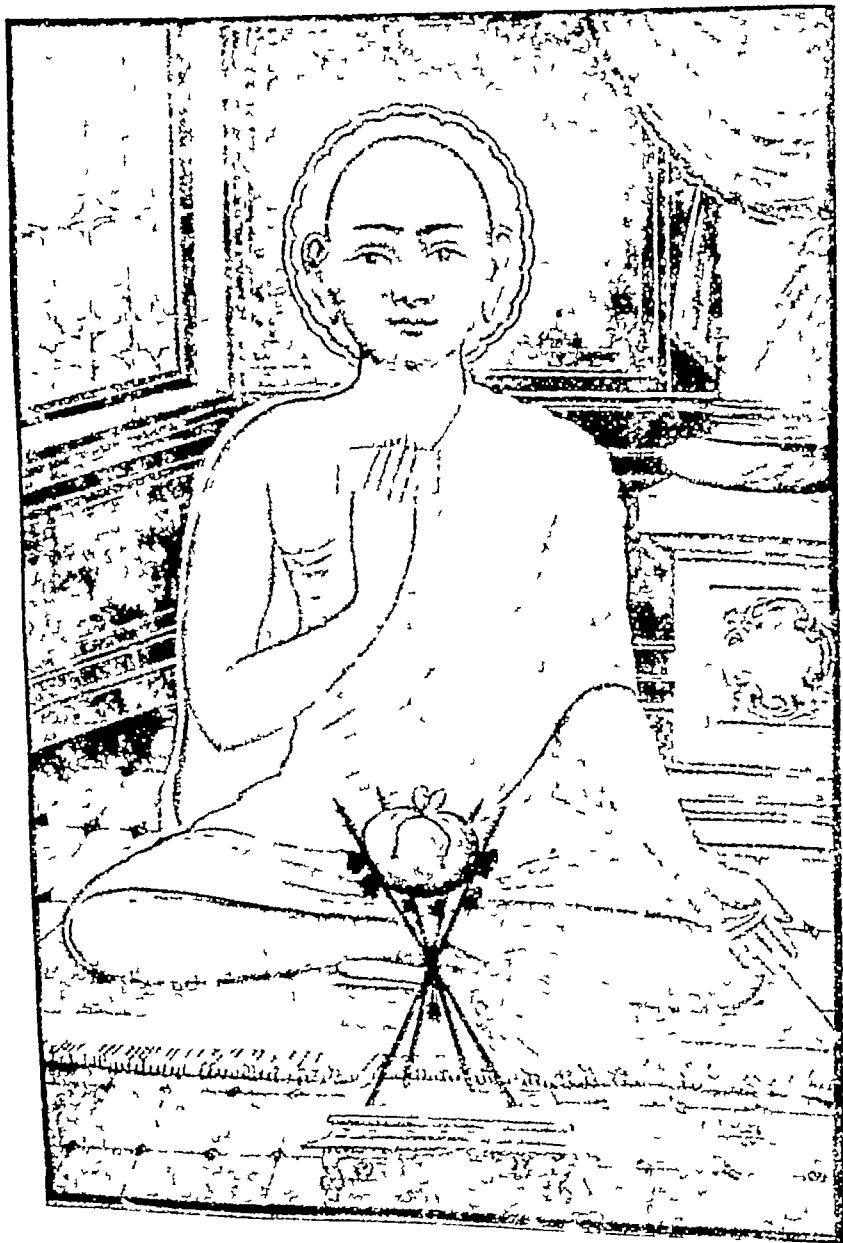
भगवान पार्श्वनाथ के १० वाँ पट्टधर
आचार्य श्री देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज

के कथनानुसार पंचाल देश के सब हाल पूर्ववत् सुना दिया। मुनियों ने सूरिजी से कहा पूज्यवर ! सिद्ध आचार्य का स्वागत यहाँ आने पर किया जाय इसकी बजाय तो वहाँ जाकर ही करना अति उत्तम है क्योंकि एक तो हम लोग नव क्षेत्र की स्पर्शना करेंगे। दूसरे साथ २ हमको यह भी विदित हो जायगा कि हिंसक लोग वहाँ की भोली भाली जनता को किस प्रकार कुमार्ग की तरफ ले जा रहा है। इत्यादि सूरिजी ने सकलसंघ की सम्मति ली और सूरिजी ने अपने शेष साधुओं को सिन्ध में धर्म प्रचार करने की आज्ञा दे दी और आप ५०० शिष्यों को साथ में लेकर पंचाल देश की तरफ विहार करना आरम्भ कर दिया।

पूर्ववत् की भांति सूरिजी ने विहार करते हुए एवं धर्मोपदेश देते हुए क्रमशः पंचाल देश में पधार कर 'अहिंसा' का खूब जोरों से उपदेश एवं प्रचार कर रहे थे और आप श्री के प्रभावशाली उपदेश का जनता पर अच्छा असर भी हो रहा था कारण जनता पहले से ही हिंसा से घृणा कर चुकी थी फिर सूरिजी महाराज के उपदेश ने तो और भी कमाल कर दिया।

इधर सिद्धपुत्राचार्य ने सुना कि सिन्ध की ओर से एक जैनाचार्य अहिंसा का प्रचार एवं यज्ञ का निषेध करता हुआ पंचाल की ओर आ रहा है अतः यह बात उन से सहन नहीं हुई अतः वे अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए क्रमशः श्रावस्ती नगरी में आ पहुँचे जो उस समय पंचाल की मुख्य राजधानी थी।

इधर आचार्य देवगुप्तसूरि भी अपने ५　　शिष्यों के साथ विहार करते हुए क्रमशः श्रावस्ती नगरी में पधार गये। और अपना व्याख्यान देना शुरू कर दिया। पाठक समझ सकते हैं कि एक ही स्थान पर दो विरोध धर्मवाले आचार्य एकत्र हो जाय तो धर्मवाद खड़ा हो जाना एक स्वाभाविक बात है अतएव एक ओर तो हिंसामय यज्ञ की पुष्टी का उपदेश तब दूसरी ओर अहिंसामय सर्व चराचरजीवों की रक्षा का उपदेश। यही कारण है कि जनता में काफी हलचल मच गई और कई जिज्ञासु इस बात का निर्णय करने के लिये भी उत्सुक बन रहे थे पर यह कार्य साधारण नहीं था कि सामान्य व्यक्ति कर सके।

धर्मवाद यहाँ तक बढ़ गया कि जिसकी खबर वहाँ के राजा के कानों तक पहुँच गई यद्यपि राजा यज्ञानुरागी था पर वह था न्याय का उपासक। राजा ने सोचा कि धर्म का विवाद सहज ही में पैदा हो जाता है और इस कारण भद्रीक लोग आपस में लड़ झगड़ कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर बैठते हैं अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं दोनों आचार्यों को आमन्त्रण देकर सन्मानपूर्वक बुलाऊँ और धर्म के विषय में निर्णय के लिये प्रार्थना करूँ और राजा ने ऐसा ही किया एवं राजा की प्रार्थना को दोनों आचार्यों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया बस। वायु की भांति नगर में सर्वत्र यह बात फैल गई कि अमुक राजसभा में दोनों धर्म के आचार्यों का शास्त्रार्थ होगा इत्यादि।

ठीक समय दोनों आचार्य अपने २ विद्वान् शिष्यों के साथ राजसभा में प्रवेश किया और राजा की आज्ञा से योग्य स्थान पर आसन लगाकर बैठ गये। शास्त्रार्थ सुनने के लिए लोग तो पहले से ही उपस्थित हो गये थे और राजा राजमंत्री एवं कर्मचारी लोग यथा स्थान बैठ गये। साधारण जनता से सभा हॉल खचाखच भर गया सब लोग यही उत्कण्ठा कर रहे थे कि देखें क्या शास्त्रार्थ होता है।

सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य था जनता दोनों आचार्यों के सामने टकटकी लगा कर देख रही थी। अतः राजाका आदेश होने पर पहला आचार्य देवगुप्तसूरि ने अपनी मधुर वाणी और गम्भीरतापूर्वक कहा कि

संसार में धर्म ही सार है धर्म से ही जीव जन्म मरण को एवं सर्व दुःख नाश कर सकता है इसका ही

कोनेक विघ्न उपस्थित किये थे। जिनको सूरिजी ने अपनी सहन शीलता से सहन किया। सूरिजी की सहनशीलता पृथ्वी से भी विशेष थी। क्योंकि कभी कभी पृथ्वी भी अपने धैर्यता को छोड़ कर क्षोभ को प्राप्त हो जाती है। परन्तु सूरिजी अपने पथ से कभी चलायमान नही होते थे। हा समुद्र हमेशा अपने गाम्भिर्यादि गुणों से प्रसिद्ध है परन्तु उसके अन्दर भी कभी २ उच्छृङ्खलता आ जाती है। पर सूरिजी के गाम्भिर्यादि गुणों के सामने पाखण्ड सदैव नतमस्तक हो जाते थे। यही कारण है कि सूरिजी महाराज अपने अलौकिक गुणों से या पूर्ण परिश्रम से अपने कृत कार्य में खूब गहरी सफलता प्राप्त कर ली थी। अर्थात् मनुष्य एवं पशु जैसे प्राणियों की बलि को सर्वत्र वन्द करवा कर अहिंसा भगवती का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित करवा दिया था। जैसे सूरिजी ने अनेक आचार-पतित लोगों को जैन धर्म की शिक्षा-दीक्षा देकर जैन उपासकों की संख्या में वृद्धी की इसी प्रकार जैन-श्रमण सघ की भी खूब ही वृद्धि की। और उन श्रमणों को पृथक्-पृथक् प्रान्त ग्राम एवं नगरों में विहार करवा के जैनधर्म की नाव को मजबूत वना दी थी और आपका प्रचार कार्य हमेशा बढ़ता ही रहता था अत जिन्हों के हृदय में जैनधर्म का गौरव है उनके लिए ऐसा होना स्वभाविक ही था।

एक समय सूरिजी महाराज ने अपने शिष्यों के सहित सिन्ध की ओर विहार किया। जब आपके चरणार्विन्द सिन्ध भूमि की ओर हुए तो वहा की जनता में उत्साह का समुद्र उमड उठा। जहाँ जहाँ सूरिजी महाराज का पदार्पण होता था वहा २ भक्त लोगों का समूह एकत्रित हो जाता था। आपका व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एव तत्त्व-ज्ञानमय होता था कि जिसको सुन कर जनता की आत्मा कल्याण की ओर विशेष जागृत हो जाती थी।

एक समय का जिक्र है कि पाचाल देश का एक कर्मशाह नाम का व्यापारी व्यापारार्थ सिन्ध प्रान्त में आया था। जब उसने सुना कि यहां पर जैनाचार्य देवगुप्तसूरिजी अपने विस्तृत शिष्यों के साथ विराजते हैं और हमेशा धर्मोपदेश भी देते हैं अत वह भी चल कर सूरिजी के व्याख्यान में आया।

उस समय व्याख्यान "अहिंसा परमोधर्म" पर हो रहा था। सूरिजी ने इस प्रकार का व्याख्यान दिया कि कितना ही हिंसक एव मांस-भक्षी क्यों न हो परन्तु एक बार सूरिजी का व्याख्यान श्रवण कर लिया है उस मनुष्य के हृदय मे दया के अकुर उत्पन्न हुए बिना कभी नहीं रहता था। इसी प्रकार जब कर्माशाह ने सूरिजी का व्याख्यान श्रवण किया और व्याख्यान की समाप्ति के बाद उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे पूज्यवर! आपश्री का हमारे देश की ओर पधारना हो तो बहुत उपकार हो सकता है कारण यहा के लोग विशेष मासाहारी हैं। और उन लोगों को उपदेश भी इसी प्रकार का मिलता है कि हर समय यज्ञ करना और उन यज्ञों मे हजारों जीवों की वलि देना। इतना ही क्यों पर अभी कुछ अर्सा से एक सिद्धपुत्र नामक यज्ञाचार्य हमारे यह भ्रमण कर यज्ञ का खूब जोरों से प्रचार कर रहे हैं। और प्राय राजा, प्रजादि सब लोग उनका मत के अनुयायी भी बन चुके हैं। अब यह भी सुना गया है कि सिद्धपुत्राचार्य सिंध की तरफ भी भ्रमण करने वाले हैं। क्योंकि उसने सुना है कि सिंध मे जैनाचार्य यज्ञ प्रथा को बन्द करवा कर जैनधर्म का खूब जोरों से प्रचार कर रहे हैं। इसलिये मेरी आप से यह सविनय प्रार्थना है कि आप एक बार अवश्य पाचाल देश की तरफ विहार करने की कृपा करे।

सूरिजी ने कर्माशाह की प्रार्थना को सुन कर कहा ठीक है। देवानुप्रिय! यदि इस प्रकार का मौका है तो हम लोग भी उनका स्वागत करने को तत्पर हैं। सूरिजी ने अपने श्रमण संघ को बुला कर कर्माशाह

क्यों पर जन्म मरण के महान् दु खों से मुक्त होकर अक्षय सुख अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है पर पहला धर्म का स्वरूप समझ लेने की परमावश्यकता है ।

धर्मका मुख्य और प्रधान लक्षण है 'अहिंसा' जहां अहिंसा है वहां धर्म है और जहा हिंसा है वहा अधर्म है उस अहिंसा का पालन दो प्रकार से हो सकता है १—साधु जो सर्वथा प्रकार से अहिंसा का पालन करते है मन वचन काया से हिंसा नहीं करते दूसरे से करवाते नहीं और हिंसा करने वाले को अच्छा भी नहीं समझते अर्थात् अनुमोदन तक भी नहीं करते है उनका उपदेश भी अहिंसामय होता है । २—दूसरे गृहस्थ जो वे भी सर्वथा अहिंसा के पालक होते हैं पर वे गृहस्थ होने से मर्यादित अहिंसा पालन करते हैं इसमें भी अर्थादंड और अनर्थादंड के भेदों को समझ कर अनर्थादंड हिंसासे सदैव बचते रहता है जब गृहस्थ पने में अनिवार्य कार्यों में जलअग्नि आदि कि हिंसा होती है उसको भी वे कम करना या रोकना चाहते हैं तो धर्म के नाम पर हजारों लाखो पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करना कितना अन्याय है । क्या इस घोर हिंसा से स्वर्ग मोक्ष की आशा रखी जा सकती है ? कदापि नहीं । इस प्रकार की हिंसा तो बिना किसी रोक-टोक के सीधी नरक ले जाती है । इत्यादि अनेक प्रमाण एव युक्ति द्वारा हिंसा का खण्डन और अहिंसा का प्रतिपादन किया । जिसको राजा प्रजा ने ध्यान लगा कर सुना ।

इस प्रकार सूरिजी के निडरतापूर्वक वचन सुन कर राजाप्रजा सूरिजी के सामने देखने लगे क्योंकि उन्होंने पूर्व ऐसे वचन नहीं सुने थे । अब सिद्धपुत्राचार्य की ओर जयता का ध्यान लग रहा कि वे इसके प्रतिवाद में क्या कहेगा ?

सिद्धपुत्राचार्य ने कहा महात्माजी ? अहिंसा के लिये कोई धर्म इन्कार नहीं करता है अर्थात् 'अहिंसापरमोधर्मः' को सब धर्मवाले मानते है जिसमें भी वेद शास्त्र तो पुकार पुकार कर कहता है कि 'अहिंसा ही परमोधर्म है पर वेद विहत यज्ञ का आप निषेध करते हो यह ठीक नहीं है कारण यज्ञ यह एक धर्म का मुख्य अग है इससे विश्व की शान्ति जनता का कल्याण और जिन जीवों की बली दी जाती है उनको स्वर्ग पहुँचा कर सुखी बनाते हैं अत. यज्ञ की हिंसा, हिंसा नहीं पर अहिंसा ही है इत्यादि ।

देवगुप्तसूरि—जब आपके वेदादि शास्त्र अहिंसा की पुकार करते हैं तब आप उनका पालन क्यों नहीं करते हैं ? अब रहा यज्ञ करना इसके लिये हमारा तो क्या पर किसी धर्मज्ञ पुरुषों का विरोध हो ही नहीं सकता है पर विरोध खास हिंसा का ही है यदि बली देने वाले जीवों को स्वर्ग पहुचाने का ही आपका इष्ट है तो आप स्वय बली हो स्वर्ग के सुखों का अनुभव क्यो नहीं करते हो बली को तो दूर रहने दीजिये आपके शरीर से एक दो बुन्द खून की वहा कर बली दीजिये फिर आपको ज्ञात होगा कि बलि होने वाले जीव स्वर्ग में जाते हैं या नरक में ? महानुभाव । स्वर्ग में जाता है समाधिमरण से तब बली दी जीने वाले जीव समाधि से मरते हैं या तड़फ २ कर मरते है ? इस पर आप जरा विचार कीजिये ?

सिद्धाचार्य—खैर कुछ भी हो यज्ञ करना तो आप स्वीकार करते हैं और यज्ञ की आहूती में पशुओं की बली देना जरूरी भी है पर ऐसा कौनसा यज्ञ है कि बिना बली दिये यज्ञ हो सकता हो ?

देवगुप्तसूरि—क्या अपके महार्षियों के वाक्य आपकी स्मृति में नहीं है कि उन्होंने यज्ञ किस प्रकार से करना कहा है यथा—सत्ययूप तपअग्नि, कर्मपशु, अहिंसाआहूति, पुन. जीव रूपी कुण्ड ध्यानरूपी अग्नि पाचों इन्द्रियों के विकार रूपी पशु, तपरूपी तृपण, और अहिंसा रूपी आहूति से कर्मपुज को जला कर

समय इस क्षेत्र को पावन करते रहे हैं कि उन महा पुरुषों का लगाया हुआ वृक्ष आज फलाफूल है। भविष्य के लिए भी आशा की जाती है कि आप भी तथा आपके शिष्यगण इस क्षेत्र को ध्यान में रखते रहेंगे जैसे कि आज आपश्री की शुभ दृष्टि हुई है इत्यादि समय हो जाने से भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

आचार्य देवगुप्त सूरि का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं तात्त्विक विषय पर होता था और श्रोतागण भी शान्ति रूपी सुधारस का पान कर अपनी आत्मा को पावन बनाने में संलग्न थे कारण उपकेशपुर के भक्त सम्पन्न लोग ऐसा सुअवसर हाथों से कब जाने देने वाले थे सूरिजी के विराजने से उपकेशपुर और आस पास के प्रदेश में धर्म की खूब प्रभावना एवं जागृति हुई कई नर नारियों ने संसार त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की कई मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं भी करवाई इत्यादि।

जब सूरिजी महाराज विहार का विचार किया तो राजा सारंगदेव आदि श्रीसंघ ने सूरिजी से चतुर्मास की साग्रह विनती करते हुए प्रार्थना की कि भगवान्। आपश्री के विराजने से यहाँ बहुत लाभ होगा। इस पर सूरिजी महाराज ने लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की प्रार्थना को स्वीकार करली या सूरिजी उपकेशपुर के आस पास के गाँवों में विहार कर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश सुनाया तथा अन्यान्य ग्रामों में थोड़े थोड़े साधुओं को चतुर्मास करने की आज्ञा दे दी और आप चतुर्मास समय उपकेशपुर पधार कर वहां चतुर्मास कर दिया।

उपकेशपुर में आज घर घर खुशियां मनाई जा रही हैं क्यों नहीं सूरिजी महाराज का चतुर्मास हो गया। सूरिजी का व्याख्यान जैनागमों का तात्त्विक दार्शनिक एवं त्याग वैराग्य पर इस प्रकार होता था कि श्रवण करने वालों को बड़ा ही आनन्द आता था इतना ही क्यों पर कई लोगों को तो इतना वैराग्य हो गया कि वे संसार के बन्धनों को तोड़ सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेकर अपना कल्याण करने को भी तैयार हो गये। हाँ जिनके शेष थोड़े ही कर्म रहे हो उनके लिये ऐसा होना स्वाभाविक ही है। राजा सारंगदेव ने जिनमन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव करवाये चतुर्मास के चारो मास में अमरी पड़हा बजवादिया कि कोई भी व्यक्ति जीव हिंसा शिकारादि नहीं कर सके तथा नागरिक लोगों ने भी अनेक प्रकार से सूरिजी के उपदेश से धर्म कार्य साधन कर अपना कल्याण किया बहुत से जैनेतर लोगों ने सूरिजी का सदुपदेश श्रवण कर मिथ्या मत का त्याग कर जैनधर्म को स्वीकार किया इत्यादि जैनधर्म की खूब उन्नति हुई। जब चतुर्मास समाप्त हो गया तो कई ९ नरनारियों ने सूरिजी के पास भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की जिसका महोत्सव राजा सारंगदेवादि श्री संघ ने बड़े ही ठाठ से किया। जनता यह नहीं चाहती थी कि सूरिजी महाराज हमसे पृथक् हो यहां से विहार करे पर साधु धर्म के नियमों के अनुसार सूरिजी महाराज उपकेशपुर से विहार कर मारवाड़ के प्रत्येक ग्रामों में विहार करते हुए माडव्यपुर नागपुर मेदनीपुर, रत्नपुर, हर्षपुर नासिक्यपुर होते हुए कोरंटपुर के नजदीक पधारे थे तो आप वहां पधारे वहां भी संघ ने शानदार समारोह से स्वागत किया ही था पर जब इस बात की खबर कोरंटपुर और आसपास के ग्रामों में हुई तो जनता सूरिजी के दर्शनार्थ बहुत दूर दूर तक सामने गई और राजा प्रजा की ओर से आपका शानदार स्वागत हुआ कोरंटस्थित भगवान महावीर के दर्शन किये और श्रीसंघ को धर्मोपदेश दिया।

पाठक पहले पृष्ठों में पढ़ आये हैं कि आचार्य रत्नप्रभसूरि के लघु गुरु भाता कनकप्रभसूरि से

का भान नहीं रहता है जसे थोड़ी दूर पहला मेरा हाल था पर मैं यह तो दावा के साथ कह सकता हूँ कि प्राणवध रूप यज्ञ ईश्वर के वचन नहीं पर किसी मास भक्षी लोगों ने चलाया है क्योंकि ईश्वर के लिये तो चराचरप्राणि एक से हैं तब वह कैसे हो सकता है कि वे दयालु ईश्वर अनेक जीवों की हिंसा में धर्म बतलावें ? इत्यादि अन्त में आपने फरमाया कि आप अपना कल्याण चाहें तो तत्काल ही अहिंसा रूप धर्म को स्वीकार कर लें। जैसे मैंने किया है —

बस ! फिर तो देरी ही क्या थी कारण जनता पहले से सूरिजी द्वारा प्रमाण एव युक्तियों सुनकर समझ लिया था एव घोर हिंसा और पाखण्डियों के अत्याचार से घृणा कर चुकी थी फिर सिद्धपुत्राचार्य जैसे विद्वान ने अहिंसा धर्म को स्वीकार कर लिया। अत उपस्थित राजा प्रजा आचार्य देवगुप्तसूरि के चरणों में शिर झुका दिया और सूरिजी ने वासक्षेप के एवं मत्रों के विधि विधान से उन सब की शुद्धि कर जैन धर्म में दीक्षित किये ।

मुनि सिद्धपुत्र पहले से ही विद्वान था फिर सूरिजी के चरण कमलों में रहकर जैनागमों का खूब अध्ययन कर लिया और पचाल की भूमि में भ्रमन कर अहिंसा एव जैनधर्म का खूब प्रचार किया। आचार्य देवगुप्तसूरि ने सिद्धपुत्रकों सर्वगुण सम्पन्न जानकर श्रीसघ के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद पर स्थापन कर उनका नाम सिद्धसूरि रक्ख दिया और उनके साथ ५०० साधुओं को देकर पंचालादि देशों में विहार करने की आज्ञा दे दी और आप अपने शिष्यों के साथ हस्तनापुर शोरीपुर माथुरादि कल्याणक भूमियों की यात्रा करते हुए मरुधर की ओर बिहार कर दिया।

जब मरूधरवासियों को इस बात की खबर मिली कि आचार्य देवगुप्तसूरी मरूधर की ओर पधार रहे है तो उन्हों का उत्साह खूब बढ़ गया सम्पूर्ण मण्डल में इस बात की खुशियें मनाई जा रही थी और प्रत्येक ग्राम नगर मे सूरिजी की स्वागत की तैयारियें हो ने लग गई ।

अहा हा—उस जमाना मे जनता की धर्म पर कितनी श्रद्धा रूची और उत्साह था और आत्म कल्याण करने की कैसी लग्न थी ? जिसका अनुमान इन बातों से लगाया जा सकता हैं कि वे लोग बड़े ही उत्साही एव धर्मप्रेमी एव मुनियों की पूर्ण भक्ति करते थे ।

आचार्यदेवगुप्तसूरिजी अपने शिष्य मण्डल के साथ मरूभूमि को पवित्र बनाते हुए भव्य जीवों का उद्धार करते हुए क्रमश मरूधर के भूषण रूप उपकेशपुर नगर के समीप पधार गये सूरिजी के दर्शन के लिये कोशों तक मनुष्यों का ताता सा लग गया और वहाँ का राजा सारगदेव आदि श्रीसघ ने सूरिजीमहाराज का आलीशान स्वागत किया सूरिजी चतुर्विधश्रीसघ के साथ भगवान महावीर एव प्रभु पार्श्वनाथऔर आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा करके उपाश्रय में पधारे और वहाँ मगलाचारण के पश्चात् थोड़ी पर सारगर्भितनदेशना देते हुए फरमाया कि वास्तव मे उपकेशपुर के लोग बड़े ही भाग्यशाली है कि यहाँ आचार्यरत्नप्रभसूरि का शुभागमन हुआ और उन महापुरुषों के उपदेश से राजा उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ादि लाखों वीर क्षत्रियों ने मास मदिरादि दुर्व्यसन को त्याग जैन धर्म स्वीकार किया अत आज मुझे भी इस तीर्थ रूप क्षेत्र की स्पर्शना का शोभाग्य प्राप्त हुआ हैं इत्यादि —

राजा सारगदेव ने श्री सघ की ओर से सूरीजी का अभिवादन करते हुए कहा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि का तो इस प्रदेश पर महान उपकार हुआ ही है । पर आप श्रीमान हम लोगों पर कृपा कर समय

विक्रमेश के संघपतित्व में और आचार्य देवगुप्तसूरि के नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया संघ में ५००० साधु साध्वियों और एक लक्ष भावुक गृहस्थ लोग थे ऐसा पट्टावलियों में लिखा हुआ मिलता है। संघ चलता हुआ ग्रामोग्राम में पूजा प्रभावना स्वामि वात्सल्य ध्वजारोहण जीर्णोद्धार तथा नये मन्दिरों का निर्माण करता और गरीबों को सहायता करता हुआ क्रमशः तीर्थाधिराज को नजर से देखते हुए वे हीरा पन्ना माणक और मोतियों से बधाया जब संघ सिद्धाचल पहुँचा तो सबका दिल में एक आ- का दर्शन की उत्कण्ठा लगी हुई थी सूरिजी के साथ चतुर्विध श्रीसंघ ने दर्शन स्पर्शन कर अपना अहो भाग्य समझा। यहाँ सम्पूर्ण जमाना में लोगों की धर्म पर कैसी अटल श्रद्धा थी जीवन भर में किये हुए पापों को एक यात्रा में भी धो डालते थे विशेषता यह थी कि वे लोग तीर्थों पर जा कर वापिस आने के बाद फिर पाप नहीं करते थे अर्थात् अपना जीवन साधु की तुलना ही व्यतीत करते थे और ऐसा करने से ही यात्रा सफल और आत्मा का कल्याण होता है।

श्रीसंघ कई दिनों तक तीर्थ पर रहकर अनेक प्रकार से शुभकृत्य कार्य कर लाभ उठाया। आचार्य देवगुप्तसूरि की भावना तो यहाँ तक हो गई कि अब शेष जीवन तीर्थाधिराज की शीतल छाया में ही गुजारना अच्छा है यह केवल भावना ही नहीं थी पर आपने श्रीसंघ को कह भी दिया कि मेरी इच्छा यहीं पर ठहरने की है हाँ जिसकी इच्छा हो वह तीर्थ सेवा कर लाभ उठावे इत्यादि इस पर आचार्य सिद्धसूरि वगैरह बहुत से साधु साध्वियों तथा कई भावुक भक्त लोग भी वहाँ ठहरगये और शेष संघ वहाँ से रवाना होकर पुनः अपने स्थान पर आगये

आचार्य देवगुप्तसूरि ने अपना अन्त समय नजदीक जाना तो चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष अपने गच्छ का सर्व अधिकार आचार्य सिद्धसूरि को देकर उनको चतुर्विध श्रीसंघ का नायक बना दिया और आप संलेखना ( तपश्चर्य ) में संलग्न हो गये और अन्त में २१ दिन का अनशन पूर्वक समाधि के साथ अन्तिम आलोचना और वर्तमान शरीर का त्याग कर भाद्रव तृतीय के दिन स्वर्ग सिधाये। उस समय श्रीसंघ के अन्दर महामारी रंज हुआ पर इस बात का ख्याल भी तो क्या था। आखिर वहाँ उपस्थित आचार्य सिद्धसूरि आदि चतुर्विध श्रीसंघ ने बड़े गर्जारव कार्यसमाप्ति क्रिया की ओर श्रीसंघ ने आप की स्मृति रूप आपका एक विशाल स्तूप भी वहाँ करवाया।

आचार्य देवगुप्तसूरि जैन शासन में एक महा प्रभाविक आचार्य हुए आप एक राजा के पुत्र आजीवन ब्रह्मचारी व कच्छ सिन्ध पाञ्चालादि क्षेत्रों में विहार कर लाखों मांस मदिरा आहारी जीवों की शुद्धि कर उन को जैन धर्म में दीक्षित किये कई मन्दिर मूर्तियों की आपने प्रतिष्ठा करवाई कई भरतादियों को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया सिद्धपुत्राचार्य जैसे बड़ा मन्त्रवादी को प्रतिबोध कर सिद्धसूरि बनाये इत्यादि आपके उपकार के लिए जैन समाज सदैव के लिए ऋणी है पर इस लेखा की लेखनी में इतनी शक्ति नहीं है कि जिससे आचार्य श्री का सम्पूर्ण जीवन लिखा जाय तथापि प्रत्येक मनुष्य का खास कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके वहाँ तक उपकारी पुरुषों का उपकार को सदैव स्मरण में रखे। और उनकी वन्दन भक्ति से अपना कल्याण करे।

पत्नी होते की रक्षा करके सूरि जिसको बनाये थे देवगुप्त पट्ट नव में होकर झण्डे खूब फहराये थे।
कच्छ सोरठ लाट मरुधर पांचाल पावन कराया था, सिद्ध पुत्र को शास्त्रार्थ में अपना शिष्य बनाया था॥

एक कोरंटगच्छ रूपी शाखा का जन्म हुआ था कनकप्रभसूरि के पट्टधर आचार्य सोमप्रभसूरि थे और आपके पट्टधर आचार्य नन्नप्रभसूरि हुए वे चन्द्रावती के आस पास विहार करते थे उन्होंने सुना कि कोरंटपुर में आचार्य देवगुप्तसूरि का पधारना हुआ है तो वे भी अपने शिष्यों के परिवार से कोरंटपुर पधारे आचार्य-देवगुप्तसूरि अपने शिष्यों के साथ तथा कोरंटपुर का सकल श्रीसंघ सूरिजी के स्वागत के लिये सामने गये और बड़े ही धामधूम से नगर प्रवेश का महोत्सव किया जब व्याख्यान के समय दोनों आचार्य एक तख्तपर विराजमान हुए तो सूर्य और चन्द्र की भांति शोभ रहे थे जिनको देख श्रीसंघ बड़ा ही हर्षित हो रहा था। आहा हा पूर्व जमाने के आचार्यों की कैसी उदारता कितना वात्सल्यभाव और कैसा धर्म स्नेह इसका प्रभाव जनता पर कितना सुन्दर हो रहा था और इस एक दिली से वे शासन का कितना कार्य कर सकते थे उन दोनों के नाम मात्र के ही गच्छ नाम अलग थे पर अन्दर में वे सब एक ही थे और उन्हों का ध्येय एक शासन की उन्नति करने का ही था।

दोनों आचार्य कई अर्से तक कोरंटपुर में रहे और जैनधर्म की विशेष वृद्धि एवं उन्नति के लिये कई योजनाएं तैयार की और दोनों ओर के मुनियों को प्रत्येक प्रत्येक प्रांत में विहार करने की आज्ञाएं दी और उन विनयवान मुनियों ने उन आज्ञाओं को शिरोधार्य कर कई कच्छ में कई पंचाल में तो कई सिंध प्रांत की ओर विहार कर जैनधर्म का प्रचार करने में लग गये। उस समय के आचार्य केवल अपनी जमात बढ़ने को ही गृहस्थों को दीक्षा नहीं देते थे पर उनकी लग्न जैनधर्म का सर्वत्र प्रचार करना करवाने की ही थी। कोरंटपुर से विहार कर सूरिजी चन्द्रावती की ओर पधारे वहां का श्री संघ भी आपका खूब स्वागत किया। जिनवाणि के पीपासु मुमुक्षुओं को सूरिजी महाराज हमेशा धर्मोपदेश देकर उनको मोक्ष मार्ग की ओर खेंचते थे कई नरनारियों ने सूरिजी के पास दीक्षा भी ली थी।

एक दिन सूरिजी ने पवित्र तीर्थ श्री शत्रुंजय का वर्णन करते हुए कहा कि मोक्षमार्ग की साधना में तीर्थ यात्रा भी एक है। जिसमें भी तीर्थों का संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा करवाना तो महान् लाभ का ही कारण है पूर्व जमाने में बड़े बड़े संघपतियों ने संघ निकाल यात्रा की है इस पुनीत कार्य से कई भव्यों ने तीर्थङ्कर गौत्र भी उपार्जन किये हैं इत्यादि।

सूरिजी का प्रभावशाली व्याख्यान सुन कर वहां के संघ में एक जिनदेव नामक श्रद्धासम्पन्न श्रावक उसी व्याख्यान में खड़ा होकर प्रार्थना की कि सूरिजी महाराज के उपदेश से मेरी इच्छा है कि मैं श्री शत्रुञ्जयादितीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकालूं श्रीसंघ की ओर से मुझे आज्ञा मिलनी चाहिये उस समय और भी कई श्रद्धालुओं की भावना संघ निकालने की थी पर पहली प्रार्थना जिनदेव की थी अतः श्रीसंघ ने उनको ही आदेश दिया बस, फिर तो था ही क्या जिनदेव ने खुले दिल से द्रव्य द्वारा संघ की तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया देश विदेश में आमन्त्रण पत्रिकाएं भेजवादी आचार्य साधु साध्वियों को विनती की इत्यादि बस। दूर दूर से कई आचार्य एवं साधु साध्वियों विहार करके चन्द्रावती की ओर आने लग गये।

इधर पंचाल की ओर विहार करने वाले आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज गुरुवर्य्य देवगुप्तसूरि के दर्शनार्थ मरुधर में आ रहे थे उन्होंने सुना कि चन्द्रावती से तीर्थों का संघ निकलने वाले हैं और सूरिजी महाराज भी चन्द्रावती में विराजमान हैं अतः वे भी चल कर चन्द्रावती पधार गये। इस प्रकार चन्द्रावती में विशाल संख्या में संघ एकत्र हो गया सूरिजी महाराज का दिया हुआ शुभमुहूर्त फाल्गुण कृष्णा ७ को

७—भगवान् महावीर के सातवें पट्ट पर—आचार्य स्थूलभद्रसूरि हुए आप बडे ही प्रभावशाली थे आपका आदर्श जीवन अनुकरणीय था जैन साहित्य में तो क्या पर ससार भर का साहित्य में आपका आसन सर्वोपरि एव अपूर्व समझा जाता है आपश्री के विषय में पाठक पिछले प्रकरणों में पढ आये हैं कि पटलीपुत्र नगर में नंदवंशी प्रथम नन्द नन्दवर्धन राजा के कलक नाम का मंत्री था + और वह ब्राह्मण होने पर भी कट्टर जैनधर्मोपासक था आपकी सन्तान परम्परा में शकडाल नामक एक बड़ा भारी बुद्धिमान पुरुष पैदा हुआ वह भी अन्तिम नन्दवशी राजा पद्मानन्द का मन्त्री था शकडाल मत्री के स्थूलभद्र और श्रीयक नाम के दो पुत्र और यक्षादि सात पुत्रियें थी आप सकुटुम्ब जैनधर्म पालन करते थे मत्री शकडाल ने अपने दोनों पुत्रों को और सातों पुत्रियों को विद्याध्ययन करवा कर विद्वान बना दिये थे जिसमें आपकी पुत्रियों ने तो पूर्व जन्म में इस प्रकार ज्ञान का क्षयोपशम किया था कि कोई भी गद्य एव पद्य पहली पुत्री एक बार सुन लेने पर उसे कण्ठस्थ कर लेती थी एव दूसरी दो बार तीसरी तीन बार यावत् सातवीं सात बार सुनने पर कोई भी ज्ञान हो शीघ्र ही कण्ठस्थ कर लेती थी अहा-हा उस जमाना में पिता अपने पुत्र पुत्रियों को विद्याध्ययन करवाने में किस प्रकार प्रयत्न करते थे जिसका यह एक ज्वलत उदाहरण है।

मन्त्री शकडाल का बडा पुत्र स्थूलभद्र एक रूप लावण्य एव युवति कैशा नाम की वैश्या का प्रेम में इस प्रकार फस गया था कि बारह वर्षों में लाखों करोडों द्रव्य उसे दे दिया फिर भी वह उस वैश्या से पृथक् होना नहीं चाहता था यह भी एक पूर्व संचित मोहनीय कर्म का प्रबल्योदय ही कहा जा सकता है।

राजा नन्द की सभा में एक वररूची नाम का पण्डित आया करता था और वह अपने को शीघ्र

+ कल्पकः पुनरुत्पन्नानेक पुत्रो धियों निधिः। सुचिरं नन्दराजस्य मुद्रा व्यापार मन्वशात। १।
नन्दस्य वंशे कालेन नन्दाः सप्तामवन्नृपाः। तेषां च मन्त्रणो ऽभूवन्भूयांसः कल्पकान्वयाः। २।
ततस्त्रिखण्डं पृथिवी पतिः पतिरिव श्रियः। समुत्खात द्विपत्कन्दोनन्दोऽभून्नवमो नृपः। ३।
विशङ्कटः श्रियां चागोऽसङ्कटः शकटो धियाम्। शकटाल इति तस्य मन्त्र्य भूत्कल्पकान्वय. । ४।
तस्य लक्ष्मीवतीनाम लक्ष्मीरिव व पुष्मती। सधर्मचारिण्य भवत्शीलालङ्कार धारिणी। ५।
तयोश्चज्येष्ठतनयो विनयालङ्कृतोऽ भवत्। अस्थूलधीः स्थूलभद्रो भद्राकार निशाकरः। ६।
भक्ति निष्ठः कनिष्ठोऽभूच्छ्रीयकोनन्दनस्तयोः नन्दराड्हृदयामन्दानन्द गोशीर्षचन्दनः।७।
पुरेऽभूत्तत्रकोशेतिवेश्या रूप श्रियोर्वशी। वशीकृतजगच्चेता बभूव जीवनौषधिः।८।
भुञ्जानोविविधान्भोगान्स्थूलभद्रोदिवानिशम्। उवासवसये तस्याद्वादशा वत्सरानि तन्मनाः। ९।
श्रीयकस्त्वङ्ग रक्षोऽभूद्भूरिविश्रम्भभाजनम्। द्वितीयमिवहृदयंनन्दस्य पृथिवीपतेः। १०।
तत्र चासीद्वररुचिर्नामद्विजवराग्रणीः। कवीनांवादिनां वैयाकरणानांशिरोमणिः। ११।
स्वयंकृतैर्नव नवैरष्टोत्तरशतेनसः। वृत्तैः प्रवृत्तोऽनुदिननृपावलगने सुधीः। १२।
मिथ्यादृगिति तं मन्त्री प्रशशंस न जातुचित्। तुष्टोऽप्यस्मैतुष्टिदानं नददौ नृपतिस्ततः।१३।
ज्ञात्वा वररुचिस्तत्रदानाभावण कारणम्। आराधयीतुमारेभेगृहिणीं तस्य मन्त्रिणः। १४।

आगे पर इन्हीं का विस्तार से समाप लिखा है श्लोक ४८ तक है।

स्थुलिभद्र कैसा वैश्या के साथ सुख से रहता है।
पृष्ठ ३२१

स्थुलिभद्र वैश्या और मंत्री पद को ठुकरा कर दीक्षा ली और वैश्या के वहा चतुर्मास कर उसको प्रतिबोध दिया

राजानन्द की सभा में श्रियक अपने पिता शकडाल को तलवार से मारडाला पृष्ठ ३२३

रथिक ने अंबलु तोड़ना और वैश्या का सरसप पर नृत्य करना पृष्ठ ३२७

में भी आ गई बस । मंत्री राज सभा में आकर नृप महाराज को सिर नमा कर बोले उस समय श्रीयक ने और तलवार निकाल कर अपने पिता शकडाल का सिर सभा में गिरा दिया इस पर राजा ने कहा श्रीयक यह तुम ने क्या किया ? × श्रीयक ने कहा कि ऐसा पिता जीवित रहने में क्या लाभ कि जो आप स्वामी का अहित एवं मृत्यु चाहता हो ? इस वचन को सुनकर राजा श्रीयक पर बहुत संतुष्ट होकर कहा कि और यह तुम्हारे घराना का मंत्री पद है जिसको तुम ग्रहण कर मन्त्री पद को शोभाइये। श्रीयक ने कहा मेरा बड़ा भाई स्थूलभद्र है जो आज १२ वर्षों से कोशा वैश्या के यहाँ रहता है यदि आप मन्त्री पद देना चाहें तो उनको बुला कर दीजिये क्योंकि बड़े भ्राता के होते हुए मुझे मन्त्री पद शोभा नहीं देता है इत्यादि—

राजा ने स्थूलभद्र को बुला कर मंत्री पद ग्रहण करने के लिये कहा उत्तर में स्थूलभद्र ने कहा कि मैं कुछ विचार कर उत्तर दूँगा राजा ने कहा । ठीक ! स्थूलभद्र नगर के बाहर अशोक बगीचा में जाकर विचार करने लगा कि जैसे मैं मंत्री बन कर सब राज की खटपट करने में उपयोग करूं वैसे यदि आत्म कल्याण के लिये दीक्षा ले कर पुरुषार्थ करूं तो मेरे किये हुए पापों का नाश हो और मैं लक्ष्मी का अधिकारी बन सकता हूँ इस मंत्री पद के कारण ही तो मेरे पिता अकाल में काल कवलित बन चुके हैं। अतः मैं अब राजसभा में जाकर धर्मलाभ ही दूँ । बस, वहीं पर पंचमुष्ठी लोच कर रत्नकम्बल का रजोहरण बना कर साधु के वेश से राजसभा में गया और वहाँ जाकर 'धर्मलाभ' दिया जिसको देख कर राजा और राजकर्मचारी आश्चर्य में मंत्र मुग्ध बन गये कारण जिस स्थूलभद्र को मंत्री देखने की प्रतिक्षा कर बै

---

× मत्वा किमिदं वत्स निर्दिष्टं कर्म दुष्करम् । ससम्भ्रममिति प्रोक्तो नृपेण श्रीयकोऽवदत् ॥६४॥
यदैव स्वामिना ज्ञातो द्रोहोऽयं निहतस्तदा । मद् विचारानुसारेण भृत्यानां हि प्रवर्तनम् ॥६५॥
भृत्यानां युज्यते दोषे स्वयं ज्ञाते विचारणा । स्वामिज्ञाते प्रतीकारो युज्यते न विचारणा ॥६६॥
ततोऽर्ध्वदेहिकं कृत्वा नन्दस्ततः श्रीयकमब्रवीत । सर्व व्यापार सहिता मुद्रेयं गृह्यतामिति ॥६७॥
अथ विज्ञपयामास प्रणम्य श्रीयको नृपम् । स्थूलभद्राभिधानोऽस्तिपितृतुल्यो ममाग्रजः ॥६८॥
पितृप्रसादान्निर्वर्णःकोशायास्तुनिकेतने । भोगाननुभवन्नास्तेस्वस्थस्तस्या द्वादशागमन् ॥६९॥
आहूयतस्थूलभद्रस्तमर्थं भूभुजोदित । पर्यालोच्याथमर्थं तु करिष्यामीत्यभाषत् ॥७०॥
अथैवाशोकवनेऽयुक्तः स्थूलभद्रोमहामतिः । अशोकवनिकांगत्वा विममर्शेति चेतसा ॥७१॥
शयनं भोजनं स्नानमन्येऽपि सुखहेतवः । कालेऽपि नाप्नु भूपन्ते रौरे रिन नियोगिभिः ॥७२॥
नियोगिनां स्वान्यराष्ट्र चिन्ता व्यग्रे च चेतसि । प्रेयसीनां नावकाश पूर्वोक्तानामेऽस्मसामिप ॥७३॥
त्यक्त्वा सर्वमपि स्वार्थं राजार्थं दुर्गतमपि । उपद्रवन्ति पिशुना छद्मज्ञानामिवारिकाः ॥७४॥
यथा स्वस्य प्रतिपथ्यये नापि प्रयस्यते । राजार्थे तथास्मार्थे यत्यते किन्नधीमता ॥७५॥
विचिन्त्यैवं व्यधात्केशोत्पाटनं पञ्चमुष्टिभिः । रत्नकम्बल दशामी रजोहरणमप्यथ ॥७६॥
ततश्च स महाभागो गत्वा सदसि पार्थिवं, आलोचितमिदं 'धर्मलाभः' स्तावित्य पोचत ॥७७॥
स्थूलभद्रोऽपिगत्वा श्रीसंभूतिविजयान्तिके, दीक्षां सामायिकोच्चारपूर्वकांमस्य पयत" ॥८२॥

"परिशिष्ट पर्व अष्टम सर्ग"

बस । उन अबोध लड़कों ने वररूची का कहना स्वीकार कर लिया और उस बात को नगर में फैला दी । जब यह बात राजा के कानों तक पहुँची तो राजा को मत्री पर बड़ा भारी गुस्सा आया । दूसरे दिन जब मंत्री सभा में आया तो राजा ने आख उठाकर उसके सामने भी नहीं देखा मत्री चतुर था वह समझ गया कि आज राजा नाराज है खैर सभा विसर्ज्जन हुई । मत्री अपने घर पर जाकर सोचने लगा कि राजा की नाराजी का कारण क्या है मैंने कोई अपराध तो किया ही नहीं है इत्यादि ।

इधर वररूची ने सभा का हाल सुन कर विचार किया कि ठीक हुआ राजा शकडाल पर नाराज है और वह क्रोध के मारा अन्ध बन कर अपना भांन भुल गया है अत' अब राजा के पास चलना चाहिये । वररूची राजा के पास गया और इधर उधर की बातें करते हुए मंत्री की बात भी निकाली । वररूची ने कहा राजन् ! केवल अफवाह पर विश्वास नहीं करना चाहिये ? आप अपने गुप्ताचरों को भेजकर निर्णय करवा लीजिये ? राजा ने अपने गुप्ताचरों को भेजे और वे जाकर नये बने हुए शस्त्र देख आये और राजा से सब हाल कह दिये । इस पर राजा ने सोचा कि आखिर मत्री तो बड़ा ही कपटी एव नमक हरामी ही निकला । अच्छा हुआ कि वररूची ने मुझे ठीक सावधान कर दिया वरना मैं शकडाल के हाथों से एक दिन जरूर मारा जाता। अब तो राजा का द्वेष मंत्री पर और भी अधिक हो गया। और मत्री ने भी इस बात को जान ली कि राजा मेरे पर सख्त नाराज है कभी ऐसा समय न आ जाय कि मेरे सब कुटम्ब का ही नाश कर दे इस विचार से मत्री अपने पुत्र श्रीयक से कहा कि कल मैं राज सभा में जाकर तलपुट नामक विष भक्षण करूँगा उस समय तू राज सभा में आकर तलवार से मेरा शिर उड़ा देना । श्रीयक ने कहा कि पिताजी! आप क्या बात करते हो क्या पुत्र ही अपने पिता का शिर काट सक्ता है? मत्री ने कहा कि हाँ ऐसा मौका आता है तो पुत्र पिता का भी शिर काट सकता है और इसमें ही सब कुटम्ब का भला है अर्थात् मत्री ने अपने पुत्र को सब बात ठीक तौर पर समझा दी और वह बात श्रीयक के समझ

---

वालका यच्च भाषन्ते भाषन्ते यच्च योषितः । उत्पातकी च या भाषा सा भवत्यन्यथानहि ॥५२॥
तत्प्रत्ययार्थं राज्ञाथ प्रेपितोमन्त्रिवेश्मनि । पुरुपः सर्व मागत्य यथा दृष्टं व्यजिज्ञपत् ॥५३॥
ततश्च सेवावसरे मन्त्रिणः समुपेयुपः । प्रणामं कुर्वतो राजा कोपात्तस्थौ पराङ्मुखः ॥५४॥
तद्भावज्ञोऽथ वेश्मैत्यामात्यः श्रीयकमब्रवीत् । राज्ञोऽस्मि ज्ञोपितः केनाप्य भक्तो विद्विपन्निव ॥५५॥
असावकस्माद् स्माकं कुलक्षय उपस्थितः । रक्ष्यते वत्स कुरुपे यद्यादेशमिमं मम ॥५६॥
नमयामियदाराज्ञ शिरश्छिन्द्यास्त्व दासिना । अभक्तः स्वामिनो वध्यः पितापीति वदेस्ततः ॥५७॥
यियासौ मयि जरसाप्येव याते परासुताम् । त्व मत्कुल गृहस्तम्भोभविष्यसिचिरंततः ॥५८॥
श्रीयकोऽपिरुदन्नेवमवदद्गद्गदस्वरम् । तातघारैमिदंकर्म श्वपचोऽपि करोति किम् ॥५९॥
अमात्योऽप्यब्रवी देवमेवं कुर्वन्त्रिचारणम् । मनोरथान्पूरयसि वैरिणामेव केवलम् ॥६०॥
राजा यम इवोदण्डः सकुटुम्बं निहन्तिमाम् । यावत्ता वन्ममैकस्य क्षयारक्ष कुटुम्बकम् ॥६१॥
मुखेविपंतालपुटं न्यस्य नंस्यामि भूपतिम् । शिरः परासोर्मेछिन्द्याः पितृहत्यानते ततः ॥६२॥
पित्रैवं बोधितस्तत्स प्रतिपेदे चकारच । शुभोदर्कायधीमन्तः कुर्वन्त्यापातदारुणम् ॥६३॥

कुछ भी उठा नहीं रखा परन्तु परम वैरागी मुनि स्थूलभद्र ने हमेशा वैश्या को जैनधर्म की शिक्षारूप इस प्रकार का उपदेश दिया करता था कि जिससे वैश्या ने वैश्यावृत्ति का त्याग कर जैनधर्म की श्राविका बन गई अहा हा मुनि स्थूलभद्र का धैर्य कि परिचित वैश्या के हावभाव से मोहित न होकर उस वैश्या को भी प्रतिबोध दे कर श्राविका बना दी।

जब चतुर्मास समाप्त हुआ तो चारों मुनि सूरिजी के पास आये और अपना अपना विवरण कह सुनाया सूरिजी ने तीनों साधुओं को कहा कि तुमने दुष्कर दुष्कर काम किया है कि सिंहगुफा सर्प की बांबी और कूप तट एवं स्मशानों में परिश्रम सहन कर चतुर्मास व्यतीत किया तब स्थूलभद्र को कहा कि तुमने दुष्कर दुष्कर काम किया है जो साधारण साधु से नहीं बन सकता है इत्यादि।

सूरिजी के वचन सुन कर सिंह गुफा वासी साधु ने सोचा कि इस पक्षपात की भी सीमा है कि हम लोगों ने हथेली में प्राण लेकर भयंकर कष्ट के स्थान में चतुर्मास करके आये हैं जिसको तो केवल दुष्कर ही कहा अब पूर्व परिचित वैश्या की चित्रशाला में रह कर अनेक हावभाव में चतुर्मास करने वाले स्थूलभद्र को दुष्कर दुष्कर कहा पर ठीक है आगामी चतुर्मास में मैं भी वैश्या के वहाँ चतुर्मास करने की आज्ञा माँगूंगा और स्थूलभद्र की भांति दुष्कर दुष्कर उपाधि को प्राप्त करूं गा—

जब शीत और उष्ण काल व्यतीत हुआ तो सिंह गुफा वासी साधु ने सूरिजी से आज्ञा माँगी कि मैं वैश्या के वहाँ जाकर चतुर्मास करूं गा। सूरिजी ने उसको समझाया पर उसकी अत्याग्रह होने से आज्ञा दे दी और वह साधु जाकर वैश्या की चित्रशाला में चतुर्मास कर दिया। जब वैश्या का अधिक परिचय होने लगा तो मुनि अपने धैर्य को कब्जे में रख नहीं सका वैश्या के हावभाव में मोहित हो गया और आखिर उसने वैश्या से प्रार्थना की इस पर वैश्या ने जवाब दिया कि हे मुने! यहाँ केवल धर्मलाभ से काम नहीं चलता है पर यहाँ तो अर्थलाभ होना चाहिये अतः आप पहला अर्थोपार्जन करें बाद मेरे यहाँ रह सकते हो। अब तो मुनिजी अर्थ प्राप्ती के लिये विचार सागर में गोते लगाने लगे पर उसके लिये आपको एक ही मार्ग नहीं मिला। तब जाकर वैश्या से सलाह पुच्छी तो उसने कहा कि नैपाल देश का राजा साधुओं को रत्न कम्बल देता है आप वहाँ जाकर रत्नकम्बल ले आवें तो आपकी इच्छा पूर्ण हो सकती है बस। विषय पिपासु क्या नहीं कर सकता है मुनि नैपाल देश में गया और साधु के वेश में रत्नकम्बल प्राप्त कर वापिस आ रहा था रास्ते में चोर मिल गये खैर ज्यों त्यों अनेक कष्ट सहन कर रत्नकम्बल लेकर वैश्या के पास आये और कम्बल वैश्या को देकर × जिस विषय के लिये कष्ट सहन किया था उसकी याचना की तो वैश्या ने कहा आप जरा ठहरिये मैं स्नान मज्जन करके आती हूँ वैश्या स्नान कर उस रत्नकम्बल से पैर पुंछ कर उसको गटर में फेंक दी जिसको देखकर मुनि ने कहा कि अरे कोशा! मैं बड़े ही कष्ट सहन कर कम्बल लाया हूँ जिसको कीचड़ में

---

× स समागत्य कोशायै प्रददौ रत्नकम्बलम्। चिक्षेपसाऽशुचौ सोऽथ पङ्कनिःपंक मेनकम् ॥१६१॥
अभ्यधान्मुनिरप्येवमयोग्यमपि कर्दमे। महामूल्योऽप्यसौ रत्नकम्बलः कम्बुकण्ठिकिम् ॥१६२॥
अथ कोशाप्युवाचैवं कम्बलं मूढ शोचसि। गुण रत्नमयं त्वामपतन्तं स्वं न शोचसि ॥१६३॥
तच्छ्रुत्वा जात संवेगो मुनिस्तामित्य वोचत। बोधितोऽस्मि त्वया साधु संसारात्साधु रक्षिता ॥१६४॥
"परिशिष्ट पर्व सर्ग अष्टम"

थे वो साधु के रूप में दिखाई दिया अतः उन त्याग के अवतार को राजा प्रजा की ओर से कोटीश धन्य-वाद दिया गया कि जिस स्थूलभद्र ने १२ वर्ष वैश्या के वहाँ रह कर भोग विलास किया उस वैश्या को तथा राजा के देने पर मन्त्रीपद को ठुकरा कर यकायक मुनिव्रत स्वीकार कर लिया यह कोई साधारण बात नहीं है पर धन्य है इस त्यागी वैरागी स्थूलभद्र को कि जिस संसार में हस्ती की भाँति खुचा हुआ था जिसका त्याग करने में क्षणमात्र भी नहीं लगी।

स्थूलिभद्र वहाँ से चल कर आचार्य सँभूतिविजय के पास आया और आचार्यश्री के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार कर ली तत्पश्चात् सूरिजी का विनय भक्ति कर एकादशाङ्ग का अभ्यास कर तप संयम की आराधन करने में लग गया।

एक समय का जिक्र है कि स्थूलभद्रादि चार मुनि आचार्यश्री के पास आकर + अर्ज की कि हे प्रभो ! हम लोग अभिग्रह पूर्वक एकल प्रतिमा को स्वीकार कर चतुर्मास करना चाहते हैं। एक ने कहा कि मैं सिंह की गुफा पर जाकर चतुर्मास करूंगा तब दूसरे ने कहा मैं सर्प की बांबी पर—तीसरा ने कहा मैं श्मशान एवं कूप के तट पर और स्थूलभद्र ने कहा मैं कोश्या वैश्या की चित्रशाला में चतुर्मास करूंगा ? सूरिजी ने अपने ज्ञान द्वारा लाभालाभ का कारण जान कर चारों मुनियों को उनकी इच्छानुसार चतुर्मास करने की आज्ञा दे दी और वे चारों मुनि अपने निर्णयानुसार यथा स्थान पर जाकर चतुर्मास कर भी दिया। तीनों मुनियों ने तो घोर परिश्रम को सहन करते हुए चतुर्मास विताने लगे पर स्थूलभद्र तो पूर्व १२ वर्ष की परिचित वैश्या कि जिसके साथ हावभाव एवं भोग विलास किया था उनकी चित्रशाला में चतुर्मास किया था और विविध प्रकार के षट्रसयुक्त आहार पानी लेकर चतुर्मास विताने लगे। वैश्या ने हावभाव करने में

+ स्थूलभद्रोऽपि सम्भूतिविजयाचार्य सन्निधौ। प्रव्रज्यौं पालयामास पार दृश्वा श्रुताम्बुधेः ॥१०९॥
वर्षा कालंऽन्यदायाते सम्भूतिविजयं गुरुम्। प्रणम्य मूर्ध्नामुनय इत्यगृह्णन्नभिग्रहाम् ॥११०॥
अह सिंह गुहाद्वारं कृतोत्सर्गं उपाषितः। अवस्थास्य चतुर्मासीमेकः प्रत्यश्रृणोदिदम् ॥१११॥
दृग्विषाहि विलद्वारे चतुर्मासी मुपोषितः। स्थास्यामि कायोत्सर्गेण द्वितियोऽभिग्रहीदिदम् ॥११२॥
उत्सर्गी कूपगण्डकासने मास चतुष्टयम्। स्थास्याम्युपोषित इति तृतीयः प्रति पद्यतः ॥११३॥
योग्यान्मत्वा गुरुः साधून्यावचा न्वमन्यत। स्थूलभद्रः पुरोभूयनत्वैवतावद ब्रवीत् ॥११४॥
कोशाभिधाया वैश्याया ग्रहेया चित्रशातिकः। विचित्रकामशास्त्रोक्तकरणा लेखशालिनी ॥११५॥
तत्र कृत तपः कर्म विशेषः पड्साशनः स्यास्यामि चतुरोमासानितिमेऽअभिग्रहः प्रभो ॥११६॥
ज्ञात्वोपयोगाद्योग्यं तं गुरुस्तत्रान्वमन्यात। साधवश्चययुः सर्वे स्वंस्वं स्थानं प्रतिश्रुतम् ॥११७॥
शान्त्यम् स्तीव्रतयोनिष्टान्दृष्ट्वा तागमुनिसतमान्। त्रयोऽमीभेजिरे शांतिसिंहसर्परिघट्टकाः ॥११८॥
स्थूलभद्रोऽपि सम्प्राप कोशा वैश्या निकेतनम्। अभ्युत्तस्थै तथा कोशाप्याहिताञ्जलिरग्रतः ॥११९॥

"परिशिष्ट पर्व स्वर्ग आठवां"

आगे सिंह गुफावासी साधु वैश्या के वहां चतुर्मास करता है और वैश्या के हाव भाव से चलित हो नैपाल देश में जाकर बड़े ही कष्ट से रत्नकम्बल लाता है जिसको वैश्या पैर पूछ कर गटर में डालती है।

महात्मा मुनि स्थूलिभद्र कि जिनका नाम मात्र स्मरण करने से पापियों का पाप नष्ट हो जाता है इस असंख्य वर्षों की अवसर्पिणी काल में यह एक ही उदाहरण मिलता है कि इस प्रकार के त्यागी वैरागी और ब्रह्मचारी एक स्थूलभद्र ही हुआ है ।

मुनि स्थूलभद्र का शेष जीवन पाठक आचार्य भद्रबाहु के जीवन में पढ़ चुके हैं कि उस समय बारह वर्षीय महान् दुष्काल पड़ा था आचार्य भद्रबाहु अपने ५०० शिष्यों के साथ नेपाल की ओर पधार गये थे। दुष्काल के बाद जब सुकाल हुए तो पाटलीपुत्र नगर में श्रमणसंघ की एक सभा हुई और उसमें दीर्घदुष्काल के कारण साधुओं आगमों को कंठस्थ नहीं रख सके अर्थात् कई आगम विस्मृत हो गये थे परन्तु उस सभा में उपस्थित साधुओं को जो जो आगम याद थे उनको ठीक सिलसिलेवार करने से एकादशांग तो व्यवस्थित हो गया पर बारहवां दृष्टिवादाङ्ग किसी को भी याद नहीं रहा अतः स्थूलभद्रादि कई साधुओं ने आचार्य भद्रबाहु के पास जाकर अध्ययन किया तो केवल एक स्थूलिभद्र ही दशपूर्व सार्थ और चारपूर्व मूल एवं चतुर्दश पूर्वधर हुए इत्यादि । आचार्य भद्रबाहु अपने अन्तिम समय मुनि स्थूलिभद्र को अपने पट्ट पर आचार्य बना कर वीरात् १७० वर्ष में स्वर्ग सिधार गये ।

पहले हम लिख आये थे कि मंत्री शकडाल के स्थूलभद्र एवं श्रीयक दो पुत्रों के साथ सात पुत्रियें भी थी उन्होंने भी जैन दीक्षा ली थी जिनके नाम इस प्रकार थे—

जक्खा य जक्खदिन्ना भूया तह चेव भूयदिन्ना य । सेणा वेणा रेणा भगिणीओ थूलभद्दस्स ॥

यक्षा यक्षदिन्ना भूता भूतदिन्ना सेणा वेणा और रेणा एवं सातों बहनों ने भी जैन दीक्षा ली थी और क्रमशः साध्वी तपसंयमादि आराधना कर स्वर्ग सुखों को प्राप्त किया था ।

आचार्य स्थूलिभद्रसूरि ने गच्छ संचालन का कार्य अपने अधिकार में लिया तो आपने जैनधर्म के प्रचार निमित्त खूब जोरदार प्रयत्न किया । आपने अनेकों को मिथ्या जाल से बचा कर जैनधर्म में दीक्षित किये और कई पुरुषों को जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमणसंघ में भी आशातीत वृद्धि की जिसमें आपके दो शिष्य मुख्य थे × १ आर्यमहागिरि जिसका एलापत्य गौत्र था, २ आर्य सुहस्ती आपका वासिष्ठ गौत्र था इन दोनों ने आचार्य स्थूलभद्र के चरण कमलों की सेवा करके दश पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया था कहा है कि—

इत्यादि आचार्य स्थूलभद्रसूरि का जीवन जनकल्याण के लिए महान् उपयोगी है अन्त में आप श्रीमान् अपने पट्ट पर आचार्य महागिरि एवं आचार्य सुहस्ती को स्थापन कर आप परम शान्ति एवं समाधि के साथ अनशन पूर्वक वीरात् २१५ वें वर्ष में स्वर्गधाम को पधारे ।

× स्वामिना स्थूलभद्रेण, शिष्यो द्वावपि दीक्षितौ । आर्य महागिरिरार्यसुहस्ती चाभिधानतः ॥२६॥
तौ हि यक्षार्ययाऽऽत्मवत्सपि मातृवत् पालितौ । इत्यार्योपपदौ जातौ महागिरि सुहस्ती नौ ॥२७॥
दृष्टि वादेन तीर्थे वास्तीचार विच्छिन्नम्, परिसहेभ्यो निर्भीको पालयामास दुर्धरम् ॥ २८ ॥
तौ स्थूलभद्रपादाम्भोज सेवा मधु करावमौ, शास्त्राणि दशपूर्वाणि महाप्रज्ञावधीयतुः ॥ २९ ॥
शान्तौ दान्तौ लब्धिमन्ता वधीतागमपुण्यको चामिनोऽपरमक्ति ।
आचार्यत्वे न्यास्य तौ स्थूलभद्रः काले कृत्वा देवं भूयं मयेदे ॥ ४ ॥

इति श्री आचार्य स्थूलिभद्रसूरि का पवित्र जीवन की रूप रेखा"

डाल कर खराब क्यों कर रही है ? इसके उत्तर में वैश्या ने कहा कि हे मुनि ? मैंने तो इस मूल्यवान कम्बल को ही खराब की है पर आप तो अमूल्य पंच महाव्रत को ही खराब कर रहे हो जरा अपनी ओर तो लक्ष्य दीजिये। बस। वैश्या के इन शब्दों को सुनकर मुनि ने विचार किया कि अहो। कहाँ धैर्य्यवान स्थूलभद्र मुनि कि जिस वैश्या के साथ पूर्व भोग विलासिता में रहे थे उसके साथ चारमास रहने पर भी चलायमान नहीं हुआ और कहा मेरे जैसा अल्प सत्व वाला कि वही वैश्या मुझे उपदेश देकर स्थिर कर रही है जैसे भग्न चित्त वाला रहनेमि को सतीराजमति ने स्थिर किया था इत्यादि मुनि ने वैश्या का परमोपकार मानकर आचार्य श्री के पास आया और अपना सब वितिकार कह कर अपने व्रत में जो अतिचार लगा था उसकी शुद्ध भावों से आलोचना की और कहा कि हे प्रभो ! मैंने स्थूलभद्र की बराबरी करने को मिथ्या प्रयत्न किया था पर स्थूलभद्र महाभाग्यशाली जितेंद्रिय है मैं उनकी बराबरी कदापि नहीं कर सकता हूँ।

इस प्रकार मुनि के भावों को सुनकर आचार्यश्री ने उस मुनि को योग्य आलोचना एवं यथावत् प्राय-श्चित देकर शुद्ध बनाया और वह मुनि तप संयम में लग्न होगया।

मुनि स्थुलभद्र द्वारा प्रतिबोध पाने वाली कौशा वैश्या ने एक सिंहगुफावासी मुनि को ही स्थिर नहीं किया पर इस प्रकार अनेकों को स्थिर किया था एक समय का जिक्र है कि एक रथिक वैश्या के यहाँ आया था और वैश्या से उसने प्रार्थना की कितना ही द्रव्य का लालच दिया और अपनी एक ऐसी कला बताई कि नगर के बगीचा में एक आम्र का झाड़ था उसके अपूर्व फल लगा हुआ था रथिक वैश्या के महल में रहा हुआ आम्र फल के बाण लगाया और दूसरा बाण पहला बाण के लगाया इस प्रकार एक एक बाण को जोड़ता हुआ वैश्या के मकान तक बाणों का तांता लगाकर उस फल को लेकर वैश्या को बतलाया। इस पर वैश्या ने अपने महल में सरसव का ढेर लगाकर उस पर एक सुई रखी सुई पर एक पुष्प रखा और उस पुष्प की एक कली पर नृत्य किया जिसको देखकर रथिक का गर्व गल गया। वैश्या ने अपने नृत्य के अन्दर एक गाथा कही कि.—

न दुक्करं अंबय लुंब तोडयां, न दुक्करं सिखिय नचियाणं,
तं दुक्करं तं च महाणुभावो, जंसोमुणीपमय वणम्गि वुच्छो।

न तो आम्रलुंब तोड़ने में अधिकाई है और न सरसव के ढेर पर नाचने में विशेषता है कारण यह कार्य तो अभ्यास का है और हर कोई कर सकता है पर अधिकताई तो उन महानुभाव मुनि स्थूलभद्र की है कि जिसने दुर्जय मोह रूपी पिशाचकों जीत लिया है कि जिसके लिये पामर प्राणी दर दर के भिखारी बन कर भटक रहे हैं और अपना अमूल्य जीवन खो रहे हैं पर उन महानुभाव स्थूलभद्र ने विषय विकार को सर्प की कंचूक की भाति छोड़ दिया है संसार में एक स्थूलभद्र ही दुक्कर दुक्कर कार्य करनेवाला है इत्यादि।

वैश्या के बचनों से प्रतिबोध पाकर रथिक ने कहा वैश्या ! वह महासत्वधारी स्थूलभद्र कौन है और इस समय वह कहा रहता है क्योंकि मैं उन महापुरुष का दर्शन करना चाहता हूँ ? वैश्या ने स्थूलभद्र मुनि का चरित्र सुनाकर जहाँ वे मुनि के रूप में भ्रमन करते थे उनका पता बताया रथिक भ्रमन करता मुनि स्थूलभद्र के पास आया और दर्शन स्पर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाया मुनि स्थूलभद्र ने उक्त रथिक को ऐसा उपदेश दिया कि उसने असार संसार को त्यागकर मुनि स्थूलभद्र के चरणकमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकर कर ली और अपना कल्याण का मार्ग की आराधना में लग गया।

भगवान् पार्श्वनाथ के ९ वें पट्टधर
आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज

पाखण्डियों का पराजय करने के लिए उन महात्माओं के शरीर में जैनधर्म की पवित्रता की बड़ी भारी ताकत थी अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निस्पृहीता, परोपकार परायणता, और स्वाध्यायरूपी अनेक शस्त्रों से सज्जधजके वे सदैव तैयार रहते थे और उन्हीं शस्त्रों द्वारा आप श्रीमानोंने पाखण्डियों का पराजय कर उनके मिथ्यात्व अज्ञान रूप की घोर हिंसा और दुराचाररूपी किल्ले को समूल नष्ट कर विश्व में जैन धर्म का एक झण्डा फहरा दिया अगर उन आचार्यों की सन्तान में अपने पूर्वजों का अनुकरण कर प्रत्येक प्रान्त में विहार किया होता तो आज कितनेक प्रान्तों जैनधर्म विहीन न बन जाते तथापि आज उन प्रान्तों में पूर्व जमाने की जाहोजलाली के स्मृति चिन्हरूप जैन तीर्थ-मन्दिर और थोड़े बहुत प्रमाण में जैन धर्मोपासक अस्तित्व रूप में दिखाई दे रहे हैं यह उन पूर्वाचार्यों की अनुग्रह-कृपा का सुन्दर फल है।

हमारे पूर्वाचार्यों की यह भी एक सुन्दर पद्धति थी कि वे देश विदेश में विहार करते थे पर किसी प्रान्त को साधुविहीन नहीं रखते थे अर्थात् प्रत्येक प्रान्त में योग्य पढ़ी सूरि विद्वान मुनियों की अध्यक्षता में हजारों मुनियों को विहार की आज्ञा फरमा दिया करते थे कि जैन जनता सदैव के लिए उन्नति क्षेत्र में अपने पैर आगे बढ़ाती रहे। बात भी ठीक है कि जहाँ जैन मुनियों का सदैव विहार होता रहे वहाँ मिथ्यात्व अज्ञान और दुराचार को अवकाश ही नहीं मिलता है विद्वानों की अपेक्षा मध्यम कोटी के लोग सदैव अधिक होते हैं और उनका जीवन उपदेश पर निर्भर है जैसा-जैसा उपदेश मिलता रहे वैसा वैसा संस्कार पड़ जाता है अतएव प्रत्येक प्रान्त में मुनि विहार की आवश्यकता उस समय में भी स्वीकारी जाती थी।

अपने पूर्वजों की पद्धत्यनुसार आचार्य श्रीसिद्धसूरिजी महाराज ने पंजाब देश में विहार करनेवाले मुनियों के लिए अच्छी व्यवस्था कर आपश्री ५　मुनियों के साथ विहार कर हस्तिनापुर मथुरा, शौरीपुर वगैरह तीर्थों की यात्रा के पश्चात आप श्रीमानों ने अपने चरण कमलों से मरुभूमि को पवित्र बनाई और शासनाधीश भगवान् महावीर की यात्रा के लिए उपकेशपुर की तरफ विहार किया। मरुधर में यह शुभ समाचार पहुँचते ही मानों बसन्त के आगमन से वनराजी नवपल्लव बन जाती है इसी भान्ति मरुधर की जैन जनता में बड़े ही हर्षोत्साह की लहरें उठ रही थी सूरिजीमहाराज क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर पधारे श्रीसंघ ने आपश्री का बड़ा भारी स्वागत किया देवगुरु की यात्रा कर धर्म पिपासु लोगों को धर्मदेशना दी जिसका प्रभाव जैन जैनेत्तर जनता पर बहुत ही अच्छा पड़ा उधर उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ के साधु साध्वियों के झुण्ड के झुण्ड आपश्री के दर्शनार्थ आ रहे थे आगन्तुकों की तो संख्या ही नहीं गिनी जाती थी मानों उपकेशपुर एक यात्रा का पवित्र स्थान ही बन गया था।

आप श्रीमानों के विराजने से उपकेशपुर और आसपास में अनेक सद्कार्यों द्वारा जैनधर्म का प्रचार, शासनोन्नति और जैन जनता में धर्म जागृति के साथ नई गुणा उत्साह बढ़ गया श्री संघ के आग्रह से आपश्री का चातुर्मास उपकेशपुर में हुआ तब आसपास के ग्राम नगरों की विनती से अन्योन्य साधुओं को वहाँ चतुर्मास करवा दिया। नए जैन बनाना वहाँ जैन मंदिरों और विद्यालयों की स्थापना करवाना तो आपश्री के पूर्वजों से ही एक प्रचलित कार्य था और आपश्री ने भी उनका ही अनुकरण किया और आपश्री ने इस पवित्र कार्य में अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी इसके सिवाय आपश्री का मधुर और रोचक उपदेश पान करते हुए बहुत से नर नारियों ने संसार का त्याग कर आपके चरण कमलों में दीक्षा भी धारण की थी।

चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री ने मरुभूमि के चारों ओर खूब परिभ्रमण किया और बहुतसा

# १०—आचार्य श्रीसिद्धसूरि।

आचार्यस्य सुसिद्धसूरि विदुषः पाण्डित्यमाख्या तृकः ।
पाञ्चाले भ्रमण विधाय वहुधा जैनीय देवालयान् ॥
यः संस्थाप्य तु मागमान वहुला कीर्ति दधौसुस्थिराम् ।
धन्योऽयं कमनीय कार्य कुशलो वन्दे च वन्द्य प्रभुः ॥

आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुये आप श्रीमान् चन्द्रपुरी नगरी के राजा कनकसेन के लघुपुत्र थे किशोरवय में ही सिद्धार्थ नामक वेदान्ती आचार्य के पास दिक्षित हुए थे आप बाल ब्रह्मचारी और अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे, सत्य के संशोधक थे धर्म के जिज्ञासु थे, मोक्ष के अभिलाषी थे, ज्ञान के प्रेमी थे, सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियां परस्पर स्पर्द्धा करती हुई सदैव आपको वरदाई थी जैन दिक्षा स्वीकार करने के बाद आचार्य देवगुप्तसूरि की सेवा भक्ति से स्याद्वाद सिद्धान्त में भी आप बड़े ही प्रवीण हो गये थे धर्म प्रचार करने में तो आप बड़े ही समर्थ थे पाखण्डियों के पैर उखाड़ने में आप अद्वितीय वीर थे। आपश्री की वचनलब्धि से मनुष्य तो क्या पर देवता भी मुग्ध बन जाते थे। जैसे आप तेजस्वी थे वैसे ही यशस्वी भी थे आपश्री ने पंचाल देश में विहार कर अनेक भव्यात्माओं का उद्धार किया इतना ही नहीं पर जैन धर्म का बड़ा भारी झण्डा फहरा दिया था। वादी लोग आप से इतने घबराते थे जैसे कि सिंह गर्ज्जना सुन हस्ती पलायन हो जाते है इसी भांति सिद्धिसूरि का नाम सुनते ही वे कम्प उठते थे अभिमानियों के मद गल जाते थे। आपश्री ने अनेक लोगों को दीक्षा दे श्रमण संघ में खूब वृद्धि की थी। सैकड़ों जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा और ज्ञानाभ्यास के लिये अनेक पाठशालाएं स्थापित करवाई थी आपश्री ने ग्रन्थ निर्माण करने में भी कमी नहीं रक्खी थी, इत्यादि। सद्कार्यों से स्वपरात्मा का कल्याण कर अपना नाम इतिहास पट्ट पर अमर बना दिया था।

पाठक वर्ग! आप सज्जन इस बात को तो भली भान्ति समझ गये होंगे कि उस जमाने के जैनाचार्यों ने जैन धर्म के प्रचार के लिए किस किस विकट भूमि अर्थात् देश विदेश में विहार किया, कैसे कैसे सकट और परिश्रम उठाए, वादि प्रतिवादियों के साथ किस कदर शास्त्रार्थ कर "अहिंसापरमोधर्म" का विजय डका बजाया, जैनधर्म को विश्वव्यापी बनाने की उन महापुरुषों के हृदय में किस कदर बिजली चमक उठी थी, कारण उस समय मरुस्थल, कच्छ सिन्ध सौराष्ट्रादि प्रान्तों में व्यभिचारी वाममार्गियों का एव यज्ञ वादियों का साम्राज्य वरत रहा था। पंचाल प्रान्त में असंख्य निरपराधी मूकप्राणियों की रौद्र हिंसामय यज्ञादि का प्रचार करने में वेदान्ती लोग अपना प्राबल्य जमा रहे थे, अग वग मगध वगैरह प्रान्तों में बौध लोग अपने धर्म का प्रचार नदी के पूर की भान्ति बढा रहे थे, अगर उस विकट समय में जैनाचार्य एक ही प्रान्त में रह कर अपने उपासकों को ही मंगलिक सुनाया करते तो उनके लिए वह समय निकट ही था कि संसार भर में जैनधर्म का नाम निशान भी रहना मुश्किल हो जाता, पर जिनकी नसों में जैनधर्म का खून बहता हो वे ऐसी दशा को चुप चुप बैठकर कैसे देख सके ? हरगिज नहीं, कारण अधर्म को हटाने के लिए

पाखण्डियों का पराजय करने के लिए उन महात्माओं के शरीर में जैनधर्म की पवित्रता की बड़ी भारी ताकत थी अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य निस्पृहीता, परोपकार परायणता, और स्वाध्यायरूपी अनेक शस्त्रों से सजधजके वे सदैव तैयार रहते थे और उन्हीं शस्त्रों द्वारा आप श्रीमानोंने पाखण्डियों का पराजय कर उनके मिथ्यात्व अज्ञान पक्ष की घोर हिंसा और दुराचाररूपी किल्ला को समूल नष्ट कर विश्व में जैन धर्म का झण्डा फहरा दिया अगर उन आचार्यों की सन्तान में अपने पूर्वजों का अनुकरण कर प्रत्येक प्रान्त में विहार किया होता तो आज कितनेक प्रान्तों जैनधर्म विहीन न बन जाते तथापि आज उन प्रान्तों में पूर्व जमाने की जाहोजलाली के स्मृति चिन्हरूप जैन तीर्थ मन्दिर और थोड़े बहुत प्रमाण में जैन धर्मोपासक अस्तित्व रूप में दिखाई दे रहे हैं यह उन पूर्वाचार्यों की अनुग्रह-कृपा का सुन्दर फल है।

हमारे पूर्वाचार्यों की यह भी एक सुन्दर पद्धति थी कि वे देश विदेश में विहार करते थे पर किसी प्रान्त को साधुविहीन नहीं रखते थे अर्थात् प्रत्येक प्रान्त में योग्य पदवी भूषित विद्वान मुनिवरों की अध्यक्षता में हजारों मुनियों को विहार की आज्ञा फरमा दिया करते थे कि जैन जनता सदैव के लिए उन्नति क्षेत्र में अपने पैर आगे बढ़ाती रहे। बात भी ठीक है कि जहाँ जैन मुनियों का सदैव विहार होता रहे वहाँ मिथ्यात्व अज्ञान और दुराचार को अवकाश ही नहीं मिलता है विद्वानों की अपेक्षा मध्यम कोटी के लोग सदैव अधिक होते हैं और उनका जीवन उपदेश पर निर्भर है जैसा-जैसा उपदेश मिलता रहे वैसा वैसा संस्कार पड़ जाता है अतएव प्रत्येक प्रान्त में मुनि विहार की आवश्यकता उस समय में भी स्वीकारी जाती थी।

अपने पूर्वजों की पद्धत्यानुसार आचार्य श्रीसिद्धसूरिजी महाराज ने पंजाब देश में विहार करनेवाले मुनियों के लिए अच्छी व्यवस्था कर आपश्री ५०० मुनियों के साथ विहार कर हस्तिनापुर मथुरा, सौरीपुर वगैरह तीर्थों की यात्रा के पश्चात् आप श्रीमानों ने अपने चरण कमलों से मरुभूमि को पवित्र बनाई और शासनाधीश भगवान् महावीर की यात्रा के लिए उपकेशपुर की तरफ विहार किया। मरुस्थल में यह शुभ समाचार पहुँचते ही मानों वसन्त के आगमन से वनराजी नवपल्लव बन जाती है इसी माफिक मरुस्थल की जैन जनता में बड़े ही उत्साह की लहरें उठ रही थी सूरिजीमहाराज क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर पधारे श्रीसंघ ने आपश्री का बड़ा भारी स्वागत किया देवगुरु की यात्रा कर धर्म पिपासु लोगों को धर्मदेशना दी जिसका प्रभाव जैन जैनेतर जनता पर बहुत ही अच्छा पड़ा क्यार उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ के साधु साध्वियों के झुण्ड के झुण्ड आपश्री के दर्शनार्थ आ रहे थे आगन्तुकों की तो संख्या ही नहीं गिनी जाती थी मानों उपकेशपुर एक यात्रा का पवित्र स्थान ही बन गया था।

आप श्रीमानों के बिराजने से उपकेशपुर और आसपास में अनेक सद्कार्यों द्वारा जैनधर्म का प्रचार, शासनोन्नति और जैन जनता में धर्म जागृति के साथ कई गुणा उत्साह बढ़ गया था संघ के आग्रह से आपश्री का चातुर्मास उपकेशपुर में हुआ तब आसपास के ग्राम नगरों की विनती से अन्योन्य साधुओं को वहाँ चतुर्मासा करवा दिया। नए जैन बनाना नहीं जैन मंदिरों और विद्यालयों की स्थापना करवाना तो आपश्री के पूर्वजों से ही एक प्रचलित कार्य था और आपश्री ने भी उनका ही अनुकरण किया और आपश्री ने इस पवित्र कार्य में अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी इसके सिवाय आपश्री का मधुर और रोचक उपदेश पान करते हुए बहुत से नर नारियों ने संसार का त्याग कर आपके चरण कमलों में दीक्षा भी धारण की थी।

चातुर्मास के पश्चात् आचार्य श्री ने मरुभूमि के चारों ओर खूब परिभ्रमण किया और पाखण्डीय

नगरी में एक विराट् सभा की जिसमें हजारों साधु साध्वियों और लाखों श्रावक उपस्थित हुए आचार्यश्री ने पूर्वाचार्यों का परमोपकार, महाजन संघ की महत्त्वता, और देशोदेश में विहार करने का लाभ खूब ही ओजस्वी भाषा से विवेचन कर समझाया अन्त में आचार्यश्री ने यह फरमाया कि इस समय जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धा के लिये जैन मंदिर और तत्त्वज्ञान फैलाने के लिये विद्यालयों की जरूरत है और जैन मुनियों को देशोदेश मे विहार कर, जैन धर्म का प्रचार करने की भी आवश्यकता है अतएव चतुर्विध श्रीसंघ यथा-शक्ति इन कार्यों के लिए प्रयत्नशील बने और इन पवित्र कार्यों के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर भाग्यशाली बन, इत्यादि । आचार्यश्री के उपदेश का असर जनता पर अच्छा पड़ा कि वह अपने अपने कर्तव्य कार्य पर कमर कस के तैयार हो गए बड़ी खुशी की बात है कि उस जमाने में जैसे आचार्यश्री धर्म प्रचार करने में कुशल थे वैसे ही उनके आज्ञावृत्ति चतुर्विध श्रीसंघ उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करने को तैयार रहते थे इसी एक दीली के कारण से ही वे मनोच्छित कार्य कर सकते थे ।

एक समय की जिक्र है कि एक शिवाचार्य अपने शिष्यों के साथ यज्ञ धर्म के प्रचार निमित्त चन्द्रावती नगरी में आया । कि वहाँ राजा प्रजा सब जैनधर्मोपासक थे । पाठक पहले पढ़ चुके हैं कि श्रीमाल नगर के राजा जयसेन के पुत्र चन्द्रसेन ने इस नगरी को आबाद की थी और क्रमशः चन्द्रसेन-गुनसेन-अर्जुन-सेन-नभसेन का पुत्र रूपसेन उस समय वहाँ का राजा था । शिवाचार्यने राजसभा में आकर कहा कि निकट भविष्य मे इस नगरी पर बड़ी भारी आफत आने वाली है । अत खास तौर पर राजा का कर्त्तव्य है कि जनता की शान्ति के लिये यज्ञ द्वारा देवताओं को बली देकर खुश करे इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है । मैं राजा प्रजा का शुभचिंतक हूँ कि आप लोगों को सावचेत कर दिया है, इत्यादि ।

मंत्री जिनदास ने कहा कि महात्माजी यह शान्ति का नहीं पर आफत बढ़ाने का उपाय है । हम लोग कर्म सिद्धान्त को मानने वाले जैन हैं । यज्ञ करवाना तो दूर रहा, पर बिना अपराध किसी जीव को तकलीफ़ देने में भी पाप समझते हैं, इत्यादि सुन कर शिवाचार्य अपने स्थान पर चला गया और अपनी विद्या द्वारा नगरी में कुछ उपद्रव करना शुरू किया कि जिससे कई भद्रिकों को चोभ होने लगा ।

राजा और मंत्री ने एक आमन्त्रण-पत्र लिखकर अपने योग्य पुरुषों को आचार्य सिद्धसूरि के पास भेजा उन्होंने सूरिजी के पास जाकर सब हाल निवेदन किया । बस, फिर तो देरी ही क्या थी, सूरिजी शीघ्र विहार कर चन्द्रावती पधारे । राजा प्रजा ने सूरिजी के नगर-प्रवेश का खूब समारोह से महोत्सव किया । सूरिजी ने पधारते ही जिन मन्दिरों में स्नात्र महोत्सव करवाया जिसके प्रक्षालन का जल से सर्वत्र शान्ति हो गई । इतना ही क्यों, पर शिवाचार्य ने अपनी विद्याओं के अनेक प्रयोग किये पर उसमें वे निःसफल ही हुए । अतः शिवाचार्य्य चलकर आचार्यसिद्धसूरि के पास आया और कहने लगा कि महात्माजी । आपके पास ऐसी कौन सी विद्या है कि मेरी कोई भी विद्या काम नहीं देती है ? अत कृपा कर आपकी विद्या मुझे दीजिये बदले में मैं आपको अच्छी २ विद्या दूँगा सूरिजी ने कहा—महानुभाव । ऐसी विद्याओं से आत्मा का कल्याण नहीं है, यदि आप जन्म मरण से मुक्त होना चाहते हो तो वीतराग प्रणित धर्म की शरण लेकर उसकी ही आराधना करो । इत्यादि इस प्रकार समझाया कि शिवाचार्य ने अपने शिष्यों के साथ सूरिजी के पास जैन-दीक्षा स्वीकार करली । इस प्रकार तो सूरिजी ने अनेक भव्यों का कल्याण किया था ।

आचार्य श्री सिद्धसूरि मरुभूमि में विहार करने वाले मुनियों का उत्साह बढ़ाते हुए योग्य विद्वान मुनियों को पदवियों से विभूषित बना कर उनको अन्य प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा दे दी बाद आप श्रीमान् ने पूर्वाचार्यों की स्मृति रूप कई स्थानों की यात्रा करते हुए अनेक साधु साध्वियों और श्राद्ध वर्ग के साथ श्री सिद्धगिरि की यात्रा की सौराष्ट्र में परिभ्रमण कर कच्छ की ओर पधारे कुछ समय तक कच्छ में विहार किया पश्चात् आपने सिंध प्रान्त में पदार्पण किया अर्थात् आपश्री बड़े ही दूरदर्शी थे जैसे आप नए जैन बनाने का प्रयत्न करते थे वैसे ही पहिले बनाए हुए श्रावकों और साधु साध्वियों की सारसंभार करना भी आप एक परमावश्यक कार्य समझते थे। इसलिए आपश्री ने कई वर्षों तक सिन्ध प्रान्त में विहार कर अपने अग्र संघ के किए हुए कार्य पर प्रसन्न चित्त से धन्यवाद दिया और पारितोषिक रूप में कई योग्य मुनियों को पदवियों प्रदान की बाद वहां से विहार कर पंचाल देश में पधार गए इस परिभ्रमण के दरम्यान आपने जैन शासन की अत्युत्तम सेवा की, यों तो आपने अपना जीवन ही धर्म प्रचार में व्यतीत कर दिया था। अन्त में आप विहार करते हुए उपकेशपुर पधार कर मुनिरत्न को अपने पद पर नियुक्त कर उनका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया तत्पश्चात् आप श्रीमान् उपकेशपुर नगर में १५ दिन का अनशन कर समाधिपूर्वक स्वर्ग में अवतीर्ण हुए।

भगवान पार्श्वनाथ की सन्तान परम्परा में उपकेशगच्छ के प्रारम्भ समय से आचार्यश्रीरत्नप्रभसूरि, आचार्यश्रीयक्षदेवसूरि आचार्य श्रीकक्कसूरि आचार्यश्री देवगुप्तसूरि और आचार्यश्रीसिद्धसूरि एवं पांचों आचार्य महा प्रभाविक हुए और इन पांचों आचार्यों के नाम से ही आज पर्यन्त उपकेशगच्छ अविच्छिन्न चल रहा है।

१—मरुस्थल में आचार्य रत्नप्रभसूरि का नाम अमर है। आपका सूरि पद समय वी० ५२—८४
२—मत्स्यदेश में „ यक्षदेवसूरि का नाम अमर है। „ „ „ „ ८४—१२८
३—सिन्धप्रान्तमें „ कक्कसूरि का नाम अमर है। „ „ „ „ „ १२८—१७४
४—कच्छप्रांत में „ देवगुप्तसूरि का नाम अमर है। „ „ „ „ „ १७४—२११
५—पंचालप्रांतमें „ सिद्धसूरि का नाम अमर है। „ „ „ „ „ २११—२५२

इन महापुरुषों की बदौलत उनकी सन्तान ने पूर्वोक्त प्रान्तों में चिरकाल तक जैन धर्म को राष्ट्रीय धर्म बना रक्खा था आज जो जैन जातियों जैनधर्म पालन कर स्वर्ग मोक्ष की अधिकारी बन रही है यह सब इन महान् प्रभावशाली आचार्यों के उपकार का ही सुंदर फल है। अतएव जैन समाज एवं जैन जातियों का कर्तव्य है कि अपने पर महान उपकार करने वाले पूर्वाचार्यों के प्रति सदा भक्ति प्रदर्शित करते रहें।

सिद्ध वचन से लब्धि उनके दर्शों पार दीपाया था।
सिद्धसूरीश्वर नाम आपका भारी सुन परसाया था॥
लाखों जन को मांस छुड़ाकर अहिंसा धर्म समझाया था।
मरु आदि में भ्रमण करके जैन झण्डा फहराया था॥

इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टपर आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज प्रभाविक आचार्य हुए।

† कई पट्टावलियों में सिद्धसूरि का स्वर्गवास अहमदाबाद में होना लिखा है पर वे सिद्धसूरि अन्य थे जिनके लिए कहा —
तत्पट्टे सिद्धसूरिर्गुरु राशिरिह विद्यानिधिः श्रीस्वपरसमयदर्शी करिस्वसिद्धाऽभवत्॥
भामभिपद्मभिख्य पञ्चननग्राऽऽनन्दे मानमानोऽस्मिन् वादि कुम्भिकुम्भस्थलान्यपम्॥

# ११—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ( द्वितीय )

तत्पट्टे तु गुणाग्रणी स्थिति करो रत्नप्रभो नामधृक् ।
पञ्चाम्बौ बहु सौरसेने मरुवत्प्रान्तेष्वभ्राम्यत्सुधीः ॥
तुल्यस्तेन स एव केवल मिहासीद्धर्मो निष्ठो महान् ।
आ पाञ्चालमसौ चकार भ्रमणं बंगं च पूर्व प्रति ॥

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज बड़े भारी धर्म प्रचारक एव महान् तपस्वी आचार्य हुए। आप श्रीमान् उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव की वंश परम्परा के एक वीर क्षत्री थे आप अपनी तारुण्यावस्था में राज लक्ष्मी का त्याग कर आत्मीय वैराग्य के साथ आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा ग्रहण की थी। आचार्य श्री ने दीक्षा देकर आपका नाम मुनि रत्न रक्खा था। दीक्षा लेने के पश्चात् आप सूरिजी की खूब भक्ति एवं विनय करके जैनागमों के स्याद्वाद सिद्धानादि का अभ्यास किया इतना ही क्यों पर उस समय स्वमत परमत के सामयिक साहित्य का भी आपने अध्ययन कर लिया था यही कारण था कि आप विद्वानों की पक्ति में सर्वोपरी समझे जाते थे आप यह भी समझते थे कि पूर्व संचित कर्म बिना तप के क्षय होना असंभव है अत. आप श्री ने कठोर तपश्चर्य करना प्रारम्भ कर दिया कभी कभी तो आप मासखामण के भी पारण करते थे पर छट छट तप करने की तो आपने अपने जीवन पर्यन्त प्रतिज्ञा करली थी और इन कठोर तपश्चर्य से आपके अन्दर आत्मीय गुणों का इस प्रकार प्रादुर्भाव हुए कि अनेक लब्धियें और सरस्वती एवं लक्ष्मी देवियों स्वयं वरदायी बन आपकी आज्ञा का पालन करती थी यही कारण था कि अनेक राजा महाराजा ही क्यों पर कई देवी देवता भी आपके चरण कमलों की सेवा में उपस्थित रहते थे। आपश्री न्याय व्याकरण तर्क छन्द काव्यादि साहित्य के इतने भारी विद्वान थे कि आपकी तर्क एवं युक्तियों के सामने वादी सदैव नत मस्तक रहते थे इतना ही क्यों पर आप का नाम सुनकर ये दूर दूर भागते थे आपश्री का तप तेज और प्रखर प्रभाव को देख जनता प्रथम रत्नप्रभसूरि को ही हर समय याद करती थी।

आचार्य सिद्धसूरि एक समय यह विचार कर रहे थे कि अब मेरी वृद्धावस्था है तो मुझे चाहिये कि मैं मेरे अधिकार को किसी योग्य साधु को देकर गच्छ नायक बनाऊ। ठीक उसी समय सच्चायिक देवी आकर प्रार्थना की कि प्रभो ! आप विचार क्या करते हो आपके हस्त दीक्षित मुनि रत्न सर्व गुण सम्पन्न और आप श्री के पद के लिये सब तरह से योग्य है। अत' आप उपकेशपुर पधारें और मुनिरत्न को अपने उत्तराधिकारी बनावें। इस पर सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी। मेरी भी यही इच्छा है और समय आने पर मुनिरत्न को ही सूरि बनाया जायगा। देवी सूरिजी को वन्दन कर चली गई। सूरिजी क्रमश विहार करते हुए उपकेशपुर की ओर पधारे।

आचार्य श्री के शुभागमन से उपकेशपुर के राजा प्रजा ही क्यों पर आस पास के लोगों में भी खूब

उत्साह फैल गया बड़े समारोह से सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया था भगवान महावीर की यात्रा कर सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा धर्म देशना दी जिसका जनता पर खूब ही प्रभाव हुआ विशेषतया वहाँ के राजा सारंगदेव ने अपनी वृद्धावस्था में सूरिजी महाराज के समागम मिल जाने से बहुत हर्ष मनाया और अपने आत्मकल्याण के लिये तत्पर हो गया।

एक समय राजा सारंगदेव सूरिजी के पास आया और अपने कल्याण के लिये पूछा ? इस पर सूरिजी महाराज ने फरमाया कि नरेश ! यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो सबसे पहले इस राज सम्बन्धी सब कार्यों को छोड़कर निवृत्ति पथ के पथिक बन जाइये यह सबसे उत्तम रास्ता है। क्योंकि इस राज से किसी को तृप्ती न तो आई है और न आने की है। जब तक आप राज कार्य में रहेंगे वहाँ तक निवृत्ति का समय मिलना मुश्किल है और निवृति बिना कल्याण नहीं है। मैं खुद भी अब इसी मार्ग का अनुसरण करना चाहता हूँ और मेरा अधिकार मैं मुनि रत्न को देने का निश्चय भी कर लिया है।

सूरिजी के वचन सुनकर महाराजा सारंगदेव समझ गया कि जब यह त्यागी महात्मा धर्म कर्म एवं गच्छ को छोड़ने को प्रवृत्ति समझ कर इनसे अलग होना चाहते हैं तो मैं इस राजलक्ष्मी अनेक कर्म बन्ध के कारणों में कर्दम में हस्ती की भाँति खूंचा हुआ हूँ अतः इस राज कार्य में रहकर कल्याण की आशा ही क्यों रक्खूं। फिर भी आखिर यह राजलक्ष्मि मेरे साथ चलने वाली नहीं है। तो सूरिजी के पास मैं भी अपना राज अधिकार योग्य पुत्र को देकर यदि वृद्धावस्था के कारण दीक्षा न ले सकूं तो भी कम से कम एकान्त में रहकर आत्म कल्याण करने में तो लग जाऊं। इत्यादि

राजा सारंगदेव ने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! आपका फरमाना सोलह आना सत्य है और आपकी कृपा से मैंने यह निश्चय भी कर लिया है कि आप जिस शुभ दिन अपना अधिकार मुनिरत्न को दें उसी शुभ दिन में मैं मेरा बड़ा पुत्र धर्मदेव को मेरा उत्तराधिकारी बना दूंगा और आपश्री के चरण कमलों में रह कर अपना कल्याण करूंगा।

इस पर सूरिजी ने कहा राजेश्वर ! मुमुक्षुओं का यही कर्तव्य है जो आप ने निश्चय किया है पर अब इस शुभ कार्य में विलम्ब करना अच्छा नहीं है क्योंकि शुभ कार्यों में कोई विघ्न उपस्थित हो जावें।

राजा सारंगदेव ने कहा पूज्यवर मेरी ओर से किसी प्रकार का विलम्ब नहीं है आप जिस शुभ दिन का निश्चय करें मैं सूरि पद का महोत्सव का लाभ के साथ मेरे पुत्र को राज देकर निवृत्ति पाने को तैयार हूँ।

सूरिजी ने वसन्त पंचमि" को भगवान् महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा का शुभ दिन था वह दिन निर्धारित कर दिया जिसको राजा सारंगदेव ने खूब हर्ष के साथ बधा लिया।

बस ! चन्द्रपुर नगर में इस बात की खबर मिलते ही जनता का उत्साह कई गुना बढ़ गया और वे लोग अपने घरों के काम छोड़कर इस पवित्र कार्य के महोत्सव में लगगये इस एक कार्य के साथ तीन कार्य शामिल थे। जैसे सूरिपद का महोत्सव महावीर मन्दिर में अष्टान्हिका महोत्सव और राजरोहण महोत्सव बस फिर तो कहना ही क्या था सब लोग इस शुभ कार्य का अपूर्व लाभ लेने को कटिबद्ध हो गये।

सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य और निवृत्ति पर होता था जिसका प्रभाव जनता पर इस कदर का हुआ कि कोई १४ नरनारियाँ सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार

हो गये क्यों न हो उस समय के जीवों के कर्म ही लघु थे क्षयोपशम विशेष था और निकट भविष्य में उनको मोक्ष होने वाली थी अत थोड़ासा उपदेश भी उन पर विशेष असर कर जाता था।

ठीक समय पर इधर सूरिजी महाराज महावीर मन्दिर में चतुर्विध श्री सघ की सम्मति लेकर मुनिरत्न को आचार्य पद से विभूषित करके आपका नाम रत्नप्रभसूरि रक्ख दिया था साथ ही साथ मुक्ति रमणी की इच्छावाले ६४ नरनारियों को भगवती जैनदीक्षा दी। तब उधर राजा सारगदेव ने अपने जेष्ठ पुत्र धर्मदेव को राजपद अर्पण कर दिया इस सुअवसर पर कई पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य हुए और साधर्मी भाइयों को पेरामणी आदि से सत्कार किया तथा याचकों को पुष्कल दान भी दिया राजा धर्मदेव तख्तनिशान होते ही सब से पहली यह आज्ञा फरमायी कि हमारे पूर्वजों से ही हमारे राज में जीव हिंसा बन्द है तथापि मैं उसकी दृढ़ता से लिये इस समय और भी कहता हूँ कि यदि हमारे पूर्वजों की आज्ञा का भग कर कोई भी व्यक्ति बिना कारण किसी भी जीवको मारेगा उस जीव के बदले अपना जीवन देना पड़ेगा इत्यादि।

अहा हा! आज उपकेशपुर के घर घर मे बड़ी भारी खुशियें मनाई जा रही हैं और आचार्य सिद्धसूरि की भूरि भूरि प्रशंसा हो रही है दूसरे राजाप्रजा को इस बातका विशेष हर्ष था कि मुनिरत्न इसी उपकेशपुर का वीर क्षत्री एवं चमकता सितारा है आज वही उपकेशपुर में आचार्य सिद्धसूरि के करकमलों से आचार्यपद पर आरूढ हुआ है भला ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जिसको अपने देश एवं नगर का गौरव न हो? मनुष्यों को तो क्या पर इस कार्य से देवी सच्चायिका को भी बड़ा ही हर्ष था क्योंकि आज उनके मन धारा कार्य सफल हुआ है जिस रत्नप्रभसूरि ने देवी को प्रतिबोध देकर जैन शासन की अधिष्ठात्री एवं उपकेश गच्छोपासिका बनाई थी जिनके नाम के आचार्य को देखने का शोभाग्य मिला है।

राजा सारंगदेवादि श्रीसघ का अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही करना निश्चय कर लिया अत आसपास के क्षेत्रों में विहार कर जैन जनता को धर्मोपदेश सुनाया और जहाँ आवश्यकता देखी वहाँ अपने साधुओं को चतुर्मास करने की आज्ञा भी प्रदान करदी और आप श्रीमान् यथा समय उपकेशपुर में पधार कर वहाँ चतुर्मास कर दिया। यों तो अनेक महानुभावों ने सूरिजी के चतुर्मास से लाभ उठाया ही था पर विशेष लाभ राजा सारगदेव प्राप्त किया। आप पहले पढ़चुके हैं कि राजा सारगदेव राज खटपट से अलग हो अपना आत्म कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना रखता था इस पर भी सूरिजी की कृपा होगई तथा चतुर्मास कर दिया फिर तो कहना ही क्या था राजा रात्रि दिन इसी कार्य में व्यतित करता था एव कई लोग भी राजा के साथ रहकर उनका अनुकरण किया करते थे इत्यादि। सूरिजी के विराजने से उपकेशपुर के लोगों ने यथा रुचि खुब ही लाभ उठाया।

सूरिजी की अवस्था वृद्ध थी तथापि चतुर्मास के बाद विहार करने की इच्छा रखते थे पर कई भावुकों ने जैन मन्दिर बनवाये उनकी प्रतिष्ठा करवानी थी और कई मुमुक्षु दीक्षा लेने की भावना वाले थे अत सूरिजी से साग्रह प्रार्थना की जिसको स्वीकार कर सूरिजी आस पास के ग्रामों में विहार कर पुन उपकेशपुर पधार कर भद्रपुरुषों को दीक्षा दी और मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाई पर अशुभ कर्म ने सूरिजी पर ऐसा आक्रमण किया कि आप के शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई इस हालत में राजा सारगदेवादि श्रीसघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो आपने अपने उपकारी जीवन में अनेकभव्यों का उद्धार किया है और शासन की खूब उन्नति की है। अब आप की वृद्धावस्था है अत. आप हम लोगों पर कृपा कर यहीं विराजें कि आपकी सेवादि

से हम लोगों का भी कल्याण हो। सूरिजी ने कहा कि आपकी भक्ति एवं भावना बहुत अच्छी है पर जहाँ तक विहार हो सके वहाँ तक तो साधुओं को विहार करना ही चाहिये विहार से नये नये क्षेत्रों की स्पर्शना होती है जनता को नया २ उपदेश मिलता है चारित्र की विशुद्धता रहती है और पुरुषार्थ एवं उत्साह बढ़ता है इत्यादि। एक तो आपकी अवस्था एसी थी कि सुख पूर्वक विहार नहीं होता था दूसरा वहाँ के श्रीसंघ का आग्रह भी बहुत तीसरा राजा सारंगदेव के साथ अनेक भव्यों की कल्याण भावना ने भी सूरिजी पर काफी प्रभाव डाला अतः लाभालाभ का कारण जान कर सूरिजी ने फरमाया कि ठीक है स्थिरता में कुछ अर्सो तक यहाँ ठहर गए। आगे जैसी क्षेत्र स्पर्शना। आचार्यश्री ने मुख्याचार्य रत्नप्रभसूरि को ५ मुनियों के साथ विहार करने की आज्ञा फरमाई और कहा कि आप स्वयं विचारज्ञ है अब आप पर गच्छ की जुम्मेवारी है अतः मरुधर सौरठ कच्छ सिन्धु पांचालादि क्षेत्रों में विहार कर सर्वत्र श्रीसंघ को उपदेश का लाभ देना तथा पूर्वोक्त प्रदेशों में विहार करने वाले साधु साध्वियों की सार संभार करते हुए जिनशासन की सेवा करना इत्यादि सूरिजी न मानो एक शुभ आशीर्वाद ही दिया था।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने 'तथास्तु' कहकर कहा पूज्यवर ! आपश्री की आज्ञा तो मैं शिरोधार्य करता हूँ परन्तु मेरा दिल आपश्री की सेवा से अलग रहना नहीं चाहता है फिर भी आपश्री की इस वृद्धावस्था में मैं दूर कैसे रह सकता हूँ ? इस पर सूरिजी ने फरमाया कि तुमारा कहना ठीक है पर सब साधु एक ही स्थान में रहने में क्या लाभ है साधुओं का तो विचरते रहना चाहिये जिसमें भी आप अब सूरिपद को सुशोभित रहे हैं आप पर सब गच्छ एवं शासन का भार है प्रत्येक प्रान्तों में विहार करने वाले साधुओं की सार संभाल भी करना जरूरी बात है। अतः मेरी आज्ञा है कि आप बिना विलम्ब आनन्द से विहार करें और मेरी आज्ञा का पालन करना यही मेरी सेवा है इत्यादि।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सूरिजी की आज्ञा से ५०० साधुओं के साथ उपकेशपुर से विहार किया और मरुधर में घूम कर अहिंसा धर्म का खूब प्रचार कर रहे थे आचार्यश्री सिद्धसूरि उपकेशपुर में वरनिर्विघ्निमें अन्तिम सलेखना कर रहे थे आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में विहार करते थे परन्तु आपका चित्त गुरुदेव के चरणों में था अतः वे चलकर पुनः उपकेशपुर पधारे और आप भाग्यशाली भी थे कि पूज्य गुरुदेव की अन्तिम सेवा का लाभ हासिल किया क्योंकि आचार्यश्री ने आप के आने के पूर्व ही अनशन व्रत कर लिया था इस समय आपका पधारना हो गया आपश्रीने सूरिजी की अन्तिम सेवा एवं खूब लाभ लिया और १९ दिन का अनशन पूर्वक परम समाधि के साथ आचार्यश्री सिद्धसूरि स्वर्ग पधार गये इस दुःखद घटना से श्री संघ को बहुत रंज हुआ पर वे करते क्या ? आखिर अग्निसंस्कार का कायरसागादि क्रिया की तत्पश्चात् आचार्य रत्नप्रभसूरि की विद्यमानतामें केवल १९ दिनों में ही राजा सारंगदेव ने असार संसार से विदा लेली।

आचार्य रत्नप्रभसूरि अपने शिष्य मण्डल के साथ भूमी मरुधर की धरा पर विहार कर रहे थे उसी समय का जिक्र है कि पूर्व प्रान्त की ओर भयंकर दुष्काल पड़ रहा था अतः पूर्व में विहार करने वाले आचार्य एवं मुनिगण पश्चिम की ओर आ रहे थे उसमें आर्य सुहस्तिसूरि भी थे और वे अवन्तिनगरी की आचार्य आर्यवती प्रदेश में पधारे तब आप उज्जैन नगरी पधार कर भगवान महावीर की मौजूदगी में स्थापित मूर्ति अर्थात् जीवित स्वामी के दर्शन किये उस समय श्रीसंघ ने रथयात्रा का वरघोड़ा (जलूस) निकाला था वहाँ के राजा सम्प्रति अपने महलों में बैठा हुआ जलूस के साथ सूरिजी को देखा अपोह लगाने से उसको जाति

हो गये क्यों न हो उस समय के जीवों के कर्म ही लघु थे क्षयोपशम विशेष था और निकट भविष्य में उनको मोक्ष होने वाली थी अत थोड़ासा उपदेश भी उन पर विशेष असर कर जाता था ।

ठीक समय पर इधर सूरिजी महाराज महावीर मन्दिर में चतुर्विध श्री सघ की सम्मति लेकर मुनिरत्न को आचार्य पद से विभूषित करके आपका नाम रत्नप्रभसूरि रक्ख दिया था साथ ही साथ मुक्ति रमणी की इच्छावाले ६४ नरनारियों को भगवती जैनदीक्षा दी । तब उधर राजा सारंगदेव ने अपने जेष्ठ पुत्र धर्मदेव को राजपद अर्पण कर दिया इस सुअवसर पर कई पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य हुए और साधर्मी भाइयों को पेरामणी आदि से सत्कार किया तथा याचकों को पुष्कल दान भी दिया राजा धर्मदेव तख्तनिशान होते ही सब से पहली यह आज्ञा फरमायी कि हमारे पूर्वजों से ही हमारे राज में जीव हिंसा बन्द है तथापि में उसकी दृढ़ता के लिये इस समय और भी कहता हूँ कि यदि हमारे पूर्वजों की आज्ञा का भंग कर कोई भी व्यक्ति बिना कारण किसी भी जीवको मारेगा उस जीव के बदले अपना जीवन देना पड़ेगा इत्यादि ।

अहा हा. ! आज उपकेशपुर के घर घर में बड़ी भारी खुशियें मनाई जा रही हैं और आचार्य सिद्धसूरि की भूरि भूरि प्रशसा हो रही है दूसरे राजाप्रजा को इस बातका विशेष हर्ष था कि मुनिरत्न इसी उपकेशपुर का वीर क्षत्री एव चमकता सितारा है आज वही उपकेशपुर में आचार्य सिद्धसूरि के कारकमलों मे आचार्यपद पर आरूढ हुआ है भला ऐसा कौन मनुष्य होगा कि जिसको अपने देश एव नगर का गौरव न हो ? मनुष्यों को तो क्या पर इस कार्य से देवी सच्चायिका को भी बड़ा ही हर्ष था क्योंकि आज उनके मन धारा कार्य सफल हुआ है जिस रत्नप्रभसूरि ने देवी को प्रतिबोध देकर जैन शासन की अधिष्ठात्री एव उपकेश गच्छोपासिका बनाई थी जिनके नाम के आचार्य को देखने का शोभाग्य मिला है ।

राजा सारंगदेवादि श्रीसंघ का अत्याग्रह से सूरिजी ने वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही करना निश्चय कर लिया अत आसपास के क्षेत्रों में विहार कर जैन जनता को धर्मोपदेश सुनाया और जहाँ आवश्यकता देखी वहाँ अपने साधुओं को चतुर्मास करने की आज्ञा भी प्रदान करदी और आप श्रीमान् यथा समय उपकेशपुर में पधार कर वहाँ चतुर्मास कर दिया । यों तो अनेक महानुभावों ने सूरिजी के चतुर्मास से लाभ उठाया ही था पर विशेष लाभ राजा सारगदेव प्राप्त किया । आप पहले पढ़चुके हैं कि राजा सारंगदेव राज खटपट से अलग हो अपना आत्म कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना रखता था इस पर भी सूरिजी की कृपा होगई तथा चतुर्मास कर दिया फिर तो कहना ही क्या था राजा रात्रि दिन इसी कार्य में व्यतित करता था एव कई लोग भी राजा के साथ रहकर उनका अनुकरण किया करते थे इत्यादि । सूरिजी के विराजने से उपकेशपुर के लोगों ने यथा रूचि खूब ही लाभ उठाया ।

सूरिजी की अवस्था वृद्ध थी तथापि चतुर्मास के बाद विहार करने की इच्छा रखते थे पर कई भावुकों ने जैन मन्दिर बनवाये उनकी प्रतिष्ठा करवानी थी और कई मुमुक्षु दीक्षा लेने की भावना वाले थे अत सूरिजी से साग्रह प्रार्थना की जिसको स्वीकार कर सूरिजी आस पास के ग्रामों में विहार कर पुन उपकेशपुर पधार कर भद्रपुरुषों को दीक्षा दी और मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाई पर अशुभ कर्म ने सूरिजी पर ऐसा आक्रमण किया कि आप के शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई इस हालत में राजा सारगदेवादि श्रीसघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो आपने अपने उपकारी जीवन में अनेकभव्यों का उद्धार किया है और शासन की खूब उन्नति की है । अब आप की वृद्धावस्था है अत आप हम लोगों पर कृपा कर यहीं विराजें कि आपकी सेवादि

उज्जैन नगरी में सम्राट् सम्प्रति व आर्य्य सुहस्तिसूरि और आचार्य रत्नप्रभसूरि (दूसरे) का मिलाप

सम्राट् सम्प्रति के समय सिक्का व शिलालेख आदि

हो गया है अत सम्भव ही नहीं पर दृढ़ विश्वास है कि ऐसे धर्म प्रचारकों के सहयोग से आपका कार्य अवश्य सफल होगा इत्यादि ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने कहा सूरिजी महाराज मैं इतनी प्रशंसा के योग्य नहीं हूं । हाँ आचार्य स्वयंप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि आदि ने इन प्रान्तों में आकर कई राजाओं को जैन बनाकर एक वृक्ष लगा दिया जिसके सुन्दर एवं स्वादिष्ट फल हम चख रहे हैं अत हमारा पुरुषों का खास कर्त्तव्य है कि उन महान उपकारी पुरुषों का उपकार मानें और इस प्रकार उपकार मानने से ही धर्म की वृद्धि एवं प्रचार होता है।

रत्नप्रभसूरि ने कहा पूज्याचार्य महाराज इस समय आप भी बड़े ही भाग्यशाली हैं कि इस प्रकार जैन धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्न कर रहे हैं जिसको सुन व देखकर जैनसमाज को बड़ा ही हर्ष होता है।

राजा सम्प्रति ने कहा कि पूज्यवर ! आपकी और आपके पूर्वजों की हम कहाँ तक प्रशंसा करें जो आज वे प्रान्तों सुलभ हो गये हों पर जब पहले पहले उन आचार्यों को कितना कष्ट सहन करना पड़ा होगा मैं तो समझता हूं कि उस समय वे क्षेत्र अनार्यों के सदृश ही होगा जिसमें इस प्रकार धर्म का प्रचार करना कोई साधारण सी बात नहीं कही जाती है अत उन पूज्याचार्यों का जितना उपकार माना जाय वह थोड़ा ही है इत्यादि खूब तारीफ की ।

आचार्यरत्नप्रभसूरि ने कहा राजन् ! आप भी बड़े ही भाग्यशाली हैं कि आपको आचार्यसुहस्तिसूरि जैसे प्रतिभाशाली आचार्य का सहयोग मिला है और विशेषता में आपने जैनधर्म प्रचार के हित सभा करने का निश्चय किया यह भी एक शासन के अभ्युदय का ही कारण है पूर्व जमाना में भी समय-समय इस प्रकार सभाएं हुआ करती थी सुना जाता है कि आपके पूर्वज सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासन में पाटलीपुत्र नगर में भी एक समय सभा हुई थी और उसमें जैनागमों की ठीक व्यवस्था ही की गई थी । आचार्य यशोभद्रसूरि आदि आचार्यों ने भी कई स्थानों पर इस प्रकार सभाएँ कर जैनधर्म का प्रचार किया था और आपके पितामह सम्राट् अशोक ने भी एक बौद्ध भिक्षुओं की सभा की थी और उन भिक्षुओं को अपने धर्म का प्रचार करने के लिये साहसिक बना कर अनेक प्रान्तों में उपदेश के लिये भेजे थे अत राजाओं का यह खास कर्त्तव्य है कि इस प्रकार सभाओं कर जनता में धर्म का प्रचार करे और उसी मार्ग का आपने अनुकरण किया वह खास प्रशंसनीय है और जहाँ हम लोगों का काम हो हम करने को कटिबद्ध तैयार हैं इतना ही क्यों पर जैन धर्म के प्रचार के लिये कितने ही परिषह एवं कठिनाइयां क्यों न उपस्थित हो जाय पर उसकी परवाह न कर हम प्राण प्रण के साथ धर्म प्रचार के लिये हर समय तैयार हैं इत्यादि —

आचार्य सुहस्तिसूरि और राजा सम्प्रति सूरिजी के वीरतामय वचन सुन कर मन्त्र मुग्ध बन गये और राजा ने कहा पूज्यवर ! आपके अमृतमय वचन सुन मुझे निश्चय हो गया है कि मेरा धारा हुआ कार्य अवश्य सफल होगा कारण आप जैसे सूरीश्वरों का शुभागमन हो गया है और आपके केवल दर्शन से ही नहीं पर नस-नस एवं रोम रोम में जैन धर्म का प्रचार की भावना कूटकूट कर भरी हुई है यही कारण है कि इस भावना से ही आप मरुधर और सिन्ध जैसे मांसाहारी पाखण्डियों के प्रदेश में भी जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया है दूसरे आपकी विनय प्रकृति और वात्सल्यता ने भी मेरे हृदय पर कम प्रभाव नहीं डाला है जिसका मैंने प्रत्यक्ष में अनुभव कर लिया है इत्यादि । वार्तालाप के बाद राजा सम्प्रति सूरियों एवं मुनिवरों को वन्दन कर विदा ली ।

स्मरण ज्ञानोत्पन्न हो गया इस विषय में हम पहिले विस्तार से लिख आये हैं कि आर्य सुहस्ति ने राजा सम्प्रति को जैन धर्म में दीक्षित किया और सम्राट् ने जैनधर्म का प्रचार निमित्त उज्जैन नगरी में एक जैन सभा की आयोजन किया था और इसके लिए बहुत दूर दूर तक अपने आदमियों के साथ आमन्त्रण भी भिजवाया था जिसमे एक आमन्त्रण मरुधर प्रान्त मे विहार करने वाले आचार्य रत्नप्रभसूरि को भी भेजा था आचार्य रत्नप्रभसूरि उस आमन्त्रण को पढ़ कर बड़े ही हर्ष के साथ आवती की ओर विहार कर दिया क्यों न करें जैनधर्म के प्रचार हित कौन पीछे रह सकते हैं जिसमें भी आप के तो पूर्वजों से ही क्रमश यह प्रवृति चली आ रही थी। अतः ऐसे सुअवसर में वे कब पीछे रहने वाले थे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ क्रमश विहार करते हुए उज्जैन नगरी के नजदीक पधार रहे थे तो राजा सम्प्रति और आर्य सुहस्तिसूरि को मालूम हुआ कि मरू प्रदेश की ओर से आचार्य रत्नप्रभसूरि पधार रहे हैं अत राजा ही क्यों पर नगरी भर में बड़ी खुशियें मनाई जाने लगी और आचार्य सुहस्तिसूरि ने विचार किया कि पार्श्वनाथ के सन्तानिये मरुधर पचालसिंध कच्छ वगैर बहुत से प्रांतों में तंत्रिको एव नास्तिको और मांसाहारियों के प्रदेशों में अहिंसा एव जैनधर्म का जोरों से प्रचार किया है पूर्व जमाने में गणधर गौतमस्वामी भी केशीश्रमणाचार्य की स्वागत के लिये चलकर गये थे तो ऐसे जैनधर्म के प्रचारकों का स्वागत करना मेरा भी खास कर्तव्य है अत राजा प्रजा के साथ सूरिजी भी अपने शिष्यों के साथ सामने गये और बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया सकल श्रीसघ के साथ जीवित स्वामी के दर्शन कर जहा आचार्य सुहस्तिसूरि ठहरे हुए थे वहाँ पधार कर दोनों आचार्य एक तख्त पर विराजमान हो मंगलाचरण के साथ थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी जिससे राजा प्रजा पर बहुत अच्छा प्रभाव हुआ अन्त में भगवान महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

जब निवृ ति के समय दोनों आचार्य आपस में वार्तालाप करने के लिये विराज मान थे उस समय राजा सम्प्रति सूरिजी को वन्दन तथा नये पधारे हुए आचार्यरत्नप्रभसूरि के दर्शनार्थ आये थे। वन्दन किया और विहार की सुख सात पुछकर बैठ गया। आचार्य सुहस्तिसूरि ने राजा सम्प्रति को सम्बोधन करके कहा कि यह आचार्य रत्नप्रभसूरि भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिये हैं इनके पूर्वजों ने मरुधरादि प्रदेशों जहां यज्ञ वादी तान्त्रिकों एव नास्तिकों का साम्राज्य था वहां अनेक परिसहों एव कठिनाइयों को सहन करके तथा चार चार मास तक भूखे प्यासे रह कर वहा के राजा प्रजा को धर्मोपदेश देकर जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन सघ की स्थापना रूप एक कल्पवृक्ष लगा दिया है और पीछले आचार्यों ने उनका सींचन एव पोषण किया जिसका ही फल है कि मरू सिन्ध कच्छ सोरट्ट लाट और पंचाल देश में आज लाखों मनुष्य जैनधर्म की आराधना कर रहे हैं जैसे आचार्य रत्नप्रभसूरि यज्ञदेवसूरि कक्कसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि नाम के महान प्रभाविक जिनशासन के स्तम्भ और जैनधर्म के प्रचारक हुए हैं इसी प्रकार यह रत्नप्रभसूरि (द्वितीय) भी एक प्रभाविक आचार्य हैं उन आचार्यों के उपकार से जैन समाज कभी उऋण नहीं हो सकता है इतना ही क्यों पर इन महात्माओं ने पूर्वोक्त प्रान्तों में हजारों मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बना दिया है अत आपको जितना धन्यवाद दिया जाय एवं प्रशंसा की जाय उतना ही थोड़ा है। फिर भी अधिक हर्ष इस बात का है कि आपका आमन्त्रण पा कर इन महात्माओं का यहा पधारना

अलग मनुष्यों को मुकर्रर कर दिये राज तंत्र चल ने वाले मंत्री के लिये इस संघ का कितनाक काम था उसने ऐसी सुव्यवस्था करदी कि थोड़ा ही समय में सब साधन तैयार कर लिया।

लोहाकोटनगर आज एक यात्रा का धाम बन गया हजारों साधु साध्वी और लाखों स्वधर्मी भाई आज मंत्री पृथुसेन के मरुभूमि को पवित्र बना रहे हैं सूरिजी ने संघ प्रस्थान का शुभ दिन मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी का निश्चित कर दिया था उस शुभ दिन में मंत्री पृथुसेन के संघपतिपने का तिलक एवं वासक्षेप कर के आचार्य श्री की अध्यक्षत्व में संघ प्रस्थान किया साथ में भगवान का देरासर और हस्त अश्व रथ पालकिये गाड़ा ऊँठ पोठ नक्कारा निशान वगैरह जो सामग्री चाहिये वह सब ले ली थी द्रव्य की मंत्री की ओर से खूब उदारता थी और संघ की सुंदर व्यवस्था थी तथा आप स्वयं साधु साध्वियां वगैरह चतुर्विध श्री संघ की सार संभाल रखता था श्रीसंघ प्रस्थान करने के बाद रास्ता में सब तीर्थों की यात्रा सेव पूजा भक्ति ध्वजरोहण जीर्णोद्धार करता हुआ तीर्थधिराज श्रीसम्मेतशिखरजी पहुँच गया तीर्थ दर्शन स्पर्शन से सब का चित प्रसन्न था दूसरे दिन सुबह होते ही आचार्यश्री एवं संघपति के साथ चतुर्विध श्रीसघ पहाड़ पर जाकर बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों की स्पर्शना की सेवापूजा करने वाले सेवापूजा की इस प्रकार कई दिन तीर्थ सेवा का खूब लाभ लूटा पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि अनेक शुभ कार्य कर पुन्योपार्जन किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने विचार किया कि अब मेरी अवस्था वृद्ध हो गई है तो मैं मेरा अधिकार योग्य शिष्य को देकर इस पवित्र भूमि मे निर्वृति के साथ आत्म कल्यान करुं यह केवल विचार ही नहीं था पर सूरिजी ने श्रीसंघ को बुला कर अपने विचारों को सुना दिया परन्तु श्रीसंघ यह कब चाहता था कि संघ के साथ पधारे हुए सूरिजी महाराज यहां ही ठहर जाय।

संघपति पृथुसेनादि श्रीसंघ ने कहा कि पूज्यवर ! आपके विचार के सहमत हम कैसे हो सकते हैं कृपा कर जैसे श्रीमान संघ लेकर पधारे हैं वैसे ही संघ को वापिस यथा स्थान पहुँचादे।

सूरिजी—आपका कहना भले ठीक हो पर आप जानते हो कि अब मेरी अवस्था वृद्ध हो गई है फिर कब इस तीर्थ पर आने का मौका बनता है और यह बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि निर्वृति का स्थान है अतः मेरा दिल चाहता है कि अब मैं गच्छ सम्बन्धी कार्यों से निर्वृति पाकर विशेष आत्म कल्याण सम्पादन करूँ। दूसरे वहाँ चलकर भी आप लोगों को धर्मोपदेश सुनाना है यदि मेरी आयुष्य अधिक होगा तो इस कार्य की यहाँ भी आवश्यकता कम नहीं है। आप रास्ता मे देखते आये हो कि बौद्ध धर्म के भिक्षु उपदेश देकर अपने धर्म का किस प्रकार प्रचार कर रहे हैं यदि इस प्रान्त में योग्य साधुओं का विहार न हुआ तो जैन धर्म को बड़ी भारी हानि पहुँचने की संभावना है इत्यादिः—

सघपति आदि श्रीसंघ ने कहा पूज्यवर। आपका फरमाना तो सत्य है इसके सामने तो हम क्या कह सकते हैं अतः हम लोग तो आपकी आज्ञा का पालन करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

सूरिजी—संघपतिजी आप बड़े ही भाग्यशाली हैं आपने तीर्थ यात्रा का संघ निकाल कर लाभ हाँसिल किया सो तो किया ही है पर मैं इस समय आपके सुपुत्र मुनि धर्मसैन को मेरा अधिकार देकर आचार्य पद देने का निश्चय कर लिया है यह भी आपके लिये बड़े ही गौरव की बात है कि आपके कुल में एक ऐसा रत्न उत्पन्न हुआ है,

जैसे आचार्यों के आपस में धर्म स्नेह एव वात्सल्यता थी वैसे ही दोनो ओर के मुनिवर्ग में भी खूब धर्म प्रेम था एक दूसरों के गुणों का अनुमोदन कर रहे थे 'तप सयम ज्ञान ध्यान विनय व्यावच्च एव धर्म प्रचार की बातें हो रही थी पर कोई किसी को यह नहीं पुच्छता था कि आप किस गच्छ कुल शाखा एव समुदायके हैं एव आप कौन कौनसी क्रियाए-समाचारी करते हैं कारण मोक्षाभिलाषियों को इन बातों से क्या प्रयोजन था क्योंकि जिसका जैसा क्षयोपशम है वह वैसा ही करता है कारण एक कार्य के अनेक कारण हो सकता है और जैसी जैसी जिनकी रुची है वह उसी माफिक करता है पर सब का ध्येय तो एक ही था कि जन्ममरण के दु खों से मुक्त हो अक्षय सुख अर्थात मोक्ष प्राप्त करना।

आज उज्जैन नगरी एक तीर्थ धाम बन गया है हजारों मुनि महात्मा नजदीक एवं दूर दूर से चल कर उज्जैन नगरी की ओर आ रहे हैं राजा की उदार भावना ऐसी थी कि बिना किसी पक्षपात सब महात्माओं का यथोचित सन्मान एव सत्कार किया जाता था।

पहले से जो समय निश्चित किया था वहाँ तक विशाल संख्या मे श्रीसंघ एकत्र हो गया था अत सम्राट् सम्प्रति की ओर से सभा के लिये सब को सन्मान पूर्वक आमन्त्रण भेजा गया और बड़े ही उत्साह के साथ श्रीसंघ एकत्र हुआ आचार्य सुहस्तिसूरि उस सभा के प्रमुख थे—मगलाचरण के पश्चात् आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सभाका उद्देश्य यह सुनाया और आचार्यसुहस्तिसूरि ने अपनी ओजस्वी वाणि द्वारा इस प्रकार का उपदेश दिया कि उपस्थित लोगों के मन मन्दिर मे जैनधर्म प्रचार की बिजली चमक उठी पुन सूरिजी ने कहा कि जैनधर्म एक विश्वव्यापि धर्म है और एक समय वह था कि विश्वमात्र जैनधर्मोपासक था पर काल की कूटल प्रभा से एक ही धर्म से अनेक पन्थ पैदा होकर भद्रिक जनता को अपने-अपने मत पन्थ में जकड़ कर सद्मार्ग भूला दिया और उन्मार्ग के पथिक बना दिये। इसमें थोड़ा बहुत प्रमाद साधुओं का भी कहा जा सकता है कि उनका कम भ्रमण होने से ही अधर्म का जोर बढ़ गया है यदि साधु प्रत्येक प्रान्त में घूम-घूम कर उपदेश देते रहे तो न तो धर्म मे शिथिलता आती है और न अधर्म का प्रचार ही होता है। उदाहरण की तौर पर देखिये भगवान् पार्श्वनाथ के सतानिये आचार्य स्वयप्रभसूरि रत्नप्रभसूरि इधर मरूधर की ओर पधारे थे उन्होंने कहाँ तक जैनधर्म का प्रचार किया कि आज मरूधर सिन्ध कच्छ सौराष्ट्र लाट एव पचालादि प्रान्तों मे जैनधर्म का काफी प्रचार हो गया है इसी प्रकार आर्य भूमि तो क्या पर अनार्य भूमि मे भी जैन श्रमणों का विहार होता रहे तो मुझे आशा ही नहीं पर दृढ विश्वास है कि जैनधर्म का सतारा फिर से चमकने लग जाय पर इस कार्य में केवल एक श्रमणगण ही पर्याप्त नहीं है पर इसमें गृहस्थों एवं राजाओं की भी आवश्यकता है अत रथ चलता है वह दो पइया से ही चलता है मेरा विश्वास है कि उपस्थित श्रमणसघ इसके लिये तैयार हो और राजा सम्प्रति इस कार्य को अपने हाथ में ले तो यह कार्य आसानी से सफल हो सकता है इत्यादि इस सभा एव धर्म प्रचार का विवरण हम सम्राट् सम्प्रति के जीवन में लिख आये हैं अर्थात् सूरिजी एव सम्राट् के प्रयत्न से भारत और भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य प्रदेशों मे जैनधर्म का खूब जोरों से प्रचार हुआ था।

आचार्यरत्नप्रभसूरि कई अर्सा तक वहाँ ही विराजे बाद आर्य सुहस्तिसूरि से कहा कि यदि हमारी एवं हमारे साधुओं की जब कभी आवश्यकता हो एवं आप सूचना करावे कि हम जहाँ फरमावे वहाँ जाने

# भगवान् महावीर प्रभु की परम्परा

भगवान्महावीरकेअष्टम पट्टपर दो आचार्य हुए १-आचार्य महागिरि २-आचार्य सुहस्ती इनके विषय आप आचार्य स्थूलभद्र के जीवन में पढ़ चुके हैं कि इन दोनों की दीक्षा आचर्य श्री स्थूलभद्र के करकमलों से हुई थी और आचार्यस्थूलभद्र इन दोनों को.अपने पट्टपर आचार्य बनाये थे दोनों आचार्य दशपूर्व धर थे तथा आचार्य महागिरि गच्छ नायक थे तब आचार्य सुहस्ति गच्छ के साधुओं की सारसंभाल किया करते थे।

आप पिछले प्रकरण में पढ़ आये हैं कि आचार्य सुहस्तिसूरि एक समय अपने शिष्य मण्डल के साथ जीवितस्वामि की यात्रार्थ उज्जैन पधारे थे वहां के श्रीसंघ ने बड़ेही समारोह के साथ रथ यात्रा का वरघोड़ा निकाला था जिसमें सूरिजी भी शामिल थे जब वरघोड़ा राज महल के पास आया तो वहां का राजा सम्प्रति झरोखे में बैठा हुआ वरघोड़ा के साथ आचार्य सुहस्तिसूरि को देखा और खूब ध्यानपूर्वक विचार किया तो उनको जातिस्मरण ज्ञान हो आया और राजासम्प्रति महल से उतर कर सूरिजी के चरणकमलों में वन्दन कर कहाँ भगवान्। आप मुझे पहचानते हो ? सूरिजी ने उपयोग लगा कर ज्ञानद्वारा राजा का पूर्वभव कहा कि आप पूर्वभव में एक भिक्षु थे मेरे पास दीक्षाली थी जिस एक दिन की दीक्षा से ही आपको इस प्रकार की ऋद्धि मिली है इत्यादि। इस पर राजा सम्प्रति ने कहा कि प्रभो ! आपका कहना सत्य है अब आप कृपाकर इस मेरा राज ऋद्धि को स्वीकार करावें कारण यह सब आपकी कृपा से हो मिला है। सूरिजी ने कहा कि हम निर्ग्रन्थों एवं निस्पृहियों को राज एवं ऋद्धि से क्या प्रयोजन है यदि आपकी ऐसी ही भावना है तो इस राजऋद्धि का प्रयोग जैनधर्म का प्रचार के लिये करे कि जिस जैन धर्म के प्रभव से मिला है और भविष्य में भी आपका कल्याण हो इत्यादि। राजने सूरि का कहना शिरोधार्य कर उसी समय सूरिजी के पास जैनधर्म स्वीकार लिया और उसी समय से वह जैनधर्म का प्रचार करने में संलग्न हो गया जिसको हम सम्राट् सम्प्रति के जीवनमें विस्तार से लिख आये हैं और उज्जैन में श्रमण सभा का हाल इसी प्रकरण में ऊपर लिख आये है।

राजा सम्प्रति—सूरिजी का ही नहीं पर जैन साधुओं का परम भक्त बन गया और जातिस्मरण ज्ञान द्वारा अपने पूर्वभव की स्मृति करने से उसने यह भी जान लिया कि भिक्षुओं का जीवन किस दुखमय व्यतीत होता है वे अपनी उदर पूर्ति कैसी मुश्किल से करते हैं अतः उन लोगों के सुविधा के लिये राजा ने अपने नगर के चारों दरवाजों पर दानशालाएं एवं भोजनशालाऐं खुलवादी कि कोई भी भिक्षार्थी आवे उनको भोजन वगैरह दिया करो। जब साधारण भिक्षुओं के लिए भी राजा की इतनी उदारता थी तो जैन श्रमणों के लिये तो कहना ही क्या था राजा ने नगर के सब व्यापारियों को कहला दिया कि कोई भी श्रमण किसी प्रकार के पदार्थों की इच्छा करे, तुम बड़ी खुशी से दिया करो और उसका मूल्य राज खजाने से ले जाया करो इत्यादि। यही कारण था जैन श्रमणों को प्रत्येक पदार्थ बड़ी सुलभता से मिलने लगा वह भी प्रचूरता से। फिर साधू लाने में एवं उपभोग करने में कमी क्यों रखें।

एवंस'प्रतिराजेन स्वशक्तयावुद्दिगर्भया। देशाः साधु विहाराहां अनार्या अपि चक्रिरे ॥१०२॥
राज्ञामाग्जन्मरद्धत्वं बीभत्संस्मरतानिजम्। महासत्राण्यकार्यन्त पूर्द्वारेपुचतुर्ष्वपि ॥१०३॥

स्थान में तीर्थङ्करों के निर्वाण भूमिका वर्णन हो रहा था अतः आपश्री ने फरमाया कि अष्टापद और गिरनार के अलावे बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि पूर्व देश ही है जिसमें भी चम्पापुरी पावापुरी के अलावे बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि सम्मेतशिखर है जिस भूमिपर तीर्थकरों की मोक्ष हुई है वहाँ की भूमि महान् पवित्र समझी जाति है जिस तीर्थकर गणधर मुनिराजों ने अपने अन्तिम शुभ अध्यवसायों के परमाणु वहां छोड़े थे वहां जाने वालों के अध्यवसायों को स्वच्छ बना देते है यही कारण है कि मोक्षमार्ग की साधनामें तीर्थयात्रा भी एक वतलाई है पूर्व जमाने में बड़े२ राजा महाराजा आलीशान संघ लेकर तीर्थयात्रा निमित दोदो चार-चार मास घूम घूम कर यात्रा करते थे और जिस दिन यात्रार्थ संघ प्रस्थान करते थे उस दिन से घरके झगड़ों से निर्वृति, रास्ता में कम से कम एकासनाका तप, ब्रह्मचार्यव्रत का पालन, गुरुदेवों की सेवा, स्वाधर्मी भाइयों का समागम, नये नये तीर्थों की यात्रा, एवं पूर्व संचित पापों को धो डालना, इत्यादि बहुत लाभ हैं इतना ही क्यों पर तीर्थों के संघ निकालने वाले महानुभाव संघपति पद को प्राप्त कर पूजनीक बन जाता है इत्यादि।

सूरिजी के उपदेश का प्रभाव उपस्थित जनता पर इस कदर हुआ कि उनकी अन्तरात्मा तीर्थ यात्रा करने के लिये उत्सुक बन गया उसी समय उसी सभामें बैठा हुआ वहां के राजा सहसकरण का प्रधान मंत्री पृथुसेन खड़ा होकर प्रार्थना की कि पूज्याचार्य देव के उपदेश ने हम लोगों पर खूब ही प्रभाव डाला है अतः मेरी भावना है कि मैं सम्मेतशिखरजी आदि तीर्थों के लिये संघ निकालूं अतः श्रीसंघ मुझे आज्ञा दिरावे।

सब लोग सूरिजी महाराज की ओर टकटकी लगा कर देख रहे थे सूरिजी महाराज ने फरमाया कि जब एक भाग्यशाली इस प्रकार की प्रार्थना कर रहा है तो श्रीसंघ का कर्त्तव्य है कि उन की भावना को सफल बनाने की आज्ञा देकर उनके उत्साह को बढ़ावे।

संघ अग्रेश्वरों ने कहाँ पूज्य महाराज संघ के नायक तो आपही हैं हमतो सब आपश्री की आज्ञा को पालन करने वाले हैं फिर भी इतनी अर्ज तो हम आपश्री से भी करलेते हैं कि मंत्रेश्वरजी को तो श्री संघ आज्ञा दे देगा पर आप श्रीमानों को अपने शिष्य मंडल के साथ संघ में पधारना अवश्य पड़ेगा? तब ही हम मन्त्रेश्वर को पूर्णतय आज्ञा देंगे ? सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान अपनी ओर से स्वीकृति देदी बस भगवान महावीरदेव की जयध्वनि के साथ श्रीसंघ ने मन्त्रेश्वर को आज्ञा प्रदान करदी जिसको मन्त्रेश्वर ने बड़े ही हर्ष के साथ शिरोधार्य कर अपना अहोभग्य समझा।

मन्त्रेश्वर बड़ा ही भाग्यशाली था उनकी उदारता की बरावरी कुबेर भी नही कर सकता था फिर संघपति बनने का सौभाग्य मिल गाया अतः आप का उत्साह और भी बढ़गया। राजा सहसकरण ने भी मन्त्री को कहा कि मन्त्री तुं वास्तव में पुन्यशाली है और यह महान् लाभ तेरे ही तकदीर में लिखा हुआ था संघ निकालने वाले मेरे नगर में बहुत है पर उस समय किसी से न कहा गया खैर अब संघ के लिये जो कुछ भी सामग्री चाहिये वह बिना पुछे ही ले जाया करो, मैं आजसे ही इजाजत देता हूँ मन्त्री ने राजा का हुक्म को शिरोधार्य कर लिया।

मंत्री ने नजदीक एवं दूर दूर विहार करने वाले सब साधु साध्वियों को आमन्त्रण के लिये अपने खास आदमियों को भेज दिये और आमन्त्रण पत्रिकाएं भी सब ग्राम नगर एवं प्रान्तों में भिजवादी। इधर आप सकुटुम्ब संघ सामग्री एकत्र करने में लग गये। और सब कामों को कई विभाग में विभक्त करके अलग

अनुकरण करे यह स्वभाविक बात है इस पर आर्य महागिरि को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि तुम शिष्य ममत्व के कारण ही ऐसा अनुमान करते हो या तलाश भी की है फिर भी आर्य सुहस्ति ने इस पर इतना लक्ष्य नहीं दिया। जब आर्य महागिरि ने इस बात का निर्णय किया तो निश्चय हुआ कि इस आहार उपधि में क्रिय-विक्रय का दोष अवश्य है और राजा ने भक्ति के वश हो कर ऐसा किया है बस फिर तो क्या था आर्य महागिरि ने कहा आर्य सुहस्ति में आज तुम्हारे साथ का सब संभोग × अलग कर देता हूँ इत्यादि वीरशासन में यह पहला ही अवसर था कि आचार्यों में संभोग अलग हो जाना।

आचार्य सुहस्ति ने आर्य महागिरि के शब्द सुना तो उनकी आंखें खुली और वे ध्यान पूर्वक इसबात की शोध की तो वास्तव में आर्य महागिरि का कहना सत्य निकला आर्य सुहस्ति चलकर आर्य महागिरि के पास आये और अपनी भूल के लिए क्षमा मांग कर 'मिच्छमिदुक्कडं' दिया हाँ आत्मार्थी मुमुक्षुओं का यही कर्तव्य है कि यदि प्रमाद से दोष लग भी जाय पर जब उस दोष को स्वयं जान ले तो अपनी भूल स्वीकार कर उस प्रमाद का 'मिच्छमिदुक्कडं' देना ही चाहिये।

आत्मार्थी मुमुक्षुओं के दीर्घ काल की कषाय नहीं हुआ करती है कारण पाकर नाम मात्र कषाय हो भी जाय तो उसकी सफाई कर लेने के बाद वह क्षण भर भी रह नहीं सकती है। यही हाल आर्य महागिरि जी और आर्य सुहस्ति का हुआ पर इन दोनों के शिष्य सन्तान भी तो थे और इस बात का उन पर भी तो असर हुआ था। बस उस असर के कारण ही जैन शासन में सब से पहला समुदायिक भेद का जन्म हुआ और इन दोनों की दो सम्प्रदायें हो गई और इन समुदायों का अस्तित्व वाचक देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण तक बराबर चला आया था। जिसको हम आगे के प्रकरणों में इन दोनों की सन्तान परम्परा के नामों के साथ बतलावेंगे।

आर्यमहागिरि यो तो वे युग प्रधान एवं गच्छ नायक आचार्य थे पर विशेषतय आपश्री जंगलों में रह कर कठोर तपश्चर्य एवं जिनकल्पी की तुल्यना करते थे प्रायः वे नग्नत्व रह कर दुष्कर तप किया करते थे

× पं० मुनि श्रीकल्याणविजयजी महाराज का मत है कि यह घटना राजा सम्प्रति के समय की नहीं पर राजा बिन्दुसार के समय की है कारण आपने सम्प्रति का राज्यारोहण काल वी० नि० सं० २९५ का बतलाया है पर पट्टावलियों के मत से आर्य सुहस्ती का स्वर्गवास वी० नि० सं० २९१ में ही हो चुका था यदि सम्प्रति का राज्यारोहण समय वी० नि० सं० २९५ का मानलिया जाय तो साथमें यहभी मानना पड़ेगा कि आर्य सुहस्ती और सम्राट् सम्प्रति का मिलाप ही नहीं हुआ था ? पर इतनातो आप मंजूर करते हैं कि सम्प्रति राजा को उज्जैनी में आर्य सुहस्ती ने जैन बनाया तथा आचार्य हेमचंद्रसूरि के मत से सम्राट ने भारत और भारत के बाहर अनार्य देशों में धर्मप्रचार कराया था इसमें दो बातें हो सकती हैं एक तो राजा सम्प्रति का राज्याभिषेक वी० नि० सं० २९५ पूर्व हुआ होगा या आर्य सुहस्ती का स्वर्ग वास वी० नि० सं० २९१ में न होकर वी० नि० सं० तीनसौ के बाद हुआ होगा और पन्यासजी महाराज का यह मतभेद केवल सम्प्रति के समय का ही नहीं है पर सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय से ही चला आ रहा है कारण आचार्य हेमचन्द्रसूरि के मतसे चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण समय वी० नि० सं० १५५ का है तब पन्यासजी उस समय को वी० नि० सं० २१० का बतलाते हैं इस विषय में मैंने राज प्रकरण के अन्त में अर्थात् इसी ग्रन्थ के पृष्ट ३११ पर स्पष्टीकरण कर दिया है जिसमें राज्यमार्ग आचार्य हेमचन्द्रसूरि का मत मानना मैंने ठीक समझा है कारण इस मत के पोषक कई प्रमाण डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्द बड़ोदा वाले ने प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास नामक बृहद्ग्रन्थ में दिया है जिससे आचार्य हेमचन्द्रसूरि का ही मत पुष्ट होता है हाँ इस प्रकार समय के लिए इतिहास में बहुतसी गड़बड़ है जिसकी गवेषणा करना खास जरूरी है अतः यहाँ पर निश्चयात्मक न कह कर "महाजनो येनगतःस पन्थाः" कह देना ही पर्याप्त होगा। निर्णय फिर भविष्य में।

संघपति—बड़ा ही खुशी होकर कहाँ पूज्यवर ! आप श्रीमानों की हमारे देश और विशेष हमारे पर कृपा है अब कृपाकर इस सूरिपद के महोत्सव का आदेश मुझे ही मिलना चाहिये ?

पास में बैठे हुए कई सज्जनों ने प्रार्थना की कि पूज्य गुरुदेव ! संघपतिजी ने तो संघ निकालकर बहुत लाभ उठाया है और मुनि धर्मसेन को सूरि पद देना यह भी तो मंत्रीजी को ही लाभ है तब इसका महोत्सव का लाभ तो हम लोगों को मिलना चाहिये इत्यादि बड़े ही धर्म वात्सलता के साथ उन्होंने महोत्सव किया और सूरिजी ने अपने योग्य शिष्य मुनि धर्मसेन जो मंत्री पृथुसेन का पुत्र था उसको सूरि मंत्र और वासक्षेप के विधि विधान से तीर्थराज पर आचार्य पद से विभूषित बना कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया और अपना सर्वाधिकार नूतनाचार्य को सुप्रत कर दिया . बस श्रीसंघ नूतनाचार्य यक्षदेवसूरि की अध्यक्षता में वापिस लौट कर अपने नगर को आये मंत्रेश्वर ने सकल श्रीसंघ को वस्त्रभूषण की पहरामणी और एक एक सुवर्ण मुद्रिका की प्रभावना देकर उनका सत्कार किया ।

अहा-हा-पूर्व जमाने में जनता की धर्म पर कैसी दृढ़ मजबूत श्रद्धा एवं भावना थी वे जो कुछ सार समझते थे वे धर्म को ही समझते थे और इस शुभ भावना से वे हमेशा सुख शांति एवं समृद्ध शाली रहते थे जिसका यह एक मंत्री पृथुसेन जैसे धर्मात्मा पुरुषों के संघ का प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास वे ही साधु रहे कि जिनको सूरिजी की सेवा में रहना था, सूरिजी महाराज कई अर्सा तक पूर्व बंगाल और कलिंग प्रान्त में विहार किया कलिंग की कुमार कुमारी पहाड़ियों की गुफाओं में ध्यान लगाते रहे तत्पश्चात् सम्मेतशिखर के आसपास में भी आप ने कई अर्सा तक भ्रमन कर कई मांसाहारी जीवों को प्रतिबोध, देकर जैन धर्म के उपासक बनाये आज सराक जाति जो उस तरफ विद्यमान है वह भी उन आचार्यों के बनाये हुए श्रावक ही थे हाँ चिरकाल होने से श्रावक का अपभ्रंश सराक हो गया है पर वास्तव में वे जैनधर्म पालन करने वाले श्रावक ही थे ।

पूज्य आचार्यश्री जब अपना अन्तिम समय नजदीक जाना तो पुनः तीर्थश्री सम्मेतशिखरजी पधार गये और अन्तिम सलेखना में सलग्न हो गये वहाँ भी आपश्री के दर्शनार्थी हजारों भावुक लोग आये करते थे सुरिजी महाराज २७ दिनों का अनशन और समाधिपूर्वक स्वर्ग धाम को सिद्धा गये ।

धन्य है ऐसे सूरीश्वरों को कि आपने अपने जीवन समय में जैनधर्म का खूब ही अभ्युदय किया अनेक मांसाहारियों को प्रतिबोध देकर उनकों जैनधर्म में दीक्षित किये अनेक मुमुक्षुओं को जैनधर्म की दीक्षा देकर उनका उद्धार किया अनेक मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैनधर्म को चिरस्थायी बनाया इत्यादि आपके महान् उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये ऋणी है आपके प्रति हम जितनी भक्ति भाव प्रदर्शित करे उतना ही थोड़ा है ।

जंगम कल्पतरू सम शोभित चिन्तामणि कहलाते थे ।
रत्नप्रभसूरी एकादश पट्टको आप दीपाते थे ॥
द्रुतगति से मशीन शुद्धि की आपने खूब चलाई थी ।
कठिन परिसह सहन करके शासन सेवा बजाई थी ॥

॥ इति भगवान पार्श्वनाथ के ग्यारवें पट्ट पर आचार्यरत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए ॥

आवंतिसुकुमाल ने कहा । प्रभो ! मैंने पूर्व जन्म में भी दीक्षा ली एवं पाली है और इसमव में भी अब मैंने निश्चय कर लिया है कि दीक्षा अवश्य लेनी है यदि परिसह सहन न होगा तो मैं दीक्षा लेकर अनशन कर दूंगा, इत्यादि । सूरिजी ने कहा कि, 'जहांसुखम्देवानुप्रिय । यदि इतनी मजबूती है तो शीघ्रता कीजिये क्योंकि धर्मकार्य में विलम्ब करना ठीक नहीं है । 'श्रेयसेबहुविघ्नानि'

आवन्तिसुकुमाल सूरिजी को वन्दन कर वहाँ से चलकर अपने मकान पर आया और अपनी माता और स्त्रियों से दीक्षा की अनुमति मांगी परन्तु वे कब चाहाती थी कि प्यारा आवन्तिसुकुमाल सदैव के लिये हमको छोड़कर चला जाय उन्होंने बहुत समझाया पर जिन्होंने अपने ज्ञान द्वारा संसार को एक कारागृह समझ लिया है वे माता और स्त्रियों की पास में कब तक बन्धा हुआ रह सकता है । आवन्तिसुकुमाल ने तो वेराग्य की धून में अपने शरीर पर से गृहस्थ के कपड़े उत्तार कर स्वयं साधु का वेष पहन लिया और तत्काल ही सूरिजी के पास आया अतः सूरिजी ने आवन्ति कुँवर की माता और स्त्रियों को समझा बुझा कर विधि विधान के साथ आवन्तिसुकुमाल को दीक्षा दे दी ।

मुनि आवन्तिसुकुमाल ने तो पहले ही निश्चय कर लिया था कि दीक्षा लेकर अधिक कष्ट न सहन करके मैं अनशन व्रत कर दूंगा और वैसा ही उसने किया। सूरिजी की आज्ञा लेकर जंगल में जा रहे थे परन्तु उनके सुकुमाल पैरों में कांटा कंकर लगने से रुधर की धारा बहने लग गई। पर मुनिजी उसकी परवाह न करते हुए एक जंगल में जाकर ध्यान लगा दिया एवं शिप्रा नदी के उपकण्ठे पर आत्माध्यन में मग्न हो गये

रात्रि समय एक सियालनी ( मृगली ) उस बनमें भ्रमन करती हुई रुधर की वासना से चलती चलती मुनि आवन्ति के पास आई और उसके पैरों पर लगा हुआ रक्त के कारण वह पैरों को काट काट कर खाना शुरू कर दिया क्रमशः रात्रि भरमें उस मुनि का तमाम मांस भक्षण कर गई अतः मुनि शुभध्यान में काल कर नलिनीगुल्म वैमान में उत्पन्न हो गया वहाँ देवताओं ने जल पुष्प बरसाया ।

सुबह होते ही भद्रासेठानीजो कि अपनी ३२ पुत्र बधूओं के अन्दर एक तो गर्भवती थी शेष ३१ पुत्र बधूओं को साथ लेकर अपने पुत्र आवन्तिमुनि के दर्शनार्थ सूरिजी के पास आई सूरिजी को बन्दना कर पुत्रके लिये पूछा तो सूरिजी ने कहा कि वहतो जंगल में जाकर अनशन व्रत कर लिया है अतः माता अपनी पुत्र बधूओं को लेकर वहाँ पहुची कि जहां मुनिने अनशन किया था पर वहां जाकर माता क्या देखती है कि मुनि का कलेवर पड़ा हुआ था माताने बहुत अफसोस किया बाद सूरिजी के पास आइ सूरिजी ने उनको शरीर की अनित्यता एवं संसार की असारता का उपदेश दिया कि सेठानीभद्रा अपनी ३१ पुत्र बधूओं के साथ सूरिजी के चरण कमलों से भगवती जैन दीक्षा ग्रहन कर अपना आत्म कल्याण किया ।

आवन्तिसुकुमल की एक स्त्री जो गर्भवति थी उसके पुत्र हुआ जिसका नाम 'महाकाल' रख गया था उसने अपने पिता के देहत्याग के स्थान भगवान् पारर्वनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई और अपने पिता के नाम की स्मृति के लिये उस मन्दिर का नाम 'आवन्ति पार्श्वनाथ' रख दिया था कई अर्सा तक तो चतुर्विध श्रीसंघ उस मन्दिर की सेवा पूजा उपासना कर आत्म कल्याण किया पर किसी समय वहाँ ब्राह्मणों का जौर बढ़ जाने से उन्होंने भगवान् पारर्वनाथ की मूर्ति को नीचे दबाकर ऊपर महादेव का लिंग स्थापित कर उसका नाम महाकाल महादेव रख दिया पर जब राजा विक्रमादित्य को प्रतिबोध देने वाले आचार्य सिद्धसेनदिवाकर हुए उस समय उन्होंने राजा विक्रमादित्य की आग्रह से कल्याणमन्दिर नामक स्तोत्र

इस प्रकार से साधुओं को आहार पानी वस्त्र पात्रादि प्रचूरता से मिलता देख एक समय आर्य महागिरि ने आर्य सुहस्ति से कहा कि आर्य क्या कारण है कि इस प्रकार आहार उपधि प्रचरता से मिल रही है इसमें क्रिय विक्रयादि दोष का संभव तो नहीं है न ? आर्य सुहस्ति ने कहा पूज्यवर ! इसमें दोष की क्या संभावना हो सकती है कारण यथा राजास्तथाप्रजा ? जब राजा भक्तिवान है तो प्रजा भी उसका

अयंनिजःपरोवायमित्यपेक्षाविवर्जितम् । तत्रानिवारितं प्रापुर्भोजनंभोजनेच्छवः ॥१०४॥
यदवाशिष्यतान्नादि भुक्तवत्सुबुभुक्षुषु । तद्विभज्योपाददिरे महान सनियोगिनः ॥१०५॥
को गृह्णात्यवशिष्टान्नमिति पृष्टामहीभुजा । आख्यन्महानसायुक्ताः स्वामिन्नादद्महे वयम् ॥१०६॥
आदिदेशचतान्राजा यदन्नमवशिष्यते । अकृताकारितार्थिभ्यः साधुभ्योदेयमेवतत् ॥१०७॥
द्रव्यंदास्यामिवस्तेन सनिर्वाहाभविष्यथ । नहिकेष्वपिकार्येषु सीदतिद्रव्यवाञ्जनः ॥१०८॥
तेऽवशिष्टान्नपानादि तदाद्यपितदाज्ञया । साधुभ्योददिरेतेऽपि स्वीचक्रुः शुद्धिदर्शनात् ॥१०९॥
श्रमणोपासकोराजा कान्दविकानथादिशत् । तैलाज्यदधिविक्रे तृन्वस्त्रविक्रयकानपि ॥११०॥
यत्किंचिदुपकुरुते साधूनांदेयमेवतत् । तन्मूल्यं वः प्रदास्यामि मास्मशङ्कध्वमन्यथा ॥१११॥
तेतथारेभिरेकर्तुं जातहर्षाविशेषतः । विक्रीयमाणेपण्येहि वाणिजामुत्सवोमहान् ॥११२॥
तत्तथार्यसुहस्तीतु दोषयुक्तंविदन्नपि । सेहे शिष्यानुरागेण लिप्तचित्तोवलीयसा ॥११३॥
सुहस्तिनमितश्चर्य महागिरिरिभापत । अनेपणीयंराजान्नं किमादत्से विदन्नपि ॥११४॥
सुहस्त्युवाच भगवन्यथा राजा तथा प्रजाः । राजानुवर्तनपराः पौरा विश्राणयन्त्यदः ॥११५॥
मायेयमिति कुपितो जगादार्यमहागिरीः । शान्तं पापं विसम्भोगः खल्वतः परमावेयो ॥११६॥
सामाचारीसमानैर्हि साधुभिः साधु सङ्गतम् । सामाचारी विभिन्नस्य भिन्नोऽध्वातः परंतव ॥११७॥
वेपमानो भियाबाल इव भक्तः सुहस्त्यपि । आर्य महागिरिपादान्वन्दि त्वोचे कृताञ्जलिः ॥११८॥
सापराधोऽस्मि भगवन्मिथ्यादुःकृतमस्तुमे । क्षम्यतामपराधोऽयं करिष्येनेदृशं पुनः ॥११९॥
ऊचे महागिरिरिथ दोषः को नामतेऽथवा । पुराभगवता वीरस्वामिनैतद्विभाषितम् ॥१२०॥
मदीये शिष्यसन्ताने।स्थूलभद्रमुनेः परम् । पतत्प्रकर्षासाधूनां सामाचारी भविष्यति ॥१२१॥
स्थूलभद्रमुनेः पश्चादावां तीर्थ प्रवर्तकौ । अभूवतदिदंस्वामिवचः सत्यापितंत्वया ॥१२२॥
स्थापयित्वेत्यसम्भोगि कल्पमार्य महागिरिः । जीवन्तस्वामि प्रतिमां नत्वावन्त्या विनिर्ययौ ॥१२३॥
पूर्वंहिसमवसृतौ श्रीमतश्चरमार्हतः । दशार्णभद्र सम्वोधसमये यानि जाज्ञिरे ॥१२४॥
गजेन्द्रस्याग्रपदानि समायाते दिवस्पतौ । तथैवास्थुश्च तत्रागात्तीर्थे चार्य महागिरिः ॥१२५॥
ख्याते तत्रमहातीर्थे गजेन्द्र पद नामनि । त्यक्त देहोऽनशनेन ययौ स्वर्गंमहागिरिः ॥१२६॥
पार्थिवः सम्प्रतिरपि पालयञ्श्रावकव्रतम् । पूर्णायुर्देव्य भूतिसिद्धिंक्रमेण च गमिष्यति ॥१२७॥

" परिशिष्ट पर्वस्वर्ग ११ वों "

श्रीमती ने अपने पिता को कह कर जिस वृक्ष पर से शामली भूमि पर गिरी थी उस भूमि पर तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतदेव का एक बावन देहरियों सयुक्त भव्य देवालय बना दिया जो शामली की स्मृति करवाने के कारण उस मन्दिर का नाम 'शामलीविहार' रख दिया। यह विहार एक तीर्थ स्वरूप में माने जाने लगा इत्यादि वर्णन है उस मन्दिर का समय समय जीर्णोद्धार भी हुआ शायद् आचार्य सुहस्ति के समय तक वह मन्दिर मौजूद भी होगा। और उस तीर्थ की यात्रार्थ सूरिजी भरोच पधारे हों। पर आज तो वह मन्दिर दृष्टिगोचर नहीं होता है हाँ वर्तमान में भरूच्छ नगर में एक मुनिसुव्रतदेव का प्राचीन मन्दिर विद्यमान जरूर है *शायद यह शामली विहार ही हो जिसके दर्शन इस किताब के लेखक ने वि० सं० १९७४ में किये थे।*

आचार्य महागिरि और आचार्य सुहस्तिसूरि जैन समाज में बहुत ही प्रसिद्ध है आपने जैन धर्म के प्रचार एवं उन्नति के ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये हैं कि जैन समाज उनको कभी भूल ही नहीं सकती है इतना ही क्यों पर जैन समाज आप के उपकारों से आज भी आपकी ऋणी है और भविष्य में रहेगी।

इन *युगलाचार्यों के समय पूर्व हम केवल एक गोदासगच्छ और उनकी चार शाखाएँ के दर्शन* कर आये है पर इन दोनों आचार्यों की शिष्य परम्परा से तो अनेक गच्छ कुल और शाखाएँ के दर्शन करते हैं जिसका संक्षिप्त से पाठकों को दिग्दर्शन करवा देते हैं कि भगवान् महावीर की एक ही समुदाय में अलग अलग कितने गच्छ कुल और शाखाएँ का प्रादुर्भाव होकर समुदायिक शक्ति को किस प्रकार कमजोर बना दी थी शायद् जैनधर्म उन्नति के उच्चेशिखर पर पहुँच गया था यह कलिकाल की कुटिल गति से सहन नहीं हुआ हो अतः उसके प्रकोप से ही इस प्रकार गच्छों के द्वारा जैनधर्म अनेक विभागों में विभक्त हो गया हो ?

आर्य महागिरि के मुख्य आठ शिष्य थे:—१—उत्तर २ बलिस्सह ३ धनाढ्य ४ श्रीभद्र ५ कौडिन्य ६ नाग ७ नागमित्र और ८ रोहगुप्त एवं आठ शिष्य थे जिसमें रोहगुप्त द्वारा त्रिराशिक मत की उत्पत्ति हुई जिसको हम आगे चल कर निन्हवों के अधिकार में सात निन्हवों के साथ लिखेंगे।

आर्य महागिरि के शिष्य से उत्तर बलिस्सह नामक शिष्य से उत्तरबलिस्सह नाम का गच्छ निकला और इस गच्छ की चार शाखाएँ भी हो गई १—कौशाबिका २ सौत्तिका ३ कौडुंबीनी ४ चन्दनागरी।

आर्य सुहस्तिसूरि के मुख्य बारह शिष्य हुए:—१–रोहण २–भद्रयश ३–मेघ ४–कामर्द्धि ५–सुथि ६–सुप्रतिबुद्ध ७–रक्षित ८–रोहगुप्त ९–ऋषिगुप्त १०–श्रीगुप्त ११–ब्रह्म और १२–सोम। इन बारह शिष्यों से *कितने गच्छ एवं शाखाएँ निकली। जिस गच्छ कुल और शाखाएँ के नाम इस प्रकार हैं।*

१—उद्देहगच्छ—आर्य रोहण से उद्देहगच्छ निकला इस गच्छ से छ कुल और चार शाखाएं भी निकली जो कुलों के नाम :—१ नादभूत २ सोमभून ३ उल्लगच्छ ४ हस्तलिप्त ५ नंदिम और ६ पारिहासक और चार शाखाएं जिसके नाम :—१ उडुंबरिका २ मासपूरिका ३ मतिपत्रका ४ पूर्णपत्रका।

२—*चारणगच्छ—आर्य श्रीगुप्त से चारणगच्छ निकला इससे सातकुल और चार शाखाएं* निकली जिसमें कुलों के नाम:—१वत्सलिज्ज २ प्रीतिधर्मिक ३ हालिम ४ पुष्पमित्रिक ५ मालिम ६ आर्य वेडक ७ कृष्णसेख तथा चार शाखाओं के नाम १ हारित मालागारी २ संकासीका ३ गवेधुका ४ मजनागरी

उस हालत में गच्छ का सब भार आचार्य सुहस्ति पर ही रहता था पट्टावल्यादि ग्रन्थों में भी इस बात का उल्लेख मिलता है जैसे कि:—

"तत्र श्रीआर्यमहागिरिर्जिनकल्पिक तुलनामारूढो जिनकल्पिक कल्पः" "पट्टावलि सं० पृष्ट ४५

अन्त में आर्यमहागिरि गजाग्रपद तीर्थ अर्थात् गजेन्द्र स्थान जो दशार्णपुर नगर के नजदीक था में अनशन कर समाधि पूर्व नाशवान शरीर का त्याग कर वी नि० २४९ वें वर्ष स्वर्ग में अवतीर्ण हुए। इन महापुरुष के अनशन व्रत करने के कारण वह गजाग्रपद जैनों में विशेष तीर्थभूमि कहलाने लगा और अनेक भव्यात्माओं ने वहां की यात्रा दर्शन स्पर्शन कर अपना कल्याण किया—आपके पट्टधर आर्यबलिस्सह आचार्य हुए।

आर्यमहागिरि के स्वर्गवास के पश्चात गच्छ नायक आर्य सुहस्तिसूरि हुए—आर्य सुहस्तिसूरि अपने जीवन में आप स्वयं एवं सम्राट् सम्प्रति द्वारा जैनधर्म का प्रचार भारत और भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों में भी प्रचूरता से करवाया था जिन देशों को लोग अनार्य कहते थे पर समाट् एवं सूरिजी के उद्योग से वे आर्य कहलाने लग गये जिनका विशेष वर्णन सम्राट् सम्प्रति के जीवन में लिख आये हैं।

आर्यसुहस्तिसूरि एक समय पुनः उज्जैन नगरीमें पधारे और नगरीके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये तत्पश्चात कई साधु नगर में मन्दिरों के दर्शनार्थ गये और दर्शन करने के बाद मकान की याचनार्थ वे भद्रासेठानी के मकान पर चले गये। भद्रा ने साधुओं का सत्कार किया और पधारने का कारण पूछा? साधुओंने मकान की याचना की सेठानी ने बड़े ही हर्ष के साथ अपना मकान देने को स्वीकार कर लिया अतः सूरिजी एवं सब साधु उद्यान से चल कर सेठानी भद्रा के मकान में आ गये वहाँ सूरिजी का व्याख्यान भी होता था।

एक समय सूरिजी शास्त्रों की स्वाध्याय करते थे उसमें नलिनीगुल्म नामक वैमान का अधिकार बार बार आया करता था। सेठानी भद्रा के एक पुत्र था जिसका नाम था 'आवन्तिसुकुमाल जो सुकुमारता में शालभद्र की स्पर्द्धा करता हुआ अपने सात भूमिवाले रंगमहल में ३२ सुरसुन्दरियों सदृश स्त्रियों के साथ स्वर्ग सदृश सुख भोग रहा था उसने अपने महल के अन्दर बैठा हुआ सूरिजी की स्वाध्याय सुनी और नलिनीगुल्म वैमान का नाम सुनकर उपयोग लगाया तो उसको जातिस्मरण ज्ञानोत्पन्न हो गया अतः वह अपने महल से उतर कर सूरिजी के पास आया और पूछा कि भगवान्। आप जिस नलिनीगुल्म वमान का वर्णन कर रहे हैं वह मैंने देखा है वहां के सम्पूर्ण सुखोंको मैंने अनुभव किया है और अभी भी मैं उस सुखों को चाहता हूँ कृपा कर यह बतलावें कि ऐसा कोई उपाय है कि मैं पुनः नलिनीगुल्म वैमान में जा सकूं। सूरिजी ने उत्तर दिया कि देवानुप्रिय ! नलिनीगुल्म वैमान कौनसी बड़ी बात है मैं तुमको ऐसा रास्ता बतला देता हूँ कि उस वैमान से भी अनंत गुणे सुखों के स्थान को प्राप्त कर सकते है ? कुँवर ने कहा कि वह कौनसा उपाय है ? सूरिजी ने कहा जैनदीक्षा लेकर उसकी सम्पूर्ण आराधना करने से स्वर्ग व परम्परा से मोक्ष मिल सकता है। बस। मुक्ति रमणी का रसिया आवन्तिसुकुमाल का दिल दीक्षा से ललचा गया। इस पर सूरिजी ने कहाकि कुंवरजी ! आप दीक्षा लेने को तो तैयार हुए है पर पहले आप इस बात का विचार कर लेना कि इस सुकुमाल शरीर से दीक्षा पलेगी या नही ? कारण दीक्षा में रमणता करने में आत्मिक सुख तो इतना है कि जिसका जबान द्वारा वर्णन ही नही किया जा सकता है पर शरीर के लिये दीक्षा में अनेक परिसह सहन करने पड़ते है यहां मैणके दान्तों से लोहा के चन्ना चबाने है तथा खड्गधारा पर चलना है वेळु की भांति निरस और अग्नि तुल्य स्पर्शादि अनेक कठिनाइयां है इत्यादि। सूरिजी ने आवंतिसुकुमाल की परीक्षा की।

# १२—आचार्य श्री यक्षदेवसूरि ( द्वितीय )

पट्टे द्वादश यक्षदेव पद युक् सूरेः पदं लब्धवान् ।
बंगाना मुपदेश दानकरणान्मांसादने सक्त ताम् ॥
पाने तत्परतां निवार्य सहसा यात्वोपकेशे पुरे ।
देशे वै मरु नामके नृप कुलं जैन चकार स्वयम् ॥

आचार्य यक्षदेवसूरि बड़े प्रतापशाली आचार्य हुए। आप लोहाकोट नगर के सचिव प्रभुसेन के होनहार सुपुत्र ( धर्मसेन ) थे। आपने तरुणवय में क्रोड़ रुपैयों की सम्पदा एवं सोलह स्त्रियों को त्याग कर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा ली। आपका त्याग अनुकरणीय और तपस्या अलौकिक थी। आप लघुवय से ही पूरे बुद्धिवान थे। और दीक्षा लेने के पश्चात् आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि की संरक्षता में रहकर आपने पूर्वों एवं अंगों का अध्ययन रुचिपूर्वक किया करते थे। आप अपनी विचक्षण बुद्धि के कारण अपने पाठ को शीघ्र सीख जाते थे। दूर दूर से लोग आपसे शंकाए निवृत करने के लिये आते थे। आपश्रीकी व्याख्यानशैली तुली हुई और मनोहर थी। आप का उपदेश आबाल वृद्ध सब ही को रोचक प्रतीत होता था। यही कारण था कि नर नरेन्द्र, एवं देव देवेन्द्र, और विद्याधर आदि आपका व्याख्यान सुनने को सदा लालायित रहते थे। आप की वाक्पटुता के कारण अहिंसा का प्रचार बहुत अधिक हुआ आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। आप गुणों के आगार और ज्ञान के सागर थे। आपके गुणों का वर्णन करने में बृहस्पति भी असमर्थ थे।

उपरोक्त गुणों के कारण ही आप को यकायक श्री सम्मेतशिखर तीर्थराज की पवित्र भूमिमें आचार्य पदवी मिली थी। आप आचार्यपद के छत्तीसों गुणों को प्राप्त करलिये थे तथा शुद्ध पंचाचारको पालने का प्रबल प्रयत्न करने में संलग्न रहते थे और आप सदा इस भाव का ध्यान रखते थे कि मेरे श्रमण संघ भी इस प्रकार के गुणों को सम्पदित करे। आप सब प्रन्तों में विचरण कर संघ को अमृतोपदेश का पान कराते थे। सारण वारण चोयण और पडिचोयण ऐसी चार पद्धति की शिक्षा देनें में आप अनवरत परिश्रम करते थे। आप का प्रयत्न सदैव सफलीभूत होता था। जिन प्रान्तों में आप विचरते थे यज्ञायागादि वेदान्तियों, वाममार्गियों एवं नास्तिकों को समझा समझा कर सत्पथ पर चलने का सिद्धान्त सतर्क बताते थे। जिस प्रकार भानु के उदय होने से प्रगाढ़ तिमिर का नाश हो जाता है उसी प्रकार आपके संसर्ग से कई प्राणियों का भ्रम दूर हुआ। उधर पूर्व बङ्गाल में जहाँ कि आप दूसरीवार नहीं पधारे थे बोद्धधर्म का विस्तृत प्रचार हो रहा था, अतएव जैन धर्म की रक्षा तथा प्रचार के लियेअपने सुयोग्य शिष्यों के साथ बंगाल की ओर जाना पड़ा था। उस प्रान्त में बौद्धों के साथ कई शास्त्रार्थकर आपने स्याद्वाद धर्म को विजय का टीका प्रदान किया। बोद्ध लोग जगह जगह पर पराजित हुए। पूर्व बंगाल में जो दूसरे साधु विहार करते थे उन्होंने भी आप को पूर्ण सहयोग दिया क्योंकि वे वहाँ की वस्तुस्थिति से खूब परिचित थे।

की रचना की जिसके पढ़ने से महादेव का लिंग स्वयं फाट कर आवन्तिपार्श्वनाथ की मूर्त्ति प्रकट हुई जिसका वर्णन मैं आचार्य सिद्धसेनदिवाकर के जीवन में विस्तार पूर्वक लिखूँगा।

शामली विहार—आचार्य सुहस्तिसूरि अपने शिष्य मण्डल के साथ भूभ्रमन करते हुए एक समय तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत की यात्रार्थ भरोच नगर में पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़े ही उत्साह एवं समारोह से स्वागत किया सूरिजी ने शामली विहार का दर्शन कर उसकी उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार कहा जाता है कि इसी भरोच नगर के पास सदैव बहने वाली नर्मदा नदी के कन्नारे एक वन के अन्दर सघन छाया और फल फूलों से समृद्ध वृक्ष था जिस पर एक शामली अपने बच्चों के साथ रहती थी और उस बन के फल फूलों से अपने बच्चों का पोषण करती थी वहाँ एक शिकारी खटीक भी आया करता था जो पशुओं को मार कर मांस लेजाकर उसको वेचकर अपनी आजीविका करता था जब खटीक मांस तैयार करता था तब कभी कभी वह शामली पक्षी उस पर भ्रष्टा कर दिया करती थी इससे खटीक गुस्से होकर एक बान शामली को ऐसा मारा कि वह घायल होकर भूमि पर गिर पड़ी। भाग्यवशात् उस समय एक श्रावक उस वन में आ निकला और उसने गिरी हुई शामली की त्रास को देखकर उसके पास जाकर नवकार मन्त्र सुनाया शामली के भाग्य था कि उसने मरती मरती भी नवकार मन्त्र को सुनकर श्रद्धा सम्पन्न होगई। यही कारण है कि शामली मर कर एक सिंहल देश का राजा श्रीचन्द की रानी चन्द्रावती की कुक्ष में पुत्रीपने उत्पन्न हुई जब पुत्री का जन्म हुआ तो अनेक महोत्सवों के साथ उसका नाम श्रीमती रख दिया श्रीमती अनेक लालन पालन से राजा के घर पर वृद्धि पा रही थी राजा का किसी पूर्व भव संस्कारों से उस पर इतना प्रेम था कि वह जहाँ जाता था अपनी पुत्री श्रीमती को साथ ले जाता था।

एक समय किसी कार्यवशात राजा श्रीचन्द भरोच नगर गया था वहाँ भी अपनी पुत्री श्रीमती को साथ लेगया भरोचनगर एक व्यापार का केन्द्र था राजा बाजार में गया तो किसी वस्तु खरीदने के लिये एक ऋषभदत्त श्रेष्टि की दुकान पर जा निकला उस समय ऋषभदत्त निर्वृति में वैठा नवकार मन्त्र का जाप कर रहा था जब राजकन्या श्रीमती ने सेठ के मुह से नवकार मन्त्र सुना तो उसको प्रिय लगा इतना ही क्यों पर राजकन्या उस शब्द पर इतनी मोहित होगई कि सेठजी से प्रार्थना की कि सेठजी आप क्या जाप कर रहे हो ? सेठ ने कहा कि मैं नवकार मन्त्र का जाप कर रहा हूँ जो सब शास्त्रों एवं सब धर्मों का सार है और इसके जाप से मनुष्य सर्व सम्मति एवं स्वर्ग मोक्ष प्राप्त कर सकता है इत्यादि सेठ ने नवकारमन्त्र का महात्म्य कहा जिसको सुनकर राजकन्या ने पुनः प्रार्थना की कि सेठजी यह मन्त्र आप मुझे सिखा दें तो मैं आपका बड़ा ही अहसान मानुंगी सेठजी ने कहा इसमें अहसान की क्या बात है मैं आपको मेरी स्वीधर्मी बेहन समझ कर खुशी के साथ सिखा दूँगा बस सेठजी ने दो चार वार कहा और श्रीमती ने बड़े ही प्रेम से उसे कण्ठस्थ कर लिया श्रीमती ज्यों ज्यों श्रद्धा पूर्वक निर्मल दिल से नवकार मन्त्र का जाप करने लगी त्यों त्यों उनको आनन्द आता गया आखिर उस नवकार मन्त्र के जाप से श्रीमती को जातिस्मरण ज्ञान हो आया और उसने अपना पूर्वभव देखा कि मैं इस नगर के उपवन में रहने वाली शामली पाक्षी थी खटीक के हाथों से मारी गई पर सेठजी के नवकार मन्त्र सुनाने से मैंने राजा के घर पर जन्म लिया है और आज मैं सुख साहबी भोग रही हूँ यह सब नवकार महामन्त्र का ही प्रभाव है आज मैं चाहूँ तो उस खटीक का बदला ले सकती हूँ पर ऐसा करने से और भी कर्म बन्ध का कारण होगा जीव सब कर्माधिन है।

उसने सोचा कि वास्तव में मुझे स्वप्न में जिस अग्नि से बचाया वे यही महात्मा हैं जब मैं द्रव्याग्नि से बच गया तो क्या हुआ भावाग्नि में तो मैं अभी जल ही रहा हूँ अतः मैं इन महात्माजी की शरण लेकर भावाग्नि से बच जाऊँ। इस भावना से सूरिजी से अर्ज की हे पूज्यवर ! जैसे आपश्री ने मुझे स्वप्न में द्रव्याग्नि से बचाया है वैसे ही अब भावाग्नि से बचाइये मैं मेरे पुत्र लाखण के साथ दीक्षा लेने को तैयार हूँ।

आचार्य श्री ने फरमाया कि 'जहाँ सुखम्' यदि आपकी यही भावना है तो इस संसार रूपी अग्नि से बचने के लिए अब विलम्ब नहीं करना चाहिये। इस बातों को सुनकर सभा मंत्रमुग्ध बन गई। इतना ही क्यों पर राजा और राजपुत्र के तत्कालीन वैराग्य और सूरिजी का वैराग्यमय उपदेश सुनकर कई भव्यों ने ने राजा का अनुकरण करने के लिए तैयारी कर ली। देवी सच्चायिक ने सूरिजी के पास आकर कहा क्यों पूज्यवर ! मरुधर में पधारने से आपको लाभ हुआ है न ? सूरिजी ने कहा हाँ हाँ देवीजी ! आपका कहना सत्य ही हुआ। इसी कारण तो आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि ने आपका नाम सच्चायिका रक्खा है।

शुभ मुहूर्त में राजा चेत्रसिंह ने अपने बड़े पुत्र जैतसिंह को राजरोहण कर आप अपने पुत्र लाखणश्री और नागरिक लोगों के साथ महामहोत्सव पूर्वक सूरिजी महाराज के चरण कमलों से भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली। तत्पश्चात् सूरिजी मरुधरादि अनेक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म की खूब ही उन्नति एवं प्रभावना की।

यों तो आप श्री के अनेक शिष्य थे, परन्तु लाखणमुनि की योग्यता कुछ और ही थी। ये और शिष्यों से कई बातों में बढ़े चढ़े हुए थे इनकी विशेष अभिरुचि शास्त्रों की ओर थी। सरस्वती की दया से आपने स्वल्प समय में सारे आवश्यक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। प्रथम तो आप दूसरों के अनुभवों का अध्ययन किया पर पश्चात् आपने अपने ज्ञान को भी स्थायी रूप में दूसरों के लिये रख छोड़ने के परम पवित्र उद्देश्य से आपने ग्रन्थ निर्माण करना भी आरम्भ किया। धैर्यता, गंभीरता, उदारता, समता, क्षमता, आदि गुणों के कारण आप सर्व प्रिय हो गये थे। इन गुणों के अतिरिक्त वाक्पटुता और भाषण माधुर्यता के कारण आपके व्याख्यान बहुत सरस और श्रवणप्रिय होते थे। उन दिनों में यक्षदेवसूरिजी के पास एक आप ही ऐसे सुयोग्य शिष्य थे जो आचार्य पदके लिये सर्व प्रकार से योग्य थे। इन्हीं अलौकिक और उपयोगी गुणों के कारण यक्षदेवसूरि ने उपकेश नगर में राव जैत्रसिंह के महा महोत्सव पूर्वक श्री संघ के समक्ष मंत्रों एवं वासक्षेप की विधि विधान से आपको आचार्य पद पर सुशोभित किया। आचार्य बनाकर इनका नाम ककसूरि रक्खा। यक्षदेवसूरी संघ की बागडोर अपने सुयोग्य शिष्य को सौंप सिद्धगिरि की यात्रार्थ प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँचकर परम निर्वृति का सेवन करने में आप सदा प्रयत्नशील रहते थे। अन्त में आप श्री ने अनशन व्रत धारण करलिया और २७ दिन पूर्ण समाधि एवं ध्यान में बिताये तत्पश्चात इस नाशमान शरीर का त्याग कर परम समाधि के साथ स्वर्ग सिधाये। इति

पट्ट बारहवें यक्षदेव की सेवा विबुध जन करते थे।
वादी मानी और पाखण्डी देख देख कर डरते थे॥
उद्योत किया शासन का भारी नये जैन बनाते थे।
वीर प्रभु के शुभ संदेश को घूम घूम सुनाते थे॥

इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के बारहवें पट्टपर आचार्य यक्षदेवसूरि हुए।

३—उडुवाटिकागच्छ—आर्य भद्रयश से उडुवाटिका गच्छ निकला जिसके तीनकुल और चार शाखाएं। कुलों के नामः—१ भद्रयशिका २ भद्रगुप्तिका ३ यशोभद्रिक और शाखाओं के नाम :—१ चंपिज्जिया २ मर्द्दिदज्जिया ३ काकंदिया ४ मेघहलिज्जिया ।

४—वेसवाटिकागच्छ—आर्य कामर्द्धि से वेसवाटिक नामक गच्छ पैदा हुआ जिसके चार कुल और चार शाखा—कुल १ गणिक २ मेविक ३ कामार्द्धिक ४ इन्द्रपरक तथा शाखाएं:—१ श्रावरितका राज्यपालिका ३ अन्तरिज्जिया और ४ क्षेमलिज्जया।

५—मानवगच्छ—आर्य ऋषिगुप्त काकंदिक से मानवगच्छ निकाला इस गच्छ के तीन कुल और चार शाखा—यथा कुलों केनाम :—१ऋषिगुप्तक २ ऋषिदत्तिका ३ अभिजयन्त,—शाखाएं :—१काश्यपिका २ गोतमिका ३ वाशिष्टका ४ सौराष्टिका ।

६—कोटिकगच्छ—आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध से कोटिक गच्छ निकला इसके भी चार कुल और चार शाखाएं जिसके नाम:—२ बंभलिप्त २ वस्त्रलिप्त ३ वाणिज्य ४ प्रश्नवाहन तथा चार शाखाएं जिसके नाम :—१ उच्चनागरी २ विद्याधरी ३ ३ वज्री ४ मध्यमिका ।

इस प्रकार इन आचार्यों से ही गच्छों की सृष्टि प्रारम्भ होती है आगे चलकर इन गच्छ कुल और शाखाएँ से भी प्रतिशाखाएँ रूप कई भेद हुए है उसको भी यथा स्थान लिखा जायगा। पर इसमें एक बड़ी भारी विशेषता यह थी कि इस प्रकार के गच्छ कूल शाखा प्रतिशाखाएँ निकलने पर भी जैनागमों की श्रद्धा प्ररूपना में किसी प्रकार का मतभेद नही पाया जाता है जैसे एक पिताके अनेक पुत्र होने पर ग्राम एवं व्यापार के नामसे अलग अलग विशेषणों से पहचाने जाते हों और पिता का हुकम सब एकसा एवं एकमत से मानता हो तो पिताको किसी प्रकार का रंज एवं दुःख नही होता है। हाँ समुदायक शक्ति का छिन्न भिन्न हो जाना जरूर उपेक्षणीय कहा जा सकता है इसी प्रकार इन गच्छ कुल शाखाओं को भा समझ लेना चाहिये । और न्यूनाधिक प्ररूपना करने वाले को निन्हव करार देते थे।

पूर्वोक्त दोनों आचार्यों के स्वर्गवास का समय इस प्रकार पट्टावलियों में प्रतिपादन किया है आर्य महागिरि गृहवास ३० वर्ष, सामान दीक्षा व्रत ४० वर्ष, युग प्रधान पदाधिकार ४० वर्ष, एवं १०० का सर्व आयुष्य पूर्णकर वीरात् २४५ वें वर्ष में आप श्रीमान् स्वर्ग वासी हुए।

आर्य सुहस्तिसूरि—गृहवास में ३० वर्ष, सामान दीक्षाव्रत २४ वर्ष, और युगप्रधान पदाधिकार ४६ वर्ष, एवं सर्व आयुष्य १०० वर्ष पूर्णकर वीरात् २९१ वर्ष में स्वर्ग वासी हुए।

आर्य महागिरि के पट्टपर आर्य वलिस्सह आचार्य हुए इनके वाद क्रमशः आर्य उमास्वाति तत्त्वार्थादि ५०० ग्रन्थों के निर्माण कर्ता,—आर्य श्यामाचार्य पन्नवणासूत्र की संकलना करने वाले संडिल—समुद्र माँगू—नंदिल—नागहस्ति—रेवति—सिंह—खन्दिल—हेमवान्—नागार्जुन—गोविन्द—भूतदिन—लोहित्य दुप्पगणि और देवद्धिगणि ( इस प्रकार के नाम पट्टावलियों में लिखे मिलते है ) और इन की शाखा सदैव के लिए अलग होगई जिसकों हम आगे चलकर लिखेंगे।

आर्य सुहस्ति के पट्टपर दो आचार्य हुए १—आर्य सुस्थी २—आर्य सुप्रतिबुद्ध—इनकी परम्परा भी सदैव के लिये अलग हो गई थी। जिसको हम यथा क्रम से लिखते जायँगे—

इति भगवान् महावीर के आठवें पट्टधर आर्य महागिरि और आर्य सुहस्तिसूरि :—

अन्य दर्शनियों के मन्दिर, १९०० ब्राह्मणों के घर, ३००० व्यापारियों के घर (महाजनों) के, ९०० बगेचा ७०० वापियें २०० कुंए और ५०० दानशालाएं वगैरह थे एवं नगर अच्छा आबाद था।

उस समय ब्राह्मणोंने वहाँ पर एकयज्ञ का प्रारम्भ किया और एक बकरे को होम (बली) के लिए लाये ठीक उसी समय वहाँ पर प्रियमन्याचार्य का शुभ आगमन हुआ श्रावकों के कहने पर सूरिजी ने वासक्षेप मंत्र दिया कि आओ इस वासक्षेप को बकरा पर डाल दो बस श्रावकों ने ऐसा ही किया। क्योंकि अच्चिंत्य वासक्षेप के प्रभाव से बकरा स्वयं उड़कर आकाशमें चला गया और वह स्थित रह कर कहने लगा अरे निर्दय ब्राह्मणों तुम लोग अपना स्वल्प स्वार्थ के लिए अनेक प्राणियों के प्राणों को नष्ट कर रहे हो इस समय मारने की नियत से मुझे भी लाये हो यदि मैं भी तुम्हारी तरह निर्दयपना धारण कर लूं तो जैसे हनुमान ने लंका एवं राक्षसों को विध्वंश किया था वैसे ही मैं तुम सब को यमद्वारे पहुँचा सकता हूँ। अरे मूढ़ ब्राह्मणों जिन्हों को तुम अवतार मानते हो उनके वाक्यों को तो याद करो कि उन्होंने क्या कहा है :—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषुभारता । तावद् वर्ष सहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः ॥

जिस पशु की हिंसा की जाती है उसके शरीर पर जितने रोम हैं उतने हजार वर्ष तक पशु मारने वाले को नरक में घोर दुःखों का अनुभव करना पड़ता है और भी देखिये।

योदद्यात् कांचनं मेरुः कृत्स्नां चैव वसुन्धरा । एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्य युधिष्ठिरः ॥

एक दानेश्वरी सुवर्ण का मेरुः दान करता है तब दूसरा एक मरता हुआ प्राणी को बचा कर प्राण दान करता है अतः प्राण दान के सामने सुवर्ण के मेरू का दान कोई गिनती में नहीं आ सकता है। इत्यादि

इस पर यज्ञ करने वाले एवं देखने वाले भयभ्रांत हो कर पूछने लगे कि आप कौन हैं ?

इस पर आकाश में रहा हुआ बकरा कहने लगा कि मैं अग्नि देव हूँ और यह पशु मेरा वाहान कर है अतः तुम अपना भला चाहते हो तो इस यज्ञ कर्म को छोड़ दो और इस नगर में आचार्य प्रियमन्य सूरि आये हुए हैं तुम सब लोग वहाँ जाकर धर्म का स्वरूप पूछो वे तुमको ठीक रास्ता बतलावेंगे उसी मार्ग पर चल कर शुद्ध धर्म का पालन करो कि तुम्हारा कल्याण हो। अरे विप्रों जैसे नरेन्द्रों में चक्रवर्ती, धनुर्धरों में धनुजय है इसी प्रकार सत्यवादियों में प्रियमन्य सूरि है इत्यादि।

बाद ब्राह्मण मिल कर आचार्य प्रियमन्यसूरि के पास आये और धर्म का स्वरूप सुन कर मिथ्या धर्म का त्याग कर शुद्ध जैन धर्म को स्वीकार किया और उसकी ही आराधना की। प्रियमंयसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुये आपकी संतान मध्यमिका शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार विद्याधर गोशाल से विद्याधरी शाखा निकली।

आर्य सुस्थी एवं सुप्रतिबुद्ध ने जैन धर्म की आराधन पूर्वक अन्त समय अपने पट्ट पर आर्य दिन्न को नियुक्त कर आप वीरात् ३५४ वर्षे स्वर्ग सिधाये।

---

पाठकगण ! आप को पहिले बताया जा चुका है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि से दीक्षा लेते समय विद्याधर रत्नचूड़ के पास जो नीलीपन्नामय चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति थी, वह मूर्ति दर्शनार्थ रत्नचूड़मुनि ने अपने पास रख ली थी । आगे चलकर वही रत्नचूड़ मुनि रत्नप्रभसूरि हुए । प्रस्तुतः मूर्ति रत्नप्रभसूरि के पट्टपरम्परा से अब यक्षदेवसूरि के पास मौजूद थी । जिस समय यक्षदेवसूरि प्रतिमा के सम्मुख उपासना के लिए विराजते थे । उस समय सहायिका देवी और अन्य देव-देवियाँ भी दर्शनार्थ उपस्थित हो जाते थे। एक बार सहायिका देवी ने आचार्य श्री से विनती की कि आप एक बार मरूस्थल की ओर विहार करिये । मरुस्थल में आपश्री के पधारने की नितान्त आवश्यक्ता है । आचार्यश्री ने देवी से पूछा कि देवीजी ! मरूस्थल में हमारे कई मुनि विहार कर रहे हैं । फिर मेरी ही वहां ऐसी क्या आवश्यक्ता है ? देवी ने उत्तर दिया कि पूज्यवर ! आपश्री का कार्य तो आपही कर सकेंगे दूसरा नहीं । आप श्रीमान् एक बार मेरी प्रार्थना स्वीकार कर अवश्यमेव मरुधर की ओर पधारिये । देवी का इतना आग्रह देखकर आपने मरूस्थल की ओर विहार करने का निर्णय कर लिया और थोड़े समय में मरुधर की ओर विहार भी कर दिया ।

उधर मरूस्थल प्रान्त में उपकेशपुर के महाराव क्षेत्रसिंह ( खेतसी ) को रात्रि में एक स्वप्न आया कि वह अपने लोतासा पुत्र को लिये हुए राजमहल में सोता हुआ था । यकायक चारों ओर से अग्नि की ज्वालाएँ आती हुई दिखाई दीं । राजाने स्वप्न ही में खूब प्रयत्न किया पर अग्नि से बचने का कोई उपाय नहीं मिला । अन्त में राजा ने यह भी निश्चय कर लिया कि यदि मैं स्वयं अग्नि में जलकर भस्म हो जाऊं तो कुछ परवाह नहीं; किन्तु मेरा लड़का किसी प्रकार बच जाय । राजा की ऐसी भावना होते ही एक महात्मा सामने से आता हुआ दृष्टिगोचर हुआ । उस महात्मा ने उन दोनों को जलती हुई आग से बचा लिया । इस के बाद राजा की आंख खुली तो उसको विस्मय हुआ कि यह क्या घटना घटित हुई हैं ? राजा विचारसागर में निमग्न हो गया । उसने अपने मंत्री को भी यह वर्णन कह सुनाया । रात्रि को राजा ने अपने स्वप्न की बात अपनी रानी को भी सुनाई । रानी ने उत्तर दिया कि स्वप्न की बातें असार हैं । इस पर इतना विचार करना व्यर्थ है । अतः राजा ने अपनी स्वप्न की दशा पर इतना ध्यान नहीं दिया।

आचार्यश्री यक्षदेवसूरि विहार करते हुए मरूस्थल प्रान्त में पधारे । जब यह समाचार लोगों ने सुना तो प्रान्तभर में आनन्द छा गया। ठीक है धर्मज्ञ लोगों को इससे बढ़कर हर्ष ही किस बात का होता है देवी की अत्याग्रह के कारण आप श्री क्रमशः विहार करते हुए उपकेशपुर पधारे । श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया चतुर्विध श्रीसंघ के साथ आप श्री ने भगवान् पार्श्वनाथ एवं महावीर की यात्रा की और मङ्गलाचरण के पश्चात् देशना दी । बाद भीआपका व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था आपने फरमाया कि संसार में जन्म जरा मृत्यु रूपी अलीता पलीता अर्थात् अग्नि लग रही है और उसमें अनन्त जीव जल रहे हैं । विषय और कषाय रूपी ईंधन से वह अग्नि सदैव प्रज्जल्यमान रहती है यदि कोई भव्यात्मा उस अग्नि से बचना चाहे तो उनके लिए एक उपाय जैनधर्म की आराधना करना है और बड़े-बड़े राजा महाराज एवं चक्रवर्ति भी स्वाधीन सुख-सम्पति का त्याग कर जैन-दीक्षा धारण कर इस अग्नि से छुटकारा पाया और अक्षय शान्तिप्राप्त की है यदि आप लोग भी इसी मार्ग का अनुकरण करे तो संसाररूपी दावानल से बच सकते हैं । इत्यादि । सूरिजी महाराज ने अपनी ओजस्वी गिरा द्वारा खूब समझाये ।

राव खेतसी ने ज्यों ही सूरिजी का व्याख्यान सुना त्यों ही उसको अपने स्वप्न की स्मृति हो आई।

अन्य दर्शनियों के मन्दिर, १९०० ब्राह्मणों के घर, ३००० व्यापारियों के घर (महाजनों) के, ९०० बगेचा ७०० वापियें २०० कुंए और ७०० दानशालाएं वगैरह थे एवं नगर अच्छा आबाद था।

उस समय ब्राह्मणोंने वहाँ पर एकयज्ञ का प्रारम्भ किया और एक बकरे को होम (बली) के लिए लाये ठीक उसी समय वहाँ पर प्रियमन्थाचार्य का शुभ आगमन हुआ श्रावकों के कहने पर सूरिजी ने वासक्षेप मन्त्र दिया कि जाओ इस वासक्षेप को बकरा पर डाल दो बस श्रावकों ने ऐसा ही किया। अंबिक अधिष्ठित वासक्षेप के प्रभाव से बकरा स्वयं उड़कर आकाशमें चला गया और वह स्थित रह कर कहने लगा अरे निर्दय ब्राह्मणों तुम लोग अपना स्वल्प स्वार्थ के लिए अनेक प्राणियों के प्राणों को नष्ट कर रहे हो इस समय मारने की नियत से मुझे भी लाये हो यदि मैं भी तुम्हारी तरह निर्दयपना धारण कर लूं तो जैसे हनुमान ने लंका एवं राक्षसों को विध्वंश किया था वैसे ही मैं तुम सब को यमद्वारे पहुँचा सकता हूँ। अरे मूढ़ ब्राह्मणों जिन्हों को तुम अवतार मानते हो उनके वाक्यों को तो याद करो कि उन्होंने क्या कहा है :—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषुभारता। तावद् वर्ष सहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः॥

जिस पशु की हिंसा की जाती है उसके शरीर पर जितने रोम हैं उतने हजार वर्ष तक पशु मारने वाले को नरक में घोर दुःखों का अनुभव करना पड़ता है और भी देखिये।

योदद्यात् कांचनं मेरुः कृत्स्नां चैव वसुन्धरा। एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्य युधिष्ठिरः॥

एक दानेश्वरी सुवर्ण का मेरुः दान करता है एक दूसरा एक मरता हुआ प्राणी को बचा कर प्राण दान करता है अत. प्राण दान के सामने सुवर्ण के मेरू का दान कोई गिनती में नहीं आ सकता है। इत्यादि

इस पर यज्ञ करने वाले एवं देखने वाले भयभ्रांत हो कर पूछने लगे कि आप कौन हैं ?

इस पर आकाश में रहा हुआ बकरा कहने लगा कि मैं अग्नि देव हूँ और यह पशु मेरा वहान था है अतः तुम अपना भला चाहते हो तो इस यज्ञ कर्म को छोड़ दो और इस नगर में आचार्य प्रियमन्थ सूरि आये हुए हैं तुम सब लोग वहाँ जाकर धर्म का स्वरूप पूछो वे तुमको ठीक रास्ता बतलावेंगे उसी मार्ग पर चल कर शुद्ध धर्म का पालन करो कि तुम्हारा कल्याण हो। अरे विप्रों जैसे नरेन्द्रों में चक्रवर्ती, धनुर्धरों में धनुजय है इसी प्रकार सत्यवादियों में प्रियमन्थ सूरि है इत्यादि।

बाद ब्राह्मण मिल कर आचार्य प्रियमन्थसूरि के पास आये और धर्म का स्वरूप सुन कर मिथ्या धर्म का त्याग कर शुद्ध जैन धर्म को स्वीकार किया और उसकी ही आराधना की। प्रियमंथसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य हुये आपकी संतान मध्यमिका शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार विद्याधर गोपाल से विद्याधरी शाखा निकली।

आर्य सुस्थी एवं सुप्रतिबुद्ध ने जैन धर्म की आराधन पूर्वक अन्त समय अपने पट्ट पर आर्य दिन्न को नियुक्त कर आप वीरात् ३५४ वर्ष स्वर्ग सिधाये।

---

भगवान महावीर की परम्परा के नौवें पट्टधर आचार्यसुस्थी और आचार्य प्रतिबुद्ध नामके दो आचार्य हुए आप गत प्रकरण में पढ़ आये हैं कि आचार्य सुहस्तिसूरि के मुख्य वारह शिष्यों में आप दो थे। जब तक आचार्य सुस्थीसूरि गच्छनायक रहे वहाँ तक आचार्य प्रतिबुद्धसूरि गच्छ की सार संभाल करते थे। यह पद्धति आचार्य संभूतिविजयसूरि और आचार्य भद्रबाहु स्वामिसे ही चली आरही थी। आप दोनों सूरिवर दशपूर्वधर थे, आपने जैनधर्मके प्रचार हित बहुत प्रयत्न किया और आपने अपना कार्य में अच्छी सफलता भी पाई थी तथा आपका विहार क्षेत्र भी बहुत विशाल था पर आपका विशेष भ्रमण कलिंग देशकी ओर होता था, कलिंगकी खंडगिरि और उदयगिरि पहाड़ियोंको कुमारीकुमार पर्वत कहते थे और वे जैनोंके तीर्थरूप होने से उस समय शत्रुंजय गिरनार अवतार भी कहलाते थे। जैन निर्ग्रन्थों के ध्यान करने योग्य वहाँ अनेक गुफाएं भी थीं इन आचार्यों ने भी वहाँ रह कर योगाभ्यास किया था इतना ही क्यों पर आप वहाँ रह कर सूरि मंत्र का जप भी निरंतर किया करते थे। आपने थोड़ा ही नहीं पर कोटीवार सूरि मंत्र का जाप किया था यही कारण है कि आपका गच्छ जो पहले निर्ग्रन्थगच्छ के नाम से कहा जाता था पर आपके समय वह कोटीगण के नाम से प्रसिद्ध हुआ जो कोटीवार सूरि मंत्र का जाप करने की स्मृति स्वरूप था।

जैसे आचार्य सुहस्तिसूरि के भक्त राजा सम्प्रति थे इसी प्रकार आपके भक्त महामेघवहान चक्रवर्ति महाराजा खारवेल (भिक्षुराज) थे। आपश्री ने समय समय राजा खारवेल को उपदेश दे कर जैनधर्म का प्रचार करवाया था और जैसे राजा सम्प्रति ने जैनधर्म का प्रचार के हित आर्य सुहस्तिसूरि की अध्यक्षत्व में सभा की थी इसी प्रकार राजा खारवेल ने आर्य सुस्थीसूरि के अध्यक्षत्व में कुमार कुमारी पर्वत पर एक विराट सभा की थी और उसमें जैनधर्म का प्रचार के अलावा जैनागमा (दृष्टवादादि) जो कई विस्मृत हो गये थे, उनको आचार्य सुहस्थी सूरि के नायकता में ठीक व्यवस्था करवाकर ताड़पत्रादि पर लिपिबद्ध करवाये।

मगध का आठवां राजानन्द ने कलिंग पर आक्रमण कर वहाँ के रत्नादि के साथ कलिंग जिनमूर्ति ले गया था, राजा खारवेल ने मगध पर चढ़ाई कर अपना बदला लिया और वह मूर्ति पुनः कलिंग में ले आया और आर्य सुस्थीसूरि के कर कमलों से उसी मन्दिर में पुनः प्रतिष्ठा करवाई। इन सब बातों का उल्लेख हेमवन्त स्थविरावलि और हस्ती गुफा के शिलालेख में मिलते हैं। जिसको मैं आगे के पृष्ठ में उद्धृत करूँगा।

आर्य सुस्थी एवं सुप्रतिबुद्ध बड़े ही प्रभावशाली हुए आपके समय जैनधर्म एक राष्ट्रीय धर्म बन चुका था, आपके कर कमलोंसे अनेकों मन्दिर मूर्तियोंकी प्रतिष्टाएं एवं मुमुक्षुओं की दीक्षा भी हुई।

आर्य सुस्थीसूरि की समुदाय कोटीक गच्छ के नाम से कहलाई जाती थी उस कोटीक गच्छ से चार शाखाएँ निकली। १—उच्चनागोरी २—विद्यधरी ३—वज्री और ४—मध्यमिका और इस गच्छ से चार कुल भी निकले थे जैसे १—वंभलिप्त २—वस्त्रलिप्त ४—वाणज्य ४—प्रश्नवाहनक यों तो इन युगलाचार्यों ने अनेकों को दीक्षा दे अपने शिष्य बनाये थे पर उनमें पांच स्थविर मुख्य थे। १—आर्य दिन्न २—आर्यप्रियग्रन्थ ३—आर्य विद्याधरगोपाल ४—आर्य ऋषिदत्त और ५ आर्य अर्हदत्त।

इन पांचों स्थविरों में एक प्रियग्रन्थ का संक्षिप्त उल्लेख ग्रन्थकारों ने इस प्रकार किया है कि मरूधर प्राँत में उस समय हर्षपुर नाम का नगर जो अजयमेरू के नजदीक था (शायद यह मारवाड़का वर्तमान हरसाल ग्राम ही हो) उस नगर में शुभदपाल नाम का राजा राज करता था नगर में ३०० जैन मन्दिर, ४००

देश में जैनियों की पूर्ण जाहोजलाली थी। इतना ही नहीं पर विक्रम की सोलहवीं शताब्दि में सूर्यवंशी महाराजा प्रतापरुद्र वहाँ का जैनी राजा था। उस समय तक तो कलिंग देश में जैन धर्म का अस्तित्व थोड़ा बहुत प्रमाण में अवश्य ही रहा था। पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वथा जैनधर्म यकायक कलिंग में से कैसे चला गया। इस पर विद्वानों का मत है कि जैनों पर किसी विधर्मी राजसत्ता पूर्वक निर्दयता से ऐसे अत्याचार हुए होंगे कि उन्हें कलिंग देश का परित्यागन करना पड़ा। यदि इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं आती तो कदापि जैनी इस देश को सर्वथा प्रकार से नहीं छोड़ते।

केवल इसी देश में जैनों पर विधर्मियों के अत्याचार हुए हो ऐसी बात नहीं है, पर विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में भी जैनों को इसी प्रकार की मुसीबत से सामना करना पड़ा था क्योंकि विधर्मी नरेशों से जैनियों की उन्नति देखी नहीं जाती थी। वे तो जैनियों को दुःख पहुँचाना अपना धर्म समझते थे। कई जैन साधु शूली पर लटका दिये गये। वे जीते जी कोल्हू में पेरे गये। उन्हें जमीन में आधा गाड़ कर काग और कुत्तों से नुचवाया गया इसके कई प्रमाण भी उपस्थित हैं। "हालस्य महात्म्य" नामक ग्रन्थ, जो तामिली भाषा में है, उसके ६८ वें प्रकरण में इन अत्याचारों का रोमाँचकारी विस्तृत वर्णन मौजूद है, किन्तु जैनियों ने अपने राजत्व में किसी विधर्मी को नहीं सताया था यही जैनियों की विशेषता है। यह कम गौरव की बात नहीं है कि जैनी अपने शत्रु से बदला लेने का विचार तक भी नहीं करते थे। यदि जैनियों की नीति कुटल होती तो क्या वे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य या सम्प्रति एवं कुमारपाला नरेश के राज्य में विधर्मियों को सताने से चूकते, कदापि नहीं। पर जैनी किसी को सताना तो दूर रहा, दूसरे जीव के प्रति कभी असद् विचार तक भी नहीं करते हैं।

जैन शास्त्रकारों का यह खास मन्तव्य है कि अपने प्रकाश द्वारा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना तथा सदुपदेश द्वारा भूले भटकों को राह बताना और सबके प्रति मैत्रीभाव रखना चाहिए यह जैनियों का साधारण आचार है। जो थोड़ा भी जैनधर्म से परिचित होगा उपरोक्त बात का अवश्यमेव समर्थन करेगा। परन्तु विधर्मियों ने अपनी सत्ता के मद में जैनियों पर ऐसे-ऐसे कष्टप्रद अत्याचार किये कि जिनका वर्णन याद आते ही रोमांच खड़े हो जाते हैं तथा सुनने वालों का हृदय थर-थर काँपने लग जाता है। जिस मात्रा में जैनियों में दया का सचार था विधर्मी उसी मात्रा में निर्दयता का वर्ताव कर जैनियों को इस दया के लिए चिढ़ाते थे। पर जैनी इस भयावनी अवस्था में भी अपने न्यायपथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए। यही कारण है कि आज तक जैनी अपने पैरों पर खड़े हैं और न्याय पथ पर पूर्णरूप से आरूढ़ हैं। धर्म का प्रेम जैनियों की रग रग मे रमा हुआ है जैनों के स्याद्वाद सिद्धान्तों का आज भी सारा संसार में लोहा माना जाता है। स्याद्वाद के प्रचंड शस्त्र के सामने मिथ्यात्वियों का कुतर्क टिक नहीं सकता। स्याद्वाद की नीतिद्वारा आज भी जैनी विधर्मियों का मुँह बन्द कर सकने में समर्थ हैं। कलिंग देश में जैनियों का नाम निशान तक जो आज नहीं मिलता है इसका वास्तविक कारण यही है कि विधर्मियों ने जैनियों के साथ धर्म द्वेष के कारण अन्यायपूर्वक अत्याचारों से महान् दुखी किये कि उन लोगों को कलिंग का त्याग करना पड़ा अतः कलिंग प्रदेश जैनियों से निर्वासित हो गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। और यह केवल मेरी ही मान्यता नहीं है पर आधुनिक संशोधकों एवं इतिहासकारों का भी यही मत है कि विधर्मियों द्वारा जैनों पर बहुत जुल्म गुजरा गया था इत्यादि।

# कलिंग देश का इतिहास

मगध देश का निकटवर्ती प्रदेश कलिंग भी जैनों का एक बड़ा केन्द्र था। इस देश का इतिहास बहुत प्राचीन है। भगवान आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी ने अपने १०० पुत्रों को जब अपना राज्य बाँटा था तो कलिंग नामक एक पुत्र के हिस्से में यह प्रदेश आया था। उसके नाम के पीछे यह प्रदेश भी कलिंग कहलाने लगा। चिरकाल तक इस प्रदेश का यही नाम चलता रहा। वेद, स्मृति, महाभारत, रामायण और पुराणों में भी इस देश का जहाँ तहाँ कलिंग नाम से ही उल्लेख हुआ है। बौद्ध ग्रन्थों में भी इस प्रदेश का नाम कलिंग ही लिखा मिलता है। भगवान महावीर स्वामी के शासन तक इसका नाम कलिंग ही कहा जाता था। श्रीपन्नवणासूत्र में जहाँ साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों का उल्लेख है उन में से एक का नाम कलिंग लिखा हुआ है। यथा—

"राजगिहमगह चंपाअंगा, तह तामलितिवंगाय। कंचणपुरंकलिंगा वणारसी चैव कासीय।"

उस समय कलिंग की राजधानी कांचनपुर थी। इस देश पर कई राजाओं का अधिकार रहा है। तथा कई महर्षियों ने इस पवित्र भूमि पर विहार किया है तेवीसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभु ने भी अपने चरणकमलों से इस प्रदेश को पावन किया था। तत्पश्चात् आप के शिष्य समुदाय का इस प्रान्त में विशेष विचरण हुआ था। महावीर प्रभु ने पधार कर इस प्रान्त को पवित्र किया था। इस प्रान्त में कुमारगिरि ( उदयगिरि ) तथा कुमारी ( खण्डगिरि ) नामक दो पहाड़ियाँ हैं जिन पर कई जैनमंदिर तथा श्रमण समाज के लिए कन्दराऐं हैं इस कारण से यह देश जैनियों का परम पवित्र तीर्थ रहा है।

कलिंग, अंग, वंग और मगध में ये दोनों पहाड़ियाँ शत्रुंजय गिरनार अवतार नाम से भी प्रसिद्ध थीं। अतएव इस तीर्थ पर दूर दूर से कई संघ यात्रा करने के हित आया करते थे। ब्राह्मणों ने अपने ग्रंथों में कलिंग वासियों को 'वेदधर्मविनाशक' बतलाया है। इससे मालूम होता है कि कलिंग निवासी सब एक ही धर्म के उपासक थे। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वे सब के सब जैनी थे। ब्राह्मण लोग कहीं कहीं अपने ग्रन्थों में बौद्धों को भी 'वेदधर्म विनाशक' की उपाधि से उल्लेख किया है पर कलिंग में पहले बौद्धों का नाम-निशान तक भी नहीं था। महाराजा अशोक ने कलिंग देश पर आक्रमण किया था उसी के बाद कलिंग देश में बौद्धों का प्रवेश हुआ था। ब्राह्मणों ने अपने आदित्य पुराण एवं पद्मपुराण में यहां तक लिख दिया है कि कलिंग देश अनार्य लोगों के रहने की भूमि है। जो ब्राह्मण कलिंग में प्रवेश करेगा वह पतित समझा जावेगा। यथा—

"गत्वैतान्कामतोदेशात्कलिंङ्गाश्च पतेत् द्विजः।"

यह भी बहुत सम्भव है कि शायद ब्राह्मणों ने कलिंग देश में पहुँच कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो। इसी हेतु उन्होंने ब्राह्मणों को कलिंग में जाने तक को भी निषेध कर दिया हो!

उस समय एक बार जैनों का कलिंग देश में पूरा साम्राज्य होगया पर आज वहाँ जैनियों की विशेष बसती नहीं है। इसका कारण विधर्म्मियों का अत्याचार के सिवाय और क्या हो सकता है। तथापि दूरदर्शी जैनियों ने अपने धर्म की स्मृति के चिन्हरूप कलिंग देश में कुछ न कुछ तो कार्य अवश्य किया। वे सर्वथा वंचित नहीं रहे। इतिहास साफ़-साफ़ बतला रहा है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो कलिंग

कनकपुर में राज्याभिषेक हुआ। शोभनराय जैनधर्म का उपासक था। वह कलिंग देश में तीर्थ स्वरूप कुमार पर्वत पर यात्रा कर के उत्कृष्ट श्रावक बन गया।

शोभनराय के वंश में पाँचवी पीढ़ी में चंडराय नामक राजा हुआ जो महावीर के निर्वाण से १४९ वर्ष बीतने पर कलिंग के राज्यासन पर बैठा था।

चंडराय के समय में पाटलीपुत्र नगर में आठवाँ नंद राजा राज्य करता था, जो अभिमानी और अति लोभी था। वह कलिंग देश को नष्ट भ्रष्ट करके तीर्थ स्वरूप कुमारगिरी पर राजा श्रेणिक के बनवाये हुये जिनमन्दिरों को तोड़ उसमें रखी हुई ऋषभदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा को उठा कर पाटलीपुत्र में ले आया। इसके बाद शोभनराय की आठवीं पीढ़ी में चेमराज नामक कलिंग का राजा हुआ। वीर निर्वाण के बाद जब २२७ वर्ष पूरे हुए तब कलिंग के राज्यासन पर चेमराज का अभिषेक हुआ और निर्वाण से २३९ वर्ष बीतने पर मगधाधिपति अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की२ और वहां के राजा चेमराज१ को अपनी आज्ञा मनाकर वहां पर उसने अपना गुप्त संवत्सर चलाया।

महावीर निर्वाण से २७५ वर्ष के बाद चेमराज का पुत्र वुड्ढराज३ कलिंगदेश का राजा हुआ। वुड्ढराज जैनधर्म का परम उपासक था। उसने कुमारगिरि और कुमारीगिरि नाम के दो पर्वतों पर श्रमण और निर्ग्रन्थियों के चातुर्मास्य करने योग्य ११ गुफाएं खुदवाई थीं।

भगवान् महावीर के निर्वाण को जब ३०० वर्ष पूरे हुए तब वुड्ढराय का पुत्र भिक्खुराय कलिंग का राजा हुआ। भिक्खुराय के नीचे लिखे अनुसार तीन नाम कहे जाते हैं:—

निर्ग्रन्थ-भिक्षुओं की भक्ति करनेवाला होने से उसका एक नाम 'भिक्खुराय' था। पूर्व परंपरागत 'महामेघ' नामक हाथी उसका वाहन होने से उसका दूसरानाम 'महामेघवाहन' था। उसकी राजधानी समुद्र के किनारे पर होने से उसका तीसरा नाम 'खारवेलाधिपति' था।

भिक्षुराज अतिशय पराक्रमी और अपनी हाथी आदि की सेना से पृथ्वीमंडल का विजेता था।

---

पन्यासजी ने मूल पट्टावली का अनुवाद के साथ अपनी ओर से कुछ नोट भी दिये हैं वे भी यहां पर ज्यों के त्यों दे दिये जाते हैं कि आपके भाव ज्यों के त्यों जान लिये जांय।

(१) हाथीगुंफा वाले खारवेल के शिलालेख में भी पंक्ति १६ वीं में 'खेमराजा' इस प्रकार खारवेल के पूर्वज के तौर से क्षेमराज का नामोल्लेख किया है।

(२) कलिंग पर चढ़ाई करने का जिक्र अशोक के शिलालेख में भी है। पर वहां पर अशोक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष के बाद कलिंग विजय का उल्लेख है। राज्य प्राप्ति के बाद ३ अथवा ४ वर्ष पीछे अशोक का राज्याभिषेक हुआ मान लेने पर कलिंग का युद्ध अशोक के राज्य के १२-१३ वर्ष में आयगा। थेरावली में अशोक की राज्य प्राप्ति निर्वाण से २०९ वर्ष के बाद लिखी है अर्थात् २१० में इसे राज्याधिकार मिला और २३९ में उसने कलिंग विजय किया। इस हिसाब से कलिंग विजय वाली घटना अशोक के राज्य के ३० वें वर्ष के अंत में आती है, जो कि शिलालेख से मेल नहीं खाती।

(क) अशोक के गुप्त संवत्सर चलाने की बात ठीक नहीं जँचती। मालूम होता है कि थेरावली लेखक ने अपने समय में प्रचलित गुप्त राजाओं के चलाये गुप्त संवत् को अशोक का चलाया हुआ मान लेने का धोखा खाया है। इसी उल्लेख से इसकी अति प्राचीनता के सम्बन्ध में भी शंका उत्पन्न होती है।

(३) वुड्ढराज का नाम भी खारवेल के हाथी गुंफा वाले लेख में 'वुड्ढराजा च' इस प्रकार उल्लेख है।

# कलिंग देश का इतिहास

मगध देश का निकटवर्ती प्रदेश कलिंग भी जैनों का एक बड़ा केन्द्र था। इस देश का इतिहास बहुत प्राचीन है। भगवान आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी ने अपने १०० पुत्रों को जब अपना राज्य बाँटा था तो कलिंग नामक एक पुत्र के हिस्से में यह प्रदेश आया था। उसके नाम के पीछे यह प्रदेश भी कलिंग कहलाने लगा। चिरकाल तक इस प्रदेश का यही नाम चलता रहा। वेद, स्मृति, महाभारत, रामायण और पुराणों में भी इस देश का जहाँ तहाँ कलिंग नाम से ही उल्लेख हुआ है। बौद्ध ग्रन्थों में भी इस प्रदेश का नाम कलिंग ही लिखा मिलता है। भगवान महावीर स्वामी के शासन तक इसका नाम कलिंग ही कहा जाता था। श्रीपन्नवणासूत्र में जहाँ साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों का उल्लेख है उन में से एक का नाम कलिंग लिखा हुआ है। यथा—

"रायगिहमगह चंपाअंगा, तह तामलितिवंगाय। कंचणपुरंकलिंगा वणारसी चैव कासीय।"

उस समय कलिंग की राजधानी कांचनपुर थी। इस देश पर कई राजाओं का अधिकार रहा है। तथा कई महर्षियों ने इस पवित्र भूमि पर विहार किया है तेवीसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभु ने भी अपने चरणकमलों से इस प्रदेश को पावन किया था। तत्पश्चात् आप के शिष्य समुदाय का इस प्रान्त में विशेष विचरण हुआ था। महावीर प्रभु ने पधार कर इस प्रान्त को पवित्र किया था। इस प्रान्त में कुमारगिरि ( उदयगिरि ) तथा कुमारी ( खण्डगिरि ) नामक दो पहाड़ियाँ हैं जिन पर कई जैनमंदिर तथा श्रमण समाज के लिए कन्दराऐं हैं इस कारण से यह देश जैनियों का परम पवित्र तीर्थ रहा है।

कलिंग, अंग, वंग और मगध में ये दोनों पहाड़ियाँ शत्रुंजय गिरनार अवतार नाम से भी प्रसिद्ध थीं। अतएव इस तीर्थ पर दूर दूर से कई संघ यात्रा करने के हित आया करते थे। ब्राह्मणों ने अपने ग्रंथों में कलिंग वासियों को 'वेदधर्मविनाशक' बतलाया है। इससे मालूम होता है कि कलिंग निवासी सब एक ही धर्म के उपासक थे। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वे सब के सब जैनी थे। ब्राह्मण लोग कहीं कहीं अपने ग्रन्थों में बौद्धों को भी 'वेदधर्म विनाशक' की उपाधि से उल्लेख किया है पर कलिंग में पहले बौद्धों का नाम-निशान तक भी नहीं था। महाराजा अशोक ने कलिंग देश पर आक्रमण किया था उसी के बाद कलिंग देश में बौद्धों का प्रवेश हुआ था। ब्राह्मणों ने अपने आदित्य पुरांण एवं पद्मपुराण में यहां तक लिख दिया है कि कलिंग देश अनार्य लोगों के रहने की भूमि है। जो ब्राह्मण कलिंग में प्रवेश करेगा वह पतित समझा जावेगा। यथा—

"गत्वैतान्कामतोदेशात्कलिङ्गांश्च पतेत् द्विजः।"

यह भी बहुत सम्भव है कि शायद ब्राह्मणों ने कलिंग देश में पहुँच कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो। इसी हेतु उन्होंने ब्राह्मणों को कलिंग में जाने तक को भी निषेध कर दिया हो!

उस समय एक बार जैनों का कलिंग देश में पूरा साम्राज्य होगया पर आज वहाँ जैनियों की विशेष बसती नहीं है। इसका कारण विधर्म्मियों का अत्याचार के सिवाय और क्या हो सकता है। तथापि दूरदर्शी जैनियों ने अपने धर्म की स्मृति के चिन्हरूप कलिंग देश में कुछ न कुछ तो कार्य अवश्य किया। वे सर्वथा वंचित नहीं रहे। इतिहास साफ-साफ बतला रहा है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो कलिंग

कनकपुर में राज्याभिषेक हुआ। शोभनराय जैनधर्म का उपासक था। वह कलिंग देश में तीर्थ स्वरूप कुमार पर्वत पर यात्रा कर के उत्कृष्ट श्रावक बन गया।

शोभनराय के वंश में पाँचवी पीढ़ी में चंडराय नामक राजा हुआ जो महावीर के निर्वाण से १४९ वर्ष बीतने पर कलिंग के राज्यासन पर बैठा था।

चंडराय के समय में पाटलीपुत्र नगर में आठवाँ नंद राजा राज्य करता था, जो अभिमानी और अति लोभी था। वह कलिंग देश को नष्ट भ्रष्ट करके तीर्थ स्वरूप कुमारगिरी पर राजा श्रेणिक के बनवाये हुये जिनमन्दिरों को तोड़ उसमें रखी हुई ऋषभदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा को उठा कर पाटलीपुत्र में ले आया। इसके बाद शोभनराय की आठवीं पीढ़ी में क्षेमराज नामक कलिंग का राजा हुआ। वीर निर्वाण के बाद जब २२७ वर्ष पूरे हुए तब कलिंग के राज्यासन पर क्षेमराज का अभिषेक हुआ और निर्वाण से २३९ वर्ष बीतने पर मगधाधिपति अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की१ और वहां के राजा क्षेमराज२ को अपनी आज्ञा मनाकर वहां पर उसने अपना गुप्त संवत्सर चलाया।

महावीर निर्वाण से २७५ वर्ष के बाद क्षेमराज का पुत्र बुद्धराज३ कलिंगदेश का राजा हुआ। बुद्धराज जैनधर्म का परम उपासक था। उसने कुमारगिरि और कुमारीगिरि नाम के दो पर्वतों पर श्रमण और निर्ग्रन्थियों के चातुर्मास्य करने योग्य ११ गुफाएं खुदवाई थीं।

भगवान् महावीर के निर्वाण को जब ३०० वर्ष पूरे हुए तब बुद्दराय का पुत्र भिक्खुराय कलिंग का राजा हुआ। भिक्खुराय के नीचे लिखे अनुसार तीन नाम कहे जाते हैं:—

निर्ग्रन्थ-भिक्षुओं की भक्ति करनेवाला होने से उसका एक नाम 'भिक्खुराय' था। पूर्व परंपरागत 'महामेघ' नामक हाथी उसका वाहन होने से उसका दूसरानाम 'महामेघवाहन' था। उसकी राजधानी समुद्र के किनारे पर होने से उसका तीसरा नाम 'खारवेलाधिपति' था।

भिक्षुराज अतिशय पराक्रमी और अपनी हाथी आदि की सेना से पृथ्वीमंडल का विजेता था।

---

पन्यासजी ने मूल पट्टावली का अनुवाद के साथ अपनी ओर से कुछ नोट भी दिये हैं वे भी यहां पर ज्यों के त्यों दे दिये जाते हैं कि पाठक भाव ज्यों के त्यों जान लिये जांय।

(१) हाथीगुंफा वाले खारवेल के शिलालेख में भी पंक्ति १६ वी में 'खेमराजा' इस प्रकार खारवेल के पूर्वज के तौर से क्षेमराज का नामोल्लेख किया है।

(२) कलिंग पर चढ़ाई करने का जिक्र अशोक के शिलालेख में भी है। पर वहां पर अशोक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष के बाद कलिंग विजय का उल्लेख है। राज्य प्राप्ति के बाद ३ अथवा ४ वर्ष पीछे अशोक का राज्याभिषेक हुआ मान लेने पर कलिंग का युद्ध अशोक के राज्य के १२-१३ वर्ष में आयगा। थेरावली में अशोक की राज्य प्राप्ति निर्वाण से २०९ वर्ष के बाद लिखी है अर्थात २१० में इसे राज्याधिकार मिला और २३९ में उसने कलिंग विजय किया। इस हिसाब से कलिंग विजय वाली घटना अशोक के राज्य के ३० वें वर्ष के अंत मे आती है, जो कि शिलालेख से मेल नहीं खाती।

(क) अशोक के गुप्त संवत्सर चलाने की बात ठीक नहीं जँचती। मालूम होता है कि थेरावली लेखक ने अपने समय में प्रचलित गुप्त राजाओं के चलाये गुप्त संवत् को अशोक का चलाया हुआ मान लेने का धोखा खाया है। इसी उल्लेख से इसकी अति प्राचीनता के सम्बन्ध में भी शंका उत्पन्न होती है।

(३) बुद्दराज का नाम भी खारवेल के हाथी गुंफा वाले लेख में 'वुदूराजा' इस प्रकार उल्लेख है।

जैनाचार्यों ने अन्यान्य विषयों पर बड़े बड़े ग्रन्थों का निर्माण किया पर जिस कलिंग के साथ चिरकाल तक जैनों का घनिष्ठ संबंध रहा था उसके लिए शायद ही किसी ने दो चार पंक्ति लिखी हो। क्या श्वेताम्बर और क्या दिगम्बर आज इस बात के लिए दोनों ने बिल्कुल मौनव्रत का ही सेवन किया है। यदि किसी ने थोड़ा बहुत लिखा भी होगा तो शायद वे मुसलमानों के अत्याचारों से बच नहीं सके होंगे।

फिर भी बड़ी खुशी की बात है कि थोड़े अर्से पूर्व पुराने भंडार की संभाल करते समय एक 'हेमवंत पट्टावली' ( थेरावली ) उपलब्ध हुई है और उसमें कलिंग के इतिहास की थोड़ी बहुत सामग्री है।

हेमवंतपट्टावली के निर्माण कर्त्ता आचार्य हेमवंतसूरि जो प्रसिद्ध अनुयोगधार एवं माथुरी वाचना के नायक आचार्य स्कंदिलसूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। आपका समय विक्रम की चौथी शताब्दी का है। नंदीसूत्र में भी आपके नाम का उल्लेख पाया जाता है। जैन पट्टावलियों में सब से प्राचीन एवं महत्त्व वाली यह हेमवंत पट्टावली है। इसमें वर्णित घटनाएं प्रायः ऐतिहासिक घटना कही जा सकती हैं।

प्रस्तुत पट्टावली पद्य एवं गद्य में लिखी गई है। इस पट्टावली का सारांश गुर्जरगिरा में पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वाले ने अपनी अंचलगच्छ बड़ी पट्टावली में तथा इतिहासवेत्ता पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने 'वीर निर्वाण सम्वत् और जैनकालगणना' नामक पुस्तक के परिशिष्ट के रूप में उद्धृत किया है और वह हिन्दी भाषा में होने से मैं पाठकों की जानकारी के लिये केवल कलिंग के साथ संबंध रखने वाली घटना को ही यहाँ उद्धृत कर देता हूँ।

पाटलिपुत्री के मौर्यराज्य-शाखा को पुष्यमित्र तक लिखने के बाद थेरावली कारने कलिंगदेश के राजवंश का वर्णन दिया है। हाथीगुंफा के लेख से कलिंगचक्रवर्ती महाराजा खारवेल का तो थोड़ा बहुत परिचय विद्वानों को अवश्य है, पर उसके वंश और उसकी संतति के विषय में अभी तक कुछभी प्रमाणिक निर्णय नहीं हुआ था। हाथीगुंफा के शिलालेख के 'चेतवसवधनस' इस उल्लेख से कई कई विद्वान खारवेल को 'चैत्रवंशीय' समझते हैं, तब कोई उसे 'चेदिवंश' का राजा कहते थे। हमारे प्रस्तुत थेरावलीकारने इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। थेरावली के लेखानुसार खारवेल न तो चैत्रवंशी था और न चेदि वंशी पर वह तो चेटकवंशीय था। क्योंकि वह वैशाली के प्रसिद्ध राजा चेटक के पुत्र कलिंगराज शोभनराय की वंश परंपरा में जन्मा था।

अजातशत्रु के साथ की लड़ाई में चेटक राजा के मरने पर उसका पुत्र शोभनराय वहाँ से भाग कर किस प्रकार कलिंग राज के पास गया और कलिंग का राजा हुआ इत्यादि वृतांत थेरावली के शब्दों में ही नीचे लिख देते हैं। विद्वान लोग देखेंगे कि कैसी अपूर्व घटना है।

"वैशाली का राजाचेटक तीर्थंकरमहावीर का उत्कृष्ट श्रमणोपासक था। चंपानगरी का अधिपति राजा कोणिक, जो कि चेटक का भानजा था, ( अन्य श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के ग्रन्थों में कोणिक को चेटक का दोहिता लिखा है ) वैशाली पर चढ़ आया और उसने लड़ाई में हरा दिया। लड़ाई में हराने के बाद अन्न जल का त्याग कर राजा चेटक स्वर्गवासी हुआ। चेटक के शोभनराय नाम का एक पुत्र वहाँ से ( वैशाली नगरी से ) भाग कर अपने श्वसुर कलिंगाधिपति सुलोचन की शरण में गया। सुलोचन के पुत्र नहीं था इसलिये अपने दामाद शोभनराय को कलिंग देश का राज्यासन देकर वह परलोक वासी हुआ।

भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद १८ वर्ष बीतने पर शोभनराय का कलिंग की राजधानी

थोड़ा ज्ञान एकत्र कर भोजपत्र, ताड़पत्र, और वल्कल पर अक्षरों से लिपि बद्ध करके भिक्खुराय का मनोरथ पूर्ण किया और इस प्रकार वे आर्य सुधर्म रचित द्वादशांगी के संरक्षक हुए।

१—इसी प्रसंग पर श्यामाचार्य ने निर्ग्रंथ साधु साध्वियों के सुखबोधार्थ 'पन्नवणासूत्र' की रचना की।

२—स्थविर श्रीउमास्वातिजी ने इसी उद्देश्य से निर्युक्ति सहित 'तत्त्वार्थ सूत्र' की रचना की।

३—स्थविर आर्य बलिसह ने विद्याप्रवाद पूर्व में से 'अंगविद्या' आदि शास्त्रों की रचना की।

इस प्रकार जिन शासन की उन्नति करने वाला भिक्खुराय अनेक विधि धर्म कार्य करके महावीर निर्वाण से ३३० वर्षों के बाद स्वर्गवासी हुआ। भिक्खुराय के बाद उसका पुत्र वक्रराय कलिंग का अधिपति हुआ। वक्रराय भी जैनधर्म का अनुयायी और उन्नति करने वाला था। धर्माराधन और समाधि के साथ यह वीर निर्वाण से ३६२ वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ। वक्रराय के बाद उसका पुत्र 'विदुहराय' कलिंग देश का अधिपति हुआ। विदुहराय ने भी एकाग्र चित्त से जैनधर्म की आराधना की। निर्ग्रंथ समूह से प्रशंसित यह राजा महावीर निर्वाण से ३९५ वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ।"

"वीर निर्वाण संवत् और जैन काल गणना पृष्ठ १६१-७५"

उपरोक्त पट्टावली में कलिंग का राजवंश राजा चेटक के पुत्र शोभनराय से आरम्भ होता है जो कलिंग पति सुलोचन ने अपने दमाद को कलिंग पति बनाया था उस शोभनराय के पंचवी पर चण्डराय आगे खेमराज बुद्धराज और भिक्षुराज (खारवेल) तथा इसके पुत्र विक्रराय बदुहराय का और मगद का नन्दराजा कलिंग से जिनमूर्ति ले जाना और पुष्पमित्र के समय खारवेल वापिस मगद से मूर्ति ले आना एवं आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध की अध्यक्षता में कुमार कुमारी पर्वत पर श्रमण एवं चतुर्विध संघ एकत्र होना दृष्टिवाद अंग का उद्धार करवाना आदि आदि वर्णन आता है यह सब वर्णन हस्ती गुफा का खारवेल का शिलालेख से बराबर मिलता हुआ है अतः इस पट्टावली की घटना ऐतिहासिक घटना होने में संदेह करने को थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता है। अब आगे चलकर हम कलिंग प्रदेश की शोध खोज से जो ऐतिहासिक घटनाएं मिली हैं उसका उल्लेख करेंगे।

---

(१) श्यामाचार्य कृत 'पन्नवण सूत्र' अब तक विद्यमान है।

(२) उमास्वातिकृत 'तत्त्वार्थ सूत्र' और इसका स्वोपज्ञ भाष्य अभी तक विद्यमान है। यहाँ पर उल्लिखित 'निर्युक्ति' शब्द संभवतः इस भाष्य के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है।

(३) अङ्गविद्या प्रकीर्णक भी हाल तक मौजूद है। कोई नौ हजार श्लोक प्रमाण का यह प्राकृत गद्य पद्य में लिखा हुआ 'सामुद्रिक विद्या' का ग्रन्थ है।

(४) कलिंग देश के उदयगिरि पर्वत की मानिकपुर गुफा के एक द्वार पर खुदा हुआ वक्रदेव के नाम का शिलालेख मिला है जो इसी वक्रराय का है। लेख नीचे दिया जाता है:—

"वेरस महाराज कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहन वकदेवसिरिनो लेणं।" (जिनविजय सं० प्राचीन जैनलेख पृ० ४९)

(५) उदयगिरि की मंचपुरी गुफा के सातवें कमरे में विदुराय के नाम का एक छोटा लेख है। उसमें लिखा है कि यह स्थान (गुफा) 'कुमार विदुराय' की है। लेख के मूल शब्द नीचे दिये जाते हैं:—

"कुमार वदुखस लेनं" (एपिग्राफिका इंडिका जिल्द १३)

उसने मगध देश के राजा पुष्पमित्र को २ बार पराजित करके अपनी आज्ञा मनवाई। पहले नंदराजा ऋषभदेव की जिस प्रतिमा को उठा ले गया था उसे वह पाटलिपुत्र नगर से वापिस अपनी राजधानी में लेगया और कुमारगिरि तीर्थ में श्रेणिक के बनवाये हुए जिनमंदिर का पुनरुद्धार कराके आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थी-सुप्रति बुद्ध नाम के स्थविरों के हाथों से उसे फिर प्रतिष्ठित कराकर उसमें स्थापित किया।

पहले जो बारहवर्ष तक दुष्काल पड़ा था उसमें आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्तीजी के अनेक शिष्य शुद्ध आहार न मिलने के कारण कुमारगिरि नामकतीर्थ में अनशन करके शरीर छोड़ चुके थे। उसी दुष्काल के प्रभाव से तीर्थंकरों के गणधरों द्वारा प्ररूपित बहुतेरे सिद्धान्त भी नष्ट प्राय हो गये थे। यह जानकर भिक्खुराय ने जैन सिद्धान्तों का संग्रह और जैनधर्म का विस्तार करने के लिये संप्रतिराजा की नांई श्रमण निर्ग्रंथ तथा निर्गंथियों की एक सभा वहाँ कुमारी पर्वत नामक तीर्थ पर इकट्ठी की; जिसमें आर्य महागिरिजी की परंपरा के बलिस्सह, बोधिलिंग, देवाचार्य, धर्मसेनाचार्य, नक्षत्राचार्य, आदिक दो सौ जिन-कल्प की तुलना करने वाले जिनकल्पी साधु, तथा आर्यसुस्थित, आर्यसुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति, श्यामाचार्य प्रभृति तीन सौ स्थविरकल्पी निर्ग्रंथ आये। आर्या पोइणी आदि तीन सौ निर्ग्रन्थी साध्वियाँ भी वहाँ इकट्ठी हुई थीं। भिक्खुराय, सीवंद, चूर्णक, सेलक आदि सातसौ श्रमणोपासक और भिक्खुराय की स्त्री पूर्णमित्रा आदि सात सौ श्राविकाएं भी उस सभा में उपस्थिति थीं।

पुत्र, पौत्र और रानियों के परिवार से सुशोभित भिक्खुराय ने सब निर्ग्रंथों और निर्ग्रंथियों को नमस्कार करके कहा—'हे महानुभावो ! अब आप वर्धमान तीर्थंकर प्ररूपित जैनधर्म की उन्नति और विस्तार करने के लिये सर्वशक्ति से उद्यमवंत हो जायँ।' भिक्खुराय के उपर्युक्त प्रस्ताव पर सर्व निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियों ने अपनी सम्मति प्रकट की और भिक्खुराय से पूजित सत्कृत और सम्मानित निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियाँ मगध, मथुरा, वंग आदि देशों में तीर्थंकर प्रणीत धर्म की उन्नति के लिये निकल पड़े।

उसके बाद भिक्खुराय ने कुमारगिरि और कुमारीगिरि नामक पर्वतों पर जिन प्रतिमाओं से शोभित अनेक गुफाएँ खुदवाईं, वहाँ जिनकल्प की तुलना करने वाले निर्ग्रंथ वर्षा काल में कुमारीपर्वत की गुफाओं में रहते और जो स्थविरकल्पी निर्ग्रंथ होते वे कुमारपर्वत की गुफाओं में वर्षा काल में रहते। इस प्रकार भिक्खुराय ने निर्ग्रन्थों के लिये विभिन्न व्यवस्था कर दी थी।

उपर्युक्त सर्व व्यवस्था से कृतार्थ हुए भिक्खुराय ने बलिस्सह, उमास्वाति, श्यामाचार्यादिक स्थविरों को नमस्कार करके जिनागमों में मुकुट तुल्य दृष्टिवाद अंग का संग्रह करने की प्रार्थना की।

भिक्खुराय की प्रेरणा से पूर्वोक्त स्थविर आचार्यों ने अवशिष्ट दृष्टिवाद को श्रमण समुदाय से थोड़ा

---

(१) हाथी गुफा के शिलालेख में भी भिक्षुराजा, महामेघवाहन, और खारवेलसिरि इन तीनों नामों का प्रयोग खारवेल के लिए हुआ है।

(२) खारवेल के शिलालेख में भी मगध के राजा बृहस्पितमित्र ( पुष्पमित्र का पर्याय ) को जीतने का उल्लेख है

(३) नंदराज द्वारा लेजाई गई जिनमूर्ति को कलिंग में वापिस ले आने का हाथीगुंफा में इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है:— "नंदराजनीतं च कालिंग जिनं सनिवेसं···गृहरतनान पडिहारे हि अंग मागध-वसुंच नेयाति [।]'?

( हाथी गुँफा लेख पंक्ति १२, बिहार ओरिसा जर्नल, वॉल्युम ४ भाग ४ )

थोड़ा ज्ञान एकत्र कर भोजपत्र, ताड़पत्र, और वल्कल पर अक्षरों से लिपि बद्ध करके भिक्खुराय का मनोरथ पूर्ण किया और इस प्रकार वे आर्य सुधर्म रचित द्वादशांगी के संरक्षक हुए।

१—उसी प्रसंग पर श्यामाचार्य ने निर्ग्रंथ साधु साध्वियों के सुखबोधार्थ 'पन्नवणासूत्र' की रचना की॥

२—स्थविर श्रीउमास्वातिजी ने उसी उद्देश्य से निर्युक्ति सहित 'तत्त्वार्थ सूत्र' की रचना की॥

३—स्थविर आर्य बलिस्सह ने विद्याप्रवाद पूर्व में से 'अंगविद्या' आदि शास्त्रों की रचना की॥

इस प्रकार जिन शासन की उन्नति करने वाला भिक्खुराय अनेक विधि धर्म कार्य करके महावीर निर्वाण से ३३० वर्षों के बाद स्वर्गवासी हुआ। भिक्खुराय के बाद उसका पुत्र वक्रराय कलिंग का अधिपति हुआ। वक्रराय भी जैनधर्म का अनुयायी और उन्नति करने वाला था। धर्माराधन और समाधि के साथ यह वीर निर्वाण से ३६२ वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ। वक्रराय के बाद उसका पुत्र 'विदुहराय' कलिंग देश का अधिपति हुआ। विदुहराय ने भी एकाग्र चित्त से जैनधर्म की आराधना की। निर्ग्रंथ समूह से प्रशंसित यह राजा महावीर निर्वाण से ३९५ वर्ष के बाद स्वर्गवासी हुआ।"

"वीर निर्वाण संवत् और जैन काल गणना पृष्ठ १६१-७५"

उपरोक्त पट्टावली में कलिंग का राजवंश राजा चेटक के पुत्र शोभनराय से आरम्भ होता है जो कलिंग पति सुलोचन ने अपने दमाद को कलिंग पति बनाया था उस शोभनराय के पंचवी पर चण्डराय आगे खेमराज बुद्धराज और भिक्खुराज ( खारवेल ) तथा इसके पुत्र विक्रराय वदुहराय का और मगद का नन्दराजा कलिंग से जिनमूर्ति ले जाना और पुष्पमित्र के समय खारवेल वापिस मगद से मूर्ति ले आना एवं आर्य सुस्थी और सुप्रतिबुद्ध की अध्यक्षता में कुमार कुमारी पर्वत पर श्रमण एवं चतुर्विध संघ एकत्र होना दृष्टिवाद अंग का उद्धार करवाना आदि आदि वर्णन आता है यह सब वर्णन हस्ती गुफा का खारवेल का शिलालेख से बराबर मिलता हुआ है अतः इस पट्टावली की घटना ऐतिहासिक घटना होने में संदेह करने को थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता है। अब आगे चलकर हम कलिंग प्रदेश की शोध खोज से जो ऐतिहासिक घटनाएं मिली हैं उसका उल्लेख करेंगे।

---

( १ ) श्यामचार्य कृत 'पन्नवण सूत्र' अब तक विद्यमान है।

( २ ) उमास्वातिकृत 'तत्त्वार्थ सूत्र' और इसका स्वोपज्ञ भाष्य अभी तक विद्यमान है। यहाँ पर उल्लिखित 'निर्युक्ति' शब्द संभवतः इस भाष्य के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है।

( ३ ) अङ्गविद्या प्रकीर्णक भी हाल तक मौजूद है। कोई नौ हजार श्लोक प्रमाण का यह प्राकृत गद्य पद्य में लिखा हुआ 'सामुद्रिक विद्या' का ग्रन्थ है।

( ४ ) कलिंग देश के उदयगिरि पर्वत की मानिकपुर गुफा के एक द्वार पर खुदा हुआ वक्रदेव के नाम का शिलालेख मिला है जो इसी वक्रराय का है। लेख नीचे दिया जाता है:—

"वेरस महाराज कलिंगाधिपतिनो महामेघवाहन वक्रदेवसिरिनो लेणं।" ( जिनविजय सं० प्राचीन जैनलेख पृ० ४१ )

( ५ ) उदयगिरि की मञ्चपुरी गुफा के सातवें कमरे में विदुराय के नाम का एक छोटा लेख है। उसमें लिखा है कि यह भवन ( गुफा ) 'कुमार विदुराय' की है। लेख के मूल शब्द नीचे दिये जाते हैं:—

"कुमार वदुखस लेनं" ( एपिग्राफिका इंडिका जिल्द १३ )

इसने मगध देश के राजा पुष्पमित्र को २ बार पराजित करके अपनी आज्ञा मंनवाई। पहले नंदराजा ऋषभदेव की जिस प्रतिमा को उठा ले गया था उसे वह पाटलिपुत्र नगर से वापिस अपनी राजधानी में लेगया और कुमारगिरि तीर्थ में श्रेणिक के बनवाये हुए जिनमंदिर का पुनरुद्धार कराके आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थी-सुप्रति बुद्ध नाम के स्थविरों के हाथों से उसे फिर प्रतिष्ठित कराकर उसमें स्थापित किया।

पहले जो बारहवर्ष तक दुष्काल पड़ा था उसमें आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्तीजी के अनेक शिष्य शुद्ध आहार न मिलने के कारण कुमारगिरि नामकतीर्थ में अनशन करके शरीर छोड़ चुके थे। उसी दुष्काल के प्रभाव से तीर्थंकरों के गणधरों द्वारा प्ररूपित बहुतेरे सिद्धान्त भी नष्ट प्राय हो गये थे। यह जानकर भिक्खुराय ने जैन सिद्धान्तों का संग्रह और जैनधर्म का विस्तार करने के लिये संप्रतिराजा की नाई श्रमण निर्ग्रंथ तथा निर्ग्रंथियों की एक सभा वहाँ कुमारी पर्वत नामक तीर्थ पर इकट्ठी की; जिसमें आर्य महागिरिजी की परंपरा के बलिस्सह, बोधिलिंग, देवाचार्य, धर्मसेनाचार्य, नक्षत्राचार्य, आदिक दो सौ जिन-कल्प की तुलना करने वाले जिनकल्पी साधु, तथा आर्यसुस्थित, आर्यसुप्रतिबुद्ध, उमास्वाति, श्यामाचार्य प्रभृति तीन सौ स्थविरकल्पी निर्ग्रंथ आये। आर्या पोइणी आदि तीन सौ निर्ग्रन्थी साध्वियाँ भी वहाँ इकट्ठी हुई थीं। भिक्खुराय, सीवंद, चूर्णक, सेलक आदि सातसौ श्रमणोपासक और भिक्खुराय की स्त्री पूर्णमित्रा आदि सात सौ श्राविकाएं भी उस सभा में उपस्थिति थीं।

पुत्र, पौत्र और रानियों के परिवार से सुशोभित भिक्खुराय ने सब निर्ग्रंथों और निर्ग्रंथियों को नमस्कार करके कहा—'हे महानुभावो! अब आप वर्धमान तीर्थंकर प्ररूपित जैनधर्म की उन्नति और विस्तार करने के लिये सर्वशक्ति से उद्यमवंत हो जायँ।' भिक्खुराय के उपर्युक्त प्रस्ताव पर सर्व निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियों ने अपनी सम्मति प्रकट की और भिक्खुराय से पूजित सत्कृत और सम्मानित निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियाँ मगध, मथुरा, वंग आदि देशों में तीर्थंकर प्रणीत धर्म की उन्नति के लिये निकल पड़े।

उसके बाद भिक्खुराय ने कुमारगिरि और कुमारीगिरि नामक पर्वतों पर जिन प्रतिमाओं से शोभित अनेक गुफाएँ खुदवाईं, वहाँ जिनकल्प की तुलना करने वाले निर्ग्रंथ वर्षा काल में कुमारीपर्वत की गुफाओं में रहते और जो स्थविरकल्पी निर्ग्रंथ होते वे कुमारपर्वत की गुफाओं में वर्षा काल में रहते। इस प्रकार भिक्खुराय ने निर्ग्रन्थों के लिये विभिन्न व्यवस्था कर दी थी।

उपर्युक्त सर्व व्यवस्था से कृतार्थ हुए भिक्खुराय ने बलिस्सह, उमास्वाति, श्यामाचार्यादिक स्थविरों को नमस्कार करके जिनागमों में मुकुट तुल्य दृष्टिवाद अंग का संग्रह करने की प्रार्थना की।

भिक्खुराय की प्रेरणा से पूर्वोक्त स्थविर आचार्यों ने अवशिष्ट दृष्टिवाद को श्रमण समुदाय से थोड़ा

(१) हाथी गुफा के शिलालेख में भी भिक्खुराजा, महामेघवाहन, और खारवेलसिरि इन तीनों नामों का प्रयोग खारवेल के लिए हुआ है।

(२) खारवेल के शिलालेख में भी मगध के राजा बृहस्पतिमित्र (पुष्पमित्र का पर्याय) को जीतने का उल्लेख है

(३) नंदराज द्वारा लेजाई गई जिनमूर्ति को कलिंग में वापिस ले जाने का हाथीगुंफा में इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है:— "नंदराजनीतं च कालिंगं जिनं सनिवेसं···गृहरतनान पडिहारे हि अंग मागध-वसुंच नेयाति [।]"

(हाथी गुँफा लेख पंक्ति १२, बिहार ओरिसा जर्नल, वॉल्युम ४ भाग ४)

जाना । पाठकों की जानकारी के लिये थोड़ा हाल यहां लिख देता हूँ कि पुरातत्व के प्रेमियों ने इस प्रकार के प्राचीन पदार्थों के लिये किस किस प्रकार के परिश्रम किया और करते हैं ।

खारवेल का यह महत्वपूर्ण शिलालेख खण्डगिरि उदयगिरि पहाड़ी की हस्तीगुफा से मिला है। इस लेख को सब से प्रथम पादरी स्टर्लिंग ने ई० सन् १८२० में देखा था । पर पादरी साहब उस लेख को साफ तौर से पढ़ नहीं सके। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह लेख २००० वर्ष से भी अधिक पुराना होने के कारण जर्जर अवस्था में था । यह शिलालेख इतने वर्षों तक सुरक्षित न रहने के कारण घिस भी गया था । कई अक्षर मिटने लग गये थे और कई अक्षर तो बिल्कुल नष्ट भी हो चुके थे। इस पर भी लेख पाली भाषा से मिलता हुआ शास्त्रों की शैली से लिखा हुआ था। इस कारण पादरी साहब लेख का सार नहीं समझ सके। तथापि पादरी साहब भारतीयों की तरह हतारा नहीं हुए। वे इस लेख के पीछे चित्त लगा कर पड़ गये। उन्होंने इस शिलालेख के सम्बन्ध में अंग्रेजी पत्रों में खासी चर्चा प्रारम्भ कर दी। अतः सारे पुरातत्वियों का ध्यान इस शिलालेख की ओर सहज ही में आकर्षित हो गया ।

इस शिलालेख के विषय में कई तरह का पत्र व्यवहार पुरातत्वज्ञों के आपस में चला। अन्त में इस लेख को देखने की इच्छा से सबने मिलकर एक तिथि निश्चित् की। उस तिथि पर इस शिलालेख को पढ़ने के लिए अनेकों यूरोपियन एकत्रित हुए। कई तरह से प्रयत्न करके उन्होंने उसका मतलब जानना चाहा पर वे अन्त में असफल हुए। इतने पर भी उन्होंने प्रयत्न जारी रक्खा। इस शिलालेख के कई फोटू लिये गये। कागज लगा-लगा कर कई चित्र लिखे गये। यह शिलालेख चित्र के रूप में समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। इस शिलालेख पर कई पुस्तकें निकलीं। इस प्रयत्न में विशेष भाग निम्नलिखित यूरोपियनों ने लिया। डॉ० टामस, मेजर, कीट्ट, जनरल, कनिंगहाम, प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट, डा० स्मिथ, बिहार गवर्नर सर एडवर्ड आदि आदि ।

जब इसका पूरा पता नहीं चला तो उस खोज के आन्दोलन को भारत सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। शिलालेख की नकल यहाँ से इँगलैण्ड भेजी गयी। वहाँ के विद्वानों ने उसकी विचित्र तरह से फोटू ली। भारतीय पुरातत्वज्ञ भी निंद्रा नहीं ले रहे थे इन्होंने भी कम प्रयत्न नहीं किया। महाशय जायसवाल, मिस्टर राखलदास बनर्जी श्रीयुत भगवानदास इन्द्रजी और अन्त में सफलता प्राप्त करने वाले श्रीमान् केशव लाल हर्षदराय ध्रुव थे। श्री० केशवलाल ने अविरल प्रयत्न से इस लेख का पता निकाला। तब से सन् १९१८ अर्थात् करीब सौ वर्ष के प्रयत्न से अन्त में यह निश्चित हुआ कि यह शिलालेख कलिंगाधिपति महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल का है ।

सचमुच बड़े शोक की बात है कि जिस धर्म से यह शिलालेख सम्बन्ध रखता है, जिस धर्म की महत्ता को बतानेवाला यह लेख है, जिस धर्म के गौरव के प्रदर्शन करनेवाला यह शिलालेख है उस जैन धर्म वालों ने आज तक कुछ भी नहीं किया। जिस महत्त्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता थी वह विषय उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। वास्तव में जैनियों ने इस विषय की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं ? क्या वे अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करना भूल ही गये ? जहाँ चन्द्रगुप्त सम्राट् और सम्प्रति राजा के लिए जैन ग्रन्थकारों ने पोथे के पोथे लिख डाले वहाँ क्या श्वेताम्बर और क्या दिगम्बर

**विद्वानों की शोध खोज और कलिंग का इतिहास**—आज विज्ञानिक युग एवं शोध खोज का जमाना है। जिस शोध खोज ने कमाल कर दिया है, सोये हुए भारतीयों को जगा दिया है। जिन बातों को हम स्वप्न में भी नहीं जानते थे, इतना ही क्यों पर हम हमारे पूर्वजों का उज्जवल गौरव को भी भूल बैठे थे। उनका नाम निशान तक भी हमारे लक्ष में नहीं थे; पर संशोधकों के पूर्ण परिश्रम से आज अनेक प्राचीन शिलालेख ताम्रपत्र दानपत्र सिक्के वगैरह उपलब्ध हुए हैं कि जिन्हों के आधार पर आज हम प्राचीन इतिहास की भींत ज्यों त्यों खड़ी कर सकते हैं। यों तो भारत के कई विभागों के इतिहास की सामग्री मिली हैं परन्तु उसमें से यहां पर मैं कलिंग देश के विषय ही कुछ लिखने का प्रयत्न करूंगा।

**कलिंग**—जिसको आज उड़ीसा कहते हैं प्राचीन समय में इसका बहुत विस्तार था। यह देश बड़ा ही सम्पत्तिशाली था, इस देशवासियों की वीरता जगत्प्रसिद्ध थी। साधारणतया यह तीन विभागों में विभक्त था जैसे दक्षिणकलिंग, मध्यकलिंग और उत्तरकलिंग। उत्तर कलिंग को उत्कल भी कहते थे, इसका उड़ीसा नाम तो केवल उड़ जाति के नाम पर ही हुआ है।

**पुराणों में**—भी इस देश का उल्लेख मिलता है कि राजा सुद्योमन के तीन पुत्र थे—गया, उत्कल और विनिताश्व। इनके अधिकारकी भूमि क्रमशः बिहार, उत्कल और पश्चिमाचल थी तथा ये तीनों प्रदेश कलिंग के शामिल ही समझे जाते थे। यही कारण है कि कलिंग के राजाओं को त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि थी।

**रामायण से**—पता चलता है कि कलिंग की भूमि भगवान् रामचन्द्रजी के चरण कमलों से भी पवित्र हो चुकी थी। जिस समय भगवान् रामचन्द्र ने वन-प्रस्थान किया था उस समय वे उत्कल, गोदावरी होते हुए पंचवटी पधारे थे।

**महाभारत**—से भी पाया जाता है कि कलिंग की कुशल सैन्य युद्ध में बड़ी वीरता रखती थी। जब कौरव और पांडवों के आपस में युद्ध हुआ था तब कलिंग की सेना कौरवों की मदद पर थी और उसने बड़ी वीरता से युद्ध किया था।

**कलिंग का व्यापार**—व्यापार व्यवसाय में भी कलिंग सर्वोपरि था। उस समय भारत का व्यापार केवल आज के जैसा कमीशनी व्यापार नहीं था पर व्यापार में हिम्मत, दूरदर्शिता, बुद्धि आदि जो गुण चाहिये वे कलिंगवासियों में विद्यमान थे। कलिंगवासियों का व्यापार केवल भारत में ही नहीं परन्तु अन्य देशवासियों के साथ भी कलिंग के व्यापार का विस्तार था। वे बंगालसमुद्र अरबसागर और हिंदमहासागर को पार कर जहाजों द्वारा जावा, बालिद्वीप, चीन, जापान, लंका, सुमात्रा, सिंगापुर, मारीशत और ब्रह्मद्वीप आदि पाश्चात्य व पौरवात्य देशों में भी आते जाते थे और बढ़िया बढ़िया वस्त्र एवं जवाहिरात का व्यापार किया करते थे। इसी कारण कलिंग उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली और सभ्यता का आदर्श कहलाता था।

**कलिंग के राजा**—कलिंग देश पर यों तो समय समय अनेक राजाओं ने राज किया है पर इतिहास की कसौटी पर विशेष महत्वशाली राजा खारवेल का नाम अधिक प्रसिद्ध है। जिसका एक विस्तृत शिलालेख अभी थोड़ा अर्सा पूर्व मिला है वह शिलालेख क्या है एक खारबेल के जीवन का पूरा इतिहास है उस शिलालेख से उस समय की राजनीतिदशा, सामाजिकव्यवस्था और धार्मिक प्रवृतियों का सहज ही में पता मिल जाता है प्रस्तुत शिलालेख किस कठिनाइयों के साथ मिला और उसके भाव को किस प्रकार

# हस्तिगुफा का शिलालेख और उसका भापानुवाद

१—नमो अराहंतानं [।] नमो सवसिधानं [।] ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराज वसवधनेन पसथसुभलखनेन चतुरंतलुठितगुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेलेन ।

अनुवाद—अरिहन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, ऐर (ऐल) महाराजा महामेघवाहन (महेन्द्र) चेदिराजवंशवर्धन, प्रशस्त, शुभ लक्षण युक्त, चतुरन्त व्यापि गुण युक्त कलिंगाधिपति श्री खारवेल ने

२—पंदरसवसानि सिरि-कडार-सरीरवता कीडिता कुमारकीडिका [।] ततो लेखरूपगणना-ववहार-विधिविसारदेन सवविजावदातेन नववसानि योवरजं पसासितं [।] संपुण-चतु-वीसति-वसो तदानि वधमान-सेसयो वेनाभिविजयोततिये

अनुवाद—पन्द्रह वर्ष पर्यन्त श्री कडार (गौर वर्ण युक्त) शारीरिक स्वरूप वाले ने बाल्यावस्था की क्रीडाएं की। इसके पीछे लेख्य ( सरकारी फरिमान नामा आदि ) रूप ( टंकशाल ) गणित ( राज्य की आय व्यय तथा हिसाब ) व्यवहार ( नियमोपनियम ) और विधि ( धर्म शास्त्र आदि ) विषयों में विशारद हो सर्व विद्यावदात ( सर्व विद्याओं में प्रवुद्ध ) ऐसे ( उन्होंने ) नौ वर्ष पर्यन्त युवराज पद पर रह कर शासन का कार्य किया। उस समय पूर्ण चौवीस वर्ष की आयु में जोकि बालवय से वधमान और जो अभिविजय में वेन ( राज ) है ऐसे वह तीसरे

३—कलिंगराजवंस-पुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति [।] अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहतगोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति [।] कलिंगनगरि [ ि ] खबीर-इसि-ताल-तडाग-पाडि यो च बंधापयति [।] सबुयानपटिसंठपनं च

अनुवाद—पुरुष युग में ( तीसरी पुरुष में ) कलिंग के राज्यवंश में राज्याभिषेक पाये। अभिषेक होने के पश्चात् प्रथम वर्ष में प्रबल वायु उपद्रव से टूटे हुए दरवाजे वाले किले का जीर्णोद्धार कराया। राजधानी कलिंगनगर में ऋषि खिवीर के तालाब और किनारे बँधवाए। सब बगीचों की मरम्मत

४—कारयति [।।] पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सातकंणि पछिमदिसं हय-गज-नर रध-बहुलं दंडं पठापयति [।] कन्हवेनां गताय च सेनाय वितासितं मुसिकनगरं [।] ततिये पुन वसे

अनुवाद—करवाई। पैंतीस लाख प्रकृति (प्रजा) का रंजन किया। दूसरे वर्ष में सातकणि (सातकर्णि) की किंचित भी परवाह न करके पश्चिम दिशा में चढ़ाई करने को घोड़े हाथी, रथ और पैदल सहित बड़ी सेना भेजी। कन्हवेनों ( कृष्णवेणा ) नदी पर पहुँची हुई सेना से मुसिकमूषिका नगर को त्रास पहुँचाया। और तीसरे वर्ष में गंधर्व वेद के पंडित ऐसे ( उन्होंने ) दंप ( डफ ? ) नृत्य, गीत, वादित्र के संदर्शन ( तमाशे ) आदि से उत्सव समाज ( नाटक, कुश्ती आदि ) करवा कर नगर को खेलाया; और चौथे वर्ष में विद्याधराधिवास को केगिस को कलिङ्ग के पूर्ववर्ती राजाओं ने बनवाया था और जो पहिले कभी भी

**विद्वानों की शोध खोज और कलिंग का इतिहास**—आज विज्ञानिक युग एवं शोध खोज का जमाना है। जिस शोध खोज ने कमाल कर दिया है, सोये हुए भारतीयों को जगा दिया है। जिन बातों को हम स्वप्न में भी नहीं जानते थे, इतना ही क्यों पर हम हमारे पूर्वजों का उज्जवल गौरव को भी भूल बैठे थे। उनका नाम निशान तक भी हमारे लक्ष में नहीं थे; पर संशोधकों के पूर्ण परिश्रम से आज अनेक प्राचीन शिलालेख ताम्रपत्र दानपत्र सिक्के वगैरह उपलब्ध हुए हैं कि जिन्हों के आधार पर आज हम प्राचीन इतिहास की भींत ज्यों त्यों खड़ी कर सकते हैं। यों तो भारत के कई विभागों के इतिहास की सामग्री मिली हैं परन्तु उसमें से यहां पर मैं कलिंग देश के विषय ही कुछ लिखने का प्रयत्न करूंगा।

**कलिंग**—जिसको आज उड़ीसा कहते हैं प्राचीन समय में इसका बहुत विस्तार था। यह देश बड़ा ही सम्पत्तिशाली था, इस देशवासियों की वीरता जगत्प्रसिद्ध थी। साधारणतया यह तीन विभागों में विभक्त था जैसे दक्षिणकलिंग, मध्यकलिंग और उत्तरकलिंग। उत्तर कलिंग को उत्कल भी कहते थे, इसका उड़ीसा नाम तो केवल उड़ जाति के नाम पर ही हुआ है।

**पुराणों में**—भी इस देश का उल्लेख मिलता है कि राजा सुद्योमन के तीन पुत्र थे—गया, उत्कल और विनिताश्व। इनके अधिकारकी भूमि क्रमशः बिहार, उत्कल और पश्चिमाचल थी तथा ये तीनों प्रदेश कलिंग के शामिल ही समझे जाते थे। यही कारण है कि कलिंग के राजाओं को त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि थी।

**रामायण से**—पता चलता है कि कलिंग की भूमि भगवान् रामचन्द्रजी के चरण कमलों से भी पवित्र हो चुकी थी। जिस समय भगवान् रामचन्द्र ने वन-प्रस्थान किया था उस समय वे उत्कल, गोदावरी होते हुए पंचवटी पधारे थे।

**महाभारत**—से भी पाया जाता है कि कलिंग की कुशल सैन्य युद्ध में बड़ी वीरता रखती थी। जब कौरव और पांडवों के आपस में युद्ध हुआ था तब कलिंग की सेना कौरवों की मदद पर थी और उसने बड़ी वीरता से युद्ध किया था।

**कलिंग का व्यापार**—व्यापार व्यवसाय में भी कलिंग सर्वोपरि था। उस समय भारत का व्यापार केवल आज के जैसा कमीशनी व्यापार नहीं था पर व्यापार में हिम्मत, दूरदर्शिता, बुद्धि आदि जो गुण चाहिये वे कलिंगवासियों में विद्यमान थे। कलिंगवासियों का व्यापार केवल भारत में ही नहीं परन्तु अन्य देशवासियों के साथ भी कलिंग के व्यापार का विस्तार था। वे बंगालसमुद्र अरबसागर और हिंदमहासागर को पार कर जहाजों द्वारा जावा, बालिद्वीप, चीन, जापान, लंका, सुमात्रा, सिंगापुर, मारीशत और ब्रह्मद्वीप आदि पाश्चात्य व पौरवात्य देशों में भी आते जाते थे और बढ़िया बढ़िया वस्त्र एवं जवाहिरात का व्यापार किया करते थे। इसी कारण कलिंग उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली और सभ्यता का आदर्श कहलाता था।

**कलिंग के राजा**—कलिंग देश पर यों तो समय समय अनेक राजाओं ने राज किया है पर इतिहास की कसौटी पर विशेष महत्त्वशाली राजा खारवेल का नाम अधिक प्रसिद्ध है। जिसका एक विस्तृत शिलालेख अभी थोड़ा अर्सा पूर्व मिला है वह शिलालेख क्या है एक खारवेल के जीवन का पूरा इतिहास है उस शिलालेख से उस समय की राजनीतिदशा, सामाजिकव्यवस्था और धार्मिक प्रवृत्तियों का सहज ही में पता मिल जाता है प्रस्तुत शिलालेख किस कठिनाइयों के साथ मिला और उसके भाव को किस प्रकार

१०—[का]. [ि] . मान [ ति ] * रा [ ज ]-संनिवासं महाविजयं पासादं कार[वि] अठतिसाय सतसहसेहि [।]दसमे च वसे दंड-संधी-साम मयो भरध-वस-पठानं महि-जयनं ति कारा पयति ······निरितय उयातानं च मनिरतना [ नि ] उपलभते [।]

अनुवाद—······( ग्यारहवें वर्ष में ) ( किसी ) बुगराजा ने बनवाया मेड ( मंडिलाबाजार ) को बड़े गदहों से हलसे खुदवा दिया, लोगों को धोखाबाजी से ठगने वाले ११३ वर्ष के तमर का देहसंघात को तोड़ दिया। बारहवें वर्ष में ···· री उत्तरापथ में राजाओं को बहुत दुःख दिया।

११·······मंडं च अवराजनिवेसितं पीथुडं गदभ-नंगलेन कासयति [ ि ] जनस दंभावनं च तेरसवसमतिक [ ं ] तु भिदति तमरदेह-संघातं [ । ] बारसमे च वसे···हम···के.ज. सवसेहि वितासयति उतरापथ-राजानो ··

अनुवाद— ··· और मगध वासियों को बड़ा भारी भय उत्पन्न करते हुए हाथियों को सुगंग ( प्रासाद ) तक ले गया और मगधाधिपति बृहस्पति को अपने चरणों में झुकाया तथा राजानन्द द्वारा ले गई कलिंग जिन मूर्ति को और गृहरत्नों को लेकर प्रतिहारों द्वारा अंग मगध का धन ले आया।

१२··· ·····मगधानं च विपुलं भयं जनेतो हथी सुगंगीय [ ं ] पाययति [ । ] मागधं च राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति [।] नंदराज—नीतं च कालिंगजिनं संनिवेसं·······गह-रतनान पडिहारेहि अंगमागध—वसुं च नेयाति [ । ]

अनुवाद—······अन्दर से लिखा हुआ ( खुदे हुये ) सुन्दर शिखरों को बनवाया और साथ में सौ कारीगरों को जागीरें दीं अद्भुत और आश्चर्य (हो ऐसी रीति से) हाथियों के भरे हुए जहाज नजराना हो। हस्ती रत्न माणिक्य, पाद्यराज के यहाँ से इस समय अनेक मोती मानिक रत्न लूट करके लाये ऐसे वह सक्त ( लायक महाराजा ) ।

१३ ······तु [ ं ] जठर लिखिल-बरानि सिहरानि नीवेसयति सत-वेसिकनं परिहारेन [।] अभुतमछरियं च हाथि-नावन परीपुरं सव-देन हय-हथी-रतना [मा] निकं पंडराजा चेदानि अनेकानि मुतमणिरतनानि अहरापयति इध सतो

अनुवाद—·· ··सब को वश किये। तेरहवें वर्ष में पवित्र कुमारी पर्वत के ऊपर जहाँ (जैन धर्म का) विजय धर्म चक्र सुप्रवृत्तमान है। प्रक्षीण संसृति (जन्म मरणों को नष्ट किये) काय निषीदी (स्तूप) ऊपर ( रहने वाले ) पाप को बताने वाले ( पाप ज्ञापकों ) के लिये व्रत पूरे हो गये पश्चात् मिलने वाले राज ( विभूतियाँ कायम कर दीं । ( शासनो बन्ध दिये ) पूजा में रक्त उपासक खारवेल ने जीव और शरीर की—श्री की परीक्षा करली ( जीव और शरीर परीक्षा कर ली है ।

१४ ···· ·····सिनो वसीकरोति [।] तेरसमे च वसे सुपवत-विजयचक-कुमारीपवते अरहिते य [?]※ प-खीण-संसितेहि कायनिसीदीयाय याप—ञावकेहि राजभितिनि चिनवतानि वसासितानि [।] पूजाय रत-उवास-खारवेल-सिरिना जीवदेह-सिरिका परिखिता [।]

किसी भी आचार्य ने इस नरेश के चरित्र की ओर प्रायः कलम तक नहीं उठाई कि जिसके आधार से आज हम जनता के सामने खारवेल का कुछ वर्णन रख सकें। क्या यह बात कम शोचनीय है।

उधर आज जैनेतर देशी और विदेशी पुरातत्वज्ञ तथा इतिहास प्रेमियों ने साहित्य संसार में प्रस्तुत लेख के सम्बन्ध में धूम मचादी है। उन्होंने इसके लिए हजारों रुपयों को खर्चा। अनेक तरह से परिश्रम कर पता लगाया। पर जैनी इतने बेपरवाह निकले कि उन्हें इस बात का भान तक नहीं। आज अधिकांश जैनी ऐसे हैं जिन्होंने कान से खारवेल का नाम तक नहीं सुना है। कई अज्ञानी तो यहाँ तक कह गुजरते हैं कि गई गुजरी बातों के लिए इतनी सरपच्ची तथा मगजमारी करना व्यर्थ है। बलिहारी इनकी बुद्धि की! वे कहते हैं कि इस लेख से जैनियों को मुक्ति थोड़े ही मिल जायगी। इसे सुनें तो क्या और पढ़ें तो क्या? और न पढ़ें तो क्या होना-हवाना! अर्वाचीन समय में हमें अपने धर्म का कितना गौरव रह गया है इस बात की जाँच ऐसी लच्चर दलीलों से अपने आप हो जाती है। जिस धर्म का इतिहास नहीं उस धर्म में जान नहीं। क्या यह मर्म कभी भूला जा सकता है? कदापि नहीं।

सज्जनो! महाराज खारवेल का लेख जो अति प्राचीन है तथा प्रत्यक्ष प्रमाण भूत है जैन धर्म के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है। यह जैन धर्म पर अपूर्व प्रभाव डालता है। यह लेख भारत के इतिहास के लिये भी अच्छा प्रमाण स्वरूप है। कई बार लोग यह आक्षेप किया करते हैं कि जिस प्रकार बौद्ध और बेदान्त मत राजाओं से सहायता प्राप्त करता था तथा अपनाया जाता था उसी प्रकार जैन धर्म किसी राजा की सहायता नहीं पाई थी न यह अपनाया जाता था या जैन धर्म सारे राष्ट्र का धर्म नहीं था, उनको इस शिला लेख से प्रत्यक्षरूप से पूरा उत्तर मिल जाता है और उनको बोलने का अवसर ही नहीं मिल सकता है।

भगवान महावीर के अहिंसा धर्म के प्रचारकों में शिलालेख में सबसे प्रथम खारवेल का ही नाम उपस्थित करते हैं। महाराजा खारवेल कट्टर जैनी था। उसने जैन धर्म का प्रचुरता से प्रचार किया। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि आप चैत्र (चेटक) वंशी थे। आपके पूर्वजों को महामेघवाहन की उपाधि मिली हुई थी। आपके पिता का नाम वुद्धराज तथा पितामह का नाम खेमराज था। महाराजा खारवेल का जन्म १९७ ई० पूर्व सन् में हुआ। पंद्रह वर्ष तक आपने बालवय आनन्द पूर्वक बिताते हुए आवश्यक विद्याध्ययन भी कर लिया तथा नौ वर्ष तक युवराज रह कर आपने राज्य का प्रबन्ध अच्छा किया था। इस प्रकार २४ वर्ष की आयु में आपका राज्याभिषेक हुआ। १३ वर्ष पर्यन्त आपने कलिंगाधिपति रह कर सुचारु रूप से शासन किया। अन्त में अपने राज्य काल में दक्षिण से लेकर उत्तर लों राज्य का विस्तार कर आपने सम्राट् एवं चक्रवर्ति की उपाधि भी प्राप्त की थी आपने अपना जीवन धार्मिक कार्य करते हुए विताया। अन्त में आपने समाधि मरण द्वारा उच्च गति प्राप्त की। ऐसा शिलालेख से मालूम होता है।

यह शिलालेख कलिंग देश, जिसे अब उड़ीसा कह कर पुकारते हैं, के खण्डगिरि (कुमार पर्वत) की हस्ती नाम्नी गुफा से मिला था यह शिला लेख १५ फुट के लगभग लम्बा तथा ५ फीट से अधिक चौड़ा है।

यह शिलालेख १७ पंक्ति में लिखा हुआ है। इस शिलालेख की भाषा पाली भाषा से मिलती है। यह शिलालेख कई व्यक्तियों के हाथ से खुदवाया हुआ है। पूरे सौ वर्ष के परिश्रम के पश्चात इसका समय समय पर संशोधन भी किया है। जिसकी मूल नकल के साथ अनुवाद यहाँ दे दिया जाता है।

पिता स्वर्गवासी हुए। और तब वे कलिंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। वंश परम्परा से यदि वे जैन धर्मावलंबी थे तथापि उनका राज्याभिषेक ब्राह्मण धर्मानुसार हुआ था। जिस वर्ष खारवेल राजा हुए उसी वर्ष प्रचंड तूफान होने से राजधानी तोसाली नगरी की बाहरी दीवालें बुर्जें मय दरवाजे के टूट गई थी। राजा खारवेल ने इसे फिर से मजबूती के साथ तैयार करवाया।

देशविजय—उड़ीसा की हाथीगुफा में पाली भाषा में खोदित एक वृहत् शिलालेख है। जो ऊपर दिया गया है उसमें खारवेल के राजत्व के प्रथम वर्ष से १३ वों वर्ष तक की घटनाएँ वर्णित हैं। उससे यह मालूम होता है कि राजा खारवेल अपने राजत्व के प्रथम वर्ष में राजधानी की मरम्मत का काम करवाकर द्वितीय वर्ष से द्वादश वर्ष तक देश विजय करने के लिये युद्धयात्रा में बाहर ही घूमते रहे।

मूषिकदेश विजय—कौशल ( दक्षिण कौशल ) के पश्चिम में मूषिक नामक एक देश कलिंग से लगा हुआ उत्तर पश्चिम की ओर अर्थात् वर्तमान काला हांडी संबल इत्यादि स्थानों में अवस्थान था। वर्तमान घुमसर इत्यादि स्थान और गंजाम जिला के पश्चिमीय विभाग में भंजवंशीय क्षत्रिय राज्य करते थे। मूषिक राजा इन कारयप क्षत्रियों पर बारम्बार आक्रमण कर भारी अत्याचार करते थे। कारयप देश कलिंग के अन्तर्गत था, इस लिये राजा खारवेल ने कारयपों की रक्षा करने के निमित्त मूषिक देश पर चढ़ाई की। वे इस समय आन्ध्र देश में होते हुए गये थे। इसी से आन्ध्र राजा सातकर्णि ने उनका प्रतिरोध किया था किन्तु वे ससैन्य परास्त हो कर मार्ग छोड़ने के लिये बाध्य हुए। आन्ध्र राजा सातकर्णि को परास्त कर खारवेल ने मूषिक राजा की राजधानी पर हमला कर समस्त मूषिक लोगों को परास्त किया और इसी युद्ध से ईस्वी पूर्व १७१ सन् के समय मूषिक देश कलिंग के अन्तर्गत होगया।

भोजक और राष्ट्रि राज्य आक्रमण—अपने राजत्व के चतुर्थ वर्ष में (ई० पू० १६९ अब्द में) राजा खारवेल भोजक और राष्ट्रिक राजाओं से युद्ध करने चले। ये दोनों देश आन्ध्र देश के समीप पश्चिम और उत्तर पश्चिम में थे। वर्तमान महाराष्ट्र देश का राष्ट्रिक और बरार का भोजक राज्य होना अनुमान किया जा सकता है। इन राजाओं ने खारवेल के विरुद्ध आन्ध्र राजा सातकर्णि की सहायता की थी। इसी से राजा खारवेल ने प्रथम आन्ध्र और मूषिक देशवासियों को दमा कर अनन्तर राष्ट्रिक और भोजक राज्यों पर आक्रमण किया। अंत में इन दोनों राज्यों को विजय कर खारवेल ने उन्हें कलिंग के अन्तर्गत किया किन्तु इन राज्यों को दूर होने के कारण अपने अधिकार में न ला, केवल उन्हीं राजाओं को वापिस कर उन्हें अपना आधीन राजा बनाये। इन राजाओं ने भी राजा खारवेल को अपना राजाधिराज माना और यथोचित सम्मान किया। तब से ये लोग स्वाधीन राजा न रह कर खारवेल के आधीन राजा हो गये।

विवाह:—राजा खारवेल का विवाह उनके राजत्व के सप्तम वर्ष में याने २२ वर्ष की अवस्था में हुआ था। खंडगिरिस्थ मंचपुरी गुफा में जो शिलालेख है, उसमें लिखा है कि यह गुफा चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी द्वारा बनवाई गई है, जो राजा लालकस की पुत्री थी। यह लालकस हाथीसहस के पौत्र थे किंतु राजा खारवेल की पटरानी का नाम यहाँ नहीं लिखा है और न यह स्पष्ट है कि ये राजा लालकस किस देश के राजा थे। पं० श्री नीलकंठदास ने खारवेल के विवाह सम्बन्ध में एक उड़िया भाषा में काव्य पुस्तक लिखी है, इसमें खारवेल की पटरानी का नाम धूसी लिखा है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

पड़ा नहीं था। अर्हत पूर्व का अर्थ नया चढ़ा कर यह भी होता है········जिसके मुकुट व्यर्थ हो गये हैं। जिनके कवच बख्तर आदि काट कर दो टुकड़े कर दिये गये हैं, जिनके छत्र काट कर उड़ा दिये गये हैं

५--गंधव-वेदबुधो दंप-नत-गीतवादित संदसनाहि उसव-समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [।] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत-पुवं कालिंग पुवराजनिवेसितं·····वितथ मकुटसविलमढिते च निखित छत

अनुवाद—और जिनके शृंगार (राजकीय चिन्ह, सोने चांदी के लोटे झारी) फेंक दिये गए हैं, जिनके रत्न और स्वापतेय ( धन ) छीन लिया गया है ऐसे सब राष्ट्रीय भोजकों को अपने चरणों में झुकाया, अब पांचवें वर्ष में नन्दराज्य के एक सौ और तीसरे वर्ष ( संवत् ) में खुदी हुई नहर को तनसुलिय के रस्ते राजधानी के अन्दर ले आए। अभिषेक छटवें वर्ष राजसूय यज्ञ के उजवते हुए। महसूल के सब रुपये।

६—भिंगारे हित-रतन-सापतेये सवरठिक भोजके पादे वंदापयति [।] पंचमे च दानी वसे नंदराज-तिवस-सत-ओघाटित तनसुलिय-वाटा पनाडिं नगरं पवेस [ति] [।] सो··भिसितो च राजसुय [०] संदश-यंतोसव-कर-वणं

अनुवाद—माफ किये वैसे ही अनेक लाखों अनुग्रहों पौर जनपद को बक्सीष किए। सातवें वर्ष में राज्य करते आपकी महारानी बज्रधर वाली धूषिता ( Demetrios ) ने मातृपदे को प्राप्त किया ( ? ) ( कुमार ? )......आठवें वर्ष में महा + + + सेना ···गोरधगिरि?

७--अनुग्रह अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।] सतमं च वसं पसासतो वजि-रघरव [ँ] तिघुसित-घरिनीस [—मतुकपद-पुंना [ ति? कुमार ]·····[।] अठमे च वसे-महता × सेना··गोरधगिरि।

अनुवाद—को तोड़ करके राजगृह (नगर) को घेर लिया जिसके कार्यों से अवदात ( वीर कथाओं का संनाद से युनानी राजा (यवन राजा) डिमित (·····अपनी सेना और छकड़े एकत्र कर मथुरा में छोड़ के पीछा लौट गया·····नौवें वर्ष में ( वह श्री खारवेलने ) दिये हैं·····पल्लव पूर्ण

८—वीं तपाघा ) यिता राजगहं उपपीडापयति [।] एतिनं च कंमापदान-संनादेन संवित-सेन-वाहनो विपमुंचितु मधुरं अपयातो यवनराज डिमित··[ मो ? ] यछति [ वि ]···पलव····

अनुवाद—कल्पवृक्षो! अश्व हस्ती रथों (उनको) चलाने वालों के साथ वैसे ही मकानों और शालाओं अग्निकुण्डों के साथ यह सब स्वीकार करने के लिए ब्राह्मणों को जो जागीरें भी दीं अर्हत का······

९—कपरुखे हय-गज-रध-सह-यंते सवघरावास-परिवसने स-अगिणठिया [।] सव-गहनं च कारयितुं बम्हणानं जातिं परिहारं ददाति [।] अरहतो···व····न··गिय

अनुवाद—राजभवन रूप महाविजय (नाम का) प्रासाद उसने अड़तीस लाख (पण) से बनवाया। दसवें वर्ष में दंड, संधी साम प्रधान ( उसने ) भूमि विजय करने के लिये भारतवर्ष में प्रस्थान किया·····जिन्हों के ऊपर ( आपने ) चढ़ाई करी उन से मणिरत्न वगैरह प्राप्त किये।

स्वयं बुड्ढा हो गया था और उसे कोई उपयुक्त सेना नायक नहीं दीखा, इससे चिंतित था और वचनपूर्ति करने की लालसा बलवती होती जा रही थी।

"धूसी अपनी बाल्यावस्था में—बाण विद्या में निपुण हो गई थी और राजा खारवेल को देख कर भी वह मोहित हो गई थी और साथ ही पिता का ऋण से उऋण होने के लिये यवन राजा से बदला लेना भी चाहती थी इसी से उसने बूढे कृपक राजा से कहा कि 'मैं ही सेना नायक होकर गुप्त रीति से सैना नायको-चित कार्य करूंगी।" वृद्ध कृपकपति भी इसकी इस बात से सहमत हो गयें और धूसी ने मर्द का वेष धारण कर विजिर युवकों का एक सगठन किया और स्वयं सेनापति का भार ग्रहण किया। अल्प समय में ही इस सेनापति के सुचारु और विश्वास जनक कार्य को देख कर खारवेल का प्रेम उस पर अधिक परिमाण में बढ़ने लगा और राजा उसे हितैषी तथा आत्मीय मानने लगे। एक समय जब युद्ध का भारी आयोजन हो रहा था एक सुगत ने खारवेल के पास आकर युद्ध बन्द करने का उपदेश दिया और स्वयं दत्तिम को समझाने के लिये बेक्टिया की ओर चला। इस सुगत के समझाने पर दत्तिम चालाकी से परस्पर समाधान करने के लिए राजी हुआ और खारवेल प्रभृतियों को विभिर राजा के साथ विजिर देश में मिलने को कहा। धूसी जिसने कि सेनापति का पद ग्रहण किया था इस कूट नीति को पहले से ही जानती थी और उसे इस समय में भी मूल से शंका बनी हुईथी, तथापि जन्म भूमि को एकबार देखने की इच्छा से इस विषय में सह-मत होकर राजा खारवेल के साथ ससैन्य विजिर राजधानी सिंहपथ में आई। इस समाचार को सुन दत्तिम ने रात्रि के समय ही सिंहपथ पर ससैन्य आक्रमण किया। धूसी यह सब आगे से ही जानती थी अतः उसने कुछ कृपक और उत्कल सेनाओं को लेकर बाहर की ओर से दत्तिम को घेर लिया, इस प्रकार दोनों ओर से घिर जाने के कारण दत्तिम परास्त हुआ। और उसकी कूट नीति विफल हुई। किंतु इस युद्ध में राजा खारवेल आहत होकर मृतवत् हो गये थे, उनकी यह अवस्था देख कर वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए धूसी ने राजा खारवेल को बचा लिया और उनकी भारी सुश्रूषा कर एक प्रकार प्राण दान दिया। राजा खारवेल उसका इस प्रकार साहस का काम देख उसके भारी कृतज्ञ हुए और इसका प्रत्योपकार करने का विचार उनके हृदय में स्थान पा चुका था।

"व्यापारियों के समस्त दुःख निवारण कर स्वास्थ्य हो जाने के अनंतर राजा खारवेल पातालपुरी को वापिस आये और वहीं धूसी के असली रूप को पहिचान लिया। राजकन्या धूसी को पहिचान लेने पर और उसके साहसपूर्ण कार्य को देख कर उस पर प्रेमासक्त हुए और अपना विवाह उस राजकन्या धूसी से कर लिया। यहाँ से विजिरदेश को धूसी के पिता (पूर्वराजा) को अर्पण कर खारवेल राजधानी की ओर लौटे।"

मगध आक्रमण दक्षिण और पश्चिम में अपना प्रभुत्त्व विस्तार कर राजा खारवेल ने उत्तर भारत में अपना अधिकार जमाना निश्चय किया। पहले कहा गया है कि नंदराजा कलिंग में अधिकार जमा लेने पर ऋषभदेव की मूर्ति तथा अन्यान्य कितनी ही जैनमूर्तियों को खंडगिरी से अपनी राजधानी में ले गये थे। राजा खारवेल जैन थे। इसलिए उनने उन मूर्तियों को फिर से वापिस लाकर खंडगिरि में यथास्थान स्थापित करने का विचार किया। अपने राजत्व के अष्टम वर्ष में यानी ईस्वी सन् पूर्व १६५ अब्द में खारवेल मगध की ओर रवाना हुए। इस वक्त राजमहल को घेर लेना उनका उद्देश्य था। उस

अनुवाद—……सब को वश किये। तेरहवें वर्ष में पवित्र कुमारी पर्वत के ऊपर जहां (जैन धर्म का) विजय धर्म चक्र सुप्रवृत्तमान है। प्रक्षीण संसृति (जन्म मरणों को नष्ट किये) कायनिषिदी (स्तूप) ऊपर (रहने वाले) पाप को बताने वाले (पाप ज्ञापकों) के लिये व्रत पूरे हो गये पश्चात् मिलने वाले राज (विभूतियाँ कायम कर दीं। (शासनो बन्ध दिये) पूजा में रक्त उपासक खारवेल ने जीव और शरीर की श्री की परीक्षा करली (जीव और शरीर परीक्षा कर ली है।

१५………[सु] कतिसमणसुविहितानं [नुं-?] च सत-दिसानं [नु-?] ञानिनं तपसि-इसिनं संघियनं [ नुं ? ] [ ; ]अरहत-निसीदिया समीपे पभारे वराकर—समुथपिताहि अनेक योज-नाहिताहि प. सि. ओ…सिलाह सिंहपथ-रानिसि [ ' ] धुडाय निसयानि

अनुवाद—सुकृति श्रमणे सुविहित शत दिशाओं के ज्ञानी-तपस्वी ऋषि संघ के लोगों को…… अरिहंत के निषीदीका पास पहाड़ के ऊपर उम्दा खानों के अन्दर से निकाल के लाये हुए—अनेक योजनों से लाये हुए…सिंह प्रस्थवाली रानी सिन्धुला के लिए निःश्रय ……

१६………घंटालक्तो × चतरे व वेडुरियगभे थंभे पतिठापयति, [ , ] पान-तरिया सत सहसेहि [।] मुरिय-काल वोछिंनं च चोयठिअंग-सतिकं तुरियं उपादयति [।] खेमराजा स वढ राजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलाणानि

अनुवाद—घंटा संयुक्त (…) वैडुर्य रत्न वाले चार स्तम्भ स्थापित किये। पचहत्तर लाख के व्यय से मौर्यकाल में उच्छेदित हुए चौसठ (चौसठ अध्याय वाले) अंग सप्तिकों का चौथा भाग पुनः तैयार कर-वाया। यह खेमराज वृद्धराज भिक्षुराज धर्मराज कल्यान को देखते और अनुभव करते

१७……गुण-विसेस-कुसलो सव-पांसडपूजको सव-देवायतनसंकारकारको [अ] पतिहत चकि-वाहिनिवलो चकधुरो गुतचको पवत-चको राजसि-वस-कुलविनिश्रितो महा-विजयो राजा खारवेल-सिरि

अनुवाद—छ गुण विशेष कुशल सर्व पंथो का आदर करने वाला सर्व (प्रकार के) मन्दिरों की मरम्मत करने वाला अस्खलित रथ और सेना वाला चक्र (राज्य) के धुरा (नेता) गुप्त (रक्षित) चक्र वाला प्रवृत्तचक्रवाला राजर्षि वश विनिःसृत राजा खारवेल

उपरोक्त शिलालेख का विशेपार्थ—चैत्र (चेटक) वंशीय राजाओं में खारवेल सबसे श्रेष्ट और पराक्रमी राजा हुए। वंश परम्परानुसार खारवेल भी 'ऐर महामेघ-वाहन' की उपाधि से भूषित हुए थे, सन् ईस्वी १९७ वर्ष पूर्व में इनका जन्म हुआ था। पन्द्रह वर्ष तक इनका बाल्य जीवन केवल क्रीड़ा में व्यतीत हुआ। सन् ईस्वी से १८२ वर्ष पूर्व याने अपने १५ वर्ष में खारवेल युवराज पद पर नियुक्त हुये अनुमान होता है कि इनके पिता वृद्ध अथवा रोग ग्रस्त होने के कारण राज्य चलाने में अक्षम थे इसी कारण खारवेल को उन्होंने युवराज पद देकर संपूर्ण राज्य भार उनके हाथ में सौंपा और तब से ही राज्य भार खारवेल के हाथ में न्यस्त हुआ। युवराज होने के बाद राजा खारवेल को राजधर्म की शिक्षा दी गई। २४ वर्ष की अवस्था में संपूर्ण राज-विद्या में उत्तीर्ण हुए और विशेषत ज्ञान और धर्म में उनकी प्रवीणता प्रशंसनीय हुई।

राज्याभिषेक—खारवेल की २४ वर्ष की अवस्था में अर्थात् सन् ईस्वी से १७३ वर्ष पूर्व में उनके

मगध सम्राट् को पराजय कर राजा खारवेल भारतवर्ष में एक मात्र चक्रवर्ती राजा हुए। इसलिये फिर वे देश विजय करने के लिये बाहर नहीं निकले। इसी वर्ष दक्षिणीय पांड्य देशीय राजा के बहुत से हाथी व जहाजों पर उत्कलीय लोगों ने अधिकार किया था। चक्रवर्त्ती राजा खारवेल ने इसी वर्ष पांड्य राजा से बहुत से मूल्यवान् रत्न, अश्व, हाथी और मनुष्य उपहार में लिये थे। इस तरह से उत्तर और दक्षिण के समस्त राजा लोग राजा खारवेल को अपना चक्रवर्ती राज मानने लगे।

दान-धर्म और देशहित कार्यः—चक्रवर्ति महाराज खारवेल केवल युद्ध लिप्सु और प्रशंसाभिलाषी राजा न थे। किन्तु नानाप्रकार के देश हितकारक सुंदर कार्य और प्राणियों की रक्षा एवं दानधर्म करने में भी वे सदैव तत्पर रहते थे। जिससे उनका गौरव मय जीवन और भी आदरणीय हुआ था। यद्यपि वे स्वयं जैन धर्मावलंबी थे तथापि वैदिक धर्म के अनुसार उनके युवराज्याभिषेक के कार्य हुए थे। इससे यह परिचय मिलता है कि वे समस्त धर्म मतों को समान दृष्टि से देखते थे। इतना ही नहीं पर यह भी प्रमाणित होता है कि वे अपने शासन काल में अपना स्वाधीन मत प्रतिष्ठित न कर प्रजा संघ के हेतु शास्त्रीय नियमों के अनुसार राज्य कार्य चलाते थे और अन्य धर्मियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने से उनका जीवन और भी अधिक गौरव मय बनगया था। तथा उनके राजोचित गुण सर्वथा प्रशंसनीय थे। राजा खारवेल ने अपने राजत्व के प्रथम वर्ष में अपनी पुरानी राजधानी की मरम्मत कराई थी। कृषि तथा जलपान की सुविधा के लिये बहुत से तालाब खुदवाये थे तथा जगह २ मनोरंजन करने के लिये प्रमोद उद्यान बनवाये थे। मूषिक राज्य को जीतकर स्वदेश में वापिस आने पर उनने अपने देश में विजय उत्सव किया था। वे स्वयं गांधर्व विद्या के धुरन्धर ज्ञाता थे। उनके विनिर्मित प्रमोद उद्यानों में वे नित्य नाटक अभिनय, संगीत तथा प्रीति भोज्य की व्यवस्था रख कर प्रजागणों के साथ निरंतर प्रफुल्लचित से रहते थे। उसने अपने राजत्व के चतुर्थ वर्ष में राष्ट्रक राज्य विजय करने से पूर्व विद्याधरवास नामक कितने ही धर्म मंदिर और मठनिर्माण कराये थे। ३०० वर्ष पूर्व नंद राजाओं ने राजधानी के समीप 'तनसुलिया' नामक स्थान तक जो अधूरी नहर खुदवाई थी महाराजा खारवेल ने उसे आगे खुदवा कर अपनी राजधानी तक लाने का प्रयत्न किया और इसमें सफल मनोरथ भी हुए। इस नहर के खुद जाने के कारण वाणिज्य और कृषि में विशेष सुविधा हुई। राजत्व के छठे वर्ष में वे शहर और मुफस्सिलवासी व्यापार और शिल्प व्यवसायियों के लिये वाणिज्य सुविधा के उचित प्रबंध कर धन्यवाद के पात्र हुए थे। राजत्व के सप्तम वर्ष में इनका विवाह हुआ था किन्तु नीलकंठशास्त्री नवम वर्ष में यानी २४ वर्ष की अवस्था मे विवाह होना अपने धूमी चरित्र द्योतक काव्य में लिखते हैं) नवम वर्ष में विपुल धन ब्राह्मणों को दान दिया था। उसी वर्ष सोने का एक शाखा पत्र संयुक्त कल्प वृक्ष तय्यार करवा कर हाथी घोड़ा रथ वगैरह और सारथि सहित ब्राह्मणों को दान में अर्पण किया और उन्हें भोजन भी करवाया था। जिन ब्राह्मणों ने दान ग्रहण किया उन्हें घर जमीन, सम्पत्ति इत्यादिक देकर अपने राज्य में रक्खा। ये सब उत्सव और दान राजगृह विजय के उपलक्ष में किये गये थे। इसी विजय के स्मारक स्वरूप 'महा विजय प्रासाद' नामक एक राजभवन प्राचीन नदी के किनारे ३८००००० मुद्रा व्यय कर बनवाया था। दसवें वर्ष में भारतवर्ष विजय कर वापिस आने पर कलिंग के प्रथम राजवंशीय राजा केतुभद्र की उपासना करने के लिए एक विग्रह संस्थापन किया तथा उस विग्रह की पूजा उपलक्ष्य में एक यात्रा का आरम्भ किया था। केतुभद्र की मूर्ति की पूजा कलिंग के प्राचीन राजा लोग करते आये थे इसी

"राजा खारवेल: — पांड्य देश को विजय कर और उस देश के राजा से मित्रता स्थापन कर वहाँ से व्यापारियों के संग में जावा, बालिद्वीप आदि द्वीपों की ओर घूम आये। अनंतर उनको यह मालूम हुआ कि फारस देश में जाने वाले कलिंग व्यापारी लोग सिंधु देश के किनारे से पश्चिम की ओर सुख से व्यापार नहीं कर सकते और उन्हें बहुत धन दंड स्वरूप देना पड़ता है तथा उन्हें बहुत कष्ट भी उठाना पड़ता है, कलिंग व्यापारियों को इस कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिये राजा खारवेल बहुत कुछ कलिंग, उत्कल, उड्र तथा पाण्डय सैन्यों को साथ में लेकर युद्ध करने के लिये सिंधु देश की ओर रवाना हुए।

"उस वक्त अफगानिस्तान के पूर्व प्रदेश" "विजिर" तथा विलोचिस्तान का पूर्व प्रदेश "पुर" नाम से प्रसिद्ध था। विजिरराज्य उस समय सिंधु देश के पश्चिम तक व्याप्तमान था। सिन्धु देश में पाताल (पटल) नामक एक वणिक नगरी थी। इसके पश्चिम में जो देश था उसमें बहुत काल से द्राविड़ लोग कृषक रूप में निवास करते थे। इस वक्त भी इन द्राविड़ों के वंशधर लोग दक्षिण विलोचिस्तान में पाये जाते हैं। यह लोग पूर्व काल में विजिर राज के अधिकार में रहकर द्राविड़ रीति नीति छोड़ आर्यों की रीति नीति के अनुसार चलते थे। उक्त कृषक देश का राजा ग्रामीण जो विजिर राजा का बड़ा मित्र और आत्मीय था।

"सिकंदर के चले जाने के बाद" उनके कुछ सेनापति लोगों ने अफगानिस्तान और फारस के कुछ अंशों को लेकर 'बेक्ट्रिया' नामक राज्य स्थापित किया था, वहाँ खारवेल के राजत्व काल में डेमिट्रिअस (दीत्तम) नामक एक बलवान राजा राज्य करता था। उसने विजिर पुर इत्यादि स्थानों को कूट युद्ध से जीतकर अपने अधिकार में कर लिया, और वहाँ पर या वहाँ से जाने वाले विदेशी व्यापारियों के ऊपर अन्यायपूर्वक कर लगाकर उन्हें हैरान करता था। उस समय विजिर राज्य की राजधानी सिंहपथ थी। डेमिट्रअस के विजिर राज्य पर अधिकार कर लेने पर विजिर राजा और युवराज अपनी राजधानी सिंहपथ को छोड़कर अन्य किसी मित्र राजा के आश्रय में चले गये और विजिर राजकन्या धूसी को उनके मित्र कृषक देश का राजा (ग्रामीण) अपने यहाँ पालन करने के लिये ले आया। तब से विजिर राजकन्या धूसी उसी के यहाँ रहती थी।

राजा खारवेल ने कलिंग व्यापारियों के दुःखमोचन करने के लिये कुछ सैन्यों के साथ सिंधु नदी के मुहाने के पास पाताल नामक नगरी में जाकर अपनी छावनी डालदी। और कृषकदेश के राजा को इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये आह्वान किया। ऐसे ही समय में एक दिन राजा खारवेल अपने घोड़े पर सवार होकर सिंधु नदी के पश्चिम की ओर घूमने निकले, किन्तु लौटते समय रास्ता भूल गये। आते वक्त उसने देखा कि नदी के किनारे कुछ कृषक बालिकाएं खेल रहीं हैं और धूसी एक पत्थर पर बैठी हुई थी। राजा खारवेल धूसी के समीप जाकर उससे रास्ता पूछने लगे और उत्तर पाकर अपनी छावनी में वापस चले आये। धूसी एक राजकन्या थी और इस राजा का रूप यौवन देख कर मोहित हो गई और स्वयं राजा खारवेल भी मोहित होगये। इस राजा को फिर एक बार देखने के लिये धूसी इसी तरह लगातार कई दिनों तक वहीं उस पत्थर पर बैठी रहती थी; किंतु फिर ऐसा सौभाग्य प्राप्त न हुआ। एक दिन जब कृषकराजा खारवेल को इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये कृषक सेना देने का वचन देकर यह विचार कर रहा था कि कौन सेना नायक होकर सेना को चलावे। इसीसमय धूसी कुछ कृषक बालिकाओं के साथ में वहाँ पहुँची। कृषक राजा

विभाजित है अर्थात् खरडगिरि, उदयगिरि और नीलगिरि। संस्कृत में इसको खरडाचल भी कहते हैं खरडगिरि १२३ फुट ऊंचा तथा उदयगिरि ११० फुट ऊंचा है। मुख्य गुफायें उदयगिरि में ४४, खरडगिरि में १९ तथा नीलगिरि में ३ हैं। इनके अलावा छोटी छोटी गुफाएं तो सैकड़ों हैं।

२—उदयगिरि—की जितनी गुफायें हैं। उनमें से सब से बड़ी और सब से उत्तम चित्रकारी से चत्रित "रानी हन्सपुरी गुफा" है। इस गुफा में बहुत से दृश्य अङ्कित हैं यह दृश्य, यद्यपि बिगड़ गये हैं तथापि साफ साफ एक साधु की यात्रा को दिखलाते हैं जो धार्मिक उत्सव में नगर के भीतर चल रहे हैं लोग अपने घरों से उनका दर्शन ले रहे हैं। घोड़े जा रहे हैं, हाथी चल रहे हैं, प्यादे जा रहे हैं तथा की पुरुष हाथ जोड़े हुए साधु के पीछे जारहे हैं। कहीं २ खड़े हुए लोग झुक जाते हैं और फलादि चढ़ाते हैं तथा आशीर्वाद ले रहे हैं। इस पर्वत में श्रीपार्श्वनाथस्वामी बहुत अधिक प्रतिष्ठित हैं और इसी लिये यह अनुमान किया जाता है कि यह उत्सव या तो भगवान् पार्श्वनाथस्वामी का हो या उनके किसी एक शिष्य का हो। और दूसरे भी कई दृश्य हैं जो शायद श्री पार्श्वनाथ के जीवन से मिलते मालूम देते हैं। दूसरी गुफाओं के नाम ये हैं—जयविजयगुफा, छोटीहाथीगुफा, अलकापुरीगुफा, मञ्चपुरीगुफा, पनसगुफा, पातालपुरीगुफा।

३—मञ्चपुरी गुफा के–५ दरवाजे हैं–चौथे द्वार पर एक लाइन का शिलालेख है जो इस भांति है—

"खरस महाराजस कलिङ्गाधिपतिनो महामेघवाहन सकूदे पसीरिनोघलेनम्"

भावार्थः—चतुर महाराज कलिंग देश के स्वामी महामेघवाहन या कूदे पसीरी की गुफा।

४—इस गुफा के सातवें कमरे में दूसरा लेख है जो इस भांति है:—

"कुमार वदुरवस लेनम्" (यह लेख पहले से प्राचीन है) अर्थात् कुमार वदुरव की गुफा—शायद यह कुमार राजा खारवेल के पुत्र हों। गेजेटियर वाले ने पहले शिलालेख में वाक द्वीप भी पढ़ा है तथा बड़ी गुफा के लेख में यह नाम आया है जो कि राजा खारवेल का एक पद था।

५—इस पञ्चपुरी गुफा में ऊपर के खाने में तीसरा लेख है सो इस तरह का है—

१—अरहन्त पसादायम् कलिङ्गानम् समनानमूलेनं कारितम् राञोलालकस।

२—हथी साहस पपोतस् धुतुनाकलिंग चक्रवर्तितो श्री खारवेलम।

३—अग महिसिना कारितम् (यह लेख हाथी गुफा के लेख से कुछ ही पीछे का है)

भावार्थ—यह है कि श्रीअरहन्त के प्रासाद या मन्दिर रूप गुफा कलिंग देश के श्रमणों के लिये बनाई गई है—यह गुफा कलिंग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी द्वारा कराई गई जो राजा लालकस की पुत्री थी। यह लालकस, राजा हथीसहस के पौत्र थे। इस स्थन को स्वर्गपुरी गुफा भी कहते हैं।

६—गणेशगुफा—यहां भी कुछ दृश्य हैं शायद ये श्री पार्श्वनाथ के चरित्र से सम्बन्ध रखते हो।

७—धानघर और हाथीगुफा—हाथी गुफा ५० फुट से २८ फुट है मुख ११। फुट ऊंचा है—भीतों पर कुछ शब्द अंकित हैं। प्रगट रूप से साधुओं या यतियों के नाम हैं। छत की चट्टान पर १७ लाइन का लेख

वक्त गया से पाटलिपुत्र एक राज पथ था। इसी के निकट गोरखगिरि नामक स्थान था। छोटे नागपुर होते हुए खारवेल ने गोरखगिरि ( घहवर ) पर धावा किया। गोरखगिरि वर्तमान रामागया के समीप एक प्रसिद्ध दुर्ग था। राजधानी पाटलीपुत्र को दक्षिण दिशा में संरक्षित करने के लिये यह दुर्ग बनाया गया था।

उस समय पाटलिपुत्र में पुष्यमित्र या बृहस्पति मित्र मगध साम्राज्य के सम्राट् थे, उस समय मगध विपुल बलशाली था। तिस पर उसमें पुष्यमित्र सरीखे पराक्रमी योद्धा सम्राट् थे, जिनने कि अश्वमेध यज्ञ कर समग्र आर्यावर्त में अपने को चक्रवर्ती राजा बनाया था। उनने ग्रीक सम्राट् डेमिट्रिअस तथा मेनेडंर को ससैन्य परास्त कर ग्रीक लोगों को आर्यावर्त्त से निकाल बाहर किया था। इस प्रकार एक प्रतापी सम्राट् से युद्ध करना कोई सहज काम न था। किंतु खारवेल एक साहसी राजा थे। जैसेही पुष्यमित्र ने सुना कि खारवेल ने गोरखगिरि दुर्ग को घेर लिया है वे पाटलिपुत्र छोड़ मथुरा में सैन्य सजाकर उनकी राह देखने लगे। किंतु खारवेल इस वक्त गोरखगिरि से ही कलिंग वापिस चले आये।

राजा खारवेल भारत में एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा होना चाहते थे। किंतु मगध सम्राट् पुष्य मित्र को जीते बिना वे अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते थे। इसी उद्देश्य से खारवेल ने एक मरतबे फिर भी भारी सैन्य संगठन और लड़ाई की तय्यारी कर अपने राजत्व के द्वादश वर्ष में ( १६१ स॰ ई॰ पू॰ ) युद्ध करने चले। अपने राजत्व के दशम वर्ष में भी ये एक बार इसी उद्देश्य से युद्ध करने निकले थे, किन्तु इस समय की यात्रा ही ऐतिहासिक घटना में सर्व प्रधान है। इस बार ये पहले के समान छोटे नागपुर की तरफ से न जाकर महानदी के रास्ते से उत्तर पश्चिम की ओर रवाना हुए। खारवेल ने सीधे मगध को न जाकर उत्तरापथ राज्यों पर ( उत्तर पश्चिम सीमांत राज्य ) धावा किया। और उन राज्यों को जीतते गये ( अनुमान होता है कि वे पाटलिपुत्र आते तक भी गंगा नदी पार नहीं हुए थे ) वे मध्यभारत होते हुए भी पंजाब तक अग्रसर हुए। उत्तरापथ के किसी भी राजा ने इनका सामना नहीं किया। और वे इन समस्त देशों को अपने आधीन कर मगध की ओर रवाना हुए। रास्ते में गंगा नदी पार होकर हिमालय पर्वत के नीचे नीचे आते हुए गंगा के उत्तर किनारे मगध की राजधानी पाटलिपुत्र पहुँचे। पाटलिपुत्र के समीप हाथियों से गंगा नदी पार कर प्रबल प्रतापी पुष्यमित्र को राजधानी में घेर लिया। इस वक्त वीर कलिंग सेनाओं के विपुल पराक्रम को देखकर पाटलिपुत्र ही नहीं समग्र मगध देश भयभीत होगया। उस समय मगध भारत में सर्व प्रधान और बलवान राज्य था। राजधानी घेरने की तो बात ही दूर इस समय तक मगध पर किसी ने आक्रमण भी नहीं किया था। खारवेल का यह आक्रमण ही सर्व प्रथम था, इससे मगध निवासियों का भयभीत होना कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है। राजा खारवेल ने इस युद्ध में पुष्यमित्र को परास्त कर पाटलिपुत्र को अपने अधिकार में कर लिया और अंग व मगध देश से विपुल धन अपने हस्तगत किया। और उत्कल (कलिंग) देश से जिन जैनमूर्तियों को नंदराजा मगध में ले गया था, राजा खारवेल उन मूर्तियों को अपनी राजधानी में वापस ले आये। पुष्यमित्र के पराजय होने पर भारतवर्ष में मगध के बदले कलिंग साम्राज्य विस्तार हुआ। एक ही वर्ष में खारवेल समग्र भारतवर्ष को विजय कर पंजाब से हिमालय के नीचे नीचे आकर मगध देश को जीतकर और उसे लूटते हुए अपनी राजधानी में वापिस आये। राजा खारवेल के अदम्य उत्साह बल तथा साहस को देखकर ही उनकी तुलना नेपोलियन बोनापार्ट से की जाती है।

बरामदे से हो कर तीन द्वार वाले लम्बे कमरे में जाना होता है ये द्वार अब गिर गये हैं छत की रक्षा अब दो नये स्तम्भ दे कर की गई है। भीतों पर पद्मासन तीर्थंकर की मूर्तियाँ देवी सहित अंकित हैं। पीछे की तरफ श्रीपार्श्वनाथ की बड़ी खड्गासन मूर्ति है। जिस पर ७ फन का मण्डप है इस पर देवी का चिन्ह अंकित नहीं है—इन सब मूर्तियों के भिन्न २ चिन्ह दिये हुए हैं तथा ये ८ से ७॥ इंच तक की ऊँची हैं जब कि श्री पार्श्वनाथजी की मूर्ति २ फुट ७॥ इंच ऊंची है। इसी के पास दक्षिण में —

१८—त्रिशूलगुफा है—जिसका कमरा २२ फुट लम्बा ७ फुट चौड़ा व ८ फुट ऊंचा है। इसमें भी २४ तीर्थङ्करों की मूर्तियां अंकित हैं। इन्हीं में ७ फण मण्डप सहित श्रीपार्श्वनाथजी की खड्गासन मूर्ति तथा अन्त में श्री महावीर स्वामी की मूर्ति है। इन २४ तीर्थङ्करों के समुदाय में भी श्रीपार्श्वनाथजी को श्री महावीरस्वामी के पहले न देकर मध्य में विराजित किया है। ( अर्थात्—इससे यह सिद्ध होता है कि श्री पार्श्वनाथजी की विशेष भक्ति को दरसाने वाली यह गुफा है सम्भव है कि ये मूर्तियाँ श्रीपार्श्वनाथजी के मुक्ति पधारने के बाद और महावीर स्वामी के निर्वाण के पहले विराजमान की गई हों।

पन्द्रहवें तीर्थङ्कर का आसन एकवेदी से ढका हुआ है जिस पर तीन पद्मासन सुन्दर मूर्तियाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की हैं इस गुफा की मूर्तियों का आकार पहले की गुफाओं की मूर्तियों के आकार से सुन्दर है।

फिर बांई तरफ आने से ५० या ६० फुट ऊँचा देखने से वहाँ जैन मूर्तियाँ अंकित हैं—

१९—फिर आगे पश्चिम की तरफ २ खन्ड की गुफा है—इसको सिंहगुफा या ललतेन्दुकेसरीगुफा कहते हैं—पहले खण्ड के कमरे में जैन तीर्थङ्कर की मूर्तियाँ अंकित हैं—जिनमें सब से मुख्य श्री पार्श्वनाथ की है उसमेंएक शिला लेख भी अंकित है—

१—ॐ-श्रीउद्योतकेसरीविजयराज्य संवत् ५ । २—श्रीकुमारपर्वत स्थाने जीर्ण वापि जीर्ण इसान।
३—उद्योतित तस्मिन् थाने चतुर्विंशति तीर्थङ्कर। ४—स्थापिता प्रतिष्ठा काले हरि ओप जसनंदिक।
५—क्ष·······हु·······ति·····दुथा········। ६—श्री पार्श्वनाथस्य कर्मक्षयाय

( नोट—इस लेख में राजा उद्योतकेशरी का नाम व संवत् ५ आया है तथा खण्डगिरि का नाम कुमार पर्वत लिखा है—यहां जीर्ण मन्दिर व वापी पहले थे ऐसा प्रकट है—वहीं २४ तीर्थंकर स्थापित किये गये। प्रतिष्ठा के समय में यहां श्री यसनन्दिआचार्य मौजूद थे।) इसके आगे एक झील है जिसको आकाश गंगा कहते हैं—

२०—अनन्तगुफा—खंडगिरि की दाहिनी तरफ एक लम्बा कमरा है, जो २३ फुट चौड़ा व २४ फुटल म्बा व ६ फुट ऊंचा है, चार द्वार हैं। पीछे की भीत पर ७ पवित्र चित्र अंकित हैं। उनमें स्वस्तिक, त्रिशूल, आदि हैं—पहले स्वस्तिक के नीचे एक छोटी खड्गासन मूर्ति है जो अब बहुत घिस गई है यह मूर्ति शायद श्रीपार्श्वनाथजी की होगी। इसमें कुछ दृश्य भी बने हैं—यहां लेख सन् ई० से पहले के हैं।

"दोहद समनानम् लेनम्" दोहद के साधुओं की गुफा तथा "दंड.चार" अर्थ समझ में नहीं आया।

२१—एक दूसरी गुफा में ५ पंक्ति का लेख है।

१–श्रीशान्तिकर सौराज्याद आचन्द्रार्कम्। २–गुहे गुहे रादि १ संहे पुनः अंगे-भाग।
३–जास्य विरजे जने इज्या गर्भ समुद्र। ४–मृतो नष्ठ तस्य सुतो भिषक् श्रीमतो।
५–याचते वान्य मस्थम् सम्यत् सरात् पुनः।

से महाराजा खारवेल ने जैन रहने पर भी प्राचीन प्रथा के उद्धार के हेतु इस शुभ यात्रा का अनुष्टान किया था। पुरातन प्रथाओं के प्रति महाराजा खारवेल की इस तरह भक्ति देखकर देशवासी लोग अत्यंत संतुष्ट हुए। बारहवें वर्ष में उत्तरा पथ और मगध विजय के उपलक्ष में तथा पांड्य राजा से जो विपुल धन रत्न आदि प्राप्त हुए थे उनकी रक्षा करने के लिये अपनी राजधानी में अनेक अट्टालिकाओं का निर्माण कराया था। ये सब अट्टालिकाएं नाना विचित्र कारुकाओं से मंडित थीं।

महाराजा खारवेल:—उत्तरापथ से पांड्य राज्य पर्यन्त अर्थात हिमालय से कन्या कुमारी अंतरीय तक भारतवर्ष में अपने राज्य और प्रभुत्व विस्तार कर राजाधिराज हुए थे। इससे उनकी उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति यथेष्ट परिमाण मे हुई। इसी से १२ वें वर्ष के अनंतर उनने और लड़ाई कर राज्य विजय करने की इच्छा त्याग कर एक तरह से संन्यास धर्म का अवलंबन किया और पवित्रता मय जीवन व्यतीत करने लगे। उदयगिरि में अर्हन्त और जैन लोगों के लिये बहुत से मंदिर निर्माण और स्वयं आत्म ध्यान धरने के लिये वहीं पर एक सुन्दर अट्टालिका बनवाई। संभव है कि उदयगिरिस्थित रानी हंसपुर की वहीं अट्टालिका हो। हाथीगुफा भी उन्हीं का बनवाया हुआ है। चक्रवर्ती राजा होने पर वे संन्यास जीवन धारण कर इस प्रकार के नाना धर्म कार्य करते हुए भिक्षु राजा और धर्मराजा के नाम से प्रख्यात हुए।

चैत्रवंश का अवसान:—हाथीगुफा के शिलालेख में महाराजा खारवेल के राजत्व के १३ वर्ष की घटनाओं का वर्णन है। उस समय उनकी आयु ३७ वर्ष की थी, उसके अनंतर अपने जीवन के शेष काल में उनने क्या २ कार्य किये थे, इसका कोई हाल विदित नहीं होता। चक्रवर्ती राजा होने के पश्चात् इन्होंने धर्म राजा कहला कर राजविरक्त धर्म धारण कर लिया था। अवश्य उन्होंने कुछ वर्ष तक शांति से नाना प्रकार के देश हितकार्य करके राज्य चलाया होगा और अपना शेष जीवन निर्वृतियां से उदयगिरिस्थित रानीहंसपुर गुफा में विताया होगा। उनके प्रबल प्रताप से कलिंग राज्य का विस्तार समग्र भारत में हो गया और वह राज्य एक बलवान राज्य हो गया। उस समय कलिंग देश की सीमा उत्तर में गंगा नदी और विहार प्रदेश, पश्चिम में बरार गोंडवानाराज्य महाराष्ट्र प्रदेश और दक्षिण में पांडय राज्य तक थीं, यही नहीं, बल्कि सीमांतवर्ती राजा लोग यद्यपि कलिंग के अंतर्गत नहीं थे तथापि महाराजा खारवेल को चक्रवर्ती राजा स्वीकार कर उनके प्रति राजोचित सम्मान प्रदर्शित करते थे। कलिंग देश के इतिहास में महाराजा खारवेल के अनंतर इस विशाल राज्य में चैत्रवंश (चेटकवंश) के और कौन २ राजा हुए, वह अब तक नहीं जाना जा सका। खंडगिरि के एक शिलालेख से यह बात मालूम होती है कि महाराजा खारवेल के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी स्वरूप 'महामेघ वाहन' उपाधिधारी विक्रराय और विक्रराय के वदुहराय नाम के दो राजा हुए, पर इसका चाहिये जितना इतिहास नहीं मिलता है।

कलिंग की पहाड़िओं में केवल यह एक खारवेल का ही शिलालेख नहीं मिला है पर पृथक् पृथक् गुफाओं में भिन्न भिन्न शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं उनकों भी यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

तोसाली—धौली पहाड़ियों तथा कोयकहाई, गुगुंभ और दया नदी के संगम के मध्य में एक बड़ा नगर रहा है—जिसका नाम तोसाली है और खण्डगिरि एवं भुवनेश्वर से कुछ दूर है।

१—खण्डगिरि—खुरा जिले में एक पहाड़ी भुवनेश्वर से ३ मील उत्तर में है। यह पर्वत तीन विभागों में

राजा से और यह भी संभव है कि राजा खारवेल स्वयं ही हों। जिस खारवेल ने शिलालेख के अनुसार पातालिका चेटक और वैडूर्य गर्भ में अर्हन्तों के स्थान के निकट पर्वत की चोटी पर स्तम्भ और गुफायें चतुर कारीगरों से बनवाई—( नोट—ये पातालिक आदि कौन स्थान हैं इनका पता लगाना उचित है।)

इस समय से पीछे की बनावट के चिह्न कुछ गुफाओं में हैं जैसे नवमुनिगुफा छोटी हाथीगुफा व गणेश गुफा के शिलालेख और संभव है कि खंडगिरि की कुछ तीर्थंकरों की मूर्तियां भी (सिवाय अनंत गुफा के ) ऐसी ही हों—

आठवीं से ११ वीं शताब्दी तक दक्षिण में जैनी बहुत प्रभावशाली थे ( देखो भंडारकर का पूर्व इतिहास दक्षिण वा सन् १८९६ का सफा ५९ ) और इन लेखों के अक्षर इस समय के अक्षरों से मिलते हैं। यह जाना नहीं गया कि किस तरह जैनियों ने अपना अधिकार खोया परन्तु यह मालूम होता है कि वैष्णवों की उन्नति होने से जैनियों पर उनका अन्याय एवं अत्याचार हुआ होगा।

तथा ताड़पत्रों के लेखोंसे प्रगट है कि ब्राह्मणों की प्रेरणा से गंगराजा ने भी जैनियों को बहुत सताया।

अंग्रेजी राज्य में कटक के जैन परवारों ने खंडगिरि के ऊपर एकमंदिर बनवाया तथा बारह भुजा और त्रिशूल गुफा के बरामदों को दुरुस्त कराया और इन दोनों गुफाओं के सामने एक छोटा मंदिर बनवाया।

( देखो एम० ५८० चक्रवर्ती नोट गुफाओं पर सन् १९०२ )

यदि इस प्रकार पूर्व प्रान्तीय गुफाएँ वगैरह जैन स्मारकों को लिखा जाय तो एक बृहद् ग्रन्थ बन जाता है। तथा पूर्व के अलावा दक्षिण वगैरह में भी जैन श्रमणों के लिये इस प्रकार अनेक गुफाएं का पता मिला है तथा प्राचीन जैन मन्दिर मूर्तियों के भी काफी तादाद में उल्लेख एवं भग्न खण्डहर मिला है तथापि मैंने तो यहां केवल नमूना के तौर पर प्राचीनता का थोड़ा सा दिग्दर्शन करवाया है कि इसको पढ़ कर जैनोपासकों के नशों में अपने पूर्वजों का एवं पूर्व जमाना में जैनधर्म की जाहोजलाली का खून बहने लग जाय और वे अपने कर्त्तव्य पर कमर कस कर कटिबद्ध हो जाय। अस्तु !

है १५ फुट से ६ फुट की माप है। यही प्रसिद्ध खारवेल का लेख है। (यह लेख पहले दे दिया गया है)।

८—सर्पगुफा—इसके द्वार की वाईं ओर पहली शताब्दी पूर्व का एक शिलालेख है ये दो लाइन का है।

१—कम्मस हलरिन। २—णाय च पसादो।

अर्थात्—कम्म और हलरिवन का प्रासाद। इसी सर्पगुफा द्वार पर बड़ी हाथीगुफा के पास एक शिलालेख है—"चूलसमय को था जे याय" चूल कर्मन् का अजेय कोठा।

९—वाघगुफा—इस पर भी दूसरी शताब्दी का शिलालेख है जो दो पक्तिये इस भांति है:—

१—नगरअखंदस २—सभूतनोलेनम्—अर्थात् नगरजजसभूति की गुफा।

१०—हरिदासगुफा—इस पर एक शिलालेख इस भांति है—और इ० सं॰ पहली शताब्दी पूर्व का—
"चूलकुमसपसातोकथाजेयाच।" अर्थात्—चूलकुम का प्रासाद और अजेय कोठा।

११—जंवेश्वरगुफा—यहां एक शिलालेख मञ्चपुरी गुफा के समय का जो लेख ब्राह्मी अक्षरों में है।
"महामदास वारियाय ना क्रियस लेनम्" अर्थात्—महामद की स्त्री नाकियस की गुफा।

१२—छोटीहाथीगुफा—इस पर भी एक अपूर्व लेख हैं। "अगरिच..............सलेनम्"।

आगे खंड गिरि की कुछ गुफाओं का वर्णन है और वह उत्तर से शुरू करते हैं:—

१३—तत्त्वगुफा नं० १—इसमें चित्र है तथा इस पर शिलालेख हैं—यह पहली शताब्दी पूर्व का है।

१४—तत्त्वगुफा नं० २—इसपर भी लेख है—"पद मुलिकस कुसु मास लेनम्" कुसुम सेवक की गुफा—
यह सब से प्राचीन लेख है। खंडगिरि के लेखों में (Oldest of all inscriptions in Khandgiri)

१५—नवमुनिगुफा—इसके भीतर १० वीं शताब्दी का लेख है जो इस भांति हैं:—

१—"ॐ श्रीमत् उद्योतकेशरीदेवस्य प्रवर्द्धमाने विजय राज्ये संवत् १८

२—श्रीआर्य्यसंघप्रतिबद्ध ग्रहगुलविनिर्गतदेशीगणाचार्य्यश्रीकुलचन्द्र

३—भट्टारकस्यतस्यशिष्यशुभचन्द्रस्य।

इस लेख में स्पष्ट लिखा है कि उद्योतकेशरीदेव के उन्नतिशीलराज्य के १८ वें वर्ष में श्री शुभचन्द्र आचार्य यहाँ विराजित थे जो श्री आर्य्यसंघगृहकुलदेशीगण के आचार्य्यकुलचन्द्रभट्टारक के शिष्य थे।

१६—इसी गुफा में—टूटी हुई भीत पर दूसरा शिलालेख इसी समय का है, जिसके वाक्य ये हैं—

१—श्रीधर छात्र—यह एक भाग पर है और दूसरे भाग में है कि—

ॐ श्री आचार्य्य कुलचन्द्रस्य तस्य शिष्यरवछशुभचन्द्रस्य........छात्र विजो

इससे भी शुभचन्द्र आचार्य्य का नाम प्रगट है—इस गुफा के दाहने कमरे में एक एक फुट ऊँची दश तीर्थंकरों की मूर्तियाँ है उनमें शासनदेवी बनी हुई है। श्रीपार्श्वनाथजी की दो मूर्त्तियें हैं। जिनके ऊपर सर्पफणमण्डप किये हुए हैं—उनकी विशेष मान्यता प्रगट है। और इस गुफा के आगे

१७—बारहभुजागुफा इसका नाम बारह भुजा इसलिये है कि बरामदे की दीवार के बाईं तरफ एक देवी की मूर्ति है जिसके बाहर भुजायें हैं।

( नोट :—यह जिनशासन की प्रति मूर्ति मालूम होती है क्योंकि जिनवाणी में आचाराङ्ग आदि बारह अङ्ग होते हैं)

'मत्निर्वृतेगतेष्वब्द-शतेष्वेकोनविंशतौ । चतुर्दशसु चाब्देषु, चैत्र शुक्लाष्टमी दिने ॥ २३१ ॥
विष्टौम्लेच्छाकुले कल्की, पाटलीपुरपत्तने । रुद्रश्चतुर्मुखश्चेति धृताऽपराह्वयद्वयः ॥ २३२ ॥
यशोगृहे यशोदायाः कुक्षौस्थित्वा त्रयोदश । मासान् मघौ सिताष्टम्यां,जयश्री वासरे निशि ॥२३३॥
पष्ठेमकरलग्नांशे, वह माने महीसुते । वारे कर्क स्थिते चंद्रे, चंद्रयोगे शुभा वहे ॥ २३४ ॥
प्रथमे पादेऽश्लेषायाः, कल्कि जन्म भविष्यति ।'

वीर निर्वाण के १९१४ वर्ष व्यतीत होंगे तब पाटलिपुत्र में म्लेच्छ कुल में यश की स्त्री यशोदा की कुक्षि से चैत्र शुक्ल ८ की रात में कल्कि का जन्म होगा ।' × × आगे लिखा है कि वीरात २००० वर्ष इन्द्र के हाथों से कल्की ८६ वर्ष की आयु में मर कर नरक में जायगा—इत्यादि ।

जिनसुन्दरसूरि कृत दीवालिकल्प

पणच्छस्सयवस्स पणमास जुदंगमिय वीरणिव्वुइदो ।
सग राजो तो कक्की, तिच दुण वति महिय सग मासं ।।'

'वीर निर्वाण से ६०५ वर्ष और पांच मास बीतने पर 'शक राजा' होगा और उसके बाद ३९४ वर्ष और सात मास में अर्थात निर्वाण संवत १००० में कल्की होगा ।'

दि०—नेमिचन्द्रीय त्रिलोक सार

तित्थोगाली पइन्ना में तो इस विषय का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

'शक से १३२३ ( वीर निर्वाण १९२८ ) वर्ष व्यतीत होंगे तब कुसुमपुर ( पाटलिपुत्र ) में दुष्ट बुद्धि वाले कल्की का जन्म होगा ।' × ×

'कल्की का जन्म होगा तब मथुरा में राम और कृष्ण के मंदिर गिरेंगे और विष्णु के उत्थान ( कार्तिक सुदी ११ ) के दिन वहां जन संहारक घटना होगी । × × इस जगत्प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नगर में ही 'चतुर्मुख' नाम का राजा होगा । वह इतना अभिमानी होगा कि दूसरे राजाओं को तृण समान गिनेगा । नगरचर्या में निकला हुआ वह नंदों के पांच स्तूपों को देखेगा और उनके संबंध में पूछताछ करेगा, तब उसे उत्तर में कहा जायगा कि यहां पर बल, रूप धन और यश से समृद्ध नंद राजा बहुत समय तक राज कर गया है, उसी के बनवाए हुए ये स्तूप हैं । इसमें उन्होंने सुवर्ण गाड़ा है जिसे दूसरा कोई राजा ग्रहण नहीं कर सकता । यह सुन कल्की उन स्तूपों को खुदवाएगा और उनमें का तमाम सुवर्ण ग्रहण कर लेगा । ( देखो पृष्ट २५६ के श्लोक) इस द्रव्य प्राप्ति से उसकी लालच बढ़ेगी और द्रव्य प्राप्ति की आशा से वह सारे नगर को खुदवा देगा । तब जमीन में से एक पत्थर की गौ निकलेगी जो 'लोणदेवी' कहलाएगी । × × लोणदेवी आम रास्ते पर खड़ी रहेगी और भिक्षा निमित्त आते जाते साधुओं को मार गिरावेगी, जिससे उनके भिक्षा पात्र टूट जावेंगे, तथा हाथ पैर और सिर भी फूटेंगे और उनको नगर में चलना फिरना मुश्किल हो जावेगा । × तब महत्तर ( साधुओं के मुखिया ) कहेंगे—श्रमणों ! यह अनागत दोष की—जिसे भगवान वर्द्धमान स्वामी ने अपने ज्ञान से पहले ही देखा था—पूर्व सूचना है । साधुओ ! यह गौ वास्तव में अपनी द्विः विनिका है । भावी संकट की सूचना करती है, इस वास्ते चलिये, जल्दी हम दूसरे देशों में चले जायें । × गौ के उपसर्ग से जिन्होंने जिन-वचन सत्य होने की संभावना की वे पाटलिपुत्र को छोड़कर अन्य देश को चले

नोट—इस लेख में जो शिलालेखों की नकल दी गई है वह एपिग्रेफिका इन्डिया की जिल्द तेरहवीं सन् १९१५-१६ सफा १५९ से १६६ तक से ली गई है।

उपरोक्त शिलालेखों से इतना पता तो सहज ही में लग जाता है कि खण्डगिरि उदयगिरि का नाम १० वीं तथा ११ वीं शताब्दी तक कुमारकुमारोपर्वत प्रसिद्ध था। त्रिशूल गुफा के ऊपर एक सफेद पुता हुआ जिनमन्दिर है जिसकी मिति निश्चित नहीं है—यहां से दक्षिण की तरफ पत्थर की चट्टान ऊपर जैन तीर्थङ्करों की कई मूर्त्तियां अंकित है जो इधर-उधर पत्थरों के गिरने से साफ एवं प्रगट मालूम नहीं होती हैं—यहां पर भीत की एक गुफा थी जिसमें भी जैनतीर्थंकरों की मूर्त्तियां थीं--पर्वत की चट्टान के मध्य में एक जैन-मन्दिर है जिसमें पांच जैन मूर्त्तियां हैं।

खंडगिरि के दक्षिण पश्चिम में नीलगिरि है—यहां राधाकुंड और श्यामकुंड हैं।

इन गुफाओं में से हाथीगुफा की मिती सन् ई० से १५८ या १५३ वर्ष पहले की है—तथा उदयगिरि की स्वर्गपुरी, मध्यपुरी, सर्पगुफा, बाघगुफा, जाम्बेश्वर, हरिदास, ऐसी ६ गुफाओं में तथा खण्डगिरि की तत्त्वगुफा दो और अनंतगुफा इस तरह ९ गुफाओं में शिलालेख ब्राह्मी अक्षरों में हैं और खारवेल राजा के समय के अक्षरों से मिलते हुए हैं। क्योंकि इन ब्राह्मी अक्षरों का परिवर्तन सन ईस्वी के पहली शताब्दी से पीछे हुआ है इसलिए इन लेखों को नियमानुसार इस समय के पीछे का नहीं रखा जा सकता है। ये नौ गुफाएं हाथीगुफा के निकट ही समय में खोदी गई थी अर्थात् सन ईस्वी से दूसरी शताब्दी से पहले नहीं खोदी गई थीं—तो भी सम्भव है, उनमें से कुछ यह या और दूसरी गुफाएं हाथीगुफा से भी पहले की हों क्योंकि राजा खारवेल ने अपने बड़े लेख के अंकित करने को यह पहाड़ी इसीलिए चुनी होगी कि यह पहाड़ी जैनसाधुओं के विराजने से पवित्र हो चुकी है। यहाँ की स्वाभाविक या कृत्रिम गुफाओं में जैन साधु अवश्य पहले से ही विराजते होंगे। कम से कम आधी शताब्दी तो अवश्य लेना चाहिए कि जब यह पहाड़ी मुनियों के विराजने से इतनी पवित्र हो गई थी कि जिसको पवित्र जानकर राज-कुटुम्ब ने यहां खुदाई में बहुत सा रुपया खर्च किया था। यहां अवश्य सन् ईस्वी से तीसरी शताब्दी के पहले लेने (गुफायें) मौजूद थीं। जो कुछ यह प्रमाण मिलते हैं उनसे यह बात अनमिलती नहीं है। क्योंकि हाथी गुफा के लेख के १०० वर्ष पहले यह उड़ीसा देश वृहत-मौर्य राज्य का एक भाग हो गया था और तब जिस निग्रंथ मत का वर्णन अशोक के शिलालेखों में है उसका प्रभाव अवश्य यहां पर हुआ ही होगा।

दूसरी शताब्दी में महायान भाग के बौद्धों के बड़े उपदेशक ने कहा जाता है कि उड़ीसा के राजा को और उसकी बहुत सी प्रजा को बौद्ध कर लिया। और तब यह मानना ठीक ही है कि इस समय के पीछे जैन मत का प्रभाव मंद हो गया और जन गुफाओं का खोदना बन्द हो गया—इन सबका सार यह होना चाहिए कि यहां की बहुत सी गुफाओं के खोदने का समय सन् ईस्वी की तीसरी शताब्दी के पहले से लेकर प्रथम शताब्दी पहले तक है।

सबसे बड़ी गुफा रानी की गुफा है। यह अभाग्य की बात है कि इस गुफा पर कोई शिलालेख नहीं है जिससे इसकी मिती का पता चले। परन्तु इसके लम्बे कमरे की श्रेणी या स्तम्भों की बड़ी लाइन तथा चित्रकारी आदि प्रगट करती हैं कि यह रचना किसी धनाढ्य दातार द्वारा हुई है। शायद किसी बलवान

इसके बाद फिर कल्कि उत्पात मचाएगा, पाखंडियों के वेष छिनवा लेगा और श्रमणों पर भी अत्याचार करेगा। उस समय कल्प व्यवहार धारी तपस्वी युग प्रधान आचार्य पाडिवत तथा दूसरे साधु छट्ठ अट्ठम का तप करेंगे। तब कुछ समय के बाद नगर देवता कल्की से कहेगा—'अरे निर्दयी! तू श्रमण संघ को तकलीफ देकर क्यों जल्दी मरने की तैयारी कर रहा है? जरा सबर कर, तेरे पापों का घड़ा भर गया है।' नगर देवता की इस धमकी की कुछ भी परवाह न करता हुआ वह साधुओं से भिक्षा का षड्‌'श वसूल करने के लिये उन्हें बाड़े में कैद करेगा। साधु गण सहायतार्थ इन्द्र का ध्यान करेंगे तब श्रंबा और यक्ष कल्की को चेताएँगे, पर वह किसी की नहीं सुनेगा। आखिर में संघ के कायोत्सर्ग ध्यान के प्रभाव से इन्द्र का आसन कँपेगा और वह ज्ञान से संघ का उपसर्ग देखकर जल्दी वहां आएगा। धर्म की बुद्धि वाला और अधर्म का विरोधी वह दक्षिण लोक पति (इन्द्र) जिन प्रवचन के विरोधी कल्कि का तत्काल नाश करेगा।

उपकर्मी कल्की अनीति से राज करके ८६ वर्ष की उमर में निर्वाण से २००० वर्ष बीतने पर इंद्र के हाथ से मृत्यू पाएगा। तब इंद्र कल्कि के पुत्र दत्त को हित शिक्षा दे श्रमणसंघ की पूजा करके अपने स्थान पर चला जाएगा।' इत्यादि　　　　　　　　　　　　( तित्थोगाली पइन्ना का अनुवाद )

'गौतम—भगवन्! श्रीप्रभनामक अनगार किस समय होगा?'

महावीर—'हे गौतम! जिस वक्त निकृष्ट लक्षणवाला, अदृष्टव्य, रौद्र, उग्र और क्रोधी प्रकृति वाला, उग्रदंड देनेवाला, मर्यादा और दया हीन अति क्रूर और पाप बुद्धिवाला, अनार्य, मिथ्या दृष्टि ऐसा कल्की नाम का राजा होगा; जो पापी श्रमणसंघ की भिक्षा के निमित्त कदर्थना करेगा, और उस वक्त जो शील समृद्ध और सत्यवंत साधु होंगे उनकी ऐरावतगामी वज्रपाणि इंद्र आकर सहायता करेगा। इस समय श्रीप्रभ नामक अनगार होगा।'　　　　　　　　　　　　महानिशीथ, पाँचवाँ अध्ययन

इनके अलावा भी कई ग्रन्थों में कल्की का अधिकार लिखा मिलता है पर सब का सारांश एक ही है कि कल्की एक महा अत्याचारी धर्मान्ध धर्म द्वेषी होगा और वह साधुओं को कष्ट देगा और इंद्र के हाथों से मारा जायगा। इत्यादि—

(२) बोद्ध ग्रन्थकारों का मत है कि—

बौद्धों के ग्रन्थों में भी पुष्यमित्र के विषय में लिखा है कि पुष्यधर्मा के पुत्र पुष्यमित्र ने अपने मंत्रियों से पूछा—ऐसा कौन उपाय है जिससे हमारा नाम हो? मंत्रियों ने कहा—महाराज आपके वंश में राजा अशोक हुआ जिसने ८४००० धर्मराजिका स्थापित करके अपनी कीर्ति अचल की जो जहां तक भगवान (बुद्ध) का शासन रहेगा वहां तक रहेगी। आप भी ऐसा कीजिये ताकि आपका नाम अमर हो जाय। पुष्यमित्र ने कहा—राजा अशोक तो बड़ा था हमारे लिये कोई दूसरा उपाय है? यह सुनकर उसके एक अश्रद्धावान् ब्राह्मण ने कहा—देव! दो कारणों से नाम अमर होगा। × × × राजा पुष्यमित्र चतुरंग सेना को सज्जित न करके भगवच्छासन का नाश करने की बुद्धि से कुक्कुटाराम की ओर गया, पर द्वार पर जाते ही घोर सिंहनाद हुआ जिससे भयभीत होकर राजा वापिस पाटलीपुत्र को चला आया। दूसरी और तीसरी बार भी यही बात हुई। आखिर में राजा ने भिक्षु और संघ को बुला

# मगद देश का राजा पुष्पमित्र या कल्की अवतार

मगध का राजा पुष्पमित्र—पाठक पहले पढ़ आये हैं कि मगध के सिंहासन पर मौर्य-वंशी अंतिम राजा बृहद्रथ राज करता था। उसके मंत्री पुष्पमित्र था जोकि अपने स्वामी को विश्वासघात से मार कर स्वयं मगद का राजा बन गया था।

जब से मगध की राजसत्ता पुष्पमित्र के हाथ में आई तब से ही वहां के जैन एवं बौद्धों के दिन बदल गये। कारण पुष्पमित्र कट्टर वेदानुयायी था। पर गत तीन चार शताब्दियों में शिशुनागवंशी, नंदवंशी और मौर्यवंशी जितने राजा हुए वे सब के सब जैन एवं बौद्ध धर्मोपासक थे और उन्होंने यज्ञ हिंसा के विरुद्ध उपदेश कर जनता को 'अहिंसापरमोधर्म' के परम उपासक बना दिये थे अतः ब्राह्मण धर्म कमजोर होकर मृत्यु शय्या पर अंतिम श्वासोच्छ्वास ले रहा था। ऐसी अवस्था में पुष्पमित्र ने मृत प्राय ब्राह्मण धर्म में पुनः जान डालकर उसे पैरों पर खड़ा किया।

जैनों ने अपनी सत्ता के समय में किसी दूसरे धर्म पर अत्याचार नहीं किया पर राजोचित सभी धर्मों का सत्कार किया था एवं अशोक के समय बौद्ध धर्म की प्रबलता होने पर भी श्रमणों एवं ब्राह्मणों का सत्कार होता था। पर पुष्पमित्र ने धर्मांधता के कारण अपने हाथ में राजसत्ता आते ही जैनों एवं बौद्धों पर जुलम गुजारना शुरू कर दिया, यहां तक कि जैन मंदिरोपाश्रय, बौद्ध मंदिर मठ आदि तोड़ फोड़कर नष्ट भ्रष्ट कर डाले, जैन एवं बौद्ध साधुओं को कत्ल करा दिये, कईयों को कारागृह में ठूंस दिये, कइयों के भेष छीन लिये गये, कई भिक्षा लाते थे उनकी भिक्षा से भी कर लेने के लिये उनको तंग करता था, कर न देने से उनको कैद कर उनकी बुरी हालत करता था जिसका रोमांचकारी वर्णन जैन और बौद्ध ग्रंथों में अद्यावधि विद्यमान है। यही कारण है कि कई जैन श्रमणों और बौद्ध भिक्षुओं ने मगध देश का त्याग कर एवं अन्य प्रांतों में जाकर अपने प्राण बचाये।

कई विद्वानों का मत है कि शास्त्रों में कल्कि की कथा लिखी गई है शायद वह कल्कि राजा पुष्पमित्र ही हो। क्योंकि इनके जीवन की बहुत सी घटनाएं कल्कि से मिलती हुई हैं।

जैन, बौद्ध और पुराणकारों ने अपने २ ग्रंथों में कल्कि का वर्णन किया है। यदि लक्ष देकर देखा जाय तो इन तीनों धर्म के लेखकों की प्रायः सब घटनाएं मिली जुलती हैं जिसको मैं यहां संक्षिप्त से लिख देता हूँ।

(१) कल्कि के विषय में जैन ग्रंथ कारों का मत है कि—

वीर जिणागुणवीसं सएहिं पणमास बारवरिसेहिं।
चंडाल कुले होही, पाडलपुरि समण पडिकूलो ॥ ४४ ॥
चित्तट्ठमि विट्ठिभवो, कक्की १ रुद्दो२ चउमुह३ ति नामा ॥

'वीर निर्वाण से १९१२ वर्ष और ५ मास बीतने पर पाटलिपुत्र नगर में चंडाल के कुल में चैत्र की अष्टमी के दिन श्रमणों ( साधुओं ) का विरोधी जन्मेगा जिसके तीन नाम होंगे—१कल्की, २ रुद्र, और ३ चतुर्मुख।

—धर्मघोषसूरिकृत कालसप्ततिका।

इस विषय में श्रीमान् पन्यासजी कल्याणविजयजी महाराज ने अपने 'वीरनिर्वाणसंवत और जैनकाल गणना' नामक पुस्तक में अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जिस कल्की राजा का जैन, बौद्ध और पुराणकारों ने वर्णन किया है वह कल्की पुष्पमित्र ही हो सकता है। इत्यादि:—

पन्यासजी महाराज के प्रमाण और युक्तियाँ बहुत महत्त्व पूर्ण हैं। यदि धर्म द्रोही पुष्पमित्र को ही कल्की मान लिया जाय तो असंगत कुछ भी नहीं है। कारण तीनों धर्म वालों की लिखी हुई कल्की की घटनाएं पुष्पमित्र के जीवन के साथ घटित होती हैं अब रहा कल्की होने के समय की बात अतः इस विषय में—हाँ जैन, बौद्ध और ब्राह्मणों ने कल्की के होने का समय पृथक् पृथक् लिखा है परन्तु जैनों का मत है कि वर्तमान समय के पूर्व कल्की हो चुका है क्योंकि जैन लेखकों ने कल्कि का समय वीर निर्वाण संवत १००० से २००० तक का लिखा है। जब हम वीर निर्वाण से २००० वर्ष का समय देखते हैं तो इसमें पुष्पमित्र के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति ऐसा नजर नहीं आता कि जिसने धर्मांधता के वशीभूत हो साधुओं को कत्ल किया हो या साधुओं की भिक्षा पर टेक्स लगाया हो जैसा कि पुष्पमित्र ने किया था अतः पुष्पमित्र को ही कल्की मान लेना न्याय संगत ही कहा जा सकता है।

अब रहा पुराणकारों द्वारा लिखित कल्की का समय जो वे कल्की को कलियुग का अन्त में होना बतलाया है जब कि राजा कल्की के विषय में जैन बौद्ध और पुराणकारों की लिखित घटनाएं सब सदृश ही हैं और वे प्रायः एक ही पुरुष के लिये ही हैं तो कोई कारण नहीं कि हम इस घटनाओं को ऊपर लिखे अनुसार पुष्पमित्र के लिये न मानें।

और इस विषय को तो मैं इतना ही कह कर विद्वानों पर छोड़ देता हूँ कि मगध के सिंहासन पर पुष्पमित्र एक ऐसा भारत में कलंक स्वरूप राजा हुआ है कि भारत के इतिहास में ऐसा धर्मान्ध कोई भी राजा नहीं हुआ था।

जैसे पुष्पमित्र ब्राह्मण धर्म को मानने वाला मगध का राजा हुआ वैसे ही उस समय कलिंग के सिंहासन पर खारवेलराजा जैन धर्म को मानने वाला चक्रवर्ति राजा हुआ पर कहाँ पुष्पमित्र की धर्मान्धता और कहाँ खारवेल की सम्यग् दृष्टि वह जैन होता हुआ भी अपना राज्याभिषेक ब्राह्मण धर्मानुसार करवाया था और उस समय के तीनों धर्मों ( जैन बौद्ध, वेदान्तिक ) को यथावत् सन्मान की दृष्टि से देखता था।

इति कलिंग का संक्षिप्त इतिहास।

गये। पर बहुतेरे नहीं भी गये। गंगाशोण के उपद्रव विषयक जिन-वचन को जिन्होंने सुना वे वहां से अन्य देश को चले गए और कई एक नहीं भी गए। × भिक्षा यथेच्छ मिल रही है, फिर हमें भागने की क्या जरूरत है? यह कहते हुए कई साधु वहां से नहीं गए। × ×

वह दुर्मुख और अधर्म्य मुख राजा चतुर्मुख ( कल्की ) साधुओं को इकट्ठा करके उनसे कर मांगेगा और न देने पर श्रमण संघ तथा अन्य मत के साधुओं को कैद करेगा। तब जो सोना चांदी आदि परिग्रह रखने वाले साधु होंगे वे सब 'कर' देकर छूटेंगे। कल्की उन पाखंडियों का जबरन वेष छिनवा लेगा। × × 'लोभग्रस्त होकर वह साधुओं को भी तंग करेगा। तब साधुओं का मुखिया कहेगा—'हे राजन्! हम अकिंचन हैं, हमारे पास क्या चीज है जो तुझे कर स्वरूप दी जाय? इस पर भी कल्की उन्हें नहीं छोड़ेगा और श्रमण संघ कई दिनों तक वैसे ही रोका हुआ रहेगा। तब नगर देवता आकर कहेगा—अरे निर्दय राजन्! तू श्रमण संघ को हैरान कर क्यों मरने की जल्दी तय्यारी करता है, जरा सबर कर। तेरी इस अनीति का आखरी परिणाम तय्यार है। नगर देवता की इस धमकी से कल्की घबरा जायगा और आर्द्र-वस्त्र पहिन कर श्रमण संघ के पैरों में पड़कर कहेगा 'हे भगवन्! कोप देख लिया अब प्रसाद चाहता हूँ'। इस प्रकार कल्की का उत्पात मिट जाने पर भी अधिकतर साधु वहां रहना नहीं चाहेंगे, क्योंकि उन्हें मालूम हो जायगा कि यहां पर निरंतर घोर वृष्टि से जल प्रलय होने वाला है।

तब वहां नगर के नाश की सूचना करने वाले दिव्य आंतरिक्ष और भौम उत्पात होने शुरू होंगे कि जिनसे साधु साध्वियों को पीड़ा होगी। इन उत्पातों से और अतिशायी ज्ञान से यह जानकर कि 'सांवत्सरिक पारणा के दिन भयंकर उपद्रव होने वाला है'—साधु वहां से विहार कर चले जायेंगे। पर उपकरण मकानों और श्रावकों का प्रतिबंध रखने वाले तथा भविष्य पर भरोसा रखने वाले साधु वहां से जा नहीं सकेंगे।

तब सत्रह रात दिन तक निरंतर वृष्टि होगी जिससे गंगा और शोण में बाढ़ आएंगी। गंगा की बाढ़ और शोण के दुर्धर वेग से यह रमणीय पाटलिपुत्र नगर चारों ओर से बह जायगा। साधु जो धीर होंगे वे आलोचना प्रायश्चित करते हुए और जो श्रावक तथा वसति के मोह में फंसे हुए होंगे वे सकरुण दृष्टि से देखते हुए मकानों के साथ ही गंगा के प्रवाह में बह जायंगे। जल में बहते हुए वे कहेंगे—'हे स्वामी सनत्कुमार! तू श्रमण संघ का शरण हो, यह वैयावृत्य करने का समय है।' इसी प्रकार साध्वियां भी सनत्कुमार की सहायता मांगती हुई मकानों के साथ बह जायँगी। इनमें कोई कोई आचार्य और साधु साध्वियां फलक आदि के सहारे तैरते हुए गंगा के दूसरे तट पर उतर जायँगे। यही दशा नगर निवासियों की भी होगी। जिनको नाव फलक आदि की मदद मिलेगी वे बच जायंगे, बाकी मर जायंगे। राजा का खजाना पाडिवत आचार्य और कल्की राजा आदि किसी तरह बचेंगे पर अधिकतर वह जायँगे। अन्य दर्शन के साधु भी इस प्रलय में बह कर मर जायेंगे। बहुत कम मनुष्य ही इस प्रलय से बचने पायेंगे।

इस प्रकार पाटलिपुत्र के बह जाने पर धन और कीर्ति का लोभी कल्की दूसरा नगर बसाएगा और बाग बगीचे लगवा कर उसे देवनगर तुल्य रमणीय बना देगा। फिर वहां देव मंदिर बनेंगे और साधुओं का विहार शुरू होगा। अनुकूल वृष्टि होगी और अनाज वगैरह इतना उपजेगा कि उसे खरीदने वाला नहीं मिलेगा। इस प्रकार ५० वर्ष सुभिक्ष से प्रजा अमनचैन में रहेगी।

के आदर्श गुणों से प्रसन्न हो कर आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में आपको आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रक्खा था ।

जब आप आचार्य बन गये तो अखिल गच्छ की जुम्मेवारी आपके सिर आ पड़ी पर इस कार्य में आप पहले से ही अच्छे निपुण एवं कुशल थे बाद आपश्री ने एक समय चन्द्रावती नगरी में पधार कर वहाँ के राजा त्रिभुवनसेन को ऐसा उपदेश दिया कि उसने मरुधरादि प्रान्तों मे विहार करने वाले साधुओं की एक श्रमण सभा की जिसमें उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ के प्रायः सब साधु साध्वियों को आमंत्रण देकर बुलवाये। इसमें कोरंटगच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि ( द्वितीय ) अपने शिष्य समुदाय के साथ पधारे। दोनों गच्छों के करीब ३००० साधु साध्वियाँ तथा आवन्ति प्रदेश में विचरने वाले कई साधु भी इस सभा में एकत्र हुये थे। उस समय श्राद्ध वर्ग भी बहुत संख्या में आये थे कारण कि ऐसा कल्याण कारी अवसर उन लोगों को फिर कब मिलने वाला था। इस प्रकार चतुर्विध श्री संघ चन्द्रावती में एकत्र हुआ ।

ठीक समय पर सभा हुई । उसमें आचार्य कक्कसूरिजी महाराज ने अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा साधु साध्वियों को संबोधन करके कहा:-महानुभावों ! आपने संसार को असार जान कर सब भौतिक सुख साहबी त्याग कर दीक्षा ली है अतः आप अपना कल्याण करें इसमें कोई विशेषता की बात नहीं है पर अपने कल्याण के साथ अन्य भूले भटके भाइयों को सन्मार्ग पर लाकर उनका कल्याण करना यही आपके जीवन की विशेषता है । आप जानते हैं कि इस समय मुनियों को प्रत्येक प्रांत में घूम घूम कर जैनधर्म का प्रचार करने की कितनी आवश्यकता है । अपने पूर्वज-महात्माओं ने किस प्रकार की कठिनाइयों और परिसहों को सहन कर अपने लिये विहार के कैसे सुगम रास्ते बना गये हैं कि आज आप किसी भी प्रांत में जावें अपने को वहाँ भी कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं रहती है । मरुधर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंध और पांचाल तक तो जैनधर्म का प्रचार हो गया है पर अभी दक्षिण की ओर किसी का भी विहार नहीं हुआ है । हां, प्राचीन जमाने में लोहित्याचार्य ने दक्षिण में जाकर जैनधर्म का प्रचार अवश्य किया था पर इस समय वहां का क्या हाल है ? अतः आप लोगों को दक्षिण की ओर विहार करना चाहिये और यही आपकी परीक्षा का समय है। जैसे मनुष्य स्वयं मरना चाहे तो एक सुई भी काफी है तब ये जो बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र रक्खे जाते हैं वे किसके लिये हैं ? अन्यायी को सजा देने के लिये । इसी प्रकार आप अपना कल्याण एक नवकार मंत्र मात्र से कर सकते हैं फिर इतने शास्त्रों का अध्ययन किया है वह किस लिये ? उपरोक्त न्याय से यह भूले भटके प्राणियों के लिये ही है कि इन शास्त्रों द्वारा उनको समझाया जाय इत्यादि । सूरिजी ने इस प्रकार का उपदेश दिया कि उपस्थित मुनियों के हृदयों में जैनधर्म प्रचार के लिये मानो एक प्रकार की बिजली ही चमक उठी हो, विशेषता यह थी कि उन मुनियों की भावना दक्षिण में विहार करने की हो गई। उसी सभा में कई मुनियों ने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! यदि आप आज्ञा फरमावें तो हम लोग दक्षिण की ओर विहार करने को तैयार हैं । बस सूरिजी यही चाहते थे । आचार्यश्री ने योग्य मुनियों को पदवियों से विभूषित कर पाँच पदवरों के साथ पाँचसौ साधुओं को देकर अर्थात् एक एक पदवीधर के साथ सौ-सौ साधु देकर पाँच जत्थे बना दिये और क्रमश सौ सौ साधुओं को एक-एक रास्ते जाने की आज्ञा दे दी । और मुनिवर्ग ने बड़े उत्साह के साथ विहार करने के लिये प्रयान भी कर दिया। बलिहारी है उन सूरीश्वरजी एवं आपश्री के शिष्यों की

कर कहा—मैं बुद्ध शासन का नाश करूंगा। बतलाओ तुम क्या चाहते हो, स्तूप या संघाराम? इस पर भिक्षुओं ने स्तूपों को ग्रहण किया। पुष्यमित्र संघाराम और भिक्षुओं का नाश करता हुआ शाकल तक पहुँच गया। उसने यह घोषणा करदी कि जो कोई भी मुझे श्रमण (साधु) का मस्तक लाकर देगा उसे मैं सोने की सौ मुहरें दूंगा × × अतः लोगों ने बड़ी २ संख्या में सिर देना आरंभ किया × × सुन कर वह अर्हत ( अर्हत प्रतिमा ) की घात करने लगा। पर वहाँ उसका कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। सब प्रयत्न छोड़ कर वह कोष्टक में गया। उस समय दंष्ट्राविनाशी यक्ष सोचता है कि यहाँ भगवच्छासन का नाश हो रहा है, पर मैंने यह शिक्षा ग्रहण की हुई है कि 'मैं किसी का अप्रिय नहीं करूंगा।' उस यक्ष की पुत्री कृमीसेनयक्ष याचना करता था पर उसे पापकर्मी समझ कर वह अपनी पुत्री को नहीं देता था, पर उस समय उसने भगवच्छासन की रक्षा के निमित्त अपनी पुत्री कृमीसेनयक्ष को देदी।

पुष्यमित्र को एक बड़े यक्ष की मदद थी, जिससे वह किसी से मारा नहीं जाता था।

दंष्ट्राविनाशी यक्ष पुष्यमित्र संबंधी यक्ष को लेकर पहाड़ों में फिरने को चला गया। उधर कृमीसेन यक्ष ने एक बड़ा पहाड़ लाकर सेना सहित पुष्यमित्र को रोक लिया।

उस पुष्यमित्र का 'मुनिहत' ऐसा नाम स्थापित किया।

जब पुष्यमित्र मारा गया तब मगद में मोर्यवंश का अंत हुआ।

"दिव्यावदान के २६ वें अवदान से कुछ श्लोकों का सारांश

( ३ ) वेदान्तिक एवं पुराणकारों का मत है कि—

'जब कलियुग पूरा होने लगेगा तब धर्म रक्षण के लिये शंभलगाम के मुखिया विष्णुयश ब्राह्मण के यहाँ भगवान् विष्णु कल्की के रूप में अवतार लेंगे।'

'कल्की देवदत्त नामक तेज घोड़े पर सवार हो के खड्ग से दुष्टों और राजवेश में रहते हुए सब लुटेरों का नाश करेगा। जो म्लेच्छ हैं, जो अधार्मिक और पाखंडी हैं वे सब कल्की द्वारा नाश किये जायँगे।

—श्री मद्भागवत स्कंध १२ वां, अध्याय २

उपरोक्त तीनों धर्म वालों के शास्त्र प्रमाणों से इतना तो सहज ही में जाना जा सकता है कि कल्की ब्राह्मणों के पक्ष में और जैन एवं बौद्धों के विपक्ष में होगा। यही कारण है कि ब्राह्मण उसको विष्णु का अवतार लिखते हैं जब कि जैन एवं बौद्ध उसको धर्म विध्वंसक, अन्यायी एवं अत्याचारी लिखते हैं। यदि कल्की पुष्पमित्र ही है तो यह सब घटनाए सब तरह से उसके लिये मिलती हुई है।

जैन शास्त्रकारों का यह कथन है कि कल्की धर्म का ध्वंस करेगा और जब उसका अन्याय चरम सीमा तक पहुँच जायगा तब इंद्र आवेगा और उसे दंड देगा अर्थात् जान से मार डालेगा और उसके पुत्र दत्त को राज्य देगा इत्यादि। यही बात राजा पुष्पमित्र के लिये ठीक घटित होती है कारण उड़ीसा की हाथीगुंफा के शिलालेख में लिखा है कि मगद का राजा पुष्पमित्र के अन्याय के कारण महामेघवाहन चक्रवर्ती कलिंगपति राजा खारवेल को मगध पर दो बार चढ़ाई करनी पड़ी और पुष्पमित्र को ऐसा दंड दिया कि उसका सिर अपने चरणों में झुका दिया। खारवेल कट्टर जैन था अतः जब उनसे पुष्पमित्र का अन्याय देखा न गया तब ही उसने मगध पर चढ़ाई कर उसे इस प्रकार दंड दिया हो तो यह असंभव भी नहीं है।

उत्पन्न हुए कि इतनी चमत्कारी एवं सुंदर आकृतिवाली मूर्ति होने पर भी इसके हृदय पर दो ये ग्रंथियें शोभा नहीं देती हैं इरस के मुवाफिक खराब लगती हैं । किसी ने कहा कि स्त्रियों के स्तन की भाँति ये गांठें अच्छी नहीं दिखती हैं, किसी ने कहा कि अब काल गिरता एवं खराब आता है । यदि अंगलूऐ करते समय किसी की भावना खराब होजायगी तो महान् आशातना का कारण होगा इत्यादि जिसके जैसा जीमें आया वैसे ही कहा । इस पर नवयुवकों ने विचार किया कि इन ग्रंथियों को कटाकर दूर क्यों न करवादी जाय । इस इरादे से उन्होंने बुजुर्गों से प्रार्थना की कि मूर्ति के हृदय पर जो दो ग्रंथियें हैं उनको कटा दी जाय तो क्या हानि है ? इस पर दुखी हृदय से वृद्धों ने कहा:—अरे मूर्खो ! तुमने बिना विचारे यह सवाल क्यों किया है ? खैर, आज तो हमने सुन लिया है पर आइंदे से कभी ऐसा शब्द न निकालना । क्या तुम लोगों को यह मालूम नहीं है कि यह प्रभावशाली मूर्ति देवी सच्चायिका ने बनाई है और महा प्रतिभाशाली आचार्यश्री रत्नप्रभ सूरि ने इसकी शुभ-लग्न में प्रतिष्ठा करवाई है । उस समय ये दोनों ग्रंथियें मौजूद थीं, यदि ये इन ग्रंथियों को ठीक नहीं समझते तो क्या उस समय सुथार नहीं था, या क्या टाँकी नहीं थी, वे स्वयं हटा देते पर उन्होंने सोच समझ कर इन ग्रंथियों को रहने दिया है । ये श्रीसंघ की भलाई के लिये ही हैं और इस मूर्ति की प्रतिष्ठा होने के बाद श्रीसंघ की सब तरह से वृद्धि हुई है अतः तुम लोग जवानी के मद में कहीं मूल प्रतिष्ठा का भंग कर अनर्थ न कर डालना इत्यादि खूब समझाया । उस समय तो नवयुवकों ने वृद्धों का कहना मान लिया पर उनके दिल में यह बात हर दम खटकती जरूर थी और वे लोग ऐसे समय की राह देख रहे थे कि मौका मिलने पर दोनों गाठे हटा कर अपना दिल चाहा करलें ।

---

यदुत भगवन् महावीरस्यहृदयेग्रन्थीद्वयं पूजांकुर्वतांकुशोभाकरोति अतःमशकरोगवत्छेदयितां को दोषां ? वृद्धैः कथितं अयं अघटितः टंकिना घातो नअर्हःविशेषतो अस्मिन् स्वयंभूश्रीमहावीर बिंबं । वृद्धवाक्यमवगण्यप्रच्छन्नंसूत्रधारस्यद्रव्यंदत्वाग्रन्थिद्वयंछेदितं तत्क्षणादेवसूत्रधारोमृतःग्रन्थिच्छेदमदेशेतु रक्तधाराछुटिता । तत्उपद्रवोजातः । तदा उपकेशगच्छाधिपति आचार्यश्रीकक्कसूरिभिःपापन्दिःचतुर्विधसंघेनाहूता । वृत्तांतंकथितं आचार्यैः चतुर्विधसंघसहितेनउपवासत्रयंकृतं । तृतीयउपवासप्रान्तेरात्रिसमयेशासनदेवीमत्यक्षी भूयआचार्यमप्रोक्तं—हे प्रभो न युक्तंकृतंबालश्रावकैःमद्घटितंबिंबंआशातितंकलानी शकृतंअतोनंतरंउपकेशनगरंशनैः २ उपद्रंशंभविष्यति । गच्छेविरोधीभविष्यति । श्रावकाणां कलहोभविष्यति गोष्ठिकानगरात् दिशेदिशंयास्यंति । आचार्यैःप्रोक्तंपरमेश्वरि ! भवितव्यंपरं त्वंअत्रतुरुधिरंनिवारय ? देव्याप्रोक्तंघृतघटेनदधिघटेनइक्षुरसघटेनदुग्धघटेनजलघटेन कृतोपवासत्रयपदा भविष्यति तदा अष्टादशगोत्रमेलंकुरु तेभी तातहडगोत्रं, बापणागोत्रं, कर्णाटगोत्रं, बलहगोत्रं, मोराक्षगोत्रं, कुलहटगोत्रं, विरहटगोत्रं, श्री श्रीमालगोत्रं, श्रेष्ठिगोत्रं, एतेदक्षिणबाहु, सुचंतीगोत्रं, आइचणागगोत्रं, भूरिगोत्रं, भाद्रगोत्रं, चींचटगोत्रं, कुंभटगोत्रं, कनउजयागोत्रं, डिंडभगोत्रं, लघुश्रेष्ठिगोत्रं, एतेवामबाहुस्नात्रंकर्तव्यं नान्यथाऽशिवो, शान्तिर्भविष्यति । मूल प्रतिष्ठानंतरं वीरप्रतिष्ठादिनिर्मातीते शतत्रये ३०३ अनेहसि ग्रंथियुगस्य वीरोरस्यस्य भेदोऽजनि दैवयोगात् ।

—"उपकेशगच्छ पट्टावली"

# १३—आचार्यश्री कक्कसूरि ( द्वितीय )

आचार्यस्तु स कक्कसूरिविह यो नैष्ठीक आसीन्महान्,
दीक्षानंतर मेव सोऽवगतवान् सर्वाणि शास्त्राणि वै ।
वीरस्तापस एक एव विदितः शक्त्या प्रतापेन च,
सिद्धीना मखिलो गणो व्यरमतां तत्पाद छाया तले ॥
पश्चात्सोऽप्युपकेश नाम नगरे मूर्त्याः सुवीरस्य च,
ग्रन्थी नामव छेद कारण तया विघ्नस्तु जातो महान् ।
शान्तः सोऽप्यमुना निजेन विहितः सामर्थ्य भारेण वै,
नव्यान् जैनमत प्रभावित तमान् कृत्वा प्रसिद्धिर्गता ॥

आचार्यश्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही प्रतिभाशाली, विद्वान्, तपस्वी और लब्धि संपन्न आचार्य हुए थे। पाठक गत प्रकरण में पढ़ चुके हैं कि उपकेशपुर के राजा चैत्रसिंह ने अपने लघु पुत्र लखणसिंह के साथ आचार्यश्री यक्षदेवसूरि के चरण कमलों में भगवती दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा लेने के बाद लखणसिंह का नाम मुनि लक्ष्मीप्रधान रखा गया था। मुनि लक्ष्मीप्रधान ने आचार्यश्री की विनय भक्ति करते हुए जैन साहित्य का खुब अध्ययन किया। इतना ही नहीं बल्कि मुनिजी ने जैनेतर साहित्य एवं दार्शनिक तथा व्याकरण, न्याय, काव्य, तर्क, छंद, अलंकार, और ज्योतिषादि अष्टांग महानिमित्त का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। आपकी युक्ति एवं तर्क शक्ति इतनी जबर्दस्त थी कि आपने कई राजा महाराजाओं की सभाओं में वादियों को परास्त कर जैनधर्म की विजय पताका चारों ओर फहरा दी थी। यही कारण था कि वादी प्रतिवादी आपके सामने सदैव नत मस्तक रहते थे, इतना ही नहीं पर वे आपके नाम मात्र से कॉंप उठते थे। एक बार तो बौद्धाचार्य धर्मादित्य के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ था उसमें भी विजय माला आपके ही कण्ठ में सुशोभित हुई थी! यज्ञ हिंसा का तो आपश्री सख्त विरोध करते थे और जहाँ तहाँ भ्रमण कर आपने 'अहिंसा परमोधर्मः' का विजय डंका बजवा दिया था। आप तप करने में बड़े ही शूरवीर थे। छठ, अठम, अठाइयों एवं मास खामण के तप तथा कई प्रकार के अभिग्रह कर कठोर तपश्चर्या भी किया करते थे और उस कठोर तपश्चर्या के प्रभाव से अनेक राजा महाराजा तो क्या पर कई देवी देवता आपके चरण कमलों की सेवा करते थे। सरस्वती और लक्ष्मी देवियाँ तो आपके प्रति सदैव वरदाई रहती थीं। आप जैसे तेजस्वी व यशस्वी थे वैसे वचःस्वी भी थे। आपका व्याख्यान इतना रोचक एवं मधुर होता था कि बड़े बड़े राजा महाराजा सुनने के लिये लालायित रहते थे। धर्म प्रचार करने में तो आप इतने कट्टर थे कि जहाँ पधारते वहाँ अनेक जनेतरों को जैन बनाने में सिद्धहस्त थे। इतना ही क्यों पर आपने अनेकों नर-नारियों को जैन दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी आशातीत वृद्धि की थी। इन सब आप

कि उन्होंके हृदय में धर्म प्रचार की कैसी भावना थी कि दुःख सुख की परवाह न करते हुए सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य कर शीघ्र ही दक्षिण की ओर धर्मप्रचार के निमित्त प्रस्थान कर दिया।

शेष साधुओं को भी जहाँ जैसी आवश्यकता थी उसके अनुसार पृथक् २ प्रांतों में विहार की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् आचार्य सोमप्रभसूरि ने कहाः—पूज्य ! हम भी आपकी आज्ञा चाहते हैं, कृपा कर फरमावें जैसी आपकी आज्ञा हो हम भी विहार करने को तैयार हैं। आचार्य कक्कसूरिजी ने कहाः—सूरिजी ! आप और हम दो नहीं पर एक ही हैं चाहे गच्छ का नाम अलग हो एवं आचार्य अलग होते हों पर जैनधर्म का प्रचार करने में तो अपन सब एक ही हैं और सब का ध्येय एक स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करते हुए जैनधर्म का प्रचार करना ही है इत्यादि पुनः आचार्य कक्कसूरि ने फरमाया कि आप और आपके साधु अभी मरुधर के अलावा अन्य प्रांतों में नहीं पधारे हैं अतः आपको एक प्रांत में न रह कर अनेक प्रांतों में विहार करना चाहिये। अगर आपकी इच्छा हो तो श्री सिद्धगिरि की यात्रा करते हुए कच्छ, सिंध पांचाल होते हुये पूर्व प्रान्त तक पधारें और वहां सम्मेतशिखर आदि की यात्रा का लाभ हासिल कर लें।

आचार्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य कर आचार्य सोमप्रभसूरि अपने कई विद्वान शिष्यों के साथ विहार करके श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर सौराष्ट्र कच्छ में भ्रमण करते सिंध में पधार गये।

सूरिजी ने चंद्रावती के राजा त्रिभुवनसेन आदि को भी उपदेश दिया कि हे राजन् ! मुनि तो प्रत्येक प्रांतों में घूम घूम कर धर्म का प्रचार करते ही हैं पर आप लोगों को भी इस कार्य में भाग लेना चाहिये। आपके पूर्वजों ने जैनधर्म के प्रचार के लिये बहुत प्रयत्न किया था उसी का ही यह सुन्दर फल है कि आज जैनधर्म का सर्वत्र सूर्य की भांति प्रकाश हो रहा है इत्यादि। राजादि सब लोगों ने कहाः—पूज्यवर ! आपका फरमाना सत्य है और आप जैसे प्रेरक महात्मानों ने इस घोर मिथ्यात्व और दुराचारियों के पाखंड को हटा कर जैनधर्म का साम्राज्य स्थापित किया है पर हम लोग गृहस्थ एवं संसार में हाथी की भांति खूच रहे हैं फिर भी आप श्रीमान् हुक्म फरमावें वह शिरोधार्य करने को हम तय्यार हैं इत्यादि। सूरिजी के उपदेश का जनता पर बड़ा भारी असर हुआ। और वे जैन धर्म का प्रचार के लिये तैयार हो गये।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज ने अपने जीवन में प्रत्येक प्रांत में घूम घूम कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया, साधु समाज को उत्तेजित कर उनके द्वारा जैन समाज को जागृत कर धर्म की खूब उन्नति करवाई।

आचार्य कक्कसूरि जैसे धर्म प्रचारक थे वैसे ही पिछली अवस्था में आप योगसाधना करते हुए समाधि को विशेष चाहते थे। यही कारण है कि आप परम निर्वृत्ति के स्थान आबू एवं गिरनार की भीमकाय गुफाओं में रह कर ध्यान किया करते थे। आप श्री की योग साधना को देख कर कई जैन एवं जैनेतर लोग भी आप श्री के पास योगाभ्यास करने को आया करते थे और आप श्री ने अपनी उदारतापूर्वक बिना किसी भेदभाव उनको योग एवं ध्यान अभ्यास कराया करते थे।

एक समय का जिक्र है कि उपकेशपुर में श्रीस्वयंभू महावीर के मंदिर में अष्टाह्निका महोत्सव हो रहा* था, वहाँ वृद्धों के साथ कई नवयुवक भी पूजा अर्चा किया करते थे। एक दिन कई नवयुवक मूर्ति को प्रक्षाल करवा कर अंगलूणे करते थे तो मूर्ति के हृदयस्थल पर नींबू के फल सदृश दो गांठें देख उनके दिल में यह भाव

* स्वयंभूश्रीमहावीरस्नात्रविधिकाले, कोसौविधिः कदाकिमर्थंसंजातःइत्युच्यन्तेतस्मिन्नेव देवगृहेअष्टान्हिकादिकमहोत्सवंकुर्वतास्तेपांमध्येअपरिणतवयसाकेपांचित्चित्तेइयंदुर्बुद्धिःसंजाताः।

एक आदमी को पत्र देकर शीघ्रगामिनी श्रोष्ट्री ( ऊँट ) द्वारा भेज दिया और कह दिया कि पहले मांडव्यपुर तलाश करना, न मिलने पर आबू जाना इत्यादि। सवार रवाना होकर मांडव्यपुर पहुँचा, तलाश करने पर भाग्यवशात् सूरिजी वहाँ मिल गये। श्रीसंघ का विनती पत्र पढ़कर बड़ा ही अफसोस किया पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है ? तब सूरिजी आकाश गामिनी विद्या से केवल एक मुहूर्तमात्र में उपकेशपुर पधार गये। वहाँ के हाल देख सूरिजी ने संघ अग्रेश्वरों के साथ अष्टम तप किया। तीसरे दिन की रात्रि में देवी सूरिजी के पास आई पर उस समय उसके कोप का पार नहीं था, यही कारण था कि सूरिजी नगर में आये पर देवीजी को इतना भी भान नहीं रहा कि वह तीन दिनों में सूरिजी महाराज की सेवा में नहीं आ सकी। जिस समय देवी आई है उस समय क्रोध के कारण विनय व्यवहार को भी भूल गई।

सूरिजी ने कहा:—"देवीजी! जो भवितव्यता थी वह बन चुकी, अब प्रकोप करने में क्या लाभ है अब तो इसके लिये शान्ति का प्रयत्न करना ही अच्छा है।"

देवी क्रोधातुर होकर बोली—प्रभो! इस नगर के लोग बड़े ही मूर्ख हैं कि पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि की कराई हुई प्रतिष्ठा का भंग कर दिया। यदि यह मूर्ति थी वैसी ही रहती तो इस महाजनसंघ का खूब अभ्युदय होता, पर इनकी तकदीर ही ऐसी थी। मूर्ति के टाँकी लगाने से भविष्य में इस महाजनसंघ में फूट पड़ेगी, कोई भी कार्य शांति एवं मिल जुल के नहीं होंगे क्लेश कदाग्रह का तो यह घर ही बन जायगा, तन धन से भी हानि होगी, इधर-उधर ये भ्रमण करते रहेंगे, इनका भविष्य अच्छा नहीं रहेगा।"

सूरिजी:—'देवीजी! ज्ञानियों ने जो जैसा भाव देखा है वैसा ही होगा, परन्तु अब आप पहले रक्तधारा बन्द करें और इसकी शान्ति का उपाय बतलावें।" इसमें ही सबका कल्याण है।

देवी—"पूज्यवर! आप तो शांति की कहते हैं पर मैं इन दुष्ट पापियों का मुंह तक देखना नहीं चाहती हूँ। ये लोग यहां से अपना मुँह लेकर चले जाँय तो भी अच्छा हो।"

सूरिजी.—"देवी! जरा शांत होकर विचार करें कि यदि यह संघ इस नगर को छोड़ कर चला जायगा तो पीछे रहेगा क्या ? और ये जो इतने मंदिर मूर्त्तियां हैं इनकी सेवा पूजा कौन करेगा ? दूसरा तो क्या पर आपकी भी सेवा पूजा कौन करेगा ? हाँ मनुष्य तो अज्ञानी हैं क्रोध के मारे अपना मान भूल जाते हैं पर आश्चर्य है कि देवता भी क्रोध के वश अपना मान भूल जाते हैं। भला देवीजी! जरा सोचिये कि यह अपराध चंद व्यक्तियों ने किया है या सब नगर ने ? यदि चंद व्यक्तियों ने किया है तो सब नगर पर इतना कोप क्यों ?" इत्यादि नरम गरम वचनों से सूरिजी ने देवी को उपदेश दिया।

---

उपायान् विविधांश्चक्रुस्ताप्टम्भ हेतवे । नोपरेमे परं श्राद्धा, स्ततोव्याकुलतांगताः ॥
श्री भाण्डव्यपुरे प्रैषीत्मनिज्ञप्तिकमौष्ट्रिकम् । सद्यश्रीकक्कसूरीण, माकारण कृतेरयात् ॥
सूरयोऽपि समाजग्मुः, कृतवन्तोऽष्टमंतपः । आविर्भूयगुरुन्चे, साक्षाच्छासनदेवता ॥
ममो न मव्यं विदधे, श्रावकैर्मूढबुद्धिभिः । भङ्गोमूलप्रतिष्ठाया, यदयंसमजायत ॥
परस्परं तत्पौराणां, विरोधोभविताऽधुना । दिशोदिशं प्रयास्यन्ति, लोका दारिद्र्य पीड़िताः ॥
पुर भ्रष्टोऽपि सम्भावी, किं यद्विर्वामरैं रिति । नाभविष्यत्तदभङ्ग, ममविष्यदिदंसदा ॥
सूरि प्रोवाच यद्भाव्यं, कर्मयोगेनदेहिनाम । तदन्यथाविधातुंनो, शक्तादेवासुराअपि ॥
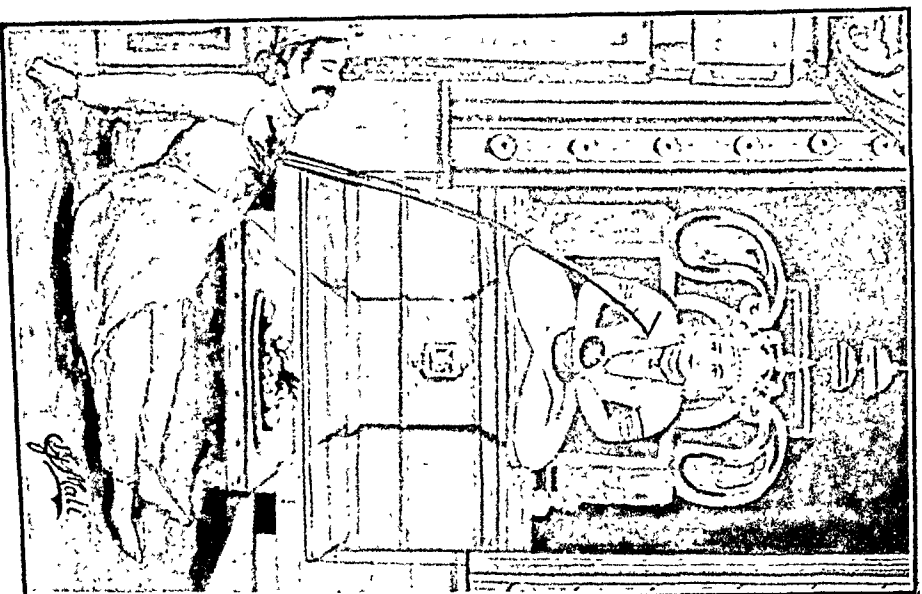
उपकेशपुर स्थित स्वयंभू महावीर की मूर्ति के वक्ष स्थल पर दो ग्रन्थियाँ थीं। उसको कई चुल्लक श्रावकों ने सुत्रधार को बुलाकर टाँकी लगाई कि उस स्थान में रक्त की धारा बहने लगी। पृष्ठ ३८९
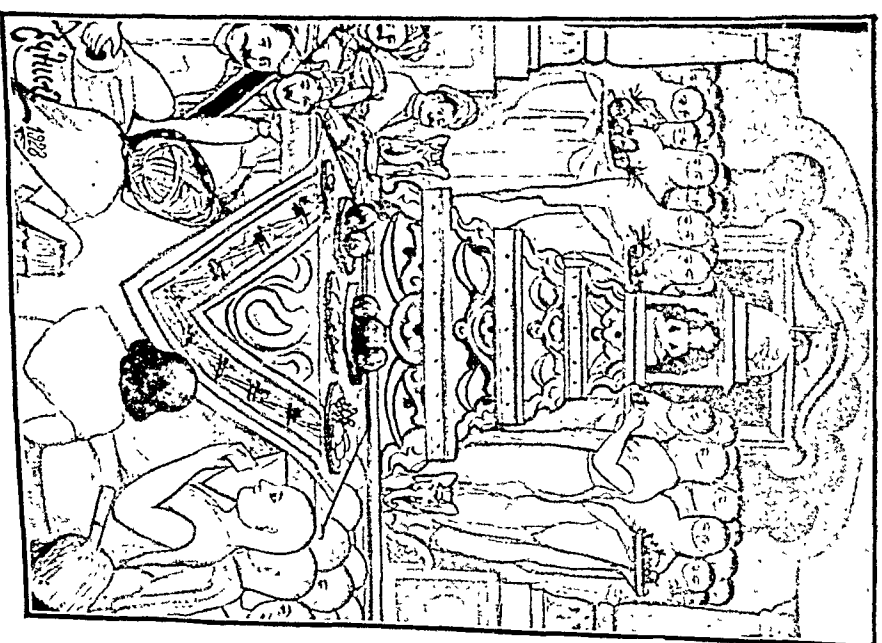
आचार्य कक्कसूरि के अध्यक्षत्व में शान्ति स्नात्र पढ़ाई जिसमें अठारह गौत्र वाले स्नात्रिये बने थे। अतः सब नगर में शीघ्र शान्ति हो गई। पृष्ठ ३९२

इस घटना का समय मूल प्रतिष्ठा ( वीरात् ७० वर्ष ) से तीन सौ तीन वर्ष का अर्थात् वीरात् ३७३ वर्ष का था। भवितव्यता टारी नहीं टरती है कि महाजनसंघ के अभ्युदय में इस प्रकार का रोड़ा आ खड़ा हुआ। परन्तु इसका उपाय ही क्या था, कारण ज्ञानियों ने यही भाव देखा था। महाजनसंघ का जैसा उदय ३०३ वर्षों में हुआ था वैसा बाद में नहीं हुआ।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज ने कई दिन वहाँ विराजमान रह कर जनता को धर्मोपदेश सुनाया।

यद्यपि उपकेशपुर नगर में उपद्रव की शान्ति तो गई थी पर फिर भी राजा प्रजा की इच्छा थी कि सूरिजी महाराज चातुर्मास यहीं करें, तो अच्छा रहेगा इत्यादि अतः श्री संघ ने सूरिजी महाराज से साग्रह विनती की और लाभा लाभ का कारण जान कर सूरिजी महाराज ने श्रीसंघ की विनति स्वीकार करली अतः वह चातुर्मास उपकेशपुर में ही किया।

आपश्री के विराजने से वहाँ की जनता ने यथा शक्ति बहुत लाभ प्राप्त किया। कई भावुकों ने सूरिजी के पास जैन दीक्षा भी ली। चातुर्मास के बाद सूरिजी के प्रभावशाली उपदेश से उपकेशपुर के आदित्य नाग गोत्रीय स्वनामधन्य शाह आशाल ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला। सूरिजी महाराज भी संघ में पधारे वहाँ की यात्रा कर सूरिजी ने अपने योग्य शिष्य मुनि देवसिंह को अपने पद पर सूरि बना कर उनका

---

तदादिमज्जनविधि, रेवं प्रवर्त्तते सदा। देव्यादेशो गुरुक्त च, कथंस्यादन्यथाकिंचित् ॥
वीरस्यदक्षिणो बाहौ, नवग्रामे नवक्रमात्। अष्टादशापि गोत्राणि, तिष्ठन्त्यत्र क्रमोहम ॥
तप्तभटो बप्पनाग, स्ततः कर्णाट गौत्रजः। तुर्यो बालभ्य नामापि, श्रीमालः पंचमस्तथा ॥
कुलभद्रो मोरिषश्च, भिरिहियाह्वयोऽष्टमः। श्रेष्ठीगोत्राण्य मून्यासन्, पक्षे दक्षिण संज्ञके ॥
सुचिंतिताऽऽदित्य नागौ, भोरो भाद्राथ चिंचिटिः। कुंभटः कन्यकुब्जोथ, डिड्भाख्योऽपि मोपि च ॥
तथान्यः श्रेष्ठि गोत्रीयो, महावीरस्य नामतः। नव तिष्ठन्ति गोत्राणि, पंचामृत महोत्सवे ॥
वीर प्रतिष्ठा दिवसादतीते, शतत्रयेऽनेहसि वत्साराणाम् ॥
त्रिभिर्युते गन्थि युगस्य वीरो, रः स्थस्य भेदोऽजनि दैव योगात् ॥

* इन १८ गोत्रों के अलावा उपकेशपुर में कितने गोत्र वाले बसते थे क्यों कि इतना दीर्घ समय अर्थात् ३०० वर्ष में और भी कई गोत्र अवश्य बन गये होंगे तथा उपकेशपुर के अलावा अन्य प्रदेशों में भी लाखों जैनी बसते थे, उनके भी कई गोत्र बन गये होंगे पर इन बातों को जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई भी साधन नहीं है। हाँ इस समय के बाद कई गौत्रों का पता अवश्य मिलता है जिनको हम आगे के पृष्ठों में लिखेंगे।

"कई लोग कहते हैं कि ओसियाँ में ओसवाल रात्रि में नहीं रह सकते हैं इसका यही कारण है कि देवी का कोप हुआ था। पर यह बात बिल्कुल निराधार है कारण उपद्रव का समय वि० पू० ९७ वर्ष का है तब विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक तो ओसियाँ में महाजनों की घनी बस्ती थी जिसके प्रमाण हम पहले लिख आये हैं तथा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में ओसियाँ पर यवनों का आक्रमण हुआ था उस समय बहुत से लोग ओसियाँ को त्याग कर अन्य स्थानों में जा बसे थे तथापि विक्रम की चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दि में वह थे वे बहुत प्रमाण में महाजनों की बस्ती होने के प्रमाण मिल सकते हैं। अतः यह बात गलत है कि ओसियाँ में ओसवाल नहीं रह सकते हैं। यदि कोई रहना चाहे तो वे आज भी खुशी से रह सकते हैं।　　लेखक

एक समय किसी सामाजिक कार्य के लिये वृद्ध लोग किसी एक स्थान पर एकत्र हुए थे, बस नवयुवकों ने मौका देख कर एक सुथार को द्रव्य का लोभ देकर बुलाया और प्रस्तुत मूर्त्ति की ग्रंथियां काटने को कहा। बिचारे अबोध सुथार ने द्रव्य के लालच में आकर ज्यों ही उन ग्रंथियों को तोड़ने के लिये टाँकी लगाई त्यों ही टाँकी के लगते ही मूर्त्ति के उस स्थान से रक्त की धारा बहने लगी। बस सुथार तो वहीं गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राण छूट गये। देखते २ मूल गम्भारा रक्त से भर गया। इस दुर्घटना को देखते ही भयभीत होकर नवयुवक वहां से पलायन कर गये। जब इस बात का पता नगर में एवं बुजुर्गों को लगा तो उन लोगों ने बड़ा ही अफसोस किया कि उन नादान नवयुवकों को इतने समझाये पर आखिर उन अज्ञानियों ने गाठे तोड़ा कर मूल प्रतिष्ठा का भंग करके अनर्थ कर ही डाला।

मूर्त्ति के टाँकी लगने से वहां की अधिष्ठात्री देवी सच्चायिका को बड़ा भारी गुस्सा आया और वह नगर वासियों पर कुपित हो गई। बस फिर क्या था नगर भर में हाहाकार मच गया, दिशायें भयंकर दिखने लगीं, नगरवासियों के चेहरे फीके पड़ गये। मंदिर में जा के देखा तो ज्ञात हुआ कि मूर्त्ति में से रक्त की धारा निरंतर बह रही है, अनेकों प्रयत्न करने पर भी रक्त धारा रुकने का कोई उपाय सफल नहीं हुआ।

एक पट्टावली में यह भी लिखा मिलता है कि उस समय उपकेशपुर में कई मुनिराज ठहरे हुए थे। संघ अग्रेश्वर चलकर मुनियों के पास गये और वंदन करके वहाँ के सब हाल कहकर मुनिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! नादान नवयुवकों ने मूर्खता के कारण ऐसा जघन्य कार्य कर डाला है पर अब आप कृपा करके ऐसा उपाय बतलावें कि यह रक्त धारा बन्द हो जाय। मुनियों ने उत्तर दिया कि यह कार्य हमारी शक्ति के बाहर का है इसके लिये हम कुछ भी नहीं कह सकते हैं। यदि आपको कार्य करना ही है तो हमारे पूज्य आचार्य श्रीकक्कसूरिजी महाप्रभाविक व चमत्कारी हैं उनको शीघ्रातिशीघ्र बुलाओ। वरना यह कार्य दूसरे किसी से बन नहीं सकेगा। पर यह क्या खबर कि आचार्यजी कहाँ विराजते होंगे? मुनियों ने कहा कि मांडव्यपुर, आबू या गिरिनार की गुफाओं में कहीं ध्यान करते होंगे। इस पर राजा जैत्रसिंह आदि श्रीसंघ ने एक विनती पत्र लिखा जिसमें वहां का सब हाल लिख कर शीघ्र पधारने की प्रार्थना की थी। तथा इस विषय में उपकेशगच्छ चरित्र में भी उल्लेख मिलता है।†

---

† एवं व्यतीतमनिपुगच्छेऽस्मिन्सूरिपुक्रमात्। कक्कसूरिगुरुर्जज्ञे विज्ञवर्ण्यगुणाश्रयः ॥
तत्रावर्तिगणेशत्वं, केचनश्रावकातवाः। वीरोरसिग्रंथियुग्मं, वीक्ष्यासन् दून मानसाः ॥
स्थविराणां पुरः प्रोचुर्ग्रन्थियुग्मं प्रभु रसः। कुशोभाकारिपूजायां, कथंभो! नापसार्यते ॥
तेभाहुर्न पुनर्वाच्य, मिदंवाचाऽपिवालिशः। तदारत्नप्रभाचार्यैं र्नोत्सारितमिदंयतः ॥
किं सूत्रधारा न तदा, सम्पत्तिर्नधनस्य वा। विचिन्त्य पूज्यैर्यद्येतत्, स्थापितं स्थापितं च तत् ॥
देवता निर्मितं विम्बं, टङ्कघातं किमर्हति। मूलप्रतिष्ठाभङ्गश्च, स्यादेवंविहितेजड़ाः ॥
शिक्षिता अपि तैरेव, छन्नं सूत्रभृतं धनैः। प्रलोभ्यभोजनोद्वृते, तंलात्वाऽगुर्जिनालये ॥
टंकैः सन्तक्षितंयावत्, ग्रन्थि युग्मं ततोद्वयात्। निःसृते रक्तधारेद्राक्, सूत्रधारोममार च ॥
न तिष्ठति ततोरक्तं, निःसरत्कथमप्यथ। विज्ञायोपासकाः सर्वेऽमिलन्नत्यन्तदुःखिताः ॥

# १४—आचार्य श्री देवगुप्त सूरि ( द्वितीय )

आचार्यस्तु स देवगुप्त सूरिरभवद्गोत्रस्य भूपा सुधीः ।
श्रेष्ठी श्रेष्ठ गुणान्वितो बहुतरैः कान्ति प्रतानैर्वृतः ॥
ग्रामं ग्राममनेक देश विषये निर्माय जैनेत्तरन् ।
जैनान् जनमतस्य वर्धन परो वन्द्यौ विभूतिः सदा ॥

आचार्य देवगुप्त सूरि–आपका गृहस्थ जीवन बड़ा ही चमत्कारी घटनापूर्ण था। पट्टावलीकारों ने लिखा है कि उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा में धर्मवात्सल्य लक्ष्मी मे कुबेर की स्पर्द्धा करने वाला श्रेष्ठिगौत्रीय राव करत्था था। आपका संसार जीवन एक राजसी ठाठ वाला था, आपके ११ पुत्र होने पर भी कोई पुत्री नहीं थी जिसकी रावजी सदैव प्रतीक्षा कर रहे थे। इतना ही क्यों पर केवल एक पुत्री की गरज से रावजी ने अपनी दूसरी शादी बाप्पनागगौत्रीय राव देशल की सुशील कन्या, कुमारदेवी के साथ कर ली, पर लिखित लेखों को कौन मिटा सकता है ? एक दिन कुमारदेवी ने स्वप्न के अन्दर रत्नादि से चमकता हुआ देवविमान देखा, तदानुसार कुमारदेवी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया और उसका शुभ नाम देवसिंह रखा गया। माता पिता ने देवसिंह का भली भांति लालन पालन किया। बच्चों के अच्छे या बुरे संस्कार पड़ना उनके माता पिताओं पर निर्भर है। बचपन के संस्कार तमाम जिन्दगी भर स्थिर रहते हैं। इतना ही क्यों पर माता पिता के आचरणों की भी उनके बाल बच्चों पर गहरी छाप पड़ जाती है। राव करत्था और उनकी भार्या दोनों सदाचारी एवं धर्मज्ञ एवं देव गुरु के पूर्ण भक्त थे। जब वे मन्दिर उपाश्रय जाते थे तब अक्सर देवसिंह को भी साथ ले जाते थे। अतः देवसिंह के बचपन से ही धर्म के सुन्दर संस्कार जम गये। जब देवसिंह आठ वर्ष की उम्र को अति क्रमण कर गया तो उनके माता पिता ने उनके विद्याध्ययन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। राव करत्था अच्छी तरह से जानता था कि मनुष्य का जीवन व्यवहारिक ज्ञान के साथ साथ धार्मिक ज्ञान से ही सुखमय बनता है। अतः अपने पुत्र को व्यवहारिक ज्ञान के साथ धार्मिक अभ्यास भी करवाया करता था। देवसिंह ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की आराधना खूब भक्ति के साथ की होगा कि अपने सहपाठियों से हमेशा अग्रेश्वर रहता था, यों कहा जाय तो देवसिंह ने थोड़े ही समय में अच्छा ज्ञान हासिल कर लिया। देवसिंह अपने माता पिता को बयावर एकादश वृद्ध भ्राताओं का भी विनय करने में अपनी योग्यता का ठीक परिचय करवा देता था।

उसी समय का जिक्र है कि श्रीसंघ के प्रबल पुन्योदय से महा भाविक एवं अनेक लब्धियों से परिपूर्ण आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का शुभागमन उपकेशपुर में हुआ जिनकी जनता कई अर्से से प्रतीक्षा कर रही थी। राजा एवं प्रजा ने मिल कर सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश बड़ी ही धूमधाम एवं समारोह से करवाया। सूरिजी भगवान् महावीर की यात्रा कर उपाश्रय में पधारे और धर्म जिज्ञासुओं को थोड़ी पर सारगर्भित धर्म देशना इस प्रकार से दी कि उपस्थित जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ा।

इस पर देवी कुछ शांत होकर कहने लगी:—पूज्यवर ! आपका कहना तो ठीक है पर इस प्रकार की मूर्खता पर मुझे बहुत गुस्सा आ गया। यदि आप इस प्रकार कहते हैं तो आपश्री के वचन मुझे स्वीकार करने ही पड़ेंगे। अब मैं आप से इसकी शांति विधि बतलाती हूँ। +

"दूध, दही, घृत, जल, चंदन, कुंकुम, श्रीफल, पुंगीफल-खारक बादाम औषधी वगैरह १०८, १०८ प्रमाण में लेकर स्नात्र की विधि और बलबाकुल एवं मंत्रों द्वारा मूर्ति का स्नात्र महोत्सव करावें और श्रीसंघ चौविहार अष्टम तप इस करे, विधि को करने से रक्त धारा बंद हो जायगी और नगर में पुनः शांति भी हो जायगी, परंतु इस प्रकार की विधि पहले अन्य स्थानों में न कर महावीरमंदिर में ही करवाई जाय। हाँ बाद में काम पड़ने पर तो दूसरे मंदिरों में भी करवाई जा सकती है।" इत्यादि कह कर देवी तो अदृश्य हो गई।

सुबह सूरिजी महाराज ने सकल श्रीसंघ के सामने जो खास तौर पर कहने योग्य बातें थीं वे कहदी और श्रीसंघ ने अष्टम तप का पारण करके स्नात्र की सब सामग्री एकत्र की और सूरिजी के साथ सकल श्रीसंघ ने पुनः अष्टमतप कर देवी की बतलाई हुई विधि अनुसार सब सामग्री लेकर सूरिजी के साथ सकल श्रीसंघ भगवान् महावीर के मंदिर में आये। वहाँ पर उपकेशवंश के अठारह गोत्र वाले स्नान करके स्नात्रिये बने। जैसे (१) तातेड़गोत्र (२) बाफणागोत्र (३) कर्णाटगोत्र (४) बलहागोत्र (५) मोरक्षगोत्र (६) कुलहट-गोत्र (७) विरहटगोत्र (८) श्रीश्रीमालगोत्र (९) श्रेष्ठिगोत्र—इन नौ गोत्रों वाले स्नात्रिय प्रभु के दक्षिण की ओर पूजा सामग्री हाथ में लिये खड़े थे। (१) संचेतीगोत्र (२) आदित्यनागगोत्र (३) भूरिगोत्र (४) भाद्रगोत्र (५) चिंचटगोत्र (६) कुंभटगोत्र (७) कनौजियेगोत्र (८) डीडूगोत्र (९) लघुश्रेष्ठिगोत्र। इन नौ गोत्रों वाले स्नात्रिय प्रभु के बाँई ओर जल, पुष्प, फल चंदन आदि पूजा की सामग्री लिये खड़े थे।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज ने जैसे जैसे मंत्राक्षर उच्चारण करते गये वैसे वैसे वीरप्रभु की प्रतिमा का अभिषेक होता गया तथा जैसे जैसे पूजा होती गई वैसे वैसे अनुपात से रक्त धारा बंद होती गई। पूजा संपूर्ण हो गई तो रक्तधारा बिलकुल बन्द हो गई अतः उपकेशपुर के घर घर में धवल मंगल एवं हर्षध्वनि उद्घोषित होने लगी। आचार्यश्री की अनुग्रह कृपा से देवी का कोप भी शांत हो गया।

तत्प्रसद्यस्रवद्रक्तं, शक्तयादेवि निवीरय। तथाऽऽदिश यथा किंचित्, शुभं भवति सम्प्रति ॥
देवीजगादभगवन्नतः परमयंविधिः। श्रीवीरस्नपने कार्यो, न कार्यस्नात्रमन्यथा ॥
द्रोणएकोवकुलानां, विधेयोवलिहेतवे दधिदुग्धाज्य खण्डानां, सर्वौषध्याघटैर्भृतैः ॥
चतुर्विधेनसंघेन, कृत्वाशुद्धाष्टमंतपः। अष्टादशैवसंमील्य, गोत्राणां मुख्यपूरुषान् ॥
विधिनाऽनेनवीरस्य, स्नात्रं कारयताऽधुना। संतिष्टते यथारक्तं, भविष्यति शुभंपुनः ॥
पश्चादपिप्रभोऽनेन, विधिना स्नपनोत्सवः। विधातव्योऽस्य वीरस्य, न कदाऽपि यथा तथा ॥
इत्युक्त्वासातिरोधत्त, तत्क्षणाच्छासनामरी। गुरवोऽपिसमाकार्य, संघंसर्वमचीकथन् ॥
स्नात्रं तथैव देव्युक्त- विधिना समचीकरोत्। रहितस्म ततो रक्तं, शुभंचाऽभवदुच्चकैः ॥

+ पट्टावली नं० ४ में लिखा है कि देवी ने श्री सीमंधर स्वामि के पास जाकर शांति विधि पूच्छी थी और जिसका उत्तर में श्रीतीर्थंङ्कर देव ने जो शांति विधि के लिए फरमाया तदानुसार देवी ने सूरिजी को कहा।

खर्चा है और वह एक दो रुपये कमा भी ले तो उसका घाटा पूरा नहीं होता है। उस खर्च के लिये तो उसको दो रास्ते सोचने होंगे या तो खर्च बिल्कुल बन्द करदे या पैदास को बढ़ावे।

माता—बेटा ! मैं तेरी इन बातों को नहीं समझ पाई हूँ कि तू क्या कह रहा है ?

बेटा—माता ! मैं कह रहा हूँ कि जीव के अनादिकाल के कर्म लगे हुये हैं और पाप रूपी कार्य करने से और भी कर्मों का संचय हो रहा है अतः पापारंभ करता हुआ थोड़ा बहुत धर्म कार्य साधन कर भी ले तो उससे वह घाटा पूरा नहीं हो सकता है। बल्कि घाटा और बढ़ता जा रहा है।

माता ने मुसकरा कर कहा—बेटा संसार में पापारंभ तो होता ही है और जब तक घर में बैठे रहे वहाँ तक इससे बच भी तो नहीं सकते हैं। यदि तू कुछ उपाय जानता हो तो बता।

बेटा—माता यदि पापारंभ से नहीं बच सके तो इस जीव का कल्याण कैसे हो सकेगा ? और केवल घर का ही कारण है तो ऐसे घर को छोड़ क्यों नहीं दिया जाय कि कर्म बन्धन का हेतु जो पापारंभ है उससे बच कर कल्याण साधन कर सके। माता घर तो अनंतीवार किया और छोड़ा पर धर्म की आराधना एक बार भी नहीं की अतः घर की परवाह न कर धर्माराधना करना ही अच्छा है जिससे घाटा से बच सके।

माता—वाह बेटा ! यह तो अच्छी बात कही, क्या तू पागल तो नहीं हो गया है ? व्याख्यान तो सब नगर के लोग सुनते हैं और सब लोग तेरी तरह घर छोड़ दें तो यह नगर ही शून्य हो जायगा ?

बेटा—माता ! मैं नगर की बात नहीं करता हूँ। और ऐसा बनना भी असम्भव है। मानो कि सब लोग चाहते हैं कि हम कोटाधीश बन जायँ, पर सब लोग कोटाधीश बन नहीं सकते हैं। पर जिसके शुभ कर्मों का उदय होता है वही कोटाधीश बन सकता है।

माता—तो क्या एक तेरे ही शुभ कर्म हैं कि तुं घर छोड़ने की बातें कर रहा हैं ?

बेटा—हाँ माता ! यदि मेरे ऐसे शुभ कर्म उदय हो जांय तो मैं बड़ी खुशी मनाऊँगा।

माता और पुत्र हँसी खुशी में बात कर रहे थे कि इतने में देवसिंह का पिता राव करत्या घर पर आ गया। देवसिंह की माता ने अपने पतिदेव से कहा आप अपने प्यारे पुत्र की बातें तो सुनिये यह क्या कह रहा है ? कारण आज आप ने भी व्याख्यान सुना है और यह भी व्याख्यान सुन आया है।

पिता—क्यों बेटा ! तेरी मां क्या कहती है और तू क्या बातें करता है ?

बेटा—पिताजी ! मैं व्याख्यान की बातें कर रहा हूँ।

पिता—व्याख्यान की क्या बातें हैं ? व्याख्यान तो सब लोग सुनते ही हैं।

बेटा—व्याख्यान सुनने पर अमल करने की बातें मैं माँ को सुना रहा हूँ।

पिता—तू व्याख्यान की बातों पर क्या अमल करना कराना चाहता है ?

माता—हँस कर कहा कि आपका बेटा घर छोड़ना चाहता है और मुझे भी उपदेश देता है।

पिता—क्यों बेटा ! क्या तेरी माँ जो कह रही है यह बात सत्य है ?

बेटा—हाँ पिताजी, मेरी माँ का कथना सोलह आने सत्य है।

पिता—तो क्या तू घर छोड़ के दिसावर जायगा या साधुओं के साथ ?

बेटा—पिताजी साधुओं के साथ जाना भी तो एक प्रकार से दिसावर ही है।

पिता—पर अपनी मां को तो पूछ ले कि यह तेरे साथ चलेगी या नहीं ?

नाम देवगुप्तसूरि रख दिया। श्रीसंघ यात्रा कर वापिस लौट आया। आचार्य कक्कसूरिजी महाराज श्री-सिद्धाचल की शीतल छाया में रह कर अन्तिम सलेखना करने में सलग्न हो गये।

आचार्यश्री कक्कसूरिजी महाराज महान प्रतिभाशाली एवं लब्ध सम्पन्न होने से अपने जीवन में जैनधर्म की खूब उन्नति की। और अन्त में आप श्रीमान आवू गिरिराज की यात्रार्थ पधारे और वहाँ की गेहन केन्द्राएं में रह कर परमनिर्वृति में ध्यान कर रहे थे। जब आप अपने योग वल से शेष आयुष्य को जान लिया तो अपने सेवा करने वाले साधुओं को कह दिया कि अब मेरा आयुष्य केवल १८ दिन का है मुझे अनशन व्रत करवा दें वस। सूरिजी अनशन व्रत धारण कर लिया इस बात की खबर होते है चन्द्रावती शिव पुरादि अनेक नगरों के लोग सूरिजी के अन्तिम दर्शनार्थ आये और अनेक प्रकार के त्याग वैराग्य भी किये अन्त में वीर संवत् ३९१ अक्षय तृतीय के दिन आप परम समाधि पूर्वक काल कर स्वर्ग में अवतीर्ण हुए। उपस्थित श्री संघ ने वड़े ही रंज के साथ आपका निर्वाण महोत्सव किया और परिनिर्वाणार्थ का योत्सर्गादि विधिविधान कर आपश्री के जीवन के शुभ कार्यों का अनुमोदन किया।

पट्ट तेरहवें लब्धि सम्पन्न कक्कसूरि शुभ नाम था।
जैन बनाना शान्ति करवाना यही आपको काम था॥
उपकेश में उपद्रव हुआ जब संघने इन्हें बुलाया था।
अष्टम तप करने से देवी आ कर शीश झूकाया था॥
पूज्यवर ! इन मूर्ख लोगों ने शुभ प्रतिष्ठा भंग किया।
टाँकी लगा कर ग्रन्थी छेदाई जिसका ही ये फल लिया॥
भवितव्यता टारी नहीं टरती रक्त धारा अब बन्द करो।
विधि बतलाई बृहद् शान्ति की सब मिल उसे जल्दीकरो॥
तातड़े बाफना बलह कर्णावट श्रीमाल कुल मोरख थे।
विरहट श्रेष्टि गौत्र ये नव दक्षण दिश में सुरक्षक थे॥
संचेती आदित्यनाग भूरि भाद्र चिंचट कुमट कनोजिये थे।
डिड्ड लघुश्रेष्टि ये नव वामेदिश पंचामृत लिये थे॥
मंत्राक्षर और क्रिया विधि से शान्ति स्नात्र पढ़ाई थी।
कृपा थी गुरुवर की जिसमें शान्ति सर्वत्र छाई थी॥
ऐसे सद्गुरु के भक्तजन शुद्ध मन ध्यान लगाता है।
इस लोक और परलोक में मन वाञ्छित फल पाता है॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के तेरहवें पट्टधर आचार्य श्रीकक्कसूरिजी शासन के उद्योतक हुए॥

आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रतिभाशाली एवं धर्म प्रचार आचार्य हुए। आप सूरि पद प्राप्त करने के पश्चात् आपने विशाल समुदाय का संचालन बड़ी कुशलता से किया और आप स्वयं अपने शिष्यों के साथ प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया आप श्रीमान् एक बार दक्षिण की ओर विहार कर वहाँ की जनता को जैनधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया कि हजारों लोग मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को त्याग कर भगवान् महावीर के अहिंसा के झंडे की शरण ले अपना कल्याण किया। आचार्य कक्कसूरि के समय जो मुनि दक्षिण की ओर विहार किया था उन्होंने भी वहाँ जैनधर्म का खूब प्रचार किया और वे भी आचार्य देवगुप्तसूरि दक्षिण में पधारे हैं सुन कर सूरिजी को वन्दन करने को आये उन्हों के धर्मप्रचार को देख सूरिजी ने अपनी ओर से प्रसन्नता प्रकट की और योग्य साधुओं को पदवीयों से भूषित कर उनका योग्य सत्कार किया सूरिजी महाराष्ट्रीय एवं तिलंगादिक प्रान्तों में भ्रमण कर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म के उपासक बनाये। सूरिजी यह भी जानते थे कि जिस प्रान्त का उद्धार करना उसी प्रान्त के जन्मे हुए साधुओं पर निर्भर रहता है अतः सूरिजी ने जिस-जिस प्रांतों के भावुकों को दीक्षा देते थे उन्हीं को उसी-उसी प्रान्तों में विहार की आज्ञा दे देते थे कि वे वहाँ की जनता का उद्धार आसानी से कर सकें।

सूरिजी महाराज दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करने के पश्चात् आवंति प्रदेश में पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश सुना कर जैनधर्म में स्थिर करते हुए मेदपाट की ओर पधारे आप श्री का स्थान स्थान पर सुन्दर स्वागत एवं सत्कार होता था और आप की अमृतमय देशना सुन अपना कल्याण की भावना से वे लोग धर्माराधना में विशेष प्रयत्नशील बन जाते थे।

तत्पश्चात् आप पुनः मरुधर में पदार्पण किया जननी जन्मभूमि की एवं उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रा की और वहाँ कि धर्म पीपासु जनता को धर्मोपदेश सुनाया आप श्रीमानों के पधारने से मरुधरवासियों में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया था कई भावुकों ने आपश्री के चरणकमलों में भगवती दीक्षा ग्रहण की और कई मन्दिर मूर्तियों की आपश्रीने प्रतिष्ठा भी करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आप श्रीमानों तथा आपश्री के पूर्वजों ने मरुधर के बड़े-बड़े नगर ही नहीं पर छोटे २ गावड़ों में भ्रमण करने से जैनधर्म का काफी प्रचार हो गया था प्रत्येकग्रामों में जैनमन्दिर एवं जैनपाठशालों स्थापित होगये थे पर एक श्रीमालनगर ही ऐसा रह गया था कि वहाँ अभी वाममार्गियों की ही विशेष प्रबाल्यता थी आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर के वासी राजा जयसेनादि ९० ०० घरवालों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी पर बाद में धर्मद्वेष के कारण राजकुँवर चन्द्रसेन ने चन्द्रावतीनगरी बासा कर अपनी राजधानी कायम की थी और श्रीमालनगर का राजा भीमसेन ने धर्मान्धता के कारण जैनों को इतना कष्ट दिया कि श्रीमाल से सब के सब नगरवासी जैन श्रीमाल का त्याग कर नूतनबसी चन्द्रावतीनगरी में जा बसे। अतः श्रीमाल नगर के राजा प्रजादि सब लोग वाममार्गियों के ही उपासक रहे। बाद राजा भीमसेन का पुत्र उत्पलदेव ने उपकेश नगर बसा कर अपना नया राज स्थापन किया आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से वह भी जैनधर्मोपासक बन गये पर श्रीमालनगर तो वाममर्गियों का केन्द्र ही बना रहा। फिर भी उन लोगों के तकदीर ही ऐसे थे कि किसी जैनाचार्यों ने श्रीमाल नगर में जाने का साहस नहीं किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने सुना कि भीनामाल नगर में एक वृहद यज्ञ का आयोजन हो रहा है और लाखों प्राणियों की बली भी दी जायगी इत्यादि। सूरिजी का हृदय उन प्राणियों की करुणा से इस कदर

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर हुआ करता था और जनता आपके उपदेशामृत का बड़े ही उत्साह से पान कर आनन्द को प्राप्त होती थी। राव करत्था तथा आपकी पत्नी कुमारदेवी और देवसिंह बिना नागा निरन्तर सूरिजी की सेवा उपासना करते एवं व्याख्यान सुनाते थे। देवसिंह की तत्त्वज्ञान की ओर अधिक अभिरुचि होने से वह व्याख्यान के सिवाय अन्य टाइम में भी सूरिजी के पास आया करता था और आत्म कल्याण की भावना से ज्ञानाभ्यास भी किया करता था। सूरिजी ने देवसिंह के उत्तम लक्षणों एवं हस्तरेखा वगैरह से यह अनुमान लगाया कि यदि ऐसा होनहार भव्यात्मा यदि दीक्षा ले तो स्वकल्याण के साथ अनेकों का कल्याण कर शासन की प्रभावना एवं उन्नति कर सकता है।

एक दिन सूरिजी ने मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री का व्याख्यान करते हुए फरमाया कि अव्वल तो इस प्रकार शुभ सामग्री मिलना ही मुश्किल है यदि किसी भव में किये हुए शुभकर्म के उदय मिल भी जाय तो उसका सदुपयोग कर आत्म कल्याण करना तो और भी कठिन है। श्रोताओ ! मनुष्य की तीनावस्थाएं होती हैं जिसमें मुख्य बालावस्था ही हैं इस अवस्था में प्रारम्भ किया हुआ धर्म कार्य विशेष कल्याणकारी होता है उदाहरणके तौर पर लीजिये यदि कोई उदार पुरुष अपने अमूल्य रत्नादि खजाना के लिए ऐसा ऑर्डर करदे कि एक घंटा भर के लिये जितना द्रव्य लेना हो ले लीजिये ? क्या समझदार इस सुअवसर को हाथों से जाने देगा ? नहीं। पर कोई व्यक्ति यह विचार करें कि मैं कुछ देर से जाकर द्रव्य ले आऊंगा। पर उस प्रमादी के लिये टाइम निकल जाने के बाद द्रव्य हाथ आ सकता है ? नहीं हर्गिज नहीं। सूरिजी ने इस उदाहरण से यह बतलाया कि रत्नों के खजाने सदृश तो बाल्यावस्था है, क्यों कि बाल्यावस्था से धर्माराधन में लग जाय तो तप संयम ब्रह्मचर्य्य ज्ञान ध्यानादि की वह पूर्णतया आराधन कर सकता है। दूसरी मध्यम अवस्था में भी संसार से विरक्त हो मोक्ष मार्ग की साधना करे तो रत्न नहीं पर स्वर्ण के खजाने के तुल्य कहा जा सकता है और वृद्धावस्था तो चांदी के खजाने के सदृश्य ही रह जाता है, पर इस प्रकार की सामग्री प्राप्त होने पर भी आलस्य प्रमाद एवं विषय विकार में जिन्दगी समाप्त कर देता है उसको न तो धर्म की आराधना का लाभ मिलता है और न वह भविष्य में ऐसी सामग्री ही पा सकता है। अतः बुद्धिमानों का क्या कर्त्तव्य है उसको खूब गहरी दृष्टि से आप स्वयं को सोचना चाहिये इत्यादि।

बस, जिन जीवों का उपादान कारण सुधरा हुआ होता है तो उनके लिये थोड़ा सा निमित्त कारण भी महान प्रभावकारी हो जाता है। देवसिंह ने सूरिजी के वचनों को सुनकर निश्चय कर लिया कि सूरिजी महाराज का कहना सोलह आना सत्य है। जीव ने अनन्त बार जन्म लिया और मर भी गया पर धर्म की आराधना नहीं की जिससे ही संसार में परिभ्रमण कर रहा है आत्म कल्याण के लिये सामग्री की आवश्यकता है वह इस समय सबकी सब प्राप्त हो गई है अब इसमें प्रमाद करना एक प्रकार की बड़ी से बड़ी भूल है इत्यादि देवसिंह के हृदय में अनेक लहरें एवं तरंगें उठने लगीं खैर, व्याख्यान खतम होने पर देवसिंह अपने मकान पर आगया और अपनी माता से कहा क्यों माता आज आपने आचार्यजी का व्याख्यान सुना है न ? माता—हाँ बेटा, आज क्या मैं तो हमेशा ही व्याख्यान सुनती हूँ। बेटा—फिर आपने व्याख्यान का क्या सार ग्रहण किया ? माता—बेटा सार क्या, सामयिक पौषध उपवासादि धर्म कार्य करते रहना। बेटा—हाँ, यह तो ठीक है पर इससे जल्दी कल्याण नहीं होता है। जैसे किसी व्यापारी के दस रुपये का हमेशा

उन लोगों ने इस बात का प्रयत्न करना शुरू किया और कई लोगों को इसके लिए समझा बुझा कर अपने पक्षकार भी बना लिये इतना ही क्यों यह राजा के खास प्रधान मंत्री यज्ञदत्त था उसका लक्ष भी धर्म के निर्णय की ओर आकर्षित कर लिया। मंत्री ने राजा को समझाया कि जब कथन धर्म के लिये इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो इसका निर्णय तो अवश्य होना ही चाहिये इत्यादि। मंत्री पर राजा का पूर्ण विश्वास था राजा ने मंत्री का कहना मान कर एक दिन मुकर्रर किया कि राजा की ओर से धर्म के विषय में सभा कर निर्णय करवाया जाय। अतः राजा की ओर से एक आमन्त्रण सूरिजी को दिया और दूसरा यज्ञाध्यक्ष ब्राह्मणों एवं पण्डितों को भी दिया गया। जब सूरिजी ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तब ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि नरेश। यह जैन सेवड़े नास्तिक हैं वेद एवं ईश्वर को तो यह मानते ही नहीं हैं आप क्या धर्म का निर्णय करना चाहते हो जिस धर्म को आपके पूर्वज मानते आयें हैं वही धर्म सच्चा है फिर निर्णय क्या करना है क्या आपके पूर्वज नहीं समझते थे ? महाराजा भीमसेन ने बड़ेही कसौटी करके जिस धर्म को स्वीकार किया है उस पर ही आपको स्थिर रहना चाहिये इत्यादि बहुत समझाया। पर राजा ने कह दिया कि ठीक है मैं मेरे पूर्वजों का धर्म छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर निर्णय करने में क्या हर्ज है मैंने जैनाचार्य को आमन्त्रण भेजवा दिया है अतः आप सभा में पधार कर अपनी सच्चाई के प्रमाणों से जनता को बतला दें कि यज्ञ करना ईश्वर की आज्ञा एवं ईश्वरके वाक्य सत्य हैं। इस पर ब्राह्मणों को लाचार हो राजा का कहना मानना ही पड़ा।

ठीक समय पर इधर तो आचार्य श्री देवगुप्तसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ राज सभा में पधारे उधर से ब्राह्मण समाज अपने पण्डितों को लेकर हाजर हुए। राजा, मंत्री, राजकर्मचारी एवं नागरिकों से सभा हॉल खचाखच भर गया। आचार्य देवगुप्तसूरि ने अहिंसापरमोधर्मः के विषय में जैनागमों के, महात्मा बुद्ध के और वेदान्तियों के वेद एवं पुराणों के इतने प्रमाण सभा के समक्ष रख दिया कि राजा और प्रजा सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये। मानो उनके मनमन्दिर में अहिंसा महादेवी की प्राण प्रतिष्ठा तक भी हो गई इसके उत्तर में ब्राह्मणों ने इस प्रकार लच्चर दलीलें पेश की कि जिसका जनता के हृदय पटल पर कुछ भी असर न हुआ इतना ही क्या पर उन लोगों की क्रूरहिंसा की ओर सब की घृणा होने लग गई। वास्तव में यज्ञ एक निष्ठुर कर्म है किसी मांसाहारी पाखण्डियों की चलाई हुई कुप्रथा है जिससे घृणा आजाना एक स्वभाविक बात थी इस पर भी आचार्य श्री का जबर्दस्त उपदेश फिर तो कहना ही क्या था।

भगवान् महावीर की जयध्वनी के साथ राजा प्रजा अहिंस भगवती के परमोपासक बन गये अर्थात् जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी के शिष्य बन गये। इसी हालत में उन यज्ञवादियों के चेहरे फीके पड़ गये और वे हताश होकर हाँ हो का हुल्लड़ मचा कर वहाँ से चले गये।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक प्राणियों को एकत्र किये गये थे उन सबको छोड़वा दिये गये अतः वे अपने दुःखित हृदय को शान्त करके सूरिजी महाराज को आशीर्वाद देते हुए निर्भयता के साथ अपने बाल बच्चों से आकर मिले।

सूरिजी महाराज कई अर्सा तक भीन्नमाल में स्थिरता कर उन नूतन श्रावकों को जन धर्म की क्रिया काण्ड आचार व्यवहार का अभ्यास करवाया जब सूरिजी वहाँ से विहार करने लगे तो भक्त लोगों ने अर्ज

माता—पहिले आप तो अपने बेटे के साथ हो जाइये फिर मुझे पूंछिये।

पिता—लो मैं तो अपने बेटे के साथ हूँ अब तुम तो मेरे साथ रहोगी न ?

माता—यदि आप अपने पुत्र के साथ हैं तो मैं आपके साथ होने में कब पिच्छे रहूँगी।

क्षयोपसम इसका ही नाम है। वात ही वात में तीनों जने घर छोड़ने को तैयार हो गये। पाठकों को इस बात का आश्चर्य होगा पर जिन जीवों का कल्याण होने का समय आता है तब साधारण कारण भी सफल हो जाता है। यहाँ तो माता पिता और पुत्र के वार्तालाप भी हुआ है पर ऐसे भी जीव होते हैं कि केवल एक एक वस्तु को देख कर भी वैरागी बन जाते है। देखिये जम्बु कुँवरादि का उदाहरण।

जब तीनों घर छोड़ने को तैयार हो गये और इस बात का पता सूरिजी को मिला तो उन्होंने सोचा कि मेरी धारणा ठीक ही निकली। तथा नगर में खबर होने पर सब नागरिकों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और कई लोग उस निमित कारण को पाकर उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये।

उपकेशपुर के घर घर में यही बातें हो रही थी कि धन्य है देवसिंह को कि अपने १६ वर्ष की किशोर वय में संसार त्याग कर दीक्षा लेने को तैयार हुआ है इतना ही क्यों पर उसने तो अपने माता एवं पिता को भी दीक्षा के लिये तैयार कर दिये हैं विशेष धन्यवाद है आचार्य कक्कसूरिजी महाराज को कि आपका उपदेश ही ऐसा मधुर एवं प्रभावशाली है। जिससे अनेक भव्यात्माओं का कल्याण होता है।

देवसिंह के इस वैराग्यमय कार्य को देख कर ३५ पुरुष ओर ६० महिलाएँ दीक्षा लेने को तैयार हो गये थे। राव करत्था ने अपना सर्वाधिकार अपने ज्येष्ठ पुत्र देपाल को सुपुर्द कर दिया और देपालादि भाइयों ने अपने माता पिता एवं लघु भ्राता की दीक्षा के निमित्त जिनमन्दिरों में अष्टान्हिकादि अनेक प्रकार से महोत्सव-पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि किये तथा वहाँ के राजा जैत्रसिंह आदि श्रीसंघ ने भी इस पवित्र कार्य में सहयोग देकर जिन शासन की उन्नति एवं प्रभावना में वृद्धि की।

आचार्यश्री ने देवसिंह आदि मुमुक्षुओं को बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा दे दी। अहा-हा उस समय उन भव्य जीवों के कैसे लघुकर्म थे कि थोड़ा सा उपदेश से ही वे अपने आत्मकल्याण की ओर अग्रेश्वर बन जाते थे और सुख सम्पति को तृण सदृश समझ कर त्याग कर देते थे और एक को देख कर अनेकात्माएँ विना ही उपदेश उनका अनुकरण करने को तैयार हो जाते थे। अतः देवसिंह का प्रत्येच उदाहरण देख लीजिये।

मुनि देवसिंह पर सूरिजी महाराज की पहले से ही पूर्ण कृपा थी और उन के शुभलक्षणों से वे जान भी गये थे कि भविष्य में यह देवसिंह बड़ा ही प्रभावशाली होगा। देवसिंह की बुद्धि तो पहले ही कुशाग्र थी फिर सूरिजी की कृपा तब तो कहना ही क्या था मुनि देवसिंह सूरिजी का विनय भक्ति करता हुआ स्वल्प समय में सामायिक साहित्य का पूर्ण ज्ञान हासिल कर लिया और धुंरधर विद्वान बन गया तर्क युक्ति और व्याख्यान शैली तो आप की तुली हुई थी यही कारण है कि आप की वाणी रूप सुधापान करने को अनेक राजा महाराज भी हमेशा लालायत रहते थे वादी मानी पाखण्डी तो आप का नाम सुन ने मात्र से घबराते थे एवं मुँह छिपा कर दूर दूर भागते रहते थे इत्यादि मुनि देवसिंह के धैर्य गांभिर्य और शान्त प्रकृति आदि गुणों के ही कारण आचार्य कक्कसूरिजी ने पुनीत तीर्थ श्री सिद्धगिरि पर चिंचट गोत्रिय शाहनाथ समर्थ के महामहोत्सव के साथ देवसिंह को अपने पद पर आचार्य बना कर आप का नाम देवगुप्तसूरि रख दिया।

# १५—आचार्य श्री सिद्धसूरि [द्वितीय]

आचार्यस्तु स सिद्ध सूरिर भवद्वंशेस्तु ते चिंचटे,
नाना मन्दिर पंक्ति कारण पटुः शत्रुंजयस्य प्रियः ।
वल्लभी नगरी गतं जनपतिं नाम्ना शिलादित्यकं,
बोधित्वा व्यदधातु भक्त मिहयो शत्रुंजयोद्धारकः ॥
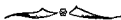
आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज मरुधर के एक चमकते हुए सितारे थे। जैसे भगवान् नेमिनाथ के द्वारामति और प्रभु महावीर के राजगृह था वैसे ही उपकेशगच्छाचार्यों के लिए उपकेशपुर नगर था जब जब आचार्यमहाराज उपकेशपुर पधारते थे तब तब उनको कुछ न कुछ अपूर्व लाभ हो ही जाता था यही कारण था कि उपकेशगच्छ के आचार्य उपकेशपुर में विशेष पधारते थे। एक तो इन आचार्यों का विहार क्षेत्र प्रायः मरुधरादि प्रदेश था, दूसरा भगवान् महावीर की यात्रा, तीसरा इस नगर में सबसे प्रथम आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी ने महाजनसंघ की स्थापना की थी। अतः उपकेशपुर की भूमि एक तीर्थ स्वरूप समझी जाती थी। और चतुर्थ देवी सच्चायिका उपकेशगच्छ की अधिष्ठात्री भी थी

आचार्य देवगुप्तसूरिजी एक समय अपने शिष्यों के परिवार सहित विहार करते हुए उपकेशपुर की ओर पधार रहे थे। यह समाचार मिलते ही जनता में उत्साह का एक समुद्र ही उमड़ उठा कारण आप इसी उपकेशपुर के चमकते हुए सितारे थे अतः लोगों को देश एवं नगर का गौरव था। राजा प्रजा की ओर से आपका सुन्दर स्वागत हुआ। आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं तात्त्विक विषय पर होता था जिसका जनता पर काफी प्रभाव पड़ता था।

उपकेशपुर में चिंचट गौत्रीय शाह रूपणसिंह धनकुवेर के नाम से मशहूर था। आपकी धर्म परायण गृहदेवी का नाम जाल्हण देवी था। आपके यों तो कई सतान थीं पर एक भोपाल नाम का पुत्र बड़ा ही होन्हार एवं कुल में प्रदीप समान था। रूपणसिंह हमेशा सकुटुम्ब सूरिजी का व्याख्यान सुन कर सेवा भक्ति उपासना किया करते थे। उन लोगों के संस्कार ही ऐसे थे कि वे धर्म को ही सार समझते थे।

एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता का वर्णन करते हुए मनुष्य भव की सफलता का एक ऐसा उपाय बतलाया कि संसार में क्षण मात्र के सुख और बहुतकाल दुःख अर्थात् पौद्गलिक सुख क्षण मात्र के हैं और इसमें रत हो कर धर्मोराधन नहीं करते हैं वे जीव दीर्घ काल तक नारक के दुखों का अनुभव करते हैं। आपश्री ने जब नरक के कुम्भीपाक के दुःखों का वर्णन किया तो श्रोता जनों के रोमांच खड़े हो आये और सहसा उनका दिल संसार से विरक्त हो गया।

शाह रूपणसिंह का लघु पुत्र जो भोपाल अभी किशोर वय में एवं खेल कूद रमत गमत किया करता था उसके कोमल हृदय पर व्याख्यान का ऐसा प्रभाव पड़ा जैसा ताप का प्रचाण्डप्रभाव मोम पर पड़ता है।

भर आया कि-आपने श्रीमालनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया। यह केवल निश्चय ही नहीं था पर आपश्री ने तो कम्मरकस कर विहार ही कर दिया और क्रमशः चल कर भीन्नमाल पधार गये। जब इस बात की मालुम वहाँ के राजा तथा यज्ञाध्यक्षकों को हुई तो उन लोगों में बड़ी खलबली मच गई कारण मरुधर में यही एक नगर था कि जहाँ पर वे लोग अपनी मनमानी करने में स्वतन्त्र थे उन लोगों ने सूरिजी को कष्ट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कितना ही वायु चले इससे मरू कभी क्षोभ पाने वाला नहीं था। सूरिजी महाराज ने अपने पूर्व आचार्य स्वयंप्रभसूरि श्रीरत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि के कष्टों को स्मरण कर विचार किया कि धन्य है उन महापुरुषों को कि जिन्होंने सैकड़ों आफतों को सहन कर अनेक प्रांतों में जैनधर्म का झण्डा फहरा दिया था तो यह कष्ट तो कौनसी गिनती में गिना जाता है। खैर उन पाखण्डियों ने राजसत्ता द्वारा यहां तक तजवीज करली कि नगर में गौचरी जाने पर आहार पानी तक नहीं मिला। सूरिजी ने अपने साधुओं के साथ तपस्या करना शुरु कर दिया और प्रतिदिन आम मैदान में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया पर पाखण्डियों ने अपनी सत्ता द्वारा जनता को व्याख्यान में जाना मना करवा दिया इस हालत में सूरिजी राज सभा में जाकर व्याख्यान देने लगे। आखिर तो वहां मनुष्य बसते थे बहुत से लोगों ने जाकर राजा को कहा कि दरबार! बात क्या है आपको निर्णय करना चाहिये ? पर राजा तो उन पाखण्डियों के हाथ का कठपुतला बना हुआ था। राजा ने उन कहने वालों की ओर कुछ भी लक्ष नहीं दिया अतः वे अपना अपमान समझ कर राजा और यज्ञवादियों से खिलाफ हो सूरिजी के पास में आये और सूरिजी से पूछने लगे कि महारमाजी ! धर्म के विषय में क्या बात है और आप क्या कहना चाहते हो ?

सूरिजी ने कहा महानुभावो ! आप जानते हो कि साधु हमेशा निस्पृही होते हैं और बिना कुछ लिये दिये केवल जनता का कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया करते हैं। हम लोग घूमते २ यहाँ आय गये हैं और श्रीमालनगर से हमें कुछ लेना देना भी नहीं है केवल अज्ञान के वश जनता उन्मार्ग पर चल कर कर्मबन्ध करके दुर्गति में जाने योग्य दुष्कर्म कर रही है उनको सद्मार्ग पर लगा कर सुखी बनाने के लिये ही हमारा उपदेश एवं प्रयत्न है। आप स्वयं समझ सकते हो कि इस प्रकार असंख्य प्राणियों की घेर हिंसा करना कभी धर्म पुण्य एवं स्वर्ग का कारण हो सकता है ? इसमें भी इस प्रकार के दुष्कर्म को ईश्वर कथित बतलाना यह कितना अज्ञान। कितना पाखण्ड।। कितना अत्याचार।।। इस पर भी आप जैसे समझदार लोग हाँ में हाँ मिला कर इन निरापाध मूक प्राणियों की दुराशीष में शामिल रहते हो पर याद रखिये किसी भव में वे मूक प्राणी सबल हों जायगे और आप निर्बल होंगे तो वे अपना बदला लेने में कभी नहीं चूकेंगे इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार निडरता पूर्वक उपदेश दिया कि उन सुनने वालों के अज्ञान पटल दूर हो गये जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश से बदल दूर हट जाते हैं।

पृच्छक लोगों ने सूरिजी के निस्पृही निडर निर्भय और सत्य वचन सुन कर दाँतों के तले अंगुली दबाते हुए विचार करने लगे कि महारमाजी का कहना तो सत्य है और पूर्व जमाना में एवं महाराजा जयसेन के समय भी इस यज्ञकर्म का विरोध हुआ था और आखिर राज यज्ञ करना बन्द कर अहिंसाधर्मोंपासक बन गया था अतः अपने को भी इस बात का निर्णय अवश्य करना चाहिये। विना ही कारण लाखों जीवों की हिंसा हो रही है इत्यादि। खैर ! वे लोग सूरिजी को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। पर सूरिजी का उपदेश से धर्म के विषय निर्णय करने के लिये उन लोगों के हृदय में उत्कण्ठा पैदा हो गई।

दूसरा वह भविष्य में होनहार भी था और उसका विनय भक्ति भी अलौकिक था अतः मुनिधनदेव पर विशेष कृपा थी। सबसे पहले मुनिधनदेव को शास्त्रों का अध्ययन करवाना आरम्भ किया। मुनि धनदेव पर जैसे सूरिजी की अनुग्रह थी वैसे ही सरस्वती की भी पूर्णकृपा थी अतः मुनिधनदेव ने स्वल्प समयमें ही हस्तामलकी भांति सबशास्त्र कंठस्थ कर लिए साथ में व्याकरण न्याय तर्क छंद अलङ्कार काव्य आदि का भी अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आपने स्वमत के साथ परमत के तमाम साहित्य का अभ्यास भी कर लिया। ज्ञान के साथ साथ और भी तर्क वाद शास्त्रार्थ में भी निपुण हो गये और आपके धैर्यता, गम्भीर्यता, सहनशीलता, सौभ्यता समता और उदारतादि गुण तो इस प्रकार के थे कि आपके गुणों का वर्णन करने में बृहस्पति भी असमर्थ था यही कारण है कि आपनेआचार्य देवगुप्तसूरि के दिल को सहजही में अपनी ओर आकर्षित कर लिया जिससे सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में चन्द्रावती के प्राग्वट नोढ़ा के महोत्सव पूर्वक अपना सर्व अधिकार मुनिधनदेव को देकर उसको सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रखदिया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रभावशाली हुए आपका विहारक्षेत्र इतना विशाल था कि मरुधरलाट सौराष्ट्र कच्छ सिंध पंचाल और पूर्वप्रान्त तक घूम घूमकर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे! यह बात तो स्वभाविक है कि जिस धर्म के उपदेशक जितने अधिक प्रदेश में विहार करेंगे उनका धर्म उतना ही अधिक क्षेत्र में प्रसरित हो जायगा। यदि वे आचार्य एकाध प्रान्त में ही बैठ जातें तो वे इतने विशाल प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार नहीं कर पाते। हाँ अनुकूलक्षेत्रों में सुख से रहना कौन नहीं चाहते हैं पर इस प्रकार साधु पौद्गलिक सुखों से मोहितहो जाते हैं तो उनका धर्म संसार में चिरकाल तक जीवित नहीं रहता है। जिस को आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि जिन सूरीश्वरों पर शासन की जुम्मेवारी है इतना ही क्यों पर वे खुद शासन सम्राट् जैनधर्म उद्धारक आदि उपाधियों से मान एवं सम्मान पाने की पुकारें करते हैं पर वे एक प्रान्त को छोड़ कर किसी अन्य प्रान्तों में विहार नहीं करने से ही धर्म का पतन हो रहा है। नये जैन बनाना तो दूर किनार रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए जैनों का रक्षण ही नहीं कर सकते है। दीक्षा के समय प्रत्येक साधु को रोहिनी आदि चार बहनों का उदाहरण सुनाया जाता है पर उसका अमल कौन करता है ? यही कारण है कि वर्त्तमान सूरीश्वर जैनधर्म के वर्द्धक पोषक और रक्षक नहीं पर भक्षक बन रहे हैं। हमारे पूर्वजो ने करोड़ों की तादाद में जैनों को इस विश्वास पर छोड़ गये थे कि हमारी संतान इनका पोषण कर वृद्धि करेगी पर हम ऐसे सपूत निकले कि करोड़ों की संख्या को घटा कर आज लाखों पर ले आये हैं। भविष्य के लिये ज्ञानी ही जानते हैं कि जैनधर्म का क्या हाल होगा ?

आचार्य श्री सिद्धसूरिजी महाराज अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में घूमते रहते थे और अपने साधु साध्वियों को भी प्रत्येक प्रान्त मे विहार की आज्ञा दे दिया करते थे अतः आपश्री के शासन समय जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार हो रहा था।

एक समय आपश्री लाट प्रान्त में भ्रमण करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधार रहे थे। जब आपका शुभागमन वल्लभीपुरी की ओर हुआ तो वहाँ की जैन जनता में खूब हर्षानंद होने लगा। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुंदर स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान इतना रोचक पाचक और असरकारी था कि जिसकी प्रशंसा सुनकर वहाँ का नरपति राजा शिलादित्य भी एक समय अपने मंत्री व कर्मचारियों के साथ सूरिजी के व्याख्यान में उपस्थित हुए। सूरिजी को वन्दन कर योग्य स्थान पर बैठ गया।

की कि प्रभो। आप यह चातुर्मास यहां ही करावें कि हम लोग जैन धर्म के तत्त्वों को ठीक समझलें इत्यादि।

सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर उन भक्त जनों की विनती स्वीकार करली और अपने साधुओं को वहां ठहराकर आप आसपास में विहार कर यथा समय भीनमाल पधार कर चतुर्मास किया। सूरिजी के विराजने से बहुत ही लाभ हुआ आपके उपदेश से महावीर का मन्दिर भी बनवाया गया इत्यादि।

इस प्रकार सूरिजी महाराज ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया आपने देशाटन भी बहुत किया मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु पंचाल अंग वंग कलिंग आवंति मेदपाट और दक्षिणादि प्रान्तों में अनेकवार विहार किया आप श्री ने जैसे जैनतरों को जैन बनाकर जैन संख्या में वृद्धि की वैसे ही अनेक मुमुक्षुओं को संसार के बन्धनों से मुक्तकर जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी खूब ही वृद्धि की। पट्टावलीकार लिखते हैं कि आपश्री की आज्ञावृत्ति ५००० साधु साध्वियों पृथक् पृथक् प्रान्तों में विहार करते थे खूबी यह थी कि एक आचार्य इतनी विशाल समुदाय को सभाल सकते थे। क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधरों में एक ही आचार्य होते आये हैं यही कारण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानियें एक ही आचार्य की आज्ञा में व्यवस्थित रूप में रहते थे। हां योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित पद दिया जाता था पर गच्छ नायक शासन करने वाले आचार्य एक ही होते थे और इसमें भी विशेषता यह थी कि देवी सच्चायिका की सम्मति से वे आचार्य अपने पट्टधर बनाते थे।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैनसमाज में बड़े ही विद्वान प्रभावशाली और धर्म प्रचारक आचार्य हुये हैं आप अपनी अन्तिमावस्था में अपने शिष्य एवं सर्वगुण सम्पन्न मुनि धनदेव को भीनमाल नगर के शा० पेथा भारमल भद्रगौत्रीय के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक भीनमाल नगर में वीदान् ४५८ वें वर्ष में स्वर्गवासी हुए।

पट्टावलियों और वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी ने अपने जीवन में ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये थे कि जिससे जैनशासन की अच्छी प्रभावना हुई जैसे भीनमालनगर के प्राग्वट नारायण के संघपतित्व में श्रीसिद्धगिरि आदि तीर्थों का विराट् संघ निकाला जिसमें ५००० साधु साध्वियों और करीब पांच लक्षयात्री गण थे इस सघ के हित नारायण ने नौलक्ष द्रव्य व्यय किया। चन्द्रावती के श्रीमाल रामा शार्दूल ने चन्द्रवाती में भगवान् महावीर का बावनदेहरीवाला विशाल मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा में करीब नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। कोरंटपुर के बाप्पनाग गौत्र के शाह हरदास काल्हणादि ५४ नर नारियों ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार की थी उपकेशपुर के अदित्य नाग गौत्रीय राव गोसलादि चार भाइयों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष रुपये शुभ कार्यों में व्ययकिये इत्यादि यहां तो केवल संक्षिप्त में ही लिखा है पर इस प्रकार सेकड़ों ऐसे अनोखे कार्य हुए अतः सूरिजी के उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये आभारी है—

चौदहवें पट्टपर देवगुप्त हुए सूरीश्वर यशः धारी थे
जिनके गुणों का पार न पया आप बडे उपकारी थे
अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ बढ़ाया था
मन्दिरों की प्रतिष्टा करके जीवन कलस चढ़ाया था

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौदहवें पट्टधर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक हुए—

राजा सूरिजी के पास आया और विनय के साथ सब हाल निवेदन किया इस पर सूरिजी ने कहा कि हे राजन हम लोगों का यह आचार नहीं है कि हम किसी को बहकावें एवं भ्रम में डाल कर दीक्षा दें। यदि इसप्रकार से कोई दीक्षा ले भी ले तो यह दीक्षा पालन भी कैसे सकेगा है ? भले ! बहकाने से ही कोई दीक्षा लेता हो तो हम आपको एवं सबको ही बहका देते हैं सब दीक्षा लेने को तैयार होजाइये ? नरेश ! जैनदीक्षा कोई बच्चों का खेल नहीं है कि बिना वैराग्य बिना आत्म ज्ञान कोई लेकर उसका पालन कर सकें। और कोई महानुभाव ! सच्चा दिल से दीक्षा लेना भी चाहता हो तो उसको अन्तराय देना भी तो महान् पाप है यदि बुढ़िया कुछ कहती हो तो उस को समझना चाहिये कि किस की माता और किस के पुत्र यह तो एक मुसाफिर वाला मेला मिला है न जाने काल के मुँह में माता पहले जावेगी या पुत्र ? अगर किसी माता का पुत्र दीक्षा लेता हो तो उस माता को बड़ी खुशी मनानी चाहिये कि जिसकी कुक्ष में जन्म लेकर स्व पर का कल्याण करने वाला पुत्र अपनी माता की कुक्ष को रत्नकुक्ष बना देता है और वह माता सर्वत्र धन्यवाद के योग्य कहलाई जाती है। राजन ! आप जानते हो कि हम लोगों को इस में क्या स्वार्थ है ? हम लोग तो केवल जनता का कल्याण के लिये ही उपदेश एवं दीक्षा देते हैं फिर भी हमारा कोई आग्रह नहीं है जैसे जिनको अच्छा लगे वह वैसा ही करे इत्यादि।

राजा सूरिजी का वचन सुन कर समझ गया कि सूरिजी परोपकारी हैं अतः राजा ने बुढ़िया को समझा बुझा कर आज्ञा दीलादी और खुद राजा ने दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया।

सूरिजी ने क्षत्री वीर शोभा को दीक्षा देकर उसको शोभाग्यसुंदर बना लिया। मुनि शोभाग्यसुन्दर पर सूरिजी की पूर्ण कृपा थी उसने शास्त्रों का अध्ययन के पश्चात् छट अट्ठमादि विविध प्रकार की तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया इतना ही क्यों पर तपस्या के पारणा के दिन कई प्रकार के अभिग्रह भी किया करता था और वे भी ऐसे कठिन अभिग्रह थे कि जिसके पूर्ण होने में कई दिन नहीं पर कोई मास तक भी पारणा नहीं होता था। एक वख्त आपने तपस्या के पारणा के लिए अभिग्रह कर उसको यादी एक कागज पर लिख उसको बन्द कर गुरु महाराज को दे दी थी और पारणा के लिए शहरों में ही नहीं पर पात्र लेकर जंगलों में भी भ्रमण किया करते थे शायद इस अभिग्रह का सम्बन्ध जंगल से भी होगा। इस प्रकार तपोवृद्धि करता हुआ मुनिजी पुनः वल्लभी नगरी में आये आपकी तपस्या के कारण नगरी में सर्वत्र प्रशंसा फैलगई पर वहाँ एक सन्यासी आया हुआ था उसने समझा कि यह सब जैनियों का ढोंग है वह तपसी मुनि के पीछे गुप्त रूप से फरने लगा। एक समय इधर तो मुनि जंगल में भ्रमन करता था उधर से एक सिंहनी आई उसके पंजा में कुछ पदार्थ था मुनि ने अपना पात्र सामने कर कहा माता कुछ भिक्षा देगी ? सिंहनी ने शान्तभाव से उस पदार्थ को मुनि के पात्र में डाल दिया प्रच्छन्नपने रहा हुआ सन्यासी सब हाल देख रहा था मुनि भिक्षा ले कर सूरिजी के पास आया और जिस पत्र को बन्ध कर सूरिजी को दिया था उसको खोलाया तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि मुनि ने कैसा कठिन अभिग्रह किया है। उसी समय सन्यासी भी सूरिजी महाराज के पास आया और तपस्वी मुनि की खूब प्रशंसा करता हुआ कहाँ पूज्यवर ! जैन मुनि की तपस्या एवं अभिग्रह को मैं ढोंग समझता था पर यह मेरी भूल थी वास्तव में आप लोगों की सच्ची तपस्या है जिसका मनुष्य पर तो क्या पर क्रूर वृति वाले तिर्यंचों पर भी प्रभाव पड़ता है जो मैंने मेरी नजरों से देखा है कि एक सिंहनी ने तपस्वी मुनि को शान्त वृति से भिक्षा दी है।

सूरिजी ने पूछा कि श्रोताओं ! मेरे उपदेश का आप लोगों पर कुच्छ असर हुआ; हैं क्या कोई भव्य अपना आत्म कल्याण करने के लिये तय्यार है ? क्योंकि ऐसा सुअवसर वार वार मिलना मुश्किल है ।

सभा में से सब से पहले बालकुमार भोपाल ने उठ कर कहा 'पूज्यवर ! मैं अपना कल्याण करने के लिये और तो क्या पर आपश्री के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा लेने को भी तैयार हूँ । मैं यह बात निश्चयपूर्वक कहता हूँ । इस वालकुमार का वैराग्यमय वचन सुन कर और भी कई भव्य आपका अनुकरण करने को तैयार हो गये । पर शाह रूपणसिंह और जाल्हण देवी को यह बात कब अच्छी लगने वाली थी उन्होंने अपने प्यारेपुत्र के इस प्रकार के शब्द सुन कर एक दम दुखी हृदय से कहा कि महाराज ! भोपाल अन समझ वालक है इसकी बात पर विश्वास न किया जाय अभी यह दीक्षा में क्या समझता है ? और अभी हम ऐसे बच्चे को दीक्षा लेने भी कैसे देंगे ? अभी तो इसकी शादी भी करनी है इत्यादि ।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि रूपणसिंह । आप संतोष रक्खे ? जैन साधुओं का आचार है कि बिना माता पिता की आज्ञा किसी को भी दीक्षा नहीं देते हैं पर भोपाल की भावना का तो सभी को अनुमोदन करना ही चाहिये । भले ! भुक्त भोगी लोग जो कि परभव की तय्यारी में हैं ऐसे वृद्ध लोग इन्द्रियों के गुलाम एवं विषय विकार के कीड़े होते हुए संसार के दास वन रहे हैं तव यह बच्चा संसार त्यागने की इच्छा कर रहा है इस हालत में आपको अन्तराय देने की वजाय तो यदि पुत्र से सच्चा प्रेम है तो पुत्र के साथ दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण करे यही आपके लिये सुअवसर है । बस सूरिजी का उपदेश क्या था एक जादू ही था । रूपणसिंह ने सूरिजी के हुक्म को शिरोधार्य कर लिया । सभा विसर्जन होने के पश्चात् रूपणसिंह अपने मकान पर आया और भोपाल की माता जाल्हणदेवी को पूछा कि तुम्हारा पुत्र भोपाल गुरु महाराज के पास दीक्षा लेता है । कहो तुम्हारी क्या मरजी है ? जाल्हण देवी ने कहा कि पुत्र ही क्यों पर आप भी तो दीक्षा लेने को तय्यार हुए हो फिर मुझे क्या पूछते हो ? "मैं पूछता हूँ कि तुम अपने पुत्र का साथ करोगी या घर में रहोगी? " जाल्हण देवी ने जवाव दिया कि जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं संसार में रह कर क्या करूंगी । अतः जाल्हणदेवी भी अपने पिती एवं पुत्र का अनुकरण किया ।

इस प्रकार नगर में कोई ३७ नरनारियाँ दीक्षा लेने को तैयार हो गये । अहा-ह कैसे लघु कर्म जीव थे कि जिनको केवल व्याख्यान से ही वैराग्य हो आया और इस प्रकार संसार के सुख सम्पति पर लात मार कर दीक्षा लेने को तयार हो गये । वस ! क्षयोपशम इसी को ही कहते हैं ।

उपकेशपुर में आज सर्वत्र आनन्द मंगल हो रहा है दीक्षा का वाजा चारों ओर वज रहा है । मुक्ति रमणि के वर वंदोले खा रहे हैं । उपकेशपुर नरेश पुण्यपालादि श्रीसंघ ने दीक्षा महोत्सव के निमित्त जैन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव और पूजा प्रभावना करवा रहे हैं । इस दीक्षा का प्रभाव आस पास के ग्रामों में भी इतना पड़ा कि वे लोग भी झुण्ड के झुण्ड आने लगे । शाह रूपणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र क्षेमराज ने अपने माता पिता एवं लघु भ्राता की दीक्षा का खूब महोत्सव मनाया । बाहर से आने वाले स्वधर्मी भाइयों का अच्छी तरह स्वागत किया । इस महोत्सव में शाह क्षेमराज ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने भोपालादि ३७ नरनारियों को बड़े ही समारोह एवं जैन शास्त्रों के विधि विधान से दीक्षा दी और बालकुमार भोपाल का नाम धनदेव रख दिया ।

यों तो सूरिजी महाराज की सब साधुओं पर पूर्ण कृपा थी पर मुनिधनदेव एक तो बाल श्रमण था तथा

२—गुरु-कनक कामिनी के त्यागी पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पालक जनकल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया हो उनको गुरु मानना चाहिये।

३—धर्म-देव की आज्ञा जैसे 'अहिंसा परमोधर्मः' को धर्म समझना।

इन तीनों तत्वों को व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा मिथ्यात्वमोहनिय (कुदेव कुगुरु, कुधर्म की श्रद्धा रखना) मिश्रमोहनीय (असत्य सत्य को एक सा ही मानना) सम्यक्त्वमोहनिय और अन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं इन सात प्रकृति का क्षय करना इसको निश्चय सम्यग्दर्शन कहा जाता है इसके साथ तप करने से सम्पूर्ण फल मिलता है।

सन्यासीजी ने अपने जीवन में इस प्रकार के शब्द पहिले पहिल सूरिजी से ही सुने थे। अतः कुछ समय विचार कर बोला पूज्यवर! मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरण कमलों में रहकर सम्यग्दर्शन के साथ तप कर आत्मा से परमात्मा बनूं।

सूरिजी ने कहा 'जहासुखम्' देवानुप्रिय! केवल आप ही क्यों पर पूर्व जमानों में शिवराजर्षि, पोग्गलसन्यासी और खंदक वगैरह बहुत भव्यों ने इसी मार्ग का अनुकरण किया है और आत्मार्थी मुमुक्षुओं का यह कर्तव्य भी है कि सत्य मार्ग को स्वीकार कर अपना आत्मकल्याण करे।

सन्यासीजी ने अपने भंडोपकरण एक तरफ रखकर सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली। सूरिजी ने दीक्षा देकर आपका नाम 'कल्याणमूर्त्ति' रख दिया।

नूतन मुनि कल्याणमूर्त्ति ज्यों ज्यों जैनधर्म की क्रिया और ज्ञानाभ्यास करते गये त्यों २ आपको बड़ा भारी आनन्द आता गया। आपने सोचा कि मेरे जैसी अनेक आत्मायें अज्ञानसागर में गोता खा रही हैं। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं उन्हें समझा बुझा कर जैन धर्म की राह पर लाकर उनका उद्धार करूं। अतः सूरिजी से आज्ञा लेकर कई साधुओं के साथ आप विहार कर जैनधर्म के प्रचार में लग गये।

इस प्रकार सूरिजी ने अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर जैनधर्म के प्रचार में लगा दिया।

आचार्य सिद्धसूरि अनेक प्रान्तों में विहार करते हुये एक समय उपकेशपुर नगर की ओर पधार रहे थे। इस बात का पता वहाँ के राजा रत्नसी आदि वहाँ के श्री संघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने सूरिजी का नगर-प्रवेश बड़े ही समारोह के साथ करवाया। सूरिजी ने चतुर्विध श्री संघ के साथ भगवान महावीर और गुरु रत्नप्रभसूरिजी के दर्शन स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था। राजा प्रजा को बड़ा ही आनन्द आ रहा था। श्रीसंघ ने सूरिजी से चर्तुमास की आग्रह से विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान चर्तुमास उपकेश पुर में कर दिया।

एक दिन सूरिजी ने आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव व मंत्री ऊहड़ादि का उदाहरण बतलाते हुये समझाया कि उन महापुरुषों ने जैनधर्म के प्रचार के लिए कितना भागीरथ प्रयत्न किया था कि जिसकी बदौलत आज जैनधर्म का चारों ओर सितारा चमक रहा है। अतः आप लोगों को भी उन उपकारी महात्माओं का अनुकरण करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का उपदेश सुनकर राजा रत्नसी ने अपने विचारों को कई तरफ दौड़ाते हुये अन्त में इस निर्णय पर स्थिर किया कि उपकेशपुर में एक विराट् सभा का आयोजन किया जाय और उसमें धर्मप्रचार

सूरिजी ने अपनी ओजस्वी भाषा द्वारा राजाओं की नीति और धर्म के विषय में खूब विवेचन के साथ उपदेश दिया। तत्पश्चात् सौराष्ट्र की पवित्र भूमि पर आये हुए तीर्थों का वर्णन करते हुए फरमाया कि तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय एक महान् तीर्थ है प्रायः यह तीर्थशाश्वता है इस तीर्थ की सेवा उपासना आदि से लाखों करोड़ों नहीं पर भूतकाल में अनन्त जीवों ने जन्ममरण के दुख मिटा कर अपना कल्याण किया है। और इस बल्लभी के लोग तो और भी भाग्यशाली है कि यह की भूमि शत्रुंजय तीर्थ की तलेटी का धाम रहा था। कई मुनियों एवं संघपतियोंसे यह भूमि पवित्र हुई है। वल्लभी के लोगों के लिये श्रीशत्रुंजय की भक्ति कर पुण्य संचय करना बिलकुल आसान भी है इत्यादि उपदेश दिया। जिसका प्रभाव यों तो सब लोगों पर हुआ ही था पर विशेष असर राजा शिलादित्य पर हुआ कि आपके हृदय में तीर्थ की सेवा भक्ति करने की भावना प्रबल हो आई। राजा ने किसी अन्य समय सूरिजी के पास आकर धर्म के विषय में अपने दिल की शंकाओं का समाधान कर सूरिजी महाराज के चरण कमल में जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

जब सूरिजी ने वहां से सिद्धगिरी की यात्रा के निमित्त जाने का विचार किया तो और लोगों के साथ राजा शिलादित्य भी श्रीशत्रुंजय की यात्रार्थ सूरिजी के साथ होगया सूरिजी ने यात्रा निमित्त 'छ री' का उपदेश दिया जिसको समझ कर राजा बहुत हर्ष एवं आनन्द में मग्न हो गया और सूरिजी के साथ पैदल 'छ री' पालता हुआ तीर्थधिराज श्री सिद्धगिरि पहुँच कर भगवान् आदीश्वर की यात्रा की। राजा को तीर्थयात्रा का इतना रंग लग गया कि सूरीजी के उपदेश से प्रतिज्ञा करली कि कार्तिक फाल्गुन और आसाढ़ एवं तीन चातुर्मासि के और पर्युषणों के दिनों में यहां आकर मैं अष्टान्हिका महोत्सव करूँगा। तथा तीर्थ सेवा के लिये कुछ ग्राम भी भेंट किये। इतना ही क्यों पर सूरिजी के उपदेश से राजाशिलादित्य ने तीर्थ शत्रुञ्जय का उद्धार भी करवाया। जो पांचवा आरा में यह पहला ही उद्धार था।

आचार्य श्री के उपदेश से राजा शिलादित्य जैनधर्म का परमोपासक बन गया। तीर्थयात्रा के पाश्चात् सूरिजी को विनति कर पुनः वल्लभी ले आये और श्रीसंघ के साथ राजा ने अत्याग्रह से चतुर्मास की विनती की इस पर सूरिजी ने भी लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास वहीं कर दिया फिर तो था ही क्या 'यथा राजस्तथाप्रजा' राजा के साथ प्रजा ने भी यथासाध्य धर्माराधन कर अपना कल्याण किया। राजा शिलादित्य ने वल्लभी नगरी में भगवान् आदीश्वर का एक विशाल मन्दिर बनाना प्रारम्भ कर दिया। सूरिजी महाराज के त्याग वैराग्यमय व्याख्यान ने जनता पर खूब ही प्रभाव डाला! राजा के कुटम्ब में एक वृद्धि राजपूत स्त्रि के एक लड़का था उसका भाव सूरिजी के पास दीक्षा लेने का हो गया पर बुढ़िया निराधार थी अतः पुत्र को आज्ञा देनी नहीं चाहती थी पर पुत्र को ऐसा तैसा वैराग्य नहीं था कि वह माता का मोह एवं रोकने से संसार में रह सके। अतः बुढिया ने राजा शिलादित्य के पास जा कर अपना दुःख निवेदन किया कि मेरे एकाएक पुत्र को बहका कर साधु लोग दीक्षा दे रहे हैं अतः आप साधुओं को समझा दें वरन् मैं आपघात कर मर जाऊंगी इत्यादि।

[२] तेषां श्री कक्कसूरीणां, शिष्याः श्रीसिद्धसूरयः। वल्लभी नगरेजग्मुर्विहरन्तो मही तले ॥
नृपस्तत्र शिल्यादित्यः सूरिभिः प्रतिबोधितः। श्री शत्रुंजयतीर्थेश उद्धारान् विदधे बहून्॥
प्रति वर्ष पर्यूषणे, सचतुर्मासकत्रये। श्री शत्रुंजयतीर्थेऽगात् यात्रायै नृप उत्तमः ॥
तत्रस्थैः सूरिभिः पौराः स्थापिता केऽपि सत्यथे। यत्तादृशानां निर्माणं लोकोपकृति हेतवे ॥

कार्य्य कुशलता जगत विख्यात ही थी। दूसरे धर्म प्रचार के उद्देश्य से आये हुओं के लिये स्वागत की इतनी आवश्यकता ही नहीं थी कारण वे सब लोग कार्य करने वाले ही थे।

सभा मण्डप खुला मैदान में इतना विशाल बनाया गया था कि जिसमें हजारों नहीं पर लाखों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। जिसमें भी महिलाओं के लिये खास प्रबन्ध था—

ठीक माघशुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज की अध्यक्षता में सभा हुई।

मंगलाचरण के पश्चात कई सज्जनों के भाषण हुये तदनन्तर आचार्य सिद्धसूरि के धर्मप्रचार के विषय में व्याख्यान हुआ। आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय की कठिनाइयों, तपश्चर्या और सहनशीलता तथा उन्होने मरुधर में किस प्रकार जैन धर्म की नीव डाल कर महाजनसंघ की स्थापना की उनके सहायक राव उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ का स्वार्थ त्याग और धर्मप्रचार का इतिहास बड़ी ओजस्वी वाणी द्वारा सुनाया कि सुनने वालों के हृदय में एक नयी शक्ति उत्पन्न हो गई। साथ में बौद्ध और वेदान्तियों के धर्म प्रचार का दिग्दर्शन भी करवाया तथा बतलाया कि जिस धर्म में राजसत्ता काम करती हो वही धर्म राष्ट्रधर्म बन जाता है। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के और पुष्पमित्र ने वेद धर्म के अन्दर जान डाल कर उसका प्रचार किया था क्रमशः उसका पगपसारा आपके प्रदेशों में भी होने लगा है अतः आप लोगों को भी कमर कस कर तैयार रहना चाहिये। धर्म प्रचार के लिये एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं पर इसमें श्राद्ध वर्ग की भी आवश्यकता है। रथ चलता है वह दो पहियों से चलता है जिसमें भी राजाओं का तो यह कर्त्तव्य ही है कि वह अपनी तमाम शक्ति धर्म प्रचार में लगा दें। देखिये पूर्व जमाने का इतिहास

१—आचार्य रत्नप्रभसूरि के धर्म प्रचार में राजा उत्पलदेव ने सहयोग दिया था।

२—आचार्य यक्षदेवसूरि के धर्म प्रचार में राव रुद्राट और कुंवर कक्क सहायक थे।

३—आचार्य कक्कसूरि के धर्म प्रचार में राजा शिव की सहायता थी।

४—आचार्य भद्रबाहु के धर्म प्रचार में सम्राट चन्द्रगुप्त ने सहयोग दिया था।

५—आचार्य सुहस्ती के धर्म प्रचार में सम्राट सम्प्रति की सहायता थी।

६—आचार्य सुस्थीसूरि के धर्म प्रचार में चक्रवर्ति महाराज खारवेल की मदद थी।

इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। अतः आप लोगों को भी चाहिये कि धर्म प्रचार में साधुओं का हाथ बटावे। अर्थात् यथा साध्य सहायता पहुँचावे—

सूरिजी महाराज के प्रभावशाली उपदेश का उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ पर काफी प्रभाव पड़ा और उसी सभा के अन्दर कई लोग बोल उठे कि पूज्यवर ! जैसे आप आज्ञा फरमावें हम लोग पालन करने को तैयार हैं एवं कटिबद्ध हैं। इससे सूरिजी महाराज ने अपने परिश्रम को सफल हुआ समझा।

तत्पश्चात भगवान महावीर और गुरुवर्य्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। रात्रि समय राव रत्नसी ने एक सभा की जिसमें संघ अग्रेश्वर नरेश एवं क्षत्रिय और व्यापारी सब लोग शामिल थे। मुख्य बात सूरिजी के उपदेश को कार्य में परिणित करने की थी जिसको सब लोगों ने सहर्ष स्वीकार करली।

उस समय उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ में नायक आचार्य एक-एक ही हुआ करते थे। यही कारण था कि उस समय का संगठन बल अच्छा व्यवस्थित था और एक ही आचार्य की नायकता में चतुर्विध

सूरिजी ने तप का महत्त्व बतलाते हुये कहा कि महात्माजी ! तप कोई साधारण व्रत नहीं है। पर पूर्व संचित कई भवों के कर्मों को नष्ट करने के लिये सर्वोत्कृष्ट व्रत तप ही है। तप से आत्मा का विकास होता है अनेक चमत्कारपूर्ण लब्धियें तप से उत्पन्न होती हैं। इतना ही क्यों पर संसार में जन्म मरण का महान दुःख है जिसको समूल नष्ट करने में तथा आत्मा से परमात्मा बनने में मुख्य कारण तप ही है। पूर्व जमाने में बड़े बड़े ऋषियों ने सैकड़ों हजारों वर्ष तक तपस्या की थी जिसका उल्लेख शास्त्रों में मिलता है और इस तप के भी अनेक भेद हैं जैसे—१—बाह्यतप २—आभ्यान्तर तप

बाह्यतप उसे कहते हैं कि जिस तप को लोग जान सकते हैं। जैसे

१—अनशन तप—उपवासादि अनेक प्रकार के तप किये जाते हैं।

२—उणोदरी–जो खाने पीने की खूराक है जिसमें कुछ कम खाना तथा कषाय को मंद करना।

३—भिक्षाचरी तप–आहार पानी की शुद्धता और अनेक प्रकार के अभिग्रहादि करना यह भी एक तप है।

४—रसत्याग–दूध, दही, घृत, मिष्टान्न आदि रस का त्याग करना।

५—कायाक्लेश तप–योग के ८४ आसन, तथा अतापना लेना, लोच करना इत्यादि।

६—प्रतिसलेखना तप-पशु, नपुंसक, स्त्रीयुक्त स्थान में रहना इन्द्रियों का दमन करना इत्यादि।

इन छः प्रकार के तप को बाह्य तप कहते हैं तथा आभ्यान्तर तप निम्न प्रकार है।

१—प्रायश्चित तप–अपने व्रतों में दूषण लगा हो, उसकी गुरु के पास में आलोचना करनी और गुरुदत्त प्रायश्चित का तप करना इसके शास्त्रों में ५० भेद बतलाये हैं।

२—विनयतप–गुरु आदि वृद्ध एवं गुणीजनों का विनय करना इसके १३४ भेद कहे हैं।

३—व्यावच्चतप–वृद्ध ग्लानी तपस्वी ज्ञानी और नवदीक्षित की व्यावच्च करना इसके १० भेद हैं।

४—स्वाध्याय तप–पठन पाठन मनन निधिध्यासनादि करना इसके ५ भेद हैं।

५—ध्यान तप–आर्त रौद्रध्यान से बचना, धर्म व शुक्लध्यान का चिन्तवन आसन, समाधि, योग आध्यात्म विचारणा को ध्यान कहते है।

६—विउस्सग्ग तप–कर्म कषाय संसारादि का त्याग रूप प्रयत्न करना इसके भी अनेक भेद हैं।

इन छः प्रकार के तप को आभ्यान्तर तप कहा जाता है। सन्यासीजी ! इस तप के साथ एक वस्तु की और भी खास जरूरत रहती है। जैसे औषधि के साथ अनुपान होता है और अनुकूल अनुपान से दवाई विशेष गुण देती है। इसी प्रकार तप के साथ सम्यग्दर्शन की जरूरत रहा करती है। सम्यग्दर्शन के साथ तप किया जाय तो कर्म को शीघ्र ही नष्ट कर आत्मा से परमात्मा बन सकता है।

सन्यासीजी ने कहा, पूज्यवर ! मैं आपकी परिभाषा में नहीं समझता हूँ। कि सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं। कृपा कर इसका खुलासा करके समझावें।

सूरिजी ने कहा कि सम्यग्दर्शन, उसे कहते हैं कि—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना।

१—देव–सर्वज्ञ, वीतराग, अष्टादश दूषण रहित और द्वादशगुण सहित विश्वोपकारी हो जिनका अलौकिक जीवन और मुद्रा में त्याग शान्ति और परोपकार भरा हो। उनको देव समझना चाहिये।

५२

इत्यादि कारणों से ही उन्होंने जैनधर्म का ठोस कार्य्य करने में सफलता प्राप्त की थी। आचार्य सिद्धसूरिने अपने दीर्घशासन में प्रत्येक प्रान्त में अनेक बार विहार कर जैन जनता को अपने उपदेशामृत का लाभ दिया था तथा लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार कर जैन संख्या में आशातीत वृद्धि की थी। अन्त में सूरिजी महाराज ने उपकेशपुर पधार कर अपने योग्य शिष्य उपाध्याय गुणचन्द्र को उपकेशपुर के श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद से विभूषित कर दिया और अन्य योग्य मुनियों को भी पदवियाँ प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी ने उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर अनशनव्रत धारण कर अपना शेष आयुष्य पूर्ण समाधि में बिताया और वि० सं० ५२ में नवकार महामंत्र का ध्यान करते हुये स्वर्ग सिधारे।

पट्टावलियों वंशावलीयों और कई चरित्र ग्रंथों में बहुत से उल्लेख मिलते हैं। आपकी जानकारी के लिये कतिपय उदाहरण नमूने के तौर पर यहां बतला दिये जाते हैं।

१—आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से भद्रगोत्रिय शाह पेथा ने उपकेशपुर से श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वाधर्मी भाइयों का सत्कार पहरामणी दी।

२—सूरिजी के उपदेश से माडव्यपुर के डिडुगोत्रिय शाह मलुक नेणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट् संघ निकाला।

३ - मेदनीपुरा के बलाह गोत्रिय शाह साहरण ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें कई ३००० साधु साध्वीयां थीं।

४—पाली के नगर से तातेड़ गोत्रिय शाह जगमल ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला।

५—नागपुर के आदित्य नाग गोत्रिय शाह पतरा खेमा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला।

६—कोरंटपुर के प्राग्वटवंशी रूपणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट संघ निकाला जिसमें उसने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—मालपुर के प्राग्वट मंत्री रणवीर ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमे सोना मोहरों की लेन और पहरामणी दी।

८—चन्द्रावती के प्राग्वट शाह देपाल करमण ने श्री शत्रुंजय गिरनार का संघ निकाला।

९—शिवपुरी के प्राग्वट नाथा भगा ने उपकेशपुर महावीर यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया।

१०—भीनमाल के श्रीमालवंशी शाह भासड़ ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

११—सिंध शिवनगर से मंत्री कल्हण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

१२—सिंध अमरेल नगर से श्रेष्ठि गोत्रिय मंत्री यसोदेव ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला। स्वाधर्मियों को सोना मोहर की पहरावनी दी।

१३—कच्छ राजपुर से श्रीमाल वंशीय धन्नाशाह ने शत्रुंजय का विराट संघ निकाला।

१४—पंचाल के लोटाकोट से मंत्री हरदेव ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१५—मेदपाट आहेड़ नगर से मंत्री राजपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

का प्रस्ताव रखा जाय तो उम्मेद है कि इस कार्य्य में सफलता मिल सके। राजा ने अपना विचार सूरिजी के सामने उपस्थिति किया तो सूरिजी ने प्रसन्नतापूर्वक राजा के कार्य्य पर अपनी अनुमति देदी। पर विशेषता यह थी कि सूरिजी ने कहा कि यह सभा केवल मरुधरवासियों के लिये ही न हो पर जहाँ उपकेशगच्छ एवं वंश के साधु एवं श्रावक हों उन सबके लिये की जाय अर्थात् मरुधरलाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पांचाल, आवन्ती और मेदपाट वगैरह सब प्रान्तों के लिये हो कि तमाम लोग इसमें भाग ले सकें। यह बात राजा के जँचगई और उसने कहा इसके लिये समय निर्णय करना चाहिये। सूरिजी ने कहा कि माघशुक्ल पूर्णिमा जो कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी के स्वर्गारोहण का दिन हैं मुकर्रर किया जाय तो अच्छा है। राजादि श्रीसंघ ने सब प्रकार से ठीक समय निश्चित कर लिया। बस, सकल श्रीसंघ की सम्मति लेकर राजा ने यथा समय अपने मनुष्यों द्वारा प्रत्येक प्रान्त में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवा दीं। और आप स्वागत के लिये तैयारियें करने में जुट गया। उपकेशपुर की जनता में इतना उत्साह बढ़ गया कि वे अपने घरों के कामों को छोड़कर इस धर्म्म कार्य्य में संलग्न होगये।

वह समय इतना संतोषवृत्ति का था कि जनता में न तो इतनी तृष्णा थी और न इतनी आवश्यकतायें ही थीं। कारण एक तो देवी का वरदान था कि "उपकेशे बहुलं द्रव्यं" उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था। दूसरे उस जमाने में सब लोग सादा और सरल जीवन गुजारते थे। अतः उनको दो-दो चार-चार और छः छः मास जितने समय की फुरसत मिल सकती थी।

राजा रत्नसी आदि उपकेशपुर श्रीसंघ की ओर से आमंत्रण मिलने से प्रत्येक प्रान्त में चहल-पहल मच गई और सब लोगों की सूरत उपकेशपुर की ओर लग गई। कई लोग तो साधुओं के साथ तीर्थ यात्रा की भांति छरी पाली संघ लेकर उपकेशपुर की ओर प्रस्थान कर दिया था तब कई लोग अपनी सवारियों के जरिये आ रहे थे।

उपकेशपुर एक यात्रा का धाम बन गया था। वास्तव में था भी तीर्थ स्वरूप जहाँ शासनाधीश भगवान् महावीर और महाजनसंघ संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरिजी की यात्रा हो फिर इससे अधिक तीर्थ ही क्या हो सकता है कि जहाँ देव गुरु की यात्रा तथा स्थावर तीर्थ के साथ जंगमतीर्थ की यात्रा का भी लाभ मिले।

उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ के साधुओं के अलावा लाट सौराष्ट्र एवं आवन्ति प्रदेश में भ्रमण करने वाले वीर सन्तानिये भी गहरी तादाद में पधारे थे। सब का स्वागत बड़े ही समारोह के साथ हुआ विशेषता यह थी कि पृथक २ गच्छों के श्रमण होने पर भी एक ही स्वरूप में दीखते थे। सब का आहार पानी वन्दन व्यवहार शामिल था। इस प्रकार श्रमण संघ की वात्सल्यता का प्रभाव जनता पर कम नहीं पड़ा था। वे देख कर मंत्र मुग्ध बन गये थे और यह श्रमण वात्सल्यता भाव प्रारम्भ कार्य की भावी सफलता की सूचना दे रहा था।

जिस प्रकार श्रमणसंघ के झुण्ड के झुण्ड आ रहे थे। इसी प्रकार श्राद्धवर्ग भी विस्तृत संख्या में आये थे। और वे भी केवल साधारण लोग ही नहीं थे पर कोरंटपुर का राव, चन्द्रावती का राजा, भीममाल का राव, कच्छ का नरेश, सिन्ध का राव वगैरह २ जैन धर्मोपासक नरेश एवं बड़े २ श्रावक लोग एकत्र हुये थे। आगन्तुकों के स्वागत का इन्तजाम पहले से ही हो रहा था। कारण मरुधरवासियों की

उदाहरण यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं जो वंशावलियों एवं पट्टावलियों में आज भी उपलब्ध हैं जैसे कि:—

१—उपकेशपुर में श्रेष्टि गोत्रिय शाह देदा के बनाये आदीश्वर भगवान् के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिस महोत्सव में श्रेष्टिवर्य्य ने एक लक्ष मुद्रा व्यय कर शासन की प्रभावना की।

२—माभोली में कुमट गोत्रिय शाह वीरम के बनाये भगवान् महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

३—चंदेलिया ग्राम में मोरक्षा गोत्रिय शाह भंभण के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्र०।

४—नावानी नगरी में आदित्यनाग गोत्रिय शाह पेथा चुनड़े के बनाये महावीर के मंदिर की प्र०।

५—चन्द्रावती नगरी में मंत्री राजवीर के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

६—नन्दपुर में प्राग्वट वेसट के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

७—कीराट कुम्प में प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

८—पद्कूप में कुलहट गोत्रिय रामदेव के बनाये वीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

९—मुग्धपुर तप्तभट्ट गोत्रिय शा. तोला के आदीश्वर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१०—नरवर के कर्णाट गोत्रिय खुमाण के बनाये महावीर के मदिर की प्रतिष्ठा कराई।

११—नेवलग्राम के सुचेति हरदेव के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१२—चाटोह के भद्रगोत्रिय शा. सगरा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१३—पद्मावती के प्राग्वट रत्नादेदा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१४—बल्लभी बलह गोत्रिय मंत्री कल्हण के बनाये ऋषभदेव के म० प्र०।

१५—कठी के श्रीमालवंशी रावण के बनाये शान्तिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१६—सलखणपुर के राव पोमल के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१७—जावलीपुर के श्रेष्टि भुवड़ के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१८—भिन्नमाल के प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१९—हर्षपुर के बापनाग गोत्रिय शाह लुने महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२०—कोरंटपुर के श्रीमाल आदू के भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२१—सत्यपुर के प्राग्वट संघपति करमल के बनाये श्रीशान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२२—सारंगपुर श्रेष्टिवर्य्य रत्नश्री के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२३—चन्द्रपुरी बाप्पनाग गौत्रीय शाह कानों के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्र० इनके अलावा सूरिजी ने लाखों मांसभक्षी क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित किये अतः जैन समाज पर आपका महान् उपकार हुआ है जिसको समाज भूल नहीं सकता है।

पट्ट पन्द्रहवें सिद्ध सूरीश्वर, चिंचट गौत्र कहलाते थे।
आगम ज्ञानबल विद्या पूर्ण, जैन झण्ड फहराते थे॥
बल्लभी का भूप शिलादित्य, चरणे शीश झुकाते थे।
सिद्धाचल का भक्त बनाया, जैनधर्म यश गाते थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के १५ वें पट्टधर आचार्य सिद्धसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये॥

श्रीसंघ का आत्म कल्याण हो रहा था फिर भी आचार्य समयज्ञ थे अपने आज्ञावृति साधुओं को दूर २ प्रदेश में विहार करवाया करते थे। अतः उन साधुओं में पदवीधरों की भी आवश्यकता थी। अतः सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि दूसरे दिन पुनः सभा करके उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ और वीरसंतानियों में जो पदवियों के योग्य साधु थे उनको पदवियों से विभूषित किया। जैसे—१५ साधुओं को उपाध्यायपद २७ साधुओं को पण्डित पद १९ साधुओं को वाचनाचार्य १६ साधुओं को गणिपद ११ साधुओं को अनुयोग आचार्य पद

इत्यादि योग्य मुनियों को पदवियां देकर इनके उत्साह में खूब वृद्धि की बाद उन मुनियों की नायकत्व में प्रत्येक २ प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा देदी। और सूरिजी स्वयं ५०० साधुओं के साथ विहार करने को तत्पर हो गये।

इसके अलावा कोरन्टगच्छाचार्य्य सर्वदेवसूरि के शिष्यों के लिये भी भिन्न २ प्रान्तों में विहार करने की सलाह देदी और उन्होंने भी धर्मप्रचार निमित्त विहार कर दिया—

सूरिजी ने इस बात को ठीक समझ ली थी कि जिन साधुओं का जितना विशाल क्षेत्र में विहार होगा उतना ही धर्म प्रचार अधिक बढ़ेगा। कारण जनता झुकती है पर झुकानेवाला होना चाहिये इत्यादि उपकेशपुर में सभा करने से जैनों में खूब अच्छी जागृति हुई इसका सबश्रेय हमारे चरित्रनायक सूरीश्वरजी ही को है। साथ में उपकेशपुर नरेश का कार्य्य भी प्रशंसा का पात्र बन गया था।

आचार्य सिद्धसूरिजी ने अपनी छत्तीस वर्ष की आयु में गच्छ का भार अपने शिर पर लिया था और ६४ वर्ष तक आपने शासन चलाया जिसमें आपने प्रत्येक प्रान्त में अनेक २ बार भ्रमन कर अनेक भूलेभटके मांसाहारियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर उनका उद्धार कर महाजनसंघ में वृद्धि की। कई प्रान्तों से तीर्थों के संघ निकलवा कर उनको तीर्थयात्रा का लाभ दिया। कई मंदिर मूर्तियों एवं विद्यालयों की प्रतिष्ठा करवाई। कई मुमुक्षुओं को संसार से मुक्त कर जैनधर्म की दीक्षा देकर श्रमणसंघ की संख्या बढ़ाई। कई स्थानों पर बौद्ध और वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस विकट परिस्थिति में आप जैसे शासन हितैषी सूरीश्वरजी ने ही जैनधर्म को जीवित रक्खा था। उस समय पृथक २ आचार्य होने पर भी संघ में छेद-भेद कोई नहीं डालते थे। संघ भी सबका यथायोग्य सत्कार करता था। यही कारण था कि उस समय का संघ संगठित व्यवस्थित एवं मजबूत था। कोई भी जाति वर्ण का क्यों न हो पर जिसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार बड़ी खुशी के साथ कर लिया जाता था और उनको सब तरह की सहायता पहुँचा कर अपने बराबर का भाई बनालिया जाता था। धर्म के साथ इस प्रकार की सुविधाओं के कारण ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। उस समय धार्मिक कार्यों में जैनाचार्य का प्रमुख था। उनकी आज्ञा का सर्वत्र बहुमान पूर्वक पालन किया जाता था धर्माचार्य्य और श्रमणसंघ में आपसी प्रमस्नेह वात्सल्यता इस प्रकार थी कि वे पृथक् २ गच्छ के होने पर भी एक रूप में दीखते थे। एक दूसरे के कार्य्यों का अनुमोदन करते थे ! इतना ही क्यों बल्कि एक दूसरे के कार्य्य में मदद कर उसको सफल बनाने की कोशिश भी किया करते थे इतना वृहद कार्य्य करने पर भी मान अहंकार या अहं पद तो उनके नजदीक तक भी नहीं फटकता था। आडम्बर के स्थान वे कार्य्य करने में अपना गौरव समझते थे।

१०—दशवां पद में—चरम अचरम का वर्णन है ।
११—ग्यारहवां पद में—भाषा का विवरण विस्तार से लिखा है ।
१२—बारहवां पद में—पांच शरीर के बँधेलगा मुकेलगादि का विस्तार से वर्णन है ।
१३—तेरहवां पद में—परिणाम अर्थात् जीव परिणाम अजीव परिणाम का वर्णन है ।
१४—चौदहवें पद में—क्रोधादि चार कषाय के ५२०० भंगों का वर्णन है ।
१५—पन्द्रहवाँ पद में—पांच भाव इन्द्रियें और आठ द्रव्येन्द्रियों का वर्णन है ।
१६—सोलहवें पद में—प्रयोग योगों की विचित्रता का अधिकार है ।
१७—सतरवें पद में—लेश्या छः उद्देश्यों में लेश्याओं का विस्तार है ।
१८—अठारहवें पद में—कायस्थिति जो एक काया में जीव कहां तक रह सके ।
१९—उन्नीसवां पद में—दर्शन-दर्शन कितने प्रकार के और उनके लक्षण ।
२०—वीसवां पद में—अन्तः क्रिया—कौन सा जीव किस प्रकार अन्त क्रिया करते हैं ।
२१—इकवीसवां पद में—शरीर अवगाहना का विस्तार से वर्णन किया है ।
२२—बावीसवां पद में—काइयादि क्रियाओं का वर्णन है ।
२३—तेवीसवां पद में—कर्मों का आबादाकाल कौनसा कर्मबँधने के बाद कितना काल से उदय आवे ।
२४—चौवीसवां पद में—कर्म बान्धता हुआ कितना कर्म साथ में बँध सकता है ।
२५—पंचवीसवां पद में—कर्म बन्धता हुआ कितना कर्मों को वेद सकता है ।
२६—छवीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ जीव कितना कर्म बन्ध करता है ।
२७—सतावीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ कितना कर्म वेदे ।
२८—अठावीसवाँ पद में—चौवीस दंडक के जीव आहार किस पुद्गलों का लेते हैं ।
२९—गुणतीसवाँ पद में—उपयोग साकार-अनाकार दो प्रकार के उपयोग होवे हैं ।
३०—तीसवाँ पद में—पासनीया-इसमें साकार उपयोग का अधिकार है ।
३१—इकतीसवाँ पद में—संज्ञी-जीव संज्ञी असंज्ञी दो प्रकार के होते हैं ।
३२—बत्तीसवां पद में—संयति-संयति असंयति संयतासंयति आदि का वर्णन है ।
३३—तेतीसवाँ पद में—अवधि-अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ।
३४—चोतीसवाँ पद में—प्रचारना-प्रचारना कहाँ तक किस प्रकार की है ।
३५—पैंतीसवाँ पद में—वेदना-चौवीस दंडक के जीवों को वेदना किस प्रकार से होती है ।
३६—छतीसवाँ पद में—समुद्घात्-सात समुद्घात का विस्तार से वर्णन है ।

इस प्रज्ञापन्नसूत्र के मूलश्लोक करीब ७७८७ हैं

आचार्य विमलसूरि—आप नागिल शाखा के राहु नामक आचार्य्य के शिष्य विजयसूरि के शिष्य थे । आपने प्राकृत भाषा में 'पउमचरियम्' अर्थात् पद्मचरित्र ( जैनरामायण ) नामक ग्रन्थ की रचना की जिसके समय के लिये कहा है कि—

पंचेव य वाससया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता । वीरे सिद्धिमुवगए तओणिरध्धं इयं चरियं ॥

१६—विजयपुर नगर के बालनाग गोत्रिय शाह सारंग ने श्रीउपकेशपुर का संघ निकाल यात्रा करवाई।

इनके अलावा सिन्ध पंचालादि प्रान्तों से आप तथा आपके योग्य मुनियों के उपदेश एवं अध्यक्षत्व में कई तीर्थों के संघ निकले।

सूरीश्वरजी के उपदेश से अनेक महानुभावों ने संसार का त्याग कर आत्मकल्याण के हेतु भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। थोड़े से नाम यहां दर्ज कर दिये जाते हैं जिनके उल्लेख पट्टावलियों वगैरह में प्रचुरता से मिलते हैं।

१—उपकेशपुर के राव वीरदेव ने अपने पुत्र रामदेवादि के साथ सूरीश्वरजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण की।

२—नागपुर के बाप्पनाग गोत्रिय सुखा ने दीक्षा ग्रहण की।

३—मेदनीपुर के कर्णाट गोत्रिय शा० गोरा ने अपनी स्त्री और दो पुत्रियों के साथ दीक्षा ली।

४—आशिका नगरी के भद्रगोत्रिय शाह नारायण ने अपने ८ साथियों के साथ दीक्षा ली।

५—फेफावती नगरी के भूरि गोत्रिय गोशल ने नौ लक्ष द्रव्य तथा छः मास की परणी स्त्री के सहित दीक्षा ली जिसके महोत्सव में आपके पिता करत्या ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर जैन शासन की खूब प्रभावना की।

६—नारदपुरी के श्रेष्टि गोत्रिय शाह हरपाल देवपाल ने महामहोत्सव पूर्वक दीक्षा ली।

७—पद्मावती नगरी के पोरवाल वंशीय शाह माना करना ने ११ नरनारियों के साथ दीक्षा ली जिसके महोत्सव में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—सत्यपुर नगर के प्राग्वट मंत्री विजयदेव ने अपनी स्त्री कुमारदेवी १७ नरनारियों के साथ दीक्षा ली इस महोत्सव में मंत्री के पुत्र सोमदेव ने पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया था।

९—चन्द्रावती नगरी के श्रीमाल वंशीय मंत्री धर्मसी ने सूरिजी के चरण कमलों में बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा ली।

१०—कोरंटपुर के आदित्यनाग गोत्रिय शाह रूपणासी ने अपने पुत्र जेतसी के साथ दीक्षा ली।

११—नरवर के सुचेती महीपाल ने दीक्षा ली।

१२—रूप नगर के क्षत्रिय त्रिभुवनपाल ने दीक्षा ली।

१३—बेनातट के जगदेवादि सात ब्राह्मणों ने सूरिजी के उपदेश से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण की।

१४—उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शा० सारंग विमल ने सूरिजी के उपदेश से दीक्षा ली।

१५—रतनपुर के आदित्यनाग गोत्रिय सुलतान ने दीक्षा ली।

१६—कच्छोलिया गांव के राव विशल ने दीक्षा ली।

इनके अलावा और भी अनेक प्रान्तों एवं अनेक छोटे बड़े ग्रामों के अनेक भव्यों ने सूरिजी के शासन में जैन दीक्षा ग्रहण कर स्वपर का कल्याण किया। क्योंकि पहिले जमाने के जीव ही हलुकर्मी थे कि उनपर थोड़ा उपदेश भी अधिक असर कर जाता था। सूरिजी ने अपने दीर्घशासन में कई १५०० नरनारियों को दीक्षा दी थी ऐसा पट्टावलियों से ज्ञात होता है।

सूरीश्वरजी ने अपने शासन काल में कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठायें भी करवाई थीं। कतिपय

नवसयतेणउएहिं (९९३), समइक्कंतेहिं वद्धमाणाओ ।
पज्जोसवणचउत्थी, कालिकसूरीहिंतो ठविआ ॥ ५८ ॥ रत्न संचय प्रकरण से

१—प्रथम कालकाचार्य वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ में
२—द्वितीय कालकाचार्य्य वीरात् ४५३ से ४६५ तक
३—तृतीय कालकाचार्य वीर नि० सं० ७२० में
४—चतुर्थ कालकाचार्य वीरात् ९९३ वर्ष में

## कालकाचार्य्य के साथ घटित घटनाएँ

१—राजादत्त को यज्ञफल बतलाकर प्रतिबोध करना । आवश्यक चूर्णी में
२—प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना करना । प्रज्ञापन्ना सूत्र में
३—इन्द्र को निगोद ® का स्वरूप बतलाना । उत्तराध्ययन निर्युक्ति में
४—आजीविकों से निमित्त पढ़ना । पंचकल्प चूर्णी में ।
५—अनुयोग का निर्माण करना + । पंचकल्पचूर्णी में
६—गर्दभिल्ल का उच्छेद और साध्वी सरस्वती की रक्षा । निशीथचूर्णी व्यवहार चूर्णी में ।
७—साँवत्सारिक पर्व भाद्रपद शुक्ल पंचमी का चतुर्थी को करना । निशीथ चूर्णी में ।

---

® इन्द्र ने निगोद के जीवों का स्वरूप पूछा इस घटना के लिए शास्त्रकारों ने तीन आचार्यों के लिए घटित की है १—प्रथम कालकाचार्य (श्यामाचार्य) के साथ २—दूसरा कालकाचार्य जिनको निगोद व्याख्याता के नाम से बतलाया है ३—और तीसरे आर्यरक्षित सूरि के साथ जैसे

इतश्चास्ति विदेहेषु श्री सीमंधर तीर्थकृत । तदुपास्त्यै ययौ शक्रोऽन्योरीशाल्यां च तमन्नाः ॥
निगोदाख्यान माख्याच्च केवली तस्य तत्वतः । इन्द्र पप्रच्छ भरते को अन्यस्तेषां विचारकृत् ॥
अथाहंन्नाह मथुरानगर्यामार्यरक्षितः । निगोदानभ्दुदाचष्ट ततो ऽसौ विस्मयं ययौ ॥
प्रतीतोऽपि च जिज्ञार्थं वृद्धब्राह्मणरूपभृत् । आययौ गुरुपार्श्वे स शीर्णं हस्तौ च धूनयन् ॥
कासश्वासंसंजाताक्षेपो यष्टिभिनात्मकः । सरवासप्रसरो विष्वग्गलत्पाणुमंगलकः ॥
एवंरूपः स पप्रच्छ निगोदानां विचारणम् । यथावस्थं गुरुर्व्याख्यात्सोऽथ तेन चमत्कृतः ॥
जिज्ञासुर्ज्ञानमहात्म्यं पप्रच्छ निजजीवितम् । ततः श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरुः ॥
तदायुर्दिनैः पक्षैर्मासैः संवत्सरैरपि । वेषां शतैः सहस्रैर्वाप्युनैरपि न मीयते ॥
लक्षाभिः कोटिभिः पूर्वैः पल्यैः पल्यशतैरपि । तल्लक्षकोटिभिर्नैव सागरैणापि मान्तभूत् ॥
सागरोपमयुग्ने च पूर्णेजाते तदायुषि । भवान् सौधर्म सुत्रामा परीक्षा किं न ईश से ॥

प्रभावक चरित्र आर्यरक्षित प्रबन्ध पृ० २६

यह एक ही घटना तीन आचार्यों के साथ लिखी गई है या एक घटना तीन बार बनी है । सम्बन्ध देखने से पाया जाता है कि यह घटना द्वितीय कालकाचार्य (सरस्वती का भाई) के साथ घटी है । आगे उपरोक्त गाथा में वी० नि० सं० ७२० में जो कालकाचार्य हुये लिखा है उनके साथ भी 'सक्कसंथुणिओ' लिखा है । शायद इसका अर्थ भी यही हो कि इन्द्र ने स्तुति की है परन्तु किस विषय के लिये इनका उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता है

+ पढमणुओगे कासी जिन-चक्कि-दसार चरिय पुव्वभवे । कालगसूरी बहुयं लोगाणुओगे निमित्तं च ॥

# भगवान महावीर की परम्परा—

आचार्य उमास्वाति—आपका जन्म न्यग्रोधिका ग्राम के ब्राह्मण स्वाति की भार्या उमा की कुक्ष से हुआ था। आर्य्य महागिरि के शिष्य वलिसिंह के आप शिष्य थे जैसे पट्टावली में लिखा है कि—

"श्री आर्य महागिरेस्तु शिष्यौ वहुल-वलिस्सहौ यमल भ्रातरौ तस्य वलिस्सह स्य शिष्यः स्वाति, तत्त्वार्थादयो ग्रन्थास्तु तत्कृता एव संभाव्यते"

पट्टावली समुच्य पृष्ठ ४६

आचार्य उमास्वाति ने केवल एक तत्त्वार्थ सूत्र ही नहीं वनाया पर आप श्री ने ५०० ग्रन्थों की रचना की थी आचार्यवादीदेवसूरि अपने स्याद्वाद रत्नाकर में लिखते हैं कि--

"पंचशती प्रकरण प्रणयन प्रवीणैरत्र भवदभरुमा स्वाति वाचक मुख्यै"

आर्य उमास्वाति के समय के विषय कुछ मतभेद है। कारण, तत्त्वार्थ के भाष्य में स्वयं उमास्वाति महाराज लिखते हैं कि मैं उच्चनागोरी शाखा का हूँ। तव कल्प स्थविरावली में आर्य्यदिन्न के शिष्यशान्ति-श्रेणिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ लिखा है। जव आर्य दिन्न का समय वी. नि. ४५१ के आस पास है तो उसके वाद उमास्वाति हुये होंगे। तव प्रज्ञापन्नासूत्र की टीका में लिखा है कि आर्य उमास्वाति के शिष्य श्यामाचार्य्य ने प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना की और आपका समय वी.नि. ३३५ से ३७६ का वतलाया है। इससे यही मानना युक्तियुक्त है कि उमास्वति महाराज आर्यवलिस्सह के शिष्य और श्यामाचार्य के गुरु थे और आपका समय वी० नि० की चतुर्थ शताब्दी का ही था।

श्यामाचार्य—आप वाचक उमास्वाति के शिष्य थे और प्रज्ञापन्नासूत्र की संकलना की थी वह आज भी पैंतालीस आगमों के अन्दर उपांग सूत्र में विद्यमान है। प्रस्तुत प्रज्ञापन्ना सूत्र में जो प्रश्नोत्तर किये गये हैं वह सब गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछे हैं और भगवान् महावीर ने उत्तर दिये हैं। इससे पाया जाता है कि यह सूत्र तो पूर्व का ही होगा परन्तु इसकी संकलना श्यामाचार्य ने की होगी।

प्रज्ञापन्नासूत्र—छत्तीस पदों से विभूपित है। प्रत्येक पद तात्त्विक एवं वैज्ञानिक विषय से ओत प्रोत है जिसका संक्षिप्त से दिग्दर्शन मात्र यहाँ करवा दिया जाता है।

१—पहले पद में—जीव अजीव की प्ररूपणा है जिसमें जीव की प्ररूपना विस्तार से है।
२—दूसरे पद में—चौवीस दंडक के स्थानाधिकार हैं। यह पद भी खूब विवरण के साथ लिखा है
३—तीसरे पद में—महादंडक तमाम जीवों की अल्पावहुत करके समझाया है।
४—चौथे पद में—तमाम जीवों के पर्याप्ता अपर्याप्ता की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन है।
५—पाँचवें पद में—जीव अजीव पर्याय का वर्णन है इसमें संसार भर का विज्ञान है।
६—छट्ठे पद में—चराचर जीवों की गति एवं आगति का वर्णन है।
७—सातवां पद में—श्वासोश्वास का अधिकार है।
८—आठवां पद में—दश प्रकार की संज्ञा का वर्णन है।
९—नौवां पद में—सांसारिक जीवों की योनि का विस्तार है।

लक्षण क्षत्रियवंशोचित थे। यों तो आप पुरुषकी ७२ कला में निपुण थे पर बाणविद्या और अश्वपरीक्षा ये दो गुण आपमें असाधारण थे। राजकन्या सरस्वती भी महिलाओं की ६४ कला में प्रवीण थी। आपका घराना जैनधर्म का परमोपासक था अतः कुँवर कालक और राजकन्या सरस्वती के धार्मिक संस्कार बचपन से ही जम गये थे और वे दोनों धार्मिक अभ्यास भी किया करते थे।

एक समय आचार्य गुणाकरसूरि जो विद्याधर शाखा के आचार्य थे अपने शिष्य समुदाय के साथ भ्रमण करते हुये धारावासनगर के उद्यान में पधार गये। राजा प्रजा ने सूरिजी का सुन्दर सत्कार किया और धर्मोपदेश श्रवण करने को उद्यान में गये। अतः सूरिजी ने भी आये हुये धर्म-पिपासुओं को देशनामृत का पान कराना शुरू किया।

ठीक उसी समय राजकुँवर कालक अश्व खिलाता हुआ उस उद्यान के एक भाग में आ ठहरा, इससे सूरिजी की वाणी उसको कर्णप्रिय हो गई। कालक ने सूरिजी का सम्पूर्ण व्याख्यान सुना और बाद में आचार्यश्री के पास जाकर वन्दन किया। सूरिजी ने राजकुमार के शुभलक्षण देख संसार की असारता राज ऋद्धि एवं लक्ष्मी की चंचलता और विषय कषाय के कटुक फलों को इस कदर समझाया कि उसका दिल संसार से विरक्त हो गया। साथ में सूरिजी ने तप संयम की आराधना से अक्षय सुखों की प्राप्ति के लिये भी गम्भीरता पूर्वक समझाया कि जिससे कालकने निश्चय कर लिया कि माता पिता की आज्ञा लेकर मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। जब कुमार ने माता पिता के पास आकर अपने दिल की बात कही तो वे कब चाहते थे कि कालक जसा पुत्र हमारे से सदैव के लिये अलग हो जाय। उन्होंने बहुत कहा पर जिनके हृदय पर सच्चा वैराग्य का रंग लग जाता है उन्हें संसार कारागृह के सदृश दीखने लग जाता है। विशेषता यह हुई कि कालक की बातें सुनकर राजकन्या सरस्वती भी संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने को तैयार हो गई। आखिर राजा ने दीक्षा-महोत्सव किया और कालक एवं सरस्वती ने सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा† ग्रहण कर ली। मुनि कालक ने ज्ञानाभ्यास कर सर्व गुणों को सम्पादित कर लिया। जिन्होंने संसार में राजपद योग्य सर्व गुण हासिल कर लिया तो मुनिपने में सूरिपद योग्य गुण प्राप्त करले इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। आचार्य गुणाकर सूरि ने मुनि कालक को सर्वगुण सम्पन्न जान कर सूरि‡ पद से विभूषित कर कई साधुओं के साथ अलग विहार करने की आज्ञा दे दी।

कालकाचार्य विहार करते एक समय उज्जैन*नगरी के उद्यान में पधारे, इधर से साध्वियों के साथ

---

२ † प्रव्रज्यादायि सैस्तस्य तया पुत्रस्य च स्वयम्। अधीती सर्वशास्त्राणि स प्रज्ञातिशयादभूत् ॥ २४ ॥
‡ स्वपट्टे कालकं योग्यं प्रतिष्ठाप्य गुरुस्ततः। श्रीमान् गुणाकरः सूरि प्रेत्यकार्याण्यसाधयत् ॥ २५ ॥

* अथ श्री कालकाचार्यो विहरन्नन्यदा ययौ। पुरीमुज्जयिनीं बाह्यारामेऽस्याः समवासरत् ॥ २६ ॥
मोहान्धतमसे तत्र मग्नानं भव्यजन्मिनाम्। सम्यगर्थप्रकाशोऽभूत्प्रभूष्णुर्मणि दीपवत् ॥ २७ ॥
तत्र श्रीगर्दभिल्लाख्यः पुर्यां राजा महाबल। कदाचित्पुरबाह्योर्व्यां कुर्वाणो राजपाटिकाम् ॥ २८ ॥
कर्मसंयोगतस्तत्र भ्रमन्तीमैक्षत स्वयम्। जामिं कालकसूरीणां काको दधिघटीमिव ॥ २९ ॥
हा रक्ष रक्ष सोदर्य क्रन्दन्तो करुणं स्वरम्। अपाजीहर दस्युभकर्मभिः पुरुषैः स ताम् ॥ ३० ॥
श्रार्याभ्यस्तत्परिज्ञाय कालक प्रभुरप्यथ। स्वयं राजसमभ्याषां गत्वावादीदिदम्प्रति ॥ ३१ ॥

वीरात् ५२० अर्थात् विक्रम सं० ६० में विमलसूरि ने पद्मचरित्र ( जैनरामायण ) की रचना की जिसको लोग बड़ी रुचि के साथ सुनते और आनन्द को प्राप्त होते थे। यों तो पद्म नामक बलदेव ( रामचन्द्रजी ) का नाम समवायाङ्ग सूत्र वगैरह जैन मूल आगमों में आता है। पर इस प्रकार विस्तार पूर्वक सब से पहला विमलसूरि का 'पउमचरिय' ग्रन्थ ही है। नागोर के बड़े मन्दिर में एक सर्वधातु की मूर्ति है जिसके पीछे एक लेख खुदा हुआ है। उसमें वि० सं० ३२ के लेख में भी विमलसूरि का नाम है। शायद यह विमलसूरि 'पउमचरिय' ग्रन्थ के लेखक ही हों।

आर्य इन्द्रदिन्न—आर्य्य सुस्थी और आर्य्य सुप्रतिबुद्ध के पट्ट पर आचार्य इन्द्र दिन्न हुये और आचार्य इन्द्रदिन्न के पट्टधर आचार्य दिन्न हुये। इन दशवें और ग्यारहवें पट्टधरों के लिये पट्टावलीकारों ने विशेष वर्णन नहीं किया है। हाँ, स्थविरावलीकार ने आर्य्य दिन्न के मुख्य दो स्थविर बतलाये हैं १—आर्य्य शान्तिसेनिक २—आर्य्य सिंहगिरि। जिसमें आचार्य शान्तिसेनिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ और आर्य्य शान्तिसेनिक के प्रधान चार शिष्य हुये और वे चारों शिष्य इतने प्रभाविक थे कि उन चारों शिष्यों के नाम से चार शाखायें प्रचलित हुईं जैसे—

१—आर्य्य सेनिक से सेकिन शाखा चली।    ३—आर्य्य कुबेर से कुबेरी शाखा चली।
२—आर्य्य तापस से तापस शाखा चली।    ४—आर्य्य ऋषि पालित से ऋषि पालित शाखा चली।

दूसरे आर्य्यसिंहगिरि नामक स्थविर के भी मुख्य चार शिष्य थे जैसे १—आर्य्य धनगिरि २—आर्य वज्र ३—आर्य समित ४—आर्य अर्हद्‌दत्त। जिसमें आर्य वज्र से वज्री शाखा और आर्य समित से ब्रह्मद्वीपका शाखा चली जिन्हों का वर्णन आगे आर्य वज्र के अधिकार में किया जायगा।

इनके अलावा पूर्व बतलाये हुए गण कुल शाखाओं में बड़े बड़े धुरन्धर युगप्रवर्तक महान प्रभाविक आचार्य हुए जिन्हों का अधिकार पृथक् २ ग्रन्थों में किया गया है। परन्तु पाठकों की सुविधा के लिए यहां पर संग्रह कर दिया जाता है।

युगप्रधानाचार्य्यों में कालकाचार्य्य का नाम जैन संसार में बहुत प्रसिद्ध है पर कालकाचार्य नाम के कई आचार्य हो गये हैं और उन्हों के साथ कई घटनायें भी घटित हुई हैं परन्तु नाम की साम्यता होने से यह बतलाना कठिन हो गया है कि कौन सी घटना किस आचार्य के साथ घटी। इसके लिए कुछ विस्तार से शोध खोज की जरूरत रहती है, अतः पहले तो यह बतला देना ठीक होगा कि कौन से कालकाचार्य्य किस समय हुए जैसे कि—

सिरिवीराओ गएसु, पणतीसहिएसु तिसय (३३५) वरिसेसु।
पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ ५५ ॥
चउसयतिपन्न ( ४५३ ) वरिसे, कालगगुरुणा सरस्सरी गहिआ।
चउसयसत्तरि वरिसे, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ५६ ॥
पंचेव य वरिससए, सिद्धसेणे दिवायरो जाओ।
सत्तसयवीस (७२०) अहिए, कलिग गुरू, सक्कसंथुणिओ ॥ ५७ ॥

श्री कालकाचार्य—

को शाही यानि शाह की उपाधि थी अतः जैन ग्रन्थकारों ने उनको शाही राजा के नाम से लिखा है पर मैं तो यहाँ उनको शक नाम से ही लिखूँगा, कारण वे भारत में आने पर शक ही कहलाते थे और आगे चल-कर उन्होंने शक संवत् चलाया वह आज भी चलता है।

उस समय उस शक प्रदेश में ९६ मण्डलीक राजा और उन पर एक सत्ताधीश राजा राज करता था उनके पास सात लक्ष घोड़ों की सैना थी। कालकाचार्य्य किसी एक मण्डलीक राजा के पास गये और कई दिन वहाँ ठहर कर आपने आत्मिक ज्ञान एवं निमित्तादि अनेक विद्याओं से शक राजा को वश में कर उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लिया। शक राजा को भी विश्वास हो गया कि यह कोई निस्पृही महात्मा हैं अतः वह सूरिजी का पक्का भक्त बन गया। हमेशा दोनों की ज्ञानगोष्टी हुआ करती थी।

एक समय ९६ मण्डलिकों के मालिक राजा ने एक कटोरा एक छुरा और एक पत्र उस मण्डलीक शक राजा के पास भेजा जहाँ कालकाचार्य्य रहता था। उस पत्र को पढ़ कर शक शोकातुर हो गया। काल-काचार्य‡ ने कहा कि आपको भेंट आई है, यह हर्ष का विषय है आप उदास क्यों हैं ? उसने कहा कि यह इनाम नहीं पर काल की निशानी है। पत्र में लिखा है कि इस छुरे से तुम अपना शिर काट कर इस कटोरे में रख कर भेज दो वरना तुम्हारे बालबच्चादि सब कुटुम्ब का नाश कर डालूँगा और यह हुक्म केवल एक मेरे पर ही नहीं पर इस छुरे पर ९६ का नम्बर है अतः ९६ मण्डलिकों पर भेजा होगा।

कालकाचार्य ने अपने कार्य्य की सिद्धि का सुअवसर समझ कर कहा कि आप घबराते क्यों हो ! ९५ मण्डलिकों को यहाँ बुला लीजिये अतः आप ९६ मण्डलीक मिलकर मेरे साथ चलें मैं आपका बचाव ही नहीं पर आपको भारत की मुख्य राजधानी उज्जैन का राज दिलवा दूँगा। मृत्यु के सामने इन्सान क्या नहीं करता है। शक राजा ने ९५ मण्डलिकों को गुप्तरीतिॐ से बुला लिया और ९६ मण्डलीक वहाँ से चल कर भारत में आ गये पर सौराष्ट्र प्रदेश में आये कि चतुर्मास के कारण बरसात शुरू हो गई अतः उन ९६ मण्डलिकों ने अपना पड़ाव सौराष्ट्र में ही डाल दिया इतना ही क्यों पर कुछ सौराष्ट्र का प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिया बाद जब चतुर्मास व्यतीत हो गया तो कालकाचार्य ने चलने की प्रेरणा की पर शकों ने कहा कि हम खर्चा से तंग † हो गये हैं और द्रव्य बिना काम चल नहीं सकता है इस पर कालका-चार्य ने कुम्हार के कजावे पर एक ऐसी रसायन डाली कि वह सब सोने का हो गया। तब आकर शकों को कहा लो तुमको कितना द्रव्य चाहिये जरूरत हो उतना ही सुवर्ण ले लीजिये। इस चमत्कार को देख शक तो आश्चर्य में डूब गये और उनका उत्साह खूब ही बढ़ गया। फिर तो था ही क्या ? उन्होंने इच्छित द्रव्य ग्रहण कर वहाँ से प्रयाण कर दिया और रास्ता में भरोंच के बलमित्र भानुमित्र वगैरह राजाओं को

‡ प्रशस्यिवान्मुनीन्द्रेण प्रसादे स्वामिनः स्फुटे। आयाते प्राभृते हर्षस्थाने किं विपरीतता ॥ ५२ ॥
सेनीचे मित्र कोपोऽयं न प्रसादः प्रभोर्ननु। प्रेष्यं मया शिरश्छित्वा स्वीयं शस्त्रिकयानया ॥ ५३ ॥

ॐ सर्वेऽपि गुप्तमाहूय सूरिभिस्तत्र मेलिताः। तरीभिः सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रान्ते समाययुः ॥ ५९ ॥

† सूरिणाय सुहृद्राजा प्रयाणेऽभ्यर्थ्यत स्फुटम्। स प्राह शंबलं नास्ति येन नो भावि शंबलम् ॥ ६२ ॥
श्रुत्वेति कुम्भकारस्य गृहे ऐकत्र सन्निधान्। वह्निना पच्यमानं चेष्टकापाकं ददर्श च ॥ ६३ ॥
कनिष्टिकानखं पूर्णं चूर्णयोगस्य कस्यचित्। आक्षेपात्तत्र चिक्षेपाऽथ सान्निध्यदा गुरुः ॥ ६४ ॥
शिष्यलोऽत्र यथाक्रमे राज्ञः प्रोवाच यत्सखे। विभज्य हेम गृहीत यात्रा संबाह हेतवे ॥ ६५ ॥

८—शक्रेन्द्र आकर स्तुति की थी। रत्न संचय ग्रन्थादि।

९—वल्लभी में आगम पुस्तकों पर लिखते समय शामिल थे—आवश्यक चूर्णी आदि में।

उपरोक्त घटनायें किस समय और किस कालकाचार्य के साथ घटी थी।

A पहिली घटना के नायक कालकाचार्य उपरोक्त चार कालकाचार्य्य से अलग हैं, कारण इस घटना का समय वीर नि० सं० ३०० के आस पास का बतलाया है।

B. दूसरी तीसरी घटना के नायक उपरोक्त चार कालक से पहिले + कालकाचार्य हैं जिन्हों का नाम श्यामाचार्य भी था और आपका समय वी० ३३५-३७६ है। ❀ पर मेरुतुंगसूरि ने आपका समय ३२० का लिखा है शायद् यह समय दीक्षा को लक्ष में रख लिखा हो।

C चौथी, पांचवीं, छट्टी और सातवीं घटना के नायक दूसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ४५३ से ४६५ तक है।

D आठवीं घटना के स्वामि तीसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ७२० का है. पर यह अप्रसिद्ध है।

E नौवीं घटना के नायक चतुर्थ कालकाचार्य्य हैं आपका समय वी० नि० ९९३ वर्ष का है।

पूर्वोक्त गाथाओं में सांवत्सरिक चतुर्थी के करने वाले चतुर्थ कालकाचार्य को लिखा है पर वास्तविक चौथ की सांवत्सरी के कर्त्ता द्वितीय कालकाचार्य्य ही हैं जिसके लिये आगे चल कर लिखेंगे।

उपरोक्त चार एवं पांच कालकाचार्यों में धर्म एवं राज में क्रान्ति पैदा करने वाले दूसरे कालकाचार्य हुये उनका ही जीवन यहाँ लिखा जा रहा है।

धारावास नगर में राजा वैरसिंह राज करता था आपकी रानी का नाम सुरसुन्दरी था। आपके दो संतान पैदा हुई जिसमें कुँवर का नाम कालक† और कन्या का नाम सरस्वती था कालककुँवर के सब

+ एक कथा में ऐसा भी लिखा मिलता है कि स्वर्ग से एक ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र कालकाचार्य को वन्दन करने को आया था तो ब्राह्मण ने अपना हाथ कालकाचार्य को दिखलाया कि मेरी आयुष्य कितनी है? सूरिजी ने रेखा पर लक्ष देकर सौ दो सौ और तीन सौ वर्ष तक का अनुमान किया पर आयुष्यरेखा तो उससे भी बढ़ती गई तब जाकर उपयोग लगाया कि इस पंचमारे में इससे अधिक आयुष्य हो नहीं सकती है तो यह कौन होगा? विशेष उपयोग लगाने से मालूम हुआ कि यह तो पहिले स्वर्ग का इन्द्र है। सूरिजी ने कहा आपकी आयुष्य दो सागरोपम की है जिसको सुनकर इन्द्र ने सोचा कि कालकाचार्य बड़े ही ज्ञानी हैं।

इससे यह भी पाया जाता है कि जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तीसूत्रादिशास्त्रों में पंचमारा में उत्कृष्ट १२० वर्ष की आयुष्य बतलाई है। यह मुख्यता से कहा है पर गौणता से इससे अधिक आयु भी हो सकती है जैसे कालकाचार्य ने ३०० वर्ष तक का अनुमान किया था। आज पाश्चात्य प्रदेशों में १५०-२०० वर्षों के आयुष्य वाले मनुष्य मौजूद हैं जिसको देख भद्रिक लोग शंका करने लग जाते हैं कि अपने सूत्रों में तो पंचमारा में १२० वर्ष की ही आयु कही है तो १५०-२०० वर्षों की आयु कैसे हो सकती है इसका समाधान उपरोक्त घटना से हो सकता है कि १२० वर्ष का आयुष्य मौख्यतासे कहा है तब गौणतासे पंचमारे में ३०० वर्ष तक की आयुष्य हो सकती है।

१ ❀ सिरिवीर जिणिंदाओ, वरिससया तिन्निवीस (३२०) अहियाओ। कालायसूरी जाओ, सक्को पडिवोहिओ जेण॥

मेरुतुंगसूरि की 'विचारश्रेणी'

१ † कालको काल कोदण्ड खण्डितारिः (?) सुतोऽभवत्। सुता सरस्वती नाम्ना ब्रह्मभूर्विश्वपावना॥ ७॥

को शाही यानि शाह की उपाधि थी अतः जैन ग्रन्थकारों ने उनको शाही राजा के नाम से लिखा है पर मैं तो यहाँ उनको शक नाम से ही लिखूँगा, कारण वे भारत में आने पर शक ही कहलाते थे और आगे चन-कर उन्होंने शक संवत् चलाया वह आज भी चलता है।

उस समय उस शक प्रदेश में ९६ मण्डलीक राजा और उन पर एक सत्ताधीश राजा राज करता था उनके पास सात लक्ष घोड़ों की सैना थी। कालकाचार्य किसी एक मण्डलीक राजा के पास गये और कई दिन वहाँ ठहर कर आपने आत्मिक ज्ञान एवं निमित्तादि अनेक विद्याओं से शक राजा को वश में कर उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लिया। शक राजा को भी विश्वास हो गया कि यह कोई निस्पृही महात्मा हैं अतः वह सूरिजी का पक्का भक्त बन गया। हमेशा दोनों की ज्ञानगोष्टी हुआ करती थी।

एक समय ९६ मण्डलिकों के मालिक राजा ने एक कटोरा एक छुरा और एक पत्र उस मण्डलीक शक राजा के पास भेजा जहाँ कालकाचार्य रहता था। उस पत्र को पढ़ कर शक शोकातुर हो गया। कालकाचार्य‡ ने कहा कि आपको भेंट आई है, यह हर्ष का विषय है आप उदास क्यों हैं? उसने कहा कि यह इनाम नहीं पर काल की निशानी है। पत्र में लिखा है कि इस छुरे से तुम अपना शिर काट कर इस कटोरे में रख कर भेज दो वरना तुम्हारे बालबच्चादि सब कुटुम्ब का नाश कर डालूँगा और यह हुकम केवल एक मेरे पर ही नहीं पर इस छुरे पर ९६ का नम्बर है अतः ९६ मण्डलिकों पर भेजा होगा।

कालकाचार्य ने अपने कार्य्य की सिद्धि का सुअवसर समझ कर कहा कि आप घबराते क्यों हो? ९५ मण्डलिकों को यहाँ बुला लीजिये अतः आप ९६ मण्डलीक मिलकर मेरे साथ चलें मैं आपका बचाव ही नहीं पर आपको भारत की मुख्य राजधानी उज्जैन का राज दिलवा दूँगा। मृत्यु के सामने इन्सान क्या नहीं करता है। शक राजा ने ९५ मण्डलिकों को गुप्तरीतिॐ से बुला लिया और ९६ मण्डलीक वहाँ से चल कर भारत में आ गये पर सौराष्ट्र प्रदेश में आये कि चतुर्मास के कारण बरसात शुरू हो गई अतः उन ९६ मण्डलिकों ने अपना पड़ाव सौराष्ट्र में ही डाल दिया इतना ही क्यों पर कुछ सौराष्ट्र का प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिया बाद जब चतुर्मास व्यतीत हो गया तो कालकाचार्य ने चलने की प्रेरणा की पर शकों ने कहा कि हम खर्चा से तंग † हो गये हैं और द्रव्य बिना काम चल नहीं सकता है इस पर कालकाचार्य ने कुम्हार के कजावे पर एक ऐसी रसायन डाली कि वह सब सोने का हो गया। तब आकर शकों को कहा लो तुमको कितना द्रव्य चाहिये जरूरत हो उतना ही सुवर्ण ले लीजिये। इस चमत्कार को देख शक तो आश्चर्य में डूब गये और उनका उत्साह खूब ही बढ़ गया। फिर तो था ही क्या? उन्होंने इच्छित द्रव्य ग्रहण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया और रास्ता में भरोंच के बलमित्र भानुमित्र वगैरह राजाओं को

‡ पृष्टश्चिन्तयान्मुनीन्द्रेण प्रसादे स्वामिनः स्फुटे। आयाते प्राभृते हर्षस्थाने किं विपरीतता ॥ ५२ ॥
तेनोचे मित्र कोपोऽयं न प्रसादः प्रभोर्ननु। प्रेष्यं मया शिरश्छित्वा स्वीयं शस्त्रिकयानया ॥ ५३ ॥

ॐ सर्वेपि गुरुमाहात्म्य सूरिभिस्तत्र मेलिताः। तरीभि सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रान्ते समाययु ॥ ५९ ॥

† सूरिणाथ सुहृत्प्रजा प्रयाणेऽजल्पयत स्फुटम्। स प्राह शंबलं नास्ति येन भो भावि शंबलम् ॥ ६२ ॥
श्रुत्वेति कुम्भकारस्य गृहे ऐकत्र जग्मिवान्। वह्निना पच्यमानं चेष्टकापाकं ददर्श च ॥ ६३ ॥
कनिष्ठिकानखं पूर्णं चूर्णयोगस्य कस्यचित्। आक्षेपात्तत्र चिक्षेपाऽकेऽप्य काञ्चितस्तदा गुरुः ॥ ६४ ॥
विध्यातेऽत्र यथावमे राज्ञः प्रोवाच यत्सले। विभज्य हेम गृह्णीत यात्रा संवाह हेतवे ॥ ६५ ॥

आर्य्या सरस्वती ने भी उज्जैन में पदार्पण किया । उस समय उज्जैन में गर्दभिल्ल नाम का राजा राज करता था, वह अन्यायी तो था ही पर साथ में व्यभिचारी❀ भी था । एक समय राजा की दृष्टि बालब्रह्मचारिणी सती सरस्वती साध्वी पर पड़ी जिसके रूप योवन और लावण्य पर मुग्ध बनकर राजा ने अपने अनुचरों से साध्वी को बलात्कार अपने राजमहलों में बुलाली । साध्वी विचारी बहुत रुदन करती हुई खूब चिल्लाई पर जब राजा ही अन्याय कर रहा हो तो सुने भी कौन । साथ की साध्वियों ने आकर सब हाल कालकाचार्य को कहा तो कालकाचार्य को बड़ा ही अफसोस हुआ और उन्होंने राजा के पास जाकर राजा को बहुत समझाया पर वह तो था कामान्ध, उसने सूरिजी की एक भी नहीं सुनी । वे निराश होकर वापिस लौट आये । तदनन्तर उज्जैन के संघ अग्रेश्वर अनेक प्रकार से भेंट लेकर राजा के पास गये और साध्वी को छोड़ने की प्रार्थना की पर उस पापिष्ट व्यभिचारी ने किसी की भी नहीं सुनी । इस हालत में कालकाचार्य ने भीषण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं इस व्यभिचारी राजा को सकुटुम्ब पदभ्रष्ट नहीं कर दूँ तो मेरा नाम कालकाचार्य नहीं है । सूरिजी कई दिन तो नगर में पागल की भांति फिरे पर इससे होने वाला क्या था । उस समय भरोंच नगर में बलमित्र भानुमित्र नाम के राजा राज करते थे और वे कालकाचार्यके भानजे थे । कालकाचार्य उनके पास गये पर वे भी गर्दभिल्ल का दमन करने में असमर्थ थे । दूसरे भी कई राजाओं के पास गये पर सूरिजी के दर्द की बात किसी ने भी नहीं सुनी । इस हालत में लाचार हो आप सिन्धु नदी को पार कर पार्श्वकुल अर्थात पार्श्व की खाड़ी के पास के प्रदेश† (ईरान) में गये जिसको शाकद्वीप भी कहते हैं । वहाँ के राजाओं

❀ जैन लेखकों का कथन है कि जिस राजा ने कालकाचार्य की बहिन सरस्वती का उपहरण किया था उसका नाम 'दप्पण' (दर्पण) था और किसी योगी की तरफ से गर्दभी विद्या प्राप्त करने से वह 'गर्दभिल्ल' कहलाता था ।

बृहत्कल्प भाष्य और चूर्णि में भी राजा गर्दभ सम्बन्धी कुछ बातें हैं, जिनका सार यह है कि उज्जयिनी नगरी में अनिलपुत्र श्रव नामक राजा और उसका पुत्र गर्दभ युवराज था । गर्दभ के अडोलिया नाम की बहिन थी । यौवनप्राप्त अडौलिया का रूप सौन्दर्य देख कर युवराज गर्दभ उस पर मोहित हो गया । उसके मंत्री दीर्घपृष्ट को यह मालूम हुई और उसने अडौलिया को सातवें भूमिघर में रख दिया और गर्दभ उसके पास आने जाने लगा ।'

चूर्णि का मूल लेख इस प्रकार है—

"उज्जेणी णगरी, तत्थ अणिलसुतो जवो नाम राया, तस्स पुत्तो गद्दभोणाम जुवराया, तस्स रण्णो धूआ गद्दभस्स भइणी अडोलिया णाम, सा य रूपवती तस्स य जुवरण्णो दीहपट्ठो णाम सचिवो (अमात्य इत्यर्थः) ताहे सो जुवराया तं अडोलियं भइणिं पासित्ता अज्झोववण्णों दुबली भवइ । अमच्चेण पुच्छितो णिव्वंधे सिट्ठं अमच्चेण भण्णाइ सागारियं भविस्सति तो सत्तभूमीघरे छुभउ तत्थ भुंजाहि ताए समं फोए लोगों जागिस्सइ सा कहिं पिणट्ठा एवं होउत्ति कतं ।"

संभव है, साध्वी सरस्वती का अपहारक गर्दभिल और अडेलिया का कामी यह गर्दभ दोनों एक ही हों । जब अपनी बहिन का ही विवेक नहीं था तो दूसरे का तो कहना ही क्या ।

× × ×

† शाखिदेशश्च तत्रास्ति राजानस्तत्र शाखयः । शकापराभिधाः सन्ति नवतिः षड्भिरर्गला ॥ ४४ ॥
तेषामेकोधिराजोस्ति सप्तलक्ष तुरङ्गमः । तुरङ्गायुत मानाश्चापरेपि स्युर्नरेश्वराः ॥ ४५ ॥
एको माण्डलिकस्तेषां प्रैषी कालकसूरिणा । अनेक कौतुक प्रेक्षाहृतचित्तः कृतोऽथ सः ॥ ४६ ॥

× × ×

दी थी इसी प्रकार कालकाचार्य ने भी गर्दभिल्ल को उसके अन्याय की सजा दिलवाई थी। अतः आज जैनसाध्वियाँ निर्भयता पूर्वक तपसंयम की आराधना करती हैं, यह कालकाचार्य के प्रकाण्ड प्रभाव का ही फल है कि गर्दभिल्ल के बाद आज पर्यन्त ऐसी कोई दुर्घटना नहीं बनी है।

गर्दभिल्ल के चले जाने पर शकों ने उज्जैन पर अपना अधिकार जमा लिया। जिसके यहाँ कालकाचार्य ठहरे थे उसको उज्जैन का राजा तथा दूसरे ९५ मण्डलिकों को छोटे बड़े ९५ प्रदेशों के राजा बना दिये। उस दिन से भारत में शकों का राज जम गया पर शक ६ भागों में विभाजित होने से उनका बल कमजोर पड़ गया वे केवल ४ वर्ष ही उज्जैन में राज कर सके बाद भरोंच के बलमित्र और भानुमित्र ने शकों से उज्जैन का राज छीन कर अपने अधिकार में कर लिया, फिर भी शक भारत से निकल नहीं गये पर उनका फोर दक्षिण भारत की ओर बढ़ता गया, यहाँ तक कि उन्होंने विक्रम के बाद १३५ वर्ष व्यतीत होने पर अपना संवत् चलाया जिसका आज पर्य्यन्त दक्षिण भारत की ओर अधिक प्रचार है।

एक समय कालकाचार्य भ्रमण करते अपने शिष्यों के साथ भरोंच नगर के उद्यान में पधारे। वहाँ पर बलमित्र भानुमित्र राजा राज करते थे जो कालकाचार्य के भानजे लगते थे। उन्होंने बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था, श्रोताजन उपदेशामृत का पान कर अपनी आत्मा का कल्याण करते थे

राजा के एक पुरोहित था वह महा मिथ्या दृष्टि और जैनधर्म का कट्टर शत्रु था पर कालकाचार्य ने वाद विवाद में उसको पराजित कर दिया था अत. वह अन्दर से द्वेषी पर ऊपर से आचार्य श्री का भक्त बनकर रहता था। राजा के आग्रह से कालकाचार्य ने वहाँ चतुर्मास कर दिया था पर यह बात पुरोहित को अच्छी नहीं लगती थी, उसने एक दिन राजा से कहा कि अपने आचार्य परमपूजनीय हैं इनकी पादुका अपने शिर पर रहनी चाहिये पर जब आचार्यश्री नगर में गमनागमन करते हैं तब इनके पैरों के प्रतिबिंब पर हलके से हलका आदमी पैर रखकर चलता है, यह बड़ा भारी पाप है। राजा ने सरल स्वभाव के कारण पुरोहित की बात को मान लिया पर चतुर्मास में आचार्य श्री को कैसे निकाल दिया जाय यह बड़ा भारी सवाल पैदा हो गया। इसके लिए पुरोहित ने कहा कि इसका सीधा उपाय है कि सब नगर में कहला दिया जाय कि आचार्य को मिष्टान्नादि भोजन करके बहराया करें अतः अनेषनीक आहार के कारण आचार्य स्वयं चले जांयगे तो अपन आशातना से बच जांयगे। बस, राजा ने आर्डर दे दिया और पुरोहित ने नागरिकों से कह दिया। जब साधु भिक्षा को जांय, तो सर्वत्र मिष्टान्नादि आहार मिलने लगा। आचार्यश्री को मालूम हुआ तो उन्होंने आधाकर्मी दोष जानकर वहां से विहार करने का निश्चय कर लिया। अतः दो साधुओं को प्रतिष्ठनपुर भेजकर राजा को कहला दिया, राजा ने खुश होकर स्वीकार कर लिया। जब कालकाचार्य प्रतिष्ठनपुर पधारे तो वहाँ के राजा प्रजा ने आपका खूब ही सत्कार[१] किया।

---

१—सा मूर्ध्नि गर्दभिल्लस्य कृत्वा विण्मूत्र मोच्यंथा। इत्वा च पादघातेन वोनेगान्तर्दधे खरी ॥७९॥
अवश्योयमिति ज्ञापयित्वा तेषां पुरो गुरुः। समप्रसैन्यमानीयमानीता दुर्गमाविशन् ॥८०॥
पातयित्वा क्षतो बद्धा प्रपात्य च गुरोः पुर। गर्दभिल्लो भटैर्मुक्तः प्राह सं कालको गुरु ॥८१॥
२—मोतेषिता मतें साध्वी गुल्माय सरस्वती। आलोचित प्रतिक्रान्ता गुणश्रेणिमगात् च ॥८०॥

साथ में लेकर उज्जैन की ओर चलधरे। गर्दभिल्ल ‡ को इस बात का पता लग गया कि उज्जैन पर शकों की सैना आ रही है पर उसने न तो लड़ाई का सामान तैयार किया न सैना को सजाया और न किल्ला एवं नगर का द्वार ही बन्द किया। इसका कारण यह था कि उसके पास गर्दभिविद्या थी। उसकी साधना करने पर वह गर्दभि के रूप में आती थी और किले पर खड़ी रह कर इस प्रकार का शब्दोचारण करती थी कि पाँच-पाँच मील पर जो कोई मनुष्य होता तो मर ही जाता था। इस गर्व में उसने किसी प्रकार की तैयारी नहीं की पर गर्दभिल्ल के विद्या अष्टमी चतुर्दशी को ही सिद्ध होती थी। शक राजा पहिले ही पहुँच गये थे अतः संग्राम शुरू हो गया पर गर्दभिल्ल की सैना भाग कर किले में चली गई। तब गर्दभिल्ल संग्राम बन्द कर विद्या साधने में लग गया। वातावरण सर्वत्र शान्त देख शकों ने कालकाचार्य से पूछा कि इस शान्ति का क्या कारण है ? सूरिजी ने कहा गर्दभिल्ल गर्दभि विद्या साध रहा है। आप सब लोग अपनी-अपनी सेना लेकर पांच मील से दूर चले जाओ केवल १०८ विश्वासपात्र एवं होशियार बाणधारी सुभट मेरे पास रख दो शकों × ने ऐसा ही किया। सूरिजी ने उन बाणधारियों को समझा दिया कि आप अपना बाण साधकर तैयार रहो कि किल्ले पर जिस समय गर्दभि शब्दोचारण करने को मुँह फाड़े उस समय सब ही एक साथ में गर्दभि के फटे हुए मुँह में बाण फेंक कर उसका मुँह भर दो, बस। आपकी विजय हो जायगी। फिर तो था ही क्या, उन विजयाकांक्षियों ने ऐसा ही किया अर्थात् ज्यों ही गर्दभि ने मुंह फाड़ा त्यों ही उन बाणधारियों ने बाण चलाये और गर्दभि का मुंह बाणों से भर दिया, वह एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकी। अतः गर्दभि को बहुत गुस्सा आया और वह गर्दभिल्ल पर नाराज हो उसके शिर पर भृष्टा१ और पेशाब करके एवं पदाघात कर चली गई। इस हालत में शकों ने धावा बोल दिया बस लीला मात्र में गर्दभिल्ल को पकड़ कर कालकाचार्य के पास लाये। गर्दभिल्ल ने लज्जा के मारे मुँह नीचा कर लिया। कालकाचार्य ने कहा "अरे दुष्ट ! एक सती साध्वी पर अत्याचार करने का यह तो नाम मात्र फल मिला है पर इसका पूरा फल तो नरकादि गति में ही मिलेगा इत्यादि। शक लोग गर्दभिल्ल को जान से मार डालना चाहते थे पर कालकसूरि ने दया लाकर उसको जीवित छुड़ा दिया। गर्दभिल्ल वहाँ से मुँह लेकर जंगल में चला गया वहाँ एक शेर ने उसे मार डाला अतः वह मर कर नरक में गया।

कालकाचार्य सरस्वती साध्वी को छुड़ाकर लाये और पराधीनता में साध्वी को जो कुछ अतिचार लगा उसकी आलोचना२ देकर उसे पुनः साध्वियों में शामिल करदी तथा स्वयं सूरिजी ने जैन धर्म की रक्षा के लिये सावद्य कार्यों में प्रवृति की उसकी आलोचना करके शुद्ध हुये और पुनः गच्छ का भार अपने शिर पर लिया।

जैनधर्म में उत्सर्गोपवाद दो मार्ग बतलाये हैं। जब आपत्ति आजाती है तब अपवाद मार्ग को ग्रहण कर जैन धर्म की रक्षा करनी पड़ती है जैसे विष्णुकुमार ने महामिथ्या दृष्टि जिन शासन के कट्टर द्वेषी निमूची को सजा

‡ श्रुत्वापि बलमागच्छन् विद्यासामर्थ्यगर्वितः। गर्दभिल्लनरेन्द्रो न पुरीदुर्गमसज्जयत् ॥६८॥
अथाप शाखिसैन्यं च विशालातलमेदिनीम्। पतङ्गसैन्यवत्सर्वं प्राणिवर्गभयंकरम् ॥६९॥

× इत्याकर्ण्य कृते तत्र देशे कालक सद्गुरुः। सुभटानां शतं साष्टं प्रार्थयच्छब्दवेधिनाम् ॥७७॥
स्थापिताः स्वसमीपे ते लब्ध लक्षाः सुरक्षिताः। स्वरकाले मुखं तस्या बभ्रु (भौ) र्वा (बा) णैर्निषङ्गवत् ॥७८॥

रहा हूँ । यन सकेतो तू इनको हितशिक्षा देना । बस, इतना कहकर सूरिजी तो विहार करके प्रबन्धकार के मत से कालकाचार्य विशाला अर्थात् उज्जैन गये थे पर गये किस माम से यह नहीं बतलाया परन्तु निशीथ चूर्णीकार लिखते हैं कि "उज्जैणी कालखमणा सागर खमणा सुवर्ण भूमिसु" अर्थात् उज्जैन नगरी में कालकाचार्य रहते थे और वहां से चल कर सुवर्णभूमि में रहने वाले सागरसूरि के उपाश्रय गये थे। सागरसूरि कालकाचार्य के शिष्य का शिष्य था।

कालकाचार्य सुवर्णभूमि में सागरसूरि२ के उपाश्रय गये, उस समय सागरसूरि व्याख्यान पीठ पर बैठा था, कालकाचार्य को नहीं पहिचाना अतः वन्दन व्यवहारादि भी नहीं किया। इस हालत में उपाश्रय के एक जीर्ण विभाग में जाकर कालकाचार्य परमेष्ठी का ध्यान लगा कर बैठ गये। जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो सागरसूरि ने कालकाचार्य के पास आकर कहा कि हे तपोनिधि! आपको कुछ पूछना हो तो पूछो,मैंआपके मनके संशय को दूर करूंगा इस पर सूरि ने कहा कि मैं वृद्धावस्था के कारण आपके कहने को ठीक समझ नहीं पाया हूँ तथापि मैं आपसे पूंछता हूँ कि अष्ट पुष्पी का क्या अर्थ होता है ? सागरसूरि ने गर्व में आकर यथार्थ तो नहीं पर कुछ अटम् पटम् अर्थ कह सुनाया जिससे कालकाचार्य ने सागर सूरि की परीक्षा कर ली

इधर उज्जैन में सुवह गुरु को नहीं देखने से अविनीत शिष्य घबराये कि अपने कारण गुरु अकेले ही चले गये जब उन्होंने शय्यातर को पूंछा तो उन्होंने सब हाल कह दिया। इस हालत में वे शिष्य भी वहाँ से विहार कर सुवर्णभूमि की ओर आये जब उन्होंने सागरचन्द्रसूरि के उपाश्रय जाकर पूछा कि क्या यहाँ गुरू महाराज पधारे हैं ? उसने कहा कि एक वृद्ध तपस्वी के अलावा यहाँ कोई नहीं आया है। साधुओं ने कहा अरे वह वृद्ध तपस्वी ही गुरुदेव हैं। सब साधुओं ने आकर सूरिजी को वन्दन किया जिसको देखकर सागरचन्द्रसूरि लज्जित हो गया और दादागुरु को वन्दन कर अपने अपराध की क्षमा मांगी।

कालकाचार्य ने सागरचन्द्रसूरि से कहा कि तुमको ज्ञान का इतना घमंड किस लिये है। कारण तीर्थङ्करों का ज्ञान अनंत है जिसके अनन्तवें भाग गणधरों१ ने मन्थित किया है जिसका क्रमशः षट्स्थान न्यून जम्बु प्रभव शय्यभव आदि आचार्यों को ज्ञान रहा। इतना ही क्यों पर जितना ज्ञान मुझे है उतना मेरे शिष्यों में नहीं और उनमें है उतना तेरे में नहीं और तेरे में है उतना तेरे शिष्यों में न होगा, तो तू इतना गर्व क्यों रखता है ? जब तुमको अष्ट पुष्पी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं है तो गर्व किस बात का है। ले मैं तुमको अष्ट पुष्पी२ का अर्थ बतलाता हूँ "अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह रागद्वेषत्याग

१—अन्येद्युः कर्मदोषेण सूरीणां तादृशामपि । आसन्न विनयाः शिष्या दुर्गतौ दोहदप्रदा ॥१२९॥
अथ शय्यातरं प्राहुः सूरयो वितथं वचः । कर्मबन्ध निषेधाय यास्यामो वयमन्यतः ॥१३०॥
त्वया कथ्यममीषां च प्रियकर्कश वाग्भरैः । शिक्षयित्वा विशालायां प्रशिष्यान्ते ययौ गुरुः ॥१३१॥
२—प्रशिष्य. सागर सूरिस्तत्र व्याख्याति चागमम् । तेन नो विनय. सूरेरभ्युत्थानादि को दधे ॥१३८॥
तत ईर्यां प्रतिक्रम्य कोणे कुत्रापि निर्जने । परमेष्ठिपरावर्त्तं कुर्वंस्तस्थावसङ्ग धी' ॥१३९॥
१—श्रीसुधर्मा ततो जम्बू श्रुतकेवलिनस्तत । षट्स्थाने पतितास्ते च श्रुते हीनत्वमाययु ॥१४७॥
२—अष्टपुष्पीं च तत्पृष्टः प्रभुर्व्याख्यानयत्तदा । अहिंसासूनृतास्तेय महाकिंचनता तथा ॥१५०॥
रागद्वेषपरित्यागो धर्मध्यानं च सप्तमम् । शुक्लध्यानमष्टमं च पुष्पैरात्मार्चनाद्धिवम् ॥१५१॥

प्रभाविक चरित्र

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था जिसमें मनुष्य जन्म की दुर्लभता राज ऋद्धि की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि समझा कर धर्माराधन की ओर जनता का चित्त आकर्पित किया जाता था। आपके व्याख्यान का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पर वहां के राजा सातवाहन पर भी खूब अच्छा पड़ता था। यही कारण था कि राजा जैनधर्म का अनुयायी बन गया। जब पर्वपर्युषण के दिन नजदीक आये तो राजा ने पूछा कि प्रभो ! खास पर्युषण का दिन कौन सा है कि जिस दिन धर्म कार्य्य किया जाय ? सूरिजी ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सांवत्सरिक पर्व है उस दिन पौपध प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। इस पर राजा ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी का हमारे यहां इन्द्र-महोत्सव होता है और राजनीति के अनुसार मुझे वहां उपस्थित होना भी जरूरी है। अतः आप सांवत्सरिक पर्व को एक दिन पहिले या पीछे रख दें कि मेरे धर्म करनी बन सके। इस पर सूरिजी ने सोचा कि शास्त्रों में एक दिन पहिले तो पर्वाराधन हो सकता है पर बाद में नहीं होता है अतः लाभालाभ का विचार करके भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी[२] को सांवत्सरिक पर्वाराधन का निश्चय कर दिया इससे राजा प्रजा सबको सुविधा हो गई। भविष्य के लिए सूरिजी ने सोचा कि राजा के इन्द्र-महोत्सव तो वर्षो वर्षो होता है और इस कारण जैसे राजा को समय नहीं मिलेगा वैसे राजकर्मचारी एवं नागरिकों को भी समय नहीं मिलेगा। यही बात दूसरे नगरों के राजा प्रजा के लिए होगी, तो यह सब लोग पर्वाराधन से वंचित रह जायेंगे। अतः हमेशा के लिए सांवत्सरिक की चतुर्थी की जाय तो अच्छा है।

अनुमान लगाया जा सकता है कि कालकाचार्य का उस समय समाज पर कितना प्रभाव था कि उन्होंने एक बिलकुल नया विधान करके सम्पूर्ण समाज से मंजूर करवा लिया। यह कोई साधारण बात नहीं थी। उस समय का समाज दो विभागों में विभक्त था। एक आर्य्य महागिरि की शाखा में तब दूसरा आर्य सुहस्ती की शाखा में पर कालकाचार्य का विधान ( चतुर्थी की सांवत्सरी ) सबने शिरोधार्य्य कर लिया था और वह विधान कई ११००-१२०० वर्षों तक एक ही रूप में चलता रहा था।

प्रबन्धकारने कालकाचार्य का चतुर्मास भरोंच में लिखा है तब निशीथ चूर्णी में उज्जैन में लिखा है और उज्जैन से ही प्रतिष्ठनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी। शायद इसका कारण यह हो कि बलमित्र और भानुमित्र भरोंच के राजा थे और उन्होंने ५२ वर्ष तक भरोंच में राज किया था तथा पिछली अवस्था में केवल ८ वर्ष उज्जैन में राज किया था इस कारण वे भरोंच के राजा के नाम से ही प्रसिद्ध थे अतः प्रबन्धकार ने भरोंच में चतुर्मास करना लिख दिया होगा पर वास्तव में कालकाचार्य का चतुर्मास उज्जैन में ही था और वहाँ से चतुर्मास में प्रतिष्टनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी।

कालकाचार्य के साथ एक अविनीत शिष्यों की घटना ऐसी घटी थी। कि कालदोष से कालकाचार्य के शिष्य अविनीत एवं आचार में शिथिल हो गये थे। बार बार शिक्षा देने पर भी उन्होंने अपने प्रमाद का त्याग नहीं किया इस पर आचार्यश्री ने सोचा कि ऐसे अविनीत साधुओं के साथ रहना केवल कर्मबन्ध का कारण है। अतः आपने शय्यातर[१] को कह दिया कि मैं इन शिष्यों के अविनीतपने के कारण यहाँ से जा

१—नगरे डिण्डिमो वाद्यः सर्वत्र स्वामिपूजिताः। प्रतिलाभ्या वराहारैगुरवो राजशासनात् ॥१०९॥

२—राजावदच्चतुर्थ्यां तत्पर्वपर्युषणं ततः। इत्थमस्तु गुरुः प्राह पूर्वैरप्यादृतं ह्यदः ॥१२१॥

चतुर्थी की संवत्सरी—

आचार्यश्री के गुरुभाई संग्रामसिंहसूरि थे उनको आज्ञा दी अतः उन्होंने नागेन्द्रकुमार को दीक्षा दी और मण्डन नाम के मुनि को उसकी सेवा शुश्रूषा एवं पढ़ाई का कार्य्य सौंपा आखिर नागेन्द्रमुनि थोड़े ही समय में ज्ञानाभ्यास करके धुरन्धर विद्वान हो गया। एक समय आचार्यश्री ने नागेन्द्र को कांजी का पानी लाने के लिए भेजा। वह पानी लेकर वापिस आया तो एक गाथा कह कर पानी देने वाली का वर्णन किया।

"अं वं तंवच्छीए अपुफियं फुप्फ दंत पंतीय नय सालकंजियं नव बहूईकुडूराएणेदिन्नं"

अर्थ—लाल वस्त्रवाली अभी ऋतु न हुई पुष्प सदृश दंत पंक्ति वाली ऐसी नव वधू ने बड़े ही प्रमोद से मुझे नये चावलों की कांजी का दान दिया है। इस शृंगार रस गर्भित गाथा को सुन कर गुरु ने कहा पलित्तओ" तू राग अग्नि में प्रदीप्त है इस पर मुनि नागेन्द्र ने कहा कि गुरुवर्य्य। एक मात्रा की और कृपा करें कि मैं "पालित्तओ" हो जाऊँ। इसका भाव यह है कि:—"गगन गमनोपायभूतां पादलेप विद्यां मेदत् येनाहं पादलिप्तक, इतिभिदिये ततो गुरुभि पादलेप विद्या दत्ता अर्थात् गुरु ने नागेन्द्र को पादलेप विद्या प्रदान कर दी कि जिससे वह पैरों पर लेप करके आकाश में जहाँ इच्छा करे वहाँ ही चला जावे।

जब मुनि नागेन्द्रदसवर्ष ⊛ का हो गया तो उनको सर्व गुण सम्पन्न समझकर आचार्य पद से विभूषित कर दिया और उनका नाम पादलिप्तसूरि रख दिया।

गुरु आज्ञा से बालाचार्य पादलिप्त सूरि विहार कर मथुरा पधारे। वहां की जनता को अपने ज्ञान से रंजित बनाकर आप † पाटलीपुत्र नगर में पधारे। उस समय पाटलीपुत्र नगर में मुरंड नाम का राजा राज करता था। पादलिप्तसूरि के चमत्कार एवं उपदेश से राजा जैन धर्म को स्वीकार कर आचार्यश्री का परम भक्त बन गया।

एक समय राजा मुरंड ने सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर! हम लोग प्रधान वगैरह को अच्छा वेतन देते हैं फिर भी वे बराबर काम नहीं करते हैं तो आपके साधु बिना वेतन आपका कार्य्य कैसे करते होंगे? सूरिजी ने कहा तुम्हारे प्रधानादि स्वार्थ के वश नौकरी करते हैं पर हमारे शिष्य परमार्थ के लिए हमारी आज्ञा का पालन करते हैं। फिर एक नवदीक्षित शिष्य की परीक्षा की और इस परीक्षा के लिए राजा ने अपने मुख्य प्रधान बुला के कहा कि गंगा की धार किस ओर मुंह करके बहती है इसकी पक्की निगाह कर खबर लाओ। प्रधान ने सोचा कि बालाचार्य की संगत करने से राजा भी बाल भाव को प्राप्त होकर व्यर्थ ही कष्ट दे रहा है। यह बात तो बालक भी जानता है कि गंगा पूर्व की ओर बह रही है। बस प्रधान अपने भोग विलासादि कार्य्य में लग गया, राजा ने अपने गुप्तचरों को प्रधान के पीछे भेज दिया। बाद २-४ घंटा से आकर राजा को कह दिया कि मैंने पूरी निगाह करली है कि गंगा पूर्व मुँह कर बहती है। राजा के गुप्तचर ने मंत्री का सब हाल राजा से कह दिया। बाद सूरिजी ने अपने एक शिष्य को भेजा कि निगाह करो कि गंगा किस ओर बहती है? शिष्य ने गुरु आज्ञा पालन करने को गंगा पर जाकर २-४ आदमियों से पूछ कर तपास की तथा आप स्वयं गंगा में दंडा रख निर्णय किया और गुरु के पास आकर कहा कि गंगा

⊛ इत्यसौ दशमे वर्षे गुरुभिर्गुणगौरवात्। प्रत्यष्ठाप्यत पट्टे स्वे कषपट्टे प्रभावताम् ॥४१॥
† दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वासौ पाटलीपुरे। जगाम तत्र राजास्ति मुरुण्डो नाम विश्रुत॥४२॥

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था जिसमें मनुष्य जन्म की दुर्लभता राज ऋद्धि की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि समझा कर धर्माराधन की ओर जनता का चित्त आकर्षित किया जाता था। आपके व्याख्यान का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पर वहां के राजा सातवाहन पर भी खूब अच्छा पड़ता था। यही कारण था कि राजा जैनधर्म का अनुयायी बन गया। जब पर्वपर्युषण के दिन नजदीक आये तो राजा ने पूछा कि प्रभो ! खास पर्युषण का दिन कौन सा है कि जिस दिन धर्म कार्य्य किया जाय ? सूरिजी ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सांवत्सरिक पर्व है उस दिन पौषध प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। इस पर राजा ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी का हमारे यहां इन्द्र-महोत्सव होता है और राजनीति के अनुसार मुझे वहां उपस्थित होना भी जरूरी है। अतः आप सांवत्सरिक पर्व को एक दिन पहिले या पीछे रख दें कि मेरे धर्म करनी बन सके। इस पर सूरिजी ने सोचा कि शास्त्रों में एक दिन पहिले तो पर्वाराधन हो सकता है पर बाद में नहीं होता है अतः लाभालाभ का विचार करके भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी[२] को सांवत्सरिक पर्वाराधन का निश्चय कर दिया इससे राजा प्रजा सबको सुविधा हो गई। भविष्य के लिए सूरिजी ने सोचा कि राजा के इन्द्र-महोत्सव तो वर्षो वर्ष होता है और इस कारण जैसे राजा को समय नहीं मिलेगा वैसे राजकर्मचारी एवं नागरिकों को भी समय नहीं मिलेगा। यही बात दूसरे नगरों के राजा प्रजा के लिए होगी, तो यह सब लोग पर्वाराधन से वंचित रह जायेंगे। अतः हमेशा के लिए सांवत्सरिक की चतुर्थी की जाय तो अच्छा है।

अनुमान लगाया जा सकता है कि कालकाचार्य का उस समय समाज पर कितना प्रभाव था कि उन्होंने एक बिलकुल नया विधान करके सम्पूर्ण समाज से मंजूर करवा लिया। यह कोई साधारण बात नहीं थी। उस समय का समाज दो विभागों में विभक्त था। एक आर्य्य महागिरि की शाखा में तब दूसरा आर्य सुहस्ती की शाखा में पर कालकाचार्य का विधान ( चतुर्थी की सांवत्सरी ) सबने शिरोधार्य्य कर लिया था और वह विधान कई ११००-१२०० वर्षों तक एक ही रूप में चलता रहा था।

प्रबन्धकारने कालकाचार्य का चतुर्मास भरोंच में लिखा है तब निशीथ चूर्णी में उज्जैन में लिखा है और उज्जैन से ही प्रतिष्ठनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी। शायद इसका कारण यह हो कि बलमित्र और भानुमित्र भरोंच के राजा थे और उन्होंने ५२ वर्ष तक भरोंच में राज किया था तथा पिछली अवस्था में केवल ८ वर्ष उज्जैन में राज किया था इस कारण वे भरोंच के राजा के नाम से ही प्रसिद्ध थे अतः प्रबन्धकार ने भरोंच में चतुर्मास करना लिख दिया होगा पर वास्तव में कालकाचार्य का चतुर्मास उज्जैन में ही था और वहाँ से चतुर्मास में प्रतिष्ठनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी।

कालकाचार्य के साथ एक अविनीत शिष्यों की घटना ऐसी घटी थी। कि कालदोष से कालकाचार्य के शिष्य अविनीत एवं आचार में शिथिल हो गये थे। बार बार शिक्षा देने पर भी उन्होंने अपने प्रमाद का त्याग नहीं किया इस पर आचार्यश्री ने सोचा कि ऐसे अविनीत साधुओं के साथ रहना केवल कर्मबन्ध का कारण है। अतः आपने शय्यातर[१] को कह दिया कि मैं इन शिष्यों के अविनीतपने के कारण यहाँ से जा

१—नगरे डिण्डिमो वाद्यः सर्वत्र स्वामिपूजिताः। प्रतिलाभ्या वराहारैर्गुरवो राजशासनात् ॥१०९॥
२—राजावदच्चतुर्थ्यां तत्पर्वपर्युषणं ततः। इत्थमस्तु गुरुः प्राह पूर्वैरप्याहतं ह्यदः ॥१२१॥

शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं अनेक विद्याओं से विभूषित थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रबल थी कि कोई भी ज्ञान एक बार सुन लेते तो वह सदैव के लिये कण्ठस्थ ही हो जाता।

गुडशस्त्र नगर से चल कर एक बोधाचार्य भरोंच नगर में आया था उसके साथ मुनि भुवन का धर्म के विषय शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें बोधाचार्य को पराजित कर शासन की खूब ही प्रभावना की। बोधाचार्य इतना लज्जित हो गया कि वह कहीं पर जाकर मुंह दिखाने काबिल ही नहीं रहा। अतः उसने भरोंच में अन्न जल का त्याग कर दिया, आखिर वह मर कर यक्ष योनि में उत्पन्न हुआ और गुडशस्त्र नगर में अकार लोगों को उपद्रव करने लगा अतः लोगों ने उसकी मूर्ति स्थापित की जब जाकर यक्ष शान्त हुआ। बाद पूर्व द्वेष के कारण यक्ष जैनश्रमणों को उपसर्ग करने लगा इससे दुःखी हुये संघ ने दो मुनियों को भेज कर आचार्य खपटसूरि से कहलाया कि यहां का यक्ष जैन संघ को बहुत दुःख देता है अतः आप जल्दी से यहां पधार कर श्रीसंघ के दुःख को दूर कर शांति करावें। इस पर आचार्य श्री ने मुनि भुवन को बुला कर कहा कि मैं गुडशस्त्र नगर जाता हूँ पीछे तुम इस खोपड़ी को भूलचूक कर भी उघाड़ कर नहीं देखना। इतना कहकर आचार्यश्री तो विहार कर गुडशस्त्र नगर में पधार गये और सीधे ही यक्ष के मंदिर में जाकर यक्ष के कान पर पैर रख कपड़ा से शरीर आच्छादित कर सो गये। जब पुजारी यक्ष की पूजा करने को आया तो आचार्य को सोता हुआ देख दूर हटने के लिये बहुत कहा पर उसने एक भी नहीं सुनी। तब पुजारी ने राजा के पास जाकर सब हाल निवेदन किया तो राजा ने क्रोधित हो हुक्म दिया कि लकड़ी लाठी एवं पत्थरों से मार कर सेवड़ा को हटा दो। पुजारी ने ऐसा ही किया पर आचार्य को तो इस बात की परवाह ही नहीं। इसका नतीजा यह हुआ कि पुजारी ने जितने लाठी लकड़ी पत्थर चलाये वे सब राजा के अन्तेवर की रानियों पर ही मार पड़ने लगी अतः अन्तेवर गृह में हाहाकार मच गया और रानियों ने पुकार की कि हमारी रक्षा करो ! रक्षा करो इत्यादि यह समाचार राजा के पास आया तब जाकर राजा ने सोचा कि यक्षालय में सोने वाला कोई सिद्ध पुरुष होगा ऐसा सोचकर राजा अपने सब परिवार को लेकर यक्ष मंदिर में आया और भक्तिपूर्वक आचार्य देव को वन्दन कर शान्त होने की प्रार्थना की तथा नगर में पधारने के लिए आग्रह किया इस पर आचार्य श्री ने यक्ष को कहा चलो मेरे साथ तथा और भी देव मूर्तियां सूरिजी के साथ हो गई इतना ही क्यों पर वहाँ दो पत्थर की बड़ी कुंडियें थीं वह भी सूरिजी के पीछे चल रही थी ॐ इस तरह से सूरिजी ने नगर†प्रवेश किया जिसको देखकर राजा एवं प्रजा जैनधर्म के एवं सूरिजी

२—तत्रार्यखपटा नाम सूरयो विद्यतो (यो) दिता। तेषां च भागिनेयोऽस्ति विनेयो भवनाभिधः ॥१४६॥
कर्णश्रुत्याप्यसौ प्राज्ञो विद्यां जग्राह सर्वतः। बौद्धान्वादे पराजित्य यैस्तीर्थं संघ साक्षिकम् ॥१४७॥
तदा च सौगताचार्य एको बहुकराभिधः। गुडशस्त्रपुरात्प्राप्तो जिगीषुर्जैनशासनम् ॥१५०॥
सर्वांनित्य प्रवादी स चतुरंग सभापुरः। जैनाचार्यस्य शिष्येण जितः स्याद्वादवादिना ॥१५१॥

ॐ—तैराख्याते पुनः क्रुद्धो नृपस्तं लेष्टुयष्टिभिः। अघातयत्स घातानां प्रवृत्तिमपि वेत्ति न ॥१५९॥
क्षणेन प्रभुलो जज्ञे पुरेऽप्यन्तः पुरेऽपि च। पृत्कुर्वन्त: समाजग्मु सौविदाभवदंस्तथा ॥१६०॥
रक्ष रक्ष प्रभो न्यक्ष शुद्धान्तो लेष्टुयष्टिभिः। अदृष्टैर्हिनैः कैश्चित् प्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥१६१॥

†—चाल्यं नरसहस्रेण तत्र द्रोणीद्वयं तथा। चालितं कौतुकेनेत्थं स प्रवेशोत्सवो ऽभवत् ॥१६६॥
तत्प्रभावाद्भुतं वीक्ष्य अनेशोऽपि जनोपि च। जिनशासनभक्तोऽभून्महिमान च निर्ममे ॥१६७॥
प्रभाविक चरित्र

धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन अष्ट पुष्पों से भावपूजा करने से जीव का कल्याण होता है इत्यादि" । सागरचन्द्रसूरि का गर्व गलगया और अविनीत शिष्यादि को सुशिक्षा देते हुये कालकाचार्य अनशन समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये । जैनशासन में कालकाचार्य एक महान प्रभाविक आचार्य हुये हैं ।

आचार्य पादलिप्तसूरि—आप पाँचवी शताब्दी के एक प्रभाविक आचार्य थे । आपके प्रभावोंत्पादक जीवन के लिये बहुत से विद्वानों ने विस्तार से वर्णन किया है पर मैं तों यहां अपने उद्देश्यानुसार केवल सारांश मात्र ही लिखता हूँ ।

कोशलानगरी के अन्दर राजा विजयब्रह्म राज करते थे । वहाँ पर एक बड़ा ही धानाढ्य फुल्ल नाम का सेठ बसता था जिसके प्रतिमा नामकी सेठानी थी दम्पत्ति सर्व प्रकार से सुखी होने पर भी उनके कोई सन्तान न होने से वे हमेशा चिन्तातुर रहते थे । अनेक देव देवियों की आराधनादि कई उपाय किये पर उसमें वे सफल नहीं हुये फिर भी उन्होंने अपना उद्यम करना नहीं छोड़ा । एक समय सेठानी ने पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री नागजाति की देवी वैरोट्या का महोत्सव पूर्वक तथा अष्टम तप करके आराधन किया अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि विद्याधर गच्छ के कालकाचार्य की संतान में आचार्य नागहस्ति[१] के चरण प्रक्षालन के जल का पान कर, तेरे पुत्र होगा । सेठानी देवी के वरदान को तथाऽस्तु कह कर सुबह होते ही वहाँ से चल कर आचार्य श्री के उपाश्रय आई भाग्यवसात् उस समय आचार्य श्री बाहर जाकर आये थे । उनके पैरों का प्रक्षालन कर एक साधु उस पानी को परठने के लिये जा रहा था । सेठानी ने उस पानी से थोड़ा पानी लेकर आचार्य श्री से दशहाथ दूर ठहर कर जलपान कर लिया बाद सूरीजी के पास आकर वन्दन के साथ सब हाल निवेदन कर दिया । इस निमित्त को सुन कर सूरिजी ने कहा श्राविका ! तेरे पुत्र तो होगा पर तू ने मेरे से दश हाथ दूर रह कर जलपान किया है, इस से तेरा पुत्र तेरे से दश योजन दूर मथुरा नगरी में रह कर बड़ा होगा तथा इस पुत्र के बाद नौ पुत्र और भी होंगे । इस पर सेठानी ने कहा कि हे पूज्य ! मैं अपने पहिले पुत्र को आपके अर्पण करती हूँ । क्योंकि मेरे से दूर रहे उससे तो आपके पास रहना अच्छा है । सूरिजी ने कहा भद्रे ! तेरापुत्र बड़ा ही प्रतिभाशाली होगा और जगत का उद्धार करेगा इत्यादि ।

सेठानी ने नागेन्द्र का स्वप्न सूचित गर्भ धारण कर यथा समय पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम नागेन्द्र रख दिया तथा अपनी प्रतिज्ञानुसार सेठानी ने अपने पुत्र को सूरिजी के अर्पण कर दिया । सूरिजी ने कहा कि श्राविका ! हमारी तरफ से इस बालक का तुम पालन पोषण करो । प्रतिमा सेठानी ने गुरु वचन को शिरोधार्य्य करके लड़के का अच्छी तरह से पालन पोषण किया जब नागेन्द्र ८ वर्ष का हुआ तो सूरिजी ने उसको ज्ञानाभ्यास करवा दिया ।

---

१—आसीत्कालिकसूरिः श्रीश्रुताम्भोनिधिपारगः । गच्छे विद्याधराख्यस्यार्यनागहस्ति सूरयः ॥१५॥
खेलादिलब्धिसम्पन्नाः सन्ति त्रिभुवनार्चिताः । पुत्रमिच्छसि चेत्तेषां पादशौच जलंपिबेः ॥१६॥

२—साहाथ प्रथमः पुत्रो भवतामर्पितो मया । अस्तु श्रीपूज्यपार्श्वस्थो दूरस्थस्यास्य को गुणः ॥२२॥

३—नागेन्द्राख्यां ददौ तस्मै फुल्ल उत्फुल्ललोचनः । आत्तो गुरुभिरागत्य सगर्भाष्टमवार्षिकः ॥२९॥

४—प्रव्रज्यां प्रददुस्तस्य शुभे लग्ने स्वरोदये । उपादानं गुरोर्हस्तं शिष्यस्य प्राभवे न तु ॥३१॥

५—श्रुत्वेतिगुरुभिः प्रोक्तः शब्देन प्राकृतेन सः । पाकित्तो इति श्रृङ्गाराग्निप्रदीप्तामिधायिना ॥३९॥

*नागार्जुन—आचार्य पादलिप्त के पास जाकर उनकी स्तुति करता हुआ उनका अनुरागी बन गया। बाद सूरिजी पैरों पर लेप कर आकाश मार्ग से शत्रुंजय, गिरनार, अष्टापद शिखर और आर्बुदाचल की यात्रा कर के वापिस आये। नागार्जुन ने लेप पहिचान ने की गरज से आचार्य श्री के पैरों का प्रक्षालन किया जिसमें सुगन्ध से स्पर्श से और अन्य प्रकार से १०७ औषधियों को जान गया। जब वह जंगलों से औषधियां लाकर अपने पैरों पर लेप कर आकाश में गमन करने लगा। थोड़ा थोड़ा उड़ता पर एक औषधी की न्यूनता के कारण वह वापिस गिर जाता था जिससे उसके घुटने से रुधिर बहने लग गया। जिसको देख सूरिजी ने कहा बिना गुरु से विद्या फलीभूत नहीं होती है। नागार्जुन ने कहा कि मैंने अपनी बुद्धि की परीक्षा की है। आचार्य श्री ने कहा कि यदि मैं तुमे आकाशगामनी विद्या बतलाऊं तो बदले में तू मुझे क्या देगा ? नागार्जुन ने कहा जो आप फरमावें वही दूंगा।

गुरु—मैं दूसरा कुछ भी नहीं चाहता। तू पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर और उसका ही पालन कर। कारण इन भौतिक विद्याओं से आत्म कल्याण नहीं पर आत्मकल्याण जैनधर्म की आराधना से ही होगा।

नागार्जुन ने स्वीकार कर लिया।

तब सूरिजी ने कहा कि जो मसाल १०७ औषधियों द्वारा एकत्र किया है उसको कांजी और चावलों के जल के साथ मिलाले जिससे आकाश में गमन कर सकेगा। नागार्जुन ने ऐसा ही किया और वह आकाश में गमन करने में सफल हो गया।

---

*—तत्र नागार्जुनो नाम रससिद्धिविदांवरः। भाविशिष्यो गुरोस्तस्य तद्वृत्तमपि कथ्यते ॥२४९॥
तृणरत्नमये पात्रे सिद्धं रसमढौकयत्। छात्रो नागार्जुनस्य श्री पादलिप्तप्रभो पुरः ॥२६२॥
स प्राह रससिद्धं ढौकने कृतवान् रसम्। स्वान्तर्दं नमहोस्नेहस्तस्येत्येवं स्मितो व्यधात् ॥२६३॥
पात्रं हस्ते गृहीत्वा च भित्तावास्फाल्य खण्डशः। चक्रे च तत्करों दृष्ट्वा व्यषीदद्वक्र वक्त्रभृत् ॥२६४॥
मा विषीद तव श्राद्धपरवंतो भोजनं वरम्। प्रदापयिष्यते चैव मुक्त्वा संमान्य भोजितः ॥२६५॥
तस्मै चापृच्छ्यमानाय काच पात्रं प्रपूर्य सः। प्रश्रावस्य ददौ तस्मै प्राभृतं रसवादिने ॥२६६॥
नूनमस्मद्गुरुर्मूर्खः यो ऽनेन स्नेहमिच्छति। विमृशन्निति स स्वामिसमीपं जग्मिवांस्ततः ॥२६७॥
पूज्यैः सहाकृता मैत्री तस्येतिस्मितपूर्वकम्। सम्यग्विज्ञप्य वृत्तान्तं तदमत्रं समार्पयत् ॥२६८॥
द्वारमुन्मुद्य यावत्स सन्निधत्ते दृशोः पुर। आजिघ्रति तत क्षारविस्रगन्धं स बुद्धवान् ॥२६९॥
अहो निर्लोभतामेष मूढतां वा स्पृशेदथ। विमृश्येति विषादेन बभंजाश्मनि सोऽपि तत् ॥२७०॥
दैवसयोगतस्तत्रैकेन वह्निः प्रदीपितः। भक्ष्यपाकनिमित्त च क्षुत्सिद्धस्यापि दुःसह ॥२७१॥
पकानृजलवेधेन वह्नियोगेसुवर्णकम्। सुवर्णसिद्धिमुत्प्रेक्ष्य सिद्धशिष्यो विसिष्मिये ॥२०२॥
सूरयस्य मुनिव्राते गते विचरितुं तदा। प्रत्युक्तपंचतीर्थान्ते गत्वा व्योम्ना प्रणम्य च ॥२८३॥
समायान्ति मुहूर्तस्य मध्ये नियमपूर्वकम्। विद्याचारणलब्धीनां समानास्ते कलौ युगे ॥२८४॥
आयातानामथैतेषां चरणक्षालनं ध्रुवम्। जिज्ञासुरौषधानीह निर्विकारश्चकार सः ॥२८५॥
स जिघ्रन् वृिशन् पश्यन् स्वादयन् संस्पृशन्नपि। प्रज्ञाबलादौषधीनां जज्ञे सप्ताधिकं शतम् ॥२८६॥
कृतज्ञेन ततस्तेन विमलाद्रेरुपत्यकाम्। गत्वा समृद्धिभाक् चक्रे पादलिप्ताभिधं पुरम ॥२९९॥
अधित्यकायां श्रीवीरप्रतिमाधिष्ठितं पुरा। चैत्यं विधापयामास स सिद्धः साहसीश्वरः ॥३००॥ प्र० च०

पूर्व की ओर बहती है। इसके पीछे भी राजा का गुप्तचर गया था जिससे राजा ने दोनों का हाल जान लिया और सूरिजी के कहने पर दृढ़ विश्वास हो गया।

पादलिप्तसूरि एक समय मथुरा में सुपार्श्वनाथ के दर्शन कर ऊंकारपुर ‡ पधारे वहाँ के राजा भीम ने सूरिजी का अच्छा सत्कार किया। सूरिजी के उपदेश से वहाँ का राजा भी जैनधर्मी बन गया।

आचार्य श्री शत्रुंजय की यात्रा कर मानखेटपुर × पधारे वहाँ के राजा कृष्णराज को उपदेश देकर जैन-धर्मोपासक बनाया और राजा के आग्रह से आप वहाँ ही विराजते थे। वहां पर प्रांशुपुर से एक रुद्रदेवसूरि नामक आचार्य पधारे थे वे योनिप्रभृत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे एक समय अपने शिष्यों को उस शास्त्र की वाचना दे रहे थे उसको बाहर रहा हुआ धीवर ( मच्छीमार ) सुन रहा था। उसने उस विद्या एवं विधि को अच्छी तरह धारण कर ली कि जिससे माच्छला उत्पन्न कर सके।

बाद दुकाल पड़ा, पानी के अभाव माच्छला नहीं मिले तो उस धीवर ने योनिप्रभृत विद्या से माच्छला पैदा कर दुकाल में अपने कुटुम्ब का पालन किया। बाद फिर गुरू के दर्शन किये धीवर ने अपनी सारी बात कह कर उपकार माना। इस पर आचार्य श्री को बड़ा भारी पश्चाताप करना पड़ा कि मैंने उपयोग नहीं रखा जिससे इतने जीवों की हिंसा हुई। फिर धीवर को उपदेश दिया कि मैं तुझे रत्न बनाने की विद्या बता सकता हूँ पर माच्छला बनाना या मांस खाने का त्याग करना पड़ेगा। धीवर ने कहा पूज्य ! जब मेरा गुजारा हो जाय तो इस लोक और परलोक में निन्दनीय कार्य्य मैं कदापि नहीं करूंगा। आचार्य महाराज ने उस धीवर को रत्न बनाने की विद्या सिखा कर उसको पाप से बचाया।

श्रमणसिंहसूरि—विलास१ पुर नगर में प्रजापति राजा राज करता था उस समय श्रमणसिंहसूरि वहां पधारे। राजा ने कहा कि आप ज्ञानी हैं कुछ चमत्कार बतलावें। इस पर सूरिजी ने कई प्रकार के चमत्कार बतला कर राजा को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

आचार्य खपटसूरि—आप विद्या निपुण जैनशासन के एक चमकते सितारे थे। आपका चरित्र अलौकिक एवं चमत्कारों से ओतप्रोत है और पढ़नेवाले भव्यों को आनन्द का देनेवाला है। आपने एक विशुद्ध राजवंश में उत्पन्न हो जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण कर अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया अतएव आप तात्विक दार्शनिक एवं विद्या मंत्रादि शास्त्रों में बड़े ही धुरन्धर विद्वान थे। अपनी अलौकिक प्रभा का प्रभाव कई राजा महाराजा एवं वादी प्रतिवादियों पर डालते हुए भूमि पर भ्रमण करते थे।

एक समय आप भरोंच नगर में विराजमान थे जहां बीसवें तीर्थङ्कर भगवान मुनि सुव्रत का तीर्थ था और कालकाचार्य का भानेज बलमित्र राजा राज करता था वह कट्टर जैन और आचार्यश्री का परम भक्त था। आचार्य खपटसूरि के एक शिष्य भुवनमुनि२ जो आपके संसार पक्ष में भानेज लगते थे वह भी

‡ ततोऽसौ लाटदेशांतश्चोङ्काराख्यपुरे प्रभुः। आगतः स्वागतान्यस्य तत्राधाद्भीमभूपतिः ॥ ९४ ॥

× मानखेटपुरं प्राप्ताः कृष्णाभूपालरक्षितम्। प्रभवः पादलिप्ताख्य राज्ञाभ्यर्च्यंत भक्तितः ॥११४॥
तत्र प्रांशुपुरात्प्राप्ताः श्रीरुद्रदेवसूरयः। ते चावबुद्धतत्वार्थाः श्रीयोनिप्राभृते श्रुते ॥११५॥
अन्येद्यु र्निजशिष्याणां पुरस्तस्माच्च शास्त्रतः। व्याख्याता शफरोत्पत्तिः पाप सन्तापसाधिका ॥११६॥

१—विलास नगरे पूर्वं प्रजापतिरभूत्ततः। ततः श्रमणसिंहाख्याः सूरयश्च समाययुः ॥१२१॥

सातवाहन ने मानखेट के राजा कृष्ण को कहला कर पादलिप्तसूरि को प्रतिष्ठनपुर बुलाया। सूरिजी आकर उद्यान में ठहर गये इसकी खबर मिलते ही एक बृहस्पति कवि ने सूरिजी की परीक्षा के लिए ठसा हुआ घृत एक चांदी की कटोरी में डाल कर किसी चालाक आदमी के साथ सूरिजी के पास भेजा। सूरिजी अपनी विद्या से जान गये और उसमें सुइयें खड़ी करके वापिस लौटा दिया इसका भाव यह था कि पंडितों ने ठसा हुआ घृत भेज कर संकेत किया था कि यहाँ सब पंडित विद्या से पूर्ण रहते हैं यदि आप पंडित हों तो इस नगर में पधारें इस पर सूरिजी ने घृत में सुइयें खड़ी करके संकेत किया कि यहाँ घृत को भेदने वाले पंडित विद्वान हैं। अतः मैं नगर में प्रवेश करूँगा। जिसको देख बृहस्पति मुग्ध हो गया इतना ही क्यों पर राजा भी सूरिजी के प्रति श्रद्धासम्पन्न हो गया और बड़ी धूमधाम से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया और सूरिजी के ठहरने को एक मकान भी खोल दिया।

आचार्य श्री का इस प्रकार का सत्कार एक पांचल नामक कवि जो राज सभा में हमेशा तारंगलोला नाम की कथा सुनाया करता था देख नहीं सका। अतः वह ईर्ष्या रूपी अग्नि में जलता था। एक समय प्रसंगोपात् राजा ने कवि की तारंगलोला कथा की प्रशंसा की इस पर सूरिजी ने कहा कि यह तो मेरी तारंगलोला कथा का अर्थ बिन्दु लेकर कथा नहीं पर कंथा बनाई है। अतः कवि राजसभा में लज्जित हो गया।

एक समय पादलिप्त सूरि मायावी मृत्युवत बन गये इससे नगर में हाहाकार मच गया। आखिर बड़ी सेविका* में सूरिजी के शरीर को स्थापन करके श्मशान में ले जा रहे थे जब पांचाल कवि के मकान के पास आये तो कवि घर से निकल कर बड़े ही दुःख के साथ कहने लगा कि हाय! हाय!! महासिद्ध विद्या के पात्र पादलिप्त सूरि ने स्वर्गवास किया। अरे मेरे जैसे मत्सर भाव रखने वालों की क्या गति होगी कि मैंने ऐसे सत्पात्रसूरिजी के साथ व्यर्थ मत्सर भाव रक्खा। इस प्रकार पश्चाताप करते हुए कवि ने एक गाथा कही।

"सीसं कहवि न फुट्टं जमस्स पालित्त यं हरं तस्स।
जस्स मुह निज्झराओं तारंगलोला नई बूढ़ा ॥१॥"

अर्थात् पादलिप्त जैसे महान आचार्य का हरन करने वाले यम का शिर क्यों न फूट गया जिस सूरि के मुखरूपी द्रह से तारंगलोला रूप महानदी निर्गमन हुई।

पांचाल के शब्द सुनते ही सूरिजी ने सेविका में खड़े होकर कहा कि—

"पांचाल† के सत्य वचन से मैं पुनः जीवित हुआ हूँ।" इस प्रकार कहते हुए सब लोगों के साथ बाजा गाजा एवं हर्षनाद होते हुए सूरिजी अपने उपाश्रय पधारे।

सूरिजी ने मुनियों की दीक्षा, श्रावकों के व्रत और मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा के विधि विधान के लिये "निर्वाण‡ कलिका" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया इसके अलावा प्रश्नप्रकाश ज्योतिष का ग्रन्थ वगैरह कई ग्रन्थों की रचना की।

---

* शिविकांवस्तनुः साधु क्षिप्त्वा यावत्समाययौ। वादित्रैर्वच मानैश्च पंचालभवनाग्रतः ॥१३७॥

† पंचालसत्यवचनाज्जीवितोऽहमिति ब्रुवन्। उत्तस्थौ जनताहर्षारावैण सह सूरिराट् ॥१४२॥

‡ श्रावकाणां यतीनां च प्रतिष्ठा दक्षिया सह। उत्थापना प्रतिष्ठार्हद्बिम्बनां श्रुसदामपि ॥१४५॥
यदुक्तविधितो बुद्धा विधीयेतात्र सूरिभिः। निर्वाणकलिकाशास्त्रं प्रभुश्चक्रे कृपावशात् ॥१४६॥ प्र० च०

के परमभक्त बन गये। बाद यक्ष एवं मूर्तियों को अपने स्थान जाने की आचार्यश्री ने आज्ञा दे दी और दो कुडियें वहां ही पड़ी रहीं। इस चमत्कार से नगर में जैन धर्म की खूब प्रशंसा होने लगी और जनता पर जैनधर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा। राजा और प्रजा जैनधर्म के परमोपासक बन गये।

आचार्य खपटसूरि गुडशस्त्र नगर में विराजते थे उस समय भरोंच से दो ‡ मुनियों ने आकर निवेदन किया कि आप श्री तो यहां पधार गये पीछे मना करते हुये भुवनमुनि ने खोपरी उघाड़ कर पत्र पढ़ लिया और उस विद्या से सरस आहार लाकर रसगृद्धी बन गया है। स्थविरों ने उपालम्भ दिया तो वह जाकर बोद्धों × में मिल गया और विद्या प्रयोग से श्रावकों के घरों से सरस आहार लाकर खा रहा है जिससे जैनधर्म की निन्दा हो रही है। श्री संघ ने आपको बुलाने के लिये हम दोनों साधुओं को भेजा है अतः आप शीघ्र भरोंच पधारें। यह सुनकर सूरिजी भरोंच पधारे। जब भुवन ने पात्र को आज्ञा दी कि श्रावकों के घरों से मिष्टान्न आहार लाओ। वह पात्र आकाश में जा रहा था आचार्यश्री ने एक शिला + विकुर्वी जिससे पात्र फूट टूट चकनाचूर हो गया। इसकी खबर भुवन को हुई तो वह भय भ्रान्त होकर वहां से भाग गया। बाद आचार्यश्री बौद्ध मंदिर में गये। बौद्धों ने कहा कि आप बुद्ध मूर्ति को नमस्कार करो। पर आचार्य श्री के विद्याबल के प्रभाव से बोद्ध मूर्ति तथा द्वार पर एक बुद्ध श्रावक की मूर्ति ने आकर सूरिजी के चरणों में नमस्कार किया बाद गुरू ने कहा अपने स्थान जाओ पर वे उठते समय कुछ अवनत रहे जिससे अद्यावधि वह बोध मंदिर 'निग्रन्थ नमित' नाम से प्रसिद्ध है।

महेन्द्रोपाध्याय❀—आप आचार्य खपटसूरि के शिष्य और महाविद्याभूपित थे एक समय पाटलीपुत्र नगर में दाहिड़† नामक राजा सत्यधर्म का नाश करता हुआ एक हुक्म निकाला कि सब धर्म वाले ब्राह्मणों के चरणों में नमस्कार करें अगर मेरी इस आज्ञा का कोई भी उल्लंघन करेगा तो उसको प्राणदण्ड दिया जायगा इस पर बहुत से लोग प्राण और धन की रक्षा के लिये ब्राह्मणों को नमस्कार करने लग गये पर जैन श्रमणों ने अपने धर्म की रक्षा के लिये प्राणों की कुछ भी परवाह नहीं की और कहने लगे कि राजा का कितना अन्याय—कितनी धर्मान्धता कि त्यागियों का अपमान करवाने के लिये ही यह आज्ञा निकाली है कि तुम सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करो। खैर, जैनों ने राजा से कुछ दिन की मुद्दत ले ली और दो विद्वान मुनियों को भरोंच नगर भेज कर आचार्य खपटसूरी को सब हाल कहला दिया और कहलाया कि महेन्द्रोपाध्याय को जल्दी से भिजवावें कि यहाँ के श्रीसंघ का संकट को दूर कर जैनधर्म की विजयपताका फहरावें। दोनों मुनि चलकर भरोंच आये और सूरिजी को सब हाल निवेदन कर दिया। सूरिजी ने अपने शिष्य महेन्द्र को दो कन्नेर की कावें जो एक लाल दूसरी श्वेत थी अभिमंत्रित कर देदी और पाटलीपुत्र जाने के लिये रवाना कर दिया। क्रमशः महेन्द्रर्षि पाटलीपुत्र पधारे और राजसभा में जाकर

‡—इतश्च श्रीभृगुक्षेत्रात् यतिद्वितयमागमत्। तेन प्रोचे प्रभो प्रेपीत्संघो नौ भवदन्ति के ॥१६९॥
×—तत्प्रभावेण पात्राणि गतानि गगनाध्वना। भोज्य पूर्णान्युपायान्ति बौद्धोपासक वेश्मनः ॥१७३॥
+—पूर्णानि तानि भोज्यानामायन्ति गगनाध्वना। गुरुभि, कृतयादृश्यशिलया व्योम्नि पुस्फुटुः ॥१७७॥
† नगरी पाटलीपुत्रं आरिपुरसप्रभम्। दाहडो नाम राजास्ति मिथ्यादृष्टिर्निकृष्टधीः ॥१८४॥
❀ विमृश्य गुरुभिः प्रोचे श्रीआर्यखपटप्रभोः। शिष्याग्रणीर्महेन्द्रोऽस्ति सिद्धप्राभृतसंभृतः ॥१९२॥ प्र० च०

अन्दर एक चारित्र ही ऐसा निर्भय है कि जिसकी आराधना करने से निर्भय स्थान को प्राप्त कर सकता है

"भोगे रोगमयं सुखे क्षयमयं वित्ते ऽग्निभूभृद्भयं, दास्ये स्वामिमयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्।
स्नेहे वैरमयं नयेऽन्यमयं काये कृतान्ताद्भयं, सर्वं नाम भयंमवे यदि परं वैराग्यमेवाभयम्॥"

इत्यादि । आपके व्याख्यान का प्रभाव यों तो जनता पर पड़ा ही था पर वृद्ध ब्राह्मण मुकुन्द पर तो इतना असर हुआ कि उसने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा लेली । आपको ज्ञान पढ़ने की खूब रुचि थी पर बुद्धि इतनी जड़ थी कि परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती थी । खूब जोर-जोर से घोष-पाठ करता था दिन को तो आस पास के गृहस्थ लोगों के कान कम्प उठते थे और रात्रि में पास में रहने वाले साधुओं की निद्रा भंग हो जाती थी अतः वे कहने लगे कि हे मुनि! रात्रि समय इस प्रकार शब्दोच्चारण से हिंसक जीव जाग कर आरम्भ कर बैठेगा पर मुनि मुकुन्द को तो पढ़ना था ज्ञान, उसने अपना अभ्यास चालू रक्खा । इस पर एक समय मुनियों ने गुस्से में होकर कहा रे मुनि ! तू इस वृद्धावस्था में पढ़ कर क्या मूसल फूलावेगा ? मुकुन्द ने कहा कि आत्मा में अनन्त शक्ति है तो मूसल फूलाना कौन सी बड़ी बात है । समय आने पर मूसल भी नवपल्लवित हो सकता है । आचार्य्य श्री के साथ मुनि मुकुन्द विहार करते हुये भरोंच नगर में आये वहाँ पर "*नालिकेरवसांत*" नाम के जिन चैत्य में जाकर सरस्वती देवी की आराधना करनी प्रारम्भ की । चारों आहार का त्याग कर मूर्त्ति के सन्मुख एकाग्र चित्त से देवी भारती की आराधना में २१ दिन व्यतीत हो गये । तब जाकर देवी प्रसन्न हो कर बोली कि मुनि मैं तुमको वरदाई हो गई हूँ अब तेरा मनोरथ सफल होगा । मुकन्द ने कहा तथास्तु । देवी अजेयज्ञान का वर देकर अदृश्य हो गई । सुबह मुनि ने आकर गुरुदेव को वंदन नमस्कार किया और आज्ञा लेकर पारणा के लिये नगर में गया । जिस घर में मुनि भिक्षा के लिये गये उस घर में एक मूसल पड़ा हुआ देखा जिससे मुकुन्द को युवक मुनि का वचन स्मरण हो आया । मुनि ने मूसल को अचित जल का सिंचन कर सरस्वती से प्रार्थना की कि यह मूसल फूलों से नव प्लावित हो जाय । बस, फिर तो देरी ही क्या थी उसी समय जैसे ताराओं से आकाश शोभित है वैसे ही पुष्प पत्तों से मूसल शोभने लगा । इस चमत्कार को देख सब लोगों को आश्चर्य हुआ । कहने वाले युवक मुनि का जवानी एवं विद्या का गर्व गल गया और उसने अपने अपराध की क्षमा मांग कर वृद्ध मुनि की प्रशंसा की ।

अब तो मुनि मुकुन्द सरस्वती देवी की कृपा से बड़ी बड़ी राज सभा में पण्डितों के साथ वाद विवाद कर सर्वत्र विजय प्राप्त करने लग गये । यही कारण है कि आप वृद्ध वादी के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये । आचार्य स्कन्दिलसूरि मुनि वृद्धवादी को सर्वगुण सम्पन्न जान कर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आप समाधि पूर्वक स्वर्ग गये ।

आचार्य वृद्धवादीसूरि गच्छनायक होकर धरा पर विहार करते हुये एक समय उज्जैन नगरी की ओर आ रहे थे उस समय उज्जैन में राजा विक्रमादित्य राज्य कर रहा था उसी नगरी में देवीर्षि नामक ब्राह्मण राजा का मंत्री था जिसके स्त्री का नाम देवश्री था और इनका पुत्र सिद्धसेन + जो चार वेद अठारह पुराणादि ब्राह्मण धर्म के सर्व शास्त्रों का पारगामी था । विद्या का उसको इतना गर्व था कि मेरा जैसा दुनिया भर में कोई

+ श्रीकात्यायनगोत्रीयो देवर्षिब्राह्मणांगजः । देवश्रीकुक्षिभूर्विद्वान् सिद्धसेन इति श्रुतः ॥३१॥ प्र० च०

नागार्जुन पादलिप्तसूरि का इतना श्रद्धा सम्पन्न परमभक्त बन गया कि सिद्धगिरि तीर्थ की तलेटी में एक नगर बसा कर उसका नाम गुरु की स्मृति के लिए पादलिप्तपुर रख दिया जो आज पालीताना के नाम से प्रसिद्ध है और शत्रुंजय तीर्थ पर एक महावीर का मंदिर बनाया तथा एक गुरु पादलिप्तसूरि की मूर्त्ति बनाई जिसकी प्रतिष्ठा पादलिप्त सूरि ने करवाई तथा सूरिजी ने महावीर प्रभु की स्तुति रूप दो गाथा बनाई जिसमें सुवर्ण सिद्धि और आकाश गामिनी विद्यायें गुप्तपने रही पर वे किसी भाग्यशाली को प्राप्त हो सकती है। कलियुगियों के लिये नहीं।

एक समय प्रतिष्ठनपुर के राजा सातवाहन ने भरोंच के राजा बलमित्र पर आक्रमण* किया जिसको १२ वर्ष हो गये परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली। उस समय नागार्जुन योगी वहाँ आया और उसकी बुद्धि चातुर्य से सातवाहन को सफलता मिली अतः सातवाहन विजयी होकर अपने नगर को लौट गया।

एक वक्त राजा सातवाहन की सभा में शास्त्रों का संक्षिप्त सार बतलाने वाले चार† कवि आये और उन्होंने कहा कि हे राजन्!

१—जीर्णे भोजनात्रियः—आत्रेयर्षि ने कहा है कि वैद्यकशास्त्र का सार यह है कि पूर्व किया हुआ भोजन पचने पर नया भोजन करना।

२—कपिलः—प्राणिनांदया-कपिलर्षि ने कहा है कि धर्म शास्त्र का सार है कि प्राणियों की दया करना।

३—बृहस्पतिरविश्वासः—बृहस्पतिर्षि ने कहा है कि नीति शास्त्र का सार है कि किसी का भी विश्वास नहीं करना।

४—पांचालः स्त्रीषु मार्दवम्—पांचाल कवि ने कहा है कि काम शास्त्र का सार है कि स्त्रियों से मृदुता रखना।

इसको सुनकर राजा ने प्रसन्न हो उनको महादान दिया, पर कवियों ने कहा कि राजन्! यह क्या बात है कि तुम्हारा परिवार हमारे शास्त्र की कोई तारीफ नहीं करता है। इस पर राजा ने अपनी भोगवती वारांगना से कहा कि तू इन कवियों की तारीफ कर। उसने जवाब दिया कि मैं सिवाय पादलिप्तसूरि के किसी की तारीफ नहीं करती हूँ और इस जगत में पादलिप्तसूरि के अलावा कोई तारीफ योग्य है भी नहीं। इस पर किसी शंकर नामक मत्सरी ने कहा कि यदि किसी मृत्यु पाये हुये को जीवित कर दें तो मैं पादलिप्त को चमत्कारी समझूं वरना केवल आकाश में फिरने से क्या लाभ है? क्योंकि ऐसे तो बहुत से पक्षी आकाश में गमनागमन करते हैं। भोगवती ने कहा कि यह भी कोई बड़ी बात नहीं है, पादलिप्तसूरि के पास यह विद्या भी होगी ही।

आचार्य पादलिप्तसूरि उस समय राजाकृष्ण के आग्रह से मानखेट‡ नगर में रहता था। अतः राजा

* इतः पृथ्वीप्रतिष्ठाने नगरे सातवाहनः। सार्व भौमोपमः श्रीमान्नृप आसीद्गुणावनिः ॥२०७॥
तथा श्रीकालकाचार्य स्वस्रीयोः श्रीयशोनिधिः। भृगुकच्छपुरं पाति बलमित्राभिधोनृपः ॥२०८॥
अन्येद्युः पुरमेतच्च रुरुधे सातवाहनः। द्वादशाब्दानि तत्रास्थाद्दहिनं व्याहतंभवत् ॥२०९॥

† जीर्णे भोजनमात्रेयः कपिलः प्राणिनांदया। बृहस्पतिरविश्वासः पांचालस्त्रीषु मार्दवम् ॥६२०॥

‡ मानखेटपुरात् कृष्णमापृच्छय्य स भूपतिः। श्रीपादलिप्तमाह्वासीदेतस्मादेव कौतुकात् ॥२२७॥ प्र० च०

वाटउ मरीउ दहीने घोल, जीमणो कर लेइ घेसि घोल ।
इणि परेइं मुँडो मेलावउ करइं, स्वर्ग तणी वातज विमरइं ॥६॥
हडहडाटन विक्री जेवणु मर्म्म न बोली जे कहे तणु
कूडी साखी न दीजे आल, ए तुम्ह धर्म्म कहुँ गोवाल ॥७॥
अरडस विच्छु नवि मारइं मारतओ पण उधारइं
कुड कपट थी मन वारीइं इणि परइं आप कारज सारइं ॥८॥
वचन नव कीजइ कही तणु यह वात साची मणु
कीजई जीव दयानु जतन, सावय कुल चिंतमणि रतन ॥९॥

वृद्धवादी के इस गीत (उपदेश) को सुन कर गोपाल बराबर समझ गये और मन को बड़ी भारी खुशी हुई तब वे गोपाल ताली देकर कहने लगे ।

गोवालिया उठ्या गहगही, हरखित ताली देता सही
भलो यही ज गरडो डोकरउं, नही भणियें वेहीज छोकरउ ॥१॥
मट्ट जे बोल्यो भूत पल्लाप, फोट्या कान विगोयो आप ।
जीत्यो गरडो हरयो तु हल्ल, पाये लागी करइं ए गुरमल्ल ॥२॥

इन्धकार लिखता है कि गोपालों के सामने सिद्धसेन ने कहा कि संसार में कोई सर्वज्ञ नहीं है। उत्तर में आचार्य वृद्धवादी ने गोपालों से पूछा कि तुमने सर्वज्ञ देखा है ? गोपालों ने उत्तर दिया कि नगर के मंदिर में सर्वज्ञ वीतराग बैठा है । जिसको हम लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है और सब लोग उसको सर्वज्ञ वीतराग ईश्वर कहते हैं । यह बात सत्य है फिर यह पण्डित झूठ क्यों बोलता है इत्यादि गोपालों ने वृद्धवादी को सच्चा और सिद्धसेन को झूठा कह कर फैसला दे दिया ।

बस, फिर तो था ही क्या ! सत्यवादी सिद्धसेन ने गुरु महाराज के चरणों में शिर झुका कर कहा कि हे पूज्यवर ! आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनाइये कारण मैंने पहिले से ही ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिससे हार जाऊं उसका शिष्य बन जाऊं । सूरीजी ने कहा सिद्धसेन तू वास्तव में पंडित है पर कमी है तो समयज्ञपने की है । यदि तू जैन दीक्षा लेनी चाहता है तो बहुत अच्छा है पर यदि तेरी इच्छा हो तो अभी किसी राज सभा में चल कर विद्वान पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ कर फिर वहां जय पराजय का निर्णय हो जायगा । सिद्धसेन ने कहा नहीं प्रभो ! निर्णय तो यहां हो गया है और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आपके सामने मैं कुछ भी नहीं हूँ । अतः आप मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके अपना शिष्य बनालें । सूरिजी ने विधि विधान से सिद्धसेन को दीक्षा देकर उसका नाम कुमुदचन्द्र रख दिया । मुनि कुमुदचन्द्र ने जैन दीक्षा लेने के बाद वर्त्तमान जैन साहित्य का अध्ययन कर लिया । आचार्य वृद्धवादी ने सर्वगुण सम्पन्न जान कुमुदचन्द्र को आचार्य पद से विभूषित कर उनका प्रसिद्ध नाम सिद्धसैनसूरि रख दिया और अन्य साधुओं को साथ देकर अलग विहार करवा दिया । आचार्य सिद्धसैनसूरि की ज्ञानप्रभा यहां तक फैल गई कि वे सर्वज्ञ पुत्रके नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

एक समय पादलिप्तसूरि अपने आयुष्य को नजदीक जानकर अपने गृहस्थ शिष्य नागार्जुन के साथ विमलाचल पधारे वहाँ युगादीश्वर को वन्दन कर आलोचना पूर्वक अनशनव्रत किया । ३२ दिन तक समाधि के अन्दर रह कर अन्त में नाशवान शरीर का त्याग कर सूरिजी महाराज स्वर्ग पधार गये ।

इस पादलिप्त सूरि के प्रबन्ध में जितने आचार्यों का वर्णन आता है उसके अन्दर कई प्रकार के चमत्कार आये हैं जब कि जैनशास्त्रों में साधुओं के लिए इस प्रकार के चमत्कार दिखाने की मनाही है फिर उन विद्वानाचार्यों ने ऐसा क्यों किया होगा ?

जैनागमों नें द्रव्य क्षेत्र काल भाव को लक्ष्य में रखकर उत्सर्गोपवाद दो प्रकार का मार्ग बतलाया है । जब इन आचार्यों के समय की परिस्थिति को देखा जाय तो उन चमत्कारों की जरूरत थी । कारण एक तरफ बोद्धाचार्य्य दूसरी और वेदान्ताचार्य्य इस प्रकार के चमत्कार बतला कर भद्रिक जनता को सत्पथ से पतित बनाकर अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न कर रहे थे उस हालत में जैनाचार्य्यों को उनके सामने खड़े कदम रहकर जैन जनता एवं जैनधर्म की रक्षा करना जरूरी बात थी । उन्होंने जो कुछ किया था वह जैन-धर्म की रक्षा के लिए ही किया था न कि निजी स्वार्थ के लिए । अतः उन्होंने जो किया वह शासन के हित के लिये ही किया था और ऐसा करने से ही जैनधर्म जीवित रह सका है । ऐसी कुतर्क करने वाले महाशयों को पहिले उस समय का इतिहास उस समय की परिस्थिति का ज्ञान करना चाहिये ताकि अपनी तर्क का स्वयं समाधान हो सके ।

**आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर**—आप दोनों आचार्य महाप्रतिभाशाली एवं जिन-शासन की प्रभावना करने वाले हुये हैं जिसमें पहिले वृद्धवादी का सम्बन्ध लिखा जा रहा है ।

गौड़ देश के कोशला ग्राम में एक मुकुन्द* नामका वृद्ध ब्राह्मण वसता था । उस समय विद्याधर शाखा के आचार्य पादलिप्त सूरि की परम्परा सन्तान में स्कन्दिलाचार्य्य विहार करते हुए कोशल ग्राम में पधारे । आपका व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर हुआ करता था एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने फरमाया कि—

"पच्छवि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं । जेसिं पियो तवो संजमो य, खंतीय बंभचेरं च ॥"

अर्थात् मनुष्य अपनी पिछली अवस्था में भी जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण कर ले तो उसके लिए विमानीक देवों के सुख तो सहज में ही मिल सकते हैं क्योंकि वृद्धावस्था में एक तो ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख से पल सकता है दूसरे कषाय की मंदता होने से क्षमा गुण बढ़ जाता है । इनके अलावा सूरिजी ने कहा कि संसार के

*—तत्रास्ति कोशलाग्रामसंवासी विप्रपुङ्गवः । मुकुन्दाभिधया साक्षान्मुकुन्द इव सद्व्रतः ॥७॥
अपरेद्यु र्विहारेण लाटमंडलमंडनम् । प्रापुः श्रीभृगुकच्छं ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरंबरं प्रतिशब्दयन् । मुकुन्दर्षिः समुद्रोर्मिध्वानसापत्न्यदुःखदः ॥१४॥
भृशं स्वाध्यायमभ्यस्यन्नयं निद्राप्रमादिनः । विनिद्रयति वृद्धत्वादाग्रहीसन्नहर्निशम् ॥१५॥
तारुण्योचितया सूक्तया करुणासूयया ततः । अनगारैः खरां वाचमाददे नादरार्दितः ॥१९॥
अजानन्वयसोंतं यदुग्रपाठादरार्दितः । फुल्लयिष्यसि तन्मल्लीवल्लीवन मुशलं कथम् ॥२०॥
तत आराधयिष्यामि भारतीदेवतामहम् । अथोग्रतपसा सत्यं यथा सूयावचो भवेत् ॥२२॥
समुत्तिष्ट प्रसन्नास्मि पूर्यन्तां ते मनोरथाः । स्खलना न तवेच्छास्तु तद्विधेहि निजेहितम् ॥२७॥ प्र० च०

के उपदेश से वह जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी का परम भक्त बन गया॥ और बहुत आग्रह कर सूरिजी को अपने यहां रख हमेशा ज्ञानगोष्टी किया करता था। एक समय विजयवर्मा राजा सेना लेकर देवपाल पर चढ़ आया। राजा घबराया और सूरिजी के पास आकर अपनी दुःखगाथा कह सुनाई। सूरिजी ने सुवर्ण विद्या से सोना और सरसप विद्या से असंख्य सुभट बना दिये जिसने देवपाल ने विजयवर्मा को भगा दिया। इससे देवपाल ने सूरिजी को दिवाकर उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नहीं पर राजा ने भक्तिवश होकर सूरिजी को छत्र, चँवर, पालकी और हस्ती तक देकर एक बादशाही ठाट सा बना दिया और आचार्य श्री अपने चारित्र को विस्मृत हो कर उन सब ठाट के साधनों को उपभोग में भी लेने लग गये।

जब आचार्य वृद्धवादी ने यह बात सुनी कि सिद्धसेन चारित्र से शिथिल होकर पालकी एवं हस्ती पर चढ़कर छत्र चँवरादि राजसी ठाट भोग रहा है तो सूरिजी को बड़ा भारी अफसोस हुआ कि सिद्धसेन जैसों का यह हाल है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है। अतः अपने योग्य शिष्य का उद्धार करने के लिये स्वयं सूरिजी वेश बदल कर कुंर्मार नगर में आये और जिस समय सिद्धसेन सुखासन पर बैठ के बहुत लोगों के परिवार से राजमार्ग से निकल रहा था उससमय वृद्धवादीसूरि ने उसके पास जाकर एक गाथा कही।

अणहुल्ली फुल्ल म तोडहु मन आराम म मोडहूं।
मण कुसुमेहिं अचि निरंजणु हिंडह कांइं वणेण वणु॥

इस गाथा के अर्थ के लिये सिद्धसेन ने बहुत उपयोग लगाया पर गाथा के भाव को नहीं समझ सका अटम् पटम् अर्थ कहा पर बुढ़े ने मंजूर नहीं किया तब सिद्धसेन ने बूढ़े से कहा कि तुम इस गाथा का भाव कहो। बूढ़े ने गाथा का भाव कहते ही सिद्धसेन की सुरत ठिकाने आई और सोचा कि सिवाय मेरे गुरु के ऐसा विद्वान नहीं कि इस प्रकार की गाथा कह सके। तुरंत ही पालकी से उतर कर गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगी। गुरु महाराज ने सिद्धसेन को यथायोग्य प्रायश्चित देकर स्थिर किया और गच्छ का भार सिद्धसेन को सौंप कर आप अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग धाम को पधार गये।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर शुरू से संस्कृत के अभ्यासी एवं अनुभवी थे। शायद प्राकृत एवं मागधी भाषा उनको अच्छी नहीं लगी हो या इनके गूढ़ रहस्य को समझने में कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा हो या उस जमाने की जनता पर विशेष उपकार की भावना हो एवं किसी भी कारण से प्राकृत भाषा को ग्रामीण भाषा समझ कर जैनागमों को संस्कृत में बना देने के इरादे से श्रीसंघ को एकत्र कर अपने मनोगत भाव श्रीसंघ के सामने प्रदर्शित किये कि आप सम्मति दें तो मै इन सब आगमों को संस्कृत में

॥ स पूर्वदेशपर्य्यन्ते व्यहार्षीच्च परेद्यवि। १ कर्मारनगरं प्राप विद्यायुगयुतः सुधी ॥७५॥
देवपाल नरेन्द्रोऽस्ति तत्र विख्यात विक्रमः। श्रीसिद्धसेनसूरिं स नं शुमभ्याययौ रयात् ॥७६॥
ततो दिवाकर इति ख्याताख्या भवतु प्रभोः। ततः प्रभृति गीतः श्री सिद्धसेन दिवाकरः ॥८५॥
तस्य राज्ञो दृढं मान्यः सुखासन गजादिषु। बलादारोपितो भक्त्या गच्छति क्षितिपाक्षयम ॥८६॥
इति ज्ञात्वा गुरुर्वृद्धवादी सूरिर्जनश्रुतेः। शिष्यस्य राजसत्कार दर्पं भ्रान्त मतिस्थितेः ॥८७॥
अणहुल्ली फुल्ल मतोडहु मन आरामा ममोडहु। मणकुसुमेहिं अच्चि निरंजणु हिंडहकाइं वणेण वणु ॥९२॥

पण्डित ही नहीं है। कई कई कथाओं में तो यहाँ तक भी लिखा मिलता है कि सिद्धसेन अपने पेट पर एक पाटा बांधा हुआ रखता था। पूछने पर कहता था कि मुझे डर है कि कहीं विद्या से मेरा पेट फट न जाय। पंडित जी एक हाथ में कुदाल और एक हाथ में निसरणी भी रखते थे पूछने पर कहते थे कि यदि कोई वादी आकाश में चला जाय तो इस निसरणी से उसकी टांग पकड़ ले आऊँ और पाताल में चला जाय तो इस कुदाल से पृथ्वी खोद कर उसकी चोटी पकड़ कर खींच लाऊँ। यह गर्व की चर्म सीमा थी इतना होने पर भी एक प्रतिज्ञा उसने ऐसी भी कर ली थी कि जिसके साथ मैं शास्त्रार्थ करूँ और मध्यस्थ लोग कह दें कि सिद्धसेन हार गया तो मैं जीतने वाले का शिष्य बन जाऊँगा इत्यादि —

एक समय जंगल में इधर से तो आचार्य वृद्धवादी आ रहे थे उधर सिद्धसेन जा रहा था दोनों की आपस में भेंट हुई। सिद्धसेन ने कहा जैन सेवड़ा! मेरे साथ शास्त्रार्थ करेगा? वृद्धवादीसूरि ने कहा हाँ। सिद्धसेन ने कहा तब कीजिये शास्त्रार्थ वृद्धवादीसूरि ने कहा यहाँ जंगल में कैसे शास्त्रार्थ किया जाय। कारण यहाँ हार जीत का निर्णय करने वाला मध्यस्थ नहीं है अतः किसी राज सभा में चलो कि वहाँ राजा एवं पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ किया जाय जिससे जय पराजय का फ़ैसला मिले। सिद्धसेन ने कहा मेरा तो पेट फटा जाता है आप यहाँ ही शास्त्रार्थ करें। यह जंगल के गोपाल हैं इनको मध्यस्थ रख लीजिये ये अपन दोनों के संवाद सुन कर हार जीत का निर्णय कर देंगे। सिद्धसेन का आग्रह देख आचार्य वृद्धवादी ने स्वीकार कर लिया और गोपालों को बुला कर मध्यस्थ मुकर्रर कर दिये।

पहिले सिद्धसेन ने अपनी पण्डिताई का परिचय करवाता हुआ संस्कृत में इस प्रकार का कथन किया कि जिसको श्रवण कर देवता भी प्रसन्न हो जाय पर मध्यस्थ तो थे गोपाल। वे विचारे संस्कृत भाषा में क्या समझें उनको तो उल्टा खराब ही लगा। गोपालों ने कहा कि तुम ठहर जाओ, कुछ पढ़े तो नहीं और व्यर्थ ही बकवाद करते हो। अब इन बूढे बाबा को बोलने दो। अतः समय के जानकार आचार्य वृद्धवादी बोलने लगे। उनके ओघा तो कमर पर बँधा हुआ ही था और शरीर को घुमाते हुए गोपालों की भाषा में गोपालों के गीत की राग में उच्चेस्वर से गाने लगे कि:—

"नवि मारीइं नवि चोरीइं परदारा गमन न कीजीइं
थोड़ास्युं थोड़ु दीजई, तउं टगि मगि सग्गि जाइइं ॥१॥
गाय भैंसि जिम निलुचरइ तिमतिम दूध दुणो भरइं
तिमतिम गोवला मनि ठरई, छाछि देयतां तेडु करइं ॥२॥
गुलस्युं चावइ तील तंडुली, वड़े वजाइ बाँसली
पहिरण ओढणि हुइं धावली गोवाला मन पुगी रली ॥३॥
मोटा जोटा मिल्या पिंढार, माहो माहि करिये विचार
महीपी दूझणी सरजी भली, दीइ दावोटा पुगी रली ॥४॥
वन माहि गोवला राज, इन्द तणि घरि परवा न आज
भमर मिस दूझीवली सोल, सुखि समाधि हुई रंगरोल ॥५॥

एक समय राजा विक्रमादित्य कुडंगेश्वर महादेव के दर्शनार्थ जा रहा था। दिवाकरजी को भी साथ चलने को कहा, इसपर दिवाकरजी भी साथ हो गये। राजा ने महादेव को नमस्कार किया पर दिवाकरजी बिना नमस्कार किये ही खड़े रहे। राजा ने कहा कि आप जाति के ब्राह्मण और इतने विद्वान होते हुये भी देव को नमस्कार नहीं करते हो इसका क्या कारण है ?

दिवाकरजी–मेरे नमस्कार को सहन करने वाला देव दूसरा ही है। यह देव मेरे नमस्कार को सहन नहीं कर सकेगा।

राजा ने इसका कारण धर्म भेद समझ कर पुनः कहा कि हम देखते हैं आप नमस्कार करें फिर यह देव कैसे सहन नहीं करेगा ?

दिवाकरजी–राजन् ! आप हठ न करें मैं ठीक कहता हूँ। यदि मैं नमस्कार करूंगा तो आपके दिल को भी आघात पहुँचेगा ?

राजा—खैर। कुछ भी हो आपको महादेव को नमस्कार कीजिये ?

दिवाकरजी राजा के आग्रह से न्यायावतार* सूत्र की स्तुति और कल्याण मन्दिर स्तोत्र बनाकर देव की स्तुति करने लगे तो महादेव के लिंग के अन्दर से धुँआ निकलना शुरु हुआ जिसको देख लोग कहने लगे कि शिवजी का तीसरा नेत्र प्रगट हुआ है। शायद् शिवजी का अपमान करनेवाले को जलाकर भस्म कर डालेगा। जब कल्याण मन्दिर का तेरहवां श्लोक उच्चारण किया कि धरणेन्द्र साक्षात् आया और महादेव के लिंग की नींबू की भांति चार फांके होकर अन्दर से आवन्ति पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट होगई जिसको देख राजा प्रजा उपस्थित लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। राजा ने इसका कारण पूंछा तो दिवाकरजी ने कहा कि भद्रासेठानी के पुत्र आवन्तिकुमार ने बत्तीस रमणियें और करोड़ों द्रव्य त्याग कर जैन दीक्षाली और उसके पुत्रने इस स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की जिसको आवन्तिपार्श्वनाथ कहते थे पर ब्राह्मणों की प्रबलता में पर्श्वनाथ की मूर्ति दबा कर ऊपर लिंग स्थापित कर दिया वही आज आपके आग्रह से प्रगट हुआ है इस चमत्कारी घटना को देख कर राजा ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और कट्टर जैन बन गया। 'यथा राजास्तथा प्रजा' और भी बहुत से लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया जिसमें जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। इस प्रभाव के कारण श्रीसंघ ने शेष ५ वर्ष माफकर दिवाकर जी को श्रीसंघ में लेकर पुनः गच्छ का भार उनके सुपुर्द कर दिया।

राजा विक्रम ने सूरिजी के उपदेश से श्री शत्रुंजय तीर्थ का एक विराट् संघ निकाला जिसमें हजारों साधु साध्वियों और लाखों गृहस्थ संघ में साथ थे। इस संघ का जैनग्रन्थों में बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

* न्यायावतार सूत्रं च श्री वीरस्तुति मप्यथ । द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि ॥१४३॥
[illegible] मुनिमग्रणी । कल्याणमन्दिरस्तोत्रादि [illegible] ॥१४४॥
[illegible] समाययौ । धरणेन्द्रो [illegible] ॥१४५॥
[illegible] । [illegible] ॥१४६॥
[illegible] । [illegible] ॥१४७॥
[illegible] । [illegible] ॥१४८॥
[illegible] । [illegible] प्रतिमा [illegible] ॥१४९॥

आचार्य सिद्धसेनसूरि उज्जैन नगर में विराजते थे । एक समय थण्डिले* जाकर वापिस आरहे थे । राजा विक्रमादित्य हस्ती पर आरुढ़ होकर आचार्य्य के पास से निकल रहा था । उसने सर्वज्ञपुत्र की परीक्षा के लिये हस्ती पर बैठे हुये मन में ही सूरिजी को वंदन किया उस चेष्टा को देख कर सूरिजी ने उच्चस्वर से कहा 'धर्मलाभ' राजा ने कहा कि विना वन्दन किये ही आप धर्मलाभ किसको दे रहे हैं ? सूरिजी ने कहा कि हे नरेश ! आपने मुझे मन से वंदन किया जिसके बदले में मैंने धर्मलाभ दिया है । राजा ने हस्ती से उतर कर सूरिजी को वन्दन कर कहा कि मेरे दिल में शंका थी कि लोग आपको सर्वज्ञपुत्र कहते हैं यह केवल शब्द मात्र की प्रशंसा है पर आज मैंने प्रत्यक्ष में देख लिया है कि आप वास्तव में सर्वज्ञ पुत्र हैं इस गुण से प्रसन्न होकर मैं करोड़ सुवर्ण मुद्रा आपको भेंट करता हूँ आप स्वीकार करावें । सूरिजी ने कहा कि हे राजन् ! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों को इन सुवर्ण मुद्रकाओं से क्या प्रयोजन है हम तो केवल भिक्षा वृत्ति पर गुजारा करते हुये जनता को धर्मोपदेश करते हैं । राजा ने कहा कि मैंने मन से जिस धन को अर्पण कर दिया है उसको रख नहीं सकता हूँ । सूरिजी ने कहा कि इसके लिये अनेक रास्ते हैं । दुखी मनुष्यों को सुखी बना सकते हो, मन्दिरादि धर्मस्थानों के जीर्णोद्धारादि कार्यों में लगा कर पुन्योपार्जन कर सकते हो । इत्यादि राजा ने जैनमुनियों की निस्पृहता की प्रशंसा की और अर्पण किया हुआ द्रव्य सूरिजी की आज्ञानुसार अच्छे कामों में लगा दिया ।

आचार्य्य सिद्धसेनसूरि एक समय भ्रमण करते हुए चित्रकूट† नगर में पधारे वहां एक स्तम्भ आपको दृष्टिगत हुआ । वह स्तम्भ न पत्थर न मिट्टी न काष्ट का था पर किसी औषधियों के लेप से बना हुआ था। सूरिजी ने प्रतिकूल औषधियों से स्तम्भ का एक विभाग खोला तो उसमें कई हजारों पुस्तकें भरी हुई थी जिसमें से एक पुस्तक लेकर उसका एक श्लोक पढ़ा तो उसमें सुवर्ण सिद्धि विद्या थी फिर दूसरे श्लोक को पढ़ा तो उसमें सरसव के दानों से सुभट बनाने की विद्या थी उन दोनों श्लोक को याद कर आगे तीसरे श्लोक को पढ़ना चाहते थे कि पुस्तक स्तम्भ में चली गई और स्तम्भ लेपमय था वैसा ही बन गया । केवल दो विद्या आचार्य श्री के हाथ लग गई उसको स्मृति पूर्वक याद रखली ।

आचार्य श्री विहार करते हुए पूर्व देश के कुंर्मार नगर‡ पधारे वहां देवपाल नामक राजा था । सूरिजी

* श्री सिद्धसेनसूरिश्चान्यदा वाह्य भुवि व्रजन् । दृष्टः श्रीविक्रमार्केण राज्ञा राजाध्वगेन सः ॥६१॥
अलक्ष्यं भूप्रणामं स भूपस्तस्मै च चक्रिवान् । तं धर्मलाभयामास गुरुरुच्चतरस्वरः ॥६२॥
तस्य दक्षतया तुष्टाः प्रीतिदाने ददौनृपः । कोटिं हाटकटंकानां लेखकं पत्रकेऽलिखत् ॥६३॥
धर्मलाभ इति प्रोक्त दूरादुद्ध तपाणये । सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः ॥६४॥

† अन्यदा चित्रकूटाद्रौ विजहार मुनीश्वरः । गिरे र्नितंव एकत्र स्तंभमेकं ददर्शच ॥६७॥
नैव काष्टमयो ग्रावमयो न नचमृण्मयः । विमृशन्नौपध क्षोदमयं निरचनोच्च तम् ॥६८॥
तद्रसस्पर्शगंधादि निरीक्षाभिर्मतिर्बलात् । औपधानि परिज्ञाय तत्प्रत्यर्थीन्यमीमिलन् ॥६९॥
पुनः पुनर्निघृष्याथ स स्तंभे छिद्र मातनोत् । पुस्तकानां सहस्राणि तन्मध्ये च समैक्षत ॥७०॥
एकं पुस्तक मादाय पत्रमेकं ततः प्रभुः । विवृत्य वाचयामास तद्दीयामोलिमेककाम् ॥७१॥
सुवर्ण सिद्धियोगं स तत्र प्रैक्षत विस्मितः सर्सपैः सुभटानां च निष्पत्ति श्लोक एकके ॥७२॥

‡ सावधानः पुरो यावद्वाचयत्येष हर्षभूः । तत्पत्रं पुस्तकं चाथ जह्रे श्रीशासनामरी ॥७३॥
तादकपूर्वगतग्रन्थवाचने नास्ति योग्यता । सत्वहानियंतः काकदौस्थ्यादेतादृशामपि ॥७४॥ प्र० च०

इस प्रकार विद्याधर वंश में पादलिप्तसूरि, वृद्धवादीसूरि एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि प्रभाविक आचार्य हुये। प्रबन्धकार फरमाते हैं कि—विक्रम सं० १५० के बाद श्रावक मिलकर विहार तथा गिरनार पर्वत के मुकुट समान श्रीनेमिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराते हुये बरसात के कारण नष्ट हुआ एकमठ के अंदर मिली हुई प्रशस्ति या कई प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों से संग्रह करके इन महापुरुषों का चारित्र लिखा।

इति श्री आचार्य श्री वृद्धवादी एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि का सम्बन्ध।

# आचार्य श्री जीवदेवसूरि

*लाटदेश के भूषण समान वायट नाम का एक प्राचीन नगर था। यों तो वह नगर ही धन धान्य से* परिपूर्ण था पर उस नगर में एक धर्मदेव नामक श्रेष्ठि तो अपार सम्पत्ति का ही मालिक था तथा आपकी गृहशृंगार स्त्री का नाम शीलवंती था और आपके महीधर एवं महीपाल नामक दो होनहार पुत्र रत्न भी थे फिर तो श्रेष्ठिवर्य की बराबरी कौन कर सकता था। महीधर पिता की सेवा में रहता था तब महीपाल बचपन से ही देशाटन किया करता था।

वायट नगर में एक जिनदत्तसूरि नामक महाप्रभाविक आचार्य विराजते थे। श्रेष्ठिपुत्र महीधर सूरिजी के पास आया जाया करता था और कुछ ज्ञानाभ्यास भी किया करता था। जिनदत्तसूरि ने महीधर को होनहार जान कर धर्मोपदेश दिया और संसार की असारता बतला कर उनके माता पिता की आज्ञा से उसे जैन दीक्षा दे दी। शास्त्रों का अध्ययन करा कर जब महीधर सर्वगुण सम्पन्न हुआ तो उनको आचार्यपद अर्पण कर आपका नाम रशीलसूरि रख दिया।

उधर महीपाल ने राजगृह नगर में श्रुतकीर्ति दिगम्बराचार्य के पास दीक्षा धारण कर ज्ञानाभ्यास किया। श्रुतकीर्ति आचार्य ने महीपाल को योग्य जानकर प्रतिचक्रा और परकायप्रवेश नाम की दो विद्यायें देकर अपने पट्ट पर आचार्य बनाकर उसका नाम सुवर्णकीर्ति रख दिया।

सेठानी शीलवंती ने व्यापारियों द्वारा सुना कि महीपाल ने दीक्षा ले ली और राजगृह नगर की ओर विचरता है। अतः माता पुत्र के स्नेह के कारण राजगृह की ओर गई। पुत्र को दिगम्बर अवस्था में देखकर माता ने कहा मुनि आप दो भाई दो मत में दीक्षित हुए तो अब मुझे कौनसा धर्म पालन करना चाहिये ? अतः आप वायट की तरफ पधार कर दोनों भाई एक निर्णय कर लो कि हम लोग भी उसी धर्म का अनुसरण करें। सुवर्णकीर्ति ने माता का कहना स्वीकार कर वायट की तरफ विहार किया और क्रमशः वायटनगर पधार कर रशीलसूरि से मिले और वार्तालाप एवं ज्ञानगोष्ठी करने से श्वेताम्बर धर्म प्राचीन एवं शास्त्रविहित होने से सुवर्णकीर्ति ने दिगम्बर मत का त्याग कर श्वेताम्बर धर्म स्वीकार कर लिया। रशीलसूरि ने सुवर्णकीर्ति को श्वेताम्बरीय दीक्षा देकर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आपका नाम जीवदेवसूरि रख दिया।

एक समय जीवदेवसूरि का साधु व्याख्यान दे रहा था। उस सभा में एक योगी आया और आसन लगाकर व्याख्यान में बैठ गया। योगी ने अपनी विद्या से व्याख्यानदाता मुनि की जबान बन्द करदी। जब

बनाऊ❀ दूं । सूरिजी के वचन सुनकर श्री संघ सख्त नाराज हुआ और कहा कि तीर्थंकर सर्वज्ञ थे और गणधर भी जिनतुल्य ही थे उन्होंने चौदह पूर्व का ज्ञान संस्कृत में और एकादशांग का ज्ञान प्राकृत भाषा में बनाया है इसमें उन्हों की जन कल्याण की भावना ही मुख्य थी जैसे कहा है किः—

बालस्त्रीमूढमूर्खादि जनानुगहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्पीदनास्थात्र कथंहिवः ॥

अतः तीर्थंकर गणधरों के रचे हुए आगमों का अनादर रूप महान् आशातना का प्रायश्चित लेना चाहिये । कारण इस प्रकार मूलअंग सूत्रों को बदल दिए जांय तो फिर जिन वचनों पर विश्वास ही क्या रहेगा इत्यादि ।

सत्यची सिद्धसेन दिवाकर जी की समझ में आ गया कि मेरी ओर से आशातना अवश्य हुई है । श्रीसंघ से कहा कि जो दंड संघ दे वह मुझे मंजूर है । श्रीसंघ ने विनय के साथ कहा कि दंड देने का हमें क्या अधिकार है । हम तो आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं । हाँ, दंड स्थविर भगवान दे सकते हैं । स्थविरों से याचना करने पर उन्होंने विचारणापूर्वक दशवा पारंचिक प्रायश्चित दिया कि इस प्रायश्चित की अवधि बारह वर्ष तक है परन्तु आप किसी बड़े राजादि को प्रतिबोध कर जैन धर्म की प्रभावना करें तो श्रीसंघ को अधिकार है कि इसमें रियायत भी कर सके । आत्मकल्याण की भावना वाले सूरिजी ने उस प्रायश्चित को स्वीकार कर लिया और गच्छ का भार अन्य योग्य स्थविर को सौंप कर आप गच्छ से अलग हो गये और ओघा मुँहपति गुप्त रख अवधूत के वेष में संयम की रक्षा करते हुये भ्रमण करने लग गये ।

इस भ्रमण में दिवाकरजी ने ७ वर्ष व्यतीत कर दिये बाद एक समय उज्जैनी नगर में गये । राजा के द्वारपाल को कहा कि तू राजा के पास जाकर निवेदन कर कि एक अवधूत हाथ में चार श्लोक लेकर आया है और वह आपसे मिलना चाहता है अतः आपकी आज्ञा हो तो अन्दर आने दिया जाय । राजा ने आज्ञा देदी । दिवाकर जी राजा के पास आये और निम्न लिखित श्लोकों द्वारा राजा की स्तुति की ।

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः । मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१॥
सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मीः करसरोरुहे । कीर्तिः किं कुपिता राजन् ! येन देशान्तरं गता ॥२॥
कीर्तिस्ते जात जाड्येव चतुरम्भोधि मज्जनात् । आतपाय धरानाथ ! गता मार्तण्डमण्डलम् ॥३॥
सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे जनैः । नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोपितः ॥४॥

इन श्लोकों को सुनकर राजा मंत्रमुग्ध बन गया और बड़े ही सम्मान के साथ अपनी सभा में रक्खा और हमेशा ज्ञानगोष्ठि करता रहा । सब पण्डितों में सिद्धसेन का आसन ऊंचा समझा जाता था ।

अमी पानकुरंकाभाः सप्तापि जलराशयः । यद्यशो राजहंसस्य पंजरं भुवनत्रयम् ॥ १ ॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत्सदा । ददासि तच्चते नास्ति राजंश्चित्रमिदमहत् ॥ २ ॥

❀ अन्यदा लोकवाक्येन जातिप्रत्ययतस्तथा । आबाल्यात्संस्कृताभ्यासी कर्मदोषाध्रबोधितः ॥१०९॥
सिद्धान्तं संस्कृतं कर्तुमिच्छत्संघं व्यजिज्ञपत् । प्राकृते केवलज्ञानिभाषितेऽपि निरादरः ॥११०॥
बालस्त्रीमूढमूर्खादिजनानुग्रहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्पीदनास्थात्र कथं हि वः ॥११६॥
इति राज्ञा स सन्मानमुक्तोऽभ्यर्णे स्थितो यदा । तेन साकं ययौ दक्षः स कुडंगेश्वरे कृती ॥१३१॥
श्रुत्वेति पुनरासीनः शिव लिङ्गस्य स प्रभुः । उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तार स्वर करस्तदा ॥ १८॥ प्र० च०

के पुतले की कनिष्ठका अंगुली काटी तो योगी की अंगुली कट गई जब श्रावकों ने योगी के पास जाकर उसकी कटी हुई अंगुली का हाल पूछा तब उसने कहा कि यह तो अकस्मात् हुआ है। श्रावकों ने कहा कि अरे दुष्ट ! इस सती साध्वी को जल्दी छोड़ दे वरना तेरी कुशलता नहीं है। योगी ने न माना तब पुतले की दूसरी अंगुली काट डाली, तुरत ही योगी की दूसरी अंगुली कट गई। श्रावकों ने कहा कि अभी समय है मान जा नहीं तो इस पुतले का मस्तक काट दिया जावगा। योगी ने डर कर कहा कि साध्वी के सिर पर पानी छिटको। बस, पानी छिड़कते ही साध्वी सावधान हो अपनी गुरुणी के पास आ गई और योगी वहां से भाग कर देशान्तर में चला गया। साध्वी को प्रायश्चित दे शुद्ध कर समुदाय में ले ली। इस प्रकार जीवदेवसूरि ने अनेक वादियों को अपने आत्मिक चमत्कार बतला कर जैनधर्म की प्रभावना की।

राजा विक्रम उज्जैन में राज करता था। ‡इस समय पृथ्वी का ऋण चुकाने के लिए राजा ने अपने आदमियों को प्रत्येक ग्राम नगर में भेजा था उसमें एक लींबा नामक श्रेष्टि को वायट नगर में भेजा। लिंबा वायट में आया तो वहां श्रीमहावीर का मंदिर जीर्ण हुआ देखा। लिंबा ने उस मंदिर का जीर्णोद्धार करवा कर विक्रम संवत् के सातवें वर्ष में सुवर्ण कलश एवं ध्वज दंड सहित महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य जीवदेवसूरि से करवाई। ग्रन्थकार लिखते हैं कि यह मंदिर आज भी ( वि० सं० १६३४ ) विद्यमान है।

महास्थान वायट नगर में अपार धन का धनी एक लल्ल नामक सेठ रहता था❋। उसने सूर्य-ग्रहण में एक लक्ष मुद्रायें धर्मार्थ निकाली थीं अतः ब्राह्मणों को आमंत्रण कर एक विशाल यज्ञ करना प्रारंभ किया। अग्नि का कुण्ड जल रहा था। ब्राह्मण वेद के पाठोच्चारण कर रहे थे। ऊपर एक वृक्ष पर महाकाया वाला कृष्ण सर्प था। धूम्र से चक्र खाकर नीचे गिरा तो ब्राह्मणों ने कहा कि बलि के लिये स्वयं नागेन्द्र आ गया है। इस प्रकार कह कर उस सर्प को अग्निकुण्ड में डाल दिया जिसको तड़फड़ाता देख कर लल्लसेठ ने कहा अरे यह कैसा दुष्कर्म कि जीते हुये पंचेन्द्रिय जीव को अग्नि में डाल दिया ! ब्राह्मणों ने कहा सेठ चिन्ता न करो मंत्रों द्वारा इसको स्वर्ग पहुँचा देंगे यदि तुमको करना है तो एक सोने का सर्प बना कर ब्राह्मणों को भेंट कर दो। लल्ल ने कहा कि एक तो सर्प मर गया है और इसके लिए सोने का सर्प बना कर मारूं तो फिर उसके लिए और सर्प बनाना पड़ेगा ये तो महान् दुष्कर्म है। अतः सेठ ने यज्ञ-स्तम्भ को उखेड़ दिया, कुण्ड को मिट्टी से पुरा दिया, ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिया और सच्चे धर्म की शोध में संलग्न हो गया।

‡इतः श्री विक्रमादित्यः शास्त्यवन्तीं नराधिपः। अनृणां पृथिवीं कुर्वन् प्रवर्तयति वत्सरम् ॥७१॥
वायटे प्रेषितोऽमात्यो लिम्बाख्यस्तेन भूभुजा। जनानृण्याय जीर्णं चापश्यच्छ्रीवीरधाम तत् ॥७२॥
उद्धार स्वयंशेन निजेन सह मन्दिरम्। अर्हतस्तत्र सौवर्णकुम्भदण्डध्वजाङ्कितम् ॥७३॥
संवत्सरे प्रवृत्ते स पट्सु वर्षेषु पूर्वतः। गतेषु सप्तमस्यान्तः प्रतिष्ठां ध्वजकुम्भयोः ॥७४॥
श्री जीवदेवसूरिभ्यस्तेभ्यस्तत्र व्याधापयत्। अद्याप्यभङ्गं तत्तीर्थममूदृग्भिः प्रतिष्ठितम् ॥७५॥
❋इतश्चास्ति महास्थाने प्रधानो नैगमव्रजे। दारिद्र्यारिजये मल्लः श्रेष्ठी लल्लः कलानिधिः ॥७६॥
तत्र कुण्डोपकण्ठेऽहिस्तदूर्ध्वस्थाम्लिका द्रुमात्। धूमाकुलाक्षियुग्मोऽसौ फटत्कदिति चापतत् ॥ ८० ॥
आयातुमेष भोगीन्द्रः स्वयमागत आहुतीः। वाचालेषु द्विजेष्वेवं कोपि वह्नौ तमक्षिपत् ॥ ८१ ॥
जाज्वल्यमानमुद्वीक्ष्य यजमानः सुधीश्चताम्। कृपया कम्पमानाङ्गः प्राह किं दुष्कृतं कृतम् ॥ ८२ ॥
जीवन् पंचेन्द्रियो जीवः स्फुटं दृश्यः सचेतन। सहसैव ज्वलद्वह्नौ क्षिप्यते धर्म एष कः ॥ ८३ ॥
वह्निर्विध्यापितः कुण्डमुद्धृत्तं प्रेषिता द्विजाः। शास्ते मैरेयमाहात्म्ये न कोऽप्यसदृशं चरेत् ॥ ९१ ॥प्र०च०

आचार्य दिवाकरजी एक समय ऊंकार नगर में पधारे वहाँ के श्री संघ ने आपका बड़ा ही समारोह के साथ स्वागत किया। एक समय वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो ! हमारी इच्छा एवं भक्ति होने पर भी मिथ्यात्वी लोग हमको जैन मंदिर नहीं बनाने देते। पूज्यवर ! आपकी मौजूदगी में हम लोगों की आशा सफल न हो यह एक अफसोस की बात है। सूरिजी ने कहा ठीक मैं प्रयत्न करूंगा। सूरिजी वहां से चल कर पुनः उज्जैन पधारे। राजा विक्रम को अपने ज्ञान से इतना प्रसन्न किया कि उसने कहा कि पूज्यवर ! आज्ञा फरमाओं कि मैं आपकी क्या सेवा करूं ? सूरिजी ने कहा हमारी क्या सेवा करनी है यदि आपकी इच्छा हो तो ऊंकार नगर में शिवमन्दिर से उचाई में एक जैन मन्दिर बना कर पुन्योपार्जन करावें। राजा ने सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर बिना बिलम्ब तत्काल ही जैन मन्दिर बना दिया और सूरिजी के करकमलों से उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई अतः ऊंकारपुर के श्रीसंघ के मनोरथ सफल हुए।

सूरिजी महाराज वहां से विहार कर भरोंच नगर की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने कई गोपालों को धर्म उपदेश दिये जैसे कि वृद्धवादी आचार्यों ने गवालों की भाषा में उपदेश दिया था। उसकी स्मृति के लिये गोपालों ने वहां पर तालारसिक नामका ग्राम बसा दिया इस प्रकार धर्मोन्नति करते हुये सूरिजी महाराज भरोंच पधारे। उस समय भरोंच में राजा बलमित्र का पुत्र धनंजय राज करता था। सूरिजी महाराज का परम भक्त था और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह से किया।

एक समय भरोंच पर किसी दुश्मन राजा की सेना ने आक्रमण किया दुश्मनों की सेना इतनी विशाल संख्या में थी कि धनंजय राजा घबरा गया। उस ने आकर सूरिजी से सब हाल निवेदन किया। सूरिजी थे विद्यावली उन्होंने सरसव प्रयोग से इतने सुभट बना दिये कि उन्होंने क्षण भर में ही दुश्मनों की सेना को भगा दिया तदनन्तर राजा धनंजय ने सूरिजी के पास में दीक्षा लेली। इसप्रकार शासन की प्रभावना करते हुये दक्षिण प्रान्त के प्रतिष्ठनपुर नगर में पधारे वहां के राजा प्रजा ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। वहां धर्मोपदेश देते हुये सूरिजी को ज्ञात हुआ कि मेरा आयुष्य अल्प है। अतः आपने अपने योग्य शिष्य को सूरिपद पर प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

वहां का वैतालिक नाम का चारण फिरता हुआ उज्जैन नगरी में आया वहां पर सिद्धसेनदिवाकर की बहिन सिद्ध श्री साध्वी ने उस वैतालिक चारण से अपने भाई सिद्धसेनदिवाकरजी के समाचार पूंछे। इसके जवाब में निरानन्द होकर चरण ने श्लोक का पूर्वार्द्ध कहा।

'स्फुरन्ति वादि खद्योताः साम्प्रतं दक्षिणापथे'

अर्थात् इस समय दक्षिण देश में वादीरूपी खद्योत स्फुरायमान हो रहे हैं। इस पर साध्वी सिद्धी श्री ने अपने अनुमान से श्लोक का उत्तरार्द्ध कहा कि।

"नूनमस्तंगतो वादी, सिद्धसेनो दिवाकरः"

अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर सूरि का स्वर्गवास हो गया होगा तभी तो वादी स्फुरायमान हो रहें हैं। वैतालिक को पूछने से साध्वी का अनुमान ठीक निकला। साध्वी ने उसी दिन से अनशन कर दिया और रत्नत्रिय की आराधना करती हुई स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

धामधूम से सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई। सूरिजी ने शर्त के अनुसार उस देवी को उस मन्दिर में भुवनदेवी के रूप में स्थापना करवा दी।

जब से लल्ल सेठ ब्राह्मणधर्म को त्याग कर जैनधर्म में प्रविष्ट हुआ तब से ब्राह्मण जैनधर्म से द्वेष रखने लग गये थे❀ एक समय कई नादान ब्राह्मणों ने द्वेष के कारण एक कृशा एवं मरण शरण हुई गाय को घसीट कर महावीर चैत्य में लाकर गिरादी और बड़ी खुशी मनाई कि कल श्वेताम्बर जैनों की बड़ी भारी निन्दा और हँसी होगी। ठीक सुबह साधुओं ने देखा और गुरुजी से निवेदन किया। गुरुजी ने साधुओं को अंग रक्षक के तौर पर रख कर आप एकान्त में ध्यान किया। परकाया प्रवेश विद्या आपको पहिले से ही वरदायी थी। अतः गाय पैरों से चलकर मन्दिर के बाहर आई जिसको सब लोगों ने देखा और गाय तो चलती २ ब्रह्म-भवन की ओर जाने लगी पुजारी मंदिर का द्वार खोलता ही था कि गाय ने अपने सींगों से पुजारी को गिरा कर ब्रह्मभवन के मूलगम्भार में जाकर पड़ गई जिसको देख सब ब्राह्मण भयभीत हो गए और विचार करने लगे कि यह क्या आफत आ गई।

कई एकों ने कहा कि यह नादान ब्राह्मणों ने जैनचैत्य में गाय डाली थी उसका बदला है। कई एकों ने कहा कि अब क्या करना चाहिये ? कई एक ने कहा कि वीर चैत्य में श्वेताम्बरसूरि हैं उनकी शरण लो। कई एकों ने कहा कि ब्राह्मणों ने उन पर कई उपद्रव किये हैं क्या अब वे तुम्हारी सुनेंगे ? कई एकों ने कहा कि अगर तुम खुशामद करोगे तो वे दया के अवतार तुम्हारी अवश्य सुनेंगे इत्यादि।

ब्राह्मण मिलकर सूरीश्वरजी के पास आये और खूब नम्रता एवं दीन स्वर से प्रार्थना की उस समय लल्ल सेठ भी वहाँ बैठा था उसने ब्राह्मणों को जो उपालम्भ देना था दिया और बाद में आपस में द्वेष न रख कर प्रेम भाव रखना इत्यादि ब्राह्मणों से कई शर्तें करवा कर गुरु महाराज से प्रार्थना की। अतः गुरु महाराज ने अपने ध्यान बल से उस गाय को ब्रह्म मंदिर से बाहर निकाली। वह ग्राम के बाहर जाकर भूमि पर गिर गई तब जाकर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी के साथ सूरिजी की जयध्वनि से गगन को गुंजा दिया और जैन तथा ब्राह्मणों के बीच जो भेदभाव था वह मिटकर भ्रातृभाव उत्पन्न हो गया। इतना ही क्यों पर वे ब्राह्मण जैनधर्म को श्रद्धापूर्वक मानने लगे।

इत्यादि जीवदेवसूरि जैनशासन में महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं। जब आपने अपना आयुष्य नजदीक समझा तो अपने पट्ट पर योग्य साधू को आचार्य बनाकर कहा कि मेरी मृत्यु के साथ ही मेरी खोपड़ी

❀ अथ लल्लं द्विजा दृष्ट्वा जिनधर्मैकसादरम्। स्वभावं स्वमजानाना दधुर्जैनेषु मत्सरम् ॥ ११८ ॥
अन्यदा बटवः पापपटव कृत्वो गिरा। आलोक्य सुरभिं काचिद्बन्धमृत्युदशास्थिताम् ॥ १२१ ॥
उपायैस्ताय चरणाश्रितायां तां मृतां कृशाम्। श्रीमहावीरचैत्यांतस्तदा प्रावेशयन् हठात् ॥ १२२ ॥
गतप्राणां च तां मत्वा बहिः स्थित्वानिद्दर्शयंत। ते प्राहुरत्र विज्ञेयं जैनानां वैभवं महत् ॥ १२३ ॥
वीक्ष्यः प्रातर्विनोदोऽयं श्वेतांबर विडंबकः। इत्यं च कौतुकाविष्टास्तस्थुर्वधकुलादिके ॥ १२४ ॥
मुनीन् मुक्त्वांगरक्षार्थं भदंत पट्टसन्निधौ। अमानुषप्रचारोऽत्र ध्यानं भेजुः स्वयं शुभम् ॥ १२७ ॥
अन्तर्मुहूर्तमात्रेण सा धेनुः स्वयमुत्थिता। चेतना केतना चित्रहेतुश्चैत्याद्विनिर्ययौ ॥ १२८ ॥
यावत्तत्रकः प्रासादांतमुद्घाटयत्यसौ। उत्सुका सुरभिर्ब्रह्मभवने तावत्प्राविशत् ॥ १२९ ॥ प्र० च०

आचार्य जीवदेवसूरि को मालूम हुआ तो आपने ऐसी विद्या चलाई कि साधु तो व्याख्यान देता ही रहा किंतु उस योगी का आसन भूमि से चिपट गया। अतः वह उठने के लिये समर्थ नहीं हुआ। उसने आचार्य श्री से क्षमा की याचना की अतः सूरिजी ने उसे मुक्त कर दिया।*

जीवदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों को उत्तर दिशा की ओर जाने की मनाई कर दी तथापि एक दिन दो साध्वियां उत्तर दिशा में थंडिला के कारण चली गईं। जब वे वापिस आ रही थी उस समय योगी तालाब की पाल पर बैठा हुआ था। उस दुष्ट चित्तवाले योगी ने लघु साध्वी पर लम्बा हाथ कर ऐसा चूर्ण डाला कि साध्वी योगी के वश होकर वहां ही बैठ गई। वृद्ध साध्वी ने बहुत समझाई पर वह तो चूर्ण के कारण परवश थी। आखिर वृद्ध साध्वी ने जाकर जीवदेवसूरि से कहा। उन्होंने चार श्रावकों को बुला कर घास का एक पुतला बना कर दे दिया और उसका सब हाल कह सुनाया। श्रावकों ने उस घास

---

*धर्मदेवः श्रियां धर्मधौरि तत्रासीत् विश्रुतः। साक्षाद्धर्म इव न्यायार्जित द्रव्य प्रदानतः ॥१०॥
शीलभूस्तस्य कान्तासीत् नाम्ना शीलवती यथा। आनन्दिमयसा नित्यं जीयन्ते चन्द्रचन्दनाः ॥११॥
तयोः पुत्रावुभावास्तां श्रेयः धर्मेषु कर्मठौ। महीधर महीपालाभिख्यया विश्रुताविति ॥१२॥
तत्रासीत् जंगमं तीर्थं जिनदत्तः प्रभुः पुरा। संसार वारिधेः सेतुः केतुः कामारिमर्दने ॥१४॥
अन्यदा तं प्रभुं नत्वा मनोहृद्यो महीधरः। धर्मोपदेशवैराग्यात् प्रार्थयत्स्वेन संगमम् ॥१५॥
योग्यं विज्ञाय तं तस्य पितरौ परिपृच्छ्य च। प्रव्रज्यां प्रददौ सूरिरभिख्या रम्यसेवनः ॥१७॥
महीपालस्तथा तस्य बन्धुः राजगृहे पुरे। प्राप दिगम्बराचार्यं श्रुतकीर्तिमिति श्रुतम् ॥२१॥
प्रतिबोध्य व्रतं तस्य ददौ नाम च स प्रभुः। सुवर्णकीर्तिरिति तं निनाय विद्याप्रक्रियाम् ॥२२॥
श्रुतकीर्तिः गुरुस्तस्यान्यदा निजपदं ददौ। श्रीमदप्रतिचक्राया विद्यां च धरणार्चिताम् ॥२३॥
परकायप्रवेशस्य फलं चानुत्तमां ददौ। आराधिता प्रभुः मथावादयोगी हि तादृशः ॥२४॥
आचार्यौ किल सौदर्यौ श्वेताम्बर दिगम्बरौ। स्वस्वाचारं तथा तत्त्वविचारं प्रोचतुः स्फुटम् ॥३३॥
श्रीरासीलप्रभोः पार्श्वे दीक्षाशिक्षाकृतोद्यमः। जैनागमरहस्यानि जानन् गीतार्थतां ययौ ॥४५॥
अन्यदा सद्गुरुर्योग्यं मत्वा पट्टे न्यवीविशत्। श्रीजीवदेव इत्याख्याविख्यातः सद्गुणैर्बभौ ॥४६॥
वाचकस्य रसज्ञां चाक्रम्यन् मौनवान् स च। अभूत्तद् (द्धि) गितेज्ञातं गुरुणा योगिकर्म तत् ॥५२॥
स्वहस्तया वाचने न्यस्तं स्वं विनेयं विधाय च। अमुंच समये व्याख्यामत्याकुलमनाः प्रभुः ॥५३॥
तस्य पर्यस्तिकाभूमावासनं वज्रलेपवत्। तस्थौ यथा तथा तस्य प्रस्तरेणेव निर्मितम् ॥५४॥
ततोऽवददसौ कृत्वा करसंपुटयोजनम्। अलीकप्रणिपातेन महाभाग विमुंच माम् ॥५५॥
अपि श्रद्धालुभिः श्रद्धैर्विज्ञप्तः कृपया प्रभुः। मुक्तोऽप्यात्तो न कः शान्तः कुंजरेणेक्षुभक्षणे ॥५६॥
प्रभुर्न्यषेधयत्तत्र साधुसाध्वीकदम्बकम्। उदीच्यां दिशि गच्छन्तं स्वीकृतायां कुयोगिना ॥५७॥
धर्मकर्मनियोगेन साध्वीयुगमगात्ततः। तत्र कासारसेतौ च तिष्ठन् योगी ददर्श तत् ॥५८॥
अथ सन्मुखमागत्य लाघवालाघवाश्रयः। पृष्ठतया मूर्ध्नि चूर्णं च किंचिच्चिक्षेप निष्कृपः ॥५९॥
तस्य सा पृष्टतो गत्वा पार्श्वे निविविशे स (त) तः। वृद्धयोक्ता न चायाति धिक्कष्टं पूज्यलंघनम् ॥६०॥
ततः कुशमयं तत्र पुत्रकं ते समार्पयन्। चतुर्णां श्रावकाणां च शिक्षित्वा तेऽप्यथो ययुः ॥६२॥
निर्गत्य च बहिश्चैत्याच्छित्वा तस्य कनिष्ठकाम्। तत्पार्श्वगाः करं तस्य ददृशुस्ते निरंगुलिम् ॥६३॥
मुंच साध्वी न चेत्पातं छेत्स्यामस्तव मस्तकम्। न जानासि परे स्वे वा शक्त्यंतरमचेतन ॥६७॥प्र० च०

तो जीवदत्तसूरि का समय प्रबन्धानुसार विक्रम के समकालीन और कहाँ जिनदत्तसूरि का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का । फिर समझ में नहीं आता है कि खरतरों ने यह जघन्य कार्य्य क्यों किया ?

शायद कई व्यक्ति यह कल्पना कर लें कि जीवदेवसूरि के साथ जैसे गाय की घटना घटित हुई वैसे ही जिनदत्तसूरि के साथ घटित हुई होगी । तभी तो जिनदत्तसूरि के भक्तों ने उनके साथ भी गाय की घटना का उल्लेख किया है ।

जिनदत्तसूरि के जीवन विषय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में गणधरसार्द्धशतक की वृहद्वृत्ति में जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने छोटी २ बातों तक का उल्लेख किया पर गाय वाली घटना की गन्ध तक उसमें नहीं है तथा और भी कई व्यक्तियों ने जिनदत्तसूरि के लिये बहुत कुछ लिखा है पर गाय की घटना का जिक्र मात्र भी नहीं किया इतना ही क्यों पर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो किसी की भी मान्यता नहीं थी कि जिनदत्तसूरि के साथ गाय वाली घटना घटित हुई फिर सतरहवीं शताब्दी में यह स्वप्न क्यों आया होगा ? वास्तव में आधुनिक खरतरों ने इधर उधर के प्रभाविक आचार्यों के साथ घटी हुई घटनाओं को जिनदत्तसूरि के साथ जोड़ जिनदत्तसूरि को चमत्कारी ठहराने की कोशीश की है पर इस प्रकार मात्र कल्पनाए करने से चमत्कारी सिद्ध नहीं होते हैं ।

" इति जीवदेवसूरि का जीवन "

## आचार्य स्कन्दिलसूरि और आगमवाचना

आचार्य स्कन्दिलसूरि—जैन संसार मे माथुरी वाचना के नाम से स्कन्दिलाचार्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं परन्तु स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये बड़ी भारी गड़बड़ है । कारण, चार स्थानों पर भिन्न २ समय स्कन्दिलाचार्य का वर्णन आता है जैसे—

१—युगप्रधान पट्टावली में स्कन्दिलाचार्य को श्यामाचार्य्य के बाद युग प्रधान कहा है । श्यामाचार्य का स्वर्गवास वीर वि० सं० ३७६ के आस पास का बतलाया है तदन्तर स्कन्दिलाचार्य युग प्रधान हुये और वे ३८ वर्ष युग प्रधान पद पर रहे तो वीरात् ४१४ में वर्ष आपका स्वर्गवास हुआ ।

२—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध में वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य्य थे जैसे कि—

"पारिजातोऽपारिजातो, जैनशासननन्दने । सर्वश्रुतानुयोगार्ह कन्दुकन्दलनाम्बुदः ॥
विद्याधरवराम्नाये, चिन्तामणिरिवेष्टदः । आसीच्छी स्कन्दिलाचार्यः, पादलिप्तप्रभोः कुले ॥

इन स्कन्दिलाचार्य को अनुयोगधार कहा है परन्तु आपका सत्ता समय नहीं बतलाया है तथापि अनुमान किया जा सकता है कि आप विक्रम संवत के पूर्व हुये होंगे । कारण, स्कन्दिलाचार्य्य ने वृद्धवादी को दीक्षा दी और वृद्धवादी के शिष्य सिद्धसैनदिवाकर हुये जो विक्रम के समसामयिक थे अतः इस लेख से स्कन्दिलाचार्य का समय विक्रम संवत् पूर्व का ही मानना चाहिये ।

एक दिन लल्ल के घर पर दो जैनमुनि भिक्षा के लिये आये*तो सेठ ने अपने अनुचरों को कहा कि इन मुनियों के लिये अच्छा भोजन बनाकर प्रतिलाभ करो। मुनियों ने कहा सेठ हमारे लिये पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि की हिंसा कर भोजन बनाया जाय वह भोजन हमारे काम में नहीं आता है इत्यादि।

सेठ ने सोचा अहो ये तो साक्षात् दया के अवतार ही दीखते हैं। अतः प्रार्थना की कि पूज्यवर! मैं धर्म का स्वरूप समझना चाहता हूँ कृपया आप मुझे धर्म का स्वरूप समझाइये? मुनियों ने कहा कि यदि आपको धर्म सुनना हो तो गुरु महाराज के पास आकर सुनो इत्यादि।

लल्ल सेठ आचार्य जीवदेवसूरि के पास आया और सूरिजी ने जैनधर्म का स्वरूप इस प्रकार सुनाया कि सेठने बड़ी खुशी के साथ जैनधर्म स्वीकार कर बारहव्रत धारण कर लिये।

सेठ ने कहा कि हे प्रभो! मैंने सूर्यग्रहण में एक लक्ष मुद्रिका दान में निकाली† जिसमें आधा द्रव्य तो यज्ञ में व्यय कर डाला शेप पचास हजार रहा है वह आप ग्रहन करे। सूरिजी ने कहा हम अकिंचन (निस्पृही) है द्रव्य को छूते भी नहीं सो लेने की तो बात ही कहां रही। अगर तुम्हारा ऐसा ही आग्रह हो तो कल शाम को तेरे पास कोई भेंट आवे तो मुझे कहना मैं तुझे रास्ता बतला दूंगा। बस, सेठ अपने घर पर आया। दूसरे दिन शाम को एक सुथार अपूर्व पलंग लेकर आया जिसके पायों पर सुन्दर वृषभ कोरे हुए थे। सेठ गुरु वचन याद कर उसको गुरु महाराज के उपाश्रय ले गया। सूरिजी ने उसके दो वृषभों पर वासचेप डालकर कहा कि जहाँ ये वृषभ ठहर जांय वहां जिनमन्दिर बना देना वृषभ ठीक 'पीपलातक' स्थान में ठहरे। सेठ ने वहां जिन मंदिर बनाना शुरू कर दिया। जब मन्दिर का काम चल रहा था वहां एक अवधूत आया और उसने कहा कि यहां शल्य यानि स्त्री की हड्डियें हैं अतः उसे निकालने के बाद मन्दिर बनाना अच्छा है। हड्डियें निकालने का विचार किया तो रात्रि में सूरिजी के पास एक देवी ने आकर कहा कि मैं कन्या कुब्ज राजा की राजकन्या थी। म्लेच्छों के भय एवं शील की रक्षा के लिये कुँवा में पड़ कर मरगई थी अतः मेरी हड्डियें उस स्थान पर हैं जहां सेठ मन्दिर बना रहा है। पर उन हड्डियों को मैं निकालने नहीं दूंगी। हाँ, मेरे पास द्रव्य बहुत हैं चाहिये उतना द्रव्य मैं आपको दूंगी। सूरिजी ने उस देवी को मन्दिर में देवी के रूप में स्थापना करने की शर्त से संतुष्ट कर मन्दिर तैयार करवाया और श्रेष्टि लल्ल ने उस मन्दिर की खूब

---

* ततः प्रभृत्यसौ धर्मदर्शनानि समीक्षते। भिक्षायै तद्गृहे प्रासं श्वेताम्बर मुनिद्वयम् ॥ ९२ ॥
अन्नं संस्कृत्य चारित्रपात्राणां यच्छत ध्रुवम्। अमीषां ते ततः प्रोचुनास्माकं कल्पते हितत् ॥ ९३ ॥
पृथिव्यापस्तथा वह्निर्वायुः सर्वो वनस्पतिः। त्रसाश्च यत्र हन्यन्ते कार्ये नस्तत्र गृह्यते ॥ ९४ ॥
अथ चिन्तयाति श्रेष्ठी वितृष्णत्वादहो अमी। निर्ममा निरहङ्काराः सदा शीतल चेतसः ॥ ९५ ॥
ततोऽवददसौ धर्मं निवेदयत मे स्फुटम्। ऊचतुस्तौ प्रभुश्चैत्ये स्थितस्तं कथयिष्यति ॥ ९६ ॥
इत्युक्त्वा गतयोः स्थानं स्वं तयोरपरेऽहनि। ययौ लल्लः प्रभोः पश्र्वे चक्रे धर्मानुयोजनम् ॥ ९७ ॥
श्रुत्वेति स प्रपेदेऽथ स सम्यक्त्वं व्रतावलीम्। धर्मं चतुर्विधं ज्ञात्वा समाचरदहर्निशम् ॥१०१॥
† आह चैप प्रभो किंचिदवधार यताधुना। द्रव्यलक्षस्य संकल्पो विहितः सूर्य पर्वणि ॥१०२॥
तदर्धं व्ययितं धर्माभासे वेदस्मृतीक्षिते। कथमर्द्धं मया शेपं व्यपनीयं तदादिश ॥१०३॥
मम चेतसि पूज्यानां दत्तं वहुफलं भवेत्। तद्गृह्णीत प्रभो यूयं यथेच्छं दत्त वादरात् ॥१०४॥
अथाहुर्गुरवो निष्किंचनानां नो धनादिके। स्पर्शोपि नोचितो यस्माद्दरक्षयं किन्तु संग्रह ॥१०५॥ प्र०च०

आगम ठीक व्यवस्थित रूप में हो गये थे कि जिसको लिखा कर श्रावक लोग साधुओं को पठन पाठन के लिये भेंट करते थे।

पट्टावल्यादि ग्रन्थों से यह स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि आर्य वज्रसूरि के समय बारह वर्षीय महा भयंकर दुष्काल पड़ा था और उस दुष्काल में बहुत से जैनश्रमण अनशन कर स्वर्ग पहुँच गये थे शेष रहे हुये साधुओं को आहार पानी के लिये बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। इधर उधर भटकना पड़ता था। अतः आगमों का पठन पाठन बन्द सा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं थीं। आर्यवज्र का स्वर्गवास वि० सं० ११४ में हो गया था थोड़े ही समय में एक दुकाल और पड़ गया। उसकी भयंकरता ने तो जैसे जनसंहार किया वैसे श्रमण संहार भी कर दिया। दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र किये तो केवल ५०० साधु और ७०० साध्वियां ही उस दुकाल से बच पाये थे। यक्षदेवसूरि ने उन साधु साध्वियों की फिर से व्यवस्था की। उस समय आर्य वज्रसैन ने चन्द्र नागेन्द्रादि को दीक्षा देकर उनको पढ़ानेके लिये आचार्य यक्षदेवसूरि के पास आये। चारों शिष्यों का ज्ञानाभ्यास चल ही रहा था कि बीच में ही वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास होगया उनके शिष्यों की व्यवस्था का कार्य भी यक्षदेवसूरि के सिर पर आ पड़ा इत्यादि।

इस कथन से पाया जाता है कि उस समय जैन श्रमण संघ को आगम वाचना की अत्यधिक जरूरत थी और उस समय वाचना भी अवश्य हुई थी यदि उस समय वाचना नहीं हुई होती तो उस समय से करीब २०० वर्ष बाद स्कन्दिलाचार्य का समय आता है वहां तक जैनश्रमणों को न तो ज्ञान रहता न दुकाल में ज्ञान भूलता और न स्कन्दिलाचार्य के समय वाचना की ही जरूरत रहती।

कई स्थानों पर आर्य स्कन्दिलसूरि के समय भी बारहवर्षीय दुष्काल पड़ना लिखा है। यदि आर्य स्कन्दिल आर्य्यवज्र के समसामयिक होने के कारण ही स्कन्दिलाचार्य्य के समय बारह वर्षीय दुर्भिक्ष का उल्लेख किया हो तब तो कुछ मत भेद नहीं है पर जब वज्रसैनसूरि के बाद दोसौ वर्ष में स्कन्दिलार्य हुये माने जाय तब तो स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल वज्रसेनाचार्य के समय के दुकाल से पृथक मानना होगा और दुकाल में २०० वर्ष का अन्तर है तो आगम वाचना भी पृथक माननी पड़ेगी तथा वाचना पृथक हुई तो उन वाचनाओं के देने वाले आचार्य भिन्न २ मानना स्वभाविक है। स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल के अन्त में स्कन्दिलाचार्य ने वाचना दी वैसे ही वज्रसेनाचार्य्य के समय का दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने वाचना दी थी कारण, उस समय एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर थे और यह बात प्राचीन ग्रन्थों से साबित भी ठहरती है। कारण, उस समय के दुकाल के अन्त में बचे हुये ५०० साधु ७०० साध्वियों की व्यवस्था आप श्री ने ही की थी। जब व्यवस्था की तो वाचना भी अवश्य दी होगी। साथ में यक्षदेवसूरी ने वज्रसेनाचार्य्य के शिष्य चन्द्रनागेन्द्रादि को वाचना देने का भी उल्लेख मिलता है अतः वज्रसेनाचार्य के समय वाचना अवश्य हुई थी और उस वाचना के नायक आचार्य यक्षदेवसूरि ही थे।

जब स्वल्प समय में दो दफे भयंकर दुकाल पड़ा उसमें साधुओं का पठन पाठन बन्द एवं ज्ञान विस्मृत होजाना स्वभाविक बात है। इस हालत में उन साधुओं को २०० वर्ष तक वाचना नहीं मिलना यह बिलकुल असम्भव सा प्रतीत होता है।

४—चौथा स्कन्दिलाचार्य्य—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध से स्कन्दिलाचार्य को विद्याधर कुल

का चूर्ण चूर्ण कर डालना † कारण, मेरे से पराजित हुए जो योगी है उसके पास एक खोपड़ी तो है और दूसरी मेरी खोपड़ी मिल गई तो वह बड़ा-बड़ा अनर्थ कर डालेगा। अतः मेरी खोपड़ी उसके हाथ नहीं लगनी चाहिये। तुम यह भी विचार नहीं करना कि गुरु महाराज के मृत शरीर की आशातना कैसे करें ? कारण इसमें जैनशासन का भावी नुकसान है अतः मेरा कहना ध्यान में रखना।

आचार्य श्री अनशन और आराधना कर स्वर्गवासी हुये तो शिष्यों ने उनकी खोपड़ी का चूर्ण कर डाला। बाद श्रीसंघ ने महोत्सव पूर्वक सूरिजी के शरीर को सेविका में बैठा कर श्मशान की ओर ले जा रहे थे तो योगी ने पूछा कि आज किस मुनि का स्वर्गवास हुआ है ? किसी ब्राह्मण ने कहा जीवदेवसूरि का। इस पर योगी ने कृत्रिम शोक दर्शाते हुए गुरु महाराज के मुख देखने के लिये सेविका नीचे रखाई पर खोपड़ी का चूरा चूरा हुआ देख कर योगी ने निराश हो कर कहा कि राजा विक्रम की खोपड़ी मेरे पास है पर मैं अभागा हूँ कि जीवदेवसूरि की खोपड़ी मेरे हाथ नहीं लगी। बाद योगी ने अपने विद्याबल से मलिया-गिरि का सरस चन्दन ला कर गुरु महाराज के निर्जीव कलेवर का अग्नि-संस्कार किया।

आचार्य जीवदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए और आपने अन्तिम आराधना कर वैमानिक देवताओं में जाकर देवता सम्बन्धी सुखों का अनुभव किया।

आचार्य जीवदेवसूरि के साथ घटी हुई गाय की घटना को आधुनिक खरतरों ने अपने आचार्य जिनदत्तसूरि के साथ घटित कर जिनदत्तसूरि को चमत्कारिक बतलाने की व्यर्थ कल्पना की है। पर कहाँ

† खेटयन्तं बहिः शृङ्गयुगेनामुं प्रपात्य च। गर्भागारे प्रविश्यासौ ब्रह्ममूर्तेः पुरोऽपतत् ॥ १४३ ॥
अपरे प्राहुरेको न उपायो व्यसने गुरौ। मृगेंद्रविक्रमं श्वेतांबरं चैत्यान्तरस्थितम् ॥ १५० ॥
सूरो श्रुत्वेति तूष्णी के लल्लः फुल्लयशा जगौ। महिब्राहि द्विजा यूयमेकां शृणुत सूनृताम् ॥ १६१ ॥
विरक्तोऽहं भवद्धर्मादष्ट्वा जीववधं ततः। अस्मिन् धर्मे दयामूले लग्नो ज्ञातास्त्वकारनु ॥ १६२ ॥
जैनेष्वसूयया यूयमुपद्रवपरंपराम्। विधत्त प्रतिमल्लः कस्तत्र यः स्वल्पदात्रवः ॥ १६३ ॥
मर्यादामिह कांचिच्चेत् यूयं दर्शयत स्थिराम्। तदहं पूज्यपादेभ्यः किंचित्प्रतिविधापये ॥ १६४ ॥
अथ प्रोचुः प्रधानास्ते त्वं युक्तं प्रोक्तवानसि। समः कः क्षमयामीपां दुर्वारेऽस्मदुपद्रवे ॥ १६५ ॥
स्वरुच्या सांप्रतं जैनधर्मे सततमुत्सवान्। कुर्वतां धार्मिकाणां न कोपि विघ्नान् करिष्यति ॥ १६६ ॥
अस्तु च प्रथमो वृद्धः श्रीवीरयतिनां तथा। सदान्तरं न कर्त्तव्यं भूमिदेवैरतः परम् ॥ १६७ ॥
प्रतिष्ठितो न बाधार्यः सौवणमुपवीतकम्। परिधाप्याभिषेक्तव्यो ब्राह्मणैर्ब्रह्ममन्दिरे ॥ १६८ ॥
इत्यभ्युपगते तैश्च लल्लः सद्गुरुपादयोः। निवेदय मौलिमाचख्यौ महास्थानं समुद्धर ॥ १६९ ॥
श्री जीवदेव सूरिश्च प्राहोपसमवर्मितः। कालत्रयेपि नास्माकं रोषतोषौ जनद्विषौ ॥ १७० ॥
तस्थुर्मुहूर्त्तमात्रेण तावद्गौर्ब्रह्मवेश्मतः। उत्थाय चरणमार्गं कुर्वती निर्जगाम सा ॥ १७३ ॥
आस्थानं पुनराजग्मुर्गुरवो गुरवो गुणैः। वेदोदिताभिराशीर्भिर्विप्रैश्चक्रे जयध्वनिः ॥ १७५ ॥
ततः प्रभृति सौदर्यसंबंधादिव वार्यट। स्थापितस्तैरिह स्नेहो जैनैरद्यापि वर्त्तते ॥ १७६ ॥

× ततः स्नेहं परित्यज्य निर्जीवेऽस्मत्कलेवरे। कपालं चूर्णयध्वं चेत्तत्र स्यान्निरुपद्रवम् ॥ १८२ ॥
इहार्थे मामकीनाज्ञापालनं ते कुलीनता। एतत्कार्यं ध्रुवं कार्यं जिनशासनरक्षणे ॥ १८३ ॥
इति शिक्षां प्रदायास्मै प्रत्याख्यानविधिं व्युधुःविधायाराधनां दध्युः परमेष्ठिनमस्कृताः ॥ १८४ ॥
निरुध्य पवनं मूर्ध्ना मुक्त्वा प्राणान् गुणाम्बुधयः। वैमानिकसुरावसं तेऽतिश्रियमशिश्रियन् ॥१८५॥ प्र० च०

तात्पर्य यह है कि महाभयंकर दुकाल के समय साधुओं के पठन पाठन चंधसा हो गया था जब दुर्भिक्ष के अन्त में सुकाल हुआ तो आचार्य स्कन्दिलसूरि के अध्यक्षत्व में मथुरा नगरी और आर्य नागार्जुनसूरि की नायकता में वल्लभी नगरी में श्रमण संघ को आगमों की वाचना दी गई तथा सूत्रों को पुस्तकों पर लिखा गया। अतः आचार्य स्कन्दिल एवं नागार्जुन के समय दोनों स्थानों में आगम वाचना हुई। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

इतिहास ज्ञान की पूरी शोध खोज नहीं करने के कारण हमारे अन्दर यह भ्रान्ति फैली हुई है कि वल्लभी नगरी में श्री देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण के अध्यक्षत्व में आगम वाचना हुई थी और कई २ तो देवर्द्धि-गणिक्षमाश्रमणजी को आर्य स्कन्दिल के समसामयिक भी मानते हैं और प्रमाण के लिए उपाध्यायजी विनय विजयजी के लोक प्रकाश के श्लोक बताते हैं।

"दुर्भिक्षे स्कन्दिलाचार्यदेवर्द्धिगणिवार के। गणनाभावतः साधु साध्वीना विस्मृतं श्रुतम॥
ततः सुभिक्षे संजाते संघस्य मेलगोऽभवत्। वलभ्यां मथुरायां च सूत्रार्थ घटनाकृते॥
वलभ्यां संगते संघे देवर्सिगणिरग्रणीः। मथुरायां संगते च स्कंदिलार्योऽग्रणीरभूत्॥
ततश्च वाचनामेदस्तत्र जातः क्वचित् क्वचित्। विस्मृतस्मरणो मेदो जातु स्यादुभयोरपि॥
तत्तैस्ततोऽर्वाचीननैश्च गीतार्थैः पापभीरुभिः। मतद्वयं तुल्यतया कक्षीकृतमनिर्णयात्॥
—लोकप्रकाश

उपाध्यायजी महाराज ने उपरोक्त बात जनश्रुति सुन कर या अनुमान से लिखी है। कारण, हम ऊपर लिख आए हैं कि मथुरा में स्कन्दिचार्य और वल्लभी में नागार्जुनाचार्य्य के नायकत्त्व में आगम वांचना हुई थी तब इन दोनों आचार्य के बाद कई १५० वर्ष के देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण हुए हैं वे स्कन्दिलाचार्य्य के समसामयिक कैसे हो सकते हैं? देवर्द्धिगणित्तमाश्रमणजी के समय भी वल्लभी में जैन संघ एकत्र हुए थे पर उस समय आगम वाचना नहीं हुई थी पर दोनों वाचनाओं में पठान्तर वाचान्तर रह गया था उनको ठीक कर आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। जैसे कहा है कि—

"वलहि पुरम्मि नयरे देवड्डिपमुह समण संघेण पुत्थइ अगमु सिहिओ, नवसय असी आओ वीराओ"

क्षमाश्रमणजी ने आगमों को पुस्तकों पर लिखने में मुख्य स्थान माथुरी वाचना को ही दिया था और वल्लभी वाचना जो माथुरी वाचना के सदृश्य थी उसे तो माथुरी वाचना के अन्तरगन कर दिया और जो पाठ माथुरी वाचना से नहीं मिलता उसे नागार्जुन के नाम से पाठान्तर रूप में रख दिया जैसे—

"नागार्जुनीयास्तु पठंति—एवं खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—समरण भविस्सामो० " आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—जे खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—पुट्ठो घा०"। आचारांग टीका।
"अत्रांतरे नागार्जुनीयास्तु पठंति—सौ ऊण तयं स्वट्ठियं० '। सूत्रकृतांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—पलिमंथमहं वियाणिया०"। सूत्रकृतांग टीका।
"तओ विवरणकारेहि पि नागज्जुणीया चए एवं पढतित्ति समुल्लिगिया तद्देवायाराइसु"। पघावली

३—हेमवंत पट्टावली में लिखा है कि—

"मथुरानिवासी ओसवंशशिरोमणि श्रावकपोलाक ने गन्धहस्ती विवरणसहित उन सर्वसूत्रोंको ताड़पत्रादि पर लिखाकर पठनपाठन के लिये निर्ग्रन्थों को अर्पण किया। इस प्रकार जैनशासन की उन्नति करके स्थविर आर्यस्कन्दिल विक्रम संवत् २०२ मथुरा में ही अनशन करके स्वर्गवासी हुये"

४—पन्यासजी श्री कल्याण विजयजी महाराज स्वरचित वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना नामक ग्रन्थ के पृष्ट १८० पर लिखते हैं कि आर्य स्कन्दिल के नायकत्व में माथुरी वाचना वीर वि० सं० ८२७ से ८४० के बीच में हुई।

उपरोक्त चार स्कन्दिलाचार्यों के अन्दर पहिले नम्बर के स्कन्दिलाचार्य युगप्रधान पट्टावली के हैं। आपका समय संवत् वी० नि० संवत ३७६ से ४१४ का है अतः न तो वृद्धवादी की दीक्षा आपके हाथों से हुई और न माथुरी वाचना का सम्बन्ध आपके साथ है।

अब रहे शेष तीन स्कन्दिलाचार्य्य—इन तीनों के साथ माथुरी वाचना का सम्बन्ध होने पर भी समय पृथक २ बतलाया है। जिसमें पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने स्कन्दिलाचार्य द्वारा माथुरी वाचना का समय वी० नि० सं० ८२७ से ८४० का स्थिर किया है और इस विषय की पुष्टि करने में आपने युक्ति एवं प्रमाण भी महत्व के दिये हैं। अब हम पन्यासजी के कथनानुसार आर्य स्कन्दिल का समय विक्रम की चौथी शताब्दी का मान लें तो वृद्धवादी की दीक्षा स्कन्दिलाचार्य के हाथों से नहीं हुई हो या वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य माथुरी वाचना के स्कन्दिलाचार्य से पृथक हों। अगर स्कन्दिलाचार्य और वृद्धवादी इन दोनों आचार्यों को विक्रम की चौथी शताब्दी के आचार्य मानलें तो वृद्धवादी के हस्त दीक्षित शिष्य सिद्धसैन दिवाकर का समय नहीं मिलता है। कारण सिद्धसेनदिवाकर को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम के समकालीन बतलाया है। सिद्धसेनदिवाकर ने विक्रम को जैन बनाया तथा आवंती पार्श्वनाथ को प्रगट किया आदि अनेक घटनायें विक्रम के साथ घटी यह सबकी सब कल्पित ठहरेंगी।

जिस विक्रम के साथ सिद्धसेनदिवाकर का सम्बन्ध बतलाया गया है उस विक्रम को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम नहीं पर विक्रम की चौथी शताब्दी का एक दूसरा ही विक्रम मानलें तब जाकर इन सबका समाधान हो सके पर ऐसा करने से हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये चरित्र प्रबन्ध और पट्टावलियें सबके सब कल्पित हो जायंगे। कारण, आर्य्य स्कन्दिल, वृद्धवादी, सिद्धसैन दिवाकर और राजा विक्रम को वीर निर्वाण के बाद पांचवीं शताब्दी के माने हैं वे सब नौवीं शताब्दी के मानने पड़ेंगे। अतः इनके समाधान के लिये विशेष शोध खोज की आवश्यकता है।

३—तीसरे स्कन्दिलाचार्य्य का वर्णन हेमवन्त पट्टावली में आया है। आपके समय के लिये लिखा है कि वि० सं० २०२ में स्कन्दिलाचार्य्य का स्वर्गवास मथुरा में हुआ अतः आप विक्रम की दूसरी शताब्दी के आचार्य थे। विशेषता में पट्टावलीकार लिखते हैं कि मथुरा में ओसवंशीय पोलाक श्रावक ने गन्धहस्ती विवरण सहित आगम लिखा कर जैन श्रमणों को पठन पाठन के लिये अर्पण किये। इससे यह भी पाया जाता है कि उस समय पूर्व श्रमणों को आगम वाचना मिल गई थी इतना ही क्यों पर उस समय

# जैनागमों की वाचना

जैनधर्म में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि गुरु महाराज अपने शिष्यों को जैनागमों की वाचना देते हैं और शिष्य भी गुरु महाराज का विनय व्यवहार कर वाचना लेता है और उसको ही सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। यदि कोई शिष्य गुरु महाराज के वाचना दिये विना ही आगम पढ़ लेते हैं तो उसको चतुर्मासिक प्रायश्चित बतलाया है×। कारण, जैनागम अर्द्ध मागधी एवं प्राकृत भाषा में है और उसमें भी कई सूत्र एवं शब्द तो ऐसे हैं कि जिनका यथार्थ अर्थ गुरुगम से ही जान सकते हैं। जिन लोगों ने जैनधर्म से पृथक् होकर नये नये मत पन्थ निकाले हैं इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने जैनागम गुरु गम्यता से नहीं बाचे किंतु अपनी अल्प बुद्धि से शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को न जानकर मनः कल्पना से अर्थ का अनर्थ कर डाला है और बाद अभिनिवेश के कारण पकड़ी बात को नहीं छोड़ने से नये नये मत निकाल दिये हैं आज भी हम देखते हैं कि एक ही मान्यता वाले एक ही शब्द के पृथक् २ अर्थ कर आपस में लड़ते झगड़ते हैं और आगे चलकर वे ही नये २ पंथ और मत स्थापन कर डालते हैं। अतः जैनधर्म की यह पक्की मर्यादा है कि गुरु महाराज के दी हुई वाचना से ही शिष्य आगम बांचे।

प्रत्येक तीर्थङ्कर अपने शासन समय गणधर स्थापन करते हैं इसका मतलब भी यही है कि वे गणधर अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दें और यही मतलब गणिपद का है। उपाध्याय पद की तो और भी विशेषता है कि वह चतुर्विध श्रीसंघ को सूत्र अर्थ की वाचना दे। साधुओं की सात मंडली में भी वाचना का विधान है जैसे सूत्र वाचना अर्थ वाचना अर्थात् साधु शामिल होकर एक मंडली में बैठकर गुरु महाराज से सूत्र काल में सूत्र वांचना और अर्थ काल में अर्थ वाचना ले। ऐसी वाचनायें तो प्रत्येक गच्छ में प्रत्येक दिन होती ही रहती हैं। पर जब काल दुकाल में प्रचलित वाचना बन्द हो जाती है तब एक विशेष वाचना की आवश्यकता रहती है यहाँ पर उस विशेष वाचना का ही प्रसंग है। और ऐसी वाचनाएं निम्नलिखित हुई हैं।

१—आचार्य भद्रबाहु के समय पाटलीपुत्र नगर में पहिली वाचना हुई। उस समय गणधर रचित द्वादशांग में एकादशांग ठीक व्यवस्थित किये और बारहवां अंग के लिए आर्य स्थूलभद्र को दशपूर्व सार्थ और चार पूर्व मूल का अभ्यास करवाया। इस वाचना में गणधर रचित अंग सूत्र ज्यों के त्यों तो नहीं रहे थे। कारण, बारहवर्षीय दुकाल के कारण मुनिजन यथावत् आगमों को याद नहीं रख सके परन्तु जितना ज्ञान जिस जिस साधुओं को याद रहा उसको ही संकलना कर पुनः एकादशांग व्यवस्था किया इसके लिये देखो तिथ्योगलिपइन्ना का पाठ—

ते दाइं एक्कमेक्कं, गयमपसेसा चिरंस दट्ठुणम्। परलोगगमणपच्चागय व्व मण्णंति अप्पाणम् ॥२०॥
ते निंति एक्कमेक्कं, सज्झाओ कस्स कित्तिओ धरति। दि हु उक्कालेणं अम्हं नट्ठो हु सज्झाओ ॥२१॥
जं जस्स धरइ कंठे, तं परियट्टिऊण सव्वेसिम्। तो रोहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कारसंगादम् ॥२२॥

× जे भिक्खू आयरिय उवज्झाएहिं अविदिण्णं गिरं आइयइ ×   × आवज्जइ चाउम्मासियं परिहार-ट्ठाणं उग्घाइयं।
निशीथ सूत्र उद्देशा १९ वां

( शाखा ) के पादलिप्तसूरि के परम्परा का आचार्य कहा जा सकता हैं। नंदी सूत्र की टीका में आचार्य मलयागिरि ने स्कन्दिलाचार्य को सिंहवाचक सूरि के शिष्य कहा है जैसे "तान् स्कन्दिलाचार्यान् सिंहवाचक सूरि शिष्यान्" पर आगे चल कर उसी टीका में सिंहवाचक को ब्रह्मद्वीपिका शाखा के आचार्य लिखा है। तब स्कन्दिलाचार्य्य थे विद्याधर शाखा के आचार्य। शायद् युगप्रधान पट्टावली में, सिंहवाचक के बाद नागार्जुन का नाम आता है और स्कन्दिलाचार्य्य नागार्जुन के समकालीन होने से टीका कारने स्कन्दिलाचार्य्य को सिंहवाचक के शिष्य लिखा दिया होगा। पर वास्तव में स्कन्दिलाचार्य्य विद्याधर शाखा के आचार्य हैं स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये पट्टावलियों में लिखा है कि वि० सं० ११४ में आर्यवज्र का स्वर्गवास बाद १३ वर्ष आर्य्यरक्षित २० पुष्पमित्र ३ वज्रसेन ६९ आर्य नागहस्ती ५९ रेवतीमित्र ७८ ब्रह्मद्वीप सिंह एवं कुल ३५६ वर्ष व्यतीत होने पर आर्य स्कन्दिल युगप्रधान पद पर आरूढ़ हुये और १४ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे। इस समय के वीच माथुरी वाचना हुई। ऐसी पन्यासजी की मान्यता है पर ब्रह्मद्वीपसिंह के वाद तो नागार्जुन का नाम आता है और वे ७८ वर्ष युगप्रधान पद परहै पर स्कन्दिलाचार्य का नाम युगप्रधान पट्टावली में नहीं हैं शायद नागार्जुन के समकालीन कोई स्कन्दिलाचार्य्य हुए होंगे ?

माथुरी वाचना के साथ ही साथ वल्लभी नगरी में वल्लभी वाचना भी हुई थी माथुरी वाचना के नायक स्कन्दिलाचार्य थे तव वल्लभी वाचना के नायक थे नागार्जुनाचार्य्य। यह दोनों आचार्य समकालीन थे और इनके समय वड़ा भारी दुकाल भी पड़ा था जैसे आर्यभद्रवाहु और आर्यवज्रसेन के समय में दुर्भिक्ष पड़ा था और जैसे उन दोनों दुर्भिक्षों के अन्त में आगम वाचना हुई थी उसी प्रकार इस समय भी आगम वाचना हुई।

आचार्य भद्रेश्वरसूरि ने अपने कथावली ग्रन्थ में लिखा है :—

"अत्थि महूराउरीए सुयसमिद्धो खंदिलो नाम सूरि, तहा वलहिनयरीए नामज्जुणो नाम सूरि। तेहि य जाए वरिसिए दुक्काले निव्वउ भावंओवि फुठ्ठिं (?) काऊण पेसिया दिसोदिसिं साहवो गमिउं च कहवि दुत्थं ते पुणो मिलिया सुगाले, जाव सज्झायंति ताव खंडु खुरुडीहूयं पुव्वाहियं। तओ मा सुयवोच्छिती होइ ( उ ) त्ति पारद्धो सूरीहिं सिद्धंतुधारो। तत्थवि जं न वीसरियं तं तहेव संठवियं। पम्हुट्ठट्ठाणे उण पुव्वावरावउं तसुत्तत्थाणुसारओ कया संघउणा।"

आचार्य हेमचन्द्रसूरि अपने योगशास्त्र की टीका में लिखते हैं :—

"जिन वचनं च दुष्पमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्य्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्।"

आचार्य मलयागिरिजी अपने ज्योतिषकरण्डक टीका में लिखते है :—

"इह हि स्कन्दिलाचार्यप्रवृतौ दुष्पमानुभावतो दुर्भिक्ष प्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत् तद्यथा—एको वलभ्यांभेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थसंघटने पारस्परवाचनाभेदो जातः विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः।

यह तो हुआ एक पद, जब आचारांग सूत्र के १८००० पद के श्लोक गिने जांय तो ९१९५९२३१८७००० श्लोक तो एक आचारांगसूत्र के होते हैं तब आगे के अंगसूत्र द्विगुणित बतलाये हैं परन्तु उनसे कम होते होते आज आचारांग सूत्र के कुल २५२५ श्लोक रहे हैं। जिसको हम मूलपद और पदों के श्लोक तथा वर्तमान में रहे हुए श्लोकों के साथ कोष्टक में दे देते हैं

| नं० | आगम नामावली | पदसंख्या | पद के श्लोकों की संख्या | वर्तमान श्लोक |
|---|---|---|---|---|
| १ | श्री आचारांग | १८००० | ९१९५९२३१८७००० | २५२५ |
| २ | ,, सूत्रकृतांग | ३६००० | १८३९१८४६३७४००० | २१०० |
| ३ | ,, स्थानायांग | ७२००० | ३६७८३६९२७४८००० | ३६०० |
| ४ | ,, समवायांग | १४४००० | ७३५६७३८५४९६००० | - १६६७ |
| ५ | ,, विवाह प्रज्ञप्ति | २८८००० | १४७१३४७७०९९२००० | १५७५२ |
| ६ | ,, ज्ञाताधर्मका थांग | ५७६००० | २९४२६९५४१९८४००० | ५४०० |
| ७ | ,, उपासक दशांग | ११५२००० | ५८८५३९०८३९६८००० | ८१२ |
| ८ | ,, अंतगडदशांग | २३०४००० | ११७७०७८१६७९३६००० | ८९९ |
| ९ | ,, अनुत्तरोवाई | ४६०८००० | २३५४१५६३३५८७२००० | १९२ |
| १० | ,, प्रश्नव्याकरण | ९२१६००० | ४७०८३१२६७१७४४००० | १२५६ |
| ११ | ,, विपाकसूत्र | १८४३२००० | ९४१६६२५३४३४८८००९ | १२१७ |

उपरोक्त कोष्टक से पाठक जान सकते हैं कि मूल द्वादशांग कितने विस्तार वाले थे और वाचना के समय कितने रह गये फिर भी विशेषता यह है कि सूत्रों के अध्ययन उद्देश या उतना ही रहा है। जैसे आचारांग सूत्र के १६ अध्ययन थे तो आज भी १६ ही हैं। उपासकदशांग सूत्र के दशाध्ययन और दश श्रावकों का वर्णन था आज भी दशाध्ययन में दश श्रावकों का वर्णन है पर श्लोक संख्या कम हो गई। इस श्लोक संख्या कम होने के कारण आर्य्यरक्षित सूरि ने चारों अनुयोग अलग २ किये थे उस समय मूल आगमों की सूरत बदल गई थी और उस समय श्लोक संख्या भी कम कर दी गई थी।

दूसरा आर्यस्कन्दिल का समय था परन्तु आर्यस्कन्दिल के समय वल्लभी में नागार्जुन द्वारा भी वाचना हुई थी तो इन दोनों की वाचना प्रायः मिलती जुलती थी केवल थोड़ा सा पाठान्तर वाचनान्तर रहा वह टीकाकारों ने वाचनान्तर के नाम से टीका में रख दिया। अतः आर्य्य स्कन्दिल के समय आगमों को कम किया जाना संभव नहीं होता है। पर यह कार्य आर्यरक्षितसूरि द्वारा ही हुआ संभव होता है। जब तक इसका पूरा प्रमाण नहीं मिल जाय वहाँ तक निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि मूल आगमों का संक्षिप्त अवश्य हुआ है। एकादशांग तीर्थङ्कर कथित और गणधर ग्रथित होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

आर्यस्कन्दिलसूरि के समय जो आगमों की वाचना हुई और वे आगम पुस्तकों पर लिखे गये जिस आगमों की संख्या ८४ की कही जाती है और उनके नामों का निर्देश आर्य्य देवर्द्धिगणि क्षमासमणजी ने अपने नन्दीसूत्र में कालिक उत्कालिक सूत्रों के नाम से किया है उनको यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

अतः क्षमाश्रमणजी का इष्ट माथुरी वाचना पर ही विशेष था। यही कारण है कि क्षमाश्रमणजी ने नंदीसूत्र की स्थविरावली की गाथा में कहा है कि—

"जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि । बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे स्कंदिलायरिए ॥

क्षमाश्रमणजी किस वंश शाखा के थे इसके लिये देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी के जीवन प्रसंग में लिखेंगे।

उपरोक्त वाचना के अन्दर हमारे एक संदिग्ध प्रश्न का समाधान सहज ही में हो जाता है। जो हमारी मान्यता थी कि सब से पहिले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी ने ही आगमों को पुस्तकों में लिखवाये थे वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है किन्तु क्षमाश्रमणजी के पूर्व भी आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। इसके लिए कई प्रमाण भी मिलते हैं।

१—पाटलीपुत्र की वाचना के समय आगमों को पुस्तक पर लिखे गये थे या नहीं इसके लिये तो कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

२—महामेघवाहन चक्रवर्ति खारवेल के हस्तीगुफावाले शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय अंगसप्तति का कुछ भाग नष्ट हो गया था जिसको खारवेल ने पुनः लिखाया।

३—आचार्य सिद्धसैनदिवाकरजी चित्तौड़ गये थे और वहाँ के स्तम्भ में आपने हजारों पुस्तकें देखी जिसमें से एक पुस्तक लेकर आपने पढ़ी भी थी। अतः पहिले ज्ञान पुस्तकों पर लिखा हुआ अवश्य था।

४—माथुरी वाचना एवं वल्लभी वाचना के समय पुस्तकों पर आगम लिखने का उल्लेख मिलता है। जिसको हम ऊपर लिख आये हैं।

५—अनुयोग द्वार सूत्र में पुस्तकों को द्रव्य श्रुत (ज्ञान) कहा जैसे—

"से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुअं ? पत्तयपोत्थय लिहिअं"

६—निशीथसूत्र के बारहवाँ उद्देशा की चूर्णी में भी लिखा है कि—

"मेहउग्गहणधारणादिपरिहाणिं जाणिऊण कालियसुयट्ठा, कालियसुयणिज्जुत्तिमिमित्तं वा पोत्थगपणगं घेप्पति"।

७—योगशास्त्र की टीका में आचार्य हेमचन्द्रसूरि लिखते हैं कि—

"जिनवचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुन स्कन्दिलाचार्य्य प्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्"।

इन प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण के पूर्व भी जैनागम पुस्तकों पर लिखे हुये थे। इतना ही क्यों पर क्षमाश्रमणजी के पूर्व कई ज्ञान प्रेमी श्रावकों ने आगमों को लिखा कर वे पुस्तकों जैन साधुओं को पठन पाठन के लिये अर्पण करते थे बाद में क्षमाश्रमणजी ने भी वल्लभी नगरी में आगमों के पुस्तकों पर लिखाया और वे विस्तृत रूप में होने से जैन समाज में विशेष प्रसिद्ध है।

## बारह अंगों के नाम

| | | |
|---|---|---|
| (१) श्री आचारांगसूत्र | (५) श्री भगवतीजीसूत्र | (९) श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र |
| (२) श्री सूत्रकृतांगसूत्र | (६) श्री ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र | (१०) श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र |
| (३) श्रीस्थानायांगसूत्र | (७) श्री उपासक दशांगसूत्र | (११) श्री विपाकसूत्र |
| (४) श्री समवायांगसूत्र | (८) श्री अंतगढ़ दशांगसूत्र | (१२) श्री दृष्टिवाद सूत्र |

इस प्रकार ८४ आगमों की व्यवस्था एवं संकलना करके पुस्तकों पर लिखे गये और यह बात प्राचीन समय से प्रसिद्ध भी है कि जैनों में ८४ आगमों की मान्यता है।

जब जैनियों में ८४ आगमों की मान्यता है तब ये क्यों कहा जाता है कि हम ४५ आगम मानते हैं ? इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि वे ८४ आगम ज्यों का त्यों नहीं रहा। दूसरा कारण ८४ आगमों में ऐसे भी आगम हैं कि जिसको पढ़ने से साक्षात् देवता आकर खड़े हो जाते थे जैसे अरुण-वारुण, धरण, वे श्रमण उत्पातिक सूत्र थे। उन्हीं को समय को देख कर भंडार कर दिये। तीसरा कारण गुरु महाराज शिष्य को जिस आगम की वाचना देते हैं उसके योगोद्वाहन (तप) कराये जाते है उसके लिये वर्तमान साधुओं के शरीर शक्ति वगैरह देखके ४५ आगमों की मान्यता रक्खी है कि वर्तमान साधु ४५ आगमों के योगाद्वाहन कर सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ४५ आगमों के अलावा कोई आगम न माना जाय, आगम ही क्यों पर पूर्वाचार्य्यों के निर्माण किये ग्रन्थ भी प्रमाणिक माने जाते हैं।

इसके अलावा पूर्वाचार्य्यों के निर्माण किये कई ग्रन्थ भी लिखे गये होंगे। जैसे आगमवादियों की मान्यता आगमों की थी वैसे ही निगमवादियों की मान्यतानिगमों की थी। निगमवादियों का अस्तित्व किस समय से प्रारंभ होता है और उनके निगम ग्रन्थ कब और किसने बनाये इसके निर्णय के लिये तो अभी शोध खोज की जरूरत है पर एक समय निगमवादियों का खूब जोर शोर था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है क्योंकि शिला लेखों वगैरह में निगमवादियों के उल्लेख मिलते हैं।

जैन शासन में दो प्रकार के मार्ग बतलाते हैं १—निवृति २—प्रवृति जिसमें आगमवादी निवृति मार्ग के पोषक थे वे आगमों का पठन पाठन एवं धर्मोपदेश देकर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करते थे अर्थात् वे पांच महाव्रतधारी होने से जिस किसी धार्मिक कार्य्य में आरंभ सारंभ होता हो उसमें प्रवृति तो क्या पर अनुमति तक भी नहीं देते थे।

दूसरे निगमवादी प्रवृति मार्ग के प्रचारक थे। मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठायें संघ विधान संघपूजा धर्म कार्य तथा गृहस्थों के सोलह संस्कार आदि जितने प्रवृति मार्ग के कार्य्य थे वे सब निगमवादी करवाया करते थे।

परन्तु जैसे चैत्यवादियों में विकार पैदा होने से समाज उनसे खिलाफ हो गया था वैसे ही निगम-वादियों का हाल हुआ पर उस समय उनको सुधारने की किसी को नहीं सूझी उलटे उनके पैर उखेड़ कर नष्ट करने का प्रयत्न किया गया जिसका नतीजा यह हुआ कि शासन का एक अंग नष्ट होगया और यह समस्या खड़ी होगई कि जो निगमवादियों के कार्य थे उसे अब कौन करे ?

इनके अलावा कालकाचार्य अपने प्रशिष्य सागरचन्द्रसूरि से कहता है कि 'पट्स्थान आगम की हानी होती आई है। अतः गणधर रचित आगम भद्रबाहु के समय ज्यों के त्यों नहीं रहे थे तो दुकाल के अन्त में तो रहते ही कहां से ? फिर भी उस समय एकादशांग एवं पूर्वों के अलावा उपांगादि सूत्रों की रचना नहीं हुई थी। हाँ, आर्य्य शय्यंभवसूरि ने अपने शिष्य (पुत्र) माणक के लिए पूर्वों से उद्धार कर दशवैकालिकसूत्र की रचना की थी। तदनन्तर आर्य भद्रबाहु ने तीन छेदसूत्र तथा निर्युक्तियों की रचना की और बाद में स्थविरों ने उपांगादि कालिक उत्कालिक सूत्रों की रचना की थी।

२—आर्य्यरक्षितसूरि के समय तक, जैनागमों के एक ही सूत्र एवं शब्द से चारों अनुयोग की व्याख्या होती थी पर आर्यरक्षित सूरिने भविष्य में मंद बुद्धिवालों की सुविधा के लिए, चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये। उस समय भी मूल आगमों को न जाने कितनी हानि पहुँची होगी। और कितने संक्षिप्त करने पड़े होगे ?

आर्य्यरक्षितसूरि ने चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये तो क्या ८४ आगमों की संकलना आपके ही समय में हो गई थी या बाद में हुई इसके जानने के लिए कोई भी साधन इस समय मेरे पास नहीं है। पर संभव होता है कि यह कार्य आर्यरक्षित के समय ही हुआ था।

३—आर्य्यवज्र और आर्य्यवज्रसैन इन दोनों आचार्यों के समय भी दो भयंकर दुकाल पड़े और उस समय भी साधुगण का पठन-पाठन बन्द-सा होगया अतः दुकाल के अन्त में आगम वाचना की परमावश्यकता थी।

उस समय आर्य्यवज्र दशपूर्वधर थे परन्तु आर्य्यवज्र और वज्रसैन का स्वर्गवास हो गया था। आचार्य यक्षदेवसूरि दशपूर्वधर आर्य थे। वज्र और वज्रसैन के साधु साध्वियों को एकत्र कर उनकी व्यवस्था आपने ही की थी अतः उस समय आगम वाचना आपने ही दी थी। इस वाचना का स्थान शायद सोपारपट्टन ही होगा। कारण, पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि चन्द्र नागेन्द्रादि मुनियों को यक्षदेवसूरि ने सोपारपट्टन में आगमों की वाचना दी थी। अतः आर्यवज्र और वज्रसैन के समय के दुकाल के बाद की आगम वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि के नायकत्व में सोपारपट्टन में ही हुई होगी।

४—आर्य्य स्कन्दिल के समय के दुकाल के अन्त में आगम वाचना दो स्थानों में हुई। यह प्रसिद्ध ही है कि मथुरा में आर्य्य स्कन्दिल और वल्लभी में आर्य्य नागार्जुन के नायकत्व में वाचना हुई। साथ में यह भी निश्चय है कि आर्य स्कन्दिल की वाचना में जितने आगम एवं सूत्रों की वाचना हुई उतने ही आगमों को उस समय तथा बाद में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में लिखे थे। उन सब की संख्या ८४ आगमों के नाम से जैन शासन में खूब प्रसिद्ध है।

गणधर रचित आगम बहुत विस्तार वाले थे। कहा जाता है कि एक आचारांग सूत्र के १८००० पद थे और एक पद के श्लोकों का हिसाब इस प्रकार बतलाया है कि एक पद के अक्षर १८३४८३०७८८९ होते हैं इनको ३२ अक्षरों का एक श्लोक के हिसाब से बनावे जाय तो ५१०८८४६२१।। श्लोक होते हैं +

+ एगवन्न कोड़ी लक्खा, अट्ठे व सहस्स चुलासीय, सय छक्कं नायव्वं, सड्ढा एगवीस समयम्मि।
रत्नसंचय प्रकरण गाथा ३०६

१९—कविजनकल्पद्रुमोपमाख्यैकोनविंशतितमोपनिषद्—इसमें कवियों को कल्पवृक्ष बतलाने का वि॰
२०—सकलप्रपंचपथ निदाननामविंशतितमोपनिषद्—इसमें जितने प्रपंची मार्ग हैं उनका वर्णन है।
२१—श्राद्धधर्मसाध्यापवर्गनामैकविंशतितमोपनिषद्—इसमें गृहस्थ धर्म से भी मुक्तिमार्ग की वि॰
२२—सप्तनयनिदाननाम द्वाविंशतितमोपनिषद्—इसमें सात नय का स्वरूप विस्तार से बतलाया है।
२३—बंधमोक्षावगमनाम त्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें बंध मोक्ष का स्वरूप है।
२४—इष्टकमनीयसिद्धनामत्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें मनोइच्छित सिद्धियां प्राप्त करने का वि॰
२५—ब्रह्मकमनीयसिद्धयभिधाननाम पंचीवंशतितमोपनिषद्-इसमें योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करने की वि॰
२६—नैः कर्मकमनीयाख्य षड्विंशतितमवेदांतं—इसमें कर्म काण्ड से रहित वेदांत स्वरूप निरूपण है
२७—चतुर्वर्गचिंतामणिनाम सप्तविंशतितमवेदांतं-इसमें काम अर्थ धर्म और मोक्ष चारपुरुषार्थ का वि॰
२८—पंचज्ञानस्वरूपवेदनाख्यमष्टाविंशतितमवेदांतं-इसमें पांच ज्ञान का विस्तार से वर्णन है।
२९—पंचदर्शनस्वरूपरहस्याभिधानैकोनत्रिंशतमोपनिषद्-इसमें पांच प्रकार के दर्शन का स्वरूप है।
३०—पंचचारित्रस्वरूपरहस्याभिधान त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें पांच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
३१—निगमागमवाक्यविवरणख्यैकत्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें निगम और आगम का विषय है
३२—व्यवहारसाध्यापवर्गनामद्वात्रिंशत्तमवेदांतं—इसमें व्यवहार मार्ग से मोक्ष की साधना का वि॰
३३—निश्चयैकसाध्यापवर्गभिधान त्रयस्त्रिंशत्तमोपनिषद्-इसमें निश्चयमार्ग से मोक्ष प्राप्तो का वर्णन है
३४—प्रायश्चित्तैकसाध्यापवर्गोख्यचतुस्त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें लगे हुए पाप का प्रायश्चित करने का वि॰
३५—दर्शनैकसाध्यापवर्गनाम पंचत्रिंशत्तमवेदांतं—दर्शन से मोक्ष साधन का वर्णन है।
३६—विरताविरतसमानापवर्गाह्व षट्त्रिंशत्तमवेदांतं—सममाव रखने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग दूसरा पृ० १८२'

इन उपनिषदों की विषय सूची से पाया जाता है कि इनमें गृहस्थ धर्म के अलावा जैनधर्म का तात्त्विक आगमिक और दर्शनिक ज्ञान का भी प्रतिपादन किया है। अतः उपनिषद् प्राचीन निगम शास्त्र हैं पर वर्तमान में इन उपनिषदों का आस्तित्व कहीं भी पाया नहीं जाता है। शायद निगमवादियों के साथ उनके निगम शास्त्र भी लोप हो गये हों खैर इन नामों से इतना तो जाना जा सकता है कि पूर्व जमाने में निगमवादी और उनके निगमशास्त्र थे।

## — कालिक सूत्रों के नाम —

(१) श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र
(२) श्री दशाश्रुतस्कन्धजी सूत्र
(३) श्री बृहत्कल्पजी सूत्र
(४) श्री व्यवहारजी सूत्र
(५) श्री निशियजी सूत्र
(६) श्री महानिशियजी सूत्र
(७) श्री ऋषिभाषित सूत्र
(८) श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
(९) श्री द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र
(१०) श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र
(११) श्री क्षुल्लकवैमान प्रवृति
(१२) श्री महावैमान प्रवृति
(१३) श्री अंगचूलिका सूत्र
(१४) श्री वंगचूलिका सूत्र
(१५) श्री विवाहचूलिका सूत्र
(१६) श्री आरूणोत्पतिक सूत्र
(१७) श्री वारुणोत्पातिक सूत्र
(१८) श्री गारूडोत्पातिक सूत्र
(१९) श्री धरणोत्पातिक सूत्र
(२०) श्री वैश्रमणोत्पातिक सूत्र
(२१) श्री वैलंधरोत्पातिक सूत्र
(२२) श्री देवीन्द्रोत्पातिक सूत्र
(२३) श्री उत्थान सूत्र
(२४) श्री समुत्थान सूत्र
(२५) श्री नागपरिआवलिका सूत्र
(२६) श्री निरयावलिका सूत्र
(२७) श्री कप्पयाजी सूत्र
(२८) श्री कप्पवडिंसियासूत्र
(२९) श्री पुप्फीयाजी सूत्र
(३०) श्री पुप्फचूलियाजी सूत्र
(३१) श्री वण्हियाजी सूत्र
(३२) श्री विन्हीदशा सूत्र
(३३) श्री आसीविप भावना सूत्र
(३४) श्री दृष्टिविप भावना सूत्र
(३५) श्री चरणसुमिण भावना सूत्र
(३६) श्री महासुमिण भावना सूत्र
(३७) श्री तेजस निसर्ग सूत्र

## उत्कालिक सूत्रों के नाम

(१) श्री दशवैकालिक सूत्र
(२) श्री कल्पाकल्प सूत्र
(३) श्री चूलकल्प सूत्र
(४) श्री महाकल्प सूत्र
(५) श्री उत्पातिक सूत्र
(६) श्री राजप्रश्नी सूत्र
(७) श्री जीवाभिगम सूत्र
(८) श्री प्रज्ञापनासूत्र
(९) श्री महाप्रज्ञापनासूत्र
(१०) श्री प्रमादाप्रमादसूत्र
(११) श्री नन्दीसूत्र
(१२) श्री अनुयोगद्वारसूत्र
(१३) श्री देवीन्द्रस्तुतिसूत्र
(१४) श्री तंदुलव्याली सूत्र
(१५) श्री चन्द्रविजय सूत्र
(१६) श्री सूर्य्यप्रज्ञप्तिसूत्र
(१७) श्री पौरसी मंडल सूत्र
(१८) श्री मंडलप्रवेश सूत्र
(१९) श्री विद्याचारण सूत्र
(२०) श्री विगिच्छओसूत्र
(२१) श्री गणिविजय सूत्र
(२२) श्रीध्यानविभूति सूत्र
(२३) श्री मरणविभूतिसूत्र
(२४) श्री आत्मविशुद्धि सूत्र
(२५) श्री वीतराग सूत्र
(२६) श्री संलेखणासूत्र
(२७) श्री व्यवहार कल्प सूत्र
(२८) श्री चरणविधिसूत्र
(२९) श्री आउर प्रत्यख्यानसूत्र
(३०) श्री महाप्रत्याखान सूत्र

## प्रसंगोपात श्री स्थानायांग सूत्र में दशादशांग से

(१) श्री आचार दशा
(२) श्री वन्ध दशा
(३) श्री दोगिद्धिदशा
(४) श्री दीर्घदशा
(५) श्री संखेवित्तदशा
(शेप पांच के नाम ऊपर आगये हैं।)

राजा का चलाया नहीं है हाँ विक्रम की नौवी शताब्दी के एक शिलालेख में सब से पहला संवत् के साथ विक्रम का नाम लिखा हुआ मिलता है जैसे कि –

"वसु नव (अ) ष्टौ वर्षागतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य ।
वैशाखस्य सियाता (यां) रविवार युत द्वितीयायाम् ।।"

यह शिलालेख धोलपुरा से मिला है राज चण्डमहासन के समय वि० सं० ८९८ का है इसमें पहला पहल संवत् के साथ विक्रम नाम जुड़ा हुआ है—

कहीं-कहीं जैन विद्वानों ने उज्जैन के राजा बलमित्र को विक्रम की उपाधि से भूषित किया है। राजा बलमित्र था भी पराक्रमी एवं विक्रम। उसका राज भरोंच में था परन्तु उसने उज्जैन पर चढ़ाई कर शकों को पराजित कर उज्जैन का राज अपने अधिकार में कर लिया उस विजय के उपलक्ष में उसने नया संवत् चलाया इत्यादि। परन्तु इसमें भी वह सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है कि राजा बलमित्र ने अपनी विजय के उपलक्ष में नया संवत् चलाया तो उस समय से ही संवत् के साथ बल एवं विक्रम शब्द क्यों नहीं चलाया ! इसके लिए यह कहा जा सकता है कि राजा बलमित्र ने मालवा प्रान्त को विजय करके अपना नाम की अपेक्षा मालवा शब्द को संवत् के साथ जोड़ देना विशेष गौरव समझा होगा और संवत् के साथ मालव शब्द को जोड़ दिया हो तो यह ठीक समझा जा सकता है। अब हम समय को देखते हैं तो संवत् प्रारम्भ और बलमित्र का समय ठीक मिलता-जुलता है अतः जैन लेखकों का लिखना सत्य प्रतीत होता है कि विक्रम यह राजा बलमित्र का विशेषण है और मालव संवत् को राजा बलमित्र ने अपने मालव विजय के उपलक्ष में ही चलाया था।

जैनाचार्यों ने राजा विक्रम के लिये बड़े बड़े ग्रन्थों का निर्माण किये हैं और राजा विक्रम को जैन-धर्म का प्रचारक लिखा है तथा राजा विक्रम ने उज्जैन से तीर्थ शत्रुंजय का विराट् संघ निकाला और कई मन्दिर भी बनाया इत्यादि यदि राजा बलमित्र को ही विक्रम समझ लिया जाय तो यह बात सर्वथा मिलती हुई है कारण राजा बलमित्र जैन धर्म का परमोपासक था उसने ५२ वर्ष भरोंच नगर में राज किया था बाद उज्जैन का राज अपने अधिकार में करके ८ वर्ष तक उज्जैन में भी राज किया यदि उसने उज्जैन से शत्रुंजय का संघ निकाला हो तो यह असंभव भी नहीं है। राजा बलमित्र कालकाचार्य के भानेज लगते थे आचार्य खपटसूरि आचार्य पादलिप्तसूरि उपाध्याय महेन्द्र वगैरह राजा बलमित्र की आग्रह से चिरकाल तक भरोंच में ठहरे थे और कई वादियों को वहां पराजय भी किये थे अतः उनके जैन होने में किसी प्रकार का संदेह भी नहीं हो सकता है।

कई लोग यह भी कहते हैं कि मालव संवत् के कई वर्षों के बाद गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) राजा हुआ विक्रम उस राजा की उपाधि थी और उसको मालव संवत् के साथ जोड़ देने से ही मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् हुआ है परन्तु इस कथन के लिये कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है जैसे राजा बलमित्र के लिये मिलता है। विशेष निर्णय विद्वानों की विचार श्रेणी पर ही छोड़ दिया जाता है।

१—रामचन्द्रसूरिकृत विक्रमचरित्र २—शुभशील गणीकृत विक्रमादित्य चरित्र
३—देवमूर्तिकृत वि० च० (स० १४१०) (स० १४९१)

पूजा प्रभावना प्रतिष्ठा संघ विधान वगैरह कि जिसमें धर्म का मिश्रण था वे कार्य तो आगमवादियों के शिर पर आ पड़े कि जिन कार्यों में वे पहले अनुमोदन के अलावा आदेश नहीं दिया करते थे वे स्वयं करने लगे और गृहस्थों के संस्कार वगैरह कार्य विधर्मी ब्राह्मणों के हाथ में देने पड़े। यही कारण है कि आज जैनों के घरों में संस्कार विधान एवं पर्व व्रत वगैरह होते वे प्रायः सब विधर्मियों के ही होते हैं अर्थात् वे सब कार्य उन विधर्मियों की ही विधि विधान से होते हैं।

निगमवादियों को नष्ट करने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ा है। एक तरफ तो आगमवादियों को निगमवादी बनकर अपने संयम से हाथ धो बैठना पड़ा है क्योंकि जिन्होंने तीन करण तीन योग से आरंभ का त्याग किया था अब वे केवल उपदेश ही नहीं पर आदेश तक भी देने लग गये। दूसरी ओर जैन गृहस्थ लोग अपने धर्म से पतित बनकर सब कार्य विधर्मियों के विधि विधान से करने लग गये इतना ही क्यों पर उनके संस्कार ही विधर्मियों के पड़ गये हैं।

निगमवादी जिन निगमशास्त्रों को मानते थे वे उपनिषद् के नाम से ओलखाये जाते थे और उनउपनिषदों में संसार मार्ग के साथ मोक्ष मार्ग का भी निर्देश किया हुआ है। जिसको मैं यहां दर्ज कर देता हूँ।

१—उत्तरारण्यक नाम प्रथमोपनिषद्—इसमें दर्शन के भेदों का निरूपण किया है।

२—पंचाध्याय नाम द्वितीयोपनिषद्—इसके अलग अलग पांच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में विविध प्रकार के विषयों का वर्णन है।

३—बहुश्रुचनाम तृतीयोपनिषद्—इसमें चक्रवर्ती भरतमहाराज के निर्माण किये चार वेदों की श्रुतियों को असली रूप में दर्ज किया है।

४—विज्ञानघनार्णवनाम चतुर्थोपनिषद्—इसमें विविध प्रकार से ज्ञान का स्वरूप बतलाया है।

५—विज्ञानेश्वराख्य पंचमोपनिषद—इसमें ज्ञानी पुरुषों का विस्तार से वर्णन किया है।

६—विज्ञानगुणार्णवनाम षष्ठोपनिषद—इसमें भिन्न २ प्रकार से ज्ञान के गुणों का अधिकार है।

७—नवतत्त्वनिदाननिर्णयाख्य सप्तमोपनिषद—इसमें नौ तत्त्व का विस्तार है।

८—तत्त्वार्थनिधिरत्नाकराभिधाष्टमोपनिषद—इसमें विविध प्रकार से तत्त्वों का स्वरूप है।

९—विशुद्धात्म गुण गंभिराख्य नवमोपनिषद्—इसमें शुद्ध आत्मा के ज्ञानादि गुणों का वर्णन है।

१०—अर्हद्धर्मागमनिर्णयाख्य दशमोपनिषद्—इसमें तीर्थङ्कर भगवान के आगमों का अधिकार है।

११—उत्सर्गापवादवचनानैकांताभिधानैकादशमोपनिषद—इसमें उत्सर्गोपवाद एवं अनेकान्त मत है।

१२—अस्तिनास्तिविवेक निगम निर्णयाख्य द्वादशमोपनिषद्—इसमें सप्त भंगी का विस्तार है।

१३—निज मनोनयनाह्लादाख्यत्रयोदशमोपनिषद्—इसमें मन और चक्षु को आनंद देने वाला०

१४—रत्नत्रयनिदाननिर्णयनामचतुर्दशमोपनिषद्—इसमें ज्ञान दर्शन और चरित्र रूप रत्नत्रिय का०

१५—सिद्धागमसंकेतस्तवकाख्यपंचदशमोपनिषद्—इसमें आगमों में आये हुये सांकेतिक शब्दों का विस्तार से खुल्लासा किया है।

१६—भव्यजनभयापहारकनामषोडशोपनिषद्—इसमें भव्यजीवों के भय का नाश करने वाला वि०

१७—रागिजननिर्वेदजनकाख्य सप्तदशमोपनिषद्—इसमें रागीपुरुषों को वैराग्योत्पन्न होनेवाले वि०

१८—स्त्रीमुक्तिनिदाननिर्णयाख्याष्टादशमोपनिषद्—इसमें स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकें—वर्णन है।

शाह पेथा ने राजशी की उम्र ८ वर्ष की हुई तो अध्यापक के पास पढ़ने को भेज दिया। दूसरे विद्यार्थियों से राजशी में विनयगुण अधिक था। यही कारण था कि अध्यापक महोदय की राजशी पर विशेष कृपा रहती थी और राजशी पढ़ाई मे अपने सहपाठियों से हमेशा आगे बढ़ता जाता था।

एक दिन आचार्य सिद्धसूरि ॐकार नगर में पधारे अतः श्रीसंघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन माता कुक्षी ने विनय के साथ अपने पुत्र राजसिंह की धर्म चेष्टा के लिये सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर ! राजसिंह बाल्यावस्था में ही साधु उचित कार्य करता है इसका क्या कारण है ? सूरिजी ने अपने निमित्त ज्ञान से कहा माता राजसिंह ने पूर्व जन्म में दीक्षा की आराधना की है। अतः इसको दीक्षा पर अनुराग है। माता तू भी धन्य है कि तेरी कुक्षी से राजसी जैसा पुत्र पैदा हुआ है जो कभी राजसी दीक्षा लेगा तो जैनधर्म की प्रभावना के साथ जगत का उद्धार करने वाला होगा इत्यादि। सूरिजी के वचन सुनकर माता के दिल में आया कि यह राजसी कहीं दीक्षा न ले ले अतः इसकी शादी जल्दी से कर देनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही क्या थी पहिले से ही राजसी की शादी के लिये कई प्रस्ताव आये हुये थे। शाह पेथा ने एक लिखी पढ़ी श्रेष्ठि कन्या के साथ राजसी का सम्बन्ध ( सगाई ) करदी। इस बात की खबर जब राजसी को हुई तो उसने अपनी माता से कहा कि माता ! पिताजी मुझे जाल में फंसाना चाहते हैं पर मैं हर्गिज इस संसार रूपी जाल में न फंसूगा। माता ने कहा बेटा क्या विवाह करना जाल है ?

पुत्र ने कहा हां माता मैं समझता हूँ कि—विवाह करना जाल है ?

माता—यदि संसार में कोई विवाह न करे तो फिर संसार चले ही कैसे ?

पुत्र—माता मैं संसार की बात नहीं करता हूँ मैं तो अपनी बात करता हूँ।

माता—तू शादी नहीं करेगा तो क्या साधु बनेगा ?

पुत्र—हां माता मैं तो दीक्षा लूंगा।

माता—खैर दीक्षा ले तो दम्पति दोनों साथ में ही लेना शादी तो कर ले वरना हमारी मांग जाने में अच्छा नहीं लगेगा।

मां बेटा में बातें हो ही रही थीं कि इतने में पेथाशाह घरपर आ गया और पूछा कि आज मां बेटा क्या बातें कर रहे हो। माता बोली आपका पुत्र कहता है कि मुझे शादी नहीं करनी है मुझे तो दीक्षा लेनी है ! शाह पेथा ने कहा कि दीक्षा लेनी है तो भी शादी तो करले फिर सब घर वालों के साथ में ही दीक्षा लेना। राजसी ने सोचा कि जो कर्मों की रेखा है वह तो किसी के भी टाली टल ही नहीं सकती है और इस निमित्त कारण से ही सबका कल्याण होने वाला हो तो भी कौन कह सकता है ? जब माता पिता का इतना आग्रह है तो होने दो शादी अगर मेरे दीक्षा का योग है तो शादी से रुक भी नहीं सकेगा जिसके लिये जम्बुकुंवर वज्रकुंवर आदि अनेक महापुरुषों के उदाहरण विद्यमान है।

राजशी के माता पिता ने बड़े ही समारोह के साथ राजसी का विवाह कर दिया। इधर तो राजशी के लग्न को पूरा एक मास भी नहीं हुआ था कि उधर से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज भ्रमण करते हुए पुनः ॐकार नगर में पधार गये। सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था और आप यह भी फरमाया करते थे कि संसार में जीव मोह एवं ममत्व से दुखी बनता है तृष्णा तो ऐसी वैतरणी है कि मनुष्य समझ जाने पर भी तृष्णा के वशीभूत बना हुआ इस प्रकार विचार करता है कि।

राजा विक्रमादित्य आपका कुछ वर्णन तो आचार्य सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य जीवदेवसूरि के अधिकार में आ गया है इनके अलावा कई जैनाचार्यों ने राजा विक्रमादित्य के जीवन के विषय बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण भी किया है और उनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान भी हैं। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी निऋण करके अपने नाम का संवत् चलाया और वह संवत् अद्यावधि चल भी रहा है। अतः राजा विक्रमादीत्य भारत में एक सम्राट् राजा हुआ, ऐसी मान्यता चिरकाल से चली आ रही है परन्तु वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से कई विद्वान इस निर्णय पर आये हैं कि संवत चलाने वाले विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। परन्तु 'विक्रम' यह एक किसी शक्तिशाली वीर भूपति का विशेषण है और जो विक्रम संवत चल रहा है यह वास्तव में कृतसंवत् मालव संवत् एवं मालवगणसंवत् था जो मालव प्रजा की विजय का द्योतक है। उसी मालव संवत् के साथ आगे चलकर विक्रम की नौवी शताब्दी में संवत् के साथ विक्रम नाम लग जाने से विक्रम संवत् बन गया है और इस बात की साबूति के लिये निम्न लिखित शिलालेख बतलाये जाते हैं:—

"श्रीर्म्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एक षष्ट्यधिके प्राप्ते, समाशतचतुष्टये [॥] प्रावृक्का (ट्का) ले शुभे प्राप्ते।"

मंदसौर से मिले हुये नरवर्मन् के समय के लेख में

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां [ ४०० ] ८०१ कार्तिक शुक्लपंचम्याम"।

राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर में रखे हुये नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के शिल लेख में।

"मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेऽब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्त (स्व) ने॥ सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे॥"

मंदसौर से मिले हुये कुमारगुप्त [प्रथम) के समय के शिल लेख में

"पंचसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु।"

मंदसौर से मिले हुये यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन के समय के शिलालेख में

"संवत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः, [।] सप्तभिमार्यालवेशानां"।

भारतीय प्रा० लिपिमाला १६६

कोटा के पास कणस्वा के शिवमंदिर में लगे हुये शिलालेखों में—

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टाविंशेषु ४००-२०८ फाल्गुण (न) बहुलस्यापंचदश्यामेतस्यां पूर्वायां।"

फ्लीं; गु० इं०, पृ० २५३

यातेषु चतुर्षु कि (कृ) तेषु शतेषु सौस्ये (म्यै) ष्वा ष्टा) शीतसोत्तरपदेष्विह वत्स [रेष] शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्वजनचितसुखावहस्य।"

फ्ली, गु० इं० पृ ४७०

उपरोक्त शिलालेखों में कृत-मालव-मालवगण संवत् का प्रयोग हुआ है। परन्तु संवत् के साथ विक्रम का नाम निर्देश तक कहीं पर भी नहीं हुआ है यदि इस संवत को राजा विक्रम ने ही चलाया होगा तो संवत् के प्रारम्भ में ही विक्रम का नाम अवश्य होता अतः विद्वानों का मत है कि प्रस्तुत संवत् किसी विक्रम

शाह पेथा ने राजसी की उम्र ८ वर्ष की हुई तो अध्यापक के पास पढ़ने को भेज दिया। दूसरे विद्यार्थियों से राजसी में विनयगुण अधिक था। यही कारण था कि अध्यापक महोदय की राजसी पर विशेष कृपा रहती थी और राजसी पढ़ाई में अपने सहपाठियों से हमेशा आगे बढ़ता जाता था।

एक दिन आचार्य सिद्धसूरि ॐकार नगर में पधारे अत. श्रीसंघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन माता कुशी ने विनय के साथ अपने पुत्र राजसिंह की धर्म चेष्टा के लिये सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर! राजसिंह बाल्यावस्था में ही साधु उचित कार्य करता है इसका क्या कारण है ? सूरिजी ने अपने निमित्त ज्ञान से कहा माता राजसिंह ने पूर्व जन्म में दीक्षा की आराधना की है। अतः इसको दीक्षा पर अनुराग है। माता तू भी धन्य है कि तेरी कुक्षी से राजसी जैसा पुत्र पैदा हुआ है जो कभी राजसी दीक्षा लेगा तो जैनधर्म की प्रभावना के साथ जगत का उद्धार करने वाला होगा इत्यादि। सूरिजी के वचन सुनकर माता के दिल में आया कि यह राजसी कहीं दीक्षा न ले ले अतः इसकी शादी जल्दी से कर देनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही क्या थी पहिले से ही राजसी की शादी के लिये कई प्रस्ताव आये हुये थे। शाह पेथा ने एक लिखी पढ़ी श्रेष्ठि कन्या के साथ राजसी का सम्बन्ध (सगाई) करदी। इस बात की खबर जब राजसी को हुई तो उसने अपनी माता से कहा कि माता! पिताजी मुझे जाल में फंसाना चाहते हैं पर मैं हर्गिज इस संसार रूपी जाल में न फंसुगा। माता ने कहा बेटा क्या विवाह करना जाल है?

पुत्र ने कहा हां माता मै समझता हूँ कि—विवाह करना जाल है ?

माता—यदि संसार में कोई विवाह न करे तो फिर संसार चले ही कैसे ?

पुत्र—माता मैं संसार की बात नहीं करता हूँ मैं तो अपनी बात करता हूँ।

माता—तू शादी नहीं करेगा तो क्या साधु बनेगा ?

पुत्र—हां माता मैं तो दीक्षा लूंगा।

माता—खैर दीक्षा ले तो दम्पति दोनों साथ में ही लेना शादी तो कर ले वरना हमारी अंग जाने में अच्छा नहीं लगेगा।

मां बेटा में बातें हो ही रही थीं कि इतने में पेथाशाह घरपर आ गया और पूछा कि आज मां बेटा क्या बातें कर रहे हो। माता बोली आपका पुत्र कहता है कि मुझे शादी नहीं करनी है मुझे तो दीक्षा लेनी है। शाह पेथा ने कहा कि दीक्षा लेनी है तो भी शादी तो करले फिर सब घर वालों के साथ में ही दीक्षा लेना। राजसी ने सोचा कि जो कर्मों की रेखा है वह तो किसी के भी टाली टल ही नहीं सकती है और इस निमित्त कारण से ही सबका कल्याण होने वाला हो तो भी कौन कह सकता है ? जब माता पिता का इतना आग्रह है तो होने दो शादी अगर मेरे दीक्षा का योग है तो शादी से रुक भी नहीं सकेगा जिसके लिये जम्बुकुंवर वयरकुंवर आदि अनेक महापुरुषों के उदाहरण विद्यमान है।

राजसी के माता पिता ने बड़े ही समारोह के साथ राजसी का विवाह कर दिया। इधर तो राजसी के लग्न को पूरा एक मास भी नहीं हुआ था कि उधर से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज भ्रमण करते हुए पुनः ॐकार नगर में पधार गये। सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था और आप यह भी फरमाया करते थे कि संसार में जीव मोह एवं ममत्व से दुखी बनता है तथा तो ऐसी वैतरणी है कि मनुष्य समझ जाने पर भी तृष्णा के वशीभूत बना हुआ इस प्रकार विचार करता है कि।

## १६—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ( तृतीय )

आचार्यः स हि सूरि सूर्य विदितो नाम्ना तु रत्नप्रभः ।
शोभा तप्तभट्टीय वंश जनता वर्गस्य दीक्षां गतः ॥
त्यक्त्वा मास विवाहितां निजवधूं कोटिंच वित्तं बुधः ।
ज्ञात्वा पूर्वग रत्नसूरि-चरितं शिक्षां-च तस्माद्धौ ॥

चार्य रत्नप्रभसूरि—इन तीसरे रत्नप्रभसूरि का यश एवं प्रभाव की पताका तीनों लोक में फहरा रही थी। आप ॐकार नगर के तप्तभट्ट गोत्रिय शाह पेथा की भार्या कुल्ली के राजसी नाम के होनहार पुत्र रत्न थे। आपकी बालक्रीडाओं का वर्णन पट्टावलीकारों ने बहुत विस्तार से किया है। एक दो उदाहरण यहां बतला दिये जाते हैं कि बालकों की क्रीडा किस प्रकार भविष्य सूचक होती हैं। शाह पेथा का घराना पुश्तों से जैनधर्म का परमोपासक था जिसमें आपकी धर्मपत्नी कुल्ली तो अपना जीवन ही धर्म करने में व्यतीत करती थी। जिन बालकों के माता पिता धर्मज्ञ होते हैं उन्हों का असर बालबच्चों पर अवश्य पड़ ही जाता है। शाह पेथा धनकुबेर एवं करोड़ाधीश था और उनके सात पुत्रियों पर राजशी एक ही पुत्र था अतएव माता पिता का उस पर अधिक से अधिक स्नेह होना एक स्वभाविक ही था। राजशी छः वर्ष का हुआ तो कई मिष्टान्नादि पदार्थ देकर बहुत से लड़कों को अपना सहचारी बना लिया और उन साथियों के साथ क्रीडा करता था कभी २ अपनी माता के साथ गुरु महाराज के उपाश्रय व्याख्यान सुनने को भी जाया करता था। जैसे मुनिजन पाट पर बैठकर श्रोताओं को व्याख्यान सुनाते थे राजशी भी लड़कों को एकत्र कर उनको व्याख्यान सुनाने की चेष्टा किया करता था और जैसे मुनिराज अपने व्याख्यान में संसार की असारता बतलाते थे जिसको राजशी सुनता था उसी प्रकार अपने सहचरों के बीच बैठकर उन बालकों को संसार की असारता बतलाया करता था इत्यादि।

अहा हा! पूर्व जन्म के यह कैसे सुन्दर संस्कार होंगे। राजशी को इन बातों में बहुत आनन्द आता था। एक दिन राजशी गुरु महाराज के उपाश्रय गया था उस समय साधु भिक्षार्थ नगर में गये थे। राजशी व्याख्यान के पाटा पर बैठकर व्याख्यान देने लग गया। जब साधुओं ने आकर देखा और राजशी को पूछा कि तू क्या कर रहा है? राजशी ने उत्तर दिया कि मैं व्याख्यान दे रहा हूँ इत्यादि उस बच्चे की चेष्टा देख कर मुनियों ने सोचा कि यदि यह बालक दीक्षा लेगा तो जिनशासन की बड़ी भारी प्रभावना करेगा।

एक समय मुनियों ने गोचरी जाने के लिये पात्रों का प्रतिलेखन कर रखा था। इतने में बालक राजशी आया और झोली सहित पात्र लेकर सीधा ही अपने घर पर आ गया एवं माता के पास जाकर धर्म लाभ दिया। माता ने इस प्रकार राजशी को देख कर उसे उपालम्भ दिया कि बेटा! साधुओं के पात्रे कभी नहीं लेना। बेटा ने कहा, माता पात्रे मुझे अच्छे लगते हैं इत्यादि। इतने में पीछे मुनि आये और उसके हाथों से पात्र ले लिया इत्यादि धर्म चेष्टा के कई उदाहरण राजशी की बालावस्था के बन चुके थे।

अलावा परमत के साहित्य का भी आपने ठीक अध्ययन कर लिया था। शास्त्रार्थ और वादविवाद में आपका तर्क एवं युक्तिवाद इतना प्रबल था कि प्रतिवादी आपके सामने सदैव नत मस्तक ही रहते थे। जब मुनि गुणचन्द्र की २४ वर्ष की आयु अर्थात् ८ वर्ष की दीक्षा पर्याय हुई तो आचार्य सिद्धसूरि ने अपना आयुष्य नजदीक जाकर तथा मुनगुणचन्द्र को सर्वगुण सम्पन्न देख कर सूरिमंत्र की आराधना पूर्वक उपकेश पुर के श्रीसंघ के महोत्सव के साथ चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष देवी सच्चायिका की सम्मतिपूर्वक मुनिगुण-चन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम आचार्य रत्नप्रभसूरि रख दिया जो इस गच्छ में क्रमश सूरि नामावली चली आरही थी। एक समय आप श्री ने प्रथम रत्नप्रभसूरि का जीवन पढ़ा तो आपकी आत्मा पर काफी प्रभाव पड़ा और आपने अपना ध्येय शासन उन्नति का बना लिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि महान प्रतिभाशाली विद्वान और शासन की प्रभावना करने वाले थे न जाने इस नाम में ही ऐसा चमत्कार रहा हुआ था कि गच्छनायक होते ही आपका सितारा अधिक से अधिक चमकने लग जाता था। सूरिजी ने मरुधर के प्रत्येक ग्रामों में विहार कर सर्वत्र जनता को धर्मोपदेशरूपी सुधारस का पान कराया। उपकेशपुर, विजयपट्टन, माडव्यपुर, नागपुर, मेदनीपुर, शंखपुर, कुर्चपुरा, हर्षपुरा, मुग्धपुर, खटकूपपुर, वैराटपुर, हाथावती, पारिकापुरी, कोरंटपुर, भिन्नमाल, शिवगढ़, सत्यपुरी, जावलीपुर, चन्द्रावती, शिवपुरी, और पद्मावती वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में भ्रमण किया इस विहार के अन्दर कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी, कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। कई जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया इत्यादि धर्म प्रचार बढ़ाते हुये क्रमशः आपने पद्मावती नगरी में चतुर्मास करके जनता को खूब उपदेश दिया एक समय आपने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय के विषय खूब प्रभावशाली व्याख्यान देते हुये फरमाया कि पूर्व जमाने में कई राजा महाराजा एवं सेठ साहूकारों ने इस तीर्थ की यात्रा निमित्त बड़े २ संघ निकाल कर एवं संघपति बनकर अनेक साधर्मी भाइयों को यात्रा करवा कर अनन्त पुन्योपार्जन किये थे। संघपति पद कोई साधारण पद नहीं पर इस पद को तीर्थङ्करदेव ने भी नमस्कार किया है इत्यादि। आपके उपदेश का प्रभाव जनता पर इस कदर हुआ कि सब की भावना तीर्थयात्रा की ओर झुक गई। उसी सभा में प्राग्वटवंशीय मन्त्री राणक भी था उसने खड़े होकर अर्ज की कि हे पूज्यवर। मेरी इच्छा है कि मैं पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालूं अतः मुझे श्रीसंघ आज्ञा प्रदान करावे। सूरिजी ने कहा राणक तू बड़ा ही भाग्यशाली है। ज्ञानियों ने फरमाया है कि मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है, लक्ष्मी का स्वभाव चंचल है। इसमें जो कुछ सुकृत कार्य्य बन जाय वही अच्छा है इत्यादि। उस सभा में और भी कई भाइयों की भावना संघ निकालने की थी पर सब से पहिले मंत्री राणा ने अर्ज की अतः श्रीसंघ की तरफ से मंत्री राणा को ही आदेश मिला।

मन्त्री राणा ने अपना महोभाग्य समझकर सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया। मन्त्री राणा के पाण्डवों के सदृश्य पांच पुत्र थे उनको बुलाकर संघ निकालने के लिये पूछा तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि पिताजी। आप के उपार्जन किया हुआ द्रव्यपर हमारा कुछ भी अधिकार नहीं है और आप अपना द्रव्य को इस प्रकार सुकृत में लगावें इस में हम लोगोंको बड़ी भारी खुशी है और संघ के लिये सामग्री एकत्र करने के लिये आप जो हुकुम फरमावें उसे करने के लिये हम सब भाई कटिबद्ध तैयार है। अतः मंत्री राणा ने खुश होकर पुत्रों को अलग-अलग काम का जिम्मा दे दिया अतः वे अपने काम को सफल

अज्जं कलं परं पुरारी, पुरिस चिंतंति अत्थी संपति। अंजलि गई भो तुअं, गल्लतमायुः न पिच्छति॥

अरे भव्य ! तू आज कल परसों और वर्षान्तर में धर्म करने का विचार करता है पर अंजली के जल की भांति तेरा आयु क्षीण होता जारहा है इसका भी कभी विचार किया है तीर्थङ्कर देवों ने सो स्पष्ट यानि खुले शब्दों में फरमाया है कि। मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है जैसे कि—

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाणं जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥१॥
कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंवमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥ २ ॥

अर्थात् आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है अतः धर्म करने में क्षणमात्र की भी देर न करनी चाहिये न जाने क्षणान्तर क्या होता है कहा है कि—"धर्म्मस्यत्वरता गतिः"—इत्यादि

सूरिजी का वैराग्यमय उपदेश सुन कर जैसे कोई सिंह निद्रा से जागकर सावधान हो जाता है वैसे ही राजसी सावधान हो गया और अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा की अनुमति मांगी। पर माता पिता और एक मास की परणी नववधू वगैरह कब चाहते थे कि राजसी इस १६ वर्ष की युवक वय में हमको छोड़ कर दीक्षा लेले परन्तु राजसी का हृदय तो बाल्यावस्था से ही दीक्षा के रंग से रंगा हुआ था वह इस संसार रूप कारागृह में कब रहने वाला था। राजसी ने अपनी स्त्री को इस कदर युक्ति से समझाई कि वह दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गई इस हालत में राजसी के माता पिता संसार में कब रहने वाले थे अतः उन्होंने राजसी को पूछा कि घर में करोड़ों रुपये की लक्ष्मी है उस का क्या करना चाहिये ? राजसी ने कहा पिताजी ! शास्त्रों में सातक्षेत्र कहे है उसमें लगाकर पुन्योपार्जन कीजिये दूसरा तो इसका हो ही क्या सकता है। शाह पेथा ने एक एक कोटी द्रव्य तो अपनी सातों पुत्रियों को दे दिया कुछ दीक्षा के महोत्सव के लिए रख लिया। शेष द्रव्य सातों क्षेत्र में जहां जैसी आवश्यकता थी लगा दिया इस प्रकार सूरिजी का उपदेश और राजसी का त्याग वैराग्य देख और भी २३ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इस सुअवसर पर जिन मंदिरों में अठाई महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी भाइयों को पहरामणी याचकों को दान दीन दुखियों का उद्धार वगैरह कार्य्यों में पांच करोड़ द्रव्य व्यय किया। तदनन्तर शुभमुहूर्त्त में राजसी आदि २७ नरनारियों ने सूरिजी के शुभ हस्तविन्द से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली । शुभ कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई और घर-घर में जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। सूरिजी ने राजसी का नाम 'गुणचन्द्र' रख दिया जो "अयानाम तथा गुण" वाली कहावत को चरितार्थ करता था। कारण राजसी में सब गुण चन्द्र के समान निर्मल थे।

मुनि गुणचन्द्र सूरिजी के विनयवान शिष्यों में एक था। गुरुकुल वास में रह कर सूरिजी की आज्ञा का भली भांति आराधन किया करता था। मुनिजी ने पूर्वभव में सरस्वती देवी की अच्छी आराधना की थी कि इस भव में भी वह वरदाई हो गई अल्प समय में वर्त्तमान जैनागमों का अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर व्याकरण, न्याय, तर्क, काव्य अंलकार छन्द वगैरह के भी धुरंधर विद्वान हो गये तथा स्वमत के

समय जनता की धर्मप्रति कैसी भावना थी वह इस शुभ कार्य्य से ज्ञात हो जायगी कि आमंत्रण पत्र से हजारों नहीं पर लाखों भावुक जनों ने पद्मावती नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

शुभमुहूर्त मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन मंत्री राणा के संघपतित्व में और आचार्य सिद्धसूरि के नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ का ठाठ देख राजा जैत्रसिंह के मन में इतना उत्साह बढ़ गया कि वह अपनी रानी को लेकर संघ में शामिल हो गया। फिर तो कहना ही क्या था तीर्थ पर पहुँचे वहाँ तक तो इस संघ में ५००० साधु साध्वियों और पांच लक्ष मनुष्यों की संख्या होगई थी। छ० री० पाली संघ में कितना आनन्द आता है इस बात का अनुभव तो उन्हीं लोगों को होता है कि जो यात्रा को यात्रा समझ कर निर्वृत्ति भाव से दो-दो चार-चार मास साधुओं की भांति भ्रमण कर आनन्द लूटते हैं क्योंकि यात्रा में इन्द्रियों का दमन, कषायों पर विजय, आरम्भ से निवृत्ति, ब्रह्मचर्य का पालना, गुरु सेवा, प्रभु पूजा, स्वधर्मियों का समागम, और ज्ञान ध्यान का करना इत्यादि अनेक लाभ मिलता है। यही कारण है कि तीर्थ यात्रा धर्म का एक खास अंग समझा गया है। उस जमाने में संघ बिना यात्रा होनी कठिन थी और ऐसे संघ कभी-कभी भाग्यशाली ही निकालते थे। अतः जनता में उत्साह की तरंगे उछल रही थीं। आज कल तो यात्रा नाम मात्र की रह गई है। पूर्वोक्त गुण खोजने पर भी शायद ही मिलते होंगे ? यद्यपि सब लोग एक से नहीं। होते हैं पर जो पूर्व जमाना में लोगों की धर्म पर श्रद्धा और आत्म-कल्याण की रुची थी वह बहुत कम रह गई है इसमें कर्मों की बहुल्यता के अलावा क्या हो सकता है फिर भी यह रास्ता इतना उत्तम है कि कभी-कभी आत्म विकास की लहर आय ही जाति है।

उस जमाने के अन्दर जैनों के घरों में ऐसा पैसा ही नहीं आता था कि कुक्षेत्र में लग सके। यात्रार्थ जो पैसे खर्च किये जाते थे वे साधर्मी भाइयों के तथा देश भाइयों के ही काम में आते थे। आज हजारों लाखों रुपये रेल्वे को दिये जाते हैं वे विदेशों में तो जाते ही हैं पर उसका वहां भी दुरुपयोग ही होता है। जो भाव और आनन्द गुरु महाराज के साथ छरी पाली यात्रा में आता है वह रेलवे से यात्रा करने में नहीं आता है। भला पहिले जमाने में जीवन भर में एक ही यात्रा करते होंगे पर वे एक बार की यात्रा में इतने पाक एवं पवित्र बन जाते थे कि किये हुए कर्मों का प्रक्षालन कर फिर पाप नहीं करते थे। पर आज सालोंसाल यात्रा करने वाले न तो वहां जाकर पाप धोते हैं और न वापिस आकर पाप से डरते हैं। आज की यात्रा को तो एक व्यसन एवं मुसाफिरी ही कही जाती है। हाँ सब सरीखे नहीं होते हैं पर मुख्यता में आज कल का हाल ऐसा ही है। पर कई लोग आत्म भावना वाले भी होते हैं।

संघ क्रमशः गांव नगर एवं तीर्थों के दर्शन पूजन ध्वज महोत्सव जीर्णोद्धार एवं दीन दुखियों का उद्धार करता जा रहा था। रास्ता में अनेक राजा महाराजा एवं श्रीसंघ की ओर से अच्छा स्वागत हो रहा था। क्रमशः श्रीसिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही भावुकों के हृदय कमल विकासायमान होगये। चतुर्विध श्रीसंघ ने मिल द्रव्य भाव से तीर्थ वन्दन पूजन किया। तत्पश्चात् तीर्थ पर जाकर भगवान आदीश्वर के दर्शन स्पर्शन कर चिरकाल के मनोरथों को सफल किया। इस तीर्थ को सुन कर आस पास के छोटे बड़े अनेक संघ वहां आये और आठ दिन तक अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि विविध प्रकार से भक्ति की और भी करने योग्य सब विधान किया तत्पश्चात् गिरनारादि क्षेत्रों की स्पर्शना की। सूरिजी महाराज ने अपने कई साधुओं के साथ लाट सौराष्ट्र प्रदेश में विहार करने के कारण वहां ही रह गये और

अज्जं कलं परं पुरारी, पुरिस चिंतंति अत्थी संपति। अंजलि गई भो तुअं, गल्लतमायुः न पिच्छाति॥

अरे भव्य ! तू आज कल परसों और वर्षान्तर में धर्म करने का विचार करता है पर अंजली के जल की भांति तेरा आयु क्षीण होता जारहा है इसका भी कभी विचार किया है तीर्थङ्कर देवों ने सो स्पष्ट यानि खुले शब्दों में फरमाया है कि । मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है जैसे कि—

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥१॥
कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥ २ ॥

अर्थात् आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है अतः धर्म करने में क्षणमात्र की भी देर न करनी चाहिये न जाने क्षणान्तर क्या होता है कहा है कि—"धर्म्मस्यत्वरता गतिः"—इत्यादि

सूरिजी का वैराग्यमय उपदेश सुन कर जैसे कोई सिंह निद्रा से जागकर सावधान हो जाता है वैसे ही राजसी सावधान हो गया और अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा की अनुमति मांगी। पर माता पिता और एक मास की परणी नववधू वगैरह कब चाहते थे कि राजसी इस १६ वर्ष की युवक वय में हमको छोड़ कर दीक्षा लेले परन्तु राजसी का हृदय तो बाल्यावस्था से ही दीक्षा के रंग से रंगा हुआ था वह इस संसार रूप कारागृह में कब रहने वाला था। राजसी ने अपनी स्त्री को इस कदर युक्ति से समझाई कि वह दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गई इस हालत में राजसी के माता पिता संसार में कब रहने वाले थे अतः उन्होंने राजसी को पूछा कि घर में करोड़ों रुपये की लक्ष्मी है उस का क्या करना चाहिये ? राजसी ने कहा पिताजी ! शास्त्रों में सातक्षेत्र कहे है उसमें लगाकर पुन्योपार्जन कीजिये दूसरा तो इसका हो ही क्या सकता है। शाह पेथा ने एक एक कोटी द्रव्य तो अपनी सातों पुत्रियों को दे दिया कुछ दीक्षा के महोत्सव के लिए रख लिया। शेष द्रव्य सातों क्षेत्र में जहां जैसी आवश्यकता थी लगा दिया इस प्रकार सूरिजी का उपदेश और राजसी का त्याग वैराग्य देख और भी २३ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इस सुअवसर पर जिन मंदिरों में अठाई महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी भाइयों को पहरामणी याचकों को दान दीन दुखियों का उद्धार वगैरह कार्य्यों में पांच करोड़ द्रव्य व्यय किया। तदनन्तर शुभमुहूर्त्त में राजसी आदि २७ नरनारियों ने सूरिजी के शुभ हस्तविन्द से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली । शुभ कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई और घर-घर में जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। सूरिजी ने राजसी का नाम 'गुणचन्द्र' रख दिया जो "अथानाम तथा गुण" वाली कहावत को चरितार्थ करता था। कारण राजसी में सब गुण चन्द्र के समान निर्मल थे।

मुनि गुणचन्द्र सूरिजी के विनयवान शिष्यों में एक था। गुरुकुल वास में रह कर सूरिजी की आज्ञा का भली भांति आराधन किया करता था। मुनिजी ने पूर्वभव में सरस्वती देवी की अच्छी आराधना की थी कि इस भव में भी वह वरदाई हो गई अल्प समय में वर्त्तमान जैनागमों का अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर व्याकरण, न्याय, तर्क, काव्य अंलकार छन्द वगैरह के भी धुरंधर विद्वान हो गये तथा स्वमत के

सोचा कि इसको उठा कर ले जाने का व्यवहार (उद्यम) क्यों किया जाय । निश्चय में लिखा होगा तो आपसे ही घर पर आ जायगा। बस उस खजाने को छोड़ के आ गया। रात्रि में अपनी औरत से सब हाल सुनाया । उस समय गुप्त रहा हुआ एक चोर भी सुनता था । उसने सेठजी के बतलाये हुये स्थान पर जा कर देखा तो वहाँ एक चरु था। खजाना निकालने की गरज से उसमें हाथ डाला तो उस खजाने में सॉंप बिच्छू के रूप में चोर को काट खाया । चोर ने सोचा कि सेठ ने मुझे मारने का उपाय किया सो इसको लेजा कर सेठ पर डाला जाय कि वह स्वयं मर जाय । बस, चोर ने उस खजाने को लेजा कर सोते हुये सेठ पर डाल दिया कि वह पुनः खजाना हो गया अर्थात् निश्चय रखा तो निधान घर पर आ गया । अतः निश्चय ही को मानना ठीक है । यदि निश्चय में नहीं है तो व्यवहार उल्टा नुकसान का कारण बन जाता है। जैसे एक मूषक ने व्यवहारिक उद्यम कर एक डब्बे को काटा अन्दर था सर्प । मूषक को भक्षण कर गया । अतः मेरी मान्यता के अनुसार एक निश्चय ही प्रधान है ।

सूरिजी ने कहा कि ऐसे तो व्यवहार की प्रधानता के भी अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं। जैसे आप यहाँ से जाने का उद्यम न करें, फिर कैसे मकान पर पहुँच सकते हैं । रसोई की सब सामग्री होने पर भी बनाने का उद्यम न करें फिर कैसे रसोई बन सकती है । भोजन का ग्रास मुंह में डाला है पर उसे गले उतारने का उद्यम न करें फिर वह कैसे क्षुधा को शान्त कर सकता है । इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि व्यवहार बिना निश्चय काम नहीं देता है । हां, निश्चय से ही व्यवहार चलता है । जैसे निश्चय कार्य्य है तब व्यवहार कारण है पर कारण बिना कार्य बन नहीं सकता है जैसे एक भाई निश्चय को प्रधान मान कर व्यवहार का अनादर करता था तब दूसरा भाई व्यवहार को प्रधान समझ कर निश्चय को नहीं मानता था । इन दोनों में इस विषय पर काफी वाद-विवाद हो गया । अतः वे राजा के पास इंसाफ करवाने के लिए गये । दोनों की बातें सुन कर राजा विचार में पड़ गया कि अब मैं किसको सच्चा और किसको झूंठा कहूँ । राजा ने इस कार्य्य को प्रधान पर छोड़ दिया जो स्याद्वाद सिद्धान्त को मानने वाला था ।

प्रधान ने एक मास की तारीख डाल दी । इतने समय में एक छोटा-सा कमरा बनाया, उसकी दीवार में एक छोटा-सा आला रक्खा,उसमें एक छाबमें चार लड्डू और जल का एक कोराघड़ा भरकररख दिया और उस पर पत्थर चुना ऐसा लगा दिया कि किसी को मालूम न पड़े । जब एक मास के अन्त में उन दोनों की पेशी हुई और वे दोनों हाजिर हुये तो उन दोनों को उस कमरे में डाल कर कपाट बन्द कर दिये । उनकी वार्तालाप सुनने को एक गुप्त आदमी को रख दिया । निश्चयवादी तो चुपचाप सो गया पर व्यवहारवादी ने कहा-भाई सोने से क्या होगा कुछ उद्यम ( व्यवहार ) करिये । निश्चयवादी ने कहा-व्यवहार में क्या धरा है । आखिर तो निश्चय होगा वही होगा । पैर व्यवहारवादी ने दो दिन उद्यम किया कुछ खाली नहीं हुई पर तीसरे दिन कमरे के भीतर एक दीवार पर मुक्का मारने पर मालूम हुआ कि यहाँ पोलार है । उसने हाथ से या लोहे की चाबी से भींत को खोदा और चुना एवं पत्थर को हटाया तो अन्दर लड्डू और जल पाया । तब निश्चयवादी को कहा भाई तेरा निश्चय तो मर जाने के अलावा कोई फल नहीं देता है, पर देख मेरे व्यवहार से लड्डू और जल मिल गया है । उठ इसे खा कर प्राण बचा ले । बस चार लड्डू में से दो निश्चयवादी को दे दिये और दो अपने ले लिये । निश्चयवादी लड्डू तोड़ कर खाने लगा तो लड्डू के अन्दर एक बहुमूल्य रत्न निकला जिसको गुप्त रूपेण अंटी में दबा लिया । चौथे दिन उन दोनों को कचहरी में

बनाने में लग गये। मंत्री राणा उस समय वृद्धावस्था में था राज का काम पुत्र को सौंप कर आप निवृत्ति से धर्माराधना करता था तथापि मन्त्री चलकर राजा के पास गया और राजा ने मंत्रेश्वर की बहुत प्रशंसा की और कहा कि राणा तू बड़ा ही भाग्यशाली है। इस पुन्य कार्य को करके तूने अपने जीवन को सफल बना लिया है। अब इस संघ के लिये जो कुछ सामान की आवश्यकता हो वह बिना संकोच राज से लेजाना ताकि इतना लाभ तो मुझे भी मिले। मन्त्री ने कहा राजन्! यह सब गुरुदेव की पूर्ण कृपा का ही फल है और आपकी मेहरबानी एवं उदारता के लिये मैं आपका उपकार समझता हूँ और आप श्रीमानों की कृपा से ही मेरा प्रारंभ किया कार्य्य सफल होगा पर एक खास मेरी प्रार्थना है कि हुजूर खुद इस संघ में पधारें क्योंकि धर्म सबका एक है देव सब का एक है और तीर्थ सबका एक है। पूर्व जमाने में बड़े-बड़े नरेशों ने संघ सहित इस महान तीर्थ की यात्रा की है। अतः मेरी प्रार्थना पर मंजूरी हुक्म फरमाना चाहिये। इस पर राजा ने कहा राणा मैं सब धर्मों को एक ही समझता हूँ फिर भी जैनधर्म पर मेरा अधिक अनुराग है। आपके आचार्य एवं साधु बड़े ही त्यागी वैरागी हैं। इनके उपदेश जनकल्याण के लिये होता हैं। अतः मैं धर्म में किसी प्रकार का भेद नहीं समझता हूँ जिसमें भी तीर्थों के लिये तो भेद हो ही नहीं सकता है। जैसे हमारे गंगातीर्थ है वैसे आपके शत्रुंजयतीर्थ है पर कहा है कि 'राजेश्वरी नरकेश्वरी'। मेरे जैसों की तकदीर में ऐसे तीर्थ की यात्रा कहाँ लिखी है। हमतो चौरासी के कीड़े चौरासी में ही भ्रमण करेंगे यथार्थ संघ में चलने के लिये अभी तो मैं कुछ नहीं कहता हूँ समय पर बन सका तो मैं विचार अवश्य करूंगा इत्यादि।

मन्त्री ने कहा राजन्! धर्म तो खास राजाओं का ही है और 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा के पीछे ही प्रजा में धर्म का उत्साह बढ़ता है। अगर आप इस संघ में पधारेंगे तो जनता में कितना उत्साह बढ़ जायगा जिसकी कल्पना अभी नहीं की जा सकती है परन्तु इसका लाभ तो आपको ही मिलेगा। जब आप समझते हो कि 'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' तब तो इस नर्क के द्वार बन्द करने के लिये आपको इस धर्म कार्य्य में अधिक उत्साह से भाग लेना चाहिये। आप खुद ही समझदार हैं मैं आपको अधिक क्या कहूँ। यदि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करलें तो मेरा उत्साह और भी बढ़ जायगा। इसको भी आप सोच लीजिये।

राजा ने कहा ठीक है राणा मैं इस बात का विचार अवश्य करूंगा।

मंत्री ने कहा विचार करना तो पराधीनों के लिये है आप स्वाधीन हैं। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

राजा—जब तुझे विश्वास है तो अधिक कहने की जरूरत ही क्या है।

इत्यादि वार्तालाप हुआ। बाद मंत्री राजा को प्रणाम कर अपने स्थान आगया तथा समय पाकर सूरिजी से भी निवेदन कर दिया कि कभी राजा व्याख्यान में आवें तो आप भी इस बात का उपदेश करें क्योंकि राजा संघ के साथ चलने से जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मंत्रीश्वर के कुशलता पूर्वक कार्य्य करने वाले पांच पुत्र थे। पास में पुष्कल द्रव्य था और राजा की पूरी मदद फिर तो कहना ही क्या था मंत्री ने अलग-अलग काम सब के सुपुर्द कर दिया और वे लोग संघ के लिए सामग्री जुटाने में लग गये।

मंत्री राणा के पुत्रों ने जहां-जहां साधु साध्वियां विराजमान थे वहां-वहां अपने योग्य मनुष्यों को विनती के लिये भेज दिये तथा श्रीसंघ के लिये प्रत्येक ग्राम नगर में आमंत्रण पत्र भिजवा दिये। उस

सोनलदेवी जैनधर्म की पक्की श्राविका थी उसने अपने श्वसुराल में जैनधर्म का प्रभाव को अच्छी तरह से फैला दिया था आचार्य रत्नप्रभसूरिजी उस सोनलदेवी की विनती से ही पधारे थे जब सोनलदेवी को मालूम हुआ कि आचार्य रत्नप्रभसूरि पधार रहे हैं तो उसने गुरु महाराज के स्वागत की अच्छी तैयारी की तथा वहां के श्रीसंघ ने भी सूरिजी महाराज का सुन्दर स्वागत किया और सूरिजी को नगर प्रवेश करवाये। सूरिजी का व्याख्यान सदा हुआ करता था आपका उपदेश में न जाने ऐसा कोई जादू था कि वहां के राजकुँवार वीरसेनादि बहुत से नर नारियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। राजकुँवार वीरसेन को दीक्षा देकर सूरिजी ने उनका नाम मुनि सोमकलास रखा था मुनि सोमकलस दीक्षा लेते ही ज्ञानाभ्यास करने में लग गया मुनि सोमकलस ने पूर्व जन्म में उज्वल भावों से ज्ञानपद एवं सरस्वती की आराधना की थी कि थोड़ा ही समय में विद्वान बन गया अतः सूरिजी ने सोमकलस को उपाध्याय पद से विभूषित कर दिया।

उपाध्याय सोमकलस का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और युक्ति पुरसर था कि सुनने वालों पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता था इतना होने पर भी उपाध्यायजी गुरुकुलवास से दूर रहना नहीं चाहते थे एक समय सूरिजी ने सिन्ध प्रान्त में विहार किया रास्ता में छोटे छोटे गांव आने के कारण उपाध्याय सोमकलस को कई साधुओं के साथ अलग विहार करवाया अतः उपाध्यायजी एक दिन विहार कर पड़सोली ग्राम आ रहे थे परन्तु ग्राम में नहीं पहुँचने पहले ही सूर्य अस्त हो गया अतः साधु वृक्षों के नीचे ठहर गये उपाध्याय जी पास ही में निर्जीव भूमिका देखी तो वहां ठहर गये परन्तु वहां थे श्मशान रात्रि समय जब आप ध्यानास्थित थे तो एक देवी महा भयंकर रूप बना कर उपाध्यायजी के पास आई और मारी क्रोध के कई उपद्रव करने शुरु किये पर उपाध्यायजी थे वीर क्षत्री वे अपने ध्यान से तनक भी क्षोभ न पाये—अतः देवी हतारा होकर एक सुन्दर देवांगना का रूप बना कर अनुकूल उपसर्ग देने लगी फिर भी आप तो मेरु पर्वत की भांति अडिग ही रहे आखिर देवी अपने जितने उपाय थे सब के सब आजमाइश कर लिये पर वीर उपाध्यायजी मनसा से भी चलायमान नहीं हुए। इस सहनशीलता को देख देवी प्रसन्न होकर अर्ज की कि हे प्रभो! मैंने अज्ञानवश आपको कई प्रकार से उपसर्ग किया उसकी तो आप क्षमा करें और मैं आज से आपकी किंकरी हूँ जिस समय आप याद फरमावें उसी समय मैं सेवा में हाजिर होकरआपका कार्य करने की प्रतिज्ञा करती हूँ। कृपा कर मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करावे उपाध्यायजी ने अपना ध्यान पार कर कहा देवी हम साधु लोग तो उपसर्ग एवं परिसह सहन करने के लिए ही साधु हुए हैं इससे मेरी दृष्टि से तो आपका कोई अपराध नहीं हुआ है कि जिसकी मैं आपको माफी दू दूसरा आपने प्रतिज्ञा की यह अच्छी ही है पर हम साधु लोगों के क्या काम होता है कि आपसे करावें हाँ, शासन कार्य के लिये क्या आप और क्या मैं अपना कर्तव्य ही समझते हैं पूर्व जमाना में आचार्य रत्नप्रभसूरि के कार्य में साचायिका देवी और आचार्य यक्षदेवसूरि के कार्य में मातुलादेवी सहायक बन शासन के कार्य में मदद पहुँचाई है आप भी उनका अनुकरण कीजिये। देवी ने तथाऽस्तु कह कर उपाध्यायजी को 'वादविजयता' वरदान देकर उपाध्यायजी को वन्दन कर अपने स्थान पर चली गई।

सुबह उपाध्यायजी अपने मुनियों के साथ विहार कर पाड़सोली होकर वीरपुर पधारे वहां जैनों की काफी बसती होने पर भी किसी जैन को नहीं देखा नगर में जाने पर उपाध्यायजी महाराज को मालूम हुआ कि

दूसरे साधु एवं संघ लौट कर पुनः पद्मावती आये । मंत्रीराणा ने संघ को स्वामिवात्सल्य के साथ एक एक सोना मोहर और पांच पांच सेर लड्डू की प्रभावना दी और संघ के चरणों की रज अपने सिर पर लगा कर अपने जीवन को सफल बनाया । धन्य है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने वाले नररत्नों को ।

यह तो एक संघ का हाल यहां लिखा है । पर इस प्रकार तो अनेक प्रान्तों एवं नगरों से कई आचार्य एवं मुनिवरों के उपदेश से छोटे वड़े कई संघ निकाला करते थे । कारण उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में एक दो मनुष्यों से आना जाना मुश्किल था । लूट फाट का भय रहता था । तथा यात्रार्थ अथवा व्यापारार्थ आना जाना होता तो इसी प्रकार हजारों लाखों आदमियों के संग से ही जाना आना बनता था । दूसरे उस समय लोगों में धर्मभावना भी बहुत थी तीसरे वह लोग थे भी हलुकर्मी चतुर्थ उनके व्यापारादि सब कार्य्य न्याय एवं नीति पूर्वक थे कि लक्ष्मी तो उनके घर में दासी होकर रहती थी । उनका जीवन सादा एवं सरल था कि वे दूसरे कामों की अपेक्षा धर्मकार्य में द्रव्य व्यय करना अधिक पसन्द करते थे। इन शुभ अध्यवसायों के कारण वे संसार में खूब फले फूले रहते थे और धर्मकार्यों में सदैव अग्रभाग लेते थे ।

अस्तु । आचार्य रत्नप्रभसूरि ने लाट सौराष्ट्र में विहार कर सर्वत्र जैन धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुये कच्छ प्रदेश में पदार्पण किया । सूरिजी के पधारने से सर्वत्र चहल-पहल मच गई । उपकेशवंशियों की संख्या सर्वत्र प्रसरित थी, वे लोग रत्नप्रभसूरि का नाम सुन कर प्रथम रत्नप्रभसूरि की स्मृति कर रहे थे। सूरिजी महाराज के उपदेश से कच्छ ठीक जागृत होकर अपने आत्म-कल्याण में लग गया । बाद वहां से आपने सिन्ध को पवित्र बनाया । सिन्ध में वहुत से साधु भी विहार करते थे । नव सूरिजी महाराज देवपुर, आलोट, डवरेल, खखोटी, नरवर होते हुये शिवनगर में पधारे । वहां का राजा कुंतलादि श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब ही समारोह के साथ स्वागत किया । सूरिजी के पधारने से जनता में एक प्रकार की नयी चेतनता प्रगट हुई और उत्साह वढ़ गया ।

एक दिन सूरिजी व्याख्यान दे रहे थे, किसी अन्य धर्मी ने प्रश्न किया कि सूरिजी महाराज आप निश्चय को मानते हो या व्यवहार को ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि हम निश्चय और व्यवहार दोनों को युगपात समय मानते हैं क्योंकि व्यवहार विना निश्चय प्रगट नहीं होता है. तब निश्चय विना व्यवहार चल नहीं सकता है । अतः निश्चय और व्यवहार दोनों को मानना ही सम्यक् मार्ग है ।

पृच्छक—पूज्य ! यह तो मिश्र मार्ग है । मैंने तो सुना है कि एक मार्ग पर निश्चय किये विना कल्याण नहीं होता है तो फिर आप जैसे विद्वान मिश्र मार्ग की शरण क्यों लेते हो ?

सूरिजी—एकान्तवाद से कल्याण नहीं, पर कल्याण स्याद्वाद से होता है । अर्थात अकेले निश्चय से कुछ नहीं होता है तब अकेले व्यवहार से भी कार्य्य की सिद्धि नहीं है । हां, निश्चय के अनुसार व्यवहार चलता है पर व्यवहार को छोड़ देने पर अकेला निश्चय भी कुछ नहीं कर सकता है । निश्चय में तो आपके व्याख्यान सुनना था, पर यहां आने का व्यवहार एवं उद्यम किया तब व्याख्यान सुन सके हो ।

पृच्छक्—महाराज ! मैं एक निश्चय को ही मानने वाला हूँ । चाहे व्यवहार न करे, पर निश्चय में जो होने वाला होता है वही होकर रहता है । जैसे—

एक मनुष्य निश्चयवादी था और जंगल गया था । वहाँ भूमि खोदते उसे खजाना मिला, पर उसने

बना सके। कोरंटसंघ ने सूरिजी की मृत्यु क्रिया करने के पश्चात् चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र होकर विचार किया कि सूरिजी अपने हाथों से अपने पट्टधर बना नहीं सके पर आचार्य बिना गच्छ का संचालन कौन करेगा! अतः वे लोग चलकर आचार्य्य रत्नप्रभसूरि के पास गये और प्रार्थना की कि प्रभो! कोरंटगच्छ इतना बड़ा गच्छ है पर इस समय कोई आचार्य नहीं है अतः आप कोरंटपुर पधार कर योग्य मुनि को आचार्य बनावें इत्यादि इस पर आचार्य रत्नप्रभसूरि कोरंटपुर पधारे और कोरंटगच्छ में एक सोमहंस नाम का अच्छा विद्वान एवं योग्य मुनि था जिसको सूरि मन्त्र की आराधना करवा कर शुभ मुहूर्त में श्रीसंघ के समक्ष आचार्य पद से विभूषित किया और आपका नाम कनकप्रभसूरि रक्खा इस पद महोत्सव में कोरंटसंघ ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर जिनशासन की अच्छी प्रभावना की। पूर्व जमाने में गच्छ अलग २ होने पर भी आपस में कितना प्रेम स्नेह और एक दूसरे की उन्नति में किस प्रकार सहायक बनते थे जिसका यह एक उज्वल उदाहरण है। इस प्रकार का धर्म प्रेम से ही जैनधर्म उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था।

इस प्रकार आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने शासन में जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया जहां जहां आप पधारे वहां वहां जैनधर्म की प्रभावना के साथ महाजन संघ की खूब वृद्धि की कई भवुकों को दीक्षा प्रदान कर श्रमण संघ की संख्या बढ़ा कर प्रत्येक प्रान्तों में साधुओं को विहार की आज्ञा दी और चतुर्विध श्री संघ के ज्ञानवृद्धि के निमित्त अनेक ग्रन्थों की रचना भी की अन्त में आप उपकेशपुर पधारे और अपना आयुष्य नजदीक समझ कर चतुर्विध श्रीसंघ के समीक्ष आलोचना कर अनशनव्रत धारण कर लिया और ३२ दिन परम समाधि में बिता कर स्वर्गधाम पधार गये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के ६२ वर्ष के दीर्घशासन में शासनोन्नति के अनेक कार्य हुए जिसका वर्णन पट्टावलियों वंशावलियों आदि अनेक ग्रन्थों में विस्तार से मिलते हैं पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से उन सब को मैं यहाँ पर नहीं लिख सकता हूँ तथापि नमूना के तौर पर कतिपय नामोल्लेख कर देता हूँ।

## आचार्य श्री के उपदेश से भावुकों ने दीक्षा ग्रहण की

१—उपकेशपुर के कुमट गोत्रिय गणधर ने सूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की।
२—उपकेशपुर के भद्रगोत्रिय सलखणादि ने दीक्षा ली।
३—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रीय शा पुनड़ ने दीक्षा ली।
४—संखपुर के सुचंती गोत्रिय १६ साथियों के साथ हरदेव ने दीक्षा ली।
५—मुग्धपुर के बापनाग गोत्रिय देवपाल ने सपत्नी दीक्षा ली।
६—काकदहा के कुलभद्रगोत्रिय शाहा नेना ने चार मित्रों के साथ दीक्षा ली।
७—पद्मावती के क्षत्रिय वीरमदेव ने दीक्षा ली।
८—चन्द्रावती के लुंग गोत्रिय मघवा ने ११ भावुकों के साथ दीक्षा ली।
९—भद्रावती के ब्राह्मण जयदेव ने अपने तीन मित्रों के साथ दीक्षा ली।
१०—कोरंटपुर प्राग्वट वंश के शाह पोपा ने सपत्नी दीक्षा ली।
११—भोपाणी के प्राग्वटवंश के शाह कुरा ने दीक्षा ली।
१२—विद्यापुर के श्रीमाल रामदेव ने १९ साथियों के साथ दीक्षा ली।

बुलाया और पूछा कि तुम्हारा इंसाफ हो गया ? दोनों ने कहा कि अच्छी तरह से यानी व्यवहारवादी बोला कि मेरा व्यवहार ही प्रधान है कि दोनों के प्राण बचाये। निश्चयवादी ने कहा मेरा निश्चय ही प्रधान है कि अमूल्य रत्न हाथ लग गया। इस पर प्रधान ने कहा कि तुम दोनों मिलकर चलोगे तो ही फल प्राप्त होगा। यदि उद्यम न करता तो भोजन एवं रत्न कहां से मिलता, फिर भी व्यवहार का फल केवल लड्डू और जल जितना ही था, पर निश्चय का फल रत्न तुल्य है। अतः निश्चय को प्रगट करने के लिये व्यवहार को उपादेय माना करो। दोनों मंजूर कर अपने २ स्थान चले गये। सूरिजी महाराज के उदाहरण ने पृच्छक पर ही नहीं पर आम सभा पर भी बड़ा भारी प्रभाव डाला और स्याद्वाद पर जनता की विशेष श्रद्धा जम गई।

समय परिवर्तनशील है। पूर्व जमाने में निश्चय को मुख्य और व्यवहार को गौण समझा जाता था। उस समय दुनियां को इतना सोच फिक्र एवं आर्तध्यान नहीं था। अर्थात् कुछ भी हानि लाभ होता तो भी इतना हर्ष शोक नहीं होता था कारण वे जान जाते थे कि निश्चय से ऐसा ही होने वाला था पर जब से निश्चय को गौण और व्यवहार को मुख्य माना जाने लगा तब से जनता में सोच फिक्र और आर्तध्यान बढ़ने लग गया। कारण जिस सुख दुख का कारण कर्म समझा जाता था उसके बदले व्यक्ति को समझा जाने लगा। इससे ही आपसी राग-द्वेष वैर-विरोध की वृद्धि हुई है अतः जैनधर्म के सिद्धान्त के जानने वालों को निश्चय को प्रधान और व्यवहार को गौण की मान्यता रखनी चाहिये कि सुख दुख को पूर्व संचित कर्म समझ समभाव से भोग लेवे। अतः निश्चय परअडिग रहना चाहिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने प्रथम रत्नप्रभसूरि की तरह कई मांस मदिरा-सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। कई वार तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकलवाये। कई वादी प्रतिवादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय वैजंती ध्वजा फहराई और अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा दे श्रमणसंघ में वृद्धि की। सिन्ध भूमि उस समय उपकेशगच्छजचार्यों की एक बिहार भूमि थी।

वहां से पंजाब भूमि में पधार कर अपने साधुओं की सार-संभाल की और दीर्घ समय से वहां जैनधर्म के प्रचारार्थ किये हुये कार्यों की सराहना कर उनके उत्साह को बढ़ाया। सावत्थीनगरी में महा-महोत्सवपूर्वक कई योग्य मुनियों को पदस्थ बनाये वहां से तक्षिलादि नगरों में विहार किया और शालीपुर के मंत्री महादेव के संघ के साथ सम्मेतशिखरजी की तीर्थों की यात्रा की और राजगृह चम्पा भद्दलपुर पावा-पुरी काकंदी विशालादि पूर्व की यात्रा करते हुए कलिंग में पधारे कुँवार कुँवारी वगैरह क्षेत्रों की स्पर्शनाकर आवंती मेदपाट में धर्मोपदेश करते हुये पुनः मरुधर की ओर पधारे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में विहार करते हुए एक समय वीरपुर नगर की ओर पधारे वीरपुर में नास्तिक वाममार्गियों का खूब अड्डा जमा हुआ था वहां का राजा वीरधवल उन नास्तिकों को मानने वाला था यथा राजास्तथा प्रजा? इस युक्ति अनुसार नगर के बहुत लोग उन पाखण्डियों के भक्त थे। आचार्य रत्नप्रभसूरि ( प्रथम ) आदि आचार्यों ने वाममार्गियों के मिथ्या धर्म का उन्मूलन कर दिया था पर फिर भी ऐसे अज्ञात नगरों में उन लोगों के अखाड़े थोड़ा बहुत प्रमाण में रह भी गये थे पर उनके लिए भी जैनाचार्यों का खूब जोरों से प्रयत्न था।और इस लिये ही सूरिजी का पधारना हुआ था।

वीरपुर के राजा का कुँवर वीरसेन की शादी उपकेशपुर की राजकन्या सोनलदेवी के साथ हुई थी

९—शकम्भरी के चिंचट गोत्रीय भूरा राजा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।
१०—वैराट नगर के बलाह गोत्रिय शाह राजल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।
११—जावडीपुर के श्रीमाला नाथा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

इनके अलावा आपश्री के शिष्यों प्रशिष्यों के उपदेश से भी कई प्रान्तों से अनेक बार संघ प्रस्थान कर तीर्थों की यात्रा की और जीवन को पावन बनाया था।

## आचार्य श्री के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई

१—मापाणी ग्राम में सुचेती गोत्रीय शाह नांधण के बनाये पार्श्वनाथ मंदिर की प्र० कराई
२—विजयपुर में तप्तभट गोत्रीय सुगाल के बनाये विमलदेव के मं० की प्र० कराई।
३—पीतलिया ग्राम में भद्र गोत्रिय सग्राम के बनाये शान्तिनाथ मं० की प्र० कराई।
४—मद्मपुरा ग्राम के भूरि गोत्रीय कल्हण के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
५—गगनपुर में ब्राह्मण जगदेव के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
६—चन्द्रवती धनमाली सहल के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
७—दान्तीपुर श्री श्रीमाल भीमा के बनाये पार्श्वनाथ मं० की प्र० कराई।
८—आघाट नगरे चिंचट गोत्रीय शा० भूरा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
९—दशपुर नगरे बाप्पनाग गोत्रीय हणमत के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
१०—आलोट नगरे मोरक्षा गोत्रिय चोखा शाह के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
११—लोहाकोट कर्णाटगोत्रीय धनपाल के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
१२—हर्षपुरे श्रेष्ठि गोत्रीय करणा के बनाये पार्श्व० मं० की प्र० कराई।
१३—कन्नौज नगरे वीरहट गोत्रीय भाणा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।
१४—हिडुनगरे हिडुगोत्रीय शा० जोगा के बनायें महावीर मं० की प्र० कराई।

यह तो केवल नमूने के तौर पर लिखा है पर इतने सुदीर्घकाल में स्वयं आचार्यश्री तथा आपश्री के आज्ञानुवर्ति मुनियों के उपदेश से तीर्थों के संघ भावुकों की दीक्षा और मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के विषय में तथा एक एक आचार्यों ने जो शासन का कार्य्य किया है उसको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाता है। आचार्यश्री के उपदेश से लाखों मांस मदिरा सेवियों ने जैनधर्म स्वीकार किया था। यही कारण था कि उस समय जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। इस प्रकार उन आचार्य देवों का जैन समाज पर इतना उपकार हुआ है कि जिसको हम एक क्षण भी नहीं भूल सकते।

पट्ट सोलहवें अतिशय धारी, रत्नप्रभ सूरीश्वर थे।
प्रतिभाशाली उग्रविहारी, अज्ञ हरण दिनेश्वर थे॥
प्रथम पूज्य का पद कर जीवन, ज्योति पुनः जगाई थी।
करके नत मस्तक वादी का, धर्म की प्रभा बढ़ाई थी॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के १६ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभावी हुये॥

यहां उपकेशगच्छ के साधु हैं और किसी कृष्णाचार्य के साथ राज सभा में वाद विवाद करने को गये हैं और सबजैन लोग भी मुनियों के साथ राज सभा में गये हैं अतः कोई भी जैन सेवा में हाजिर नहीं हो सका बस फिर तो देरी ही क्या थी उपाध्यायजी बिना आहारपानी किये और बिना विलम्ब राज सभा में गये मुनियों ने उपाध्यायजी का स्वागत कर आसन दिया उपाध्यायजी ने शास्त्रार्थ की विषय अपने हाथ में ली तो क्षण भर में ही वादी को पराजय कर उस सभा के अन्दर जैनधर्म की विजय पताका फहरा दी इतना ही क्यों पर वहां के राजा प्रजा को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर उन सब को जैन बनाया जिससे वहां का श्रीसंघ बड़ा ही प्रसन्न चित्त हो गाजा वाजा और जिनशासन की जयध्वनि के साथ उपाध्यायजी महाराज को उपाश्रय पहुँचाये—उपाध्यायजी महाराज की यह पहला पहल ही विजय थी।

उपाध्यायजी क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी महाराज के पास आये और सब हाल कहने पर सूरिश्वरजी महाराज बड़े ही प्रसन्न हुए सूरिजी महाराज सर्वत्र विहार कर पुनः मरूधर में पधारे और उपाध्याय सोमकलस की इच्छा वीरपुर की स्पर्शना करने की हुइ अतः सूरिजी विहार कर वीरपुर पधारे बस फिरतो कहना ही क्या था एक तो सूरीश्वरजी का पधारना दूसरा उपाध्यायजी इस नगर के राजकुंवार थे और लेख पढ़कर एवं विद्वता प्राप्त कर पुनः पधारे अतः जनता के दिल में बड़ा भारी उत्साह था वहां का राजा देवसेनादि श्रीसंघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश का अच्छा महोत्सव किया और श्रीसंघ की आग्रह विनर्वि से सूरिजी एवं उपाध्यायजी महाराज ने वह चतुर्मास वीरपुर में करने का निश्चय करलिया आपके चतुर्मास से वहां की जनता को बहुत लाभ हुआ आचार्यरत्नप्रभसूरिने उपाध्याय सोमकलस को सूरिमंत्र की आराधना करवा कर राजा देवसेन के वड़ाभारी महोत्सव के साथ उपाध्याय सोमकलस को सूरि पद से भूषीत कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रक्ख दिया इन के अलावा भी कई योग्य मुनियों को पदवियों प्रदान की।

उपकेशगच्छाचार्य्यों की यह तो एक पद्धति ही बनगई कि जब वे गच्छ नायकता का भार अपने सिर पर लेते थे तब कम से कम एक बार तो इन सब प्रदेशों में उनका विहार होता ही था। कारण इन प्रदेशों में महाजन संघ—उपकेशवंश के लोग खूब गहरी तादाद में बसते थे और उनके उपदेश के लिये इस गच्छ के अनेकों मुनि एवं साध्वियें विहार भी करते थे। फिर भी आचार्य्यश्री के पधार नेसे श्राद्धवर्ग में उत्साह बढ़ जाता था और मुनिवर्ग की सारसँभाल हो जाती थी। दीर्घकाल सूरिपद पर रहने वाले आचार्य तो इन प्रान्तों में कई बार भ्रमण किया करते थे। पट्टावलियों में तो आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी के भ्रमण का हाल बहुत बिस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से मैंने यहाँ संक्षिप्त से ही लिख दिया है कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाप्रभाविक जिनशासन के स्थम्भ एक प्रतिभाशाली आचार्य हुये हैं। आप अपने ६३ वर्ष के सुदीर्घ शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति कर अपनी धवल कीर्ति को अमर बना गये। और हम लोगों पर इतना उपकार कर गये हैं कि जिसको हम क्षण भर भी नहीं भूल सकते।

कोरंटगच्छ के आचार्य सर्वदेवसूरि जैनधर्म के प्रखर प्रचारक थे। एक समय विहार करते कोरंटपुर पधारे। वहां पर देवी चक्रेश्वरी ने एक समय रात्रि में सूरिजी से अर्ज की हे प्रभो! आपका आयुष्य अब बहुत कम है आप किसी योग्य शिष्य को सूरिपद देकर अपने पट्टपर आचार्य बना दीजिये। सूरिजी ने कहा देवीजी ठीक है मैं समय पाकर ऐसा ही करूंगा। आचार्य श्री ने विचार ही विचार में कई अर्सा निकाल दिया और अकस्मात एक ही दिन में आपका शरीर छुट गया कि वे अपने हाथों से आचार्य नहीं

कि स्त्रियों के कहने पर विश्वास नहीं किया जाता है अभी तो दुख के मारी तू पुत्र को मुझे देती है पर फिर बाद में कभी मांगा तो पुत्र तुमको नहीं दिया जायगा। सुनन्दा ने कहा मैं कभी पुत्र को नहीं मांगूंगी। इसके लिये मुनि समित एवं मेरी सखियां साक्षी देंगी।

बस ! धनगिरि छः मास का पुत्र को झोली में डाल कर गुरु महाराज के पास ले आया और गुरु ने झोली को हाथ में ली तो उसमें वजन बहुत था। गुरु ने कहा कि हे मुनि ! तू क्या आज वज्र लाया है। यही कारण था कि उस बालक का नाम वज्र रख दिया।

वज्र बालक होने के कारण शय्यात्तर एवं गृहस्थों को सौंप दिया कि वे पालन पोषण करें। तथा उनके संस्कारों के लिये साध्वियों के उपाश्रय रखने की भी आज्ञा दे दी थी सुनन्दा भी वहाँ आया करती थी। कभी कभी साध्वियों से पुत्र वापिस देने की प्रार्थना भी किया करती थी पर साध्वियां कह देती थीं कि वेहराया हुआ बालक वापिस नहीं दिया जाता है, इस पर भी तुमको पुत्र की जहरत हो तो गुरु महाराज के पास जाओ और वे जैसी आज्ञा दें वैसा करो इत्यादि। जब साध्वियां सूत्र की स्वाध्याय करती थीं तो बालक वज्र ने सुनने मात्र से एकादशांग का अध्ययन कर लिया। इस प्रकार वज्र ३ वर्ष का हो गया। अब तो सुनंदा को पुत्र प्रति पूरा मोह लग गया और बार २ पुत्र की याचना करने लगी पर मुनि धनगिरि ऐसा शासन का भावि प्रभाविक पुत्र को कब देने वाला था। आखिर सुनन्दा राज में गई राजा ने दोनों के बयान लिये और कहा कि अपनी-अपनी कोशिश करो। बच्चे का दिल होगा उसको दिया जायगा। एक तरफ तो साधुओं ने ओघा पात्रे रख दिये और दूसरी ओर सुनन्दा ने सांसारिक मोहक पदार्थ रख दिये और राज-सभा में वज्र को बुलाया। राजा ने कहा तुमको प्रिय हो वही लेलो वज्र ने मोहक पदार्थों को छोड़ ओघा पात्रा लेलिये। बस राजा ने वजू को मुनियों के सुपुर्द कर दिया। उस समय वजू की केवल ३ वर्ष की आयु थी।

जब गुरु महाराज ने वजू को दीक्षा देने का निश्चय किया तो सुनंदा ने सोचा कि मेरे पति ने दीक्षा ली मेरा पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगया तो अब मैं संसार में रह कर क्या करूंगी मुझे भी दीक्षा लेना ही हितकारी है अतः वज्र और वज्र की माता ने गुरु महाराज के पास दीक्षा लेली युगप्रधान पट्टावली में वज्र का गृहथावास ८ वर्ष का बतलाया है शायद् सुनन्दा अपने पुत्र के लिये फिर कहीं तकरार न करे इसलिये वज्र को तीन वर्ष की आयु में साधु वेष दे दिया हो और बाद ८ वर्ष का होने पर दीक्षा दी हो तो यह संभव भी हो सकता है। दूसरे आगम व्यवहारियों के लिये कल्प भी तो नहीं होता है वे ज्ञान के जरिये भविष्य का लाभालाभ देखे वैसा ही कर सकते हैं जब तक वज्र मुनि आठ वर्ष के नहीं हुये वहाँ तक साध्वियों के पास रहा। तत्पश्चात वज्र को दीक्षा देदी और मुनि वज्र गुरु महाराज के साथ विहार कर दिया।

एक समय गुरु महाराज के साथ मुनि वज्र विहार ‡ करता हुआ एक जंगल में पहाड़ के पास जा रहा था। उस समय एक जृम्भकदेव ने वज्र की परीक्षा के निमित्त वैक्रय से इतनी वर्षा की कि पृथ्वी जलमय हो गई। वज्र ने एक पर्वत की गुफा में जाकर ध्यान लगा दिया। तीन दिन तक पानी के जीवों की दया के

‡ प्रतिश्रिता च सावादीदुपार्यसमितो मुनिः। साक्षी सत्यत्र साक्षिण्यो भाषे नातः किमप्यहम् ॥ ६४ ॥
मश्मोपमं किमानीतं त्वयेदं मम हस्तयोः। भारक्रान्मुमुचे हस्तान्मयासौ निजकासने ॥ ६८ ॥
गुरुश्च वज्र इत्याख्यां तस्य कृत्वा समा (म) पंयन्। साध्वीपार्श्वोपाश्रविकायां व्यहार्षीदन्यतस्तत ॥ ७० ॥
ततो विशेषिताकारं तद्विपरिचर्यया। तत्रायाता सुनन्दापि तं निरीक्ष्य दधौ स्पृहाम् ॥ ७१ ॥ प्र० च०

१३—चंदेरी के बापनाग गोत्रिय शाह रांणा अपने पुत्र के साथ सूरिजी के पास दीक्षा ली।

| | सू० | दी० |
|---|---|---|
| १४—विलासपुर के सुचंति गोत्रिय शाह नागा ने | | |
| १५—जालौन० आदित्यनाग गोत्रिय शाह देवा ने | " | " |
| १६—रत्नपुर० श्रेष्ठिगौत्रिय शादूल ने | " | " |
| १७—खोखर—प्राग्वट वंशीय देपाल ने | " | " |
| १८—नलिया—श्रीमाल रेणाने | " | " |
| १९—करणावती—श्रीमाल साहण सेवा ने | " | " |
| २०—सीपार—श्रेष्टिगौत्रिय चाहड मन्त्री ने | " | " |
| २१—सालीपुर—प्राग्वट० पेथा ने अपनी स्त्री और दो लड़कियों के साथ | " | " |
| २२—लोहरा—ब्राह्मण सदाशिव ने | " | " |
| २३—धामाणी—डिड्डूगौत्रिय नागादि ९ मनुष्यों ने | " | " |
| २४—रामपुर—भूरगौत्रिय हरदेव ने | " | " |
| २५—चोलीग्राम—बलाहगौत्रिय नागदेव ने | " | " |
| २६—जासोलिया—कुलभन्द्र गौत्रिय हेमा नेमा ने | " | " |
| २७—वैणीपुर—विरहट गौत्रिय काना ने | " | " |

यह तो केवल उपकेश वंश वालों के ही नाम लिखा है इनके अलावा महाराष्ट्रीय सिन्ध पंजाब वगैरह देशों के सैकड़ों नर-नारियों की सूरिजी एवं आपके शिष्यों के कर कमलों से दीक्षा हुई थी पर वंशावलियों में उनके नाम दर्ज नहीं हैं खैर इस प्रकार दीक्षा लेने से ही इस गच्छ में हजारों की संख्या में मुनि भूमण्डल पर विहार कर जनकल्याण के साथ शासन की प्रभावना करते थे।

## आचार्य श्री के शासन समय तीर्थों के संघ

१—चन्द्रावती के प्राग्वटवंशीय वीरम ने तीर्थराज श्री शत्रुंजयादि का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया सोना मोहरों की लेन एवं पेहरामणि दी।

२—मेदनीपुर के सुघड़ गोत्रिय शाह लुणा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया संघ को पहरामणी दी और सात यज्ञ (जीमणवार) किये।

३—उपकेशपुर के श्रेष्टि गोत्रिय मन्त्री दहेल ने श्री सम्मेतशिखरादि पूर्व के तीर्थों का संघ निकाला जिसमें नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मी भाइयों को पांच सेर का लड्डू के अन्दर पांच पांच सोना मोहरों की पहरामणी दी और सात यज्ञ (स्वाधार्मिक वात्सल्य) किये।

४—डाबरेल नगर के मन्त्री हनुमन्त ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया

५—पद्मावती के मन्त्री रांणा ने शत्रुंजय का संघ निकाल पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

६—आलोट के प्राग्वट नोढा नोधण ने शत्रुंजय का संघ निकाल पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—स्थम्भनपुर के प्राग्वट हरपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—मथुरा के आदित्यनाग गोत्रीय कल्हण ने सम्मेत शिखर का संघ निकाला।

आचार्य भद्रगुप्त को रात्रि में एक स्वप्न आया। † वह सुबह अपने शिष्य को सुना रहे थे कि मेरा दूध से भरा हुआ पात्र कोई मुनि आकर सब पी गया। इतने में ही वज्रमुनि आकर सूरिजी को वन्दन कर सामने खड़ा हुआ। सूरिजी ने सोचा कि यही मुनि मेरा दूध पीने वाला है, बस! फिर तो देर ही क्या थी भद्रगुप्त सूरि ने वज्र को सब ज्ञान पढ़ा कर अपने गुरु के पास भेज दिया। पूर्व भव के मित्र देवता ने बड़ा भारी महोत्सव किया और गुरुराज ने मुनिवज्र को संघ समक्ष आचार्य पद पर स्थापन कर दिया।

आचार्य वज्रसूरि विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर के उद्यान में पधारे। ×पहिले दिन आपने विद्या से अपना कुरूप बनाकर देशना दी तब दूसरे दिन असली रूप से उपदेश दिया। अतः आपकी महिमा नगर भर में फैल गई। उस नगर में एक धना नामक श्रेष्ठि सप्तकोटि धन का मालिक रहता था उसके एक रुक्मणि नामक पुत्री थी। रूक्मणिने साध्वियों से वज्रसूरि की महिमा सुनकर प्रतिज्ञा करली कि मैं वर करूंगी तो वज्रसूरि को ही करूंगी वरना अग्नि की ही शरण लूंगी। सेठ असली रूप यौवन और लावण्यादि गुण वाली पुत्री रुक्मणि को लेकर वज्रसूरि के पास आया और कहा कि हे मुनि ! मेरी पुत्री ने प्रतिज्ञा करली है। अतः मेरा सब धन लेकर मेरी पुत्री के साथ आप विवाह करो इत्यादि।

---

† गत्वा दशपुरं वज्रमवन्त्यां मैपुरादतः अध्येतुं श्रुतशेषं श्रीमद्गुप्तस्य सन्निधौ ॥ १२७ ॥
स ययौ तत्र रात्रौ च पूर्वाह्निर्समानतोत्। गुरुश्च स्वप्नमाचख्यौ निजशिष्यानतो मुदा ॥ १२८ ॥
पात्रं मे पयसा पूर्णमतिथिः कोऽपि पीतवान्। दशपूर्व्याः समग्रायाः कोऽप्यध्येता समेष्यति ॥ १२९ ॥
इत्येवं वदतस्तस्य वज्र आगात्पुरस्ततः। गुरुश्चाध्यापयामास श्रुतं स्वाधीतमाश्रुतम् ॥ १३० ॥

× गुरौ ययाद्दिवं प्राप्ते वज्रस्वामिप्रभुर्ययौ। पुरं पाटलिपुत्राख्य मुद्याने समवासरत् ॥ ३४ ॥
अन्यदा स कुरूप सन् धर्मं व्याख्यानयद्विभुः। गुणानुरूपं नो रूपमिति तत्र जनोऽवदत् ॥१३५॥
अन्येद्युश्चारुरूपेण धर्मख्याने कृते सति। पुरक्षोभभयात्सूरिः कुरूपोऽभूज्जनोऽब्रवीत् ॥ १३६ ॥
प्रागेव तद्गुणग्रामगानात्साध्वीभ्य आदृता। धनस्य श्रेष्ठिनः कन्या रुक्मिण्यत्रान्वरज्यता ॥ १३७ ॥
वभाषे जनकं स्वीयं सत्य मद्भवितं शृणु। श्रीमद्वज्राय मां यच्छ शरणं मेऽन्यथानल ॥ १३८ ॥
तदाग्रहात्ततः कोटिशतसंख्यधनैर्युताम्। सुतामादाय निर्ग्रन्थनाथाभ्यर्णे ययौ च सः ॥ १३९ ॥
व्यजिज्ञपत्र नार्थस्त्वां नाथते मे सुता ह्यसौ, रूपयौवन सम्पन्ना तदेषा प्रति गृह्यताम् ॥ १४० ॥
यथेच्छ दानभोगाभ्यामधिकं जीविता विधि, द्रविणगृह्यतामेतत्पादौ प्रक्षाळयामिते ॥ १४१ ॥
महापरिज्ञाध्ययनादाचाराङ्गान्तरस्थितात्। श्रीवज्रेणोद्धृताविद्या तदा गगनगामिनी ॥ १४४ ॥
अवृष्टेरन्यदा तत्राभूद्दुर्भिक्षमतिशयम्। सचराचरजीवानां कुर्वंदुर्दृतिलेऽधिकम् ॥ १४१ ॥
सीदन् संघः प्रभो पार्श्वमाययौ रक्ष रक्ष नः। वदन्निति ततो वज्रप्रभुस्तद्विदधे हृदि ॥ १५० ॥
पटं विस्तार्य तत्रोपवेश्य सर्वं तदा मुदा। विद्ययाकाशगामिन्याचन्द्रगोप्ता सुपर्णवत् ॥ १५१ ॥
तत्रशय्यातरोदू (दू) रं गतस्तृणगवेषणे। अन्वागतो वदन्नीन सोऽपि न्यस्तारिसूरिणा ॥ १५२ ॥
आययौ सुस्थदेशस्थामचिरेण महापुरीम्। बौद्धशासनपक्षैर्नृपलोकैरधिष्ठिताम् ॥ १५३ ॥
सुखं तिष्ठति सवे च सुभिक्षाद्राजपौरस्थित। सर्वपर्वोत्तमं पर्वाययौ पर्युषणाभिधम् ॥ १५४ ॥
राजा च प्रत्यनीकत्वात्कुसुमानि न्यषेधयत्। संघो व्यजिज्ञपद्वज्रं निनार्चाचिन्तयार्दितः ॥ १५५ ॥
उत्पत्य तत आकाशे काश्मकाशकीर्तिभूत्। माहेश्वर्या उपयां गात्वगर्याः कोविदार्यमा ॥ १५६ ॥
आरामस्थ पितुर्मित्रमारामिकगुणाग्रणीः। वज्रं च कुलसिंहाख्यो वीक्ष्य नत्वा च सजगौ ॥ १५७ ॥ प्र० च०

# भगवान् महावीर की परम्परा

आर्य वज्रस्वामि—आचार्यश्री वज्रस्वामि जैनसंसार में खूब प्रतिष्ठित हैं आप अनेक लब्धियें विद्याओं और अतिशय चमत्कारों से जैन धर्म की बड़ी भारी उन्नति की थी आपके नाम की स्मृति रूप वज्री शाखा चली थी जिसके प्रतिशाखा रूप अनेक गच्छ हुए थे आपश्री का अनुकरणीय जीवन संक्षिप्त से यहाँ लिखा जाता है। उस समय मालवा नामक देश बड़ा ही उन्नत समृद्धिशाली और धन-धान्य पूर्ण था उसमें एक तुंबवन नामक ग्राम था वहां वैश्यकुल में सिंहगिरि नाम का बड़ा ही धनाढ्य श्रेष्ठि वसता था। उसके धनगिरि नाम का पुत्र था और उसी नगर में धनपाल नाम का सेठ था जिसके सुनंदा नाम की पुत्री थी जिसकी शादी धनगिरि के साथ कर दी थी। बाद धनगिरि का पिता सिंहगिरि ने आचार्यश्री दिन्न के पास दीक्षा ग्रहण करली थी। जब धनगिरि के सुनन्दा स्त्री गर्भवती थी उस समय धनगिरि ने भी वैराग्य की धुन में संसार को असार जानकर आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षा लेली बाद सुनन्दा के पुत्र हुआ पर उसको बाल्यावस्था में ऐसा ज्ञान ( जातिस्मरण ) उत्पन्न हुआ कि उसकी भावना दीक्षा लेने की होगई किन्तु उस बाल्यावस्था में दीक्षा किस तरह लीजाय उसने अपनी दीक्षा का एक ऐसा उपाय सोचा × कि रात्रि दिन रुदन करना आरंभ कर दिया जिससे उसकी माता सुनन्दा घबरा गई और बार-बार कहने लगी कि इस पुत्र के पिता ने दीक्षा लेली और यह पुत्र की आफत मेरे शिर पर छोड़ गये सुनन्दा अपनी सखियों को कहा करती थी कि यदि इस लड़का का पिता कभी यहाँ आ जाय तो मैं इस पुत्र को उनको सोंप कर सुखी बन जाऊँ इत्यादि। भाग्यवसात् आर्यधनगिरि अपने गुरु के साथ विहार करते हुए उसी तुंबवन ग्राम में आ गये। गुरु महाराज ने निमित्त ज्ञान से जानकर धनगिरि को कहा कि हे मुनि! आज तुमको जो सचित अचित एवं मिश्र कुच्छ भी पदार्थ मिले वह ले आना। मुनि † समित के साथ धनगिरि भिक्षार्थ ग्राम में गया। फिरता फिरता सुनन्दा के घर पर आ निकला। सुनंदा पहिले से ही पुत्र के रुदन से कँटाल गई थी! मुनि धनगिरि को आया देख उसकी सखियों ने कहा कि हे सखी! इस बालक का पिता मुनि आगया है। इस बालक को देकर तू सुखी बन जा जो तुँ पहला कहा करती थी। यह तेरे लिये सुअवसर है। बस सुनन्दा ने मुनि धनगिरि से कहा कि आप अपने पुत्र को ले जाइये मैं तो इसके रुदन से घबरा गई हूँ। मुनि ने कहा

---

× ममापि भवनिस्तारः संभवी संयमाद् दि। अत्रोपायं व्यमृक्षच्च रोदनं शैशवोचितम् ॥ ५१ ॥

× × ×

तत्र गोचरचर्यायां विशन्धनगिरिमुनिः। गुरुणा दिदिशे पक्षिशब्दज्ञाननिमित्ततः ॥ ५६ ॥

† अद्य यद्द्रव्यमाप्नोषि सचित्ताचित्तमिश्रकम्। ग्राह्यमेव त्वया सर्वं तद्विचारं विना मुने ॥ ५७ ॥

तथेति प्रतिपेदानस्तदार्यसमितान्वितः। सुनन्दासदनं पूर्वमेवागच्छदतुच्छधीः ॥ ५८ ॥

तद्धर्मलाभ श्रवणादुपायातः सखी जनः। सुनन्दां प्राह देहि त्वं पुत्रं धनगिरेरिति ॥ ५९ ॥

सापि निर्वेदिता वाढं पुत्रं संगृह्य वक्षसा। नत्वा जगाद पुत्रेण रुदता खेदितास्मिते ॥ ६० ॥

गृहाणैनं ततः स्वस्य पार्श्वे स्थापय चेत्सुखी। भवत्यसौ प्रमोदो मे भवत्वेतावतापि यत् ॥ ६१ ॥

स्फुटं धनगिरिः प्राह ग्रहीष्ये नन्दनं निजम्। परं स्त्रियो वचः पंगुवन्न याति पदात्पदम् ॥ ६२ ॥

क्रियन्तां साक्षिणस्तत्र विवादहतिहेतवे। अद्यप्रभृति पुत्रार्थे न जल्प्यं किमपि त्वया ॥ ६३ ॥

होने से प्रतिलेखन के समय सोंठ कान से नीचे गिरी। जब जाकर मालूम हुआ कि अब मेरा आयुष्य नजदीक ही है। अतः मुनि वज्रसेन को सूरिपद देकर आप कई मुनियों के साथ एक पर्वत पर जाकर अनशन कर समाधि के साथ स्वर्गवास किया। जब इन्द्र ने इस बात को जाना तो वह विमान लेकर आया। उस पर्वत को विमान सहित प्रदक्षिणा दी जिससे उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन' हो गया। इति वज्र स्वामि का संक्षिप्त जीवन

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन की दो महत्वपूर्ण बातें—१-जिस पर्वत पर आर्य्य वज्र का देह त्याग हुआ वहां इन्द्र आकर रथ सहित प्रदक्षिणा देने के कारण उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन हुआ परन्तु आचार्य भद्रबाहु कृत आचारांगसूत्र की नियुक्ति में 'रथावर्तन' का उल्लेख मिलता है इससे पाया जाता है कि इस पर्वत का नाम 'रथावर्तन' पहिले ही से था या नियुक्ति वाला रथावर्तन अलग हो और वज्रस्वामी के देह त्याग वाला रथावर्तन अलग हो। २-दूसरे वज्रसूरि के पूर्व नवकारमंत्र एक स्वतंत्र सूत्र था और इस सूत्र पर निर्युक्ति वगैरह भी स्वतंत्र रची गई थीं परन्तु वज्रसूरि ने उस स्वतंत्र नवकार मंत्र को सूत्रों के आदि में मंगलाचरण के रूप में संकलित कर दिया था।

आर्य्य वज्रसूरि का आयुष्य ८ वर्ष गृहस्थवास, ४४ वर्ष सामन दीक्षा पर्याय, और ३६ वर्ष युगप्रधान पद एवं कुल ८८ वर्ष का आयुष्य अर्थात् वी० नि० सं० ४९६ (वि० सं० २६) जन्म, वी० नि० ५०४ (वि० सं० ३४) दीक्षा, वी० नि० ५४८ (वि० सं० ७८) युगप्रधान और वी० नि० ५८४ (वि० सं० ११४) में स्वर्गवास हुआ था।

आर्य समितसूरि—और ब्रह्मद्वीपिका शाखा—आभीर देश में एक अचलपुर नामका नगर था। उसके नजदीक कन्ना और वेन्ना नदियों के बीच में ब्रह्मद्वीप नाम का द्वीप था उस द्वीप में ५०० तापस तपस्या करते थे जिसमें एक तापस ऐसा भी था कि पैरों पर औषधी का लेप कर जल पर चल कर नगर में पारणा ( भोजन ) करने को आया जाया करता था। जिसको देख लोग कहते थे कि तपसी की तपस्या का कैसा चमत्कार है कि जल पर चल सकता है। साथ में यह भी कहते थे कि क्या जैनमत में भी ऐसा चमत्कारी महात्मा है ? इस प्रकार अपमानित शब्द सुन कर जैन श्रावकों ने आर्य्यवज्रसूरि के मामा आर्य्य समितसूरि को सामह आमंत्रण किया। जैनधर्म की उन्नति के लिये सूरिजी शीघ्र पधार गये श्रीसंघ ने सुन्दर

किम्प्यादिश मे नाथ कार्यं सूरिरतोऽवदत। सुमनः सुमनोभिर्ये कार्यमार्यं कुरुष्व तत् ॥१५८॥
पूर्ण्येय वृत्तिवेलायां प्राप्ताशीति निशम्य सः। ययौ देव्याः श्रियः पार्श्वे तं क्षुद्रहिमवद्गिरिम् ॥१५९॥
धर्मलाभादिगानन्द्य तां देवी कार्यमादिशत्। ददौ सहस्रपत्र सा देवार्चार्थं कल्पितम् ॥१६०॥
तदादाय प्रभुर्वज्रं पितृमित्रस्य सन्निधौ। आययौ विंशतिलक्षां पुष्पाणां तेन ढौकिता ॥१६१॥
विमानं क्रिये तांश्चावस्थाप्यागाच्छ्रिते पुरे। जृम्भकैः कृतसंगीतेस्तवे गगनमण्डले ॥१६२॥
ध्वनत्सु देवतूर्येषु शब्दाद्वैत विजृम्भिते। तं तदूर्ध्वं समायान्तं दृष्ट्वा बौद्धाश्चमत्कृता ॥१६३॥
ऊचुर्धर्मस्य माहात्म्यमहो न ज्ञायते सुराः। आयान्ति पश्यता तेषां ते ययुर्जिनमन्दिरे ॥१६४॥
आर्हतं प्रमुदित पूजां कृत्वा जिनेशितुः। तत्र धर्मदिने धर्मप्रभौ रीद्रजृम्भद्गुरोः ॥१६५॥
प्रातिहार्येण चानेन राजा तुष्टोऽभ्युपागमत्। प्रययोधि च वज्रेण बौद्धाश्चासमधो मुखाः ॥१६६॥
इत्यसरदि सत्यामप्यत्रद्वीस्थान्मृतिर्ध्रुवम। ततोऽत्र पायसे पक्वे निशेष्यं विगम विगम् ॥१६७॥
तदत्रावसरे पुण्यदर्शनं पुण्यतोऽभवत्। कृतार्थः सोऽन्नं पारत्रिकं कार्यमिहारभे ॥१६८॥ प्र० च०

जिये मुनि वज्र एक गुफा में ठहर गया । देवता ने वर्षा बन्द कर वणिक का रूप धारण कर वज्र को गोचरी के लिए आमंत्रण किया । बालमुनि गुरु आज्ञा लेकर गोचरी गया पर उपयोग से जान लिया कि यह देव पिण्ड है इसलिये भिक्षा नहीं ली । अतः देवता ने प्रसन्न हो वज्र के चरणों में वन्दना कर प्रशंसा की ।

दूसरी बार देवता ने गेवर बना कर वज्र की परीक्षा की पर वज्र ने अपने उपयोग से गेवर भी नहीं लिए । अतः देवता ने प्रसन्न हो कर वज्र को आकाशगामनी विद्या प्रदान की ।

एक समय सब साधु गौचरी गये थे । वज्र अकेलाही था उसने सब साधुओंकी उपाधी क्रमशः रखकर आप आगम की वाचना देनी शुरू की । इतने में आर्य सिंहगिरि बाहर जाकर आ रहे थे उन्होंने आगम के पाठ सुन कर विचार किया कि भिक्षा के समय मुनियों को आगमों की वाचना कौन दे रहा है ? जब उन्होंने उपयोग से मुनि वज्र को जाना तो बड़ा ही हर्ष हुआ । वे निशीही पूर्वक मकान में आये तो वज्र ने साधुओं की उपधि यथा स्थान रख दी । बाद दूसरे दिन आर्य सिंहगिरि विहार करने लगे तो मुनियों ने कहा कि हमको वाचना कौन देगा ? इस पर आचार्यश्री ने कहा कि तुमको वाचना वज्र मुनि देगा । मुनियों ने स्वीकार कर लिया । अतः वज्र मुनि सब मुनियों को इस कदर की वाचना देने लगे कि साधारण बुद्धि वाले भी सुख पूर्वक समझने लग गये । अतः साधुओं को वाचना के लिए अच्छा संतोष हो रहा था ।

कई दिन बाद गुरु महाराज वापिस आये और मुनियों को वाचना के लिये पूछा तो उन्होंने कहा कि हमको अच्छी वाचना मिलती है और सदैव के लिये हमारे वाचनाचार्य मुनि वज्र ही हों । आचार्यश्री ने कहा कि मैं इस लिये ही बाहर गया था । बाद प्रसन्नता पूर्वक आचार्यश्री दशपुर नगर आये और मुनि वज्र को आवन्ती नगरी की ओर भद्रगुप्त सूरि के पास शेष ज्ञान पढ़ने के लिये भेजा दिया । वज्र मुनि क्रमशः आवंति पहुँच गया पर समय हो जाने पर उस रात्रि में नगर के बाहर ही ठहर गये ।

---

तत्राप्यमानयन्ती सा गता राज्ञः पुरस्तदा । यतयश्च समाहूताः संघेन सह भूभृता ॥८१॥
ततो माता प्रथमतोऽनुज्ञाता तत्र भूभृता । क्रीडनैर्भक्ष्यभोज्यैश्च मधुरैः सा न्यमंत्रयत् ॥८५॥
सुते तथारिस्थिते राज्ञानुज्ञातो जनको मुनिः । रजोहरणमुद्यस्य जगादानपवादगीः ॥८६॥
ततो जयजयारावो मङ्गलध्वनिपूर्वकम् । समस्ततूर्यनादोर्जि सद्यः समभनि स्फुटः ॥
एषणाग्रितेयचेय्ययुक्तो भुक्तावनादृतः तत्रवजोययोप्राप्य गुरोरनुमतिं ततः ॥१०३॥
द्रव्य क्षेत्र काल भावैरूपयोगं ददौचसः । द्रव्य कुष्माण्ड पाकादि क्षेत्र देशश्चामालवा ॥१०४॥
कालोग्रीष्मस्तथाभावे विचार्ये निमिषा अमी, अस्पृष्ट भूक्रमान्यासा अम्लान कुसमस्रज ॥१०५॥
चरित्रिणां ततो देवपिण्डो न कल्प्यते नहि । निषिद्धा उपयोगेन तस्य हर्षं परं ययुः ॥१०६॥

× × ×

† अन्यत्र विहरंतश्चान्यदा ग्रीष्मतुं मध्यतः । प्राग्वदेव सुरास्तेऽमुं घृतपूरैर्न्यमन्त्रयन् ॥१०८॥
वज्रे तत्रापि निर्व्यूढे विद्यां ते व्योमगामिनीम् । ददुर्न दुर्लभं किंचित्सद्भाग्यानां हि तादृशाम् ॥१०९॥
बाह्यभूमौ प्रयतिषु पूज्येष्वथ परेद्यवि । सदेषणोपमुक्तेषु गीतार्थेषु च गोचरम् ॥११०॥
अवकाशं च बाल्यस्य दद्चापलतस्तदा । सर्वेषामुपधीर्नामग्राहं भूमौ निवेश्य च ॥१११॥
वाचनां प्रददौ वज्रः श्रुतस्कन्धव्रजस्य सः । प्रत्येकं गुरुक्रमेण कथितस्यमहोद्यमात् ॥११२॥
श्रीमान्सिंहगिरिश्चात्रान्तरे वसतिसन्निधौ । आययौ गर्जितौर्जित्यं शब्दं तस्याश्रणोच्च सः ॥११३॥
दध्यौ किं यतयः प्रासाः स्वाध्यायैः पालयन्ति माम् । निश्चित्यैकस्य शब्दं ते तोषतो बभुः ॥११४॥ प्र० च०

को पढ़ने के लिए काशी भेजा वहां पढ़ कर अधिक ज्ञान की प्राप्ती के लिये पाटलीपुत्र भी गया। वेद वेदांग सब शास्त्रों का पारगामी होकर वापिस दशपुर आया। जब नगर के राजादि सब लोगों ने बड़े ही स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया। जब आर्यरक्षित अपनी माता के पास आया तो उस समय माता रुद्रसोमा सामायिक कर रही थी। अतः आर्यरक्षित के नमस्कार करने पर भी उसने कुछ भी सत्कार नहीं किया बाद आर्यरक्षित ने पूछा कि माता मेरी पढ़ाई से राजा प्रजा सब लोग खुश हुए एक तुमको ही उदासीनता क्यों ? इस पर माता ने कहा बेटा ! जिस पढ़ाई से संसार की वृद्धि हो उससे खुशी कैसे हो ? यदि तू सम्यक् ज्ञान पढ़ के आता तो मुझे जरूर खुशी होती विनयवान पुत्र ने पूछा कि माता वतला कौनसा ग्रंथ किसके पास पढ़ा जाय और वे पढ़ाने वाले कहाँ पर हैं ? मैं पढ़ कर आपको संतोष करवा दूं। माता ने कहा बेटा ! वह है दृष्टिवाद ग्रंथ, और पढ़ाने वाले हैं तोसलीपुत्र नामक आचार्य और वे इस समय इक्षुवाड़ी में विद्यमान हैं। तू जाकर दृष्टिवाद पढ़ कि तेरा कल्याण हो।

रात्रि व्यतीत करने के बाद ज्ञान की उत्कंठा वाला आर्यरक्षित घर से चल कर पढ़ने को जा रहा था। रास्ते में एक इक्षुरस वाला सांठा लेकर आया और आर्यरक्षित को कहा कि हे मित्र ! मैं तेरे लिये सांठा लाया हूँ। अतः तुम वापिस घरपर चलो। आर्यरक्षित ने कहा मैं ज्ञानाभ्यास के लिये जा रहा हूँ फिर उसने सोचा कि ९॥ सांठा का अर्थ यही हो सकता है कि मैं जिस दृष्टिवाद का अध्यन करने को जा रहा हूँ उसके ९॥ अध्याय प्राप्त करूंगा। आर्यरक्षित चलता २ वहां आया कि जहां तोसलीपुत्र आचार्य विराजते थे पर लज्जा के कारण वह उपाश्रय के बाहर बैठ गया। इतने में एक ढढुर नामक श्रावक आया उसके साथ उपाश्रय में आकर आचार्य को वंदन किया और दृष्टिवाद पढ़ाने की याचना की पर दृष्टिवाद का अध्ययन तो साधु ही कर सकते हैं अतः आर्यरक्षित ज्ञान पढ़ने के लिये जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार हो गया परन्तु आर्यरक्षित ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो ! हमारा कुल ब्राह्मण है। अत मुझे दीक्षा* देकर यहाँ ठहरना अच्छा नहीं है। अतः आप शीघ्र विहार कर अन्य स्थान पधार जावें। गुरु ने इसको ठीक समझ आर्यरक्षित को जैन दीक्षा दे दी और वहां से अन्यत्र चले गये और आर्यरक्षित को पढ़ाना शुरू किया। अंगोपांग सूत्र और कई पूर्व पढ़ा दिये जितना कि वे जानते थे शेष के लिये कहा कि तुम आर्य्य वज्रसूरि के पास जाओ जो उज्जैन नगरी में विराजते हैं। अतः आर्यरक्षित अन्य साधुओं के साथ विहार कर वज्रसूरि के पास जा रहे थे। रास्ते में एक भद्रगुप्ताचार्य का उपाश्रय आया। वहाँ आर्य्यरक्षित गये। आर्य्यरक्षित को देख भद्रगुप्त बहुत खुश हुआ और कहा कि आर्य ! मेरा अन्तिम समय है तुम मुझे मदद एवं साज दो। आर्य्यरक्षित ने मंजूर कर लिया और उनकी व्यावच्च में लग गये। एक समय आर्य्य भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित से कहा कि तू वज्रसूरि के पास पूर्व ज्ञान पढ़ने को जाता है यह तो अच्छा है पर तू अलग उपाश्रय में ठहर कर आहार पानी एवं शयन भी अलग ही करना। इसको रक्षित ने स्वीकार कर लिया बाद भद्रगुप्त का स्वर्गवास हो गया और आर्य्यरक्षित चल कर वज्रस्वामी के पास आ रहा था। वज्रसूरि को रात्रि में स्वप्न आया कि मेरे दूध का पात्र भरा हुआ था उसमें से बहुत सा दूध एक अतिथि पी गया।

*जैन संसार में बिना माता पिता की आज्ञा के दीक्षा देना आर्यरक्षित का पहिला ही उदाहरण है और इस दीक्षा के पद शिष्य निष्फेटा (चोरी) कहा गया है इससे स्पष्ट पाया जाता है कि बिना कुटुम्बियों की आज्ञा जैन साधु किसी को दीक्षा दे नहीं देते हैं। आचारांगसूत्र में सचित अचित मिश्र कोई भी पदार्थ बिना आज्ञा के लेने से तीसरे महाव्रत का भंग है।

वज्रसूरि ने इस प्रकार उपदेश दिया कि रुखमणि ने दीक्षा ग्रहण करली। उस समय वज्रस्वामी ने आचारांग सूत्र के महाप्रज्ञाध्यन१ से आकाशगामनी विद्या का उद्धार किया। तथा पहले भी देवता ने दी थी।

एक समय अनावृष्टि के कारण दुनिया का संहार करने वाला द्वादशवर्षीय दुकाल पड़ा। श्री संघ मिल-कर वज्रस्वामि के पास आया और कहा पूज्यवर! इस सङ्कट से जैनसंघ का उद्धार करो। सूरिजी ने एक कपड़े का पट मंगाओ और तुम सब उस पर बैठ जाओ। बस सब बैठ गये। इतने में शय्यातर घास के लिये गया था वह आया उसने प्रार्थना की तो उसको भी बैठा दिया और विद्या वल से सबको आकाश मार्ग से लेकर महापुरी नगरी में जहां सुकाल वरत रहा था वहां ले आये पर वहां का राजा बोध धर्मोपासक होने से जैन मन्दिरों के लिये पुष्प नहीं लाने देता था। श्री संघ ने आकर अर्ज की कि हे प्रभो! पर्युषण नजदीक आ रहा है और बोध राजा हमको पूजा के लिये पुष्प नहीं लाने देता है। अतः हमारी भक्ति में भंग होता है। अतः आप जैसे समर्थ होते हुये भी हमारा कार्य्य क्यों नहीं होता है। इस पर वज्रसूरि श्रीसंघ को संतोष करवा कर आप आकाशगामनी विद्या से गमन कर महेश्वरी नगरी के उद्यान में आये वहां एक माली मिला जो कि सूरिजी के पिता का मंत्री था। उसने सूरिजी को वन्दन कर कहा कि कोई कार्य्य हो तो फरमावें। सूरिजी ने पुष्पों के लिये कहा। माली ने कहा ठीक है आप वापिस जाते हुये पुष्प ले जाना। वहां से वज्रसूरि चूलहेववन्त पर्वत पर गये। और लक्ष्मीदेवी को धर्मलाभ दिया। देवी ने सहस्त्र कली वाला कमल दिया वहां से लौटते समय माली के पास आये। उसने वीस लक्ष पुष्प दिये। वज्रसूरि वैक्रय लब्धि से विमान बना कर पुष्प लेकर आ रहे थे तो देवताओं ने आकाश में वाजे बजाये। बोधों ने सोचा कि देवता हमारे मन्दिरों में महोत्सव करने को आये हैं पर वे तो सीधे ही जिनमन्दिरों में गये और भक्ति करने को लग गये। तथा वज्रसूरि बीस लक्ष पुष्प लेकर आये इस चमत्कार का प्रभाव बोध राजा प्रजा पर बड़ा भारी हुआ। अतः राजा प्रजा बोध धर्म को छोड़कर जैनधर्म स्वीकार लिया एवं सूरिजी के परमभक्त बन गये।

आर्य वज्रसूरि के समय मूर्तिवाद अपनी चरमसीमातक पहुँच गया था कि वज्रसूरि जैसे दश पूर्व धर जिन पूजा के लिये वीसलक्ष पुष्प लाकर श्रावकों को दिया था जो साधु सचित पुष्पों का स्पर्श तक नहीं कर सकता हैं शायद वह कहा जाय की वज्रसूरि दशपूर्वधर होने से वे कल्पातितथे और जैनधर्म का अपमान दूर करने की गरज से तथा भविष्य का लाभ जानाहो तथा बोधराजा और प्रजा इसी कारण से जैनधर्म स्वीकार करेंगे अतः उन्होंने स्वयं पुष्प लाना अच्छा एवं लाभ का कारण समझा होगा परन्तु इससे इतना अनुमान तो सहज में ही हो सकता है कि उस समय मूर्ति पूजा पर जनता की श्रद्धा एवं रुचि अधिक झुकी हुई थी इसी समय आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधुओं को मूर्तियों को सिर पर उठा कर अन्यत्र ले जाने की आज्ञा दी थी कि म्लेच्छ लोग मूर्तियों को तोड़ फोड़कर नष्ट नहीं कर सके।

पूर्व जमाने में नवकार मंत्र एक स्वतंत्र ग्रन्थ था और आचार्यों ने इस नवकार मंत्र पर स्वतंत्र निर्युक्ति आदि विवरण किया था पर वज्रसूरि ने उस नवकार मंत्र को सूत्रों की आदि में मंगलाचरण के रूप में कर दिया और वह आज भी कई सूत्रों के मंगलाचरण के रूप में विद्यमान है।

आचार्य वज्रसूरि महा प्रभाविक आचार्य होगये हैं। आपके जीवन में एक नहीं पर अनेक घटनायें ऐसी घटी कि जिससे जैनधर्म की बहुत उन्नति हुई। एक समय आप विहार करते दक्षिण की ओर जा रहे थे। उस वक्त श्लेष्म हो जाने से सोंठ लाये थे जितनी जरूरत थी खाई शेष कान पर रखदी परन्तु विस्मृति

नग्न नहीं रहा जायगा जो कई जैनश्रमण रहते हैं और दूसरे उपानह (पादुका) कमंडल, छत्र और जनेऊ इन उपकरणों के साथ तुम्हारी दीक्षा ले सकता हूँ। आर्य रक्षितसूरि ने भविष्य का लाभालाभ जानकर उनका कहना स्वीकार कर लिया। और सोमदेव रुद्रसोमा आदि सब कुटुम्ब को दीक्षा देदी।

मुनि सोमदेव ज्यों ज्यों जैनधर्म का ज्ञान एवं क्रिया का अभ्यास करता गया तथा जैसे जैसे कारण उपस्थित होते गये वैसे वैसे पूर्व पदार्थों का त्याग करता गया और शुद्ध संयम की आराधना करता रहा तत्पश्चात् दीक्षा लेते समय पूर्व संस्कारों से जो शर्तें कि थी वे सब छूट गई और जैन मुनियों का आचरण अनुसार वर्तने लगा।

आर्य्य रक्षितसूरि के शासन में अनेक मुनि तपस्वी एवं अभिग्रहधारी तथा लब्धि सम्पन्न थे जैसे १-घृतपुष्पमित्र २-वस्त्रपुष्पमित्र ३-दुर्वलिकापुष्पमित्र नामके साधु थे और अपनी २ लब्धिपूर्वक कार्य्य करते थे। दुर्वलिकापुष्पमित्र कई बोधलोगों को प्रतिबोध कर सन्मार्ग पर लाये थे।

इनके अलावा आपके गच्छ में चार प्राज्ञावान्मुनिवर भी थे १-दुर्वलपुष्पमित्र २-विंधामुनि ३-फाल्गुनरक्षित और झुमाचार्य के धर्मशास्त्र को जीतने वाला ४-गोष्टामाहिल नाम के मुनि विख्यात थे जिसमें विंधामुनि के आग्रह से आर्य्य रक्षित सूरिने आगमों के चार अनुयोग अलग अलग कर दिये जो पहिले एक ही सूत्र में चारों अनुयोग की व्याख्या की जाती थी।

एक समय आर्य रक्षितसूरि विहार करते हुये मथुरानगरी में पधारे और अधिष्ठायक व्यान्तर के मन्दिर में ठहरे थे। उस समय इन्द्र श्रीसीमंधर तीर्थङ्कर + को वन्दन करने को महाविदेह क्षेत्र में गया था और वहाँ प्रभु के मुख से निगोद का स्वरूप सुन कर पूछा कि प्रभो क्या भरतक्षेत्र में भी इस प्रकार निगोद की व्याख्या करनेवाले कोई आचार्य हैं ? प्रभो ने कहा हाँ भरतक्षेत्र में आर्यरक्षितसूरि नामक पूर्वधर आचार्य हैं। वह निगोद की व्याख्या अच्छी करते हैं। इन्द्रवृद्ध ‡ ब्राह्मण का रूप बनाकर आचार्य रक्षितसूरि के पास आया और निगोद

+ इतश्चास्ति विदेहेषु श्रीसीमंधरतीर्थकृत्। तदुपास्त्यै ययौ शक्रोऽथोपीह्वाख्यां च तन्मना ॥ २४६ ॥
निगोदाख्यानमाख्याच्च केवली तस्य तत्त्वत। इन्द्रः पप्रच्छ भरते कोऽप्यस्तेषां विचारकृत ॥ २४७ ॥
अथार्हन्प्राह मथुरानगर्यामार्यरक्षित। निगोदान्मद्वदावष्ट ततोऽसौविस्मयं ययौ ॥ २४८ ॥
‡ प्रतीनोऽपि च चित्रार्थं वृद्धब्राह्मणरूपभृत्। आययौ गुरुपार्श्वे स शीघ्रं हस्तौ च धूनयन् ॥ २४९ ॥
काशप्रसूनसंकाशकेशो यष्टिश्रिताङ्गकः। सश्वासप्रसरो विश्वगलच्चक्षुर्जलप्लुत ॥ २५० ॥
एवंरूप स पप्रच्छ निगोदानां विचारणम्। यथावस्थं गुरुर्व्याख्या सोऽथ तेन चमत्कृत ॥ २५१ ॥
ज्ञिज्ञासुर्ज्ञानमाहात्म्यं पप्रच्छ निजजीवितम्। तत श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरु ॥ २५२ ॥
सदायुर्दिवसै पक्षैर्मासैः संवत्सरैरपि। तेषां शनैः सहस्रैश्चायुतैरपि न मीयते ॥ २५३ ॥
लक्षाभिः कोटिभि पूर्वै. पल्यै पल्यशतैरपि। तल्लक्षकोटिभिर्नैव सागरेणापि नान्तभृत् ॥ २५४ ॥
सागरोपमयुग्मे च पूर्णे ज्ञाते तदायुषि। भवान सौधर्म सुत्रामा परीक्षां किं म ईक्षसे ॥ २५५ ॥
प्रकाशयाथ निजं रूपं मनुष्य प्रेक्षणाक्षमम्। यथावृत्ते समाख्याते शक्रः स्थाने निजेऽचलत् ॥ २५६ ॥
प्रर्त क्षिप्रेऽर्थिते किंचिद्यावद्यतिसमागमम्। स्पर्द्धिदर्शनैः साधुर्निदानेन न्यषेधयत् ॥ २५७ ॥
तथापि किंचिदाधेहि चिह्नमित्यथ सोऽतनोत्। वेश्म तद्विपरीतद्वाः प्रययौ त्रिदिवं तत ॥ २५८ ॥
आयाते मुनिभिर्द्वारे नान्ते गुरुरदर्शयन्। विपरीतपथायाताजन्मुखे चातिविस्मृता ॥ २५९ ॥ प्र० च०

इन्द्र के पूछे हुए निगोद के स्वरूप की घटना कालकाचार्य के साथ घटी जिसका वर्णन पहिले ही दे दिया गया है। क्या आर्य रक्षित सूरि के साथ यह घटना दुबारा घटी है यही वही घटना दो आचार्यों के साथ जोड़ दी है ?

स्वागत किया। जब श्रावकों ने तापस का सब हाल कहा तो सूरिजी ने फरमाया कि इसमें सिद्धाई और चमत्कार कुछ भी नहीं है। यह तो एक औषधि का प्रभाव है यदि पैर या पावडियों को धो दीजाय तो शेष कुछ भी चमत्कार नहीं रहता है। इस पर किसी एक श्रावक ने तपस्वी को भोजन के लिये आमंत्रण करके अपने मकान पर ले आया और उसके पैर एवं पादुका का प्रक्षालन कर भोजन करवाया। बाद कई लोग उसको नदी तक पहुँचाने को गये। पर तपस्वी पानी पर चल नहीं सके। कारण जो औषधी पैरों एवं पादुकाओं पर लगी हुई थी वह श्रावक ने धो डाली थी इससे तपस्वी की पोल खुल गई और वह लज्जित हो गया। उसी समय वहां पर आर्य समितसूरि भी आये और भी बहुत से जैन जैनेतर लोग एकत्र हो गये। उन सबके सामने जैनाचार्य्य ने एक ऐसा मंत्र पढ़ कर दोनों नदियों से प्रार्थना की कि मुझे जाना है तुम दोनों एक होकर मुझे रास्ता दे दो। बस इतना कहते ही दोनों नदियों ने एक होकर सूरिजी को रास्ता दे दिया। अतः सूरिजी ने ब्रह्मद्वीप में जाकर उन ५०० तापसों को तत्वज्ञान सुना कर प्रतिबोध दिया। अतः उन ५०० तापसों ने आत्म कल्याण की उज्ज्वल भावना से सूरिजी के पास भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली अतः उन तापसों से बने हुए मुनियों की संतान ब्रह्मद्वीप शाखा के नाम से पहचानी जाने लगी।

इस प्रकार जैन शासन में अनेक विद्वानों ने आत्मशक्ति द्वारा चमत्कार एवं उपदेश देकर जैनेतरों को जैन बना कर जैनधर्म की उन्नति एवं प्रभावना की उनके चरण कमलों में कोटि कोटि नमस्कार हो। इनके अलावा भी कई युगप्रधान आचार्य हुये हैं। जिन्हों की नामावली आगे चलकर यथा स्थान दी जायगी।

**आर्यरक्षितसूरि**—आवंती प्रान्त में अमरापुरी के सदृश्य दशपुर नाम का नगर था वहां उदायन नाम का राजा राज करता था। उसके राज में एक सोमदेव नाम का पुरोहित था। वे थे वेद धर्मानुयायी और उसके रुद्रसोमानाम की स्त्री थी और वह थी जैनधर्मोपासिका और जीवादि नौ तत्व वगैरह जैनधर्म के अनेक शास्त्रों की जानकर भी थी। उसके दो पुत्र थे एक आर्य्यरक्षित दूसरा फालगुरक्षित। सोमदेव ने आर्य्यरक्षित

---

तेन लेपापहारेण तापसो दुर्मनायितः। नावेदीद्भोजनास्वादं विगोपागमशङ्कया ॥ ८८ ॥
तापसो भोजनं कृत्वा सरित्तीरं पुनर्ययौ। लोकैर्वृतो जलस्तम्भकुतूहलदिदृक्षया ॥ ८९ ॥
लेपाश्रयः स्याद्यापि कोऽपीत्यल्पमतिः स तु। अलीकसाहसं कृत्वा प्राग्वत्प्राविशदम्भसि ॥ ९० ॥
\+ \+ \+ \+
ततः कमण्डलुरिव कुर्वन्बुडबुडारवम्। ब्रुडति स्म सरित्तीरे स तापसकुमारकः ॥ ९१ ॥
वयं मायाविनानेन मोहिताः स्मः कियच्चिरम्। मलिन्यभूदिति मनस्तदा मिथ्यादृशामपि ॥ ९२ ॥
\+ \+ \+ \+
दत्तताले च तत्कालं जने तुमुलकारिणि। आचार्या अपि तत्रागुः श्रुतस्कन्धधुरन्धराः ॥ ९३ ॥
\+ \+ \+ \+
तटद्वये ततस्तस्याः सरितो मिलिते सति। आचार्यः सपरीवारः परतीरभुवं ययौ ॥ ९६ ॥
आचार्यैर्दर्शितं तं चातिशयं प्रेक्ष्य तापसाः। सर्वेऽपि संविविजिरे तद्भक्तश्चाखिलो जनः ॥ ९७ ॥
\+ \+ \+ \+
आचार्यस्यार्यशमितस्यान्तिके प्राव्रजन्नथ। सर्वे मथितमिथ्यात्वास्तापसा एकचेतसः ॥ ९८ ॥
ते ब्रह्मद्वीपवास्तव्या इति जातास्तदन्वये। ब्रह्मद्वीपिकनामानः श्रमणा आगमोदिताः ॥ ९९ ॥

"परिशिष्टपर्व"

आचार्य रक्षितसूरि जैनशासन में बड़े भारी प्रभाविक एवं युग प्रवर्तक आचार्य हुये आपके शासन में दो बातें जानने काबिल हुई १—पूर्व जमाने में एक ही सूत्र से चारों अनुयोग का अर्थ किया जाता था पर भविष्य में साधुओं की बुद्धि का विचार कर चारों अनुयोग पृथक २ कर दिये वे अद्यावधि उसी रूप में चले आ रहे हैं २—पूर्व जमाने में साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास करती और साध्वियां ही यथायोग्य प्रायश्चित दे दिया करती थी परन्तु आर्य रक्षितसूरि ने उस प्रवृति को बन्द कर साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास न करके साधुओं के पास करे और साधु ही प्रायश्चित दें ऐसा नियम बना दिया।

आर्य रक्षित ९॥ पूर्व ज्ञान के पारगामी थे। इनके बाद इतना ज्ञान किसी आचार्य को नहीं हुआ था युगप्रधान पट्टावली अनुसार आप १९ वें युगप्रधान थे। आपका जन्म वी० नि० सं० ५२२ में हुआ था २२ वर्ष की आयुष्य में दीक्षा ली ४४ वर्ष सामान्य दीक्षा पर्याय और १३ वर्ष युगप्रधान पद पर रहकर शासन की खूब उन्नति की। वी०नि० सं० ५९७ वें वर्ष में अर्थात् ७५ वर्ष का सर्व आयुष्य भोग कर स्वर्गवासी हुये।

**आचार्य नंदिलसूरि**—आप साढ़े नौ पूर्वधर महान प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। प्रभाविक चरित्र में आपके विषय में बहुत वर्णन किया है। आपके चरित्रान्तरगत वैराट्या देवी का भी चरित्र वर्णन किया है। जिसमें पद्मनीखंडनगर, पद्मप्रभराजा, पद्मावतीरानी, पद्मदत्तश्रेष्ठि, पद्मयशास्त्री, पद्मपुत्र, जिसका वरदत्त की पुत्री वैराट्या के साथ विवाह हुआ था। इत्यादि विस्तृत वर्णन किया है। आगे लिखा है कि—

दुकाल के कारण वरदत्त देशान्तर जाता है और वैराट्य को सासु खूब कष्ट देती है नागेन्द्र का स्वप्ना सूचित वैराट्या गर्भ धारण करती है। आचार्य नंदिलसूरि उद्यान में पधारते हैं। वैराट्या सूरि को वन्दन करने को जाती है और अपनी दुःख गाथा सुनाकर पूर्वभव में किये हुए कर्मों को सुनना चाहती है। सूरिजी कर्म सिद्धान्त का रहस्य बतला कर वैराट्या को शान्त करते हैं। वैराट्या को पयसान्न (दूधपकादि) का दोहला उत्पन्न होता है। तप के उद्यापनार्थ दूधपाक तैयार होता है। वैराट्या बचा हुआ पयसान्न घट में डाल पानी के बहाने जलाशय पर जाती है। वहां नाग देव की देवी पयसान्न का भक्षण कर जाती है और वैराट्या की क्षमा शान्ति को देख प्रसन्न होती है। वैराट्या पुत्र को जन्म देती है और उसका नाम नागेन्द्र रखा जाता है। समयान्तर नागदेव की सहायता से पद्मदत्त पद्मयशा और वैराट्यादि सूरिजी के पास दीक्षा लेते हैं। वैराट्या साध्वि जीवन में कालकर भगवान पार्श्वनाथ के सेविका नागकुमार की जाति में वैराट्या देवी पने उत्पन्न होती है इत्यादि विस्तार से वर्णन किया है—

आर्य्य नंदिल किस वंश परम्परा के थे? इसके लिए चरित्रकार आर्य्य रक्षित के वंश में हुये लिखते हैं पर नंदी स्थविरावली में आर्य्य मंगू के बाद और नागहस्ति के पूर्व के युगप्रधान बतलाया है परन्तु आर्य्य मंगू का युगप्रधान समय वी नि. सं० ४५१ से ४७० का है तब आर्य्य रक्षित का समय ५४४ से ५९७ का है यदि नंदिल आर्य्य मंगू के बाद माना जाय तो करीब १०० वर्ष पूर्व का समय आता है। अतः वे आर्य्य मंगू के वंश धर सिद्ध नहीं होते हैं। अतः आर्य्य नंदिल को आर्य्य रक्षित के बाद एवं इनके वंशज मानना यथार्थ ही है। आर्य नन्दिल का नाम प्रबन्ध कर एवं युग प्रधान पट्टावली करने आर्य्यनंदिल लिखा है पर आपका वास्तविक नाम आनंदिल था ऐसा पं० कल्याण विजयजी महाराज अपनी प्रबन्धपर्यालोचना में प्रमाणित करते हैं। जो यथार्थ ही समझा जा सकता है।

यह स्वप्न की बात अपने शिष्य को सुनारहे थे कि इतने में आर्य्यरक्षित ने आकर नमस्कार किया। वज्रसूरि ने पूछा क्या तेरा नाम आर्य्यरक्षित है और पूर्वाध्ययन के लिये आया है ? आर्यरक्षित ने कहा, हाँ। फिर वज्रसूरि ने पूछा तुम्हारे भंडोपकरण कहाँ हैं ? आर्य्यरक्षित ने कहा मैं अलग उपाश्रय याचकर भंडोपकरण वहाँ रख आया हूँ तथा आहार पानी शयन वहाँ ही करूंगा और पूर्वों का अध्ययन आपके पास करता रहूँगा। आर्य्यवज्र ने कहा अलग रहने से ज्ञान कम होगा। इस पर आर्य्यरक्षित ने भद्रगुप्ताचार्य का आदेश कह सुनाया इसपर वज्रसूरि ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो भद्रगुप्ताचार्य का कहना यथार्थ मालूम हुआ। अतः आर्यरक्षित अलग रह कर आर्यवज्रसूरि से पूर्व ज्ञान का अध्ययन करने लगा और बड़ी मुश्किल से साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान किया आगे उनको पढ़ने में थकावट आने लगी।

इधर रुद्रसोमा ने सोचा कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि आर्य्यरक्षित को दूर भेज दिया। अतः दूसरे पुत्र फाल्गुरक्षित को बुलाकर आर्य्यरक्षित को लाने के लिये भेजा। वह फिरता-फिरता वज्रसूरि के पास आकर अपने भाई से मिला और माता के समाचार सुनाये। इस पर आर्य्यरक्षित ने लघुबन्धु को संसार की असारता बतलाते हुये ऐसा उपदेश दिया कि फाल्गुरक्षित ने जैनदीक्षा स्वीकार करली।

आर्य्यरक्षित को एक ओर तो माता से मिलने की उत्कंठा और दूसरी ओर अभ्यास के परिश्रम से थकावट आरही थी। अतः एक दिन वज्रसूरि से पूछा कि प्रभो ! अब कितना ज्ञान पढ़ना रहा है ? सूरिजी ने कहा अभी तो सरसप जितना पढ़ा और मेरु जितना पढ़ना है। आर्य्य तुम उत्साह को कम मत करो पढ़ाई करते रहो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर अभ्यास करने लगा पर उसका दिल एवं अभ्यास शिथिल पड़ गया। अतः वज्रसूरि से आज्ञा मांगी कि मैं दशपुर की ओर विहार करूं। वज्रस्वामी ने ज्ञानोपयोग से जान लिया कि इनके लिये ९॥ पूर्व का ज्ञान ही पर्याप्त है। दशवां पूर्व तो मेरे साथ ही चलेगा। अतः आर्य्यरक्षित को आज्ञा देदी। बस, आर्य्यरक्षित अपने भाई फाल्गुरक्षित मुनि को साथ लेकर वहाँ से विहार कर दिया और क्रमश पाटलीपुत्र आये। साढ़े नौ पूर्व पढ़के आये हुये शिष्य का गुरु तोसलीपुत्राचार्य आदि श्रीसंघ ने अच्छा बहुमान किया और आर्य्यरक्षित को सर्वगुण सम्पन्न जानकर अपने पट्टपर आचार्य बनाकर तोसलीपुत्राचार्य अनशन एवं समाधि से स्वर्ग पधार गये।

तदनन्तर आर्यरक्षितसूरि विहार कर दशपुर नगर पधारे। आर्य फाल्गुरक्षित ने आगे जाकर अपनी माता को बधाई दी कि आपका पुत्र जैनधर्म का आचार्य बन कर आया है। इतने में तो आर्य्यरक्षितसूरि अपनी माता के सामने आगये जिसको साधुवेश में देख माता बहुत खुशी हुई। बाद पिता सोमदेव भी आया उसने कहा पुत्र तू पढ़के आया है अतः उद्यान में ठहरना था कि राजा प्रजा की ओर से महोत्सव करवा के तुमको नगर प्रवेश कराया जाता। खैर, माता के स्नेह के लिये नगर में आ भी गया तो अब भी उद्यान में चला जा कि राजा की ओर से महोत्सवपूर्वक तुम्हारा नगरप्रवेश करवाया जाय। बाद इस साधुवेश को त्याग कर तुम्हारे लिये अनेक कन्याओं के प्रस्ताव आये हुये हैं जैसी इच्छा हो उसके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया जाय धन तो अपने घर में इतना है कि कई पुश्त तक खाये और खर्चे तो भी अन्त नहीं आवे। अतः तुम अपने घर का भार शिर पर लेकर संसार के अन्दर सुख एवं भोग विलास भोगते रहो।

आर्य रक्षित सूरि ने अपने पिता के मोह गर्भित वचन सुन कर इस प्रकार उपदेश दिया कि माता पिता और कुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार होगये परन्तु सोमदेव ने कई शर्तें ऐसी रक्खी कि एक तो मेरे से

करवाया था। कलिकाल की कुटिल गति से इस तीर्थ पर कई प्रकार के आक्रमण भी हुए थे। जिस समय बौद्धों और जैनों के शास्त्रार्थ हुआ था और बौद्धों की विजय में सौराष्ट्र प्रांत बौद्धों के हाथ में चला गया था इस हालत में शत्रुंजय तीर्थ पर भी बौद्धों का अधिकार हो गया था। इनके अलावा असुरदेशों का भी शत्रुंजय पर अधिकार रहा था अतः कई वर्षों तक जैनों को शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा से वंचित रहना पड़ा था और इस अतराय कर्म को हटाने वाले महाप्रभाविक आचार्य वज्रस्वामी और धर्मवीर जावड़ शाह हुये कि इन्होंने दुष्ट असुर के पंजे में गये हुये शत्रुंजय तीर्थ को पुनः दूध एवं शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से धोकर एवं शुद्ध बना कर पुनः उद्धार करवाया। तब से जाकर चतुर्विध श्रीसंघ ने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की।

जावड़ शाह—आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि ने पद्मावती नगरी के राजा पद्मसेनादि ४५००० जन समूह को जैनधर्म में दीक्षित किये। आगे चलकर उस समूह का प्राग्वटवंश नाम संस्करण हुआ। वंशावलियों से पता मिलता है कि पद्मावती में प्राग्वट वंशीय शाह देवड़ रहता था। देवड़ के ११ पुत्र थे जिसमें भावड़ भी एक था। भाइयों की अनबनत के कारण भावड़ पद्मावती छोड़ सौराष्ट्र में चला गया और कपीलपुर नगर में जाकर बस गया और व्यापार में भावड़ ने बहुत द्रव्य भी पैदा किया पर कर्मों की गति विचित्र होती है एक ही भव में मनुष्य अनेक दशाओं को देख लेता है यही हाल भावड़ का हुआ था।

भावड़ शाह की गृहणी का नाम भावला था और वह धर्मकरनी में दृढ़ व्रत वाली श्राविका थी। भावड़ शाह के पूर्व जन्म की अन्तराय के कारण धन कम हो गया परन्तु धर्म की तो वृद्धि होती गई कहा है कि 'सत्य की बांधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय।'एक समय भावला के मकान पर दो मुनि भिक्षार्थ आ निकले। भावला ने अपना अहोभाग्य समझ कर गुरु भक्ति की और उनको सादर आहार पानी दिया। उस समय भावला गर्भवती थी। मुनियों ने निमित्त ज्ञान के बल से कहा कि माता तुम्हारे पुत्र होगा। यह जैन शासन का उद्धार करने वाला भाग्यशाली होगा पुनः मुनियों ने कहा कि कल एक घोड़ी बिकेगी उसे खरीद कर लेना कि जिससे आपको बहुत लाभ होगा। बस इतना कह कर मुनि तो चले गये। भावला ने सब बात अपने पतिदेव को कह दीं जिससे दोनों ने शुभ शकुन मान कर मंगलीक गांठ लगादी।

दूसरे दिन एक सोदागर घोड़ी बेचने को आया उसको भावड़शाह ने खरीद कर ली जिसके दो शुभ लक्षण वाले बच्चे पैदा हुए एक तो तीन लक्ष द्रव्य में एक राजा को बेच दिया, दूसरा राजा विक्रम को भेंट में दे दिया। विक्रम ने खुश हो भावड़शाह को मधुमति आदि १२ ग्राम इनाम में दे दिये। बस, भावड़ व्यापारी नहीं पर मधुमती का राजा बन गया। बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम जावड़ रक्खा। जावड़ जब जवान हुआ तब उसकों एक श्रेष्टि कन्या सुशीला के साथ उसका लग्न कर दिया। तदनन्तर भावड़ का स्वर्गवास हुआ सो राजलक्ष्मी का मालिक जावड़ हुआ। शाह जावड़ राज्य के साथ व्यापार भी करता था। एक समय जावड़शाह ने बहुत सा माल जहाजों में भर कर विदेश में भेजा था।

यह बात पादलिप्तसूरि के अधिकार में लिखी गई है कि पादलिप्त सूरि महान् प्रभाविक आचार्य हो गये हैं। आपके गृहस्थ शिष्य नागार्जुन ने शत्रुंजय की तलेटी में पादलिप्तपुर नाम का नगर बसाया था।

विक्रम की मृत्यु के बाद अरब समुद्र को पार कर लाट में एक म्लेच्छों की सेना आई और इन्होंने लाट सौराष्ट्र के ग्रामों में लूट करनी शुरू कर दी। उसमें शत्रुंजय को भी बहुत सी हानि पहुँचाई तथा पाद-

का स्वरूप पूछा । इस प्रकार आचार्यश्री ने यथावत स्वरूप कह सुनाया जिससे इन्द्र बहुत हर्षित हुआ बाद इन्द्र ने अपना हाथ आगे कर अपना आयुष्य पूछा । आचार्यश्री ने हस्त रेखा देख कर सौ दोसौ एवं तीन सौ वर्ष तक रेखा देखी पर रेखा तो इससे भी आगे हजार लाख करोड़ वर्ष से भी अधिक पल्योपम सागरोपम तक बढ़ती जारही थी । अतः सूरिजी ने श्रुतोपयोग लगाया तो ज्ञानहुआ कि यह तो पहिले देवलोक का इन्द्र है और इसकी दो सागरोपम की आयुष्य है । यह बात इन्द्र को कहीतो इन्द्र ने सूरिजी की बहुत प्रशंसा की और कहा की श्री सीमंधर तीर्थङ्कर ने जैसे आपकी तारीफ की वैसे ही आप हैं । आज्ञा फरमावें कि मैं क्या करूं ? आचार्य ने कहा कि अपने आने का चिन्हस्वरूप कुछ करके बतलाओ कि भिक्षार्थ गये हुये साधुओं को मालूम होजाय कि इन्द्र आया था । अतः इन्द्र ने उपाश्रय का दरवाजा पूर्व में था उसे पश्चिम में कर दिया और सूरिजी को वंदन कर अपने स्थान चला गया । बाद साधु भिक्षा लेकर आये तो पूर्व में दरवाजा नहीं देखा तो उनको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ तब गुरु ने कहा मुनियों उपाश्रय का दरवाजा पश्चिम में है अतः तुम उधरसे चले आओ शिष्यों ने आचार्य से सब हाल सुना जिससे बड़ा ही आश्चर्य हुआ बाद आचार्यश्री ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया । आचार्यश्री के जाने के बाद नास्तिक बोधों का मथुरा में आगमन हुआ पर उस समय गोष्टामाहिल नामक मुनि ने शास्त्रार्थ कर बाधों को पराजित कर दिया ।

आचार्य रक्षितसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था जान अपने पट्ट पर किसको स्थापित किया जाय इसके लिये सूरिजी ने दुर्बलपुष्पमित्र को योग्य समझा पर सूरिजी के सम्बन्धियों ने फाल्गुरक्षित के लिये आग्रह किया जो आर्यरक्षित के भाई था और कई एकों ने गोष्टामहिल को सूरि बनाने का विचार प्रगट किया । आखिर परीक्षा पूर्वक सूरि पद दुर्बलपुष्पमित्र मुनि को ही दिया गया ।

आर्य्य रक्षितसूरि ने दुर्बलपुष्प मित्र को कहा कि मेरा पिता एवं मामा वगैरह मुनि हैं उन प्रति मेरे जैसा भाव रखना तथा मुनि सोमदेव वगैरह को भी कह दिया कि तुम जैसे मुझे समझते हो वैसे ही दुर्बलपुष्पमित्र को समझना । आचार्य रक्षितसूरि ने गच्छ का सुप्रबन्ध करके अनशन एवं समाधि पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया । आचार्य दुर्बलपुष्पमित्र गच्छ को अच्छी तरह से चलाते हुये एवं सबको समाधि पहुँचाते हुये गच्छ की उन्नति एवं वृद्धि की । परन्तु गोष्टामहिल मुनि ने ईर्षा एवं द्वेष भाव के कारण अपना मत अलग निकाल कर सातवां निन्हव की पंक्ति में अपना नाम लिखाया ।

---

रुद्रसोमा पुनस्तत्र श्रमणोपासिका तदा । विज्ञातजीवाजीवादि नवतत्त्वार्थ विस्तरा ॥१६॥
कृत सामायिका पुत्रमुत्कण्ठाकुलितं चिरात् । इलातलमिलनमौलिं वीक्ष्यापि प्रणतं भृशम् ॥ १७ ॥
अस्य ग्रन्थस्य वेत्तारस्तेऽधुना स्वेक्षुवाटके । सन्ति तोसलिपुत्राख्याः सूरयो ज्ञानभूरयः ॥ २८ ॥
किंकर्तव्यजडस्तत्राजानन् जैनपरिश्रमम् । ढड्डरश्रावकं सूरिवन्दकं प्रैक्षदागतम् ॥ ३७ ॥
ध्यात्वा तं सूरयोऽवोचन् जैनप्रव्रज्यया विना । न दीयते दृष्टिवादो विधिः सर्वत्र सुंदरः ॥ ४७ ॥
गुरवः शेषपूर्वाणां पाठायोज्जयिनिपुरि । तमार्यरक्षितं प्रैषु : श्रीवज्रस्वामिनोन्तिके ॥ ५८ ॥
गीतार्थैर्मुनिभिः सत्रा तत्रागादार्यरक्षितः । श्रीमद्भद्रगुप्तसूरीणामाश्रये प्राविशत्तदा ॥ ५९ ॥
श्री वज्रस्वामि पादान्ते त्वया पिपठिषाभृता । भोक्तव्यं शयनीयं च नित्यं पृथगुपाश्रये ॥ ६५ ॥
तदा च ददृशे स्वप्नः श्रीवज्रेणाप्यजलप्यत । विनेयाग्रेऽद्य संपूर्णः पायसेन पतद्ग्रहः ॥ ७० ॥
वत्स कच्छाभिसंबद्धं ममास्तु परिधानकम् । नग्नैः शक्यं किमु स्थातुं स्वीयात्मजसुतापुरः ॥ १५५ ॥
उपानहौ मम स्यातां तथा करक पात्रिका । छत्रिकाथोपवीतं च यथा कुर्वे तव व्रतम् ॥ १५८ ॥ प्र० च०

तथा आर्यवज्रसूरि के साथ शत्रुंजय आया। पर वहां के यक्ष ने २१ दिन तक खूब उपद्रव किया। आखिर उसको पराख होकर वहां से भागना पड़ा।

बस, फिर तो था ही क्या। जावड़शाह ने शत्रुंजय पर्वत को दूध और शत्रुंजी नदी के निर्मलनीर से धुलवाया और वहां का सब काम करवा कर तक्षशिला से लाई हुई भगवान आदीश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से करवाई। आचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जान कर कवड़यक्ष और चक्रेश्वरीदेवी को वहां के अधिष्ठाता के रूप में स्थापन किया।

आचार्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रभावशाली प्रयत्न से चतुर्विध श्रीसंघ को फिर से पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का शौभाग्य मिला है। जैन संसार में जावड़शाह खूब प्रसिद्ध पुरुष है और इनके द्वारा कराया हुआ तीर्थधिराज श्रीशत्रुंजय का उद्धार भी महत्वपूर्ण कार्य है जिसको जैन समाज कभी भूल नहीं सकता है आज पर्यन्त चतुर्विध श्रीसंघ तीर्थराज की यात्रा सेवा भक्ति कर अपना कल्याण कर रहा है जिसका सर्व श्रेय स्वानामधन्य प्राग्वट वंश भूषण श्रीमान् जावड़शाह को ही है। यद्यपि इनके बाद श्रीमाल एवं ओसवालों ने भी इस पुनीत तीर्थ का उद्धार करवाया है पर पंचमारा में उस विकट परिस्थिति में उद्धार करवाने वाले गुरु वज्रस्वामि और जावड़शाह विशेष धन्यवाद के पात्र कहा जा सकते हैं।

श्री शत्रुंजय का संघ— आचार्य जज्जगसूरि विहार करते हुए पालिकापुरी में पधारे श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था एक समय आपने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए तीर्थ यात्रा से शासन की प्रभावना और भविष्य में कल्याणकारी फल का विस्तार से वर्णन किया जिससे जनता की रुची तीर्थयात्रा की हो आई कारण कई अर्सा से श्री शत्रुंजय की यात्रा बन्द थी पर आर्य्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रयत्न से पुन: तीर्थ का उद्धार हुआ था अत सबका दिल पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का हो जाना एक स्वाभाविक ही था उसी सभा में बैठा हुआ अपार सम्पति का मालिक प्राग्वट वंशीय शाह जोघड़ा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ से अर्ज की कि श्रीसंघ मुझे आदेश दिरावे मैं श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकालूँ ? सूरिजी ने कहा जोघड़ा तु बड़ा ही भाग्यशाली है श्री संघ ने भी अनुमोदन के साथ आदेश दे दिया। बस फिर तो कहना ही क्या था शाह जोघड़ा ने बड़ी भारी तैयारियां करनी शुरु कर दी। सर्वत्र आमंत्रण पत्रिकाएँ भेज दी। इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक भावुक और तीन हजार साधु साध्वियां थे जिसमें अधिक साधु साध्वियां उपकेश एवं कोरंटगच्छ के ही थे उस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि चन्द्रावती नगरी मे विराजते थे अतः संघपति जोघड़ा ने स्वयं जाकर विनती की अत सूरिजी ने जोघड़ा की प्रार्थना स्वीकार कर संघ में शामिल होने की मंजूरी फरमादी जब संघ पालिकपुरी से प्रस्थान कर चन्द्रावती आया तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ शामिल हो गये फिर तो था ही क्या सबका उत्साह द्विगुणित हो गया आचार्य जज्जगसूरि ने भी सूरिजी का यथायोग्य विनय किया ! शत्रुंजय की यात्रा खुल्ली होने के बाद यह पहला ही संघ का अत: जनता एक दम उलट पड़ी थी जब संघ शत्रुंजय पहुँचा उस समय शत्रुंजय पर छोटा बड़ा तेरह संघ आये थे पर सब से बड़ा संघ मरुधर का ही था। सब लोगों ने परमात्मा युगाधीश्वर की यात्रा कर पूर्व संचित पाप का प्रक्षालन कर डाला आठ दिन अष्टान्हिका एवं ध्वज महोत्सवादि और स्वामि वात्सल्यादि किये अनेक महानुभावों ने संघ को पेहरामणि वगैरह दी शाह जोघड़ ने इस संघ में एक करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगाया—

कालकाचार्य—इसी किताब के पृष्ठ ४०९ पर चार कालकाचार्यका नामोल्लेख किया जिसमें दत्तकों यज्ञ फल कहनेवाले काभी नाम आया है जिसके लिये ऐसी घटना बनी थी कि तुरिमिणी नगरी के उद्यान में एक समय कालकाचार्य पधारे थे वहां पर कालकाचार्य के बहन का पुत्र दत्त नाम पुरोहित था उसने अपना स्वामि राजा को छल कपट से कारागर में डाल कर आप स्वयं राज कों अपनेअधिकार में कर लिया था और आप वहां का राजा बन गया था राजा दत्त अपनी माता के कहने से एक दिन कालकाचार्य के पास आया उसके हृदय में पहले से ही धर्म द्वेष था अतः उन्मत की भाँति क्रोध युक्त हो कर कालकाचार्य को यज्ञ के विषय में प्रश्न पूछा कि यज्ञ का क्या फल होता है ? आचार्यश्री ने कहा कि यज्ञ में जो पशुओं की हिंसा की जाती है और हिंसा का फल होता है नरक अर्थात् हिंसा करने वाले नरक में जाकर अनन्त दुःखों को भोगता है। यह बात दत्त को बहुत बुरी लगी खैर उसने पुनः पूछा कि हमारा और आपका शेष आयुष्य कितना रहा है और किस कारण मृत्यु होगा एवं मर कर कहाँ जावेंगे ? कालकाचार्य ने कहा दत्त तेरा आयुष्य सात दिन का रहा है तू कुंभी में पच कर मरेगा कुत्तें तेरी लाश को खायंगे और तू मर कर नरक में जावेगा फिर मैं यह कह देता हूँ कि तेरे मुंह में वृष्टा पड़ेगा तब जान लेना कि मेरी मृत्यु आ गई है और मैं समाधि के साथ मर कर स्वर्ग में जाऊँगा। इस जवाब से दत्त को और भी विशेष गुस्सा आया और आचार्य श्री के लिये गुप्तचर को रख दिया कि ये सातदिनों के अन्दर कहीं विहार न कर जाय बाद दत्त अपने स्थान को चला गया ओर ऐसे स्थान में बैठ गया कि वहाँ न तो मुंह में वृष्टा पड़ सके और न मृत्यु ही आ सके ? पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है दत्त अपने गुप्त स्थान में रह कर दिन गिनता था परन्तु भ्रांति से सातवां दिन को आठवां दिन समझ कर आचार्यश्री के वचन को मिथ्या साबित करने की गर्ज से अश्वारूढ़ हो कर राज मार्ग से जा रहा था राज मार्ग में क्या हुआ था कि एक मालन पुष्पों की छाब लेकर जा रही थी उसके उदर में ऐसी तकलीफ हुई कि वह राज मार्ग में ही टट्टी बैठ गई और पास में पुष्प थे वे वृष्टा पर डाल दिया उसी रास्ते से दत्त आ रहा था घोड़ा का पैर उस वृष्टा पर लगा कि वृष्टा उछल कर थोड़ासा दत्त के मुंह में जा पड़ा जिसका स्वाद आते ही दत्त विचार कर वापिस लौट रहा था परन्तु दत्त का अत्याचार से मंत्री वगैरह सब असन्तुष्ट थे उन्होंने किसी जितशत्रु राजा को ला कर राज गादी बैठा दिया उसने दत्त को पकड़ पिंजरा में डाल दिया। बाद दत्त को कुंभी में डाल कर भट्ठी पर चढ़ाया और नीचे अग्नि लगादी और बाद में उसकी लाश कुत्तों ने खाई एवं कदर्थना की और वह मर कर नरक में गया। तत्पश्चात् कालकाचार्य वहां से विहार किया कई अर्सा तक भव्य जीवों का उद्धार कर अन्त में समाधिपूर्वक काल कर स्वर्ग पधार गये इस प्रकार कालका चार्य महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं।

## श्रीशत्रुंजयतीर्थ का उद्धार

जैन संसार में तीर्थश्रीशत्रुंजय का बड़ा भारी महात्म्य एवं प्रभाव है। इतना ही क्यों पर शत्रुंजय तीर्थ को प्रायः शाश्वता तीर्थ बतलाया है। जैनांगोपांग सूत्र में श्री शत्रुंजय के विषय प्रचुरता से उल्लेख मिलता है। श्रीज्ञातसूत्र तथा अंतगढ़दशांग सूत्र में उल्लेख मिलता है कि हजारों मुनिराज शत्रुंजय तीर्थ पर जाकर अन्तसमय केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये हैं। जैसे यह तीर्थ प्राचीन है वैसे इस तीर्थ के उद्धार भी बहुत हुए हैं और जैसे मनुष्यों ने इस तीर्थ के उद्धार करवाये है वैसे देवताओं के इन्द्रों ने भी तीर्थोद्धार

जाव देना जरूरी था पर सोनलदेवी थी जैनधर्मोपासिका उसने साफ शब्दों में कह दिया कि मैं तो एक सर्वज्ञ एवं वीतराग को ही देव मानती हूँ और उनको ही अपना शिर झुकाती हूँ। अतः मेरी प्रतिज्ञा का निर्वाह करना आपके हाथों में है।

वीरसेन के माता पिता आदि कुटुम्बी नववधु के वचन सुन कर विचार में पड़ गये कि यह क्या धर्म है कि शुभ मंगलीक के लिये देवी देवताओं की जात दी जाती है जिसके लिये लाडीजी आज ही इन्कार करती है तो भविष्य में इसका क्या नतीजा होगा ? साथ में यह पहले पहल मौका है। बहू को नाराज भी नहीं करनी चाहिये। अतः सासु ने आकर मधुर एवं प्रेम वचनों से सोनलदेवी से कहा बीनणी जी ! मेरे तो तू एक ही लाड़ली बहू है तेरे सिवाय मेरे राज में और क्या प्रिय वस्तु हो सकती है। मैं तेरे नियम प्रतिज्ञा एवं धर्म में दखल करना नहीं चाहती हूँ पर यह पब्लिक का काम है आज तो आप मेरे कहने से ही यहाँ के रिवाज के अनुसार देवी देवताओं की जात दे आओ। बाद जैसा तू कहेगी वैसा ही मैं करूँगी। सोनलदेवी बड़ी समझदार थी। उसने सोचा कि इस समय मेरी सासुजी इतना प्रेम दिखा रही हैं तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इनके सामने विनय करूँ और मेरे इस विनय का भविष्य में इन पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा अर्थात् इनसे मुझे कई प्रकार से काम लेना है। दूसरे सम्यक्त्व में ६ आगार भी कहा है अतः सोनलदेवी अपनी सासुजी का कहना शिरोधार्य्य कर इच्छा न होने पर भी अपने पतिदेव के साथ जाकर देवी देवता की जात दे आई। सासु को बहू यों ही प्यारी लगती है जिसमें सोनलदेवी जैसी विनयशील बहू का तो कहना ही क्या था। फिर तो सासुजी का प्रेम इतना बढ़ गया कि वह दिन तो लाडकोड में निकल गया। शाम के समय सोनलदेवी स्थापनाजी रख कर प्रतिक्रमण करने लगी तो जैसे तमाशा देखने को जनता एकत्र होती हैं वैसे सासु वगैरह बहुत औरत एकत्र हो गईं। एक घंटा भर उसकी प्रतिक्रमण क्रिया देखी तो वे सब आश्चर्य करने लगीं कि इतने इतने वर्षों में हम कुछ धर्म क्रिया नहीं जानतीं तब यह बालका इस रंग राग के समय भी अपना षट्कर्म कर रही है। जब सोनलदेवी की प्रतिक्रमण क्रिया समाप्त हुई तो सासु वगैरह सबने पूछा कि बहूजी आपने यह क्या किया है ? सोनलदेवी ने शुरू से लेकर आखिर तक प्रतिक्रमण का भावार्थ कह सुनाया जिसको सुन कर सासुजी आदि ने बड़ी खुशी मनाई कि मेरे अहो भाग्य हैं कि मेरे घर में ऐसी लाड़ी आई है। सासुजी ने कहा क्यों लाड़ी जी ! आप मुझे भी इस प्रकार की क्रिया करावेंगी ? सोनलदेवी ने कहा कि क्यों नहीं यह तो मेरा कर्तव्य है ही कि पूज्य माता पिता एवं सासु सुसरा की विनय व्यावच करना उनका हुक्म उठाना और धर्मकार्य में सहायता देना। सासुजी आप सुबह जल्दी उठ जाइये कि मैं आपको प्रतिक्रमण करवा दूंगी इत्यादि। सासुजी ने कहा अच्छा लाड़ीजी मैं सुबह जल्दी आऊँगी। और तुम्हारे साथ मैं भी प्रतिक्रमण करूँगी।

सुबह जल्दी उठकर सासु बहू ने प्रतिक्रमण किया तो सासु को इतना आनन्द आया कि जिसको वह कह भी नहीं सकी। यह बात राजअन्तेवर में सर्वत्र फैल गई। यहाँ तक कि राजगुरु के कानों तक पहुँच गई। उन्होंने सोचा कि जब उपकेशपुर राजा के साथ सम्बन्ध हुआ था तब से ही शंका थी कि उन नास्तिकों के यहाँ की राजकन्या आवेगी तो यहाँ कुछ न कुछ भ्रम फैला ही देंगी। वास्तव में यह बात सत्य हो गई। अतः इसका इलाज जल्दी करना अच्छा है। वरना रोग बढ़ने पर बात हाथ में नहीं रहेगी। अतः वे लोग चल कर राजअन्तेवर में आये और रानी को कहा लाओ लाड़ीजी को कि गुरुमंत्र सुना कर कंठी बन्धवादी जाय आज

लिप्तपुर और मधुमती लूटकर जावड़शाह को भी पकड़ लिया और जाते समय वे जावड़ को भी अनार्य देश म साथ ले गये ।

जावड़ एक पक्का मुत्सद्दी था अपने चातुर्य्य एवं कुशलता से म्लेच्छों को प्रसन्न कर वहाँ भी अपना व्यापार करना शुरू कर दिया । जिससे पुष्कल द्रव्योपार्जन कर लिया और वहाँ आने वाले भारतीयों को अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाने लगा । इतना ही क्यों पर जावड़ ने तो अपने सेवा पूजा दर्शन के लिए वहाँ जैनमंदिर और उपाश्रय भी बनवा लियाथा । उस समय जनमुनियों का विहार भी उस तरफ हुआ करता था—

इधर विहार करते हुये मुनियों का एक मण्डल अनार्य देश में आया । जावड़शाह ने उनका स्वागत किया । मुनियों ने जावड़ की धर्म भावना देख वहां स्थिरता करदी और धर्मोपदेश देने लगे जिससे अनार्यों पर भी जैनधर्म का अच्छा प्रभाव हुआ । एक समय प्रसंगोपात श्रीसिद्धाचल का वर्णन करते हुए कहा कि कदर्पि यक्षद्वारा तीर्थ की बड़ी भारी आशातना हो रही है । श्रीसंघ कई अर्सा से यात्रा से वंचित है । हे श्रेष्टि-वर्य्य ! यह पुन्य कार्य तुम्हारे हाथ से होने वाला है । तुम इस कार्य्य के लिये उद्यम करो । इस कार्य्य में द्रव्य की अपेक्षा राजसत्ता की अधिक जरूरत है यहां की साता के अलावा तक्षिला के राजा जगन्मल के पास प्रभु आदीश्वर की मूर्ति है । उसे प्राप्त कर शत्रुंजय पर स्थापित कर अनंत पुन्योपार्जन करो इत्यादि ।

जावड़ का दिल देश एवं मातृभूमि तथा तीर्थ की ओर आकर्षित हुआ । अतः वहां से चल कर तक्षिला‡ आया । बहुमूल्य भेंट देकर राजा को प्रसन्न किया । राजा ने पूछा कहो सेठजी आपको किस बात की जरूरत है जावड़ ने मूर्ति मांगी और राजा ने जावड़ को मूर्ति देदी इतना ही क्यों पर राजा ने तो जावड़ को सौराष्ट्र तक इंतजाम कर मधुमति नगरी तक क्षेमकुशल से पहुँचा दिया ।

जब मनुष्य के पुन्योदय होता है तब चारों ओर से लाभ ही लाभ मिलता है । जावड़ ने जो माल जहाजों द्वारा विदेश में भेजा था उसके लिए इतने वर्ष हो गये कुछ भी समाचार नहीं मिले थे पर इधर तो जावड़ मधुमति आता है और उधर से वे जहाजों भी मधुमति आ पहुँचती है । अहा-हा-धर्म एक कैसा मित्र एवं कैसा सहायक होता है कि जिसका फल अवश्य मिलता है भले थोड़ा दिन की अन्तराय आ भी जाय पर उस अवस्था में मनुष्य अपने धर्म पर पावन्दी रखता है तो शीघ्र ही आपत्ति से मुक्त हो सुखों का अनुभव करने लग जाता है एक समय जावड़ म्लेच्छों द्वारा पकड़ा गया था तब आज जावड़ शाह अपार सम्पति का धनी बनकर शत्रुंजय का उद्धार की भावना वाला बन गया है ।

उस समय आर्यवज्रसूरि विहार करते हुए मधुमति आये । जावड़शाह सूरिजी को वन्दन करने को गया उससमय लक्षदेवों का अधिपति एक देव भी, सूरिजी को वन्दन करने के लिये आया था । सूरिजी ने धर्मलाभ देकर जावड़ के कार्य में मदद कर तीर्थोद्धार करने का उपदेश दिया देवता ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करली ।

जावड़ ने कहा प्रभो ! इस महान तीर्थ का उद्धार करना कोई साधारण सी बात नहीं है । इसमें पुष्कल द्रव्य की आवश्यकता है । सूरिजी ने कहा तुम्हारे जो जहाज आये हैं उनमें रेती सी दीखती है वास्तव में वह रेती नहीं पर तेजमतुरी है जिससे लोहे का सुवर्ण बन जाता है ।

बस, फिर तो कहना ही क्या था ? एक तरफ तो देव की सहायता और दूसरी तरफ द्रव्य की प्रचु-रता । जावड़ का उत्साह बढ़ गया । जावड़ सब साधन सामग्री एवं तक्षिला से लाई हुई मूर्ति लेकर श्रीसंघ

‡ उस समय तक्षिला ५०० जैनमन्दिरों से सुशोभित जैनियों का एक केन्द्र था ।

कर डालेंगी। इसके लिये मोनलदेवी का उदाहरण प्रमाणभूत है पर इसमें मुख्य कारण बालकों को धार्मिक शिक्षा अच्छी तरह से देना ही है। जैसे सोनलदेवी को दीं गई थी—

सोनलदेवी जब उपकेशपुर आई तो अपने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य आपके एवं आपके पूर्वजों के प्रयत्न से बहुत ग्राम नगरों का सुधार हो गया परन्तु अभी ऐसे बहुत ग्राम नगर पड़े हैं कि वहाँ आप जैसों के विहार की परमावश्यकता है। गुरु महाराज ने कहा सोनल तेरे सुसराल वाले तो सब वाममार्गी बतलाते हैं ? हाँ गुरुदेव ! जब ही तो मैं अर्ज कर रही हूँ कि आप उधर पधारें आपको बहुत लाभ होंगे। वहाँ के लोग बड़े ही सरल स्वभाव के एवं भद्रिक परिणामी हैं। गुरु महाराज ने फरमाया ठीक है सोनल ! अवसर देखा जायगा जब तेरा जाना होगा तब हम भी अवसर देखेंगे।

सोनलदेवी कुछ अर्सा तक उपकेशपुर में रही बाद अपनी सुसराल चली गई उसी समय आचार्य रत्नप्रभसूरि भ्रमण करते हुए वीरपुर नगर में पधार गये। वहाँ के संघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। इतना ही क्यों पर राजकन्या सोनल ने भी अपने सुसराल वालों को प्रेरणा करके सूरिजी का स्वागत करवाया और सोनलदेवी हमेशा व्याख्यान सुनने के लिए भी कोशिश किया करती थी। सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था। नगर भर में जहां देखो वहाँ सूरिजी एवं जैनधर्म की प्रशंसा हो रही थी। यही कारण था कि वहाँ के पाखण्डियों के आसन हिलने लगे। उन्होंने राजा एवं राजकुँवर तथा राजअन्तेवर में जा-जा कर बहुत कहना सुनना किया पर उनकी एक न चली। इस हालत में वे लोग जैनधर्म को नास्तिक धर्म बतला कर खूब पेट भर निन्दा करने लगे। आखिर राजा वीरधवल ने कहा कि मैं इस प्रकार एक त्यागी महात्मा की निन्दा सुनने को तैयार नहीं हूँ यदि आप अपनी सच्चाई बतलाना चाहते हो तो राजसभा में पण्डितों के सामने जैनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाइये। उन्होंने राजा का कहना स्वीकार कर लिय। अतः राजा ने सूरिजी से भी कहा पर सूरिजी तो शास्त्रार्थ के लिए पहिले से ही तैयार थे। राजा ने एक दिन मुकर्रर कर दोनों पक्षवालों को आमंत्रण पूर्वक राजसभा में बुलाये और जिस समय दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ उस समय राजसभा श्रोताओं से खचाखच भर गई थी तथा अच्छे २ निष्पक्ष एवं मध्यस्थ पण्डित भी उपस्थित थे। एक तरफ राज अन्तेवर एवं महिला समाज के लिए इन्तजाम कर रक्खा था जिसमें सोनलदेवी आदि राज अन्तेवर एवं नगर की महिलायें बैठ गई थीं।

वाममार्गियों के पास केवल एक ही शब्द था कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि वह वेद एवं वेद कथित ईश्वर और ईश्वर कथित यज्ञ को नहीं मानते हैं ?

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास एक पण्डित निधानमूर्ति नामक विद्वानमुनि थे उसने सूरिजी की आज्ञा लेकर उन वादियों से पूछा कि आप नास्तिक आस्तिक का क्या अर्थ करते हैं ? इस विषय में खूब वादविवाद चला। पं० निधानमूर्ति युवकावस्था में होने पर भी उनके शब्द बड़े ही धैर्य गांभीर्य माधुर्य और प्रमाण एवं युक्ति मय निकलते थे कि जिसका प्रभाव सभा पर तो हुआ ही था पर उन वाममार्गियों पर भी इस कदर हुआ कि वे मिथ्या पंथ का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गये और सूरिजी ने उन लोगों को दीक्षा दे अपने शिष्य बना लिये। फिर राजा प्रजा का तो कहना ही क्या था वे सबके सब जैनधर्म में दीक्षित हो जैन श्रावक बन गये और साथ में सूरिजी से चतुर्मास की विनती बड़े ही आग्रह से की और लाभालाभ का कारण जानकर सूरिजी ने चतुर्मास वहां ही कर दिया।

# १७—आचार्य यक्षदेव सूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स यक्षदेव पदयुक् सूरिर्नृपस्य सुतः ।
विद्या ज्ञान कलाधरो न विजहौ धर्मं स्वकीयं च यः ॥
दुष्कालेऽपि च वज्रसेन विदुषः सूरेः सुशिष्यान् सुधीः ।
जज्ञौ ये तु निवृत्ति विद्याधर पुङ् नागेन्द्र चान्द्रान्वयाः ॥
जाताः जैन समाज लोक विषये कर्त्तोपकारस्य ये ।
भूरेः सूरिरयं कदापि न हि किं विस्मार्य कार्योऽस्ति वा ॥
किन्त्वेकं कर वा च वद्ध करता युक्तं सदाभ्यर्थयन् ।
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवन् प्रेम्णा कटाक्षं तव ॥

आचार्यश्री यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपका जन्म वीरपुर नगर के महान प्रतापी राजा वीरधवल की विदुषी पट्टराज्ञी गुनसेना की पवित्र कुक्ष से हुआ था और आपका शुभ नाम वीरसेन रक्खा था। आपके हाथ पैरों की रेखा और शरीर में रहे हुए शुभ लक्षण आपके भावी होनहार की शुभ सूचना कर रहे थे। आपका पालन पोषण सब क्षत्रियोचित हो रहा था। आप वर्ण में क्षत्री थे पर विद्या में तो ब्राह्मण वर्ण के सदृश्य ही थे कि बालभाव मुक्त होते ही आपके पिताश्री ने महोत्सवपूर्वक विद्यालय में प्रविष्ट किया पर आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अपने सहपाठियों में सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। कहा भी है कि 'बुद्धि कर्मानुसारणी' जिन जीवों ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की एवं देवी सरस्वती की आराधना की हो उनके लिये इस प्रकार शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल की बात नहीं है। राजकुँवर वीरसेन आठ वर्ष की पढ़ाई में पुरुष की ७२ कलाओं में एवं राजतंत्र चलाने में विज्ञ बन गया।

जब राजकुँवर वीरसेन सोलह वर्ष का हुआ तो उसकी शादी के लिये अनेक प्रस्ताव मय चित्रों के आये उसमें उपकेशपुर नगर के राव नरसिंह की सुशीला पुत्री सोनलदेवी के साथ वीरसेन का सम्बन्ध (सगाई) कर दी समयान्तर बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। राजकन्या सोनलदेवी के माता पिता जैन-धर्मोपासक थे अतः सोनलदेवी जैनधर्मोपासिका हो यह तो एक स्वभाविक बात है। इतना ही क्यों पर सोनलदेवी को बचपन से ही धार्मिक ज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी कि अपना षट्कर्म एवं क्रिया विशेष में सदैव रत रहती थी। जैनमुनि एवं साध्वियों से सोनल ने जैनधर्म के दार्शनिक एवं तात्त्विक ज्ञान का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था जिसमें भी कर्म सिद्धान्त पर तो उसकी अटल श्रद्धा एवं विशेष रुचि थी।

विवाह होने पर सोनलदेवी अपनी सुसराल जाती है और वहां उसकी कसौटी का समय उपस्थित होता है। वाममार्गियों ने एक ऐसा भी रिवाज कर रक्खा था कि कोई भी व्यक्ति परण के आवे तो नगर में या नगर के बाहर जितने देवी देव हों उन सब की जात दें। तदनुसार वीरसेन और सोनलदेवी को भी

उपाध्याय, क्षमाकनसा आदि सप्त साधुओं को वाचनाचार्य्य मुनि पद्मविशाल आदि ७ साधुओं को पण्डित पद आदि पदवियां प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की उस समय एक तो साधुओं की संख्या अधिक थी दूसरे साधुओं को पृथक २ प्रान्तों में विहार करना पड़ता था अतः उन साधुओं की सार संभाल एवं आलोचना देने वगैरह के लिये पदवीधरों की आवश्यकता भी थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि महान् प्रभावशाली एवं जैनधर्म के प्रचारक एक वीर आचार्य थे। आपने अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया। कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी एवं कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की मुनिदीक्षा दी। कई मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठायें करवाई। कई नगरों से बड़े २ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की कई स्थानों में राजसभाओं में बौद्ध एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कई दुष्कालों में देशवासी भाइयों की रक्षा का उपदेश देकर उनको सहायता पहुँचाई कई स्थानों में असंख्य मूक प्राणियों की बली रूप यज्ञप्रथा को उन्मूलन कर उन जीवों को अभयदान दिलवाया और कई जनोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया इत्यादि जैन समाज पर ही नहीं पर अखिल भारत पर आपका महान उपकार हुआ है।

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन में लिखा गया है कि आपके समय बारह वर्षीय दुकाल के कारण जैन-श्रमणों के पठन पाठन स्वाध्याय ध्यान एवं आगम वाचना बन्द सी हो गई थी और साधुओं की दशा भी छिन्न भिन्न हो गई थी। और बाद थोड़ा ही असों में आर्यो वज्रसेन के समय दूसरा जन संहार बारह काली दुकाल पड़ गया जब दुकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आर्य्य वज्रस्वामी के साधु साध्विय को भी एकत्र कर उन श्रमण संघ की सर्व प्रकार की व्यवस्था कर पुनः संगठन किया था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों* में मिलता है। जिसका भावार्थ

* तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियाँ निधि। दशपूर्वधरोवज्रस्वामी मुख्यभवयदा
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणि। वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गेऽगुबहुसाधवः ॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन्। अभेलयन्यक्षदेवाचार्यो चन्द्रगणे तथा ॥
सदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रव्राजनाविधौ। धाद्यानाँ वास निक्षेपे, चन्द्रगच्छ प्रकीर्त्यंते ॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रशाखाऽपि संमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते तत' ॥
शतानि पंच साधूनां, पुनगच्छेऽपिमिळन्निह। शतानि सप्त साध्वीनां, तयोपाध्याय सप्तकम् ॥
दशद्वौवाचनाचार्या, चत्वारो गुरवस्तथा। प्रवर्तकौ द्वावभूतां, तथैवोभे महत्तरे ॥
द्वादशस्तु प्रवर्तिन्य', सुमीति द्वौ महत्तरौ। मिलितौ चन्द्रगच्छा त. सङ्घयेयं कथ्यते गणे ॥

उपकेशगच्छ चरित्र

"एवं अनुक्रमगे श्रीवीरात् ५८५ वर्षे श्री यक्षदेवसूरिर्बिभूव महाप्रभावकर्त्ता, द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष मध्ये वज्रस्वामि शिष्य वज्रसेनस्यगुरौ परलोक प्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चतस्त्र शाखा स्थापिता चान्द्र शाखा नागेन्द्र शाखा निर्वृत्ति शाखा विद्याधर शाखा इत्यादि"

"उपकेशगच्छ पट्टावली"

"तथा श्रीपार्श्वनाथजी से सातवें पट्ट ऊपर श्रीयक्षदेवसूरि हुये हैं वीरात् ५८५ वर्षे जिन्होंने बारह वर्षीय दुकाल में वज्रस्वामि के शिष्य वज्रसेन के परलोक हुये पिच्छे तिनके चार मुख्य शिष्य जिनको वज्रसेनजी ने सोपारक पट्टन में दीक्षा दीनी थी तिनके नाम से चार शाखा कुल स्थापन कर गये हैं १ नागेन्द्र २ चान्द्र ३ निर्वृति ४ विद्याधर ये चारों कुल जैनमत में प्रसिद्ध है इत्यादि"

"आचार्य विजयानन्दसूरि कृत–जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर पुस्तक पृ० ७०"

का दिन अच्छा है। सासुजी ने कहा लाडीजी ! आइये अपने गुरु आये हैं इनसे गुरुमंत्र सुनकर कंठी बन्धवा लीजिये। सोनलदेवी ने सोचा कि यह क्या पाखंड है। इनके गले में सोने की जनेऊ पड़ी हुई है पैरों में खड़ाऊं पहिने हुए हैं मुँह में तंबोल-पान है और स्त्रियों को भी छूते हैं यह कैसे गुरु हैं ! विनय के साथ सासुजी से कहा आपका कहना ठीक है कि गुरु बिना ज्ञान नहीं, गुरु बिना कल्याण नहीं। अतः मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि गुरु अवश्य करना चाहिये पर गुरु ऐसा करना चाहिये कि वह अपने कल्याण के साथ दूसरे का कल्याण कर सके। यदि सारंभी सपरिग्रही भी गुरु कहलाते हों तो फिर अपने और गुरु में फरक ही क्या है ?

सासुजी—लाडीजी ! आप ही बतलाइये फिर गुरु कैसे होते हैं ? लाडीजी ने कहा—सासुजी ! कनक कामिनी के त्यागी पंच महाव्रतधारी केवल संयम और शरीर के निर्वाह के लिये स्वल्प वस्त्र पात्र एवं शुद्ध सात्विक आहार पानी वह भी मधुकरी भिक्षा से अपना निर्वाह करते हों तथा उनके न मठ मकान होते हैं न किसी पदार्थ का संचय एवं संग्रह रखते हैं परन्तु केवल जनकल्याण की भावना के लिये शीतोष्णकाल के लिये एक मास और चतुर्मास में चार मास के अलावा कहीं अधिक नहीं ठहरते हैं। सासुजी ! ऐसे निस्पृही मुनियों को गुरु कहा जाता है।

पास में बैठे हुए बाबाजी बोल उठे कि माजी साहब आपके लाडीजी तो नास्तिक हैं। इनकी तो मंत्रों द्वारा शुद्धि करनी पड़ेगी। सोनलदेवी ने पूंछा कि पूज्य सासुजी ! आपकी आज्ञा हो तो मैं बाबाजी से शुद्धि के बारे में कुछ पूछू ? सासुजी ने कहा नहीं लाडीजी ! यह तो अपने गुरु हैं। गुरु के सामने बोलना महान पाप है। गुरु कहें सो मंजूर कर लेना ही अपना धर्म है। सोनलदेवी ने सोचा कि यहाँ तो जेट की जेट ही कच्ची है। अन्धविश्वास शायद इसका ही नाम होगा। परन्तु उतावल करने से काम नहीं बनेगा। अतः धीरे-धीरे ही काम लेना चाहिये। लाडीजी ने कहा ठीक है सासुजी मैंने गुरु तो आठ वर्ष की अवस्था में ही कर लिया था अब दुबारा गुरु करने की आवश्यकता नहीं है। सासु ने कहा ठीक है लाडीजी।

बाबाजी भी समझ गये कि यहाँ अपनी दाल गलने की नहीं है। अतः उठकर नौ दो ग्यारह हो गये।

दिन भर तो सासुजी के लाड़ लड़ाने में व्यतीत कर दिया। शाम को जब प्रतिक्रमण का समय हुआ तो कौतूहल देखने को बहुत औरतें आगईं। उनको भी प्रतिक्रमण में शामिल बैठा ली। उठ बैठादि क्रिया करना तो उनके लिए कठिन था पर उन्होंने मजाक-मजाक में घंटा भर सब क्रिया की। सोनलदेवी कई-कई शब्दों के अर्थ भी समझाया करती थी जिसमें गृहस्थ धर्म के व्रत और अतिचारों की उनको जानकारी होने लगी। प्रतिक्रमण क्रिया समाप्त हो गई तो भी औरतें लाडीजी से दूर नहीं हुई। अतः वह देवगुरु और धर्म का थोड़ा-थोड़ा स्वरूप समझाने लगी। साथ में पाखंडियों के माने हुए देवगुरु धर्म के ऐसे दोष बतलाये कि जिससे उनको घृणा होने लग गई। केवल उन औरतों में ही नहीं परन्तु सोनलदेवी ने तो अपने पतिदेव पर भी अपने धर्म का इतना प्रभाव डाला कि मांस और मदिरा से उनको घृणा आने लगी। सोनलदेवी केवल दश ही दिन सुसराल में रही थी पर अपने धर्म की सुगन्ध सर्वत्र फैला दी।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के क्षत्रियों की शुद्धिकर जैनधर्म में दीक्षित किये थे उस समय अन्य क्षत्रियों से बेटी व्यवहार खुला रखने का यही कारण था कि उनकी पुत्री को जैन क्षत्रिय अपने यहाँ लावेंगे तो उनका उद्धार करेंगे और जैन क्षत्रियों की पुत्री उनके घर जावेंगी तो उनके घर का भी उद्धार

म्लेच्छों का आक्रमणसमय सूरीजीकैद में व साधु श्रावक मूर्तियाँ शिरपर उठाकर सुरक्षितस्थानमें लेजा रहे हैं

सूरीजी को एकेले देख, खटकूंप नगर के श्रावकों ने अपने पुत्रों को दीक्षा दिला रहे हैं।
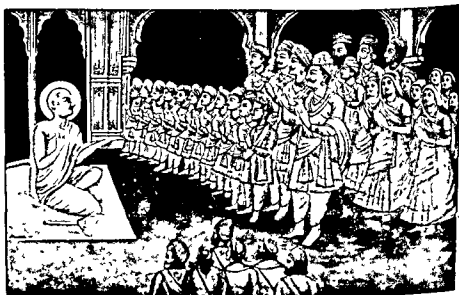
परम श्रावका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में वीरपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधुओं को

वाला आता था तो उनको चन्द्रादि मुनियों के ही शिष्य बना दिये जाते थे। अतः चारों मुनियों के शिष्य भी गहरी तादाद में हो गये। अतः यक्षदेवसूरि ने उन चारों मुनियों को योग्य समझ कर सूरि पद से विभूषित किया। तदन्तर उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार मानते हुये सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। आचार्य यक्षदेवसूरि का प्रभाव ही ऐसा था कि आपके दिये हुए ज्ञान और सूरि पद से वे चारों सूरि महान प्रभाविक हुये। और उन चारों के नाम से चार कुल प्रसिद्ध हुये जैसे चन्द्र-कुल, नागेन्द्रकुल, निर्वृतिकुल और विद्याधर कुल।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में आर्य्यवज्रसैन के चार शिष्यों से चार शाखायें निकली जैसे—

१—आर्य्य नागल से नागली शाखा निकली २—आर्य्य पौमिल से पौमिली शाखा निकली

३—आर्य्य जयन्त से जयन्ति शाखा निकली ४—आर्य्य तापस से तापसी शाखा निकली

इन चार शाखाओं के अलावा चन्द्र, नागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर का नाम कल्पसूत्र की स्थविरावली में नहीं आया है। शायद इसका यह कारण हो सकता है कि आर्य्य वज्रसैन के पहिले नागलादि चार शिष्य मुख्य होंगे कि जिन्हों का उल्लेख कल्पसूत्र में कर दिया। बाद में दुष्काल के अन्त में चन्द्रादि चार मुनियों को दीक्षा दी और वज्रसैन का तुरत ही स्वर्गवास हो गया और बाद में यक्षदेवसूरि के कर-कमलों से इनको सूरि बनाये थे। अतः कल्पसूत्र में इनका नामोल्लेख नहीं किया हो तो कोई विरोध की बात नहीं है। कारण विक्रम की दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी के ग्रन्थों में इन चन्द्रादि चारों कुलों के प्रमाण मिलते हैं। और इन कुलों की परम्परा संतान में महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं जैसे कि—

१—चन्द्रकुल में—अभयदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, जगचन्द्रसूरि आदि आचार्य

२—नागेन्द्रकुल में—आचार्य उदयप्रभसूरि, मल्लीषेणसूरि आदि आचार्य

३—निर्वृति कुल में—दुणाचार्य्य, सूराचार्य, गर्गर्षि, दुर्गर्षि, सिद्धर्षि आदि आचार्य

४—विद्याधर कुल में—जिनदत्तसूरि और आपके शिष्य १४४४ ग्रन्थों के कर्त्ता हरिभद्रसूरि इत्यादि उल्लेख मिलते हैं। हाँ, पहिले ये चारों कुलों के नाम से प्रसिद्ध थे पर बाद में इन कुलों ने गच्छों का रूप धारण कर लिया। अतः शिलालेखों एवं अन्य प्रशस्तियों में चन्द्रगच्छादि के नाम से भी उल्लेख दृष्टि गोचर होते हैं जिसको हम आगे चल कर यथा समय लिखेंगे।

आचार्य यक्षदेवसूरि का जैन समाज पर अर्थात् आज जितने गच्छ विद्यमान हैं उन सब पर बड़ा भारी उपकार है। कारण, जैन संसार में जितने गच्छ पैदा हुये थे उन चार कुलों से ही हुये हैं और चार कुलों के संस्थापक आचार्य यक्षदेव सूरि ही थे।

इनके अलावा उस समय बार-बार दुकाल का पड़ना, विधर्मियों के संगठित हुमले होना जिससे विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये जैन समाज का रक्षण करना कोई साधारण बात नहीं थी। पर उन शासन रक्षक वीर आचार्यों ने हजारों मुसीबतों को सहन कर जैनधर्म को जीवित रक्खा। यदि उन महान् उपकारी महात्माओं का हम क्षण भर भी उपकार भूल जावें तो हमारे जैसा कृतघ्नी संसार में कौन होगा ?

इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि विक्रम पूर्व दो तीन शताब्दियों से विदेशियों के भारत पर आक्रमण होने शुरू हुये थे और वे क्रमशः विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक चालू ही रहे थे। आचार्य यक्षदेव सूरि के समय भी विदेशियों के आक्रमण खूब जोरों से हो रहे थे उन अनार्यों ने धनमाल लूटने में भ-

आज अकेले कैसे आये। श्रावकों ने विनय के साथ पूछा और सूरिजी ने सब हाल कहा। इस पर संघ अग्रेश्वरों ने सूरिजी को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया कि जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह न कर के जैन शासन के आधार रूप प्रभुप्रतिमा की रक्षा की है इत्यादि। उपस्थित लोगों में से किसी ने कहा कि केवल धन्यवाद देने से ही आपकी भक्ति नहीं हो जाती है पर अपने आचार्य अकेले शोभा नहीं देते हैं अतः अपने २ पुत्रों को सूरिजी के शिष्य बना कर शासन की शोभा को बढ़ाइये। सच्ची भक्ति तब हो कही जायगी।

*शासन-शुभचिन्तकों ने उसी बैठक पर एक चिट्ठा (टीप) लिखा। और कहा कि कौन कितने पुत्र देंगे?* इस पर किसी ने एक लिखाया, किसी ने दो लिखाया इस प्रकार एकादश, नवयुवकों को लाकर सूरिजी की सेवा में भेंट कर दिया जिन्हों को सूरिजी ने दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये शिष्यों का चिट्ठा अभि चालुही था। *न जाने इस चिट्ठा में कितने भावुकों के नाम लिखे गये होंगे—*

अहाहा! धन्य है उस समय के श्रावकों को कि धर्म रक्षा के निमित्त पैसों की भांति चिट्ठा मांड कर अपने प्यारे पुत्रों को सूरिजी के चरणों में अर्पण कर दिये जिससे सूरिजी का कितना उत्साह बढ़ा होगा?

इधर एकादस युवकों को सूरिजी ने दीक्षा दी और उधर से मूर्तियां लेकर जानेवाले *सब मुनि गण* तथा म्लेच्छों ने पकड़ लिये थे वे मुनि भी लौट कर सूरिजी के पास आकर शामिल हो गये।

आचार्य यक्षदेवसूरि का समय दशपूर्वधरों का समय था। उस समय मूर्त्तिवाद अपनी उत्कृष्ट हद पर पहुँचा हुआ था। आचार्य वज्रसूरि बीस लक्ष पुष्प पूजा के लिये लाये थे। आचार्य यक्षदेवसूरि के साधु रात्रि में सिर पर मूर्त्तियें उठा कर स्थानान्तर जाकर मूर्त्तियों की रक्षा की। उस समय रत्न और सुवर्ण मय मूर्त्तियां बनाई जाती थीं। एक एक मन्दिर तथा एक एक संघ में करोड़ों द्रव्य व्यय किया जाता था और उन पुन्य कार्यों से उनके पास लक्ष्मी भी अखूट हो रहती थी।

इस प्रकार जैनधर्म का रक्षण करते हुये सूरिजी महाराज क्रमशः विहार करके आघाट नगर में पधारे वहां भी सूरिजी के उपदेश से बहुत भावुकों ने सूरिजी के पास दीक्षा धारण की।

---

तत. पुनर्यक्षदेव सूरयः केचनाभवन्। विहरन्त. क्रमेणेयु, स्ते श्रीमुग्धपुरे वरे ॥
जाते म्लेच्छ भये तस्मि, न्नुदन्ताविगमायते। प्राहैवुः शासनसुरीं, साक्षता म्लेच्छदेवतैः ॥
तेचागत्यान्वह प्रोचु, म्लेच्छः सन्ति स्वमंदिरे। तद्वचः प्रत्ययात् पूज्या, स्तदेवा कथयन् जने ॥
*देवकांड इवाकस्मा, न्म्लेच्छ सैन्ये समागते। एत्य शासनदेवीद्रा, गूचे म्लेच्छा समागताः ॥*
विश्वासे तव संनद्ध. स्त्वं चिरादागता कथम्। किं करोमि प्रभो! तैस्तु, बद्धाहं व्यंतरैर्यंत. ॥
सम्प्रत्येव विमुक्तास्मि, तत्किं मे स्वर्ग प्रभो। इत्याख्यायगता देवो, सूरिर्देवगृहेगमत् ॥
देवताऽवसरं दत्त्वा, प्रैषीत् साधु द्वयं प्रभुः। मुनि पचशतीयुक्तः, कार्यो सर्गे स्वयं स्थित' ॥
प्रतिमास्था धृताः केऽपि, मारिता केऽपि साधव'। सूरिं बंदिस्थितः श्राद्धो, म्लेच्छी भूतोन्त्वमोचयत् ॥
*दत्वा सह स्वपुरस्थान्, स्तद्रूपपुरे प्रभुम्। प्रापयच सुखेनैव, भाग्यं जागर्तियन्नृणाम् ॥*
श्रावकैस्तत्र वास्तव्यै, र्ददिरे निज नंदना'। दीक्षयामास भगवां, स्तानेकादश समितान् ॥
द्वाव'यागाय मिलितौ, गृहीत्वा देवतास्मरम्। तत अघाट नगरे, ऽगात् प्रभुः सपरिच्छदः ॥
तत्राऽपि श्रावका' पुत्रान्, गच्छीवृत्ति कृते ददुः। केऽपि संसार वैराग्याद्, दीक्षामाददिरे
श्री वीरमादेकशते, किंचदभ्यधिके गते। तेऽजायन्त यक्षदेवा, चार्यां वर्य्यं चरित्रिणः ॥
स्तम्भतीर्थपुरे संघ, कारित' पित्तलामयः। श्री पार्श्वस्थापितो येन, मंदिरेथ मुनीश्वरैः ॥

यह है कि दशपूर्वधर आचार्य श्री वज्रसूरि के सदृश्य अनेक गुणनिधि महाप्रभाविक आचार्य यक्षदेवसूरि भूमण्डलपर विहार करते थे, उससमय बारहवर्षीय जनसंहार करने वाला भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिये मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे तो साधुओं के लिए भिक्षा का तो कहना ही क्या था ? यदि कहीं थोड़ी बहुत भिक्षा मिल भी जाय तो सुख से खाने कौन देता था ? उस भयंकर दुष्काल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जावे तो भिक्षुक उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे। इस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशन पूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे हुए मुनियों ने ज्यों त्यों कर उस अकाल रूपी अटवी का उल्लंघन किया जब दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो उस समय एक आचार्य यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर एवं मुख्याचार्य रहे थे कि दुकाल से बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र कर पुनः संगठन कर सके अतः उन शासन शुभचिन्तक आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के साथ ही साथ आर्य्य वज्रसूरि के साधु साध्वियों को भी एकत्र किये तो ५०० साधु ७०० साध्वियां ७ उपाध्याय १२ वाचनाचार्य ४ गुरु पदधर २ प्रवृतक २ महत्तर (पद विशेष) १२ प्रवर्तनी २ महत्तरिका इत्यादि। परन्तु दुकाल की भीषण मार से इन सब का पठन पाठन बन्ध सा हो गया था पूर्व पढ़ा हुआ ज्ञान भी प्रायः विस्मृत सा हो गया। उस समय अनुयोगधार केवल एक आचार्य यक्षदेव सूरि ही रह गये थे अतः उन साधुओं को आगमों की वाचना के लिये सोपार पट्टन नगर योग्य समझ कर श्रीसंघ की अत्याग्रह से सब साधु साध्वियों सोपारपट्टन की ओर पधार रहे थे।

आर्य्य वज्रसेनसूरि सोपारपट्टन पधार कर जिनदास सेठ की ईश्वरी सेठानी के चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर नाम के चार पुत्रों की दीक्षा दी थी और आप श्री अपने शिष्यों के साथ वहीं विराजते थे।

जिस समय आचार्य यक्षदेवसूरि सोपारपट्टन पधारे उस समय आर्य्य वज्रसेन अपने शिष्यों के साथ तथा वहाँ का श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब उत्साह पूर्वक स्वागत किया। जब आचार्य यक्षदेवसूरि श्रमणसंघ को वाचना देना आरम्भ किया तो वज्रसेनसूरि के शिष्य चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर भी आगम वाचना लेने में शामिल हो गये थे—

सब मुनियों की वाचना चलती ही थी बीच में ही आर्य्य वज्रसैनसूरि का आकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार गुरु महाराज का वियोग सघ के लिये दुःख प्रद था पर उन नूतन शिष्यों के लिये तो और भी बड़ा भारी रञ्ज का करण हुआ पर आचार्य यक्षदेवसूरि ने उनको धैर्य्य दिलाया और कहा कि इस बात का तो मुझे भी बड़ा भारी रंज है पर इसका उपाय ही क्या है। जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा वह ही हुआ है। तुम किसी प्रकार से घबराना नहीं मैं तुमको ज्ञान दूंगा और शिष्य समुदाय बना कर पदवी प्रदान कर दूंगा कि आप अपने शासन का संचालन करने में समर्थ बन जाओगे इत्यादि।

जब साधुओं के आगम वाचना समाप्त हुई तो सूरिजी का महान उपकार मानते हुए साधु सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। और चन्द्रादि चारों मुनि सूरिजी की सेवा में ही रहे।

इस वाचना के पूर्व जैनागम पुस्तकों पर प्रायः नहीं लिखे गये थे यदि थोड़ा बहुत लिखा भी होगा तो दुष्काल के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया होगा अतः सूरिजी ने भविष्य का विचार करके श्रावकों को उपदेश दिया कि कई श्रावकों ने द्रव्य व्यय कर के जितने आगमों की वाचना हुई थी उन सबकों पुस्तकों अर्थात् ताड़पत्रादि पर लिखवा लिया कि भविष्य में ज्ञान विच्छेद नहीं हो सके। उस समय जो कोई दीक्षा लेने

आचार्यश्रीयक्षदेवसूरि ( समय वि० सं० ११५ )

सोपार पट्टन में श्रमण सच को आगम वाचना दे रहे हैं।

कृष्णार्षि की मूर्ति ( पृष्ट ५३० )
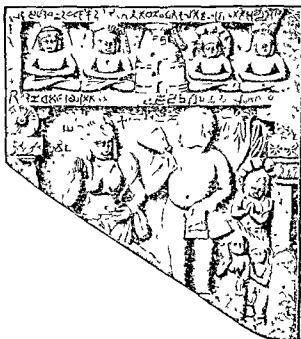
तीर्यो को बहुत सताया। इतना ही क्यों पर उन लोभान्धों ने देवस्थानों पर भी हमले कर खूब धन लूटा। और धन लुटने के साथ उन्होंने तो धर्मान्धता के कारण देवस्थानों की मूर्तियाँ वगैरह कीमती पदार्थों को भी तोड़ फोड़कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला था।

एक समय आचार्य यक्षदेवसूरि अपने ५०० शिष्यों के साथ मुग्धपुर नगर में विराजते थे। आपने सुना कि आस पास में म्लेच्छ लोग ग्रामों को लूट रहे हैं। मन्दिर मूर्तियां तोड़ फोड़ कर नष्ट कर रहे हैं। इस हालत में श्री संघ को एकत्र किया और मन्दिरजी के रक्षण के लिये कहा पर विचारे श्रावक क्या कर सकते थे वे अपने धन जन की रक्षा करने में ही असमर्थ थे।

आचार्य श्री ने एक देवी को बुला कर कहा कि तुम म्लेच्छों की खबर लाओ कि वे कहां पर हैं और यहां कब तक आवेंगे इत्यादि। देवी म्लेच्छों के पास गई पर कर्म योग से म्लेच्छों के देवों ने उस देवी को पकड़ कर अपने कब्जे में करली अतः देवी वापिस न आ सकी इधर म्लेच्छों के देव सूरिजी के पास आकर कहने लगे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ पहुँचे हैं। सूरिजी अपने साधुओं को लेकर मन्दिर में गये तो वहां कोई भी म्लेच्छ नहीं पाये। इस प्रकार म्लेच्छ देव हर समय यही कहते रहे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ गये हैं२।

आचार्य ने सोचा कि म्लेच्छों के आने पर मूर्तियों का रक्षण होना मुश्किल है अतः पहिले से ही इन्तजाम करना जरूरी है अतः श्रावकों को बुलाकर कहा कि अपने प्राण चले जाय तो परवाह नहीं पर त्रिजगपूजनीय परमात्मा की मूर्तियों की रक्षा करना अपना खास कर्त्तव्य है इत्यादि उपदेश दिया जिससे श्रावक तैयार हो गये। पट्टावली में लिखा है कि बहुत से श्रावक और कई साधु रात्रि समय मूर्त्तियों को सिर पर उठा कर किसी सुरक्षित स्थान में चले गये. इधर देवी म्लेच्छों से छुटकर सूरिजी के पास आई और कहने लगी कि पूज्यवर! अब म्लेच्छ आ रहे हैं। सूरिजी ने देवी को उपालम्भ दिया कि तू इतनी देर से कैसे आई! देवी ने कहा पूज्य! इसमें मेरा कसूर नहीं है। कारण, मेरी असावधानी से म्लेच्छदेवों ने मुझे पकड़ लिया था अतः मैं छुटते ही आपके पास इत्तला देने को आई हूँ।

खैर दो साधुओं को पहरायत रख सूरिजी ने शेष साधुओं के साथ ध्यान लगा दिया इतने में म्लेच्छ मन्दिर में गये तो वहाँ मूर्त्तियाँ नहीं पाई। अतः वे गुस्से में लाल बबूल होकर सूरिजी के पास आये। और कहा कि बतलाओ मूर्तियाँ वरन् तुम सब को जान से मार डाला जायगा ? पर सूरिजी तो थे ध्यान में उत्तर नहीं दिया अतः म्लेच्छों ने कई साधुओं को जान से मार डाला, कई को घायल किया, कई को मार पीट कर कष्ट पहुँचाया और सूरिजी को पकड़ कर क़ैद कर लिया। इतना कष्ट सहन करते हुये भी सूरिजी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुए और मूर्त्तियों की रक्षा कर ही ली। आहाहा! उस समय जैन जनता की मूर्त्तियों पर कैसी श्रद्धा थी कि वे प्राणों की न्योछावर भी करने को तैयार रहते थे, रात्रि में चलना या मूर्ति सिर पर उठाना साधुओं को कल्पता नहीं है पर "आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति" इस सूत्रानुसार साधु ऐसा कार्य्य भी कर सकते हैं। सूरिजी को कैद कर लिया था पर उनकी निगरानी के लिए जिस सिपाही को रक्खा था वह पहिले जैन था उसे म्लेच्छोंने जबरन पतित बना लिया था उसने अपना कर्तव्य समझ कर सूरिजी को छोड़ दिया और अपने खानगी एक आदमी को साथ में दे कर सूरिजी को सकुशल खटकूप नगर पहुँचा दिया।

सूरिजी कुशलता पूर्वक खटकूपनगर पहुँच गये पर थे आप अकेले ही जिन्हों को देख कर संघ के लोगों ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि पांचसौ मुनियों के साथ विहार करने वाले गच्छनायकसूरिजी

१३—चोपणी के मोरख गोत्रिय शाह भैंसा ने दीक्षा ली ।

१४—विराट नगरे श्रेष्टि गोत्रिय मंत्री रणधीर ने दीक्षा ली ।

१५—संघपुर के श्रीश्रीमाल नाथा हरपण ने सूरिजी के पास दीक्षा ली ।

इत्यादि अनेक उदाहरण हैं । आपके शासन समय केवल एक उपकेशगच्छ में ३००० साधु साध्वियां भूमण्डल पर विहार करते थे पर यह संख्या पहिले से बहुत कम थी । कारण, बारबार दुकाल के कारण साधु संख्या बहुत कम हो गई थी । फिर भी आपश्री ने अनेक प्रान्तों में विहार कर पुनः श्रमण संख्या में खूब वृद्धि की थी अब थोड़े से तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालने वालों की भी संख्या लिख देता हूँ ।

१—घोघावती नगरी से कर्णाट गोत्रिय शाह मालु ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाल कर पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया आपकी संतान मालु नाम से कहलाई जाने लगी ।

२—दसारी ग्राम से आदित्यनाग देपाल रामा ने श्रीशत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला । स्वधर्मियों को सोना मुहर की पहरामणी दी जिसमें ९ लक्ष्य द्रव्य व्यय किया ।

३—फेकावती नगरी से श्रेष्टि गोत्रिय अरजुन ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला ।

४—भिन्नमाल नगर से प्राग्वट आदू ने श्रीशिखरजी का संघ निकालकर चतुर्विध श्री संघ को पूर्व की तमाम यात्रायें करवाई । स्वधर्मी भाइयों को पहरामणी में एक एक मोतियों की माला दी । इस संघ में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया ।

५—सत्यपुरी के श्रीमाल लाखण ने शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर यात्रा की ।

६—डमरेलपुर के श्रेष्टिगोत्रिय मंत्री नागड़ ने श्रीशिखरजी का संघ निकाला सब तीर्थों की यात्रा की साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी जिसमें १९ लक्ष रुपये खर्च किये ।

७—उपकेशपुर से सुचंती गोत्रिय शाह जिनदेव ने श्रीशत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

८—उज्जैन नगरी से आदित्यनाग गोत्रिय शाह सलखण वीरमदे ने श्री शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

९—वराडी ग्राम से चरड़ गोत्रिय शा० लुंबा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला ।

१०—खटकुंप नगर से सुघड़ गोत्रिय शाह पीरा ने शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला ।

११—विजोड़ा से लुंग गोत्रिय शाह भीमा ने श्री शिखरजी का संघ निकाला ।

१२—उपकेशपुर के भूरि गोत्रिय शाह लिंगा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला ।

यह तो केवल नाम मात्र की सूची दी है पर इस प्रकार सूरिजी तथा आपके पट्टधर शिष्यों के उपदेश से पृथक् २ प्रान्तों से अनेक संघ निकलवाकर तीर्थों की यात्रा कर अनंत पुन्योपार्जन किया है।

इसके अलावा सूरिजी ने जैन-मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया ।

१—मेदनीपुर के बलाह गोत्रिय शाह मेघा के कराये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

२—हर्षपुर के तप्तभट गोत्रिय शाह धना के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

३—वल्लभी के प्राग्वटवंशीय शाह गोखला के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

४—नागर नगरे सुघड़ गोत्रिय शाह देवा के बनाये आदीश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

सोपार पट्टन में आचार्य यक्षदेवसूरि चन्द्रादि चारों मुनियों को आगम वाचना दे रहे हैं

परिचय पृष्ट ५०५
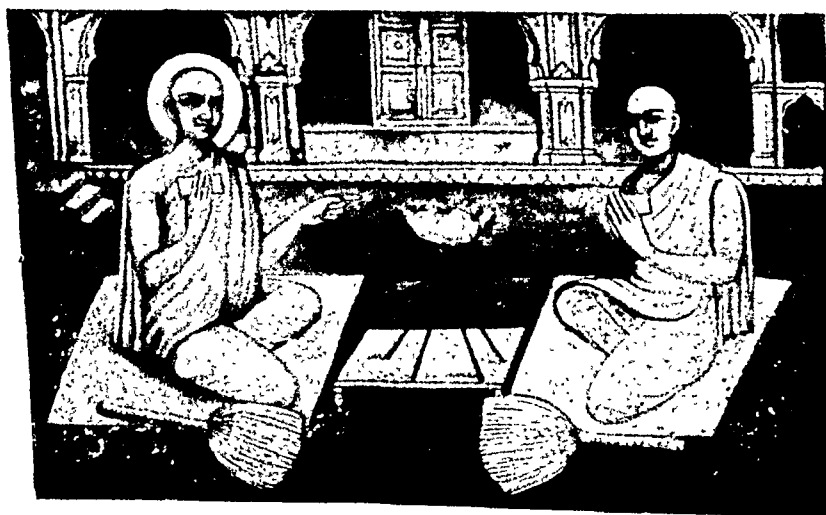
आचार्य देवगुप्तसूरि से आर्य देवर्द्धि का ज्ञानाभ्यास

परिचय पृष्ट ८८९

# भगवान् महावीर की परम्परा

भगवान महावीर की परम्परा—आर्य्यवज्रसूरि के यों तो हजारों साधु थे परन्तु उनमें ३ साधु मुख्य थे १-आर्य्यवज्रसैन २-आर्य पद्म ३-आर्य रथ। आर्य्य वज्रसैन से नागली शाखा, आर्य पद्म से पद्म शाखा, और आर्य रथ से जयन्ति शाखा निकली। इस शाखा की पट्टावली कल्पसूत्र में दी है जिसको हम आगे प्रसंगोपात देंगे। यहाँ पर तो केवल आर्य्यवज्रसैन का ही सम्बन्ध लिखा जा रहा है।

आर्य्यवज्रसैन जैन संसार में जैनधर्म को जीवित रखने वाले थे। आपने अपने जीवन में दो भयंकर बारहवर्षीय दुकाल देखे थे। एक बारहवर्षीय दुकाल आर्य्यवज्र स्वामी के समय पड़ा था। उस समय वज्र-स्वामी ने श्रीसंघ को पट्ट पर बैठा के जहाँ सुकाल बरतता था वहाँ ले गये और दूसरा १२ वर्षीय दुकाल स्वयं वज्रसैन के समय पड़ा। जिसकी भविष्यवाणी आर्य्य वज्र ने वज्रसैन को पहिले ही कर दी थी कि जब एक लक्ष मुद्राओं के मूल्य से एक वक्त का भोजन बनेगा उसके बाद तत्काल ( तीन दिन ) ही सुकाल हो जायगा। उस दुकाल के विकट समय में जैनाचार्य्यों ने किस प्रकार जैनधर्म को जीवित रक्खा। इसका अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है। वह दुकाल एक दो वर्ष का नहीं पर लगातार १२ वर्ष तक दुष्काल पड़ता ही रहा था। उस समय बड़े-बड़े धनाढ्यों को धन के बदले धान मिलना दुष्कर होगया तो बिचारे निर्धन लोगों की तो बात ही कौन पूछता था ? जब गृहस्थों का यह हाल था तो केवल भिक्षावृति पर अपना जीवन गुजारने वाले साधुओं का निर्वाह तो होना कितना मुश्किल हो गया था। अतः बहुत से साधु शुद्ध आहार पानी के अभाव अनशन कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गये। कई साधु कठोर तपश्चर्य्या में लग गये तथा बहुत से साधु इधर उधर कई प्रान्तों में चले गये कि जहाँ अपना गुजारा हो सके।

दुष्काल की भयंकरता ने जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। धनाढ्यों को मोतियों के बदले ज्वार नहीं मिलती थी। अतः कई लोगों ने विष भक्षण कर दुकाल से अपना पीछा छुड़ाया था। समय ऐसा आ गया था कि कोई व्यक्ति अपने यहाँ से भोजन कर तत्काल घर बाहर निकल जाता तो भिक्षुक लोग (मंगता) उनका उदर चीर के भोजन निकाल कर खा जाता था। इससे अधिक भयंकरता क्या हो सकती है। यह दुकाल एक दो प्रान्तों में ही नहीं था पर प्रायः सब भारत में फैला हुआ था। हाँ कई कई प्रान्तों में सुकाल भी वर्तता था पर वह प्रान्त भी दुकाल की क्रूर दृष्टि से सर्वथा वंचित नहीं रहे थे। वज्रस्वामी एक पट पर संघ को बैठाकर महापुरी ( जगन्नाथपुरी ) में ले गये यहाँ सुकाल वर्तता था पर ऐसे प्रान्त बहुत कम थे।

एक समय का जिक्र है कि आचार्य वज्रसैनसूरि सोपारपट्टन में पधारे थे आपके शिष्य भिक्षा के लिये नगर में गये। उस समय भिक्षा का काम बड़ा ही कठिन था तथापि श्रावक लोगों की इतनी भक्ति थी कि उनको थोड़ा बहुत भोजन मिलता तो वे पहिले साधुओं को भिक्षा देकर ही भोजन करते थे। उस नगर में जिन-दास नाम का एक श्रावक बड़ा ही धनाढ्य था। आपके ईश्वरी नामकी स्त्री और कई पुत्र वगैरह बहुत सा कुटुम्ब भी था परन्तु दुष्काल के कारण घर में धन होने पर भी धान नहीं मिलता था मोतियों के बराबर ज्वार मिली वहाँ तक तो उन्होंने अपना गुजारा किया परन्तु यह आखिर का दिन था। सेठानी विष पीस रही थी कि आज जो कुछ धान पकाया जा रहा है उसमें विष डालकर सब खा पी कर सो जावेंगे कि जिससे सुविधा से मृत्यु हो जायगी। इनके अलावा दूसरा कोई उपाय ही नहीं था—

चरित्रकार ने इस घटना का समय विक्रम संवतके एकसौ से कुछ अधिक वर्ष व्यतीत होजाने के बाद का बतलाया है। जो ठीक मिलता हुआ है तदनन्तर सूरिजीमहाराज विहार करते हुते स्थम्भणपुर नगरमें पधारे। वहां के श्रीसंघ ने भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और सर्व धातुमय ( पीतळ ) भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा तैयार कराई थी। श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने उस मूर्त्ति की अंजनसिलाका की एवं प्रतिष्ठा करवाई जिसमें श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की प्रभावना की।

उस समय की विकट परिस्थिति के अन्दरभी आपने अपने दीर्घकालीन शासनमें अनेक प्रान्तों में घूम घूम कर अनेक भव्यों को दीक्षा देकर जैनश्रमण संघ की वृद्धि की क्योंकि आप जानते थे कि धर्म का रक्षण करने वाला श्रमणसंघ ही है। जितनी अधिक संख्या में साधु होंगे उतनेही विशालक्षेत्र में विहार हो सकेगा। अतः श्रमण संघ में वृद्धि करना खास जरूरी था। दूसरे उस दुष्काल की भयंकरता के कारण सुकाल हो जाने पर भी एक दो एवं थोड़े आदमी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जा नहीं सकते थे। अतः इच्छा के होते हुये भी वे दूर प्रदेश में रहे हुये तीर्थों की यात्रा नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि सूरिजी महाराज के उपदेश से कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की और धर्म को चिरस्थाई बनाने के लिये सूरिजी के उपदेश से कई दानवीरों ने अपनी चंचल लक्ष्मी को अचल बनाने के लिये बड़े २ मंदिरों का निर्माण करवा कर उनकी प्रतिष्ठायें भी सूरिजी से करवाई। इनके अलावा अजैनों को जैन बनाना तो आपके पूर्वजों से ही चला आया था और उस मशीन को भी आपने द्रुतगति से चलाई कि लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर जैन बनाये। कई दुष्कालों में जैन धनाढ्यों ने अर्बों खर्बों द्रव्य व्यय कर के दानशालायें खुलवा दी थीं और जहाँ तक अन्न मिला वहाँ तक सुंघामुघा मंगाकर दान दिया इत्यादि आचार्य श्री के शासन में अनेक शुभ कार्य हुये कि जिससे जैनधर्म की प्रभावना एवं वृद्धि हुई।

पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थों में जो आपके शासन समय कार्य हुये शुभ कार्य कि जिन्हों का बहुत उल्लेख मिलता है यदि उन सबको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र महाभारत सा ग्रन्थ बन जाता है परन्तु मैं यहां स्थानाभाव के कारण थोड़े से नामों का उल्लेख कर देता हूँ।

१—उपकेशपुर में संचेती गोत्रिय शाह नारायणादि कई मुमुक्षुओं ने दीक्षा ली।
२—धनपुर के प्राग्वट सेणा ने सूरिजी के चरणों में दीक्षा ली।
३—मुग्धपुर के तप्तभट गोत्रिय शाह राजा ने सपत्नीक दीक्षा ली।
४—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रिय मंत्री लाखण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।
५—कोरंटपुर के श्रीमाल सुजा रामा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
६—वामनपुर के भाद्रगोत्रीय देवा ने दो पुत्रों के साथ दीक्षा ली।
७—मथुरा के ब्राह्मण शंकरादि २४ ब्राह्मणों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
८—अरणी ग्राम के कुमट खेमा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
९—पालाट के क्षत्री बीजल ने सूरिजी पास दीक्षा ली।
१०—गाखला ग्राम के बलाह गोत्रिय शाह हंसादि ने दीक्षा ली।
११—माहली ग्राम के चिंचट गोत्रिय मुकन्दादि ९ नरों ने दीक्षा ली।
१२—चन्द्रावती के राव संगण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।

को वन्दन किया और कहा कि पूज्यवर ! आपने हम सब लोगों को जीवन प्रदान किया है और जिन चार पुत्रों के लिये फरमाये वे चारों पुत्र हाजिर हैं कृपा कर उनको दीक्षा देकर हमारे कुल का उद्धार करावे। चन्द्रादि चार पुत्रों को सेठानी ने पहले ही समझा दिये थे अतः वे चारों पुत्र दीक्षा लेने को तैयार हो गये। मुनियों ने सेठानी के दिये हुए चारों नवयुवकों को लेकर आर्य वज्रसेनसूरि के पास आये और सूरिजी ने उनको दीक्षा का स्वरूप समझा कर विधि विधान से दीक्षा दे दी।

उस दुकाल के अन्दर बहुत से मुनियों ने स्वर्गवास कर दिये थे और बचे हुए मुनियों में केवल एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर रहे थे और वे भ्रमण करते सोपारपट्टन में पधारे थे आचार्य यक्षदेवसूरि के जीवन में पाठक पढ़ आये थे कि यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आचार्य वज्रसूरि के शिष्य समुदाय से ५०० साधु ७०० साध्वियों वगैरह बचे हुए साधुओं को आगमों की वाचना देने के लिये सोपारपट्टन को ही पसन्द किया था कारण ऐसे बड़े नगर बिना इतने साधु साध्वियों का निर्वाह भी हो नहीं हो सकता था। ठीक उसी समय आर्य वज्रसेनसूरि चार शिष्यों को दीक्षा देकर आचार्य यक्षदेवसूरि के पास आकर प्रार्थना की कि इन चारों नूतन साधुओं को भी आप आगमों की वाचना देने की कृपा करावे यह महान् उपकार का कार्य है यक्षदेवसूरि ने कहा कि इतना कहने की आवश्यकता ही क्या है यह तो हमारा खास कर्तव्य ही है हम और आप पृथक् पृथक् नहीं पर शासन की सेवा करने में एक ही हैं। अतः सब साधु साध्वियों को आगमों की वाचना देना सूरिजी ने प्रारम्भ कर दिया परन्तु भवितव्यता ने ऐसा दृश्य बतलाया कि वाचना का कार्य तो चलता ही था बीच में ही आर्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। युग-प्रधान पट्टावली में आर्य वज्रसेनसूरि के लिये कहा है कि ९ वर्ष गृहस्थावास ११६ वर्ष सामान व्रत और ३ वर्ष युग-प्रधान पर रहकर १२८ वर्ष का सर्व आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पधार गये थे। अतः चन्द्रादि चार मुनियों को तथा दुकाल में बचे हुए साधुओं को आगमों की वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दी थी इतना ही क्यों पर चन्द्रादि चार मुनियों के शिष्य समुदाय बनवा कर उन चारों को सूरि पद भी आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दिया था तत्पश्चात् आचार्य चन्द्रसूरि आदि ने सूरिजी का परमोपकार मानते हुए सूरिजी की आज्ञा लेकर अन्यत्र विहार किया अतः दुकाल से बचे साधु साध्वियों तथा चन्द्रादि चारों सूरियों पर आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार हुआ है तथा उन चारों सूरीश्वरों से ही चल कर ८४ तथा ८४ से भी अधिक गच्छ हुए वे सबके सब उपकेशगच्छ एवं आचार्य यक्षदेवसूरि का आगे महान् उपकार समझ कर उन्हों का पूज्य भाव से आदर सत्कार किया करते थे। इति वज्रसेन संबन्ध।

---

इत्याकर्ण्य मुनि प्राह गुरुशिक्षा धमद्वृत । धर्मश्लेष्मेणु श्रीमद्वज्रस्वामिनिवेदितम् ॥१९०॥
स्थालीपाके विलिक्ष्य लक्षमूल्ये समीक्षिते । सुभिक्षं भावि सविनं पाकं मा कुरु तद्‌द्रुणा ॥१९१॥
सति प्राप्य प्रसादं न कृवैतत्प्रतिगृह्यताम् । इत्युक्त्वा पात्ररंग्रेण प्रयत्नाभि तथा मुनिः ॥१९२॥
एवं जातेऽथ संध्यायां वहित्राणि समाययुः । प्रशस्यशस्यपूर्णानि जलदेशान्तराध्वना ॥१९३॥
सुभिक्षं तत्क्षणं जज्ञे तत स सपरिच्छदा । अचिन्तयदहो मृत्युरभविष्यदर्शितः ॥१९४॥
जीवितव्यफलं किं न गृह्यते संयममहान् । वज्रसेन मुने पार्श्वे जिनवीजस्य सद्‌गुरोः ॥१९५॥
ध्यात्वेति सा ससुताय व्रतं अग्राह सादरा । नागेन्द्रो निर्वृतिश्चन्द्रः श्रीमान् विद्याधरस्तथा ॥१९६॥
अभूवंस्ते किंचिदूनदशपूर्वविदुत्तमाः । चत्वारोऽपि जिनाधीशमतोद्धा (रा) धुरंधरा ॥१९७॥ प्र० च०

५—फोफला ग्राम में मल्ल गोत्रिय शा० छाणा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
६—कीराटपुर के श्रीमाल हणमन्त के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
७—हंसावली श्रादित्यनागगोत्रिय हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
८—चन्द्रावती नगरी के श्रेष्ठि गोत्रिय मन्त्री भुवन के बनाये पार्श्वनाथ महावीर की प्रतिष्ठा कराई ।
९—पद्मावती के बापनागगोत्रिय शाह चुडा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१०—उच नगर का राव मालदे के बनाये पार्श्वनाथ.मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
११—मरुनगर के मन्त्री सारंग के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१२—राजपुर के श्रेष्ठिगोत्रिय शाह नोधण के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१३—देवली के बाप्पनागगोत्रिय शाह खेमा के बनाये आदिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१४—पुनेटी के चिंचट गोत्रिय शाह हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१५—चन्द्रपुर के चरडगोत्रिय शाह अंबड के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१६—अर्जुनपुरी के आदित्यनाग गोत्रिय शाह आना के बनाये विमलदेव की मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१७—पालिकापुरी के बलहा गोत्रिय शाह खेतड के बनाये नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१८—उपकेशपुर के भाद्रगोत्रिय शाह नोढा के बनाये मल्लिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१९—खेलचीपुर के कुमटगोत्रिय शाह जीवण के बनाये शीतलनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
२०—विजयपुर के प्राग्वट वंशीय शाह धरमशी के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

इनके अलावा भी संख्याबद्ध मन्दिरों की प्रतिष्ठायें सूरिजी एवं आपके मुनियों ने करवाई थी। इससे पाया जाता है कि उस समय जैन जनता की मन्दिर मूर्त्तियों पर अटूट श्रद्धा थी। और इस पुनीत कार्य्य में द्रव्य लगाने में वे अपने द्रव्यकी सफलता भी समझते थे तभी तो एक एक धर्म कार्य्य में वे लाखों रुपये व्यय कर डालते थे और इन पुन्य कार्यों के कारण ही उनके अनाप शनाप द्रव्य बढ़ता था। उस समय महाजन संघ का खूब ही अभ्युदय था। उनका पुन्य रूपी सूर्य्य मध्याह्न में तप रहा था वे बड़े ही हलुकर्मी थे कि उनको थोड़ा भी उपदेश विशेष असरकारी हो जाता था उनकी देवगुरु और धर्म पर अटूट श्रद्धा थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने ४२ वर्ष तक अपने शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति की और में वी० नि० सं० ६२७ में पुनीत तीर्थ श्री तक्षिला में २७ दिन का अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्ग पधार गये।

सप्तदश श्री यक्षदेवसूरि, दशपूर्व ज्ञान के धारी थे।
वज्रसेन के शिष्यों को दिना, ज्ञान बड़े दातारी थे ॥
चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति विद्याधर, कुल चारों के विधाता थे।
उपकार जिनका है अतिभारी, भूला कभी नहीं जाता है ॥

इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के सतरहवें पट्ट पर आचार्य्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य्य हुये।

के पास आया और भगवान को वन्दना न करता हुआ बोला कि आपके बहुत से साधु आपके पास से छद्मस्थ जाते हैं और छद्मस्थ आते हैं पर मैं केवली होकर गया और केवली होकर आया हूँ। इस पर भगवान ने कहा जमाली यदि तू केवली है तो बतला जीव शाश्वता है या अशाश्वता ? लोक शाश्वता है या अशाश्वता ? । बस इसके उत्तर देने में जमाली के दांत जुड़ गये। भगवान ने कहा कि इस प्रश्न के उत्तर तो मेरे सामान्य साधु भी दे सकते हैं तो क्या तू केवली होता हुआ भी इन साधारण प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता है। आखिर जमाली ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा और अपना अलग मत चला दिया। अत भगवान को केवल ज्ञान होने के बाद १४ वां वर्ष में जमाली नाम का प्रथम निन्हव हुआ।

जब जमाली ने अपना अलग मत निकाल दिया तो उसकी औरत जो भगवान की पुत्री और साध्वी के रूप में थी उसने भी जमाली का मत स्वीकार कर लिया था। साध्वियें घूमती हुई सावत्थी नगरी में आईं और एक ढंक नाम के श्रावक के मकान में ठहरी। ढंक था भगवान महावीर का श्रावक, जब साध्वियां भिक्षा लेकर आईं और एक चद्दर बांध कर अन्दर गोचरी कर रही थी ढंक ने साध्वी को समझाने के लिये चद्दर के एक किनारे अग्नि लगा दी जिसको देख साध्वी चिल्लाने लगी कि मेरी चादर जल गई र इतने में ढंक ने कहा साध्वी मृषा क्यों बोलती है क्योंकि तुम्हारा मत है कि सम्पूर्ण चादर जल जाने से ही जली कहना। यह सुनते ही साध्वी की अक्ल ठिकाने आ गई कि जमाली का कहना मिथ्या है और भगवान महावीर का कहना सत्य है। उसने भगवान महावीर के पास में जाकर उनकी आज्ञा को स्वीकार किया। इस प्रकार जमाली के कई साधु भगवान के पास आगये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जमाली का मत अधिक नहीं चला था।

२—दूसरा निन्हव तिष्यगुप्त—भगवान महावीर की मौजूदगी में एक वसु नामक आचार्य चौदह पूर्व के ज्ञाता राजगृहनगर के उद्यान में पधारे। अपने शिष्यों को आत्म प्रवोध पूर्व की वाचना दे रहे थे। उसमें तिष्यगुप्तमुनि भी शामिल था। वाचना के अन्दर एक स्थान पर ऐसा वर्णन आया कि—

"एगे भंते जीव पएसे जीवेतिवत्तव्वंसिया?णोयणट्ठे समट्ठे।" अर्थात् आत्मा के एक प्रदेश को जीव कहा जाय ? नहीं। तो क्या दो तीन चार यावत् संख्याता असख्याता एवं आत्मा के सब प्रदेशों से एक प्रदेश न्यून को जीव कहा जाय ? नहीं। हे शिष्य ! सम्पूर्ण जीव प्रदेशों को ही जीव कहा जाता है। यहाँ पर एवंभूतनय का विषय था पर तिष्यगुप्त ने उसको न समझकर यह निश्चय कर लिया कि एक दो तीन यावत् एक न्यून असख्याता प्रदेशों में जीव नहीं है पर एक प्रदेश मिला देने से जीव कहा जाता है तो जीव अन्तिम प्रदेश में ही है। इससे उसने उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली कि एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव है अतः कर्मों का बन्धन भी एक ही प्रदेश पर होता है। तिष्यगुप्त अपनी मान्यता का प्रचार करता हुआ अमलकम्पा नगरी में आया। वहाँ श्रीमंत्र नामक श्रद्धासम्पन्न श्रावक था। उसके यहां साधु भिक्षार्थ गये। उसने मोदकादि जितने पदार्थ थे उनका अन्तिम एक एक दाना मुनि को बेहराया। मुनि ने कहा श्रावक यह क्या आपकी उदारता है ? श्रावक ने कहा कि यह मेरी उदारता नहीं पर आपकी मान्यता है, कारण आप असंख्याता प्रदेशी जीवात्मा है उसको एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव मानते हो। तदनुसार सम्पूर्ण मोदक की सत्ता एक दाने में ही माननी चाहिये। अतः साधु समझ गये, जिन्होंके क्षयोपशम था वे वीर प्रभु के

उसी समय दो साधुओं ने सेठानी ईश्वरी के घर पर आकर धर्मलाभ दिया। पर शर्म के मारी सेठानी ने अपना मुंह नीचा कर लिया। कारण मुनियों को दान देने के लिये उसके पास कुछ भी नहीं था। सेठानी बैठी विष पीस रही थी। मुनियों ने पूछा कि सेठानीजी क्या कर रही हो ? सेठानी ने कुछ भी जबाव नहीं दिया पर उसकी आंखों से जल की धारा बहने लगी। इस पर मुनियों ने रुदन का कारण पूंछा तो सेठानी ने कहा पूज्यवर ! आप जैसे कल्पवृक्ष मेरे घर पर पधारे पर दुःख है कि आज मेरे पास दान देने को कुछ भी पदार्थ नहीं है और मैं यह विष पीस रही हूँ कि अंन के साथ मिलाकर हम सबके साथ खा पी कर इस दुष्काल से पीछा छुड़ावें। मुनियों ने उस श्राविका की करुण कथा सुनकर कहा माता ! हम अपने गुरु के पास जाकर वापिस आवें वहाँ तक आप धैर्य रखना। इतना कह कर मुनि सूरिजी के पास आये और सब हाल सुनाया तो निमित्त के जानकारसूरिजी ने अपने गुरु वज्रसूरि की बात को याद की और अपने शिष्यों को कहा तुम जाकर श्राविका को कह दो कि जैसे बने वैसे तीन दिन तुम निकाल दो। तीन दिनों के बाद सुकाल हो जायगा अर्थात् जहाजों द्वारा पुष्कल धान आ जायगा। बस, साधु पुनः सेठानी के वहाँ गये और सेठानी को कहा कि यदि हम आपके सब कुटुम्ब को बचा दें तो आप हमें क्या देंगे ? सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम सब लोग आपके ही हैं आप जो फरमावें हम देने को तैयार हैं। इस पर मुनियों ने कहा कि तुम्हारे इतने पुत्र हैं उनमें से चन्द्रनागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर एवं चार पुत्रों को हमे दे देना। श्राविका ! इसमें हमारा कुछ भी स्वार्थ नहीं है पर यह तुम्हारे पुत्र जगत का उद्धार करेंगे जिसका सुयश तुमको भी मिलेगा इत्यादि सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम लोगों का ऐसा भाग्य हो कहाँ है ? इस दुकाल में हजारों लाखों मनुष्य अन्न वगैर त्राहि-त्राहि करके यों ही मृत्यु के मुँह में जा पड़े हैं। यदि पूर्वोक्त चारों पुत्र आपके चरण कमलों में दीक्षा लें तो मैं बड़ी खुशी के साथ आज्ञा दे दूंगी। यदि और भी कोई हुक्म हो तो फरमाइये मैं शिरोधार्य करने के लिये तैयार हूँ। मुनियों ने कहा श्राविका और हमारा क्या हुक्म हो सकता है। गुरु महाराज ने फरमाया है कि जैसे बन सके आप तीन दिन निकाल दीजिये। बाद, अन्न के इतने जहाज आवेंगे कि इस दुकाल का शिर फोड़ कर गहरा सुकाल कर देंगे।

जैनियों के लिए तीन दिन उपवास करना कोई बड़ी बात नहीं है। कारण इस बात का तो जैनियों के पूरा अभ्यास ही होता है। सेठानी ने मुनियों के वचन को तथाऽस्तु कह कर बधा लिया और विष को दूर रख दिया। पकाये हुये भोजन से मुनियों को भी आमन्त्रण किया पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जानकार मुनि सेठानी की प्रार्थना को अस्वीकार कर चल धरे।

आशा एक ऐसी वस्तु है कि मनुष्य आशा ही आशा में कितना ही समय व्यतीत कर देता है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि जिस मुसाफिर के पास भोजन तैयार है वह दो चार आठ दस मील पर भी चला जाता है क्योंकि उसको आशा है कि मेरे पास भोजन है आगे चल कर करलूंगा परन्तु भोजन की आशा नहीं है उससे एक दो मील भी चलना मुश्किल हो जाता है। अतएव सेठानी सकुटम्ब ज्यों त्यों कर तीन दिन निकाल दिये। बस, चौथे दिन तो समुद्रमार्ग से बहुत सी अनाज की जहाजें आ पहुँची जिससे प्रचुरता के साथ अनाज मिलने लग गया और सब लोगों ने अपने प्राण बचा लिये।

इधर मुनियों ने सेठानी के पास जाकर धर्मलाभ दिया। सेठानी ने बड़े ही हर्ष के साथ मुनियों

कर बहुत से साधु समझ गये परन्तु जिन लोगों के मिथ्यात्व कर्म का उदय था उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। यह चतुर्थ निन्हव महावीर निर्वाण के बाद २२० वर्ष में हुआ।

५—पांचवां गंग नामक निन्हव—आचार्य महागिरि के धनगुप्त नाम का शिष्य और धनगुप्त के गंगदेव नाम का शिष्य था और वह एक बार उलगातीर नदी उतरता था उस समय ऊपर से ताप नीचे से पानी की शीतलता का अनुभव करता हुआ सोचने लगा कि शास्त्रों में कहा है कि एक समय दो क्रिया नहीं होती हैं यह गलत है क्यों कि मैं एक समय दो क्रिया प्रत्यक्ष में अनुभव कर रहा हूँ। इस प्रकार से विचार करता हुआ मुनि गंगदेव ने आचार्य श्री के पास आकर अपने दिल के विचार कहे तो गुरु ने समझाया कि गंगदेव! शास्त्र में कहीं वह सत्य हैं एक समय में जीव दो क्रिया नहीं कर सकता एवं वेद नहीं सकता है और तू जो नदी उतरते समय शीत और उष्ण दोनों का अनुभव किया वह एक समय का नहीं पर असंख्यात समय का अनुभव है उसको एक समय समझना बड़ा भारी भूल है। छद्मस्थ को अनुभव करने में उपयोग लगने में असंख्यात समय का काल लगता है इत्यादि बहुत समझाया पर गंगदेव नहीं समझा इत्यादि वीर निर्वाण के बाद २२८ वर्ष गंगदेव नामक पंचवाँ निन्हवा हुआ।

६—छट्ठा निन्हव—अन्तरंजिया नगरी में बलश्री नाम का राजा राज करता था वहाँ पर श्रीगुप्त नाम का आचार्य अपने शिष्यों के साथ विराजते थे उसमें रोहगुप्त नाम का शिष्य भी एक था और वह उत्पातिकादि बुद्धि वाला भी था एक समय वहाँ एक परिव्राजक आया था वह विद्या का इतना घमंडी था कि पेट पर लोहे का पाटा लगाया हुआ रखता था और हाथ में एक जम्बू वृक्ष की शाखा लेकर फिरता था किसी ने पूछा कि पंडितजी पेट पर पाटा क्यों बांधा है ? उत्तर में कहा कि मुझे शंका है कि विद्या से मेरा पेट फट नहीं जाय। जम्बू शाखा के लिए कहा कि मुझे जीतने वाला जम्बूद्वीप में भी कोई नहीं है। एक दिन उस परिव्राजक ने नगर में शास्त्रार्थ के लिए उद्घोषणा कराई जिसको आचार्य श्रीगुप्त के शिष्य रोहगुप्त ने स्वीकार करली। बाद वह गुरु महाराज के पास आया और कहा कि मैं परिव्राजक से वाद करूँगा। गुरु महाराज ने इन्कार कर दिया कि इस प्रकार का वितंडावाद करना अच्छा नहीं है। क्योंकि परिव्राजक तात्त्विक ज्ञान का पंडित नहीं है परन्तु विद्यावली है। वह बिच्छू सर्प मूषक वाराह आदि विद्या में कुशल है। शिष्य ने कहा कि मैंने कह दिया है अतः शास्त्रार्थ तो करूँगा ही। तब गुरु ने उसको प्रतिपक्ष मयूर, नकुल, बिल्ली, सिंह आदि विद्याएँ दीं और रजोहरण भी मंत्र दिया कि जिससे इन्द्र भी जीतने में समर्थ न हो सकेगा। उस विद्या को ग्रहण करके रोहगुप्त राजसभा में गया। उधर से परिव्राजक भी राजसभा में आया। रोहगुप्त ने कहा कि तुम पूर्वपक्ष ग्रहण करोगे या उत्तरपक्ष। परिव्राजक ने सोचा कि मैं पूर्वपक्ष ग्रहण करके इसके ही शास्त्र की बात कहूँ कि जिसको यह खंडन नहीं कर सके। बस, परिव्राजक ने पूर्वपक्ष ग्रहण करके कहा कि राशि दो प्रकार की है। जीव राशि अजीव राशि ? रोहगुप्त ने सोचा कि यह तो हमारा ही सिद्धान्त है परन्तु यहाँ तो था वाद-विवाद। परिव्राजक के पक्ष को खंडन करना था उसने कह दिया कि राशि दो प्रकार की नहीं पर तीन प्रकार की होती है। जीव राशि, अजीव राशि, नोजीवराशि। और जैसे जीवराशि संसार के जीव २—अजीव-राशी घट पटादिक पदार्थ ३—नोजीव-घरोली की काटी हुई पूंछ तथा कई स्थानों पर ऐसा भी लिखा है कि रोहगुप्त ने एक सूत का डोरा को गद्दा बट लगा कर सभा में रखा सो डोरा इधर-उधर चलने लगा। इससे नो जीव राशि साबित करदी। परिव्राजक लाजवाब हो गया कि गुस्से के मारे उसने

# जैन शासन के निन्हव

निन्हव—निन्हव दो प्रकार के होते हैं। एक देश निन्हव, दूसरे सर्व निन्हव, जैनधर्मी कहलाता हुआ जैनधर्म की श्रद्धा रखता हुआ भी कभी मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदय वीतराग प्रणित आगमों को नहीं मानना या अन्यथा मानकर जैनधर्म से खिलाफ मत निकालना जैसे महात्मा बुद्ध और गोसाला, इन्होंने जैनधर्म की दीक्षा ली एवं पाली भी थी पर बाद में आपने अपने नाम से नया एवं अलग मत निकाले यह सर्वथा निन्हव कहलाये जाते हैं। दूसरा जैनागमों को मानता हुआ कुछ सूत्र-श्रुतियों और शब्दों को नहीं मानना और इस प्रकार तीर्थङ्करों के मत में रहकर अलग मत निकालने वालेको देश निन्हव कहा जाता है। जैसे जमाली आदि और इस प्रकार के अलग मत स्थापन करने वाले शासन के सात निन्हव हुये हैं जिन्हों का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र उत्पतिकसूत्र आवश्यक सूत्रादि अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। पाठकों की जानकारी के लिये उन निन्हवों का हाल यहां पर संक्षिप्त से लिख दिया जाता है।

१—प्रवचन का पहिला निन्हव जमाली हुआ—जमाली भगवान महावीर का भानेज था तथा दूसरी ओर भगवान की पुत्री प्रियदर्शना जमाली को व्याही थी। अतः जमाली भगवान का जमाई भी लगता था। भगवान महावीर को कैवल्यज्ञान हो गया था। वे चलते हुये महान कुण्डनगर के उद्यान में पधारे। जमाली आदि ने भगवान का व्याख्यान सुना और संसार को असार जानकर ५०० साथियों के साथ तथा जमीली की स्त्री ने १००० महिलाओं के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली। जमाली ने एकादशांग का ज्ञान पढ़ा बाद भगवान से आज्ञा मांगी कि यदि आपकी इच्छा हो तो मैं ५०० साधुओं को साथ लेकर अन्य प्रदेश में विहार करूं। प्रभुने न इन्कार किया और न आज्ञा दी पर मौन रहे। जमाली ने इस प्रकार दो तीन वार पूछा पर उत्तर न मिलने से 'मौनंसम्मतिलक्षणं' समझ कर जमाली ने ५०० साधुओं के साथ विहार कर दिया और चलता २ सावत्थी नगरी में आया और कोष्टक उद्यान में ठहरा। उस समय उसके शरीर में दाह जल की बड़ी भारी बीमारी हो गई थी। साधुओं को कहा कि बैठने की मेरी शक्ति नहीं है। तुम मेरे लिये शीघ्र संस्तारा तैयार करो मुनियों ने घास लाकर संस्तारा करना शुरू किया। वेदना को सहन न करते हुये जमाली ने पूछा कि क्या संस्तारा तैयार हो गया ? साधुओं ने कहा कि संस्तारा अभी किया जा रहा है। इस पर जमाली को शंका हुई कि भगवान ने कहा है कि 'चलमाणे चलिये—कड माणे कडे' यह निरर्थक है। "चलमाणे अचलिये" कडमाणे अकडे" कहना चाहिये अतः भगवान के वचन असत्य हैं पर मैं कहता हूँ यह सत्य है। वस इस कदाग्रह के बस जमाली अपनी वेदना को तो भूल गया और साधुओं को बुला कर कहा कि देखो भगवान के वचन प्रत्यक्ष में असत्य हैं और मैं कहता हूँ वह सत्य है क्योंकि वे कहते हैं कि 'कडमाणे कडे' अर्थात करना आरम्भ किया उसे किया ही कहा जा पर प्रत्यक्ष देखिये तुमने संस्तारा करना प्रारम्भ किया जब तक पूरा न हो वहां तक उसे किया कैसे कहा जा सकता है अतः मैं कहता हूँ कि 'कडमाणे अकडे' यह प्रत्यक्ष सत्य है इत्यादि। इस पर कई साधु जमाली के वचनों को स्वीकार कर जमाली के पास रह गये पर कई साधुओं ने सोचा कि भगवान् का कहना नैगम नय का है तब जमाली कर रहा है एवंभूत नय की बात। अतः जमाली की मति में भ्रम है। भगवान् के वचन सोलह आना सत्य हैं, वह जमाली को छोड़ भगवान के पास चले गये। बाद जमाली आरोग्य हुआ तो स्वयं या साधुओं की प्रेरणा से भगवान

कर बहुत से साधु समझ गये परन्तु जिन लोगों के मिथ्यात्व कर्म का उदय था उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। यह चतुर्थ निन्हव महावीर निर्वाण के बाद २२० वर्ष में हुआ।

५—पांचवां गंग नामक निन्हव—आचार्य महागिरि के धनगुप्त नाम का शिष्य और धनगुप्त के गंगदेव नाम का शिष्य था और वह एक बार उलगातीर नदी उतरता था उस समय ऊपर से ताप नीचे से पानी की शीतलता का अनुभव करता हुआ सोचने लगा कि शास्त्रों में कहा है कि एक समय दो क्रिया नहीं होती हैं यह गलत है क्यों कि मैं एक समय दो क्रिया प्रत्यक्ष में अनुभव कर रहा हूँ। इस प्रकार से विचार करता हुआ मुनि गंगदेव ने आचार्य श्री के पास आकर अपने दिल के विचार कहे तो गुरु ने समझाया कि गंगदेव! शास्त्र में कहाँ यह सत्य हैं एक समय में जीव दो क्रिया नहीं कर सकता एवं वेद नहीं सकता है और तू जो नदी उतरते समय शीत और उष्ण दोनों का अनुभव किया यह एक समय का नहीं पर असंख्यात समय का अनुभव है उसको एक समय समझना बड़ा भारी भूल है। छद्मस्थ को अनुभव करने में उपयोग लगने में असंख्यात समय का काल लगता है इत्यादि बहुत समझाया पर गंगदेव नहीं समझा इत्यादि वीर निर्वाण के बाद २२८ वर्ष गंगदेव नामक पंचवाँ निन्हवा हुआ।

६—छट्ठा निन्हव—अन्तरंजिया नगरी में बलश्री नाम का राजा राज करता था वहाँ पर श्रीगुप्त नाम का आचार्य अपने शिष्यों के साथ विराजते थे उसमें रोहगुप्त नाम का शिष्य भी एक था और वह उत्पातिकादि बुद्धि वाला भी था एक समय वहाँ एक परिव्राजक आया था वह विद्या का इतना घमंडी था कि पेट पर लोहे का पाटा लगाया हुआ रखता था और हाथ में एक जम्बू वृक्ष की शाखा लेकर फिरता था किसी ने पूछा कि पंडितजी पेट पर पाटा क्यों बांधा है ? उत्तर में कहा कि मुझे शंका है कि विद्या से मेरा पेट फट नहीं जाय। जम्बू शाखा के लिए कहा कि मुझे जीतने वाला जम्बूद्वीप में भी कोई नहीं है। एक दिन उस परिव्राजक ने नगर में शास्त्रार्थ के लिए उद्घोषणा कराई जिसको आचार्य श्रीगुप्त के शिष्य रोहगुप्त ने स्वीकार करली। बाद वह गुरु महाराज के पास आया और कहा कि मैं परिव्राजक से वाद करूँगा। गुरु महाराज ने इन्कार कर दिया कि इस प्रकार का वितंडावाद करना अच्छा नहीं है। क्योंकि परिव्राजक तात्त्विक ज्ञान का पंडित नहीं है परन्तु विद्यावली है। वह विच्छू सर्प मूषक वाराह आदि विद्या में कुशल है। शिष्य ने कहा कि मैंने कह दिया है अतः शास्त्रार्थ तो करूँगा ही। तब गुरु ने उसको प्रतिपक्ष मयूर, नकुल, बिल्ली, सिंह आदि विद्याएँ दीं और रजोहरण भी मंत्र दिया कि जिससे इन्द्र भी जीतने में समर्थ न हो सकेगा। उस विद्या को ग्रहण करके रोहगुप्त राजसभा में गया। उधर से परिव्राजक भी राजसभा में आया। रोहगुप्त ने कहा कि तुम पूर्वपक्ष ग्रहण करोगे या उत्तरपक्ष। परिव्राजक ने सोचा कि मैं पूर्वपक्ष ग्रहण करके इसके ही शास्त्र की बात कहूँ कि जिसको यह खंडन नहीं कर सके। बस, परिव्राजक ने पूर्वपक्ष ग्रहन करके कहा कि राशि दो प्रकार की है। जीव राशि अजीव राशि ? रोहगुप्त ने सोचा कि यह तो हमारा ही सिद्धान्त है परन्तु यहाँ तो था वाद-विवाद। परिव्राजक के पक्ष को खंडन करना था उसने कह दिया कि राशि दो प्रकार की नहीं पर तीन प्रकार की होती है। जीव राशि, अजीव राशि, नोजीवराशि। और जैसे जीवराशि संसार के जीव २—अजीव-राशी घट पटादिक पदार्थ ३—नोजीव-घरोली की काटी हुई पूंछ तथा कई स्थानों पर ऐसा भी लिखा है कि रोहगुप्त ने एक सूत का डोरा को गहरा बट लगा कर सभा में रक्खा तो डोरा इधर-उधर चलने लगा। इससे नो जीव राशि साबित करदी। परिव्राजक लाजवाब हो गया कि गुस्से के मारे उसने

पास चले गये, जिन्होंके मिथ्यात्व मोहनीय का उदय था उन्होंने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह विष्य-गुप्त मुनि से दूसरे निन्हव का दूसरा मत महावीर के केवल ज्ञान होने के १६ वर्षों के बाद चला।

३—तीसरा निन्हव अव्यक्तवादी—आचार्य आसाढ़भूति अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दे रहे थे एक समय रात्रि में किसी को खबर न हुई कि वे अकस्मात् काल कर देवयोनि में चले गये। पर वहाँ जाकर तत्कालिक उपयोग लगा कर अपना साधु भव देखा तो शिष्यों के प्रति दया भाव आया कि इन विचारों को वाचना कौन देगा। वे देवशक्ति से अपने मृत कलेवर में प्रवेश हो गये और शिष्यों को ज्यों की त्यों वाचना देने लगे। किसी शिष्य को इसका भान न रहा। जब शिष्यों को वाचना दे चुके तो आप अपने देव-पना का स्वरूप बतला कर चले गये इस हालत में शिष्यों ने विचार किया कि जैसे गुरु महाराज मृत शरीर में रहकर अपने से वंदन करवाया करते थे इस प्रकार और भी साधुओं के शरीर में देव होगा तो कौन जाने, अतः देव अवृति अपच्चारवानी होते हैं,उसको हम वन्दन कैसे करें ? एवं वे सबके सब साधुओं ने आपस में वन्दन व्यवहार बन्द कर दिया और स्वच्छन्दचारी बन गये। वे साधु कभी भ्रमण करते थे राजगृह नगर में आये। वहाँ के किसी बलभद्रराजा ने अपने अनुचरोंद्वारा उन साधुओं को चोरों के तौर पर पकड़वा मंगवाया और चोरों की भांति उन्हें मारने लगा। तब साधु बोले कि हे राजन् ! तुम श्रावक होकर हम साधुओं को क्यों पिटवाते हो ? राजा ने कहा कि मुझे क्या मालूम कि आप साधु हैं या आपके शरीर में कोई चोर आकर घुस गया है और मैं न जाने श्रावक हूँ या कोई देव मेरे शरीर में अवतीर्ण हो गया हो। जैसे आपकी मान्यता है कि साधुओं के शरीर में देवता होगा। इत्यादि बहुत युक्तियों से समझाये।

राजा के कहने से उन साधुओं के अन्दर से बहुत से साधु 'मिच्छामि दुक्कडं' देकर वीर शासन में शामिल होगये और जिन्होंके विशेष मिथ्यात्वोदय था उन्होंने अपने हठ कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह वीरात् २१४ वर्ष के बाद अव्यक्त नाम का तीसरा निन्हव हुआ।

४—चोथा निन्हव क्षणकवादी अश्वमित्र—आर्य महागिरि के कोंटीन नामक शिष्य था और उसके एक अश्वमित्र शिष्य था। वे विहार करते हुए मथुरा नगरी में आये वहाँ पर आगमों की वाचना होती थी जिसमें दशवां पूर्व की वाचना में पर्याय के विषय में आया था कि—

"सव्वे पडुप्पन्ननेरइया वोच्छिज्जिस्संति, एवं जाव विमाणियात्ति"

इस पाठ का अर्थ गुरु महाराज ने ठीक समझाने पर भी अश्वमित्र ने विपरीत समझ लिया कि पहिले समय नरकादि जो पदार्थ हैं वह दूसरे समय नष्ट हो जाते हैं और दूसरे समय पुनः नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं एवं सब पदार्थ क्षण भंगुर है और समय-समय बदलते रहते हैं। अतः जिस जीव ने पहिले क्षण में पाप एवं पुन्य किया है वह दूसरे समय नष्ट हो जाता है इस मान्यता के कारण उसने अपना अलग मत निकाल दिया और इस प्रकार प्ररूपना करता हुआ राजगृह नगर में आया वहाँ पर एक हासिल के महकमा में श्रावक रहता था उसने साधुओं को समझाने के लिये उनको पकड़ कर पीटवाना शुरू किया। साधुओं ने कहा हम साधु तुम श्रावक फिर हमें क्यों पीटवाते हो ? इस पर हानीजी ने कहा कि आपकी मान्यतानुसार अब क्षणान्तर पर्याय पलट गई है अतः आप साधु नहीं मैं श्रावक नहीं इसको सुन-

# दिगम्बर मतोत्पत्ति-

दिगम्बरमत—जैसे सात निन्हवों का हाल ऊपर लिखा है वैसे दिगम्बर भी एक निन्हव की पंक्ति में है इस मत की उत्पत्ति खास तौर तो साधु वस्त्र नहीं रखने के एकान्त आग्रह से हुई है तत्पश्चात् उन्होंने अनेक बातों का रद्दोबदल कर डाला-जैन शास्त्रों में दिगम्बर मत की उत्पत्ति निम्न लिखित प्रकार से हुई है।

रथवीरपुर नामक नगर के देवगणोद्यान में एक कृष्णार्षि नामक जैनाचार्य्य पधारे थे उस नगर में एक शिवभूति नामक ब्राह्मण बसता था और कुछ राज सम्बन्धी काम भी किया करता था परन्तु रात्रि के समय बहुत देरी से घर पर आने की उसकी आदत पड़ गई थी जिससे शिवभूति की स्त्री और माता घबरा गई थीं। एक दिन शिवभूति रात्रि में बहुत देरी से घर पर आया और द्वार खोलने के लिये बहुत पुकारें की परन्तु सब लोग निद्रा देवी की गोद में सो रहे थे जब शिवभूति की माता जागी तो उसने क्रोध के वश होकर कह दिया कि इस समय जिसके द्वार खुले हों वहां चला जा। बस शिवभूति माता के वचन सुनकर वहां से चला गया पर दूसरा रात्रि समय अपने द्वार कौन खुला रक्खे। वह फिरता फिरता कृष्णाचार्य के मकान पर पहुँचा तो वहां द्वार खुला था। शिवभूति मकान के अन्दर प्रवेश करके क्या देखता है कि साधु जन आत्म ध्यान में संलग्न थे जिन्हों को देखकर शिवभूति ने सोचा कि माता की आज्ञा तो हो ही गई है इनके पास दीक्षा ले लें। सुबह आचार्यश्री से प्रार्थना की और स्वयं लोचभी कर लिया अतः आचार्य श्री ने परोपकार की गरज से शिवभूति को दीक्षा दे दी। एक समय वहां के राजा ने जैन मुनियों के त्याग वैराग्य एवं शिवभूति के पूर्व परिचय के कारण उसको रत्न कंबल बेहराई (अर्पण की) जिसको लेकर शिवभूति ने आचार्य श्री के पास आकर उनके सामने वह रत्नकंबल रख दी। उसको देखकर सूरिजी ने कहा मुनि! यह बहुमूल्य रत्नकंबल क्यों ली है? कारण साधुओं को तो सादा जीवन गुजारना चाहिये। केवल लज्जा एवं शित निवारणार्थ जीर्ण प्रायः अल्प मूल्य के वस्त्र से निर्वाह करना चाहिये इत्यादि कह कर उस रत्न कंबल के टुकड़े २ करके सब साधुओं को रजोहरण पर लगाने के लिये निशियिये करके दे दिये। इस पर शिवभूति के दिल में तो बहुत आई पर गुरु के सामने वह कर क्या सकता था। दूसरे वैराग्य एवं आत्मार्थीपना उसमें था नहीं उसने तो केवल माता के तिरस्कार से ही दीक्षा ली थी।

एक समय आचार्य श्री साधुओं को आगम वाचना दे रहे थे उसमें जिनकल्पी मुनियों का वर्णन आया।

"जिणकप्पिया य दुविहा, पाणीपाया पडिग्गह धराय ।
पाउरणमपाउरणा एक्केक्के भावे दुविहा" इत्यादि ॥

शिवभूति ने गुरुमुख से जिनकल्पी का वर्णन सुना और कहा कि जब आगमों में जिनकल्पी का विधान बतलाया है तब वह वस्त्र पात्र रूप परिग्रह क्यों रखा जाता है? साधु को एकान्त नग्न रहकर जिनकल्पीपना अर्थात् बिलकुल नग्न रहकर संयम पालन एवं आराधन करना चाहिये इत्यादि।

आचार्य श्री ने मधुर वचन और आगमों का गम्भीर आशय को समझाया कि इस समय जैसे केवल ज्ञानादि अनेक बातें विच्छेद हो गई हैं इसी प्रकार जिनकल्पीपना भी विच्छेद हो गया है कारण जिनकल्पी धर्मपालन करने के लिये सबसे पहला वज्र ऋषभनाराचसंहनन की आवश्यकता है वह इस समय विच्छेद हो गया है शिवभूति केवल नग्न रहने से ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर सबसे पहले तो दीक्षा लेकर गुरु-

बिच्छू छोड़े रोहगुप्त ने मयूर छोड़े कि विच्छुओं को उठा कर ले गये । परिव्राजक ने सांप बनाये तो रोहगुप्त ने नकुल बनाये। परिव्राजक ने मूषक बनाये मुनि ने मंजारि बना दी । उसने मृग बनाया तो मुनि ने वाघ बनाये उसने सुअर बनाया और मुनि ने सिंह बना दिया इस प्रकार परिव्राजक की एक भी न चली तब उसने गर्दभि विद्या छोड़ी तो मुनि ने रजोहरण से वश में कर ली । इस प्रकार परिव्राजक को पराजित करने से जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई फिर रोहगुप्त खूब वाजागाजा एवं आडम्बर से गुरु महाराज के पास आया और सब हाल कहा । इस पर गुरु ने कहा कि जैनधर्म की प्रभावना करना तो अच्छा है परन्तु तीन राशि स्थापन करी यह ठीक नहीं क्योंकि तीर्थङ्करों ने दो राशि कही हैं । अतः तुम राजसभा में जाकर इस बात का मिच्छामि दुक्कड़म् दो परन्तु रोहगुप्त ने गुरु के वचन को स्वीकार न किया । और तीन राशी नाम का अपना एक नया मत खड़ा कर दिया यह छट्ठा तिराशि निन्हव भगवान महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष में हुआ ।

७—गोष्टामाहिल नामक सातवाँ निन्हव—मालवा देश में दर्शनपुर नगर के वासी एक ब्राह्मण ने आर्य रक्षित के पास दीक्षा ली थी आपका नाम 'गोष्टामाहिल' था । एक समय आर्य दुर्वलिकापुष्प पूर्वांग की वाचना दे रहे थे । अन्य साधुओं के साथ गोष्टामाहिल भी वाचना ले रहा था । आठवें पूर्व में कर्मों का विषय आया कि जीवात्मा के कर्म खीर नीर तथा लोहाग्नि की भांति जीव प्रदेशों में मिल जाते हैं। पर गोष्टामाहिल इस बात को विपरीत समझ कर कहने लगा कि जीव के कर्म स्त्री कंचुक एवं पुरुष जामा और बालक के टोपी की भाँति जीव प्रदेशों के ऊपर लगते हैं अन्दर नहीं । दूसरे नौवें पूर्व में प्रत्यखान के अधिकार में साधुओं को यावत् जीव की सामायिक एवं प्रत्याखान कराया जाता है पर गोष्टामाहिल ने कहा कि जावतजीव के प्रत्याखान करने पर वांच्छा दोष लगता है। कारण, जीवन के अन्त में भोग की वांच्छा के भाव आ जाते हैं इत्यादि । गोष्टामाहिल के कदाग्रह को दुर्वलिकापुष्या चार्य्य ने श्री संघ को कहा । तब श्रीसंघ ने अष्टम तप कर देवी की आराधना कर देवी को महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पास भेजी । देवी ने जाकर तीर्थङ्कर से पूंछा तो उन्होंने कहा कि दुर्वलिकाचार्य्य का कहना सत्य है । देवी ने आकर श्रीसंघ को कहा । पर गोष्टामाहिल ने कहा कि देवी झूंठी है तीर्थङ्कर ऐसा कभी नहीं कहते इत्यादि गोष्टामाहिल ने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा । अतः श्रीसंघ ने संघ बाहर कर दिया । एवं गोष्टामाहिल नामक सातवां निन्हव वीरात ५८४ वर्ष में हुआ । इस प्रकार शासन में सात निन्हव हुए इस समय के बाद भी कई निन्हव हुए कइएकों ने साधुओं को वस्त्र पात्र नही रखने का आग्रह किया कइएकों ने भगवान महावीर का गर्भापहार कल्याणक मानने का हट किया, कइएकों ने स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया । कइएकों ने श्रावक को सामायिक पौषध के समय चरवाला का निषेध किया । कइएक ने मूर्तिपूजा का इन्कार किया कइएकों ने इस समय साधु है ही नही ऐसा आग्रह किया, कइएकों ने मूर्तिपूजा में मिश्र ( पुन्य-पाप ) मानना ठहराया । कइएकों ने स्त्रयों कों सामायिक पौषध का निषेध किया । कइएकों ने धानमें जीव मानने से इन्कार किया और कइएकोंने मरते जीवों को बचाने में तथा दान देने में पाप बतलाया इत्यादि कलिकाल के प्रभाव से जीवों के मिथ्यात्वोदय होने से जिसके दिलमें आई वहीं उत्सूत्र प्ररूपना कर अपना मत निकाल शासनमें छेदभेद डाल टुकड़े २ कर डाले जिसकों हम क्रमशः समय वार यथास्थान लिखेंगे जिसमें यहाँ पर पहला आचार्य कृष्णार्षि का शिष्य शिवभूति नामक साधु ने दिगम्बर नाम का मत निकाला जिसको ही लिख दिया जाता है—

और भविष्य में तो यह और भी अधिक नुकसान का कारण है। अतः वस्त्र साध्वी को वापिस दे दिया और कहा कि यह वस्त्र तुमको देवता ने दिया है अतः तुम इसको पहिनो और यह वस्त्र फट भी जाय तो दूसरा वस्त्र लेकर हमेशा के लिये वस्त्र पहिनती ही रहना। अतः शिवभूति ने साधु नम्र रहें और साध्वी लाल वस्त्र पहिने ऐसा दुरंगा वेश बना कर एक नया मत निकाल दिया जिसको दिगम्बर मत कहते हैं। जैनधर्म में भगवान् महावीर को निर्वाण के बाद यह पहले ही पहिल इस प्रकार मतभेद खड़ा हुआ और इस मतभेद का समय निम्नलिखित गाथा में बतलाया है कि:—

"छव्वास सएहिं नवोत्तेरहिं तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स। तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥"

वीर निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्ष जाने के बाद रथपुर नगर में 'बोडिय' यानि शिवभूति ने एकान्त पक्ष को खींच कर नम्र रहने का नया मत निकाला। जिस को दिगम्बर मत भी कहते हैं।

शिवभूति के दो शिष्य हुये १ कौडिन्य २ कोट्ट वीर बाद उनका परिवार बढ़ने लगा।

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में पूर्वाचार्य्यों ने दिगम्बरमतोत्पत्ति बतलाई है और भगवान् हरिभद्रसूरि ने आवश्यक सूत्र की वृत्ति में एवं उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में तथा और भी जहाँ दिगम्बरोत्पत्ति लिखी है वहाँ सर्वत्र यही बात लिखी है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्षे रथवीरपुर नगर में कृष्णाचार्य्य के शिष्य शिवभूति द्वारा दिगम्बर मत की उत्पत्ति हुई।

कोई भी व्यक्ति लड़ झगड़ कर नया पन्थ चलाता है वह स्वयं सच्चा एवं प्राचीन बन कर दूसरों को झूंठा एवं अर्वाचीन बतलाते हैं तदनुसार दिगम्बरों ने भी लिख मारा है कि वीर नि० सं० १६० पाटली पुत्र नगर में श्वेताम्बर मत[1] निकला इसका कारण बतलाते हैं कि भद्रबाहु के समय बारहवर्षीय दुकाल पड़ा था उस समय साधुओं ने शिथलाचारी होकर वस्त्र पात्र रखने शुरू कर दिये और उन साधुओं ने अपना श्वेताम्बर नामक मत चला दिया इत्यादि। कई दिगम्बर[2] विक्रम सं० १३६ वल्लभपुरी में श्वेताम्बर मत निकला बतलाते हैं पर यह सब कल्पना मात्र है या अपने पर आगम उत्थापक एवं निन्हवदा का जो कलंक है उसको छिपाने का एक मात्र मिथ्या उपाय है।

जैन सिद्धान्तों में तो दोनों प्रकार के साधुओं को स्थान दिया है १—जिन कल्पी २—स्थविर कल्पी पर जिनकल्पी वही हो सकता है कि जिसके वज्रऋषभनाराच संहनन हों जब पंचम आरा में वज्रऋषभनाराच संहनन विच्छेद होगया तब जिनकल्पी भी विच्छेद होजाना स्वभाविक ही है। दूसरे केवल नग्नत्व को ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर जिनकल्पी के लिये और भी कई प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। जो मंद संहनन वाले नग्न रहते हुये भी सहन नहीं कर सकते हैं। तथा जिनकल्पी मुनि को कम से कम नौ पूर्वका ज्ञान होना चाहिये इत्यादि वह शिवभूति में नहीं था। दिगम्बरों ने केवल नग्न रहने का हठ पकड़ लिया है और उस हठ से दिगम्बरों को कितना नुकसान हुआ है। जरा निम्न लिखित बातों पर लक्ष दीजिये—
१—अव्वल तो दिगम्बर शास्त्रों का कथन है। कि पंचम आरे के अंत तक चतुर्विध श्रीसंघ रहेगा तब दिग-

१ भद्रबाहु चरित्र – दिगम्बर समुदाय में दो भद्रबाहु हुए हैं एक वीर निर्वाण के बाद दूसरी शताब्दी में तब दूसरा विक्रम की दूसरी शताब्दी में अतः चरित्रकार ने दूसरा भद्रबाहु की घटना पहले भद्रबाहु के साथ जोड़ते की भूल कर दी मालूम होती है। २ देखो – वामदेव कृत भावसंग्रह की टीक तथा देवसेनकृत दर्शनसार नामक ग्रन्थ—

कुलवास में बीस वर्ष रहकर कम से कम साधिक नौ पूर्व का ज्ञान हासिल करना चाहिये पश्चात् गुरु आज्ञा से ही जिनकल्पीपना धारण किया जाता है अतः न तो इस समय वज्रऋषभनाराच संहनन है और न सब साधु साधिक नौ पूर्व का ज्ञान ही पढ़ सकते हैं इस हालत में जिनकल्पी साधु कैसे हो सकते हैं और कैसे जिनकल्पी मुनि पना का आचार पालन ही कर सकते हैं इत्यादि ।

शिवभूति के जिनकल्पीपना का तो एक वायना था उसके हृदय में तो रत्न काँवल खट रही थी कि उसने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ता हुआ कहा कि थोड़ा रखे तो भी परिग्रह है और अधिक रखे तो भी परिग्रह । फिर इस पाप का मूल परिग्रह को रखा ही क्यों जाय अर्थात् साधुओं को एकान्त-नग्न ही रहना चाहिये । और जिनकल्पीपना को विच्छेद बतलाना यह केवल वस्त्र पात्र पर ममत्व एवं कायरताका ही कारण है कि अपनी कमजोरी से उस परिग्रह को छोड़ा नहीं जाता है । यदि मनुष्य चाहे तो अभी भी जिनकल्पीत्व पालन कर सकता है इतना ही क्यों पर मैं इस काल में भी जिनकल्पी रह सकता हूँ ?

सूरिजी ने पुनः शिवभूति को समझाने की कोशिश करते हुए कहा शिवभूति ! "धर्मोपकरणमेवैतत् न हु परिग्रहः" अर्थात् धर्मोपकरण को परिग्रह नहीं कहा जाता है और शास्त्रों में भी कहा है कि :—

जन्तवो बहवः सन्तिदुर्दर्शा मासचक्षुषाम् । तेभ्यः स्मृतं दयार्थंतु रजोहरणधारणम् ॥ १ ॥
आसने शयने स्थानेनिक्षेपे ग्रहणे तथा । गात्रसंकोचने चेष्टं तेन पूर्वं प्रमार्जनम् ॥ २ ॥
संति संपतिमाः सत्त्वाः सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे । तेषां रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥ ३ ॥
भवन्ति जन्तवो यास्माद्भक्तपानेषु केषुचित् । तस्मात्तेषां पीरक्षार्थं, पात्रग्रहणमिष्यते ॥ ४ ॥
सम्यक्त्वज्ञानशीलानि, तपश्चेतीह सिद्धये । तेषामुपग्रहार्थीदं, स्मृतं चीवरधारणम् ॥ ५ ॥
शीतवातातपैर्दंशै-र्मशकैश्चापि खेदितः । मा सम्यक्त्वादिषु ध्यानं, न सम्यक् संविधास्यति ॥ ६ ॥
तस्य त्वग्रहणे यत्स्यात्, क्षुद्रप्राणिविनाशनम् । ज्ञान ध्यानोपघातो वा, महान दोषैस्तदैव तत् ॥ ७ ॥
यः पुनरतिसहिष्णुतयैतदन्तरेणापि न धर्मबाधकस्तस्य नैतदस्ति ।
य एतान् वर्जयेद्दोषान्, धर्मोपकरणादृते । तस्य त्वग्रहणं युक्तं, यः स्याज्जिन इव प्रभुः ॥ ८ ॥

इत्यादि बहुत समझाया परन्तु प्रबल मोहनीय कर्मोदय से शिवभूति ने गुरु के वचनों को नहीं माना और वस्त्र छोड़ कर एवं नग्न हो कर उद्यान के एक भाग में जाकर बैठ गया । शिवभूति की बहिन ने भी दीक्षा ली थी वह अपने भाई शिवभूति मुनि को वन्दन करने को उद्यान में गई थी । शिवभूति ने उसको ऐसा विपरीत उपदेश दिया कि वह भी कपड़े छोड़ कर नग्न हो गई । जब वह आर्य्यका ( साध्वी ) नगर में भिक्षार्थ गई तो उसको नग्न देख लोग अवहेलना एवं निन्दा करने लगे क्योंकि पुरुष तो अन्य मत में भी परम हँसादि नग्न रह सकता है पर स्त्री को नग्न किसी ने नहीं देखी थी । अतः शिवभूति की बहिन साध्वी को नग्न देख लोग निन्दा करें यह बात स्वभाविक ही थी । साध्वी को नग्न फिरती देख एक वैश्या को लज्जा आ गई । उसने एक लाल शाटिका ( वस्त्र ) अपने मकान से उस नग्न साध्वी पर डाला । साध्वी ने उस वस्त्र को लेजा कर अपने भाई शिवभूति ( नग्न ) मुनि के पास जाकर रख कर सब हाल कह सुनाया । आखिर तो शिवभूति भी मनुष्य ही था । उसने सोचा कि स्त्रियों को नग्न रहना आज भी अच्छा नहीं है

विषमगतयोऽप्यधस्ताद् उपरिष्टात् तुल्यमासहस्रारम् । गच्छन्ति च तिर्यञ्चस्तदधोगत्यूनताऽहेतुः ॥६॥
वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च । जिनकल्प-मनः पर्यवविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति
वादादिलब्ध्यभाववद् अभविष्यद् यदि च सिद्ध्यभावोऽपि । तासामवारयिष्यद् यथैव जम्बूयुगादारात्॥८॥
'स्त्री'ति च धर्म विरोधे प्रव्रज्यादोषविंशतौ 'स्त्री'ति । बालादिवद् वदेयुर्न 'गर्भिणी बालवत्से' ति ॥९॥
यदि वस्त्राद् अविमुक्तिः, त्यजेत तद्, अथ न कल्पते हातुम । उत्सङ्गप्रतिलेखनवद्, अन्यथा देश को दूषेत्
त्यागे सर्वत्यागो ग्रहणेऽल्तो दोषइत्युपादेशि । वस्त्रं गुरुणाऽऽर्याणां परिग्रहोऽपीति चुत्यादौ ॥११॥
यत् संयकोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् । धर्मस्यहितत् साधनमतोन्यद् अधिकरणमाहाऽर्हन्॥१२॥
अस्तैन्यबाहिर व्युत्सर्गविवेकैषणादिसमितीनाम् । उपदेशनमुपदेशो ह्युपधेरपरिग्रहत्वस्य ॥१३॥
निग्रन्था''''''शास्त्रे सर्वत्र नैव युज्येत । उपधेग्रन्थत्वेऽस्याः पुमानपि तथा न निर्ग्रन्थः ॥१४॥
संसक्तौ सत्यामपि चोदितयत्नेन परिहरन्त्यार्या । हिंसावती पुमानिव न जन्तुमालाकुले लोके ॥१५॥
वस्त्रं विना न चरणं स्त्रीणामित्यर्हतौच्यत, विनाऽपि । पुंसामिति न्यवार्यत तत्र स्थविरादिवद् मुक्तिम्
अर्शो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत । उपसर्गेण चीरे म्दादिः संन्यस्यते चात्ते ॥१७॥
उत्सङ्गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि । आचेलक्या (क्यं, योग्यायोग्याऽसिद्धेरदीक्ष्य इव॥१८॥
इति जिनकल्पादीनां युक्त्यङ्गानाम योग्य इति सिद्धेः । स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्यो ऽदीक्षणीय इव॥१९॥
संवर-निर्झररूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे । योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारो॥२०॥
वस्त्राद् न मुक्तिविरहो भवतीत्युक्तं, समग्रमन्यच । रत्नत्रयाद् न वाऽन्यद् युक्त्यङ्गं शिष्यते सद्भिः॥२१॥
प्रव्राजना निषिद्धा क्वचितु रत्नत्रयस्य योगेऽपि । धर्मस्य हानि-वृद्धी निरूपयद्भिर्विवृद्ध्यर्थम् ॥२२॥
अमतिवन्द्यत्वात् चेत् संयतवर्गेण नाऽऽर्यिकासिद्धिः । वन्यतां ता यदिते, नोनत्वं कल्प्यते तासाम्॥२३॥
सन्यूनापुरुषेभ्यस्ताःस्मारण-चारणादिकारिभ्यः । तीर्थंकराऽऽकारिभ्यो न च जिनकल्पादिरिति गणधरादि
अर्हन् न वन्दते न तावताऽसिद्धिरङ्गगतेः । मात्राऽन्यथा विमुक्तिः, स्थानं स्त्री-पुंसयोस्तुल्यम् [नाम्
आकृष्यते श्रिया स्त्री पुंसः सर्वत्र किं न नन्मुक्तौ । इत्यमुना क्षेप्यस्त्री-पुंसां सिद्धिः सममरुत्त्वम्
मायादिः पुरुषाणामपि देशाधि (द्वेषादि) प्रसिद्धभावश्च । षण्णां संस्थानानां तुल्यो वर्णत्रयस्यापि ॥२७॥
'स्त्री' नाम मन्दसत्त्वा उत्सङ्गसमप्रता न तेनाऽत्र । तत् कथमनल्पवृत्तयः सन्ति हि शीलाम्बुधेर्वेलाः ॥२८॥
ब्राह्मी सुन्दर्याऽऽर्या राजीमती चन्दना गणधराऽन्या । अपि देव-मनुज-महिताः विख्याताः शील-सत्त्वाभ्याम्
गार्हस्थ्येऽपि सुसत्त्वा विख्याता शीलवतितमा जगति । सीतादयः कथं तास्तपसि विसत्त्वा विशीलाश्च
संत्यज्य राज्यलक्ष्मीं पति-पुत्र-भ्रातृ-बन्धुसम्बन्धम् । पारिव्रज्यवहायाः किमसत्वं सत्यमामादेः ?
महता पापेन स्त्री-मिथ्यात्वमहायकेन न सुदृष्टिम् । स्त्रीत्वं चिनोति, तद् न, तदङ्गे क्षपणेऽपि निर्माणम्
अन्तः कोटी कोटीस्थितिकानि भवन्ति सर्व-कर्माणि । सम्यक्त्वलाभ एवाऽशेषोऽप्यक्षयकरो मार्गः ॥
अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः सिद्धि । स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा ॥३४॥

मन्दरों में त्रिविध संघ ही रहा । कारण साध्वी नग्न नहीं रह सके और वस्त्र धारण करने पर वे उसमें संयम नहीं मानते हैं अतः त्रिविध संघ ही रहा । इतना ही क्यों पर भूतकाल में अनन्त तीर्थङ्करों के शासन में अनंत सती साध्वियां मोक्षगई उनके लिये भी दिगम्बरों को इन्कार करना पड़ा । यह एक वड़ा भारी उत्सूत्र है । ❀

२—दिगम्बरों के नग्नत्व के एकान्त हठ पकड़ने से दिगम्बर साधुओं की आज क्या दशा हुई है जो मुनि पृथ्व्यादि छः काया के जीवों का आरंभ करन करावन और अनुमोदन का त्याग कर पंच महाव्रत धारी बने थे और मधुकरी भिक्षा से अपना निर्वाह करते थे ( जैन साधु आज भी मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते हैं ) वही दिगम्बर वन कर पात्र न होने से एक ही घर में भिक्षा करते हैं अतः वे पूर्वोक्त नियम का पालन नहीं कर सकते हैं । जब इन साधुओं को भिक्षा करते हुए को देखा जाय तो देखने वाले को घृणा आये बिना भी नहीं रहती है और उनका विहार तो विना गाड़ी और विना रसोइये के हो ही नहीं सकता है बस दिगम्बरों में नग्नत्व रहता हुआ भी संयम कूच कर गया है ।

३—वृद्ध ग्लानी तपस्वी साधु की व्यावच्च करना दिगम्बरों के शास्त्रों में भी लिखा है पर जब वस्त्र पात्र ही नहीं रखा जाय तो आहार पानी कैसे लाकर दे सकते हैं ?

४—नग्न रहने का मुख्य कारण परिसह सहन करना और ममत्व भाव से वचना है परन्तु दिगम्बर साधु नग्न रहने में न तो परिसह को सहन करते हैं और न ममत्व भाव से वच ही सकते हैं । शीत काल में नग्न साधु शीत से वचने के लिये मकान के अन्दर उसमें भी घास विछाना ओढ़ना चारों ओर पर्दे लगवाने और अग्नि की अंगीठियें जलाना आदि ये सब सावद्य कार्य्य शरीर के ममत्त्व से ही किये जाते हैं इसमें कई दिगम्बर मुनि अग्नि शरण भी हो गये फिर केवल एक नग्नत्व का हठ पकड़ने में क्या लाभ हैं ।

५—दिगम्बराचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्त्री पुरुष और नपुंसक एवं तीनों वेद वालों की मोक्ष होनालिखा ❀ है परन्तु स्वयं वस्त्र नहीं रखने के कारण स्त्रियों के लिये मोक्ष का निषेध करना पड़ा है पर इस कल्पना को दिगम्बराचार्य ने ही असत्य ठहरा दी है । दिगम्बर मत में कई संघ स्थापित हुए थे उसमें यापनीय संघ भी एक है उस यापनीय संघ में एक शकटायन नाम का आचार्य हुआ उन शकटायनाचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष होना और केवली को आहार करने के विषय दो प्रकरण बनाया है वे मूल प्रकरण यहां दर्ज करदिये जाते हैं ।

## स्त्री-मुक्तिप्रकरणं

प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः । वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥१॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु । न विरुध्यति हि रत्नत्रयसंपद् निर्वृ तेर्हेतुः ॥२॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादि भावेन । इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमोऽन्यदवा ॥३॥
जानीतेजिनवचनं श्रद्धत्ते,चरति चाऽऽर्यिका शबलम् । नाऽस्याऽसत्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोध गतिरस्ति
सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमन्याप्तनेव मन्यन्ते । निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥५॥

❀ दिगम्बर पुराणों में तीर्थंकरों के चतुर्विधि संघ की संख्या दी है, जिसमें ६-७ गुणस्थान वाली साध्वीयों की संख्या भी स्पष्ट है ।

विषमगनयोऽप्यधस्त्वाद् उपरिष्टात् तुल्यमामहमारम् । गच्छन्ति च तिर्यक्त्वतद्योगन्यूनताऽन्तः॥६॥
वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च । जिनकल्प-मनः पर्ययविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति
वादादिलब्ध्यभाववद् अभविष्यद् यदि च सिद्धयभावोऽपि । तानामतारविष्याद् पर्यंत जन्तुगादागत्॥७॥
'स्त्री'ति च धर्म विरोधे प्रव्रज्यादोषसंशितो 'स्त्री'ति । बालादिवद् वदेयूर्न 'गर्भिणी बालवत्से' ति ॥९॥
यदि वस्त्राद् अविमुक्तिः, त्यजेत तद्, अथ न कल्पते हातुम । उत्सङ्गप्रतिलेखनवद्, अन्यथा देव को दृश्ये
त्यागे सर्वत्यागो ग्रहणेऽस्तो दोष इत्युपादेशि । वस्त्रं गुरुणाऽऽर्याणां परिग्रहोऽपीति चुन्यासौ ॥११॥
यत् संयमोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् । धर्मस्यहितत् साधनमतोन्यद् अधिकरणमाहाऽर्हन्॥१२॥
अस्तैन्यवाहिर व्युत्सर्गविवेकैषणादिमितीनाम् । उपदेशनमुपदेशो ह्युपधेरपरिग्रहत्वस्य ॥१३॥
निग्रन्था""""शास्त्रे सर्वत्र नैव युज्येत । उपधेग्रन्थत्वेऽस्याः पुमानपि तथा न निर्ग्रन्थः ॥१४॥
संसक्तौ मन्यामपि चोदितयन्नेन परिहरन्त्यार्या । हिमानवती पुमानिव न जन्तुमालाकुले लोके ॥१५॥
वस्त्रं विना न चरणं स्त्रीणामित्यर्हतौचयत, विनाऽपि । पुंसामिति न्यशर्यत तत्र स्थविरादिवद् इच्छिन्
अर्शो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत । उपसर्गेण चीरे ग्दादिः संन्यस्यते चाचे ॥१७॥
उन्मङ्गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि । आचेलस्या (क्यं, योग्यायोग्याऽसिद्धेर्दीस्य इ॥१८॥
इति जिनकल्पादीनां युक्त्यङ्गानाम योग्य इति सिद्धेः । स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्यो ऽदीक्षणीय इ॥१९॥
संवर-निर्जरूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शस्त्रे । योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारी॥२०॥
वस्त्राद् न मुक्तिविरहो भवतीत्युक्तं, ममग्रमन्यच । रत्नत्रयाद् न वाऽन्यद् युक्त्यङ्गं शिष्यते सद्भिः॥२१॥
मत्राजना निषिद्धा क्वचित्तु रत्नत्रयस्य योगेऽपि । धर्मस्य हानि-वृद्धी निरूपयद्भिर्विद्व्यर्थम् ॥२२॥
अनतिनन्यत्वात् चेत् संयतवर्गेण नाऽऽर्यिकासिद्धिः । वन्यतां ता यदिते, नोनत्वं कल्प्यते तासाम्॥२३॥
मन्यूनाभुक्त्येभ्यस्ताःस्मारण-चारणादिकारिभ्यः । तीर्थंकराऽऽकारिभ्यो न च जिनकल्पादिरिति गणधरा
अर्हन् न वन्दते न तावताऽसिद्धिरङ्गगतेः । मात्राऽन्यया विमुक्तिः, स्थानं स्त्री-पुंसयोस्तुल्यम् [नाम्
आकृष्यते श्रिया स्त्री पुंमः सर्वत्र किं न तन्मुक्तौ । इत्यमुना क्षेप्यस्त्री-पुंसां सिद्धिः सममरुक्त्वम्
मायादिः पुरुषाणामपि देशवि (द्वेषादि) प्रसिद्धमात्रय । षण्णां संस्थानानां तुल्यो वर्णत्रयस्यापि ॥२७॥
'स्त्री' नाम मन्दसत्त्वा उन्मङ्गसमग्रता न तेनाऽत्र । तत् कथमनल्पवृत्तयः सन्ति हि शीलाम्बुधेर्वेलाः ॥२८॥
ब्राह्मी सुन्दर्याऽऽर्या राजीमती चन्दना गणधराऽन्या । अपि देव-मनुज-महिताःविख्याताःशील-सत्त्वाभ्याम्
गार्हस्थ्येऽपि सुसत्त्वा विख्याता शीलवतितमा जगति । सीतादयः कथं तास्तपसि विसत्त्वा विशीलाश्च
संत्यज्य राज्यलक्ष्मीं पति-पुत्र-भ्रातृ-बन्धुसम्बन्धम् । पारिव्रज्यवहायाः किमसत्त्वं सत्यमामाहुः ?
महता पापेन स्त्री-मिथ्यात्वसहायकेन न सुदृष्टिम् । स्त्रीत्वं चिनोति, तद् न, तदङ्गे क्षपणेऽपि निर्मानम्
अन्तः कोटी कोटीस्थितिकानि भवन्ति सर्व-कर्माणि । सम्यक्त्वलाभ एवाऽशेषोऽप्यशयकरो मार्गः ॥
अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः सिद्धि । स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा ॥३४॥

मन्दों में त्रिविध संघ ही रहा । कारण साध्वी नग्न नहीं रह सके और वस्त्र धारण करने पर वे उसमें संयम नहीं मानते हैं अतः त्रिविध संघ ही रहा । इतना ही क्यों पर भूतकाल में अनन्त तीर्थङ्करों के शासन में अनंत सती साध्वियां मोक्षगई उनके लिये भी दिगम्बरों को इन्कार करना पड़ा । यह एक बड़ा भारी उत्सूत्र है । ⊛

२—दिगम्बरों के नग्नत्व के एकान्त हठ पकड़ने से दिगम्बर साधुओं की आज क्या दशा हुई है जो मुनि पृथ्व्यादि छः काया के जीवों का आरंभ करन करावन और अनुमोदन का त्याग कर पंच महाव्रत धारी बने थे और मधुकरी भिक्षा से अपना निर्वाह करते थे ( जैन साधु आज भी मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते हैं ) वही दिगम्बर बन कर पात्र न होने से एक ही घर में भिक्षा करते हैं अतः वे पूर्वोक्त नियम का पालन नहीं कर सकते हैं । जब इन साधुओं को भिक्षा करते हुए को देखा जाय तो देखने वाले को घृणा आये बिना भी नहीं रहती है और उनका विहार तो बिना गाड़ी और बिना रसोइये के हो ही नहीं सकता है बस दिगम्बरों में नग्नत्व रहता हुआ भी संयम कूच कर गया है ।

३—वृद्ध ग्लानी तपस्वी साधु की व्यावच्च करना दिगम्बरों के शास्त्रों में भी लिखा है पर जब वस्त्र पात्र ही नहीं रखा जाय तो आहार पानी कैसे लाकर दे सकते हैं ?

४—नग्न रहने का मुख्य कारण परिसह सहन करना और ममत्व भाव से बचना है परन्तु दिगम्बर साधु नग्न रहने में न तो परिसह को सहन करते हैं और न ममत्व भाव से बच ही सकते हैं । शीत काल में नग्न साधु शीत से बचने के लिये मकान के अन्दर उसमें भी घास बिछाना ओढ़ना चारों ओर पर्दे लगवाने और अग्नि की अंगीठियें जलाना आदि ये सब सावद्य कार्य्य शरीर के ममत्व से ही किये जाते हैं इसमें कई दिगम्बर मुनि अग्नि शरण भी हो गये फिर केवल एक नग्नत्व का हठ पकड़ने में क्या लाभ हैं ।

५—दिगम्बराचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्त्री पुरुष और नपुंसक एवं तीनों वेद वालों की मोक्ष होनालिखा ⊛ है परन्तु स्वयं वस्त्र नहीं रखने के कारण स्त्रियों के लिये मोक्ष का निषेध करना पड़ा है पर इस कल्पना को दिगम्बराचार्य ने ही असत्य ठहरा दी है । दिगम्बर मत में कई संघ स्थापित हुए थे उसमें यापनीय संघ भी एक है उस यापनीय संघ में एक शकटायन नाम का आचार्य हुआ उन शकटायनाचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष होना और केवली को आहार करने के विषय दो प्रकरण बनाया है वे मूल प्रकरण यहां दर्ज करदिये जाते हैं ।

## स्त्री-मुक्तिप्रकरणं

प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः । वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥१॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु । न विरुध्यति हि रत्नत्रयसंपद् निर्वृतेर्हेतुः ॥२॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादि भावेन । इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमोऽन्यदवा ॥३॥
जानीतेजिनवचनं श्रद्धत्ते, चरति चाऽऽर्यिका शबलम् । नाऽस्याऽसत्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोध गतिरस्ति
सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमव्याप्तनेव मन्यन्ते । निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥५॥

⊛दिगम्बर पुराणों में तीर्थंकरों के चतुर्विधि संघ की संख्या दी है, जिसमें ६-७ गुणस्थान वाली साध्वीयों की संख्या भी स्पष्ट है ।

तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन । क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोधगति
अविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेदभावेन । इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥४॥
क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यंतत् । ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो द्वयम्
आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे ! कथास्न्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जायेत॥६॥
न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या । न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः
शीतोष्णवाततुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधान काङ्क्षा तु । मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं बाध्यमानस्य
तैजससमूहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या । अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत् सर्वम्
ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम् । क्षुत् तद्विलक्षणऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि॥१०॥
क्षुद्बाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्यासः । तद्वेद्यं सहकारि तु; तस्य न तद् वेद्यसहकारि
ज्ञानावरणादीनामशेषविगमे क्षुधि प्रजातायाम् । अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥१२॥
नष्टविपाका क्षुदिति प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः। शीतोष्ण-क्षुद्-उदन्याऽऽद्यो हि ननु वेदनीय इति
उदये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य । नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरप्यफलम्॥१४॥
अनुदीर्णवेद्य इति चेद् न क्षुद् वीर्ये किमत्र नहि वीर्यम् । क्षुदभावे क्षुदभावेन स्थित्यै क्षुधि तनोर्विलयः
अपवर्तते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयो न हीयन्ते । जगदुपकृतावनन्तं वीर्यं किं गततृपो भुक्तिः ॥१६॥
ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् क्षुद् उद्भवेद् भुक्तिः। वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-परसिद्धिःस्यात्
ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः । सा नेदानीमस्ति स्वस्य परेषां च कर्तव्या॥१८॥
रत्नत्रयेण भुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्य । भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि
आयुरिवाऽभ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः । चेत् तिष्ठत्वनन्तवीर्ये विनाऽयुषा कालमपि तिष्ठेत्
न ज्ञानवदुपयोगो वीर्ये कर्मक्षयेण लब्धिस्तु । तत्राऽऽयुरिवाऽऽहारोऽपेक्ष्येत न तत्र बाधाऽस्ति॥२१॥
मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन । तिष्ठन्ति न चाऽऽकालं नान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः
असति क्षुद्बाधेऽङ्गे लये न शक्तिक्षयो न संक्लेशः । आयुश्चानपवर्त्यं बाध-लयौ प्राग्वदधुनाऽपि
देशोनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः । सूत्रोक्तमुपापादि न, भुक्तिश्च न नियतकाला स्यात्॥२४॥
अपवर्तहेत्वभावेऽनपर्वतनिमितसंपदायुष्कः । स्याद् अनपवर्त इति तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते॥२५॥
कायस्तथाविधोऽसौ जिनस्य यदभोजनस्थितिरितिदिम् । वाङ्मात्र नाऽत्रार्थे प्रमाणमाप्तागमोऽन्यदुक्त्वा
अस्वेदादि प्रागपि सर्वाभिमुखादि तीर्थकरपुण्यात् । स्थितनखतादि सुरेभ्यो न क्षुद् देहान्यता वाऽस्ति
भुक्तिर्दोषो यदुपोष्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषे, इति निगदतो निषद्याऽर्हति न स्थान-योगादेः॥२८॥
रोगादिवत् क्षुधो न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः । प्राणिनि "एकादशजिन" इतिजिन सामान्यविषयंच
तद्हेतुकर्मभावात् परीषहोक्तिर्न जिन उपस्कार्यः नश्वाऽभावासिद्धेरित्यादेर्न क्षुदादिगति ॥ ३०॥
तैलक्षये न दीपो न जलागममन्तरेण जलधारा । तिष्ठति तथा तनोः स्थितिरपि न विनाऽऽहारयोगेन

शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्या क्वचित् कयाचिदतः । तदयोगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यः
स्तन-जघनादिव्यङ्ग्ये 'स्त्री' शब्दोऽर्थे, न तं विहायैव । दृष्टः क्वचिदन्यत्र त्वग्निर्माणवकवद् गौणः
आ पष्ठ्या स्त्रीत्यादौ स्तनादिभिस्त्री स्त्रिया इति च वेदः। स्त्रीवेद स्त्र्यनुवन्धास्तुल्यानां शतपृथक्त्वोक्तिः
न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च। भावः सिद्धौ पुंवत् पुमां अपि (पुंसोऽपि) न सिध्यतो वेदः
क्षपकश्रेण्यारोहे वेदनोच्येत भूतपूर्वेण । 'स्त्री' ति नितराममुख्ये मुख्येऽर्थे युज्यते नेतराम् ॥३६॥
मनुषीषु मनुष्येषु च चतुर्दशगुणोक्तिराजि (र्यि) कासिद्धौ । भावस्तवोपरिक्षिप्य' ' 'नवस्थो नियतउपचारः
पुंसि स्त्रियां, स्त्रियां पुंसि-अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः । यतिषु न संवासादिः स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः
अनड्डाऽनड्वाहीं दृष्ट्वाऽनड्वाहमनडुहाऽऽरूढम् । स्त्रीपुंसेतरवेदो वेद्यो नाऽनियमतो वृत्तेः ॥४२॥
नाम-तदिन्द्रियलब्धेरिन्द्रियनिर्वृत्तिमिच प्रमाद्यङ्गम् । वेदोदयाद् विरचयेद् इत्यतदङ्गेन तद्भेदः ॥४३॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः,पुंसि स्त्रीवत्,स्त्रिया स्त्रियां च स्यात्। सा स्वकवेदात् तिर्यगवदलाभे मत्तकामिन्याः
विगतानुवादनीतौ सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः । नव मार्गणान्तर इति प्रोक्तं वेदेऽन्यथा,नीतिः
न च बाधकं विमुक्तेः स्त्रीणामनुशासकं प्रवचनं च। संभवति च मुख्येऽर्थे न गौणइत्यार्यिका सिद्धिः

* इति स्त्री निर्वाण प्रकरणं समाप्तम् ॥

इसके अलावा दिगम्बर समुदाय का परम माननीय ग्रन्थ गोमटसार तथा त्रिलोक्यसार नाम के ग्रन्थों में भी स्त्रियों की मुक्ति होना स्पष्ट शब्दों में उल्लेख मिलता है पर मत्ताग्रह के कारण हमारे दिगम्बर भाई उस ओर लक्ष नहीं देते हैं खैर मैं उस दिगम्बर ग्रन्थ की एक गाथा यहाँ उद्धृत कर देता हूँ—

"वोस नपुंसक वेआ, इत्थीवेयाय हुँति चालीसा। पुं वेआ अडयाला, सिद्धा एक्कम्मि समय म्मि ॥"

अर्थात् एक समय १०८ सिद्ध होते हैं जिसमें २० नपुंसक ४० स्त्रियों और ४८ पुरुष इस प्रकार १०८ की संख्या दिगम्बराचार्यों ने ही वतलाई है इतना ही क्यों पर उन्होंने तो स्त्रियों को चौदहवां अयोग गुणस्थान होना भी लिखा है । गौमटसार जीव कांड की गाथा ७१४ में भी अयोगी स्त्री का जिक्र है एवं स्त्री को १४ वां गुणस्थान वताया है ।

६—दिगम्बरों ने एक नग्नत्व के आग्रह करने में और भी अनेक मिथ्या प्ररूपना करदी है जैसे दिगम्बर कहते हैं कि केवली कवल आहार नहीं करते हैं जो कि यह कथन खास दिगम्बरों के ग्रन्थों से ही मिथ्या सावित होता है । कारण गोमटसार, दिगम्बरीय तत्त्वार्थ सूत्र, तत्वार्थसार आदि ग्रन्थों में केवली के ग्यारह परिसह वतलाये हैं जिसमें क्षुधा और पिपासा परिसह भी हैं इनके अलावा दिगम्बराचार्य्य शकटायन ने भी केवली के आहार करने की सिद्धि में एक ग्रंथ निर्माण किया है । वह यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है ।

## ॥ केवलिभुक्तिप्रकरणम् ॥

अस्ति च केवलिभुक्तिः समग्रहेतुर्यथा पुरा भुक्तेः । पर्याप्ति-वेद्य-तैजस-दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥१॥
नष्टानि न कर्माणि क्षुधो निमित्तं विरोधिनो न गुणाः । ज्ञानादयो जिने किं सा संसारस्थितिर्नास्ति

तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन। क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोधमति
अविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेदभावेन। इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥४॥
क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यंतत्। ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो दुःखं
आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे! कथास्न्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जातेति॥६॥
न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या। न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः
शीतोष्णबाततुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधान काङ्क्षा तु। मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं बाध्यमानस्य
तैजससमूहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या। अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तन् सर्वम्
ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम्। क्षुत् तद्विलक्षणऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि॥१०॥
क्षुद्बाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्यासः। तद्वेद्यं सहकारि तु; तस्य न तद् वेद्यमहकारि
ज्ञानावरणादीनामशेषविगमे क्षुधि प्रजातायाम्। अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥१२॥
नष्टविपाका क्षुदिति प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः। शीतोष्ण-क्षुद्-उदन्याऽऽदयो हि ननु वेदनीय इति
उदये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य। नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरप्यफलम्॥१४॥
अनुदीर्णवेद्य इति चेद् न क्षुद् वीर्ये किमत्र नहि वीर्यम्। क्षुदभावे क्षुदभावेन स्थित्यै क्षुधि तनोर्विलयः
अपवर्तते कृतार्थे नायुर्ज्ञानादयो न हीयन्ते। जगदुपकृतावनन्तं वीर्यं किं गतवृषो भुक्तिः ॥१६॥
ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् क्षुद् उद्भवेद् भुक्तिः। वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-परसिद्धिःस्यात्
ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः। सा नेदानीमस्ति स्वस्य परेषां च कर्तव्या॥१८॥
रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्य। भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि
आयुरिवाऽभ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः। चेत् तिष्ठत्वनन्तवीर्ये विनाऽयुषा कालमपि तिष्ठेत्
न ज्ञानवदुपयोगो वीर्ये कर्मक्षयेण लब्धिस्तु। तत्राऽऽयुरिवाऽऽहारोऽपेक्ष्येत न तत्र बाधाऽस्ति॥२१॥
मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन। तिष्ठन्ति न चाऽऽकालं नान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः
असति क्षुद्बाधेऽङ्गे लये न शक्तिक्षयो न संक्लेशः। आयुश्चानपवर्त्यं बाध-लयौ प्रागुवदधुनाऽपि
देशोनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः। यत्रोक्तमुपायादि न, मुक्तिश्च न नियतकाला स्यात्॥२४॥
अपवर्तहेत्वभावेऽनपवर्तनिमितसंपदायुष्कः। स्याद् अनपवर्त इति तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते॥२५॥
कायस्तयाविघोऽसौ जिनस्य यदभोजनस्थितिरितिदम्। वाङ्मात्र नाऽत्रार्थे प्रमाणमाप्तागमोऽन्यद्वा
अस्वेदादि भागपि सर्वामिमुरादि तीर्थकरपुण्यात्। स्थितनखतादि सुरेभ्यो न क्षुद् देहान्यता वाऽस्ति
भुक्तिर्दोषो यदुपोष्यते, न दोपश्च भवति निर्दोषे, इति निगदतो निषद्याऽर्हति न स्थान-योगादेः॥२८॥
रोगादिवत् क्षुधो न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः। प्राणिनि "एकादशजिन" इतिजिन सामान्यविषय
तद्हेतुकर्मभावात् परीषहोक्तिर्न जिन उपस्कार्यः नथाऽभावासिद्धेरित्यादेर्न क्षुदादिगतिः ॥ ३०॥
तैलक्षये न दीपो न जलागममन्तरेण जलधारा। तिष्ठति तथा तनोः स्थितिरपि न विनाऽऽहारयोगेन

तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन । क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोध्यपि
अविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेदभावेन । इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥४॥
क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यंतत् । ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो दुःख्
आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे ! कथास्यन्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जानेन॥६॥
न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या । न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः
शीतोष्णवाततुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधान काङ्क्षा तु । मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं बाध्यमानस्य
तैजससभृहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या । अनुचरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत् सर्वम्
ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम् । क्षुत् तद्विलक्षणऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि॥१०॥
क्षुद्बाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्यासः । तद्वेद्यं सहकारि तु; तस्य न तद् वेद्यनऽकारि
ज्ञानावरणादीनामशेषविगमे क्षुधि मजाबाधाम् । अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥१२॥
नष्टविपाका क्षुदिति प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः। शीतोष्ण-क्षुद्-उदन्याऽऽदयो हि ननु वेदनीय इति
उदये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य । नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरप्यफलम्॥१४॥
अनुदीर्यवेद्य इति चेद् न क्षुद् वीर्यं किमत्र नहि वीर्यम् । क्षुदभावे क्षुदभावेन स्थित्यै क्षुधि तनोर्विलयः
अपवर्तते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयो न हीयन्ते । जगदुपकृतावनन्तं वीर्यं किं गततृपो भुक्तिः ॥१६॥
ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् क्षुद् उद्भवेद् भुक्तिः। वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-परसिद्धिःस्यात्
ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः । सा नेदानीमस्ति स्वस्य परेषां च कर्तव्या॥१८॥
रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्य । भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि
आयुरिवाऽभ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः । चेत् तिष्ठत्यनन्तवीर्ये विनाऽयुषा कालमपि तिष्ठेत्
न ज्ञानवदुपयोगो वीर्ये कर्मक्षयेण लब्धिस्तु । तत्राऽऽयुरिवाऽऽहारोऽपेक्ष्येत न तत्र बाधाऽस्ति॥२१॥
मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन । तिष्ठन्ति न चाऽऽकालं नान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः
असति क्षुद्बाधेऽङ्गे लये न शक्तिक्षयो न संक्लेशः । आयुश्चानपवर्त्यं बाध-लयौ प्रागिवदधुनाऽपि
देशोनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः । यत्रोक्तमुपापादि न, मुक्तिश्च न नियतकाला स्यात्॥२४॥
अपवर्तहेत्वभावेऽनपवर्तनिमित्तसंपदायुष्कः । स्याद् अनपवर्त इति तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते॥२५॥
कायस्तथाविधोऽसौ जिनस्य यदभोजनस्थितिरितिदिम् । वाङ्मात्र नाऽत्रार्थे प्रमाणमाप्तागमोऽन्यदृग्
अस्वेदादि प्रागपि सर्वाभिमुखादि तीर्थकरपुण्यात् । स्थितनखतादि सुरेभ्यो न क्षुद् देहान्यता वाऽस्ति
भुक्तिर्दोषो यदुपोप्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषे, इति निगदतो निषद्याऽईति न स्थान-योगादेः॥२८॥
रोगादिवत् क्षुधो न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः । प्राणिनि "एकादशजिन" इतिजिन सामान्यविषयं च
तद्हेतुकर्मभावात् परीषहोक्तिर्न जिन उपस्कार्यः नश्वाऽस्मानामिद्धेरित्यादेर्न क्षुदादिगति ॥ ३०॥
तैलक्षये न दीपो न जलागममन्तरेण जलधारा । तिष्ठति तथा तनोः स्थितिरपि न विनाऽऽहारयोगेन

परमावधेर्युस्थ छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि । सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः॥३२
इन्द्रियविषयप्राप्तौ यद्भिनिवोधमसंजनं भुक्तौ । तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥३३॥
छद्मस्थे तीर्थंकरे विप्लवणनानन्तरं च केवलिनि । चित्तामलप्रवृत्तौ व्यासैवाऽत्रापि भुक्तवति ॥३४॥
विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् । भुक्तिं व्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः
नाऽनाभोगाहारः सोऽपि विशेषितो नाऽभूत । युक्त्याऽभेदे नाङ्गस्थिति-पुष्टि-क्षुच्छमास्तेन
तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन । यद्यभविष्यदिहैषां शाली-तरभोजनेनेव॥३७॥

॥ इति केवलीभुक्ति प्रकरणं ॥

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि आचार्य शकटायन एक दिगम्बर मत के प्रसिद्ध आचार्य हैं और आप अपने ग्रन्थ में युक्ति पूर्वक केवली को केवल आहार करना सिद्ध कर बतलाते हैं फिर दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है अतः केवली कवल आहार करते हैं यह श्वेताम्बरों की मान्यता शास्त्रोक्त ठीक है

इनके अलावा दिगम्बरों ने जैन शास्त्रों में क्या-क्या रद्दोबदल किया है उसके लिये महोपाध्यायजी श्रीयशोविजयजी महाराज का बनाया हुआ दिग्पट्ट ८४ बोल और उपाध्याय श्रीमघेविजयजी महाराज कृत युक्ति प्रबोध नामक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये ।

मनुष्य जब आग्रह पर सवार होता है तब इतना हैवान बन जाता है कि वह अपने हिताहित को भी भूल जाता है । यही हाल हमारे दिगम्बर भाइयों का हुआ है ।

अब हम प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात कर देखते हैं तो श्वेताम्बरों के पास तीर्थङ्कर कथित एवं गणधररचित द्वादशांग से एक दृष्टिवाद को छोड़ एकादशांग विद्यमान हैं तब दिगम्बरों के पास द्वादशांग से एक भी अंग नहीं है । दिगम्बरों के पास जो साहित्य है वह दिगम्बर मत ( वी० नि० सं० ६०९ ) निकलने के बाद में दिगम्बराचार्य्यों का निर्माण किया हुआ ही है और उसके आदि निर्माणकर्त्ता दिगम्बर आचार्य भूतवली और पुष्पदत्त बतलाये जाते हैं जिन्हों का समय वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी का है ।

दिगम्बर भाई कहते हैं कि तीर्थङ्कर कथित एवं गणधर रचित सबकेसब आगम अर्थात् द्वादशांग विच्छेद होगये थे और श्वेताम्बरों के पास वर्तमान में जो अंगसूत्र बतलाये जाते हैं वे पीछे से मनः कल्पित नये बनाये हैं और उनके नाम अंग रख दिये हैं । इत्यादि ?

पहिला सवाल तो यही उठता है कि जब तीर्थङ्करप्रणीत सब आगम विच्छेद होगये थे तब दिगम्बराचार्य्यों ने जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की वे किन २ शास्त्रों के आधार से की होगी? कारण, दिगम्बरों की मान्यतानुसार तीर्थङ्करप्रणीत आगम तो सबके सब विच्छेद होगये थे । इससे साबित होता है कि दिगम्बरों ने सब ग्रन्थ मनः कल्पित ही बनाये थे ? या श्वेताम्बराचार्यों के ग्रन्थों से मसाल लेकर अपनी मान्यतानुसार नये ग्रन्थों का निर्माण किया है ?

दिगम्बर लोग कहते हैं कि मुनिधारसेन बड़े ही ज्ञानी एवं दो पूर्वधर थे और उन्होंने अपनी अन्तिमावस्था में यह सोचा कि मैं अपना ज्ञान किसी योग्य मुनि को दे जाऊँ अतः उन्होंने भूतवलि और पुष्पदन्त नाम के मुनियों को बुलाकर ज्ञान पढ़ाया और मुनि भूतवलि ने उस ज्ञान को सबसे पहिले पुस्तक पर

लिखा जिसको राजा और श्रीसंघ ने हाथी पर स्थापन करके बड़े महोत्सव के साथ जुलूस निकाला। वह दिन था ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी का जिसको आज भी दिगम्बर भाई ज्ञानाराधना में मुख्य मानते हैं।

अब सोचने का विषय यह है कि मूल संघ की पट्टावली में मुनि धारसेन का समय वीरात् ६१४ से ६३५ का माना है। जब भूतबलि का समय वीरात् ६६३ से ६८३ बतलाया है। और पुष्पदन्त का समय वीरात् ६३३ से ६६३ कहा है। पाठक सोच सकते हैं कि मुनि धारसेन के समय भूतबलि की दीक्षा ही नहीं हुई थी तो मुनि धारसेन ज्ञान दिया किसको ? जिस भूतबलि और पुष्पदन्त को समकालीन बताते हैं और मुनि धारसेन दोनों को ज्ञान दिया लिखते हैं तब दिगम्बर पट्टावलियां पुष्पदन्त का देहान्त के वर्ष भूतबलि की दीक्षा हुई लिखते हैं फिर वे दोनों समकालीन कैसे हो सकते हैं ? इससे दिगम्बरों की बात कल्पित पाई जाती है। न तो धारसेनमुनि दो पूर्व के ज्ञानी थे न उन्होंने पुष्पदन्त और भूतबलि को ज्ञान ही दिया था और न पूर्वों के ज्ञान में ऐसा खंडन मंडन या पक्षपात ही है जैसा कि भूतबलि ने अपने ग्रंथों में लिखा है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि भूतबलि या पुष्पदन्त ने जो ग्रंथ लिखा है वह किसी पूर्व मुनियों के ज्ञान के आधार पर नहीं लिखा है प्रत्युत अपनी मनः कल्पना से लिखा है और न उन्होंने अपने ग्रन्थ में कहीं पर ऐसा उल्लेख ही किया है कि हमने अमुक पूर्व या अंग के आधार पर लिखा है।

एक खास मजे की बात तो यह है कि श्वेताम्बरों के लिये तो दिगम्बरभाई कहते हैं कि भद्रबाहु स्वामी के समय बारहवर्षीय दुकाल में तीर्थङ्करकथित सब आगम विच्छेद होगये। जब वीरात् सातवीं शताब्दी में धारसेन मुनि को दो पूर्व का ज्ञान बतलाते हैं। अब सवाल यह होता है कि वे दो पूर्व जो धारसेन मुनि को याद थे वे तीर्थङ्कर कथित थे या अन्यकथित ? यदि तीर्थंकर कथित थे तब तो दिगम्बरों के पक्षपात की हद ही हो गई है क्योंकि श्वेताम्बरों के लिये तो लिखना कि भद्रबाहु के समय ( वी० नि० स० १६० ) ही सब आगम विच्छेद होगये थे और दिगम्बरों के लिये ( वीर नि० की सातवीं शताब्दी ) धारसेनमुनि दो पूर्व का ज्ञान रह गया। इससे अधिक पक्षपात ही क्या हो सकता है ?

श्वेताम्बरों के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि आचार्य भद्रबाहु के समय बारहवर्षीय दुकाल के अन्त में पाटलीपुत्र में श्रमणसंघ ने एकत्र होकर एकादशांग की ठीक व्यवस्था की और स्थूलभद्रमुनि ने भद्रबाहु से चौदह पूर्व का अध्ययन किया और यह बात वास्तव में सत्य भी है। कारण, वीर निर्वाण के पश्चात् १६० वर्ष बहुत नजदीक का समय था वहाँ तक चौदह पूर्वधर विद्यमान हों तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं हैं। बाद आर्यवज्रके समय द्वादशवर्षीय दुकाल पड़ा और दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तब सोपार पट्टन में आचार्य वज्रदेवसूरि के अध्यक्षत्व में पुनः आगम वाचना हुई उस समय तक दशपूर्व का ज्ञान सुरक्षित था तथा आर्य रक्षितसूरि ने उसी समय चारों अनुयोग पृथक् २ किये उस समय आर्य वज्रसूरि दशपूर्वधारी विद्यमान थे। तत्पश्चात् आर्य स्कन्दिल के समय फिर बारह वर्षीय दुकाल पड़ा और दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो आर्य स्कन्दिलसूरि की अध्यक्षत्व में मथुरा में संघ एकत्र हुए और उस समय भी एकादशांग की वाचना हुई वे एकादशांग अद्यावधि विद्यमान हैं आर्य वज्रदेव एवं आर्य स्कन्दिल के समय कई आगमपुस्तकारूढ किये गये थे पर वी० नि० दशवीं शताब्दी में पुनः वल्लभी नगरी में आर्यदेवर्द्धिगणि के नेतृत्व में संघ एकत्र होकर अंगसूत्रों के साथ प्रायः वर्तमान में जितने सूत्र थे उन सबको पुस्तकारूढ करवाया वे सब सूत्र आज श्वेताम्बर समाज के पास मौजूद हैं।

परमावधेर्युस्थ छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि । सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः॥३२
इन्द्रियविपयप्राप्तौ यद्भिनिवोधप्रसंजनं भुक्तौ । तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥३३॥
छद्मस्थे तीर्थंकरे विप्रणनानन्तरं च केवलिनि ! चित्तामलप्रवृत्तौ व्यासैवाऽत्रापि भुक्तवति ॥३४॥
विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् । भुक्तिं व्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः
नाऽनाभोगाहारः सोऽपि विशेपितो नाऽभूत । युक्त्याऽभेदे नाङ्गस्थिति-पुष्टि-क्षुच्छमास्तेन
तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन । यद्यभविष्यदिहैषां शाली-तरभोजनेनेव॥३७॥

॥ इति केवलीभुक्ति प्रकरणं ॥

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि आचार्य शकटायन एक दिगम्बर मत के प्रसिद्ध आचार्य हैं और आप अपने ग्रन्थ में युक्ति पूर्वक केवली को केवल आहार करना सिद्ध कर वतलाते हैं फिर दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है अतः केवली कवल आहार करते हैं यह श्वेताम्वरों की मान्यता शास्त्रोक्त ठीक है

इनके अलावा दिगम्बरों ने जैन शास्त्रों में क्या-क्या रद्दोवदल किया है उसके लिये महोपाध्यायजी श्रीयशोविजयजी महाराज का वनाया हुआ दिग्पट्ट ८४ वोल और उपाध्याय श्रीमघेविजयजी महाराज कृत युक्ति प्रवोध नामक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये ।

मनुष्य जव आग्रह पर सवार होता है तव इतना हैवान वन जाता है कि वह अपने हिताहित को भी भूल जाता है । यही हाल हमारे दिगम्वर भाइयों का हुआ है ।

अव हम प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात कर देखते हैं तो श्वेताम्वरों के पास तीर्थङ्कर कथित एवं गणधररचित द्वादशांग से एक दृष्टिवाद को छोड़ एकादशांग विद्यमान हैं तव दिगम्वरों के पास द्वादशांग से एक भी अंग नहीं है । दिगम्वरों के पास जो साहित्य है वह दिगम्वर मत ( वी० नि० सं० ६०९ ) निकलने के वाद में दिगम्वराचार्य्यों का निर्माण किया हुआ ही है और उसके आदि निर्माणकर्त्ता दिगम्बर आचार्य भूतवली और पुष्पदन्त वतलाये जाते हैं जिन्हों का समय वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी का है ।

दिगम्बर भाई कहते हैं कि तीर्थङ्कर कथित एवं गणधर रचित सवकेसव आगम अर्थात् द्वादशांग विच्छेद होगये थे और श्वेताम्वरों के पास वर्तमान में जो अंगसूत्र वतलाये जाते हैं वे पीछे से मनः कल्पित नये वनाये हैं और उनके नाम अंग रख दिये हैं । इत्यादि ?

पहिला सवाल तो यही उठता है कि जव तीर्थङ्करप्रणीत सव आगम विच्छेद होगये थे तव दिगम्वराचार्य्यो ने जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की वे किन २ शास्त्रों के आधार से की होगी ? कारण, दिगम्वरों की मान्यतानुसार तीर्थङ्करप्रणीत आगम तो सवके सव विच्छेद होगये थे । इससे सावित होता है कि दिगम्वरों ने सव ग्रन्थ मनः कल्पित ही वनाये थे ? या श्वेताम्वराचार्यों के ग्रन्थों से मसाल लेकर अपनी मान्यतानुसार नये ग्रन्थों का निर्माण किया है ?

दिगम्वर लोग कहते हैं कि मुनिधारसेन बड़े ही ज्ञानी एवं दो पूर्वधर थे और उन्होंने अपनी अन्तिमावस्था में यह सोचा कि मैं अपना ज्ञान किसी योग्य मुनि को दे जाऊँ अतः उन्होंने भूतवलि और पुष्पदन्त नाम के मुनियों को वुलाकर ज्ञान पढ़ाया और मुनि भूतवलि ने उस ज्ञान को सवसे पहिले पुस्तक पर

कुछ लिखा है वह मनः कल्पित ही लिखा है। अतः दिगम्बरमत प्राचीन नहीं है। पर श्वेताम्बरों के अन्दर से निकला हुआ एक अर्वाचीन मत है।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में जैनधर्म के आचार्य उनके गण कुल शाखा का वर्णन किया है। उसी आचार्य एवं गण कुल शाखा के नाम मथुरा के कंकाली टीले से मिली हुई मूर्तियों के शिलालेखों में मिलते हैं देखिये:—

संवत्सरे ६०··················स्य कुटुँबनिय दानस्य ( घोधुय ) कोट्टियातोगणतो, प्रश्नवाहनकुलतो, मज्जमातोशाखातो सनिकायमतिगालाए, थवानि··········"

यह लेख सम्वत् ६० का एक खण्डित मूर्ति पर का है।

"सं ४७ ग्र० २ दि २० एतस्य पूर्वाये चारणेगणोयतिघमिक कुलवाचकस्य रोहनदिस्य शिष्यस्य सेनस्य निर्वतक सावन···········इत्यादि।

यह लेख सम्वत् ४७ का एक पत्थर खण्ड पर है।

"सिद्ध, नमोअरिहंतो महावीरस्य देवस्य, राज्ञावसुदेवस्य, संवत्सरे ९८ वर्षे मासे ४ दिवसे ११ एतस्य पूर्वा वे आर्य रोहतियतोगणतो परिहासककुलतो पोनपत्ति कातो शाखातो गणस्य आर्यदेवदत्तस्य················इत्यादि।

"सिद्धं सं० ९ हे० ३ दिन १० गहमित्रस्य घितुशीवशिरिस्य वधु एकडलस्य कोट्टियातो-गणतो, आर्य तरिकस्य कुटुविनिये, ठानियातो कुलतो वैरातो शाखातो निवर्तना गहपलाये दिवि"

इन शिलालेखों से स्पष्ट पाया जाता है कि भगवान् महावीर की परम्परा के आचार्य, गण, कुल, शाखा जो पूर्वोक्त शिलालेखों में लिखा हैं वह श्वेताम्बर समुदाय के पूर्वज ही थे एवं कल्पसूत्र की स्थविरावली में उपरोक्त गण कुल शाखाओं का विस्तार से उल्लेख मिलता है:—

इनके अलावा डा० जेकोबी लिखते हैं कि:—

Additions and alterations may have been made in the sacred texts after that time; but as our argument is not based on a single passage or even apart of the Dhammpada, but on the metrical laws of a variety of metres in this and other Pali Books, the admission of alterations and additions will not materially influence our conclusion, viz; that the whole of the jain siddhanta was composed after the fourth century B C.

इनके अलावा आप आगे चलकर हिन्दूधर्म के शास्त्रों को देखिये जैन मुनियों के लिये क्या कहते हैं—

"मुण्डं मलिनं वस्त्रंच कुण्डिपात्रसमन्वितम्। दधानं पुंजिकां हस्ते चालयन्ता पदे पदे॥ १॥
वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा। धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरेः" ॥ २॥

शिवपुराण अध्याय २१

हस्ते पात्रं दधानश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकः : मलिनान्येव वासांसि धारयन्तोऽल्प भाषिणः ॥ २५॥
धर्मोलाभः परं तत्त्वं वदन्तस्ते तथा स्वयम्। मार्जनीं धार्यमाणास्ते वस्त्रखण्ड विनिर्मिताम्॥ २६॥

श्रीमालपुराण

अब खास दिगम्बरों की पट्टावलियों को देखिये वे क्या कह रही हैं:—

"जैनसिद्धान्त भवन आरा" ऐतिहासिक मुख पत्र जिसके सम्पादक पद्मराज रानीवाल कलकत्ता वाले हैं जिसके प्रथम वर्ष किरण ४ पृष्ट ७१ से ८० तक में नन्दीसंघ बलातगण और सरस्वतीगच्छ की पट्टावली दी है जिसमें लिखा है कि:—

"महावीर के बाद ३ मुनि केवली, ५ मुनि श्रुतकेवली, और ११ मुनि दशपूर्वधर रहे यहाँ तक वीरात् ३४३ वर्ष बतलाया है उसके बाद वीरात् ४५६ वर्ष तक एकादशांग धारी रहे। इसके बाद कई वर्ष एक अंगधारी रहे इत्यादि।"

अब पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि भगवान् महावीर के पश्चात् ४५६ वर्ष तक एकादशांगधारी मुनि विद्यमान थे तब यह क्यों कहा जाता है कि भद्रबाहु के समय ( वीरात् १६० ) में ही आगम विच्छेद हो गये। इससे इतना तो स्पष्ट कह देना चाहिये कि हाल जो श्वेताम्बरों के पास अंगसूत्र हैं वे तीर्थङ्कर कथित ही हैं। हाँ, उनकी सूरत असली न रही हो याने संख्या कम हो गई हो पर वे हैं तीर्थङ्करवर्णित इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जब दिगम्बरों के मतानुसार वीरात् ४५६ वर्ष तक अंगसूत्र का ज्ञान विद्यमान था फिर श्वेताम्बरों से अलग होने के बाद दिगम्बरों के पास तीर्थङ्करप्रणीत थोड़ा बहुत ज्ञान नहीं रहा इसका क्या कारण? क्योंकि धारसेनमुनि दो पूर्वधर थे और उनके शिष्य भूतबली और पुष्पदन्त ने सबसे पहिले ग्रंथ लिखे तो उन्होंने पूर्व एवं अंगों को क्यों नहीं लिखा जैसे श्वेताम्बरों ने लिखा था परन्तु दिगम्बरों ने अपनी मत• कल्पना से नये ग्रन्थ बना डाले, इसका कारण? शायद तीर्थङ्कर कथित आगमों में साधुओं को वस्त्र रखने का विधान होने से दिगम्बरों ने उनको नहीं माना हो और श्वेताम्बरों की निंदा करने की गर्ज से नये मन कल्पित ग्रन्थ बना डाले हों, इनके अलावा और क्या कारण हो सकता है?

दूसरे एक यह भी प्रमाण मिलता है कि श्वेताम्बरों के अंगोपांग आगमों में कहीं पर भी दिगम्बरों का नाम निशान तक भी नहीं है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि श्वेताम्बरों के अंगोपांग बहुत प्राचीन हैं अर्थात् दिगम्बरों के मत निकलने के पूर्व के हैं कि जिनमें दिगम्बरों का खंडन मंडन नहीं है। तब दिग• म्बरों के ग्रन्थों में स्थान २ पर श्वेताम्बरों की निन्दा लिखी मिलती है। इससे भी यही साबित होता है कि दिगम्बरों के ग्रन्थ दिगम्बर मत निकलने के बाद रचे गये हैं। दिगम्बरों के पास प्राचीन कोई भी अंगोपांग आगम नहीं है। अतः दिगम्बरमत अर्वाचीन समूर्छिम पैदा हुआ एक नया मत है।

पुनः एक यह भी प्रमाण मिलता है कि भगवान् महावीर के शिष्यों में गोसाला नाम का शिष्य था और उसने भगवान् महावीर से खिलाफ होकर अपना नया मत स्थापन किया था जिसका नाम आजीवका मत था। इस विषय का उल्लेख बौद्धों के पिटक ग्रन्थों में भी मिलता है और आज इतिहास के संशोधक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के समय एक आजीवका नाम का मत प्रचलित था और उसका उत्पादक गोसाला था। श्वेताम्बरीय शास्त्र श्रीभगवतीसूत्र शतक १५ वां में गोसाला का विस्तार से वर्णन है परन्तु दिगम्बर शास्त्रों में किसी स्थान पर गोसाला का वर्णन नहीं है। इससे स्पष्ट होजाता है कि दिगम्बरों के पास कोई भी तीर्थङ्कर कथित आगम नहीं है। उन्होंने जो

अब खास दिगम्बरों की पट्टावलियों को देखिये वे क्या कह रही हैं :—

"जैनसिद्धान्त भवन आरा" ऐतिहासिक मुख पत्र जिसके सम्पादक पद्मराज रानीवाल कलकत्ता वाले हैं जिसके प्रथम वर्ष किरण ४ पृष्ठ ७१ से ८० तक में नन्दीसंघ बलातगण और सरस्वतीगच्छ की पट्टावली दी है जिसमें लिखा है कि:—

"महावीर के बाद ३ मुनि केवली, ५ मुनि श्रुतकेवली, और ११ मुनि दशपूर्वधर रहे यहाँ तक वीरात् ३४३ वर्ष बतलाया है उसके बाद वीरात् ४५६ वर्ष तक एकादशांग धारी रहे। इसके बाद कई वर्ष एक अंगधारी रहे इत्यादि।"

अब पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि भगवान् महावीर के पश्चात् ४५६ वर्ष तक एकादशांगधारी मुनि विद्यमान थे तब यह क्यों कहा जाता है कि भद्रबाहु के समय ( वीरात् १६० ) में ही आगम विच्छेद हो गये। इससे इतना तो स्पष्ट कह देना चाहिये कि हाल जो श्वेताम्बरों के पास अंगसूत्र हैं वे तीर्थङ्कर कथित ही हैं। हाँ, उनकी सूरत असली न रही हो याने संख्या कम हो गई हो पर वे हैं तीर्थङ्करवर्णित इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जब दिगम्बरों के मतानुसार वीरात् ४५६ वर्ष तक अंगसूत्र का ज्ञान विद्यमान था फिर श्वेताम्बरों से अलग होने के बाद दिगम्बरों के पास तीर्थङ्करप्रणीत थोड़ा बहुत ज्ञान नहीं रहा इसका क्या कारण ? क्योंकि धारसेनमुनि दो पूर्वधर थे और उनके शिष्य भूतबली और पुष्पदन्त ने सबसे पहिले ग्रंथ लिखे तो उन्होंने पूर्व एवं अंगों को क्यों नहीं लिखा जैसे श्वेताम्बरों ने लिखा था परन्तु दिगम्बरों ने अपनी मत-कल्पना से नये ग्रन्थ बना डाले, इसका कारण ? शायद तीर्थङ्कर कथित आगमों में साधुओं को वस्त्र रखने का विधान होने से दिगम्बरों ने उनको नहीं माना हो और श्वेताम्बरों की निंदा करने की गर्ज से नये मन कल्पित ग्रन्थ बना डाले हों, इनके अलावा और क्या कारण हो सकता है ?

दूसरे एक यह भी प्रमाण मिलता है कि श्वेताम्बरों के अंगोपांग आगमों में कहीं पर भी दिगम्बरों का नाम निशान तक भी नहीं है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि श्वेताम्बरों के अंगोपांग बहुत प्राचीन हैं अर्थात् दिगम्बरों के मत निकलने के पूर्व के हैं कि जिनमें दिगम्बरों का खंडन मंडन नहीं है। तब दिगम्बरों के ग्रन्थों में स्थान २ पर श्वेताम्बरों की निन्दा लिखी मिलती है। इससे भी यही साबित होता है कि दिगम्बरों के ग्रन्थ दिगम्बर मत निकलने के बाद रचे गये हैं। दिगम्बरों के पास प्राचीन कोई भी अंगोपांग आगम नहीं है। अतः दिगम्बरमत अर्वाचीन समूर्छिम पैदा हुआ एक नया मत है।

पुनः एक यह भी प्रमाण मिलता है कि भगवान् महावीर के शिष्यों में गोसाला नाम का शिष्य था और उसने भगवान् महावीर से खिलाफ होकर अपना नया मत स्थापन किया था जिसका नाम आजीवका मत था। इस विषय का उल्लेख बौद्धों के पिटक ग्रन्थों में भी मिलता है और आज इतिहास के संशोधक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध के समय एक आजीवका नाम का मत प्रचलित था और उसका उत्पादक गोसाला था। श्वेताम्बरीय शास्त्र श्रीभगवतीसूत्र शतक १५ वां में गोसाला का विस्तार से वर्णन है परन्तु दिगम्बर शास्त्रों में किसी स्थान पर गोसाला का वर्णन नहीं है। इससे स्पष्ट होजाता है कि दिगम्बरों के पास कोई भी तीर्थङ्कर कथित आगम नहीं है। उन्होंने जो

रक्खा है। और इस हठ के कारण ही जैन शासन में फूट डालकर अपना कल्पित मत चलाया है। वास्तव में श्वेताम्बर समुदाय भगवान महावीर की सन्तान परम्परा प्राचीन है और दिगम्बर स्वच्छन्दचारी अर्वाचीन मत है। इसके लिये अब विशेष प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में गण कुल शाखा गच्छ वगैरह भेद प्रभेद हैं वैसे दिगम्बर समुदाय में भी संघ गच्छ और इनके भेद प्रभेद है परन्तु विशेषता यह है कि श्वेताम्बर समुदाय में जितने गच्छ हुए हैं उसमें एक दो गच्छ को छोड़कर सबकी मान्यता-श्रद्धा प्ररूपना एक ही है जब दिगम्बरों में मूलमतोत्पत्ति के बाद में जितने भेद प्रभेद हुए उन सबकी श्रद्धा प्ररूपना पृथक्-पृथक है वह भी एक दूसरे से खिलाफ अर्थात् एक दूसरे को मिथ्यात्वी बतलाते हैं ठीक है जिसकी मूल मान्यता ही मिथ्यात्व से उत्पन्न हुई हो उनका यही हाल होता है पाठकों के अवलोकनार्थ दिगम्बर समुदाय के भेद प्रभेद का थोड़ा हाल यहां लिख दिया जाता है:—

१—मूलसंघ—इस संघ की स्थापना आचार्य अर्हद्दली द्वारा हुई और इस संघ के कई भेद प्रभेद जैसे—

a—सिंहसंघ—सिंह की गुफा में चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का सिंह संघ हुआ इस संघ से नूरगण और चन्द्रकपाद गच्छ निकला

b—नंदिसंघ—नंदिवृक्ष के नीचे चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नंदि संघ हुआ और इस संघ से बलात्कारगण तथा सरस्वती एवं पराजीत गच्छ निकला

c—सेनसंघ—सेनवृक्ष के नीचे वर्षाकाल व्यतीत करके आने वाले मुनियों का सेन संघ हुआ इस संघ को वृषभ संघ भी कहते हैं और सुरयगण और पुष्कर गच्छ इस संघ की शाखाएं हैं

d—देवसंघ—देवदत्ता वैश्या के वहां चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नाम देवसंघ हुआ इस संघ से देशीयगण और पुस्तकगच्छ निकला

इन चार संघों की स्थापना का कारण के लिये श्रुतावतार ग्रन्थ के करता लिखता है कि एक समय अर्हद्दली आचार्य ने सोचा कि अब केवल उदासीनता से ही धर्म नहीं चलेगा पर संघ ममत्व से ही धर्म चलेगा अतः उन्होंने संघों की स्थापना करके धर्म को चलाया

इन संघों के स्थापन का समय श्रुतावतार तथा दर्शनसार ग्रन्थों के अनुसार वीर निर्वाण से ७२३ वर्ष का है तब कवि मेघराज के मतानुसार इन संघों का समय आचार्य अकलंकदेव के स्वर्गवास के बाद का है ऐसा एक शिला लेखसे सिद्ध होता है क्योंकि अकलंकदेव के पूर्व बने हुए भगवती आराधना पद्मपुराण जिनशतकादि किसी भी ग्रन्थ में इन संघों का उल्लेख नहीं मिलता है और आचार्य अकलंकदेव के समकालीन आचार्य विद्यानन्दी प्रभाचन्द्र माणक्यनंदि आदि आचार्यों के भी अनेक ग्रंथ हैं पर उनमें भी इन संघों का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है अगर इन आचार्यों के समय प्रस्तुत संघ होते तो कहीं न कहीं उल्लेख अवश्य किया जाता ? हाँ आचार्य गुणभद्र का उत्तरपुराण में सबसे पहला सेनसंघ का उल्लेख हुआ है और गुणभद्र आचार्य अकलंकदेव के सम समायिक थे अतः यह मानना ठीक होगा कि इन संघों की स्थापना का समय आचार्य अकलंक देव के बाद अर्थात् विक्रम की नौवीं शताब्दी के आस पास का ही है—

२—द्राविड़ संघ-जैनेन्द्र व्याकरण के कर्त्ता पूज्यपाद तथा देवानंदि के शिष्य वज्रनंदि द्वारा इस संघ की स्थापना हुई वज्रनन्दि बड़े भारी विद्वान थे। देवसेनसूरि ने आपको 'पाहुडवेदी महसत्वो कहा है' तथा

इन पुराणों के श्लोकों में जैन साधुओं का वर्णन किया है जिसमें वस्त्र रजोहरणऔर मुखवस्त्रिका वाले साधुओं को जैनसाधु कहा है। अतः निर्विवाद सिद्ध होता है कि जैनसाधु प्राचीन समय से ही वस्त्र रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखते थे।

अब आप जरा बौद्धग्रन्थों की ओर दृष्टि डालकर देखिये वे क्या लिखते हैं:—

"बौद्धग्रन्थ धम्मपद पर बुद्धघोषाचार्य्य ने टीका रची है उसमें आप लिखते हैं कि निर्गन्थ ( जैनसाधु ) नीति मर्यादा के लिये वस्त्र रखते हैं"। इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर के समय जैन साधु वस्त्र रखते थे।

इनके अलावा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जैन साहित्य का अवलोकन कर अपना मत प्रकट किया है कि भगवान् पार्श्वनाथ के साधु पांचवर्ण के वस्त्र रखते थे तब भगवान् महावीर के साधु एक श्वेतवर्ण के वस्त्र रखते थे जिसके लिये सावत्थी नगरी में भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये केशीश्रमणाचार्य और गौतमस्वामी के आपस में चर्चा हुई जिसका वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र के २३ वें अध्ययन में विस्तार से लिखा है।

अब जरा खास दिगम्बराचार्य्यों के प्रमाणों को ही देखिये कि ये अपने ग्रन्थों में क्या लिखते हैं:—

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च। पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥ १२ ॥
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले। भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥ १३ ॥

श्री शुभचन्द्राचार्य्य फरमाते हैं कि:— ज्ञानार्णव अठारहवां अध्याय

"पिण्डं तथोपधिं शय्यामुद्गमोत्पादनादिना। साधो शोधयतः शुद्धा ह्येषणासमिति भवेत्"॥५॥

श्री अमृतचन्द्रसूरि तत्त्वार्थसार में लिखते हैं कि:— ( संवरतत्त्व )

"णाणुवहिं संजमुवहिं तव्वुववहिमण्णमवि उवहिं वा। पयदं गहणिक्खेवो समिड्डी आदाननिक्खेवा" ॥

कुन्दकुन्दाचार्य मूलाचार में कहते हैं:—

राजवार्तिककार क्या फरमाते हैं:—

"परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपः पर्यायशरीरसहकारीभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरण तृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति"

इन दिगम्बराचार्य्यों के कथनानुसार साधु संयम के रक्षार्थ आवश्यक उपधि रख सकते हैं यदि उस उपकरण उपधि पर ममत्व भाव रखते हों तो परिग्रह का कारण कहा जा सकता है। यही बात श्वेताम्बर शास्त्र कहता है कि "मुच्छापरिग्गहोवुत्तो" किसी भी उपाधि वगैर पर ममत्व भाव रखना परिग्रह है दूसरा नहीं पर कमण्डलु मोरपिच्छा और घास का संस्तारा तो दिगम्बर मुनि भी रखते हैं। यदि ममत्व का तांता नहीं छुटा हो तो इन पर भी मुर्च्छा आसकती है इतना ही क्यों पर शरीर पर मुर्च्छा एवं ममत्व आ जाय तो वह भी परिग्रह ही है—यदि जिसके ममत्व का तांता ही टूट गया है तो मरुदेवी जैसों को वस्त्राभूषण पहने हुई को भी केवल ज्ञान होगया था। तो साधुओं के उपधि की तो बात ही क्या है?

इत्यादि उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि दिगम्बरों ने नग्न रहने का केवल एक हठ पकड़

विद्वानाचार्य थे। इस संघ के शकटायान नामक आचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष और केवली आहार करने की सिद्धि में छोटे छोटे दो ग्रन्थों का निर्माण किया जिनको इस लेख के अन्दर उद्धृत कर दिये हैं।

४—काष्टासंघ—इस संघ की स्थापना—आदि पुराण के कर्ता जिनसेनाचार्य के गुरुभाई विनयसेन और विनयसेन का शिष्य कुमारसेन द्वारा हुई है कुमारसेन ने नन्दि तट नामक नगर में सन्यास धारण किया पर बाद में सन्यास पद से भ्रष्ट होकर दूसरे किसी के पास पुनः दीक्षा न लेकर उसने अपना अलग संघ स्थापन कर काष्टा संघ नाम रख दिया। और कुमारसेन के समय में ही यह संघ बागड़ प्रान्त में फैल गया था दर्शनसारग्रन्थ के कर्ता देवसेनाचार्य ने इस संघ की उत्पति का समय विक्रम सं० ७५३ का बतलाया है और इसको भी पांच जैनाभासों में गिना है—और कुमारसेनको मिथ्यात्वी तथा उन्मार्ग प्रवृतक बतलाया है। इस संघ की मान्यता दिगम्बर मत्त से भिन्न है उसका थोड़ा सा नमूना—

(१)—स्त्रियों को मुनि दीक्षा देने का विधान कर दिया।

(२)—क्षुल्लक यानि छोटे साधुओं को वीरचर्या ( अतापनायोग ) की आज्ञा देदी।

(३)—मयूर पिच्छी के स्थान गाय के बालों की पिच्छी रखने का विधान किया।

(४)—रात्रि भोजन पहलाव्रत की भावना माना जाता था जिसको छट्ठा अणुव्रत नाम का पृथक व्रत मानकर छट्ठा व्रत स्थापना किया।

(५)—आगम शास्त्र और प्रायश्चितादि नये ग्रन्थ बनाकर मिथ्यात्व फैलाया इस संघ में नन्दितट माथुर बागड़ और लाडवागड आदि कई भेद हैं पर कई लोग माथुर संघ को अलग भी मानते हैं।

५—माथुर संघ—इसका दूसरा नाम निः पिच्छी संघ भी है इस संघ के मुनि मयूर पिच्छी तथा गाय के पुच्छ के बालों की पिच्छी नहीं रखते हैं कई लोग इस संघ को काष्टा संघ की एक शाखा बतलाते हैं पर काष्टा संघ गाय के पुच्छ के बाल की पिच्छी रखते हैं अतः यह संघ अलग ही माना जाता है दर्शनसार के कर्त्ता देवसेन लिखते हैं कि काष्टा संघ के बाद २०० वर्षों से माथुर संघ की उत्पति हुई है और आचार्य रामसेन ने मथुरा में उस संघ की स्थापना की थी इस संघ की मान्यता है कि आपने संघ के आचार्य की कराई प्रतिष्टा वाली मूर्त्ति को वन्दन करना दूसरों के कराई मूर्त्ति को वन्दन नहीं करना इसी प्रकार अपने संघ के मुनियों को वन्दन करना दूसरों को नहीं यह एक ममत्व भाव का ही कारण है इस संघ में धर्म परीक्षा सुभाषित रत्नसंदोह आदि ग्रन्थों के कर्त्ता अमितगति आचार्य हुए हैं।

दिगम्बर समुदाय में उपरोक्त संघ प्राचीन समय में उत्पन्न हुए पर यह प्रथा यहाँ तक ही नहीं रुक गई थी परन्तु अर्वाचीन समय में भी उनका प्रभाव जाहिर रहा है जैसे—

१—तारणपंथ—इस पन्थ के स्थापक एक तारण स्वामि नाम का साधु विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुए। जैसे श्वेताम्बर समुदाय में लोंकाशाह ने मूर्त्ति पूजा का निषेध कर अपना पन्थ चलाया था वैसे ही दिगम्बरमत में तारणस्वामि ने मूर्त्तिपूजा का विरोध कर नया पन्थ चलाया परन्तु तारणपन्थ में श्रुत सिद्धान्त की पुष्पादि द्रव्यों से पूजा करते हैं जिसमें भी तारणस्वामि के बनाये हुए १४ ग्रन्थ हैं उसकी पूजा भक्ति विशेष किया करते हैं।

२—तेरहपन्थी जब दिगम्बर समुदाय में भट्टारकों का जोर जुल्म बढ़ने लगा अर्थात् चरम सीमा तक पहुँच गया उस हालत में वि० सं० १६८३ के आस पास तेरहपन्थ नाम का एक नया पन्थ का प्रादुर्भाव

श्रवण वेलगुल की मल्लिपण प्रशस्ति में वज्रनन्दि के नव स्तोत्रनामक ग्रंथ का उल्लेख कर बहुत प्रशंसा करते हुए प्रशस्तिकर "सकलार्हत्प्रवचनप्रपञ्चान्तर्भाव प्रबणवर सन्दर्भसुभगम" का विशेपण से भूपीत किया है।

दक्षिण प्रान्त की मथुरा (मदुरा) नगरी में इस संघ की स्थापना हुई मथुरा द्राविड़ देश में होने से इस संघ का नाम 'द्राविड़' संघ हुआ हैं तथा द्रमिल संघ इसका दूसरा नाम है तथा पुन्नाटसंघ कि जिसमें हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेनाचार्य हुए हैं वह भी द्राविड़ संघ का नामान्तर हैं। इस संघ में भी कई अंतर्भेद है क्योंकि बादीराजसूरि को द्राविड़ संघ के अन्तर्गत नंदि संघ की अरंगलि शाखा के आचार्य बतलाये हैं। इस संघ में कवि एवं तार्किक और शाब्दिक प्रसिद्ध वादिराजसूरि त्रैविद्य विद्येश्वर, श्रीपालदेव, रूपसिद्धि व्याकरण के कर्ता दयापाल मुनि जिनसेन वगैरह कई विद्वान हुए यह भी कहा जाता है कि तामील एवं कनड़ी साहित्य में इस संघ के बहुत ग्रन्थ मिलते हैं।

दर्शनसार ग्रंथ के कर्त्ता इस संघ की उत्पत्ति वि० सं० ५३५ में बतलाई है और पांच जैनाभासों में इस संघ की भी गणना की है। इस संघ की श्रद्धा और प्ररूपना मूलसंघ से नहीं मिलती हैं अतः कतिपय बातें यहां दर्ज करदी जाती हैं जो विद्यानन्दिने अपने ग्रन्थों में लिखी हैं।

१—अप्राशुक चना खाने में मुनि को दोष नहीं लगता है।

२—प्रायश्चित वगैरह के कई शास्त्रों को रद्दोवदल कर नये बना दिये हैं।

३—बीज मात्र में जीव नहीं होते हैं!

४—मुनियों को खड़े रह कर आहार करने की जरूरत नहीं है।

५—मुनियों के लिये प्रासुक अप्रासुक की क़ैद क्यों होनी चाहिये।

६—मुनियों के लिये सावद्य और गृहकल्पित दोष नहीं मानना चाहिये।

७—उसने लोगों से खेती वसति वाणज्यादि करवाने का उपदेश देने अदोष बतला दिया था तथा कचा जल में भी जीव नहीं मान कर उसका उपयोग करने लग गया था इत्यादि तथा दिगम्बर ग्रन्थ कारों ने भी कई ग्रन्थों मे इस विपय के लेख भी लिख दिया है +

उपरोक्त बातों के लिए निश्चयात्मिक तो जब ही कहा जा सकता है कि इस संघ वालों का बनाया हुआ यतिआचार या श्रावकाचार वगैरह ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें और उन ग्रन्थों के अन्दर उपरोक्त बातों का प्रतिपादन किया हुआ मिले—

३—यापनीय संघ—इस संघ की स्थापना कल्याण नगर से विक्रम सं० ७०३ में हुई है कहा जाता है कि श्वेताम्बराचार्य श्रीकलस द्वारा इस संघ का प्रार्दुभाव हुआ है।

"कल्लाणे वर नयरे सत्तसए पंच उतरे जादे। जवनिय संघ भट्टो सिरि कलसादो हु सेवड़ दो॥"

शकटायन व्याकरण कर्त्ता श्रुतकेवली देशीयाचार्य शकटायन तथा पाल्यकीर्ति वगैरह इस संघ के

+ पाषाण स्फोटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं। सद्यसन्तसवापीनं प्रासुकं जल मुच्यते ॥६३॥

'भा० शिवकोटी कृत रत्नमाला'

मुहूर्त गालितं तोयं प्रासुकं प्राहर द्वयं। उष्णादेवामहोरात्र मात समुर्च्छितं तमवेत् ॥११६॥

"वृक्ष पर्णोपरी पतित्व यज्जलं मुन्यु परिपतिततत्प्रासुकं" (आ० कुदकुद कृत षट् प्राभृत की टीका)

विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगलितं जलं॥ (अ० भूतसागर कृत तत्त्वार्थ सूत्र की टीका)

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक प्राणियों को बली के लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की आवश्यकता थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे श्मशानों की ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस मुनि को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ के निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है पर उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में बिचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा होता है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने विचार किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गजसुखमाल मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी थी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने जैन मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने भी जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय है उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से युद्ध करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि को बली के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी जो जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से उस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छ' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते भाग्यवशात वे ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा खड्गसेन मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहाँ अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापीष्ट जीवों को जबरन अग्नि में डाल रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर वापिस अपने स्थान पर आया तो राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के चक्र में पड़कर अज्ञानता से महान पातक कर डाला है इसका फल सिवाय नरक के हो ही नहीं सकता है पर आप परोपकारी महात्मा हैं कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर अच्छे स्थान जाने जैसा कार्य कर सकूं ? इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहता तो उसी समय ब्राह्मणों सहित नगर को नष्ट कर डालता पर

श्रवण वेलगुल की मल्लिपण प्रशस्ति में वज्रनन्दि के नव स्तोत्रनामक ग्रंथ का उल्लेख कर वहुत प्रशंसा करते हुए प्रशस्तिकर "सकलार्हत्प्रवचनप्रपथ्वान्तभीव प्रवणवर सन्दर्भसुभगम" का विशेषण से भूपीत किया है।

दक्षिण प्रान्त की मथुरा (मदुरा) नगरी में इस संघ की स्थापना हुई मथुरा द्राविड़ देश में होने से इस संघ का नाम 'द्राविड़' संघ हुआ हैं तथा द्रमिल संघ इसका दूसरा नाम है तथा पुन्नाटसंघ कि जिसमें हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेनाचार्य हुए हैं वह भी द्राविड़ संघ का नामान्तर हैं। इस संघ में भी कई अंतर्भेद है क्योंकि वादीराजसूरि को द्राविड़ संघ के अन्तर्गत नंदि संघ की अरंगलि शाखा के आचार्य वतलाये हैं। इस संघ में कवि एवं तार्किक और शाब्दिक प्रसिद्ध वादिराजसूरि त्रैविद्य विद्येश्वर, श्रीपालदेव, रूपसिद्धि व्याकरण के कर्ता दयापाल मुनि जिनसेन वगैरह कई विद्वान हुए यह भी कहा जाता है कि तामील एवं कनड़ी साहित्य में इस संघ के वहुत ग्रन्थ मिलते हैं।

दर्शनसार ग्रंथ के कर्त्ता इस संघ की उत्पत्ति वि० सं० ५२५ में ववलाई है और पांच जैनाभासों में इस संघ की भी गणना की है। इस संघ की श्रद्धा और प्ररूपना मूलसंघ से नहीं मिलती हैं अतः कतिपय बातें यहां दर्ज करदी जाती हैं जो विद्यानन्दिने अपने ग्रन्थों में लिखी हैं।

१—अप्राशुक चना खाने में मुनि को दोप नहीं लगता है।

२—प्रायश्चित वगैरह के कई शास्त्रों को रद्दोवदल कर नये वना दिये हैं।

३—वीज मात्र में जीव नहीं होते हैं!

४—मुनियों को खड़े रह कर आहार करने की जरूरत नहीं है।

५—मुनियों के लिये प्रासुक अप्रासुक की क़ैद क्यों होनी चाहिये।

६—मुनियों के लिये सावद्य और गृहकल्पित दोष नहीं मानना चाहिये।

७—उसने लोगों से खेती वसति वाणज्यादि करवाने का उपदेश देने अदोप वतला दिया था तथा कचा जल में भी जीव नहीं मान कर उसका उपयोग करने लग गया था इत्यादि तथा दिगम्बर ग्रन्थ कारों ने भी कई ग्रन्थों में इस विपय के लेख भी लिख दिया है +

उपरोक्त वातों के लिए निश्चयात्मिक तो जव ही कहा जा सकता है कि इस संघ वालों का वनाया हुआ यतिआचार या श्रावकाचार वगैरह ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें और उन ग्रन्थों के अन्दर उपरोक्त वातों का प्रतिपादन किया हुआ मिले—

३—यापनीय संघ—इस संघ की स्थापना कल्याण नगर से विक्रम सं० ७०२ में हुई है कहा जाता है कि श्वेताम्वराचार्य श्रीकलस द्वारा इस संघ का प्रादुर्भाव हुआ है।

"कल्लाणे वर नयरे सत्तसए पंच उतरे जादे। जवनिय संघ भट्टो सिरि कलसादो हु सेवड़ दो ॥"

शकटायन व्याकरण कर्त्ता श्रुतकेवली देशीयाचार्य शकटायन तथा पाल्यकीर्ति वगैरह इस संघ के

+ पापाण स्फोटितं तोयं धटीयंत्रेण ताडितं। सद्यसन्तसवापीनं प्रासुकं जल मुच्यते ॥६३॥

'आ० शिवकोटी कृत रत्नमाला'

मुहूर्तं गालितं तोयं प्रासुकं प्राहर द्वयं। उष्णादेवामहोरात्र मात समुर्च्छितं तभवेत् ॥११६॥

"वृक्ष पर्णोपरी पतितव यज्जलं मुन्यु परिपतितितप्रासुकं" (आ० कुंदकुंद कृत पट् प्राभृत की टीका)

विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगलितं जलं ॥ (अ० भूतसागर कृत तत्त्वार्थ सूत्र की टीका)

| सं० | ग्राम | जाति | सं० | ग्राम | जाति | सं० | ग्राम | जाति |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | खंडेला नगर से | खंडेलवाल शाह | २९ | दरडो ग्राम से | दरडावत | ५७ | सरवाड़ी ग्राम से | सवड़िया ,, |
| २ | पाटणी ग्राम से | पाटणी जाति | ३० | भंडशाली ,, | भंडशाली ,, | ५८ | निरपाल ,, | निरपोलिया ,, |
| ३ | भैंसाणी ग्राम से | भैंसा जाति | ३१ | लुहार ,, | लुहारा ,, | ५९ | निरगोदा ,, | निरगोदा ,, |
| ४ | पहाडी ग्राम से | पहाड्या जाति | ३२ | लिंगीया ,, | लिंगिया ,, | ६० | चरड ,, | चडकिया ,, |
| ५ | झाझरी ग्राम से | झाझरिया ,, | ३३ | छबड़ा ,, | छबड़ा ,, | ६१ | सरपति ,, | सरपतिया ,, |
| ६ | गंगवाली ग्राम से | गंगवाल ,, | ३४ | कुलवाड़ी ,, | काला ,, | ६२ | बोरा खेड़ी,, | बोर खेड़िया ,, |
| ७ | पापड़ी ग्राम से | पापड़ीवाल ,, | ३५ | बाहुली ,, | बोहरा ,, | ६३ | कुलभाणी,, | कुलभाणिया ,, |
| ८ | दोसा ग्राम से | दोसी ,, | ३६ | टीगाणी ,, | टीगा ,, | ६४ | गोदड़ा ,, | गोत्री ,, |
| ९ | सोठा ग्राम से | सेठी ,, | ३७ | वैदिया ,, | वैद ,, | ६५ | दुकड़ा ,, | दुकड़ा ,, |
| १० | गोधाणी ग्राम से | गोधा ,, | ३८ | कटोतिया ,, | कटोतिया ,, | ६६ | निरपाति ,, | निरपालिया ,, |
| ११ | चंदला ग्राम से | चांदूवाल ,, | ३९ | झाझरी ,, | झांझरी ,, | ६७ | लटवाड़ा ,, | लाटीवाल ,, |
| १२ | मिठड़िया ,, | मिठड़िया ,, | ४० | चौदर ,, | चौधरी ,, | ६८ | बेदला ,, | बेदोलिया ,, |
| १३ | दरड़ा ,, | दरड़ोद्या ,, | ४१ | पाटोल ,, | पाटोला ,, | ६९ | जलवाण ,, | जलवाणिया ,, |
| १४ | गोदण ,, | गदइया ,, | ४२ | गोदड़ा ,, | गोदड़िया ,, | ७० | भूताल ,, | भूताला ,, |
| १५ | भूचड़ा ,, | भूंच ,, | ४३ | निगोता ,, | निगोतिया ,, | ७१ | राजमदारा ,, | राजभद्रा ,, |
| १६ | बजाणी ,, | बज ,, | ४४ | अनोपढी ,, | अनोपिया ,, | ७२ | क्षेत्रपाल ,, | क्षेत्रपालिया ,, |
| १७ | बजवासी ,, | बजवासिया ,, | ४५ | साखोनी ,, | साखूणिया ,, | ७३ | लोहट ,, | लोहटिया ,, |
| १८ | राहोली ,, | राहुका ,, | ४६ | पागुंका ,, | पांगलिया ,, | ७४ | मांगड़ ,, | मांगड़िया ,, |
| १९ | पाटड़ी ,, | पाटोदा ,, | ४७ | भूतड़ा ,, | भूसाणिया ,, | ७५ | मोमासर ,, | मोलसरा ,, |
| २० | पादणी ,, | पादोड़ा ,, | ४८ | पावोली ,, | पितलिया ,, | ७६ | भसवाड़ा ,, | भूसालिया ,, |
| २१ | सोनी ,, | सोनियाण ,, | ४९ | वनमाली ,, | वनमाला ,, | ७७ | अहंकारा ,, | अहंकारिया ,, |
| २२ | बिलाला ,, | बिलाला ,, | ५० | आकोडी ,, | अरड़क ,, | ७८ | हंसावली ,, | राजहंस ,, |
| २३ | विनायकी ,, | विनायक्या ,, | ५१ | रावती ,, | रावलिया ,, | ७९ | चौबर ,, | चौबाणिया ,, |
| २४ | बाकली ,, | बाकलीवाल ,, | ५२ | मादोवी ,, | मोदी ,, | ८० | थंवाली ,, | थंका ,, |
| २५ | कांसली ,, | कासलीवाल ,, | ५३ | कोकणोत ,, | कोकणोजा ,, | ८१ | सोमोद ,, | सोमगला ,, |
| २६ | वरली ,, | वरलाला ,, | ५४ | जुगड़ी ,, | जुग राज्या ,, | ८२ | कड़वड ,, | कड़वड़ा ,, |
| २७ | पीपली ,, | पापला ,, | ५५ | मूलोटी ,, | मूल राज्या ,, | ८३ | हालोद ,, | हलोदिया ,, |
| २८ | सागांणी ,, | सोंगाणी ,, | ५६ | छाहड़ ,, | छाहड्या ,, | ८४ | सामना ,, | समान्या ,, |

इस प्रकार नामावली की मेरे पास तीन प्रतियें हैं जिनमें कुछ नाम रहो बदल भी हैं और उतारा से उतारा किया जाता है उसमें रहो बदल हो ही जाता है पर यह बात प्रमाणिक है कि दिगम्बराचार्य ने खंडेला में राजपूतों को प्रतिबोध कर जैन बनाये थे इसके अलावा पीसांगण के एक सरावगी की जूनी

हुआ इस पन्थ में भट्टारकों का थोड़ा भी मान सन्मान नहीं है इतना कि क्योंपर परमेश्वर की मूर्तिकों प्रक्षाल केसर चन्दन की पूजा तथा पुष्पफल आदि का भी निषेध है।

३—वीसपन्थी—जो लोग भट्टारकों की पक्ष में रहे वह वीसपन्थी कहलाये इस पन्थ में परमेश्वर की मूर्त्ति का पूजन प्रक्षाल जल चन्द्रन धूप दीप पुष्पफल से पूजा करते हैं।

४—गुमानपन्थी—इस पन्थ की उत्पति 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' ग्रन्थ के कर्ता पं० टोडरमलजी के पुत्र गुमानीरामजी द्वारा हुई है इस पन्थ में जिनमन्दिरों में रात्रि में दीपक करने की तथा प्रक्षलादि करने की बिलकुल मनाई करते हैं अर्थात मूर्त्ति के दर्शन करते हैं इस मत की उत्पति का समय वि० सं० १८१८ के आसपास का वतलाया जाता है।

५—तोतापन्थी—दिगम्बर आम्नय में एक तोतापन्थ नाम का भी पंथ है।

६—साढ़ सोलह पन्थी वीसपन्थी और तेरहपन्थी दोनों मिल कर एक साढ़ा सोलह पन्थ का पन्थ निकाला है पर यह अभी नागोर से आगे नहीं बढ़ सका—

इनके अलावा वर्तमान में भी कई मत भेद हैं परन्तु उनको संघ पन्थ न कहकर दल एवं पार्टियें कहते हैं शास्त्र छपाने के विषय में एक छपाने वाला दल दूसरा नहीं छपाने वाला दल। पुराणी रूढ़ियों को मानने वाली वाबू पार्टी और नया जमाना के सुधारक पंडित पार्टी इत्यादि।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में ओसवाल पोरवाल श्रीमालादि बहुत सी जातियाँ हैं इसी तरह दिगम्बर समुदाय में भी खंडेलवाल, बघेरवाल, नरसिंहपुरादि कई जातियें हैं जिनमें मुख्य जाति खंडेलवाल है इसको सरावगी भी कहते है प्रसंगोपात दिगम्बर जातियों की उत्पत्ति संक्षिप्त यहाँ लिख दी जाती है।

मत्स्यदेश में खंडेला नाम का एक नगर था वहाँ पर सूर्यवंशी खंडेलगिर राजा राज करता था एक समय देश भर में मरकी का भयंकर रोग उत्पन्न हुआ जिससे कई आदमी मर गये कई बीमार हो गये जिसको देख राजा को वहुत फिक्र हुआ अतः राजा ने बहुत से उपाय किये पर शान्ति नहीं हुई। तब राजा ने ब्राह्मणों को बुला कर पूछा कि भूदेवों! देश भर में रोग बढ़ता जा रहा है मनुष्य एवं पशु मर रहे हैं अतः इसकी शान्ति के लिये कुछ उपाय करना चाहिये" यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि ब्राह्मण लोग कोई भी छोटा बड़ा कार्य क्यों न हो सिवाय यज्ञ के उनके पास कोई उपाय ही नहीं था अतः भूपियों ने राजा को कहा कि हे राजन्! नास्तिक जैनों ने यज्ञ करना निषेध करने से नगर एवं ग्राम रक्षक देव को पायमान होने से ही रोगोत्पत्ति हुई हैं इसलिए यदि आप जनता की शान्ति करनी चाहें तो एक वृहद् यज्ञ करवा कर बत्तीस लक्षण संयुक्त पुरुष की वली देकर सब देवताओं को संतुष्ट करें ताकि वह शान्त हो कर दुनिया में शान्ति कर देगा। हे नरेन्द्र! केवल एक आप ही यज्ञ नहीं करवाते हो पर पूर्व जमाना में बहुत से राजा महाराजाओं ने यज्ञ करवा कर जनता की शान्ति की है शास्त्रों में अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान है जैसे गोमेधयज्ञ गजमेधयज्ञ अश्वमेधयज्ञ अजामेधयज्ञ नरमेधयज्ञ इत्यादि आप अपनी एवं जनता की शान्ति चाहते हो तो विना विलम्ब नरमेधयज्ञ करवाइये? राजा अपने भद्रिक परिणामों एवं जनता की शान्ति के लिए ब्राह्मणों के कहने को स्वीकार कर नरमेधयज्ञ करवाने का निश्चय कर लिया बस फिर तो या ही क्या ब्राह्मणों के घर-घर में खुशियें मनाई जाने लगी कारण इस कार्य में ब्राह्मणों का खूब स्वार्थ एवं जिन्दगी की अजीविका थी।

विक्रम संवत के आसपास राजा रतिदेव ने अन्तिम अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके बाद अश्वमेघ जैसा यज्ञ नहीं हुआ था विक्रम की नौवीं शताब्दी में कुमारिलभट्ट और आद्य शंकराचार्य हुए उन्होंने सोचा कि एक ओर तो जैनों और बौद्धों का जोर बढ़ता जा रहा है दूसरी ओर जनता हिंसा से घृणा कर वेदिक धर्म से पराङ्मुख होकर जैन एवं बौध मत में जा रही है अतः उन्होंने फरमान निकाला कि कलियुग में यज्ञ करने की मनाई है तथापि जहां ब्राह्मणों की प्रबल्यता और वाममार्गियों का जोर था वहां छाने छुपके छोटा बड़ा साधारण यज्ञ करवा देते थे कारण उन्हों की आजीविका ही इस प्रकार यज्ञयाग और क्रियाकाण्ड से ही थी अतः समय मिलने पर वे कब चूकने वाले थे।

बघेरा नगर में राजा व्याघ्रसिंह राज करता था किसी बहाने से ब्राह्मणों ने राजा को उपदेश देकर यज्ञ प्रारम्भ करवाया था यज्ञ में जितने लोग अधिक एकत्र होते थे उतना ही ब्राह्मणों को अधिक लाभ था अतः ५२ ग्रामों के लोग यज्ञ के अन्दर शामिल हुए।

इधर दिगम्बराचार्य जिनसेन अपने शिष्यों के साथ बघेरा नगर के उद्यान में पधारे आचार्य जिनसेन ने पहले खंडेला के यज्ञ के समय सफलता प्राप्त की हुई थी वे चलकर सीधे ही राज सभा में आये और राजा व्याघ्रसिंह को उपदेश देते हुए कहा। राजन्! इस घोर हिंसा रूपी यज्ञ से न तो किसी को लाभ हुआ है और न होनेवाला है हिंसा का फल तो भवान्तर में नरक ही होता है केवल एक हम ही नहीं कहते हैं पर वैदिक धर्म को मानने वालों ने भी हिंसा का बड़े ही जोरों से तिरस्कार किया है—पर बड़े ही दु:ख की बात है कि आज भारत के कौने २ में अहिंसा का प्रचार हो रहा है इतना ही क्यों पर कहलाने वाले अनार्य भी अहिंसा भगवती का आदर कर रहे हैं तब आप जैसे आर्य वीर क्षत्री इस प्रकार की रौद्र हिंसा करवा कर देश द्रोह के साथ आत्मद्रोह कर रहे हो इत्यादि इस प्रकार का उपदेश दिया कि राजा को उस निर्दय कार्य से घृणा आ गई बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा ने यज्ञ स्तम्भ उखेड़ दिया कुण्ड मिट्टी से पूर दिया ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिये और राजा स्वयं बावन ग्रामों वालों के साथ आचार्य जिनसेन के पास जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन बावन ग्रामों वालों के बावन गोत्र बन गये वे निम्न लिखित हैं।

अजोरिया१ आहिडा२ टंकारा३ उद्पाडा४ कोटिया५ कात्ररिया६ कुचालिया७ कुनडा८ खडबाड९ खसोरा१० खरड़िया११ गुगाला१२ घणोता१३ चुन्दलिया१४ चकोरा१५ छाजा१६ छाबडा१७ चमोरा१८ चमारया१९ जाठाणी२० बानड्डा२१ डीवडा२२ डोगरचा२३ दोहताडा२४ धनोरया२५ धौलया२६ गर्गल२७ सीलोसो२८ सोरया२९ सुरलाया३० बहरिया३१ ठागा३२ डुंगरवाल३३ पापला३४ सांभरिया३५ सडिया३६ मादलिया३७ डाइया३८ निगोलिया३९ अनेपुरा४० माथुरिया४१ जोगिया४२ लावावास४३ साखुणिया४४ सवघरा४५ सिवह४६ सोढ़ा४७ बाघडिया४८ भाडारिया४९ वडमुढ़ा५० जोगिया५१ डाइया५२ इनके अलावा इन जातियों की कई शाखा प्रतिशाखा भी हुई हैं, पीसांगण के एक सरावगी भाई के पास पुरानी हस्त-लिखित पुस्तक से इस प्रकार ५२ जातियों के नाम उतारे हैं उसके कहने से बघेरवाल की १०५ गोत हैं।

इसी प्रकार दिगम्बर समुदाय में नरसिंघपुरा जाति है यह भी नरसिंहपुर में यज्ञ के कारण दिगम्बराचार्य ने प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किये जिसके कई गौत्र हैं पीसांगण वाली पुस्तक में इस जाति के ३६ गोत्र लिखे हुये हैं।

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव योनि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन्! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्म्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्य था उसका नाम अग्रेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है—

# पल्लीवाल जाति

इस जाति की उत्पत्ति का मूल स्थान पाली शहर है जो मारवाड़ प्रान्त के अन्दर व्यापार का एक मुख्य नगर था इस जाति में दो तरह के पल्लीवाल है १—वैश्य पल्लीवाल, २—ब्राह्मण पल्लीवाल और इस प्रकार नगरके नाम से औरभी अनेक जाति पैदा हुई थी जैसे श्रीमाल नगर से श्रीमाल जाति, खंडेला शहर से खंडेलवाल, महेश्वरी नगरी से महेश्वरी जाति, उपकेशपुर से उपकेश जाति, कोरट नगर से कोरटवाल जाति, और सिरोही नगर से सिरोहिया जाति इत्यादि नगरों के नाम से अनेक जातियों उत्पन्न हुई थीं इसी प्रकार पाली नगर से पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति हुई है वैश्यों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्बन्ध था कारण ब्राह्मणों की आजीविका वैश्यों पर ही थी अतः जहाँ यजमान जाते हैं वहां उनके गुरु ब्राह्मण भी जाया करते हैं जैसे श्रीमाल नगर के वैश्य लोग श्रीमाल नगर का त्यागकर उपकेशपुर में जा बसे तो श्रीमाल नगर के ब्राह्मण भी उनके पीछे चले आये अतः श्रीमाल नगरसे आये हुए वैश्य श्रीमाल वैश्य और ब्राह्मण श्रीमाल ब्राह्मण कहलाये इसी प्रकार पाली के वैश्य और ब्राह्मण पाली के नाम पर पल्लीवाल वैश्य और पल्लीवाल ब्राह्मण कहलाये।

जिस समय का मैं हाल लिख रहा हूँ वह जमाना क्रिया काण्ड का था और ब्राह्मण लोगों ने ऐसे विधि विधान रचडाले थे कि थोड़ी-थोड़ी बातों में क्रिया काण्ड की आवश्यकता रहती थी और वह क्रियाकाण्ड भी जिसके यजमान होवे वे ब्राह्मण ही करवाये करते थे उसमें दूसरा ब्राह्मण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था अतः वे ब्राह्मण अपनी मनमानी करने में स्वतंत्र एवं निरंकुश थे एक वंशावली में लिखा हुआ मिलता है कि पल्लीवाल वैश्य एक वर्ष में पल्लीवाल ब्राह्मणों को १४०० लीकी और १४०० टके दिया करते थे तथा श्रीमाल वैश्यों को भी इसी प्रकार टेक्स देना पड़ता था, पंचशतीशाषोड़शाधिका' अर्थात ५१६ टका लाग दापा के देने पड़ते हैं। भूदेवों ने ज्यों-ज्यों लाग दापा रूपी टेक्स बढ़ाया त्यों-त्यों यजमानों की अरूची बढ़ती गई। यही कारण था कि उपकेशपुर का मंत्री ऊहड़ ने म्लेच्छों की सेना लाकर श्रीमाली ब्राह्मणों का पिच्छा छुड़वाया इतना ही क्यों बल्कि दूसरे ब्राह्मणों का भी जोर जुल्म बहुत कम पड़गया। क्योंकि ब्राह्मण लोग भी समझ गये कि अधिक करने से श्रीमाली ब्राह्मणों की भांति यजमानों का सम्बन्ध टूट जायगा जो कि उनपर ब्राह्मणों की आजीविका का आधार था अतः पल्लीवालादि ब्राह्मणों का उनके यजमानों के साथ सम्बन्ध ज्यों का त्यों बना रहा था मंत्री ऊहड़ की घटना का समय वि० सं० ४०० पूर्व का था यही समय पल्लीवाल जाति का समझना चाहिये। खास कर तो जैनाचार्यों का मरुधर भूमि में प्रवेश हुआ और उन्होंने दुर्व्यसन सेवित जनता को जैनधर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ किया तब से ही इन *नास्तिकों के तथा स्वार्थ प्रिय ब्राह्मणों के आसन कांपने लग गये थे,* और उन क्षत्रियों एवं वैश्यों में से जैन धर्म स्वीकार करने वाले अलग होगये तब से ही जातियों की उत्पत्ति होनी शुरू हुई थी इसका समय विक्रम पूर्व चारसौ वर्षों के आस पास का था, और यह क्रमशः विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दी तक चलता ही रहा तथा इन मूल जातियों के अन्दर शाखा प्रतिशाखा तो वट वृक्ष की भांति निकलती ही गई जब इन जातियों का विस्तार सर्वत्र फेल गया तब नये जैन बनाने वालों को अलग जातियों नहीं बना कर पूर्व जातियों के शामिल करते गये जिसमें भी अधिक उदारता उपकेश वंश की ही थी कि नये जैन बनाकर प्रायः उपकेश वंश में ही मिलाते गये, जिसको हम आगे चल कर यथा समय लिखेंगे।

पुस्तक में इन ८४ जाति के नाम छन्दवद्ध कविता में दिया है कविता में छन्द भंग हैं पर मैं यहाँ ज्यों का त्यों दे देता हूँ—

"चोधरी फीरोड़िया भंशाली वनमाली वंवा जुगराज्य गौतवंशी मोदी अजमेरा है।
पाटणिया अनुपड़िया भीमड़िया भैसा वड़िया राजेंद्रा सरवालिया भूँच ऊकारा है।
पिंगुलिया पितलिया भूतलिथा अरड़क आवरिया सुरपतिया हरदिया मालसरा है।
साखुणिया दादड़िया क्षेत्रपाला कोकराज हुकड़िया कुलभाजा पीत्रा अरु संगारा है।
शाह पाटशी दोसी सेठी वैद कटारिया वज गंगवाल।
भैसा भोरिया मोहनिया मादिया सोनी अरु दाकलीवाल ॥
सांगाणी गोदा लोवडिया दर दोदा अरु फिर कासलीवाल।
पाटोदी पहाड़िया विनायकिया लोहड़िया डुंगिया चाडुवाल ॥
संवका झोजरी पांडिया वेनड़िया काला अरु वलाल।
चरकियां छावड़ा निगादिया निपोलियारु पापड़ीवाल ॥
करवागर नरपतिया निगद्या नागड़िया रारारु लाटीवाल।
वरखोदा छाहड़ जलवाना राजहंस लोवटारु भूवाल ॥
मूलसजारु वोहरागौत्र, जाति चौरासी कहाय, श्रावक श्री जिनसेन के किये देश खंडाला जाय ॥

उपर दी हुई तालिका और इस कविता के नामों में कई नाम रदो वदल हैं शायद इसका कारण कवित अर्वाचीन होने से कई गौत्रों की शाखा प्रशाखा के नाम दर्ज कर कवि ने चौरासी नामों की संख्या मिलादी हो।

खंडेलवाल जाति का उत्पति समय कई स्थानों पर विक्रम संवत् एक माघ शुक्ल पंचमि का वतलाया है और साथ में इस जाति के प्रतिवोधक दिगम्बर आचार्य जिनसेन को लिखा है यह विचारणीय है कारण श्वेताम्बर शास्त्रानुसार दिगम्वरमत की उत्पत्ति वि० सं० १३९ में तव दिगम्बर मतानुसार वि० सं० १३६ में वतलाई जाती है अतः विक्रम संवत् एक में दिगम्बरमत का जन्म ही नहीं हुआ था दूसरे दि० आचार्य जिनसेन के समय के लिये हम देखते हैं कि विक्रम संवत् एक में दिगम्वर मत का जन्मही नहीं हुआ था अर्थात् दि० आचार्य जिनसेन का समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का है यदि खंडेलवाल जाति आचार्य जिनसेन प्रतिवोधित है तो इस जातिका उत्पत्ति समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का मानने में कोई भी आपति नहीं है दूसरा नौवीं शताब्दी पूर्व इस जाति के अस्तित्व का कोई प्रमाण भी नही मिलता है इससे भी वही मानना ठीक है कि खंडेलवाल जाति विक्रम के नौवीं शताब्दी में प्रायः राजपूतों से वनी है मूल में यह जाति दिगम्बरमत को मानने वाली थी पर बाद में इस जाति के कुछ लोग श्वेताम्बर साधुओंके उपदेश से श्वेताम्बर धर्म को मानने लग गये थे—जो मारवाड़ के कई ग्रामों में आज भी विद्यमान हैं।

दिगम्बरमतोपासक जैसे खंडेलवाल जाति हैं वैसे वघेरवाल जाति भी दिगम्बर मतोपासक हैं और इस जाति के प्रतिबोधक भी आचार्य जिनसेन ही वतलाये जाते हैं इस जाति की उत्पत्ति भी यज्ञ की घोर हिंसा से अरुची के कारण ही हुई हैं यद्यपि जैनाचार्य एवं वोधाचार्य के उपदेश से यज्ञ प्रथा वन्द सी हो गई थीपर

इनके अलावा सोदागर लोग अपनी बालद एवं पोटों पर लाद कर बड़ी-बड़ी कतारों द्वारा लाखों रुपयों का माल लाते और ले जाते थे अतः पाली व्यापार का एक केन्द्र था—

इत्यादि इस उल्लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि मारवाड़ में पाली एक व्यापार का मथक और प्राचीन नगर था और वहां पर महाजन संघ एवं व्यापारियों की घनी बस्ती थी।

*पल्लीवाल जाति में जैनधर्म—यह निश्चयात्मिक नहीं कहा जा सकता है कि पल्लीवाल जाति* में जैनधर्म का पालन करना किस समय से शुरू हुआ पर पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन समय से जैनधर्म पालन करती आई है पुराणी पट्टावलियों वंशावलियों को देखने से ज्ञात होता है पल्लीवाल जातिमें विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व से ही जैनधर्म प्रवेश हो चूका था। इस की साबूती के लिये यह कहा जा सकता है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल नगर में ९०,००० घरों वालों को तथा पद्मावती नगरी के ४५००० घरों के लोगों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये थे बाद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में लाखों क्षत्रियादि लोगों को जैनधर्म की दीक्षा दी और बाद में भी आचार्यश्री मरुधर प्रान्त में बड़े-बड़े नगरों से छोटे छोटे ग्रामों में भ्रमन कर अपनी जिन्दगी में करीब चौदह लक्ष घर वालों को जैनी बनाये थे अब पाली शहर श्रीमालनगर और उपकेशपुर नगर के बीचमें आया हुआ है भला वह आचार्यश्री के उपदेश से कैसे वंचित रह गया हो अर्थात् पाली नगर में आचार्यश्री अवश्य पधारे और वहां की जनता को जैनधर्म में अवश्य दीक्षित किये होंगे। हां उस समय पल्लीवाल नामकी उत्पत्ति नहीं हुई होगी पर पालीवासियों को आचार्यश्री ने जैन अवश्य बनाये थे। आगे चलकर हम देखते हैं कि आचार्य सिद्धसूरि पाली नगर में पधारते हैं और वहाँ के श्रीसंघ ने आचार्यश्री की अध्यक्षत्त्व में एक श्रमण सभा का आयोजन करते हैं जिसमें दूर दूर से हजारों साधु साध्वियों का शुभागमन हुआ था इस पर हम विचार कर सकते हैं कि उस समय पाली नगर में जैनियों की खूब गेहरी आबादी होगी तब ही तो इस प्रकार का वृहद् कार्य पाली नगर में हुआ था इस घटना का समय उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना करने के पश्चात् दूसरी शताब्दी का बतलाया है इससे स्पष्ट पाया जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पाली की जनता को जैनधर्म में दीक्षित कर जैनधर्मोपासक बनादी थी उस समय के बाद तो कइ भावुकों ने जैनमन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई तथा कइ श्रद्धा सम्पन्न श्रावकों ने पाली से शत्रुंजयादि तीर्थों के संघ भी निकाले थे जिसका उल्लेख हम यथा स्थान इसी ग्रन्थ में करेंगे। इत्यादि प्रमाणों से हम इस निर्णय पर आसकते हैं कि पाली की जनता में जैनधर्म श्रीमाल और उपकेशवंश के समयसामयिक प्रवेश हो गया था इतना ही वर्षों पर पालीवालों का पल्लीवाल नाम संस्करण होने के पूर्व ही वे जैनी बन चुके थे बाद पाली के लोग व्यापारार्थ एवं किसी कारण से पाली छोड़कर अन्य स्थानों में जा बसने से वे पाली वाले कहलाये और बाद पालीवालों का अपभ्रंश पल्लीवाल बन गया था जैसे अन्य नगरों के नाम से जातियां बनी हैं।

जैनशासन में साधुओं की बहुलता एवं जिस ग्राम नगर की ओर विशेष विहार करने के कारण उन ग्राम नगरों के नाम से गच्छ कहलाया जैसे उपकेशपुर के नाम पर उपकेशगच्छ, कोरंट नगर के नाम से कोरंट गच्छ, वायटनगर से वायटगच्छ, हर्षपुरा से हर्षपुरागच्छ, कुर्चपुर नगर से कुर्चपुरागच्छ, कसहद से कसहदगच्छ, नाणाग्राम से नाणावालगच्छ, सांडेराग्राम से सांडेरागच्छ, इत्यादि बहुत से गच्छों का प्रादुर्भाव

अरड़ा१ मरड़ा२ करड़ा३ फटोतिया४ छहाडवाल५ चेनावास६ वसोहरा७ पंचालो८ सापडिया९ सीनावत्१० वौरडेच११ वागड१२ ककुचा१३ फलसधर१४ मनोहरा१५ मंगोतिया१६ फूलपगर१७ खडनेरा१८ मिलणा१९ रत्नपरखा२० अत्रोतिया२१ लुद्रा२२ चामडिया२३ पामेला२४ तेलिया२५ वलोला२६ हरसोला२७ खेमण२८ खामाणिया२९ नागर३० साखिया३१ जसोहरा३२ जडपडा३३ वोकडा३४ कयौटिया३५ मोकरवाड३६

परवार जाति यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के १८ गोत्र हैं जैसे कि १ नागणा, २ पुलकिया, ३ देवड़ा, ४ डोंगरें, ५ दोरादा, ६ जीलवाण, ७ जोसिया, ८ मीनाकर, ९ दाकलिया, १० कुकुणा, ११ जाणिजा, १२ माकोरा, १३ चादीवाल, १४ मोदिया, १५ नाथाणी, १६ पुरा, १७ घोषण, १८ साजोरा

गौरारा—यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के २३ गोत्र है जैसे कि—१ पावइ, २ गपेली, ३ पेरिया, ४ वेद, ५ नरवेद, ६ सिमरइया, ७ कौसाहिया, ८ सौहाना, ९ जमसरिया १० चौधरी ११ जासुधा १२ चौधरी १३ कौलसा १४ वोरइया १५ ढन १६ साइया १७ अदवइया १८ सारक १९ चौधरी २० चौधरीढया २१ तासटिया २२ वडखइया २३ तेतगुरा।

इनके अलावा दिगम्बर डिरेक्टरी में कई जातियों का नाम लिखा है वे सब जातियां दिगम्बर तो नहीं हैं पर शायद कहीं पर कई व्यक्ति दिगम्बर धर्म पालते होंगे उनको दिगम्बरों ने दिगम्बर जातियों में गणना कर डाली है। जैसे कि—

" १ पल्लीवाल, २ खंडेलवाल, ३ परवार, ४ पं० परवार, ५ अग्रवाल, ६ जैसवाल, ७ खैरया, ८ लमेचु, ९ गोलालार, १० फतेहपुरिया, ११ लोहिया, १२ वुदेला, १३ ओसवाल, १४ चुरले, १५ मंदिर, १६ गोलापूर्व, १७ गोलसिंघड़े, १८ वुंदेला, १९ सैतवाल, २० वघेरवाल, २१ कासार, २२ वदनोरा, २३ भासारी, २४ धाकड़, २५ चरनोगर, २६ चौसके, २७ कुकरी, २८ समैवा, २९ पद्मावतीपरव, ३० अयोध्या, ३१ गंगेरवाल, ३२ विनायकिया, ३३ लाड, ३४ चौरा के परवार, ३५ जंघडापोरवार ३६ नेया, ३७ पंचवीसे, ३८ कटनेरे, ३९ परवार दशा, ४० नूतन जैन, ४१ वेरले, ४२ दि० जैन, ४३ पोरवार, ४४ गोलापूर्व, ४५ कृष्णपक्षा, ४६ दसा हुमड़, ४७ वीसा हुमड़, ४८ पंचमा चतुर्थ, ४९ पलड़ीवाल, ५० भावसागर, ५१ नेया, ५२ नरसिंहपुरा दशा, ५३ वीसा, ५४ गुजर, ५५ मेवाड़ा दशा, ५६ वीसा, ५७ नागदा दशा, ५८ वीसा, ५९ चितोड़ा दशा, ६० चित्तोड़वीसा, ६१ श्रीमाल दशा, ६२ वीसा, ६३ सेलावर, ६४ श्रावक, ६५ सादरा, ६६ वोगरा, ६७ वैश्य, ६८ इन्द्र, ६९ पुरोहित, ७० क्षत्रीय, ७१ नागर, ७२ चौधेले, ७३ मिश्र, ७४ शंखवाल, ७५ खुरशाले, ७६ हरदर, ७७ उपाध्याय, ७८ ठागर, ७९ वोगर, ८० ब्राह्मण, ८१ गान्धी, ८२ नाई, ८३ वड़ई, ८४ मोकर, ८५ सुकर, ८६ महेश्री ८७ इत्यादि।

उपर जिस जाति के नीचे———लाइन लगाई हुई है वे जातियां श्वेताम्बराचार्यों के प्रतिवोधित हैं यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से दिगम्बरोपासक होगया हो पर वह जाति तो श्वेताम्बर ही कहलाई जायगी कई दिगम्बर जातियां भी श्वेताम्बर धर्म पालन करती हैं पर उसको हमने दिगम्बर जाति ही लिखी है।

इति दिगम्बर सम्बन्धी इतिहास।

१८—श्री नन्नसूरि पाटि १८ संवत ३५६ स्वर्गे
१९—श्री उजोयण सूरि पाटि १९ स० ४०० स्वर्गे
२०—श्री महेश्वरसूरि पाटि १९ संवत ४२४ स्वर्गे
२१—श्री अभयदेव सूरि पाटि २१ स० ४५० "
२२—श्री आमदेवसूरि पाटि २२ स० ४५६ "
२३—श्री शान्ति सूरि पाटि २३ स० ४९५ "
२४—श्री जसोदेव सूरि पाटि २४ स० ५३४ "
२५—श्री नन्न सूरि पाटि २५ स० ५७० "
२६—श्री उजोयण सूरि पाटि २६ स० ६१६ "
२७—श्री महेश्वर सूरि पाटि २७ स० ६४० "
२८—श्री अभयदेव सूरि पाटि २८ स० ६८१ "
२९—श्री आमदेव सूरि पाटि २९ स० ७३२ "
३०—श्री शान्ति सूरि पाटि ३० स० ७६८ "
३१—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३१ स० ७९५ "
३२—श्री नन्न सूरि पाटि ३२ सम्वत ८३१ "
३३—श्री उजोयण सूरि पाटि ३३ स० ८७२ "
३४—श्री महेश्वरसूरि पाटि ३४ सम्वत ९२१ "
३५—श्री अभयदेव पाटि सूरि ३५ स० ९७२ "
३६—श्री आमदेव सूरि पाटि ३६ सम्वत ९९९ "
३७—श्री शान्ति सूरि पाटि ३७ स १०३१ "
३८—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३८ स० १०७० "
३९—श्री नन्न सूरि पाटि ३९ स० १०९८ "
४०—श्री उजोयण सूरि पाटि ४० स० ११२३ "
४१—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४१ स० ११५५ "
४२—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४२ स० ११६९
श्री मलधार अभयदेवसूरि अविमल्या ता पछे अजीतदेव स्वामि श्री अभयदेवसूरि कहावाण पाटि ४२ स० ११६९ स्वर्गे
४३—श्री आमदेव सूरि पाटि ४३ स० ११९९ "
४४—श्री शान्ति सूरि पाटि ४४ स० १२२४ "
४५—श्री जसोदेव सूरि पाटि ४५ स० १२३४ "
४६—श्री नन्न सूरि पाटि ४६ स १२३९ "
४७—श्री उजोयण सूरि पाटि ४७ स० १२४२ "
४८—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४८ स० १२७३ "
४९—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४९ स० १३२१ "
५०—श्री आमदेव सूरि पाटि ५० स० १३७४ "
५१—श्री शान्ति सूरि पाटि ५१ स० १४४८ "
५२—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५२ स० १४८८ "
५३—श्री नन्न सूरि पाटि ५३ स० १५३२ "
५४—श्री उजोयण सूरि पाटि ५४ स० १५७२ "
५५—श्री महेश्वर सूरि पाटि ५५ स० १५९९ "
५६—श्री अभयदेव सूरि पाटि ५६ नवी गच्छ स्थापना किधी गुरांसा ( श्री ) कलेश कीधो कोटि द्वेष करी क्रिया उद्धार कीधो स० १५९५ स्वर्गे
५७—श्री आमदेव सूरि पाटि ५७ स० १६३४ "
५८—श्री शान्ति सूरि पाटि ५८ स० १६६१ "
५९—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५९ स० १६५२ "
६०—श्री नन्न सूरि पाटि ६० स० १७१८ "
६१—विद्यमान भट्टारक श्री उजोयणसूरि पटि ६१ स० १६८७ याचक पद स० १७२८ जेष्ट सुदि १२ वार शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये।

⊛ १६—वाँ पट्ट का समय संवत् १८० का बतलाया है तब १७ वाँ पट्ट का समय सं० ३२९ का लिखा है तथा पल्लीवालगच्छ की स्थापना सं० ३९० में हुई लिखी है फिर १८ वाँ पट्ट का समय सं० ३५१ का लिखा है यह संवत् ठीक नहीं है क्योंकि १६ वाँ और १७ वाँ पट्ट अन्तर १४९ वर्ष का होना असमव सी बात है जब १७ वाँ पट्ट ही ३२९ वर्ष का है और १८ वाँ सवत ३५१ का तब १६ वाँ पट्ट में पल्लीवालगच्छ की स्थापना स० ३९० में कैसे हुई हो शायद १०९ का संवत हो और किसी बीच में की भूल से आगे लग गई हो तो कम से कम १७ वें पट्ट के अन्दर ३०९ में पल्लीवाल गच्छ की स्थापना मानी जा सकती है। अब रहा १६-१७ वाँ पटान्तर १४९ वर्ष का बतलाया है इसमें या तो कुछ अर्सा तक पट्ट खाली रहा है या कोई दूसरा कारण हो या इतना बड़ा आयुष्य हो कोई भी विशेष कारण बिना इतना अर्सा तक एक पट्ट होना विचारणीय है—

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय—तो पाली और पल्लीवाल जाति का गौरव कुछ कम नहीं हैं प्राचीन ऐतिहासिक साधनों से पाया जाता है कि पुराने जमाने में इस पाली का नाम फेफावती पाल्हिका पालिका आदि कई नाम था और कई नरेशों ने इस स्थान पर राज भी किया था पाली नगर एक समय जैनों का मणिभद्र महावीर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था, इतिहास के मध्य काल का समय पाली नगरी के लिये बहुत महत्त्व का था विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ के शिलालेख तथा प्रतिष्ठा करवाने वाले जैन श्वेताम्बर आचार्यों के शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं इत्यादि प्रमाणों से पाली की प्राचीनता में किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिलता हैं।

व्यापार की दृष्टि से देखा जाय—तो भारतीय व्यापारिक नगरोंमें पाली शहर का मुख्य स्थान है पूर्व जमाने में पाली शहर व्यापार का केद्र था यहाँ बहुत जथ्था बन्ध माल का निकास प्रवेश होता था यह भी केवल एक भारत के लिये ही नहीं था पर भारत के अतिरिक्त दूसरे पश्चात्य प्रदेशों के व्यापारियों के साथ पाली शहर के व्यापारियों का बहुत बड़े प्रमाणमें व्यापार चलता था पाली में बड़े-बड़े धनाढ्य व्यापारी बसते थे और उनका व्यापार विदेशों के साथ था तथा उनकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। फारिस अरब अफ्रिका चीन जापान जावा मिश्र तिब्बत वगैरह प्रदेश तो पाली के व्यापारियों के व्यापार के मुख्य प्रदेश माने जाते थे जब हम पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थ देखते हैं तो पता मिलता है कि पाली के महाजनों की कई स्थानों पर दुकानें थीं और बालदों पोटों तथा जल एवं थल मार्ग से पुष्कल माल आता जाता था और इस व्यापार में वे बहुत मुनाफा भी कमाते थे। यही कारण था कि वे लोग एक एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर डालते थे इतना ही क्यों पर उन लोगों की देश एवं जाति भाइयों के प्रति इतनी वात्सल्यता थी कि पाली में कोई साधर्मी एवं जाति भाई आकर बसता तो प्रत्येक घर से एक एक मुद्रिका और एक एक ईंट अर्पण कर दिया करते थे कि आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता और यह प्रथा उस समय केवल एक पाली वालों के अन्दर ही नहीं थी पर अन्य नगरों में भी थी जैसे चन्द्रवती और उपकेशपुर के उपकेशवंशी एवं प्राग्वटवंशी अग्रहा के अगरवाल डिडवाना के महेश्वरी आदि कई जातियों में थी कि वे अपने साधर्मी एवं जाति भाइयों को सहायता पहुँचा कर अपने बराबरी के बना लेते थे।

करीबन एक सदी पूर्व एक अंग्रेज महात्मा टॉडसाहब मारवाड़ में पेदल भ्रमण करके पुरातत्त्व की शोध खोज का कार्य किया था उनके साथ एक ज्ञानचन्द्रजी नामक यति भी रहा करते थे टॉड साहब को जितनी प्राचीन हिस्ट्री मिली थी उतनी ही उन्होंने टॉड राजस्थान नामक ग्रन्थ में छपादी थी उसमें पाली शहर का भी बहुतसा हाल लिखा है उसमें पाली नगर को बहुत प्राचीन बतलाया है व्यापार के लिये तो पाली को प्राचीन जमाने से एक व्यापार की बड़ी मंडी होना लिखा है वहाँ से थोक बन्ध माल विदेशों में जाता था पाली का नमक, सूतका जाड़ा कपड़ा, ऊनी कांबले, कागज वगैरह बड़ा प्रमाण में तैयार होता था और विदेश के व्यापारी खरीदकर अपने देशों में भेजते थे तब विदेशों से हस्तीदान्त, साफू गेंडाकाचमड़ा तांबा टीन जस्त सूखी खजूर पंडखजूर अरब का गुंद सहोगी नारियल बनात रेशमी कपड़ा औषधियें गन्धक पारा चन्दन की लकड़ियें कपुर चाय हरा रंगके कांच भावलपुर से साजी मजिट आल का रंग पक्के फल हिंग मुलतानी छींटें संदूक तथा पलंग की लकड़ियें कोटा से अफिग छींटें जाड़ा कपड़ा भोजले तलवारें और घोड़ा

२—कई लोगों का मत है कि अग्रवालों के पूर्वजों ने अग्रहा (आगरा) नाम का नगर बसाया था† इससे इस जाति का नाम अग्रवाल हुआ।

३—कई एकों का मत है कि अग्रवाल जाति क्षत्रियों से उत्पन्न हुई है।

४—कई कहते हैं कि अग्रवाल जाति वैश्यों से पैदा हुई।

५—कई कहते हैं कि राजा अग्रसेन की सन्तान होने से इस जाति का नाम अग्रवाल हुआ है। पर अग्रसेन के लिये भी तो कई मत प्रचलित है जैसे कि—

a—पौराणिक कथाओं में राजा अग्रसेन की पूर्व परम्परा ब्रह्माजी से मिलाई है।

b—कई कहते हैं कि श्रीकृष्ण के समय यदुवंश में अग्रसेन राजा हुआ है।

c—कई कहते हैं कि युधिष्ठिर की तेरहवीं पुश्त में राजा अग्रसेन हुआ

d—कई कहते हैं कि आबू के परमारों में राजा अग्रसेन हुआ जिसका समय ई० स० ८१ के आस पास का है।

e—इतिहास मर्मज्ञ बंगाल के बाबू नागेन्द्रनाथ वसु कहते हैं कि सम्राट समुद्रगुप्त के समय (ई० सं० ३२६ से ३७५) राजा उग्रसेन हुआ।

इत्यादि जिसमें बंगाल के इतिहास कार बाबू नागेन्द्रनाथ वसु का मत है कि उपरोक्त पांच उग्रसेन से अन्तिम सम्राट समुद्रगुप्त के समय में जो उग्रसेन हुआ है वही अग्रवाल जाति का पूर्वज होना चाहिये जिसका समय ईसा की चतुर्थ शताब्दी है। उस उग्रसेन की सन्तान ही अग्रवाल कहलाई।

उपरोक्त मत्तों में ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो बाबू नागेन्द्रनाथ का मत्त प्रमाणिक पाया जाता है। बाबुजी के इस मत से हम भी सहमत है।

अग्रसेन के साथ अग्रहा नगर का घनिष्ट सम्बन्ध है। कई विद्वानों का मत है कि राजा अग्रसेन ने ही अग्रहा नगर बसाया था और वहाँ पर अग्रवालों के एक लक्ष घरों की बस्ती थी। वे धन धान्य में बड़े ही समृद्धशाली थे। एक ऐसी भी कथा प्रचलित है कि अग्रहा नगर में कोई भी जाति भाई रहने को आता तो

---

प्रदेशों में भी जरथाबन्ध था। शायद् अग्रवालों के पूर्वजों ने अगुरका व्यापार किया हो और इस कारण इन लोगों की जाति का नाम अग्रवाल हुआ हो तो असभव भी नहीं है जैसे कुमटका व्यापार से कुमट जाति बनो धूप का व्यापार से धूपिया गुंद का धंधा से गुंन्दिया इत्यादि ये जातियें ओसवालों में आज भी विद्यमान हैं।

† अग्रसेन नामक एक वैश्य राजा एक लाख मनुष्यों के परिवार के साथ दक्षिण में राज करता था। राजा अग्रसेन के पूर्व पुरुष धनपाल भा दक्षिण भारत के प्रताप नगर में राजा थे। उनके शिव, नल, आनन्द, नन्द, कुन्द, कुमुद, बल्लभ और शुक नामक आठ पुत्र और मुकुटा नामक एक कन्या हुई। उस समय विशाल नामक एक और राजा मल नगर में राज्य करता था उसके पद्मावतो, मालती कान्ति नन्दा, सुभद्रा सुरा, मरा और रजा नाम की आठ कन्यायें थीं। धनपाल के उक आठ पुत्रों के साथ विशाल की आठों कन्याओं का विवाह हो गया। जिसमें नल सन्यासी हो गया बाकी सात पुत्र अपने अपने अधिकृत देश में राज्य करते थे। शिव के वंश में वंशानुक्रम से विष्णुराज, सुदर्शन, धुरन्धर, समाधि, मोहनदास और नेमनाथ ने राज्य किया। नेमनाथ से नैपाल का नामकरण हुआ और वहाँ लोक आकर बसे। नेमनाथ के पुत्र वृन्द ने वृन्दावन में बहुत से यज्ञ किये। वृन्द के पुत्र गुर्जर ने अपने नाम से गुर्जर देश में राज्य स्थापित किया। गुर्जर का पुत्र हरिहर उसका पुत्र रङ्गराज और उसकी पांचवीं पीढ़ी में अग्रसेन हुआ उस ने नागराज की कन्या माधवी से विवाह किया। इस

हुआ इसी प्रकार पाली नगर के नाम से पल्लीवालगच्छ भी उत्पन्न हुआ उपरोक्त गच्छों की नामावली में पल्लीवालगच्छ का नंबर तीसरा आता है कारण इस गच्छ की पट्टावली देखने से मालूम होता है कि—यह गच्छ बहुत पुराणा है जो उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ के बाद पल्लीवालगच्छ का नम्बर आता है श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वाला ने श्री आत्मानन्द शताब्दी अंक नामक पुस्तक के हिन्दी विभाग के पृष्ठ १८२ पर पल्लीवालगच्छ की पट्टावलीके विषय में एक लेख मुद्रित करवाया है । मैं केवल उस पट्टावली को यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत कर देता हूँ—

प्रथम २४ तीर्थङ्करों और ११ गणधरों के नाम लिखकर आगे पट्टानुक्रम इस प्रकार लिखा है—

१—श्री स्वामी महावीरजी रे पाटे श्री सुधर्म१
२—तिणरे पाट्टे श्रीजम्बु स्वामी २
३—तत्पाट्टे श्रीप्रभव स्वामी ३
४—तत्पाट्टे श्रीशय्यंभवसूरि ४
५—तत्पाट्टे श्रीजसोभद्रसूरि ५
६—तत्पाट्टे श्रीसंभूतविजय ६
७—तत्पाट्टे श्रीभद्रबाहुस्वामी ७
८—तत्पाट्टे तिण माहें भद्रबाहु री शाख न वधी श्री स्थुलभद्र ८

९—तत्पट्टे श्रीसुहस्तीसूरि २ काकंद्य कोटिसूरिमंत्र जाप्यांवान् कोटिकगण । तिहारै पाटि सुप्रतिबंध ९ तियांरै गुरुभाई सुतिणारा शिष्य दोई विज्जाहर १ उचनागोरी २ सुप्रतिबंध पाटि ९ तिणरी शाखा २ तिणांरा नाम मज्झिमिका १ वयरी २ ।

१०—वयरी रै पाटै श्रीइन्द्रदिन्नसूरि पाटि
११—तत्पट्टे श्रीआर्यदिन्नसूरि
१२—तत्पट्टे श्री सिहगिरिसूरि पाटि
१३—तत्पट्टे श्री वयर स्वामी पाटि

१४—तत्पट्टे तिणरी शाखा २ तिणाँरा नाम प्रथम श्री वयरसेन पाटि १४ बीजो श्री पद्म २ तिणरी नास्ति । तीजो श्री रथसूरि पाटि श्री पुसगिरि री शाखा वीजी वयरसेन पाटि १४

१५—तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि पाटि १५ संवत् १३० चन्द्रसूरि ।

( यहां तक तो दूसरे गच्छों से मिलती जुलती नामावली है केवल नौवें नम्बर में महागिरी का नाम नहीं है और सुप्रतिबंध का नाम अलग चाहिये जिसको सुहस्ती के शामिल कर दिया है । अब १६ वां नंबर में शान्तिसूरि से इस पल्लीवालगच्छ की शाखा एवं पट्टावली अलग चलती है जैसे कि—]

१६—संवत् १९ ( १६१ ) १ श्री शांतिसूरि थाप्पा पाटि १६ श्री संवत १८० स्वर्ग श्री शांतिसूरि पाट्टे १६ तिणरे शिष्य ८ तिणरा नाम ।

(१) श्री महेन्द्रसूरि १ तिणथी मथुरावाला गच्छ (२) श्री शालगसूरि श्री पुरवालगच्छ
(३) श्री देवेन्द्रसूरि खंडेलवालगच्छ (४) श्री आदित्यसूरि सोझितवालगच्छ
(५) श्री हरिभद्रसूरि मंडोवरागच्छ (६) श्री विमलसूरि पतनवालगच्छ
(७) श्री वर्द्धमानसूरि भरवच्छेवालगच्छ (८) श्री मूल पट्टे श्री (..............

१७—श्री जसोदेवसूरि पाटि १७ संवत् ३२९ वर्षे वैसाख सुदि ५ मल्लादि प्रतिबोधिता श्री पल्लीवालगच्छ स्थापना संवत ३९० ( । )स्वर्गे ।

| संख्या | राजकुमार | ऋषि | गोत्र | सं० | राजकुमार | ऋषि | गोत्र |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | पुष्पदेव | गर्ग | गर्ग | १० | तंबोलकरण | तॉडव | तुंगल |
| २ | गेंदूमल | गौभिल | गोइल | ११ | ताराचंद | तैत्तिरेय | ताईल |
| ३ | करणचंद | कश्यप | कच्छल | १२ | वीरभान | वत्स | बॉसल |
| ४ | मणिपाळ | कौशिक | कांसिल | १३ | वासुदेव | धन्यास | टेरन |
| ५ | वृन्ददेव | वशिष्ठ | बिंदल | १४ | नारसेन | नागेन्द्र | नागल |
| ६ | ढावणदेव | धौम्य | ढालन(टेलण) | १५ | अमृतसेन | मॉडव्य | मंगल |
| ७ | सिंधुपति | शाण्डिल्य | सिंघल | १६ | इन्द्रमल | औवे | एरन |
| ८ | जैत्रसंघ | जैमिनी | जिंदल | १७ | माधवसेन | मुद्गल | मधुकल |
| ९ | मन्त्रपति | मैत्रेय | मित्तल | १८ | गोधर | गोतम | गोबन |

इन गोत्रों का नाम कुछ रद्दोबदल भी मिलता है तथा इन गोत्रों से बाद में कई शाखायें भी निकल गई थीं ! एक समय इस अग्रवाल जाति का बड़ा भारी अभ्युदय था और व्यापार में जैसे ओसवाल पोरवाल और पल्लीवाल जातिएं बढ़ चढ़ के थी इसी प्रकार अग्रवाल जाति भी खूब उन्नत एवं आबाद थी।

अग्रवाल जाति के हाथों से राज कब निकाला और कब से व्यापार क्षेत्र में प्रवेश हुई इसके लिये अग्रवाल जाति का इतिहास पढ़ना चाहिये।

**अग्रवाल जाति में जैनधर्म**—अग्रवाल जाति इस समय दो शाखाओं में विभाजित है ❀ वैष्णव धर्मोपासक २—जैनधर्मोपासक। अग्रवाल जाति में जैनधर्म कब से प्रवेश हुआ इसके लिये अनुमान किया जाता है कि राजा अग्रसेन पर यज्ञ समय ही जैनधर्म का प्रभाव पड़ चुका था जब ही तो उसने हिंसामूलक यज्ञ करवाना बन्द कर अपनी संतान परम्परा के लिये हिंसा करना निपेध कर दिया था पर यह उल्लेख नहीं मिलता है कि राजा ने उसी समय खुल्लमखुल्ला जैनधर्म स्वीकार कर लिया था या बाद मे ? हां, पट्टावल्यादि ग्रयों में यह उल्लेख जरूर मिलता है कि जैनाचार्य ❀ लोहित्यसूरि❀ने अग्रवालों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। इसके लिये लिखा है कि अग्रहा नगर में किसी प्रसंग से अग्रवाल लोग एकत्र हुये थे उस समय आचार्य लोहित्यसूरि अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुये आगरा नगर में पधारे और उन अग्रवालों को उपदेश दिया जिसमें वहां उपस्थित थे वे लोग जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब से ही अग्रवाल लोग जैनधर्म पालन कर रहे ह। उन्हों की बस्ती यू० पी० तथा पंजाब की ओर विशेष है। उस समय जैनियों में कुछ संकीर्णता ने अपना अड्डा जमा लिया था कि ओसवालादि जैन जातियों ने अग्रवालों के साथ रोटी व्यवहार तो शामिल कर लिया परन्तु बेटी व्यवहार शामिल नहीं हुआ इसी कारण कालक्रम से कुछ अग्रवाल पुनः वैष्णव धर्म में चले गये अतः अग्रवालों में दो धर्म आज भी दृष्टिगोचर होरहे हैं १-जैन २ वैष्णव परन्तु

❀ लोहित्याचार्य-दो हुए है—एक श्वेताम्बर समुदाय में लोहित्याचार्य हुए है और दूसरे दिगम्बर समुदाय में भी एक लोहित्याचार्य है। परन्तु अग्रवाल जाति के प्रतिबोधक शुरु से श्वेताम्बर समुदाय के लोहित्याचार्य हैं अतः अग्रवाल जाति शुरू से श्वेताम्बर समुदाय के श्रावक थे पर बाद कई स्थानों में श्वेताम्बर साधुओं के अभाव से कई अग्रवाल भाई दिगम्बर मत को भी मानने लग गये हैं। खैर अग्रवाल जाति प्राचीन समय से जैनधर्मोपासक है।

६१ विद्यमान भट्टारक श्री उजायेणसूरि पटि ६१ संवत् १६८७ वाचक पदं संवत् १७२८ जेष्ठ सुदि १२ बार शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये —

उपरोक्त पट्टावली से पाया जाता है कि विक्रम की चौथी शताब्दी में पल्लीवाल गच्छ की स्थापना आचार्य शान्तिसूरि के हाथों से हुई थी—

पाली की जनता को सबसे पहिले प्रतिबोध आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ही दिया था और आपश्री की परम्परा के आचार्यों ने क्रमशः उनकी वृद्धि करी। बाद में जब पूर्व में आर्य्य सुहस्तीसूरि के समय दुष्काल पड़ा था तब आर्य्य सुहस्तीसूरि सपरिवार आवंति प्रदेश में आये बाद में सौराष्ट्र और मरुधर में आये और पाली की ओर अधिक विहार करने वाले शान्तिसूरि ने पल्लीवालगच्छ की स्थापना की हो तो यह बात विश्वासनीय है।

जैसे ८४ गच्छों में पल्लीवालगच्छ प्राचीन है वसे ही वैश्यों की ८४ जातियों में भी पल्लीवाल जाति प्राचीन है जहाँ हम चौरासी जातियों के नाम उल्लेख करेंगे पाठक वहाँ से देख सकेंगे कि पल्लीवाल जाति कितनी प्राचीन है?

पल्लीवाल जाति में बहुत से नररत्न वीर एवं उदार दानेश्वरी हुए हैं जिन्होंने एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय करके कल्याणकारी पुन्योपार्जन किया है हाँ आज उनका सिलसिला वार इतिहास के अभाव हम यहाँ सबका उल्लेख नहीं कर सकते हैं इसका कारण यह है कि अव्वल तो वह जमाना ही ऐसा था कि इन बातें को लिपिबद्ध करने की प्रथा ही कम थी दूसरा जो करते थे वह भी उनके गच्छ वालों के पास तथा वंशावलियों लिखने वालों के पास रहता था पर विदेशियों की धर्मान्धता के कारण कई ज्ञान भंडार ज्यों के त्यों जला दिये गये थे कि उसके अन्दर काफी ग्रन्थ जल गये। तथापि शोध खोज करने पर पल्लीवाल जाति एवं पल्लीवाल गच्छ सम्बन्धी यत्र तत्र बिखरा हुआ साहित्य मिल सकता है अभी विद्वद्वर्य मुनिराज श्री दर्शनविजयजी महाराज ने पल्लीवाल जाति का इतिहास लिखकर इस जाति के विषय अच्छा प्रकाश डाला है पल्लीवाल जाति के वीर पेथड़शाह वगैरह दानेश्वरियों के नाम खास उल्लेखनीय हैं जिसको हम यथा स्थान वर्णन करेंगे यहाँ तो हमारा उद्देश्य खास पल्लीवाल जाति के विषय लिखने का था और हमने उपरोक्त प्रमाणों द्वारा यह बतलाने की कौशिश की है कि पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन है इसका उत्पति स्थान पाली नगर और समय विक्रमपूर्व चार सौ वर्ष पूर्व का है।

## अग्रवाल जाति

जैसे भारतीय जातियों में ओसवाल पोरवाल पल्लीवाल श्रीमालादि जातियें हैं वैसे अग्रवाल भी एक जाति है। इस जाति के इतिहास के लिए वे ही कठिनाइयें हमारे सामने उपस्थित हैं कि जैसी अन्य जातियों का इतिहास के लिये हैं। कारण, इस जाति का भी सिलसिले वार इतिहास नहीं मिलता है। हाँ, इस जाति की उत्पति के लिए कई प्रकार की किम्वदन्तियें प्रचलित हैं जैसा कि—

१—कई कहते हैं कि इस जाति के पूर्वज अगुरु नाम की सुगन्धित लकड़ियों का व्यापार करते थे। अतः इसका नाम अगुरु* पड़ गया और उस अगुरु का ही अपभ्रंश अग्रवाल है।

* कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता मिलता है कि एक समय भारत में अगुरु जाति की लकड़ियों का बहुत प्रमाण में व्यापार चलता था और अगुरु लकड़ी सुगन्धमय होने से इसका व्यापार भारत में ही नहीं बल्कि भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य

भी किये थे, पर उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई, अतः एक दिन राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर महाभोज दिया तथा दक्षिणा में पुष्कल द्रव्य का दान देकर प्रार्थना की कि भूर्वियों मेरे पुत्र नहीं है अतः आप प्रसन्न होकर ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे मेरा मनोरथ सफल हो ? ब्राह्मणों ने खुश होकर कहा राजा तेरे पुत्र तो होगा पर एक बात याद रखना कि वह १६ वर्ष तक उत्तर दिशा में न जाय यदि कभी भूल चूक कर उत्तर दिशा में चला गया तो उसको इसी शरीर से पुनर्जन्म लेना होगा इत्यादि भूदेवों के आशीर्वाद को राजा ने शिरोधार्य कर लिया और उन ब्राह्मणों को और भी बहुतसा द्रव्य देकर विसर्जन किये।

राजा के चौबीस रानियें थी, जिसमें चम्पावती रानी के गर्भ रहा जिससे राजा बड़ा ही हर्षित हुआ और ब्राह्मणों के वचन पर श्रद्धा भी होगई गर्भ के दिन पूर्ण होने से राजा के वहां पुत्र का जन्म हुआ राजा ने बड़े ही महोत्सव किया और याचकों को दान एवं सज्जनों को सन्मान दिया और बारहवें दिन उनका नाम 'सज्जन कुँवर' रख दिया राजकुँवर का पाँच धायें से पालन पोषण हो रहा था, जब कुँवर पांच वर्ष का हुआ तो अध्यापक के पास पढ़ने के लिये भेज दिया और बारहवर्ष में तो वह सर्व कला में निपुण बन गया इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने राज कार्य भी संभालने लग गया राजा को ब्राह्मणों की बात याद थी, अतः कुँवर को कहदिया कि तुम सर्वत्र जाओ आओ पर एक उत्तर दिशा में भूल चूक के भी नहीं जाना उत्तर दिशा में जाने की मेरी सख्त मनाई है, राजकुँवर ने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करली और आनन्द में राज कारभार चलाने लगा मुत्सद्दी उमराव एवं जनता कुँवर के आधीन रह कर उनकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करने लगे।

एक समय उस नगर में किसी जैनाचार्य का शुभागमन हुआ और उन्होंने जनता को अहिंसा सत्य शील परोपकार आदि विविध विषयों पर उपदेश दिया आचार्य श्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता राजसम्पति की चञ्चलता कुटम्ब की स्वार्थता और क्षणभंगुर शरीर की असारता पर जोरदार व्याख्यान दिया जिसको सुनकर राजकुंवर सज्जनकुंमार को सूरिजी का कहना सोलह आना सत्य प्रतीत हुआ अतः उसने सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजकुंवर ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो उमराव मुत्सद्दी तथा नागरिक लोग कब पीछे रहने वाले थे उन लोगों ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है कि बिना अपराध किसी जीव को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं पहुँचानी अर्थात पर जीवों को स्वजीव तुल्य समझना चाहिये। राजकुँवर ने जैन धर्म स्वीकार करके अपने राज में जीव हिंसा कतई बन्द करवा दी। जिससे ब्राह्मणों के यज्ञ यागादि कर्म सर्वत्र बन्द हो गये इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने तो स्थान २ पर जैन मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा दी कि जनता सदैव सेवा पूजा भक्ति कर अपना कल्याण करने लगी इस कारण शिव मन्दिरों की पूजा बन्द सी हो गई कई थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग ही शिवोपासक रहे वे लोग भी छाने-छुपके शिव पूजा वगैरह करते थे।

राजकुँवर ने केवल अपने नगर में ही नहीं पर आस पास का प्रदेश अर्थात पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया और जीव हिंसा एवं यज्ञ भी सर्वत्र बन्द करवा दिये केवल एक उत्तर दिशा में राजकुँवर नहीं जा सका कारण, राजा ने पहले से ही मनाई कर रखी थी। फिर भी कुँवर इस बात का विचार कर रहा था कि उत्तर दिशा में जाने की मुझे मनाई क्यों की होगी—

उनको प्रत्येक घर से एक मुद्रिका और एक ईंट दी जाती थी कि वह आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता था ऐसी कथा चन्द्रावती के ओसवाल जाति और पाली की पल्लीवाल जाति में भी प्रचलित है।

अग्रवालों के १७॥ गोत्रों की उत्पत्ति—पूर्व जमाने में देव देवी एवं यज्ञादि क्रिया काण्ड में जनता का दृढ़ विश्वास था और वे कोई भी छोटा बड़ा कार्य्य करना होता तो देवी देवता और यज्ञादि क्रिया कांड द्वारा ही किया करते थे। यद्यपि भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से यह प्रथा बहुत कम हो गई थी तथापि सर्वथा नष्ट नहीं हुई थी कारण चिरकाल से पड़ी हुई कुप्रथा यकायक नष्ट होनी मुश्किल थी स्वार्थ प्रिय ब्राह्मण इसके प्रेरक थे जहाँ उन लोगों का थोड़ा बहुत चलता वहाँ वे यज्ञ होम करने में तत्पर रहते थे।

राजा उग्रसेन के अठारह रानियां थी पर किसी के भी पुत्र नहीं था राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर पुत्र होने का उपाय पूछा पर उन्होंके पास सिवाय पशुबद्ध रूपी यज्ञ के और क्या था उन्होंने कह दिया कि हे राजन् ! यदि आपको पुत्र की इच्छा है तो आप अठारह यज्ञ करवाइये आपके अठारह पुत्र अर्थात एक एक रानी के एक एक पुत्र हो जायगा। राजा ने अठारह यज्ञ करवाने का निश्चय किया। यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण एवं ऋषि लोग थे एवं यज्ञ करवाने वाले उनके तथा उनकी सन्तान के गुरु भी समझे जाते थे और शुभ प्रसंग पर लाग लागन एवं दक्षिणा उन गुरुओं को दी जाती थी। यज्ञ में वेद मंत्रों के साथ पशुओं की बलि देना मुख्य काम था। अतः राजा उग्रसेन ने यज्ञ के लिये बहुत से ब्राह्मणों एवं ऋषियों को बुलवाये और यज्ञबलि के लिये बहुत से पशु एकत्र किये थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ और क्रमशः १७ यज्ञ समाप्त भी हो गये पर अठारहवें यज्ञ में राजा को यज्ञ में होने वाली पशुबलि रूप घोर हिंसा प्रति घृणा हो गई अर्थात राजा ने उन निरपराधी पशुओं पर दया लाकर छुड़वा दिये और अपने वंशजों के लिए यज्ञ में बलि देना एवं जीवों की हिंसा करना करवाना बिल्कुल निषेध कर दिया। राजा को इस प्रकार यज्ञ की हिंसा से घृणा आ जाने का क्या कारण होगा ? इसके लिये जैन कथाओं से पाया जाता है कि राजा को एक करूणा मूर्ति नामक जैनसाधु का उपदेश लग गया था। और उसने बुरी तरह तड़फड़ाहट करते हुए पशुओं को देखकर यज्ञ कर्म करना बंध करवा दिया था और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि चलते हुए यज्ञ के लिए यकायक इस प्रकार हिंसा से घृणा हो जाना और भविष्य में अपनी सन्तान परम्परा के लिए इस प्रकार की क्रूर हिंसा का निषेध कर देना किसी अहिंसा के उपासकों का उपदेश बिना बनना मुश्किल था। अतः यह कथन सर्वथा सत्य समझना चाहिए कि राजा उग्रसेन को जैनमुनि का उपदेश अवश्य लगा था।

राजा के अठारह रानियां थी और उनके अठारह पुत्र हुये जिन्हों से अठारह गोत्रों की उत्पत्ति हुई। कई यह भी कहते हैं कि यज्ञ कराने वाले १८ ऋषि थे उनके नाम से अठारह गोत्र हुये और कई यह भी कहते हैं कि राजा के १७ पुत्रों के तो सत्तर ऋषि गुरु बन गये पर एक के कोई गुरु नहीं बना जिसका यज्ञ अधूरा रहा था अतः उसने अपने बड़े भाई के गुरु को ही गुरु माना। इसलिये उसका आधा गोत्र गिना गया जिससे १७॥ गोत्र कहा जाता है। उन १७॥ गोत्रों का विवरण निम्न कोष्टक में दिया जाता है।

विवाह के बाद उन्होंने काशी और हरिद्वार में कितने ही यज्ञ किये। इसके पश्चात् उन्होंने कोल्हापुर के महीधर राजा की कन्या को प्राप्त किया। इसके बाद दिल्ली के पास आकर उन्होंने आगरा बसाया और वहाँ पर उनने अपनी राजधानी स्थापित की अतः उस नगर के नाम से उन लोगो की जाति का नाम अग्रवाल हुआ है। इत्यादि

होगये। पास में पार्वतीजी भी खड़ी थी उसका रूप योवन लावण्य आदि सौंदर्य देख कर राज कुँवर सज्जन का चित्त चञ्चल और विकार सहित हो गया जिस चेष्टा को देख पार्वती ने उसे श्राप दे दिया कि घरे मंगता जा मांग खा। बस! फिर तो देरी ही क्या थी राज कुँवर सज्जन मंगता बन गया जिसको 'जागा' कहते हैं उसमें एक मिश्रीलाल कायथ था उसको कोतवाल बना दिया जब बहोत्तर उमराव हाथ जोड़ कर बोले हे दयालु हमारे लिए क्या हुक्म है शिवजी ने कहा कि तुम्हारा राज तो दूसरे राजा ने छीन लिया है अब तुम वैश्य पद को धारण कर के तलवार की कलम बनालो भाला की दंडी और ढाल के तराजू के पालने बना कर व्यापार करो। इस बीच में ही ब्राह्मण बोल उठे कि भोना शम्भू! यह तो आपने ठीक किया परन्तु इन नास्तिकों ने हमारी सामग्री ध्वंश कर हमको बड़ा भारी नुकशान पहुँचाया है इसके लिये आपने क्या फैसला दिया है कहीं हम ब्राह्मण मारे नहीं जावें क्योंकि सामग्री के अभाव से हमारा यज्ञ समाप्त कैसे होंगे? शिवजी ने कहा कि अभी तो इनके पास कुछ है नहीं कारण इनका राज माल वगैरह तो सब दूसरे राजा ने छीन लिया है अतः यह आपको क्या दे सकें। परन्तु इनका और तुम्हारा ऐसा सम्बन्ध कर दिया जाता है कि इन लोगों के घरों में पुत्र जन्म या विवाह शादी और मृत्यु वगैरह का प्रसंग होगा तब शक्ति के अनुसार तुमको कुछ न कुछ दिया करेंगे शिवजी ने दीर्घ दृष्टि से ब्राह्मणों का सदैव के लिये निर्वाहा कर दिया और वे उमराव सदैव के लिए ब्राह्मणों के करजदार बन गये खैर! शिवजी का फैसला दोनों पक्ष वालों ने मंजूर कर लिया बाद शिव पार्वती अपने स्थान पर चले गये।

जब वे बहोत्तर उमराव छ ब्राह्मणों के पास गये तो उन ब्राह्मणों ने बारह बारह उमरावों को अपनेर यजमान बना लिये इन पर ही ब्राह्मणों की आजीविका अर्थात् ब्राह्मणों की एक जागीरी बन गई। अब रहा राजकुँवर सज्जन इसके लिये पार्वतीजी का श्राप था वह जागा के नाम से ७२ उमरावों की वंशावलियों लिख कर अपनी आजीविका करने लगा -इत्यादि महेश्वरी जाति का उत्पत्ति बतलाई है।

इनके अलावा श्रीयुक्त शिवकरणजी रामरतनजी दरक (महेश्वरी) मुडवा वाला ने 'इतिहास कल्पद्रुम महेश्वरी कुल दर्पण" नाम की एक पुस्तक मुद्रित करवाई है उसमें भी महेश्वरी जाति की उत्पत्ति प्रायः उपरोक्त वही भाटों (जागा) के मतानुसार ही लिखी है और ये दोनों कथाओं प्रायः मिलती जुलती ही हैं इससे पाया जाता है कि दरक महाशय ने किसी जागा के कथा को नकल ही अपनी किताब में उतार ली हैं विशेषता में दरक महाराय ने उन ७२ उमरावों से महेश्वरी की जातियें बनी जिसके नाम एक कविता में दिया है जिसको भी मैं यहाँ दर्ज कर देता हूँ।

महेश्वरी जाति के ७२ नाम है—सोनी१ और सोमणी२ जाखेड्या३ सोडाणी४ ॥ हुरकट५ न्याति६ हेडा७ करवा८ काकाणी९ मालु१० सारडा११ कहाल्या१२ गिलडा१३ जाजू१४ ॥ बाहेती१५ बिदादा१६ बिहाणी१७ बजाजू१८ ॥ कलंत्री१९ कासट२० कचोल्या२१ काहलाणी२२ मत्वर२३ कावरा२४ डाढा२५ डागा२६ गदाणी२७ राठी२८ बिहना२९ दरक३० तोसणीवाल३१ राजे ॥ अजमेरा३२ भंडारी३३ छपरवाल३४ झोजे ॥ भटडा३५ भूतडा३६ बंग३७ अटल३८ इदाणी३९ ॥ भूराड्या४० भन्साली४१ लड्डा४२ माल पाणी४३ सिकची४४ लाहोटी४५ गदइया४६ गगुराणी४७ ॥ खटवड़४८ लखोटया४९ आसवा५० चेचाणी५१ मुणवरया५२ मुंदड़ा५३ चौखड़ा५४ चंडक५५ राजे ॥ बनदवा५६ बालदी५७ मुंब५८ बांगड़ा५९

फिर भी यह खुशी की वात है कि दोनों धर्म के पालने वाले अग्रवालों में रोटी वेटी व्यवहार जैसे पहिले था वैसे ही आज भी है।

अब देखना है समय! कि अग्रवाल किस समय जैनी बने हैं इसके लिये आचार्य्य लोहितसूरि का समय देखना पड़ेगा क्योंकि अग्रवालों को जैन वनाने वाले आचार्य्य लोहितसूरि थे और जैन पट्टावलियों से पता चलता है कि आर्यदेवऋद्धिगणि क्षमा श्रमणजी आचार्य्य लोहितसूरि के शिष्य थे और उन्होंने वीर संवत ९८० (ई. स. ४५३) में वल्लभी नगरी में आगम पुस्तकारूढ़ किये थे। यदि इनसे ३० वर्ष पूर्व आचार्य लोहित का समय समझा जाय तो ई. स ४२३ के आस पास आगरा नगर में आचार्य लोहितसूरिने अग्रवालों को जैन वनाये थे और वावुनागेन्द्रनाथ के मतानुसार यह समय राजा अग्रसेन के निकटवर्ती आता है। जब राजा अग्रसेन ने जैनाचार्य के उपदेश से पशुहिंसा एवं मांस प्रति घृणा लाकर अपनी संतान तक के लिये हिंसा निषेध कर दी तो ब्राह्मणों ने उनको कहना सुनना एवं उपदेश अवश्य किया होगा और उस समय या उनके वाद कुछ अर्सा में अग्रवालों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया हो तो यह सर्वथा मानने योग्य है।

अग्रवाल जाति के जैन श्रावकों ने आत्म कल्याण के लिये वड़े वड़े सुकृत कार्य किये हैं कई दानेश्वरियों ने दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों के प्राण वचाये कई एकों ने तीर्थयात्रार्थ वड़े-वड़े संघ निकाल कर चतुर्विध श्री संघ कों तीर्थों की यात्राऐं करवाई—कइएकों ने स्वपर कल्याणार्थ वड़े-वड़े मन्दिर वनवा कर उसमें त्रिजगपूजनीय तीर्थङ्कर देवों की मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा करवाई कइएकों ने जैनाचार्यों के पद महोत्सव एवं नगर प्रवेश महोत्सव में लाखों करोड़ों द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्ज्जन किये। जिसके उल्लेख यत्र तत्र पट्टावलियादि ग्रन्थों में मिलते है। जिसकों हम यथा स्थान दर्ज करदेंगे। यहाँ पर तो केवल अग्रवाल जाति की उत्पति तथा अग्रवाल जाति कवसे जैनधर्म स्वीकार किया इन वातों का ही निर्णय करना था जो उपरोक्त प्रमाणों से पाठक अच्छी तरह से समझ गये होंगे। इति शुभम्

## महेश्वरी जाति की उत्पत्ति

महेश्वरी जाति के साथ जैन धर्म का घनीष्ट सम्बन्ध है क्योंकि महेश्वरी जाति के पूर्वज सब के सब जैन धर्मोपासक थे, जिस समय महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई थी उस समय जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार था एवं अहिंसा परमोधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा रहा था हिंसामय यज्ञादि क्रिया काण्ड से जनता को अरूची एवं घृणा हो रही थी, जैनाचार्य सर्वत्र विहार कर जनता की शुद्धि कर जैन धर्म के झंडा के नीचे लाकर उनका उद्धार कर रहे थे। फिर भी कहीं कहीं पर ब्राह्मण लोग छाने छूपके छोटा वड़ा यज्ञ कर ही डालते थे ऐसा ही वरताव महेश्वरी जाति की उत्पति में हुआ है।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति के लिये महेश्वरियों के जाग-वही भाट अपनी वंशावलियों में एक कथा वना रखी हैं और जव महेश्वरियों के नाम लिखने को वे लोग आते है तव वह कथा सब को सुनाया करते हैं उसमें सत्य का अंश कितना है पाठक स्वयं समझ जायंगे। खैर कुच्छ भी हो उन जागों के तो यह कथा एक जागीरी वन चूकी है पाठकों की जानकारी के लिये उस कथा को यहां उद्धृत करदी जाती है।

खंडेला नगर में सूर्यवंशी राजा खंडेलसेन राज करता था राजा सर्व प्रकार से सुखी एवं सर्व ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः वह सदैव चिन्तातुर रहता था और इसके लिये कई उपाय

प्रधान मन्त्री महामन्त्री जैसे उच्च पद पर रहने के कारण राजा का अनुकरण मात्र से धर्मान्तर हो गये हो पर उनका कुल धर्म तो ओसवाल ही रहा था।

बहुत से ग्राम नगरों में महेश्वरी भाई जैनधर्म की उपासना करते थे–पर्युषण जैसे पर्वादि दिनों में कल्पसूत्र का श्रवण करना आचार्यों की सेवा उपासन स्वागत संम्मेलादि जैन धर्म के प्रत्येक कार्य में शामिल रहते थे। फलोदी के पास में पोकरण नामक एक शहर है वहाँ पर महेश्वरी भाई जैनों की धार्मिक सब क्रिया में भाग लेते थे। अन्य स्थानों में भी इसी प्रकार का बरताव था—

ओसवाल और महेश्वरियों से शुरू से ही भाईचारा पना रहा है कई ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि महेश्वरियों की कन्यायें के साथ ओसवालों के विवाह हुए हैं। तथा महेश्वरी और ब्राह्मणों के अन्दर जो मांस मदिरा की प्रवृति बिलकुल बन्ध हो गई यह भी जैनाचार्य की कृपा का ही फल है महेश्वरियों के गुरु ब्राह्मण है और तमाम ब्राह्मण यज्ञ करवाते थे और उसमें मांस खाते थे जब गुरु मांस खाते थे उनके यजमान मांस खाने से कब बच सकते थे परन्तु जहाँ-जहाँ जैनाचार्यों का भ्रमण एवं उपदेश हुआ वहाँ वहाँ के ब्राह्मण एवं महेश्वरियों ने मास खाना बिलकुल छोड़ दिया परन्तु जहाँ जैनाचार्यों का विहार नहीं हुआ वहाँ के ब्राह्मण मांस भक्षण करते और आज भी कर रहे हैं देखिये पूर्व बंगाल पंजाब सिन्ध शूरसेन महाराष्ट्रीय और तीलंदिके ब्राह्मणोंको कि जिनके गला मे जनोऊ रूद्राक्ष की माला होते हुए भी पांचेन्द्रिय जीवों का मास खाते हैं। स्वर्गस्थ महात्मा तिलक ने एक समय बनारस में अपने पब्लिक व्याख्यान में कहा था कि ब्राह्मण धर्म पर अहिंसा की छाप जैनों ने ही मारी थी कि वे लोग मांस नहीं खाते हैं।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति में लिखा है कि राजपुत्र सज्जनकुँवर उनके उमराव तथा नगरी के लोग जैन हो गये थे और यज्ञ तथा जीवहिंसा का खूब जोरों से निषेध करते थे तथा ब्राह्मणों के यज्ञ को विध्वंश कर दिया था यह उल्लेख स्पष्ट बतला रहा है कि ब्राह्मण यज्ञ में पशुहिंसा करते थे मांस खाते थे तब जैन उनका निषेध कर यज्ञविध्वंश कर अहिंसा धर्म का बड़ी वीरता से प्रचार करते थे यही कारण है कि उस कथा में राजकुँवर सज्जन को भगवा ( जागा ) होना लिख दिया है यदि ब्राह्मणों में श्राप द्वारा किसी को प.पाणवत बना देने जितनी शक्ति होती तो जैन और बोध धर्म का इतना प्रचार कब होने देते तथा वेदक धर्म को मरण के सरण कब जाने देते मेरे खयाल से तो सज्जन जैन होने के कारण उसको भगवा एवं जागा केवल जैनों के साथ द्वेषहोने के कारण ही लिखा गया है वास्तव में यह कल्पना का कलेवर मात्र है।

हमें अधिक खुशी इस बात की है कि जिन ब्राह्मणों ने या महेश्वरी भाइयों ने जैनाचार्यों के सदुपदेश से यज्ञ जैसी क्रूर प्रवृति और मांस जैसा राक्षसी भोजन को छोड़कर शुद्ध सात्विक पदार्थ के सेवी बन गये यही कारण है कि ओसवाल जाति उनको अपने बराबरी के भाई समझ कर सब व्यवहार उनके साथ बड़ी खुशी से करते हैं जहाँ ओसवाल महेश्वरियों का साथ रहना है वहाँ खानपान न्यात न्यात में जीमणवार में भाइयों की भाँति शामिल रहते हैं केवल उस जमाने की संकीर्णता या अहंपद के कारण ओसवाल महेश्वरियों में बेटी व्यवहार नहीं हो सका वरन् वे दो अलग जातियें न होकर एक ही जाति कहलाई जाति मेरे खयाल से तो आर्य जातियों में जहाँ भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ बेटी व्यवहार शामिल रखने में कोई हर्जा नहीं कारण जिसकी जाति व्यवहार-क्षेत्र जितना विशाल है उतना हो उन्नति क्षेत्र विशाल बन जाता है कई ओसवाल महेश्वरियों में विवाह होने के उदाहरण भी मिलते हैं—

एक दिन सज्जनकुँवर ने सुना कि उत्तर दिशा में ब्राह्मणों ने एक यज्ञ करना प्रारम्भ किया है अतः उसे आश्चर्य के साथ बड़ा ही दुःख हुआ कि दरबार ने मुझे तो उत्तर दिशा में जाने की मनाई कर रखी है और ब्राह्मण लोग घोर हिंसा रूप वहां यज्ञ प्रारम्भ किया है यह कैसा अन्याय यह कैसा अत्याचार, मेरे मनाई करने पर भी ब्राह्मणों ने रौद्र हिंसामय यज्ञ शुरू कर दिया ! बस ! राजकुँवर से रहा नहीं गया अपने बहत्तर उमरावों को साथ लेकर उत्तर दिशा में चला गया जहां कि यज्ञ हो रहा था सूर्यकुण्ड के पास जाकर राजकुँवर क्या देखता है कि एक ओर यज्ञमण्डप और अग्निकुण्ड बना हुआ है दूसरी ओर बहुत से पशु एकत्र किये हुए दीन स्वर से रूदन एवं पुकारें कर रहे हैं तब तीसरी तरफ बड़े-बड़े जटाधारी गले में जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई कपाल पर तिलक लगे हुए ऋषि एवं ब्राह्मण वेदध्वनी का उच्चारण कर रहे थे इस प्रकार दृश्य देख सज्जन को बड़ा ही गुस्सा आया और उसने अपने उमरावों को हुक्म दिया कि यज्ञ मण्डप उखेड़ दो अग्निकुण्ड को नष्ट करदो पशुओं को छोड़दो और यज्ञ सामग्री छीन लो अर्थात् यज्ञ विध्वंश कर डालो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उन लोगों ने सब यज्ञ को ध्वंश कर दिया। जिसको देख उन ब्रह्म महर्षियों को बड़ा भारी दुःख हुआ उन्होंने गुस्से में आकर उनको ऐसा श्राप दिया कि बहुतर उमरावों के साथ राजकुँवर जड़ पाषण की तरह अचेतन हो गये। इस बात की खबर नगर में हुई तो राजा और कई नागरिक लोग चलकर उत्तर दिशा में आये कि जहां यज्ञ विध्वंश किया था और राजकुँवरादि सब जड़ पाषणवत हुए पड़े थे उनको देख राजा को इतना दुःख हुआ कि वह दुःख के मारे वहीं मर गया उनकी सोलह रानियां तो राजा के साथ सतियें होकर जल गई और शेष आठ रानियां जाकर ब्राह्मणों का शरण लिया। इस बीतिकार को आसपास के राजाओं ने सुना कि खंडेला नगर का राजा तो मर गया है और कुँवर एवं उमराव जड़पाषाण सदृश हुये पड़ा है अतः उन्होंने सेना सहित आकर राज को अपने आधीन में कर लिया बात भी ठीक है कि बिना राजा के राज को कौन छोड़ता है।

इधर राजकुँवर सज्जन की पत्नी ( कुँवर रानी ) वगैरह ने सुना की बहोत्तर उमरावों के साथ राज कुँवर जड़ पाषाणवत् अचेतन हो गया है तो उनको बहुत दुःख हुआ वह भी बहोत्तर उमराओं की औरतों को लेकर उत्तर दिशा में आई और सबों ने अपने पतियों की हालत देख रोने एवं आक्रन्द करने लगीं पर अब रोना से क्या होने वाला था वे सब चल कर भूर्पियों के पास गई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप इनके अपराध की क्षमा कर इन सबको सचेतन करावें इत्यादि। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि यदि आप को यह कार्य करना ही है तो यह पास में गुफा है वहाँ जाकर शिव पार्वती की आराधना करो ब्राह्मणों ने एक अष्टाक्षरी मंत्र भी दे दिया था कि तुम सब इसमंत्र का जाप करो। बस दुःखी मनुष्य क्या नहीं कर सकता है कुँवरानी वगैरह सब गुफा में जाकर तपस्या के साथ उस मंत्र का जाप किया कि कितनेक दिनों के बाद साक्षात् शिव-पार्वती आये उनको देख कर उन ७३ औरतें जाकर पार्वती के पैरों में गिर गई तब पार्वती ने उनको आशीर्वाद के साथ कहा कि तुम धन धानपुत्र और पति से सुखी रहो तुम्हारा सुहाग कुशल और पति चिरंजीवी हो इस पर उन औरतों ने कहा माता आप वरदान तो दिया है पर हमारे पति तो सब जड़ पाषाणवत् अचेतन पड़े हैं फिर हमारा शोभाग्य कैसे रहेगा इस पर पार्वती ने जाकर शिवजी को कहा कि आप इन सब को सचेतन करो कारण मैंने इनको वरदान दे दिया है वह अन्यथा हो नहीं सकता है अतः पार्वती के अत्यग्रह से शिवजी ने उन सब को सचेतन कर दिये और वे सब आकर शिवजी के चारों ओर खड़े

# १८—आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज (तृतीय)

नित्यं जैन समाज मान हित कृत् स्मार्यः सदार्यः सदा ।
आचार्यस्तु स कक्कसूरि रमवदादित्य नागान्वये ॥
दीक्षां स्वमगवा मपीह सुदघाआचार्य पट्टं तथा ।
आसीयः कठिनस्तपश्चरणता स्वाचार युक्तोऽस्पृही ॥

चार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज अद्वितीय प्रभावशाली एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपका जन्म कोरंटपुर नगर के प्राग्वटवंशीय शाह लाला की सुशीलभूषिता धर्म प्रिय भार्या ललितादेवी की कुक्ष से हुआ। शाह लाला पहिले से ही खूब धनाढ्य था पर जब ललितादेवी गर्भवती हुई तो शाह लाला के घर में चारों ओर से लक्ष्मी का इतना आगमन हुआ कि लाला एक कुबेरलाल ही बन गया और केवल याचक ही नहीं पर जनता भी उसको 'कुबेरलाला' कहने लग गई।

ललितादेवी को गर्भ के प्रभाव से अच्छे २ दोहले उत्पन्न होने लगे। उन दोहलों में परमेश्वर की पूजा गुरु महाराज की सेवा, साधर्मियों के साथ वात्सल्यता दीन दुखियों का उद्धार और अमरी पड़हा वगैरह इत्यादि अनेक प्रकार के मनोरथ होते थे जिन दोहलों को साह लाला ने बड़े ही आनन्द के साथ पूर्ण किये और इन शुभ कार्य्यों में लाखों रुपये खर्च भी किये।

एक समय माता ललितादेवी को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं अपनी सखियों के साथ संघ सहित छरी पालती हुई तीर्थ श्री शत्रुंजय जाऊं और वहाँ भगवान आदीश्वर की पूजा कर अष्टान्हि का महोत्सव एवं पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि करूं। जब ललितादेवी ने अपने दोहले की बात पतिदेव को कही तो शाह लाला बड़े भारी बिचार में पड़ गया कि एक तो शत्रुंजय दूर बहुत दूसरे ललितादेवी को गर्भ का आठवाँ मास चल रहा है। इस हालत में यह दोहला कैसे पूर्ण हो सके। शाह लाला ने बहुत अक्ल दौड़ाई पर इसका उपाय कुछ भी उसकी दृष्टि में नहीं आया। शाह लाला अपने मित्र श्रेष्ठि यशोदेव के पास आया और अपने मनोगत भाव कह सुनाये। मंत्री यशोदेव ने भी खूब सोचा पर इस बात का तो कोई रास्ता उनको भी नहीं मिला। अतः वे दोनों चल कर गुरुवर्य्य के पास आये और सब हाल सुनाया। इस पर गुरु महाराज ने सोचा कि गर्भ का जीव पुन्यवान हैं धर्म भावना से अनुमान किया जा सकता है कि यह गर्भ का जीव शासन का कार्य करने वाला होगा अतः उन लोगों से कहा कि तुम नगर के बाहर श्रीशत्रुंजय तीर्थ की रचना करवा कर ललितादेवी के मनोरथ पूर्ण करो। यह बात दोनों मित्रों के दिल में जँच गई और उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ की हूबहू रचना करवाना निश्चय करके अच्छे समझदार कारीगरों को बुलवाया और सब हाल कह कर समझाया और उन्होंने नगर के बाहर धवलगिरि पहाड़ को पसंद किया एवं तत्काल ही शुभ

मंडोवरा६० तौतला६१ आगीवाल६२ आगसौड़६३ ॥ प्रताणी६४ नाहूदर६५ नवल६६ पचौडा६७ ॥ तापडिया६८ मिणीयार६९ धून७० धूपड़७१ मोदाणी७२ ॥ साहा दरक शिवकरण वहुतर वखाति ॥

इस प्रकार महेश्वरी जाति की उत्पत्ति तथा उनकी ७२ जातियों की उत्पत्ति लिखी है तथा इनकी शाखा प्रतिशाखा रूप ८०० जातियों के नाम भी प्रस्तुत ग्रन्थ में लिखा है। इस जाति की उत्पत्ति का समय स्पष्ट रूपसे तो नहीं लिखा हैं पर लेखक के भावों से राजाविक्रम के आस पास के समय का अनुमान किया जा सकता है पर इस समय के लिये विश्वासनीय प्रमाण नहीं दिया है तथापि महाशय दरक जी का परिश्रम प्रस्तुत कहा जा सकता है कि आपने बड़े ही परिश्रम एवं शोध खोज से इस ग्रन्थ को तैयार किया हैं यदि ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ अधिक शोध खोज की जाती तो ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ जाता।

महाशय दरकजी को वही भटों एवं जागों से जितनी सामग्री प्राप्त हुई वह संग्रह कर के पुस्तक के रूप में छपा दी हैं पर इसमें त्रुटियें बहुत रही है जैसे कि—

१—महेश्वरी जाति का उत्पत्ति स्थान खंडेला नगर बतलाया है यह विचारणीय है क्योंकि खंडेला नगर और महेश्वरी जाति का कोई सम्बन्ध नहीं है खंडेला नगर से खंडेलवाल जाति की उत्पत्ति हुई है जिसको हम ऊपर लिख आये हैं तब महेश्वरीजाति की उत्पत्तिमहेष्मति नगरी जो आवंती प्रान्त में है जिसका अपर नाम महेश्वरी नगरी भी था वहां से महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई है दूसरा इस जाति का उत्पत्ति समय विक्रम संवत के आस पास लिखना भी गलत है कारण महेश्वरी जाति की उत्पत्ति आद्यशंकराचार्य के समय में हुई है इसके पूर्व कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है जैन पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी के अन्त और नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महेश्वरी नगरी के राजा प्रजा एवं राजकुमारादि को आचार्य श्री कक्कसूरिजी ने प्रतिबोध देकर जैनधर्म की दीक्षा दी थी बाद में वहां शंकराचार्य का आना हुआ और उन लोगों को भौतिक चमत्कार दिखाकर पुनः अपने धर्म में दीक्षित कर लिये थे जब इस बात का पता आचार्य कक्कसूरि को मिला तो वे भी पुनः महेश्वरी नगरी में पधार कर राजकुंवार तथा बहुत से लोगों को पुन जैन बना लिये थे इस समय के बाद भी महेश्वरियों के अन्दर से मालु डागा सोनी लुनियों वगैरह जातियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किये थे। कई महेश्वरी भाई यह भी कह उठते हैं कि चोपड़ा नौलखादि ओसवालों को महेश्वरी बना लिये थे जिन्हों की जाति मंत्री कहलाई। पर यह बात बिल्कुल कल्पित है कारण राजपूतों से जैनाचार्यों ने चोपड़ा नोलखा बनाये थे जिसके पूर्व भी महेश्वरियों में मन्त्री जाति का होना पाया जाता है जैन पट्टावलियादि किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि कोई एक भी ओसवाल जैनधर्म को छोड़ कर महेश्वरी बन गया हो दूसरे ओसवालों का आसन ऊँचा था कि उसको छोड़कर महेश्वरी बन जाना यह बिल्कुल असंभव बात है तीसरे ओसवालों के बजाय महेश्वरी जाति में ऐसी कोई विशेषता भी नहीं थी। हां, कई ओसवाल राज प्रसंग से शिव विष्णु धर्म पालने लग गये थे पर वे भी अपनी ओसवाल जाति का गौरव तो वैसा ही रखते हैं कि जैसे जैन ओसवाल रखते हैं तथा शिव विष्णु धर्म पालने वाले ओसवालों का जैन ओसवालों के साथ तथा जैनमन्दिरों के साथ सम्बन्ध भी वही रहा जो शुरू से था वे धर्मान्तर होने पर भी अपना बेटी व्यवहार ओसवालों के साथ करते थे न कि महेश्वरियों के साथ। उनके घरों में जन्म विवाह और मरण सम्बन्धी क्रियाएं जैन धर्मानुसार जैन मन्दिरों में जाकर ही करते हैं तात्पर्य यह है कि वे राजा के दीवान

साधन सामग्री विद्यमान थे। जैसा लाला था वैसे ही ललिता थी और त्रिभुवन तो इन दोनों से भी कुछ और भी विशेषता रखता था। कहा भी है कि—'पूर्वकर्मानुसारेण जायते हमिनां हि धी:'

एक समय शाह लाला अर्द्ध निद्रा में क्या देखता है कि आप संग्राम में गये और आपने अपनी वीरता से सोलह सुभटों के सिवाय सब को पराजित कर दिया बाद आप स्वयं यकायक हताश हो भूमि पर गिर पड़े इत्यादि। जब आप जागृत हुये तो आश्चर्य हुआ कि आज मुझे यह क्या स्वप्न आया। यदि कोई इस विषय के ज्ञाता हों तो पूछ कर निर्णय करूं।

भाग्योदय आचार्य यक्षदेवसूरि भू भ्रमण करते हुये कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे यह समाचार मिलते ही शाह लालादि श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुन्दर सत्कार कर नगर प्रवेश करवाया। सूरिजी ने भगवान महावीर की यात्रा कर मंगलाचरण के पश्चात् सारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्जन हुई।

मंत्री लाला समय पाकर सूरिजी के पास गया और वन्दन कर अपने स्वप्न के लिये पूछा। इस पर सूरिजी ने कहा भक्त अब तेरी उम्र केवल सोलह वर्षों की रही है अतः तुम्हें आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये। भक्त लाला ने कहा पूज्यवर! आत्मकल्याण तो आप जैसे महात्मा ही कर सकते हैं मेरे सिर पर तो अनेक कार्यों की जुम्मेवारी है जैसे एक तरफ कुटुम्ब का पालन पोषण दूसरी ओर राजकार्य तीसरे त्रिभुवन अभी बालक है। इसकी शादी भी करनी है। मुझे घंटा भर की भी फुरसत नहीं मिलती है फिर मैं कैसे आत्मकल्याण कर सकूं ? हाँ मेरी इच्छा इस ओर सदैव बनी रहती है शासन का कार्य पर मेरी रूची है द्रव्य खर्च करने में मैं आगा पीछा नहीं देखता हूँ पर निर्वृत्ति के लिये मुझे समय नहीं मिलता है इत्यादि। सूरिजी ने कहा लाला! शासन के हित द्रव्य व्यय करना भविष्य में कल्याणकारी अवश्य है पर यह प्रवृति मार्ग है इसके साथ निर्वृति मार्ग का भी आराधन करना चाहिये। क्योंकि शुभ प्रवृति से शुभ कर्मों का सचय होता है और उनको भी भोगना पड़ता है तब निर्वृति से कर्मों की निर्ज्जरा होती है लाला! संसार तो एक प्रकार की मोह जाल है न तो साथ में कुटुम्ब चल सकेगा न राज काज ही चल सकेगा और न पुत्र ही साथ चलने वाला है। भला सोचिये आज शरीर में व्याधि या मृत्यु आ जाय तो पूर्वोक्त कार्य कौन करेगा ? बस तुम यही समझ लो कि आज मैं मर गया हूँ फिर तो तुम्हारे पीछे कोई भी काम नहीं रहेगा। सूरिजी का कहना लाला की समझ में आ गया कि बात सच्ची है। आज मैं मर जाऊं तो मेरे पीछे काम कौन करेगा ? अतः पीछे काम की फिक्र करना व्यर्थ है। परन्तु मेरा एक पुत्र है इसकी शादी तो अपने हाथ से कर दूँ। इस विचार से सूरिजी से अर्ज की पर इसके लिए सूरिजी क्या कह सकते थे। सूरिजी का फर्ज तो उपदेश देने का था वह दे दिया।

शाह लाला सकुटुम्ब सूरिजी का हमेशा व्याख्यान सुना करता था। आपका पुत्र त्रिभुवनपाल तो विशेष सूरिजी की सेवा में ही रहता था। एक दिन सूरिजी का व्याख्यान ब्रह्मचर्य्य के महत्व के विषय में हो रहा था। आपने फरमाया कि सब व्रतों में ब्रह्मचर्य्य राजा है। इतना ही क्यों पर शरीर में जितने धातु पदार्थ हैं उनमें भी वीर्य ही राजा है। जिस जीव ने आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत का अखंड रूप से पालन किया है। उनकी जबान सिद्ध हो जाती है। यंत्र मंत्र रसायन वगैरह ब्रह्मचर्य्य से ही सिद्ध होता है। हाड़ में ताकत, हृदय में हिम्मत, मगज में बुद्धि खून का विकाश वीर्य से ही होता है। अतः मनुष्य मात्र का धर्म है कि वे सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करें।

गुडानगर में एक आर्यगोत्री लुनाशाह नाम का ओसवाल रहता था उसी नगर में एक महेश्वरी था और उसके एकपुत्री थी पूर्वभव के संस्कारों की प्रेरणा से लुनाशाह ने उस महेश्वरी कन्याके साथ विवाह कर लिया इस पर ओसवाल जाति ने लुनाशाह के साथ अपना व्यवहार तोड़ दिया वादएक सारंगशाह ओसवाल संघ लेकर तीर्थ यात्रा को जाता हुआ गुडानगर में विश्राम लिया लुनाशाह ने गुडानगर के बाहार एक वापि (वावड़ी) वन्धाई थी जिसमें उसने लाखों रुपये लगाये थे। संघपति को पुच्छ वाच्छ करने से मालुम हुआ कि जनोपयोगी कार्य करने वाला लुनाशाह नामका एक श्रेष्टिवर्य्य यहाँ वसता है संघपति ने लुनाशाह को वुलाकर मिला लुनाशाह ने संघ को भोजन की प्रार्थना की और संघपति ने मंजुर कर ली पर जब संघपति भोजन करने को वेठा तो लुनाशाह को साथ भोजन करने को कहा। इस पर लुनाशाह ने कहा मैं आप के साथ भोजन नहीं कर सकता हूँ कारण मैंने महेश्वरी की कन्याके साथ शादी की है अतः न्यात वालों ने मेरा व्यवहार वन्ध कर रखा है। संघपति ने सोचा की वड़ी जूलम की वात है कि एक सदाचारी सामान व्यवहार वाले महेश्वरी की कन्या के साथ सादी करने से क्या अनर्थ हो गया? संघपति ने जाति वालों को वुला कर बड़ा ही उपालम्ब दिया और अपनी पुत्री लुनाशाह को परणा कर उनका सब व्यवहार शामिल करवा दिया। इस उदाहरण से पाठक समझ सकते हैं कि ओसवाल और महेश्वरी जाति में कुछ भी भेद भाव नहीं है।

कई लोग कहते हैं कि महेश्वरियों की उत्पत्ति हलकी जातियों से हुई है पर इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है अतः जहाँ तक प्रमाण न मिले वहाँ तक ऐसी वातों को प्रमाणिक नहीं समझी जाती है। महेश्वरी जाति में भी वहुत से उदार चित्त वाले ऐसे लोग भी हुए हैं कि जिन्होंने देश समाज हित कई चोखे और अनोखे काम किये हैं व्यापार में जैसे अन्य जातियां हैं वैसे महेश्वरी जाति भी है इस जति का अयुभ्दय भी व्यापार से ही हुआ था—जैसे अन्योन्य जातियों का पतन हुआ वैसे महेश्वरी जाति भी अपने पतन से बच नहीं सकी है पहले की अपेक्षा इसकी संख्या भी वहुत कम रह गई है।

है। इत्यादि सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने वालों के यह नियम है और जो लोग स्वेच्छा व्रत पालने वाले होते हैं वे गृहस्था श्रम में रहते हुए भी आजीवन ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन कर सकते हैं जैसे विजयसेठ और विजयासेठानी हुए हैं तब कई लोग सदारा संतोष अर्थात् मर्यादा से ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करते हैं।

अब आप अपने प्रश्न का उत्तर भी सुन लीजिये कि जैसे 'अपुत्रस्यगतिर्नास्ति' ? यह किसी स्वपक्ष मनुष्य का कथन है परन्तु देखिये आप महात्मा मनु ने अपने धर्मशास्त्र मनुस्मृति में यह भी कहा है कि:—

अनेकानि सहस्राणी कुमारी ब्रह्मचारिणाम् । दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलमन्ततिम् ॥

इसमें स्पष्ट बतलाया है कि अनेकों ने कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य्य व्रत का सम्पूर्ण पालन कर स्वर्ग को प्राप्त किया है। इनके अलावा भी कई प्रमाण मिलते हैं जो ब्रह्मचर्य से मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मण देव ! दूसरे व्रत पालन करने सहज हैं पर यह दुस्कर व्रत पालन करना बड़ा भारी कठिन है ऊपर जो नव वाडे बतलाई हैं जिसमें स्त्री जाति का परिचय तक करना मना किया है और दूसरों के लिये तो क्या पर खुद माता एवं बहिन के साथ भी एकान्त में नहीं ठहरना चाहिये जैसे कहा है कि:—

मात्र स्वस्र दुहित्रा वा न विविक्ताऽऽसनोभवेत्। बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

महात्माओं ने तो यहां तक भी फरमाया है कि मैथुन केवल स्त्री पुरुष संयोग को ही नहीं कहते हैं पर मनसा विकार मात्र को भी मैथुन ही कहते हैं।

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेद् अष्टधा रक्षणं पृथक् । स्मरणं कीर्त्तिनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्ति रेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणाः ॥

ब्राह्मण देव ने कहा पूज्यवर ! आपका कहना सत्य है पर किसी २ शास्त्र में तो यहां तक भी लिखा है कि तपके तपने वाले सन्यासी महात्माओं ने कई राजाओं की रानियों को ऋतुदान दिया था। तब क्या परोपकार के लिये साधुओं को इस बात की छूट दी है।

सूरिजी ने फरमाया कि यह किसी व्यभिचारी ने अपने ऐब छिपाने के लिये परोपकार की ओट में कुकर्म किया होगा। देखिये शास्त्र तो स्पष्ट कह रहा है कि:—

यस्तु प्रव्राजितो भूत्वा पुनः सेवेत मेथुनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमि ॥

इत्यादि सूरिजी ने ब्रह्मचर्य्य का इस कदर महत्त्व बतलाया कि उसका भूदेव पर इतना प्रभाव हुआ कि उसी ने भरी सभा के बीच खड़ा होकर प्रतिज्ञा पूर्वक ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर लिया।

उस सभा में शाह लाला का पुत्र त्रिभुवनपाल भी बैठा था उसने भी इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व को सुना जिसकी उम्र करीब १६ वर्ष की थी पर पूर्व जन्म का क्षयोपशम इस प्रकार का था कि उसने अपने दिल में निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करूंगा। त्रिभुवन ने अपने मन में तो दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली पर लज्जा के मारे उस सभा में बोल नहीं सका। जब सभा विसर्जन हुई तो त्रिभुवन ने अपने मनकी बात सूरिजी से कह सुनाई। सूरिजी ने कहा, त्रिभुवन ! तेरा विचार तो उत्तम है पर कुटुम्ब वाले तुमको सुख से रहने नहीं देंगे वह तेरी शादी की बातें कर रहे हैं। त्रिभुवन ने कहा पूज्यवर ! जब मैं दृढ़ता पूर्व प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तो मुझे डिगाने वाला है कौन ? सूरिजी ने कहा, बहुत अच्छी बात है यह व्रत तेरे कल्याण का कारण है। त्रिभुवन सूरिजी को वंदन कर अपने मकान पर चला गया!

दिन में कार्य प्रारम्भ कर दिया। जहाँ द्रव्य खर्चने में उदारता हो वहाँ कार्य्य बनने में क्या देर लगती है। बस, थोड़े ही समय में एक शत्रुंजय तीर्थ तैयार हो गया।

इधर शाह लाला ने अपने नगर में तथा बाहर के ग्राम नगरों में आमंत्रण दे दिया तथा यह एक नया कार्य्य होने से श्रीसंघ में बहुत उत्साह फैल गया। चारों ओर से श्रीसंघ खूब गहरी तादाद में आने लगा जिसका स्वागत शाह ने अच्छी तरह से किया।

शुभ दिन अष्टान्हि का महोत्सव प्रारम्भ हुआ। माता ललितादेवी ने अपनी सखियों के साथ पैदल चल कर धवल पर्वत पर जाकर भगवान् आदीश्वर के दर्शन पूजन किया और ज्यों-ज्यों साधर्मी भाइयों को देखा त्यों-त्यों उसके दिल एवं गर्भ के जीव को बड़ा भारी आनन्द हुआ। श्री संघ ने आठ दिन बड़ी ही धामधूम पूर्वक अठाई महोत्सव मनाया। शाह लाला ने आठ दिन स्वामी वात्सल्य पूजा प्रभावना की। संघ को पहरामनी देकर विसर्जन किया। इस महोत्सव में शाह लाला ने तीन लक्ष्य द्रव्य व्यय कर सम्यक्त्व गुण को बढ़ाया। यह सब गर्भ में आये हुये पुन्यशाली जीव की पुन्यवानी का ही प्रभाव था।

इसी प्रकार एक बार माता सुबह प्रतिक्रमण कर रही थी तो उसमें 'तियलोए चइय वन्दे' सूत्र आया तो आपकी भावना हुई कि मैं तीनों लोकों के चैत्यों को वन्दन करूं। यह बात शाह लाला को सुनाई तो उसने बड़ी खुशी के साथ तीन लोक की रचना करवा कर ललितादेवी का मनोरथ पूर्ण किया। इस प्रकार शुभ दोहला और मनोरथों को सफल बनाती हुई माता ने शुभ रात्रि में पुत्र को जन्म दिया। यह शुभ समाचार सुनते ही शाहलाला के घर में ही नहीं पर नगर भर में हर्षनाद होने लग गया। सज्जनों को सन्मान, याचकों को दान और जिनमन्दिरों में अष्टान्हिक महोत्सवादि करवाकेशाह लाला ने खूब हर्ष मनाया। क्रमशः नवजात पुत्र का नाम 'त्रिभुवनपाल' रक्खा। वास्तव में त्रिभुवनपाल त्रिभुवनपाल ही था। इनकी बालक्रीडा होनहार की भांति अनुकरणीय थी। माता पिता ने त्रिभुवन के पालन पोषण और शरीर स्वास्थ्य के लिये अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। माता पिता धर्मज्ञ होते हैं तब उनके बालबच्चों के धार्मिक संस्कार स्वभाविक सुदृढ़ बन जाते हैं। त्रिभुवन की उम्र ८ वर्ष की हुई तो विद्याध्यन के लिये पाठशाला में प्रविष्ट हुये। पूर्व जन्म की ज्ञानाराधना के कारण आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि आप स्वल्प समय में व्यवहारिक राजनैतिक एवं धार्मिक ज्ञान सम्पादन करने में आशातीत सफलता प्राप्त करली। इधर शाह लाला की कार्य्य कुशलता एवं बुद्धिमत्तादि गुणों से मुग्ध बन वहां के राजाभीम ने दीवान पद से भूपित कर दिया। क्यों न हो जिनके घर में पुन्यशाली पुत्र अवतीर्ण हुआ फिर कमी ही किस बात की थी। शाहलाला इतना उदार दिल वाला था कि अपने स्वधर्मी तो क्या पर नगर एवं देशवासी किसी भाई का भी दुःख उससे देखा नहीं जाता था। किसी भी प्रकार की सहायता से वे उनको सुखी बनाने की कोशिश किया करते थे। शाह लाला ने अपने धर्मज्ञ जीवन में कई बार तीर्थों के संघ निकाल कर आप सकुटुम्ब तथा अन्य हजारों लाखों भाइयों को तीर्थ यात्रा करवा कर पुष्कल पुन्य संचय किया। शाह लाला ने जैनधर्म की उन्नति करने में भी कोई बात उठा नहीं रक्खी थी साधु साध्वियों का तो वह पूर्ण भक्त ही बना रहता था। ठीक है मनुष्य को सदैव सत्कार्य करते रहना चाहिये न जाने किस समय महात्मा का आशीर्वाद मिल जाता है पर शाह लाला जो करता वह केवल परमार्थ की बुद्धि से ही करता था। कारण, उसके पास सब

विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर लिया। बस फिर तो था ही क्या, आज शिवनगर के संघ में हर्ष का पार नहीं था।

सूरि जी के विराजने से केवल शिवनगर की जनता में ही नहीं पर सिन्ध प्रान्त में धर्म का प्रभाव इतना फैला गया कि लोग आत्मकल्याण की भावना से एवं सूरिजी की सेवा तथा व्याख्यान सुनने की गरज से बहुत ग्राम नगरों के लोग तो वहाँ आ आकर अपनी छावनीयें तक भी डाल दी अहा-हा उस जमाना में जनता की भावना आत्मकल्याण की ओर कहाँ तक बढ़ी हुई थी वे लोग संसार में रहते हुए भी किस प्रकार अपना कल्याण करना चाहिते थे सिन्ध प्रदेश में मुख्यतया उपकेशगच्छाचार्यों का ही प्रभुत्व था जिसमें यक्षदेव सूरि का नाम तो और भी मशहूर था कारण इस प्रान्त में सब से पहला यक्षदेवसूरि ने ही धर्म की नीव डाली थी और सूरीश्वरजी के चतुर्मास विराजने से धर्म का बहुत लाभ हुआ। कई ४८ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। एक समय राव गोंदा ने सूरिजी से अर्ज की कि प्रभो! आपकी वृद्धावश होती चली जा रही है अतः किसी योग्य मुनि को सूरि मंत्र देकर अपने पट्ट पर स्थापन कर दीजिये और यह शुभ कार्य्य यहीं पर हो कि इसका महोत्सव कर हम लोग कृतार्थ बनें। सूरिजी ने कहा ठीक पूर्व जमाने में आचार्य यक्षदेव सूरि ने इसी नगर में राजकुँवार कक्क को दीक्षा देकर सूरि पद पर स्थापन किया था। यदि आपकी ऐसी ही भावना है तो मैं भी विचार करूँगा।

रावजी एवं सकल श्रीसंघ को विश्वास हो गया कि हमारा मनोरथ अवश्य सफल होगा। इधर सूरिजी ने देवी सच्चायका की सम्मति लेकर अपना निश्चय श्रीसंघ के सामने प्रगट कर दिया। बस, फिर तो देरी ही क्या थी। चतुर्मास समाप्त होते ही जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सवादि प्रारम्भ कर दिया। दीक्षा के उम्मेदवारों में भी वृद्धि हो गई। ठीक शुभ मुहूर्त्त में ६५ नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा और मुनि देवभद्र को सूरि पद देकर उनका नाम कक्कसूरि रख दिया और भी कई योग्य मुनियों को पदवियाँ प्रदान कर जैन धर्म का झण्डा फहरा दिया। राव गेंदा ने नूतन सूरिजी की अध्यक्षत्व में पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय का एक विराट संघ निकाला जिसमें रावजी ने नौलक्ष रुपये व्यय कर शासन की प्रभावना की संघ यात्रा कर वापिस आया और सूरिजी सिन्ध भूमि में विहार करने के बाद आप कुँनाल की ओर पधारे। वहाँ भी आपके आज्ञावृत्ति बहुत से साधु साध्वियों विहार करते थे। उन्होंने सूरिजी के दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाया। सूरिजी महाराज घूमते घूमते लोहाकोट में पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। वहाँ पर आप कई अर्सा तक स्थिरता कर जनता को धर्मोपदेश दिया फलस्वरूप ग्यारा भावुकों को दीक्षा दी तथा श्रेष्टि धनदेव के बनाया हुआ भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई तत्पश्चात् विहार कर कई ग्राम नगरों में धर्मोपदेश एवं धर्म प्रचार करते हुए सूरिजी महाराज तक्षीला की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार तक्षीला के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा उन्होंने प्रभावशाली महोत्सव कर सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया क्यों न हो उस समय का तक्षिला नगर एक जैनों का केन्द्र था करीबन ५०० सौ वहाँ जैन मन्दिर थे इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस समय तक्षिला में जैनों की घनी वस्ती और खूब आबादी थी। सूरिजी महाराज अन्तिम सलेखना कर रहे थे अतः व्याख्यान आचार्य कक्कसूरिजी बाच रहे थे आपका व्याख्यान हमेशों त्याग वैराग्य तथा तात्विक दार्शनिक एवं अध्यात्मीक विषय पर होता था जो श्रोताजन को अपूर्व आनन्द आता था वहाँ भी सूरिजी

इस पर एक ब्राह्मण ने सवाल किया कि गुरु महाराज ! आपका कहना तो सत्य है कि ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना चाहिये पर शास्त्रों में ऐसा भी तो कहा है:—

"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च"

अर्थात् जहां तक पुत्रोत्पत्ति न हो वहां तक उसकी स्वर्ग में गति नहीं होवी है । अतः गति की इच्छा वाले को शादी कर पुत्रोत्पत्ति अवश्य करनी चाहिये फिर बाद में वह ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन कर सकता है ।

सूरिजी ने कहा भूर्षि ! ब्रह्मचर्य्य व्रत दो प्रकार से पालन कर सकते हैं एक साधु धर्म से दूसरा गृहस्थ धर्म से । इसमें साधु धर्म में तो सर्वथा नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये जैसे

१—जिस स्थान में स्त्री नपुंसक पशु आदि रहते हों वहाँ ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिये । साक्षात् स्त्री तो क्या पर स्त्री का चित्र हो वहां भी नहीं ठहरे । कारण यह बातें ब्रह्मचर्य्य व्रत में बाधा डालने वाली हैं । जैसे जिस मकान में मंजीरी रहती हो वहां मूषक ठहरेगा तो कभी उसका विनाश ही होगा ।

२—ब्रह्मचारी को हास्यरस शृंगाररस कामरसादि विकार उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करनी चाहिये । जैसे नींबू का नाम लेने पर मुंह में पानी छूट ही जाता है ।

३—जहां स्त्री बैठी हो वहां दो घड़ी तक पुरुष को नहीं बैठना चाहिये । कारण, उस स्थान के परमाणु ऐसे विकारी हो जाते हैं कि ब्रह्मचर्य्य का भंग कर डालते हैं । जैसे जिस जमीन पर आग लगाई है वहां से आग को हटा कर तत्काल ही ठसा हुआ घृत रखदें तो वह बिना पिघले नहीं रहेगा

४—स्त्रियों के अंगोपांग एवं मुँह स्तन नयन नासिकादि इन्द्रियों को सराग से नहीं देखता जैसे आँखों का ओपरेशन कराया हुआ सूर्य्य की ओर देखेगा तो उसको बड़ा भारी नुकसान होगा ।

५—जहां भीत, टाटी, कनात के अन्तर में स्त्री पुरुषों के विषय वचन हो रहा है उसको सुनने की भी मनाई है । जैसे आकाश में घन गर्जना होने से मयूर बोलने लग जाते हैं ।

६—पूर्व सेवन किये हुये काम विकार को कभी याद नहीं करना । कारण, जैसे एक बुढ़िया के यहां दो युवक मुसाफिर ठहरे थे । जब वे मुसाफर चलने लगे तो बुढ़िया ने अंधेरे में ही छाछ बिलो कर उनको दे दी । वह छाछ पीकर वे दिसावर को रवाना हो गये । बाद कुछ वर्षों के वे फिर लौट कर आये और उसी बुढ़िया के यहाँ ठहरे । बुढ़िया ने उनको पहचान कर कहा 'अरे बेटा क्या तुम जीते आये हो' । युवकों ने पूछा क्यों ? बुढिया ने कहा उस दिन अंधेरे में असावधानी से दही के साथ सांप बिलोया गया था और वह विषमिश्रित छाछ तुमको दी थी एवं पिलाइ थी । यह बात सुनते ही उन दोनों के प्राण पखेरू उड़ गये । इसी प्रकार पिछले भोग विलास को याद करते ही मनुष्य विषय विकार व्याप्त हो जाता है ।

७—ब्रह्मचारी को हमेशा सरस आहार जो बल वीर्य विकार की वृद्धि करने वाला हो, नहीं करना चाहिये । यदि करेगा तो उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख पूर्वक नहीं पल सकेगा । जैसे सन्निपात के रोग वाले को दूध शक्कर पिला देने से उलटो रोग की वृद्धि होगी ।

८—रूक्ष भोजन भी प्रमाण से अधिक न करे । करेगा तो जैसे सेर की हांडी में सवा सेर चना पकाने में हांडी फट जाती है, वही हाल ब्रह्मचार्य व्रत का होगा ।

९—ब्रह्मचारी को शौक मोज के लिये नहाना धोना शृंगार शोभा करना वगैरह को शख्त मनाई हैं । क्योंकि दारू की दुकान में अग्नि की सतावाला सामान रखने से कभी न कभी दुकान में आग लग ही जाती

की व्याख्यान शैली इस कदर की थी कि बहुत से विधर्मी लोग भी जैनधर्म के परमोपासक बन गये। इतना ही क्यों पर कई लोग संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार हो गये! कई भक्त लोगों ने स्वपर कल्याणार्थ जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया था और इन मन्दिरों के लिये कई १००० नयी मूर्त्तियें बनाई थीं। मथुरा के श्रीसंघ के लिये यह समय बड़ा ही सौभग्य का था कि एक ओर तो थी भगवतीसूत्र की समाप्ती का महोत्सव दूसरी ओर कई ६० नर नारियों की दीक्षा के लिये तैयारी, तीसरे सहस्रमूर्त्तियों की अंजनसिलाका, चतुर्थ नूतन बने हुये मन्दिरों की प्रतिष्ठा फिर तो कहना ही क्या था, मथुरा मथुरा ही बन गई थी। इस सुअवसर पर अनेक नगरों के श्रीसंघ को आमंत्रण पूर्वक बुलवाया गया था। आस पास में विहार करने वाले साधु साध्वियां भी गहरी तादाद में आ आकर मथुरा को पावन बना रहे थे। इन शुभ कार्य्यों का शुभ मुहूर्त्त माघ शुक्ल पंचमी का निश्चय हुआ था और पूर्वोक्त कार्य्यों के अतिरिक्त सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। ठीक समय पर पूर्वोक्त सब कार्य्य पूज्य पाद आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज के शुभ कर कमलों से सम्पदित हुआ।

१—श्रीमद्भगवती सूत्र की समाप्ति का महोत्सव
२—साठ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा
३—एक हजार मूर्त्तियों की अंजनसिलाका
४—नूतन बने हुये पाँच मन्दिरों की प्रतिष्ठायें
५—विशालमूर्त्ति आदि पांच मुनियों को उपाध्याय पद
६—सोमतिलक आदि सात साधुओं को पण्डित पद
७—धर्मशेखरादि सात साधुओं को वचनाचार्य पद।
८—कुमार श्रमणादि ग्यारह साधुओं को गणिपद।

इनके अलावा कई दश हजार अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किये इत्यादि सूरिजी के पधारने एवं विराजने से जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं उन्नति हुई।

दुष्कालादि के बुरे असर से जैन जनता रूपी बगीचा कुम्हला रहा था जिसको उपदेशरूपी जल से सिंचन कर जैनाचार्य्यों ने पुनः हरा भरा गुलजार यानी गुलचमन बना दिया।

सूरि के पास ज्यों ज्यों साधु संख्या बढ़ती गई त्यों त्यों योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य क्षेत्रों में धर्मप्रचार निमित्त भेजते गये। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ज्यों २ साधुओं का विहार क्षेत्र विस्तृत होता जायगा त्यों २ धर्म का प्रचार अधिक से अधिक बढ़ता जायगा।

पांच छ. शताब्दियों में तो महाजन संघ एव उपकेशवंश लोग आस पास के प्रान्तों में वटवृक्ष की तरह खूब फैल गये थे। दूसरे जिन २ प्रान्तों में आचार्य्यों का विहार होता वहां नये जैन बना कर उन्हें महाजन संघ में शामिल कर उनकी वृद्धि कर दी जाती थी और उपकेशगच्छाचार्य जैनधर्म-महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की उन्नति करना अपनी जुम्मेदारी एवं कर्त्तव्य ही समझते थे।

आचार्य कक्कसूरिजी मथुरा से विहार कर धर्मप्रचार करते हुये मरुधर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार सुन मरुधर वासियों के ग्राम नगर एवं लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा क्यों कि गुरु महाराज का चिरकाल से पधारना इसके अलावा श्री संघ के लिये क्या हर्ष हो सकता है।

इधर तो शाह लाला आत्म कल्याण की धुन में निर्वृति का उपाय सोच रहा था कि त्रिभुवन की शादी कर आत्म कल्याण करूं उधर त्रिभुवनपाल ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की प्रतिज्ञा पर डटा हुआ था।

शाह लाला और ललितादेवी आपस में बातें कर रहे थे कि त्रिभुवन की शादी जल्दी से करके अपने को आत्म कल्याण करने में लग जाना चाहिये। त्रिभुवनपाल बीच में ही बोल उठा कि क्यों पिताजी! आप तो अपना कल्याण करने को तैयार हुए हो और यह संसार रूपी वरमाला मेरे गले में डालना चाहते हो? यदि आप मुझे अपना प्यारा पुत्र समझते हो तब तो आत्म कल्याण में मुझे भी शामिल रखिये कि मेरे पर आपका डबल उपकार हो जाय। मैं इस बात को सच्चे दिल से चाहता हूँ।

शाह लाल ने कहा पुत्र! अपने घर में इतना धन है तुम शादी कर इसको सत्कार्य में लगा कर पुन्योपार्जन करो। पिताजी! जब आप इस धन को असार समझ कर अर्थात् इनका त्याग कर अपने कल्याण की भावना रखते हो तो यह द्रव्य मेरा कल्याण कैसे कर सकेगा? हाँ, मैं इस द्रव्य में फंस जाऊँ तो इससे मेरा अकल्याण जरूर होगा। आप तो मुझे साथ लेकर सबका कल्याण कीजिये इत्यादि बाप बेटों का आपस में बहुत कुछ संवाद हुआ। जिसको सुन कर ललितादेवी तो बड़ी भारी उदास हो गई। क्या मेरे घर का नाम निशान तक भी नहीं रहेगा?

आखिर इस बात का झगड़ा सूरिजी के पास आया और सूरिजी ने उन सबको इस क़दर समझाया कि वे सब के सब दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करने के लिये तैयार हो गये। अपने घर में जो अपार द्रव्य था उसको सात क्षेत्र में लगा दिया जिसको देख कर तथा शाह की सहायता से कोरंटपुर तथा आस पास के कई ५२ नरनारी सूरिजी महाराज के चरण कमलों में दीक्षा लेने को तैयार हो गये। फिर महोत्सव का तो कहना ही क्या था। उस प्रदेश में बड़ी भारी चहल-पहल मच गई। शुभ दिन में सूरिजी ने उन मोक्षाभिलाषियों को भगवती जैन दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिए। त्रिभुवनपाल का नाम मुनि देवभद्र रख दिया। इस महान कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही उन्नति हुई।।

मुनि देवभद्र पर सूरिजी की पहिले से ही पूर्ण कृपा थी। ज्ञानाध्ययन के लिये तो बृहस्पति भी आपकी स्पर्द्धा नहीं कर सकता था। आपके वदन पर ब्रह्मचर्य्य का तप तेज अजब ही झलक रहा था। तर्क वितर्क और वाद विवाद में अपकी युक्तियें इतनी प्रबल थीं कि वादी लोग आपका नाम सुनकर घबरा उठते थे एवं दूर-दूर भाग छूटते थे इत्यादि सूरिजी के शासन में आप एक योग्य साधु समझे जाते थे।

एक समय आचार्य यक्षदेव सूरि लाट सौराष्ट्र और कच्छ में घूमते घूमते सिन्ध की ओर पधारे। आप श्री का शुभागमन सुन सिन्ध भूमि में आनन्द एवं उत्साह का समुद्र ही उमड़ पड़ा। जहाँ आप पधारते वहाँ एक यात्रा का धाम ही बन जाता था। कई साधु साध्वियाँ एवं भक्त लोग आपके दर्शनार्थ आया करते थे और भक्त लोग अपने २ नगर की ओर पधारने की प्रार्थना करते थे।

सूरिजी अपने शिष्य मंडल के साथ शिवनगर पधारे वहाँ का राव गोंदा जैन धर्मोपासक ही नहीं पर जैन श्रमणों का परम भक्त था। उसने श्री संघ के साथ सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य और तात्त्विक विषय पर होता था। सूरिजी की वृद्धावस्था के कारण कभी कभी मुनि देवभद्र भी व्याख्यान दिया करता था। आपका व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि सुनने वालों को वैराग्य आये बिना नहीं रह सकता था। चतुर्मास का समय नजदीक आ गया था। श्री संघ ने

की व्याख्यान शैली इस कदर की थी कि बहुत से विधर्मी लोग भी जैनधर्म के परमोपासक बन गये। इतना ही क्यों पर कई लोग संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार हो गये! कई भक्त लोगों ने स्वपर कल्याणार्थ जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया था और उन मन्दिरों के लिये कई १००० नयी मूर्तियें बनाई थीं। मथुरा के श्रीसंघ के लिये यह समय बड़ा ही सौभग्य का था कि एक ओर तो श्री भगवतीसूत्र की समाप्ती का महोत्सव दूसरी ओर कई ६० नर नारियों की दीक्षा के लिये तैयारी, तीसरे सहस्रमूर्त्तियों की अंजनसिलाका, चतुर्थ नूतन बने हुये मन्दिरों की प्रतिष्ठा फिर तो कहना ही क्या था, मथुरा मथुरा ही बन गई थी। इस सुअवसर पर अनेक नगरों के श्रीसंघ को आमंत्रण पूर्वक बुलवाया गया था। आस पास में विहार करने वाले साधु साध्वियां भी गहरी तादाद में आ आकर मथुरा को पावन बना रहे थे। इन शुभ कार्यों का शुभ मुहूर्त्त माघ शुक्ल पंचमी का निश्चय हुआ था और पूर्वोक्त कार्यों के अतिरिक्त सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। ठीक समय पर पूर्वोक्त सब कार्य्य पूज्य पाद आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज के शुभ कर कमलों से सम्पदित हुआ।

१—श्रीमद्‌भगवती सूत्र की समाप्ति का महोत्सव
२—साठ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा
३—एक हजार मूर्त्तियों की अंजनसिलाका
४—नूतन बने हुये पाँच मन्दिरों की प्रतिष्ठायें
५—विशालमूर्ति आदि पांच मुनियों को उपाध्याय पद
६—सोमतिलक आदि सात साधुओं को पण्डित पद
७—धर्मशेखरादि सात साधुओं को वचनाचार्य पद।
८—कुमार श्रमणादि ग्यारह साधुओं को गणिपद।

इनके अलावा कई दश हजार अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किये इत्यादि सूरिजी के पधारने एवं विराजने से जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं उन्नति हुई।

दुष्कालादि के बुरे असर से जैन जनता रूपी बगीचा कुम्हला रहा था जिसको उपदेशरूपी जल से सिंचन कर जैनाचार्य्यों ने पुनः हरा भरा गुलजार यानी गुलचमन बना दिया।

सूरि के पास ज्यों ज्यों साधु संख्या बढ़ती गई त्यों त्यों योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य क्षेत्रों में धर्मप्रचार निमित्त भेजते गये। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ज्यों २ साधुओं का विहार क्षेत्र विस्तृत होता जायगा त्यों २ धर्म का प्रचार अधिक से अधिक बढ़ता जायगा।

पांच छ शताब्दियों में तो महाजन संघ एवं उपकेशवंश लोग आस पास के प्रान्तों में वटवृक्ष की तरह खूब फैल गये थे। दूसरे जिन २ प्रान्तों में आचार्य्यों का विहार होता वहां नये जैन बना कर उन्हें महाजन संघ में शामिल कर उनकी वृद्धि कर दी जाती थी और उपकेशगच्छाचार्य जैनधर्म-महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की उन्नति करना अपनी जुम्मेदारी एवं कर्त्तव्य ही समझते थे।

आचार्य कक्कसूरिजी मथुरा से विहार कर धर्मप्रचार करते हुये मरुधर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार सुन मरुधर वासियों के ग्राम नगर एवं लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा क्योंकि गुरु महाराज का चिरकाल से पधारना इसके अलावा श्री संघ के लिये क्या हर्ष हो सकता है।

के उपदेश से चार ब्राह्मण तीन क्षत्री और पाँच श्रावक एवं बारह भावुकों ने सूरिजी के वृद्ध हाथों से भगवती जैन दीक्षा को धारण की जिससे जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई इस प्रकार आचार्य श्री यक्षदेव सूरि ने जैन धर्म का उत्कृष को बढ़ाते हुए अपना आयुष्य को नजदीक जान कर अनशन व्रत धारण कर लिया और २७ दिन के अन्त में समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य कक्कसूरि मध्यान्ह के तरुण सूर्य्य की भांति अपनी ज्ञान किरणों का प्रकाश सर्वत्र डालते हुये और जनता का कल्याण करते हुये भूमि पर विहार करने लगे।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज अपने शिष्य मण्डल के साथ विहार करते हुये श्रीपुरनगर की ओर पधार रहे थे। यह खबर वहां के श्रीसंघ को मिली तो उन्होंने सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावशाली व्याख्यान हमेशा होता था एक दिन के व्याख्यान में तीर्थङ्करों के निर्वाण भूमिका अधिकार चलता था। सूरिजी ने श्री सम्मेतसिखर का वर्णन करते हुये फरमाया कि उस पवित्र भूमि पर बीस तीर्थङ्करों का निर्वाण हुआ है और इस तीर्थ की यात्रार्थ पूर्व जमाने में कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ के साथ यात्रा कर संघपति पदकों प्राप्त कर लाभ उठाया है इत्यादि। खूब विस्तार से वर्णन किया।

सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर खूब प्रभाव हुआ। उस सभा में श्रेष्ठिगोत्रिय मंत्री राजपाल भी था उसकी इच्छा संघ निकाल कर यात्रा करने की हुई। अतः सूरिजी एवं श्रीसंघ से प्रार्थना की और श्रीसंघ ने आदेश दे दिया। फिर तो था ही क्या, मंत्री राजपाल के सात पुत्र थे और उसके पास लक्ष्मी तो इतनी थी कि जिसकी संख्या लगाने में वृहस्पति भी असमर्थ था। अतः अनेक प्रान्तों में आमंत्रण भेजकर चतुर्विध संघ को बुलाया और लाखों नर नारियों के साथ सूरिजी की अध्यक्षता में संघपति राजपाल ने संघ लेकर पूर्व की यात्रा करते हुये तीर्थ श्रीसम्मेतशिखरजी पर आकर बीस तीर्थकरों के चरण कमलों को स्पर्श एवं सेवा पूजादि ध्वज महोत्सव कर अपने जीवन को सफल बनाया। तत्पश्चात् पूर्व प्रान्त के तमाम तीर्थों कीयात्रा करवाई बाद मुनियां के साथ संघ लौटकर अपने स्थान को आया और सूरिजी कई अर्सा तक पूर्व की ओर विहार किया तदनन्तर आपश्री कलिंग देशकी ओर पधारे और शत्रुंजय गिरनार अवतार रूप खण्डगिरि और उदयगिरी के मन्दिरों के दर्शन किये, वहां से विहार करते हुये मथुरा पधारे उस समय मथुरा जैनों का एक केन्द्र समझा जाता था। उपकेश वंशीय बड़े २ धनाढ्य लोग वहाँ रहते थे। उन्होंने सूरिजी का खूब स्वागत सत्कार किया और श्रीसंघ की आग्रह विनती से सूरीश्वरजी ने वह चतुर्मास मथुरा में करने का निश्चय कर लिया। जिससे जनता का उत्साह खूब बढ़ गया।

सूरिजी महाराज के परमभक्त आदित्यनाग गोत्रिय शाहपद्मा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! यहां के श्री संघ की इच्छा है कि आप श्री के मुखारविन्द से महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनें। अतः हमारी अर्ज को स्वीकार करावें जिससे हम लोगों को सूत्र की भक्ति एवं सूत्र सुनने का लाभ मिले।

सूरिजी ने उन ज्ञानपिपासुओं की प्रार्थना को स्वीकार करली। अतः शाह पद्मा ने सवा लक्ष मुद्रिका व्यय करके श्री भगवती सूत्र का बड़ा भारी महोत्सव किया और भगवान् गौतम स्वामी के एक एक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की। मथुरा नगरी के श्रीसंघ के लिये यह पहिला पहिल ही मौका था कि इस प्रकार सूरिजी के मुखार्विन्द से श्रीभगवतीसूत्र का श्रवण किया जाय। जनता में खूब उत्साह था। जैन संघ तो क्या पर श्री भगवती सूत्र को सुनने के लिये अनेक अन्य मतावलम्बी भी आया करते थे। सूरिजी

यह चन्द्र और सूर्य्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये है। सूरिवरों की वात्सल्यता का संघ पर अच्छा प्रभाव हुआ दोनों सूरिवरों ने धर्म देशना दी। तत्पश्चात् परिषदा जयध्वनी के साथ विसर्जन हुई।

श्रमणसंघ में इतना धर्मस्नेह एवं वात्सल्यता थी कि वे पृथक २ दो गच्छों के होने पर भी, एक ही गुरु के शिष्य हो इस प्रकार से व्यवहार रखते थे। आचार्य कक्कसूरिजी दीक्षा लेने के बाद कोरंटपुर पहली वार ही पधारे थे। श्रीसंघ की इच्छा थी कि आचार्यश्री का चतुर्मास यहां ही हो और साथ में आचार्य नन्नप्रभसूरि का चतुर्मास हो जाय तब तो सोना और सुगन्ध सा काम बनजाय। अतः एक दिन श्रीसंघ ने एकत्र हो दोनों सूरिवरों से चतुर्मास की विनती की जिसको लाभालाभ का कारण समझ कर दोनों सूरियों ने स्वीकार करली। बस फिर तो था ही क्या। कोरंटपुर के घर २ में आनन्द मंगल मनाया जाने लगा। पहले जमाना में चतुर्मास के लिये लम्बी चौड़ी विनतियें एवं मनुहारों की जरुरत नहीं थी साधु अपनी अनुकूलता देख लेता और साथ में लाभालाभ का अनुभव कर लेतें। बस चतुर्मास की स्वीकृती दे ही देते। कारण पहले जमाना में न तो साधुओं के किसी प्रकार का खर्चा रहता था कि किसी धनाढ्य की उनको आवश्यकता रहती थी और न वे आडम्बर की ही इच्छा रखते थे वे तो जनकल्याण और शासन की प्रभावना को ही लक्षमें रखते थे। तब ही तो वे जैनधर्म की उन्नति कर पाये थे।

आचार्य कक्कसूरिजी ने कुछ समय कोरंटपुर में स्थिरता की। बाद वहां से विहार कर भीन्नमाल, सत्यपुरी, शिवगढ़, पद्मावती, चन्द्रावती आदि क्षेत्रों में विहार करते हुये आबुदाचल की यात्रा की पुनः वहां से विहार करते हुए कोरंटपुर पधार गये और आचार्य नन्नसूरि के साथ चतुर्मास कोरंटपुर में कर दिया। आप युगल सूरीश्वरों के विराजने से धर्म की अच्छी जागृति और कई अपूर्व धर्म कार्य्य हुये।

यह बात तो हम पूर्व लिख आये हैं कि उपकेशगच्छाचार्य्यों के लिये यह तो एक नियम सा बनगया था कि सूरिपद प्राप्त होने के पश्चात् कम से कम एक वार तो सब प्रान्तों में विहार कर जनता को धर्मोपदेश देदिया करते थे तदनुसार आचार्य कक्कसूरिजी महाराज भी मरुधर से लाट, सौराष्ट्र कच्छ, सिंध, पांचालादि प्रान्तों में विहार कर आप मथुरा में पधारे थे। वहाँ हंसावली का शाह जसा अपने पुत्र राणा को साथ लेकर सूरिजी के दर्शन एवं हंसावली पधारने की विनती करने के लिये आये थे और सूरिजी ने उन भावुकों की प्रार्थना को स्वीकार कर विहार करते हुये क्रमशः हंसावली पधारे और वहां चतुर्मास कर शाह जसा के बाल कुमार राणा के सघपतित्व में विराट् संघ के साथ तीर्थों की यात्रा करते हुये सिद्धगिरी पधारे और वहाँ संघपति बालकुमार राणा आदि कई भावुकों को दीक्षा दी। तदान्तर सूरिजी ने विहार कर सोपार पट्टन पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढ़ाया बाद आस पास के प्रदेश में विहार कर पुनः मरुधर में पधारे। इस समय आपकी अवस्था वृद्ध होगई थी तथापि क्रमशः विहार करते हुए आप कोरंटपुर पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका खूब उत्साह पूर्वक स्वागत किया और प्रार्थना की पूज्यवर ! आपकी वृद्धावस्था है अब कृपा कर यहां स्थिरवास कर दीजिये ! सूरिजी ने कहा जहाँ तक विहार होसके साधुओं को विहार करना चाहिये परन्तु शरीर से लाचार हो जाय तब एक स्थान स्थिरवास करना ही पड़ता है जैसी क्षेत्रस्पर्शना होगा वही बनेगा—

एक समय आचार्य श्री कक्कसूरि अर्द्धनिद्रा में सो रहे थे कि देवी सचायका ने आकर वंदन किया। सूरिजी ने धर्मलाभ देकर पूछा देवीजी इस समय आपका शुभागमन कैसे हुआ है ? देवी ने कहा कि मैं

आचार्य श्री शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावती, मुग्धपुर, नागपुर, षटकूप नगर, हर्षपुर, मेदनीपुर आदि नगरों एवं छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुये उपकेशपुर पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा के पश्चात श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घर २ में आनन्द मंगल हो रहा है। चतुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे श्रीसंघ ने साग्रह विनती की जिसको स्वीकार कर सूरिजी ने चतुर्मास उपकेशपुर में करना निर्णय कर लिया। बस फिर तो था ही क्या नगर में सर्वत्र उत्साह फैलगया।

सुचंतिगोत्रीय शाह आम्र के महोत्सव पूर्वक व्याख्यान में महा प्रभाविक श्री भगवतीजीसूत्र वाचना शुरू कर दिया जिसको जैन जैनतर बड़ी ही श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक सुन कर लाभ उठा रहे थे। सूरिजी के व्याख्यान में दार्शनिक,तात्त्विक,आध्यात्मिक और ऐतिहासिक सब विषयों पर काफी विवेचन होता था जिसको श्रवणकर श्रोताजन मंत्र मुग्ध बन जाते थे। व्याख्यान किसी विषय पर क्यों न हो परन्तु आत्मकल्याण के लिये त्याग वैराग्य पर विशेष जोर दिया जाता था। संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कुटुम्ब की स्वार्थता, आयुष्य की अस्थिरता इत्यादि। सुकृत के शुभ फल और दुष्कृत के अशुभ फल भव भवान्तर में अवश्य भुगतने पड़ते हैं जिसको आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। अतः जन्म मरण के दुःखों से मुक्त होने का एक ही उपाय है और वह है जैनधर्म की आराधना। यदि इस प्रकार की अनुकूल सामग्री में धर्माराधन किया जाय तो फिर संसार में भ्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इत्यादि प्रति दिन उपदेश होता रहता था जिसका प्रभाव भी जनता पर खूब पड़ता था। कई लघुकर्मी जीव सूरिजी की शरण में दीक्षा लेने की तैयारी करने लगे तब कई गृहस्थावास में रहते हुये भी जैनधर्म की अराधना में लग गये।

बाद चतुर्मास के कई ११ भावुकों को दीक्षा दी, कई नूतन बनाये मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई इत्यादि सूरीश्वरजी के विराजने से बहुत उपकार हुआ। तत्पश्चात् वहां से विहार करते हुये छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करते हुये सूरिजी महाराज नागपूर में पधारे। कई असा तक वहां विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया वहां पर हंसावली के संघ अग्रेश्वर विनती करने को आये जिसको स्वीकार कर सूरिजी विहार करते हुये हंसावली पधारे। वहां श्रेष्ठि वर्य्य जसा और उसकी पत्नी के आग्रह से श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में फरमाया तथा शाह जसा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की महान् प्रभावना एवं उन्नति हुई। तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः कोरंटपुर की ओर पधारे। यह थी आपकी जन्मभूमि जिसमें भी आप आचार्य बन जैनधर्म की उन्नति करते हुये पधारे फिर तो कहना ही क्या था जनता में खूब उत्साह बढ़ गया था। नगर के राजा प्रजा एवं सकल श्रीसंघ की ओर से आपका सुन्दर स्वागत किया भगवान् महावीर की यात्रा कर व्याख्यान पीठ पर विराज कर थोड़ी पर सारगर्भित इस प्रकार की देशना दी कि जिसको सुनकर श्रोताओं के हृदय में आत्मकल्याण की भावना बिजली की भांति विशेष चमक उठी बाद जयध्वनि के साथ परिषदा विसर्जन हुई।

कोरंटगच्छीय आचार्य नन्नप्रभसूरि आस पास के प्रदेश में विहार करते थे। उन्होंने सुना कि कोरंटपुर में आचार्य कक्कसूरि का पधारना हुआ है। अतः वे भी अपने शिष्यों के साथ कोरंटपुर पधारे। आचार्य कक्कसूरि एवं श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत करके नगर प्रवेश कराया।

जब व्याख्यान पीठ पर दोनों आचार्य विराजमान हुये तो जनता को यह भ्रान्ति होने लगी कि

## आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से दीक्षाएँ हुई

१—कोरंटपुर के दो ब्राह्मण तथा कई श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षाली
२—विजयपुर के करणाटगौत्रिय पेमाने " " "
३—हस्तीपुर के भूरि गोत्रीय नारा ने " " "
४—उपकेशपुर के नागवंशीय वीरा ने " " "
५—बलापुर के अदित्यनागगौत्रिय सलक्षण ने " " "
६—माडव्यपुर के अदित्य नागगौत्रीय भैरारि ने " " "
७—वर्धमानपुर के तप्तभट्टगौत्रीय कल्हण ने " " "
८—करणावती के श्रेष्टिगौत्रिय रघुवीर ने " " "
९—हंसावली के संघपति राणा ने " " "
१०—सोपार के क्षत्रीवंशीय कानादि " " "
११—देवपुर के सुघड़ गौत्रिय राहुप ने " " "
१२—मद्दलपुर के सुचंत गौत्रिय पेथादि ने " " "
१३—रूणीपाली के चारड़गौत्रिय मूलादि " " "
१४—वीरपुर के कुलभद्र गौत्रिय पोथा ने " " "
१५—बावला के भाद्रगौत्रिय हरदेव ने " " "
१६—डमरेल के बलाह गौत्रिय रामा ने " " "
१७—शिवनगर के चत्रीवंशीय दुद्द ने " " "
१८—राजपाली के लघुश्रेष्टि देल्हा ने " " "
१९—भोजपुर के चिंचट गौत्रिय नारद ने " " "
२०—लोहाकोट के कुंमटगौत्रिय शिवा ने " " "
२१—सालीपुर के श्रेष्टिगौत्रिय सुरजण ने " " "
२२—मथुरा के सुखागौत्रिय जिनदास ने " " "
२३—नंदपुर के भाद्रगौत्रिय नारायण ने " " "
२४—उजैन के बापनागगौत्रिय जगमाल ने " " "
२५—विराट् के ब्राह्मण पुरुषोत्तम ने " " "
२६—चित्रकुट के विरहट गौत्रीय चरण ने " " "

इनके अलावा पुरुष और बहुत सी बेहनों ने भी वैराग्य प्राप्त हो सूरिजी के हस्तार्विन्द से जैन दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने वंशावलियों के आधार पर केवल नमूना के तौर पर यहां नामोल्लेख कर दिया है कई पक्षों की दीक्षा का उल्लेख आचार्य श्री के जीवन में लिखा गया है। उस समय एक तो जैन जनता की संख्या करोड़ की थी दूसरे जैन जनता भारत के चारों ओर प्रसरी हुई थी तीसरा मुख्य कारण उस जमाना के जीव हलुकर्मी थे कि थोड़ा उपदेश से ही वे संसार

आचार्य श्री शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावती, मुग्धपुर, नागपुर, षटकूप नगर, हर्षपुर, मेदनीपुर आदि नगरों एवं छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुये उपकेशपुर पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा के पश्चात श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घर २ में आनन्द मंगल हो रहा है। चतुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे श्रीसंघ ने साग्रह विनती की जिसको स्वीकार कर सूरिजी ने चतुर्मास उपकेशपुर में करना निर्णय कर लिया। बस फिर तो था ही क्या नगर में सर्वत्र उत्साह फैलगया।

सुचंतिगोत्रीय शाह आम्र के महोत्सव पूर्वक व्याख्यान में महा प्रभाविक श्री भगवतीजीसूत्र वाचना शुरू कर दिया जिसको जैन जैनतर बड़ी ही श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक सुन कर लाभ उठा रहे थे। सूरिजी के व्याख्यान में दार्शनिक,तात्त्विक,आध्यात्मिक और ऐतिहासिक सब विषयों पर काफी विवेचन होता था जिसको श्रवणकर श्रोताजन मंत्र मुग्ध बन जाते थे। व्याख्यान किसी विषय पर क्यों न हो परन्तु आत्मकल्याण के लिये त्याग वैराग्य पर विशेष जोर दिया जाता था। संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कुटुम्ब की स्वार्थता, आयुष्य की अस्थिरता इत्यादि। सुकृत के शुभ फल और दुष्कृत के अशुभ फल भव भवान्तर में अवश्य भुगतने पड़ते हैं जिसको आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। अतः जन्म मरण के दुःखों से मुक्त होने का एक ही उपाय है और वह है जैनधर्म की आराधना। यदि इस प्रकार की अनुकूल सामग्री में धर्माराधन किया जाय तो फिर संसार में भ्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इत्यादि प्रति दिन उपदेश होता रहता था जिसका प्रभाव भी जनता पर खूब पड़ता था। कई लघुकर्मी जीव सूरिजी की शरण में दीक्षा लेने की तैयारी करने लगे तब कई गृहस्थावास में रहते हुये भी जैनधर्म की अराधना में लग गये।

बाद चतुर्मास के कई ११ भावुकों को दीक्षा दी, कई नूतन बनाये मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई इत्यादि सूरीश्वरजी के विराजने से बहुत उपकार हुआ। तत्पश्चात् वहां से विहार करते हुये छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करते हुये सूरिजी महाराज नागपूर में पधारे। कई अर्सा तक वहां विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया वहां पर हंसावली के संघ अग्रेश्वर विनती करने को आये जिसको स्वीकार कर सूरिजी विहार करते हुये हंसावली पाधारे। वहां श्रेष्टि वर्य्य जसा और उसकी पत्नी के आग्रह से श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में फरमाया तथा शाह जसा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की महान् प्रभावना एवं उन्नति हुई। तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः कोरंटपुर की ओर पधारे। यह थी आपकी जन्मभूमि जिसमें भी आप आचार्य बन जैनधर्म की उन्नति करते हुये पधारे फिर तो कहना ही क्या था जनता में खूब उत्साह बढ़ गया था। नगर के राजा प्रजा एवं सकल श्रीसंघ की ओर से आपका सुन्दर स्वागत किया भगवान् महावीर की यात्रा कर व्याख्यान पीठ पर विराज कर थोड़ी पर सारगर्भित इस प्रकार की देशना दी कि जिसको सुनकर श्रोताओं के हृदय में आत्मकल्याण की भावना विजली की भांति विशेष चमक उठी बाद जयध्वनि के साथ परिषदा विसर्जन हुई।

कोरंटगच्छीय आचार्य नन्नप्रभसूरि आस पास के प्रदेश में विहार करते थे। उन्होंने सुना कि कोरंटपुर में आचार्य कक्कसूरि का पधारना हुआ है। अतः वे भी अपने शिष्यों के साथ कोरंटपुर पधारे। आचार्य कक्कसूरि एवं श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत करके नगर प्रवेश कराया।

जब व्याख्यान पीठ पर दोनों आचार्य विराजमान हुये तो जनता को यह भ्रान्ति होने लगी कि

१६—चक्रावती के श्रेष्टि गो० ,, बेरीशाल के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
१७—खोखर के आदित्यनाग० ,, नरशी के ,, वासपूज्य ,, ,, ,,
१८—खीणोदी के बाप्पनाग ,, खतेशी के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
१९—जीवा ग्राम के बाप्पनाग ,, चापा के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
२०—डामरेलनगर बलाहा शाह समरा के बनाया पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
२१—मथुरा के तप्तभट गौ० ,, आशाधर के ,, महावीर ,, ,, ,,
२२—मादावर के आदित्य ,, जैतसी के ,, ,, ,, ,, ,,
२३—परखल के चरड गोत्र ,, पुन्यपाल के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
२४—सहाना के लुंग गौत्रीय शाह गुणराज के बनाया मुनि सुव्रत मन्दिर की प्र० करवाई
२५—संखपुर के श्रेष्टि गौत्र ,, मुकन के ,, सुमतिनाथ ,, ,, ,,
२६—आघाट के आदित्याग० मंत्री जसवीर के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
२७—आसिका के बलाहा० नाना के ,, महावीर ,, ,, ,,
२८—विराट के डिडु गौ० रूपा ,, ,, ,, ,, ,,
२९—उपकेशपुर के कनौजिया गौ० कल्हण के ,, ,, ,, ,, ,,

३०—आचार्य कक्कसूरि एक समय कोरंटपुर में विराजते थे वहां का मंत्री नाहड को उपदेश दिया और उसका विचार एक जैनमंदिर बनवाने का हुआ परन्तु उस समय वह सत्यपुरी ( साचौर ) के मंत्री पद पर था उसकी इच्छा हुई कि वहां कोरंटपुर में तो बहुत मंदिर हैं यदि सत्यपुरी में मन्दिर बनाया जाय तो अधिक लाभ का कारण होगा आचार्य श्री से अर्ज की कि मेरा विचार है कि मैं सत्यपुरी में चरम तीर्थंकर शासनाधीश भगवान महावीर का मंदिर बनाऊं ? सूरिजी ने कहा, बहुत अच्छी बात है जहां आवश्यकता हो वहां मंदिर बनाने में विशेष लाभ है। मंत्रीश्वर ने सत्यपुरी में आलीशान मंदिर बनवा कर भगवान महावीर की मूर्ति की अञ्जनसिलाका एवं प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से बड़े ही उत्साह से करवाई। कई कई पट्टावलियों में प्रतिष्ठाकार आचार्य का नाम जज्जगसूरि लिखा मिलता है पर यह नाम कक्कसूरि का ही अपर नाम और यह कक्कसूरि कोरंटगच्छ के आचार्य थे मंत्री नाहड जाति का श्रीमाल और कोरंटगच्छोपासक श्रावक था। इस मंदिर का उल्लेख जगचिन्तामणि के चैत्यवन्दन में भी आता है "जयउ वीर साचउरीमण्डण"

३१—पट्टावली में कथा एक लिखी है कि उपकेशपुर में अदित्यनाग गौत्रीय सोमा नाम का श्रेष्टि रहता था उसकी माता को स्वप्न आया कि अब तेरा आयुष्य एक मास का है अतः तू श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर तेरा शरीर वहां तीर्थ पर छूटेगा इत्यादि। माता सुबह अपना पुत्र सोमा को सब हाल कहा सोमा ने कहा माता स्वप्न तो जंजाल है और कई प्रकार से स्वप्न आया करता है पर माता ने कहा कि नहीं बेटा मैं तो शत्रुंजय जाऊंगी और इस शरीर को वहीं पर छोड़ूंगी माता का आग्रह देख सोमा ने कहा यदि आपको शत्रुंजय ही जाना है तो कुछ रोज ठहर जाओ मैं शत्रुंजय का संघ निकालूंगा अतः आप शत्रुंजय की यात्रा संघ के साथ करना पर माता तो जानती थी कि मेरा आयुः एक मास का ही है फिर कब संघ निकले और कब मैं शत्रुंजय जाऊं अतः बेटा से कहा कि मेरा जन्म सुधारना चाहता है तो मुझे

एक खास अर्ज करने को आई हूँ, और वह यह है कि अब आपका आयुष्य केवल एक मास का शेष रहा है अतः आप अपने पद पर सूरि बना दीजिये। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी! आपने हमारे पूर्वजों को समय २ पर इस प्रकार की सहायता की है और आज मुझे भी सावचेत कर दिया अतः मैं आपका अहसान समझता हूँ और यह उपकेशगच्छ जो उन्नति को प्राप्त हुआ है इसमें भी खास आपकी सहायता का ही विशेष कारण है इत्यादि। इस पर देवी ने कहा पूज्यवर! इसमें उपकार की क्या बात है ? यह तो मेरा कर्तव्य ही था। पूज्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी का मेरे पर कितना उपकार है कि उन्होंने मुझे घातकी पापों से एवं मिथ्यात्व से बचा कर शुद्ध सम्यक्त्व प्रदान किया है। उस महान उपकार को मैं कब भूल सकती हूँ इत्यादि परस्पर बातें हुई। सूरिजी ने कहा देवीजी मैं अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशाल मूर्ति को देना चाहता हूँ। इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा बहुत खुशी की बात है। उपाध्यायजी योग्य पुरुष हैं आपके पद के उत्तरदायित्व को वे बराबर संभाल सकेंगे इत्यादि देवी अपनी सम्मति देकर अदृश्य होगई।

प्रभात होते ही आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने विचार उपस्थित संघ अग्रेश्वरों को बुलाकर कहा कि मैंने अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशालमूर्ति को देने का निश्चय कर लिया है और वह भी बहुत जल्दी। संघ अग्रेश्वरों ने कहा पूज्यवर! आप अपना पदाधिकार उपाध्यायजी को देना चाहते हो यह तो बहुत खुशी की बात है और हमारा अहोभाग्य भी है कि इस प्रकार का कार्य्य हमारे नगर में हो पर इस कार्य्य को जल्दी से करने को फरमाते हो इससे हमारे दिल को घबराहट होती है। पूज्यवर! आप शासन के स्तम्भ हैं चिरकाल विराजकर हम भूले भटके प्राणियों को सद् रास्ते पर लाकर कल्याण करो।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि अब मेरा आयुष्य शेष एक मास का रहा है। अतः मैं अपना पदाधिकार देकर अनशन व्रत करूंगा। अतः आपको इस कार्य्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये। सूरिजी के शब्द सुनकर सब लोग निराश होगये फिर भी उन्होंने आचार्य पद के लिये जो करना था वह सब प्रबन्ध कर लिया और आचार्य श्री ने चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय विशालमूर्ति को अपने पद पर स्थापन कर उनका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया। बस, उस दिन से ही आपश्री ने धवलगिरी की शीतल छाया में अनशन व्रत धारण कर लिया और अन्तिम आराधना में लग गये। बस, २१ दिन के अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

सूरिजी का स्वर्गवास होने से श्रीसंघ को बड़ा भारी आघात पहुँचा पर काल के सामने किसकी चल सकती है ? उन्होंने निरुत्साही होकर निर्वाण क्रिया की। आचार्य देवगुप्त सूरि ने साधु समुदाय को धैर्य्य दिला कर कहा कि सूरीजी का विरह हमको भी असह्य है पर इसका उपाय भी नहीं है। सूरिजी ने अपने जीवन में जैनधर्म की खूब सेवा की। देशाटन कर अनेक शुभ कार्य्य किये इत्यादि उन पूज्य पुरुषों का अपने को अनुकरण करना चाहिये।

पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रन्थों में आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने १७ वर्ष के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैन धर्म की अपूर्व सेवा की एवं अनेक भावुकों को उपदेश देकर उनको कल्याण मार्ग पर लाये जिसको थोड़ा नमूना के तौर पर यहाँ उल्लेख कर दिया जाता है।

# १६—आचार्य देवगुप्तसूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पद भागादित्य नागान्वये,
आदित्येन समः सुदीप्त तपसा स्वीयप्रभा धारया।
नित्यं वादि विवाद वात शमने लब्धप्रसिद्धस्तु यः,
भारत्या अवतार रूप धरणो धर्मध्वजोद्धारकः।

आचार्य देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज जैन संसार में देव की तरह परमपूजनीय हुये हैं आपका अवतार जगत के जीवों के उपकार के लिये ही हुआ था। आपका जन्म मरुधर के नागपुर नगर के धनकुबेर आदित्यनाग गोत्रिय शाह मैरा की पत्नी नन्दा की पवित्र कुक्ष से हुआ था। जब आप गर्भ में थे तब माता नन्दा को धन कुबेर देवता ने साक्षात्दर्शन दिये थे। तत्पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ तो कई महोत्सवों के साथ नवजात पुत्र का नाम धनदेव रख गया था। धनदेव के माता पिता सदाचारी एवं धर्मज्ञ थे अतः उनका प्रभाव धनदेव पर भी हुआ करता था। धनदेव के बच्चापना से ही धार्मिक संस्कार सुदृढ़ जम गये थे। आपकी बालक्रीड़ा अनुकरणीय थी तथा विद्याध्ययन में तो आप अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेसर ही रहते थे। जब धनदेव ने युवक अवस्था मे पदार्पण किया तो समान धर्म-वाली श्रेष्ठि कन्या के साथ विवाह कर दिया। आप देवताओं की भांति सुख में कालनिर्गमन कर रहे थे।

आचार्य यक्षदेवसूरि का पधारना नागपुर में हुआ। आप श्री का व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। एक दिन सूरिजी ने व्याख्यान में फरमाया कि संसार रूप समुद्र को तरने के लिये चार प्रकार के जीव हैं।

१—ढोका समान-ढोका ज्वार बाजरी मकाई का ढोका जिसको जल में डालने पर वह अकेला ही तर सकता है परन्तु दूसरे को नहीं तारता है। इसी भांति एक एक मनुष्य ऐसे भी होते हैं कि वे स्वयं तर सकें परन्तु दूसरे को नहीं तार सकें जैसे जिनकल्पी साधु

२—तुंबा समान-तुम्बा को जल में डालने से एक तुंब और एक दूसरा जो तुंबा का आलम्बन करने वाला एवं तुम्बा एक जीव को तार सकता है जैसे प्रतिमधारी साधु एक शिष्यकों दीक्षा देकर आप एकान्त जाकर ध्यान में लग जाते हैं

३—काष्ट की नौका के समान-काष्ट की नौका आप तरती है और दूसरे अनेक जीवों को तार सकती है जैसे स्थविर कल्पी साधु आप तरते हैं और उपदेश देकर अनेकों को तारते हैं।

४—पत्थर की नौका के समान-पत्थर की नौका आप डूबती है और उस पर चढ़ने वालों को भी डुबा देती हैं जैसे मिथ्यात्वी, पाखण्डी, उत्सूत्र प्ररूपक आदि आप स्वयं डूबते हैं और अनेकों को डुबा देते हैं।

A यही बात गृहस्थों के लिये समझ लीजिये। एक ऐसा साधारण गृहस्थ होता है कि वह एकान्त में रहकर अपना कल्याण कर लेता है पर साधन के अभाव दूसरे का कल्याण करने में असमर्थ है

B दूसरा एक अपना और एक दूसरे का कल्याण कर सकें। कारण उनके पास साधन इतना ही है

C तीसरा आप तो तरता ही है और अनेक भावुकों को भी तारने में निमित्त कारण बन जाता है

का त्याग कर दीक्षा लेने के लिये तैयार हो जाते थे जब ही तो एक एक आचार्य सैकड़ों साधुओं के साथ विहार करते थे और साधुओं की संख्या अधिक होने से ही वे प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे यों तो उपकेशगच्छाचार्य और उन्हीं के साधु सब प्रान्तों में विहार करते थे पर मरुधर लाट सौराष्ट्र कोकण कच्छ सिन्ध पंचाल सूरसेन आवन्ती और मेदपाट इन प्रदेशों में तो आपका विशेष विहार होता था और वहां के निवासी यह भी जानते थे कि हम लोगों पर उपकेशगच्छाचार्यों का महान उपकार हुआ है कारण वहां के निवासियों को सबसे पहले उपकेशगच्छाचार्यों ने ही मांस मदिरादि कुव्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित किये थे। यही कारण है कि उस समय उपकेश गच्छ में पांच हजार से भी अधिक साधु साध्वियों थे और वे प्रत्येक प्रान्त में विहार करते थे

## आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ—

आचार्य श्री अच्छी तरह जानते थे कि जहां थोड़े बहुत श्रावक बसते हों वहां पर उनके आत्मकल्याण के लिये जैन मन्दिर की परमावश्यकता है दूसरा उपकेशवंश के बहुत लोग प्रायः व्यापारी थे जहां उनको व्यापार की सुविधा रहती थी वे वहाँ जाकर अपना निवास स्थान बना लेते थे यही कारण है कि मरुधर में पैदा हुआ महाजन संघ पांच छ शताब्दियों में तो वह बहुत दूर दूर प्रदेश में प्रसर गया इतना ही क्यों पर पिछले आचार्यों ने उस शुद्धि की मशीन को इतनी द्रुतगति से चलाई की जहां लाखों की संख्या थी वहाँ करोड़ों तक पहुँच गई और उनकी संख्या के प्रमाण में हजारों मन्दिर और लाखों मूर्त्तियों भी बन गई उस जमाना में हरेक जैन एक दो मन्दिर बनाना तो अपना जीवन का ध्येय ही समझता था उनके अन्दर से कतिपय नाम नमूना के तौर पर वहां उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—आकोड़ा के राव लाखण के बनाया पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
२—हणवंतपुर के सुचंति गोत्रीय शाह निंबा के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
३—चत्रीपुर के आदित्य नाग० शाह देदा के ,, महावीर ,, ,, ,,
४—हर्षपुर के श्रेष्टि गोत्रीय ,, नाथो के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
५—करणोड के श्रेष्टि गोत्रीय ,, सालग के ,, शान्तिनाथ,, ,, ,,
६—भवानी के बाप्पनाग० ,, कर्मा के ,, विमलनाथ ,, ,, ,,
७—करीट्कूप के भाद्र गोत्रीय ,, करणो के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
८—सत्यपुर के राव (राजा) ,, संगण के ,, महावीर ,, ,, ,,
९—पल्हापुरी के करणाट गौ० ,, सोमो के ,, महावीर ,, ,, ,,
१०—वाकांणी के भूरि गौ० ,, देवो के ,, महावीर ,, ,, ,,
११—डावला के मोरख गौ० शाह कानो के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
१२—नरवर के श्रीश्रीमाल ,, दुर्जण के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
१३—वल्लभी के विङ्गगौ० ,, चन्द्रसेन के ,, नेमिनाथ ,, ,, ,,
१४—सोपार के लघु श्रेष्टि ,, माना के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
१५—स्तम्भनपुर मोरख० ,, धर्मसी के ,, महावीर ,, ,, ,,

पन्ना मुक्ताफलादि से ज्ञान पूजा की तथा प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिकाओं से पूजा की। केवल शाह भैरा ही नहीं पर श्रीसंघ भी ऐसा सुअवसर हाथों से कब जाने देने वाले। बहुत से लोग श्रीभगवतीजी सूत्र की पूजा भक्ति करते हुये वीतराग वाणी का श्रवण कर अपनी आत्मा का कल्याण करने लगे।

इधर धनदेव की देख रेख में मन्दिरजी का काम चल रहा था। और धनदेव वस्तु शास्त्र एवं शिल्पकला का अध्ययन कर बड़ी दिलचस्पी से अपनी जुम्मेदारी का कार्य्य सम्पादन कर रहा था जब शाह भैरा के दोनों कार्य्य इच्छानुसार हो रहे थे तो अब तीसरे कार्य्य के लिये सूरिजी के पास आकर प्रार्थना की कि प्रभो! आपकी अनुग्रह से मेरे जीवन के ध्येय रूप दो कार्य्य तो हो रहे हैं पर तीसरे कार्य्य के लिये मुझे क्या करना चाहिये? सूरिजी ने कहा भैरा तू बड़ा ही भाग्यशाली है। दो कार्य कर लिये तो तीसरे के लिये ऐसी कौन सी बड़ी बात है। पर पहले यह निश्चय करले कि तुमको संघ शत्रुंजयादि दक्षिण के तीर्थों का निकालना है। या सम्मेतशिखरादि पूर्व के तीर्थों का? भैरा ने सूरिजी के अभिप्राय को जानलिया और कहा पूज्यवर! शत्रुंजय तीर्थ नजदीक है और रास्ते में भी सर्व प्रकार की सुविधायें हैं अतः यह कार्य्य धनदेव के लिये रहने दूं और मैं सम्मेतशिखरजी का ही संघ निकालूं ऐसी मेरी इच्छा है फिर आप हुक्म फरमावें वही शिरोधार्य करने को मैं तैयार हूँ। सूरिजी महाराज ने फरमाया कि ठीक है सम्मेतशिखरजी की यात्रा करने में कठिनाइयें अवश्य हैं द्रव्य भी अधिक व्यय करना होगा पर लाभ भी तो अधिक है। कारण साधारण लोगों के शत्रुंजय की यात्रा की अपेक्षा शिखरजी की यात्रा बड़ी कठिनता से होती है अतः तुम तो सम्मेत शिखरजी की यात्रा का ही विचार रक्खो।

बस, फिर तो क्या देरी थी शाह भैरा ने श्री संघ को एकत्र कर आज्ञा मांगी और श्रीसंघ ने आदेश देते हुये कहा शाह भैरा! तू भाग्यशाली है आदित्यनाग कुल में जन्म लिया ही प्रमाण है। भैरा ने कहा कि यह सब पूज्याचार्य देव और श्रीसंघ की कृपा का ही सुमधुर फल है और यह कार्य्य मैंने श्रीसंघ की मदद पर ही उठाया है। श्रीसंघ अपना कार्य्य समझ के इसको पूर्ण करावे। श्रीसंघ ने कहा कि इसमें कहने की जरूरत ही क्या है श्रीसंघ सब तरह की मदद के लिये तैयार है।

यों तो शाह भैरा बड़ा भारी व्यापारी था विशाल कुटुम्ब का मालिक था राज काज में एवं हजारों के साथ सम्बन्ध रखने वाला था। बहुत से राजा और जागीरदारों को करज देने वाला बोहरा था। उसके हुक्म मात्र से ही सब काम होता था। फिर भी शाह भैरा ने इस संघ का काम के लिये सब कार्य्य अलग २ विभागों में बांट कर अलग २ कमेटियें बनाकर उनके सुपुर्द कर दिया। शाह भैरा सूरि जी महाराज की सेवा भक्ति करता हुआ श्रीभगवतीसूत्र सुन रहा था और सब काम सिलसिलेवार हो ही रहा था। सरदी गर्मी के सब साधनों का संग्रह कर लिया था। प्रत्येक प्रान्त एवं ग्राम नगरों में आमंत्रण भेज दिये थे। मामला दूर का होने के कारण चतुर्मास उतरते ही मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को आचार्य श्री की अध्यक्षता एवं शाह भैरा के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। पट्टावलीकार ने इस संघ का विस्तृत रूप में वर्णन किया है। पांच हजार साधु साध्वी और एक लक्ष नरनारियों तथा पांच हजार सिपाही राजाओं की ओर से पहरायत के तौर पर साथ में थे। सोना चाँदी चन्दनादि के १८४ देरासर संघ के साथ में थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस जमाने में जैन-समाज की धर्म एवं तीर्थों पर कितनी श्रद्धा थी। सम्मेत शिखर जी के संघ में छरी पाली यात्रा करके आने में कम से कम ६-छः मास जितना समय

कल ही रवाना करदे—बस सोमा ने अपना पुत्र धवल और आठ आदमियों को देकर माता को रवाना करदी। माता रथ पर बैठ गई और चलती चलती परमा ग्राम में पहुँची वहां एक मन्दिर था पर समय बहुत हो जाने से पट्ट मंगल हो गया था माता के दर्शन का नियम था पुजारी के पास गई तो उसने कहा कि मैं अभी आ नहीं सकता हूँ आपके ऐसे ही दर्शन करना हो तो अपना नया मंदिर बनाले इस ताना के मारी माता ने उस दिन उपवास कर लिया और चतुर कारीगरों को बुलवा कर नया मंदिर की नींव डलवा दी माता ने कुछ रकम तो वहां के संघ अग्रेश्वरों को दे दी और कह दिया कि शेष रकम हमारे पुत्र सोमा से मंगवा लेना सोमा बड़ा व्यापारी था जिसको सब लोग जानते थे माता वहां से २९ वें दिन सिद्धगिरी पर पहुँची और भगवान आदीश्वर की यात्रा कर अनशन कर दिया दूसरे दिन माता का स्वर्गवास हो गया उसी दिन सोमाशाह वगैरह कई लोग शत्रुंजय आ गये पर सोमा के माता का मिलाप नहीं हुआ सोमा ने विचार किया कि यदि मैं माता को नहीं भेजता तो बड़ा भारी पश्चाताप करना पड़ता मैं हतभाग्य हूँ कि माता की अन्तिम सेवा नहीं कर सका फिर भी माता के मनोरथ सफल हो गया—सोमा ने अपनी माता की मृत्यु क्रिया करके वापस लौटता हुआ परमा ग्राम में आया और माता के प्रारम्भ किया मंदिर को सम्पूर्ण करवा कर उसकी प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि के हाथों से करवाई। इस प्रकार सूरिजी ने अपने हाथों से अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बना दिया था।

आचार्य श्री के समय केवल धर्म प्रचार की ही आवश्यकता नहीं थी परन्तु उस समय कई वादियों का भी जैन धर्म पर आक्रमण हुआ करते थे अतः उन्हों के सामने भी हर समय कटिबद्ध रहना पड़ता था कई राजा महाराजाओं की सभाओं में जाकर शास्त्रार्थ द्वारावादियों को पराजय कर जैन धर्म की विजयपताका फहराया करते थे। सूरिजी के आज्ञावृति बहुत से साधु ऐसे थे कि उन्हों का तो यह एक कार्य ही बन चुका था कि वे वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर स्याद्वाद सिद्धान्त का प्रचार किया करें।

आचार्य कक्कसूरिजी ने पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय गिरनार एवं सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रा निमित्त बड़े-बड़े संघ निकला कर हजारों लाखों भावुकों को तीर्थ यात्रा का लाभ पहुँचाया पट्टावलीकारों आपश्री के जीवन में संघों का भी विस्तार से वर्णन किया है परन्तु ग्रंथ बढ़ जाने के भय से यहां पर इतना ही कहदेना पर्याप्त होगा कि श्रद्धा सम्पन्न भावुकों ने तीर्थयात्रार्थ लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर कल्याणकारी शुभ कर्मोपार्जन किया।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने जीवन में जैन शासन की महान् सेवा की है। जिसको न तो जबान द्वारा वर्णन किया जा सकता है और न लोढा की तुच्छ लेखनी द्वारा लिखा ही जा सकता है ऐसे जैनधर्म के प्रभाविक पुरुषों के चरण कमलों में कोटि कोटि वन्दन हो।

पट्ट अठारहवे कक्कसूरीश्वर अदित्य नाग उज्जारे थे।
सहस्रों साधु रू साध्वियों जैसे चन्द्र विच तारे थे॥
वादी मानी और पाखंडी देख दूर भग जाते थे।
सुरनर पति जिनके चरणों में झुकझुक शीश नमाते थे॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के अठारहवे पट्टधर कक्कसूरि महान प्रभाविक आचार्य हुए—

लिया और शाह भैरां ने मंदिर की प्रतिष्ठा के साथ ही सूरिजी महाराज के पास दीक्षा ले ली जिसका महोत्सव धनदेव ने बड़े ही समारोह से किया।

धनदेव का दिन तो संसार से विरक्त हो गया था पर केवल माता के स्नेह से उसने घर में रहना मंजूर किया था और माता का भाव अपने पतिदेव के साथ दीक्षा लेने का था परन्तु घर सँभालने वाला कोई पौत्र होजाय तो फिर दीक्षा लूंगी इस आशा से मां बेटा दीक्षा का भाव होने पर भी भोगावली कर्म क्षय करने को संसार में रह गये।

'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' इस अटल सिद्धान्त को कौन मिटा सकता है। धनदेव के संसार में रहते हुये के क्रमशः चार पुत्र हुये पर इससे लक्ष्मी देवी रुष्ट होकर धनदेव से किनारा लेलिया। यहाँ तक कि धनदेव के पिता ने करोड़ों की सम्पत्ति छोड़कर दीक्षा ली थी आज धनदेव को शाम सुबह भोजन का पता नहीं है। जब मनुष्य के अशुभ कर्मोदय होता है तब शरीर पर के कपड़े भी खाने लग जाते हैं। धनदेव जैनधर्म के कर्म सिद्धान्त का जानकार अच्छा ज्ञानी था तथापि कभी २ आर्तध्यान इस प्रकार घेर लेता था जिससे वह मन ही मन में पश्चाताप करने लग जाता था कि धन्य है पिताजी को कि वे भी साध्वी में दीक्षा लेकर सुखी बन गये। मैं कैसा भाग्य हीन रहा कि उस सुवर्ण समय को व्यर्थ खोदिया।

यदि मैं भी। उस समय में ही दीक्षा लेलेता तो आज मुझे इन दुःखों का अनुभव क्यों करना पड़ता क्षणान्तर वह सोचता है कि मेरे पूर्व जन्म में अन्तराय कर्म बन्धा हुआ था। दीक्षा लेलेता तो इस कर्म को कैसे भोगता और कर्म बिना भोगे निर्जरा नहीं, कहा है कि ' कडाणकम्मण नवि उसमोक्खो ' कभी यह भी विचार करता था कि खैर कुछ नहीं अब भी मैं दीक्षा लेलूं, क्षणभर में सोचता है कि इस दरिद्रावस्था में दीक्षा लूंगा तो लोग कहेंगे कि धन नष्ट होगया और अब कमा के खाने की हिम्मत नहीं अतः विचारा दीक्षा लेकर मांग खायेगा इत्यादि इस प्रकार दरिद्रता के साम्राज्य में अनेक तरंगे उठने लगी। फिर भी उस निर्धनावस्था में भी धनदेव ने अपनी धर्म करनी को न्यून नहीं की पर पहिले से बढ़ाता ही गया। ज्ञानियों का यही तो मजा है कि उदय आये कर्मों को सम्यक् प्रकार से भोगते हैं और अनुदय की उदीरणा कर उदय में लाता है कि उन कर्मों का करजा शीघ्र ही चुक जाता है।

एक समय आचार्य्य कक्कसूरिजी भ्रमण करते नागपुर पधारे। अन्योन्य लोगों के साथ धनदेव भी सूरिजी को वन्दन करने को आया और उनके साथियों ने परिचय करवाया कि गुरु महाराज। यह धनदेव शाह भैरा का पुत्र है। भैरा ने स्वर्गीय आचार्य्य यक्षदेवसूरि के उपदेश से महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र बंचाया सम्मेतशिखरजी का संघ निकाला, जिन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई और सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा ली। धनदेव भी धर्मज्ञ एवं जैनसिद्धान्त का अच्छा जानकार है पर अन्तराय कर्मोदय इनकी आर्थिक स्थिति खराब होगई है। सूरिजी ने कहा महानुभाव। ज्ञानियों ने इसी लिये तो संसार को असार बतलाया है क्योंकि सुख के अन्त में दुःख और दुःख के अन्त में सुख हुआ ही करता है। क्या दुःख और क्या सुख ये सब पौद्गलिक वस्तु है। इससे क्या खुशी और क्या नाराजी जनधर्म का सिद्धान्त तो यह है कि पौद्गलिक सुख हो चाहे दुःख हो पर अपने ध्येय से विचलित न होना चाहिये इत्यादि। धनदेव ने सूरिजी के मार्मिक शब्द सुने तो उसकी आत्मा में एक नवीन चेतनता प्रगट हुई। इधर तो धनदेव के अशुभकर्मों का क्षय हुआ और उधर से सूरिजी के शुभ वचन अतः लक्ष्मीदेवी घर पूछती २ धनदेव के घर में आपहुंची। यही

जैसे एक सत्ताधीश धर्मात्मा राजा एवं धनाढ्य सेठसाहुकार चाहे तो अपने कल्याणके साथ अनेकोंका कल्याण कर सकते हैं शास्त्रों में कहा है कि जैनकुल में जन्म लिया है तो उनको साधनके होते हुये कमसे कम तीन कार्य अवश्य करने चाहिये १-अपने न्याय से उपार्जन किये द्रव्यसे जिनमन्दिर बनाकर परमेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाना इससे अपना तो कल्याण है ही पर दूसरे अनेक जीवों का कल्याण हो सकता है जैसे आवश्यकसूत्र में आचार्य भद्रबाहु ने मन्दिर बनाने के लिये कुँवा का दृष्टान्त दिया है कि कुँवा बनाने में बहुत कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। मिट्टी कर्दम का लेप शरीर पर लगजाता है पर जब कुँवा के अन्दर से पानी निकलता है तब उसी पानी से मिट्टी कर्दम वगैरह सब धुल जाता है। और वह कुँवा रहेगा तब तक उसका शीतल जल पीकर अनेक आत्मा अपनी तप्त तृषा मिटा कर शान्ति को प्राप्त हो कूँप बनाने वाले को आशीर्वाद देंगे इत्यादि। इसी प्रकार मन्दिर बनाने में मिट्टी जल पत्थरादि का उपयोग करना पड़ता है और देखने में द्रव्य आरंभ भी दीखता है पर जब मन्दिर तैयार हो उसकी प्रतिष्ठा होकर परमात्मा की मूर्ति स्थापित हो जाती है उसकी भावना से वह द्रव्यारम्भ रूपी लेप स्वयं नष्ट होजाता है और जहाँ तक वह मन्दिर बना रहेगा अनेक भव्यात्मायें परमेश्वर की सेवा भक्ति पूजा भावना कर अपना कल्याण करेंगी और मन्दिर बनाने वालों के शुभ कार्य्य का अनुमोदन करते रहेंगे अत: गृहस्थों के लिये साधनों के होते हुये पहला यह कार्य्य करना उसका खास कर्त्तव्य है महानिशीथ सूत्र में मन्दिर बनाने वाला श्रावक की गति बारहवां स्वर्ग की बतलाई है। २-दूसरा तीर्थों की यात्रा के लिये श्रीसंघ को अपने मकान पर बुलाकर अपने हाथों से उनके तिलक कर संघ निकाल कर संघ को तीर्थयात्रा करवानी चाहिये। जैनधर्म में संघपति पद का महत्व कम नहीं है जोकि श्रीसंघ को तीर्थङ्कर भी नमस्कार करते हैं। अत: साधन एवं सामग्री हो तो जीवन में एक बार संघ अवश्य निकाले। ३-तीसरे महाप्रभाविक श्री भगवती आदि सूत्र का अपनी ओर से महोत्सव कर गुरुमहाराज के कर कमलों में अर्पण कर श्रीसंघ को तीर्थङ्करों के वचन सुनाना। इस प्रकार बन सके तो तीनों कार्य करे। बाद में दीक्षा लेकर चारित्र की आराधना करनी चाहिये इत्यादि विस्तार से व्याख्यान सुनाया। D-चतुर्थ मनुष्य के लिए पहले बतला दिया है कि वह आप डूबता है और अनेकों को डुबाता है इत्यादि।

उस व्याख्यान में शाह भैरा भी था सूरिजी का उपदेश ध्यान लगा कर सुना और अपने दिल में निश्चय कर लिया कि आज मेरे पास सब साधन तैयार हैं कि मैं सूरिजी के बतलाये तीनों कार्य्य कर सकता हूँ। बस फिर तो देरी ही क्या थी सूरिजी की सम्मति लेकर चतुर कारीगरों को बुलवा कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया जिसकी देख रेख के लिये अपने पुत्र धनदेव को मुकर्रर कर दिया। शाह भैरा ने सोचा कि यदि गुरु महाराज का चतुर्मास यहाँ हो जाय तो श्रीभगवतीसूत्र का महोत्सव करके दूसरा कार्य्य भी कर लूं बाद चतुर्मास के तीर्थों की यात्रार्थ संघ भी निकाल दूं इतने में मन्दिर तैयार हो जाय तो इसकी प्रतिष्ठा भी करवा दूं। अत: एक वर्ष में तीनों कार्य्य बन जाय तो सूरिजी की आज्ञा का पालन हो सकता है

सूरिजी को चतुर्मास के लिये श्रीसंघ ने बहुत आग्रह पूर्वक विनती की थी तथा शाह भैरा ने अपने भाव प्रदर्शित करते हुये कहा कि पूज्यवर ! आपके विराजने से हमारे सब मनोरथ सिद्ध होजायेंगे। अत: कृपा कर चतुर्मास की स्वीकृति शीघ्र दे दीरावें। महात्माओं का तो जीवन ही परोपकार के लिये होता है। सूरिजी महाराज ने लाभालाभ का विचार कर चतुर्मास नागपुर में करने की मन्जूरी फरमादी। बस, नागपुर के श्रीसंघ में खूब ही हर्ष आनन्द एवं उत्साह फैल गया। शाह भैरा ने श्री भगवती सूत्र का आदेश लेकर बड़ा भारी महोत्सव किया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्यादि किया और हीरा

दुःख मिटजाय । सन्यासीजी ने कहा कि खैर, आपही कृपा कर बतलाइये कि ऐसी कौनसी विद्या है कि जिससे जन्म मरण मिट जाय ? वाचनाचार्य्य ने कहा कि वीतराग की वाणी एक ऐसी विद्या है कि जिसको जैनदीक्षा ग्रहण कर आराधना कीजिये । अतः जन्म मरण मिटाने के लिये दूसरी कोई विद्या नहीं है इत्यादि तर्क वितर्क से इस कदर समझाया कि सन्यासीजी ने वाचनाचार्य्यजी के पास जैनदीक्षा स्वीकार करली जिससे केवल वीरपुर में ही नहीं पर सिन्धु मण्डल में जैनधर्म का खूब उद्योत हुआ ।

२—आचार्य श्री के दूसरा शिष्य पं० राजसुन्दर था आप ज्योतिष विद्या में बड़े ही प्रवीण थे आप विहार करते हुये एक समय भरोंच नगर में गये । वहाँ पर एक ज्योतिषी विद्वानों की सभा हुई थी । सब लोगों को आमंत्रण दिया पर पं० राजसुन्दर को किसी ने आमन्त्रण नहीं दिया । कारण, उन लोगों का खयाल था कि जैनधर्म त्याग वैराग्य मय धर्म है । वे लोग सिवाय त्याग वैराग्य में कष्ट करने के और क्या जानते हैं ? खैर जिस समय सभा हुई तो बिना आमंत्रण पं० राजसुन्दर सभा में चला गया इस पर उन विद्वानों ने पं० राजसुन्दर का स्वागत कर आसन दिया पर वे जैनधर्म के नियमानुसार रजोहरण से भूमि परमार्जन कर कांवली डाल कर बैठ गये । सभा का कार्य शुरू हुआ तो किसी ने वर्ष फल किसी ने मास-फल किसी ने राजविग्रह किसी ने वर्षा आगमन विषय कहा । जब पं० राजसुन्दर को पूछा तो उसने कहा कि आजरात्रि आठ घड़ी ४८ पल के बाद बरसात होगी । ज्योतिषियों ने सोचा ऐसा तो कोई योग नहीं दीखता है फिर यह जैनश्रमण किस आधार से कहता है । दूसरे विद्वानों की बातों की नोंध के साथ जैन मुनि के कथन की नोंध करली और यह बात जनता के कानों तक भी पहुँच गई । ठीक बतलाये हुये टाइम पर मुसलाधार बरसात होने लग गई । बस, जो विद्वान जैनश्रमणों की हँसी करते थे वही उनके चरणों में अपना शिर झुकाने लगे और कई लोग पं० राजसुन्दर के पास आकर ज्योतिष विषय का अभ्यास करने लगे । पण्डितजी को राजा प्रजा की ओर से अच्छा सन्मान मिला ।

३—आचार्य श्री के शासन में एक पद्मकलस नामक उपाध्याय था । वे परकाया प्रवेश विद्या में निपुण थे । अपनी विद्या का चमत्कार बतलाकर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म के परमोपासक बनाये ।

४ चतुर्थ पण्डित नागप्रभ था । आप आकाशगमिनी विद्या में पारगामी थे आप अष्टम अष्टम तप का पारणा किया करते थे और पारणा के दिन श्रीशत्रुंजय तीर्थ और उपकेशपुर मंडन महावीर की यात्रा करके ही पारणा किया करते थे। एक समय पं० नागप्रभ अष्टम के पारणा के दिन अपनी आकाशगामिनी विद्या के बल से शत्रुंजयतीर्थ का चैत्यवंदन करने को आकाश में जा रहे थे। रास्ते में कोई सन्यासी भी पैरों पर लेपकर आकाश में जा रहा था । दोनों की आकाश में भेंट हो गई तो आपस में बातें करते दोनों शत्रुंजय पर आगये । सन्यासी ने देखा तो जैनश्रमण के पैरों पर लेप नहीं था । तब सन्यासी ने पूछा कि आपके पैरों पर लेप नहीं है फिर आप आकाश में गमन कैसे करते हो । जैनश्रमण ने उत्तर दिया कि पैरों पर लेप करके आकाश में गमन करना यह पराधीनता है । लेप नहीं मिलने से गति रुक जाती है । कभी कोई लेप धो डालता है तो भी गति रुक जाती है । अतः मैं इस लेप की विद्या को विद्या नहीं समझता हूँ विद्या तो ऐसी होनी चाहिए कि जो आत्मा से प्राप्त हुई हो जिसकी गति को कोई रोक ही नहीं सके । सन्यासीजी सुन कर मंत्रमुग्ध बनगये और जैनश्रमण से प्रार्थना करने लगे कि महात्माजी ऐसी विद्या तो आप मुझे भी बतलाइये, मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा । मुनिनागप्रभ ने कहा यदि आपको विद्या की आवश्यकता है, तो जैनदीक्षा स्वीकार

तो लग ही जाता था। उस जमाने के लाखों करोड़ों रुपयों के व्यापार करने वालों को कितना संतोष था कि छ सात और आठ आठ मास तक घर के सब काम छोड़ देना वह भी एक दो मनुष्य नहीं पर सब घर के लोग। कराण ऐसे पुन्य कार्य्य में पीछे कौन रहे। जिस नौकर गुमास्ता और पड़ौसियों पर धनमाल और घर छोड़ जाते उन लोगों का कितना विश्वास था। इन सब बातों को देखते हुये यही कहना पड़ता है कि वह जमाना सत्य का था, संतोष का था नीति का था, विश्वास का था और धर्म का था उस जमाने के जीव कितने हलुकर्मी थे कि इतने वड़े लक्ष्मीपात्र होने पर भी अपना जीवन सदा और सरल रखते थे। जैनाचार्य्यो का थोड़ा सा उपदेश होने पर धर्म के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करने को आगे पीछे का कुछ भी विचार नहीं करते थे। बस,इन पुन्य कार्य्यों से ही उनके पुन्य हमेशा बढ़ते रहते थे।

श्रीसंघ आनंद मंगल के साथ रास्ते में नये २ मंदिरों के दर्शन तीर्थों की यात्रा जीर्णोद्धार अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण, पूजा प्रभावना, स्वामिवात्सल्य साधर्मियों की सहायता और दीन दुखियों का उद्धार करतासम्मेतशिखरजी पर पहुंचा तीर्थ के दर्शन स्पर्शन कर सब का दिल प्रसन्न हुआ। सब लोगों ने सेवा पूजा भक्ति आदि का यथाशक्ति लाभ लिया और वीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि की यात्रा एवं अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजमहोत्सव वगैरह अनेकों शुभ कार्य्यों से लाभ उठाया। इस प्रकार पूर्व की सब यात्रायें कीं। तत्पश्चात वहाँ विहार करने वाले साधु पूर्व में रहे शेष तीर्थयात्रा करते हुये संघ के साथ पुनः नागपुर आये।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने वह चतुर्मास मेदनीपुर में किया बाद चतुर्मास के पुनः नागपुर पधारे। इतने में शाह भैरा का प्रारम्भ किया जिनालय भी तैयार होगया। शाह भैरा ने सूरिजी से मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये प्रार्थना की पर सूरिजी ने कहा भैरा! तेरे तीन काम तो सफल होगये पर एक कार्य्य शेष रह गया है। शाह भैरा ने कहा पूज्यवर! वह भी फरमा दीजिये कि बन सके तो साथ में ही कर लिया जाय। सूरिजी ने कहा भैरा! ये तीन कार्य्य तो द्रव्य द्वारा करने के थे तुमने कर डाले पर चतुर्थ कार्य तो आत्मभाव का है और आत्मा से ही हो सकता है और इसमें द्रव्य की अपेक्षा आत्म त्याग वैराग्य की आवश्यकता है। भैरा ने कहा पूज्यवर! मेरे से बन गया तो मैं अधूरा न रख चारों कार्य पूरा कर दूंगा। सूरिजी ने कहा कि चतुर्थ कार्य्य दीक्षा लेने का है शाह भैरा ने क्षणमात्र विचार करके कहा पूज्यदयालु! इसमें कौनसी बड़ी बात है आपजैसे हजारों साधु साध्वियों ने दीक्षा ली है तो मैं इतने से काम के लिये अधूरा क्यों रक्खूं। चलो दीक्षा लेने को भी मैं तैयार हूँ। सूरिजी ने कहा 'जहासुखम' शाह भैरा ने घर पर जाकर धनदेव और उसकी माता को कहा कि पूज्याचार्य देव दीक्षा के लिये कहते हैं और मैंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है। सेठानी ने कहा क्या आचार्य महाराज के कहने से ही आप दीक्षा लेने को तैयार हुये हैं? हाँ, आचार्य महाराज ने कहा कि तीन कार्य कर लिये तो अब एक काम शेष क्यों रखते हो? तो फिर मैं एक काम को बाकी क्यों रक्खूं, पूरा ही करलूं सेठानी ने कहा आप दीक्षा लेते हो तो मैं घर में रह कर क्या करूँ? चलो आपके साथ मैं भी तैयार हूँ। धनदेव ने कहा कि फिर मैं ही अकेला घर में रह कर क्या करूंगा? मैं भी आपके साथ दीक्षा लूंगा। सेठानी ने कहा बेटा! हम दोनों को दीक्षा लेने दे और तू घर पर रह क्योंकि अभी घर सँभालनेवाला तेरे कोई पुत्र नहीं है। धनदेव ने कहा कि माता यदि तू घर में रहे तो मैं भी रहूँगा नहीं तो मैं घर में रह कर क्या करूं। अतः माता ने पुत्र के स्नेह भाव से घर में रहना मंजूर कर

दुःख मिटजाय। सन्यासीजी ने कहा कि खैर, आपही कृपा कर बतलाइये कि ऐसी कौनसी विद्या है कि जिससे जन्म मरण मिट जाय ? वाचनाचार्य्य ने कहा कि वीतराग की वाणी एक ऐसी विद्या है कि जिसको जैनदीक्षा ग्रहण कर आराधना कीजिये। अतः जन्म मरण मिटाने के लिये दूसरी कोई विद्या नहीं है इत्यादि तर्क वितर्क से इस कदर समझाया कि सन्यासीजी ने वाचनाचार्य्यजी के पास जैनदीक्षा स्वीकार करली जिससे केवल वीरपुर में ही नहीं पर सिन्धु मण्डल में जैनधर्म का खूब उद्योत हुआ।

२—आचार्य श्री के दूसरा शिष्य पं० राजसुन्दर था आप ज्योतिष विद्या में बड़े ही प्रवीण थे आप विहार करते हुये एक समय भरोंच नगर में गये। वहाँ पर एक ज्योतिषी विद्वानों की सभा हुई थी। सब लोगों को आमंत्रण दिया पर पं० राजसुन्दर को किसी ने आमन्त्रण नहीं दिया। कारण, उन लोगों का खयाल था कि जैनधर्म त्याग वैराग्य मय धर्म है। वे लोग सिवाय त्याग वैराग्य में कष्ट करने के और क्या जानते हैं ? खैर जिस समय सभा हुई तो बिना आमंत्रण पं० राजसुन्दर सभा में चला गया इस पर उन विद्वानों ने पं० राजसुन्दर का स्वागत कर आसन दिया पर वे जैनधर्म के नियमानुसार रजोहरण से भूमि परमार्जन कर कांबली डाल कर बैठ गये। सभा का कार्य शुरू हुआ तो किसी ने वर्ष फल किसी ने मासफल किसी ने राजविग्रह किसी ने वर्षा आगमन विषय कहा। जब पं० राजसुन्दर को पूछा तो उसने कहा कि आजरात्रि आठ घड़ी ४८ पल के बाद बरसात होगी। ज्योतिषियों ने सोचा ऐसा तो कोई योग नहीं दीखता है फिर यह जैनश्रमण किस आधार से कहता है। दूसरे विद्वानों की बातों की नोंध के साथ जैनमुनि के कथन की नोंध करली और यह बात जनता के कानों तक भी पहुँच गई। ठीक बतलाये हुये टाइम पर मुसलाधार बरसात होने लग गई। बस, जो विद्वान जैनश्रमणों की हँसी करते थे वही उनके चरणों में अपना शिर झुकाने लगे और कई लोग पं० राजसुन्दर के पास आकर ज्योतिष विषय का अभ्यास करने लगे। पण्डितजी को राजा प्रजा की ओर से अच्छा सन्मान मिला।

३—आचार्य श्री के शासन में एक पद्मकलस नामक उपाध्याय था। वे परकाया प्रवेश विद्या में निपुण थे। अपनी विद्या का चमत्कार बतलाकर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म के परमोपासक बनाये।

४ चतुर्थ पण्डित नागप्रभ था। आप आकाशगामिनी विद्या में पारगामी थे आप अष्टम अष्टम तप का पारणा किया करते थे और पारणा के दिन श्रीशत्रुंजय तीर्थ और उपकेशपुर मंडन महावीर की यात्रा करके ही पारणा किया करते थे। एक समय पं० नागप्रभ अष्टम के पारणा के दिन अपनी आकाशगामिनी विद्या के बल से शत्रुंजयतीर्थ का चैत्यवंदन करने को आकाश में जा रहे थे। रास्ते में कोई सन्यासी भी पैरों पर लेपकर आकाश में जा रहा था। दोनों की आकाश में भेंट हो गई तो आपस में बातें करते दोनों शत्रुंजय पर आगये। सन्यासी ने देखा तो जैनश्रमण के पैरों पर लेप नहीं था। तब सन्यासी ने पूछा कि आपके पैरों पर लेप नहीं है फिर आप आकाश में गमन कैसे करते हो। जैनश्रमण ने उत्तर दिया कि पैरों पर लेप करके आकाश में गमन करना यह पराधीनता है। लेप नहीं मिलने से गति रुक जाती है। कभी कोई लेप धो डालता है तो भी गति रुक जाती है। अतः मैं इस लेप की विद्या को विद्या नहीं समझता हूँ विद्या तो ऐसी होनी चाहिए कि जो आत्मा से प्राप्त हुई हो जिसकी गति को कोई रोक ही नहीं सके। सन्यासीजी सुन कर मंत्रमुग्ध बनगये और जैनश्रमण से प्रार्थना करने लगे कि महात्माजी ऐसी विद्या तो आप मुझे भी बतलाइये, मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा। मुनिनागप्रभ ने कहा यदि आपको विद्या की आवश्यकता है, तो जैनदीक्षा स्वीकार

कारण है कि इधर से तो धनदेव ने कारणवसात भूमि खोदी तो पुष्कल द्रव्य मिल गया उधर जिन्हों पर करजा लेना था वह घर पर आकर देने लगे उधर व्यापार में भी उनको खूब गहरा लाभ होने लगा। बस, एक मास में धनदेव का घर फिर लक्ष्मी देवी से शोभायमान होने लगा। धनदेव ने चार पुत्रों की शादी एक मास में करदी और आप जैसे सर्प कांचली छोड़कर भाग जाता है वैसे धनदेव संसार को सर्पकंचुक समझ कर उससे भाग कर आचार्य्यकक्कसूरि के चरणों में आकर अपने १४ साथियों के साथ भगवती जन-दीक्ष स्वीकार करली तब जा कर शान्ति का श्वास लिया। आचार्य्य श्री ने धनदेव को दीक्षा देकर आपका नाम सोमतिलक रखा आप की योग्यता देख मथुरा में आपको उपाध्याय पदसे विभूषित किया। आपसूरिजी के शासन को अच्छी तरह से चलाया करते थे। आचार्य्य श्री कक्कसूरि की सेवा में रहकर आपने धर्म के अच्छे २ कार्य्य सम्पादन किये। कई राजा महाराजाओं की सभा में वादियों से शास्त्रार्थ कर उनको परास्त कर जैनधर्म का झंडा फहराया था। इसी कारण आचार्य्य कक्कसूरिजी ने अपने अन्त समय चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय सोमतिलक को अपने पट्ट पर आचार्य्य बनाकर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया था।

आचार्य्य देवगुप्तसूरि जनशासन रुपी आकाश में सूर्य्य सदृश्य प्रकाश के करने वाले हुये थे आपको जैसे संसार में लक्ष्मीदेवी वरदाई थी। वैसे ही श्रमणावस्था मे सरस्वतीदेवी वरदाई थी। आप जैनागमों के अलावा व्याकरण न्याय तर्क छन्द अलङ्कारादि सर्व साहित्य के पारगामी थे। जैसे समुद्र भांति भांति के अमूल्य रत्नों से शोभायमान होता है वैसे ही आपका शासन अनेक विद्या एवं लब्धिपात्रों से सुशेभित था। पट्टावलीकारों ने कतिपय मुनियों का परिचय करवाते हुये लिखा है कि आचार्य्य श्री के शासन में।

१—धर्ममूर्ति नामका वाचनाचार्य बड़ा ही लब्धिपात्र था एक समय सूरिजी की आज्ञा लेकर कई मुनियों के साथ उसने सिन्धभूमि में विहार किया। क्रमशः वह विहार करता वीरपुरनगर में पहुंचा। वहां पर एक सन्यासी आया हुआ था वह अपने योग वल से पृथ्वी से अधर रहकर जनता को चमत्कार बतलाकर सद्धर्म से पतित बना रहा था। ठीक उसी समय धर्ममूर्ति नामका वाचानाचार्य वहां पधार गये। जैनसंघने आपका अच्छा स्वागत किया और वहां के सन्यासी का सब हाल कह सुनाया। इस पर धर्म मूर्ति ने कहा श्रावकों। इस चमत्कार से आत्मकल्याण नहीं है। ये तो योग विद्या है और जिसका अभ्यास किया हुआ होता है वह योग विद्या के बलसे अधर रह सकता है। श्रावकों ने कहा कि महाराज भले ही इससे आत्मकल्याण नहीं होगा पर भद्रिकजनता इससे विस्मित होकर उसकी अनुयायी बन जाती है। तब क्या अपने जैन में में ऐसी विद्या नहीं है मूर्तिजी ने कहा कि नास्ति नही है। श्रावकों ने कहा कि नास्ति नहीं है तो फिर वे विद्यायें किस काम की हैं कि धर्म का ध्वंश होता हो तब भी काम में न ली जांय ? वाचनाचार्य्य ने कहा ठीक है। कल मैं पाट पर बैठ कर व्याख्यान दुंगा आप पाट को निकाल लेना बस, दूसरे दिन वाचनाचार्य्य का व्याख्यान आम मैदान में हुआ। हजारों मनुष्य व्याख्यान सुनने को एकत्र हुये थे थोड़ासा व्याख्यान हुआ कि श्रावकों ने पाटा को खींच लिया तो वाचनाचार्य्य अधर रहकर व्याख्यान बांचने लगे जिस को देखकर जनता आश्चर्यमुग्ध बनगई। इस बात को सन्यासीजी ने सुनी तो उसने सोचा कि इस जैनसाधु के पास कितनी विद्या होगी। वे चलकर वाचनाचार्य्य के पास आये और बड़े ही शिष्टाचार से बातें करने लगे। आखिर उन्होंने कहा कि मुनिजी मेरे पास जो विद्या है वह एक जनाचार्य्य से ही मैंने प्राप्त की है, कृपा करके आपभी कुछ यादगारी बक्सावें वाचानाचार्य्यजी ने कहा महात्माजी आप उसी विद्या की खोज करो जिससे जन्म मरणके

# जैन व्यापारियों का पाश्चात्य प्रदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध

इस बात का पता लगना कठिन है कि भारतीय व्यापारियों का व्यापार सम्बन्ध पाश्चात्य प्रदेशों के साथ कब से प्रारम्भ हुआ था ? फिर भी हमारे चरित्रादि प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है कि इतिहास काल के पूर्व हजारों वर्षों से भारतीय व्यापारियों का व्यापार सम्बन्ध पाश्चात्य प्रदेशों के साथ था और वे जल और थल दोनों रास्तों से पाश्चात्य प्रदेशों में आया जाया करते थे। उदाहरण के तौर पर श्रीज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के आठवें अध्ययन में उल्लेख मिलता है कि चम्पा नगरी का अरणक नाम का जैन व्यापारी जहाजों में पुष्कल माल लेकर समुद्र को पार कर पाश्चात्य प्रदेश में व्यापारार्थ गया था इसी सूत्र के नौवें अध्ययन में जिनरिख और जिनपाल दो भाइयों के वर्णन में कहा है कि इन दोनों बन्धुओं ने ११ बार जहाजों द्वारा पाश्चात्य प्रदेशों में व्यापार किया और वापिस आये। जब बारहवीं बार वे पुनः जहाजें लेकर गये तो वापिस लौटते समय उनको किसी देवी का उपसर्ग हुआ था। राजा श्रीपाल के चरित्र में भी उल्लेख मिलता है कि वे कोसंबी नगरी के धवल सेठ के साथ भरोंच नगर से पांच सौ जहाजें लेकर बबरकुल और रत्नद्वीप में गये। वहां केवल व्यापार ही नहीं पर दोनों स्थानों के राजाओं की कन्याओं के साथ राजा श्रीपाल ने विवाह भी किया था इनके अलावा भी बहुत से उल्लेख मिलते हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ और प्रभु महावीर के अन्तर काल में भी कई व्यापारी लोग पाश्चात्य प्रदेशों में व्यापारार्थ गये इतना ही क्यों पर उन भारतीय व्यापारियों ने वहां के लोगों को कई प्रकार की सभ्यता भी सिखाई थी और व्यापार की सुविधा के लिये धातु के सिक्कों का आविष्कार भी किया था। भारतीय व्यापारी किसी को कर हासल नहीं देते थे और उन्होंने वहां जाकर अपना उपनिवेश भी स्थापित किया था।

जब हम भगवान महावीर और उनके पीछे के समय को देखते हैं तो ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय व्यापारियों का ही क्यों पर कई राजाओं का भी पाश्चात्य प्रदेशों के साथ सम्बन्ध रहा दृष्टिगोचर होता है जैसे राजगृह का राजा श्रेणिक ( बिंबसार ) का आर्द्रकपुर नगर के राजा के साथ अच्छा सम्बन्ध था और उस सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाने के लिए श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार ने आर्द्रकपुर के राजकुमार आर्द्रक के लिये भगवान् आदीश्वर की मूर्ति भेजी थी जिसको देख आर्द्रककुंवर को बोध हुआ और उसने भगवान महावीर के पास आकर दीक्षा ली थी जब आर्द्रकुंवर ने जैन दीक्षा ली तो उसने अपनी जन्मभूमि में भी जैनधर्म का अवश्य प्रचार किया होगा। इसका उल्लेख सूत्रकृताङ्ग सूत्र की टीका में है।

श्री भगवतीसूत्र के नौवां शतक और ३३ वां उद्देशा में महान कुंडनगर का अधिपति ऋषभदत्त और आपकी गृहदेवी देवानन्दा का वर्णन चलता है जो भगवान के माता पिता थे उनके घर में पारस बबरादि अठारह देश की दासियां थीं जैसे—

"बहूहिं खुज्जहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडाहियाहिं बब्बरयाहिं ईसिगणियाहिं जाण्हियाहिं चारुगणियहिं पल्लवियाहिं ल्यासयहिं लाउसियाहिं आरबीहिं दमिलिहिं सिंघलीहिं पुलिंदीहिं पुक्खलीहिं मुरंडीहिं सबरिहिं पारसीहिं नाणदेसीहिं × × संदेसनेवत्थ गहिया वेसाहिं इत्यादि।

इससे पाया जाता है कि उस समय भारतीयों का पाश्चात्य देशों के साथ केवल व्यापार ही क्यों पर

करो और बाद में कहूँ वैसे तपस्या करो । आकाशगामिनी विद्या तो क्या पर आत्मा में अनंत विद्यायें एवं लब्धियें छिपी हुई हैं वे प्रगट हो सकती हैं । बस फिर तो देरी ही क्या थी। सन्यासीजी ने महाप्रभाविक तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर मुनि नागप्रभ के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली और तप संयम की आराधना में लग गया ज्यों २ आपको जैनधर्म का तात्त्विक ज्ञान होता गया त्यों २ आशा और तृष्णा मिटती गई इस प्रकार नागप्रभ ने अनेक भव्यों का उद्धार किया ।

५—पं० न्यायमुनि नाम का एक विद्वान मुनि था । देवी का उसको वरदान था कि आप शास्त्रार्थ में सदैव विजयी रहोगे । आपने कई राजसभाओं में बौद्धों एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म का विजय झंडा फहराया था । आपके विषय पट्टावली कार ने बहुत विस्तार से लिखा है । भरोंच, जावलीपुर, चन्द्रावती, उज्जैन, मथुरा, शिवनगर वगैरह बहुत स्थानों में वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी । इत्यादि सूरीश्वरजी के शासन में ऐसे अनेक विद्या सम्पन्न साधु थे कि जिन्होंने जैनधर्म की खूब उन्नति की ।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी महाराज नौ वर्ष उपाध्याय पद और तीन वर्ष सूरिपद पर रह कर जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया । कई भावुकों के निकाले हुए संघ के साथ तीर्थयात्रा की । कई मुमुक्षुओं को जैन-दीक्षा दे श्रमणसंघ में वृद्धि की कई मांस मदिरादि कुव्यसन सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार किया कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैनधर्म को चिरस्थायी बनाया आदि आपने अपने जीवन में अनेक शुभ कार्य्य कर संसार का उद्धार किया । अन्त में आप अपना आयुष्य को नजदीक जानकर श्रीशत्रुं-जयतीर्थ की शीतल छाया में विक्रम सं० १७७ में अपने पट्टपर मुनि राजहंस को सूरि बना कर उनका नाम सिद्ध सूरि रख दिया और आप १३ दिन के अनशनपूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये ।

अदित्यनाग कुल आप दिवाकर, देवगुप्त यशधारी थे ।<br>
सरस्वती की पूर्ण कृपा, सद्ज्ञान विस्तारी थे ॥<br>
दर्शन ज्ञान चरण गुण उत्तम, पुरुषार्थ में पूरे थे ।<br>
वन्दन उनके चरण कमलमें, तप तपने में सूरे थे ॥

। इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के १९ वें पट्टपर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक आचार्य हुए ।

सम्राट चन्द्रगुप्त के इतिहास पढ़ने से यह भी पता लगजाता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने कितने ही पाश्चात्य प्रदेश पर अपना राज स्थापित कर दिया था। इससे भारतीय व्यापारियों को और भी सुविधा होगई थी कि वे पुष्कल प्रमाण में व्यापारार्थ जाया आया करते थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के समय एक देश के राजदूत दूसरे देशों में आया जाया करते थे और राजाओं की सभा में रहते भी थे। जैसे यूनानी राजदूत मेगस्थनीज सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में रहता था। कई लोग यात्रार्थ भी एक दूसरे देशों में आया जाया करते थे जिससे मालूम होजाता था कि कौन से देश में क्या रीतरिवाज हैं, कौन से पदार्थ पैदा होते हैं क्या क्या कला कोशल व्यापार वगैह वगैरह हैं इत्यादि। सम्राट चन्द्रगुप्त ने पाश्चात्य राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह भी किया था।

सम्राट सम्प्रति के समय तो पाश्चात्य देश भारत का एक प्रान्त ही वैसा बनगया था। सम्राट राजा सम्प्रति कट्टरजैन था और उसने जैन धर्म के प्रचारार्थ अपने सुभटों को जैन मुनियों का वेष पहिना कर अनार्य देशों में भेजे थे और उन नकली साधुओं ने पाश्चात्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी तथा जैन मुनियों का आचार विचार समझाया जिससे बाद में जैनसाधुओं ने भी पाश्चात्य प्रदेशों में भ्रमण कर जैन धर्म का प्रचार बढाया तथा सम्राट सम्प्रति ने उन पाश्चात्य लोगों के कल्याणार्थ अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई जिसके खण्डहर भूगर्भ से आज भी निकल रहे हैं जैसे आस्ट्रीया में भगवान महावीर की मूर्ति तथा अमरीका में सिद्धचक्र जी का गटा आदि। इतना ही क्यों पर मक्का में जैन मंदिर तो चौदहवीं शताब्दी तक विद्यमान थे बाद जब वहाँ जैनों की बस्ती नहीं रही तब वहाँ की मूर्तियों मधुमति ( महुआ ) के व्यापारियों ने वहाँ से उठाकर अपने नगर में ले आये। सारांश यह है कि जब पाश्चात्य प्रदेशों में जैन धर्मका इतना प्रचार बढ़ गया था और जैन साधु वहां जाने आने लगगये थे तो जैन व्यापारी वहाँ व्यापारार्थ बहुत गहरी तादादमें जांय इसमेंअसंभव जैसी कोई बात भी नहीं है। इतनाही क्यों पर बहुत जैन व्यापारि ने तो व्यापार के लिये वहाँ अपनी दुकाने भी खोल दी थीं और वे खुद तथा उनके वेतनदार मुनीम गुमास्ता एवं नौकर हमेशा के लिये वहाँ रहते थे।

सम्राट सम्प्रति के बाद के समय के तो पुष्कल प्रमाण मिलते हैं कि जैन व्यापारी व्यापारार्थ पाश्चात्य देशों में जल एवं थल के रास्ते व्यापारार्थ जाते आते थे उसका उल्लेख पट्टावलियों में मिलता है परन्तु पट्टावल्यादि में विशेष वर्णन धार्मिक कार्यों का ही है अतः कहीं प्रसंगोपात् ही व्यापार का उल्लेख किया है जो कुछ मिला है वह मैंने इस ग्रन्थ में ग्रन्थित कर दिया है।

अब कुछ आजकल के इतिहास संशोधकों के प्रमाण भी यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं। कि वे लोग क्या कहते हैं उनका उल्लेख करने के पूर्व एक बात का खास तौर पर खुलासा कर देना जरूरी है जैसे कि-

"भारत में किसी भी धर्म को पालन करने वाले लोग क्यों न हों परन्तु पाश्चात्य लोग उनको भारतीय लोग एवं बाद में हिन्दू जाति के नाम से पुकारते थे एवं लिखते थे क्योंकि वे भारत एवं हिन्दुस्तान में रहने वाले थे जैसे पाश्चात्य देशों के लोग किसी धर्म के पालने वाले क्यों न हों पर हम उनकों यूरोपियन जाति के ही कहेंगे। यह नाम उनके देश को लक्ष्य में रख कर ही कहे जाते हैं। इतनी दूर क्यों जाते हो पर केवल एक भारत को ही देखिये बंगाल में रहने वाले बंगाली,मारवाड़ में रहने वाले मारवाड़ी,गुजरात में रहने वाले गुजराती के नाम से पुकारे जाते हैं। सारांश यह है कि यह नाम धर्म या वर्णों के साथ सम्बन्ध नहीं रखते

वैवाहिक सम्बन्ध भी था। कारण, राजाओं में यह रिवाज था कि जब अपनी कन्या की शादी करते थे तो धन माल के साथ दासियां भी दिया करते थे और यह रिवाज आज भी राजा एवं राजपूतों में विद्यमान है।

भगवान् महावीर के उपासकों की संख्या यों तो करोड़ों की थी परन्तु उनमें १५९००० तो उत्कृष्ट व्रतधारी श्रावक थे ऐसा कल्पसूत्र में लिखा है और उपासकदशाङ्ग सूत्र में आनन्दादि दस श्रावकों का वर्णन किया है ये दशों श्रावक गाथापति-वैश्य अर्थात् व्यापारी थे जिसमें आनन्द वाणिया माम नगर में रहता था सिवानन्द नामक उसके स्त्री थी। बारह करोड़ सोनइयों का उसके पास द्रव्य था जिसमें चार करोड़ तो भूमि में जमा रखता था, चार करोड़ का जेवर भूमि आदि स्टेट था और चार करोड़ व्यापार में लगे रहते थे। आनन्द के गायें भी पुष्कल थी, चार गोकल गायों के थे और प्रत्येक गोकल में दश-दश हजार गायें थीं। आनन्द के ५०० हल भूमि थी जिसमें वह खेती करता करावा था। आनन्द का व्यापार भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य देशों के साथ थी भी और समुद्री व्यापार के लिये चार बड़े और चार छोटे जहाज भी थे और पांच सो गाड़े भारत के व्यापार के लिये और पांच सो गाड़े जहाजों पर माल लाने और पहुँचाने के लिये रहते थे। इससे पाया जाता है कि आनन्द का समुद्री व्यापार विशाल था तब ही तो पांच सो गाड़े केवल जहाजों पर माल पहुँचाने को एवं लाने को रख छोड़े थे। इसी प्रकार शेष नौ श्रावकों का व्यवसाय था जिसको हम निम्न कोष्टक में दे देते हैं।

| सं | श्रावक नाम | नगर | द्रव्यकोटि | भूमि में | व्यापारमें | घरस्टेट | गोकल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | आनन्द | वानियग्राम | १२ करोड़ | ४ करोड़ | ४ करोड़ | ४ करोड़ | ४ |
| २ | कामदेव | चम्पानगरी | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ३ | चूलनिपति | बनारसी | २४ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ |
| ४ | सुरादेव | बनारसी | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ५ | चूळशतक | आलंभिया | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ६ | कुंडकोलिक | कपीलपुर | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ७ | शकडाल | पोलासपुर | ३ ,, | १ ,, | १ ,, | १ ,, | १ |
| ८ | महाशनक | राजगृह | २४ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ |
| ९ | नन्दनीपिता | सावत्थी | १२ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ |
| १० | शालिनी पिता | सावत्थी | १२ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ |

शेष आनन्द के सदृश बतलाया है। अतः इनका व्यापार भी आनन्द की तरह पाश्चात्य प्रदेशों में था

सम्राट चन्द्रगुप्त के इतिहास पढ़ने से यह भी पता लगजाता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने कितने ही पाश्चात्य प्रदेश पर अपना राज स्थापित कर दिया था। इससे भारतीय व्यापारियों को और भी सुविधा होगई थी कि वे पुष्कल प्रमाण में व्यापारार्थ जाया आया करते थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के समय एक देश के राजदूत दूसरे देशों में आया जाया करते थे और राजाओं की सभा में रहते भी थे। जैसे यूनानी राजदूत मेगास्थनीज सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में रहता था। कई लोग यात्रार्थ भी एक दूसरे देशों में आया जाया करते थे जिससे मालूम होजाता था कि कौन से देश में क्या रीतरिवाज हैं, कौन से पदार्थ पैदा होते हैं क्या क्या कला कौशल व्यापार वगैह वगैरह हैं इत्यादि। सम्राट चन्द्रगुप्त ने पाश्चात्य राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह भी किया था।

सम्राट सम्प्रति के समय तो पाश्चात्य देश भारत का एक प्रान्त ही वैसा बनगया था। सम्राट राजा सम्प्रति कट्टरजैन था और उसने जैन धर्म के प्रचारार्थ अपने सुभटों को जैन मुनियों का वेष पहिना कर अनार्य देशों में भेजे थे और उन नकली साधुओं ने पाश्चात्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी तथा जैन मुनियों का आचार विचार समझाया जिससे बाद में जैनसाधुओं ने भी पाश्चात्य प्रदेशों में भ्रमण कर जैन धर्म का प्रचार बढाया तथा सम्राट सम्प्रति ने उन पाश्चात्य लोगों के कल्याणार्थ अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई जिसके खण्डहर भूगर्भ से आज भी निकल रहे हैं जैसे आस्ट्रीया में भगवान महावीर की मूर्ति तथा अमरीका में सिद्धचक्र जी का गटा आदि। इतना ही क्यों पर मक्का में जैन मंदिर तो चौदहवीं शताब्दी तक विद्यमान थे बाद जब वहाँ जैनों की बस्ती नहीं रही तब वहाँ की मूर्तियां मधुमति (महुआ) के व्यापारियों ने वहाँ से उठाकर अपने नगर में ले आये। सारांश यह है कि जब पाश्चात्य प्रदेशों में जैन धर्मका इतना प्रचार बढ गया था और जैन साधु वहां जाने आने लगगये थे तो जैन व्यापारी वहाँ व्यापारार्थ बहुत गहरी तादादमें जांय इसमें असंभव जैसी कोई बात भी नहीं है। इतनाही क्यों पर बहुत जैन व्यापारि ने तो व्यापार के लिये वहाँ अपनी दुकाने भी खोल दी थीं और वे खुद तथा उनके वेतनदार मुनीम गुमास्ता एवं नौकर हमेशा के लिये वहाँ रहते थे।

सम्राट सम्प्रति के बाद के समय के तो पुष्कल प्रमाण मिलते हैं कि जैन व्यापारी व्यापारार्थ पाश्चात्य देशों में जल एवं थल के रास्ते व्यापारार्थ जाते आते थे उसका उल्लेख पट्टावलियों में मिलता है परन्तु पट्टावल्यदि में विशेष वर्णन धार्मिक कार्यों का ही है अतः कहीं प्रसंगोपात् ही व्यापार का उल्लेख किया है जो कुछ मिला है वह मैंने इस ग्रन्थ में ग्रन्थित कर दिया है।

अब कुछ आजकल के इतिहास संशोधकों के प्रमाण भी यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं। कि वे लोग क्या कहते हैं उनका उल्लेख करने के पूर्व एक बात का खास तौर पर खुलासा कर देना जरूरी है जैसे कि—

"भारत में किसी भी धर्म को पालन करने वाले लोग क्यों न हों परन्तु पाश्चात्य लोग उनको भारतीय लोग एवं बाद में हिन्दू जाति के नाम से पुकारते थे एवं लिखते थे क्योंकि वे भारत एवं हिन्दुस्तान में रहने वाले थे जैसे पाश्चात्य देशों के लोग किसी धर्म के पालने वाले क्यों न हों पर हम उनकों यूरोपियन जाति के ही कहेंगे। यह नाम उनके देश को लक्ष्य में रख कर ही कहे जाते हैं। इतनी दूर क्यों जावें हो पर केवल एक भारत को ही देखिये बंगाल में रहने वाले बंगाली, मारवाड़ में रहने वाले मारवाड़ी, गुजरात में रहने वाले गुजराती के नाम से पुकारे जाते हैं। सारांश यह है कि यह नाम धर्म या वर्ण के साथ सम्बन्ध नहीं रखते

वैवाहिक सम्बन्ध भी था। कारण, राजाओं में यह रिवाज था कि जब अपनी कन्या की शादी करते थे तो धन माल के साथ दासियां भी दिया करते थे और यह रिवाज आज भी राजा एवं राजपूतों में विद्यमान है।

भगवान् महावीर के उपासकों की संख्या यों तो करोड़ों की थी परन्तु उनमें १५९००० तो उत्कृष्ट व्रतधारी श्रावक थे ऐसा कल्पसूत्र में लिखा है और उपासकदशाङ्ग सूत्र में आनन्दादि दस श्रावकों का वर्णन किया है ये दशों श्रावक गाथापति-वैश्य अर्थात् व्यापारी थे जिसमें आनन्द वाणिया ग्राम नगर में रहता था सिवानन्द नामक उसके स्त्री थी। बारह करोड़ सोनइयों का उसके पास द्रव्य था जिसमें चार करोड़ तो भूमि में जमा रखता था, चार करोड़ का जेवर भूमि आदि स्टेट था और चार करोड़ व्यापार में लगे रहते थे। आनन्द के गायें भी पुष्कल थी, चार गोकल गायों के थे और प्रत्येक गोकल में दश-दश हजार गायें थीं। आनन्द के ५०० हल भूमि थी जिसमें वह खेती करता कराता था। आनन्द का व्यापार भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य देशों के साथ थी भी और समुद्री व्यापार के लिये चार बड़े और चार छोटे जहाज भी थे और पांच सौ गाड़े भारत के व्यापार के लिये और पांच सौ गाड़े जहाजों पर माल लाने और पहुँचाने के लिये रहते थे। इससे पाया जाता है कि आनन्द का समुद्री व्यापार विशाल था तब ही तो पांच सौ गाड़े केवल जहाजों पर माल पहुँचाने को एवं लाने को रख छोड़े थे। इसी प्रकार शेष नौ श्रावकों का व्यवसाय था जिसको हम निम्न कोष्टक में दे देते हैं।

| सं | श्रावक नाम | नगर | द्रव्यकोटि | भूमि में | व्यापारमें | घरस्टेट | गोकल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | आनन्द | वानियग्राम | १२ करोड | ४ करोड | ४ करोड | ४ करोड | ४ |
| २ | कामदेव | चम्पानगरी | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ३ | चूलनिपति | बनारसी | २४ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ |
| ४ | सूरादेव | बनारसी | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ५ | चूलशतक | आलंभिया | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ६ | कुंडकोलिक | कपीलपुर | १८ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ ,, | ६ |
| ७ | शकडाल | पोलासपुर | ३ ,, | १ ,, | १ ,, | १ ,, | १ |
| ८ | महाशतक | राजगृह | २४ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ ,, | ८ |
| ९ | नन्दनीपिता | सावत्थी | १२ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ |
| १० | शालिनी पिता | सावत्थी | १२ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ ,, | ४ |

शेष आनन्द के सदृश बतलाया है। अतः इनका व्यापार भी आनन्द की तरह पाश्चात्य प्रदेशों में था

अपने व्यापार की सुविधा के लिए धातु मुद्राओं का आविष्कार किया था उनके अनुकरण में फिर वहाँ के एकों ने अपने राज में मुद्रायें चलाई।

२—मृच्छकटिक नाटक में राजधानी के बीच "श्रेष्टिचत्वर" का उल्लेख है। श्रेष्टि चत्त्वर को लोग धनकुबेर कहा करते थे। भारत के सभी प्रधान २ व्यापारिक केन्द्रों में उनकी कोठियां थी। भिन्न भिन्न प्रकार के जवाहिरात, और रेशमी मुल्यवान वस्त्र का व्यापार बहुत होता था। तथा अटूट धनराशि नगर की एकान्त गली में, अन्धकारपूर्ण कोठरी में रक्षित रखी जाती थी। आवश्यकता होने पर राजामहाराजों को भी उनसे कर्ज लेना पड़ता था। उन लोगों में अहंकार या गौरव की भावनाएं नहीं थीं वे अपनी जाती का पालन करते थे। विशाल देवालय स्थापित करके देवता और गुरु के प्रति भक्त दिखा कर उन्होंने यश प्राप्त किया था इत्यादि उल्लेख मिलता है।

३—एक फान्सीसी लाकूपेरी पुरातत्ववेत्ता ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ई० स० पूर्व सातवें वर्ष में भारतीय व्यापारी गण चीन में व्यापारार्थ आये थे और उन्होंने वहाँ धातु की मुद्रा प्रचलित की थी इतना ही क्यों पर ई० स० पूर्व ६०० वर्ष उपसागर के चारों और भारतीय व्यापारी फैल गये थे और वर्तमान में जैसे यूरोपियन शक्तिशाली हैं वैसे ही प्राचीन समय में भारतीय व्यापारी भी ऐसे ही शक्तिशाली थे कि अपनी शक्ति से वे लोग वहाँ उपनिवेश स्थापित करते थे।

४—ई० स० पूर्व छट्ठी शताब्दी में चीन में एक मुद्रासंघ स्थापित किया था जिसमें चीन के व्यापारियों ने सहयोग दिया था व मुद्रायें वर्तमान में भी उपलब्ध होती हैं अर्थात् भारतीय वस्तुओं की चीन वाले बड़ी कदर करते थे और बड़ी रुचि से खरीद भी करते थे।

५—केवल चीन देश में अपना वाणीज्य प्रसार करके भारतीय व्यापारियों ने अपने साहस का अन्त नहीं किया। प्रत्युत पाश्चात्य प्रदेश में और भी कई देशों में उन्होंने अपने व्यापारिक अस्तित्व को कायम किया, जिसका उल्लेख उन देशों के इतिहास में मिलता है।

६—ग्रीस देश के वणिक एरियन ने अपने 'पेरिप्लस' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भारतीय व्यापारी अरब देश के पूड़ेमन नगर मे उतरा करते थे और मिश्र के व्यापारी वहाँ से उनके पास से भारतीय वस्तुयें खरीद लिया करते थे। मिश्रदेश के वासी भारतीय वाणिकों के संसर्ग में आने के पूर्व कपास का व्यवहार करना नहीं जानते थे। स्ट्रेबोने लिखा है कि भारत ही कपास की जन्मभूमि है। वाणिज्य के द्वारा वह क्रमशः मिश्र और दूसरे देशों में पहुँचा !

७—एरियन-ईसा की पहिली शताब्दी में मिश्र से भारत में व्यापार करने के लिये आया था। उसने अपने ग्रन्थ में दक्षिण भारत के निवासियों के लिये वाणिज्य सम्बन्धी प्रभाव का वर्णन विस्तार से किया है।

८—जावा द्वीप के इतिहास में लिखा है कि ईसवी सन् से ७५ वर्ष पूर्व हिन्दू वाणिक कलङ्ग देश से इस द्वीप में गये थे और उन्होंने वहाँ अपना एक संवत् भी प्रचलित किया था।

९—इसवी सन् पहली शताब्दी में युनानी हिसमाइस मिश्र से भारत में आया था उसने भारत में घूमघूम कर व्यापार के केन्द्र स्थानों का निरीक्षण किया था।

१०—अलेक जैडियस पन्टेनस ईसाई पादरी बनकर ई० स० १३८ में भारत में आया था वहाँ का व्यापार देखकर पुनः अपने देश में जाकर वहाँ के लोगों कों व्यापारिक शिक्षा दे कर प्रचार किया था।

हैं पर केवल देश के साथ ही सम्बन्ध रखते हैं। अतः हिन्दुस्थान में रहने वाले लोग हिन्दूजाति के नाम से ही लिखे गये हैं। इतिहासकारों ने जिस हिन्दूजाति का उल्लेख किया है उसमें जैन बौद्ध वेदान्ति वगैरह सब शामिल हैं परन्तु व्यापार करने में अधिक संख्या जैन जातियों की ही थी। कारण,भगवान् महावीर के उपासकों में वैश्यवर्ण वाले अधिक थे बाद में आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना की उसमें अधिक क्षत्री वर्ण के लोग थे। वैश्य एवं व्यापारी लोग भी कम नहीं थे और जो क्षत्री लोग थे उनसे भी कई लोग अपनी सुविधा के लिये धीरे-धीरे व्यापार करने लग गये। इसका अर्थ यह तो कदापि नहीं हो सकता है कि जैनधर्म पालने वाले सब वैश्य ही थे; पर बहुत से राजा एवं राजपूत भी थे। किन्तु जहाँ करोड़ों की संख्या हो वहाँ सब तरह के लोग हुआ करते हैं। हाँ, जैनधर्म पालन करने वालों में अधिक लोग क्षत्रिय और वैश्य ही थे अतः व्यापार में अधिक हिस्सा जैन व्यापारियों का ही था उसमें भी अधिक भाग उपकेशवंशियों का था 'उपकेशे बहुलं द्रव्यं' यह वरदान भी व्यापार को लक्ष्य में रख कर ही दिया गया था। तदनुसार उपकेशवंशीय व्यापारियों ने व्यापार में पुष्कलद्रव्य उपार्जन किया। यही कारण है कि उपकेशवंशीय ने एक एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर दिया। एक एक दुकाल में देशवासी भाइयों के प्राणबचाने को करोड़ों द्रव्य खर्च कर दिया यह सब व्यापार का ही सुन्दर फल था।

जैन व्यापारियों में कई एक वीर क्षत्रीय थे उन्होंने विदेशों में जाकर उपनिवेश स्थापना किये हों और वहाँ के राजाओं को कर नहीं दिया हो तो यह बात संभव हो सकती है और यह कार्य वीरोचित भी है।

अब थोड़ा सा खुलासा धर्म के विषय में भी कर दिया जाता है। जैन धर्म और बौद्धधर्म ये दोनों पृथक् २ धर्म हैं परन्तु वेदान्तियों की हिंसा के लिये दोनों धर्मों का उपदेश मिलता जुलता ही था। वेदान्ति लोग दोनों धर्मवालों को नास्तिक कहते एवं लिखते थे। बौद्धधर्म का पाश्चात्य प्रदेशों में अधिक प्रचार होगया था अतः पाश्चात्य लोगों ने जैनों को भी बौद्ध ही लिख दिया है। यही कारण है कि थोड़ा अर्सा पूर्व लोगों की धारणा थी कि जैन और बौद्ध एक ही धर्म है तथा जैन एक बौद्धों की शाखा है अतः इस भ्रान्ति के कारण जैनधर्मोपासकों के किये हुये कार्य्यों को बौद्धों के नामपर चढ़ा दिये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में जैनों ने पाश्चात्य प्रदेशों में जैनधर्म का काफी प्रचार किया था फिर भी आज वहाँ जैनधर्म के स्मारक चिन्हों के अलावा जैनधर्मोपासक नहीं मिलते हैं इसका क्या कारण होगा ? इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैनधर्म में साधुओं के आचार विचार के नियम इतने सख्त होते हैं। कि देशान्तर में जाने में उनको बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब भारत में लगातार कई वर्षों तक जनसंहारक भयंकर दुष्काल पड़ा उस विकट परिस्थिति में जैनश्रमणों का पाश्चात्य प्रदेशों में विहार बन्द होगया फिर पीछे कोई साधु वहाँ पहुँच नहीं सका। तब बौद्धभिक्षुओं के लिये सब प्रकार की सुविधा होने से उनका वहाँ भ्रमण रहा अतः बौद्धों का प्रचार बढ़ गया। यही कारण है कि पिछले लेखकों ने जैनों के किये हुये कार्य को बौद्धों के नाम से लिख दिये। जब जैनग्रन्थों को सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करने से पता लगता है कि एक समय पाश्चात्य प्रदेशों में जैनधर्म का काफी प्रचार था और उन्होंने जन कल्याण कारी कार्य किया है।

प्रसंगोपात् इतना लिखने के पश्चात् अब हम वर्तमान इतिहास संशोधकों की ओर पाठकों का लक्ष दोराते हुए उनके लेखों सेकतिपय प्रमाण यहाँ उद्धृत कर देते हैं:—

१—चीन की मुद्राओं का इतिहास देखा जाय तो सब से पहिले भारतीय शक्तिशाली व्यापारियों ने

व्यापार में करोड़ों रुपये पैदा करते थे। दूसरे उनका सत्यशील और धर्म की श्रद्धाही ऐसी थी कि लक्ष्मी तो उनके घरों में दासी बनकर रहती थी उन पुन्य के ही कारण किसी को चित्रावल्ली किसी को पारस किसी को तेजमतुरी और किसी को सुवर्ण सिद्धि रसायन मिल जाती थी और उनसे पैदा हुआ द्रव्य सद् कार्य में लगाया करते थे जैसे।

१—श्रीमान् जावड़ शाह को तेजमतुरी मिली थी उसने उस द्रव्य से पुनीत तीर्थश्री शत्रुंजय महातीर्थ का उद्धार करवा कर आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई।

२—श्रीमान् रांका वांका श्रेष्टि को सुवर्ण सिद्धि रसायन मिली थी उसने कई जनोपयोगी कार्य किये।

३—श्रीमान् पेथड़शाह को चित्रावली मिली जिससे उसने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला और रास्ता में चलता चलता ८४ मन्दिरों की नावें लगवाई—

४—श्रीजगडूशाह जिसको तेजमतुरी मिली जिससे वि० सं० १३१३-१४-१५ तीन वर्ष लगातार दुकाल पड़ा जिसमें करोड़ों द्रव्य खर्च कर देशवासी भाइयों के प्राण बचाये।

५—श्रीसारंगशाह को पारस मिला था जिससे भी उसने कई दुकाल मे अन्न और घास मंगवाकर मनुष्यों एवं पशुओं को प्राण दान दिया। और श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकाला

इत्यादि अनेक ऐसे उदाहरण हैं कि इस ग्रन्थ में यथास्थान दर्ज कर दिये जायंगे। इनके अलावा भारतीय विद्वानों ने भी स्वरचित इतिहास ग्रन्थों में इस विषय का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है कि भारतीय व्यापारियों का विदेशों के साथ जल और थल मार्ग से विस्तृत प्रमाण में व्यापार होता था तथा भारतीय लोगों ने पश्चात्य देशों में अनेक वार भ्रमण किया इतनाही क्यों पर भारतियों ने तो विदेश में जाकर उपनिवेश स्थापना कर उन प्रदेशों को अपना निवास स्थान भी बना दिया था। इस विषय में सरस्वती मासिक के सम्पादक श्रीमहावीर प्रसादजी द्विवेदी जी ने एक महत्व पूर्ण लेख लिख सरस्वती मासिक में प्रकाशित करवाया है पाठकों के पढ़नार्थ उस लेख को ज्यों का त्यों यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है।

## प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का प्रचार

"पश्चिमी देशों के इतिहासज्ञ पुरातत्त्ववेत्ता, और पारदर्शी विद्वानों ने अभ्रान्त प्रमाणों और प्रबल युक्तियों से सिद्ध कर दिखाया है कि पृथ्वी मंडल पर विद्या, ज्ञान, कला, कौशल और सभ्यता का जन्मदाता भारतवर्ष ही है। वे भारतवासियों ही की सन्तानें थीं जिन्होंने प्राचीन समय में अनेक देश देशान्तरों में जाकर वहाँ सभ्यता फैलाई। प्राचीन भारत वासियों ही ने उन महान् और प्रभावशाली साम्राज्यों की स्थापना की। जिनका गौरव एव वर्णन प्राचीन इतिहास के पृष्ठों पर ही नहीं लिखा गया किन्तु उनके स्मारक चिन्ह एशिया, यूरुप, अफ्रीका और अमरीका में आज तक वर्तमान हैं। वे स्मारक चिन्ह प्राचीन हिन्दू जाति ( भारतियों ) के महान अद्भुत कार्यों के प्रमाण हैं।

यजुर्वेद अध्याय ६ और मनुस्मृति वगैरह शास्त्रों में तथा कितनी ही कथायें हैं जिसमें भारतवर्ष के मनुष्यों और महात्माओं का अमरीका जाना सिद्ध होता है। महात्मा व्यासजी शुकदेवजी के साथ अमरीका गये और वहाँ कुछ काल ठहरे थे। शुकदेवजी यूरोप ( जिसे प्राचीन आर्य हीरदेश कहते थे ) ईरान और तुर्किस्तान होकर लौट आये। इस यात्रा में तीन वर्ष लगे थे। यह वृत्तान्त महाभारत में

११—ईस्वी सन् २०० पूर्व से ई० स० २०० तक मिश्र निवासी लाल जाति के तथा भीतर पैथन और टगौर से बंगाल की खाड़ी तक व्यापार के लिये आते थे।

इनके अलावा भी इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे कहा जा सकता है कि भारत व्यापार की जन्म भूमि हैं अन्य देशों ने व्यापारिक शिक्षा भारत से ही पाई है। पश्चात्य लोग भारत के माल को बड़ी रूची से खरीदते और काम में लेते थे वे भारतीय जहाजों की हमेशाँ प्रतिक्षा किया करते थे—

अब थोड़े भारतीय उन प्रदेशों का नामोल्लेख कर दिये जाते है कि जहाँ बड़े बड़े प्रमाण में माल तैयार होता था और वे व्यापार के लिये केन्द्र कहलाते थे। पाश्चात्य लोग वहाँ से माल ले जाते थे।

१—भरोंचनगर पुराणे जमाने मे ही व्यापार का केन्द्र रहा है। कोसंबी नगरी का धवल श्रेष्टि पांचसौ जहाजें लेकर भरोंचनगर में आया था अपना माल बेचकर वहां से अन्य माल खरीद कर जहाजें भरकर पश्चात्य देश में ले गया था।

२—शौर्यपुर नगर में सोनारूपापारा की छापका व कपड़ा पर जरी बुटें आदि का कम थोकबन्ध होता था जहाजें बनाने के बड़े २ कारखाने थे जिसमें ५०० से १००० टन वजन वाले जहाज तैयार होते थे।

३—रांदेर-यह पहले बड़ा नगर था यहाँ पुष्कल व्यापार होता था

४—वल्लभी नगरी-यह भी पुरांणा जमाने से व्यापार का मथक था।

५—अंकलेश्वर-यहाँ कागज बहुत प्रमाण में बनते थे और भारत के अलावा विदेश में भी जाते थे।

६—महाराष्ट्रय प्रान्त के केवला जिला भी एक व्यापार का केन्द्र था विदेशी लोग वहाँ आया जाया करते थे और जथ्था बन्ध माल खरीद कर अपने देशों में ले जाया करते थे।

७—सोपार पट्टन-यह भी एक व्यापार की मंडी थी समुद्र मार्ग से व्यापारी लोग आया जाया करते थे।

८—स्तम्भनपुर-यह भी व्यापार का मुख्य स्थान था।

९—उपकेशपुर यहाँ के बड़े-बड़े व्यापारी जल और थल के रास्ते से जथ्था बन्ध व्यापार विदेशों में किया करते थे कई कई लोगों ने तो विदेश में अपनी कोठियें भी स्थापित कर दी थीं। इसी प्रकार नागपुर मेदनीपुर माडव्यपुर सत्यपुर मुग्धपुर और भीन्नमालादि नगरों के व्यापारियों का व्यापार विदेश के साथ था।

१०—कलिंग के व्यापारी बहुत प्रसिद्ध है कि वे थोकबन्द माल विदेशों में भेजते थे सम्राट् खारवेल के जीवन से पता मिलता है कि एक समय महाराज खारवेल घुड़सवार होकर जंगल में गया था वहाँ आपको कई कलिंग के व्यापारी मिले पर वे थे दुःखी और अपनी दुःख की बात राजा खरवेल को निवेदन की थी कि विदेशी लोग कर के लिये हम लोगों को हेरान करते हैं इसको सुनकर कलिंगपति ने सैना तैयार कर विदेशियों पर धावा बोल दिया आखिर उन्हों को पराजयकर भारतीय व्यापारियों के लिये सदैव के लिये आराम कर दिया। इस प्रकार बंगाल के व्यापारियों का भी विदेश में व्यापार था—

११—ढाका बंगाल का कपड़ा मुलक मशहूर था।

और भी भारत की कोई भी प्रान्त ऐसी नहीं थी कि जहाँ थोक बन्द माल तैयार नहीं होता था अर्थात् भारत बड़ा ही उद्योगी देश था हर प्रकार का माल यहाँ तैयार होता था और व्यापार के लिये वे देश विदेश में जाते आते थे। यही कारण था कि भारत एक समृद्धशाली धनकुबेर देश था। हम देखते हैं कि जैन धन कुबेरों ने एक एक धर्म कार्यों में करोड़ों रुपये बात की बात में खर्च कर डालते थे इसका कारण वे

"साइबेरिया" महाभारत के युद्ध बाद बहुत सी सूर्य्य और चन्द्रवंशी जातियाँ हिन्दुस्तान को छोड़कर दूर २ जा बसी थीं। एक हिंदूजाति ने साइबेरिया में जाकर अपना राज्य स्थापित किया। इस राज्य की राजधानी "वज्रापुर" था। जब इस देश का राजा किसी युद्ध में मारा गया तब श्री कृष्ण के तीन पुत्र प्रद्युम्न, गद और साम्बु बहुत से ब्राह्मणों और क्षत्रियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। इन तीनों भाइयों में ज्येष्ठ भाई वहाँ की गद्दी पर बैठे। श्रीकृष्ण की मृत्यु होने पर वे मातमपुरसी के लिये फिर द्वारिका आये थे। यह सब वृत्तान्त हरिवंश पुराण में विष्णु पर्व के ८७ वें अध्याय में लिखा है। साइबेरिया और उत्तरी एशिया के प्रदेशों में हिन्दुओं की सन्तान अभी तक मिलती है। साइबेरिया और फिनलैंड में यदुवंश की दो जातियों का होना इतिहास से ज्ञात होता है। उन जातियों के नाम श्याम-यदु और जादो हैं।

"जावा द्वीप" जावा के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि भारत के कलिंग प्रान्त से हिन्दू इस द्वीप में जाकर बसे थे। उन्होंने वहां के लोगों को सभ्यता सिखाई और अपना संवत चलाया। यह संवत् इस समय तक प्रचलित है। उसका आरम्भ ईसा से ७५ वर्ष पहिले हुआ था। इसके पीछे फिर हिन्दुओं का एक दल जावा गया। उस दल के लोग बौद्ध ( जैन ) मतावलम्बी थे। उस द्वीप में यह कथा सुनी जाती है कि सातवीं सदी के आरम्भ में गुजरात देश का एक राजा पांच हजार आदमी लेकर वहां पहुँचा और मतराम के एक स्थान पर बस गया। कुछ काल पीछे दो हजार मनुष्य और गये। ये सब बौद्ध जैनी थे। उन लोगों ने धर्म का प्रचार किया। जिसमें बौद्ध मत का प्रचार विशेष किया। चीन देश का एक प्रसिद्ध यात्री, जिसने इस द्वीप को चौथी सदी में देखा था, लिखता है कि जावा में उस समय सब लोग हिन्दु मतानुयायी थे अर्थात् सर्व शार्य्य थे और सर्वजाति का धर्म चलता था।

"लंका"—लंका में तो अत्यन्त प्रचीन काल से हिन्दुओं का आवागमन रहा है रावण को मारने के बाद लंका का राज्य सदाचारी विभीषण को दे दिया गया था पिछले समय में लंका और भारतवर्ष में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था इस द्वीप का दूसरा नाम सिंहलद्वीप है जिसका अपभ्रष्ट नाम "सिलोन" है।

"अफ्रीका मिश्र"—सात आठ हजार वर्ष हुये जब एक मनुष्य दल हिन्दुस्तान से मिश्र गया और वहीं बस गया। यहीं उन हिन्दुओं ने बड़ी उच्च श्रेणी की सभ्यता फैलाई और अपनी विद्या और पराक्रम से बड़ा प्रभावशाली साम्राज्य स्थापित किया। एक प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता लिखते हैं कि मिश्र निवासी बहुत प्राचीन काल में हिन्दुस्तान से स्वेज के रास्ते आये थे। वे नील नदी के किनारे बस गये थे। मिश्र के प्राचीन इतिहास मे मालूम होता है कि उस देश के निवासियों के पूर्वज एक ऐसे स्थान से आये थे जिसका होना अब हिंदुस्तान के पन्त कहते थे।

"सिंधु नदी का जल"—अटक से बारह मील नीचे जाकर नीला दिखाई देता है इस कारण वहाँ पर सिन्धु नदी का नाम "नीलाब" होगया है। यह नीलाब या नील नाम मिश्र की सब से प्रसिद्ध नदी का है। सिंधु नदी का प्राचीन नाम "अबोसिन" है। अबीसीनिया जो अफ्रीका में एक बड़े प्रांत का नाम है इस अबोसिन से बना है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि सिन्धुतट के निवासियों की पहुँच मिश्र तक अवश्य हुई थी।

"अबीसीनिया" यह देश सिन्धु नदी के तटपर रहनेवालों का बसाया हुआ है। प्राचीन काल



[ भारतीय व्यापारियों का

११—ईस्वी सन् २०० पूर्व से ई० स० २०० तक मिश्र निवासी लाल जाति के तथा भीतर पैथन और टगौर से बंगाल की खाड़ी तक व्यापार के लिये आते थे।

इनके अलावा भी इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे कहा जा सकता है कि भारत व्यापार की जन्म भूमि है अन्य देशों ने व्यापारिक शिक्षा भारत से ही पाई है। पश्चात्य लोग भारत के माल को बड़ी रूची से खरीदते और काम में लेते थे वे भारतीय जहाजों की हमेशाँ प्रतिक्षा किया करते थे—

अब थोड़े भारतीय उन प्रदेशों का नामोल्लेख कर दिये जाते है कि जहाँ बड़े बड़े प्रमाण में माल तैयार होता था और वे व्यापार के लिये केन्द्र कहलाते थे। पाश्चात्य लोग वहाँ से माल ले जाते थे।

१—भरोंचनगर पुराणे जमाने मे ही व्यापार का केन्द्र रहा है। कोसंबी नगरी का धवल श्रेष्टि पांचसौ जहाजें लेकर भरोंचनगर में आया था अपना माल वेचकर वहां से अन्य माल खरीद कर जहाजें भरकर पश्चात्य देश में ले गया था।

२—शौर्यपुर नगर में सोनारूपापारा की आपका व कपड़ा पर जरी बुटें आदि का कम थोकबन्ध होता था जहाजें बनाने के बड़े २ कारखाने थे जिसमें ५०० से १००० टन वजन वाले जहाज तैयार होते थे।

३—रांदेर-यह पहले बड़ा नगर था यहाँ पुष्कल व्यापार होता था

४—वल्लभी नगरी-यह भी पुरांणा जमाने से व्यापार का मथक था।

५—अंकलेश्वर-यहाँ कागज बहुत प्रमाण में बनते थे और भारत के अलावा विदेश में भी जाते थे।

६—महाराष्ट्रय प्रान्त के केवला जिला भी एक व्यापार का केन्द्र था विदेशी लोग वहाँ आया जाया करते थे और जथ्था वन्ध माल खरीद कर अपने देशों में ले जाया करते थे।

७—सोपार पट्टन-यह भी एक व्यापार की मंडी थी समुद्र मार्ग से व्यापारी लोग आया जाया करते थे।

८—स्तम्भनपुर-यह भी व्यापार का मुख्य स्थान था।

९—उपकेशपुर यहाँ के बड़े-बड़े व्यापारी जल और थल के रास्ते से जथ्था वन्ध व्यापार विदेशों में किया करते थे कई कई लोगों ने तो विदेश में अपनी कोठियें भी स्थापित कर दी थी। इसी प्रकार नागपुर मेदनीपुर माडव्यपुर सत्यपुर मुग्धपुर और भीन्नमालादि नगरों के व्यापारियों का व्यापार विदेश के साथ था।

१०—कलिंग के व्यापारी बहुत प्रसिद्ध है कि वे थोकबन्द माल विदेशों में भेजते थे सम्राट् खारवेल के जीवन से पता मिलता है कि एक समय महाराज खारवेल घुड़सवार होकर जंगल में गया था वहाँ आपको कई कलिंग के व्यापारी मिले पर वे थे दुःखी और अपनी दुःख की बात राजा खरवेल को निवेदन की थी कि विदेशी लोग कर के लिये हम लोगों को हेरान करते हैं इसको सुनकर कलिंगपति ने सैना तैयार कर विदेशियों पर धावा वोल दिया आखिर उन्हों को पराजयकर भारतीय व्यापारियों के लिये सदैव के लिये आराम कर दिया। इस प्रकार बंगाल के व्यापारियों का भी विदेश में व्यापार था—

११—ढाका बंगाल का कपड़ा मुलक मशहूर था।

और भी भारत की कोई भी प्रान्त ऐसी नहीं थी कि जहाँ थोक बन्द माल तैयार नहीं होता था अर्थात् भारत बड़ा ही उद्योगी देश था हर प्रकार का माल यहाँ तैयार होता था और व्यापार के लिये वे देश विदेश में जाते आते थे। यही कारण था कि भारत एक समृद्धशाली धनकुबेर देश था। हम देखते हैं कि जैन धन कुबेरों ने एक एक धर्म कार्यों में करोड़ों रुपये बात की बात में खर्च कर डालते थे इसका कारण वे

माने जाते हैं उसी तरह वहां भी घंटा घड़ियाल आदि जैसे ही हिन्दुस्तान में इन अवसरों पर बजाये जाते हैं वहाँ भी उसी के बाजे बजते हैं। सूर्य्य चन्द्र का राहु से ग्रसित होना वे भी मानते हैं वहां के पुजारी सर्प आदि के चिन्ह कंठ में धारण करते हैं इससे हिन्दुस्तान के महादेव और काली आदि देवी देवताओं का स्मरण होता है। हिन्दुस्तान में जैसे गणेशजी की मूर्ति की पूजा होती है। उसी तरह वहाँ भी एक वैसे ही देवता की पूजा होती है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रलय का वर्णन है वैसा ही इन लोगों के ग्रंथों में भी है उनमें एक कथा है कि उनके एक महात्मा की आज्ञा से सूर्य की गति रुक गई थी वह ठहर गया था। हमारे महाभारत में भी ऐसा ही उल्लेख है। जयद्रथ वध के समय श्रीकृष्ण की आज्ञा से सूर्य्य ठहर गये थे। कृष्ण की मृत्यु पर अर्जुन के शोक नाद से भी सूर्य्य का रथ रुक गया था। हिन्दुओं की तरह अमरीका के आदिम निवासी भी पृथ्वी को कच्छप की पीठ पर ठहरी हुई मानते हैं। सूर्य्यदेव की पूजा दोनों देशों में होती है। मेक्सिको में सूर्य के प्राचीन मन्दिर हैं। जीव के आवागमन के सिद्धान्त में भी हिन्दुओं की तरह उन लोगों का विश्वास है। धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक विषयों में भी बहुत कुछ समता देख पड़ती है। उन लोगों के कितने ही रीत रिवाज हिन्दुओं के से हैं। उनका पहिनना हिन्दुओं के ही ढंग का है। वे भी खंडा ऊपर चलते हैं। स्त्रियों के वस्त्र भी हिन्दु स्त्रियों के सदृश ही जान पड़ते हैं। अमरीका में हिन्दु श्रीरामचन्द्रजी के पद गये ऐतिहासिक कथाओं से भी जाना जाता है कि महाभारत के युद्ध के बहुत पीछे तक हिन्दु अमरीका को जाया करते हैं रामचन्द्रजी और सीताजी की पूजा उनके असली नाम से वहाँ आज तक होती है पेरू में रामोत्सव नाम से रामलीला भी होती है। अमरीका वालों की भवन निर्माण शैली और प्राचीन ऐतिहासिक बातें ऐसी हैं जिसका विचार करने पर उन लोगों को हिन्दु जाति से ही उत्पन्न मानना पड़ता है। महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने पातालदेश जीत कर वहाँ के राजा की कन्या 'उलूपी' से विवाह किया था। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'अवर्णव' था। वह बड़ा पराक्रमी था।

प्राचीन काल में भारतवर्ष से अमेरिका जाने के दो रास्ते थे। एक हिन्दुस्तान से लंका अथवा बंगाल की खाड़ी से जावा और बोर्नियो होते हुये मेक्सिको पेरू या मध्य अमरीका तक चला गया था। दूसरा चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, और बहिरंग के मुहाने से होकर उत्तरी अमरीका तक गया था।

इस समय जहां बहिरंग का मुहाना है वहाँ प्राचीन समय में जल न था वह स्थान अमरीका से मिला हुआ था। पीछे भौमिक परिवर्तन होने से वहां जल होगया। जैसे पहिले एशिया से अफ्रीका महाद्वीप स्थल मार्ग से मिला था उसी तरह अमेरिका देश भी मिला था। अब एशिया और अफ्रीका के बीच स्वेज नहर और एशिया और अमरीका के बीच बहिरंग का मुहाना है।

सरस्वती संम्वत् १९६१ बैशाख मास के अंक से

## महाजन संघ की पंचायतें

पुराने जमाने में ऐसा रिवाज था कि राजा की ओर से सभासद चुने जाते थे और जनता के छोटे बड़े तमाम कार्यों का निपटारा इन सभासदों द्वारा होता था जैसे आप सम्राट् चन्द्रगुप्त अशोक और सम्प्रति के समय का इतिहास पढ़ आये हो। पर जब महाजन संघ की स्थापना हुई और बाद जैनाचार्यों

शांतिपर्व के ३२६ वें अध्याय में लिखा है । अन्य देशों में दो बार पाण्डवों के जाने का उल्लेख भी महाभारत में है। पहली दफे वे ब्रह्मदेश, श्याम, चीन, तिब्बत मंगोलिया तातार और ईरान को गये और हिरात, कावुल, कन्धार और बिलोचिस्तान होकर लौट आये। उनकी दूसरी यात्रा पश्चिम की तरफ हुई वे लंका से प्रस्थान करके अरब, मिश्र, जंजुवार और अफ्रीका के दूसरे भागों में गये। यह वृत्तान्त महाभारत में ( सभा पर्व के २६–२८ अध्याय में ) लिखा है। इस यात्रा के समय मार्ग में उन्हें अगस्त्य तीर्थ, पुष्पतीर्थ, सुदामातीर्थ, करन्धमतीर्थ और भारद्वाजतीर्थ मिले थे । राजा सगर के पृथ्वी विजय की भी कथा पुराणों में है। राजा धृतराष्ट्र ने अफगानिस्तान के राजा की पुत्री का पाणीग्रहण किया था। अर्जुन ने अमरीका के राजा कुरु राजा की पुत्री से विवाह किया। श्री कृष्ण के पोते अनिरुद्ध का विवाह सुंड ( सुएड ) के राजा बाण की पुत्री उषा के साथ हुआ था। महाराजा अशोक ने कावुल के राजा सिल्युकस की पुत्री से विवाह किया था।

ईसा के जन्म के अन्तर सहस्त्रों हिंदू तुर्किस्तान, ईरान और रूस में रहते थे। मनुस्मृति के दशवें अध्याय से मालूम होता है कि क्षत्रियों की प्रजा कितनी ही जातियाँ ब्राह्मण ( साधुओं ) के दर्शन न होने के कारण पतित हो गई थीं।

"एशिया" एशिया का पुराना नाम जम्बुद्वीप है । एशिया नाम भी हिंदुओं का ही रखा हुआ है। इस विषय में कर्नल टॉड का कथन सुनिये वे कहते हैं कि धुमिदा और मजस्व की सन्तानों से इन्दु ( चंद ) वंशीय "अश्व" नाम की एक जाति थी। उस अश्व जाति के लोग सिन्ध के दोनों तरफ दूर तक जा बसे थे। इस कारण उस पृथ्वी भाग का नाम एशिया हुआ। एशिया खंड के कितने ही देशों में हिन्दू जाति फैल गई थी। उनमें से कुछ देशों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे दिया जाता है।

"अफगानिस्तान" प्राचीन भारत में अपवंश नाम की नाग जाति थी उसमें अपगण नाम का एक मनुष्य हुआ। इसी अपगण की सन्तान अफगान कहलाई । प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान में गहरा सम्बन्ध था। इसके कितने ही प्रमाण हैं। राजा धृतराष्ट्र ने अफगानिस्तान के राजा की पुत्री गान्धारी से विवाह किया था। महाभारत में लिखा है कि जिस समय पाण्डव जिस समय दिग्विजय करने गये थे उस समय वे कन्धार अर्थात् गान्धार में राजा धृतराष्ट्र के श्वसुर के महमान हुए थे हिरात नगर हरि के नाम से विख्यात हुआ है। बौद्ध ( जैन ) राजाओं के समय तक अफगानिस्तान हिन्दुस्तान का ही अंश समझा जाता था। कर्नल टॉड लिखते है कि जैसलमेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् के बहुत पूर्व इस क्षत्रिय जाति का राज्य गजनी से समरकन्द तक फैला हुआ था। यह राज्य महाभारत युद्ध के पीछे स्थापित हुआ था। गजनी नगर उन्ही लोगों का वसाया हुआ है।

"तुर्किस्तान" तुर्किस्तान में भी हिन्दु जाति का राज्य था। तर्क का पुत्र तमक हिंदु पुराणों में तरिक्षक नाम से विख्यात हैं। अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं कि तुर्वा और उसकी सन्तान को शाप हुआ था भारत छोड़कर उनके चले जाने का यह कारण था! कर्नल टॉड अपने नामी ग्रन्थ राजस्थान में लिखते हैं कि जैसलमेर के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि यदुवंश अर्थात् चन्द्रवंश की वान्हीक जाति ने महासमर के युद्ध के पीछे खुरासान में राज्य किया।

माने जाते हैं उसी तरह वहां भी घंटा घड़ियाल आदि जैसे ही हिन्दुस्तान में इन अवसरों पर बजाये जाते हैं वहाँ भी उसी के बाजे बजते हैं। सूर्य चन्द्र का राहु से ग्रसित होना वे भी मानते हैं वहां के पुजारी सर्प आदि के चिन्ह कंठ में धारण करते हैं इससे हिन्दुस्तान के महादेव और काली आदि देवी देवताओं का स्मरण होता है। हिन्दुस्तान में जैसे गणेशजी की मूर्ति की पूजा होती है। उसी तरह वहाँ भी एक वैसे ही देवता की पूजा होती है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रलय का वर्णन है वैसा ही उन लोगों के ग्रंथों में भी है उनमें एक कथा है कि उनके एक महात्मा की आज्ञा से सूर्य की गति रुक गई थी वह ठहर गया था। हमारे महाभारत में भी ऐसा ही उल्लेख है। जयद्रथ वध के समय श्रीकृष्ण की आज्ञा से सूर्य ठहर गये थे। कृष्ण की मृत्यु पर अर्जुन के शोक नाद से भी सूर्य्य का रथ रुक गया था। हिन्दुओं की तरह अमरीका के आदिम निवासी भी पृथ्वी को कच्छप की पीठ पर ठहरी हुई मानते हैं। सूर्य्यदेव की पूजा दोनों देशों में होती है। मेक्सिको में सूर्य के प्राचीन मन्दिर हैं। जीव के आवागमन के सिद्धान्त में भी हिन्दुओं की तरह उन लोगों का विश्वास है। धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक विषयों में भी बहुत कुछ समता देख पड़ती है। उन लोगों के कितने ही रीत रिवाज हिन्दुओं के से हैं। उनका पहिनना हिन्दुओं के ही ढंग का है। वे भी खंडा ऊपर चलते हैं। स्त्रियों के वस्त्र भी हिन्दु स्त्रियों के सदृश ही जान पड़ते हैं। अमरीका में हिन्दु श्रीरामचन्द्रजी के पद गये ऐतिहासिक कथाओं से भी जाना जाता है कि महाभारत के युद्ध के बहुत पीछे तक हिन्दु अमरीका को जाया करते है रामचन्द्रजी और सीताजी की पूजा उनके असली नाम से वहाँ आज तक होती है पेरू में रामोत्सव नाम से रामलीला भी होती है। अमरीका वालों की भवन निर्माण शैली और प्राचीन ऐतिहासिक बातें ऐसी हैं जिसका विचार करने पर उन लोगों को हिन्दु जाति से ही उत्पन्न मानना पड़ता है। महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने पातालदेश जीत कर वहाँ के राजा की कन्या 'उलूपी' से विवाह किया था। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'अवर्णव' था। वह बड़ा पराक्रमी था।

प्राचीन काल में भारतवर्ष से अमेरिका जाने के दो रास्ते थे। एक हिन्दुस्तान से लंका अथवा बंगाल की खाड़ी से जावा और बोर्नियो होते हुये मेक्सिको पेरू या मध्य अमरीका तक चला गया था। दूसरा चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, और बहिरंग के मुहाने से होकर उत्तरी अमरीका तक गया था।

इस समय जहां बहिरंग का मुहाना है वहाँ प्राचीन समय में जल न था वह स्थान अमरीका से मिला हुआ था। पीछे भौमिक परिवर्तन होने से वहां जल होगया। जैसे पहिले एशिया से अफ्रीका महाद्वीप स्थल मार्ग से मिला था उसी तरह अमेरिका देश भी मिला था। अब एशिया और अफ्रीका के बीच स्वेज नहर और एशिया और अमरीका के बीच बहिरंग का मुहाना है।

सरस्वती संम्वत् १९९१ वैशाख मास के अंक से

## महाजन संघ की पंचायतें

पुराने जमाने में ऐसा रिवाज था कि राजा की ओर से सभासद चुने जाते थे और जनता के छोटे बड़े तमाम कार्यों का निपटारा उन सभासदों द्वारा होता था जैसे आप सम्राट् चन्द्रगुप्त अशोक और सम्प्रति के समय का इतिहास पढ़ आये हो। पर जब महाजन संघ की स्थापना हुई और बाद जैनाचार्यों

में इस देश और भारतवर्ष से बहुत व्यापार होता था। कितने ही हिन्दू इस देश में आते थे। इस विषय में टॉड साहब ने राजस्थान के इतिहास के दूसरे भाग में बहुत कुछ लिखा है।

"यूरोप" यूरोप नाम संस्कृत शब्द हरियुपीया से निकला है और यूरोप भूमि भारत के प्राचीन निवासियों की परिचित थी इसके वेदोक्त प्रमाण लीजिये। ऋग्वेद में कहा है हरियुपीया देश में जाकर इन्द्रने वरशिल दैत्य के पुत्रों का वध किया।

"यूनान"– पोकोक साहब ने अपनी पुस्तक में इस बात के प्रबल प्रमाण दिये हैं कि यूनान देश को भारत के निवासियों ने ही अर्थात् मगध के हिन्दुओं ने ही बसाया था मगध देश की राजधानी का नाम प्रचीन काल में 'राजगृह' था उसमें रहने वाले गृहका कहलाते थे। इसी गृहका से ग्रीक शब्द बना है विहार देश का नाम पलश्वा था। वहाँ से वह जनसमूह ग्रीस में जाकर बसा वह पेलासगी कहलाया और उस देश का नाम पेलासगो पड़ गया। एक प्रसिद्ध यूनानी कवि असिपस के लेखानुसार यूनानियों के विख्यात राजा पेलास गस हिन्दुस्तान में विहार का प्राचीन राजधानी में उत्पन्न हुआ था! मेकडोनियन और मेसेडन शब्द मगध के अपभ्रंश हैं। मनुष्यों के कितने ही समूह मगध से जाकर यूनान में बसे और उसके प्रांतों को पृथक् २ नाम से पुकारने लगे। कैलाश पर्वत का नाम यूनान में " केनन " है और रोम में "कोकिन" है। क्षत्रियों की कई जातियों का यूनान में जाकर बसना सिद्ध होता है। यूनान में देवी देवता भारतवर्ष के देवी देवताओं की नकल है। उस देश का धर्म विधान साहित्य और कला शास्त्र भी हिंदू जाति ही की चीज हैं।

'रोम"–रोम शब्द राम से बना है। एशिया माइनर में हिन्दू जाति जाकर बसी, रोमवाले उसी की सन्तान है। रोम की समीवर्तिनी यूट्रेसियन जाति भी हिन्दु ही थी। रोम के देवी देवता भी हिन्दुस्तान के देवी देवताओं के प्रतिरूप हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि रोम निवासी हिन्दु जाति के ही हैं।

"अमरीका" अमरीका की आश्चर्यजनक प्राचीन सभ्यता के चिन्हों पर दृष्टि डाली जाय तो मालूम होगा कि यूरूप वासियों के प्रवेश करने के पहिले वहाँ कोई सभ्य जाति अवश्य रहती थी। दक्षिण अमरीका में बड़े २ नगरों के खंडहरों, दृढकोट, सुंदरभवनों, जलाशयों सड़कों, नहरों आदि के चिन्ह मिलते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यहाँ कोई बड़ी उच्चश्रेणी की सभ्य जाति रहती थी। अच्छा, तो यह सभ्यता आई कहाँ से ? यूरोपीय पुरावस्तु वेत्ताओं ने इसका पता लगाया है। वे कहते हैं ये सभ्यता और कहीं से नहीं हिन्दुस्तान से आई थी। वेरन महाशय का कथन है कि इस समय भी अमरीका में हिन्दुओं के स्मारक चिन्ह मिलते हैं।

अब पोकाक महाशय का कथन सुनिये वे कहते हैं कि पेरु निवासियों की और उनके पूर्वज हिन्दुओं की सामाजिक प्रथायें एक सी पाई जाती हैं। प्राचीन अमरीका की इमारतों का ढंग हिन्दुओं के जैसा है। स्ववायर साहब कहते हैं कि बौद्ध (जैन) मत के स्तूप दक्षिण हिन्दुस्तान और उसके उपद्वीपों में मिलते हैं, वैसे ही मध्यम अमरीका में भी पाये जाते हैं। जैसे हिन्दु पृथ्वी माता को पूजते हैं वैसे ही वे भी पूजते हैं। देवी देवताओं और महात्माओं के पदचिन्ह जैसे हिन्दुस्तान में पूजते हैं वैसे वहाँ भी देखाते हैं। जिस प्रकार लंका में भगवान् बुद्ध के और गोकुल में श्रीकृष्ण के पदचिन्हों की पूजा की जाती है उसी तरह मेक्सिकों में भी एक देवता के पदचिन्ह पूजे जाते हैं। जैसे सूर्य्य चन्द्र और उनके ग्रहण हिन्दुस्तान में

रख है मैं नगर का राजा हूँ आप खाते में नाम न लिखें सुबह ही रकम पहुँचा दी जायगी। सेठजी ने बिना नाम लिखे राजा को रुपये दे दिये। एक दो तीन दिन व्यतीत होगये रुपये आये नहीं। सेठजी ने राजाज्ञा भंग के भय से रुपये राजा के नाम भी नहीं लिखे। आखिर सेठजी ने राजा से कहलाया कि या तो हजार रुपये भेज दीरावें या नाम लिखने की आज्ञा फरमावें। राजा ने सेठ को बुलाकर खूब धमकाया और कहा कि कौन तेरे रुपये लाया है। जब तू मेरे से ही बिना लाये रुपये मांगता है तो इस प्रकार दूसरे लोगों से तो बिना दिये कितने रुपये वसूल किये होंगे और जो तू कोटाधीश बना है इसी प्रकार बिना दिये रुपये वसूल करके ही बना होगा इत्यादि। बिचारा सेठ बड़ी ही चिंता में पड़ गया। रुपये नहीं आवें जिसकी तो चिंता नहीं पर राज मुझे सच्चे को झूंठा बतवाता है इस बात का बड़ा ही दुःख है। राजा ने कहा क्यों सेठजी क्या करना है ? सेठजी ने कहा कि आप फरमाते हो कि रुपये मैं नहीं लाया तो ऐसा ही सही। राजा ने कहा ऐसा नहीं अपने मामले की पंचायत करवालें। सेठजी ने कहा ठीक है बस, पंचों को बुलाकर दोनों ने अपने अपने हाल सुनाकर कहा कि हमारी पंचायती कर दीजिये। पंचों में कई ने सोचा कि राजा रात्रि समय स्वयं जाकर सेठजी से हजार रुपये लावे यह असम्भव है तब किसी ने कहा कि सेठजी की इतनी हिम्मत नहीं है कि राजा के राज में रहते हुये राजा पर झूंठा कलंक लगावे दूसरे महाजनों की पोते बाकी में हजार रुपयों का फरक चल नहीं सकता है इत्यादि विचार ही विचार में टाइम होगया राजा की रजा लेकर सब भोजन करने को गये उन पंचों में रुपये देने वाले सेठजी भी शामिल थे। भोजन करके चार पंच तो आगये पर सेठजी नहीं आये। चारों पंचों ने बार बार कहा कि सेठजी अभी तक नहीं आये इतने ही में राजा ने सहसा कह दिया कि सेठजी का मकान दूर है, आता होगा। बस, एक पंच ने निर्णय कर लिया कि सेठजी का कहना सत्य है। राजा जरूर सेठजी के वहाँ से रुपये लाया है। यदि राजा रुपये नहीं लाता तो उसको क्या मालूम कि सेठजी का घर दूर है। बस, सेठजी आये और सबने एक विचार कर राजा से कहा कि सेठजी सत्य कहते हैं आप एक हजार रुपये सेठजी के वहाँ पहुँचा दें। राजा ने कहा किस न्याय से ? पंचों ने कहा बतलाओ हमारा घर वहाँ से कितनी दूर है ? राजा ने कहा मुझे क्या मालूम पंचों ने कहा तब सेठजी का घर दूर है आपको कैसे ज्ञात हुआ ? राजा ने कहा मैंने आप लोगों की परीक्षा के लिये ही इतना प्रपंच किया है कि यह सत्य है पंच परमेश्वर हैं। राजा ने सेठजी को हजार रुपया और पंचों को इनाम देकर विसर्जन किया।

२—इसी प्रकार काशी के राजा ने एक इभ्य सेठ के पूर्वजों के नाम पर एक लक्ष रुपयों का खत मांड कर सेठ को बुलाया और कहा कि तुम्हारे पूर्वजों पर एक लक्ष रुपये बाकी लेना निकलते हैं। तुमको मय ब्याज के जमा करवाना चाहिये। विचारे सेठ ने सोचा कि 'समुद्र में रहना और मगर से वैर रखना' ठीक नहीं है अत: उसने कहा कि हमारे पूर्वज परम्परा से कहते आये हैं कि राजा की रकम देनी है पर ब्याज के झगड़े से दी नहीं गई है। राजा कहते हैं रकम ब्याज से ली जाय और हम कहते हैं कि झगड़े की रकम का ब्याज नहीं दिया जाय इत्यादि। अतः लक्ष रुपये तैयार हैं जब फरमावें तब ही हाजिर किये जावें राजा ने कहा कि अब इस झगड़े को कहां तक रक्खा जाय पंच डाल दें जो फैसला दें वह मंजूर कर लो। सेठ ने कहा ठीक है। बस, पंचों को बुलाकर दोनों ने अपना २ हाल सुना दिया। पंच सोचने लगे कि इतना बड़ा सेठ पुश्तों से धनाढ्य हैं खत लिखकर रुपये लेजाय यह असंभव है। तब एक ने कहा

ने ग्रामोग्राम अजैनों को जैन बनाकर महाजन संघ में वृद्धि की और राजा विक्रम के समय तक तो महाजन संघ अपनी शाखा प्रतिशाखा से इतना फला फूला कि उनकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गई और प्रत्येक ग्राम नगर में प्रसरित भी हो गया। अतः इसका संगठन बल मजबूत बनाने के लिये ऐसी पंचायतें स्थापित करदीं कि संघ एवं समाज का सब कार्य्य उन पंचायतों द्वारा होने लगा वे पंचायतें केवल कल्पना मात्र से नहीं बनाई पर खास शास्त्रों के अनुसार बनाई गई थीं जैसे जैनागमों में लिखा है कि देवताओं की व्यवस्था के लिये स्वर्ग में एक इन्द्र होता है उनके कार्य में मददगार सामानीक देव और सलाहकार तीन प्रकार की परिषदा के देव भी होते हैं जैसे—

१—सामानीक देव—इन्द्र कोई भी काम करना चाहे तो पहले सामानीक देवों के साथ परामर्श करे जब सामानीक देव सहमत हो जाय तव ही इन्द्र वह कार्य कर सकता है। जैसे राजा के उमराव।

२—आभ्यान्तर परिषदा के देव—जिस कार्य को इन्द्र करना चाहे तो पहिले आभ्यान्तर परिषदा के देवताओं की सलाह लेता है और वे सलाह दे दें तब ही कार्य किया जाय। जैसे राजा के मुत्सद्दी।

३—मध्यम परिषदा के देवताओं से विचार करे। जैसे कार्य कर्ता बुद्धिमान।

४—बाह्य परिषदा के देवताओं ( आम जनरल ) को एकत्र कर हुक्म सुनादें कि हम व सामानीक देव, या आभ्यान्तर परिषदा के देव और मध्यम परिषदा के देवों ने निर्णय कर लिया है कि अमुक कार्य किया जाय अतः तुम इस कार्य को शीघ्र करो।

इसी प्रकार हमारी पंचायतों में भी

१—इन्द्र के स्थान एक संघपति या नगर सेठ बनाया गया।

२—सामानीक देवों के स्थान—चार चौधरी एवं पांच पंच

३—आभ्यान्तर परिषदा के देवों के स्थान प्रतिष्ठित बुद्धिवान् समाज के शुभ चिन्तक सलाह देने वाले।

४—मध्यम परिषदा के देवों के स्थान कार्य पद्धति के ज्ञाता।

५—बाह्य परिषदा के देवों के स्थान—आम पब्लिक।

इस प्रकार की व्यवस्था करने में न तो निर्नायकता रहती है और न नायक निरंकुश ही बन जाते हैं और कार्य निर्विघ्नतया सफल हो जाता है। महाजन संघ में इस प्रकार की पंचायतें बड़े २ नगरों में ही नहीं पर छोटे २ ग्रामों में भी थीं और वे केवल एक महाजन संघ का ही काम नहीं करतीं पर तमाम नगर का भी काम कर लेती थीं केवल नागरिकों को ही नहीं पर सत्ताधीश राजाओं को भी महाजनों की पंचायतों पर पूर्ण विश्वास था पहिले जमाने में इस प्रकार इन्साफी पंचायतें होने से किसी को भी राज अदालत देखने का समय ही नहीं मिलता था। कदाचित् कोई राज अदालत में चला भी जाता तो आखिर राज भी उनका इंसाफ पंचायतों पर छोड़ देते थे। जब तक पदाधिकारी पंचों के हृदय में न्याय सत्य सफाई और निष्पक्षता रही वहाँ तक पंचायतों का कार्य व्यवस्था के साथ चलता रहा और जनता उन पंचों को परमेश्वर ही कहती थी। जिसका एक दो उदाहरण यहाँ लिख दिया जाता है।

१—कुसमपुर नगर के राजा के दिल में इस बात की शंका पैदा हुई कि दुनियां कहती है कि पंचों में परमेश्वर हैं तो क्या यह बात सत्य है ? इसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये।

राजा ने रात्रि समय वरदत्त सेठ की दुकान पर जाकर कहा सेठजी एक हजार रुपयों की जरू-

# २०—आचार्य श्री सिद्धसूरि ( तृतीय )

आचार्यस्तु स सिद्धसूरि रिह वैडीहृवाख्य गोत्रात्मजः ।
यो हीरेण समश्रसुयुतियुतः सर्वैश्च देवैः स्तुतः ॥
श्रुत्वा यस्य रसेन पूरित तमं वाक्यामृतं मानवाः ।
देवा मंत्र बलेन मुग्धमन सो व्याख्यानमध्येऽभवन् ॥

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज जैन संसार में सिद्ध पुरुष के नाम से विख्यात थे केवल जैन ही क्यों पर जैनेतर लोग भी आपके आत्मिक चमत्कार एवं सिद्धियों को देख मंत्र-मुग्ध बन कर आपके चरण कमलों की सेवा करते थे । आपने अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई मशीन को द्रुतगति से चलाने में एक चतुर ड्राइवर का काम किया अर्थात् आप एक धर्मप्रचारक आचार्य हुये हैं । आपश्री का जीवन महत्त्वपूर्ण था ।

माडव्यपुर नगर के राजा सुरजन के मुख्य मंत्री श्रेष्टि गोत्रीय नागदेव था । नागदेव पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों देवियों की महती कृपा थी यही कारण था कि मंत्री नागदेव को लोग धन में कुबेर और बुद्धि में बृहस्पति ही कहा करते थे । नागदेव के रंभा नाम की सुशीला स्त्री थी पर उसके कोई संतान न होने से मंत्री ने दूसरा विवाह क्षत्रिय हरनारायण की पुत्री देवला के साथ किया था पर पूर्व कर्मोदय उसके भी कोई संतान नहीं हुई । मंत्री ने सचायिका देवी का आराधन किया । तीन उपवास की अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शाह रामा की पुत्री कमला के साथ विवाह कर तेरे बहुत संतान होंगी । श्रेष्ठि ने देवी के बचनों को तथाऽस्तु कर लिया । देवी अदृश्य होगई । श्रेष्ठि ने तीन उपवास का पारणा किया और एक योग्य पुरुष को उपकेशपुर भेजा। वह जाकर शाह रामा से मिला और मंत्री नागदेव के समाचार कहे तो शाह रामा बड़ा ही खुश हुआ कारण, उसको नागदेव जैसा जमाई मिलना कहां था । उसने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और थोड़े ही दिनों में कमला का विवाह मंत्री नागदेव के साथ कर दिया । बस फिर तो था ही क्या देवी का बचन सफल हो ही गया । कमला के क्रमशः सात पुत्र हुए इतना ही क्यों पर पहले परणी हुई रंभा और देवला के भी सात सात पुत्र हुए पट्टावली कारों ने न गदेव के परिवार का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । माता कमला के लघु पुत्र का नाम तेजसी बतलाया है तेजसी एक तेज का पुंज ही था जिसकी क्रांति का तेज सूर्य की भाँति सर्वत्र फैल गया था ।

मंत्री नागदेव का घराना शुरू से ही जैनधर्मोपासक था । नागदेव ने धर्मकार्यों में लाखों नहीं पर करोड़ों का द्रव्य व्यय कर पुष्कल पुन्योपार्जन किया था इतना ही क्यों पर अनेक क्षत्रियों को जैनधर्म के उपासक बना कर जैन धर्म का प्रचार में खूब सहयोग दिया था—

एक समय आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का पधारना माडव्यपुर में हुआ । श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का खूब उत्साह के साथ स्वागत किया । सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता था। आपके

राजा के पास पुराने खत हैं यह भी तो झूठ नहीं हो सकता। इसी विचार में समय होगया और सब पंच भोजन करने को चले गये। एक पंच ने जिस समय का राजा का खत था उस समय की अपनी बहियें निकाल कर देखी तो मालूम हुआ कि राजा ने अपने खत में जो रुपयों का सिक्का लिखा है वह उस समय का नहीं पर बहुत पीछे का है इससे निर्णय किया कि खत जाली बनाया है। बस, भोजन करके सब पंच वापिस राजा के पास आये और सब एक मत होकर राजा को कहा कि खत आपका जाली है। राजा ने गुस्से में आकर कहा कि तुम साहूकार साहूकार का पक्ष करते हो वरना मेरा खत जाली होने की क्या साबूती है ? पंचों ने कहा कि आपने बड़ी चतुराई से जाली खत लिखा है परन्तु इसमें सिक्का को बदलाने की गलती होगई है। जो सिक्का आपने लिखा है वह खत के समय से बहुत पीछे का है। राजा ने सुन कर कहा कि मैंने आपकी परीक्षा के लिये ऐसा किया है। पर पंच परमेश्वर कहलाते हैं यह सत्य ही है।

करीब एक शताब्दी पूर्व एक अंग्रेज टॉड साहब हुये हैं। उसने राजपूताने में भ्रमण कर वहां का हाल 'टॉड राजस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है। जिसमें आप लिखते हैं कि ग्राम २ में ऐसी पंचायतें मैं देखता हूँ कि जहाँ रईस की जरूरत भी नहीं है। वे पंचायतें ग्राम के सब काम स्वयं निपटा देती हैं इत्यादि। इससे पाया जाता है कि एक शताब्दी पूर्व महाजनों की पंचायतें सुव्यवस्थित थीं और वे पंच ग्राम का लेन देन का एवं झगड़े टंटे का काम आपस में निपटा देते थे कि लोगों को राज अदालतों का मुंह देखना नहीं पड़ता था परन्तु बाद में वे पंचायतें उसी रूप में नहीं रही। न जाने उनके खाने में ऐसा कौनसा अन्न आया होगा कि पक्षपात एवं स्वार्थ तथा अहंपद रूपी पिशाच उनके हृदय में घुस गया कि अपने परोपकारी कामों से हाथ धो बैठे और दुनिया का निपटारा करने वालों स्वयं आपस में लड़ झगड़ कर अपना महत्त्व खो दिया कि उन खुद को ही अदालतों में जाकर इन्साफ लेना पड़ता है। पुराने जमाने की पंचायतों का यश: आज भी अमर एवं जीवित है।

जहाँ महाजनों की पंचायते हैं वहां उन पंचायतें के निर्वाह के लिये ग्रामोंग्राम शुभ प्रसंगों पर लागन लगाई हुई है उसकी आय व्यय के हिसाब को पंचायत हिसाब कहा जाता हैं पंचायत आमन्द के लिये कई मकान दुकानें और बरतन विगैरह आता है वह पंचायत में जमा होता हैं इस प्रकार की पंचायतें छोटे छोटे ग्रामों से लगा कर बड़े बड़े नगरों में हैं इतना ही क्यों पर उपकेश वंशीय लोग अपने मूल स्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों में वास किया और वह उनकी थोड़ी बहुत बसती जम जाती थी वहां भी उनकी पंचातियों का प्रबन्ध होजाता था आज उन पंचायतों का रूप बदल गया है पर उनका मूल ध्येय केवल जाति का ही नहीं पर साधारण जनता की सेवा करने का ही था—

चाहता है तो अपन तो मुक्त भोगी है तेजसी के साथ अपने को भी दिक्षा लेनी चाहिये। कारण ऐसा सुअवसर अपने लिये फिर कब आने वाला है इत्यादि।

इस पर तो माता कमला को और भी अधिक गुस्सा आगया और उसने कहा कि तेजसी क्या दीक्षा ले आप खुद तेजसी को दीक्षा दिलाना चाहते हैं। तब ही तो आप मुझे उपदेश दे रहे हो।

नागदेव ने कहा कि ठीक है तेजसी ही क्यों पर मैं खुद ही दीक्षा लेना चाहता हूँ। बतलाओ अब आपकी क्या इच्छा है ? तुम खुद सोच सकती हो कि क्या इस प्रकार की अनुकूल सामग्री मिलने पर भी सम्पूर्ण जिन्दगी इस कर्मबन्ध के कारण रूप संसार कार्य में ही व्यतीत कर देना। अपने तो मुक्तभोगी हैं पर देखो इस तेजसी को कि इसने संसार को क्या देखा है फिर भी दीक्षा लेने को तैयार हो गया है।

कमला ने कहा कि आप तो बाप बेटा दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं न ?

नागदेव ने कहा तेजसी के लिये मैं नहीं कहता हूँ पर मैं तो अपनी कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा तो दीक्षा लेने की है और मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि ऐसा सुअवसर आप भी हाथों से न जाने दीजिये।

तेजसी - क्या माता तू मेरे से इतना प्रेम करती हुई भी मैं दीक्षा लूं और तू घर में रहेगी ?

कमला—बेटा ! मैं जान गई हूँ कि तेरा बाप ही सब को दीक्षा दिलाने की कोशिश करता है। यदि तुम बाप बेटे का यही इरादा है तो एक मुझको ही क्यों सब के सब घरवालों को दीक्षा क्यों न दिलावें कि सबका कल्याण होजाय। इत्यादि माता कमला ने खूब गुस्सा में जवाब दिया।

नागदेव ने कहा कि आप जरा शान्त हो कर अपना तो निश्चय करलो बाद घरवालों की बात करना।

कमला—जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं कह ही क्या सकती हूँ मेरा पुत्र एवं पति दीक्षा लेता है तब मेरी इच्छा हो या न हो मैं भी आपके साथ दीक्षा लेने को तैयार हूँ। कहिये अब आपको क्या करना है ?

नागदेव ने अपनी दूसरी दोनों औरतों को और २० पुत्रों को बुला कर कहा कि हम तीनों जनों ने दीक्षा लेने का निश्चय किया है और तुम्हारे अन्दर से किसी का विचार हो तो हमारे साथ हो जाइये। इस पर पहिले तो खूब वादविवाद हुआ पर आखिर नागदेव की दोनों औरतें और ७ पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगये अर्थात् बात ही की बात में एक घर से १२ भावुक वैरागी बन गये।

इस बात की खबर सूरिजी को मिली तो सूरिजी कमी क्यों रखें। व्याख्यान में दीक्षा ही दीक्षा के यश एवं गुण गाये जाने लगे कि माडव्यपुर एवं आस पास के ग्राम तथा बाहर से आये हुये दर्शनार्थी लोगों में से कई ४५ नरनारी दीक्षा के उम्मेदवार बनगये। अहा-हा तेजसी कैसा निमित्त बना है।

मनो ! उस जमाने के कैसे हलुकर्मी जीव थे। उन लोगों का उपादान कारण बहुत सुधरा हुआ था और पूर्व भवों की ऐसी प्रेरणा थी कि थोड़ा सा निमित्त कारण मिलजाने पर वे अपना आत्म-कल्याण करने को कटिबद्ध होजाते थे और इस प्रकार दीक्षायें होने से ही वे आचार्य एवं मुनिजन सौ सौ दो दो सौ एवं पांचसौ साधुओं के साथ प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म का प्रचार किया करते थे।

माण्डव्यपुर नगर के आज घर घर में आनंद मङ्गल छागया। मुहल्ले-मुहल्ले के मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव के बाजे बजने लगे। मुक्ति रमणिके घर घर घर में बंदोले खारहे हैं। भक्त लोग इस पुनीत कार्य का अनुमोदन कर रहे हैं। नागदेव के पुत्र सोमदेवादि अपने माता पिता एवं भावाओं की

राजा के पास पुराने खत हैं यह भी तो झूठ नहीं हो सकता। इसी विचार में समय होगया और सब पंच भोजन करने को चले गये। एक पंच ने जिस समय का राजा का खत था उस समय की अपनी वहियें निकाल कर देखी तो मालूम हुआ कि राजा ने अपने खत में जो रुपयों का सिक्का लिखा है वह उस समय का नहीं पर बहुत पीछे का है इससे निर्णय किया कि खत जाली बनाया है। बस, भोजन करके सब पंच वापिस राजा के पास आये और सब एक मत होकर राजा को कहा कि खत आपका जाली है। राजा ने गुस्से में आकर कहा कि तुम साहूकार साहूकार का पक्ष करते हो वरना मेरा खत जाली होने की क्या साबूती है ? पंचों ने कहा कि आपने बड़ी चतुराई से जाली खत लिखा है परन्तु इसमें सिक्का को बदलाने की गलती होगई है। जो सिक्का आपने लिखा है वह खत के समय से बहुत पीछे का है। राजा ने सुन कर कहा कि मैंने आपकी परीक्षा के लिये ऐसा किया है। पर पंच परमेश्वर कहलाते हैं यह सत्य ही है।

करीब एक शताब्दी पूर्व एक अंग्रेज टॉड साहब हुये हैं। उसने राजपूताने में भ्रमण कर वहां का हाल 'टॉड राजस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है। जिसमें आप लिखते हैं कि ग्राम २ में ऐसी पंचायतें मैं देखता हूँ कि जहाँ रईस की जरूरत भी नहीं है। वे पंचायतें ग्राम के सब काम स्वयं निपटा देती हैं इत्यादि। इससे पाया जाता है कि एक शताब्दी पूर्व महाजनों की पंचायतें सुव्यवस्थित थीं और वे पंच ग्राम का लेन देन का एवं झगड़े टंटे का काम आपस में निपटा देते थे कि लोगों को राज अदालतों का मुंह देखना नहीं पड़ता था परन्तु बाद में वे पंचायतें उसी रूप में नहीं रही। न जाने उनके खाने में ऐसा कौनसा अन्न आया होगा कि पक्षपात एवं स्वार्थ तथा अहंपद रूपी पिशाच उनके हृदय में घुस गया कि अपने परोपकारी कामों से हाथ धो बैठे और दुनिया का निपटारा करने वालों स्वयं आपस में लड़ झगड़ कर अपना महत्त्व खो दिया कि उन खुद को ही अदालतों में जाकर इन्साफ लेना पड़ता है। पुराने जमाने की पंचायतों का यश: आज भी अमर एवं जीवित है।

जहाँ महाजनों की पंचायते हैं वहां उन पंचायतें के निर्वाह के लिये ग्रामोंग्राम शुभ प्रसंगों पर लागत लगाई हुई है उसकी आय व्यय के हिसाब को पंचायत हिसाब कहा जाता हैं पंचायत आमन्द के लिये कई मकान दुकानें और बरतन विगैरह आता है वह पंचायत में जमा होता हैं इस प्रकार की पंचायतें छोटे छोटे ग्रामों से लगा कर बड़े बड़े नगरों में हैं इतना ही क्यों पर उपकेश वंशीय लोग अपने मूल स्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों में वास किया और वह उनकी थोड़ी बहुत बसती जम जाती थी वहां भी उनकी पंचातियों का प्रबन्ध होजाता था आज उन पंचायतों का रूप बदल गया है पर उनका मूल ध्येय केवल जाति का ही नहीं पर साधारण जनता की सेवा करने का ही था—

चाहता है तो अपन तो मुक्त भोगी है तेजसी के साथ अपने को भी दिक्षा लेनी चाहिये। कारण ऐसा सुअवसर अपने लिये फिर कब आने वाला है इत्यादि।

इस पर तो माता कमला को और भी अधिक गुस्सा आगया और उसने कहा कि तेजसी क्या दीक्षा ले आप खुद तेजसी को दीक्षा दिलाना चाहते हैं। तब ही तो आप मुझे उपदेश दे रहे हो।

नागदेव ने कहा कि ठीक है तेजसी ही क्यों पर मैं खुद ही दीक्षा लेना चाहता हूँ। बतलाओ अब आपकी क्या इच्छा है ? तुम खुद सोच सकती हो कि क्या इस प्रकार की अनुकूल सामग्री मिलने पर भी सम्पूर्ण जिन्दगी इस कर्मबन्ध के कारण रूप संसार कार्य में ही व्यतीत कर देना। अपने तो मुक्तभोगी हैं पर देखो इस तेजसी को कि इसने संसार को क्या देखा है फिर भी दीक्षा लेने को तैयार हो गया है।

कमला ने कहा कि आप तो बाप बेटा दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं न ?

नागदेव ने कहा तेजसी के लिये मैं नहीं कहता हूँ पर मैं तो अपनी कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा तो दीक्षा लेने की है और मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि ऐसा सुअवसर आप भी हाथों से न जाने दीजिये।

तेजसी - क्या माता तू मेरे से इतना प्रेम करती हुई भी मैं दीक्षा लूं और तू घर में रहेगी ?

कमला—बेटा ! मैं जान गई हूँ कि तेरा बाप ही सब को दीक्षा दिलाने की कोशिश करता है। यदि तुम बाप बेटे का यही इरादा है तो एक मुझको ही क्यों सब के सब घरवालों को दीक्षा क्यों न दिलावें कि सबका कल्याण होजाय। इत्यादि माता कमला ने खूब गुस्सा में जवाब दिया।

नागदेव ने कहा कि आप जरा शान्त हो कर अपना तो निश्चय करलो बाद घरवालों की बात करना।

कमला—जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं कह ही क्या सकती हूँ मेरा पुत्र एवं पति दीक्षा लेता है तब मेरी इच्छा हो या न हो मैं भी आपके साथ दीक्षा लेने को तैयार हूँ। कहिये अब आपको क्या करना है ?

नागदेव ने अपनी दूसरी दोनों औरतों को और २० पुत्रों को बुला कर कहा कि हम तीनों जनों ने दीक्षा लेने का निश्चय किया है और तुम्हारे अन्दर से किसी का विचार हो तो हमारे साथ हो जाइये। इस पर पहिले तो खूब वादविवाद हुआ पर आखिर नागदेव की दोनों औरतें और ७ पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगये अर्थात् बात ही की बात में एक घर से १२ भावुक वैरागी बन गये।

इस बात की खबर सूरिजी को मिली तो सूरिजी कमी क्यों रक्खें। व्याख्यान में दीक्षा ही दीक्षा के यश एवं गुण गाये जाने लगे कि माडव्यपुर एवं आस पास के ग्राम तथा बाहर से आये हुवे दर्शनार्थी लोगों में से कई ४५ नरनारी दीक्षा के उम्मेदवार बनगये। अहा-हा तेजसी कैसा निमित्त बना है।

भलो ! उस जमाने के कैसे हलुकर्मी जीव थे। उन लोगों का उपादान कारण बहुत सुधरा हुआ था और पूर्व भवों की ऐसी प्रेरणा थी कि थोड़ा सा निमित्त कारण मिलजाने पर वे अपना आत्म-कल्याण करने को कटिबद्ध होजाते थे और इस प्रकार दीक्षायें होने से ही वे आचार्य एवं मुनिजन सौ सौ दो दो सौ एवं पांचसौ साधुओं के साथ प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म का प्रचार किया करते थे।

माण्डव्यपुर नगर के आज घर घर में आनंद मङ्गल छागया। मुहल्ले-मुहल्ले के मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव के बाजे बजने लगे। मुक्ति रमणिके घर घर पर में बंदोले खारहे हैं। भक्त लोग इस पुनीत कार्य का अनुमोदन कर रहे हैं। नागदेव के पुत्र सोमदेवादि अपने माता पिता एवं भ्राताओं की

व्याख्यान में तत्त्विक, दर्शिनिक और अध्यात्मिक बातों के साथ त्याग वैराग्य पर अधिक जोर दिया जाता था जिसको श्रवण कर जनता की भावना आत्म कल्याण करने में दृढ़ हो रही थी।

मंत्री नागदेव अपनी तीनों स्त्रियों और सब पुत्रों के साथ सूरिजी की सेवा भक्ति में रहता था और हमेशा व्याख्यान भी सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर बड़ी रुचि के साथ, तथा नागदेव को संसार की असारता का भी खयाल होने लग गया था अतः वह संसार के कार्यों से उदासीन रहने लगा। इधर कुँवर तेजसी की कोमल आत्मा पर तो सूरिजी के व्याख्यान ने इतना प्रभाव डाला कि उसको संसार एक कारागृह ही दीखने लगा। पर इस प्रकार का वैराग्य छिपा हुआ कब तक रह सकता एक दिन तेजसी ने सूरिजी के पास जाकर अर्ज की कि हे प्रभो ! आपके व्याख्यान से मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि आपश्री के चरणार्विन्द में भगवती जैन दीक्षा ग्रहन कर मैं अपना कल्याण सम्पादन करूँ। यह मेरी भावना सफल करना आपके हाथ में है।

बस, फिर तो था ही क्या, सूरिजी तो इस बात को चाहते ही थे कि कोई भी भावुक इस दुःखमय संसार का त्याग कर आत्म कल्याण करे। सूरिजी ने इस प्रकार का उपदेश दिया कि तेजसी का वैराग्य द्विगुणित होगया। तेजसी सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया और अपने माता पिता को बधाई देने लगा कि मैं सूरिजी के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ आप आज्ञा प्रदान करावें। यद्यपि मंत्री स्वयं संसार से उदास था तथापि मोहनी कर्म एक इतना प्रबल होता है कि वह अपना असर किये बिना नहीं रहता है। नागदेव ने कहा बेटा ! अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है। तेरी माँ तो तेरी शादी के लिये बहुत दिन हुये मुझे कह रही है मैंने इसके लिये निश्चय भी कर रक्खा है। अतः इस समय तेरे दीक्षा लेने का अवसर नहीं है इत्यादि पास में ही तेजसी की माता बैठी थी। उसने तो अपने जलते हुये कलेजे से ऐसे शब्दोच्चारण किये कि तुझे किसने भ्रमा दिया है तू दीक्षा की बात करता तो मैं अपने सामने काल को ही देखती हूँ। बेटा ! मैं तेरे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हूँ। मैं तुझको हर्गिज दीक्षा नहीं लेने दूंगी। व्यर्थ ही दीक्षा की बात कह कर दुनिया में हँसी क्यों करवावा है इत्यादि।

तेजसी ने कहा माता पूर्वजन्म में तो अपन लोगों ने अच्छे सुकृत किये हैं कि यहां सब सामग्री अच्छी मिली है यदि इस मिली हुई सामग्री का दुरुपयोग किया जाय तो क्या बार बार ऐसी सामग्री मिल सकेगी। माता पिता तो पुत्र के हितचिंतक होते हैं और पुत्र के हितार्थ अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं तो आप मेरे हित में बाधा क्यों डालते हो। मैं तो आपको भी कह देना चाहता हूँ कि आप भी अपना कल्याण करने को इसी मार्ग का अनुकरण करें। कारण, एक दिन मरना तो सबके लिये निश्चय ही है फिर इस घोर दुःखों का खजाना रूप संसार में रह कर मिला हुआ अमुल्य मनुष्य का भव व्यर्थ क्यों खो दिया जाय ? माता सच्चा प्रेम तो जम्बु कुँवर के माता पिताओं का था कि उन्होंने अपने पुत्र के साथ दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया अतः आपको भी विचार करना चाहिये। इस विषय में मैं आपसे अधिक क्या कहूँ ?

मंत्री नागदेव तो पहिले से ही संसार से उदास रहता था उसको तो अपने पुत्र का कहना ठीक रुचिकर हुआ पर माता कमला अभी मोहनीय कर्म के उदय कई प्रकार से समझा बुझा कर अपने पुत्र को घर में रखने की कोशिश करती थी। पर नगदेव ने कहा कि जब तेजसी इस बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेना

सत्ता के कारण उनके पैर जम नहीं सकते थे। आचार्य्य सिद्धसूरि वल्लभी में विराजते थे। उस समय बौद्धाचार्य्य बुद्धार्य भी अपने शिष्यों के साथ वल्लभी में आया था और अपने धर्म के प्रचार के लिये उपदेश भी देता था यह बात जैनाचार्य्य सिद्धसूरि से कब सहन होने वाली थी। आप के पास एक विमल-कलस नाम का वाचक था उसने वादी चक्रवर्ति की उपाधि को चरितार्थ करते हुये शास्त्रार्थ में अनेक वादियों को पराजय किया था। अतः वह बुद्धार्य से कब चूकने वाला था। उस समय वल्लभी में राजा शलादित्य राज करता था वाचक विमल-कलस ने राजसभा में जाकर शास्त्रार्थ के लिये कहा और राजा ने मंजूर कर दोनों आचार्यों को आमंत्रण दे दिया और ठीक समय पर सभा हुई। आचार्य सिद्धसूरि वाचकजी के साथ पधारे। उधर बौद्धाचार्य्य भी अपने साधुओं के साथ आये पर स्याद्वाद सिद्धान्त के मर्मज्ञ वाचकजी के सामने विचारा क्षणक मत वाले बोध कहाँ तक ठहर सकता। बस, थोड़े ही समय में बौद्धाचार्य्य को परास्त कर दिया और जैनधर्म की जयध्वनि के साथ आचार्य श्री अपने स्थान पर आगये और बौद्धाचार्य्य वहाँ से रफूचक्कर होगया।

आचार्य सिद्धसूरि ने उस समय की परिस्थिति देखकर वल्लभी में एक श्रमण संघ की सभा करने का विचार कर अपने साधुओं की सम्मति लेकर यह प्रस्ताव राजा शिलादित्य एवं सकल श्री संघ के सामने रक्खा और कहा कि इस समय बौद्धों का भ्रमण आपकी तरफ ही नहीं पर और भी कई प्रान्तों में हो रहा है। अतः जैन-धर्म की रक्षा के लिये सकल श्रीसंघ को कटिबद्ध हो जाना चाहिये जिसमें भी श्रमण संघ को तो प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जनता को सदुपदेश देना चाहिये। इतना ही नहीं पर साधुओं को स्वपरमत के साहित्य का भी गहरा अध्ययन करना चाहिये। कारण अब जमाना ऐसा नहीं है कि केवल क्रिया कांड में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लें। अब तो वादियों के सामने स्याद्वाद शस्त्र लेकर खड़े रहने का जमाना है। अतः एक श्रमणसंघ की सभा होना जरूरी है।

सूरिजी के कहने का मतलब श्रीसंघ अच्छी तरह से समझ गया और सूरिजी के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर श्रमणसभा बुलाने का निश्चय कर लिया। निश्चय ही क्यों पर कार्य्य प्रारम्भ भी कर दिया अर्थात् जहां २ मुनि महाराज विराजते थे वहाँ वहाँ खास श्रावकों को आमन्त्रण के लिये भेज दिये। उस समय के श्रमणसंघ के हृदय में जैनधर्म की कितनी बिजली थी वह इस कार्य्य से ठीक पता लग जाता है कि आमंत्रण मिलते ही केवल नजदीक २ के ही नहीं पर बहुत दूर दूर के साधु विहार करके वल्लभी नगरी की ओर आ रहे थे। सभा का समय भी इसलिये दूर का रक्खा गया था कि नजदीक और दूर के सब साधु इस सभा में शामिल हो सकें। ठीक है दीर्घ दृष्टि से किया हुआ कार्य्य विशेष फलदाता होता है।

इस सभा में केवल श्रमणसंघ ही एकत्र हुये हों ऐसी बात नहीं थी पर श्राद्धवर्ग भी शामिल थे और यह कार्य्य भी दोनों का ही था, रथ चलता है वह दो पहियों से ही चलता है फिर भी मुख्यता श्रमणसंघ की ही थी एवं श्रमण संघ की संख्या सैकड़ों की नहीं पर हजारों की थी और इसके कई कारण भी थे जैसे एक तो आचार्य श्री के दर्शन दूसरे धर्म प्रचार की भावना तीसरा बहुत साधुओं का समागम और चौथा विशेष कारण यह था कि वल्लभी के पास ही सिद्धगिरि तीर्थ था कि जिसकी यात्रा का लाभ मिल सके। अतः चतुर्विध श्री संघ की अच्छी उपस्थिति थी वल्लभियों ही तो एक यात्रा का धाम था पर इस सम्मेलन के कारण तो विशेष बन गया। यह वही वल्लभी है कि जहाँ आगम पुस्तकारूढ़ किया गया था।

दीक्षा के महोत्सव में खूब खुल्ले हाथों से द्रव्य व्यय करने को उत्साहित हो रहे हैं। नगर में सर्वत्र सूरिजी महाराज की भूरि भूरि प्रशंसा और यशोगान गाये जा रहे हैं। वर्तमान हैं तो पंचमारा पर आज तो माढव्यपुर में चौथा आरा ही वरत रहा है।

शुभ मुहूर्त में सूरिजी महाराज के वृद्धहस्तारविन्द से तेजसी आदि ५७ नर नारियों की दीक्षा बड़े ही ठाठ से होगई। सूरिजी ने तेजसी का नाम राजहंस रख दिया। जो साधु रूप हंसों में राजा ही था।

बस व्यापारी जैसे व्यापार में लाभ मिलजाने के बाद फौरन रवाना होजाता है वैसे ही सूरिजी महाराज को पुष्कल लाभ होगया अब वे क्यों ठहरें अपने शिष्य मंडल को साथ लेकर सूरिजी उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया। मुनि राजहंस को पहिले से ही संयम की रुचि और ज्ञान पढ़ने की उत्कंठा विशेष थी फिर आचार्य कक्कसूरिजी की पूर्ण कृपा तब तो कहना ही क्या? स्वल्प समय में ही आपने सामायिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। ग्यारह अंग एवं चारपूर्ण तो आपने हस्तामलक की भांति कण्ठस्थ ही करलिये थे। व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्यादि के धुरंधर विद्वान् होगये विशेषता यह थी कि आपने दीक्षा लेने के पश्चात् एक दिन भी गुरु सेवा नहीं छोड़ी थी। पहिले जमाने के साधु गुरुकुल वास में रहने में अपना गौरव समझते थे। बात भी ठीक है कि जो गुण हासिल होते हैं वह गुरुकुल वास में रहने से ही होते हैं। मुनि राजहंस कों योग्य समझ कर सूरिजी ने अष्ट महानिमित्त का अध्ययन करवा कर कई विद्याएँ भी प्रदान करदी जिससे मुनि राजहंस की योग्यता और भी बढ़ गई।

आचार्य कक्कसूरी महाराज लाट सौराष्ट्र और कच्छादि प्रदेश में विहार करते हुये सिन्धधरा में पधारे आप का चतुर्मास मारोटकोट नगर में हुआ। आप के विराजने से यों तो बहुत उपकार हुआ पर १७ भावुकों ने दीक्षा लेने का निश्चय किया और चतुर्मास के बाद श्री संघ ने दीक्षा के निमित्त बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया और उन दिक्षाओं के साथ मुनिराज हंसादि ७ साधुओं को उपाध्याय पद ध्यानान धानादि पांच साधुओं को वाचकपद संयमकुशलादि तीन मुनियों को प्रवृतकपद मंगलकलसादि ११ मुनियों की गणिपद प्रदान किया। हाँ, जहाँ विशाल समुदाय होता है और उनको अन्योन्य प्रान्तों में विहार करवाना पड़ता है तब पदवीधरों की भी आवश्यकता रहती है। सूरिजी ने अपने शासन में भूभ्रमन कर धर्म का प्रचार बढाया।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने पट्ट पर उपाध्याय विशालमूर्ति को सूरि बनाकर उनका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया था पर देवगुप्तसूरि का आयुष्य अल्प था। वे केवल ३ वर्ष ही आचार्य पद पर रहे और अन्त में अ ने पद पर उपाध्याय राजहंस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया था।

हमारे चरित्रनायक सिद्धसूरीश्वरजी महाराज बाल ब्रह्मचारी महान तपस्वी साहित्य के धुरंधर विद्वान एवं निमित शास्त्र के पारगामी और विद्या भूषीत मरुधर के एक जगमगाता सितारा ही थे। आपश्री जी के आज्ञावृति श्रमणसंघ मरुधर मेदपाट आवंती लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पजाब महाराष्ट्र और सूरसेनादी सब प्रान्तों में विहार करते थे। उन सबकी संख्या कई पांच हजार से भी अधिक थी।

एक समय सूरिजी अपने विद्वान शिष्यों के साथ विहार करते हुए पुनित तीर्थ श्री शत्रुंजय की यात्रा कर वल्लभी नगरी में पधारे थे। उस जमाने का वल्लभी जैनों का एक केन्द्र ही था। श्रीसंघने सूरि का शानदार स्वागत किया और सूरिजी का मंडेली व्याख्यान हमेशा होता था।

ठीक उसी समय सौराष्ट्र में कहीं-कहीं बौद्धों के भिक्षु भी भ्रमण करते थे पर जैनाचार्यों की प्रबल

मनुष्य के अन्दर जान डालने वाला उपदेश ही है। आज सूरिजी के उपदेश का प्रभाव प्रत्येक आत्मा पर इस प्रकार हुआ कि उनकी सुरत धर्मप्रचार की ओर लग गई। क्या साधु और क्या श्रावक सबके मुँह से यही शब्द निकल रहे थे कि हम धर्म प्रचार के लिये प्राणों की आहुति देने को भी तैयार हैं। जिस को सुनकर सूरिजी ने बहुत संतोष प्रगट किया और बाद में जैनधर्म की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

इस सभा से सूरिजी को अपने निर्धारित कार्य के लिये बहुत सफलता मिली। जिस कार्य को आप चाहते थे वह कार्य बड़े ही उत्साह के साथ कर पाये। कई मुनियों को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य प्रान्तों में विहार करवाया जिसमें सूरिजी महाराज ने स्वयं ३०० साधुओं के साथ दक्षिण देश की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया और कितने साधुओं को तो दक्षिण की ओर विहार भी करवा दिया।

पूर्व जमाने में जैनाचार्य जैनधर्म के प्रचार के निमित किस प्रकार प्रयत्न करते थे। आज कल कांग्रेस कमेटियां और सभायें होती हैं और इनके द्वारा जनता में जागृति की जाती है ये कोई नई बातें नहीं हैं पर हमारे पूर्वाचार्यों से ही चली आई हैं। मरुधरादि प्रान्तों में विहार करने वाले उपकेशगच्छाचार्यों के जीवन के लिये आप पिछले प्रकरण में पढ़ आये हैं कि प्रत्येक आचार्यों ने अपने शासन समय किसी न किसी प्रान्त में एक दो श्रमण सभायें अवश्य की हैं और उन सभाओं द्वारा चतुर्विध श्रीसंघ में खूब जागृति पैदा की। यही कारण था कि एक ओर से वाममार्गियों का दूसरी ओर से बौद्धों का तीसरी ओर से वेदान्तियों का जोरदार आक्रमण होने पर भी जैनाचार्यों ने कटिबद्ध होकर जैनधर्म का रक्षण ही नहीं बल्कि जैनधर्म का जोरों से प्रचार भी बढ़ाया था। जिन स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि ने लाखों की संख्या में जैन बनाये थे पिछले आचार्यों ने उनकी संख्या को बढ़ाकर करोड़ों तक पहुँचा दी थी और इस प्रचार कार्य में उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। जिनकी उन्होंने कुच्छ परवाह ही नहीं रखी—

वे आचार्य थे स्याद्वाद के ज्ञान चतुर मुत्सद्दी। कार्य्य करने की हथोटी उनको याद थी। जहाँ नये जैन बनाते वहाँ तत्काल ही जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा जैन विद्यालय की स्थापना करवा देते तथा उनको धर्मोपदेश के लिये नये नये साधुओं को भेजते रहते थे कि उन नूतन श्रावकों की धर्म पर श्रद्धा दृढ़ हो जाती। इधर श्रावक वर्ग भी आचार्य श्री की आज्ञा के पालक थे। नूतन जैनों के साथ वे बड़ी खुशी के साथ रोटी बेटी व्यवहार कर अपने स्वधर्मी भाई समझ अपने बराबरी के बना लेते थे। बहुत से नगरों में तो आचार्य श्री के उपदेश से ऐसा रिवाज सा ही हो गया था कि कोई भी नया साधर्मी नगर में आकर बसता था तो एक एक ईंट और एक एक रुपैया एवं सुवर्ण मुद्रका प्रत्येक घर से अर्पण किया जाता था कि वह सहज ही में धनवान् एवं व्यापारी बन जाता था।

इसके अलावा एक 'सारथवाह' पद की भी उस समय विशेषता थी कि वह अपने साधर्मी भाइयों को ही नहीं पर नगर निवासियों को देशान्तर ले जाते थे और अपनी रकम देकर व्यापार करवाते थे कि कोई भाई बेकार न रहे। उन सारथवाह का द्रव्य न्यायोपार्जित होने से उस द्रव्य से सैकड़ों मनुष्य लाभ उठा सकते थे। हाँ, मनुष्यों की उन्नति के दिन आते हैं तब सब संयोग अनुकूल बन जाते हैं। अतः वे दिन जैनों की उन्नति के थे कि चतुर्विध श्री संघ में प्रेम, स्नेह, ऐक्यता और प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति जैनधर्म की वृद्धि की ओर रहती थी।

अस्तु। आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज ने अपने शिष्य मण्डल के साथ दक्षिण की ओर विहार किया

उस समय के श्रमणसंघ में कितनी वात्सल्यता थी वह आप इस सम्मेलन से जान सकोगे कि क्या भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिये और क्या भगवान् महावीर के सन्तानिये आपस में मिल जुलकर जैन धर्म का प्रचार करते थे इस सम्मेलन में भी दोनों परम्परा के आचार्य अपने अपने आज्ञावृत्ति साधुओं को लेकर आये थे और सबके दिल में जैनधर्म के प्रचार की लग्न थी पृथक २ गच्छ परम्परा के आचार्य होने पर भी उनका सब व्यवहार शामिल था कि गृहस्थ लोगों को यह मालूम नहीं देता था कि श्रमण संघ में दो पार्टी अर्थात् दो परम्परा के साधू हैं यही कारण था कि उस समय के श्रमण संघ जो चाहते वह कर सकते थे एक दूसरे के कार्य को अनुमोदन कर मदद पहुँचाते थे तब ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी।

वल्लभी श्री संघ ने आगंतुकों के लिये पहिले से ही अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था तथा सभा के लिये भी ऐसा मण्डप तैयार करवा दिया था कि जिसमें हजारों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। ठीक समय पर आचार्य श्री सिद्धसूरि के अध्यक्षत्व में सभा हुई सभा में चतुर्विध श्रीसंघ उपस्थित था। राजा शिलादित्य ने पधारने वाले चतुर्विधि श्रीसंघ का उपकार माना। वाचक विमलकलास ने सभा का उद्देश्य कह सुनाया तत्पश्चात् आचार्यश्री ने जैनधर्म प्रचार के लिये पूर्वकालीन परिस्थिति और जैनश्रमण संघ का त्याग और वैराग्य एवं विहार क्षेत्र की विशालता बतलाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा आचार्य स्वयंप्रभसूरि, रत्नप्रसूरि, यज्ञदेवसूरि, ककसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, आर्य, सुहस्तीसूरि आदि आचार्य और इनके आज्ञावृति साधुओं का इतिहास सुनाया कि जैनधर्म के प्रचार के लिये उन्होंने किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना किया था। इतना ही क्यों पर अपने प्राणों को भी अर्पण करने की भीषण प्रतिज्ञा करली थी। चार चार मास तक उन्होंने आहार पानी के दर्शन तक भी नहीं किये थे। इतना ही क्यों पर उन पाखण्डियों ने उन तपस्वी साधुओं को दुःख देने में संकट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। पर धर्म प्रचार के निमित्त उन्होंने सब को सहर्ष सहन कर अपने ध्येय की पूर्ति कर ही ली थी। अगर उस समय की परिस्थिति को स्मरण किया जाय तो आज अपने को न तो किसी प्रकार का कष्ट है और पाखण्डियों का उपद्रव ही है। आज तो अपने केवल प्रत्येक प्रान्त में विहार करना और जिस साहित्य की आवश्यकता है उसका अध्ययन करना एवं वादी प्रतिवदियों के सामने खड़े कदम डट कर रहने की जरूरत हैं। इससे आप जैनसमाज का रक्षण एवं वृद्धि कर जैनधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा सकोगे। मानो सूरिजी ने उन श्रमणसंघ की आत्मा में नयी बिजली का संचार कर दिया। साथ में राजा महाराजा और सेठ साहुकारों की ओर लक्ष्य करके आपने फरमाया कि जैनधर्म का प्रचार करने में केवल एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं है पर साथ में आप लोगों के सहयोग की भी आवश्यकता है पूर्व जमाने राजा श्रेणिक, कौणिक, चन्द्रगुप्त, सम्पति, बलदेव, रुद्राट और शिवदत्तादि नरेशों ने तथा उहडादि मन्त्रियों ने और धनाठ्य गृहस्थोंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब परिश्रम कर आचार्यों को सहयोग दिया कि जिन प्रान्तों में जैन धर्म का नाम निशान नहीं था पर आज वहाँ जैनधर्म की ध्वजा फहराने लगगई और सैकड़ों हजारों जैनमंदिर और लाखों करोड़ों मन्दिरों के उपासक आपकी नजरों के सामने विद्यमान हैं फिर भी अभी आपको बहुत काम करना है। पूर्व जमाने में आचार्यों ने दक्षिण प्रान्त में कई साधुओं को विहार करवाया था पर इस समय दक्षिण में क्या हो रहा है इसका पता नहीं है। अतः समर्थ साधुओं को दक्षिण की ओर भी विहार करना चाहिये।

इत्यादि सूरीजी ने खूब ही उपदेश दिया। सज्जनों ! उपदेश एक किस्म की बिजली है। मृत प्रायः

चल कर सूरिजी महाराज के पास आये। सूरिजी उन दोनों का हाल सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुये और यथा समय सन्यासीजी को बड़ी दीक्षा देकर आप का नाम सन्यासमूर्ति रख दिया जो भविष्य में भी आपकी स्मृति करवाता रहे। मुनि सन्यासमूर्ति विद्यामंत्रों का तो पहिले ही जानकार था फिर भी आप रहे मुनि वीरशेखर के पास। वीरशेखर ने पहिले तो जैन धर्म के स्याद्वाद रहस्यमय सिद्धान्तों का अध्ययन करवाया जिससे वे जैनांगोपांगादि सब शास्त्रों के जानकार बन गये। बाद मुनि सन्यासमूर्ति को मत मतान्तरों के वाद विवाद में भी प्रवीण बना दिया। क्योंकि उस समय इसकी भी परमावश्यकता थी।

पट्टावलीकार लिखते हैं कि मुनि वीरशेखर और सन्यासमूर्ति ने अपने आत्मिक चमत्कारों से कई हजारों जैनेतरों को जैन बनाये। इतना ही क्यों पर कई सन्यासियों और बौद्ध-भिक्षुओं को भी जैन दीक्षा दी थी। कहा भी है कि चमत्कार को सब नमस्कार करते हैं।

जैसे रत्नाकर रत्नों से शोभा पाता है वैसे ही सिद्धसूरि ऐसे सिद्धपुरुषों-मुनियों से जगत में शोभा पाते हुए शासन कार्य करने में विख्यात हो रहे थे। इस गच्छ की अधिक उन्नति होने का मुख्य कारण यही है कि इस गच्छ में शुरू से ही एक ही आचार्य होता आया है। हजारों साधु भिन्न २ प्रान्तों में विहार करने वाले होने पर भी वे सब एक आचार्य की आज्ञा का आदरपूर्वक पालन करते थे। आप श्री के अलावा कोरंटगच्छ के आचार्य एवं मुनि थे भी मरुधरादि प्रान्तों में विहार करते थे पर वे भी उपकेशगच्छाचार्यों के साथ अच्छा मेल मिलाप एवं उनकी आज्ञा का पालन किया करते थे और उनका विहार प्रायः आबू के आस पास के प्रदेश में ही होता था तब उपकेशगच्छाचार्यों का विहार दक्षिण से लगा कर पूर्व तक होता था।

आचार्य सिद्धसूरि के ज्यों ज्यों साधुओं की वृद्धि होती गई त्यों त्यों अन्योन्य प्रान्त में मुनियों को भेजते गये जैसे कई साधुओं को बुलेन्दखण्ड की ओर तथा कई को शूरसेन एवं मत्सप्रदेश की ओर भेज दिये और आप अपने विशाल साधुओं के साथ विहार कर दिया महेश्वरी विदेशी माण्डवगढ़ हरीपुर मड़कोली पयोली दशपुर वगैरह प्रदेश में जैन धर्म का साम्राज्य स्थापित कर रहे थे तब इसके निकटवृत्ति मेदपाट में भी जैनधर्म का काफी प्रचार था उस प्रदेश में आज भी जैनधर्म के अनेक प्राचीन स्मारक चिन्ह उपलब्ध होते हैं तब सूरिजी चित्रकोटादि होते हुए आघाट नगर की ओर पधारे तो वहाँ के श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं रहा संघ की ओर से सूरिजी का अच्छा स्वागत किया और श्री संघ की साग्रह विनती को स्वीकार कर सूरिजी ने आघाट नगर में चतुर्मास करने का निर्णय कर लिया बस ! फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह खूब बढ़ गया और भावुक लोग आत्मकल्याणार्थ धर्म कार्य में संलग्न हो गये। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा हो रहा था आप श्री के व्याख्यान में न जाने क्या जादू था कि सुनने वाले मंत्र मुग्ध बन जाते थे। चतुर्मास समाप्त होने में ही था एक दिन सूरिजी ने उपदेश दिया कि उपकेशवंशियों। आपकी जन्मभूमि उपकेशपुर है वहां पर आपके पूर्वजों को आचार्यरत्नप्रभसूरि ने मांस मदिरादि दुर्व्यसन छोड़ कर जैनधर्म में दीक्षित किये थे आपके लिये वह भूमि एकतीर्थ स्वरूप है विशेषता में शासनाधीश चरमतीर्थंकर भगवान महावीर का मन्दिर की यात्रा करने काबिल है इत्यादि सूरिजी के उपदेश का इस कदर प्रभाव हुआ कि उसी सभा में श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री मुकुन्द ने उठकर प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरी इच्छा है कि मैं उपकेशपुर का संघ निकाल कर भगवान् महावीर की यात्रा करूं इसमें यहां के श्रीसंघ तो मुझे सहयोग देगा ही पर आप साहिबजी को भी इस संघ में पधार कर मेरे उत्साह को बढ़ाना चाहिये अतः मेरी विनति

उस समय के श्रमणसंघ में कितनी वात्सल्यता थी वह आप इस सम्मेलन से जान सकोगे कि क्या भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिये और क्या भगवान् महावीर के सन्तानिये आपस में मिल जुलकर जैन धर्म का प्रचार करते थे इस सम्मेलन में भी दोनों परम्परा के आचार्य अपने अपने आज्ञावृत्ति साधुओं को लेकर आये थे और सबके दिल में जैनधर्म के प्रचार की लग्न थी पृथक २ गच्छ परम्परा के आचार्य होने पर भी उनका सब व्यवहार शामिल था कि गृहस्थ लोगों को यह मालूम नहीं देता था कि श्रमण संघ में दो पार्टी अर्थात् दो परम्परा के साधू हैं यही कारण था कि उस समय के श्रमण संघ जो चाहते वह कर सकते थे एक दूसरे के कार्य को अनुमोदन कर मदद पहुँचाते थे तब ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी।

वल्लभी श्री संघ ने आगंतुकों के लिये पहिले से ही अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था तथा सभा के लिये भी ऐसा मण्डप तैयार करवा दिया था कि जिसमें हजारों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। ठीक समय पर आचार्य श्री सिद्धसूरि के अध्यक्षत्व में सभा हुई सभा में चतुर्विध श्रीसंघ उपस्थित था। राजा शिलादित्य ने पधारने वाले चतुर्विधि श्रीसंघ का उपकार माना। वाचक विमलकलास ने सभा का उद्देश्य कह सुनाया तत्पश्चात् आचार्यश्री ने जैनधर्म प्रचार के लिये पूर्वकालीन परिस्थिति और जैनश्रमण संघ का त्याग और वैराग्य एवं विहार क्षेत्र की विशालता बतलाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा आचार्य स्वयंप्रभसूरि, रत्नप्रसूरि, यक्षदेवसूरि, कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, आर्य, सुहस्तीसूरि आदि आचार्य और इनके आज्ञावृति साधुओं का इतिहास सुनाया कि जैनधर्म के प्रचार के लिये उन्होंने किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना किया था। इतना ही क्यों पर अपने प्राणों को भी अर्पण करने की भीषण प्रतिज्ञा करली थी। चार चार मास तक उन्होंने आहार पानी के दर्शन तक भी नहीं किये थे। इतना ही क्यों पर उन पाखण्डियों ने उन तपस्वी साधुओं को दुःख देने में संकट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। पर धर्म प्रचार के निमित्त उन्होंने सब को सहर्ष सहन कर अपने ध्येय की पूर्ति कर ही ली थी। अगर उस समय की परिस्थिति को स्मरण किया जाय तो आज अपने को न तो किसी प्रकार का कष्ट है और पाखण्डियों का उपद्रव ही है। आज तो अपने केवल प्रत्येक प्रान्त में विहार करना और जिस साहित्य की आवश्यकता है उसका अध्ययन करना एवं वादी प्रतिवदियों के सामने खड़े कदम डट कर रहने की जरूरत हैं। इससे आप जैनसमाज का रक्षण एवं वृद्धि कर जैनधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा सकोगे। मानो सूरिजी ने उन श्रमणसंघ की आत्मा में नयी बिजली का संचार कर दिया। साथ में राजा महाराजा और सेठ साहुकारों की ओर लक्ष्य करके आपने फरमाया कि जैनधर्म का प्रचार करने में केवल एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं है पर साथ में आप लोगों के सहयोग की भी आवश्यकता है पूर्व जमाने राजा श्रेणिक, कौणिक, चन्द्रगुप्त, सम्पति, उत्पदेव, रुद्राट और शिवदत्तादि नरेशों ने तथा उहडादि मन्त्रियों ने और धनाढ्य गृहस्थोंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब परिश्रम कर आचार्यों को सहयोग दिया कि जिन प्रान्तों में जैन धर्म का नाम निशान नहीं था पर आज वहाँ जैनधर्म की ध्वजा फहराने लगगई और सैकड़ों हजारों जैनमंदिर और लाखों करोड़ों मन्दिरों के उपासक आपकी नजरों के सामने विद्यमान हैं फिर भी अभी आपको बहुत काम करना है। पूर्व जमाने में आचार्यों ने दक्षिण प्रान्त में कई साधुओं को विहार करवाया था पर इस समय दक्षिण में क्या हो रहा है इसका पता नहीं है। अतः समर्थ साधुओं को दक्षिण की ओर भी विहार करना चाहिये।

इत्यादि सूरीजी ने खूब ही उपदेश दिया। सज्जनों! उपदेश एक किस्म की बिजली है। मृत प्रायः

पशुओं को घास वगैरह का माकूली इन्तजाम करवा दिया इस कार्य में करोड़ों रुपये व्यय कर जहां जिस भाव में मिला अन्न और घास मंगवा कर अपने देशवासी भाइयों के प्राण बचाये पट्टावलिकारों ने लिखा है कि विक्रम सं० १९१ का दुःकाल तो केवल उपकेशपुरवासियों ने करोड़ों द्रव्य व्यय कर निकाल दिया पर अशुभ कर्मोदय दूसरे वर्ष अर्थात् वि० सं० १९५ के वर्ष भी दुःकाल पड़ गया जिसको निकालना तो एक कठिन समस्या खड़ी हो गई कारण द्रव्य के लिये तो कमी नहीं थी पर अन्न एवं घास मिलना मुश्किल हो गया तथापि सूरिजी के उपदेश से लोगों ने देश के हित खूब उद्यम किया देश और विदेश में जहां जिस भाव से मिल सका वहां से अन्न और घास मंगवा कर जनता को मरती हुई को बचाई। उस समय एक तो उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था दूसरे उनके उपदेशक जैनाचार्य दया के अवतार ही थे उन्हों का उपदेश परोपकार के लिये ही हुआ करता था अतः महाजन संघ परोपकार के लिये बात ही बात में करोड़ों रुपये खर्च कर डालते थे यही कारण है कि केवल साधारण जनता ही क्यों परन्तु बड़े बड़े राजा महाराज महाजनसंघ का आदर सत्कार किया करते थे और नगरसेठ जगतसेठ वगैरह उपाधियों से सन्मान किया करते थे। इन दोनों भयंकर दुःकालों में साधुओं का विहार तक भी प्रायः बन्द सा ही हो गया था जब दुःकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तब जाकर साधुओं का विहार हुआ—

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी मरुधर के छोटे बड़े ग्राम नगर में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार एवं उद्योत किया था रत्नपुर विजयपुर वाकावती पाल्हीकापुरी कोरंटपुर सत्यपुर भीन्नमाल जाबलीपुर शिवपुरी चन्द्रावती पद्मावती आदि नगरों में भ्रमन करते हुए आपश्री शाकम्भरी नगरी में पधारे वहां के राजा नागभट्ट को जैनधर्म में दीक्षित किया "यथा राजास्तथा प्रजा" धर्म करने में उत्साही बन गये।

राजा नागभट्ट ने एक समय सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! अब आपकी वृद्धावस्था है तो आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को आचार्य बनावें कि इस पद का महोत्सव करने का सौभाग्य इस नगर को मिले कारण हमारी जानकारी में इस प्रकार का उत्तम कार्य इस नगरी में नहीं हुआ है केवल एक मेरी ही नहीं पर सकल श्रीसंघ की यही इच्छा है विशेषता में यहां की जनता चाह रही है कि वादी चक्रवर्ती उपाध्याय रत्नभूषण महाराज को पद प्रतिष्ठित किया जाय अतः आप जैन शासन की प्रभावना करने योग्य हैं इत्यादि। सूरिजी ने कहा भावुकों ! आपकी भावना अच्छी है पर मैं कल विचार कर आपको जवाब दूंगा।

आचार्य श्री ने रात्रि समय देवी सच्चायिका को याद किया देवी आकर सूरिजी के चरण कमलों में वन्दन किया और अर्ज की कि प्रभो ! मेरे योग्य कार्य हो सो फरमावें ? सूरिजी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद दिया जाय तथा यहां के श्रीसंघ की भी उत्कण्ठा है इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा पूज्यवर ! आप जो विचार किया है वह बहुत ही उत्तम है उपाध्यायजी इस पद के योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है आप इनको पदार्पण कर उपकेशपुर पधार इत्यादि कहकर देवी अदृश्य हो गई सुबह सूरिजी राजादि सकल संघ के सामने अपने विचार प्रगट कर दिये बस फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह खूब बढ़ गया और वे अपना कार्य सम्पादन करने में जुट गये जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव प्रारम्भ करवा दिया और आस पास के ग्राम नगरों में आमन्त्रण पत्र भेज दिये ठीक समय पर बहुत से भक्त जन शाकम्भरी में एकत्र हो गये और सूरिजी महाराज ने शुभमुहूर्त में उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद प्रदान कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया तत्पश्चात् आचार्य सिद्धसूरि उपकेश-

तो क्रमशः रास्ते के क्षेत्रों की स्पर्शना करते हुए दक्षिण में पधारे और आप वहाँ पर जाकर क्या देखते हैं कि उपकेशगच्छीय सैकड़ों साधु दक्षिण में विहार करते हैं। आचार्य सिद्धसूरि को आये सुनकर साधु साध्वियों के झुण्ड के झुण्ड आपके दर्शनार्थ आने लगे। उनका धर्मप्रचार देख सूरिजी को बड़ा ही संतोष हुआ कारण उन दक्षिण विहारी साधुओं का प्रभाव बड़े २ राजा महाराजाओं पर हो रहा था और काफी तादाद में जनता जैनधर्म का आराधन कर रही थी।

आचार्य श्री ने वह चतुर्मास तो मदुरा नगरी में किया वाद चतुर्मास के दक्षिण विहारी श्रमण संघ की मानखेट राजधानी में एक सभा की जिसमें प्रायः दक्षिण विहारी सब साधु एकत्र हुये जिसमें अधिक साधु तो दक्षिण के जन्मे हुए ही थे। आचार्य श्री ने कइ योग्य साधुओं को पदवी प्रदान कर उनके उत्साह बढ़ाया तत्पश्चात् आप दक्षिण भूमि में विहार कर दूसरा चतुर्मास मानखेट नगर में किया और वहाँ के साधुओं की ठीक व्यवस्था कर दक्षिण से विहार कर तैलंगादि प्रांत में घूमते हुए आवन्ति प्रदेश में पधारे और आपका चतुर्मास उज्जैन नगरी में हुआ।

आचार्यश्री के हस्त दीक्षित वीरशेखर नाम का एक लघु शिष्य था पर विद्यामंत्रों में वह वृद्ध कहलाता था। एक समय मुनि वीरशेखर जंगल में जा रहा था तो पीछे से एक सन्यासी भी आया। उसने पूछा कि अरे मुनि! तुम केवल दुनिया को भारभूत ही हो या कुछ विद्यामंत्र भी जानते हो? मुनि ने उत्तर दिया कि विद्या और मन्त्र तो सब हमारे घर से ही निकले हैं और लोग तो हमारे ही यहां से विद्या मन्त्र प्राप्त कर सिद्ध बन बैठे हैं जैसे एक समुद्र के छींटे उड़ते हैं उन छींटों से ही लोग अलग तालाव बना लेते हैं। बालमुनि के गौरवपूर्ण शब्द सुनकर सन्यासी ने मुनि के रास्ते पर इतने सर्प बना दिये कि मुनि का मार्ग ही बन्द होगया अर्थात पैर रखने जितनी भी जगह नहीं रही। इसको देख मुनि समझ गया कि यह सन्यासी की करामात है पर मुनि ने अपनी विद्या से इतने मयूर बनाये कि उन सर्पों की पूछें पकड़ पकड़ कर आकाश में लेगये जिसको देख सन्यासी मन्त्रमुग्ध बन गया कि यह लघु साधु तो बड़ा ही चमत्कारि दीखता है। सन्यासी ने अपनी विद्या से हस्ती ही हस्ती बना दिये। मुनि ने अपनी विद्या से हस्तियों पर अकुंश लिये हुये महावत बना दिये कि उनके अंकुश लगाने से हस्ती चिल्लाहट करते लग गयी।

सन्यासी अपनी मेकला ( थैली ) से एक गुटका निकाल उसका पैरों पर लेप कर आकाश में उड गया पर मुनि तो बिना ही लेप किये केवल अपनी विद्या के बल से ही आकाश में गमन कर योगी के साथ नभमण्डलमें घुमने लग गये इत्यादि कई प्रकार विद्या वाद हुआ आखिर मुनि ने उस सन्यासी को कहा कि महात्माजी। यह तो सब बाह्य विद्यायें हैं। केवल इन विद्याओं को इस प्रकार बतलाने से ही आत्म कल्याण नहीं हैं। आप उस विद्या को सीखो कि जिससे आत्मा से परमात्मा बन सको।

सन्यासी ने कहा मुनि। वह विद्या कौनसी है कि जो आत्मा से परमात्मा बना सके? मुनि ने कहा सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र इनकी आराधना करने से आत्मा परमात्मा बन सकता है। सन्यासी ने पूछा कि मैं इस में नहीं समझता हूँ कि सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र क्या पदार्थ है? और इसकी आराधना किस प्रकार की जाती है मुनिवर्य ने सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र के भेद प्रभेद का विवरण करके बतलाया और साथ में पंच महाव्रतरूप दीक्षा लेकर इनकी आराधना का मार्ग भी बतला दिया। अतः सन्यासीजी ने उसी जंगल में अपना वेश छोड़ कर मुनि वीरशेखर के पास भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली और वे दोनों

२५—सारपुर के विंचट गौ० शाह खेमा ने　"　"　"
२६—भीनमाल के श्रीमाल शाह रामपाल ने　"　"　"
२७—रामनगर के प्राग्वट शाह पारस ने　"　"　"

इनके अलावा कई पुरुष और बहुत सी बहिनों ने भी सूरिजी की सेवा में दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया था तथा आपके आज्ञावृति मुनियों ने भी बहुत से नर नारियों को दीक्षा देकर श्रमण संघ में वृद्धि की थी यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जिस गच्छ समुदाय में जितनी श्रमण संख्या अधिक है उतना ही धर्म प्रचार अधिक क्षेत्र में फैल जाता है।

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज तथा आप श्री के आज्ञा वृति साधुओं के उपदेश से कई महानुभावों ने तीर्थ यात्रा निमित्त बड़े बड़े संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा कर अनंत पुन्योपार्जन किया था पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है कि:—

१—चन्द्रवती से वाचनाचार्य शोभाग्यकीर्ति के उपदेश से प्राग्वट वंशीय धरण ने सिद्धाचलजी का संघ निकाला जिसमें धरण ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को सोना मोहरों तथा वस्त्रादि की पेहरामणी दी।

२—उपकेशपुर से मुनि हेमतिलक के उपदेश से श्रेष्टि वर्य्य कर्मा ने तीर्थों के संघ निकालकर पांचाल लक्ष द्रव्य व्यय किया तीन यज्ञ ( स्वामिवात्सल्य ) करके संघ को पेहरामणी दी।

३—मारोटकोट से उपाध्याय मंगलकलस के उपदेश से चरडगौत्रीय शाह गुणराज ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला। जिसमें नौ लक्ष द्रव्य खर्च किया संघ को पहरामणी दी।

४—सावत्थी नगरी से वाचनाचार्य देवप्रभ के उपदेश से संचेती गौत्रीय शाह रूपण ने श्रीसम्मेतशिखरजी का तीर्थ निकाल कर पूर्व देश की सब यात्रा की जिसमें शाह ने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को सोना मोहरों और सवासेर लड्डुओं की प्रभावना दी।

५—हंसावली से उपाध्याय निधानमूर्त्ति के उपदेश से भाद्रगौत्रीय शाह मघवा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया:—

६—नागपुर से सूरिजी के उपदेश से आदित्य नाग गौत्रीय शाह पीर जाला ने श्रीशत्रुंजय गिरनारादि का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। पांच यज्ञ ( जीमणवार ) कर पेहरामणी दी।

७—भीन्नमाल से वाचनाचार्य ज्ञान कलस के उपदेश से प्राग्व - वंशीयशाह सारंग ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोना मुहर की पेहरावणी दी।

८—स्तम्भन नगर से उपाध्याय मेरुप्रभ के उपदेश से मंत्री गजा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पांच पांच सोना मुहरों की पेहरामणी दी। और तीन यज्ञ किये:—

९—पद्मावती से सूरिजी के उपदेश से श्रीमाल आदू ने तीर्थों का संघ निकाला जिसमें पाँच लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को पेहरावणी दी।

१०—उज्जैन से उपाध्याय मेरुनन्दन के उपदेश से राव भारथ ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। सधर्मी भाइयों को पेहरामणी दी।

स्वीकार होनी चाहिए ? सूरिजी ने संघ अग्रेश्वरों की ओर इसारा करके कहाकि क्यों मन्त्रीश्वर क्या कह रहा है इसके लिये आपलोगों की क्या इच्छा है ? संघअग्रेश्वरों ने कहाकि पूज्यवर ! मंत्रीश्वर भाग्यशाली हैं जो एक महान् कल्याण कारी कार्य करने को प्रस्तुत हुआ है फिर आप जैसे प्रतापीक पुरुषों का सहयोग फिर इस लाभ का तो कहना ही क्या है संघ के ऐसा भाग्य ही कहां है कि एक तीर्थ भूमि की यात्राकर आत्मकल्याण कर सकें। हम मन्त्रीश्वर के कार्य की अनुमोदना करते हैं और सब लोग यात्रा के लिए चलने को तैयार हैं। बाद सूरिजी ने भी अपनी स्वीकृति फरमादी अतः मन्त्रेश्वर के सब मनोरथ सफल हो गये बस जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। संघ की बात विद्युद्वेग की भाँति नगर भर में फैल गई और लोग तीर्थयात्रा के लिये तैयारियाँ करने लग गए मन्त्रीश्वर ने आसपास के प्रदेशों में आमन्त्रण पत्रिकाएँ भेजवादी चतुर्मास समाप्त होते ही आस पास में चतुर्मास करने वाले 'साधु साध्वियां' तथा खूब गेहरी तादाद में संघ भी एकत्र होगया शुभ मुहूर्त मार्गशर्ष शुक्ल पंचमी के दिन मन्त्री मुकन्द के संघपतित्व में संघने प्रस्थान कर दिया पट्टावली कर लिखते है कि कइ पांचसो साधु साधियों और दश हजार नरनारी संघ में थे क्रमशः छरी पाली चलता हुआ संघ उपकेशपुर पहुँचा तो वहाँका श्रीसंघ ने आचार्य श्रीसिद्धसूरि के साथ श्रीसंघ का आदर सत्कार किया और संघने भी अपनी जन्मभूमि एवं भगवान् महावीर की यात्रा की मन्दिर में अष्टाह्निका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य और ध्वज महोत्सव कर अपने जीवन को सफल बनाया तत्पश्चात मेदपाट में विहार करने वालों के साथ संघ वपिस लौट गया और सूरिजी महाराज वहां के राजा प्रजा के आग्रह कुछ अर्सा की स्थिरता कर वहाँकी जनता को धर्मोपदेश देकर धर्म की जगृति एवं उन्नति की जब सूरिजी महाराज विहार का इरादा कियातो रात्रि के समय देवी सच्चायिका सूरिजी की सेवामें उपस्थित हो प्रार्थना की कि प्रभो ! आपका यह चतुर्मास उपकेशपुर में ही होना चाहिये उपकेशगच्छाचार्यों का कमसे कम एक चतुर्मास तो उपकेशपुर में अवश्य होना ही चाहिये पूज्यवर ! यह आपके पूर्वज रत्नप्रभसूरि के उपकार की भूमिका हैं इत्यादि देवीने खूब आग्रह से विनती की इस पर सूरिजी ने फरमाया देवी अभी तो बहुत समय है देवीने कहा हाँ समय बहुत है पर आप आस पास के क्षेत्रों में विहार कर पुनः यहाँ पधार कर चतुर्मास तो यहाँ ही करावे' आपकों बहुत लाभ होगा ? सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी आपकी विनति कों हमारे पूर्वजोंने स्वीकार कर लाभ उठाया था अतः क्षेत्र स्पर्शना होगी तो मेरी भी ना नहीं है।

दूसरे दिन वहां के राजादि श्रीसंघ को मालूम हुआ कि सूरिजी महाराज विहार करने वाले हैं अतः सकल श्रीसंघ एकत्र होकर चतुर्मास के लिये बहुत आग्रह से प्रार्थना की इस पर सूरिजी महाराज ने वही उत्तर दिया जो देवी को दिया था सूरिजी महाराज उपकेशपुर से विहार कर माण्डव्यपुर शेखपुर आसिका दुर्ग खटकुंपपुर मुग्धपुर नागपुर मेदनीपुर पद्मावत्ती हंसावली शाकम्भरी आदि क्षेत्रों में भ्रमन कर एवं जनता को खूब धर्मोपदेश देकर धर्म की प्रभावना की और पुनः उपकेशपुर पधार कर वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही करदिया जिससे देवी के एवं श्री संघ के हर्ष का पार नहीं था।

भाग्यवशात् उपकेशपुर और उसके आसपास के प्रदेश नहीं पर सर्वत्र ऐसा भयंकर दुकाल पड़ा कि अन्न के अभाव दुनिया में हाहाकार एवं त्राहि-त्राहि मच गई इस प्रकार जनता का दुःख सूरिजी से देखा एवं सुना नहीं गया आपने अपने व्याख्यान में ऐसा उपदेश दिया कि उपकेशपुर के साहूकार लोगों ने एक एक दिन मुकर्रर कर ३६० दिन लिख लिया कि देश भर में अपने योग्य पुरुषों को भेजकर मनुष्यों को अन्न और

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| २५—सत्यपुर के | प्राग्वट० | भीमा ने | " | महावीर | " | " |
| २६—श्रीनगर के | श्रीमाल० | भोलाने | " | " | " | " |
| २७—उपकेशपुरके | कनौजिया० | दोलाने | " | " | " | " |

वंशावलियों में कई दुकालों में द्रव्य व्यय कर देश की सेवा करने वाले उदार पुरुषों के नामों का भी उल्लेख किया है वैसे ही विदेशियों के साथ युद्ध कर देश की रक्षा करने वाले वीरों के नामों का भी उल्लेख किया है। उस समय के उपकेशवंशी लोग सबके सब व्यापार नहीं करते थे पर बहुत से लोग राज करते थे तथा राज के मंत्री महामंत्री वगैरह उच्चपद पर नियुक्त हो राजतंत्र भी चलाते थे और आज की भांति उनका वैवाहिक क्षेत्र संकुचितभी नहीं था पर उन जैन क्षत्रियों का विवाह शादी अजैन क्षत्रियों के साथ भी होता था और उन्हें समय समय प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध भी करना पड़ता था तथा जो लोग व्यापार करते थे वे भी आज की भांति कमजोर नहीं थे। पर बड़ी भारी वीरता रखते थे पूर्व प्रकरणों में आ पद आये है कि भारतीय व्यापारी अन्य प्रदेशों में जा जा कर उपनिवेश स्थापन किये थे वे व्यापार करते थे पर दल बल क्षत्रियोंके सदृश ही रखते थे।

इत्यादि आचार्य सिद्धसूरि का शासन जैन समाज की उन्नति का समय था आपके शासन में जैन समाज मन धन व्यवसाय और धर्म से समृद्धशाली था आचार्य सिद्धसूरि अपने २२ वर्ष के शासन में जैन समाज की बड़ी कीमती सेवा बजाई थीं अन्त में विक्रम संवत १९९ में आप स्वर्ग धाम को पधार गये

बीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर विद्यागुण भंडारी थे
शासन के हित सब कुच्छ करते चमत्कार सुचारी थे
ज्ञान दिवाकर लब्धि धारक अहिंसाधर्म प्रचारी थे
उनके गुणों का पार न पाया सुर गुरु जिम्या हजारी थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के बीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि परम प्रभाविक आचार्य हुए"

पुर पधार गये और वहां अन्तिम सलेखना कर अन्त में २७ दिनों का अनशन पूर्वक समाधि से देह त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज ने अपने बावीस वर्ष के शासन काल में अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं प्रचार बढ़ाया था पट्टावलियों आदि ग्रन्थों में आपके विषय में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर मैं यहाँ पर आपश्री के परोपकारी हाथों से जो जनोपयोगी कार्य हुए हैं जिनका केवल नामोल्लेख ही कर देता हूँ कि जिसको पढ़ कर उनका अनुमोदन करने मात्र से पाठकों का कल्याण हो सके।

## आचार्य श्री के कर कमलों से भावुकों को दीक्षा

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—नरवर के बलाह गौत्रीय शाह छापा ने | सूरिजी | के पास | दीक्षाली |
| २—डवरेल के श्रेष्टि गौत्रीय शाह फाल्गु ने | ,, | ,, | ,, |
| ३—उतोल के बाप्पनाग गौत्रीय शाह चूड़ा ने | ,, | ,, | ,, |
| ४—वारोटी के भाद्र गौत्रीय शाह देवपाल ने | ,, | ,, | ,, |
| ५—खखोटी के सुघड़ गौत्रीय शाह चौपसी | ,, | ,, | ,, |
| ६—मुजपुर के लुंग गौत्रीय शाह देदा ने | ,, | ,, | ,, |
| ७—हीगोटी के भूरी गौत्रीय शाह रामा ने | ,, | ,, | ,, |
| ८—सोपार के आदित्य नाग शाह कल्हण ने | ,, | ,, | ,, |
| ९—सींदली के आदित्यनाग शाह सूरजण ने | ,, | ,, | ,, |
| १०—देवपट्टन के तप्तभट्ट गौ० शाह नाथा ने | ,, | ,, | ,, |
| ११—कल्याण के बाप्पनाग गौ० शाह राजा ने | ,, | ,, | ,, |
| १२—दक्षिण के बारह दक्षिणीयों ने | ,, | ,, | ,, |
| १३—भद्रावती के करणाट गौत्रीय शाह भादा ने | ,, | ,, | ,, |
| १४—उज्जैन के श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री करमण ने | ,, | ,, | ,, |
| १५—मधुवती के सुंचेती गौत्रीय शाह महीधर ने | ,, | ,, | ,, |
| १६—रूपनगर के कुमट गौत्रीय शाह धरण ने | ,, | ,, | ,, |
| १७—आकोर के आदित्यनाग० शाह धना ने | ,, | ,, | ,, |
| १८—विराट के ब्राह्मण जगदेव ने | ,, | ,, | ,, |
| १९—उपकेशपुर के कुलभद्र गौ० शाह राजा ने | ,, | ,, | ,, |
| २०—नागपुर के आदित्यनाग० शाह नारायण ने | ,, | ,, | ,, |
| २१—हंसावली के श्रेष्टि गौत्रीय शाह पाता ने | ,, | ,, | ,, |
| २२—मथुरा के बाप्पानाग गौ० शाह पोमा ने | ,, | ,, | ,, |
| २३—खंडला के बलाहा गौ० शाह जेता ने | ,, | ,, | ,, |
| २४—मुग्धपुर के विद्वगौत्रीय मंत्री कडुआने | ,, | ,, | ,, |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| २५—सत्यपुर के प्राग्वट० | भीमा ने | " | महावीर | " | " |
| २६—श्रीनगर के श्रीमाल० | भोलाने | " | " | " | " |
| २७—उपकेशपुरके कनोजिया० | दोलाने | " | " | " | " |

वंशावलियों में कई दुकालों में द्रव्य व्यय कर देश की सेवा करने वाले उदार पुरुषों के नामों का भी उल्लेख किया है वैसे ही विदेशियों के साथ युद्ध कर देश की रक्षा करने वाले वीरों के नामों का भी उल्लेख किया है। उस समय के उपकेशवंशी लोग सबके सब व्यापार नहीं करते थे पर बहुत से लोग राज करते थे तथा राज के मंत्री महामंत्री वगैरह उच्चपद पर नियुक्त हो राजतंत्र भी चलाते थे और आज की भांति उनका वैवाहिक क्षेत्र संकुचितभी नहीं था पर उन जैन क्षत्रियों का विवाह शादी अजैन क्षत्रियों के साथ भी होता था और उन्हें समय समय प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध भी करना पड़ता था तथा जो लोग व्यापार करते थे वे भी आज की भांति कमजोर नहीं थे। पर बड़ी भारी वीरता रखते थे पूर्व प्रकरणों में आप पढ़ आये है कि भारतीय व्यापारी अन्य प्रदेशों में जा जा कर उपनिवेश स्थापन किये थे वे व्यापार करते थे पर दल बल क्षत्रियोंके सदृश ही रखते थे।

इत्यादि आचार्य सिद्धसूरि का शासन जैन समाज की उन्नति का समय था आपके शासन में जैन समाज मन धन व्यवसाय और धर्म से समृद्धशाली था आचार्य सिद्धसूरि अपने २२ वर्ष के शासन में जैन समाज की बड़ी कीमती सेवा बजाई थीं अन्त में विक्रम संवत १९९ में आप स्वर्ग धाम को पधार गये

बीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर विद्यागुण भंडारी थे  
शासन के हित सब कुच्छ करते चमत्कार सुचारी थे  
ज्ञान दिवाकर लब्धि धारक अहिंसाधर्म प्रचारी थे  
उनके गुणों का पार न पाया सुर गुरु जिम्या हजारी थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के बीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि परम प्रभाविक आचार्य हुए"

११—मथुरा से वाचनाचार्य गुणतिलक के उपदेश से चिंचट गौत्रीय शाह गुणपाल ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया।

इनके अलावा भी अन्य प्रान्तों से कई कई छोटे बड़े संघ निकले थे उस समय धर्म कार्य में मुख्य संघ निकाल कर तीर्थ यात्रा करना और साधर्मी भाइयों को अपने घर आगणे बुला कर अधिक से अधिक द्रव्य पेहरामणी में देना बड़ा ही महत्त्व का कार्य समझा जाता था अतः जिसके पास द्रव्य होता वह या तो मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाने में या तीर्थो के संघ निकालने में या आचार्य के पट्ट महोत्सव करने में ही लगते थे और इसमें अपने जन्म की सार्थकता भी समझते थे।

## सूरिजी महाराज या आपके मुनियों के हाथों से प्रतिष्ठाएं

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १—नागपुर के | अदित्य नाग० | वीरदेव ने | भ० | महवीर | के मन्दिर | की प्रतिष्ठा |
| २—खावड़ा के | अदित्य नाग० | सलखण ने | " | पार्श्वनाथ | " | " |
| ३—मुग्धपुर के | वाप्पनाग गौ० | अजड़ ने | " | शान्तिनाथ | " | " |
| ४—खट कूप के | श्रेष्टि गोत्रीय | माला ने | " | महावीर | " | " |
| ५—नारायणपुरा के | भूरिगौत्रीय | चोपा ने | " | आदीश्वर | " | " |
| ६—रूपनगर के | भाद्रगौत्रीय | मंत्रीरणवीर | " | " | " | " |
| ७—खंडेला के | सोनी गौ० | सुखा ने | " | महवीर | " | " |
| ८—सापाणी के | सुघड़ गौ० | मूला ने | " | " | " | " |
| ९—विराटपुर के | चरड़ गौ० | देवा ने | " | " | " | " |
| १०—मथुरा के | सुंचति गौ० | धरण ने | " | पार्श्वनाथ | " | " |
| ११—भीलाणी के | श्री श्रीमाल | देदा ने | " | " | " | " |
| १२—नखर के | श्रेष्टि गौ० | आखा ने | " | महावीर | " | " |
| १३—तक्षिला के | श्रीमाल | खीवसी ने | " | " | " | " |
| १४—सालीपुर के | चिंचट गौ० | चतरा ने | " | " | " | " |
| १५—वीरपुर के | कुलभद्र० | जगमाल ने | " | " | " | " |
| १६—वजवार के | वलाहा० | जेता ने | " | विमलनाथ | " | " |
| १७—मारोट के | मोरक्षगौ० | वागा ने | " | नेमिनाथ | " | " |
| १८—कटपुर के | ब्राह्मण | हेरदेव ने | " | महावीर | " | " |
| १९—वर्द्धमान के | प्राग्वट० | करमण ने | " | " | " | " |
| २०—कपीलपुर के | प्राग्वट० | गोंदा ने | " | " | " | " |
| २१—शत्रुंजयपर | श्रेष्टि गौ० | चूड़ा ने | " | पार्श्वनाथ | " | " |
| २२—सोपार० के | कुंमट गौ० | पोमा ने | " | " | " | " |
| २३—चन्द्रावती के | वाप्प नाग० | राणा ने | " | शान्तिनाथ | " | " |
| २४—टेलीपुर के | आदित्य नाग० | आदू ने | " | " | " | " |

सेठानी पातोली एक समय अर्द्ध निन्द्रावस्था में सो रही थी तो वह स्वप्न में क्या देखती है कि एक सफेद हस्ती गगन से उतरता हुआ मुँह में प्रवेश करता है इतने में तो माता जाग उठी और अपने स्वप्न को सावधानी से याद कर अपने पतिदेव को स्वप्ने का सब हाल कहा पतिदेव ने कहा प्रिये! तू भाग्यशालिनी है और इस शुभ स्वप्न से ज्ञात होता है कि तेरे उदर में कोई भाग्यशाली जीव अवतीर्ण हुआ है इत्यादि जिसको श्रवण कर धर्मप्रिय पातोली ने बहुत हर्ष मनाया ! बस मानों कि शाह जसा के पुष्ट अन्तराय कर्म को तोड़ कर नष्ट करने को ही स्वर्ग से एक सुभट आया हो ।

इधर शाह जसा बरसात के अन्त में जंगल गया था वहाँ उसने एक पारस का खण्ड देखा। जसा शास्त्रों का ज्ञाता था पारस को पहचान लिया पर अदत के भय से उसे नहीं लिया पर जब जसा दो चार कदम आगे बढ़ा तो एक अदृश्य आवाज हुई कि जसा यह पारस तेरी तकदीर में लिखा हुआ है मैं तुमे अर्पण करता हूँ तू इसे ले जाकर इसका सदुपयोग करना इत्यादि ।

शाह जसा ने सोचा कि यह अदृश्य प्रेरणा करने वाला कौन होगा और यदि मैं इस पारस को ले भी लूँ तो मेरे पीछे अनेक प्रकार की उपाधियाँ बढ़ जायगी । एवं धर्म कार्य्य में अन्तराय पड़ेगी । अतः जसा ने कहा कि इस पारस को आप किसी योग्य पुरुष को ही दीजिये । जवाब मिला कि इस कार्य के लिये जसा तू ही योग्य है तब उस अदृश्य व्यक्ति के आग्रह से शाह जसा ने प्रणामपूर्वक पारस को ग्रहण कर अपने मकान पर आगया इधर पातोली ने अपने पतिदेव को कहा कि आज रात्रि में मुझे और भी स्वप्न आया जिसमें मैंने देखा है कि आपको बड़ा भारी लाभ हुआ और अपना घर धन से भर गया । इस का क्या अर्थ होगा ? शाह जसा ने कहा भद्रे ! तू बड़ी पुन्यवती है और तेरा स्वप्न सफल भी होगया है । तेरे और तेरे गर्भ के प्रभाव से आज मुझे पारस मिला है । देखो यह पारस मैं ले आया हूँ

बस, फिर तो था ही क्या शाह जसा ने उस पारस से पुष्कल सुवर्ण बना लिया । सबसे पहिले तो उसने एक विशाल जिनमन्दिर बनाना शुरू कर दिया अब तो जसा खर्च करने में कमी ही क्यों रक्खें । उस मन्दिर के लिये ९६ अंगुल की सुवर्णमय भगवान् महावीर की मूर्ति बनाने का निश्चय किया और इस मंदिर में एक करोड़ रुपये खर्च करने का संकल्प भी कर लिया ।

इधर पातोलीदेवी ने गर्भ की प्रेरणा से नगर के पूर्व दिशा में जनोपयोगी एक विशाल तालाब बनाना शुरू कर दिया । इसके अलावा भी दम्पति ने कई सुकृत कार्य में खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय करने लगे । जिसमें भी साधर्मी भाइयों के लिये तो आपका लक्ष्यविशेष रहता था कारण जसा जानता था कि मनुष्य आर्थिक संकट में जीवन किस प्रकार निकालता है ।

इधर देवी पातोली को दोहला उत्पन्न हुआ कि गुरुवर्य आचार्य ककसूरिजी महाराज के मुखारविन्द से मैं महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनूं । इस दोहले की बात अपने पतिदेव को कही तो शाह जसा के हर्ष का पार नहीं रहा और उसी वक्त अपने पुत्र सालग को कहा कि तुम जाओ सूरिजी महाराज को विनती कर चतुर्मास के लिये यहां लाओ । सालिग ने कहा कि आपकी आज्ञा तो मुझे स्वीकार है पर मेरी राय में यहां के श्रीसंघ की ओर से विनती हो तो और भी अच्छा रहेगा ? शाह जसा के बात जंच गई और तत्काल ही श्रीसंघ को एकत्र किया और कहा कि आचार्य श्रीककसूरि को चतुर्मास के लिये विनती की जाय अतः आप स्वीकृति दिरावें । श्रीसंघ ने कहा कि ऐसा हतभाग्य कौन है कि कल्पवृक्ष को अपने घर पर बुलाना

# २१—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ( चतुर्थ )

धृत्वा पारस द्रव्य राशिमसकौ वंशावतंसोऽभवत् ।
यो रत्नप्रभसूरि नाम विदितो योगेश्वरो विद्यया ॥
ख्यातो लोकसमूह आत्मवशता सामर्थ्यभारेण च ।
लोकान् जैन मतेतरान् विहितवान् जैनान् प्रभापुंजयुक् ॥

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में आप चतुर्थ रत्नप्रभसूरि थे। वादि रूप चर्तुगति के अन्त करने में आप चक्रवर्ति सदृश विजयी थे। आपश्री का पवित्र जीवन परम रहस्यमय था। आप हंसावली नगरी के उपकेशवंशीय श्रेष्ठिवर्य्य शाह जसा की धर्म परायण सुलक्षणा भार्या पातोली के प्यारे पुत्र रत्न थे। शाहजसा एक साधारणस्थिति का गृहस्थ था पर आप सकुटुम्ब धर्मकरनी में इतना संलग्न थे कि जितना मिले उसमें संतोष कर अहिर्निश धर्म कार्य करने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। बस इनके जैसा दुनियां में कोई सुखी एवं संतोषी ही नहीं है।

आचार्य श्री सिद्धसूरि के अनुयायी वाचक श्री धर्मदेव वृद्धावस्था के कारण हंसावली में ही स्थिरवास कर रहते थे। शाह जसा आपका परमभक्त एवं श्रद्धासम्पन्न श्रावक था जसा ने वाचकजी की विनयभक्ति करके जैनधर्म के तत्त्व ज्ञानमय सिद्धान्त का खूब अभ्यास किया अपनी नित्यक्रिया सामायिक प्रतिक्रमण के अलवा जीवाजीव का स्वरूप और कर्मसिद्धान्त का तो आप इतना मर्मज्ञ हो गया कि उसको हटाने के लिये खूब ही प्रयत्न किया करते थे पर पूर्वजन्म की अन्तराय भी इतनी जबरदस्त थी कि जसा अपने कुटुम्ब का पालनपोषण बड़ी मुश्किल से करता था फिर भी वह पुद्गलिक दुःख सुखों को एक कर्मों का खेल ही समझता था पर कहा है कि दुःख के अन्त में सुख और सुख के अन्त में दुःख हुआ ही करता है कारण, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक अंधेरा बढ़ता ही जाता है पर आखिर तो शुक्लपक्ष आही जाता है अतः कृष्ण पक्ष का भी अन्त है। जब शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से उद्योत बढ़ता-बढ़ता पूर्णिमा तक पूर्णोद्योत हो जाता है तब फिर चक्र के अनुसार पुनः कृष्ण पक्ष आही जाता है और ऐसे अनंताकाल चक्र व्यतीत हो गया और भविष्य में होगा। इस बात को शाह जसा अच्छी तरह समझ गया था। कहा है कि श्रद्धा का मूल कारण ज्ञान ही है और ज्ञान से ही श्रद्धा दृढ़ मजबूत रहती है। शाह जसा भी इसी कोटि का मनुष्य था कि उसका हाड़ और हाड़ की मींजी जैनधर्म में रंगी हुई थी। जैसे शाह जसा धर्मज्ञ था वैसे ही उसकी पत्नी पतोली भी धर्म करणी में अहर्निश तत्पर रहती थी। इतना ही क्यों पर जसा का सब कुटुम्ब ही धर्म परिवार कहा जाता था। बात भी ठीक है कि जैसे मुख्य पुरुष होता है वैसे ही उनका परिवार भी होता है।

तैयार हो गया है तो मैं सूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवा लूं । सेठजी ने अपनी सेठानी की सलाह ली तो वह भी सेठजी से सहमत हो गई तब जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यह जैन मंदिर तैयार हो गया है इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनाइये शेष जो कार्य रहा है वह मैं बाद में करवा लूंगा क्योंकि आप जैसे पूज्य पुरुषों का संयोग हमको बार बार मिलना कहां पड़ा है ? इत्यादि।

सूरिजी ने कहा जसा ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है । धर्म के कार्य्य में क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिये । कारण, शास्त्रकारों ने कहा है कि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' अतः 'धर्मस्तवरतागति' अर्थात् धर्मकार्य्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये । दूसरा आयुष्य का भी तो क्या विश्वास है—

शाह जसा ने चतुर शिल्पियों को बुला कर ९६ अंगुल प्रमाण की सुवर्णमय भगवान महावीर की मूर्ति बनवाई और इसके अलावा बहुत सर्व धातु और पाषाण की मूर्तियां भी बनवाई ।

शाह जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की भी एक मूर्ति बनवा कर इसी मंदिर में एक देहरी बना कर स्थापन करवाऊं । कारण हम लोगों पर सबसे पहला उपकार उन पूज्य परमोपकारी आचार्य महाराज का ही हुआ है ।

सूरिजी ने कहा जसा ! उपकारी पुरुषों का उपकार मानना कृतज्ञ पुरुषों का सब से पहिला कर्तव्य है पर उपकार इस प्रकार से माना जाय कि आगे चल कर अपकार का कारण न बन जाय । तीर्थङ्करों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्तियें स्थापन करनी और तीर्थङ्करों की पूजा की तरह से आचार्यों की पूजा होनी यह एक तीर्थङ्करों की आशातना है । कारण, तीर्थङ्करों के पांच कल्याणक हुये वैसे आचार्यों के पांच कल्याणक नहीं हुये हैं । आचार्यों के केवल एक दीक्षा कल्याणक हुआ है फिर उनको जल चन्दनादि की पूजा किस कल्याणक की कराई जा सके । दूसरा भाव तीर्थङ्करों की पुष्पादि से अग्रपूजा होती थी अतः स्थापना तीर्थङ्करों की पुष्पों से अग्रपूजा कर सकते हो पर भाव आचार्य कि पुष्पादि से पूजा होना किसी शास्त्र में नहीं कहा है तो स्थापनाचार्य की पुष्पादि से पूजा कैसे की जा सकती है ? जसा इस बात को तुम दीर्घ दृष्टि से विचार कर सकता है—कि भविष्य में इस भक्तिका क्या नतीजा होगा—

दूसरे तीर्थंकर निश्चय मोक्षगामी हैं तब आचार्य के लिए भजना है । आचार्य को तो भव्याभव्य का भी निश्चय नहीं है वे तीर्थंकरों की बराबर कैसे पूजा सकते हैं । भले कई आचार्य अतिशय प्रभाविक हों या तीर्थंकरों द्वारा उनका निर्णय भी हो जाय कि यह मोक्षगामी हैं जैसे रत्नप्रभसूरि का हुआ है पर तीर्थंकरों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्त्तियें स्थापन कर पूजा करने की प्रवृत्ति चल पड़ी तो भविष्य में जितने आचार्य होंगे उनके अनुयायी अपने २ आचार्यों की मूर्तियाँ तीर्थंकरों के मन्दिर में स्थापन करेंगे तो मन्दिर आचार्यों की मूर्त्तियों से ही भर जायगा । इतना ही क्यों पर इसमें रागद्वेष इतना बढ़ जायगा कि वे आपस में अपने-अपने आचार्यों की मूर्तियां तीर्थङ्करों के मंदिर में स्थापन करने के लिये लड़ेंगे झगड़ेंगे और कर्मक्षय करने के स्थान कर्म बन्ध के स्थान बन जायँगे और उनके पक्षपाती श्राद्धवर्ग भी इसी मार्ग का अनुकरण करेंगे । अतः धर्म के स्थान अधर्म की वृद्धि होगी इसलिये मैं आपके विचार से सहमत नहीं हो सकता हूँ ।

जसा ने कहा पूज्य गुरुदेव आपकी दीर्घ दृष्टि के विचार मेरी समझ में आगये हैं पर एक शंका और भी पूंछ लेता हूँ कि कि सिद्धचक्रजी के गटा में नौपद की स्थापना है उसमें आचार्य उपाध्याय और साधु इन तीनों की भी स्थापना है और वे तीर्थङ्करों के साथ पूजे भी जाते हैं तो क्या वहाँ भी आशातना है ?

नहीं चाहता हो। जसा तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि श्रीसंघ को इस प्रकार लाभ पहुँचाने की प्रेरणा की है। हम बहुत खुशी हैं और विनती के लिये साथ चलने को भी तैयार हैं और आशा है कि सूरिजी महाराज अपने पर अवश्य कृपा करेंगे इत्यादि जयध्वनि के साथ निश्चय कर लिया कि आज ही रवाना हो जाना चाहिये। श्रीसंघ के अन्दर से कई २५ श्रावक तैयार हो गये।

उस समय आचार्य ककसूरि नागपुर नगर में विराजमान थे। हंसावली के श्रावक चल कर शीघ्र ही नागपुर आये और श्रीसंघ की विनती सूरिजी के सामने रखी। सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर विनती स्वीकार करली। बस, हंसावली के श्रीसंघ के एवं शाह जसा और आपकी पत्नी पातोली के मनोरथ सिद्ध हो गये। आचार्य श्रीकक्कसूरिजी आपने शिष्य मंडल के साथ विहार करते हुए क्रमशः हंसावली पधार गये। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

शाह जसादि श्रीसंघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! यहां के श्रीसंघ की इच्छा है कि आपश्रीजी के मुखारविन्द से परम प्रभाविक पंचमाङ्ग श्रीभगवतीजी सूत्र सुनें। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है। बस, फिर तो था ही क्या, शाह जसादी श्रीसूत्रजी के महोत्सव की तैयारी करने में लग ही गया और भाग्यशालिनी पातोली देवी का दोहला पूर्ण होने से उसके हर्ष का पार भी न रहा। शाह जसा बाजे गाजे एवं बड़ी ही धामधूम पूर्वक सूत्रजी को अपने मकान पर लाया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना की दूसरे दिन स्वामिवात्सल्य किया बाद वरघोड़ा चढ़ाया जिसमें केवल जैन ही नहीं पर जैनेतर एवं सम्पूर्ण नगर निवासी एवं राजा राजकर्मचारी लोग शामिल थे। श्रेष्ठिवर्य जसा एवं पातोली देवी ने इस महोत्सव एवं ज्ञानपूजा में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया। जिसके पास पारस है वहां द्रव्य की क्या कमती है।

जब श्रीसूत्रजी वचना प्रारम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रश्न को सेठानी पातोली सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करती थी एवं ३६००० प्रश्नों की छत्तीस हजार सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की और उस द्रव्य से जैनागमों को लिखा कर भंडारों में रखवा दिये। धन्य है उन दानवीरों को कि जिनशासन के उत्थान के लिये अपनी लक्ष्मी व्यय करने में खूब ही उदारता रखते थे। यद्यपि शाह जसा के पास पारस होने से उसके धन की कमी नहीं थी परन्तु इसमें भी उदारता की आवश्यकता है कारण हम ऐसे मनुष्यों को भी देखते हैं कि जिन्हों के पास बहुत द्रव्य है पर उदारता न होने से उनका लाभ नहीं उठा सकते हैं।

आचार्य ककसूरिजी के चतुर्मास के अन्दर ही माता पातोली ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका अनेक महोत्सव के साथ राणा नाम रक्खा। क्रमशः राणा चम्पकलता की भांति बड़ा हो रहा था आचार्य श्री ने राणा की हस्त रेखा या अन्य लक्षणों से कहा था कि श्राविका! यह तेरा पुत्र जैनधर्म में महा प्रभाविक होगा। माता ने कहा पूज्यवर! आपके वचनों को मैं वंधा कर लेती हूँ।

इधर तो श्रीभगवती सूत्र बच रहा था उधर जसा के मंदिरजी का काम चल रहा था फिर भी जसा बहुत से कारीगरों को रख कर जहां तक बन सके मंदिर जल्दी से तैयार कराने की कोशिश में था। जहां द्रव्य की छूट हो वहां क्या नहीं हो सकता है। केवल दिन को ही नहीं परन्तु रात्रि में भी काम होता था और कारीगरों को मनमानी तनख्वाह दी जाती थी और साथ में इनाम देने की भी घोषणा करदी थी। बस, फिर तो देरी ही क्या थी थोड़े ही दिनों में मूल गंभारा शिखर और रंगमंडप तैयार हो गया।

शाह जसा ने सोचा कि आयुष्य का क्या विश्वास है। जब जैन मंदिर मूलगम्भारा और रंगमंडप

तैयार हो गया है तो मैं सूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवा लूं । सेठजी ने अपनी सेठानी की सलाह ली तो वह भी सेठजी से सहमत हो गई तब जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यह जैन मंदिर तैयार हो गया है इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनाइये शेष जो कार्य रहा है वह मैं बाद में करवा लूंगा क्योंकि आप जैसे पूज्य पुरुषों का संयोग हमकों बार बार मिलना कहां पड़ा है ? इत्यादि।

सूरिजी ने कहा जसा ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है । धर्म के कार्य्य में क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिये । कारण, शास्त्रकारों ने कहा है कि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' अतः 'धर्मस्यत्वरितागति' अर्थात् धर्मकार्य्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये । दूसारा आयुष्य का भी तो क्या विश्वास है—

शाह जसा ने चतुर शिल्पियों को बुला कर ९६ अंगुल प्रमाण की सुवर्णमय भगवान महावीर की मूर्ति बनवाई और इसके अलावा बहुत सर्व धातु और पाषाण की मूर्तियां भी बनवाई ।

शाह जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की भी एक मूर्ति बनवा कर इसी मंदिर में एक देहरी बना कर स्थापन करवाऊं । कारण हम लोगों पर सबसे पहला उपकार उन पूज्य परमोपकारी आचार्य महाराज का ही हुआ है ।

सूरिजी ने कहा जसा ! उपकारी पुरुषों का उपकार मानना कृतज्ञ पुरुषों का सब से पहिला कर्तव्य है पर उपकार इस प्रकार से माना जाय कि आगे चल कर अपकार का कारण न बन जाय । तीर्थङ्करों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्तियें स्थापन करनी और तीर्थङ्करों की पूजा की तरह से आचार्यों की पूजा होनी यह एक तीर्थङ्करों की आशातना है । कारण, तीर्थङ्करों के पांच कल्याणक हुये वैसे आचार्यों के पांच कल्याणक नहीं हुये हैं । आचार्यों के केवल एक दीक्षा कल्याणक हुआ है फिर उनको जल चन्दनादि की पूजा किस कल्याणक की कराई जा सके । दूसरा भाव तीर्थङ्करों की पुष्पादि से अग्रपूजा होती थी अतः स्थापना तीर्थङ्करों की पुष्पों से अग्रपूजा कर सकते हो पर भाव आचार्य कि पुष्पादि से पूजा होना किसी शास्त्र में नहीं कहा है तो स्थापनाचार्य की पुष्पादि से पूजा कैसे की जा सकती है ? जसा इस बात को तुम दीर्घ दृष्टि से विचार कर सकता है—कि भविष्य में इस भक्तिका क्या नतीजा होगा—

दूसरे तीर्थंकर निश्चय मोक्षगामी हैं तब आचार्य के लिए भजना है । आचार्य को तो भव्याभव्य का भी निश्चय नहीं है वे तीर्थंकरों की बराबर कैसे पूजा सकते हैं । भले कई आचार्य अतिशय प्रभाविक हों या तीर्थंकरों द्वारा उनका निर्णय भी हो जाय कि यह मोक्षगामी हैं जैसे रत्नप्रभसूरि का हुआ है पर तीर्थंकरों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्त्तियें स्थापन कर पूजा करने की प्रवृत्ति चल पड़ीतो भविष्य मे जितने आचार्य होंगे उनके अनुयायी अपने २ आचार्यों की मूर्त्तियाँ तीर्थंकरों के मन्दिर में स्थापन करेंगे तो मन्दिर आचार्यों की मूर्त्तियों से ही भर जायगा । इतना ही क्यों पर इसमें रागद्वेष इतना बढ़ जायगा कि वे आपस में अपने-अपने आचार्यों की मूर्त्तियां तीर्थङ्करों के मंदिर में स्थापन करने के लिये लड़ेंगे झगड़ेंगे और कर्मक्षय करने के स्थान कर्म बन्ध के स्थान बन जायँगे और उनके पक्षपाती श्राद्धवर्ग भी इसी मार्ग का अनुकरण करेंगे । अतः धर्म के स्थान अधर्म की वृद्धि होगी इसलिये मैं आपके विचार से सहमत नहीं हो सकता हूँ ।

जसा ने कहा पूज्य गुरुदेव आपकी दीर्घ दृष्टि के विचार मेरी समझ में आगये हैं पर एक शंका और भी पूंछ लेता हूँ कि कि सिद्धचक्रजी के गटा में नौपद की स्थापना है उसमें आचार्य उपाध्याय और साधु इन तीनों की भी स्थापना है और वे तीर्थङ्करों के साथ पूजे भी जाते हैं तो क्या वहाँ भी आशातना है ?

नहीं चाहता हो । जसा तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि श्रीसंघ को इस प्रकार लाभ पहुँचाने की प्रेरणा की है । हम बहुत खुशी हैं और विनती के लिये साथ चलने को भी तैयार हैं और आशा है कि सूरिजी महाराज अपने पर अवश्य कृपा करेंगे इत्यादि जयध्वनि के साथ निश्चय कर लिया कि आज ही रवाना हो जाना चाहिये । श्रीसंघ के अन्दर से कई २५ श्रावक तैयार हो गये ।

उस समय आचार्य कक्कसूरि नागपुर नगर में विराजमान थे । हंसावली के श्रावक चल कर शीघ्र ही नागपुर आये और श्रीसंघ की विनती सूरिजी के सामने रखी । सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर विनती स्वीकार करली । बस, हंसावली के श्रीसंघ के एवं शाह जसा और आपकी पत्नी पातोली के मनोरथ सिद्ध हो गये । आचार्य श्रीकक्कसूरिजी आपने शिष्य मंडल के साथ विहार करते हुए क्रमशः हंसावली पधार गये । श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़ा ही शानदार स्वागत किया ।

शाह जसादि श्रीसंघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यहां के श्रीसंघ की इच्छा है कि आपश्रीजी के मुखारविन्द से परम प्रभाविक पंचमाङ्ग श्रीभगवतीजी सूत्र सुनें । सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है । बस, फिर तो था ही क्या, शाह जसादी श्रीसूत्रजी के महोत्सव की तैयारी करने में लग ही गया और भाग्यशालिनी पातोली देवी का दोहला पूर्ण होने से उसके हर्ष का पार भी न रहा । शाह जसा बाजे गाजे एवं बड़ी ही धामधूम पूर्वक सूत्रजी को अपने मकान पर लाया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना की दूसरे दिन स्वामिवात्सल्य किया बाद वरघोड़ा चढ़ाया जिसमें केवल जैन ही नहीं पर जैनेतर एवं सम्पूर्ण नगर निवासी एवं राजा राजकर्मचारी लोग शामिल थे । श्रेष्ठिवर्य जसा एवं पातोली देवी ने इस महोत्सव एवं ज्ञानपूजा में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया, जिसके पास पारस है वहां द्रव्य की क्या कमती है ।

जब श्रीसूत्रजी वचना प्रारम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रश्न को सेठानी पातोली सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करती थी एवं ३६००० प्रश्नों की छत्तीस हजार सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की और उस द्रव्य से जैनागमों को लिखा कर भंडारों में रखवा दिये । धन्य है उन दानवीरों को कि जिनशासन के उत्थान के लिये अपनी लक्ष्मी व्यय करने में खूब ही उदारता रखते थे । यद्यपि शाह जसा के पास पारस होने से उसके धन की कमी नहीं थी परन्तु इसमें भी उदारता की आवश्यकता है कारण हम ऐसे मनुष्यों को भी देखते हैं कि जिन्हों के पास बहुत द्रव्य है पर उदारता न होने से उनका लाभ नहीं उठा सकते हैं ।

आचार्य कक्कसूरिजी के चतुर्मास के अन्दर ही माता पातोली ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया । जिसका अनेक महोत्सव के साथ राणा नाम रक्खा । क्रमशः राणा चम्पकलता की भांति बड़ा हो रहा था आचार्य श्री ने राणा की हस्त रेखा या अन्य लक्षणों से कहा था कि श्राविका ! यह तेरा पुत्र जैनधर्म में महा प्रभाविक होगा । माता ने कहा पूज्यवर ! आपके वचनों को मैं बंधा कर लेती हूँ ।

इधर तो श्रीभगवती सूत्र वच रहा था उधर जसा के मंदिरजी का काम चल रहा था फिर भी जसा बहुत से कारीगरों को रख कर जहां तक बन सके मंदिर जल्दी से तैयार कराने की कोशिश में था । जहां द्रव्य की छूट हो वहां क्या नहीं हो सकता है । केवल दिन को ही नहीं परन्तु रात्रि में भी काम होता था और कारीगरों को मनमानी तनख्वाह दी जाती थी और साथ में इनाम देने की भी घोषणा करदी थी । बस, फिर तो देरी ही क्या थी थोड़े ही दिनों में मूल गंभारा शिखर और रंगमंडप तैयार हो गया ।

शाह जसा ने सोचा कि आयुष्य का क्या विश्वास है । जब जैन मंदिर मूलगम्भारा और रंगमंडप

जसा-तथास्तु ।

जसा ने मंदिरजी के पास एक ओर औषधशाला और दूसरी ओर एक ज्ञान भंडार बनाने का निश्चय कर लिया । और उसी समय कार्य प्रारंभ कर दोनों स्थान तैयार करवा दिये—

सूरिजी ने एक दिन अपने व्याख्यान में षट्द्रव्य का वर्णन करते हुये काल द्रव्य का इस खूबी के साथ व्याख्यान दिया कि संसार के जीवाजीव जितने पदार्थ हैं उन सब पर काल की धाक है । काल सब की अवधि को पूर्ण कर देता है । देवता कब चाहते हैं कि हमारे सुखों की अवधि पूर्ण हो जाय, पल्योपम और सागरोपम की स्थिति भी क्षय हो जाती है तब अस्थिर काल की स्थिति वाले मनुष्य का तो कहना ही क्या है । धन, कुटुम्ब, मान, प्रतिष्ठा और लक्ष्मी की भी अवधि हुआ करती है । इस अवधि के अन्दर ही मनुष्य कुछ कर लेते हैं तो हो सकता है वरना पछताने के सिवाय और क्या हाथ लगता है इत्यादि ।

शाह जसा सूरिजी के उपदेश से सावधान हो गया और सोचा कि मेरे पास में पारस है पर इसकी भी तो अवधि होगी । इसके चले जाने पर तो मेरी वही स्थिति रहेगी जो पहले थी । अतः इसके अस्तित्व में मुझे इसका सदुपयोग कर लेना चाहिये । सब से पहिले तो मंदिरजी की प्रतिष्ठा करवाने का कार्य मेरे सामने है इसको शीघ्र ही कर लेना चाहिये । शाह जसा ने इस प्रतिष्ठा के कार्य्य में लोहे की जगह सोने से काम लेना शुरू किया । प्रतिष्ठा पर पधारने वाले साधर्मि भाइयों के लिये सोने के थाल और कटोरे तैयार करवाये जिसके पास खास पारस है वह क्या नहीं कर सकता है ।

शाह जसा ने इस प्रतिष्ठा के लिए बड़ी २ तैयारियें करनी शुरू करदीं और दूर दूर आमंत्रण पत्रिकायें भेज कर स्वधर्मी भाइयों को बुलवाये । इधर जिन मंदिरों में अष्टान्हिक महोत्सव प्रारम्भ हो गया । उधर सूरिजी महाराज ने उन नूतन मूर्तियों की अंजनसिलाका कार्य्य प्रारम्भ करवा दिया । सुवर्णमय मूर्ति के नेत्रों के साथ ऐसी मणिये लगवाई गई कि रात्रि में दीपक की आवश्यकता नहीं रहती थी ।

प्रतिष्ठा के समय केवल श्रावकवर्ग ही नहीं आये थे पर हजारों साधु साध्वियां दूर दूर से पधारे थे कई राजा महाराज भी आये थे और श्रावकों की तो गिनती ही नहीं थी ।

एक पट्टावली में इस प्रतिष्ठा का समय माघ शुक्ला १३ का लिखा है तब प्रबन्धकार ने फाल्गुण शुक्ल सप्तमी का लिखा है । शायद मूर्तियों की अंजनसिलाका माघ शुक्ल १३ की हुई हो और मंदिरजी की प्रतिष्ठा फाल्गुण शुक्ल सप्तमी की हुई हो और यह बात संभव भी हो सकती है क्योंकि इतना बड़ा महोत्सव पच्चीस दिन रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । या दोनों कार्य्यों का मुहूर्त अलग २ हो !

शुभ मुहूर्त में शाह जसा और सेठानी पतोली ने भगवान महावीर की सुवर्णमय मूर्ति अपने हाथों से स्थापित की । मंदिरजी पर सुवर्ण कलस अपने पुत्र राणा जो एक नवजात बालक था के हाथ से स्थापित कराया । पट्टावलीकार लिखते हैं कि उस समय सुमधुर वायु और थोड़ा सा जल तथा आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई थी । ऐसे पुन्य कार्य्यों में देवता कब पीछे रहने वाले थे वे भी तो इस प्रकार का लाभ उठावें इसमें आश्चर्य ही क्या ? जसा के अन्य पुत्रादि कुटुम्ब वालों ने दंड ध्वज तथा अन्य मूर्तियाँ स्थापन कर लाभ हासिल किया—और आचार्य कक्कसूरि ने सब के ऊपर वासक्षेप डाला ।

पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य मुहूर्त की शुरुआत से ही हो रहा था पर महोत्सव के अंत में स्वधर्मी

सूरिजी—जसा ! नौपदजी के गटा में जो आचार्योपाध्याय और साधु की स्थापना है वह वर्तमान काल की नहीं है पर भूतकाल की है अर्थात् आचार्य होकर मोच गये उपाध्याय होकर मोक्ष गये और साधु होकर मोक्ष गये जिसको नैगमनय के मत से भूतकाल की वर्तमान में स्थापना कर पूजे जाते हैं।

जसा—पूज्यवर ! तब तो अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी भी मोक्ष जाते हैं उनकी भी स्थापना उसी लिंग में होनी चाहिये ?

सूरिजी—जसा ! अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी मोक्ष जाते हैं वह विना भाव चरित्र के मोक्ष नहीं जाते हैं। अन्य लिंगी प्रथम गुणस्थान और गृहस्थलिंगी पहले से पांचवे गुणस्थान वृति होते हैं जब वे छट्टा गुणस्थान को स्पर्श करते हुए ऊपर चढ़ते हैं तब जाकर वे तेरहवें गुणस्थान कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतः उनकी अलग स्थापना की जरूरत नहीं पर वे साधु पद में ही गिने जाते हैं।

जसा—क्यों पूज्यवर ! आदि तीर्थंकरों के मन्दिर में न करवा कर एक अलग मन्दिर बनवा कर गुरुदेव की मूर्ति स्थापित की जाय तो क्या हर्ज है ?

सूरिजी—जसा ! मैं हर्ज की बात नहीं करता हूँ पर भविष्य की बात करता हूँ। जैसे आचार्य रत्नप्रभसूरि का तुम पर उपकार है वैसा मुझ पर भी है पर आप सोचिये कि गणधर सौधर्म एवं जम्बु तो केवली आचार्य हुये हैं। क्या उनके कोई भी भक्त नहीं थे कि किसी ने उनकी मूर्ति एवं मन्दिर नहीं करवाया। पर वे लोग अच्छी तरह से समझते थे कि मन्दिर और मूर्तियां केवल तीर्थंकरों की ही होती हैं कि जिन्हों के पांच कल्याणक हुये हों।

जसा—क्यों गुरुदेव ! श्रीसिद्धगिरि तीर्थ पर एवं उपकेशपुर में आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि जी महाराज के थूँभ है तब यहाँ बनवाने में क्या हर्ज है ?

सूरिजी—तब ही तो तुम्हारी भावना हुई है और तुम्हारी देखा देखी पीछे दूसरों की भी भावना होगी और वही बात मैं कह रहा हूँ। जसा थूंभ करवाना दूसरी बात है और तीर्थंकरों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्ति स्थापन करवा कर तीर्थंकरों की भाँति जल चन्दन पुष्पादि से पूजा करवाना दूसरी बात है। थूंभ तो केवल एक स्मृति चिन्ह होता है। जिसकी तीर्थंकरों की भाँति पूजा नहीं की जाती है।

जसा—क्यों गुरु महाराज ! स्थापनाचार्य्य रखे जाते हैं यह भी तो एक गुरु मूर्ति ही है फिर गुरु मूर्ति बनाने में क्या हर्जा है ?

सूरिजी—गुरु स्थापना रखना शस्त्र में कहा है पर मूर्ति और स्थापनाचार्य में अन्तर है। कारण मूर्ति की सदैव जल चन्दनादि से पूजा होती है तब स्थापनाजी का भावस्तव किया जाता है। मूर्ति के लिये मन्दिरादि स्थान की आवश्यकता रहती है तब स्थापना साधुओं के पास रहती है। स्थापना गुरुभाव से रक्खी जाती है तब मूर्ति की पूजा जन्मादि कल्याणक की भाँति होती है।

जसा—ठीक है गुरु महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। पर आप मुझे एसा रास्ता बतलायें कि मैं किसी प्रकार से गुरु भक्ति करके अपने मनोरथ को पूर्ण कर सकूं।

सूरिजी—जसा ! इसके लिये अनेक मार्ग हैं पर सबसे बढ़िया बात यह है कि तुम सब आगम लिखवा कर ज्ञान भंडार में स्थापन कर दो कि भविष्य में बड़ा भारी लाभ होगा। और यही सबसे उत्तम गुरुभक्ति है। दूसरे गुरु महाराज की आज्ञा धर्म प्रचार बढ़ाने की हैं उस ओर लक्ष दें।

कुमारिया ( कुंतिनगरी ) में एक समय तीन सौ मंदिर थे। चंद्रावती ( आबू के पास ) में ३६० मंदिर थे। पद्मावती ( पुष्कर ) में पाँच सौ जैन मंदिर थे। तक्षिला में पाँच सौ मंदिर थे पाटण में ३०० मंदिर थे। चरकेशपुर में १०० मंदिर तो बारहवी शताब्दी में थे इसके पूर्व कितने ही होंगे इत्यादि प्रत्येक नगर में इस प्रकार मंदिरों की विशाल संख्या थी। जब आज विक्रम् की दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी के भी बहुत कम मंदिर मिलते हैं। हाँ सम्राट सम्प्रति के बनाये लाखों मंदिरों से कोई २ मंदिर एवं मूर्तियाँ अवश्य मिलती हैं खैर कुछ भी हो पर मंदिर मूर्त्तियें बनाने वालों ने तो अपनी उज्वल भावना से पुंन्योपार्जन कर ही लिया था।

शाह जसा के करने योग्य कार्य्य में अब केवल एक तीर्थ यात्रा निमित्त संघ निकालना ही शेष रह गया था। उसके लिये श्रेष्ठवर्य्य हर समय भावना रखता था कि कब मुझे समय मिले और कब मैं अपने मनोरथ को सफल बनाऊँ। सेठानी की भी यही भावना थी और इस बात की चर्चा भी होती थी—

शाह जसा ने अपने पास के पारस को मूँजियों की लक्ष्मी की तरह भंडार में नहीं रख छोड़ा था पर उसका हमेशा सदुपयोग करता था। हंसावली का तो क्या पर कोई भी साधर्मी भाई शाह जसा के घर पर आ निकलता तो वह रीते हाथ कभी नहीं जाता था पर उस समय ऐसे लोग थे भी बहुत कम जो दूसरों की आसा पर जीवें। फिर भी काल दुकाल या म्लेच्छों के आक्रमण समय जसा याद आ ही जाता—

कभी २ शाहजसा स्वामीवात्सल्य करता था तो एक दो दिन का नहीं पर लगातार मास दो मास तक स्वामी वात्सल्य किया ही करता था। जिन मन्दिरों की भक्ति तो बारह मास चलती ही रहती थी तमाम खर्चा शाह जसा की ओर से होता था। इस प्रकार जसा का यश सर्वत्र फैल गया था—

मरुधर में कभी २ छोटा बड़ा दुकाल भी पड़ा करता था। शाह जसा के और दुकाल के ऐसी ही अनबन थी कि वह अपने देश में दुकाल का आना तो क्या पर पैर भी नहीं रखने देता था। केवल एक अपना देश ( मरुधर ) ही क्यों पर शाह जसा तो भारत के किसी देश में काल का नाम सुन लेता तो हाथ में लकड़ी ( लक्ष्मी ) लेकर उसको शीघ्र ही वहाँ से भगा देता था धन्य है ऐसे नर रत्नों को कि जिन्होंने संसार में जन्म लेकर जैन धर्म की बड़ी २ सेवायें कर उसको उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया।

आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज जैन धर्म में अद्वितीय प्रभाविक थे। एक प्रांत में नहीं पर वे प्रत्येक प्रांत में घूम २ कर जैन धर्म का खूब प्रचार किया करते थे। हंसावली में मंदिर की प्रतिष्ठा करवाने के बाद आपने देशाटन के लिये विहार कर दिया। लाट सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पंजाब, सौरसेन, मच्छादि प्रान्तों में घूमने में कम से कम दस वर्ष तो लग ही जाते थे और उपकेशगच्छाचार्यों की यह एक पद्धति थी कि सूरी पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद कम से कम एक बार तो इन प्रांतों में वे अवश्य भ्रमण किया करते थे।

इधर शाह जसा अपनी धर्मपत्नी पातोली के साथ आत्मकल्याणर्थ धर्म कार्य साधन करने में संलग्न थे। पातोली का पुत्र राणा क्रमशः बड़ा हो रहा था। उसके माता-पिता की धार्मिकता का प्रभाव उसपर पड़ता ही था। ज्ञानाभ्यास में उसकी अधिक रुचि एवं सरस्वती की कृपा थी। उसने श्रावक के करने योग्य क्रिया-सामयिक प्रतिक्रमण देववन्दनादि सब क्रियायें तथा नौ तत्व कर्म ग्रन्थादि कंठस्थ कर लिया था। जब राणा करीब १२ वर्ष का हुआ तो एक समय उसके माता पिता बातें कर रहे थे कि जैन गृहस्थों के करने काबिल दो कार्य्य तो कर लिये अर्थात् श्री भगवती सूत्र को वँचाना और जैन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाना पर एक कार्य तीर्थयात्रार्थ संघ निकालना शेष रहा है। अगर गुरु महाराज का पधारना हो जाय तो इसको भी शीघ्र कर लिया जाय इत्यादि

सूरिजी—जसा ! नौपदजी के गटा में जो आचार्योपाध्याय और साधु की स्थापना है वह वर्तमान काल की नहीं है पर भूतकाल की है अर्थात् आचार्य होकर मोक्ष गये उपाध्याय होकर मोक्ष गये और साधु होकर मोक्ष गये जिसको नैगमनय के मत से भूतकाल की वर्तमान में स्थापना कर पूजे जाते हैं।

जसा—पूज्यवर ! तब तो अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी भी मोक्ष जाते हैं उनकी भी स्थापना उसी लिंग में होनी चाहिये ?

सूरिजी—जसा ! अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी मोक्ष जाते हैं वह बिना भाव चरित्र के मोक्ष नहीं जाते हैं। अन्य लिंगी प्रथम गुणस्थान और गृहस्थलिंगी पहले से पांचवें गुणस्थान वृति होते हैं जब वे छट्ठा गुणस्थान को स्पर्श करते हुए ऊपर चढ़ते हैं तब जाकर वे तेरहवें गुणस्थान कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतः उनकी अलग स्थापना की जरूरत नहीं पर वे साधु पद में ही गिने जाते हैं।

जसा—क्यों पूज्यवर ! आदि तीर्थकरों के मन्दिर में न करवा कर एक अलग मन्दिर बनवा कर गुरुदेव की मूर्ति स्थापित की जाय तो क्या हर्ज है ?

सूरिजी—जसा ! मैं हर्ज की बात नहीं करता हूँ पर भविष्य की बात करता हूँ। जैसे आचार्य रत्नप्रभसूरि का तुम पर उपकार है वैसा मुझ पर भी है पर आप सोचिये कि गणधर सौधर्म एवं जम्बु तो केवली आचार्य हुये हैं। क्या उनके कोई भी भक्त नहीं थे कि किसी ने उनकी मूर्ति एवं मन्दिर नहीं करवाया। पर वे लोग अच्छी तरह से समझते थे कि मन्दिर और मूर्तियां केवल तीर्थकरों की ही होती हैं कि जिन्हों के पांच कल्याणक हुये हों।

जसा—क्यों गुरुदेव ! श्रीसिद्धगिरि तीर्थ पर एवं उपकेशपुर में आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि जी महाराज के थूँभ है तब यहाँ बनवाने में क्या हर्ज है ?

सूरिजी—तब ही तो तुम्हारी भावना हुई है और तुम्हारी देखा देखी पीछे दूसरों की भी भावना होगी और वही बात मैं कह रहा हूँ। जसा थूंभ करवाना दूसरी बात है और तीर्थकरों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्ति स्थापन करवा कर तीर्थकरों की भाँति जल चन्दन पुष्पादि से पूजा करवाना दूसरी बात है। थूंभ तो केवल एक स्मृति चिन्ह होता है। जिसकी तीर्थकरों की भाँति पूजा नहीं की जाती है।

जसा—क्यों गुरु महाराज ! स्थापनाचार्य्य रखे जाते हैं यह भी तो एक गुरु मूर्ति ही है फिर गुरु मूर्ति बनाने में क्या हर्जा है ?

सूरिजी—गुरु स्थापना रखना शस्त्र में कहा है पर मूर्ति और स्थापनाचार्य में अन्तर है। कारण मूर्ति की सदैव जल चन्दनादि से पूजा होती है तब स्थापनाजी का भावस्तव किया जाता है। मूर्ति के लिये मन्दिरादि स्थान की आवश्यकता रहती है तब स्थापना साधुओं के पास रहती है। स्थापना गुरुभाव से रक्खी जाती है तब मूर्ति की पूजा जन्मादि कल्याणक की भाँति होती है।

जसा—ठीक है गुरु महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। पर आप मुझे एसा रास्ता बतलायें कि मैं किसी प्रकार से गुरु भक्ति करके अपने मनोरथ को पूर्ण कर सकूं।

सूरिजी—जसा ! इसके लिये अनेक मार्ग हैं पर सबसे बढ़िया बात यह है कि तुम सब आगम लिखवा कर ज्ञान भंडार में स्थापन कर दो कि भविष्य में बड़ा भारी लाभ होगा। और यही सबसे उत्तम गुरुभक्ति है। दूसरे गुरु महाराज की आज्ञा धर्म प्रचार बढ़ाने की है उस ओर लक्ष दें।

नजदीक पधारे तो श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह से नगर प्रवेश का महोत्सव किया। और बड़े ही धाम धूम से नगर प्रवेश करवाया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। राणा ने संघ निकालने की बात कही पर ऋतु गरमी की आगई थी। श्रीसंघ और विशेष राणा की विनती से सूरिजी ने चतुर्मास हंसावली में करने का निश्चय कर लिया। बस फिर तो था ही क्या राणा के मनोरथ सफल होगये राणा सूरिजी की सेवा भक्ति करता हुआ ज्ञानाभ्यास करने में इस प्रकार तत्पर होगया कि मानों सूरिजी का एक लघु शिष्य ही हो।

बालकुमार राणा को तो निकालना था संघ इसलिये ही तो विनती कर सूरिजी को लाया था। राणाने अपने माता पिता को कहा कि गुरुदयाल पधार गये हैं अब निकालो संघ ? शाह जसा ने कहा बेटा संघ चतुर्मास में नहीं निकलता है चतुर्मास समाप्त होने के बाद निकाला जायगा। शाह जसा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ की आज्ञा लेकर पहले से ही संघ की तैयारियां कराना शुरु कर दिया। क्योंकि जसा ने जैसे श्रीभगवतीजी सूत्र तथा मंदिर प्रतिष्ठा का धाम धूम से महोत्सव किया था वैसे ही संघ के लिये करना था। और संघपति बनाना था राणा को फिर इस संघ में कमी ही किस बात की रह सके। खूब दूर दूर के प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवाईं। शाह जसा कोई साधारण व्यक्ति नहीं था जसा की ओर से सोने के थाल की पहरावणी सर्वत्र प्रसिद्ध थी अतः खूब गहरी तादाद में साधर्मी भाई एकत्र हुये इधर साधु साध्वियों की संख्या बहुत थी जिसमें कई पद प्रतिष्ठित—पदवीधर भी थे। सूरिजी के दिये हुये शुभ मुहूर्त में बालकुमार राणा को संघपति पद से विभूषित किया। राणा के दो वृद्ध भ्राता और चार लघु बान्धव भी थे अत सात पुत्र का पिता शाह जसा और माता पातोली संघ की सेवा में अपने जीवन की सफलता समझ रहे थे।

सूरिजी महाराज की अध्यक्षता में संघ प्रस्थान कर क्रमशः चलता हुआ उपकेशपुर आया भगवान महावीर की यात्रा ध्वजमहोत्सव और देवी सच्चायिका के दर्शन किये। वहाँ से श्रीसिद्धगिरी के लिये रवाना हुये रास्ते में जहाँ जहाँ मंदिर आये वहाँ वहाँ दर्शन कर आवश्यकतानुसार द्रव्य दिया इतना ही क्यों पर गरीबों का उद्धार याचकों को दान जीवदयादि अनेक पुन्य कार्य्य करते हुये पहला गिरनारादि सब तीर्थों की यात्रा करते हुये जब संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पहुँचा तो तीर्थराज के दर्शन करते ही आनंद की लहर में कई भवों के किये हुये पातक नष्ट हो गये। उस पुनीत तीर्थ के प्रभाव को तो वहां जाने वाले मुक्त भोगी ही जान सकते हैं। वहां के परमाणु इतने स्वच्छ होते हैं कि भावुकों के अन्तःकरण को साफ निर्मल बना देते हैं। संघपति राणा था तो बालक पर उनके पूर्व जन्म के ऐसे संस्कार थे कि वह तीर्थयात्रा कर बड़े ही आनन्द को प्राप्त हो गया। शाह जसा ने अष्टान्हिकमहोत्सव, ध्वजारोपण महोत्सव और स्वामीवात्सल्यादि सब कार्य बड़े ही उत्साह से किया और इन शुभकार्यों में खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय किया जिसको अपना अहोभाग्य समझा। जब संघ ने वापिस लोटने का विचार किया तो सूरिजी ने कहा कि मैं अब यहां रह कर अन्तिम आराधना करूंगा और मेरे बहुत से साधु आपके साथ संघ में चलेंगे। इससे संघ के लोगों ने निराश होकर अर्ज की कि प्रभो ! आप जैसे संघ लाये हैं वैसे पहुँचा दें। सूरिजी ने कहा कि इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है पर जब मेरी वृद्धावस्था है और यह शरीर यहीं छूटे तो अच्छा है इत्यादि समझाने से श्रीसंघ तो समझ गया पर संघपति राणा ने कह दिया कि सूरिजी चलें तो ही मैं चलूंगा वरना मैं सूरिजी के पास ही रहूँगा। सूरिजी ने मजाक में कहा राणा तेरी तीर्थयात्रा तो हो गई है

भाइयों को सोने के थाल एवं सोना की कंटियों और वस्त्रों की पहरावणी दी तथा याचकों को एक एक सौ सुवर्ण मुद्रिकाएँ एवं वस्त्र भूषण आदि बहुत सा धन माल देकर जसा ने अपने यश: को अमर बना दिया।

इस सुअवसर पर आचार्य कक्कसूरि ने आये हुये साधुओं में जो पदवियों योग्य थे उनको पदविये प्रदान कर जैनशासन की बड़ी भारी उन्नति की इतना ही क्यों पर हंसावली के राजा रामदेव पर भी सूरिजी का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा कि उसने स्वयं मांस मदिरा का त्याग कर अपने राज में किसी निरपराधी जीव को नहीं मारने की उद्घोषणा कर दी "यथा राजा तथा प्रजा" इस महा वाक्यानुसार अन्य भी बहुत से लोगों ने मांस मदिरादि मिथ्यात्व का त्याग कर अहिंसाधर्म को स्वीकार किया।

अहा हा ! पूर्व जमाने में साधु और श्रावकों की धर्म पर कैसी अटूट श्रद्धा थी और वे दोनों एक दिल हो जैन धर्म की उन्नति एवं जैनधर्म का किस प्रकार प्रचार करते थे जिसका यह एक उज्वल उदाहरण है। आचार्य शासन के शुभचिंतक थे तब श्रावक लोग आचार्यों का आशीर्वाद लेना चाहते थे। भले ही आचार्य मुँह से आशीर्वाद शब्द का उच्चारण नहीं करते होंगे पर उनकी आज्ञा का पालन करने से तथा उनकी इच्छानुसार कार्य्य करने से उनकी अन्तरात्मा स्वयं आशीर्वाद दे दिया करती थी।

आज हम देखते हैं कि शायद ही कोई प्रतिष्ठा निर्विघ्नतया समाप्त होती हो कारण पहिले तो आचार्य को नाम का हो चाहे काम का हो पर स्वार्थ अवश्य रहता है जब श्रावक भी ऐसे ही होते हैं कि अपना काम निकल जाने पर आचार्यों को पूछते ही नहीं हैं कि वे कहां बसते हैं दोनों ओर स्वार्थ का साम्राज्य जमा हुआ है अर्थात जहां स्वार्थ होता है वहां स्नेह ठहर ही नहीं सकता है।

शाह जसा ने सूरिजी महाराज की खूब भक्ति कर लाभ उठाया श्रीभगवतीजी सूत्र बचाया और नूतन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई और इन दोनों कार्यों से जैनधर्म की प्रभावना भी अच्छी हुई तत्पश्चात सूरिजी महाराज हंसावली नगरी से विहार कर अन्य प्रदेश में पधार गये। शाह जसा ने कई कोसों तक सूरिजी महाराज के विहार में साथ में रह कर भक्ति की, सच्ची भक्ती इसका ही नाम है। शाह जसा बड़ा ही भाग्यशाली था। आपके गृहदेवी पातोली और लघुपुत्र राणा तो दो कदम आगे थे—

जैसे आज श्रावकों के नाम पर्वतसिंह, पहाड़सिंह, जोधसिंह, सबलसिंह, शार्दूलसिंह, उमरावसिंह वगैरह होते हैं वैसे नाम पहिले श्रावकों के नहीं होते थे हाँ उनके नाम दो तीन अक्षरों के ही होते थे किन्तु वे लोग काम आज के श्रावकों से कई गुणे अधिक करते थे देखिये

सेठानी पातोली ने श्री भगवती सूत्र बँचाया जिसमें करीबन एक करोड़ द्रव्य ज्ञान खाते में व्यय किया। हंसावली के बाहर एक सरोवर-तालाब बनाया जिसमें एक करोड़ द्रव्य खर्च किया जब शाह जसा ने मन्दिर और मूर्तियों के निमित्त एक करोड़ क्या ही क्यों कई करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में व्यय कर दिया और केवल एक हंसावलि का श्रेष्ठवर्य जसा ही नहीं पर ऐसे अनेक दानेश्वरों ने जिन मन्दिरों से मेदनी मण्डित करदी थी परंतु कालांतर धर्मान्ध म्लेच्छों के आक्रमण से वे सब मन्दिर बच नहीं सके। इसका मुख्य कारण एक तो धर्मान्धता थी और दूसरे पहिले जमाने में प्रतिष्ठा के समय मूर्ति के नीचे गुप्त भंडारा रखा जाता था और उसमें श्रीसंघ पुष्कल द्रव्य डाल देते थे शायद उनका आशय तो कभी जीर्णोद्धार में वह द्रव्य काम आने का ही होगा परन्तु परिणाम कुछ उलटा ही हुआ कि उस द्रव्य के लोभ से वे लोग मन्दिर तोड़ डालते थे। यही कारण है कि आज प्राचीन मंदिर बहुत कम नजर आते हैं। प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है कि

कर दूर भागते थे। शाकम्भरी के राजा नागभट ने आपको वादी चक्रवर्ती का विरुद्ध इनायत किया था अतः आप वादी-चक्रवर्ती के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध थे।

आचार्य श्रीसिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में वाचनाचार्य रत्नभूषण को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया था।

आचार्य रत्नप्रभसूरि इस नाम में न जाने क्या जादू की शक्ति एवं बिजली सा तेज रहा हुआ था कि आचार्य पद प्रतिष्ठित होते ही आपका इतना प्रभाव बढ़ गया कि चक्रवर्ती की भांति अपना विजयचक्र आपके आगे आगे बढ़ता ही रहा। आप श्रीमान जिस किसी प्रांत में विहार करते उस २ प्रांत में धर्म जागृति एवं धर्मोन्नति का विजयचक्र स्थापित कर ही देते थे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पहिला ही चतुर्मास मत्यपुर में किया और वहाँ आपने शाह लाखन के पुत्र धर्मशी आदि अष्टादश नरनारियों को दीक्षा दी और धर्मशी का नाम धर्ममूर्ति रख दिया था। वास्तव में वह एक धर्म की प्रतिमूर्ति ही था तत्पश्चात् सूरिजी ने हर्षकोरपुर पधार कर भगवान महावीर की यात्रा की वहाँ से आप नागपुर पधारे वहाँ अदित्यनाग गौत्रीय शाह सहजपाल के आग्रह से चर्तुमास कर व्याख्यान में श्रीभगवतीजी सूत्र बांचा जिसके महोत्सव एवं पूजा में सहजपाल ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया तथा चर्तुमास के बाद भद्रगौत्रिय शाह देवा ने पुनीत तीर्थ श्री सिद्धगिरि का विराट संघ निकाला। इस संघ में हजारों साधु साध्वी और लाखों भावुकों की संख्या थी संघ क्रमशः शत्रुंजय पहुँच कर भगवान युगादीश्वर की यात्रा की। शाह देवा ने सब पूजा तीर्थ पूजा अष्टान्हिका एवं ध्वज महोत्सव किया। इन पुनीत कार्यों में शाह देवा ने पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि की इच्छा थी दक्षिण की ओर विहार करने की अतः आप तो वहाँ रहे और उपाध्याय कनककुशल तथा वाचनाचार्य देवकुशल आदि मुनिगण संघ के साथ वापिस लौट आये। शाह देवा ने नागपुर में आकर स्वामि वात्सल्य किया और संघ के प्रत्येक श्रावक को सवासेर लड्डू और पांच पांच सुवर्ण मुद्रिकायें तथा वस्त्रादि की पहरामणि देकर विसर्जन किया। धन्य है ऐसे नररत्नों को कि जिन्हों की उज्वल कीर्ति आज भी इतिहास के पृष्टों पर गर्जना कर रही है।

आपश्री ने पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय की यात्रा कर अपने शिष्य मंडल के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया था। घूमते घूमते महाराष्ट्रीय प्रान्त में पधारे वहाँ की जनता में खूब ही चहल पहल मच गई। वहाँ पहिले से ही आपके बहुत साधु विहार करते थे उन्होंने सुना कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाराज का पधारना महाराष्ट्रीय प्रान्त में हो रहा है अतः बहुत से साधु साध्वियां सूरिजी के दर्शनार्थ आरहे थे। आचार्य श्री ने उनका धर्म प्रचार देखकर प्रसन्नता प्रगट की। तदनन्तर सूरिजी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ मेदपुर, पिट्ठपुर, गुडपुर, एलोर, नेदुपुर आभीयपुर, कोकनाड़ा, काजलूर, माचपुर, गुडीवडनगर, ग्रंतुरली, आर्गाया, कीही, रावलपालु, वल्लेगी, विजयनेर, कोयम्, घरणीकोट, हाडीकोट, पाडुगेट, मुगलेब, मापखेट, मानखेट, महोनी, मेटपुर वगैरा आदि कई ग्राम नगरों में भ्रमण करते हुये मानखेट के श्रीसंघ के आग्रह से चतुर्मास वहाँ ही कर दिया इस विहार के अन्दर कई मुमुक्षुओं को जैनदीक्षा देकर जैनधर्म की प्रभावना की दूसरे सूरीश्वरजी बड़े ही समयज्ञ थे और आप यह भी जानते थे कि जिस देश का उद्धार करना है तो

पास बैठे हुए राणा ने भी सब बातें सुनी और उसने कहा माता ! दो कार्य्य आपने किये तो एक कार्य्य तो मुझे करने दीजिये। माता ने कहा बेटा तू बड़ा ही पुण्यशाली है जब तू गर्भ में आया था उस दिन से ही हम लोग इस प्रकार का अनुभव करने लगे हैं और तेरे पिता और मैंने जो कार्य्य कर पाये हैं वह तेरी पुण्यवानी का ही कारण है और संघ निकालने का कार्य्य शेष रहा है वह शायद तेरे लिये ही रहा होगा वरना इतने दिनों का विलम्ब होने का कारण ही क्या था। कारण तेरे पिता के पास सब साधन था पर कुदरत ने यह कार्य्य खास तौर पर तेरे लिये ही रखा है। अतः बेटा ! तू संघपति बनकर अवश्य संघ निकाल मैं भी तेरे संघ में साथ चलकर तीर्थों की यात्रा करके अपना जन्म को सफल बनाऊंगी।

माता की बात सुनकर राणा को हर्ष हुआ। इधर राणा के पिता जसा ने भी राणा को कहा बेटा ! एक संघ ही क्या पर तेरे से जितना धर्म कार्य बन सके तू खुल्ले दिल से कर लक्ष्मी चञ्चल है, इसका जितना शुभकार्यों में उपयोग हो उतना ही अच्छा है राणा था तो एक बारह वर्ष का बच्चा पर पूर्व भव के संस्कारों के कारण उसकी प्रज्ञा एवं धर्म भावना अच्छे २ समझदारों से भी बढ़ चढ़ के थी। राणा ने अपनी माता से पूछा कि अपने गुरु महाराज कब पधारेंगे ? माता ने कहा बेटा वे महात्मा अतिथि हैं। उनको आने का निश्चय नहीं है। यदि बेटा तू चाहे तो गुरुदेव को जल्दी भी लासकता है। राणा ने कहा माता मैं तो चाहता हूँ कि आचार्यश्री जल्दी से पधारें और मैं संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा करूँ। अतः तू यह बतला कि वे गुरु महाराज कैसे जल्दी पधार सकें जिसका मैं प्रयत्न करूँ ? माताने कहा गुरु महाराज परोपकारी हैं जहाँ उपकार के कार्य होता हो वहाँ जल्दी पधार जाते हैं अतः तूँ जाकर गुरु महाराज की विनती कर कि वे जल्दी पधारें। बेटाने कहा कि तूँ यह तो बतला कि गुरु महाराज विराजते कहाँ हैं ? कि मैं वहाँ जाकर विनती करूँ। माता ने कहा कि तेरे पिता से मैंने सुना है कि आचार्यश्री अभी मथुरा में विराजते हैं। बेटा ने कहा ठीक है तब मैं मथुरा जाकर विनती करूंगा। माता ने कहा बेटा मथुरा यहाँ से नजदीक नहीं पर बहुत दूर है। बेटा ने कहा कि दूर हो तो क्या हुआ जरूरी काम होतो दूर भी जाना पड़ता है। देखिये व्यापारी लोग व्यापारार्थ कितनी दूर जाते हैं। माता ने कहा तूँ जाता है तो तुम्हारे पिता को भी साथ ले जा राणा ने कहा ठीक है आने दे पिताजी को इत्यादि मां बेटे बातें करते थे। इतने में शाह जसा घर पर आगया। तुरंत ही राणा ने कहा पिताजी मैं गुरु महाराज को लेने के लिए जाता हूँ आप भी मेरे साथ चलें पिता ने कहा कि क्या तूँ गुरु महाराज का चेला बनेगा ? राणा ने कहा मुझे तो तीर्थयात्रा का संघ निकालना है क्यों कि श्रीभागवती सूत्र मां ने बँचाया आपने मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई तो अब तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना मेरा काम है इसलिए मैं गुरु महाराज को बुलाने के लिये जाता हूँ सेठ जी बहुत खुश हुये और कहाकि अच्छा बेटा मैं तेरे साथ चलूँगा। शाह जसा के कहने से और भी बहुतसे धर्म प्रेमी तैयार होगये क्योंकि खर्चा तो सब जसा का ही लगता था अतः वे सब चलकर मथुरा पहुँचे और सूरिजी को हंसावली पधारने की विनती की। जब राणा और सूरिजी के वार्तालाप हुआ तो सूरिजी को बड़ा ही आनन्द आया। राणा एक होनहार बालक था। सूरिजीने तो राणा के जन्म समय ही धारणा करली थी कि यह बालक भविष्य में शासन का प्रभाविक पुरुष होगा। वे ही चिन्ह आज नजर आरहे हैं। सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर बालकुंवर राणा की विनती स्वीकार करली। बस, आये हुये हंसावली के लोग खुश होकर वापिस लौट गये और सूरिजी मथुरा से विहार कर मरुधर की ओर आने लगे। जब सूरिजी हंसावली के

कर्त्तव्य ही है कि संघ में उपद्रव होता हो तो हम प्रयत्न करें। आप निशंक रहें हम शीघ्र ही मथुरा पहुँचेंगे। सूरिजी के वचन सुन संघ अग्रेश्वरों को संतोष हुआ कि अपना परिश्रम सफल हो गया है। संघनायकों ने सोचा कि जब सूरिजी जल्दी ही पधारने वाले हैं तो अपने भी सूरिजी की सेवा का लाभ क्यों न उठावें। बस, सुबह होते ही सूरिजी ने विहार कर दिया और मथुरा के श्रावक भी सूरिजी के साथ होगये। विना विलम्ब थोड़ा समय में ही सूरिजी महाराज मथुरा पहुँच गये। संघनायक ने आगे जाकर शुभ समाचार सबको सुना दिये फिर तो था ही क्या सबका उत्साह बढ़ गया। और सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

सूरिजी महाराज के पास एक धर्ममूर्ति नाम का बाल शिष्य था वह विद्या मंत्र में बड़ा ही निपुण था। उसने सूरिजी के मंगलाचरण के पश्चात् आम जनता में शास्त्रार्थ के लिये उद्घोषणा करदी कि यदि कोई भी व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो धर्मवाद, विद्यावाद, मंत्रवाद जैसा वादी चाहे वैसा ही शास्त्रार्थ करने को हम तैयार हैं। बस सब नगर में जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा हो रही थी। जैनों का उत्साह खूब बढ़ गया अतः वे लोग कहने में कब चूकने वाले थे। आओ मैदान में और करो शास्त्रार्थ।

रात्रि समय बौद्धाचार्य्य ने एक शक्ति को सूरिजी के मकान पर भेजी पर सूरिजी के सब साधु ध्यान ध्यान कर रहे थे शक्ति का कुछ भी जोर नहीं चला पर जब इस बात का पता धर्ममूर्ति को लगा तो उसने अपने विद्याबल से उस शक्ति को ऐसी जकड़कर बांधली कि साथ में बौद्धाचार्य्य भी बँध गया। बौद्धाचार्य्य ने बहुत उपाय किया पर न तो आप बन्धनमुक्त हो सका और न शक्ति ही वापिस आसकी। सुबह भक्त लोग दर्शनार्थ आए तो बुद्धिकीर्ति बन्धा हुआ पाया पूछने पर वह लज्जित हो गया। आखिर उसको सूरिजी महाराज से माँफी माँगनी पड़ी जब जाकर वह बंधन से मुक्त हुआ। शक्ति ने तो यहाँ तक प्रतिज्ञा करली कि अब मैं जैनाचार्य्य के सामने कभी पेश नहीं आऊँगी। बस, बौद्धाचार्य्य का घमण्ड गल गया। उसने सोचा कि यहाँ मेरी कुछ भी चलने की नहीं है। अब मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं यहाँ से रफूचक्कर बन जाऊँ। बस, वह किसी भक्त से बिना कहे ही पिछली रात्रि में नौ दो ग्यारह होगया।

जैनधर्म का विजय डंका सर्वत्र बजने लगा। जो लोग बौद्धाचार्य्य के भौतिक चमत्कारों से विचलित हुए थे वे भी जैनधर्म में स्थिर होगए और कई बौद्धलोगों को भी सूरिजी ने जैनधर्मोपासक बना लिए। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता खूब आनन्द लूटरही थी। सूरिजी मथुरा से विहार कर हस्तनापुर, सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा करते हुए कुनाल में पधारे। कुनाल के श्रीसंघ ने सूरिजी का स्थान स्थान पर स्वागत किया। सूरिजी ने रहाड़ी, मुगोली, सावत्थी लोहाकोट, सालीपुर, श्रीपुर और तक्षशिला तक विहार कर जनता को धर्मोपदेश कर जागृत किया। पञ्जाब में भी आपके बहुत से साधु विहार कर रहे थे। उनके कार्य्य पर आपने प्रसन्नता प्रगट कर उनका योग्य सत्कार कर उत्साह को बढ़ाया और वह चातुर्मास तक्षशिला नगर में किया जहाँ जैनों की घनी आबादी और करीब ५०० जैन मन्दिर थे। आप श्री के विराजने पर धर्म की अच्छी उन्नति हुई। वहाँ से विहार कर आप श्री ने क्रमशः सिन्ध भूमि को पवित्र बनाया। सिन्ध में भी आपके बहुत से साधु साध्वियाँ विहार करते थे। सिन्ध के बदियार, मलकापुर, रेणुकोट, सोलोर, आलोर, डबरेल, सिनपुर नगरकोट, नारायणपुर, समसोन, देपालकोट, वीरपुर, मीमाटे, तलपोट कडीपुरा, कणजोश, सीतपुर, सिद्धपुर, बणोर, चयडोली, बुडी, छीछोली, कोरपुर आदि सर्वत्र विहार कर धर्म की जागृति की कई माँस मदिरा सेवियों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा

अब संयम यात्रा शेष रही है अब तू दीक्षा लेकर मेरी अन्तिम सेवा कर कि जनता का उद्धार करने में समर्थ बन जाय इत्यादि । जिस जीव के पूर्व जन्म का संस्कार और कर्मों का क्षयोपशम होता है उसको थोड़ा उपदेश भी अधिक असर कर देता है । बस राणा के दिल में यह बात जच गई कि मैं तो सूरिजी के पास दिक्षा लूंगा । राणा अपने माता पिता के पास आया और कहा कि मैं तो सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लूंगा । पर माता पिता कब आज्ञा देने वाले थे कि राणा तूँ दीक्षा लेले । माता पिता और राणा के बहुत चर्चा हुई । माता पिता ने कहा राणा अपने घर में पारस है जिससे लोहा का सुवर्ण बन जाता है अतः घर में रह कर धर्माराधना करो ? जवाब में राणा ने संयम के सामने लक्ष्मी की असारता बतला कर माता पिता को ठीक समझा दिये । राणा तो जनता का राणा ही निकला । उसने पुनीत तीर्थराज की शीतल छाया में बड़े ही समारोह में सूरिजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा ग्रहण कर ही ली ।

सूरिजी ने संघपति की माला शाह जसा को पहना दी और शाह जसा संघ को लेकर वापिस लौट गया । शाह जसा बड़ा ही धर्मज्ञ एवं समझदार था । पहिले तो मोहनीय कर्म के कारण पुत्र की दीक्षा के लिये खींचातानी की थी । पर राणा की दीक्षा होने के पश्चात उसने सोचा कि राणा पहिले से ही भाग्यशाली था और दीक्षा लेने पर तो और भी पूजनीय हो गया है । मेरा ऐसा भाग्य ही कहां कि मेरा पुत्र दीक्षा ले । मेरा कर्तव्य था कि मैं भी पुत्र के साथ दीक्षा लेता पर अभी मेरे कर्मों का जोर है । माता पातोली ने कहा पतिदेव सोच किस बात है यदि यही राणा परलोकवासी हो जाता तो आप क्या करते इससे तो दीक्षा लेना अच्छा ही है । सेठजी ने कहा सेठानी तूँ बड़ी पुन्यवती है तेरी कुक्ष को धन्य है कि तेरे पुत्र ने सूरिजी के हाथों से दीक्षा ली है इससे बढ़ के पुन्य ही क्या हो सकता है इस प्रकार दम्पति खुशी मनाते हुये संघ लेकर पुनः अपने नगर में आये । बाद जसा ने स्वामिवात्सल्य कर संघ को सोने की कंठियां और वस्त्र की पोशाक देकर विसर्जन किया । याचकों को इच्छित दान दिया । जसा की कीर्ति पहिले ही दूर दूर फैली हुई थी अब तो जसा का यशः भूमण्डल व्यापक बन गया ।

आचार्य कक्कसूरि ने बालकुमार राणा को दीक्षा देकर उसका नाम रत्नभूषण रख दिया मुनि रत्नभूषण पहले से ही विद्या का प्रेमी था पूर्व भव में ज्ञान पद एवं सरस्वती की आराधना की थी फिर भी सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा कि थोड़ा ही समय में आपने सम्पूर्ण एकादश अंगों के साथ कई पूर्वों का ज्ञान भी कण्ठस्थ कर लिया । इतना ही क्यों पर सूरिजी महाराज ने मुनि रत्नभूषण को पात्र समझ कर कई अतिशय विद्यायें भी प्रदान कर दीं । अतः रत्नभूषण मुनि की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई ।

आचार्यश्री ने देवीसच्चायिकाके कथनानुसार अपना आयुष्य नजदीक जानकर उपाध्याय विशाल मूर्ति को अपने पद पर स्थापन कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया बाद २१ दिन के अनशनपूर्वक स्वर्ग हुए ।

आचार्य श्रीदेवगुप्तसूरि केवल तीन वर्ष ही सूरि पद पर स्थिति रहे उनके बाद आचार्य सिद्धसूरि हुये आप श्री की भी रत्नभूषण पर पूर्ण कृपा थी । मुनि रत्नभूषण उम्र में तो बहुत छोटा था पर आपका ज्ञान बहुत विशाल था तथा आपको योग्य समझ कर आचार्य श्रीसिद्धसूरि ने वाचनाचार्यजी पद से विभूषित बना दिया था । कई मुनि आपकी सेवा में उपस्थित हो आगमों की वाचना लिया करते थे । शास्त्रार्थ में तो आप इतने निपुण थे कि कई राजा महाराजाओं की सभा में बौद्ध एवं दिगम्बराचार्यों को नतमस्तक कर जैनधर्म की ध्वजा पताका सर्वत्र फहरा दी थी यही कारण था कि आपका नाम सुनने मात्र से वादी घबरा

कर्त्तव्य ही है कि संघ में उपद्रव होता हो तो हम प्रयत्न करें । आप निशंक रहें हम शीघ्र ही मथुरा पहुँचेंगे। सूरिजी के वचन सुन संघ अग्रेश्वरों को संतोष हुआ कि अपना परिश्रम सफल हो गया है । संघनायकों ने सोचा कि जब सूरिजी जल्दी ही पधारने वाले हैं तो अपने भी सूरिजी की सेवा का लाभ क्यों न उठावें । बस, सुबह होते ही सूरिजी ने विहार कर दिया और मथुरा के श्रावक भी सूरिजी के साथ होगये । बिना विलम्ब थोड़ा समय में ही सूरिजी महाराज मथुरा पहुँच गये । संघनायक ने आगे जाकर शुभ समाचार सबको सुना दिये फिर तो था ही क्या सबका उत्साह बढ़ गया । और सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

सूरिजी महाराज के पास एक धर्ममूर्ति नाम का बाल शिष्य था वह विद्या मंत्र में बड़ा ही निपुण था । उसने सूरिजी के मंगलाचरण के पश्चात् आम जनता में शास्त्रार्थ के लिये उद्घोषणा करदी कि यदि कोई भी व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो धर्मवाद, विद्यावाद, मंत्रवाद जैसा वादी चाहे वैसा ही शास्त्रार्थ करने को हम तैयार हैं । बस सब नगर में जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा हो रही थी । जैनों का उत्साह खूब बढ़ गया अतः वे लोग कहने में कब चूकने वाले थे । आओ मैदान में और करो शास्त्रार्थ ।

रात्रि समय बौद्धाचार्य्य ने एक शक्ति को सूरिजी के मकान पर भेजी पर सूरिजी के सब साधु ज्ञान ध्यान कर रहे थे शक्ति का कुछ भी जोर नहीं चला पर जब इस बात का पता धर्ममूर्ति को लगा तो उसने अपने विद्याबल से उस शक्ति को ऐसी जकड़कर बांधली कि साथ में बौद्धाचार्य्य भी बँध गया । बौद्धाचार्य्य ने बहुत उपाय किया पर न तो आप बन्धनमुक्त हो सका और न शक्ति ही वापिस आसकी । सुबह भक्त लोग दर्शनार्थ आए तो बुद्धिकीर्ति बन्धा हुआ पाया पूछने पर वह लज्जित हो गया । आखिर उसको सूरिजी महाराज से माँफी माँगनी पड़ी तब जाकर वह बंधन से मुक्त हुआ । शक्ति ने तो यहाँ तक प्रतिज्ञा करली कि अब मैं जैनाचार्य्य के सामने कभी पेश नहीं आऊँगी । बस, बौद्धाचार्य्य का घमण्ड गल गया । उसने सोचा कि यहाँ मेरी कुछ भी चलने की नहीं है । अब मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं यहाँ से रफूचक्कर बन जाऊँ । बस, वह किसी भक्त से बिना कहे ही पिछली रात्रि में नौ दो ग्यारह होगया ।

जैनधर्म का विजय डंका सर्वत्र बजने लगा । जो लोग बौद्धाचार्य्य के भौतिक चमत्कारों से विचलित हुए थे वे भी जैनधर्म में स्थिर होगए और कई बौद्धलोगों को भी सूरिजी ने जैनधर्मोपासक बना लिए । सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता खूब आनन्द लूटरही थी । सूरिजी मथुरा से विहार कर हस्तनापुर, सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा करते हुए कुनाल में पधारे । कुनाल के श्रीसंघ ने सूरिजी का स्थान स्थान पर स्वागत किया । सूरिजी ने रहाड़ी, मुगोली, सावत्थी लोहाकोट, सालीपुर, श्रीपुर और तक्षशिला तक विहार कर जनता को धर्मोपदेश कर जागृत किया । पञ्जाब में भी आपके बहुत से साधु विहार कर रहे थे । उनके कार्य्य पर आपने प्रसन्नता प्रगट कर उनका योग्य सत्कार कर उत्साह को बढ़ाया और वह चातुर्मास तक्षशिला नगर में किया जहाँ जैनों की घनी आबादी और करीब ५०० जैन मन्दिर थे । आप श्री के विराजने पर धर्म की अच्छी उन्नति हुई । वहाँ से विहार कर आप श्री ने क्रमशः सिन्ध भूमि को पवित्र बनाया । सिन्ध में भी आपके बहुत से साधु साध्वियाँ विहार करते थे । सिन्ध के वडियार, मलकापुर, रेणुकोट, सोलोर, आलोर, डबरेल, सिनपुर गगरकोट, नारायणपुर, समसोन, देपालकोट, वीरपुर, मीमकोट, उलपोट कटीपुरा, कणजोरा, सीतपुर, सिद्धपुर, वणोर, घरडोली, घुडी, डीडोली, कोटपुर आदि सर्वत्र विहार कर धर्म की जागृति की कई माँस मदिरा सेवियों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा

उस देश के वीरों को साधु बनाना चाहिये कि वे अपने देश के रीतिरिवाज रहन सहन आचार व्यवहार के मर्मज्ञ होने से थोड़े परिश्रम से भी जनता का कल्याण कर सकते हैं।

सूरिजी के चतुर्मास करने से केवल एक नगर में ही नहीं पर आस पास के ग्रामों के लोगों पर भी जैनधर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और कई जैनेतरों ने जैनधर्म भी स्वीकार किया था।

जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि महाराष्ट्रीय प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे उस समय बौद्धभिक्षु भी वहाँ अपने धर्म का प्रचार में लगे हुए थे परन्तु सूरिजी के आज्ञावृति कई साधु पहले से ही वहाँ विचरते थे उसमें देवभद्र और वीरभद्र नाम के दो साधु शास्त्रार्थ में बड़े ही निपुण थे कई राजा महाराजाओं की सभा में वेदान्तियों एवं बौद्धों का पराजय कर वादियों पर पूरी धाक जमा दी थी फिर सूरीश्वरजी का पधारना हो गया तब तो कहना ही क्या ?

प्रायः करके सूरिजी का व्याख्यान राजसभाओं में ही हुआ करता था। इस प्रकार सूरिजी ने दो वर्ष तक महाराष्ट्रीय प्रान्त में सर्वत्र घूम घूम कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया था। यों तो महाराष्ट्रीय प्रान्त में आचार्य लोहित्य ने जैनधर्म की नींव डाली थी पिछले आचार्यों ने उसका सिंचन कर मजबूत बनाया था पर सूरिजी महाराज के पधारने और २ वर्ष तक सर्वत्र विहार करने से जैनधर्म और भी उन्नति पर पहुँच गया था सूरिजी ने कई योग्य साधुओं को पद प्रतिष्ठित बना कर उनके उत्साह में वृद्धि की और उसी प्रान्त में विहार करने की आज्ञा देकर आप वहाँ से वापिस लौटकर क्रमशः विहार करते हुये आवंती प्रदेश में पदार्पण किया और घूमते २ उज्जैन नगरी की ओर पधार रहे थे वहाँ के श्रीसंघ के साथ श्रेष्ठिगोत्रिय मंत्री रघुवीर ने सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव किया जिसमें सवा लक्ष रुपये शुभ कार्य्य में व्यय किये।

श्रीसंघ के आग्रह से वह चतुर्मास सूरिजी ने उज्जैन में करना निश्चय कर लिया बस फिर तो था ही क्या जनता का उत्साह कई गुणा बढ़ गया। भद्रगोत्रीय शाह माला ने बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी से महाप्रभाविक श्रीभगवतीसूत्र वचाया जिसमें शाह माला ने हीरा पन्ना माणिक मोतियों से ज्ञान की पूजा की और प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजाकर शास्त्रजी को बड़ी रूची से सुना। अहा ! उस जमाने में जैन श्रीसंघ की धर्म पर एवं आगमों पर कैसी भक्ति एवं श्रद्धा थी कि एक एक धर्म कार्य्यों में लाखों करोड़ों द्रव्य खर्च कर देते थे। चतुर्विध श्रीसंघ ने सूरिजी के मुखार्विन्द से श्रीभगवतीसूत्र सुनकर अपने जीवन को सफल बनाया। और द्रव्य की आमन्द से आगम लिखा कर उनको चिरस्थायी बनाये।

बाद चतुर्मास के बाप्पनागगोत्रीय शाहमेघा के बनाये पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धूमधाम से करवाई और इस शुभअवसर पर ८ पुरुष और १३ बहिनों को सूरिजी ने भगवती जैनदीक्षा देकर उनका उद्धार किया एवं सूरिजी के विराजने से आवंती देश में जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई।

उज्जैन से विहार कर सूरिजी आवंती प्रदेश में घूम रहे थे वहाँ मथुरा के संघ अग्रेश्वर सूरिजी की सेवा में उपस्थिति हुये और प्रार्थना की कि पूज्यवर ! इस समय मथुरा में बौद्धाचार्य्य बुद्धकीर्ति आया हुआ है और वह व्यान्तरिक बल से जैनों को उपद्रव कर धर्म से पतित बनाने की कोशिश कर रहा है। अतः आप शीघ्र मथुरा पधारकर जैन संघ की रक्षा करें हम इसीलिये आये हैं कि आप सब प्रकार से समर्थ हैं। आपके पूर्वजों ने भी अनेक स्थानों पर संघ रक्षा की है। अतः आप मथुरा जल्दी पधारें ?

सूरिजी ने फरमाया कि महानुभावो ! आपके इतने आग्रह की आवश्यकता नहीं है यह तो हमारा

वीर की यात्रा की और श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घरघर में आनन्द मंगल छा रहा है क्योंकि उपकेशपुर वासियों के चिरकाल के मनोरथ सफल होगये इससे बढ़कर आनंद ही क्या होता है।

उपकेशपुर का राजघराना महाराज उत्पलदेव से ही जैनधर्मोपासक था और उन्होंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब प्रयत्न किया और कर भी रहे थे। यही कारण था कि उपकेशपुर जैनों का एक केन्द्र था।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था राजा और श्रीसंघ ने चतुर्मास की विनती की और लाभालाभ का कारण जानकर सूरिजी ने श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर ली फिर तो था ही क्या।

कभी २ देवी संच्चायका भी सूरिजी को वंदन करने को आया करती थी। एक दिन सूरिजी ने देवी से पूछा कि देवी जी! अनुमान से पाया जाता है कि अब मेरा आयुष्य नजदीक है मैं अपने पट्ट पर आचार्य बनाना चाहता हूँ और इस पद के लिये मैंने धर्ममूर्ति मुनि को योग्य समझा है। इसमें आपकी क्या राय है? देवी ने कहा आपका आयुष्य अभी ८ मास २७ दिन का है और मुनि धर्ममूर्ति आपके पट्टपर आचार्य होने में सर्वगुण सम्पन्न हैं। विशेष में देवी ने कहा कि पूज्यवर! आपकी अध्यक्षता में यहाँ एक सभा की जाय तो आपको बहुत लाभ होगा और इस समय ऐसी सभा की आवश्यता भी है आपके पूर्वजों ने भी समय २ पर सभा कर धर्म की जागृति की थी। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है देवी जी! मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा और आपकी सहायता से सफलता भी मिलेगी। देवी सूरिजी को वंदन कर अदृश्य हो गई।

दूसरे दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में पिछले इतिहास को सुनाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा कहा कि वीरो! यह वही उपकेशपुर है कि एक दिन यहाँ पर नास्तिकों का साम्राज्य वरत रहा था पर आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव एवं मंत्री ऊहड़ के प्रयत्न से जनता अपना कल्याण साधन कर रही इतना ही क्यों पर आज तो जैनधर्म का सर्वत्र सितारा चमक रहा है। अनेक प्रान्तों में जैन श्रमणों का विहार एवं उपदेश हो रहा है। पूर्वाचार्यों ने समय २ पर सभायें करके जैनधर्म के प्रचार की योजना की और उसमें काफी सफलता भी मिली थी। आज भी ऐसी सभाओं की आवश्यकता प्रतीत होती है सज्जनों! आप जानते हो कि सभाओं के अन्दर चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र मिलने से कितने फायदे हैं जैसे चतुर्विध श्रीसंघ का एकत्र होना, आपस में एक दूसरे का परिचय एवं धर्म स्नेह बढ़ना एक ही गच्छ समुदाय के साधु अन्योन्य प्रान्त में विहार करने से वे एक दूसरे को पहिचानते भी नहीं हैं जिन्हों का मिलाप होना, आचार्य को यह ज्ञात हो जाय कि हमारे गच्छ में कौन कौन साधु किस किस प्रकृति के कहाँ कहाँ विहार करते हैं और उनके अन्दर क्या क्या विशेष योग्यता है। सभा में एकत्र होने से संगठन बल मजबूत होता है और उस संगठन शक्ति द्वारा क्या क्या कार्य किया जाय उसका भी निश्चय हो सकता है समाज में शिथिलता एवं विकार हो वह निकल सकता है। कुछ समयानुसार परिवर्तन करना हो तो हो सकता है इतना ही क्यों पर सभाओं से समाज में एक नया जीवन भी प्रकट हो सकता है एवं अनेक फायदे हो सकते हैं इत्यादि सूरिजी ने उपदेश दिया और वहाँ के राजा मूलदेव वगैरह श्रीसंघ ने सूरिजी के अभिप्राय को समझ कर उसी व्याख्यान में खड़े होकर कहा पूज्यवर! यह लाभ तो उपकेशपुर को ही मिलना चाहिये। हम लोग यहाँ पर सभा करने को तैयार हैं। बस फिर तो था ही क्या सूरिजी ने फरमाया कि आप लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं। यही क्यों पर पहिले भी कई बार आपके यहाँ सभाएं हुई थी इत्यादि भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जयध्वनि के साथ व्याख्यान समाप्त हुआ। तदनन्तर राजा मूलदेव के

देकर उन पतितोंका उद्धार किया। एक चतुर्मास आपने शिव नगर में किया तब दूसरा मारोट कोट में किया बाद वहाँसे कच्छभूमि की स्पर्शना करते हुए सौराष्ट्र में पधार कर तीर्थाधिराज श्रीविमलाचलजी की यात्रा की और कई अर्सा तक सौराष्ट्र एवं लाट प्रदेश में भ्रमण कर आर्बुदाचल की यात्रा कर चन्द्रावती, पद्मावती, शिवपुरी होते हुये कोरंटपुर पधार कर भगवान महावीर की यात्रा की। उस समय कोरंटगच्छ के आचार्य कनकप्रभसूरि कोरंटपुर में ही विराजते थे। जब रत्नप्रभसूरि का आगमन सुना तो श्रीसंघ के साथ आपने सूरिजी का खूब स्वागत किया। दोनों गच्छों के आचार्य में इतना मेल मिलाप था कि किसी को यह मालूम नहीं होता था कि ये दो गच्छों के भिन्न २ आचार्य हैं। सूरिजी का व्याख्यान हमेंशा होता था। कोरंटसंघ और आचार्य कनकप्रभसूरि के आग्रह से आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वह चतुर्मास कोरंटपुर में ही करने का निश्चय कर लिया अतः जनता में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया। केवल एक कोरंटपुर का ही क्यों पर आस पास के ग्रामों के लोगों ने भी अच्छा लाभ उठाया। चन्द्रावती पद्मावती और उपकेशपुर के कई भक्तों ने तो सूरिजी की सेवा एवं देशना श्रवण की गरज से कोरंटपुर में आकर छावनीयें ही डाल दी थीं। पूर्व जमाने में गुरुदेव की सेवा और आगमों के सुनने में विशेष लाभ समझा जाता था। और इस प्रकार लाभ उठाया भी करते थे—

सूरिजी महाराज का व्याख्यान प्रायः त्याग वैराग्य एवं संसार की असारता पर ही विशेष हुआ करता था कि जिसका जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ता था। कई मुमुक्षुओं ने संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की तैयारी कर ली थी। इतना ही क्यों पर चंद्रावती के प्राग्वट वंशीय मन्त्री करण को भी संसार त्याग की भावना हो गई उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो! चतुर्मास के बाद आप चन्द्रावती पधारें तो मेरी इच्छा है कि मैं इस असार संसार का त्याग कर आपके चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा ग्रहण करूँ। सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' और जैसी क्षेत्रस्पर्शता

बस, चतुर्मास समाप्त होते ही कोरंटपुर में बारह भावुकों को दीक्षा देकर सूरिजी चन्द्रावती पधारे। मंत्रीश्वरण ने सूरिजी के नगर-प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया और करने लगा दीक्षा की तैयारियें। जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामि वात्सल्यादि अनेक शुभ कार्य किये। मंत्री करण के पुत्र मंडण ने इस उत्सव में सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया। मंत्री करण के साथ कई १८ नरनारी भी दीक्षा लेने को तैयार होगये। इन सबको शुभ मुहूर्त में सूरिजी ने विधि विधान के साथ दीक्षा दी जिससे जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। जब एक बड़ा आदमी धर्म करने में अग्रेश्वरी होता है तो उन के अनुकरण में ओर भी अनेक भावुक अपना कल्याण कर लेते हैं जिसके लिये मंत्रेश्वर का एक ताजा उदाहरण है

आचार्य रत्नप्रभसूरि भिन्नमाल, सत्यपुरी, शिवगढ़, श्रीनगर आदि नगरों में विहार करते पाल्हिकापुरी में पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया। कुछ अर्सा स्थिरता कर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश दिया। वहाँ से तांबावती, विराट-नगर, मेदनीपुर, पद्मावती, हंसावली होते हुये नागपुर पधारे। वहाँ भी आपने सात महानुभावों को दीक्षा दी। बाद हर्षपुर, संरक्खपुर, माडव्यपुर होते हुये उपकेशपुर पधार रहे थे यह शुभ संवाद सुन उपकेशपुर की जनता में उत्साह का समुद्र ही उमड़ उठा। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगरप्रवेश महोत्सव किया। सूरिजी ने चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान् महा-

वीर की यात्रा की और श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घरघर में आनन्द मंगल छा रहा हैं क्योंकि उपकेशपुर वासियों के चिरकाल के मनोरथ सफल होगये इससे बढ़कर आनंद ही क्या होता है।

उपकेशपुर का राजघराना महाराज उत्पलदेव से ही जैनधर्मोपासक था और उन्होंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब प्रयत्न किया और कर भी रहे थे। यही कारण था कि उपकेशपुर जैनों का एक केन्द्र था।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था राजा और श्रीसंघ ने चतुर्मास की विनती की और लाभालाभ का कारण जानकर सूरिजी ने श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर ली फिर तो था ही क्या।

कभी २ देवी संच्चायिका भी सूरिजी को वंदन करने को आया करती थी। एक दिन सूरिजी ने देवी से पूछा कि देवी जी! अनुमान से पाया जाता है कि अब मेरा आयुष्य नजदीक है मैं अपने पट्ट पर आचार्य बनाना चाहता हूँ और इस पद के लिये मैंने धर्ममूर्ति मुनि को योग्य समझा है। इसमें आपकी क्या राय है? देवी ने कहा आपका आयुष्य अभी ८ मास २७ दिन का है और मुनि धर्ममूर्ति आपके पट्टपर आचार्य होने में सर्वगुण सम्पन्न हैं। विशेष में देवी ने कहा कि पूज्यवर! आपकी अध्यक्षता में यहाँ एक सभा की जाय तो आपको बहुत लाभ होगा और इस समय ऐसी सभा की आवश्यता भी है आपके पूर्वजों ने भी समय २ पर सभा कर धर्म की जागृति की थी। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है देवी जी! मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा और आपकी सहायता से सफलता भी मिलेगी। देवी सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

दूसरे दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में पिछले इतिहास को सुनाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा कहा कि वीरो! यह वही उपकेशपुर है कि एक दिन यहाँ पर नास्तिकों का साम्राज्य वरत रहा था पर आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव एवं मंत्री ऊहड़ के प्रयत्न से जनता अपना कल्याण साधन कर रही इतना ही क्यों पर आज तो जैनधर्म का सर्वत्र सितारा चमक रहा है। अनेक प्रान्तों में जैन श्रमणों का विहार एवं उपदेश हो रहा है। पूर्वाचार्यों ने समय २ पर सभायें करके जैनधर्म के प्रचार की योजना की और उसमें काफी सफलता भी मिली थी। आज भी ऐसी सभाओं की आवश्यकता प्रतित होती है सज्जनों! आप जानते हो कि सभाओं के अन्दर चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र मिलने से कितने फायदे हैं जैसे चतुर्विध श्रीसंघ का एकत्र होना, आपस में एक दूसरे का परिचय एवं धर्म स्नेह बढ़ना एक ही गच्छ समुदाय के साधु अन्योन्य प्रान्त में विहार करने से वे एक दूसरे को पहिचानते भी नहीं हैं जिन्हों का मिलाप होना, आचार्य को यह ज्ञात हो जाय कि हमारे गच्छ में कौन कौन साधु किस किस प्रकृति के कहाँ कहाँ विहार करते हैं और उनके अन्दर क्या क्या विशेष योग्यता है। सभा में एकत्र होने से संगठन बल मजबूत होता है और उस संगठन शक्ति द्वारा क्या क्या कार्य किया जाय उसका भी निश्चय हो सकता है समाज में शिथिलता एवं विकार हो वह निकल सकता है। कुछ समयानुसार परिवर्तन करना हो तो हो सकता है इतना ही क्यों पर सभाओं से समाज में एक नया जीवन भी प्रकट हो सकता है एवं अनेक फायदे हो सकते हैं इत्यादि सूरिजी ने उपदेश दिया और वहाँ के राजा मूलदेव वगैरह श्रीसंघ ने सूरिजी के अभिप्राय को समझ कर उसी व्याख्यान में खड़े होकर कहा पूज्यवर! यह लाभ तो उपकेशपुर को ही मिलना चाहिये। हम लोग यहाँ पर सभा करने को तैयार हैं। बस फिर तो था ही क्या सूरिजी ने फरमाया कि आप लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं। यही क्यों पर पहिले भी कई बार आपके यहाँ सभाएँ हुई थी इत्यादि भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जयध्वनि के साथ व्याख्यान समाप्त हुआ। तदनन्तर राजा मूलदेव के

नेतृत्व में उपकेशपुर श्रीसंघ की एक सभा हुई और उसमें उपकेशपुर में चतुर्विध श्रीसंघ की सभा के लिये कार्यक्रम एवं सर्व प्रकार की योजना तैयार की तथा कार्य के लिये अलग २ समितियें स्थापित कर सब कार्यों को अच्छी तरह से व्यवस्थित कर दिया केवल एक समय का निर्णय करना सूरिजी पर रक्खा कारण ऐसा समय रखना चाहिये कि दूर और नजदीक के प्रायः सब साधु साध्वियां इस सभा में आसकें जिससे इस सभा का लाभ सब को मिल सके इत्यादि।

ऐसे वृहत् कार्य के लिये खास तौर से दो बातों की आवश्यकता थी एक द्रव्य दूसरे कार्यकर्त्ता। उपकेशपुर में दोनों बातों की अनुकूलता थी। उपकेशवंशियों के पास पुष्कल द्रव्य था और कार्यकर्त्ता के लिये मरुधरवासियों की कार्यकुशलता मशहूर ही थी।

संघ अग्रेश्वर ने सूरिजी के पास आकर सभा के लिये समय निर्णय की याचना की तो सूरिजी ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि माघ या फाल्गुण का मास रक्खा जाय तो नजदीक एवं दूर के प्रायः सब साधु साध्वियां एवं श्रमणसंघ सुविधा से आ सकते हैं इत्यादि।

श्री संघ ने कहा! यदि माघ शुक्ल पूर्णिमा का दिन रखा जाय तो अच्छा है क्योंकि यह दिन परोपकारी आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि की स्वर्गारोहण तिथि है। यों ही हमारे यहाँ माघपूर्णिमा का अष्टन्हिका महोत्सव आदि हुआ करता है और पहले यहाँ सभा हुई वह माघ पूर्णिमा के दिन हुई थी और यह समय है भी सबको अनुकूल। कारण, चतुर्मास समाप्त होने के बाद तीन मास में भारत के किसी भी विभाग में श्रमणसंघ होंगे वे आ सकेंगे और हमारे थली प्रान्त में पानी वगैरह की भी सुविधा रहेगी इत्यादि। सूरिजी ने श्रीसंघ के कथन को मंजूर कर लिया। अतः श्रीसंघ अपने कार्य में संलग्न हो गया अर्थात् जो करने योग्य कार्य्य थे वे क्रमशः करने लग गये और आमन्त्रण के लिये अपने योग्य पुरुषों को सर्वत्र भेज दिये।

इधर नजदीक और दूर-दूर देशों से चतुर्विध श्रीसंघ का शुभागमन हुआ। करीब ५ हजार साधु साध्वियाँ और लाखों गृहस्थ लोग उपकेशपुर को पावन बना रहे थे उपकेशपुर तो आज एक यात्रा का धाम ही बन गया था। साधुओं के परस्पर ज्ञानगोष्ठी और श्रावकों के धर्म स्नेह में खूब वृद्धि हो रही थी। स्वागत का सब इन्तजाम पहले से ही माकूल किया हुआ था। विशेषता यह थी कि उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ और वीरसन्तानिये एवं पृथक २ गच्छ समुदाय के साधु होने पर भी वे सब एक ही रूप में दीखते थे।

ठीक समय पर आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की नायकता में चतुर्विध श्रीसंघ की एक सभा हुई। सूरिजी ने पूर्व जमाने का इतिहास और वर्तमान समय की परिस्थिति का दिग्दर्शन करवाते हुये अपने ओजस्वी शब्दों में कहा वीरो! साधुओं का जीवन ही परोपकार के लिये होता है। जिस देश प्रान्त नगर और घर में धर्मभावना फली फूली होती है वहाँ सदैव सुख शान्ति रहती है। चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ हो दोनों का ध्येय आत्मकल्याण का ही होना चाहिये जिसमें भी विशेषता यह है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करना। तीर्थङ्कर भगवान ने इसलिये ही घूम-घूम कर उपदेश दिया था। आचार्य रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि आदि आचार्यों ने हजारों कठिनाइयें इसी लिये सहन की थीं। अतः आप लोगों का भी यही कर्त्तव्य है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करने को कटिबद्ध होजाइये जैसे पूर्व जमाने में नास्तिकों का जोर था वैसे ही आज क्षणिक वादियों का जोर बढ़ता जा रहा है उनके सामने डट कर रहना अपना कर्त्तव्य ही बना लेना चाहिये इस विषय के साहित्य का अध्ययन करना चाहिये इत्यादि आपके उपदेश का

श्रमणसंघ पर गहरा असर हुआ। साथ में श्राद्धवर्ग ने भी जागृत हो अपना फर्ज अदा करने की प्रतिज्ञा करली इत्यादि। पूर्व जमाने में केवल कागजों में प्रस्ताव करके ही कृतकृत्य नहीं बनते थे पर वे जिस कार्य को करना आवश्यक समझते उसे तत्काल ही करके बतला देते थे। यही कारण है कि उस समय जैनधर्म उन्नति की चरमसीमा तक पहुँचगया था।

उसी सभा के अन्दर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपना पदाधिकार मुनी धर्ममूर्ति को अर्पण कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया और इनके अलावा और भी कई योग्य मुनियों को पद प्रदान किये। बाद जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

रात्रि समय में राजा मूलदेव की प्रेरणा से श्राद्ध सभा भी हुई उसमें आचार्य श्री का उपकार मानना और साधुओं के धर्मप्रचार कार्य में हाथ बटाना अर्थात् यथासंभव मदद करने की प्रतिज्ञा की और भी धर्मसम्बन्धी कई कार्य्य करने के नियम बनाये गये और उनको तत्काल कार्य रूपमें प्रवृत करने का निश्चय किया—

तत्पश्चात् नूतन सूरिजी की आज्ञानुसार साधुओं ने पृथक् २ प्रान्तों एवं नगरों की ओर विहार किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि को देवी के बतलाये ८ मास २७ दिनों की स्मृति करनेसे ज्ञात हुआ कि अब मेरा आयुष्य केवल २१ दिन का रहा है अतः आपने अलोचना प्रतिक्रमण करके उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर जाकर अनशन व्रत कर दिया और समाधी पूर्वक नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने १९ वर्षों के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में घूम घूम कर जैनधर्मका खूब ही प्रचार बढ़ाया पूज्यराध्य आचार्य श्री के जीवन में किये हुए कार्यों के लिये पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भयसे यहाँ थोड़ामें ही बतला दिया जाता है कि आपश्री ने जन कल्याण के लिये कैसे २ चोखे और अनोखे कार्य किया है।

## आचार्यश्री के करकमलों से भावुकों को दीक्षाएँ।

१—सत्यपुर में धर्मसी आदि अठारह नरनारियों को दीक्षादी।
२—दक्षिण की ओर विहार कर वहाँ भी बहुत भव्यों को दीक्षादी।
३—उज्जैन के चतुर्मास के बाद इकवीस नर नारियों को दीक्षादी।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४—तक्षिला के श्रेष्टि गौत्रीय | गोसल ने | सूरिजी के पास दीक्षा ली | |
| ५—रहाडी के भाद्र गौत्रीय | सागा ने | ,, | ,, |
| ६—सावत्थी के चिंचट गौत्रीय | ऊंकार ने | ,, | ,, |
| ७—रेणुकोट के अदित्य नाग० | आदू ने | ,, | ,, |
| ८—मसकापुर के आदित्य नाग० | भगा ने | ,, | ,, |
| ९—कोटीपुर के बाप्प नाग० | गोपाल ने | ,, | ,, |
| १०—धणोद के बलाहा गौ० | दूगा ने | ,, | ,, |
| ११—पुड़ी के प्राग्वट वंशी | कर्मा ने | ,, | ,, |
| १२—भंद्रेसर के प्राग्वट वंशी | करमण ने | ,, | ,, |

नेतृत्व में उपकेशपुर श्रीसंघ की एक सभा हुई और उसमें उपकेशपुर में चतुर्विध श्रीसंघ की सभा के लिये कार्यक्रम एवं सर्व प्रकार की योजना तैयार की तथा कार्य के लिये अलग २ समितियें स्थापित कर सब कार्यों को अच्छी तरह से व्यवस्थित कर दिया केवल एक समय का निर्णय करना सूरिजी पर रक्खा कारण ऐसा समय रखना चाहिये कि दूर और नजदीक के प्रायः सब साधु साध्वियां इस सभा में आसकें जिससे इस सभा का लाभ सब को मिल सके इत्यादि ।

ऐसे वृहत् कार्य के लिये खास तौर से दो बातों की आवश्यकता थी एक द्रव्य दूसरे कार्यकर्त्ता । उपकेशपुर में दोनों बातों की अनुकूलता थी । उपकेशवंशियों के पास पुष्कल द्रव्य था और कार्यकर्त्ता के लिये मरुधरवासियों की कार्यकुशलता मशहूर ही थी ।

संघ अग्रेश्वर ने सूरिजी के पास आकर सभा के लिये समय निर्णय की याचना की तो सूरिजी ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि माघ या फाल्गुण का मास रक्खा जाय तो नजदीक एवं दूर के प्रायः सब साधु साध्वियां एवं श्रमणसंघ सुविधा से आ सकते हैं इत्यादि ।

श्री संघ ने कहा ! यदि माघ शुक्ल पूर्णिमा का दिन रखा जाय तो अच्छा है क्योंकि यह दिन परोपकारी आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि की स्वर्गारोहण तिथि है । यों ही हमारे यहाँ माघपूर्णिमा का अष्टन्हिका महोत्सव आदि हुआ करता है और पहले यहाँ सभा हुई वह माघ पूर्णिमा के दिन हुई थी और यह समय है भी सबको अनुकूल । कारण, चतुर्मास समाप्त होने के बाद तीन मास में भारत के किसी भी विभाग में श्रमणसंघ होंगे वे आ सकेंगे और हमारे थली प्रान्त में पानी वगैरह की भी सुविधा रहेगी इत्यादि । सूरिजी ने श्रीसंघ के कथन को मंजूर कर लिया। अतः श्रीसंघ अपने कार्य में संलग्न हो गया अर्थात् जो करने योग्य कार्य्य थे वे क्रमशः करने लग गये और आमन्त्रण के लिये अपने योग्य पुरुषों को सर्वत्र भेज दिये।

इधर नजदीक और दूर-दूर देशों से चतुर्विध श्रीसंघ का शुभागमन हुआ । करीब ५ हजार साधु साध्वियों और लाखों गृहस्थ लोग उपकेशपुर को पावन बना रहे थे उपकेशपुर तो आज एक यात्रा का धाम ही बन गया था। साधुओं के परस्पर ज्ञानगोष्टी और श्रावकों के धर्म स्नेह में खूब वृद्धि हो रही थी । स्वागत का सब इन्तजाम पहले से ही माकूल किया हुआ था ! विशेषता यह थी कि उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ और वीरसन्तानिये एवं पृथक २ गच्छ समुदाय के साधु होने पर भी वे सब एक ही रूप में दीखते थे ।

ठीक समय पर आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की नायकता में चतुर्विध श्रीसंघ की एक सभा हुई। सूरिजी ने पूर्व जमाने का इतिहास और वर्तमान समय की परिस्थिति का दिग्दर्शन करवाते हुये अपने ओजस्वी शब्दों में कहा वीरो ! साधुओं का जीवन ही परोपकार के लिये होता है । जिस देश प्रान्त नगर और घर में धर्मभावना फली फूली होती है वहाँ सदैव सुख शान्ति रहती है । चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ हो दोनों का ध्येय आत्मकल्याण का ही होना चाहिये जिसमें भी विशेषता यह है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करना । तीर्थङ्कर भगवान ने इसलिये ही घूम-घूम कर उपदेश दिया था । आचार्य रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि आदि आचार्यों ने हजारों कठिनाइयें इसी लिये सहन की थीं । अतः आप लोगों का भी यही कर्त्तव्य है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करने को कटिबद्ध होजाइये जैसे पूर्व जमाने में नास्तिकों का जोर था वैसे ही आज क्षणिक वादियों का जोर बढ़ता जा रहा है उनके सामने डट कर रहना, अपना कर्त्तव्य ही बना लेना चाहिये इस विषय के साहित्य का अध्ययन करना चाहिये इत्यादि आपके उपदेश का

११—कुण्डरी के छिड्ड गो „ देसल ने „ मन्दिर० प्र०

१२- घोड़ापुर के लघुश्रेष्ठिगो० „ सारंग ने „ „ „

१३—सेसलाना के कुमटगो० „ लूंढा ने पार्श्वनाथ „ „

१४—भट्टपुर के चरड़ गौत्रीय „ लरन ने „ „ „

१५—लोहापुर के मल गौत्रीय „ टोडा ने „ „ „

१६—उज्जैन के विरहट गो० „ मोला ने मुनिसुव्रत „ „

१७—मंडपाचल के भाद्र गो० „ नांनग ने नेमिनाथ „ „

१८—खलखेड़ा के नाग गो० „ कुलधर ने चंद्रप्रभ „ „

१९—सेदहरा के बप्पनागगो० „ अर्जुन ने महावीर „ „

२०—घरासणी के कनोजियागो०„ खीवशी ने „ „ „

२१—पद्मावती के विरहटगो० „ पोमा ने „ „ „

२२—अकलाणी के भूरिगो० „ सुजा ने „ „ „

२३—मालपुर के बलाह गो० „ हरदेव ने „ „ „

२४—भवानीपुर के श्रीश्रीमालगो०„ कल्हण ने „ „ „

२५—कालुर के „ „ „ डुगाने पार्श्वनाथ „ „ „

२६—रावपुरा के अदित्यनाग „ मालाने चन्द्रवाल „ „

२७—हस्तीपुर के प्राग्वट „ फरसाने मल्लिनाथ „ „

२८—प्राज्ञुपुर के प्राग्वट „ कानड़ने महावीर „ „

२९—जावलीपुर के श्री माल „ हरलाने पार्श्वनाथ „ „

३०—उपकेशपुर के श्रष्टगौत्रियाराव जगदेवने चन्द्रप्रभ „ „

३१—क्षत्रीपुर के तप्तभट्टगोत्री शाह नोढाने पार्श्वनाथ „ „

३२—विजयपट्टन के बाप्प नाग मंत्री सज्जन ने महावीर „ „

इनके अलावा भी कई मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी यह जमाना मूर्त्ति वाद का ही था दूसरा लोगों के पास द्रव्य बहुत था तीसरा शायद् आचार्यों ने भी यही सोचा होगा कि अब जमाना ऐसा आवेगा कि आत्म भावना की अपेक्षा मन्दिर मूर्त्तियों के आलम्बन से धर्म करने वाले विशेष लोग होंगे अतः उन्होंने इस ओर अधिक लक्ष दिया हो ? कुच्छ भी हो पर यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जैन मन्दिरों से जैन धर्म जीवित रह सका है जबसे म्लेच्छ लोगों ने मन्दिरों को तोड़ फोड़ नष्ट करने का दुःसाहस किया तब से ही कई प्रान्तों जैनधर्म से निर्वासित होगई

जिस प्रकार जैन गृहस्थ मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाते थे इसी प्रकार जैन तीर्थों की यात्रार्थ बड़े बड़े संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा भी किया करते थे और धनाढ्य लोग यात्रा निमित्त लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर अपने जीवन की सफलता समझते थे और वे संघ एक प्रान्त से नहीं पर प्रत्येक प्रान्तों से निकलते थे श्री शत्रुंजय का संघ निकालते तब गिरनारादि तीर्थों की यात्रा कर लेते और श्री सम्मेतशिखर का

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३ — खरखेटी के श्रीमाल वंशी | धरण | ने | सूरिजी के पास दीक्षा ली |
| १४—रावुटी के क्षत्रीय वीर | देदा | ने | " " |
| १५—पादलिप्त के तप्तभट्ट गौ० | नागा | ने | " " |
| १६—उरजूनी के करणाटगौ० | अर्जुन | ने | " " |
| १७—करणावतीके करणाटगौ० | हरपाल | ने | " " |
| १८—मुग्धपुर के मोरक्ष गौ० | नारा | ने | " " |
| १९— नागपुर के सुचती गौ० | रणछोड़ | ने | " " |
| २०—पाल्हीका के बोहरा शाह | नारायण | ने | " " |
| २१—दुर्गा पुर के मंत्री | सालग | ने | " " |
| २२—शंखपुर के सोनी गौत्रीय | माना | ने | " " |
| २३— छत्रीपुर के सुघड़ गौत्रीय | सल्हण | ने | " " |
| २४—खटकूप के मल गौत्रीय | ढाढर | ने | " " |
| २५—क्षान्तिपुर के चरड़ गौत्रीय | मुकन्द | ने | " " |
| २६—खेड़ीपुर के लुंग गौत्रीय | कल्हण | ने | " " |
| २७—उपकेशपुर के श्रेष्टि गौत्रीय | सुरजन | ने | " " |
| २८—धोलपुर के कुलभद्र गौ० | हाडा | ने | " " |
| २९— वीरभी के विरहट्गौत्रीय | पुरा | ने | " " |

इनके अलावा कई बाइयों ने भी दीक्षा ली थी तथा आपके मुनि गण के उपदेश से भी बहुत नर-नारियों ने दीक्षाएँ ली थी ये तो मैंने केवल पट्टावलियों से थोड़ा सा नाम लिखा हैं और पट्टावलियों में केवल उपकेशवंश वालों ने दीक्षा ली जिन्हों का ही उल्लेख किया है इनके अलावा इतर जातियों के लोगों को भी दीक्षा दिया करते थे परन्तु उन सब के उल्लेख मिलते नहीं हैं ।

## आचार्यश्री के तथा आपके मुनियों के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १—नागपुर के आदित्यनाग० | मधु के बनाये | पार्श्वनाथ० | मन्दिर० | प्र० |
| २—डिड्डपुर के बाकुप्पनाग० | शाह अजड़ने | पार्श्वनाथ | " | " |
| ३—नंदपुर के प्राग्वटवंशी० | " रहाप ने | महावीर | " | " |
| ४—ब्राह्मणगाव के प्राग्वट | " करणा ने | " | " | " |
| ५—नारदपुरी के सुंचितगौ० | " सादा ने | " | " | " |
| ६—पाटली के प्राग्वट " | " भारखर ने | पार्श्वनाथ | " | " |
| ७—कीराटकुंप के राव—गोपाल ने | | शान्तिनाथ | " | " |
| ८—पालिका के कुलभद्र गौ० | शाह अमरा ने | आदीश्वर | " | " |
| ९—श्रीनगर के श्रेष्टिगौत्र० | " उरजन ने | " | " | " |
| १०—खटकूपपुर के चिंचट गौ० | " दहाड ने | महावीर | " | " |

# आदित्यनाग गोत्र की चोरडिया शाखा

चित्रकोट नगर में आदित्यनाग गोत्रीय शाह आमदेव निंबदेव नाम के कोटीध्वज व्यापारी थे और उसी नगर में आमदेव निंबदेव नाम के प्राग्वटवंशीय कोटीध्वज व्यापारी थे। पहिले जमाने में कागज पत्र एवं समाचार कासिदों द्वारा ही आया जाया करते थे। एक समय उज्जैन मे किसी व्यापारी ने प्राग्वट आमदेव निंबदेव के नाम से पत्र लिख कर कासिद के हाथ दे दिया कि तुम चित्रकोट जाकर पत्र का जवाब ले आओ कासिद ने चित्रकोट जाकर बाजार में पूछा कि आमदेव निंबदेव कौन है ? आदित्यनाग गोत्रीय आमदेव पास में खड़ा था उसने कासिद से कहा आमदेव मैं हूँ तेरे क्या काम है ? कासिद ने अपने पास का पत्र आमदेव को दे दिया। आमदेव पत्र पढ़ कर उसमें जो व्यापार सम्बन्धी तेजी मंदी का समाचार था उसको जान गया। कासिद को भोजन करवा कर कह दिया कि तू थका हुआ है थोड़ा सोजा। कासिद सो गया। आमदेव ने अपना काम कर लिया बाद जब कासिद जगा तो पत्र उसको दे दिया और कहा कि यह पत्र तो दूसरे आमदेव का है तू वहां जाकर पत्र दे दे। कासिद ने प्राग्वट वंशी आमदेव के यहां जाकर पत्र दिया उसने पत्र बाँच कर व्यापार के लिये भाव मँगाये तो थोड़ी ही देर में भाव बहुत तेज हो गये तब कासिद को कहा भाई तू थोड़े पहले आजाता तो अच्छा होता। कासिद ने कहा सेठजी मैं तो कब का ही आया हुआ था पर एक दूसरे आमदेव ने मुझे रोक लिया था आमदेव ने सोचा कि दूसरा आमदेव तो आदित्य-नाग गोत्रिय है शायद उसी ने इस पत्र से बाजार को तेज कर दिया होगा अतः प्राग्वट-आमदेव ने जाकर आदित्य नाग गोत्रिय आमदेव को कहा कि आपने हमारा पत्र चोर लिया यह अच्छा नहीं किया इत्यादि। उस दिन से आदित्यनाग गोत्रिय आमदेव चोरलिया के नाम से पुकारे जाने लगे। उस चोरलिया का अपभ्रंश चोर-डिया हो गया और वह अद्यावधि भी विद्यमान है। इसका समय वंशावली कार ने विक्रम संवत् २०२ का बतलाया है। चोरड़िया जाति का मूल गोत्र आदित्यनाग है।

कई लोग चोरडिया जाति की उत्पत्ति विक्रम की बारहवीं शताब्दी में राठौर राजपूतों से हुई बतलाते हैं और राठौर राजपूतों को प्रतिबोध देकर उनकी जाति चोरड़िया हुई कहते हैं यह बिलकुल असत्य एवं कल्पना मात्र ही है। इससे करीब १५०० वर्षों के इतिहास का खून होता है। इन १५०० वर्षों में चोरड़िया जाति के नर रत्नों ने देश समाज और धर्म की बड़ी बड़ी सेवायें करके जो यश प्राप्त किया है उस सब पर पानी फिर जाता है। गच्छ कदाग्रह एक कैसी बलाय है कि अपने स्वार्थ के लिये शासन को कितना नुकसान पहुँचा देते हैं जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी इतिहास ग्रन्थ मे आप देखेंगे कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्व चोरड़िया जाति के दानवीरों ने परमार्थ के क्या २ काम किये हैं। अतः चोरड़िया जाति आदित्यनाग गोत्र की एक शाखा है और यह बात विक्रम की पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के शिलालेख के प्रमाण से और भी पुष्ट हो जाति है कि चोरड़िया जाति स्वतंत्र गोत्र नहीं है पर आदित्यनाग गोत्र की एक शाखा है। देखिये —

"सं० १४८० वर्षे ज्येष्ठ वद ५ उकेश ज्ञातीय आइच्चणाग गोत्रे सा० आ० सा० मा० वाच्छि पु० सा० हाजु नाहू मा० रूपी पु० खेमा वाल्हा सावड़ श्रीनेमिनाथ बिंबं का० पूर्वज लि० पु० आत्मा श्र० उप-केश कुक० प्र० श्री सिद्धसूरिभिः "बाबुपूर्ण० खण्ड पृष्ट १९ लेखांक ००"

संघ निकलते तो पूर्व की तमाम यात्रा कर लेते आचार्य रत्नप्रभसूरि के शासन समय में संघ निकले जिसकी सूची पट्टावलियों वंशावलियों में इस प्रकार दी हुई मिलती है ।

१—उपकेशपुर से बाप्प नाग गौत्रीय पुनडने श्री शत्रुजय का संघ निकाला
२—पाल्हिकापुरी से सुचंती गौत्रीय आखा ने ,, ,,
३—पद्मावती से प्राग्वट वंशीय नोढ़ा ने ,, ,,
४—कुर्चपुरा से तप्तभट्ट गौत्रीय फुँवा ने ,, ,,
५—चन्द्रावती से मंत्री रणधीर ने श्री सम्मेत शिखरजी ,,
६—डावरेल नगर से श्रेष्टी वर्ण्य नोंधण ने श्री शत्रुजय का ,,
७—तक्षिला से भाद्रगौत्रीय जावडा ने ,, ,,
८—नागपुर से अदित्यनाग० देदा ने ,, ,,
९—नारदपुरी से कुमट गौ० सारंग ने ,, ,,
१०—सालीपुर से चिंचट गौ० सलखण ने ,, ,,
११—हर्षपुरा से बलाह गौ० हरपाल ने ,, ,,
१२—कोरंटपुर से श्रीमाल० रावल ने ,, ,,
१३—शिवपुरी से प्राग्वट दूधा ने श्री सम्मेत शिखर का ,,

आचार्य रत्नप्रभसूरि एक महान् प्रभाविक आचार्य हुये हैं आपका विहार क्षेत्र बहुत ही विशाल था । कुनाल से लगाकर महाराष्ट्रीय प्रान्त तक आपने भ्रमण किया था आपश्री के साधु साध्वी तो सब प्रान्तों में भ्रमण कर धर्म प्रचार करते थे । आचार्यश्री ने अपने जीवन में कई पाँचसो नरनारियों को दीक्षादी थी और हजारों लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये अतः आपश्री का जैन समाज पर महान उपकार हुआ है । ऐसे जैनधर्म के रक्षक पोषक एवं वृद्धक महात्माओं के चरणों में कोटि कोटि नमस्कार हो ।

श्रेष्टिकुल शृंगार अनोपम, पारस के अधिकारी थे ।
रत्नप्रभसूरि गुण भूरि, शासन में यशधारी थे ॥
योगविद्या में थी निपुणता, पढ़ने को कई आते थे ।
अजैनों को जैन बनाये, जिनके गुण सुर गाते थे ॥

॥ इति श्रीभगवान् पार्श्वनाथ के २१ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

नाम की सभ्यता होने से ऐसी भूल हो ही जाती है जैसे पंचमी से चतुर्थी की सांवत्सरी के कर्त्ता वीर की पांचवी शताब्दी में कालकाचार्य हुये पर नाम की साम्यता होने से उस घटना को वीर की दशवीं शताब्दी में हुये कालकाचार्य के साथ जोड़ दी है। यही हाल भैंशाशाह का हुआ है जिसको हम यथा स्थान लिखकर खुलासा करेंगे।

---

*इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३१ पर चारों भैंशाशाह का समय लिख आये है वह से देखेंगे।

× भूस्वर्गायमण्डनानेक गगन चुम्बिसन्मंदिर पताका वीजित गत क्लम से स्वस्व धर्म परिपालन निरत नरनारी वृन्द संकलिते सन्नपति शासन संतुष्ट वर्णनिवहे सुप्राकार परीखादिव्याप्त दिग्विभागे अति मनोहरे श्री चित्रकोट नगरे-चौरलिया शाखापाथोज दिन मणि आदित्यनाग गोत्रीयः सत्क्षेत्रदत्त प्रसूत धनाशाविस्तृत कीर्तिलतासच्छाय श्री दीप्ततेजाः सर्वप्राणिप्रियरसाल वदाम्रदेवाभिध: श्रेष्ठिपुंगव ॥ पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य पूतात्मा स च नाना दिग्देशान्तरालकृता नेकविधवस्तु जात व्यापरेण तदंगतया कुबेर समान धन राशि ना च अलभत जनता सु प्रसिद्धिम्।

तस्मिन्नेव च खलु कमनीयनगरे प्राग्वट वंशावतंस श्री आम्रदेवनामा कश्चिन्महावैक्रयिको वसतिस्म ॥ नैगमेप्रधानः ॥ नानाव्यापारसमृद्धि सज्जित चत्वरहट्टप्रतोली त्रिभाग कमनीयतर श्रीभृगुकच्छ ( भरोंच ) इति शुभनामसमलङ्कृतनगरात् कश्चित्कासीदनामाख्यः पत्रहरश्चित्रकोटे नगरे समाढुढौके।

तथा च चित्रकोट नगरस्य विस्ताररम्यापणिकासु प्रतिष्ठांगटकञ्च नगरप्रसिद्धाम्रदेवश्रेष्ठिन: पत्रञ्चनामादिकम् ॥ परंच तन्नाम कलितेनापरेणकेनचिद्दक्षनैगमेन-आदित्यनागगोत्रेण आगन्तुक व्यवहार शून्य कासीदात्पत्रमादाय वापाठि च तत्र च मनोरमे पत्रे विविधक्रय्यवस्तूनांमनर्घ्य मूल्य समाचारा आसन चतुरेण तेन सुन्दररसवत्या कासीदं भोजयित्वा सुख शयनीयतल्पे तं मधुरालपैर स्थापन स च कासीद मनोहराहारास्वादनतयोदरम्परि भृज: सन् सानंद पञ्चघण्टा परिमित काले सुष्वाप।

तदन्तरे बुद्धिशालिना तेन नानाविधवस्तुजातं स्वैरैवाकीणीतम् पश्चाच्छनैशनैः स कासीदश्च नेत्रोन्मीलिकांविधाय ज जागार भणितश्चाम्रदेवेन भो देवानांप्रिय। नास्तीदम्पत्रं मामकीनम किन्तु मन्नामसदृशः कश्चिदपर प्राग्वटवंशीयो वणिक् तस्येदं दलं तत्र प्रयाहि देहिच असौ कासीदोऽपि विमनाः सन् प्राग्वटान्वयिश्रेष्ठिप्रवराम्रदेवस्याभ्यर्णे मङ्क्षु जगाम दर्शितञ्च पत्रं पत्रं पठितञ्च भूयः शिरोधूनन पूर्वकम् व्याजहार-यदि च-भवान् चतुर्घण्टा पूर्वंइतः आगमिष्यन् तर्हि अतीव पैशल्यमभविष्य तथा च तवेभ्यराजस्य महान् लाभोऽभविष्यत् सच प्रहिल इवेतस्ततो दिशोऽवलोकयन किञ्चिद्विश्वस्य सादरमभाणीत्। महानुभाव श्रेष्ठिन् षट्घण्टापरिमितपूर्वकालो ऽगमम किन्त्वान्याम्रदेवेन भोजयित्वा स्वापितोहम्- ससम्भ्रमुन्याय चकित चकित इवोक्तम् किं तेन पत्रं पठितम् ओ ( स्वीकारे ) मित्युक्तेसति शीघ्रमेव आपणे गत्वा प्राग्वटवंशीयाम्रदेव-आदित्यनाग वंशीयाम्रदेव प्रति सावमर्श प्रात्रोचन्।

अरे व्यसवराट् मामकं पत्र मुन्मुद्रायित्वा स्वकीयकार्यं साधितं धिक् स्तेयवृत्ति महाजनवंशे-समुत्पन्नोऽपि चौर्येण कार्यं करोति इत्यादि साक्षेपवचनैस्तदुपरि समजनि तदारभ्य सर्वे तं (चोरलिया) इति वचनपुरस्सरमाह्वयाम सु: तद्दिनादेव तत्सन्ततिरपि चोरलियेत्यभिधया प्रसिद्धाभूत दन्यश्च।

संघ निकलते तो पूर्व की तमाम यात्रा कर लेते आचार्य रत्नप्रभसूरि के शासन समय में संघ निकले जिसकी सूची पट्टावलियों वंशावलियों में इस प्रकार दी हुई मिलती है।

१—उपकेशपुर से बाप्प नाग गौत्रीय पुनड़ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला
२—पाल्हिकापुरी से सुचंती गौत्रीय आखा ने ,, ,,
३—पद्मावती से प्राग्वट वंशीय नोढ़ा ने ,, ,,
४—कुर्चपुरा से तप्तभट्ट गौत्रीय फुँवा ने ,, ,,
५—चन्द्रावती से मंत्री रणधीर ने श्री सम्मेत शिखरजी ,,
६—डाबरेल नगर से श्रेष्टी वर्य्य नोंधण ने श्री शत्रुंजय का ,,
७—तक्षिला से भाद्रगौत्रीय जावड़ा ने ,, ,,
८—नागपुर से अदित्यनाग० देदा ने ,, ,,
९—नारदपुरी से कुमट गौ० सारंग ने ,, ,,
१०—सालीपुर से चिंचट गौ० सलखण ने ,, ,,
११—हर्षपुरा से वलाह गौ० हरपाल ने ,, ,,
१२—कोरंटपुर से श्रीमाल० रावल ने ,, ,,
१३—शिवपुरी से प्राग्वट दूधा ने श्री सम्मेत शिखर का ,,

आचार्य रत्नप्रभसूरि एक महान् प्रभाविक आचार्य हुये हैं आपका विहार क्षेत्र बहुत ही विशाल था। कुनाल से लगाकर महाराष्ट्रीय प्रान्त तक आपने भ्रमण किया था आपश्री के साधु साध्वी तो सब प्रान्तों में भ्रमण कर धर्म प्रचार करते थे। आचार्यश्री ने अपने जीवन में कई पाँचसो नरनारियों को दीक्षादी थी और हजारों लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये अतः आपश्री का जैन समाज पर महान उपकार हुआ है। ऐसे जैनधर्म के रक्षक पोषक एवं वृद्धक महात्माओं के चरणों में कोटि कोटि नमस्कार हो।

श्रेष्टिकुल शृंगार अनोपम, पारस के अधिकारी थे।
रत्नप्रभसूरि गुण भूरि, शासन में यशधारी थे॥
योगविद्या में थी निपुणता, पढ़ने को कई आते थे।
अजैनों को जैन बनाये, जिनके गुण सुर गाते थे॥

॥ इति श्रीभगवान् पार्श्वनाथ के २१ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये॥

जब सन्यासीजी अपने आसन पर बैठे तब धर्मसी ने पूछा कि महात्माजी इनके अलावा आप आत्मकल्याण की विद्या भी जानते हैं मैं उसको ही चाहता हूँ, सन्यासीजी ने कहा कि आत्मकल्याण के लिये केवल एक ही साधन है और वह है ब्रह्मचर्य्यव्रत यदि मनुष्य ४० वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करता है वह वचनसिद्धि को प्राप्त कर लेता है इत्यादि ब्रह्मचर्य्य का महात्म्य बतलाते हुये कहा:—

मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारी दृढव्रताः । ते संसार समुद्रस्य पारं गछन्ति सुव्रताः ॥
ब्रह्मचर्येण शुद्धस्य सर्वभूतहितस्य च । पदे पेदे यज्ञफलं प्रस्थितस्य युधिष्ठिर ! ॥
एकरात्र्युषितस्यापि यागतिर्ब्रह्मचारिणः । न सा शक्रसहस्रेण वक्तुं शक्या युधिष्ठिरः ॥
ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां धर्मचारिणाम् । ब्रह्मचर्यस्य भङ्गेन व्रताः सर्वे निरर्थकाः ॥
समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौका प्रकीर्तिता। संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य्यं प्रकीर्तितम् ॥
ये तपश्च तपस्यन्ति कौमाराः ब्रह्मचारिणः । विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥

इसके अलावा घर में रहे हुये गृहस्थ को भी ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये सन्तान की इच्छा वालों को भी ऋतुकाल वर्ज के सदैव ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये—

ऋतुकाले व्यतिक्रान्ते यस्तुसेवेत मैथुनम् । ब्रह्महत्याफलं तस्य सूतकं च दिने दिने ॥
ग्रहणेऽप्यथ संक्रान्तावमावास्यां चतुर्दश्याम् । नरश्चाण्डालयोनिः स्यात्तैलाभ्यङ्गेस्त्रीसेवने ॥
अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासी चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यगस्पृशी स्नातको द्विजः १ ॥

इत्यादि सन्यासीजी ने ब्रह्मचर्य्यव्रत पर खूब ही प्रकाश डाला ।

धर्मसी ने सोचा कि जिस मजहब के देव कामातुर और गुरु ऋतुदान देने वाले है । उस धर्म में ब्रह्मचर्य्य के इस प्रकार गुण गाये जाते हों यह असंभव सी बात है पर यह वस्तु किसी अन्य धर्म से ली गई हो ऐसा संभव होता है । खैर धर्मसी वहां से उठकर जैन साधुओं के पास आया और पूछा कि जैनधर्म में ब्रह्मचर्य्य का महत्त्व किसी ग्रन्थ में बतलाया है ? मुनिराज ने कहा धर्मसी एक ग्रन्थ में ही क्यों पर सैकड़ों ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य्य का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है और वह भी केवल कहने मात्र का नहीं पर मल्लीनाथ, नेमिनाथ तथा जम्बू और वज्रस्वामी आजीवन ब्रह्मचारी रहे । इतना ही क्यों पर जैनधर्म में ब्रह्मचर्य्यव्रत के रक्षणार्थ ऐसे सख्त नियम बनाये हैं कि जैसे—

जं विवित्तमणाइन्नं, रहिअं थीजणेण य । बंभचेरस्सरक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए ॥
मणपल्हायजणणिं, कामराग विवड्ढणिं । बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥
समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं । बंभचेररओ भिक्खू, णिचसो परिवज्जए ॥
अंग-पचंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं । बंभचेररओ थीणं, चक्खुगेज्झं विवज्जए ॥
कूइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय कंदियं । बंभचेररओ थीणं, सोयगेज्झं विवज्जए ॥
हासं खिड्डं रतिं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य । बंभचेररओ थीणं, नाणुचिंते कयाइवि ॥
पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं । बंभचेररओ भिक्खू, णिचसो परिवज्जए ॥

इस लेख में जिस गौत्र का नाम आइच्चणाग लिखा है यह प्राकृत रूप है और इसी आइच्चणाग का रूपान्तर संस्कृत आदित्यनाग नाम लिखा है। इसके लिये निम्न शिला लेख

"सं० १५१४ वर्षे मार्ग शीर्ष सुद १० शुक्रे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गौत्रे सा० गुणधर पुत्र सा० डालण भा० कपुरी पुत्र सा० क्षेमपाल भ० जिणदेवाइ पु० सा० सोहिलेन भ्रातृ पासदत देवदत्त भार्य नानू युगतेन पित्रोः पुण्यार्थं श्री चन्द्रप्रभ चतुर्विंशति पट्टकारितः प्रतिष्ठितः श्री उपकेश गच्छे ककुदाचार्य संताने श्री कक्कसूरिभिः श्रीभट्टनगरे—

बाबू पूर्णचन्द्जी सं० शि० प्र० पृष्ट १३ लेखांक ५०

उपरोक्त आइच्चणाग और आदित्यनाग गौत्र लिखा है ये दोनों एक ही हैं इन गौत्रों की एक शाखा चोरडिया-चोरवेडिया है और निम्नलिखित शिलालेखों में भी ऐसा ही लिखा है देखिये शिलालेख—

"सं० १५६२ व० वै० सु० १० र वौ उकेश ज्ञातौ श्री आदित्यनाग गौत्रै चोरवेडिया शाखायां व० डालण पुत्र रत्नपालेन सं० श्रीवत व० धघुमल्ल युक्तेन मातृ पितृ श्रेय श्रीसंभवनाथ विंबं का० प्र० उपकेश गच्छे कुकुदाचार्ये० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः

बा० पू० सं० शि० प्र० पृष्ठ ११७ लेखांक ४९६

आगे आदित्यनाग गौत्र और चोरडिया शाखा किस गच्छ के उपासक हैं वह भी देखिये—

"सं० १५१९ वर्षे ज्येष्ट वद ११ शुक्रे उपकेश ज्ञातीय चोरवेडिया गौत्रे उपशगच्छे सा० सोमा भा० धनाइ० पु० साधु सोहागदे सुत ईसा सहितेन स्व श्रेयसे श्री सुमतिनाथ विंबंकारिता प्रतिष्टितं श्री कक्कसूरिभिः सीणिरा वास्तव्यं

लेखांक ५५७

इस लेख में चोरडिया जाति उएस-उपकेश गच्छ की बतलाई है

उपरोक्त चार शिलालेख स्पष्ट बतला रहे हैं कि चोरडिया जाति का मूलगौत्र आदित्यनाग है और आदित्यनाग गौत्र की उत्पत्ति नागवंशीय क्षत्रीवीर आदित्यनाग के नाम से हुई है आदित्यनाग को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपदेश देकर जैन बनाया था तत्पश्चात् आदित्यनाग ने श्रीशत्रुंजयतीर्थ की यात्रार्थ विराट संघ निकाला तथा और भी अनेक धर्म कार्य करने से आदित्यनाग की संतान आदित्यनाग के नाम से कहलाने लगी आगे चल कर उन लोगों का आदित्यनाग गौत्रे बन गया और इस गौत्र की इतनी उन्नति एवं आबादी हुई कि चोरडिया गुलेच्छा पारख गादियादि ८४ जातियें बन गई जिसका वर्णन आप आगे चल कर इसी ग्रन्थ में पढ़ सकोगे—

आदित्यनाग गोत्र आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन संघ के १८ गोत्रों में से एक है। प्राकृत के लेखकों ने आदित्यनाग को, अइच्चणाग' भी लिखा है जो ऊपर के शिलालेखों में दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। आदित्यनाग गोत्रिय आमदेव निंबदेव के लघु भ्राता भैंसाशाह हुआ जिसने वि० सं० २०९ में श्रीशत्रुंजय का विराट् संघ निकाल के यात्रा की थी। हाँ, इस अदित्यनाग गोत्र की चोरडिया शाखा में भैंसा नाम के चार पुरुष हुये हैं और चारों ही धर्मज्ञ एवं दानेश्वरी हुये हैं पर कितनेक वंशावलिकारों ने एवं लेखकों ने तीसरे भैंशाशाह के साथ घटी घटना को पहिले भैंसाशाह के साथ जोड़ देने की भूल की है और

रोग कौन मिटाना नहीं चाहता था नगर के तमाम बीमार सुदर्शन के वहां आने लगे इससे घबरा कर सुदर्शन ने सुबह की टाइम मुकर्रर करदी कि सब लोग सुबह आकर मकान के नीचे खड़े हो जायं तब सुदर्शन दरवाजा खोल सबकी ओर दृष्टि प्रसार करे कि सबका रोग चला जाय ज्यों ज्यों इस बात की मालुम होती गई त्यों त्यों बीमारों की संख्या बढ़ती गई। केवल चन्द्रपुर ही नहीं पर आस पास के ग्रामों के बीमार भी आने लगे। नगर में जहां देखो वहां सुदर्शन की प्रशंसा हो रही थी अच्छे २ आदमी कह रहे थे कि ब्रह्मचारी पुरुषों की देवता सेवा कर रहे हैं सब सुदर्शन तो ब्रह्मचारी के साथ सत्य व्यक्त है इसके लिये तो कहना ही क्या है ? इस प्रकार सब नगर वालों को इस बात की खुशी थी परन्तु नगर के वैद्य हकीम कि जिन्हों की आजीविका केवल बीमारों की चिकित्सा पर ही थी उन्हों की आमद बन्द हो जाने से वे सख्त नाराज थे उन्होंने ऐसा उपाय सोचा कि इस सुदर्शनका ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जाय तो अपना रुजगार खुला हो जाय। अहा-हा दुष्ट मनुष्य अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये कहां तक अनर्थ करने को तैयार हो जाते हैं यदि वे वैद्य वगैरह अन्य प्रकार से उद्यम करते तो भी उन लोगों का गुजारा हो सकता पर उन लोगों को अन्य कोई उपाय नहीं सूझा। अतः उन्होंने अपनी दुर्वुद्धिसे कई उपाय सोचा आखिर उन्होंने किसी अन्य नगर से एक धूर्त वैश्या को लाकर उसको लोभ देकर कहा कि तुम इस सुदर्शन का ब्रह्मचर्य नष्ट कर दे तो तुमको पुष्कल द्रव्य दिया जायगा। लोभ जगत में बुरी बलाय हुआ करता है संसार में ऐसा कौनसा अनर्थ है कि लोभी नहीं करा सके ? वैश्या ने स्वीकार कर लिया और उसके उपाय सोचने लगी कि सुदर्शन से मिलाप कैसे हो सके और यह किस पर विश्वास रखता है तलाश करने पर मालूम हुआ कि धर्मी पुरुषों के साथ इसका विश्वास है वैश्या कपट बुद्धि से धार्मिक विधान का अभ्यास कर धार्मिक उपकरण वगैरह पास में रखने लगी। एक दिन वैश्या खूब जेवर सुन्दर वस्त्र पहन कर सवारी करके सेठजी के मकान पर मुसाफिर की तौर आई सेठ पुरंदर ने उसका स्वागत करके पूछा कि आप कौन हैं कहां से और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ? कपटी धर्मज्ञ ने उत्तर दिया कि मैं शंखपुर नगर के दत्त सेठ की लड़की बाल विधवा श्रीमति नाम की श्राविका हूँ। तीर्थ यात्रार्थ गई थी रास्ते में सुना कि एक महान् धर्मीष्ट बाल ब्रह्मचारी सुदर्शन सेठ है कि जिसके दर्शन मात्र से रोगियों का रोग चला जाता है अत' दर्शन की गर्ज से मैं आई हूँ मुझे जल्दी से दर्शन करवा दें मेरे नौकर चाकर सब नगर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं और मुझे जल्दी से जाना है ? सेठजी ने बड़े सेठ की पुत्री तथा धर्मीष्ट जानकर एक कमरे में उसे ठहरादी और भोजन के लिये कहा उत्तर में धूर्त वैश्या ने कहा कि आज मेरा व्रत है अतः मैं भोजन नहीं करूँगी कृपा कर कुँवर साहब का दर्शन करवा दीजिये। सेठजी ने जाकर सुदर्शन से कहा कि एक धर्मीष्ट बहिन तेरा दर्शन करना चाहती है और उसको वापिस जाने की बहुत जल्दी है अतः तुम दर्शन दे दो। सुदर्शन ने कहा पिताजी मैं किसी औरत को देखना नहीं चाहता हूँ। पिता ने जाकर कह दिया कि अभी दर्शन नहोगा इस पर धूर्त वैश्या ने रोना शुरू कर दिया कि मैं कैसी अभाग्यनी हूँ कि एक उत्तम पुरुष का दर्शन तक नहीं कर सकी इत्यादि इस पर सेठजी को रहम आगया और जाकर बेटा को जोर देकर कहा कि मैं पास में खड़ा हूँ मेरे कहने से ही तुम इस धर्मज्ञ बहिन को दर्शन दे दें। बस पिताजी उस कुपात्र को ले आये उसने दर्शन करते ही ऐसा कटाक्ष का बाण चलाया कि सुदर्शन पर उसका बुरा असर हुआ जब दर्शन कर वैश्या जाने लगी तो सुदर्शन ने कहा कि तुम ठहरो कुछ तीर्थ की बातें करनी हैं। बस फिर तो था ही क्या पिताजी

# २२—आचार्य श्री यक्षदेवसूरि ( चतुर्थ )

रत्नं सुंचित वंश मध्य सुमतो यो यक्षदेव स्तुतः ।
ज्ञानापार महोदधिः सुगदितो मुख्योऽभवद्ग्रन्थकृत् ॥
साहित्यस्य विचार चारु सरणा वग्रे मतः सर्ववित् ।
मोक्षेच्छनयमादिशत् सुसरलं मार्गं सुवन्द्यस्ततः ॥

आचार्य श्री यक्षदेवसूरीश्वर महाप्रतिभाशाली एवं जैनधर्म के एक धुरंधर आचार्य हुये हैं। आप श्रीमान् आजीवन ब्रह्मचारी थे। अंबा पद्मा छूपत्ता और विजय एवं चार देवियां हमेशा आपकी सेवा करती थी आप वचनसिद्धि आदि अनेक लब्धियों और कई चमत्कार विद्याओं से विभूषित थे। कई राजा महाराजा आपके चरण कमलों की सेवा करते थे। आपका जीवन पूर्ण रहस्यमय था। पट्टावलीकारों ने लिखा है कि आप सत्यपुर नगर के सुचन्ति गोत्र के दानवीर लाखण की सुशीला भार्या मांगी के धर्मसी नाम के लाड़ले पुत्र रत्न थे। आपकी बालक्रीड़ा एक होनहार प्रचण्ड प्रतापी पुरुषोंचित थी। विनयगुण और धार्मिक संस्कार तो आपके घराने में शुरू से ही चले ही आरहे थे। अतः धर्मसी के लिये इन गुणों के प्राप्त करने के लिये किसी अध्यापक की आवश्यकता ही नहीं थी। माता पिता ही उनके अध्यापक थे।

शाह लाखण के सात भाई और सात पुत्र थे और कई नगरों में आपकी दुकानें भी थी तथा विदेशियों के साथ आपका विशाल व्यापार था। एक दुकान आपकी जावाद्वीप में भी थी। व्यापार में आपने करोड़ों द्रव्य पैदा किया था। शाह लाखण जैसे द्रव्य पैदा करने में चतुर व्यापारी था। वैसे ही न्यायोपार्जित द्रव्य व्यय करने में भी कुशल था। जो कार्य करता था वह दीर्घ दृष्टि एवं सद्विचार से ही करता था और शुभकार्य में उदारतापूर्वक लक्ष्मी का सदुपयोग भी किया करता था। आपने उपाध्याय पद्महंस के उपदेश से सत्यपुर में भगवान् पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर उसमें ४१ अंगुल के प्रमाणवाली भगवान् पार्श्वनाथ की सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई तथा श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला और चांदी का थाल सोने की कटोरी में पांच पांच मुद्रिकायें साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी इत्यादि इन शुभ कार्य्यों में शाह लाखन ने एक करोड़ द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्जन किया जिससे शाह लाखन की उज्ज्वल कीर्ति चारों ओर फैल गई थी।

एक समय सत्यपुर के उद्यान में एक सन्यासी आया था और वह बाल ब्रह्मचारी होने से उसके पास कई विद्यायें भी थी जिसका चमत्कार दिखा कर जनता को अपनी ओर आकर्षित किया करता था। 'चमत्कार को नमस्कार' इस युक्ति से जनता में सन्यासीजी की बहुत महिमा फैलगई।

एक समय धर्मसी अपने साथियों के साथ सन्यासीजी के पास चला गया और सन्यासीजी को देखा कि कभी सिंह तो कभी सर्प कभी मयूर तो कभी गरुड़ बन जाते हैं। कभी स्थानान्तर तो कभी आकाशगमन, कभी मिष्टान्न का ढेर तो कभी रुपयों का ढेर लगा कर आये हुये लोगों को संतुष्ट कर रहे हैं।

शाह लाखण ने कहा पूज्यवर ! यह सोलहवर्ष का लड़का दीक्षा में क्या समझता है ? सूरिजी ने कहा लाखण ! जो होनहार होता है वह बालक ही होता है। कारण, एक तो धर्मसी बालब्रह्मचारी और दूसरे इस वय में दीक्षा लेगा तो ज्ञानाभ्यास भी विशेष करेगा। अतः तेरे सात पुत्र हैं जिसमें एक पुत्र जिनशासन के उद्धार के लिये भी दे तो इसमें कौन सी बात है ?

लाखण ! इस संसार में जन्म लेकर अनेकों जीव यों ही मर गये हैं। उनको कोई याद भी नहीं करता है। तब तेरा पुत्र दीक्षा लेकर जगत का उद्धार करेगा इसका सब श्रेय तेरे को ही है। भला यह तो धर्मसी की भावना है पर दूसरे तेरे इतने पुत्रादि परिवार हैं किसी को जाकर पूछ कि कोई दीक्षा लेने को तैयार है ? अतः इस कार्य्य के लिये तुमको थोड़ा भी विलम्ब करना उचित नहीं है। और न मोह ममत्व के वश अन्तराय कर्म बन्ध ने की ही जरूरत है—

शाह लाखण समझ गया कि धर्मसी की इच्छा दीक्षा लेने की है और सूरिजी की इच्छा दीक्षा देने की है। यदि मैं इन्कार भी करूंगा तो मेरी कुछ चलने की नहीं है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य करना ही अच्छा है। सूरिजी को वंदन कर लाखण अपने घर आया और धर्मसी को बहुत समझाया कि बेटा ! दीक्षा का पालना बहुत कठिन है और तेरे से दीक्षा पलनी भी मुश्किल है अतः तू घर में रह कर ही आत्मकल्याण कर। धर्मसी ने कहा कि हां, पिताजी दीक्षा का पालना जरूर कठिन है पर वह मेरे लिये नहीं किन्तु कायरों के लिये है। सूरवीर तो आज भी हजारों मुनि दीक्षा पालन करते है। आप मुझे दीक्षा दिला कर देखिये मैं दीक्षा पालन कर सकता हूँ या नहीं ? इत्यादि बहुत जवाब सवाल हुये आखिर शाह लाखण ने निश्चय कर लिया कि धर्मसी दीक्षा अवश्य लेगा। अतः उसने जिनमन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सवादि दीक्षा का बड़े ही धामधूम से महोत्सव करवाया।

दीक्षा लेनेवाला केवल एक धर्मसी ही नहीं था पर इनके साथ इनके कई साथियों ने भी दीक्षा लेने का निश्चय कर रक्खा था फिर भी सूरिजी का व्याख्यान इसी विषय पर होता था तो कई १८ नरनारियों ने दीक्षा की तैयारी करली। अहाहा ! पहिले जमाने के लोग कैसे लघु कर्मी थे कि वे एक को देख दूसरे भी धर्म करने को तैयार होजाते थे जैसे आज पापकर्म में एक की देखा देखी दूसरे करने को तैयार होजाते हैं वैसे ही पहिले जमाने में धर्म करनी के लिये होता था। यह सब पूर्व संचित कर्मों का उदय एवं क्षयोपसम का ही कारण है।

ठीक शुभ मुहूर्त में सूरिजी महाराज ने उन मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देदी जिसमें धर्मशी का नाम 'धर्ममूर्ति' रख दिया ! बस धर्ममूर्ति अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत के लिये निर्भय बन गया और ज्ञानभ्यास करने में अहर्निश परिश्रम करने में लग गया। धर्ममूर्ति ने पूर्व जन्म में ज्ञानदद की एवं सरस्वती देवी की आराधना की थी और इस भव में भी देवी सरस्वती की आप पर पूर्ण कृपा थी कि वह बिना किसी अनुष्ठान के किये ही स्वयं देवी सरस्वती वरदाई होगई थी। फिरतो कहना ही क्या था मुनि धर्ममूर्ति वर्त्तमान साहित्य का धुरंधर पण्डित होगया।

आप इतने विशाल विद्वान होने पर भी गुरुकुलवास में रहते थे और इसमें ही अपना गौरव एवं कर्त्तव्य समझते थे। पूर्व जमाने में गुरुकुल वास का बड़ा भारी महत्त्व था और वर्षों तक वे गुरुसेवा में रहते थे तब ही तो वे सर्व प्रकार की योग्यता हांसिल कर गुरु पद को सुशोभित करते थे और आचार्य महा-

धम्मलद्धं मिअं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं । नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ॥
विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं । बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ॥
सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य । पंचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए ॥

तथा ब्रह्मचारियों के लिये निम्नलिखित बातें दूषण रूप बतलाई हैं तथा इन नियमों से आप समझ सकते हो कि जैनधर्म में ब्रह्मचर्य का कितना महत्व है और इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्मचारी पुरुषों को देवता भी नमस्कार करते हैं । यथा—

सुखशय्यासनं वस्त्रं, ताम्बूलं स्नानमर्दनम् । दन्तकाष्टं सुगन्धं च, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥ ३७ ॥
शृंगारमदनोत्पादं, यस्मात्स्नानं प्रकीर्तितम् । तत्स्मात्स्नानं परित्यक्तं, नैष्ठिकैर्ब्रह्मचारिभिः ॥ ३८ ॥
देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा । बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥
नैष्टिकं ब्रह्मचर्यं तु, ये चरन्ति सुनिश्चिताः । देवानामपि ते पूज्यः, पवित्रं मङ्गलं तथा ॥ ४० ॥
शीलानामुत्तमं शीलं, व्रतानामुत्तमं व्रतम् । ध्यानानामुत्तमं ध्यानं, ब्रह्मचर्यं सुरक्षितम् ॥ ४१ ॥

महानुभावों ! ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों का राजा है सब व्रतों से इस व्रत का पालना दुष्कर है धन्य है स्थुलभद्र को कि जिस वेश्या के साथ बारह वर्ष रंग राग में रहे फिर उसी के वहां चतुर्मास कर अपनी परीक्षा दी । धन्य है सेठ सुदर्शन को कि इस व्रत की रक्षा के लिये शूली को स्वर्ग समझ कर हंसता २ शूली चढ़ गया । धन्य है माता धारणी को कि ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा के लिये जिभ्या निकाल कर प्राणों की आहुती दे दी । इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण हैं—जो कई व्यक्ति त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करता है उसके दर्शन मात्र से जनता के पाप क्षय हो जाते हैं इतना ही क्यों पर ब्रह्मचारी पुरुष के दर्शन से रोगियों का रोग भी नष्ट हो जाता है जैसे कि चन्द्रपुर नगर में एक पुरंधर नाम का धनाढ्य सेठ बसता था उसके सुदर्शन नाम का पुत्र था किसी महारमाजी के व्याख्यान में ब्रह्मचर्य व्रत का महात्म्य सुनकर उसने प्रतिज्ञा करली कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालूंगा इस महान व्रत के साथ सुदर्शन सत्य वचन बोलने का भी नियम ले लिया कि मैं कभी असत्य नहीं बोलूंगा । इन दोनों व्रतों की रक्षा के लिये सुदर्शन अपने मकान के एक एकान्त कमरा में रहने लगा जिसमें स्त्रियों के लिये तो वह किसी का मुंह देखना भी नहीं चाहता था इस प्रकार सुदर्शन अपने व्रतों का सुखपूर्वक पालन कर रहा था ।

एक समय नगर के बाहर एक तापस आया बहुत से लोग उसके दर्शन करने को गये एक कुष्टी भी वहां गया और तापस के चरणों में नमस्कार करके अपने कुष्ट रोग मिटाने की प्रार्थना की ? इस पर तपस्वी ने कहा कि यदि तू सुदर्शन के दर्शन करले तो उसके दर्शनमात्र से तेरा सर्व रोग चला जायगा । बस फिर तो कुष्टी क्या चाहता था कुष्टी चल कर सेठजी के द्वार पर आया और प्रार्थना करने लगा कि हे महापुरुष कृपा कर इस कुष्टी को एक बार दर्शन दीजिये ? यह महोपकार का काम है मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा । इत्यादि परन्तु सुदर्शन ने इस पर ध्यान नहीं दिया जब सुदर्शन के पिता को दया आ गई और जाकर अपने पुत्र को आग्रह के साथ कहा अतः पिता के कहने से सुदर्शन ने मकान की एक बारी खोल कर कुष्टी के सामने देखा तो कुष्टी का रोग चला गया जिससे जनता को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और नगर भर में सुदर्शन की महिमा फैल गई अब तो थोड़ा ही दर्द क्यों न हो पर बिना पैसा बिना परिश्रम से अपना

शाह लाखण ने कहा पूज्यवर ! यह सोलहवर्ष का लड़का दीक्षा में क्या समझता है ? सूरिजी ने कहा लाखण ! जो होनहार होता है वह बालक ही होता है। कारण, एक तो धर्मसी बालब्रह्मचारी और दूसरे इस वय में दीक्षा लेगा तो ज्ञानाभ्यास भी विशेष करेगा। अतः तेरे सात पुत्र हैं जिसमें एक पुत्र जिनशासन के उद्धार के लिये भी दे तो इसमें कौन सी बात है ?

लाखण ! इस संसार में जन्म लेकर अनेकों जीव यों ही मर गये हैं। उनको कोई याद भी नहीं करता है। जब तेरा पुत्र दीक्षा लेकर जगत का उद्धार करेगा इसका सब श्रेय तेरे को ही है। भला यह तो धर्मसी की भावना है पर दूसरे तेरे इतने पुत्रादि परिवार हैं किसी को जाकर पूछ कि कोई दीक्षा लेने को तैयार है ? अतः इस कार्य्य के लिये तुमको थोड़ा भी विलम्ब करना उचित नहीं है। और न मोह ममत्व के वश अन्तराय कर्म बन्ध ने की ही जरूरत है—

शाह लाखण समझ गया कि धर्मसी की इच्छा दीक्षा लेने की है और सूरिजी की इच्छा दीक्षा देने की है। यदि मैं इन्कार भी करूंगा तो मेरी कुछ चलने की नहीं है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य करना ही अच्छा है। सूरिजी को वंदन कर लाखण अपने घर आया और धर्मसी को बहुत समझाया कि बेटा ! दीक्षा का पालना बहुत कठिन है और तेरे से दीक्षा पलनी भी मुश्किल है अतः तू घर में रह कर ही आत्मकल्याण कर। धर्मसी ने कहा कि हां, पिताजी दीक्षा का पालना जरूर कठिन है पर वह मेरे लिये नहीं किन्तु कायरों के लिये है। सूरवीर तो आज भी हजारों मुनि दीक्षा पालन करते है। आप मुझे दीक्षा दिला कर देखिये मैं दीक्षा पालन कर सकता हूँ या नहीं ? इत्यादि बहुत जवाब सवाल हुये आखिर शाह लाखण ने निश्चय कर लिया कि धर्मसी दीक्षा अवश्य लेगा। अतः उसने जिनमन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सवादि दीक्षा का बड़े ही धामधूम से महोत्सव करवाया।

दीक्षा लेनेवाला केवल एक धर्मसी ही नहीं था पर इनके साथ इनके कई साथियों ने भी दीक्षा लेने का निश्चय कर रक्खा था फिर भी सूरिजी का व्याख्यान इसी विषय पर होता था सो कई १८ नरनारियों ने दीक्षा की तैयारी करली। अहाहा ! पहिले जमाने के लोग कैसे लघु कर्मी थे कि वे एक को देख दूसरे भी धर्म करने को तैयार होजाते थे जैसे आज पापकर्म में एक की देखा देखी दूसरे करने को तैयार होजाते हैं वैसे ही पहिले जमाने में धर्म करनी के लिये होता था। यह सब पूर्व संचित कर्मों का उदय एवं क्षयोपसम का ही कारण है।

ठीक शुभ मुहूर्त में सूरिजी महाराज ने उन मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देदी जिसमें धर्मशी का नाम 'धर्ममूर्ति' रख दिया ! बस धर्ममूर्ति अपने ब्रह्मचर्य व्रत के लिये निर्भय बन गया और ज्ञानभ्यास करने में अहर्निश परिश्रम करने में लग गया। धर्ममूर्ति ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद की एवं सरस्वती देवी की आराधना की थी और इस भव में भी देवी सरस्वती की आप पर पूर्ण कृपा थी कि वह बिना किसी अनुष्ठान के किये ही स्वयं देवी सरस्वती वरदाई होगई थी। फिरतो कहना ही क्या था मुनि धर्ममूर्ति वर्त्तमान साहित्य का धुरंधर पण्डित होगया।

आप इतने विशाल विद्वान होने पर भी गुरुकुलवास में रहते थे और इसमें ही अपना गौरव एवं कर्त्तव्य समझते थे। पूर्व जमाने में गुरुकुल वास का बड़ा भारी महत्व था और वर्षों तक वे गुरुसेवा में रहते थे तब ही तो वे सर्व प्रकार की योग्यता हासिल कर गुरु पद को सुशोभित करते थे और आचार्य महा-

के जाने के बाद सुदर्शन का रत्न लुटा गया और वैश्या रफूचक्कर हो गई । दूसरे दिन जब बीमार आये तो सुदर्शन ने दरवाजा नहीं खोला और कहला दिया कि अब मेरे अन्दर वह गुण नहीं रहा है कि जिससे आप लोगों का रोग चला जाता था अर्थात् माया कपटाई रहित सत्य बात थी वह सबके सामने कह दी । फिर भी लोगों ने अति आग्रह किया जिससे सुदर्शन ने दरवाजा खोला तो भी बीमारों का आधा रोग चला गया अर्थात् जो रोग एक दिन में जाता था वह दो दिनों में जाना लगा । सुदर्शन ने सोचा कि यदि मैं पहले से ही दीक्षा ले लेता तो आज मेरा यह दिन नहीं आता खैर अब भी दीक्षा लेना अच्छा है सुदर्शन ने माता पिता की आज्ञा लेकर मुनिराज के पास दीक्षा लेली । मुनिराज श्री ने धर्मसी को ब्रह्मचर्य का महात्म्य पर उदाहरण सुना कर केवल धर्मसी पर ही नहीं पर उपस्थित जनता पर ब्रह्मचर्य एवं सत्य का अच्छा प्रभाव डाला जिसमें धर्मसी की इच्छा तो केवल जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करना ही क्यों । पर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की होगई ।

इत्यादि मुनिराज का उपदेश सुनकर धर्मसी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत पालूँगा और जल्दी दीक्षा धारण कर लूँगा । यह बात क्रमशः शाह लाखण के कानों तक पहुँची तो शाह लाखण ने धर्मसी की शादी जल्दी कर देने का विचार कर लिया पर जब धर्मसी को इस बात का पता लगा तो उसने साफ शब्दों में कह दिया कि मैंने तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा करली है और मेरी इस प्रतिज्ञा को मनुष्य तो क्या पर देवता भी भंग नहीं कर सकता है । शाह लाखण बड़े ही विचार में पड़ गया कि अब इस धर्मसी को कैसे समझाया जाय ।

इधर आचार्य रत्नप्रभसूरि भू भ्रमण करते हुये सत्यपुर नगर में पधार गये श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया । शाह लाखण सूरिजी का परम भक्त श्रावक था । एक दिन सूरिजी से अर्ज की कि प्रभो ! धर्मसी अभी बालक है इसकी शादी करनी है पर इसने किसी की बहकावट में आकर हट पकड़ लिया है कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करूँगा इसकी मुझे बड़ी भारी दुविधा लगी हुई है कि अब मैं क्या करूं ? सूरिजी ने कहा लाखण यदि धर्मसी सच्चे दिल से ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता है तब तो तेरा अहोभाग्य है । फिर कभी समय मिलने पर मैं इसकी परीक्षा कर लूँगा ।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य मय होता था जो धर्मसी को विशेष रुचिकर था । एक दिन धर्मसी ने सूरिजी के पास जाकर अर्ज की कि हे प्रभो ! मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की तो प्रतिज्ञा करली है पर अब मेरे माता पिता मुझे कई प्रकार से तंग कर रहे हैं । अतः मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरण कमलों में दीक्षा लेकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँ ।

सूरिजी ने कहा धर्मसी ये तो सोने में सुगन्धवाली कहावत को तू चरितार्थ करता है । अगर तू ने ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली है तब तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने को दीक्षा लेना ही अच्छा है और निरतिचारव्रत तब ही पालन हो सकेगा । फिर भी सूरिजी ने धर्मसी की कई प्रकार से परीक्षा करली जिसमें धर्मसी एक योग्य एवं होनहार ही पाया गया अतः सूरिजी ने लाखण को बुलाकर कह दिया कि मैंने धर्मसी की ठीक परीक्षा करली है यह एक तुम्हारे कुल में अमूल्य रत्न है । यह केवल ब्रह्मचर्य्यव्रत ही पालन करना नहीं चाहता है पर इसकी इच्छा तो दीक्षा लेने की है । यदि यह दीक्षा लेगा तो जैनधर्म का उद्धार करने वाला एक प्रभाविक पुरुष होगा इत्यादि ।

ये स्त्रीजंघोरुसंस्पृष्टाः काम गृध्राश्च ये द्विजाः । ये चरित्रोधमा भ्रष्टाः तेऽपि शूद्रा युधिष्ठिर ॥ २४ ॥
यस्तु रक्तेषु दन्तेषु, वेद मुच्चरते द्विजः । अमेध्यं तस्य जिह्वाग्रे, सूतकं च दिने दिने ॥ २५ ॥
हस्ततलभमाणां तु. यो भूमि कर्षति द्विजः । नश्यते तस्य ब्रह्मत्वं, शूद्रत्वं स्त्रीमजायते ॥ २६ ॥
अव्रतानामशीलानां, जातिमात्रोपजीविनां । सहस्रमुचितानां तु, ब्रह्मत्वं नोपजायते ॥ २७ ॥
हिंसकोऽनृतवादीच, यः चौर्योपरतश्च तु । परदारोपसेवीच , सर्वे ते पतिता द्विजाः ॥ ३० ॥
गोविक्रियास्तु ये विप्रा, ज्ञेयास्ते मातृविक्रियाः । तैर्हि देवाश्च वेदाश्च, विक्रीता नात्र संशयः ॥ ३१ ॥
खरो द्वादशजन्मानि, षष्टिजन्मानि शूकरः । श्वानः सप्ततिजन्मानि, इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३२ ॥

अब जरा जैनधर्म के सिद्धान्त को भी सुन लिजिये

नवि मुंडिएण समणो, न ॐकारेण बंभणो, न मुणीरण्ण वासेणं कुस चिरेण तावसो ॥
समयाए समणो होइ, बंभचेरण बंभणो नाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ । वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दोहोइउ कम्मुणा ॥

अर्थात न केवल सिर मुंडाने से साधु होता है न ॐकार का जाप करने से ब्राह्मण ही होता है न केवल वनवास करने से मुनि होता है और न कुशाचिवर धारण करने से तपस्वी कहलाता है किन्तु राग द्वेष रहित साम्य भाव से साधु ब्रह्मचर्य्य पालन करने से ब्राह्मण, ज्ञान पढ़ने से मुनि और तप करने से तपस्वी

महानुभावो ! जीव के न तो कोई वर्ण है और न कोई जाति है परन्तु वर्ण जाति कर्म के पीछे है जैसे जो जीव शूद्र कर्म करते हैं वह शूद्र कहलाते हैं और ब्रह्मकर्म करने वाले ब्राह्मण कहलाते हैं । अतः जगत से पूजा पाने की अभिलाषा वालों को चाहिये कि वे पूज्यत्व के गुण पैदा करें फिर कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती है जनता स्वय पूजने लग जाती है ।

इत्यादि सूरिजी के उपदेश का असर उपस्थित जनता पर ही नहीं पर कई महानुभाव ब्राह्मणों पर भी काफी पड़ा और वे कह उठे कि महात्माजी का कहना सत्य है पूजा नाम की नहीं पर गुणों की ही होती है बस जयध्वनी के साथ सूरिजी का व्याख्यान समाप्त हुआ ।

सूरिजी की नगर भर में खूब ही प्रशंसा होने लगी पर यह बात उन दुर्जन ब्राह्मणों को कब अच्छी लगने वाली थी । उन्होंने यह कह कर हुल्लड़ मचाया कि जैन ईश्वर को नहीं मानते हैं जैन वेदों को नहीं मानते हैं अतः जैन नास्तिक हैं और यह बात केवल हम ही नहीं कहते हैं पर पुराण इतिहास देखिये राजा भीमसेन ने जैनियों को अपने नगर से निकाल दिया था फिर चन्द्रसेन ने चन्द्रावती नगरी बसाकर जैनों को स्थान दिया पर आज के राजा हमारी सुनते ही नहीं यही कारण है कि जैनियों का जोर दिन ब दिन बढ़ता जारहा है इत्यादि ।

'वादे वादे जायते तत्त्वम्' ठीक है कई वक्त वाद विवाद तत्वबोध का कारण बनजाता है । आज भीन्नमाल का भी यही हाल होरहा है । ब्राह्मणों के वाद विवाद ने जनता में ठीक जागृति पैदा करदी है। सूरिजी भी अपनी सत्यता पर तुले हुए थे ब्राह्मणों में उस समय दो दल बनगये थे एक दल सत्य के पक्ष में था और उनको सूरिजी के निष्पक्ष वचन अच्छे लगते थे तब दूसरा दल चिरकाल से चली आई रूढ़ियों को आगे रख कर राजा प्रजा पर हुकूमत करना चाहता था ।

राज भी उन शिष्यों की ठीक परीक्षा करके ही अपना उत्तरदायित्व दिया करते थे। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मुनि धर्ममूर्ति को सर्व गुण सम्पन्न जान कर अपनी अन्तिमावस्था में सूरिमंत्र की आराधना करवादी और सूरि-पद से विभूषित बनाकर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया।

आचार्य यक्षवदेसूरि महाप्रभावशाली आचार्य हुये हैं आप बाल ब्रह्मचारी और साहित्य के धुरंधर विद्वान थे। आप कई अलौकिक विद्याओं से विभूषित थे। अपने सोलह वर्ष की किशोर अवस्था में दीक्षा लेकर सोलह वर्ष गुरुकुलवास में रहे और सर्वगुण सम्पादित कर सूरिपद को सुशोभित किया। आप कई राजसभाओं में शास्त्रार्थ में भी विजय हुये थे।

आचायक्षदेवसूरि एक समय विहार करते हुये भिन्नमाल नगर में पधारे आपका व्याख्यान हमेशा होता था और जैन जैनेतर गहरी तादाद में ज्ञानामृत का पान कर रहे थे अतः नगर में आपकी खूब महिमा फैल रही थी पर असहिष्णुता के कारण कई ब्राह्मण लोग उनको सहन नहीं कर सके वे कहने लगे कि जैना-चार्य्य कितने ही विद्वान हों पर वे हमारे तो शिष्य ही हैं अर्थात् हम ब्रह्मणों की बराबरी नहीं कर सकते हैं क्योंकि "ब्राह्मण च जगतगुरु" अर्थात् ब्राह्मण ही सब जगत के गुरु हैं। इस बात को कई श्रावकों द्वारा आचार्यश्री ने सुनी तो आपश्री ने फरमाया कि यदि ब्राह्मणो में गुरुत्व के गुण हों तो जगत को अपना गुरु मानने में क्या हर्ज है। समझदार केवल नामको ही नहीं पर गुणों की पूजा करते हैं देखिये खास ब्राह्मणों के शास्त्र में ब्राह्मणों के लक्षण बतलाये हैं।

सत्यंब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया ब्रह्म एतद्ब्राह्मण लक्षणम् ॥ ३८५ ॥
क्षमादम्मो दया दानं सत्यशील धृतिर्घृ ण। विद्या विज्ञान मास्तिक्य-मेतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥२०॥
मैथुनं ये न सेवंते ब्रह्मचारी दृढ़व्रताः। ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति सुव्रताः ॥ २९ ॥
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचार्यापरिग्रही। कामक्रोध निवृत्तस्तु ब्राह्मणः स युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥
नैष्टिकं ब्रह्मचर्यं तु ये चरन्ति सुनिश्चिताः। देवानामपि ते पूज्याः पवित्रं मङ्गलं तथा ॥ ४० ॥

यदि इन लक्षणों से विपरीत है उसको ब्राह्मण नहीं कहा जाता है देखिये

सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल लक्षणम् ॥३८६॥

यदि कोई शुद्र भी है और ब्राह्मण कर्म करता है तो वह ब्राह्मण ही है देखिये

शद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान्ब्रह्मणो भवेत्। ब्रह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रापत्यसमो भवेत् ॥ ३८३ ॥

सब जातियों में ब्राह्मण एवं चाण्डाल मिलते हैं

सर्वजातिषु चाण्डालाः सर्वजातिषु ब्रह्मणाः। ब्राह्मणेष्वपि चाण्डालाश्चाण्डालेष्वपि ब्राह्मणाः ॥ ३८२ ॥

केवल नाममात्र का ही घमंड हो तो एक कीट का नाम भी इन्द्रगोप होता है

ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः। अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥

केवल वेद पढ़ लेने से ही ब्राह्मण नहीं कहलाते हैं देखिये

चतुर्वेदोऽपि यो भूत्वा चण्डं कर्म समाचरेत्। चण्डालः सतु विज्ञेयो ने वेदास्तत्र करणम् ॥ ३८४ ॥

और भी देखिये

सूरिजी के निडर एवं निष्पक्ष व्याख्यान का प्रभाव जनता पर ही क्यों पर उस सभा में बैठे हुए सम्भावी ब्राह्मणों पर भी काफी पड़ा था। फलस्वरूप कई पन्द्रह सौ ब्राह्मणों ने सूरिजी के चरण कमलों में जैन धर्म स्वीकार कर लिया अतः सूरिजी की विजय और जैन धर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई। आचार्य यक्षदेवसूरि कई अर्से तक भीन्नमाल में विराजमान रहे बाद वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया।

सूरिजी महाराज दिग्वजयी चक्रवर्ती की भाँति सत्यपुर शिवगढ़ वबोली श्रीनगर, जावलीपुर, मेवाणी, करकोली रोजाल, कोरंटपुर, चन्द्रावती, पद्मावती आदि स्थानों में भ्रमण करते अनेक भव्यों को धर्म उपदेश देते हुए लाट प्रांत में पधारे उस समय स्तम्भनपुर में बौद्धाचार्य जयकेतु आया हुआ था और वह अपने बौद्धधर्म का प्रचार के लिये भरसक प्रयत्न भी करता था। श्री संघ ने सुना कि मरुधर से आचार्य यक्षदेव सूरि पधारे हैं। अतः संघ अग्रेश्वरों ने सूरिजी की सेवा में आकर स्तम्भनपुर पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी महाराज ने विशेष लाभ का कारण जान स्तम्भनपुर की ओर विहार कर दिया बस फिर तो था ही क्या जनता का खूब उत्साह बढ़ गया उन्होंने स्वागत के लिए बड़ी २ तैयारियाँ कीं और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश का महोत्सव बड़े ही समारोह के साथ किया। बिचारे क्षणिकवादी बौद्धाचार्य की क्या ताकत थी कि वह स्याद्वाद सिद्धाँत के सामने चण भर भी ठहर सके। एक दिन सूरिजी के कई साधु थंडिले भूमि को जा रहे थे वहाँ बौद्ध भिक्षुओं की भेंट हुई कुछ मत मतान्तर के विषय भी वार्तालाप हुआ पर सूरिजी के साधुओं के सामने वे नतमस्तक हुये अतः उन्होंने सोचा कि यहाँ अपनी चलने की नहीं है एवं यहाँ से रफूचक्कर होना ही अच्छा है बस दूसरे दिन ही बौद्धाचार्य वहां से चल पड़े यह सूरिजी महाराज की दूसरी विजय थी। वह चतुर्मास सूरिजी का स्तम्भनपुर में हुआ जिससे कई प्रकार से धर्म की उन्नति हुई। बाद चतुर्मास के शाह धरण के निकाले हुये संघ के साथ आप श्री ने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की। तत्पश्चात् सौराष्ट्र देश में भ्रमन कर जैनधर्म की उन्नति एवं प्रचार को बढ़ाया तत्पश्चात् आपने वहां से कच्छभूमि को पावन बनाया। कच्छ के रहीड नडिया कोमनपुर कटीला भाद्रेश्वर माडव्यपुर घूरा हापाणादि ग्राम नगरों में विहार करते हुये कच्छ प्रदेश को जागृत किया और तदान्तर आपने सिन्ध धरा में पदार्पण किया। सिन्ध की जनता को प्रथम यक्षदेवसूरि की स्मृति हो रही थी। सिन्ध में आपके बहुत से साधु साध्वियां भी विहार करते थे। आपने डाडोली, मानपुर, शिवनगर, उच्चकोट वीरपुर, डमरेल, रहतनगर, रामपुर आदि नगरों में भ्रमण कर जनता को धर्मोपदेश से जागृत की कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी और कई पतिताचार वालों को जैन बनाये। उस समय सिन्ध प्रान्त में जैनधर्म की अच्छी जाहो जलाली थी। उपकेश गच्छाचार्यों का बार २ आना जाना रहा करता था और आचार्यदेव के आज्ञावृति साधुओं का तो सदैव वहाँ विहार होता ही रहता था। इतना ही क्यों पर बहुत से साधु तो सिन्ध धरा के ही सुपुत्र थे और वह अपनी जन्मभूमि का आसानी से उद्धार भी किया करते थे। आचार्य यक्षदेवसूरि सिन्ध में विहार करने के पश्चात् सीधे ही कुनाल-पंजाब में पधारे वहाँ भी आपके बहुत से साधु साध्वी विहार करते थे। जब सूरिजी का शुभागमन सुना तो पंजाब में एक नई चेतनता उत्पन्न हो गई।

सूरिजी ने कुनाल में घूमते हुये लोहाकोट में चतुर्मास किया और मंत्री नागसैनादि १५ नर नारियों को दीक्षा दी जिसमें नागसैन का नाम मुनि निधानकलस रक्खा। तत्पश्चात् थंडिला आदि की स्पर्शना

दूसरे दिन सूरिजी का खूब जोरदार व्याख्यान हुआ जनता की संख्या हमेशों से बहुत बढ़कर थी राजा प्रजा और राज कर्मचारी भी उपस्थित थे। सूरिजी ने मंङ्गलाचरण में ही ईश्वर को नमस्कार करते हुये फरमाया कि:—हे ईश्वर परमात्मा ? सच्चिदानन्द सर्वज्ञ अक्षय अरूपी सकल उपाधीमुक्त निरंजन निराकार स्वगुण भुक्ता आदि अनंतगुण संयुक्त। हे विभो ! तुम्हारे नाम स्मरणमात्र से हमारे जैसे जीवों का कल्याण होता है अतः तुमको वार २ नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् सूरिजी ने अपना व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।

श्रोता गण? आप जानते हो कि जब तक जीवों के कर्मरूपी उपाधि लगी रहती है तब तक वे नाना प्रकार की योनियों में अवतार धारण करते हैं और अवधि पूर्ण होने से मृत्यु को भी प्राप्त होते हैं और ऊँच नीच सुखी दुःखी होना यह पूर्व संचित कर्मों के फल हैं। जब जीव तप संयमादि सत्कर्मों से सकलकर्मो को नष्ट कर देता है तब वह आत्मा से परमात्मा बन जाता है उनको ही ईश्वर कहते हैं।

कई लोग यह भी कह बैठते हैं कि जैन ईश्वर को नहीं मानते हैं पर यह लोगों की अनभिज्ञता ही है। कारण जैसे जैनों ने शुद्ध पवित्र सच्चिदानन्द को ईश्वर माना है वैसे किसी दूसरे मत ने नहीं माना है। भला इतना तो आप स्व सोच सकते हो कि जैन ईश्वर को नहीं मानते तो लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर मन्दिर क्यों बनाते और अहिर्निश ईश्वर की भक्ति गुणा कीर्त्तन क्यों करते ? तथा जैन साधु राजऋद्धि एवं सुख सम्पति का त्याग कर इस प्रकार के कठिन परिसहों को क्यों सहन करते इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जैनधर्म ईश्वर को अवश्य एवं यथार्थ मानता है।

अब जरा ईश्वर मानने वाले नहीं पर ईश्वर की विडम्बना करने वालों के भी हाल सुन लीजिये। जो लोग ईश्वर को निरंजन एवं निराकार मानते हैं फिर भी उनको पुनः पुनः अवतार भी धारण करवाते हैं जैसे इस समय दश अवतार की कल्पना कर रक्खी है जिसका परिचय आप लोगों को करवाये देता हूँ।

मत्स्यः[१] कूर्मो[२] वराहश्च[३] नरसिंहोऽथ[४] वामनः[५]। रामो[६] रामश्च[७] कृष्णश्च[८] बुद्धः[९] कल्की[१०] च ते दश ॥

इन दस अवतारों का विस्तार से वर्णन करके समझाया और बतलाया कि जब ईश्वर सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान है तो उसको अवतार की क्या आवश्यकता जिसमें भी मनुष्य जैसी पवित्र योनिको छोड़ मच्छ कच्छ वराहा और नरसिंह जैसे अवतार धारण करना भलों ऐसी पशु योनियों में अवतार लेना क्या बुद्धि मता कही जा सकती है ? अब आप स्वयं सोच सकते हो कि ईश्वर की मान्यता जैनों की श्रेष्ठ है या ब्राह्मणों की ?

अब रहा वेद का मानना—वेदो शुरू से तो जैनों के घर से ही प्रचलित हुए हैं भगवान आदीश्वर के मुखार्विन्द से दिये उपदेश का साररूप भरत महाराज ने चार वेदों में संकलित कर जनता को उपदेश के लिए ब्राह्मणों को दिये थे और वे परमार्थी ब्राह्मण इन वेदों द्वारा स्वपर का कल्याण करते थे पर जब से ब्राह्मणों के समाज में स्वार्थ का कीड़ा पैदा हुआ तब से उन्होंने वेदों की असली श्रुतियों को बदल कर नकली वेद बना लिये। अतः जिन असली वेदों से जन कल्याण होता था वही नकली वेद निरपराधीमूक प्राणियों के कोमल कंठ पर छुरा चलाकर यज्ञ वेदियें रक्त रंजित कर रहे हैं। इसलिऐ जैन उन नकली वेदों को नहीं मानते हैं पर असली वेदों के तो जैन शुरू से ही उपासक थे और आज भी हैं इत्यादि।

× १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापन परामर्शनवेद, ३ तत्त्वबोधवेद, ४ विद्याप्रबोधवेद। ( आवशकसूत्रवृति )

व्याख्यान का मुख्य ध्येय त्याग वैराग्य और संसार की असारता बतलाने का था और हलुकर्मी जीवों को आपका उपदेश लग भी जाता था आज हमें आश्चर्य होता है कि हम वर्षों तक उपदेश देते हैं कोई विरले ही दीक्षा लेते हैं तब उस जमाने में थोड़ा सा उपदेश से बहुत से लोग दीक्षा लेने को तैयार हो जाते थे इसका कारण यही हो सकता है कि उस जमाना के जीवों के क्षयोपसमथी वे लोग भाग्यशाली थे और अपने कल्याण को खरे जिगर से चाहते थे सूरिजी के चतुर्मास करने से धर्म की अच्छी उन्नति हुई कई सात पुरुष और चौदह बहनों सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेने को तैयार हो गये चतुर्मास समाप्त होते ही जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सवादि दीक्षा की तैयारियें होने लगी। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न मे उन मुमुक्षुओं को विधि विधान से दीक्षा दे कर उनका उद्धार किया। तत्पश्चात वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार करते आघाट नगर में पधारे वहाँ का श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। सूरिजी के पास सैकड़ों साधु रहते थे जब आप बड़ा नगर से विहार करते तब थोड़े थोड़े साधुओं को सर्वत्र विहार की आज्ञा दे देते थे कि कोई भी जैन बसती वाला ग्राम धर्मोपदेश से वंचित नहीं रहता था। यही कारण है कि वे जैनधर्म का प्रचार करने में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेते थे। मेदपाट में पहले से ही सूरिजी के साधुविहार करते थे जब सूरिजी को आघाट नगर में पधारे सुना तो वे सब दर्शनार्थी आये सूरिजी ने उनके प्रचार कार्य की खूब सराहना कर उनका उत्साह को द्विगुनित कर दिया कि भविष्य के लिये दूसरे मुनि भी अपना प्रचार कार्य को बढ़ाते रहे। सूरिजी शासन तन्त्र चलाने में बड़े ही कुशल थे जिन साधुओं ने मेदपाट में विहार करने को बहुत अर्सा हो गया था उनको अपने साथ में ले लिये और अपने पास के साधुओं को मेदपाट में विहार करने की आज्ञा फरमादी। सूरिजी महाराज स्वतन्त्र विहार करने वाले मुनियों में पदवीधरों की आवश्यकता को भी जानते थे अतः आपने इसी आघाट नगर में कई योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। इससे वहाँ के श्रीसंघमें हर्षका पार नहीं रहा—

मुनि निधानकलस बड़े ही त्यागी वैरागी और तपस्वी थे। आप पहिले तो ज्ञान सम्पादन करने में जुट गये अतः सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा से थोड़े ही समय में जैनागमों का अध्ययन कर लिया और साथ में व्याकरण न्याय तर्क छन्द अलंकारादि साहित्य के आप धुरंधर विद्वान बन गये तर्क वाद एवं युक्ती प्रमाण तो आपका इतना जबर्दस्त था कि वादी प्रतिवादी आपके सामने ठहर ही नहीं सकते थे। कहा भी है कि 'कर्मेशूरा सो धर्मेशूरा' जब आप संसार में मंत्री पद को सुशोभित करते हुये राजतंत्र चलाने में कुशल थे तो यहाँ धर्म शासन चलाने में दक्ष हों तो कौनसी आश्चर्य की बात है।

सूरिजी महाराज ने मुनि निधानकलस की योग्यता पर विचार कर कुमट गोत्रिय मंत्री रणदेव के महामहोत्सव पूर्वक कई मुनियों को पदवियां प्रदान की जिसमें निधानकलस को उपाध्याय पद से विभूषित बनाये तत्पश्चात सूरीश्वरजी भ्रमण करते हुए मरुधर की ओर पधार रहे थे तो मरुधर वासियों के उत्साह का पार नहीं रहा। वे पहले से ही आपश्रीजी के दर्शनों के पिपासु बन रहे थे—

यह तो हम कई बार कह आये हैं कि उपकेशगच्छाचार्यों की धर्म प्रचार के लिये तो एक पद्धति ही बन गई थी कि वे गच्छनायकता की जुम्मावारी को अपने शिर पर लेते थे तो एक बार तो इस प्रकार प्रदक्षिणा दे ही देते थे। इसका खास कारण यह था कि उपकेशगच्छाचार्यों ने इन प्रदेशों में भ्रमन कर लाखों नहीं पर करोड़ो अजैनों को जैन बनाये थे। अतः उनको धर्मोपदेश देना एक जरूरी काम था। यद्यपि

दूसरे दिन सूरिजी का खूब जोरदार व्याख्यान हुआ जनता की संख्या हमेशों से बहुत बढ़कर थी राजा प्रजा और राज कर्मचारी भी उपस्थित थे। सूरिजी ने मङ्गलाचरण में ही ईश्वर को नमस्कार करते हुये फरमाया कि:—हे ईश्वर परमात्मा ? सच्चिदानन्द सर्वज्ञ अक्षय अरूपी सकल उपाधीमुक्त निरंजन निराकार स्वगुण मुक्ता आदि अनंतगुण संयुक्त। हे विभो ! तुम्हारे नाम स्मरणमात्र से हमारे जैसे जीवों का कल्याण होता है अतः तुमको वार २ नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् सूरिजी ने अपना व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।

श्रोता गण? आप जानते हो कि जब तक जीवों के कर्मरूपी उपाधि लगी रहती है तब तक वे नाना प्रकार की योनियों में अवतार धारण करते हैं और अवधि पूर्ण होने से मृत्यु को भी प्राप्त होते हैं और ऊँच नीच सुखी दुःखी होना यह पूर्व संचित कर्मों के फल हैं। जब जीव तप संयमादि सत्कर्मों से सकलकर्मों को नष्ट कर देता है तब वह आत्मा से परमात्मा बन जाता है उनको ही ईश्वर कहते हैं।

कई लोग यह भी कह बैठते हैं कि जैन ईश्वर को नहीं मानते हैं पर यह लोगों की अनभिज्ञता ही है। कारण जैसे जैनों ने शुद्ध पवित्र सच्चिदानन्द को ईश्वर माना है वैसे किसी दूसरे मत ने नहीं माना है। भला इतना तो आप स्वयं सोच सकते हो कि जैन ईश्वर को नहीं मानते तो लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर मन्दिर क्यों बनाते और अहर्निश ईश्वर की भक्ति गुणा कीर्त्तन क्यों करते ? तथा जैन साधु राजऋद्धि एवं सुख सम्पति का त्याग कर इस प्रकार के कठिन परिसहों को क्यों सहन करते इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जैनधर्म ईश्वर को अवश्य एवं यथार्थ मानता है।

अब जरा ईश्वर मानने वाले नहीं पर ईश्वर की विडम्बना करने वालों के भी हाल सुन लीजिये। जो लोग ईश्वर को निरंजन एवं निराकार मानते हैं फिर भी उनको पुनः पुनः अवतार भी धारण करवाते हैं जैसे इस समय दश अवतार की कल्पना कर रक्खी है जिसका परिचय आप लोगों को करवाये देता हूँ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥

इन दस अवतारों का विस्तार से वर्णन करके समझाया और बतलाया कि जब ईश्वर सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान है तो उसको अवतार की क्या आवश्यकता जिसमें भी मनुष्य जैसी पवित्र योनि को छोड़ मच्छ कच्छ वराहा और नरसिंह जैसे अवतार धारण करना भलों ऐसी पशु योनियों में अवतार लेना क्या बुद्धिमत्ता कही जा सकती है ? अब आप स्वयं सोच सकते हो कि ईश्वर की मान्यता जैनों की श्रेष्ठ है या ब्राह्मणों की ?

अब रहा वेद का मानना—वेदो शुरू से तो जैनों के घर से ही प्रचलित हुए हैं भगवान आदीश्वर के मुखारविन्द से दिये उपदेश का साररूप भरत महाराज ने चार वेदों में संकलित कर जनता को उपदेश के लिए ब्राह्मणों को दिये थे और वे परमार्थी ब्राह्मण इन वेदों द्वारा स्वपर का कल्याण करते थे पर जब से ब्राह्मणों के मगज में स्वार्थ का कीड़ा पैदा हुआ तब से उन्होंने वेदों की असली श्रुतियों को बदल कर नकली वेद बना लिये। अतः जिन असली वेदों से जन कल्याण होता था वही नकली वेद निरपराधीमूक प्राणियों के कोमल कंठ पर छुरा चलाकर यज्ञ वेदियें रक्त रंजित कर रहे हैं। इसलिऐ जैन उन नकली वेदों को नहीं मानते हैं पर असली वेदों के तो जैन शुरू से ही उपासक थे और आज भी हैं इत्यादि।

× १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापन परामर्शनवेद, ३ तत्त्वबोधवेद, ४ विद्याप्रबोधवेद।( आवश्यकसूत्रवृति )

कारण उस समय ओसवाल शब्द का जन्म भी नहीं हुआ था इस घटना के विषय वंशावलियों में कुछ कवित्त भी मिलते हैं। यद्यपि वे कवित इतने प्राचीन नहीं है पर सर्वथा निराधार भी नहीं है।

आभा नगरी थी आव्यो, जग्गो जग में भाण। साचल परचो जब्र दीयो, जब शीश चढ़ाई आण॥
जुग जीमाड्यो जुगत सु, दीधो दान प्रमाण। देशलसुत जग दीपता, ज्यारी दुनिया माने काँण॥
चूप धरी चित भूप, सैना लई आगल चाले। अश्वपति अपार, खडयपति मिलीया माले॥
देरासर बहु साथ खरच सामो कौण भाले। धन गरजे वरसे नहीं, जगो जुग वरसे अकाले॥
यति सती साथे घणा, राजा राणा बड़ भूप। बोले भाट विरुदावली, चारण कविता चूप॥
मिलीया भोजक सांमटा, पूरे संक्ख अनूप। जग जस लीनो दान दे, यो जग्गो संघपति भूप॥
दान दियी लख गाय, लखवलि तुरंग तेजाला। सोनो सौ मण सात, सहस मोतियन की माला॥
रूपानो नहीं पार, सहस करहा करमाला। वोयेत्रावीस मल जागियो, तुं ओसवाल भूपाला॥

जगाशाह का विचार श्री शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा करने का था पर ऋतु प्रायः आगई थी अतः वे जा नहीं सके पर वहां से एक एक करोड़ रुपये दोनों तीर्थों के उद्धारार्थ भेजवा दिये और सब के साथ स्वाधर्मी भाइयों को सोने की कण्ठियों और वस्त्रों की पहरामणी देकर संघ पूजा की तत्पश्चात् संघ विसर्ज्जन हुआ। जिस पर देव देवियों को प्रसन्नता हो वे पुन्योपार्जन करने में कमी क्यों रक्खे। शाह जगा ने इस प्रकार सुकृत कार्य करके अपना नाम अमर कर दिया था—

यह तो एक जगाशाह का हाल लिखा है पर उस जमाना में ऐसे कई दानेश्वरी हुए हैं और उन की इस प्रकार उदारता के कारण ही इस जाति की साधारण जनता ही नहीं पर बड़े-बड़े राजा महाराजाओं ने बड़ी भारी इज्जत बढ़ाई और सन्मान कर अनेक उपाधियों से भूषित किये थे।

पट्टावलियो वंशावलियों आदि चरित्र ग्रन्थों में सूरिजी के शासन में अनेक भावुकों में संसार को असार जान कर दीक्षा को स्वीकार की थी जिनके कतिपय नाम

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १—भाडव्यपुर | के | भूरिगोत्रीय | हरपाल ने | जैन दीक्षा ली |
| २—पतालानी | के | डिड्डुगोत्रीय | चूड़ा ने | ,, |
| ३—पाल्यपुरा | के | सुघड़गोत्रीय | पहाड़ ने | ,, |
| ४—नागपुर | के | चारड़गोत्रीय | संगार ने | ,, |
| ५—संखपुर | के | भलीटगोत्रीय | खीवसी ने | ,, |
| ६—गवाणी | के | श्री श्रीमाल गो० | गेंदादि ९ जने | ,, |
| ७—करगोट | के | चोरड़िया जाति | आदू ने | ,, |
| ८—खटकुंप | के | भाद्रगोत्रीय | शंख ने | ,, |
| ९—मावोली | के | प्राग्वटीय | हुप्पा ने | ,, |

* यह कवित्त इतना पुराना तो नहीं है पर चली आई दंतकथा के अनुसार किसी पिछले कवि ने इस कहावत को कविता का रूप दे दिया हो तो कोई असंगत नहीं कहा जा सकता है।

करके आप श्री जी हस्तनापुर सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा करते हुये आप मथुरा में पधारे। वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगर प्रवेश महोत्सव किया।

उस समय मथुरा में बौद्धों का खूब ही जमघट रहता था और वे अपने धर्म का प्रचार भी करते थे। बौद्धाचार्य जयकेतु आपने भिक्षुओं के साथ वहां आया हुआ था फिर भी वहां जैनों का जोर भी कम नहीं था। उपकेश वशीय कइ लोगों ने व्यापारार्थ वहाँ आकर वास कर दिया था उनकी संख्या भी काफी थी।

भला, एक नगर में दो धर्म के धुरंधर आचार्य एकत्र हों वहाँ धर्म विषय वाद हुये बिना कैसे रह सकता है। बस, मथुरा का भी यही हाल था। धर्म की चर्चा सर्वत्र गर्जना कर रही थी—

आचार्य यक्षदेवसूरि यों तो ३०० मुनियों के साथ मथुरा में पधारे थे पर आपके पास वीरभद्र और देवभद्र दो साधु बड़े ही प्रभावशाली एवं विद्वान थे। जैसे वे आगमादि साहित्य के धुरंधर थे वैसे ही वे विद्याओं एवं लब्धियों से भी विभूषित थे। जिसका परिचय पाठक पहले कर चुके हैं।

बौद्धाचार्य को अपनी शक्ति का भान नहीं था। उसने स्थम्भनपुर का बदला लेने के लिये शास्त्रार्थ करने को आवाहन कर दिया जिसको आचार्य श्री ने बड़ी खुशी के साथ स्वीकार कर लिया। वहाँ के राजा बलभद्र की राज सभा में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। ठीक समय पर दोनों आचार्य अपने विद्वान् शिष्यों के साथ राज सभा में उपस्थित हुये। बोद्धों का सिद्धान्त क्षणिकवाद था तब जैनियों का सिद्धान्त था स्याद्वाद। बौद्ध सब पदार्थों को क्षणिक स्वभाव वाले बतलाते थे तब जैन प्रत्येक पदार्थ को द्रव्य गुण पर्याय संयुक्त प्रतिपादित करते थे। द्रव्य गुण नित्य अक्षय हैं तब पर्याय क्षणिक है।

सूरिजी की अध्यक्षता में पंडित वीरभद्र और देवभद्र ने आगम एवं युक्ति प्रमाण से अपनी मान्यता को दृढ़ता के साथ साबित कर बतलाई और साथ में बौद्धों के क्षणक वाद का इस प्रकार खण्डन किया कि विचारे क्षणिक वादी बौद्ध उनके सामने ठहर ही नहीं सके। आखिर विजय माला जैनियों के ही कंठ में सुशोभित हुई ओर बौद्धों को नत मस्तक होना पड़ा अर्थात् जैनों का विजय डंका सर्वत्र बजने लगा।

सूरिजी महाराज ने श्रीसंघ के अत्याग्रह विनती से मथुरा में चतुर्मास कर दिया जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना एवं उन्नति हुई कई मन्दिर एवं मूर्तियों की प्रतिष्टा करवाई। कई मुमुक्षुओं को जैन दीक्षा देकर उनका उद्धार किया तथा बाद चतुर्मास के सूरिजी विहार करते हुए आवंति प्रदेश में पधारे वहां सर्वत्र विहार कर जनता को धर्मोपदेश सुनाया वहां से मेदपाट को पावन बनाया।

उस समय का चित्रकोट जैनों का एक केन्द्र कहलाता था जब सूरिजी मध्यमका पधारे थे तो चित्रकोट के भक्तजनों ने दर्शन के लिए तांता सा लगा दिया और अपने वहां पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी महाराज चित्रकोट पधारे तो श्रीसंघ ने नगर प्रवेश का शानदार महोत्सव किया कारण उस समय मंत्री महामंत्री सेनापति वगैरह जितने राजकर्मचारी थे वह सब जैन एवं उपकेशवंशी ही थे फिर कमी ही किस बात की थी। सूरिजी का सारगर्भित व्याख्यान हमेशाँ होता था जैन जैनेतर खूब आनन्द लूट रहे थे श्रीसंघ की अति आग्रह से विनति होने से सूरिजा ने लाभालाभ का कारण जान वह चतुर्मास चित्रकोट में करना निश्चय कर लिया श्रेष्टिवर्य्य मंत्री सादा ने बड़े ही महोत्सव पूर्वक श्रीभगवती सूत्र बचाया जिसमें मंत्रीश्वर ने ज्ञानपूजा वगरह में सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर अनन्त पुन्योपार्जन किया इसी प्रकार अन्य लोगों ने भी लाभ हांसिल किया सूरिजी के व्याख्यान का राज प्रजा पर खूब प्रभाव पड़ता था जैनाचार्यों के

महोत्सव में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया सात यज्ञ ( स्वामिवात्सल्य ) कर पुरुषों को कडा कंठी और बहनों को सोने के चूड़ा की लेन दी। अहा ह कैसे पुरुष इस पृथ्वी पर हो गये हैं ?

७—स्तम्भनपुर से प्राग्वट शंख में श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—आघाट नगर से बाप्प नाग गौत्रीय खेमा ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला इस संघ में पट्टावलीकार चौदह हस्ती होना लिखा है शाह खेमा ने सात लक्ष द्रव्य व्यय किया।

९—हंसावली नगरी के सुंचंतिगौत्रीय शाह नारायण ने श्री सम्मेतशिखरजी का संघ निकाला इस संघ में चौबीस हस्ती १२४ देरासर होना लिखा है शाह खेमा ने सात लक्ष द्रव्य व्यय किया।

१०—मथुरा नगरी से कर्णाट गौत्रीय शाह कुंभा ने श्री शत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला जिसमें आपने स्वाधर्मी भाइयों को सोना की कण्ठियों की लेने दी तीन यज्ञ किये।

इनके अलावा भी कई प्रान्तों से सूरिजी एवं आप के शिष्यों के उपदेश से कई महानुभावों ने संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की उस समय तीर्थों का संघ निकालना और स्वधर्मी भाइयों को पेहरामणि जितनी अधिक देना उतना ही अधिक महत्व का कार्य समझा जाता था यह जमाना ही ऐसा था कि उन लोगों के पुन्य से आकर्षित हुई लक्ष्मी उन पुन्यशालियों के घर में दासी होकर स्थिर रहती थी—

आचार्य श्री ने कई वादियों के साथ राज सभाओं में शास्त्रार्थ कर जैन धर्म की विजय विजयंति पताकाएं फहराई थी तब ही तो उस जमाने में जैनधर्म उन्नति के उच्चे शिखर पर पहुँचगया था जहां देखो जैन धर्म का ही लाहो माना जाता था वेदक धर्म तो अन्तिम श्वास लेता था—

## आचार्य यक्षदेव सूरि के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १—ॐकार नगर के लघुश्रेष्टि माथुर के | बनाये | महावीर | मन्दिर | की प्रतिष्ठा | कराई |
| २—माकोड़ी ग्राम के सुचंती माला के | ,, | पार्श्वनाथ | ,, | ,, | ,, |
| ३—आनन्दपुर के बाप्पनाग घना के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ४—भवानी ग्राम के चरड़ गौ० शंभु के | ,, | महावीर | ,, | ,, | ,, |
| ५—हाररग्राम के मल गौ० शाकला के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ६—इक्षुवाड़ी के लुग गौत्रीय रोरा के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ७—पीथावाड़ी के भाद्र गौत्र दोला के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ८—गिरवरपुर के प्राग्वट गौ० कोका के | ,, | शान्तिनाथ | ,, | ,, | ,, |
| ९—पालिकापुर के कर्णाट गौ० जेकरण के | ,, | महावीर | ,, | ,, | ,, |
| १०—खटकूँपनगर के क्रुमट गौ० नारा के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ११—हर्षपुर के चरड़ गौ० पोमा के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| १२—दान्तिपुर के बाप्पनाग भेकरण के | ,, | आदीश्वर | ,, | ,, | ,, |
| १३—जंगालु के श्रेष्टीगौत्रीय जोगा के | ,, | पार्श्वनाथ | ,, | ,, | ,, |
| १४—धौनपुर के भूरि गौत्रीय देदा के | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| १५—धाणीग्राम के चिंचट गौत्रीय मालना के | ,, | महावीर | ,, | ,, | ,, |

उपकेशगच्छ के साधुसाध्वियां वहाँ सदैव विहार करते ही थे पर गच्छनायक आचार्य के पधारने से चतुर्विध श्रीसंघ में उत्साह बढ़ जाता था अतः कमसे कम एक बार तो इन क्षेत्रों में वे अवश्य पधारते थे।

आचार्य यक्षदेवसूरि एक महान प्रभाविक आचार्य हुये। आपके आज्ञावृति हजारों साधु साध्वियां प्रत्येक प्रान्त में विहार कर महाजनसंघ का रक्षण पोषण और वृद्धि करते थे। खूबी यह थी कि इस गच्छ में एक ही आचार्य होते थे और वे सब प्रान्तों को सँभाल लेते थे। आचार्य यक्षदेवसूरि मरूधरमें सर्वत्र विहार करते हुए अपनी अन्तिम अवस्था में उपकेशपुर पधारे थे और वहाँ के श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय निधानकलस को अपने पट्टपर स्थापन कर आप अन्तिम सलेखान एवं अनशन और समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया पट्टावली कारोंने आपके शासन समय की कई घटनाए लिखी थी जिसमें आभा नगरी के जगा शाह सेठ की महत्व पूर्ण घटना का विस्तार से वर्णन किया है जिसको संक्षिप्तसे यहाँ लिखदी जाती है।

आभानगरी में बाप्पनागगोत्रीय शाह देशल बड़ा भारी व्यापारी बसता था जिसने विदेश में जहाजों द्वारा व्यापार कर करोड़ों का द्रव्य पैदा किया था। एक वर्ष बड़ा भारी दुकाल पड़ा था। शाह देसल ने करोड़ों रुपये व्यय कर गरीबों को अन्न और पशुओं को घास देकर उनके प्राण बचाये। भाग्यवशात दूसरे वर्ष भी दुकाल पड़ गया। शाह देशल का पुत्र जगा भी दानेश्वरी था। दूसरे वर्ष के दुकाल में शाह जगाने बीड़ा उठा लिया। जहाँ तक अपने पास में द्रव्य रहा वहाँ तक जहाँ जिस भाव मिला अन्न और घास मँगा कर जनता को देता रहा पर दुकाल के कारण दुनियाँ एक दम उलट पड़ी थी। शाह जगाने विदेश से जहाजों द्वारा अन्न मँगाया और अपने पास जो द्रव्य शेष रहा था वह जहाजों के साथ विदेश में भेज दिया था। भाग्यवशात् वापिस आते हुये जहाज पानी में डूब गया। यह समाचार मिलते ही शाह जगा निराश होगया उसके पास अन्न द्रव्य भी नहीं था कि कुछ दूसरा उपाय कर सके पर घर पर आये हुये लोगों को इन्कार करना भी तो जगा अपना कर्त्तव्य नहीं समझता था अर्थात् अपनी मृत्यु ही समझता था। अतः अपनी औरत का जेवर और जायदाद तक को वेच कर आये हुओं को अन्न दिया पर इस प्रकार वह कार्य कितने दिन चलने वाला था आखिर शाह जगा हताश होगया और आये हुये अन्नार्थियों को ना कहने से मर जाना अच्छा समझ कर उसने देवी सच्चायिका को प्रार्थना की कि या तो मुझे शक्ति दो कि मैं रहे हुये शेष दुकाल को निकालूं या मुझे मृत्यु ही दे दीजिये।

देवी सच्चायिका ने शाह जगा की उदारता सत्यता परोपकारता पर प्रसन्न होकर उसको अखूट निधान बतला दिया जिससे उसने काल का शिर फोड़ डाला। जब दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो एक विराट संघ लेकर उपकेशपुर आया। जगाशाह का संघ कोई साधारण संघ नहीं था पर इस संघ में सैकड़ों साधु साध्वियां लाखों नर नारी और कई राजा महाराजा साथ में थे। संघपति ने उपकेशपुर पहुँच कर भगवान महावीर की यात्रा और देवी सच्चायिका का पूजन किया और याचकों को एक करोड़ रुपयों का दान दिया इत्यादि इस घटना का समय वंशावलियों में वि० सं० २२२ का बतलाया है। इस जगाशाह के विशाल दान की यादगारी में याचक लोगों ने ओसवालों की उत्पत्ति का समय बीयेबावीस लिख दिया है। वास्तव में यह समय ओसवालों की उत्पत्ति का नहीं पर जगाशाह के दान का ही समझना ही चाहिये।

# २३--आचार्यश्री कक्कसूरि ( चतुर्थ )

आदित्यस्तु स नाग गोत्रगसुधीः ककः सुसूरिर्नुतः ।
पट्शास्त्री विधिना दधौ वनितया साकं स्वदीक्षां च यः ॥
श्रुत्वा गर्जन तर्जनं सुविपुलं शत्रोः कुलं माद्रवत् ।
जैनादेश विशेषतां तु ततवान् तेनायमस्ति स्तुतः ॥

आचार्य श्रीकक्कसूरिश्वरजी महाराज धर्मप्रचार करने में अद्वितीय वीर थे । आपका अखंड यश और प्रकाण्ड प्रभाव जनता में खूब फैला हुआ था । आपके अलौकिकगुण करने में बृहस्पति भी असमर्थ था आर्य्य देशों में कुनाल एक प्रसिद्ध देश है जिसकी वीर प्रसुति भूमि पर लोहाकोट नामक का स्वर्ग सदृश नगर है इस नगर में मंत्री पृथुसेनादि कई नररत्न उत्पन्न हुए जिन्हों के जीवन पाठक पिछले प्रकरणों में पढ़ आये हैं उन पृथुसेन की संतान परम्परा में कनक सेन नामक पुरुष हुआ जो धनमें कुबेर और बुद्धि में बृहस्पति की स्पर्दा करता था आपके गृहदेवी का नाम प्रभावती था आपका दम्पति जीवन बड़े ही सुख शान्ति में व्यतीत हो रहा था मंत्री कनकसेन के शिर पर राज कार्य की जुम्मावारी होने पर भी वह सदैव धर्म करनी में तत्पर रहता था एक समय प्रभावती देवी ने अर्द्धनिशा मे नागेन्द्र का शुभ स्वप्न देखा और उस स्वप्ने की बात अपने पतिदेव को कही जिसको सुनकर मंत्री ने बड़ा ही हर्ष मनाया जिन मंदिरों में स्नात्रादि महोत्सव किया माता प्रभावती को गर्भ के प्रभाव से अच्छे २ दोहले उत्पन्न हुए जिसको मंत्री ने बड़ी खुशी के साथ पूर्ण किये जब माता प्रभावती ने शुभ समय पुत्ररत्न को जन्म दिया तो मंत्री के हर्ष का पार नहीं रहा उसने अपने यहाँ मंगल मनाया हुआ धर्म कार्यों में वृद्धि की एवं याचकों को पुष्कल दान दिया और महोत्सव पूर्व बारहवें दिन नागेन्द्र के स्वप्नानुसार अपने नवजात पुत्र का नाम नागसेन रक्खा । मंत्रीश्वर ने अपने प्यारे पुत्र के पालन पोषण का अच्छा प्रबन्ध किया कि उसके स्वास्थ्य में किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचे पूर्व जमाना में बच्चों के खेल कूद भी ऐसे होते थे कि उसके संस्कार शुरु से ही अच्छे जम जाते थे मंत्री कनकसेन और प्रभावती शुरु से ही जैन धर्मोंउपासक थे इतना ही क्यों पर वे धर्म कार्य्य में बड़ी रूची एवं लग्न वाले थे बच्चों के शुरु से अध्यापक उनके माता पिता ही होते हैं यदि वे अपने बाल बच्चों के संस्कार, अच्छे बनाना चाहे तो सहज ही में बना सकते हैं पर वर्तमान इस ओर लक्ष बहुत कम दिया जाता है नतीजा हमारे सामने है । अस्तु ।

नागसेन जब आठ वर्ष का हुआ तो उसको विद्याध्यान के लिये पाठशाला में प्रवेश किया नागसेन ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद एवं सरस्वती देवी की उज्वल भावों से आराधना की थी कि उसके लिये विद्या देवी स्वयं वरदाई होगई थी वह अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेश्वर ही रहता था यह बात सच है कि पूर्वभव के संस्कार मनुष्य के साथ ही जन्म ले लिया करते हैं ।

जब नागसेन युवकावस्था में पदार्पण किया तो मन्त्री कनकसेन ने उसी नगरमें बाप्पनाग गौत्रीय

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १०—हदरा | के | प्राग्वटीय | सारंग ने | जैन दीक्षा ली |
| ११—स्तम्भनपुर | के | श्रीमाल वंशीय | सहजण ने | ,, |
| १२—कुलिया | के | श्रीमाल वंशीय | रूपा ने | ,, |
| १३—वाजोणा | के | प्राग्वटीय | नहार ने | ,, |
| १४—हालोर | के | मलगौत्रीय | लाडकने | ,, |
| १५—वीरपुर | के | श्रेष्टिगौत्रीय | मथु ने | ,, |
| १६—नांदिया | के | सुचेति गौत्रीय | नोधण ने | ,, |
| १७—लापाणी | के | बलाहा गौत्रीय | कर्मा ने | ,, |
| १८—शिवनगर | के | ब्राह्मण | शंकर ने | ,, |
| १९—सालीपुर | के | राव राजपूत | क्षेत्रसिंह ने | ,, |
| २०—वनजोरा | के | श्रेष्टिगौत्रीय | यशदेव ने | ,, |
| २१—तक्षिला | के | आदित्य नाग गौ० | जावड़ ने | ,, |
| २२—माथांणी | के | तप्तभट्ट गौ० | धर्मण ने | ,, |
| २३—मथुरा | के | ब्राह्मण | पुरुषोत्तम ने | ,, |
| २४—अगरोहा | के | चिंचट गौत्रीय | लाधा ने | ,, |
| २५—मुजपुर | के | कनोजिया गौ० | आमदेव ने | ,, |
| २६—विराट | के | लघुश्रेष्टि गौ० | वीरम ने | ,, |
| २७—उज्जैन | के | कर्णाट गौ० | संगार ने | ,, |
| २८—चित्रकोट | के | श्रेष्टि गौत्रीय | गोलु ने | ,, |
| २९—मेदनीपुर | के | आदित्यनाग गौ० | माल्ला ने | ,, |

## सूरिजी के शासन में तीर्थों के संघ निकालने वाले

१—उपकेशपुर से श्रेष्टिगौत्रीय शाह मुदा ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोने का जनेऊ और वस्त्रों की पेहरामणि दी सात यज्ञ ( जीमणवार स्वामिवात्सल्य ) किये।

२—मांडव्यपुर से डिडुगौत्रीय जाला करमण ने श्री शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला।

३—कुर्चपुर नगर से वलाह गौत्रीय मुदा ने श्री शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला शत्रुञ्जय पर ध्वज महोत्सव में एक लक्ष द्रव्य खर्च किया साधर्मी भाइयों को पांच सेर लड्डू में पांच पांच मुहरों की पेहरामणी दी तीन यज्ञ किये।

४—चन्द्रावती नगरी से प्राग्वट लाधा ने श्री सम्मेत शिखर तीर्थ का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोना की थाली कटोरी की लेन दी और सात बड़ा यज्ञ किया जिसमें पुष्कल द्रव्य खर्च किया।

५—पद्मावती ( पुष्कर ) से मोरक्षगौत्रीय लाल्ला वाला ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला एक सेर का लड्डू और एक एक सोना की मुहर तथा स्त्री पुरुषों के सब वस्त्रों की पेहरामण दी।

६—गरवाणी ग्राम से चरड़ गौत्रीय धरण ने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला तीर्थ पर ध्वज

उद्धार किया था। उनकी संतान परम्परा में आप हैं। अतः आप शीघ्र ही सावधान हो जाइये। आप समझदार के लिये इतना ही कहना पर्याप्त है।

बस, आत्मा निमित्त वासी होता है। उपादान कारण मंत्रीजी का सुधरा हुआ था निमित्त मिल गया सूरिजी का मंत्री ने कहा अच्छा गुरु महाराज मैं इसका विचार अवश्य करूंगा। जब मंत्री संस्तारा पौरषी पढ़ रहा था तो उसमें निम्न गाथा आई कि: —

'एगोऽहं नत्थि में कोइ नाहमन्नस्स कस्सई। एवं अदीणमणसो आप्पाण मणु सासई॥
एगो मे सासओ आप्पा नाण दंसण संजुओ। सेसामें बाहरा भावा सव्व संजोग लक्खणा॥
संजोग मूला जीवाणं पत्ता दुक्ख परंपरा। तम्हा संजोग संबंधं सव्वंतिविहेण वोसिरिअं॥"

इन गाथाओं पर मंत्री ने खूब विचार किया कि मैं अकेला हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं है। संसार दुःख का घर है और इस संसार के कारण ही जीव दुख परम्परा का संचय कर दुःखी बनता है। मेरा तो केवल ज्ञानदर्शन ही है इत्यादि भावना के साथ शयन किया तो अर्द्ध निद्रा के अन्दर मंत्री क्या देखता है कि आप सूरिजी के कर कमलों से दीक्षित ही नहीं पर सूरिपद प्रतिष्ठित हुआ है जब मनुष्य का कल्याण का समय आता है तब सर्व निमित्त कारण अच्छे मिल जाते हैं।

मंत्री नागसैन ने सुबह पारणा भी नहीं किया और सबसे पहले राजा के पास जाकर अपना इस्तीफा दे दिया। राजा ने कहा नागसैन ऐसा क्यों ? मंत्री ने कहा हजूर मुझे बड़ा भारी भय लगता है। दरबार ने कहा मेरे राज्य में तुझे क्या भय है ? मंत्री ने कहा हुजूरभय मोह रूपी पिशाच का है। राजा ने कहा क्या तू संसार से डरता है ? हाँ हुजूर। राजा ने कई तो फिर क्या करेगा ?

मंत्री—गुरुदेव के चरणों की सेवा करूंगा।

राजा—यह तो संसार में रहकर भी कर सकता है ?

मंत्री—संसार में रहकर पूर्ण सेवा नहीं हो सकती है ?

राजा—तो क्या तू सदैव के लिए गुरु की सेवा में रहना चाहता है ?

मंत्री—हाँ, हुजूर मेरी इच्छा तो ऐसी ही है।

राजा—मंत्री ! इसके लिए इतनी जल्दी क्या है, ठहर जाओ। वृद्धावस्था आने दो ?

मंत्री—हजूर ! काल का क्या भरोसा है कि वह कब उठा कर ले जाय।

राजा तो एक दम मंत्र मुग्ध बन गया कि आज मंत्री क्या बात कह रहा है ? एक ही रात्रि में इसको क्या भ्रम हो गया है। अतः राजा ने कहा मंत्री ! तुमने अपने कुटुम्बियों को तो पूँछ लिया है न ?

मंत्री—इसमें कुटुम्ब को पूछने की क्या जरूरत और कुटुम्ब तो स्वार्थ का है वह कब कहेगा कि आप हमको छोड़ कर सदैव के लिये अलग हो जाय।

राजा—मंत्री ! यह यकायक तुझ को कैसे रंग लग गया ?

मंत्री—गुरु महाराज की कृपा है।

राजा और मंत्री की बातें हो रही थीं उसी समय मंत्री का पुत्र बुलाने को आया और कहने लगा कि पारणा की तैयारी हो गई है, पधारिये। आप पारणा करावें माता वगैरह सब राय देख रहे हैं—

१६—रूपनगर के बप्पनाग गो० साहरण के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई
१७—चोरग्राम के आदित्यनाग मलहर के „ „ „ „ „
१८—खीमइली ग्राम के भाद्र गो० नारायणके „ पार्श्वनाथ „ „ „
१९—रत्नपुर के कनोजिया गो० हरदेव के „ „ „ „ „
२०—चैनपुरा के कुमट गौत्रीय केल्हण के „ „ „ „ „
२१—वागडीया ग्राम के प्राग्वट वंशीय फूवाके „ „ „ „ „
२२—रूद्रदेवपुर के प्राग्वट वंशीय हांवार के „ „ „ „ „
२३—चित्रकोट के प्राग्वट वंशीय जिनदास के „ सुमतिनाथ „ „ „
२४—जावलीपुर के प्राग्वट वंशीय विदा के „ चन्द्राप्रभु „ „ „
२५—तक्षिला के श्रीमाल वंशीय राजा के „ महावीर „ „ „
२६—जाकोटनगर के „ „ दूधा के „ „ „ „ „
२७—उमरोल ग्राम के श्रीमाल वंशीय देवा के „ „ „ „ „

इनके अलावा कइ घर दरोसर को भी प्रतिष्टाएं करवाई थी आचार्य श्री ने कई विधि विधान एवं तात्विक विषय के ग्रन्थ निर्माण करके भी जैन समाज पर महान् उपकार किया है वर्तमान में शायद वे ग्रन्थ उपलब्ध न भी हो पर पट्टावलियों में कइ ग्रन्थों के नाम जरूर मिलते है—

संचेती गोत्र के थे वे भूषण, यक्षदेव वर सूरी थे।
ज्ञाननिधि निर्माण ग्रन्थों के, कविता शक्ति पुरी थे ॥
प्रचारक थे जैन धर्म के, अहिंसा के वे स्थापक थे।
उज्ज्वल यशः अरु गुण जिनके, तीन लोक में व्यापक थे ॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के २२ वें पट्ट पर आचार्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

रह भी गया था और वे लोग ग्राम नगरों में नहीं पर पर्वतों की श्रेणियों एवं जंगलों में जाकर देवी पूजा के नाम पर पशु हिंसा कर मांस मदिरा सेवन करते थे। यहां सब एकत्र होने का भी यही कारण था।

भाग्यवसात् आचार्य कक्कसूरिजी वहां जा निकले और उन निरपराधी मूक प्राणियों को देख आपका हृदय दया से लबालब भर गया और सूरिजी ने अमेश्वर लोगों को कहा महानुभावो! आप यह क्या कर रहे हो? आपकी आकृति से तो आप किसी खानदानी घराने के पाये जाते हो फिर समझ में नहीं आता है कि इन निरपराधी प्राणियों को यहां एकत्र क्यों किया है इत्यादि।

जंगली लोगों ने कहा महात्माजी आप अपने रास्ते जावें आपको इससे क्या प्रयोजन है?

सूरिजी ने कहा कि महानुभावो! मुझे आप पर और इन मूक प्राणियों पर करुणा आ रही है। अतः मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ। उन जंगलियों के अन्दर कई ऐसे भी मनुष्य थे उन्होंने कहा महात्माजी! आप क्या कहना चाहते हो जल्दी से कह दीजिये।

सूरिजी—मैं आपसे इतना ही पूछना चाहता हूँ कि आपके किसी देवगुरु का इष्ट है या नहीं?

जंगली—इष्ट क्यों नहीं हम ईश्वर का इष्ट रखते हैं और यथावकाश ईश्वर का भजन स्मरण भी करते हैं।

सूरिजी—तब तो आप ईश्वर के कथन को भी मानते होंगे?

जंगली—क्यों नहीं हम ईश्वर के बचनों को बारबार मानते हैं।

सूरिजी—यह भी आपको मालूम है कि ईश्वर ने आपके लिये क्या कहा है?

जंगली—ईश्वर ने क्या कहा है?

सूरिजी—लीजिये मैं आपको ईश्वर का कथन सुना देता हूँ।

सब लोग तमाशागिरि की भांति ईश्वर का सन्देश सुनने को एकत्र होगये और सूरिजी उनको कहने लगे।

मार्यमाणस्य हेमाद्रिं राज्यं चापि प्रयच्छतु। तदनिष्टं परित्यज्य जीवो जीवितुमिच्छति॥
एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः। एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्॥

परमेकस्य सत्वस्य मदत्ताऽभयदक्षिणा। न तु विप्रसहस्रेभ्यो गोसहस्रमलङ्कृतम्॥
हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि। दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः॥
महतामपि दानानां कालेन क्षीयते फलम्। भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते॥

नातो भूयस्तमो धर्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले, प्राणिनां भयभीतानामभयं यत्प्रदीयते।
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो यो ददाति दया परः, तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयमेव न विद्यते॥
यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु, तस्य ज्ञानं च मोक्षश्च न जटाभस्मचीवरैः।
अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये, समाना जीविताकाङ्क्षा समं मृत्युभयं द्वयोः॥
यो यत्र जायते जन्तुः स तत्र रमते चिरम्, अतः सर्वेषु जीवेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत!, तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः॥
तामिस्रगन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम्, नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च॥

शाह खेमा की लिखी पढ़ी सुशील कन्या नन्दा के साथ बड़े ही महोत्सव के साथ शादी करदी बस मंत्री ने संसार में करने योग्य कार्य कर लिया अब वह आत्मकल्याण करना चाहता था। एक समय मौका देख मंत्री ने राजा से अर्ज की कि हजूर ! मैं अब आत्म कल्याण करना चाहता हूँ आप मंत्री पद किसी योग्य पुरुष को दे दीजिये ? राजाने कहा मंत्री यह पद तुमारे घराना में रहता आया है तुमारे पूर्वजों से ही राज की अच्छी सेवा करते आये हैं और तुम्हारा घराना ही राज में विश्वास पात्र है अतः यह पद तो तुमारे ही खानदान में रहना चाहिये तुम नहीं तो तुमारे पुत्र को मुकर्रर करदें। अतः राजा के आग्रह से नागसेन को मंत्री पद पर नियुक्त करदिया नागसेन भी इस पद के योग्य था उसने मंत्री पद की जुम्मावारी अपने शिर पर ले ली बस मंत्री कनकसेन सब खट पटों को छोड़ कर धर्माराधना में लग गया-मनुष्य जन्म का सार भी यही है कि कम से कम भुक्त भोगी होने पर तो आत्म कल्याण में लग ही जाना चाहिये।

मंत्री नागसेन के क्रमशः सात पुत्र और दो पुत्रियें हुई और मंत्री ने सब की शादियें वगैरह भी करदीं। अब तो मंत्री अपना आत्म कल्याण करना चाहता था। ठीक है "यद्दशी भावना तद्दशी सिद्धि र्भवति" मनुष्य की जैसी भावना होती है वैसा हा कार्य बन ही जाता है पर भावना होनी चाहिये सच्चे दिल की—

एक समय आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि पंजाब में विहार करते हुए क्रमशः लोहाकोट नगर में पधारे श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। मंत्री नागसेन ने तो और भी विशेष आनन्द मनाया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था दार्शनिक तात्त्विक एवं संसार की असारता कुटुम्ब की स्वार्थकता लक्ष्मी की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि पर अधिक जोर दिया जाता था। त्यागियों का व्याख्यान भी त्याग वैराग्य मय होता है। आपश्री के व्याख्यान का जनता पर बड़ा भारी असर पड़ता था जिसमें भी मंत्री नागसेन तो सूरिजी का व्याख्यान सुन कर मुग्ध ही बन जाता था मंत्री बिना नागा हमेशाँ व्याख्यान सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर व्याख्यान पर बराबर अमल भी करता था एक दिन मन्त्री ने पौषध व्रत किया था समय मिलने पर मन्त्री सूरिजी के पास गया और अर्ज की कि गुरुदेव ! हम लोगों का कैसे उद्धार होगा हम जान बूझ कर मोह रूपी किचड़ में फंस कर जिन्दगी व्यर्थ सी गमा रहे हैं। हम व्याख्यान सुनते हैं और समझते भी हैं कि जो सामग्री इस समय मिली है इसका सदुपयोग न करें तो फिर वार वार ऐसी उत्तम सामग्री का मिलना मुश्किल है। पर न जाने कर्मो का कितना जोर है कि हम कर नही सकते है।

सूरिजी ने फरमाया मंत्रीश्वर आपका कहना सत्य है कि जो आत्म कल्याण के लिये इस समय अनुकूल सामग्री मिली है वैसी वार २ मिलना कठिन है। इतना ही क्यों पर मैं तो यह भी समझता हूँ कि इस प्रकार के परिणाम आना भी कर्मों का जबरदस्त क्षयोपशम है और इसको थोड़ा सा बढ़ाया जाय तो सुविधा से आत्म कल्याण हो सकता है। मंत्रीश्वर ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि संसार के ७२ कलाओं में विज्ञ हो गया हो पर एक धर्म कला की ओर लक्ष्य नहीं है तो वे सब कर्म बन्ध का ही कारण होती हैं। देखो हमारे पास बहुत से बाल ब्रह्मचारी साधु हैं। ये बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग गये हैं तो आप तो भुक्त भोगी हैं। संसार में करने योग्य सब कुछ कर लिया है। अब तो आपको संसार को तिलाञ्जलि देकर आत्म-कल्याण करना चाहिए। आपके पूर्वज धर्मसैन ने पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा लेकर सूरिपद को सुशोभित किया था। औरस्वात्मा के साथ अनेक जीवों का

बस फिर तो देरी ही क्या थी सब पशुओं को छोड़ दिये कि वे सूरिजी को आशीर्वाद देते हुये अपने अपने स्थान में जाकर अपने बाल बच्चों से मिले। और सूरिजी को आशीर्वाद देने लगे।

सूरिजीने उन आचार पतित लोगों की शुद्धिकर अहिंसा परमोधर्म के उपासक बनाये। तत्पश्चात् सूरिजीने उस मण्डल के छोटे बड़े प्रत्येक ग्रामों में विहार कर हजारों मनुष्यों को पापाचार छुड़ा कर जैनधर्मोपासक बना लिये। आज बेतुकी बातें करने वालों को यह मालूम नहीं है कि उन आचार्यों ने किस प्रकार भूखे प्यासे रह कर एवं अनेक कठिनाइयों और परिसहों को सहन करके वाममार्गीरूप बज्र किले को भेद कर अहिंसा एवं जैनधर्म का प्रचार किया था।

आचार्य्य ककसूरि उस मण्डल में घूमते हुये चन्द्रवती पधारे वहाँ के श्रीसंघ की विनती से वह चतुर्मास चन्द्रावती में किया। शाह डावरके पुत्र कल्याणादि को दीक्षा दी और शाह डावर के निकाले हुये शत्रुंजय तीर्थादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ में पधार कर तीर्थों की यात्रा की। तदन्तर सूरिजी सोराष्ट्र प्रान्त में विहार कर सर्वत्र जैनधर्म के प्रचार को बढ़ा रहे थे। उस समय वर्द्धमानपुर नगर में श्रीमालवंशीय शाह देदा ने भगवान् महावीर का एक विशाल मन्दिर बनाया था। जब मंदिर तैयार होगया तो उसकी प्रतिष्ठा के लिये आचार्य ककसूरि को विनती कर कहा कि प्रभो ! आप वर्द्धमानपुर पधार कर हमलोगों को कृतार्थ करें। अतः सूरिजी वर्द्धमानपुर पधारे और शाह देदा के बनाये जिन बिम्बों की अंजनसिलाका एवं मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से करवाई। उस समय जैन मंदिर मूर्त्तियों पर चतुर्विध श्रीसंघ की अटूट श्रद्धा थी और अपना न्यायोपार्जित द्रव्य ऐसे पवित्र कार्य्य में व्यय कर अपना कल्याण करते थे।

सूरिजी महाराज सौराष्ट्र से विहार कर कच्छभूमि में पधारे और सर्वत्र भ्रमन करते माहव्यपुर में चतुर्मास किया। आपका व्याख्यान हमेशा बँचता था एक दिन के व्याख्यान में किसी ने प्रश्न किया कि जैनधर्म किसने और कब चलाया ?

सूरिजी महाराज ने उत्तर दिया कि जैनधर्म अनादिकाल से प्रचलित है और सृष्टि के साथ इस धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध है जब सृष्टि अनादि है तब जैनधर्म भी अनादि है इसमें शंका ही किस बात की है ?

वादी तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि जैनधर्म में पहिले तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुये हैं ?

सूरिजी यह काल की अपेक्षा से कहा जाता है। कारण, जैनों में काल दो प्रकार का माना है १–उत्सर्पिणी २–अवसर्पिणी जिसमें इस समय अवसर्पिणी काल बरत रहा है और इस अवसर्पिणी कालमें २४ तीर्थङ्कर हुये हैं जिसमें प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुये हैं। अतः प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ एवं ऋषभदेव कहा जाता है और भूतकाल में ऐसी अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल व्यतीत हो चुका है उसमें तीर्थङ्करों की भी अनन्त चौबीसियाँ होगई थी इत्यादि विस्तार से समझाने पर जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और प्रश्न कर्त्ता को भी ज्ञात होगया कि जैनधर्म एक पुराणा धर्म है।

सूरिजी ने कच्छ में भ्रमण कर कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई कई भावुकों को जैनधर्म की दीक्षा दी और कई नये जैनधर्मी भी बनाये बाद वहाँ से विहार कर आपने सिन्ध धरा को पावन किया।

सूरिजी सिन्ध में भ्रमण करते डमरेल नगर में पधारे वहाँ उपकेश वंशियों की अधिक संख्या थी वे लोग मरुधर से व्यापारार्थ आये थे। वे दिन ही उपकेश वंशियों की वृद्धि के थे। उनकी धन के साथ जन की भी खूब वृद्धि होती थी। अतः उपकेश वंशी लोग बहुत प्रदेश में फले फूले नजर आते थे।

राजा ने कहा देवसैन ! तुम्हारा पिता तो आज मंत्री पद का इस्तीफा दे रहा और है कहता है कि मैं संसार को छोड़ दूंगा। मुझे तो इस बातका बड़ा ही आश्चर्य होता है—

देवसैन—नहीं हजूर ! पिताजी के सिर पर कितना कार्य रहा हुआ है। अभी तो मेरे छोटे भाई बुद्धसैन का विवाह का कार्य चल रहा है।

राजा—भला तू पूछ कर तो देख यह क्या कहता है।

देवसैन—पधारिये, पारणा का टाइम हो गया है।

नागसैन—हजूर मैं जाता हूँ।

राजा—हाँ, तुम जाओ पर तेरा इस्तीफा मंजूर नहीं किया जाता है।

मंत्री—यह आपको मर्जी है पर मैं तो अब न इस पद पर रहूँगा और न मेरा यहाँ आना ही बनेगा।

देवसैन ने सुना तो उसके दिल में कुछ शंका हुई कि यह क्या बात है। खैर, पिताजी को लेकर घर पर आया। मंत्री ने परमेश्वर की पूजा कर पारणा किया। इतने में तो सब कुटुम्ब में यह बात फैल गई कि मंत्रीश्वर ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है और सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार है पर स्वार्थ के सरदार कुटुम्ब वाले यह कब चाहते थे कि हमारे शिरनायक हमको छोड़कर दीक्षा ले लें। उन्होंने बहुत कुछ कहा आखिर में कहा बुद्धसैन का विवाह प्रारम्भ किया है तो यह तो आप अपने हाथों से करलें।

मंत्री ने कहा कि मैं तो अपने किये हुये विवाह को भी छोड़ता हूँ तो मैं किसका विवाह करूं। मैं तो आज ही सूरिजी के पास दीक्षा ले लूंगा इत्यादि।

आखिर जाना और मरना किसके कहने से रुक सकता है। राजा ने देवसैन को मंत्री पद दिया और देवसैन ने अपने पिता की दीक्षा का बड़ा शानदार महोत्सव किया। सूरिजी के प्रभावशाली उपदेश से मंत्री के साथ कई १५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हुये और सूरिजी ने उन भावुकों को विधि विधान से भगवती जैनदीक्षा प्रदान की। और नागसैन का नाम निधानकलस रख दिया।

मुनि निधानकलस की योग्यता देख सूरिजी ने आघाट नगर में उपाध्याय पद और उपकेशपुर में सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया था। कक्कसूरि इस नाम में ऐसा चमत्कार रहा हुआ है कि सूरि पद प्रतिष्ठित होते ही आप एक विजयी सुभट की भांति जैनधर्म के प्रचार के निमित्त जुट गये। पूर्व जमाने में आचार्य पद एक महत्व का पद समझा जाता था जिसको यह पद अर्पण किया जाता था पहिले खूब परीक्षा की जाती थी तथा पद लेने वाला पहिले इस पद की जिम्मेदारी को ठीक तौर पर समझ लेता था और अपना कर्तव्य करने में वह सदैव तत्पर रहता था तब ही वह पदवी शोभायमान होती थी।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने शिष्यों के साथ उपकेशपुर नगर से विहार कर दिया और मरुधर में सर्वत्र भ्रमण कर जनता को धर्मोपदेश देकर सत्पथ पर लाने का खूब प्रयत्न किया। और उसमें आपको सफलता भी खूब ही मिली। सच्चे दिल और उज्वल भावना से किया हुआ कार्य शीघ्र ही होता है।

एक समय सूरिजी विहार करते हुये जा रहे थे तो एक अटवी में बहुत से लोग एकत्र हुये थे, वे केवल हलकी जातियों के ही नहीं पर उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी शामिल थे। हां जैनाचार्यों के प्रयत्न से मरुधर में सर्वत्र अहिंसा धर्म का प्रचार हो गया था तथापि कई-कई स्थानों में उन हिंसकों का अस्तित्व

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही हैं। साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी। जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छ: मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नहीं निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्ठिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को बिनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें।

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेश सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहुर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजार्थक के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और बधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से बधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना साधर्मी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे, हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले, तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ।
एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवर दक्षिणाम्, एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।, सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिनां दया ।
अहिंसा परमोधर्मः अहिंसैव परं तपः, अहिंसैव परं दानमित्याहुर्मुनयः सदा ॥

ईश्वर ने फरमाया है कि किसी जीव को मारोगे वो तुमको भविष्य में नरक के दुःख भुक्तने पड़ेंगे और जन्म जन्म में तुमको भी इसी प्रकार मरना पड़ेगा अतः तुम जीवों की रक्षा करो जीवों की रक्षा जैसा कोई धर्म ही नहीं है । ईश्वर ने यह भी कहा है कि तुम जीवों का मांस भक्षण मत करो । जैसे कि—

यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः, यावन्ति पशुरोमाणि तावत्स नरकंव्रजेत ।
परप्राणैस्तु ये प्राणान्स्वान्पुषन्ति हि दुर्धियः, आकल्पं नरकान्भुक्त्वा भुज्यन्ते तत्रतैः पुनः ॥

सज्जनों ! पूर्व महर्षियों ने मांस के साथ मदिरा का भी निषेध किया है देखिये—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्, तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्मिषात्ततः ।
तस्माद् ब्राह्मण राज्यन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्, गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥
मदिरापान मात्रेण बुद्धिर्नश्यति दूरतः, वैदग्धी बन्धुरस्यापि दौर्भाग्येणेन कामिनी ।
मद्यपस्य शवस्येव लुठितस्य चतुष्पथे, मूत्रयन्ति मुखे श्वानो व्यात्ते विवरशङ्कया ॥
विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं शौचं दया क्षमा, मद्यात्मलीयते सर्वं तृण्या वह्निकणादिव ।
दोषाणां कारणं मद्यं मद्यं कारणमापदाम्, रोगातुर इवापथ्यं तस्मान्मद्यं विवर्जयेत् ॥

इत्यादि सूरिजी ने निडरता पूर्वक उन जघन्य कर्मों का फल नरकादि घोर दुःखों का अतिशय वर्णन कर उन भद्रिकों की सरल आत्मा में वे भाव पैदा कर दिये कि थोड़े समय पूर्व जिस निष्ठुर कर्म को अच्छा समझते थे उसी को वह लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे और वे बोल उठे कि महात्माजी ! हम लोगों ने तो यही सुना था कि देवी को बलि देने से वह संतुष्ट होवी है जिससे मनुष्यों का उदय और विश्व की शान्ति होती है । सूरिजी ने कहा महानुभावो ! जिस पदार्थ को देख मनुष्य भी घृणा करता है उस पे देवता कैसे संतुष्ट होते होंगे । यह तो किसी पेट भरे मांस लोलुपी ने देवताओं के नाम से कुप्रथा चलादी है और भद्रिक लोग उन पाखण्डियों के जाल में फंस कर इस प्रकार के जघन्य कर्म करने लग गये हैं । इस लिये ही तो दयालु परमात्मा ने जगत् के जीवों के कल्याण के लिये उपरोक्त हुक्म फरमाया है । यदि आप परमात्मा के प्यारे भक्त हैं तो आपको परमेश्वर का हुक्म मानना चाहिये ।

उन लोगों ने कहा महात्माजी ? हम परमात्मा के हुकुम को नहीं मानेंगे तो और किसके हुकुम को मानेंगे ?

सूरिजी-यदि आप परमात्मा का हुकुम मानते हो तो इन पशुओं को छोड़दो और अहिंसा धर्म को स्वीकार करलो इससे परमात्मा खुश होगा और आपका कल्याण भी होगा । हम जो कहते हैं वह आप के अच्छा के लिये ही कहते हैं । दूसरे हमको आपसे कोई स्वार्थ नहीं है ।

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही हैं। साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी। जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छः मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नहीं निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्ठिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को बिनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें।

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेशा सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहूर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजाभक्ति के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और बधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से बधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना साधर्मी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

सूरिजी ने उमरेलपुर में चतुर्मास कर दिया था। वहाँ श्रेष्ठि गोत्रीय शाह महादेव प्रभूत संम्पति वाला श्रावक रहता था। उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! मैंने आचार्य यक्षदेव सूरि के पास परिग्रह व्रत का प्रमाण किया था और साथ में यह भी प्रतिज्ञा करली थी कि प्रमाण से अधिक बढ़ जायगा तो मैं उस द्रव्य को शुभ क्षेत्र में लगा दूंगा पूज्यवर ! इस समय मेरे पास में प्रमाण से बहुत अधिक द्रव्य बढ़ गया है अब मैं व्यापार तो नहीं करता हूँ पर उस बढ़े हुए द्रव्य का मुझे क्या करना चाहिये कौन से कार्य में लगाना चाहिये इसके लिये मैं आपकी अनुमति लेना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे ऐसा मार्ग बतलावें कि जिससे मेरा कल्याण हो और व्रत में अतिचार भी न लगे। सूरिजी ने सोच विचार कर कहा महादेव शास्त्र में सात क्षेत्र कहे हैं पर जिस समय जिस क्षेत्र में अधिक आवश्यकता हो उस क्षेत्र को पोषण करना अधिकलाभ का कारण हो सकता है। मेरी राय से तो बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि श्रीसम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रा निमित्त संघ निकाल कर चतुर्विध श्री संघ को यात्रा करवाना अधिक लाभ का कारण होगा। कारण उस विकट प्रदेश में साधारणव्यक्ति जा नहीं सकता है और कई अर्सा से इस प्रान्त से उस तीर्थ की यात्रार्थ संघ नहीं निकला है। अतः यह लाभ लेना तेरे लिये बड़ा ही कल्याण का कारण है। सूरिजी के कहने को महादेव ने शिरोधार्य्य कर लिया बस, फिर तो देरी ही क्या थी। शाह महादेव ने अपने पुत्र पौत्रों को बुलाकर कह दिया कि गुरुमहाराज की सम्मति पूर्वक मैंने सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकालने का निश्चय कर लिया है। अतः तुम लोग संघ के लिये सामग्री तैयार करो। यह सुन कर सबको बड़ी खुशी हुई। कारण वे लोग चाहते थे कि प्रमाण से अधिक द्रव्य घर में रखना अच्छा नहीं है। अतः उन सबको खुशी होना स्वाभाविक बात थी।

अहा हा ! वह जमाना कैसा धर्मज्ञता का था कि महादेव तो क्या पर उसके कुटुम्ब में भी कोई ऐसा नहीं था जो यह पसंद करता हो कि प्रमाण से अधिकद्रव्य किसी प्रकार से अपने काम में लिया जाय। इस सत्यता के कारण ही तो विना इच्छा किये लक्ष्मी उन सत्यवादियों के यहाँ रहना चाहती थी और लक्ष्मी को यह भी विश्वास था कि यह लोग मेरा कभी दुरुपयोग न करेंगे और मुझे लगावेंगे तो अच्छे कार्यों में ही लगावेंगे परन्तु आज का चक्र उल्टा ही चल रहा है। अव्वल तो जीवों के उतनी तृष्णा है कि वे व्रत लेते ही नहीं कदाचित कोई लेते हैं तो इतनी तृष्णा बढ़ाते हैं कि दस हजार की रक़म अपने पास होगी तो लक्ष रुपयों का परिग्रह रक्खेंगे कि जीवन भर में ही वह तृष्णा शान्त नहीं होती है। शायद पूर्वभव के पुन्योदय प्रमाण से अधिक परिग्रह बढ़ जाय तो कई विकल्प कर लेते हैं जैसे इतना मेरे इतना स्त्री के इतना पुत्र के इतना पुत्रवधु एवं पौत्र के इत्यादि पर ममता तो मूल पुरुष की ही रहती है।

श्रेष्ठि वर्य्य महादेव ने अपने कुटुम्ब वालों की सम्मति ले ली तब तो सूरिजी के व्याख्यान में आकर श्रीसंघ को अर्ज की कि मेरी भावना तीर्थाधिराज श्रीसम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ संघ निकालने की है। अतः श्री संघ मुझे आदेश दीरावें। इसको सुन कर श्रीसंघ ने बहुत खुशी मनाई और श्रेष्ठिवर्य्य महादेव को बड़ा ही धन्यवाद दिया। कारण सिन्ध प्रान्त से शत्रुंजय का संघ तो कई वार निकला था पर शिखरजी का संघ उस समय पहिले ही था अतः जनता में उत्साह फैल जाना एक स्वाभाविक बात थी। इस विषय में सूरिजी ने तीर्थयात्रा से दर्शन की विशुद्धता, संघपति का महत्त्व, द्रव्य की सफलता और छरीपाली यात्रा का आनंद का थोड़ा सा किन्तु सारगर्भित वर्णन करते हुये महादेव और श्रीसंघ के उत्साह में अभिवृद्धि की तत्पश्चात

दिया और आपने ५०० साधुओं को पूर्व में विहार करने के लिये अपने पास रख कर शेष साधुओं को देवगुप्तसूरि के साथ में संघ भेज दिये । संघ पुनः लौट कर डमरेलपुर नगर में आया । श्रेष्ठिवर्य्य लाम्बा ने संघ को साधर्मिक वात्सल्य देकर पांच पांच सुवर्ण मुद्रिकायें और वस्त्रादि की पहरामणी देकर संघ को विसर्जन किया।

पूर्व में उस समय बौद्धाचार्य्य बौद्धधर्म का खूब जोरों से प्रचार कर रहे थे जैनधर्म में उस समय पूर्व में ऐसा कोई प्रभावशाली आचार्य नहीं था कि बढ़ते हुये बौद्धों के वेग को रोक सके । शायद देवी सच्चायिका की प्रेरणा इसलिये ही हुई हो और यह कार्य्य कोई कम लाभ का भी नहीं था । सूरिजी ने २०० मुनियों को तो अपने साथ में रक्खे और शेष तीन सौ साधुओं की पचास पचास साधुओं की छः टुकड़ियाँ बना दी जिन्हों के ऊपर एक एक पदवीधर नियुक्त कर दिया और पूर्व प्रान्त के प्रत्येक नगर में विहार का आदेश दे दिया । बस, फिर तो था ही क्या । इस सिलसिले से विहार करने से जैसे सूर्य्य के सामने तारों का तेज फीका पड़ जाता है वैसे ही बौद्धों का प्रचार कार्य रुक गया और जैनधर्म का प्रचार बढ़ने लगा। राजगृह चम्पा वैशाला वणिज्य ग्राम नगर और कपिलवस्तु तक विहार कर दिया । इधर तो हिमाचल और उधर कलिंग प्रदेश तक जैन साधुओं का विहार हुआ । सूरिजी ने केवल जैनों का रक्षण ही नहीं किया था पर हजारों लाखों जैनेतरों को जैन बना कर उनका भीउद्धार किया—

जब सूरिजी ने अपना अन्तिम समय नजदीक जाना तो पुन. शिखरजी पधार गये और अपने साधुओं को शिखरजी के आस पास के प्रदेश में विहार करने की आज्ञा दे दी और उन विद्वान साधुओं ने वहां भ्रमण कर जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया । आज जो सिंहभूम मानभूमादि प्रदेश में सारक जाति पाई जाती है यह सब उन आचार्यों के बनाये हुये जैन श्रावक है ।

सारक जाति के पूर्वजों ने अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी कई बार तीर्थ श्री सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ भी निकाले थे और कई मुमुक्षुओं ने आचार्य श्री एवं आपके शिष्यों के पास दीक्षा भी ली थी और वे मुनि कितने ही समय तक वहां विहार भी किया था परन्तु पिछले अर्से में जब जैन श्रमणों का विहार बन्द हुआ तब से ही वे लोग धर्म को भूलते गये तथापि उन लोगों के असली संस्कार थे वे सर्वथा नहीं मिटे पर आज पर्यन्त उनमें अहिंसा वगैरह के संस्कार विद्यमान है—

आचार्य ककसूरिजी महाराज महा प्रभाविक आचार्य हुये आपने अपने २५ वर्ष के शासन समय में सर्वत्र विहार कर जैन धर्म की खूब ही ध्वजा पताका फहराई । आपने जैसे महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की वृद्धि की वैसे ही भावुकों को दीक्षा दे श्रमणसघ की भी अभिवृद्धि की। अन्त में वि० सं० २६० का फाल्गुण कृष्ण अष्टमी के दिन सम्मेतशिखर तीर्थ पर २७ दिन के अनशनपूर्वक समाधि के साथ स्वर्गधाम पधार गये।

पट्टावलियों वंशावलियों में सूरिजी के शासन में अनेक महानुभावों ने संसार का त्याग कर बड़े ही वैराग्यभाव से दीक्षा ली उनके नामों में थोड़े से नाम यहां दर्ज कर देता हूँ:—

१—उपकेशपुर के कनोजिया गौत्रीय पोलाक ने दीक्षा ली ।
२—चन्द्रीपुरा के कर्नाट गौत्रीय परमा ने ,,
३—माडव्यपुर के बलाह गौत्रीय कल्हण ने ,,
४—शंखपुर के चिंचट गौत्रीय बागा ने ,,
५—मुग्धपुर के श्री श्रीमाल गौत्रीय मूला ने ,,

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाखा को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी सच्चायिक ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहां प्रभों ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्यावली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुबह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूँ। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञाप्ति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

में दी याचकों को खूब दान दिया। संघपति सुरजन अपार सम्पति का धनी था आपकी कइ नगरों में दुकानों थी पश्चात्य प्रदेशों के साथ जहाजों द्वारा व्यापार चलता था चीन जावा वगैरह में आपकी कोठियें भी थी इतना होने पर भी धर्म करने में दृढ़ चित और खूब रुची वाला था साधर्मी भाइयों की ओर आपका अधिक लक्ष था व्यापार में भी साधर्मी भाइयों को विशेष स्थान दिया करता था ऐसे नर रत्नों से ही जैन धर्म की उन्नति एवं प्रभावना होती थी।

३—नागपुर का आदित्यनाग गौत्रीय शाह लाखण ने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला जिसमें आपने बारह लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को पेहरामणि दी और पांच बड़े यज्ञ किये।

४—कोरंटपुर का श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री अर्जुन ने उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें मंत्रीश्वर ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मियों को लेन दी।

५—आलोट नगर से रावनारायण ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला जिसमें पन्द्रहसौ मुनि साध्वियों और कइ पचास हजार गृहस्थ थे इस संघ में १९ हस्ती भी थे रावजी ने अपनी वृद्धावस्था में जबर्दस्त पुन्योपार्जन कर श्री शत्रुंजय की शीतल छाया में दीक्षा ग्रहण कर केवल तेरह दिनों में पुनीत तीर्थ भूमि पर देह त्याग कर स्वर्ग चले गये।

६—उपकेशपुर से भाद्र गौत्रीय शाह गोपाल ने श्री सम्मेतशिखरजी का संघ निकाला इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक नर नारी थे संघ लोटते समय ऋतु ग्रष्म आगई थी रास्ते में पानी का स्थान नहीं आने से संघ बहुत व्याकुल होगया अतः वाचनाचार्य गुणविलास के पास आकर अर्ज की अतः वाचनाचार्य ने स्वरोदय वली थे ध्यान लगा कर ऐसा संकेत किया कि पुष्कल जल मिल गया जिससे संघ ने अपने प्राण बचा लिया और सकुशल उपकेशपुर पहुँच गये शाह गोपाल ने सात यज्ञ किये और स्वाधर्मी भाइयों ने पेहरामणी दी तथा याचकों को इच्छित दान देकर अपनी कीर्ति को अमर बनादी।

इत्यादि और भी कई छोटे बड़े संघ निकले जिन्हों का पट्टावलियों में विस्तार से वर्णन है।

## सूरिजी के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं भी बहुत हुई—

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १—आसलपुर | के | प्राग्वट | — | शाह बागा | के बनाया | महावीर० | प्र० |
| २—रुणलान | के | प्राग्वट | ,, | भीमा | के ,, | ,, | ,, |
| ३—हंसावटी | के | भूरिगौ० | ,, | हंसा | के ,, | ,, | ,, |
| ४—आघाट | के | चिंचटगौ० | ,, | करमण | के ,, | पार्श्वनाथ | ,, |
| ५—विराट | के | मलगौत्रीय | ,, | धीरा | के ,, | ,, | ,, |
| ६—भमाखिया | के | चरड़गौत्रीय | ,, | कानड़ | के ,, | शान्तिनाथ | ,, |
| ७—धौलपुर | के | आदित्यनागगौ० | ,, | रूपणसी | के ,, | नेमिनाथ | ,, |
| ८—पलवृद्धि | के | बापनागगौ० | ,, | लाखणसी | के ,, | मुनिसुव्रत | ,, |
| ९—नागपुर | के | श्रेष्ठगौत्रीय | ,, | पुनड़ा | के ,, | महावीर | ,, |
| १०—हर्षपुर | के | सुचंतिगौत्रीय | ,, | पोमा | के ,, | ,, | ,, |

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाला को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी सच्चायिक ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहां प्रभो ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्यावली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुबह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूँ। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञप्ति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

# २४—आचार्य श्रीदेवगुप्तसूरि (चतुर्थ)

मूपा सीन्कुमटे स्वगोत्र विषये यै देवगुप्तो गुणी ।
भूत्वा दीक्षित एव जैन सुमते चक्रे कठोरं तपः ॥
येनासन् बहवोऽपि भूमिपगपाः शिष्याः ममावान्विताः ।
वन्द्योऽयं सुविकाशमान विधुवत् कल्याणकारी प्रभुः ॥

आचार्य देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज एक देवमूर्त्ति की भांति केवल मनुष्यों से ही नहीं पर देव देवियों से सदैव परिपूजनीय थे । आप चन्द्र जैसे शीतल, सूर्य्य जैसे तेजस्वी, सागर जैसे गंभीर, पृथ्वी जैसे धैर्य्यवान, मेरु जैसे अकम्प, और मनोकामना पूर्ण करने में कल्पवृक्ष सदृश्य मरुधर के चमकते हुये सितारे ही थे । आप जैन धर्म का प्रचार करने में अद्वितीय वीर थे अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को चलाने में एक चतुर मशीनगर का काम किया करते थे । आप का जीवन जनता के कल्याण के लिये ही हुआ था जिसका अनुकरण हमारे जैसे पामर जीवों को पावन बना देता है ।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं उस समय आर्बुदाचल की शीतल छाया में अलकापुरी से स्पर्द्धा करने वाली चन्द्रावती नाम की नगरी थी जिसको सूर्य्यवंशी महाराज चन्द्रसेन ने आबाद की थी। चन्द्रावती नगरी जब से आबाद हुई तब से वह जैनियों का एक केन्द्र ही कहलाता था क्योंकि यहाँ बसने वाले राजा और प्रजा जैनधर्म के ही उपासक थे । चन्द्रावती नगरी में सैकड़ों जैन तीर्थङ्करों के मन्दिर थे और लाखों मनुष्य श्रद्धा पूर्वक उन मन्दिरों की सेवा पूजा भी करते थे ।

उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ के आचार्यों ने समय समय पर चन्द्रावती में चतुर्मास कर तथा आपके मुनिगण वहां ठहर कर सदैव धर्मोपदेश दिया करते थे । धर्म के प्रभाव से उन लोगों के पुण्य भी बढ़ते जा रहे थे । चन्द्रावती नगरी में बड़े २ व्यापारी लोग भी बस रहे थे । उनका व्यापारी सम्बन्ध केवल भारतीयों के साथ ही नहीं था पर वे पाश्चात्य प्रदेश के व्यापारियों के साथ व्यापार सम्बन्ध रखते थे । भारत से लाखों करोड़ों का माल विदेशों में भेजते थे तथा वहां से भी कई प्रकार के पदार्थ भारत में लाते थे कई लोगों ने तो वहां अपनी कोठियें भी खोल दी थीं जिससे वे पुष्कल द्रव्य पैदा करते थे और उस न्यायोपार्जित द्रव्य को शुभ कार्यों में व्यय कर कल्याणकारी पुण्य संचय भी किया करते थे । जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति करना वे अपना सबसे पहिला कर्त्तव्य समझते थे ।

उन व्यापारियों के अन्दर कुमट गोत्रीय शाह डावर नाम का एक व्यापारियों का अग्रेश्वर श्रेष्टि बसता था । उसके पास इतना द्रव्य था कि लोग उसको धन कुबेर के नाम से ही पुकारते थे । शाह डावर जैसा धर्मज्ञ था वैसा परोपकारी भी था । साधर्मी भाइयों की ओर उसका अधिक लक्ष्य था । दानेश्वरी तो ऐसा था कि याचकों के दरिद्र को देश पार कर दिया था। शाह डावर के पद्मी नामक गृहदेवी थी जिसने आठ

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ११—स्तम्भनपुर | के | बलाहागो० | शाह देपाल | के बनाया | महावीर० | प्र० |
| १२—बटपुर | के | कर्णाटगो० | ,, झांझण | के ,, | ,, | ,, |
| १३—शंखपुर | के | तप्तभटगो० | ,, हाप्पा | के ,, | ,, | ,, |
| १४—मासिल | के | प्राग्वट | महादेव | के ,, | ,, | ,, |
| १५—कानपुर | के | श्रीमाल | ,, जैता | के ,, | ,, | ,, |
| १६—करोट | के | श्रीमाल | ,, नन्दा | के ,, | ,, | ,, |
| १७—पालिकपुर | के | कनोजिया | ,, नागा | के ,, | ,, | ,, |
| १८—कीराटकुप | के | डिडूगो० | ,, राणा | के ,, | ,, | ,, |
| १९—नागपुर | के | लघुश्रेष्टिगो० | ,, राजसी | के ,, | ,, | ,, |
| २०—उज्जैन | के | मोरक्षगो० | ,, आखा | के ,, | पार्श्वनाथ | ,, |
| २१—मण्डव | के | कुलभद्रगो० | ,, वीरदेव | के ,, | ऋषभदेव | ,, |
| २२—महेन्दपुर | के | बिरहटगो० | ,, मोथा | के ,, | अजीतनाथ | ,, |
| २३—वेनातट | के | पुष्करणा जाति | ,, खेता | के ,, | महावीर | ,, |

इनके अलावा कई छोटे बड़े मन्दिर और घर देशान्तर की प्रतिष्ठा हुई।

वंशावली में एक चमत्कारी घटना लिखि हैं वीरपुर [सिन्ध] में एक सोमरुद्र वामयर्णियों का नेत आया था वह था मंत्र बली जनता को चमत्कार बतलाने को शाम के समय जैन मन्दिर से एक मूर्त्ति को मंत्र बल से तालाव पर लेजा कर वापिस मन्दिर में ले आया और लोगों को कहने लगा कि जैन लोग अपने देव की मूर्ति को पानी नहीं पीलाते है अतः मूर्त्ति स्वयं तालाव पर पानी पीने को जाया करती हैं इस प्रकार आठ दिन गुज़र गये। इससे जैनों को बड़ा ही दुःख हुआ वे लोग किसी विद्याबली साधु को लाना चाहते थे इधर उधर मनुष्यों को भेजे भी थे पर उनकी आशा सफल नहीं हुई। एक दिन सुना कि डमरेल नगर में पण्डित आनन्द मुनि विराजते हैं और वे अच्छे विद्याबली भी है संघ अग्रेश्वर डामरेल जाकर सब हाल कहा और वीरपुर पधारने की प्रार्थना की अतः पं० आनन्दमुनि विहार कर वीरपुर पधारे श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह से आपका स्वागत किया। सोमरुद्र ने हमेशा की तरह मूर्त्ति को मन्दिर से निकाल कर तालाव पर लेजा रहा था पर मूर्त्ति बजार के बीच आइ तो रुक गई आगे चल नहीं सकी। इधर पं० आनन्द मुनि ने नगर के अन्दर जितने शिवलिंगादि देवी देवता थे उन सब को मंत्र बल से बजार में ले आया कि जहां जैन मूर्ति रुकी हुई थी। बजार में एक ओर सोमरुद्र खड़ा था दूसरी ओर पं० आनन्दमुनि। इस चमत्कार को देखने के लिये जैन जैनेत्तर हजारों लोग एकत्र होगये। पं० आनन्दमुनि ने कहा महात्माजी यदि आप इन सब मूर्त्तियों को तलाव की ओर ले जावें तो मैं आपका शिष्य बन जाउ और मैं मन्दिर की ओर ले जाउ तो आप मेरा शिष्य बन जावे। जनता के समक्ष सोमरुद्र ने स्वीकार कर लिया पर पंडितजी के सामने उनका मंत्र कुच्छ काम नहीं कर सका तब पं० आनन्द ने हुक्म दिया कि अहो देवी देवताओं तुम इस जैनमूर्त्ति को जैन मन्दिर में पहुँचा दो। बस आगे जैन मूर्त्ति और पिच्छे सब देवी देवता चल कर जैन मन्दिर में आये। बस-सोमरुद्र पण्डितजी का शिष्य बनगया—इस चमत्कार से जैन धर्म का बहुत प्रभावना हुई वंशावली कार लिखते है कि वे सब देवी देवता आज तक भी जैन मन्दिर में मौजुद है।

पट्ट तेवीसवें ककसूरिजी, आदित्य नाग कुल भूषण थे।
जिनकी तुलना करके देखो, चन्द्र में भी दूषण थे॥
षट दर्शन के थे वे ज्ञाता, वादी लज्जित हो जाते थे।
अजैनों को जैन बनाकर, नाम कमाल कमाते थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के २३ वें पट्ट पर आचार्य ककसूरि महान् प्रभाविक आचार्य हुये॥

स्वात्मा के साथ अनेकों का कल्याण करने में भाग्यशाली बन जायगा। अर्थात् अपने नाम को सार्थक बना देगा अर्थात् कल्याण तु एक कल्याण की ही मूर्ति बन जायगा।

इनके अलावा सूरिजी ने और भी कहा कि कल्याण अनुकूल सामग्री में कुछ कर लेना अच्छा है और उसका ही जीवन सफल समझा जाता है। शास्त्रकारों ने तो स्पष्ट शब्दों में फरमाया है कि:—

"जाजा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई, अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राईओ।"

"जाजा वच्चइ रयणी न सा पडि निवत्तई, धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ"

अधर्म में जो समय जाता है वह व्यर्थ जाता है तब धर्म कार्य्य में समय जाता है उसका समय सफल जाता है। कल्याण! काल का विश्वास नहीं है बड़े-बड़े अवतारी पुरुष भी चले गये हैं तो साधारण जन की तो गिनती ही क्या है?

"तीर्थङ्करा गणधारिणः सुरपत्तयश्चक्रि केशवा रामाः। संहृत्त हत विधिना शेषेषु नरेषु का गणना?"

इत्यादि हितकारी उपदेश दिया। कल्याण था लघुकर्मी कि सूरिजी के वचन सिद्ध पुरुष की औषधी की तरह रुच गये और उसने कहा पूज्यवर! आपका कहना सोलह आना सत्य है। हजारों कोशिश करने पर भी इस प्रकार की अनुकूल सामग्री मिलनी दुष्कर है। अतः मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं जल्दी से जल्दी आपकी सेवा में दीक्षा लूंगा। बस, सूरिजी को वन्दन कर कल्याण अपने घर पर आया। पर आज तो कल्याण का रंग ढंग कुछ दूसरा ही था। उसके चेहरे पर उदासीनता एवं वैराग्य का रंग झलक रहा था।

माता पन्ना ने पूछा बेटा! आज तू उदास क्यों है? क्या तेरे पिता ने तुझे कुछ कहा है। कल्याण ने कहा नहीं माता पिताजी ने कुछ भी नहीं कहा है।

"माता—फिर तू उदास क्यों है?

"बेटा—माता मैंने संसार में जन्म लेकर इतने दिन यों ही गफलत में खो दिये जिसकी मुझे उदासीनता है।

"माता एक दम चौंक उठी और कहा बेटा! तू क्या कार्य करना चाहता है। आज अपने घर में सब साधन है तू चाहे सो कार्य कर सकता है।

"बेटा—माता मैं सूरिजी महाराज के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।

माता—बेटा ये तुझे किसने सिखाया है, तू जानता है कि तेरी सगाई कब से ही करदी है अब २-४ मास में तेरा विवाह करना है। देख अपने घर में विवाह की सब तैयारियें हो रही हैं।

बेटा—माता मैं ऐसा अचिरकाल का विवाह करना नहीं चाहता हूँ कि जिसके लिये भवान्तर में दुःख सहन करना पड़े। मैं तो ऐसा विवाह करूंगा कि जिसके जरिये सदैव के लिये सुखी बन जाऊं।

माता तो बेटा के शब्द सुनकर महान् दुखी बन गई और उसी समय शाह डावर को बुला कर कहा कि आपका बेटा क्या कहता है जिसको सुन लीजिये? डावर ने पूछा कि बेटा तेरी मां क्या कहती है। कल्याण ने कहा आप ही पूछ लीजिये। पन्ना रोती हुई कहने लगी कि बेटा कहता है कि मैं दीक्षा लूंगा इस बात को मैं कैसे बरदास्त कर सकती हूँ? आप अपने बेटे को समझा दीजिये वरना मेरी मृत्यु नजदीक ही है।

"शाह डावर ने कहा कल्याण क्या बात है तेरी मां क्या कहती है?

पुत्र और सात पुत्रियों का जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बना लिया था जिसमें एक कल्याण नाम का पुत्र तो कल्याण की मूर्ति ही था। इतनी सम्पति इतना परिवार होने पर भी शाह डावर एवं आपकी पत्नी पन्ना धर्मकरणी करने में इतने दृढ़ प्रतिज्ञा वाले थे कि वे अपने जीवन का अधिक समय धर्म साधन में ही व्यतीत करते थे। जब माता पिता की इस प्रकार धर्म प्रवृति होती है तो उनके बाल बच्चों पर धर्म का प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता है ?

शाह डावर पाश्चात्य प्रदेश के साथ व्यापार करता था तो उसके हाथ एक ऐसा पन्ना लग गया कि उसने उस पन्ना की एक भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति बना कर अपने घर देरासर में प्रतिष्ठा करवादी जिसकी सेठजी आदि सब परिवार के लोग त्रिकाल सेवा पूजा किया करते थे।

पूर्व जमाने में घर देरासर की प्रवृति अधिक थी और इससे कई प्रकार के लाभ भी थे। कारण, एक तो घर देरासर होने से क्या स्त्री और क्या पुरुष सब कुटुम्ब वाले सेवा पूजा एवं दर्शन का लाभ ले सकते थे इतना ही क्यों पर जैनेतर नौकर चाकर भी परमात्मा के दर्शन उपासना एवं पूजा का लाभ उठा सकते थे। दूसरे घर में अपने इष्ट देव होने से दूसरे अन्य देव देवियों को स्थान नहीं मिल सकता था तीसरे जैनेतरों की लड़की परणीज कर लाते थे वह भी जैन धर्मोपासिका बन जाती थी। चौथे घर में देरासर होने से धर्म पर श्रद्धा भी मजबूत रहती थी इत्यादि अनेक फायदे थे।

एक समय परोपकारी आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज भू भ्रमण करते हुए चन्द्रावती के नजदीक पधार रहे थे। यह शुभ समाचार चन्द्रावती के संघ को मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा और वे लोग सूरिजी के स्वागत की तैयारी करने लग गये। फिर तो कहना ही क्या था बड़े ही समारोह से नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी ने चन्द्रावती में पदार्पण कर जैन मंदिरों के दर्शन किये और बाद थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी। सूरिजी का व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि जिस किसी ने एक बार सुन लिया फिर तो उसको ऐसा रंग लग जाता था कि बिना सूरिजी का व्याख्यान सुने उसको चैन ही नहीं पड़ता था।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा विविध विषय पर होता था पर आपके व्याख्यान में संसार की असारता और त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर अधिक जोर दिया जाता था।

एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने सामुद्रिक शास्त्र का इस खूबी से वर्णन किया कि हस्त पदों की रेखा शरीर के तिल मास लशनियादि के भविष्य में होने वाले शुभाशुभ फल विस्तार से बयान किये और कहा कि श्रोता जनों ! सर्वज्ञ के ज्ञान से कोई भी विषय शेष नहीं रह जाता है। हां, उसमें हय गय और उपादय अवश्य होता है। पर जब तक वस्तु तत्व का सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तब तक हय में त्याग बुद्धि गय में ज्ञापक बुद्धि और उपादय में धारण बुद्धि नहीं हो सकती है अतः हय गय और उपादय को सम्यक् प्रकार से समझ कर हय का त्याग गय को जानना और उपादय को अंगीकार करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का व्याख्यान सब को कर्ण प्रिय था। प्रत्येक मनुष्य की भावना थी कि हमारे शरीर में कोई भी शुभ लक्षण शुभ रेखादि है या नहीं ? यही विचार शाह कल्याण के हृदय में चक्कर लगाने लगा। कल्याण समय पाकर सूरिजी के पास पहुँचा और वन्दन कर अपना हाथ सूरिजी के सामने बढ़ाया जिसक सूरिजी ने ध्यान लगा कर देखा और कहा कल्याण तेरे शरीर में इतने उत्तम लक्षण हैं कि यदि तू भगवती जैन दीक्षा गृहण कर ले तो तेरी भाग्य रेखा इतनी जबर्दस्त खुलेगी कि तू एक जैनधर्म का उद्धारक होकर

पुत्र और सात पुत्रियों का जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बना लिया था जिसमें एक कल्याण नाम का पुत्र तो कल्याण की मूर्ति ही था। इतनी सम्पति इतना परिवार होने पर भी शाह डावर एवं आपकी पत्नी पन्ना धर्मकरणी करने में इतने दृढ़ प्रतिज्ञा वाले थे कि वे अपने जीवन का अधिक समय धर्म साधन में ही व्यतीत करते थे। जब माता पिता की इस प्रकार धर्म प्रवृति होती है तो उनके बाल बच्चों पर धर्म का प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता है ?

शाह डावर पाश्चात्य प्रदेश के साथ व्यापार करता था तो उसके हाथ एक ऐसा पन्ना लग गया कि उसने उस पन्ना की एक भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति बना कर अपने घर देरासर में प्रतिष्ठा करवादी जिसकी सेठजी आदि सब परिवार के लोग त्रिकाल सेवा पूजा किया करते थे।

पूर्व जमाने में घर देरासर की प्रवृत्ति अधिक थी और इससे कई प्रकार के लाभ भी थे। कारण, एक तो घर देरासर होने से क्या स्त्री और क्या पुरुष सब कुटुम्ब वाले सेवा पूजा एवं दर्शन का लाभ ले सकते थे इतना ही क्यों पर जैनेतर नौकर चाकर भी परमात्मा के दर्शन उपासना एवं पूजा का लाभ उठा सकते थे। दूसरे घर में अपने इष्ट देव होने से दूसरे अन्य देव देवियों को स्थान नहीं मिल सकता था तीसरे जैनेतरों की लड़की परणीज कर लाते थे वह भी जैन धर्मोपासिका बन जाती थी। चौथे घर में देरासर होने से धर्म पर श्रद्धा भी मजबूत रहती थी इत्यादि अनेक फायदे थे।

एक समय परोपकारी आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज भू भ्रमण करते हुए चन्द्रावती के नजदीक पधार रहे थे। यह शुभ समाचार चन्द्रावती के संघ को मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा और वे लोग सूरिजी के स्वागत की तैयारी करने लग गये। फिर तो कहना ही क्या था बड़े ही समारोह से नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी ने चन्द्रावती में पदार्पण कर जैन मंदिरों के दर्शन किये और बाद थोड़ी पर सारगर्भित देशना दी। सूरिजी का व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि जिस किसी ने एक बार सुन लिया फिर तो उसको ऐसा रंग लग जाता था कि बिना सूरिजी का व्याख्यान सुने उसको चैन ही नहीं पड़ता था।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा विविध विषय पर होता था पर आपके व्याख्यान में संसार की असारता और त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर अधिक जोर दिया जाता था।

एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने सामुद्रिक शास्त्र का इस खूबी से वर्णन किया कि हस्त पदों की रेखा शरीर के तिल मास लशनियादि के भविष्य में होने वाले शुभाशुभ फल विस्तार से बयान किये और कहा कि श्रोता जनों ! सर्वज्ञ के ज्ञान से कोई भी विषय शेष नहीं रह जाता है। हां, उसमें हय गय और उपादय अवश्य होता है। पर जब तक वस्तु तत्व का सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तब तक हय में त्याग बुद्धि गय में ज्ञापक बुद्धि और उपादय में धारण बुद्धि नहीं हो सकती है अतः हय गय और उपादय को सम्यक् प्रकार से समझ कर हय का त्याग गय को जानना और उपादय को अंगीकार करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का व्याख्यान सब को कर्ण प्रिय था। प्रत्येक मनुष्य की भावना थी कि हमारे शरीर में कोई भी शुभ लक्षण शुभ रेखादि है या नहीं ? यही विचार शाह कल्याण के हृदय में चक्कर लगाने लगा। कल्याण समय पाकर सूरिजी के पास पहुँचा और वन्दन कर अपना हाथ सूरिजी के सामने बढ़ाया जिसक सूरिजी ने ध्यान लगा कर देखा और कहा कल्याण तेरे शरीर में इतने उत्तम लक्षण हैं कि यदि तू भगवती जैन दीक्षा गृहण कर ले तो तेरी भाग्य रेखा इतनी जबर्दस्त खुलेगी कि तू एक जैनधर्म का उद्धारक होकर